प्रकाशकके दो शब्द

हम कई वर्षोंसे इस ग्रन्थके उद्धारका विचार कर रहे थे परन्तु अन्य झंझटोंके कारण विलम्ब हो गया इस लिए आज इस महत्व पूर्ण ग्रन्थको जैसा कुछ हमसे हो सका है तैयार कराके आपके समक्ष रख रहा हूं। निजका प्रेस होनेपर भी अधिक विलम्बसे यह प्रकाशित हो रहा है इसका हमको अत्यंत खेद है।

भविष्यमें और भी बड़े २ ग्रन्थ लागत मात्र पर प्रकाशित करने का हम आयोजन कर रहे हैं। इस सस्ती ग्रन्थमालामें अधिकतर प्राचीन विद्वानोंके भाषानुवाद ही पहिले निकाले जांयगे, अतएव प्रत्येक भाई को ग्राहक हो कर इससे लाभ उठाना चाहिए।

ग्रन्थ परिचय और कृतज्ञता।

स्वर्गीय विद्वद्वर पं० टेकचन्द्रजी ने सं० १८३८ की श्रावण शुक्ला ११ को इस सुदृष्टितरंगणी नामक ग्रन्थको लिखकर पूर्ण किया था, इस ग्रन्थकी भाषा कितनी सरल तथा समझाने का ढंग इतना उत्तम है कि प्रत्येक विषयको बालक भी सुगमता से समझ लेते हैं। यह ग्रन्थ ४२ पर्वों में पूर्ण हुवा है। श्रावकों के उपयोगी विषयों के साथही मुनि धर्मका भी विस्तृत रूपसे वर्णन किया है। कठिन से कठिन विषयों के प्रश्नों द्वारा खूबही सरलता से उत्तर दिये गये हैं—इस तरह के ग्रन्थ प्राचीन समय से बराबर निर्माण होते चले आ रहे हैं। इसके लिए जैन समाज स्वर्गीय पंडितजी की सदैव ऋणी रहेगी। मूल श्लोक भी साथ में दिए हैं। अक्षर बड़े तथा पुष्ट कागज पर सुन्दरता के साथ शुद्धता पूर्वक ग्रन्थको छपाया गया है, फिर भी अज्ञानतासे भूलें रह गई होंगी उनके लिए विज्ञ पाठक क्षमा करें। हमारे स्नेही मित्र कस्तूरचन्द्रजी छाबड़ा ने ग्रन्थराजके संशोधन कार्यमें बहुत सहायता दी है इसके लिए हम उनके आभारी हैं।

कलकत्ता,
ता० ३१-१-१९२९

जिनवाणी सेवक—
दुलीचन्द पन्नालाल परवार

विषय सूची।



सुदृष्टि तरंगणी।

मंगलाचरण।

मनमांहि भक्ति अयान नमिहौं, देव अरिहंत कौं सही। फिर सिद्ध पूजौं अष्ट गुणमय, सूर गुण छत्तीस ही।
अंग पूर्व धारी जजौं उपाध्याय साधु गुण अठवीस जी। यह पंच गुरु ग्रन्थ आदि सत् ए मंगदा जगईश जी॥ १॥

वृषभसेन आदिक गणराय, गौतम स्वामी लौं श्रुतिराय। और नमों ग्रन्थ कवि सूर, जिन कीने मिथ्या मगचूर॥ २॥
सुमति करन कुमती हरन, भरन ज्ञान भण्डार। दया मूर्ति सर्वज्ञकों, नमों सूर भवतार॥ ३॥

देव धर्म गुरु या विधि थकी मानिये, कोय मन वचन तैं भक्ति उर आनिये।
और तीरथ नमों सिद्ध तहां तें भये, नमों जिन बिम्बन किये कृत्तिम थए॥ ४॥

ऐसे इष्ट देवनि जो पूजै, तातैं अगले मारग सूजै।
इन प्रसाद अब बुद्ध सवाई, ग्रन्थ रचूं शुभ शुभ फलदाई॥ ५॥
मैं तो इष्ट देवको दासा, होऊ भक्ति तितने तन श्वासा।
सब जीवनतैं क्षमा कराई, निज सम जानि दया उर आई॥ ६॥

॥ ग्रन्थ महिमा॥

ए ग्रन्थ सागर अर्थ जल करि पूरित सही। बहु दृष्टान्त युक्ति नय तरंग उठै सही॥ ७॥
ता मध्य जे अधिकार दीप सम जानिये। तत्त्व रतन करि भरे सकल सुख खानिये॥ ८॥
सुख खानि तहां समदृष्टि जावे बैठ जिन वचनावजी। ते चहैं भुज बुद्धि यल पहुंचे नहीं तिनको दाव जी॥ ९॥
तातैं जु संरधा पोत गहिं दृष्टि सुरति सागर कौं तिरौ। नहिं कोय और उपाय भवि श्रुति सीख यह हिरदै धरौ॥ १०॥

शंभुरमण समुद्र सो, यह श्रुति उदधि गँभीर। पार कौन जिन विन लहै, बरणौ वुध सम वीर॥११॥

आगे वचनिका लिखिए है। सो ऐसे स्तुति करि अरुप्रथम इस ग्रन्थमें प्रवेश करनहारे जे सुबुद्धि हैं ते धर्मशास्त्रके वेत्ता तिनकौ वतावैं हैं। जो उत्तम तीन कुलमें उपजे धर्मात्मा मोक्षाभिलाषी होय सो ऐसे धर्म शास्त्रनि में प्रवेश करैं हैं। तातैं इस ग्रन्थका टिप्पण सामान्य करि लिखिये है। सो उत्तम श्रावकनि को परभव सुधारवे अर्थ धर्मशास्त्रनिका अभ्यास करना योग्य है। यह धर्मशास्त्र है सो याका सामान्य टिप्पणी कहिये है सो चित्तदेय सुनौ। आगे जो जो कथन इस ग्रन्थमें कहिंये तिनकी सूचनिका मात्र सामान्य टिप्पणी जो पीठिका सो लिखिये है। सो इस पीठिकाके जाने सब ग्रन्थका सुमिरण होय है। अर्थात् जिस अधिकारका चिंतवन किये उस अधिकारके अर्थकी याद होय है तातैं इस ग्रन्थके आदि कथनका टिप्पण लिखिये है॥ सो प्रथम ही तो ग्रन्थकर्त्ता अपने इष्टदेवको मंगल निमित्त नमस्कार करैगा ॥ १ ॥ पीछे देवका कथन करते प्रश्नपाय सिद्धनिके सुखका कथन है ॥ २ ॥ आगे इस ग्रन्थके नामका कथन है ॥ ३ ॥ तापीछे इस ग्रंन्थमें ज्ञेयहेय उपादेयका स्वरूप है ॥ ४ ॥ पीछे स्वज्ञेय परज्ञेयका वर्णन है ॥ ५ ॥ बहुरि अवसर पाय पंच प्रकार परावर्तनका कथन है ॥ ५ ॥ ता आगे सम्यक्त होतैं मिथ्यात्व छूटतैं, क्षयोपशमादि पंच लब्धिका स्वरूप है ॥ ७॥ बहुरि सम्यक् दर्शनके दश भेदनिके स्वरूपका व्याख्यान है ॥ ८ ॥ पीछै सम्यक्तके पचीस दोषनिमें जातिमद आदि अष्टमद, अरु शंका आदि सम्यक्तके आठ दोषनिका, अरु षट् अनायतन अरु तीन मूढ़ता इन पचीसनका स्वरूप है ॥९॥ आगे सम्यक्तके अष्ट गुणनिका व्याख्यान है ॥ १० ॥ सम्यक् दृष्टी बीतराग कह्या तापै शिष्यके प्रश्न उत्तरका कथन है ॥ ११ ॥ आगे शुभ अशुभ श्रोतानिका कथन है ॥ १२ ॥ आगे वक्ताके गुणोंका कथन है फिर ग्रन्थकर्त्ता अपनी लघुता सहित ग्रंथ करिवेकी अभिमानता छाड़ि ग्रंथकर्त्ताकेवली हैं मैं नाहीं ॥१४॥ व्यवहारमात्र ग्रंथके अर्थ कवीश्वरोंने मिलाये हैं तिनमें बुद्धिकी समानता करि कोई चूक होय, तो तिसको शुद्ध करिनेको विशेष ज्ञानीनतैं विनती करी तापै शिष्यके प्रश्न पाय उत्तर सहित कथन है ॥१५॥ ता ग्रन्थ करनेमें तरकी (तर्क करने वाले) ने मान बताया, ऐसा प्रश्न होते अनेक युक्ति दृष्टान्त सहित, उत्तर कथन है ॥ १६ ॥ पीछे ग्रंथनिमें ग्रंथकर्त्ता अपने नामका

भोग धरैं ताकी परिपाटी है ॥ १७ ॥ पीछै भले बुरे पंडितनका तामें धर्मार्थी अरु धर्मरहित तिनका दृष्टान्तपूर्वक तरकी नै कही ग्रंथमैं कोई चूकहोइगी तो दोष लागैगा ताके प्रश्न पाय निर्दोष ग्रन्थकर्त्ताका कथन है ॥ १६ ॥ बहुरि ग्रन्थके आदि, आचार्य षट्कार्यनिका कथन करते आये तिनका कथन है ॥ २० ॥ पीछै ग्रन्थके आदि मंगल करिये, सो मंगलके षट् भेदनिका कथन है ॥ २१ ॥ आगे जिन ग्रंथनि में ए सात कथा होय सो ग्रंथ मंगलकारी होय। तिन कथानि का कथन है ॥ २२ ॥ फिर जिन सर्वज्ञ भाषित तत्व, जीव अजीवनि का कथन सत्य है। ऐसा कहते तरकी ने अनेकमतन संबंधी तत्व सत्य बताय प्रश्न किया। सो तिन अन्य मतीन के भाषे जीवादि तत्त्वनिमें अरु सर्वज्ञ भाषित तत्वनि विषैं अंतर है। तिनके कथन का अनेक नय दृष्टान्त युक्ति रूप कथन है। तहां कोई ब्रह्मवादी संसारमें एक आत्मा मानैं है। कोई अवतारवादी मोक्ष-आत्मा कूं अवतार मानै है। और कोई क्षणिक मती जीव छिन-छिन में शरीर विषै उपजता मानैं हैं। कोई कर्त्तावादी आत्मा कौं उपजावनहारा मानैं है। कोई नास्तिकमती जीवका अभाव मानैं हैं। कोई अज्ञानवादी मोक्ष विषैं ज्ञानका अभाव मानैं हैं। और कोई अजीव कौं जीव मानैं हैं। स्थिरवादी ऐसा मानैं हैं, जो जैसा मरै सो ही उपजै। केई जीव को अजीव मानै हैं। इत्यादिक भरमवादीनका भरम मेटवे कौं सर्वज्ञ भाषित तत्वनिका स्वरूप कथन है ॥ २३ ॥ बहुरि सत्य असत्य आप्त आगम पदार्थ तिनका कथन है ॥ २४ ॥ पीछे शुद्धदेवके जानिवे कौं अतिशय चौंतीस आदि छियालीस गुणनिका कथन है ॥ २५ ॥ आगे जामें एते दोष होंय सो देव नाहीं। ते दोष कौन. तिन अष्टादश दोषनिका कथन है ॥ २६ ॥ बहुरि कुदेवनिका कथन है ॥ २७ ॥ आगे कुगुरुके पहचानवेकूं गुणलक्षणका कथन है ॥२८॥ फेरि सुगुरुके मूल गुण अट्ठाईस हैं तिनमें एषणा समिति विषैं मुनिके भोजन में छियालीस दोष हैं। तिनका कथन है। तहां भोजन समय बत्तीस अन्तराय बंधे, उनका तथा मल दोषनिका कथन है ॥ २९ ॥ आगे बाईस परीषहनिका कथन है ॥ ३० ॥ आगे पंच महाव्रत, पंचसमिति, षड़ावश्यक, पंचेन्द्रीवशीकरण आदि अठाईस मूलगुणनिके कथनमें षड्आवश्यकनका विशेष निर्णय है ॥ ३१ ॥ आगे मुनीश्वरनिके दश

भेदनिका कथन है ॥ ३२ ॥ बहुरि आचार्यनिके गुणनि विषैं दशलक्षणधर्म, बारहतप, पंचाचार, षडावश्यक, तीनि गुप्ति, इन छत्तीस गुणनिका कथन है ॥ ३३ ॥ आगे सत्यधर्मके दशभेदनका कथन है ॥ ३४ ॥ बहुरि दश अतीचार ब्रह्मचर्यके हैं तिनका कथन है ॥ ३५ आगे उपाध्यायजीके पचीस गुण विषै ग्यारह अंग, चौदह पूर्वका कथन है। तिनमैं त्रिलोक बिंदु पूर्वके कथनमें संक्षेपमें तीन लोकका कथन है। तिनमैं मध्यलोकके कथनमें असंख्यात द्वीप समुद्रनिमें आदिके षोड़स अन्तके षोड़स द्वीपनिके नाम हैं। और तहां ही अढ़ाई द्वीप संबंधी ध्रुवतारनिका प्रमाणं कथन है ॥ ३६ ॥ आगे मध्यलोक विषैं चारि सौ अठावण अकृत्रिम जिन मन्दिर हैं, तिनके स्थाननिका वर्णन है ॥ ३७ ॥ बहुरि स्वर्गलोकके कथनमें आठ युगलानिके सोलह स्वर्गनके नाम, तिन संबंधी देवनिकी आयु अरु कायके प्रमाणका कथन है ॥ अरु युगलनि प्रति इन्द्रनिका प्रमाण, अरु युगल प्रति विमानकी संख्याका कथन है। और धरती तें केते केते ऊँचे हैं। तिनके प्रमाणका कथन है। विमाननि के वर्णनका कथन है। स्वर्गनिके आधारनिका अरु स्वर्ग प्रति कामसेवनका, देवनिके मरन पीछे उस ही स्थानमें देव उपजनेंका अन्तर; और युगलनप्रति देवनकी अवधि विक्रियाका देवनिके श्वासोछ्वासके अन्तरका प्रमाण, मुकुटनिके चिन्हनिका, विमाननकी मोटाईका और स्वर्गप्रति लेश्या अरु देवांगनाकी उत्पत्ति, देवनीकी आयु, ऐसे सामान्य ऊर्ध्वलोकका कथन है। इत्यादिक त्रिलोकबिंदु पूर्व विषैं इन आदि, ग्यारह अंग चौदह पूर्वका ज्ञान सहित उपाध्यायजीके गुणनका कथन है ॥ ३८ ॥ आचारसारजी अनुसार मुनीश्वरोंके विचारवेके समाचार दश हैं। आश्रय पांच हैं। ॥३९ ॥ धर्मके कथन विषैं पहले कुधर्मका बहुरि सुधर्मका ॥ ४१ ॥ नव नयका धर्मकी परीक्षाकौ पंचप्रमाण हैं ॥ ४३ ॥ कुसंग त्यागका, सुसंगका ॥ ४५ ॥ कौन कौन ध्यान चिन्तवन करने योग्य हैं।कौन कौन नहीं करिए? जौ आर्त्त रौद्र ध्यान.नहीं करिये। अरु धम शुक्ल ध्यान करने योग्य है ॥४६॥ आर्त्तके चिन्हनका, सुआचार कुआचारका कथन है ॥ ४८ ॥ योग्य अयोग्य खान पानका ॥ ॥ ४९ ॥ शुभ अशुभ वचन भेदका असत्यके ग्यारह भेदनका परस्पर विना प्रयोजन बतलावना सो विकथा है। ताके पचीस भेदनका, द्रव्य क्षेत्र काल भावके कथन विषैं स्वद्रव्य क्षेत्र काल भाव

तथा परद्रव्य क्षेत्र काल भावका कथन है। तहां स्वद्रव्यकी परीक्षाका कथन है। द्रव्यनके प्रमाण कथनमैं मनुष्य द्रव्य थोरा है। क्षेत्र अपेक्षा मनुष्यका क्षेत्र थोरा है और काल अपेक्षा मनुष्यका काल थोरा है। और भाव अपेक्षा मनुष्यके उपजनेका भाव थोरा है। ॥ ५३ ॥ षट्कायके जीवनकी आयु, कायका कथन है ॥ ५४ ॥ एकेन्द्रिय तिर्यञ्चनमैं सूक्ष्मवादर है ॥ ५५ ॥ षट् कायके शरीरनके आकारका कथन है ॥ ५६ ॥ षट् काय जीव केती केती कर्म स्थिति बांधैं ? ॥ ५७ ॥ पंच इन्द्रियका विषय कितना है ताके प्रमाण ॥ ५८॥ पंचगोलक निगोदके हैं ते कहां कहां हैं ? ॥ ५९ ॥ निगोदि जीवनके प्रमाणकी अनन्तता महा दीर्घ है। ॥ ६० ॥ निगोदिके दोय भेद हैं ॥६१॥ षट्काय जीव जघन्य आयु पावै तौ एक अन्तर्मुहूर्त्त मैं केतेक भव करै ॥ ६२ ॥ सुतप कुतपका कथन है ॥ ६३ ॥ सुतपके बारह भेद हैं तहां आलोचनातपके अतीचार दश हैं। ॥ ६४ ॥ कोऊ मुनिमें दीर्घ दोष पड़े तौ ताकौ आचार्य, दीर्घ दंड कौन कौन दीजिये ताका कथन है ॥ ६५ ॥ विनयतपके पांच भेद हैं ॥ ६६ ॥ सुव्रतके भेद बारह हैं अरु कुव्रत हैं ॥ ६७ ॥ बारह अनुप्रेक्षा हैं ॥ ६८ ॥ सुदान कुदानका कथन है तहां सुदानके चारि भेद हैं ॥ ६९ ॥ जिनकूं दान दीजिये सो पात्र हैं तिनके सुपात्र कुपात्र करि दोय भेद हैं तिनके विशेष भेद पन्द्रह, तिनका अरु तिनके दानके फलका कथन है ॥ ७० ॥ पूजा भेद दोय हैं एक सुपूजा एक कुपूजा ॥ ७१ ॥ तीरथ दोय हैं एक सुतीरथ एक कुतीरथ, ॥ ७२ ॥ चरचा भेद दोय हैं एक सुचर्चा और एक कुचर्चा, ॥ ७३ ॥ बहुरि अनुमोदनाके भेद दोय हैं कहीं तो अनुमोदना किये पापबन्ध होय, सो तो पाप अनुमोदना अशुभ है। एक अनुमोदना किये पुण्य होय सो शुभ अनुमोदना है ॥ ७४ ॥ मोक्षके भेद दोय हैं एक तो भोरे जीवनिकी कल्पी कर्ममलसहित मोक्ष है और एक शुद्ध निरंजन सर्व कर्म मलरहित निर्दोष मोक्ष है ॥ ७५ ॥ कुज्ञान सुज्ञान करि ज्ञानके दोय भेद हैं तहाँ मतिज्ञानके तीनिसैछत्तीस भेद रूप वर्णन है ॥ ७६ ॥ श्रुतज्ञानका कथन है तहाँ व्यय ध्रुव उत्पात, ज्ञाता ज्ञेय ज्ञान, ध्याता ध्येय ध्यान, कर्त्ता कर्म क्रियाका कथन है। ताहीमें संक्षेप तैं पल्य सागरका कथन है ॥ ७७ ॥ पीछैं कृतघ्नी विश्वासघातीका दृष्टान्तपूर्वक कथन है ॥ ७८ ॥ च्यारि गति, पाप पुण्यके फल प्रगट

जनावनहारे आगति जागति (आने जाने) रूप दंडकका कथन है ॥ ७९ ॥ निमित्त उपादानका सुबनिज कुबनिजका बहुरि श्रुतज्ञान समासरूप कथन है ॥ ८० ॥ अवधिज्ञानका कथन है तहां देशावधि परमावधि सर्वावधि करि तीनि भेदरूप कथन है तहाँ देशावधिके हीयमानादि षट्भेद रूप कथन है ॥८१॥ अर सोई अवधि, भवप्रत्यय गुणप्रत्यय दोय भेद लिये है ॥८२॥ मनःपर्यय, ऋजुमति विपुलमति करि दोय भेद रूप है ॥८३॥ संक्षेपतैं केवलज्ञानका कथन है ॥८४॥ आगे कहैं हैं जो यह आत्मा अपनो आयुके दिन सोई भए मोतिनकी माला तिनको बृथा खोवे है ॥ ८५ ॥ आत्मा अपनी भूल तैं आप ही बंध कूं प्राप्ति होय ऐसा दृष्टान्त देय बतावैं हैं ॥ ८६ ॥ त्रयोदश भय शुद्धात्मा मैं नाहीं ॥ ८७ ॥ चक्री त्रिखंडी महामण्डलेश्वरादि राजानि की विभूति विनाशीक बतावता कथन है ॥ ८८ ॥ मातापितादि सज्जन कुटुम्बी अपने २ स्वारथरूप बंधन तैं बँधे हैं ॥ ८९ ॥ जिन २ वस्तूनिका स्वभाव सहज ही चंचल है तिनके मेटवेको कोई उपाय नाहीं, ॥ ९० ॥ ऐसा कहै हैं जो कोऊ महापंडित भी होय अरु श्रद्धानरहित मिथ्याश्रद्धानी होय तो ताकै मुखका उपदेश सम्यक्-दृष्टीनिकौं सुनना योग्य नाहीं ॥ ९१ ॥ सर्पकी क्रूरता तैं दुष्टजीवनिकी क्रूरता बहुत बतावे हैं ऐसा कथन है ॥ ९२ ॥ सज्जन दुर्जन जीवनिका स्वरूप दृष्टान्तपूर्वक कथन किया है ॥ ९३ ॥ भला उपदेश भी मूर्ख जीवनि कूं कारजकारी नाहीं, ॥ ९४ ॥ केतेक जीव दयारहित हैं ऐसा बतावता कथन है ॥ ९५ ॥ कृपणका धन कहा होय ? ॥ ९६ ॥ केतेक जीव दयारहित ही हैं तिनकों बतावता कथन है ॥ ९७ ॥ संतोषी आत्मा आपकूं दरिद्रावस्थामें भी सुखी भया मानि दारिद्रकूं असीस देय हैं ॥ ९८ ॥ धर्म सेवनहारे जीव संसारमें च्यारि प्रकार भावनकी वाञ्छा सहित धर्मका साधन करै हैं ॥ ९९ ॥ छन्द काव्यके वक्ता कवीश्वर काव्य छन्दकी जोड़ कला करणहारे पण्डित पाँच प्रकार हैं सो अपने अपने स्वभाव कूं लिये छन्दनिको बनावै हैं ॥ १०० ॥ पंचमकालकी महिमा जो यामें वांछित निमित्त नाहीं ऐसा कथन है ॥ १०१ ॥ अपने शुद्ध भावनि बिना तप संजम ध्यान कार्यकारी नाहीं ऐसा कथन दृष्टान्तपूर्वक कहै हैं ॥ १०२ ॥ अपने हित रूप सुवर्णके परखिवेकों कसौटी समान नव स्थान हैं तिनका कथन है ॥ १०३ ॥ इन कसौटी समान स्थानकन पै कौनको परखिये ?

॥ १०४ ॥ एक रोगके दुःखकूं उपचार अनेक जीव अनेक रूप अपनी--अपनी दृष्टी प्रमाण बतावैं, ॥ १०५ ॥ घर कुटुम्बको तज, फेरि घर चाहै, कुटुम्बादि हितू चाहै, घर घर दीन होई याचै, जाको आचार्य कहा कहै? ॥ १०६ ॥ कौनके वास्ते काहे कूं तजिये? ॥ १०७ ॥ जो जो देशमें एती वस्तु नहीं होय तो विवेकी तहां नहीं रहे ॥ १०८ ॥ इन दश स्थानकनिमें लाज नाहीं करिये ऐसे स्थानक बताये ॥ १०९ ॥ जाके बल होय सो बलवान है ॥११०॥ स्नेह समान और बल नाहीं, हित है सोही भुजबल और सैन्य बल है ॥१११॥ नीति मार्गरूप परिणति सोही बड़ी सेना वा भुजबल है ॥११२॥ अनेक संकटनिमें एक पूर्वोपार्जित पुण्य सहायहै ॥११३॥ एती वस्तुभई, कार्यकारी नाहीं, आगे एती वस्तु पर उपकारनिमित्त ॥११५॥ धर्मात्मा जीवनिकूं इन स्थानकनिमें लज्जा करना योग्य नाहीं ॥११६॥ एती बात कहै हैं जो संकटमें सत्पुरुषनिको साहस ही सहाय है कहै हैं जो एतीन स्थान पंडितनके हँसनेके कारण हैं सतसंगका किया अनादर भी गुणकारी है मलेच्छपणेके षट् भेद हैं ॥ १२० ॥ मूढ़ताके सात भेद बताये हैं ॥ १२१ ॥ सम्यक्ज्ञानविषैं अरु मिथ्या ज्ञान विषैं दृष्टान्त पूर्वक अन्तर अरु फलभेद बताये हैं ॥ १२२ ॥ इन्द्रिय सुखनि तैं आत्माकी तृप्ति नाहीं भई ॥ १२३ ॥ नरक पशूनिके दीर्घ दुःखनितैं नहीं डरया तो तप संयमके अल्प दुःखनितैं क्यों डरो हो? ॥ १२४ ॥ सर्व कषायनि तैं माया कषायका पाप बड़ा बतावता कथन है ॥ १२५ ॥ पुण्य वृक्षका फल इन्द्रिय सुख है सो धर्मघातक नाहीं, जीवकूं दुःखदाई नाहीं ॥ १२६ ॥ मुनीश्वरोंके मोक्षमार्गका साधन एक, धर्मी श्रावकनिका मन्दिर है ऐसा कथन है ॥ १२७॥ बुद्धिपाये व धन पायेका कहा एते निमित्तकाल समान जान तजना योग्य है ॥ १२९॥ एती जगह यतीश्वर नाहीं रहें, रहैं तो संजम भृष्ट होय ॥ १३० ॥ ऐते जीवनिका विश्वास नाहीं करिये ॥ १३१ ॥ मुखमीठा, पीछै तैं द्वेष भाव करै ऐसे मित्रनकूं दूरते तजना ॥१३२॥ ऐसीसभा विषैं सभा विरुद्ध नाहीं बोलना ॥ १३३ ॥ धर्मशास्त्रपढ़कैं एते गुण नहीं भये तो पढ़ना बायस (कौवा) के शब्द समान है ॥ १३४ ॥ मरणसे भी निद्राको अनिष्ट बतावैं हैं ॥ १३५ ॥ दुष्टजीवनका स्वभाव दृष्टान्त देय बतावैं हैं ॥ १३६ ॥ पूवपापतैं शरीर विषैं रोग होय तिनकी दीर्घता बतावैं है ॥ १३७ ॥ कहै हैं जो और रोगनकी

औषधि नाहीं, ॥ १३८॥ इष्टवियोग अनिष्ट संयोग कहां है कहां नाहीं ॥ १३९ ॥ कालतैं आगे भागिकैं बचा चाहे सो कोई उपाय नाहीं ॥ १४० ॥ अग्निके तीन भेद हैं सो कौन सी :अग्नि काहे कौं बालै, ॥ १४१ ॥ कहै हैं जो तप संयम विद्यादि भले गुण रूपीरतन हैं तिनके ठगवे कौं इन्द्रिय सुख ठग समान है ॥ १४२ ॥ इष्टवियोगके दोय भेद हैं ॥ १४३ ॥ जैसी परणति विषयकषायनमें एकाग्र होयहैं, तैसी धर्म विषै होय तो कहा होय ? ॥ १४४ ॥ कृपण अपने तनकूं ठगे है ॥ १४५ ॥ कौनके अतिशय सहित उपदेश वचन हैं अरु कौनके अतिषय रहित उपदेश वचन है ऐसा कथन है ॥ १४६ ॥ भिखारी घर-घर मांगें है सो मानूं उपदेश ही देता फिरै है ॥ १४७ ॥ नव भेद जीव उपजनेके योनि स्थानके हैं ॥ १४९ ॥ आठ जगह निगोद नाहीं ॥ १५० ॥ निमित्त ज्ञानके आठ भेद हैं॥ १५१ ॥आगे आठ अंग ज्ञानके हैं॥ १५२॥ ध्यान करवे योग्य स्थान बताये है॥ १५३ ॥ आलोचनाके अतीचार दश हैं ॥ १५४ ॥ आचार्य जिस अवसरमें दीक्षा नहीं दें ऐसेकाल दश हैं तिनको टालि दीक्षा देय हैं ॥१५५॥ श्रीगोम्मटसार सिद्धान्तके अनुसार दश कारण हैं तिनके निमित्त पाय कर्मकी अवस्था अनेक प्रकार होय है तिन कारणनिका कथन है ॥ १५६ ॥ मिथ्यात्वके दोय भेदनिका भावके तीनि भेदनिका कथन है ॥ १५८ ॥ तीनभेद भव्यके हैं तीनभेद अंगुलीके हैं ॥ १६० ॥ उगणीस (१९) भेद मापके प्रमाणके हैं ॥ १६१ ॥ तीन भेद अक्षरके हैं तीनि भेद लिये पर्यातिनका स्वरूप है ॥ १६३ ॥ चक्षुदर्शनके दोय भेद हैं ॥ १६४ ॥ दोय भेद उपशमसम्यक्तके हैं ॥ १६५ ॥ योगस्थानके तीन भेद हैं ॥ १६६ ॥ तीन भेद धर्मतैं अरुचि होनेके हैं ॥ १६७ ॥ मिथ्यात्वपोषित शल्यके भेद तीन हैं आगे च्यारि निक्षेपनिका कथन है ॥ १६९ ॥ अलौकिक मान चारप्रकार है ॥ १७० ॥ अर्जिकाकें चार गुण हैं ॥१७१॥ दत्ति (दान) के चार भेद हैं ॥१७२॥ कुलकरनिकैं बारह चूंक भये दंड होय, ताके भेद चारि है ॥ १७३ ॥ हिंसामें कोई प्रकार पुण्य नाहीं दृष्टान्तकरि बतावता कथन है ॥ १७४ ॥ अनेक दृष्टातनिसे दयामें पुण्य बतावता कथन है ॥१७५॥ राजानिमैं ऐसे गुण होंय तो तिनकी प्रजा सुखी होय, राज तेज बढै यश प्रगटै, परभव सुधरै, तातैं राजनिमें ऐसे गुण अवश्य चाहिये ॥ १७६ ॥ चौदह विद्या राजपुत्रिनके

सीखने योग्य हैं ॥ १७७ ॥ चौदह विद्या लौकिकी हैं, चक्रवर्तीके पुण्य योगतैं नव निधि चौदह रत्न हैं
॥१७६॥ चौथेकालके आदि प्रजाके सुखनिमित्त भरत चक्रीने षट् कर्म बनाये ॥ १८० ॥ भरतचक्रीकूं तिनका
फल आदिनाथ स्वामीने कहाकि अभी नाहीं, पंचम काल आये आगे प्रगट होयगा, ॥ १८१ ॥ चक्रवर्तीकी
सैना षट् प्रकार है ॥१८२॥ शुद्ध भगवानकी। परीक्षाके मुख्य तीन गुण हैं ॥ १८३ ॥ जबै तीर्थंकर गर्भ विषै
अवतरैं तबै पहिले माता कों सोलह स्वप्ने होय तिनके नाम फलका कथन है ॥ १८४ ॥ तीर्थंकरादि महान
पुरुपनके चिन्ह षट् गुण हैं जे इन षट् गुण सहित होंय सो पुण्याधिकारी जानिये ॥ १८५ ॥ आभूष-
णनिमें हार मुख्य है सो हारके ग्यारह भेद हैं ताका कथन है ॥ १८६ ॥ आदिनाथ स्वामी कैलाशपर्वततैं
निर्वाण जानें विषैं चौदह दिन बाकी रहे तब आठ पुरुषनिको आठ स्वप्ने भये ॥ १८७ ॥ नायक नाम बड़े
का है तस नायकके तीन भेद हैं ॥ १८८ ॥ श्रावकका धर्म ग्यारह प्रतिमा तिनमें पंच उदम्बर व तीन मकार
का त्याग करने वाला अष्ट मूलगुण धारी है। तिन मूल गुणनिके अतीचारनिमें सात व्यसनके अतीचारका
कथन है। तामैं मांसके अतीचार स्वरूप बाईस अभक्षका कथन है ॥१८६॥ दूसरी प्रतिमामें पंच अणुव्रत तीन
गुणव्रत, च्यारि शिक्षाव्रत बारह व्रतनिका व इनके अतिचारका तथा दश प्रकार परिग्रहनिका कथन है नवधा भक्ति
अरु दातारके सात गुणनिका अरु अधाकर्म भोजनके चार भेदनिका अरु चारि प्रकारि दानका अरु सल्लेखना-
व्रत अरु सम्यकदर्शन इनका अतीचार सहित कथन है॥ तीसरी प्रतिमाविषैं सामाइकका अरु सामाइकके अती-
चार वत्तीस अरु फेरि सामायिकके बाईस अतिचारनिका अरु सामाइक कहां करिये तिन स्थानकनिका कथन
है ॥१६०॥ सातवीं प्रतिमा ब्रह्मचर्य है सो ब्रह्मचर्यके चारि भेदनिका तथा ब्रह्मचारी ब्राह्मणके दस अधिकारका
अरु शीलकी महिमा अरु कुशीलका निषेध दस गाथानि कर ऐसे ब्राह्मणकी परिक्षाकूं सिरलिंगादि चारि चिह्नका
तहां ही श्रावकके भोजनमें सात अंतरायका ॥ १६१ ॥ श्रावकनिके विचारवे योग्य सतरह नियमका ॥ १६२ ॥
श्रावकके इकीस गुण हैं तिनका ॥१६३॥ अन्य मतनके अनुसार ब्राह्मणके लक्षणका और तहां तिनके शास्त्र
अरु शास्त्रनिके कर्त्ता आचार्य तिनकी साक्षी सहित ब्रह्मका। सो जिनमें एते गुण होंय सो ब्रह्म है ॥ १६४ ॥

अन्यमत संबंधी मारकण्डेजी आचार्यकृत सुमति शास्त्रमें जल छानवेका कथन किया, अरु बिना गालेका दोष कथन है ॥ १९५ ॥ व्यासजी कृत भारत नामा शास्त्रका सातवां स्कंध विषै ऐसेबचन हैं कि ब्राह्मणको शील सहित रहना वैराग्यादिगुण सहित रहना ॥ १९६ ॥ सुमतिशास्त्र मारकण्डेय ऋषीश्वर कृत तामैं कही भोजन दिनके च्यारिपहर रहैं तिनमें करे तो कैसा२ फल होय है ऐसा कथनहै ॥ १९७ ॥ शिवपुराणमें ऐसी कही है जो ब्राह्मणको एतीवस्तु खावना योग्य नाहीं ॥ १९८ ॥ अन्यमतके कश्यप नामा आचार्य तिनने कही है जो विष्णुभक्त होय ताकूं कन्दमूल खावने योग्य नाहीं, ऐसा कहा है ॥१९९ ॥ शिवपुराण अन्यमत सम्बन्धी तामैं कही है जो दया समान तीरथ नाहीं ॥ २०० ॥ अन्य मतिनमें ब्राह्मणके दस भेद कहे हैं ॥ २०१ ॥ ऐसे अन्यमतनका भी रहस्य दया सहित वताय, ब्रह्मचारीका स्वरूप वताय, पीछे आठवीं प्रतिमा आदि ग्यारहवीं आदि प्रतिमा पर्यंत कथन है ॥ २०२ ॥ ग्यारहवीं प्रतिमामें ऐलक छुल्लक करि दोय भेद श्रावकके कहे हैं ॥२०३॥ मुनि श्रावकका कथन पूरणकर शास्त्र पूरण होते अंतमंगलरूप तीनि काल सम्बधी चौवीसी भरत क्षेत्रकी तिनके नाम, व वर्त्तमान चौबीसीके समयके पुरुषनिका अरु सिद्ध क्षेत्रनि कौं नमस्कार रूप कथन है ॥२०४॥ तीन लोक विषै तिष्ठते आठ कोड़ी छप्पन लाख सत्थाणवैं हजार च्यारिसौ इक्यासी अकृत्रिम जिन मंदिर हैं तिनकी रचना अरु विस्तारका कथन अरु तिनकौं मंगल निमित्त नमस्कार रूप कथन है ॥ २०५ ॥ मंगल निमित्त शास्त्रके अंतमें पंच परमेष्ठीका कथन है ॥२०६॥ अंत मंगल निमित्त श्री अरिहंतदेवके विराजिवेका समोशरणका विस्तार सहित वर्णन है तहां विराजते भगवानकूं नमस्कार करे है भगवानके विहारकर्मका वर्णन है ॥ २०८ ॥ वादिराज गुरु अरु मानतुंग नामा आचार्यगुरु स्तोत्रके कर्त्ता तिनकों नमस्कार है ॥ ग्रन्थ पूरण होते कवीश्वर अपना जन्म सफल जानि हर्ष पाया ॥ १०९ ॥ ग्रन्थपूरण होते कवीश्वर अपना नाम धरि जिस नगरमें पूरण किया ताकौं वताय तिस वर्ष मास दिनको सुफल जानि तिनके सुधरने करि ग्रन्थ पूरण करनेका कथन है ॥ २१० ॥ ऐसे इस ग्रन्थका सामान्य टिप्पण कहा। सो विवेकी श्रोता तथा वक्ता इस पीठिकाके कथनकूं याद करि मनमें राखैं तो इस सब ग्रन्थका सुमिरण होय ॥ २११ ॥

इति श्री सुदृष्टितरङ्गिणी नाम ग्रन्थ मध्ये सर्वावलोकन पीठिका संक्षेप अर्थ वर्णन नाम प्रथमो परिच्छेदः सम्पूर्णः ॥ १ ॥

ऐसे सामान्य पीठिका कही अब ग्रंथारम्भ रूप प्रथम ही इष्टदेव कों नमस्कार किजिये है।

गाथा—अरिहंत देव वंन्दे, गुरुवन्दे णगण णाण वीररायो। धम्मं दयामय वन्दे, कम्मखय कारणं शुद्धं ॥

अर्थ—जो कर्म अरिनिका नाश किया तातैं अरिहंत देव हैं सो ऐसे अरहंतदेवको हमारा नमस्कार होऊ। अरु सर्व परिग्रह रहित ममत्वत्यागी नग्न, राग दोष रहित बीतरागी गुरुकूं हमारा नमस्कार होऊ। षट्काय जीवनकी माता समाज रक्षाकी करणहारा दया सो ऐसी दयामई धर्म कथन सहित सप्तभंगरूप सम्यक्प्रकार सर्वज्ञ वीतरागीका प्ररूपा जो धर्म ऐसे धर्मको नमस्कार होऊ॥ ऐसे प्रथम मंगलके हेतु अपने इष्टदेव धर्मगुरुकों भक्ति भाव सहित नमस्कार करते पुण्यका संचय किया। कैसे हैं देव गुरु धर्म, भक्त जीवनके कर्मनाशके कारण हैं सर्व दोष रहित शुद्ध हैं, तातैं भक्त भी परंपराय शुद्ध होय है। सो या बात सत्य है जाकी सेवा करे तैसाही फल होय है। सो लौकिक विषैं भी प्रगट देखिये है। जो जीव जाकी सेवा करे तैसा ही परंपराय होय। जो कोई जौहरीकी सेवा करे तो परंपराय जौहरी होय। कोई सर्राफकी चाकरी करै तो सर्राफ होते देखिये। आटा दालके बेचने हारेकी सेवा करै तो परंपराय दुकानदार होते देखिये है। हीन संग विषैं शिल्पीकी सेवा करे तो शिल्पी पद पावै। वढ़ईकी सेव करै तो परंपराय वढ़ईका पद पावै, इत्यादिक जैसी-जैसी संगति करै तो तैसा ही पद पावै। तैसे शुद्ध देव गुरु धर्मकी सेवा करै तो शुद्ध होय, ऐसा आचार्यने कहा। तातैं मैं ऐसा जानि अपने देव गुरु धर्मकी वंदनाकरी, ताके फल स्वरूप मेरा कर्म मल नाश होय, शुद्ध अवस्था होऊं। यहां कोई इन्द्री सुखका लोभी प्रश्नकरै जो तुमने कर्म रहित सिद्धपद चाहा सो वहां खावना पीवना, स्त्रीको भोगना, नाना प्रकार सुगन्ध, आभूषण, वस्त्र, रागरंग, नृत्यादिक भोग सुख तो हैं ही नांही तो मोक्ष विषैं और कहा सुख है। ताको कहिये हे विषयाभिलाषी! तोहि सुखकी अभिलाषा है सो हे भाई तू संसार विषैं कहा (क्या) तो दुःख जानै है और कहा सुख मानै है। सो प्रथम तू कहिले, तब हम तोकौं सिद्धनिका सुख कहेंगे॥ तब तरकीने कही—संसारमें वड़ा दुःख तो जन्म मरणका है। तब धर्मीने कही ए दुःख सिद्धनिमें नांहीं। तब तरकीने कही एक दुःख निरन्तर भूख तृषा है तब धर्मीने कही कि यह

सिद्धनिमें नाहीं। फेरि तरकीने कही, शीत उष्ण रागद्वेष क्रोध मान माया लोभ ए दुःख हैं और नाना प्रकार वायु पित्त कफ खांसी स्वांस कुष्टादि रोगनिका दुःख है। तथा कमावना देशान्तर फिरना इत्यादिक अनेक तो संसारमें दुःख हैं। तब धर्मीने कही भो भ्रात! सो संसारके दुःख सिद्धनिमें एक भी नांहीं और तू सुख इन्द्रिय जनित मानै सो देखि, जब षट्रस जिह्वातै एकमेक होई तब जिह्वाके द्वारा रसका जानपना होई तब षट्रसका सुख होई। अरु रसनातै अंतर रहै तब सुख नांहीं। और सिद्ध हैं सो अनंत पुद्गल परमाणु जा जा रसरूप भई जैसे-जैसे रसनके अंश धरैं, तिन तीनकाल सम्बन्धी परमाणुओंके रसके स्वादुको एक समय जानि भोगवैं है॥ और तू नृत्यादिकका सुख मानै है सो तेरी दृष्टि विषैं आवैं तब सुख होय अरु दृष्टिमें नांहीं आवै तो सुख नांही होय। और सिद्धनिके ज्ञानमें जहां-जहां देव मनुष्यनिमें अनंतकालके होय गये, होंयगे होंय हैं जे-जे तीनिकाल सम्बन्धी नृत्य, सो सर्व केवल ज्ञान तैं दीखैं हैं। और तिनके सुख-को भोगवैं हैं। संसारमें तू राग रंगका सुख मानै है सो रागका सुख तब हो है जब अपने श्रोतनिके सुनिवे विषैं आवैं है तब आप सुखी होय है और अपने सुननेमें नहीं आवै तौ सुखनहीं होय। और सिद्ध हैं सो अनंतकाल पहिले जे-जे रागरंग भये ते सब जाने हैं अरु अवतार तीनि लोक विषैं राग होय तिनको जाने हैं। और आगामी तीनिलोक विषैं राय होंयगे तिनि सर्व कौं पहिले ही जानैं हैं। ऐसे तीनिलोक विषैं तीनिकाल सम्बन्धी पुद्गल स्कन्ध मिष्ट स्वरूप होय परनमैं तिनिसर्वकूं एक समय जानि सुख भोगवैं हैं। अरु सुगन्धका सुख संसारी जीवनिके तव होय है जब नासिकाके जानपने विषैं आवैहै और सिद्ध हैं सो तीनिकाल तीनिलोककी पुद्गल परमाणु जे-जे सुगंधरूप भई तिन सबके सुखकूं एककाल जानि सुख भोगिवैं हैं। और स्पर्शन इन्द्रियका विषय सुख स्पर्श विषैं है सो सो जगत जीव तो तन सूं स्पर्सैं तव जानै सुखी होंय। और सिद्ध हैं सो तीनि काल सम्बन्धी तीनि लोकके स्पर्शनके अष्ट विषय सर्वकूं एकैकाल जानि सुखकों रोवैं हैं ऐसे भो भाई सिंद्धनिमें जगत दुःखतो एक भी नांहीं अरु वें इन्द्रिय सुखतें अनंत गुणो अतीन्द्रिय सुख भोगिवें हैं। ऐसें अविनाशी निराकुल-सुख सिद्धनिमें हैं सो जानना॥ ऐसें शुद्धदेव गुरु धर्मके ॥१२॥

श्रद्धानि सम्यक्दृष्टि जीवनके ज्ञानसागरमें शुद्धोपयोगकी सी निराकुल धाराकूं लिये शुभ-फलकी उपजावन-हारी तरंगन विषैं अनेक हेय उपादेय रूप तत्वज्ञान मई तरंग उपजैं तिनका कथन इस ग्रन्थ विषैं किया है ताही तैं इस ग्रंथका नाम सुदृष्टितरंगिणी कह्या है सोई लिखिये है।

गाथा—णाम सुदिष्ट तरंगो, गंथो गेयाय हेय पादेयो। दो भेय गेय गेयं, तिस्कापय गेय सुगेय आदेई ॥ २ ॥

अर्थ—इस ग्रन्थका नाम सुदृष्टितरङ्गिणी है ताविषैं ज्ञेय हेय उपादेयका कथन है सो ज्ञेय तो एक है ताविषैं दो भेद करिये है सो एक ज्ञेय तो तजनेयोग्य है अरु एक ज्ञेय उपादेय है। स्वज्ञेय तो उपादेय है अरु परज्ञेय तजने योग्य है। भावार्थ—सम्यग्दृष्टी जीवनिके स्वपर पदार्थका जानपना होय है। सो ज्ञेय हेय उपादेय करि सहज ही तीनि प्रकार होय है॥ सो तहां प्रथम तो ज्ञानके जाननेमें आवे सो सर्व स्वपरपदार्थ ज्ञेय है। पीछे ताही ज्ञेयके दोय भेद होय हैं। कोई पदार्थ अपने हित योग्य नांही सो हेय है, केतेक पदार्थ अपने हित योग्य होई सो उपादेय हैं। ऐसे ज्ञेयविषैं हेय उपादेय करना है सो सम्यक्भाव है और मिथ्यादृष्टी बालबुद्धिनिके त्याग उपादेय नांही होंय है। कदाचित होय ही तो विपरीत होय भली वस्तुका त्याग करैं अयोग्य वस्तुको अंगीकार करैं। ऐसे त्याग उपादेय तैं पर भव बिगड़ि जाय, तातैं सांचे हेय उपादेय विषैं सम्यग्दृष्टिनिका उपयोग प्रवेश करि सकै सो ही कहिये हैं। तहां समुच्चय जीव अजीव ज्ञेयका जानना सो तो ज्ञेय है। ताविषैं अजीव अचेतन जड़ ज्ञेय सो तो परज्ञेय हेय है और जीववस्तु देखने जानने मई चैतन्य ज्ञेय सो उपादेय है। सो चेतन ज्ञेय भी दोय भेदरूप है। परसत्ता पर-प्रदेश परगुण परपर्याय रूप आत्मा सो परज्ञेय है। सो यह परआत्मा परज्ञेय है सो हेय है तजने योग्य है और आपमई स्वप्रदेश स्वगुण स्वसत्ता स्वपर्याय एकतारूप सो स्वज्ञेय है उपादेय है अंगीकार करने योग्य है। भावार्थ—चेतन अचेतन करि ज्ञेय दोय भेद स्वरूप है। सो धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य काल आकाश पुद्गल ये पंचभेद तो अजीव ज्ञेयके हैं सो आपते भिन्न ही हैं। तातैं हेय हैं तजने योग्य हैं और जीव है सो अनंत हैं अपने अपने द्रव्य गुण पर्याय सत्ता प्रदेश जुदे जुदे लिये हैं। तातैं अपनी आत्मसत्ता विना अनंत परजीवसत्ता

असंख्याते भव अनुक्रमते करि पीछे कोई पुण्ययोगतैं देव होय सुख भोगि मरै। पीछे मनुष्य तिर्यंच नारकी होय सो नहीं गिनना जब कोई पुण्य योगतैं देव ही भया। तव दूसरा भव होय। ऐसे करते देवके असंख्याते भव करै। ऐसे ही क्रम तैं मनुष्यके असंख्याते भव करै। ऐसे ही असंख्याते भव नारकीके करै। ऐसे ही तिर्यंच पंचेंद्रीके भव करै। इत्यादिक ऐसे अनुक्रम लिये चारि गति सम्बन्धी सर्व भव करै सो जाकूं जेता काल लागै सो भव परावर्तन है। इति चौथा भवपरावतन॥ आगे पंचमा भावपरावतनको कहिये है—जो सूक्ष्म निगोद लब्धपर्याप्तक जीवके अक्षरके अनन्तवें भाग जघन्य ज्ञान है सो ऐसे ज्ञानसहित मूवा सो अनेक पर्यायनमें उपज्या सो नहीं गिना। अरु निगोदमें भी उपज्या परन्तु वहुत ज्ञानधारी उपज्या सो नाहीं गिन्या ऐसे करते अनंत भव भये जव कोई कर्मजोग तैं ऐसा भव पाया जो जघन्य ज्ञान तैं एक अंश अधिक ज्ञान का धारी भया। तव दूसरा भव भया, फेरि मूवा उपजा अनेक पर्याय चारगतिकी अधिक ज्ञान सहित धरी सो नहीं गिनै। जव अनंतकाल गये ऐसे भव पावे जो जघन्य ज्ञान तैं दोय अंश वधता ज्ञान होय। ऐसे एक अंश तैं वधता-वधता अनुक्रमते असंख्याते अंश वधते जेता काल लागै सो पांचमां भाव परवर्तन है। इति पञ्चमा भावपरावर्तन॥ आगे इन परावर्तनके कालकी अधिकता व हीनता कहिये है—सो प्रथम ही पुद्गलपरावर्तनका काल अनंत है तातैं अनंतगुनाकाल क्षेत्रपरावर्तनका है तातैं अनंत गुनाकाल कालपरावर्तनका है। तातैं अनंतगुनाकाल भवपरावर्तनका है। तातैं अनंतगुनाकाल भावपरावर्तनका है। ऐसे-ऐसे परावर्तन, संसार भ्रमण करतो दुःख भोगतो अनंत हो गये सो जव जीवके काललब्धि निकट आवे तव संसारी जीवके पंचलब्धि होय हैं॥ सो आगें लब्धि कहिये हैं—

गाथा—खयुवसम देस सोई, पायोगम कण्णलब्धि पण भेवो। चव सम्म भव्वा भवो, कणणो च भवेय होय सम्मत्तं॥ ४॥

अर्थ—क्षयोपशम, देशना, विसोई, पायोगम, करण, यह पाँच लब्धि हैं। अव इनका सामान्य अर्थ—कर्मके क्षयोपशम तैं प्रगट होय ऐसा संज्ञीपना पंचेंद्रीपना इनकी शक्तिरूप भाव सो क्षयोपशम लब्धि है। जो संज्ञी पचेंद्री नहीं होय तौ सम्यक्त नांही होय। तातैं संज्ञी पंचेन्द्रीपनेका क्षयोपशम चाहिये॥ १॥ और गुरुके उप-

देश धारनेकी शक्ति सो देशनालब्धि है । जो गुरुके उपदेश धारवेकी शक्ति नाहीं होय तौ सम्यंक्त नाहीं होय तातैं गुरु उपदेश धारनेकी शक्ति चाहिये ॥ २ ॥ आगे समय-समय परिणामनकी अनंतगुणी विशुद्धता होई सो विसोही लब्धि कहिये । जो परिणामनकी विशुद्धता नाहीं होय तो सम्यक्त नाहीं होय, तातैं परिणामनकी विशुद्धता चाहिये ॥ ३ ॥ बहुरि मोहनीय कर्मकी स्थिति सत्तर कोड़ा कोड़ी सागरकी है ताको अपने परिणामकी विशुद्धताके बलकरि कर्मस्थिति घटायके अन्तःकोड़ाकोड़ीकी राखै सो प्रायोग्य लब्धि है । जो मोहकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति होय तो सम्यक्त नाहीं होय । तातैं मोहनीय कर्मकी स्थिति घटनी चाहिये ॥४॥ बहुरि कर्णलब्धिके तीन भेद हैं—अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण जहाँ अधःकरण होय तव समय-समय परिणामनकी विशुद्धता बढ़ती जाय । और जे-जे कर्मनिकी स्थिति आगे बँधे होय थी तातैं कर्मस्थिति घटती बंध होय । साता वेदनीय, आदेय, सौभाग्य, यशःकीर्त्ति इन आदि शुभ प्रकृतिनका अनुभाग वधती (अधिक) बंध होय । और असातावेदनीय, अयशःकीर्ति, दुर्भग, अनादेय इन आदिक अशुभ कर्मनिका अनुभाग घटती बंध होय । पहिले पीछे समयमें जीवनिके अधःकरण होय तिनको विशुद्धताके स्थान मिलै भी, नहीं भी मिलै, तातैं याका नाम अधःकर्ण है ॥ १ ॥ और जामें समय-समय असंख्यात गुणी कर्मनिकी निर्जरा होय सो अपूर्व करण है । और अशुभ कर्मनिका अनुभाग पलट शुभ रूप होय । समय-समय कर्मनिकी स्थिति घटती होय । समय-समय शुभकर्मनिका अनुभाग बढ़ता होय । जिन जीवनने समय अंतरतैं कर्ण मांडा होय तौ परस्पर तिन जीवनिकी विशुद्धता नहीं मिलै । जाने प्रथम समयमें अपूर्वकरण मांडा और काहूने दोय च्यारि पांचादि समय पीछै करण मांडा होय तौ पहिले कर्णमांडा ताकी विशुद्धता महानिर्मल होय, याकी विशुद्धता कूं पिछले करण करनहारे जीव कबहूं नहीं पावैं । इनके परस्पर विशुद्धता नहीं मिलै तातैं याका नाम अपूर्वकरण है ॥ २ ॥ अनेक जीवनिकी समयवर्ती विशुद्धता समान होय । तीनि काल संबन्धि जीवनिके अनिवृत्तिकाल समय सर्वजीवनिकी विशुद्धता एकसी होय सो अनिवृत्ति करण है ॥ ३ ॥ ऐसे ये करणलब्धि है । सो यह पाँच लब्धि हैं । तहाँ एता विशेष जो च्यारि लब्धि तौ भव्य अभव्य दोऊ-

निके होय है तातैं समान हैं। करण लब्धि सम्यक्त होतैं निकट संसारी भव्यात्माके ही होय है इस करणल-
ब्धिके पूर्ण होते अन्त समयमें सम्यक्तकी पूरणता होय जीव अल्पसंसारका धारणहारा सम्यग्दृष्टी होय है। सो
आत्मीक स्वभावका वेत्ता परद्रव्य तैं उदासीन जान्या है आप चैतन्य स्वभाव अर पर जड़त्व भाव ऐसा सो
भव्यात्मा सम्यग्दर्शनी कहिये ऐसे इन पंचलब्धिनिका सामान्य स्वरूप कह्या। विशेष श्रीगोमट्टसारजी तैं
जानना। ऐसे पंचलब्धि पूर्ण भए सम्यग्दर्शन होय है। सो ता सम्यक्तके दश भेद हैं सो ही कहिये हैं—

गाथा—आग्ग मग उवदेसो, सूतर वीजा संखेय वित्थारो। अत्थावगाढ़ महागाढ़ो, संमत जिन भास्य य दहधा॥ ५॥

अर्थ—अज्ञा, मार्ग उपदेश, सूत्र, बीज, संक्षेप, विस्तार, अर्थ अवगाढ़, परमागाढ़, ऐसे ए दश भेद स-
म्यक्तके हैं। सो अब इनका सामान्य स्वरूप कहिये है। जहाँ विना उपदेश जिन आज्ञाका दृढ़ सरधान होना
सो आज्ञा सम्यक्त है। भोरे सरल परिणामी जीव अल्पज्ञान तैं ही ऐसा सरधान करैं हैं कि जो हम अल्प-
ज्ञानी हैं, विशेष तत्वज्ञानकी शक्ति नाहीं, परन्तु जिन देवने भाष्या है सो प्रमाण है। ऐसा दृढ़ श्रद्धान करि
कुदेव कुगुरुनकी सेवा नहीं करनी सो आज्ञा सम्यक्त है॥ १॥ जानैं गुरु उपदेश तैं जान्या है देव, धर्म, गुरु
का स्वरूप जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्तचारित्र, ये रत्नत्रय ही हैं। मोक्षमार्ग और विशेषज्ञान तौ नाहीं
परन्तु रत्नत्रय बिना मोक्ष मार्ग नहीं मानैं। ऐसा दृढ़ श्रद्धान होय सो मार्ग सम्यक्त है॥ २॥ बहुरि जहाँ
तीर्थंकर चक्री कामदेवादिकके पुराण सुन, जान्या होय पुण्य पापका भेद जानै और तीर्थंकरादिकके कल्याण
आदिक अतिशय सुन उपजी है पुण्यकी चाह जाकैं ऐसा गुरु उपदेश सुनिकै दृढ़ श्रद्धान भाव भया होय,
सो उपदेश सम्यक्त है॥ ३॥ बहुरि आचारांगादि सूत्रका उपदेश जानि सम्यक्त श्रद्धान दृढ़ भया होय, सो
सूत्र सम्यक् कहिये॥ ४॥ बहुरि जहां नाना प्रकार गणित शास्त्रनिका स्वरूप जानि, रहस्य पाय, सम्यक
श्रद्धान दृढ़ होय सो बीज सम्यक्त कहिये॥ ५॥ बहुरि जहां शास्त्रनिका संक्षेप श्लोक, काव्य, गाथा, छंद,
पद इत्यादिकका सामान्य अर्थ जानिकैं आपा परका भेद पाय सम्यक श्रद्धान दृढ़ किया हो सो संक्षेप सम्य-

क्त कहिये ॥ ६ ॥ बहुरि अनेक द्वादशांगका स्वरूप सुनि सम्यक श्रद्धान दृढ़ कया होय सो विंस्तार सम्यक्त कहिये ॥ ७ ॥ और कोई बिना ही गुरु व शास्त्रका उपदेश सुनै अकस्मात कोऊ उल्कापात आदिक दृष्टान्त देखि संसारकी दशा बिनाशीक जानि उदास होई दृढ़ सम्यक्त श्रद्धान होय, सो अर्थसम्यक्त कहिये ॥ ८ ॥ और जहां अङ्गपूर्वके सुनने करि इत्यादिक निमित पाय दृढ़ सम्यक्त होय सो अवगाढ़ सम्यक्त कहिये ॥९॥ जहाँ केवलज्ञान भये प्रत्यक्ष सर्वलोक-अलोक भासते ऐसा श्रद्धान है सो परमावगाढ़ सम्यक्त कहिये ॥ १० ॥ ऐसे कहे जो यह दशभेदरूप सम्यक्त परणति सो मोक्षरूपी कल्पवृक्षकी दृढ़ जड़ है। तथा मोक्षमहलका प्रथम सोपान कहिये सीढ़ी है। सो ऐसे सम्यक्तके ये पच्चीस दोष हैं जहां ये दोष नहीं सो शुद्ध सम्यक्त जानना। सो पच्चीस दोष बताईये हैं—

गाथा—मद वसु सम्मक, दोसउ, आयतन सट् य तीन मूढ़ाए ॥ इनदोसय विण सम्मं, णिम्मत सिव दीव सम गेय ॥ ६ ॥

अर्थ—मद आठ, सम्यक्तके दोष आठ, अनायतन षट् मूढ़ता तीनि ये पच्चीस सम्यक्तके दोष हैं। अब इनका सामान्य अर्थ कहिये है। जहाँ मामा नाना हमारेसे काहूके नांहीं ऐसा माताका पक्ष लै मदकरना सो जातिमद है ॥ १ ॥ हम बड़े कुमाऊ हम अनेक बुद्धि करि धन पैदा करैं इत्यादिक अपनी कुमाईका मद करना सो लाभमद है ॥ २ ॥ जहाँ हमारे पिता दादा धनादि करि बड़े थे इत्यादिक पिताकी पक्षका मद करना सो कुलमद है ॥ ३ ॥ हमारे सा रूप और काहूका नांही इत्यादिक अपने रूपकी महिमा देखि मद करना सो रूप मद है ॥ ४ ॥ हम बड़े तपस्वी ऐसैं कहि अपने तपका मद करना सो तप मद है ॥५॥ और अपने बलकी अधिकता जानि कहना जो हम सा बलवान और नाहीं ऐसा कहि मद करना सो बल मद है ॥ ६ ॥ हमसे और पण्डित नांही हम नाना प्रकार तर्क व्याकरण प्राकृत छन्द काव्य पढ़े हैं। इत्यादिक अपनी पण्डिताईका मद करना सो विद्या मद है ॥ ७ ॥ हमारा बड़ा हुकुम है राज पञ्च सर्व हमारी आज्ञा मानैं हैं। ऐसा आपको बड़ा जानि मद करना सो अधिकार मद है ॥ ८ ॥ ऐसे यह आठ मद होते सम्यक्त मलिन होय हैं॥ जैसे उज्वल वस्त्र मैलके सम्बन्ध पाय मलिन होय। तैसे इन मदनिके निमित्त

पाय सम्यक्तधर्म मलिन होय है। तातैं ऐसा जानि सम्यकदृष्टी ये मदभाव नाहीं करै हैं। जे मिथ्यात्वलिप्त अज्ञानी और धर्म भावना रहित मोक्षमार्ग जानिवेकौं अंध समानि पापभार बंध करनहारे वे इन अष्टमदन को करैं हैं। और जे जगत तैं उदासीन सुखराशी सम्यक्गुणपासी, जानैं मदफांसी वे ए मद पापफल करता जानि मदभाव नांही करैं हैं॥ इति अष्टमद॥ आगे अष्ट मल लिखिये है॥ जहां धर्मकार्यनिके सेवनैंविषैं मातापिता कुटुम्बादि राजा पंच इत्यादिक मुझे पापी जानेंगे ऐसा जानि आप कोई धर्मका सेवन शंका सहित करै सो सम्यक्त धर्मकौं मल लागै सो यह शंका नामा दोष है॥ १॥ और धर्मसेवनि करि पंचेन्द्री जनितसुखनिकी अभिलाष करना सो सम्यक्धर्मका कांक्षा नाम दोष है॥ २॥ और धर्मात्मा जीवनिके शरीरमें कर्म उदय तैं रोग करि तन मलिन भया। तनमैं फोड़ा, गूमड़ा, वायु, पित्त, कफ, खांसी, कुष्टादि रोग देखि कैं अपने चित्तमें ग्लानि करनी सो दुरगंछा (विचिकित्सा) नामा सम्यक्तका दोष है॥ ३॥ और बिना परिक्षा देव, गुरु, धर्मकी सेवा करनी सो सम्यक्तधर्मकामूढ़ता नामा दोष है॥ ४॥ और पराये दोष प्रकाशि, परकूं दुःख उपजावे, सो सत्यधर्मकौं घाति परदोष कहना (अनुपगूहन) दोष है॥ ५॥ और धर्म सेवनकरते अपने परिणाम अथिर राखना तथा औरनिकों धर्मसेवन करते देख तिनकौं अथिरता उपजावनी सो अस्थितिकरननामा सम्यक्तका दोष है॥ ६॥ और जाकौं धर्मात्मा जीव तथा धर्मकी चर्चा धर्मकथा धर्मस्थान धर्म उपकरण धर्मउत्सवनि विषैं द्रव्यलगता देखि इत्यादिक धर्मवार्त्ता जाकौं नांहीं सुहावै सो वात्सल्य भावरहित अवात्सल्य दोष है॥ ७॥ और जाकूं धर्मके उत्सव नाहीं सुहावैं सो अप्रभावना नामा आठवां दोष हैं॥ ८॥ इति सम्यक्तके आठ दोष॥ आगे षट् अनायतन दिखाईये है तहां खोटे देवकी प्रशंसा करनी, रागी दोषी परिग्रही जीवनि कूं गुरु जान प्रशंसा करनी और दयारहित हिंसा पाखंड विषका प्ररूपण हारा असत्यवादी अज्ञानी जीवनिके कल्पनामात्र करि कीया जो कुधर्म ताकी प्रशंसा करनी। और खोटे, कामी, क्रोधी, भयानीक, कुदेवनिके सेवकनिकी प्रशंसा करनी। और कुगुरुनिके सेवकनिकी प्रशंसा करनी॥
और कुधर्मके सेवकनिकी प्रशंसा करनी ए षट् अनायतन सम्यक धर्मके दोष हैं॥ तातैं जे सम्यकदृष्टी हैं

सो इनकी प्रशंसा नहीं करै हैं ॥ ॥ इति षट् अनायतन ॥ आगे तीनि मूढ़ता लिखिये हैं सो जहां बिना परीक्षा देवपूजा करनी सीस नवावना सो देवमूढ़ता है ॥ १ ॥ और जो बिना परीक्षा गुरुकी सेवापूजा करनी सीस नवावना सो गुरुमूढ़ता है ॥ २ ॥ और बिना परीक्षा धर्मका सेवन करना सो धर्म मूढ़ता है ॥ ३ ॥ ऐसे कहे जो अष्टमद, अष्ट सम्यक्तके दोष, षट् अनायतन तीनि मूढ़ता ए सर्व पचीस दोष सो इनरहित होय सो सम्यक्त शुद्ध है ॥ इति सम्यक्तके पचीस दोष ॥ आगे सम्यक्तके अष्टगुण बताइये हैं। इन अष्ट गुण सहित सम्यक्त होई सो शुद्ध है। निःशङ्कित निःकांक्षित निर्विचिकित्सिता अमूढ़दृष्टि उपगूहन स्थितिकरण वात्सल्यता, प्रभावना यह सम्यक्तके आठ गुण हैं ॥ इन सहित सम्यग्दर्शन उज्ज्वल होय है सोई कहिये है ॥ धर्म सेवन करते कोई देव व्यंतर तथा पापी कुटुम्बीजन तथा पंचादिककी शंका नहीं करना। निःशङ्क होय धर्म सेवन करना सो निशंक गुण है सो यह गुण अंजनचोरको पल्या है ॥ १ ॥ धर्म सेवनि करि पचेन्द्री सुखनि की वांछा नहीं करनी सो निःकांक्षित गुण है। सो यह गुण सेठकी कन्या गुणवती कौं पल्या है ॥ २ ॥ जहां पुद्गलस्कंध असुहावने देखि ग्लानि नहीं करनी सो निर्विचिकित्सा गुण है। सो यह राजा उद्यायनने पाल्या ॥ ३ ॥ शुद्धदेव, शुद्धगुरु, शुद्धधर्मकी परीक्षा करि सेवना सो अमूढ़दृष्टि गुण है सो रानी रेवतीने पाल्या ॥४॥ जहां पराया दोष जानिये तौ हू धर्मात्मा जीव प्रकाशै नहीं सो उपगूहन गुण है। यह गुण सेठि जिनेन्द्रभक्तने पाल्या ॥ ५ ॥ और कोई धर्मात्मा जीव धर्म सेवन करता कोई कारणपाय धर्म तैं डिगता होय रोगकरि विभ्रम करि इत्यादिक कारणनिकरि डिगता होय तथा धर्म सेवन विषैं जाकैं अथिरता होती होय तौ ताकों तनकरि धनकरि वचनकरि धर्ममें थिर करै सो स्थितिकरण गुण है ॥ सो वारिषेण राजाश्रेणिकके पुत्र मुनि भये तिनकौं पल्या है ॥ ६ ॥ धर्मी जीवनिको देखि धर्मस्थान कूं देखि हर्ष करना सो वात्सल्य भाव है सो यह वात्सल्य गुण विष्णुकुमारजी कूं पल्या है ॥ ७ ॥ और जैसे बनैं तैंसे धर्मकी प्रभावना उद्योत करैं धर्म उत्सव देखि राजी होई सो प्रभावना अंग है। यह गुण वज्रकुमार जीको पल्या है ॥ ८ ॥ ऐसे कहे जो यह अष्ट अंग हैं सो इन अष्ट अंग सहित सम्यग्दर्शनके धारी जीवनिके सहज ही दृष्टि शुद्ध होय गई है

ताके प्रसाद करि पदार्थनिका स्वरूप जैसेका तैसा भासै है। सो यथावत भासिवे कर रागदोष नाहीं होय है ॥ इहाँ प्रश्न ॥ जो आपने कहा सम्यक्त भये पदार्थनि पै रागदोष नांही होय सो अविरत सम्यग्दृष्टिनि कै तो प्रत्यक्ष रागदोष हिंसा आरंभ भासै है ॥ ताका समाधान—रागदोषका अभाव दोय प्रकार है। एक तो प्रत्यक्ष रागदोषका अभाव और एक श्रद्धानपूर्वक। सो प्रत्यक्ष रागदोषका अभाव तो जिनदेव केवलीके है तथा ग्यारहवें वारहवें गुणस्थानवर्ती मुनीश्वरके है। तथा षष्टम गुणस्थान आदि दसवें गुणस्थानपर्यन्त महाव्रतिनके हैं। और नीचले, अव्रत चौथे गुणस्थानीनके सुदृष्टि होते निकट संसारी भव्यात्माके श्रद्धानपूर्वक रागदोष नांही। वाह्यनिमित्त दोष तैं रागीसा है। परन्तु शुद्धदृष्टिके प्रसाद तैं अंतरंग रागदोष होता नाहीं। यह विना ही जतन सहज स्वभाव है। सो ऐसी दृष्टि होतै अनेक लहरि परिणति विषे उठे हैं। जैसे सागर विषैं तरंग चलै तैसे समभावन विषैं विचार होय है ताहीके प्रसाद करि यह सुदृष्टितरंगिणी नाम शास्त्रमें कहूं हूं ॥ सो ताके सुनने कूं अरु कहने कूं ऐसे शुभ श्रोता तथा शुभवक्ता चाहिये। सो श्रोतनिके, शुभाशुभ करि अनेक भेद हैं ॥ और वक्तान्के भी शुभाशुभ करि अनेक भेद हैं सो प्रथम ही श्रोतानिका स्वरूप सुनौ।

गाथा—सोता सुह य असुहो, चउदह मिस्सोय चउदह सुहोई। सोतधरा मण आदा, णियणिय पण्णतिलेय सुह असुही ॥ ७ ॥

अर्थ—अव श्रोतानिका शुभाशुभ है सो ही कहिये है ॥ श्रोता शुभ अशुभ करि दोय भेदरूप हैं ॥ सो चौदह श्रोतातो मिश्र हैं और चारि श्रोता शुभ हैं ॥ भावार्थ ॥ चौदह श्रोता मिश्र हैं तिनमें आठ तो अशुभ हैं अरुषट शुभ हैं ॥ सो प्रथम अशुभ आठके नाम—पाषाणसम, फूटा घड़ा सम, मींडासम, घोटकसम, चालनी सम, मशकसम सर्पसम भैंसासम इनका स्वभाव कहिये है ॥ सो धर्मात्मा जीवनको चित्तदेय सुनना योग्य है। जो जीव उपदेश सुनै, पूछै, आप पढै, वहुतकालके कथन यादि राखै इत्यादि वहुत कालतांई धर्म क्रिया करै परन्तु अन्तरंगमें पाप बुद्धि मिटै नाहीं अभक्ष्य भोजन व हिंसा मार्ग नाहीं तजै। कुधर्म, कुगुरु,के पूजनेकी श्रद्धा नांहीं मिटै। आप क्रोध मानादिक कषाय नहीं तजै ॥ जाके हृदयमें जिनवानी नाहीं रुचै सो पाषाण समान श्रोता है ॥ १ ॥ जो रोज दिन प्रति शास्त्र सुनै परन्तु सुनती वार तो सामान्यसा यादि रहै पीछे भूलि जाय

दिलविषैं यादि नांहीं रहै सो फूटे घड़ासमान श्रोता है जैसे मेंढ़ा पालनहारेकों मारै तैसे ही श्रोता जा वक्ता अनेक दृष्टान्त युक्ति सीख अनेक शास्त्र कला आदिक करि पीछैं काल पाये जातैं कथन सुन्या सीख्या था ताहीका दोषी होय ताका घात करै, सो मेढ़ा समानि श्रोता कहिये ॥ ३ ॥ जैसे घोड़ेको घास दाना रातिब देते घोड़ा रातिब देने वालेकूं मारै काटै तैसे जो श्रोता जाके पास उपदेश सुनै ताही तै दोष करै सो सो घोड़ा सामानि श्रोता जानना ॥ ४ ॥ जैसे चालनी वारीक भला आटा तो डारिदे अरु भूसी अंगीकार करै तैसे ही भला उपदेश सुनै ताका गुण तो ना गृहै अरु औगुन गृहै। जो शास्त्रमें दानका तथा चैत्या-लय करावने आदि द्रव्य लगावनेका उपदेश सुनि यह ज्ञांन दरीद्री ऐसा समझै, जो हम धनवान हैं सो हम कौं कहै है कि धन खरचौ सो हमारे धन कहां है ? इमि समझि पापवन्ध करै। तथा तपका कथन शास्त्रमें सुनै सो इमि समझैं जो हम तनके सुपुष्ट हैं सो हमको कहै है तप करो हमतैं तप होता नाहीं, ऐसा समझ पापवन्ध करै है तथा दानपूजा शीलसंजम इत्यादिका उपदेश होय तब तौ ऊंघै। तथा चित्तविभ्रममें रहै सो नहीं सुनै। कोई निन्दा करै तथा कोई मूर्ख सभामें कलहकी कथा ले उठै ताकूं सुनै। तथाकोई पाप कारजकी निन्दा शास्त्रमें निकसै कि अभक्ष्य खाना योग्य नाहीं। चोरी करना योग्य नाहीं। द्यूत रमना, वेश्या गमन, इत्यादिक कार्य किये पाप होई। ऐसे सुनिकै अभक्ष खानेवारा कहै हमारा दोश कहै है। सो अभक्ष भोजन तजै तो नाहीं दोष करि पापवन्ध करि घर जावे।जुवारी ऐसा समझै जो मेरा दोष सुन्या है सो प्रगट करै है ऐसा जानि सभा छोड़ै। इत्यादिक गुण तो नहीं लेय अरु अवगुण लेवे सो चलनी सामान श्रोता है ॥ ५॥ सभा विषै तो नाना प्रकार चर्चा करै धर्मकथा अनेक यादि राखै। अनेक गाथा, काव्य, छंद, कवित्त इनको पढै तिनको अर्थ औरनि को समुझावै इत्यादिक वाह्य तैं तो धर्मात्मा सा दीखै। अरु अंतरंग धर्म इच्छा रहित, महा क्रोध, मान, माया, लोभ करि संहित, शुद्ध धर्मका निन्दक, धर्मात्मा जीवनिका निंदक कुदेव कुगुरुका प्रशंसक, पापरस करि भीजता, अन्तरंग धर्म भावना रहित होय सो मसकसमान श्रोता है। जैसे मसक रीती (खाली) में पवन भरि मोटी करी सो ऊपरि तैं तो जलभरी भासै। अन्तरंग धूम तैं भरी

तथा पवन तै भरी सो ऐसे श्रोता खाली मसकसमान जानना ॥ ६ ॥ जैसे सर्प्पको दूध पियाइये तो महादुखदायी विष होय तैसे काहूको अमृतसमानि जिनवचन सुनाइये तौ तिनकौ सुनि भी पापात्मा पाप का बन्ध करै । जैसे कहीं कुकार्यनिकी निन्दा निकसै तथा शास्त्रनि विषैं खोटे खान-पानकी निन्दाका कथन होई तथा क्रोधादि कषायनिकी निन्दा तथा सप्तव्यसनिकी निन्दा इत्यादिक जाति वीरोधी, कर्म विरोधी, पंचविरोधी क्रिया पापकारी है सो विवेकीनको तजना योग्य है । ऐसा कथन शास्त्रनि विषै चलता होई ताके सुने जीव पापकार्य तज, धर्मके मार्ग चलै । इस भव जस पावै, परभव सुखी होई । ऐसे कथन गुणकारी अमृतिसमानि सुनिजो पापाचारी अशुभ आत्मा, दोष करै, ऐसा समझै जो यह अवगुण अव हममें हैं सो ए सर्वदृष्टान्त कथन किया सो हमारे ऊपर किया ऐसा विचारि, धर्मदोषी होय सो सर्प समानि श्रोता है ॥ ७ ॥ जैसे भैंसा, सरोवरके जलमें जावै सो पानी पीवै तो थोरा परन्तु गंधोयके सर्व जल मलीन करै। और पीवनेके योग्य ना राखै, सर्वके तन तथा अपना तन मलीन करै तैसे ही सभा विषै जिनवाणीका कथन महानिर्मलताको सुनि भव्य पाप तैं उदास होई धर्म चाहै । धर्मकी प्रशंसा और धर्मात्मा जीवनिकी प्रशंसा करि अनुमोदना तैं पुण्यका बन्ध करै महाहर्ष मानै । तहां अनेक जातिके प्रश्न उत्तर होतैं अनेक जीवनिके संशय जांय, ज्ञानकी वढ़वारी होय । ताकरि शुद्धतत्वश्रद्धान करतैं सम्यक्त श्रद्धान दृढ़ होई । ऐसे कथन होतैं केतेक भोरे, मन्दज्ञानी, कषायनिके सातये, कोई ऐसा प्रश्न या कोई न्यावककी वार्ता सभामें चलायदेंय सो ताकरि शास्त्रका कथन विरोधा जावै । सर्वसभाके जीवनके चित्त उद्वेग मई होई सर्व पापवन्ध करैं, आप पापबांधि करि परभव विगाड़ै, परको दुःख उपजावै सो पापवंध करनहारे हैं ॥ ८ ॥

अव चौदह श्रोता और हैं सो मिश्र हैं तिनमें केतेक तो खोटे हैं; केतेक भले हैं । तिनमें चलनी समान पाषाणसमान, सर्पसमान, फूटेघड़ा समान इन पाँचनिका स्वभाव तो ऊपरि आठ श्रोतानमें कहि आये हैं। तातैं यहाँ फेरि नहीं कहा । और भी केतेक खोटे श्रोता हैं तिनका स्वभाव कहिये हैं सो जहां धर्म उद्योत देखि आपतैं तो नाहिं बनै परन्तु धर्मघात विचारै, जहां भला शास्त्रका उपदेश होता देखि तहाँ धर्मघात

विचारै सो बिलाव समान श्रोता है ॥ जैसे बिलाव भले दूधको पीवै तो नहीं परन्तु ढोलै व बासन फोरि डारै। तैसे पुण्यकारी उपदेशको धारै तो नांहीं परन्तु उपदेश देता देखि दोष करै धर्मघात करै सो बिलाव समान श्रोता जानना। और जे ऊपर तैं उज्वल अन्तरंग मलीन जैसे वगुला ऊपरतैं उज्ज्वल अंतरंग जीव घातक रूप भाव धरै सो तैसे ही कोई जीव बाह्य तौ निर्मलवचन विनय सहित भाषै; तनमलीन करै धर्मीजन सा दीखै अरु अंतरंग मानी क्रोधी कपटी लोभी बहुतनिका बुरा, चाहै कोऊका धर्मसेवन देखि दोष भाव करै। महा कुआचारी दुर्बुद्धि रौद्रपरिणामी सो धर्मघात चाहै धर्मसेवन नहीं चाहै। ऐसा अंतरंग मलीन ऊपरि तैं भला सो वगुला समान श्रोता कहिये ॥ तथा और बुलाया बोले तैसे ही बोले। आपमें भाव सहित समझिवेकी शक्ति नांहीं। जैसैं सूवाको बुलावै वह वैसे ही बोलै सो सूवा समानि श्रोता कहिये ॥ और मिट्टीको नीरका निमित्त पाई मिट्टी नरम होई तथा अग्निका निमित्त पाई जैसे लाख कोमल होई इन दोऊनिका निमित्त छूटै सख्त होई, तैसे ही जिस जीवको जितना काल सतसंगका निमित्त होई तब तौ धर्मभाव सहित होय, कोमल होय, दयावान होय और व्रत संयमकी भावना करैं धर्मात्मा जीवनि सों स्नेह करि उनकी सेवा चाकरी कर्या चाहै और जब सतसंगका तथा शास्त्रनिका निमित्त नहीं मिलै तो कठोर धर्मरहित क्रूर परिणामी होय जावे सो-मिट्टी समान तथा लाख समान श्रोता कहिये। और जो सभामें समताभाव सहित तिष्ठ्या शास्त्रका व्याख्यान सुन्या करै और कोई दंतकथा करता होय तौ ताकी नहीं सुनै। और पुण्यकारी कथनका ग्रहण करै। अपने कामसे काम सो शुभ श्रोता बकरीसमान है जैसे बकरी नीची भई अपना चारा चरै कोईतैं दोष भाव नहिं करै। ऐसे बकरी समानि श्रोता कह्या ॥ आगे जैसे डांस जगह-जगह जीवनिको दुःख उपजावे तैसे ही जो जीव सभा में शास्त्र कथन होते उपदेश तातैं तथा और धर्मात्मा जीवनि तैं दोष भावकरि बारबार कुवचन अविनयवचन बोले, सभा तथा वक्ताको खेद उपजावे सो डांस समानि श्रोता कहिये। और जैसे जौंक है सो दुग्धके भरे आंचल पै लगा लोहू हो अंगीकार करै, वाका कोई ऐसा ही स्वभाव है। तैसे ही वाको चाहे जैसा उपदेश दो परन्तु पापाचारी अवगुण ही

॥२५॥

ग्रहै। इस दुबुद्धिका ऐसा श्रद्धान होय जो हमने ऐसे उपदेश घने ही सुने हैं। कोई हमारा क्या भला करेगा जो हमारे भाग्यमें है सो होयगा। ऐसा श्रोता होय सो जौंकसमान श्रोता है। इसको चाहे दयाकरि उपदेश कहो परन्तु दोश ही ग्रहै है सो जानना। आगे जैसे गऊ घासखाय दूध देय, तैसे ही जिनको अल्प उपदेश दिये ही ताको रुचि सहित अंगीकार करि अपना बहुत भला करै और तिस उपदेशतैं आपकूं तत्वज्ञानका लाभ भया जानि ताकी बारंबार प्रशंसा करै। उपदेशताका बहुत उपकार मानै, सो गऊ समानि श्रोता है। आगे जैसे हंसपय जो दूध जामें जल मिलाय धरो तो नीर तो नहीं ग्रहै और दूधके अंश अंगीकार करै सो हंस की चोंचका ऐसा ही स्वभाव है कि ताका स्पर्श भये नीर अर दूध का अंश जुदा-जुदा होय जाय है सो नीर तो तजै अरु दूधके अंश अंगीकार करै, तैसेही शुद्धदृष्टिका धारी सम्यकदृष्टि है सो अनेक प्रकार उपदेशकों सुनि अपनी बुद्धि तैं निरधार करै है। पीछे भले प्रकार तत्वज्ञान सहित जो अर्थ होय है ताको अंगीकार करै है। अशुभकारी अनाचार हिंसासहित उपदेश सुनि ताकी किरियाका तजना करै है, ऐसे जो हितदायक उपदेश गृहै। तामें जे जिनआज्ञामें निषेधी सो तजै, जो गृहिवेयोग्य कही सो गृहै। सो हंस समान श्रोता कहिये। ऐसे चौदह श्रोतानिकी जाति है सो तिनमैं चलनीसम, मार्जारसम, बगुलासम, पाषाणसम, सर्प सम, भैंसासम, फूटा घड़ासम, डांससम, जोंकसम, ए नव जातिके श्रोता तौ हीन पापाचारी हैं। अरु मिट्टीसम, सूवासम ए दो मध्यम श्रोता हैं। और बकरीसम, गऊसम हंससम ए तीन उत्तम श्रोता हैं। ऐसे चौदह श्रोतानिका कथन किया। आगे उत्तम श्रोता च्यारि और हैं तिनका स्वरूप कहिये हैं। तहां प्रथम नाम कहै हैं नेत्रसमान दर्पणसमान तराजूकी डंडी समान कसौटी समान अब इनके लक्षण कहिये हैं—तहां जैसे नेत्र तातैं भला बुरा नजर आवे तैसे ही भला श्रोता अपने भला-बुरा मार्ग उपदेशतैं जानि जे बुरा आचार्य पापकारी सो तो तजै और भला पुण्यकारी उपदेशसुनि ताही मार्गपर अपना श्रद्धान करै सो नेत्र समान श्रोता है ॥ १ ॥ और जैसे दर्पण तैं अपना मुख देखिये है ताकी अवस्थादेखि अपने मुख पै रज मैल लगा होय तो धोयकै शुद्ध करै। तैसे ही भला उपदेश सुनि

अपने चैतन्यस्वभाव पै कर्म रज जानि अपने आत्मप्रदेश निर्मल करनेका उपाय करै सो दर्पण समान श्रोता है ॥ २ ॥ जैसे तराजूकी डंडीतें अधिक व हीन जान्यापरै तैसे ही भले उपदेशकूं सुनि अपनी बुद्धिरूपी डंडीतै भली-बुरी वस्तुको तोले। हीनको तजै अधिक फलदायक अंगीकार करै। सो तराजूकी डंडीसमान श्रोता है। और जैसे कसौटी पर घसि, भले-बुरे सुवर्णकी परीक्षा करै तैसे ही भले श्रोता अपनी बुद्धि कसौटी तैं हितकारी तथा अहितकारीकूं जानि तजन ग्रहण करै सो कसौटी समान श्रोता कहिये ॥ ४ ॥ ऐसे ये च्यारि गुन सहित उत्तम श्रोता हैं। सो श्रोता ताकूं कहिये जाके कर्ण इन्द्रिय होई और कान तो होय अरु मन नहीं होई तो शुभाशुभ विचाररहित असैनीको श्रोता पद संभवता नाहीं। तातैं मनका धारी सैनी होय ऐसे श्रोतइन्द्रिय अरु मन जिनको होई सो शास्त्रके उपदेश धारनेको योग्य होय हैं। अरु मन अरु कान तो हैं परन्तु धर्मोपदेश धारबे कों समर्थ नाहीं सो धर्म इच्छा रहित अज्ञानी आत्म, शुभ-अशुभ विचार बिना मनरहित असैनी समान है ताको धर्मलाभ होता नाहीं। और कानतो हैं परन्तु कानन तैं धर्मोपदेशरूप अमृत नांही पीय सकै, तौ कान रहित चोइन्द्री समान जानना। तातैं मन अरु काननके धारी श्रोता हैं सो अपनी-अपनी परिणति प्रमाण फलको पावै हैं। कोई जीव तो सभामें तिष्ठतैं शास्त्रका उपदेश सुनि भली भावना करि पुण्य उपजाय, सुफलके भोक्ता होय हैं। सो ऐसे भव्यात्माको श्रोता कहिये। और कोई जीव शास्त्रका धर्मोपदेश सुनि, खोटो भावना करि पापके भोक्ता होय हैं सो अशुभ श्रोता कहिये। तातैं बुरे-भले दोय जाति श्रोतानिका कथन किया। इति शुभाशुभ श्रोतानिका कथन स्वभाव संपूर्णम्।

अब आठ गुण श्रोतानिमें होई सो अपना भला करै, सोई कहिये हैं।

गाथा—वांछा सवणग्गहणं, धारण सम्मण पुच्छ उत्तराये। णिचय ए वसुभेये, सोता गुण एग सुग्ग सिव देई ॥ २ ॥

अर्थ—वांछा कहिये चाह। सवण कहिये सुनना। ग्रहण कहिये ग्रहणकरना। धारण कहिये धारना। सम्मण कहिये सुमरण करना। पुच्छ कहिये प्रश्नकरना, पूछना। उत्तराये कहिये उत्तर करना। णिच्चय कहिये निश्चय करना ए वसुभेये कहिये आठ भेद सोता कहिये श्रोताके हैं। गुण एव कहिये ऐसे गुण, सुग्ग-

सिव देई कहिये स्वर्ग मोक्ष देय हैं ॥ भावार्थ—जे निकट संसारी, धर्मात्मा, भला श्रोता होय तामैं ये आठ गुण होय हैं सोई कहिये हैं। तहां जो शास्त्र आपने सुन्या ताके कथनकी वारंवार प्रशंसा करनी। जो इन शास्त्रनि विषैं भला तत्वज्ञान रूप पुण्यफल दायक कथन है ऐसे हर्ष धरि उस सास्त्रके सुननेकी अभिलाषा रहै। और जो आपको वल्लभ नांही लागैं तो वाकी प्रशंसा भी न होई और देखने सुननेकी अभिलाषाका होगा सो वांछागुण है ॥ १॥ और जो कोई वस्तु आपकूं हितकारी जानै तो ताकौ सुनै आपको हर्ष भी होई तातें हर्ष सहित शास्त्र सुनि अपना भव सफल मानना सो श्रवण गुण है ॥ २ ॥ और जो कोई वस्तु आपको हितकारी जानै तो ताको अंगीकार करवेका उपाय भी करे। तैसे ही जो जिस धर्मको हितकारी जानैं ताकी कथा सुनि ताको अंगीकार करे ही करैं, सो ग्रहण गुण है ॥ ३ ॥ और जे विवेकी अनेक वात सुनै और जो वात आपको सुखकारी लाभकारी सुने तौ तिस वातको यादि राखे हैं। तैसे ही जा उपदेश तैं अपना भला होता जानै तो धर्मात्मा श्रोता ताकौं भले प्रकार यादि राखैं सो धारण है ॥ ४ ॥ और जो वस्तु आपको सुखकारी जानै ताको विवेकी वारंवार यादि किया करे तैसे ही धर्मात्मा श्रोता आपको जो उपदेश हितकारी जानै ताको वारंवार याद करताकी चर्चा करे सो सुमरण गुण कहिये ॥ ५ ॥ जैसे काहूको कोई वस्तुकी वहुत चाह होई तौ ताको वारंवार पूछै। तैसे आपको वल्लभ धर्मचर्चा वहुत होय तो प्रश्न करे सो प्रश्न गुण है ॥ ६ ॥ काहूने कोइ वात पूछी सो आप तिस वातको जानता होय तौ तिसको उत्तर देय है सो तैसे ही आप धर्मकथा तत्वज्ञान वातनको समझता होय तौ उत्तर देय, सो उत्तरगुण है ॥ ७ ॥ जो कोई वस्तु अपने हाथ आई है ताको भलो जानै तो ताको जतन तैं दृढ़ राखे। तैसे ही संसारमें भ्रमता-भ्रमता उत्कृष्ट धर्म मिला जानि, महायतन तैं दृढ़ होई धर्मको राखे सो निश्चयगुण है ॥ ८ ॥ ऐसे यह आठ गुण सहित जाका हृदय होय सो श्रोता मोहफांस तैं निकसनेवारा मोक्षाभिलाषी जानना ॥ ऐसे श्रोताके लक्षण गुण वर्णन कीने। तथा श्रोताके भला होनेके भाव कहे ॥ आगे वक्ताके लक्षण कहैं हैं। ऐसे गुण सहित वक्ता सुखदायक श्रोतानिका भला करै, सो ही कहिये है—

गाथा—सम दम धर बहुणाणी, सहुहित लोकोयभागवेत्ताये। प्रिक्षिखिमय वियरायो, सिसिहत इच्छोय एव गुरु पूजो ॥ ६ ॥

अर्थ—सम कहिये समता सहित होय। दम कहिये मन इन्द्रियका जीतनेवारा होई। धर कहिये इनका धारक होई। बहुणाणी कहिये विशेष ज्ञानी होय। सहुहित कहिये सर्वको सुखदायक होय लोकोय भाव वेत्ताए कहिए लौकिक कलाका वेत्ता होई। प्रिक्षखिमय कहिए प्रश्नपूछतैं क्षमावान होय उत्तर देने वारा होय। वियरायो कहिये वीतरागी होय। सिसिहितइच्छोय कहिए शिष्यनिकों भली गतिका वांछक होय। एवं गुरु पूज्यो कहिए ऐसे गुरु पूज्य हैं ॥ भवार्थ ॥ शिष्य जननिका भला तव ही होय जव ऐसा गुरु उपदेश दाता होई। सो ही कहिए है ॥ प्रथम तौ समता भाव सहित तिनकी मूर्ति होइ। जो उपदेशदाता गुरुकी मुद्रा भयानक होय तौ सभाजनको भय उपजावे तौ ताके निमित्त तैं शिष्यनिके ज्ञानलाभ न होय। मनमें धर्म स्नेह करि हर्ष नहीं उपजे। जैसे भयानक सिंहका आकार रहता होय तो वनके सर्व पशु भी भय खावैं तथा जैसे राजातख्तपर बैठनेहारा कोपसहित भयानक होय तौ ताको देखि सब सेवक ताको भयानीक जानि सुख तजि, भयवान होंय। तातें सभानायक उपदेशदाता, शान्तस्वभावी चहिये। ताके निमित्त पाये शिष्यनिकौ संतोष उपजै ॥१॥ जो गुरु उपदेशदाता संजमी इन्द्री मनका जीतनहारा होय तौ सभाजनको भी संजमकी प्राप्ति होय। कदाचित उपदेशदाता विषयनिका लोलुपी होय तौ सभाजन भी असंजमी होयजावें। तातैं गुरु संजमी चाहिये ॥ २ ॥ उपदेशदाता विशेषज्ञानी होय तौ सभाजनको भी ज्ञानकी प्राप्ति होय। उपदेशदाता अज्ञानी होय तौ सभा जन भी अज्ञानी रहें। जैसे राजा द्रव्यवान होय तो राजाके सेवक भी धनवान होंय। अरु राजा द्रव्यरहित होय तौ ताके सेवक भी द्रव्यरहित दरिद्री होय दुःख पावैं ॥ तातैं उपदेशदाता गुरु ज्ञानी चाहिये ॥ ३ ॥ और उपदेशदाता सबजनका हितकारी चाहिये। जो शिष्यजनके परभव सुख का इच्छुक होय तौ भला उपदेश देई, सभाका भला करै। और उपदेशदाता शिष्यजनका हितकारी नहीं होय तौ अपना विषय साधै, अपनी मानबड़ाई रहै, पूजा होई, और जीव अपने पांव पूजैं, औरका धन अपने घरमें आवे ऐसा उपदेश देय शिष्यनि तैं दगाकरि विश्वास उपजावे, कषाय सहित उपदेश देवे, पीछे स्रोता

चाहे जैसी गति जावो। ऐसे गुरुके उपदेश तैं जीवनका भला नहीं होय। तातैं गुरु, शिष्यनिका हितकारी चाहिये ॥ ४ ॥ उपदेश दाता-गुरु लौकिक व्यवहारका वेत्ता होय तौ लोकपूज्यपद बतावै। लौकिक व्यवहार-वेत्ता न होय तौ लोकविरुद्ध उपदेश देवे तौ लोकनिन्दा वा शिष्यका बुरा होय। तातैं उपदेशदाता लोकव्यवहारक वेत्ता चाहिये ॥ ५ ॥ उपदेशदाता पराये प्रश्न सुनिवेमें धीर-वीर होय, उत्तरका देने वारा होय, जो कदाचित प्रश्न सुनि कोप करै, पराये प्रश्नका उत्तर देनेका ज्ञान नहीं होय तौ श्रोता भयखाय प्रश्न नहीं करि सकैं, संदेह सहित अज्ञानी रहैं। शुद्ध श्रद्धान नहीं होय। तातैं उपदेशदाता पराये प्रश्नको सुनि समताभाव सहित उत्तर देने वारा विशेष नय जुगति सहित ज्ञानी चाहिये ॥ ६ ॥ और उपदेशदाता गुरु वीतरागी चाहिये जो रागी दोषी होय तौ क्रोध मान माया लोभके वशीभूत होय अशुद्ध उपदेश देवे। कोईने अपनी सेवा चाकरी करी होय तो ताको विश्वास करि उपदेश देय। अर जो अपनी आज्ञा बाहिर होय तो तापै कोप करि कहै। आपको धन देय ताको भला भक्त कहै। ऐसे कोई तें राग कोई तें द्वेष भावकरि यथावत-उपदेश नहीं देय तो शिष्यनिको धर्मका लाभ नहीं होय। तातैं उपदेशदाता धर्मका धारी वीतरागी चाहिये ॥ ७ ॥ उपदेशदाता गुरु, शिष्यनिका स्वर्ग मोक्ष होना वांछै ऐसा होय तौ निर्दोष उपदेश देय शिष्यनिका भला करै और उपदेश—दाता शिष्यनिको भली गति नहीं वांछै, तो खोटा उपदेशदेय श्रोताका बुरा करै। तातैं उपदेशदाता गुरु शिष्यनिको भली गतीका इच्छुक चाहिये ॥ ८ ॥ इत्यादि अनेक भले गुण सहित उपदेशदाता गुरु चाहिये। सोही भले श्रोतानिका गुरु है। सम्यकदृष्टिनिका गुरु है। ऐसे गुण सहित गुरु सबको मिले। और रागी-द्वेषी गुरु कोई बैरीको भी मति मिलौ। ऐसा आशीरवाद बचन जानना ॥

इति श्री सुदृष्टितरंगिणीग्रन्थमध्ये श्रोता वक्ता स्वरूप वर्णनो नाम द्वितीय परिच्छेद सम्पूर्णः।

ऐसे श्रोता वक्ताका शुभाशुभ स्वभाव कहा। सो इनमें तैं शुभ श्रोता वक्ताके गुण जिनमें होंय सो इस ग्रन्थको पढ़ो, धारौ। इस ग्रन्थविषैं अनेक रचनारूप कथन है। अरु या ग्रन्थमें अर्थ सो तो अनादिनिधन है काहूका किया नांही। अरु तत्वनिका स्वरूप जैसे केवलज्ञानीने कहा तैसे ही है। जैसे अनन्ते जिनेन्द्र केव- ॥२०॥

लज्ञानी आगे तैं तत्वनिका स्वरूप प्ररूपते आये, तैसे ही अर्थ यामें है। अर्थ तो इस ग्रन्थमें कवीश्वरकी इच्छा प्रमाण नाहीं है, अक्षरनका मिलाप कवीश्वरकी बुद्धि अनुसार है। सो अर्थ तौ काहू वादीका खण्ड्या जाता नाहीं। काहे तैं, जो अर्थ है सो सर्वज्ञ केवलीके वचन अनुसार है। सो ताको वादी हीनज्ञानी कैसे खंडि सकै। जैसे कोई एक स्तंभ कोटीभटनि कर रोप्या हुवा ताहि कोई दोऊ हस्त अंग रहित, रोगी, दीन, तुच्छबलका धारी, रंक पुरुष कैसे उपारि सकै है। अक्षरनिका मिलाप तुच्छबुद्धिके जोग कर किया है। सो यामें कोऊ, चूक होंगी। बुद्धिकी सामान्यतातैं जो अक्षर मिलाये हैं सो चूक होयगी भी तौ एक उपाय विचार्या है। सो प्रथमतौ मैं भी याको शोधि अक्षरनिको ठीक करूंगा तौभी ग्रन्थ की प्रचुरतातैं चूक रहेगी तौ ताके निमित्त दूसरा यह उपाय है। जो विशेष बुद्धि, सम्यकदृष्टि, निर्मल बुद्धिके धारक, जिनआज्ञा रहस्यनिके जाननेहारे, वात्सल्य अङ्गके धरनहारे, धर्मात्मा पुरुष तिनतैं मैं ऐसी बीनती करौं हौं—जो हे प्रभावनाअङ्गके धारी धर्मी जन हो, तुम सज्जन अङ्गी हो और पराये तुच्छगुण पै अनुरागी हो, तातैं कवीश्वर तुमतैं ऐसी बीनती करै है जो इस ग्रन्थके प्रारंभ विषैं कहीं मैं अर्थ तथा अक्षरमात्रा विषै बुद्धिकी न्यूनता करि भूला होऊं तौ तुम मेरे ऊपर वात्सल्य भाव जनाय, शुद्ध करि लेना। यह बीनती जिनेन्द्रदेवकी आज्ञाके अनुसारि धर्मश्रद्धानके करनहारे तत्वनिका स्वरूप यथावत जाननेहारे सम्यकरुचिके धारीनि तैं करी है। और कोऊ छन्दनिकी जोड़ विषैं तथा टीकाके करने विषैं कोई अक्षरनिकी ललिताई तथा सरलताई नहीं होय तौ छंदकलाके ज्ञानसंपदाके धरनहारे भव्यात्मा सरलछंद कर लेना। आपणा उपकार इस ग्रन्थविषैं मिलाय अपनी धर्मानुरागता प्रगट करेंगे। ऐसी बीनती सज्जननितैं करी। सो रही चूक ऐसे शुद्ध होयगी। इहां कोई तरकी कहै—जो आगे भी तौ जिनआज्ञा प्रमाण ग्रन्थ बहुत थे सो तिनकाही अभ्यास किया होता तो भला था। तुमको ऐसे भारी ग्रन्थ गाथा छन्दनि सहित करनेका अधिकारी काहे को होना था। तातैं मानबुद्धिके जोगतैं तुमने इस ग्रन्थको किया, सो तुम्हारा मनोरथ पूरा होता नांहीं भासै है। यह ग्रन्थ भारी है, ताविषैं चूक भये उलटे निन्दाको पावोगे। तातैं नहीं करना ही भला था ताको कहिये है। जो हे भाई!

तैंने कही जो तुमने मानके अर्थ ग्रन्थारम्भ किया, सो जिनआज्ञाप्रमाण सरधानीनकैं शास्त्रप्रारम्भमें मानादिक प्रयोजन रूप कषायका कछूही प्रकार नाहीं। यो कार्य तो सातिशयपुण्यबन्धके निमित्त कीजिये है। मानका इसविषैं प्रयोजन नाहीं। तब तरकीने कही, मान प्रयोजन नांही अरु पुण्यकी चाहथी तौ आगे अनेक शास्त्र थे तिनका स्वाध्याय करि अर्थका धारन करते तौ महापुण्यका संचय नहीं होता क्या? ताकौं कहिये है, जो हे भाई! तैंने कहा सो सत्य है, परन्तु कोई उपयोगका स्वभाव ऐसा है सो नवीन वस्तुविषै उपयोग विशेष थिरता पावै है। नवीन ग्रन्थ जोड़नेमें चित्तकी एकाग्रता विशेष होय है। तातै चित्तकी विशेष लाग देखि धर्मानुराग विशेष बढ़नेकों धर्मध्यानमें कालविशेष लगावनेकूं ग्रन्थ प्रारम्भ विचार्या है और मानका प्रयोजन यहां कछू नांहीं। मान तौ संसारविषैं दीर्घ कर्मस्थितिके धारक जीव कषायनिके प्रेरे मिथ्यादृष्टि मोहरस भीजे प्राणिनिको चाहै, धर्मीनिके नांही, ऐसा जानना। तव तरकीने कही ऐसे है तो भले है। परंतु ग्रन्थविषैं चूकभये पंडित हैं सो तुम्हारी बुद्धिकी निन्दा करेंगे। तातैं हाँसि पावोगे। ताका समाधान॥ हे भ्रात! धर्म सेवने विषैं निन्दा होनेका तो कार्य नांही। ऐसे धर्म भावना रहित प्राणी कौन हैं जो धर्मके कार्य विषैं निन्दा करैं? तब तर्कीने कही धर्मसेवते तौ निन्दा नहीं करेंगे। परन्तु ग्रंथमें चूक देखि पंडित हाँसि निंदा करेंगे। ताको कहिये है—हे भाई, पंडित दोप्रकारके होय हैं एकतौ धर्मार्थी पंडित हैं एक मानार्थी पंडित हैं। सो यह दोय प्रकार पंडितनिका अन्तरंग स्वभाव भिन्न-भिन्न है। ए पंडित दोऊही घन तन समा न जानने। जैसे घन कहिये मेघ अन्तरंग विषैं तौ निर्मल जल कर भरे हो हैं। अरु ऊपरि तैं स्यामघटारूप होय हैं तैसे ही जाका अन्तरंग तौ शुद्ध महानिर्मल धर्मस्नेह जल करि भर्या है अरु ऊपरितैं संसार दशा तैं उदासी, संजमी, तनतैं क्षीण मलीन श्याम सा दीखै, सो तो धर्मार्थी पंडित है। और मानार्थी पंडित है सो तनसमान है। जैसे, मनुष्यनिका तन ऊपरितैं तो महासुंदर सबजनकौं भला दीखे और अन्तरंगविषैं हाड़, मांस, रुधिर, चामरूप, महामलीन, घिनकारी, सप्तधातुमई खोटा होय है। तैसे ही मानार्थी पंडित ऊपरितैं महासुंदर काव्यछंद मनोज्ञ वाणीसहित सो सबकौं भला भासै। और अंतरंगमें धर्मवासनारहित,

महामानी, पराये मानखंडनेका अभिलाषी, सज्जनता रहित, पराये भले गुणनि विषैं अप्रीतिभाव करनेवारा वज्रपरिणामी सो पंडित मानार्थी है। सो हे भाई ! संसारमें दोयजातिके पंडित हैं। सो जे धर्मार्थी पंडित हैं सो तो महासज्जन हैं सरलस्वभावी हैं सो तो इस ग्रंथकी चूकि देखि ऐसा विचारैंगे जो चूकभई तौ कहा भया। जो बड़े-बड़े पंडित होय हैं ते भी चूक जांय हैं। जैसे महाअटवी विषैं बड़े-बड़े चलइया, सदैवके आवने-जावने हारे भी दीर्घ उद्यान मार्ग विषैं चूकै हैं। तो ऐसे मार्ग विषै कबहूं-कबहूंका आवने जानेहारा अंधासमान पुरुष, अल्प भासने तैं भूलै तो आश्चर्य क्या है ? परंतु ऐसे अंध समान जीवका पुरुषार्थ अरु लगन सराहिये, जो ऐसे विकटपंथनि मैं गमन करै है। सो याका धर्मानुराग सराहिये। जो दीखता तौ थोरा अरु ऐसे विषम मार्गनिमें गमन करि तीर्थयात्राका उद्यम करै है। सौ याके धर्मानुराग विशेष है। ऐसा जानि वाका हस्तगहि वाकूं मार्ग लगाये वाकी वांछा पूर्ण करै हैं। तैसे ही धर्मार्थी पंडित तौ ऐसा विचारै जो नवीन ग्रंथनिके करते बड़े-बड़े पंडित भी भूलै हैं सो ही ज्ञानी भूलै तो दोष क्या ? परंतु याकी बुद्धि सराहिये है। सो ऐसा जानि धर्मार्थी पंडित नहीं हँसेंगे। अर तू मानादिककी कहै सो धर्म अभिलाषी वक्ताके मानादिक प्रयोजन नांही। परन्तु तेरी ही बुद्धि विषै कोई विपरीत विकार उपज्या है तातैं ऐसा भासै है। जैसे कोई कनकका खानेहारा पुरुष आकाश विषैं नानाप्रकार रतनमयी रचनासहित एक नगर देखि हर्षाय-मान होता भया, हँसता भया। अरु कबहूं नानाप्रकार भयानीक जीवनिके सिंह, हस्ती, सर्प्प आदिके विक-राल आकार देखि महाभयानीक होय रुदन करै है। सो आकाश तौ महानिर्मल निर्दोष है आकाशविषै तौ रतनमयी नगर भी नाहीं और सिंहादिक भयानक जीव भी नांहीं। परंतु धतूरेके अमलमें याकी दृष्टि मैं वि-परीत भासै है तैसैही ग्रंथके कर्त्ता आचार्यादिक भले कवीश्वरनिके मानका भाव नांही। कैसे हैं भले कवी-श्वर, जे धर्मके धारी परम्परातैं जिनभाषित धर्मकी प्रवृत्ति वांछनेहारे समतारसस्वादी तिनको तौ सत्कार पूजा मान बड़ाईकी इच्छा नांहीं। परंतु याहीने मिथ्यात्वमई धतूरेका ग्रहण किया है। तातैं याकों ग्रंथारम्भमें भले कबिश्वरनिके मान भासै है। जैसे काहूके नेत्रनि विषैं नीलिया रोग है। सो ता पुरुषकों सब सुफेद, नीला

भासै है। सो सुफेद वस्तु तौ अपने स्वभावरूप स्वेत हैही परंतु या पुरुषके नेत्रनि विषैं नीलिया रोग है सो श्वेतवस्तु नीली भासै है। तैसेही ग्रंथकर्त्ता कविश्वरनिकै तो मान वड़ाईकी इच्छा नांहीं, परन्तु याही अल्पबुद्धि भोरे जीवका ज्ञान विपरीत रूप भया है॥ तव तरकीने कही, यामें तुम्हारे मान-वड़ाई नाहीं है तौ ग्रंथनमें अपने नामका भोग काहेकों धरोहो ? ताका समाधान-हे भाई। अपने नामका भोग भले कवीश्वर हैं सो मानकी इच्छा तैं नाहीं धरें हैं। नामका भोगतो अपनी धर्मबुद्धि तैं, पाप तैं भय खाय करि धरै हैं। ऐसे ही अनादि तैं भले कवीश्वरनिकी परिपाटी चली आई है सो ग्रन्थकर्ता अपना नाम भोगा अपने किये ग्रंथ मैं नाहीं धरै तौ दोष लागै। कवीश्वरोंका चोर होय। आचार्यनिकी परंपराका लोप होय। तातैं पापका वंध होय है। नाम दिये सर्व कौं ऐसा ज्ञान होय जाय है जो यह ग्रंथ फलाने कवीश्वरका किया है सो वाके नामकौं जानि धर्मात्मा ऐसी विचारै जो वह कवीश्वर तो भला तत्त्वज्ञानी है। भले सम्यग्यानका धारी है। पक्का दृढ़ सरधानी है। सो वाके वचन प्रमाण हैं। ऐसा धर्मार्थी प्रसिद्ध तत्वज्ञानी कदाचित एक दोय जगह चूक भी जाय तो विवेकी धर्मात्मा ऐसी कहैं जो एक दोय चूकहैं सो ज्ञानकीन्यूनता तैं भाव नहीं भास्या तातैं ये शब्द लिखे गये। परन्तु वाके श्रद्धान वहुत दृढ़ है। ऐसा जानि उस कवीश्वरकूं नाम धरने तैं भला सरधानी जानि, दोष नहीं लगावैं और वाके वचन प्रमाण मानैं हैं। कोई ग्रन्थका कर्त्ता अतत्व सरधानी होय तौ वाके नाम भोग तैं नाम जानि, विवेकी हैं सो ऐसा विचारैं हैं। जो इस ग्रंथका कर्त्ता अतत्व सरधानी है ताका कहा भया कोई शब्द जिन आज्ञा प्रमाण नांहीं, तातैं इस वक्ताके वचन प्रमाण नांहीं। ऐसे नामके भोगतैं भले कवीश्वर अरु बुरे कवीश्वरकी परीक्षा करिये है, सो ता कवीश्वरके नाम करि ग्रंथके वचन प्रमाण करिये है। तातैं कवीश्वर अपना नाम धरैं। अरु कदाचित ग्रंथकर्त्ता अपना नाम ग्रंथमें नहीं धरे तो वह वक्ता अन्य कवीश्वरनिका चोर होय। तातैं ग्रंथमें कवीश्वर अपना नामका भोग धरै हैं। इहां मानका कछुकाम नाहीं। यह तो धर्मात्मा जीवनिकों अनुमोदना होनेके निमित्त नवीन ग्रंथनिकी रचना करिये है। सो याको वांचिकै सामान्यबुद्धि तौ ज्ञानको बढ़ावेंगे। मोतैं विशेष ज्ञानी धर्मात्मा जो ज्ञानसंप-

दाके धारी हैं सो ऐसी विचारेंगे जो ऐसा दीर्घ ग्रंथ तत्व अर्थ सहितकी रचना करी सो स्याबासि है। ऐसा
जानि धर्मानुराग बढ़ावेंगे। कदाचित विशेष ज्ञानी इस ग्रंथको सुगम जानि याका अभ्यास नहीं करेंगे
तौ वक्ता तैं जो सामान्यबुद्धि होंगे सो भव्यात्मा धर्मानुरागी शुभ फलके अरु तत्वज्ञानके बढ़ने कौं इस
ग्रंथका अभ्यास करेंगे। सो इस ग्रन्थ तै जिन आज्ञाका सामान्य रहस्य जानि पीछे विशेष शास्त्रनिमें प्रवेश
पावैं ताकरि पुण्यका संचय करैंगे, अरु तत्त्वका भेद पावेंगे। तातें यह ग्रंथ भव्यनिकौं गुणकारी है।
तातैं यामैं कोऊ सामान्य दोष होगया तो हम शुद्ध कर देंयगे ऐसा विचार तौ धर्मात्मा पंडित इस ग्रंथकी
रही चूक शुद्ध करेंगे। और दूसरे मानार्थी पंडित हैं सो पराये मान खंड करिनेका सदैव उपाय करै हैं सो पराये
मान खंड भये सुख पावेंगे। सो यों तौ ग्रंथमें चूक न होयगी तौहू दोष लगावेंगे, सो दोष भये तो दोष लगावैं
हीं लगावैं। यह अपना अङ्ग कैसे तजेगा, हाँसि करैगा ही। तातैं ऐसे धर्म भावनारहित मानी पंडितनिका भय-
हमको नांही। जो भय है तौ जिन आज्ञा सहित धर्मात्मा पण्डित पुरुषनका है। सो इनका भय करना भी
योग्य है। क्योंकि जो इस ग्रन्थमें मेरी बुद्धिकी न्यूनता करि जिन आज्ञारहित अतत्वसरधानरूप शब्द कोई
लिख्या गया होय, तथा कोई अशुद्ध पापप्रवृत्ति करावनेहारा लिख्या गया होय तौ तत्वज्ञानी उत्तमबुद्धिके
धारी जिन भाषित तत्वनि कर रहस्यनिके जाननेहारे उस चूकको देखि ऐसा समझैं जो यह जिन आज्ञारहित
शब्द तथा अर्थ लिख्या गया है सो ऐसा सरधान कविके होय। ऐसे संदेहसहित विचार कदाचित धर्मार्थी
पंडितके होय तौ इस बातमें मैं भी उनको सरधान चूकसा दीखूं तौ उन धर्मार्थिनकी पांति माहिं वाहसा
जानैं, तौ इनसे मेरे सरधान कूं अरु शुद्धधर्मके सेवनेकूं बट्टा लागै। तातैं इसका भय तौ मोकूं है। सो यह
धर्मात्मा सर्व ग्रन्थके रहस्य देखि ऐसा भी विचारेंगे जो सर्व ग्रन्थका रहस्य तौ भले प्रकार जिन आज्ञा
प्रमाण है। और एक दोय चूक हैं सो श्रद्धान पूर्वक नाहीं। यह कोई बुद्धिकी मंदता करि भूलिसें मँडिगया
हैं सो ऐसा जानि सज्जन शुद्ध कर लेंगे, परन्तु मोकों दोष नाहीं लगावेंगे। ऐसे सज्जनादि गुनके धारी विशेष
ज्ञानी धर्मात्मा पुरुष हैं सो बड़े हैं, इनका भय करना ही हमको तत्वज्ञान सरधानमें सहायक है तातें इन

पुरुषनिका भय हमको गुणकारी है। यातैं इनकी हाँसिनिन्दाका भय है ताहीतैं अतत्वसरधानमें हमारा ज्ञान नहीं प्रवेश करै हैं सो ऐसे पुरुषनिके भयका उपकार है। तातैं हमको ऐसे सज्जन जीवनिका भय है। जे जिन आज्ञा रहित, जिन वचन जानिवेको निरंध समानि, मिथ्यासरधानी, धर्मके विछुरे, धर्म अभिलापारहित अक्षरज्ञानी सो इन पण्डितनका हमको भय नाहीं। ये मानार्थी जीव हैं सो परंपराय कविश्वरोंकी परिपाटी मेटन हारे हैं। तातैं इनका भय विवेकीनिकों जोग्य नाहीं। जैसे कोई जौंहरीके दोय रतन थे सो वह रतन उत्कृष्ट मोलके थे सो तिन रतनकों कोई ग्राहक आया वड़ा मोल देय लीये। अरु कही हम दिखाय लावें, परखाय लावैं हैं। ऐसी वदानी कर गया। सो तुच्छ ज्ञानी, मूर्ख, रत्न परीक्षाके ज्ञानरहित ऐसे वड़ी उम्रके धारी घास लकड़ीके वेचनेहारे ऐसे जड़वुद्धि तिनकूं वह रतन दिखाया और उनतैं कही—याके लाख लाख दीनार दिये हैं। तुम वड़े पुरुष हो, घने रत्न देखे हैं सो ये कैसे हैं? तव सर्व घासके वेचनेहारे वोले—हे भ्रात! यह प्रत्यक्ष कांचका रंगीला खंड है। तुच्छ मोलका है तू काहेकौं द्रव्य खोवे हैं। ऐसे सर्व घसियारोंके वचन सुनि याने देखी जो अस्सी वर्षके मनुष्य, घने जाननेहारे कांच खण्ड वतावे हैं सो प्रवीण हैं। ऐसे जानि वह ग्राहक रतन लेय जौंहरीपैं आया। और कहा—याकों तौ वड़ी वड़ी उम्रके मनुष्य, कांच खण्ड वतावैं हैं। तव जौंहरीने कही तुमने कौनको दिखाये? उन जौंहरीनिकी दुकान कोन वाजारमें हे? तव ग्राहकने कही दुकान तौ नांही और जौंहरी भी नांही, घास लकड़ी वेचे हैं। और वाजारमें खड़े रहते हैं। तव जौंहरी राजी भया। और विचारा जो वह तौ घास लकड़ीके वेचनेहारे मूर्ख जीवनने रत्नको कांच खण्ड कहा तौ क्या भया? उनका वचन प्रमाण नांही। ऐसे समझिके जौंहरीने बुरा नहीं मान्या। और ग्राहकसे कहा इन रत्नोंकी परीक्षा घास लकड़ी वेचनेहारेनतैं नहीं होय है। कोऊ जौंहरीको दिखावो। तव ग्राहकने कही वे भी तो सौ सौ वरसके वड़े हैं। तव जौंहरीने कही वड़े भये तौ क्या भया, वह ज्ञान दरिद्री हीन वनज करनहारे रतनपरीक्षाके ज्ञानसे रहित हैं। तातैं भले रत्नकों कांच खण्ड कहना यह उनका वचन प्रमाण नाहीं। तातैं तुम कोई जौंहरीकों वतावो। तव उस ग्राहकने एक वड़े जौंहरीको दिखाये। तव जौंहरीने

लगावैं ही। जे दुष्ट हैं तिनके तौ यही मुख्य है जो पराई निन्दा हाँसिको करि, परिकौं पीड़ा उपजाय, आप सुख मानना। तातैं ऐसे जानि सज्जन जननतें बिनती करी, जो यह सज्जन भूल-चूक होयगी सो शुद्ध करैंगे। अरू पराये अवगुणकों हेरनेहारोंतैं समभाव करि इस ग्रन्थके करनेका उपाय करौं हों। ताके आदि ही षट्-कार्य आचार्यनिकी परिपाटी तैं चले आये हैं। जे आचार्य तथा और ग्रन्थनके कर्ता कवीश्वर भये ते षट्कार्य ग्रन्थारम्भके आदि ही वर्णन करते आये हैं। सो ही परंपराय लेय इस ग्रन्थकी आदि इहाँ भी लिखिये हैं।

गाथा—मंगल णिमित्त हेऊ, जोए पमाण णाम कत्ताए। सूरो ग्रन्थारंभय, ए षड काजोय धम्म सुत्तादो ॥ १० ॥

मंगल, निमित्त, हेतु, प्रमाण, नाम, कर्ता, यह षट् हैं। सो जे आचार्य ग्रन्थारम्भ करैं तब आदिमें इनका स्वरूप वर्णन करैं। सो अब इनका स्वरूप लिखिये है। प्रथम ही मंगल कहैं सो पुण्य, पवित्र, शुभ, क्षेम, कल्याण, सुख, साता इत्यादिक ए सर्व मंगलके नाम हैं। मंगलके षट्भेद हैं सो ही कहिये हैं।

गाथा—णाम सथापण दव्वो, खेत्तो कालोय भाव षड् भेदो। मंगल पुणदय भावो, गंथारंभेय सव्व करई ॥ ११ ॥

नाममंगल, स्थापनामंगल, द्रव्यमंगल, क्षेत्रमंगल, कालमंगल, भावमंगल, ये षट् प्रकार मंगल हैं। सो इनका विशेष कहे हैं। तहाँ नवीन ग्रन्थके आरम्भमें प्रथम ही मंगल करिये। सो पापका नाश सो ही मंगल है। सो पंच परमेष्ठीके नाम तथा वृषभादि अनेक तीर्थंकरनका नाम तथा गणधर देवादि महान् पुरूष तथा चरमशरीरी आदि धर्मात्मा पुरुषनका नाम लेते पापका नाश होय, सो नाम मंगल है। तीर्थंकर देवके शरीर को नकल बनाय स्थापना करि पूजना, सो स्थापना मंगल है। अरहंतादि परमेष्ठीके शरीर हैं सो इनका देखना, पूजना, सुमिरण करना, ताकरि पापका नाश करना, पुण्यका सञ्चय करना होय, सो द्रव्य मंगल है। जहाँ यतीश्वर ध्यान-अग्नि कर अष्ट कर्म नाशि सिद्ध लोककों प्राप्त भये। जैसे सोनागिरिजी, सम्मेदशिखर-जी, पावापुरजी आदि उत्तम क्षेत्रनका नाम लिये पूजा वंदना किये, पुण्यका बन्ध होय, पापका नाश होय, सो क्षेत्रमंगल है। जिन कालनमें जिनेन्द्रदेवके गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण आदि पंच कल्याणक भये होंय सो, तथा नन्दीश्वर विषैं अष्टान्हिका आदिक जिन पूजनके दिन हैं सो कालमंगल हैं। इन कालका

पुरुषनिका भय हमको गुणकारी है। यातैं इनकी हाँसिनिन्दाका भय है ताहीतैं अतत्वसरधानमें हमारा ज्ञान नहीं प्रवेश करै हैं सो ऐसे पुरुषनिके भयका उपकार है। तातैं हमको ऐसे सज्जन जीवनिका भय है। जे जिन आज्ञा रहित, जिन वचन जानिवेको निरंध समानि, मिथ्यासरधानी, धर्मके विछुरे, धर्म अभिलापारहित अक्षरज्ञानी सो इन पण्डितनका हमको भय नाहीं। ये मानार्थी जीव हैं सो परंपराय कविश्वरोंकी परिपाटी मेटन हारे हैं। तातें इनका भय विवेकीनिकों जोग्य नाहीं। जैसे कोई जौंहरीके दोय रतन थे सो वह रतन उत्कृष्ट मोलके थे सो तिन रतनकों कोई ग्राहक आया वड़ा मोल देय लीये। अरु कही हम दिखाय लावें, परखाय लावैं हैं। ऐसी वदानी कर गया। सो तुच्छ ज्ञानी, मूर्ख, रत्न परीक्षाके ज्ञानरहित ऐसे वड़ी उम्रके धारी घास लकड़ीके वेचनेहारे ऐसे जड़वुद्धि तिनकूं वह रतन दिखाया और उनतैं कही—याके लाख लाख दीनार दिये हैं। तुम वड़े पुरुष हो, घने रत्न देखे हैं सो ये कैसे हैं? तव सर्व घासके वेचनेहारे वोले—हे भ्रात! यह प्रत्यक्ष कांचका रंगीला खंड है। तुच्छ मोलका है तू काहेकौं द्रव्य खोवे हैं। ऐसे सर्व घसियारोंके वचन सुनि याने देखी जो अस्सी वर्षके मनुष्य, घने जाननेहारे कांच खण्ड वतावै हैं सो प्रवीण हैं। ऐसे जानि वह ग्राहक रतन लेय जौंहरीपैं आया। और कहा—याकों तौ वड़ी वड़ी उम्रके मनुष्य, कांच खण्ड वतावैं हैं। तव जौंहरीने कही तुमने कौनको दिखाये? उन जौंहरीनिकी दुकान कौन वाजारमें है? तव ग्राहकने कही दुकान तौ नांही और जौंहरी भी नांही, घास लकड़ी वेचे हैं। और वाजारमें खड़े रहते हैं। तव जौंहरी राजी भया। और विचारा जो वह तौ घास लकड़ीके वेचनेहारे मूर्ख जीवनने रत्नको कांच खण्ड कहा तौ क्या भया? उनका वचन प्रमाण नांही। ऐसे समझिके जौंहरीने वुरा नहीं मान्या। और ग्राहकसे कहा इन रत्नोंकी परीक्षा घास लकड़ी वेचनेहारेनतैं नहीं होय है। कोऊ जौंहरीको दिखावो। तव ग्राहकने कही वे भी तो सौ सौ वरसके वड़े हैं। तव जौंहरीने कही वड़े भये तौ क्या भया, वह ज्ञान दरिद्री हीन वनज करनहारे रतनपरीक्षाके ज्ञानसे रहित हैं। तातें भले रत्नकों कांच खण्ड कहना यह उनका वचन प्रमाण नाहीं। तातैं तुम कोई जौंहरीकों वतावो। तव उस ग्राहकने एक वड़े जौंहरीको दिखाये। तव जौंहरीने

उस रतनको देखि सर्व जोग-अजोग जान्यां। कैसा है जौंहरी रतनपरीक्षाका जाननहारा, विवेकी, सांची दृष्टिका धारी कहता भया। भो मित्र, एक रतन तो सर्वदोष रहित है सो लाखदीनार का है। एक रत्नमें कछु कसरि है, तातें यह रत्न दस हजार दीनार घाटि मोलका है ऐसा जानना। तब ग्राहक आश्चर्यवंत भया कहता भया, हे सुबुद्धि मित्र, इन दोऊ रत्नका एकसा तौ रंग है, एकसा आकार है, एकसा तौल है, इनके विषैं मोलका अन्तर ऐसा कैसे भया, सो बतावौ। अरु रतनका धनी जौंहरी भी एकका घाटि मोल सुनि, अचिरज पाय उस बड़े जौंहरी सौं कहता भया। जो हे मित्र, उस रतनकौ घास लकड़ी वेचनेहारोंने कांच खंड कहा तब भी उनको मंदज्ञानी जानि भय न भया। अरु तुमने याके दस हजार दीनार घाटि कहे सो हमको बड़ी चिन्ता भई, तुम विवेकी हो अनेक रत्न परीक्षामें प्रवीण हो अरु हमको ऐसे सूक्ष्मदोष भासते नाहीं, तुम्हारा बचन हमको प्रमाण है। तब उस बड़े जौंहरीने कहा—भो भ्रात तुम देखो, तुमको याके घाटि मोलका दोष बतावैं। जा दोषतैं याका मोल घटाया है। तब इस बड़े जौंहरीने एक जलका बड़ा बासन भराय तामैं एक पोस्तकी डोंडी उलटी तिराई, ताके ऊपर प्रथम तौ शुद्ध रतन धरि ता कड़ाहीके जल में तिराई सो कड़ाहीका जल सर्व रतनके रंग समान भया। सबको दिखाय पीछे उस रत्नको उठाय लिया। अरु फिर उस घटमोल रत्नको डौंड़ी पर धर तिराया, सो यातें भी सर्व जल रतनमयी भया। परन्तु एक राईमात्र जलमें छाटा रहा सो जल रूप ही रहा, रत्नके रंग नाहीं भया, जहाँ-जहाँ जल मैं डौंडी रतन सहित फिरै, तहाँ-तहाँ राई मात्र जल ही दीखै। तब या बड़े जौंहरीने रत्नके धनीकों कही। भो मित्र देखि इस छांटाके दसहजार दीनार घाटि भये हैं। ऐसा दोष है सो तेरे रत्नका दोष देखि। कोऊ तैं तो हमारा द्वेष नाहीं। परन्तु सांची दृष्टिके धारी जौंहरी होय तिनका यह धर्म है सो जैसा होय तैसा कहै। तब याके वचन सुन, याके सांचे ज्ञानकी प्रतीत कर ग्राहकने रतन लिया। अर इनके ज्ञानकी प्रतीतिकर जौंहरीने दस हजार दीनार घाटि लिये। अरु याका विशेष ज्ञान जानि, विशेषज्ञानकी स्तुति करी। अर अज्ञानी घासके बेचने-हारेने रतननिकों काचखंड कहा सो तौ प्रतीति नहीं करी। अरु विशेष ज्ञानकी प्रतीति करी। तैसे ही जे

लौकिक पंडित क्रोध मान माया लोभके धारी, धर्मवासना रहित, जिन भाषिततत्त्वरत्न तिनकी परीक्षा करवेकों घास लकड़ी वेचनेहारे समान तुच्छज्ञानी, विशेष धर्मअर्थ जाननेको असमर्थ, कषायनिके दास, तिनकी हास्य निन्दाका भय नांही। ऐसा जानि इस ग्रन्थका प्रारम्भ करूंगा। अज्ञानी जीवनका भय, विवेकी करते नांही। जैसे कोऊ बैल तथा ऊंट है। सो ताको देखिकैं नग्न पुरुष लज्या भय नांहि करै, नग्न बैठा रहे। वही मनुष्य दस बरसका वालक भी देखे तौ लज्जा करे। सो वैल ऊंट तौ वीस वरसके बड़े तनके धारी तिनको लज्या नहीं करै, अर मनुष्यको बालक दृष्टि देखि लज्जा करिये है सो क्यों? पशुनमें नग्न पनेका ज्ञान नाहीं। अरु बालकको नग्नका ज्ञान है, सो वालककी लज्जा जोग्य है। तैसेही अज्ञानी, धर्मवासना रहित, पशु समान अज्ञानिनकी शंका-भयतें धर्मकार्य तजना योग्य नांही, ऐसा जानि ग्रन्थारम्भ करौं हों। तब तरकीने कही-प्रारम्भ तौ करो हो परन्तु सावधान होई करियौ। ज्यौं छन्दनकी जोड़ि न विनशै। अर्थकी शुद्धता, वचनकी मिष्टाई सहित ललिताई इत्यादिक कवीश्वरोंकी परिपाटी अनुसार निर्दोष करना। ताको कहिये है—हे भाई सर्व दोष रहित ग्रंथारंभ तौ बड़े कवीश्वरोंके नाथ छत्तीस गुण धारक आचार्य चारि ज्ञानके धारी ते करैं हैं। तथा ग्यारह अङ्ग चौदह पूर्वके ज्ञानधारक उपाध्याय जी हैं ते शुद्ध सर्वदोष रहित ग्रंथारम्भ करैं हैं। तथा और यतीश्वर दीर्घज्ञानके धारी अनेक छंद अर्थ ललताई शब्दकी मिष्टताई सहित ग्रन्थका प्रारम्भ करनहारे हैं। तथा सर्वयतिनके नाथ गणधर देव चारि ज्ञानके धारी सो सर्व दोषरहित ग्रन्थनिका प्रारम्भ करैं हैं। जो कोई सामान्य ज्ञानके धारी धर्मानुरागी कवीश्वर हैं तिनकी जोड़ विषैं तथा ग्रंथारम्भ विषैं सामान्य-विशेष चूक होयगी। हम पै सर्व प्रकार निर्दोष ग्रंथारम्भ कैसे बने है। सामान्य दोषके भयतें ग्रंथारम्भ नहिं करिये तो परंपराय कवीश्वरनिका मार्ग बन्द होय। तातैं अल्प चूक ॥३८॥
में पाप नाहीं। पाप तौ एक कषायनिमें है। जो कषायसहित अपनी मान-बड़ाईके अर्थ स्वेच्छा शब्द अर्थ धरै, जानता भी चूकै, तौ ताके पाप लागे और शुद्ध सरधान सहित अपनी बुद्धिकी न्यूनता तैं कोऊ भूल भी रहै तौ विशेष ज्ञानी समारि लेहु। ऐसी वीनती कर देनी पाप नाहीं। ऐसा जानि किया है। जैसे कोई

एक बिशेष ज्ञानी पै, अनेक सामान्य बुद्धिके धारी ज्ञानाभ्यास करैं हैं सो अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसारि सर्व बालक पाटी परि लिखै हैं। सो आय-आय विशेष ज्ञानीको दिखावै हैं सो सबकी पाटी देखे हैं जो शुद्ध शुद्ध लिखा होय ताकी बुद्धिकी प्रशंसा करै हैं। कोऊकी पाटीमें एक दोय भूल भी होंय और सर्व पाटी शुद्ध होय तौ विशेषज्ञानी ताकी भी प्रशंसा करै हैं। जो एक दोय चूक होय तौ बताय देंय, अरु कहैं याकी भली बुद्धि है, याने भली-भली रहसि सहित पाठ लिखा है। तातें राजी होंय। अरु कदाचित् चूक होय सो बतावे हैं। तैसे ही सामान्य बुद्धिके धारी कवीश्वरनिका अभिप्राय है। लो हम अपने ज्ञानकी सामर्थ्य प्रमाण, तत्त्वार्थ अक्षरनका शुभ मिलाप करैंगे। अर कोई सूक्ष्म तत्त्वार्थ भाव हमको न भासै, अरु विशेष ज्ञानीको चूक भासै, तौ हम पै धर्म स्नेह करि शुद्ध करि लेहु। ऐसे दीर्घ ज्ञानी, जिन आज्ञा प्रमाण, जीव अजीव तत्त्वके भेदी, ज्ञान द्वारा पाया है यथावत् तत्त्वभेदका रस जाने, ऐसे धर्मी जीवन तैं बिनती करी है। तब इहाँ कोई तरकीने कही, सज्जनतैं कहा बिनती करौगे? सज्जन तौ चूक होयगी सो शुद्ध करैंहीगे। सज्जन जीव दया-प्रतिपालक पुरुषनका सहज ही ऐसा स्वभाव है। परन्तु जे दुष्ट पापी हैं तिनतैं बिनती करनी योग्य थी, जे दुर्जन स्वभावी पर निन्दाके करनहारे हैं तिनकौं उपशान्त करनेको उनकी बीनती करनी भली है ताको कहिये हैं। हे भाई जे दुष्ट हैं तिनका कोई ऐसा ही अकृत्रिम अनादि निधन स्वभाव है जो ये पराये भले कार्यको देख सकते नाहीं। यापै कोऊ अनेक बीनती करौ परन्तु यह पापी आत्मा पराई भली वस्तुको दोष लगाये बिना रहता नाहीं। एसे कुबुद्धिनकौं खुशी करनेकूं जो उपाय कीजिये, सो सर्व बृथा है। जैसे नीमके मिष्ट करनेकूं नाना मिष्ट रस, दुग्ध, घी ले नीमकी जड़में दीर्घ काल तांई सींचिये तौ भी नीमका रस मिष्ट होता नाहीं। जेती भली वस्तु मिष्ट-रस-धारी नीमकी जड़में डारिये सो सर्व वृथा होय जाय। तैसे ही दुष्ट कूं खुशी करनेकों जेते उपाय करिये, सो-सो सर्व बृथा जांय हैं। तातें हे भ्रात, जो वस्तु होती जानिये तौ इलाज भी करिये। और जो वस्तु होती नहीं जानिये तौ तापै इलाज काहेका? तातें सज्जन हैं ते सरलस्वभावी हैं। तातें बिनती करी। अर जे दुष्ट हैं तिनतैं बिनती करी तौ क्या, वह भला वस्तुकौं दोष

लगावैं ही। जे दुष्ट हैं तिनकें तौ यही मुख्य है जो पराई निन्दा हाँसिको करि, परिकों पीड़ा उपजाय, आप सुख मानना। तातें ऐसे जानि सज्जन जननतें बिनती करी, जो यह सज्जन भूल-चूक होयगी सो शुद्ध करैंगे। अरु पराये अवगुणकों हेरनेहारोंतैं समभाव करि इस ग्रन्थके करनेका उपाय करौं हों। ताके आदि ही षट्-कार्य आचार्यनिकी परिपाटी तैं चले आये हैं। जे आचार्य तथा और ग्रन्थनके कर्ता कवीश्वर भये ते षट्कार्य ग्रन्थारम्भके आदि ही वर्णन करते आये हैं। सो ही परंपराय लेय इस ग्रन्थकी आदि इहाँ भी लिखिये हैं।

गाथा—मंगल णिमित्त हेऊ, जोए पमाण णाम कत्ताए। सूरो ग्रन्थारंभय, ए षड काजोय धम्म सुत्तादो ॥ १० ॥

मंगल, निमित्त, हेतु, प्रमाण, नाम, कर्ता, यह षट् हैं। सो जे आचार्य ग्रन्थारम्भ करैं तब आदिमें इनका स्वरूप वर्णन करैं। सो अब इनका स्वरूप लिखिये है। प्रथम ही मंगल कहैं सो पुण्य, पवित्र, शुभ, क्षेम, कल्याण, सुख, साता इत्यादिक ए सर्व मंगलके नाम हैं। मंगलके षट्भेद हैं सो ही कहिये हैं।

गाथा—णाम सथापण दव्वो, खेत्तो कालोय भाव षड् भेदो। मंगल पुणदय भावो, गंथारंभेय सव्व करई ॥ ११ ॥

नाममंगल, स्थापनामंगल, द्रव्यमंगल, क्षेत्रमंगल, कालमंगल, भावमंगल, ये षट् प्रकार मंगल हैं। सो इनका विशेष कहे हैं। तहाँ नवीन ग्रन्थके आरम्भमें प्रथम ही मंगल करिये। सो पापका नाश सो ही मंगल है। सो पंच परमेष्ठीके नाम तथा वृषभादि अनेक तीर्थंकरनका नाम तथा गणधर देवादि महान् पुरूष तथा चरमशरीरी आदि धर्मात्मा पुरुषनका नाम लेते पापका नाश होय, सो नाम मंगल है। तीर्थंकर देवके शरीर को नकल बनाय स्थापना करि पूजना, सो स्थापना मंगल है। अरहंतादि परमेष्ठीके शरीर हैं सो इनका देखना, पूजना, सुमिरण करना, ताकरि पापका नाश करना, पुण्यका सञ्चय करना होय, सो द्रव्य मंगल है। जहाँ यतीश्वर ध्यान-अग्नि कर अष्ट कर्म नाशि सिद्ध लोककों प्राप्त भये। जैसे सोनागिरिजी, सम्मेदशिखर-जी, पावापुरजी आदि उत्तम क्षेत्रनका नाम लिये पूजा बंदना किये, पुण्यका बन्ध होय, पापका नाश होय, सो क्षेत्रमंगल है। जिन कालनमें जिनेन्द्रदेवके गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण आदि पंच कल्याणक भये होंय सो, तथा नन्दीश्वर विषैं अष्टान्हिका आदिक जिन पूजनके दिन हैं सो कालमंगल हैं। इन कालका

नाम लेते, बंदना करते, ध्यान करते, पापका नाश होय, पुण्यका लाभ होय, सो कालमंगल है। अष्टकर्म रहित सिद्ध भगवान तथा च्यारि घातिया कर्मरहित तीर्थंकर, अनन्त चतुष्टय सहित समोशरणादि उत्कृष्ट संपदा लेय दिव्य ध्वनि करि उपदेश देते जो साक्षात भगवान् तिनका नाम ले, स्मरण करते ध्यान करते पापका नाश होय पुण्यका लाभ होय, सो भावमंगल है। ऐसे ये षट् प्रकार मंगल है सो भव्य जीवनकों शास्त्र सुननेमें बाँचनेमें पूजन करनेमें मंगलकारी होहु। याका नाम मंगल भेद है। सो भले कवीश्वरनि कों प्रथम ग्रंथारम्भ करते मङ्गलकारी होय हैं॥ १ ॥ बहुरि ग्रंथारम्भ करिये है ता समय ऐसा विचारिये है जो यह ग्रंथ करैं हैं सो भव्य जीवनिके पाप नाश होने कूं तिनका मिथ्यात्व मिट सम्यक्त होने कूं तथा परभव स्वर्ग मोक्ष होने कूं इत्यादि धर्मार्थी जीवन कूं, शुभ फलकी प्राप्तिके निमित्त ग्रंथ करिये है, सो याका नाम निमित्त भेद है॥ २ ॥ और भव्य जीवनिके पढ़ने, सुनने, उपदेश देने हेतु शास्त्र करिये है सो हेतु नाम गुण है॥ ३ ॥ प्रमाण भेद दोय हैं एक तौ अर्थ प्रमाण, एक अक्षर पद प्रमाण। सो अर्थ प्रमाण तौ अनंत हैं। ताका तारतम्य भेद सर्वज्ञ केवल ज्ञानी जानैं हैं, सो छद्मस्थके ज्ञानगम्य नाहीं तातैं नहीं लिखा। अक्षर प्रमाण है सो अक्षरकी गिनती जो या ग्रंथके ऐसे श्लोक हैं सो अक्षरप्रमाण है। ऐसे दोय प्रकार प्रमाण नाम गुण है॥ ४ ॥ ग्रंथ पूरण होतें कोइ मोक्षमार्ग सूचक शुभ नाम विचार, ग्रंथका पुण्याधिकारी भला नाम देना, सो नाम गुण है॥ ५ ॥ ग्रंथके पूरण होते मङ्गलाचरण करि ग्रंथका कर्ता अपने नामका भोग धरै, सो कर्ता नाम गुण है॥ ६ ॥ ऐसे ए षट् गुणनका कथन ग्रंथ आदि किया। ता प्रसाद मेरे सुदृष्टि होते हृदयमें, उपजी जो नाना प्रकार ज्ञानतरंग, जैसे समुद्रमें अनेक तरंग उपजैं तैसे मेरी सुदृष्टि समुद्रमें अनेक तत्व भेद, वस्तुनिके स्वभाव, जीवनिके बाह्य अभ्यन्तर रूप कर्मकी चेष्टाकी प्रवृत्ति, आदि तरंग सो ही तरंग या ग्रंथ विषै लिखिये है। तातैं या ग्रंथका नाम "सुदृष्टि तरंगिणी" ऐसा कहा है सो यह शुभ करनहारा ग्रंथ है सो सम्यक्त दृष्टिनके धारनेको जानना। तथा और भी जे भव्यात्मा इस ग्रंथका अभ्यास करै, ताकूं तत्वनिका ज्ञान होय। तातैं सम्यक्त पाय अतिशय सहित शुभफलदाता जो पुण्य, ताका लाभ

होय। तथा जा ग्रन्थमें यह सात जातिका कथा होई सो भले फलदाता मंगलकारी ग्रन्थ जानना। सो ही सात भेदरूप कथा या ग्रन्थमें समझ लेना। ते कथा कौन, सो बताईये है।

गाथा—दव्वय खेत्रय कालय, भावो तिथ्थय होय फल आदा। पसथावो यह सत्तो, धम्म कथाई धम्म फल देई ॥ १२ ॥

अर्थ—द्रव्यकथा, क्षेत्रकथा, कालकथा, भावकथा, तीर्थकथा, फलकथा, प्रस्ताव कथा, ये सात कथा हैं सो इनकूं धर्मकथा कहिये है। इनका कथन जहाँ चलै सो शास्त्र धर्मफलका दातार जानता। तथा जो कोई भव्य इन सप्त कथानकी परस्पर चर्चा करैं तो धर्म कथा कहिये। सो इनका सामान्य स्वरूप कहिये है। तहाँ जीव द्रव्य, पुद्गलद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, कालद्रव्य, आकाशद्रव्य यह षट्द्रव्य, हैं सो इनकी चर्चा, इनके गुण पर्यायनकी परस्पर चर्चा करनी, सो धर्मफलदायक धर्मकथा कहिये। अब इन कथनका जो शास्त्र विषै व्याख्यान किया होय, सो धर्मशास्त्र कहिये। ऐसे शास्त्रन कूं पढै-सुनै-उपदेशै, पुण्यफलका लाभ होय है, सो द्रव्यकथा जानना ॥ १ ॥ ऊर्ध्व, मध्य, पाताल लोकविषैं तहां ऊर्ध्वलोक विषैं कल्पवासी देवनके सोलह स्वर्ग तिनमें देवनकी आयु काय सुखकी चर्चा करना तथा नवग्रैवेयक, नवअनुत्तर, पंचपंचोत्तर, इन आदिनका आयु काय सुखका कथनादिक, उर्द्ध लोकका व्याख्यान सो उर्द्ध लोक कथा है। मध्यलोक विषै असंख्यात द्वीप समुद्र पच्चीस कोड़ाकोड़ी मध्य पल्य प्रमाण तिनकी रचना तथा अढ़ाई द्वीप, पंचमेरु, एक-एक मेरुसम्बन्धी बत्तीस-बत्तीस विदेह, अरु भरत ऐरावत क्षेत्र इनका वर्णन और चौंतीस-चौंतीस विजयार्द्ध पर्वत ताकी दोय श्रेणि, तहाँ विद्याधरनकी एक सौ दस नगरोनका कथन, षट्कुलाचल षट्हृदयनतें निकसी चौदह महानदी, जम्बू शालमली वृक्ष आदि एक-एक मेरु सम्बन्धी रचनाका कथन तथा पुष्कर द्वीपके मध्य भागमें कनकमई मानुषोत्तर पर्वतका कथन, ताकरि मनुष्य लोककी हद है। तहाँ तिष्ठते चारयों तरफ चारि जिनमंदिर तिनका कथन, तथा अष्टम द्वीप नंदीश्वर ताविषैं चारि अंजनगिरी, एक-एक अञ्जनगिरी सम्बन्धी चारि-चारि बावड़ी, तिन बावड़ीनिके मध्यभाग सोलह दधिगिरि पर्वत तथा बत्तीस रतिकर पर्वत सो यह पर्वत नीचै तो अनेक प्रकार रतनमई विचित्र शोभा को धरैं हैं, और ऊपरिके शिखर लाल हैं तातें रति-

कर नाम कहा है। ऐसे ही नीचै तौ अनेक रत्नमयी अरु तिनके शिखर ऊपरतैं श्याम सो अंजनगिरी हैं। तथा एक-एक बावड़ी सम्बन्धी च्यारि-च्यारि बननका कथन। तथा इन पर्वतनमें तिष्ठते बावन चैत्यालय तिनका कथन है। तथा ग्यारवें कुण्डलद्वीपके मध्यभाग विषैं कुण्डलगिरि पर्वत है तहाँ तिष्ठते च्यारि जिनमं-दिर हैं तिनका कथन, तथा असंख्यातेद्वीपनमें तिष्ठते असंख्याते व्यंतरदेवनके नगरनकी रचना, रुचकगिरि तेरहमां द्वीप विषैं मध्यभाग तिष्ठता रुचकगिरि पर्वत तापै च्यारि जिनमंदिरनका कथन, इन आदिक और असंख्यात द्वीपके अन्तमें स्वयंभूरमण समुद्र चारि कोन्याक्षेत्र तिन विषैं तिष्ठते उत्कृष्ट अवगाहनाधारी तिर्यंच तिनका कथन और असंख्याते द्वीपन में तिष्ठते एक अल्प आयु कर्मके धरनहारे तिर्यंच तिनका कथन इन आदिक अनेक रचना सम्बन्धी कथन सहित सो मध्यलोकका कथन। सो याकी परस्पर चर्चा करनी सो महापुण्यफलकी दाता है। याकों धर्मकथा कहिये और अधोलोकविषैं दस जातिके भवनवासी देवनके भवन तिनके प्रमाणका कथन, देवनकी आयुकायका कथन। तिनतैं नीचे पंकभागमें प्रथम नरक, तिनकी आयु-कायका कथन तथा नीचे षट् नारकी और जिनकी आयु-काय-दुःखका कथन इत्यादिक तीन लोकका कथन तथा तीन लोकके शिखरपर विराजते अष्ट कर्मरजरहित शुद्धात्मा ज्योतिस्वरूप केवलज्ञानके धारी अनन्त सुखके धनी अनन्त सिद्ध भगवान, तिन सर्व सिद्ध परमात्मा भगवानको हमारा बारंबार नमस्कार करि तिन-की अवगाहनाका कथन, तथा ऐसे सामान्य रीतिसे तीनिलोकका पुरुषाकार डेढ़मृदंगाकार तीनसौ तेतालिस राजूका घनाकार क्षेत्रका कथन। सो ऐसे क्षेत्रका कथन है। इस प्रकार तीन लोककी परस्पर चर्चा करै सो धर्मचरचा जानना। और ऐसे तीन लोकका कथन जा शास्त्रमें होय, तो धर्मफलदायक शास्त्र है।

तीन कालका कथन सो अनंत अतीतकाल व्यतीत भया, वर्तमानकालका एक समय और अतीत-काल तैं अनंतगुणा अनागतकाल है। तथा उत्सर्पिणी असर्पिणी काल, तिन कालनकी फिरनको लिये प्रथम दूजे आदिक षट्कालविषैं आयु काय सुख दुःखका कथनकी चर्चा इत्यादिक तीनिकालका कथन है। सो या

कथनकी परस्पर चर्चा वार्ता करनी सो कालकथा पुण्यदायक है। जिन शास्त्रविषै इन तीनिका कथन होय सो धर्मशास्त्र है। याको पूजै पढ़ै सुनैं उपदेशै पुण्यफल होय।

आगे भावकथन—सो तहाँ पंचभाव जो उपशमभाव, क्षयोपशमभाव, औदयिक भाव, क्षायकभाव और पारिणामिकभाव। तहाँ उपशम भाव ताको कहिये जो कर्मके उपशमतें होय। ताके दोय भेद हैं उपशमसम्यक्त्व, उपशमचारित्र। सो यह दोऊ भाव अपने घातकर्म उपशमाय प्रगट होंवें सो उपशम भाव हैं और तिस कर्मके केतेअंश तो उदयभाव रूपहोंय, केते अंश उपशम भये तथा क्षय भये होंय। सो तिनकरि उदय भया जो रस ता रस प्रकट होते, आत्माके भाव जेसे होंय, सो क्षयोपशम भाव कहिये। तिनके भेद अठारह कुज्ञान तीनि, सुज्ञान चार, दर्शन तीनि, क्षयोपशमसम्यक्त, क्षयोपशमचारित्र, देशसंयम, पंच अन्तरायका क्षयोपशम ऐसे अष्टादश हैं। और तिन गुणनके, प्रतिपक्षो कर्म सर्वथा नाश भये होय सो क्षायकगुण है। सो क्षायक भावके नव भेद हैं क्षायकज्ञान, क्षायकदर्शन, क्षायकचारित्र, क्षायकसम्यक्त, पंचलब्धि ए नव हैं। और जे भाव कर्मके उदय तैं होंय सो औदयिक भाव हैं। ताके भेद इक्कीस--कषाय चारि, गति चारि, लेश्या षट्, वेदतीन, मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम असिद्धत्व। और कर्म सहाय रहित स्वयं सिद्ध आत्माके भाव सो पारिणामिक भाव हैं। ताके भेद तीन—जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व। ये सर्व मिलि मूल भाव पाँच और उत्तरभाव तिरेपन जानना। सो इन पंच भावनके मूलभेद आदि अनेक भाविनका जामें कथन होय, सो धर्मशास्त्र है। परस्पर भावनकी चर्चा सो भावकथा है। जहाँतें यतीश्वर कर्मनाश शिव गये सो सिद्धक्षेत्र जैसे गिरनारजी, सम्मेदशिखरजी, शत्रुंजयजी, सोनागिरिजी, मांगीतुङ्गीजी, गजपंथाजी इन आदि सिद्धक्षेत्रनका जामें कथन होय सो धर्मशास्त्र, भले फलका दाता जानना। और इन सिद्धक्षेत्रनकी परस्पर चर्चा कीजिये, सो धर्मकथा है। तथा पंचकल्याणकनके जे क्षेत्र, तिनकी कथा तथा इन आदि जे धर्मस्थानकी कथा करनी, सो तीर्थ कथा होय आगे जहाँ जीवपुद्गलादि द्रव्य तथा जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष, इन सप्त तत्वका तथा इनमें पुण्य और पाप मिलाये नव पदार्थनका कथन जिस शास्त्र विषैं होइ, सो

मैं भी अब भला अवसर पाया है। सो ऐसा काय करूं जातैं संसारका भ्रमण छूटै। सदैव ऐसा उपाय बिचारै। दीक्षाके द्रव्य क्षेत्र काल भावनकी एकताका निमित्त न मिले तौं धर्मात्मा श्रावक पुत्र, अपनी बुद्धि बलतैं कमलसमान अलिप्त भया गृहमें रहे। सो सर्वगृहपालवेकूं उद्यम करे। औरन कूं मोही सा दीखै। अनेक तन क्रिया बचन क्रिया करि सर्वको संतोष करि सुख उपजावे। परन्तु यह धर्मात्मा गुरुके पास देखा जो प्रथमानुयोगका रहस्य सो पापारंभका फल खोटा जानि गृहकार्यनमें रंजायमान न होय। यह तत्ववेत्ता उदासीन वृत्तिका धरणहारा, पापारंभ रहित भया, अपने जुग भव सुधारता अपने शुद्धधर्मकी रक्षा करता, विचक्षण, अपने घरके पुत्र-कलत्र-कुटुम्बादिककी रक्षा करै। ऐसे जे भव्यप्राणी गृहमें रहैं ते परभवमें सुखी होंय। जे वालक अवस्थाहीके अज्ञानी, कुआचारी, पाप भयरहित, शरीर भोगनमें मोहित, इन्द्रिय सुखके लोभी, तन-धन-संपदा सास्वती जाननहारा धर्मभावना रहित हैं, ते जीव गृहारम्भमें अदयासहित प्रवृर्त पापबन्धकरि कुगति-विषें दुःखी होय हैं। तातैं सुबुद्धि तीनि कुलके उपजै बालकनकूं अपने सुखनिमित्त, बालपने ही तैं विद्या पढ़ावना योग्य है। जो धर्मात्मा विद्यावान पुत्र होई तौ माता-पिताको सुखकारी होय। जो मूर्ख, अज्ञानी, पापाचारी, अविनीति पुत्र होय तो माता-पितानको दुखकारी होय। ऐसा जानि धर्मा म ेकी पुरुष होय हैं सो अपने पुत्रनकूं धर्मशास्त्रनि विषैं प्रवेश करावैं हैं। जे पंडित धर्मात्मा, धर्मशास्त्रनका अभ्यास करैं सो धर्मशास्त्रके अभ्यास तैं सम्यकदृष्टिका लाभ होय हैं। सम्यक्तके होते, जीव-अजीव तत्वनका जानपना होय है। सो जीवतत्व तौ देखने-जानने रूप है, अरु अजीवतत्वके पांच भेद हैं। ए पांचही जड़ हैं, ज्ञानरहित हैं। ऐसे जीव-अजीव तत्व, जिनदेवने प्ररूपे हैं। तैसेही सम्यकदृष्टी श्रद्धान द्वारा धारण करि, पदार्थनमें हेय-उपादेह करै हैं। ऐसा विचारै हैं जो जिनदेवने जीवाजीव तत्व भेद कहे हैं सो प्रमाण हैं, सत्य हैं। ऐसा दृढ़ श्रद्धान सो व्यवहार सम्यक्त है। दर्शन मोंहनीयकी तीनि, अनन्तानुबन्धीकी चारि, इन सात प्रकृतिनका उपशम होना तथा क्षय होना, ऐसे सात प्रकृतिनके क्षय तथा उपशम होतें प्रगटा जो आत्माका अन्तरंग गुण पर्यायसहित प्रत्येक अनुभवको लिये शुभज्ञान, तातैं षट्द्रव्य नमें ऐसा भाव जानता भया जो जीव, अजीव तत्व कर

कथनकी परस्पर चर्चा वार्ता करनी सो कालकथा पुण्यदायक है। जिन शास्त्रविषै इन तीनिका कथन होय सो धर्मशास्त्र है। याको पूजे पढ़े सुनें उपदेशै पुण्यफल होय।

आगे भावकथन—सो तहाँ पंचभाव जो उपशमभाव, क्षयोपशमभाव, औदयिक भाव, क्षायकभाव और पारिणामिकभाव। तहाँ उपशम भाव ताको कहिये जो कर्मके उपशमतें होय। ताके दोय भेद हैं उपशमसम्यक्त्व, उपशमचारित्र। सो यह दोऊ भाव अपने घातकर्म उपशमाय प्रगट होवैं सो उपशम भाव हैं और तिस कर्मके केतेअंश तो उदयभाव रूपहोंय, केते अंश उपशम भये तथा क्षय भये होंय। सो तिनकरि उदय भया जो रस ता रस प्रकट होते, आत्माके भाव जैसे होंय, सो क्षयोपशम भाव कहिये। तिनके भेद अठारह कुज्ञान तीनि, सुज्ञान चार, दर्शन तीनि, क्षयोपशमसम्यक्त्व; क्षयोपशमचारित्र, देशसंयम, पंच अन्तरायका क्षयोपशम ऐसे अष्टादश हैं। और तिन गुणनके; प्रतिपक्षी कर्म सर्वथा नाश भये होय सो क्षायकगुण है। सो क्षायक भावके नव भेद हैं क्षायकज्ञान, क्षायकदर्शन, क्षायकचारित्र, क्षायकसम्यक्त्व, पंचलब्धि ए नव हैं। और जे भाव कर्मके उदय तें होंय सो औदयिक भाव हैं। ताके भेद इक्कीस--कषाय चारि, गति चारि, लेश्या षट्, वेदतीन, मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम असिद्धत्व। और कर्म सहाय रहित स्वयं सिद्ध आत्माके भाव सो पारिणामिक भाव हैं। ताके भेद तीन—जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व। ये सर्व मिलि मूल भाव पांच और उत्तरभाव तिरेपन जानना। सो इन पंच भावनके मूल भेद आदि अनेक भाविनका जामें कथन होय, सो धर्मशास्त्र है। परस्पर भावनकी चर्चा सो भावकथा है। जहांतें यतीश्वर कर्मनाश शिव गये सो सिद्धक्षेत्र जैसे गिरनारजी, सम्मेदशिखरजी, शत्रुंजयजी, सोनागिरिजी, मांगीतुङ्गीजी, गजपंथाजी इन आदि सिद्धक्षेत्रनका जामें कथन होय सो धर्मशास्त्र, भले फलका दाता जानना। और इन सिद्धक्षेत्रनकी परस्पर चर्चा कीजिये, सो धर्मकथा है। तथा पंचकल्याणकनके जे क्षेत्र, तिनकी कथा तथा इन आदि जे धर्मस्थानकी कथा करनी, सो तीर्थ कथा होय आगे जहाँ जीवपुद्गलादि द्रव्य तथा जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष, इन सप्त तत्वका तथा इनमें पुण्य और पाप मिलाये नव पदार्थनका कथन जिस शास्त्र विषैं होइ, सो

धर्मशास्त्र है। इन सप्त तत्वनिकी विशेष भेदाभेद चर्चा करनी सो फल कथा है। आगे अनेक दृष्टान्त, जुगति व नाना प्रकार नयन करि मिथ्यात्व नाश करना, धर्म साधक पापकर्म नाशक अनेक अलंकारनका कथन जिन शास्त्रनमें होय सो धर्मशास्त्र हैं। अपनी बुद्धि करि धर्म स्थापन कूं, पापमग छेदन कूं, दृष्टान्त जुगति देय प्रश्न-उत्तर करि चर्चा करना, सो प्रस्ताव कथा है। ऐसे कहे सात भेद धर्मकथाके सो इन सात कथानका जा शास्त्रमें कथन होय, सो धर्मशास्त्र कहिये। जहाँ इन सात कथा रहित कथन सहित शास्त्र हो सो मिथ्यात्व-मयी शास्त्र सामान्य जानि तजना योग्य है। तातैं शुभ सात कथा हैं सो इन बिना, विषयनके कारण, हिंसाके बंधावनहारे, मिथ्यासरधानके करावनहारे जो शास्त्र हैं सो लोक कथा मयी विकथारूप हैं। भो भवि हो, इस शास्त्र विषैं सातौं ही कथानका रहसि पाइये है। सर्व प्रकार धर्मकथा धर्मफल दाता है तातैं धर्मात्मा जीवनकों इस ग्रन्थका अध्ययन करना योग्य है॥ ३॥ इति श्री सुदृष्टि तरंगिणी नाम ग्रन्थ विषैं इष्टदेव नमस्कार पूर्वक, ग्रन्थ करवेकी प्रतिज्ञाकों लिये, अपनी आलोचना सहित सम्यक्त्वके पच्चीस दोष कथन सहित आदि मंगल षट् भेद लिये, सात भेद धर्मकथादिक वर्णन करनेवाला, तीसरा पर्व पूर्ण भया॥ ३॥

आगे कहिये है—जो मोक्षमहलके चढ़वेकों सोपान तथा शिवरूपी कल्पवृक्ष ताका मूल ऐसा सम्यग्दर्शन ताकी उत्पत्तिकों कारण तत्व भेद है। सो जिन देव करि कहे जीवतत्व, अजीवतत्व इन दोय भेद मई है। सो एक तो चेतना लक्षणाकों लिये देखने-जानने हारे जीवतत्व हैं। एक अजीवतत्व, सो जड़ हैं सो चेतना गुणका धारक आत्मतत्वज्ञानीके मोण होय है। सो तिनकी उत्पत्ति कहिये है। जो उत्तम तीनिकुलके उपजे सुआचारी बालक, तिनको तिनके माता-पिता महाधर्मी, सो अपने कुलके आचार धर्मपरंपराय चलवेकों, अरु पुत्रको इहाँ जस अरु परभव सुखी होनेकों, पुत्रपर स्नेह दृष्टि करि, पुत्रको पाँच-सात वर्षकी अवस्थातें विद्या-का अभ्यास करावने कूं, गृहस्थाचार्यन पर पढ़ावें हैं। कैसे हैं गृहस्थाचार्य, महाधर्मके धारी सर्व धर्मकला विषैं प्रवीण हैं, अनेक शस्त्र-शास्त्र विद्याके वेत्ता हैं, महादयालु हैं, कोमल हैं, सौम्यमूर्ति, शुभाचारी हैं। ऐसे उत्तमगुण सहित, निर्मलचित्त, महापंडित, तिनपर भले श्रावकनके बालक पठन करैं हैं। सो वह सुबुद्धि,

गुरुके दिये अक्षर महाविनय तैं अंगीकार करै है। सो गृहस्थाचार्य या शिष्य कूँ शुभलक्षणी विनयवात्सल्यादि गुण सहित जानि, या बालककी अनेक प्रकार परीक्षा करि, शुभ चेष्टा जानि, याकों इस भव-परभव कल्याणकारी सुखकी करणहारो उत्तम विद्या पढ़ावैं हैं। सो प्रथम तौ धर्मशास्त्र, पीछे कर्मशास्त्रनका अभ्यास करावैं हैं। तहाँ धर्मशास्त्रमें प्रथम तौ प्रथमानुयोग पढ़ावैं। ताकरि पुण्य-पापके फलकों जानि, पापकर्मनका फल नरक-पशूनके महातीव्र दुख जानि, पाप तैं भय खाय करि, नहीं करना वांछै। पुण्यका फल मनुष्यमें चक्री कामदेव, नारायण बलभद्र, मंडलेश्वरादि महान राजानके वांछित भोग, अर देवनके उत्तम सुख इत्यादि फला फल जानि, पुण्यके उपायवेका उद्यम करे। ऐसे पुण्य-पापका स्वभाव जनायवेकौं प्रथमानुयोगका अभ्यास पहिले ही करावैं हैं। पीछे करणानुयोग पढ़ावैं। तातें तीनि लोकका स्वरूप-आकार-स्वभाव जानैं। ताके ज्ञान होतें भोरे जीवनका सा भ्रम नांही उपजे, कि—"जो यह लोक काहूका बनाया है। वह लोकका कर्त्ता चाहे तौ लोक समेटिलेय, तौ संसारका अभाव होय, शून्यता होय जाय। तातें यह लोक कृत्रिम है।" ऐसे कोई एक भोरेजीव बालकवत कहै हैं सो तिनके वचन सुनके कारणानुयोगके जाननेहारेको भ्रम नहीं उपजै। अपने सांचे ज्ञानकी चेष्टातें लोक स्वयंसिद्ध जानैं। तातें करणानुयोग पढ़ावें। पीछे चरणानुयोग पढ़ावें। ताकर मुनि-श्रावकनका आचार जानैं। मुनिका निर्दोष भोजन, चालना, बोलना, बैठना आदि, यतीका आचार जानैं। तथा श्रावकनका खाना-पीवनादि योग्य-अयोग्य आचार, धर्म सेवनादि क्रिया जानैं। तातैं अपने ऊँच कुलके ऊँच धर्म, ऊँच आचार कूं नाहीं तजैं। तातें आप म्लेक्ष, अभक्ष्यके खायवे हारनकी संगतितें कुआचार नहीं ग्रहैं। तातें चरणानुयोग पढ़ावें। पीछें गुरु पै द्रव्यानुयोग पढ़ैं। ताकरि जीव अरु अजीवका भेद जानैं। इन जीव-अजीवके द्रव्य-गुण पर्यायकों जानैं। तातें संसार दशा आपतैं भिन्न जानैं। अपने तनतें भी जड़त्व भाव जानि एकत्व तजैं। तन-धन कुटुम्बादिका वियोग होतें अज्ञानी मोही जीवनकी नाईं दुखी नहीं होय, तातैं द्रव्यानुयोग पढ़ावैं। ऐसे धर्मशास्त्रका रहस्य जनाय धर्मसम्बन्धी भरम खोवैं। ताके प्रसाद मिथ्या धर्म नहीं रुचै। सद्धर्म-अङ्गीकार करि परभव सुधारे। पीछे कर्मशास्त्र पढ़ावें, तहाँ ज्योतिष-

निमित्तशास्त्र, वैदिक, ·चित्रकला, संगीतकला, शिल्पशास्त्र, कोकशास्त्र, पिङ्गलशास्त्र, छंदशास्त्र, रतनपरीचा,
धातुपरीक्षा इन आदि अनेक देशभाषा, अनेक देशनके अक्षरनकी स्थापना आदि अनेक शास्त्र-कलादिक
पढ़ाय प्रवीण करैं। ताके जोग तैं इस लोक विषैं श्रेष्ठता पावैं, सर्व उत्तमलोकन कर पूज्यपद पावै पाखंडी पापीन
करि ठग्या न जाय। सर्वकलापूरण सुखी होय तातें अनेक कर्मकला सिखावैं। ऐसे गुरुकी दया करि, पाई जो
विद्यानिधि, ताकरि उत्तम तीनि कुलके बालक, अपनी बुद्धिको निर्मल करि, सर्वसंसार दशाका वेत्ता होय।
सो गुरुप्रसादके जोग तें पाया जो जीव अजीव तत्वका भेद, तातैं निर्मल बुद्धि परद्रव्यन तैं भिन्नचित्तकरि
जड़पदार्थ शरीरादि तिनमैं निर्ममत्वता करिकैं, कर्मबन्धन तैं छूटवेकी है इच्छा जाके, सो जामनमरण दुःख-
नतैं भय खाय, दीक्षा धरै। तथा यदि दीक्षाको समरथ नहीं होय तौ अशुभोपयोगी पापारम्भका फल दुःख
जानि, पापकार्यमैं जतन तैं दयामई भाव सहित प्रवर्ते। श्रावकधर्मका साधन करता गृहस्थ ही रहै सो चारित्र
मोहके उदय तें कुटुम्ब शरीरादिकके पोषवेकों तथा अपनी मन इन्द्रिय वशीभूत नहीं भई तिनके पोषनकों
तथा अपने पदस्थप्रमाण कषायनिके जोगतें मान-बड़ाई पोषवेकों, अपने गुरुका दिया ज्ञान ताको प्रगट कर
जगतविषैं जस रूपी वेल बधाय, न्यायमार्ग सहित अपनी बुद्धि बलतें धनका उपार्जन करै। ताकरि अपने
तन, कुटुम्बकी रक्षा करै। सर्व कुटुम्ब लोकन तैं यथायोग्य विनयवचन बोल, सर्वकौं हित उपजावे। आपतें
गुरुजनतें, माता-पिता होंय तिनतैं, नम्रतापूर्ण बचन सुन्दरविनय सहित प्रकाशिकै तिनकौं सुखी करै। अरु
आपतें छोटे होंय तिनतें महा हित-मित, अमृत समान कोमल बचन बोलिकें हँस मुख तैं सौम्यदृष्टि करि
देखि तिनकूं पुचकार सुखी करै। ऐसे यथायोग्य संभाषण कर, सबको साता करै। यह तत्ववेत्ता सदैव राज-
सम्पदादि भोगता ऐसा विचार चित्तविषैं किया करे, जो मैं अनादि काल तैं संसार भ्रमण करता नरकादिक
कुगतिनका पापफल भोग दुःखीं भया। कबहूँ शुभपरिणतके फलकर पुण्य तैं देवादि शुभगतिके इन्द्रियज-
नित सुख मनवांछित भोगे। परन्तु इस जीवकी भोगतृष्णा नहीं मिटी, संसार भ्रमण नहीं मिटा। मैं जन्म-
मरणके दुःखन तैं कब छूटूंगा ? धन्य है मुनि तीर्थंकर देव, जिनने राज्यसंपदा तजि, सिद्ध लोक पाया। सो

मैं भी अब भला अवसर पाया है। सो ऐसा काय करूं जातैं संसारका भ्रमण छूटै। सदैव ऐसा उपाय विचारै। दीक्षाके द्रव्य क्षेत्र काल भावनकी एकताका निमित्त न मिले तौं धर्मात्मा श्रावक पुत्र, अपनी बुद्धि बलतैं कमलसमान अलिप्त भया गृहमें रहे। सो सर्वगृहपालवेकूं उद्यम करे। औरन कूं मोही सा दीखै। अनेक तन क्रिया बचन क्रिया करि सर्वको संतोप करि सुख उपजावे। परन्तु यह धर्मात्मा गुरुके पास देखा जो प्रथमानुयोगका रहस्य सो पापारंभका फल खोटा जानि गृहकार्यनमें रंजायमान न होय। यह तत्ववेत्ता उदासीन वृत्तिका धरणहारा, पापारंभ रहित भया, अपने जुग भव सुधारता अपने शुद्धधर्मकी रक्षा करता, विचक्षण, अपने घरके पुत्र-कलत्र-कुटुम्बादिककी रक्षा करै। ऐसे जे भव्यप्राणी गृहमें रहैं ते परभवमें सुखी होंय। जे बालक अवस्थाहीके अज्ञानी, कुआचारी, पाप भयरहित, शरीर भोगनमें मोहित, इन्द्रिय सुखके लोभी, तन-धन-संपदा सास्वती जाननहारा धर्मभावना रहित हैं, ते जीव गृहारम्भमें अदयासहित प्रवृर्त पापवन्धकरि कुगति-विषें दुःखी होय हैं। तातैं सुबुद्धि तीनि कुलके उपजे बालकनकूं अपने सुखनिमित्त, बालपने ही तैं विद्या पढ़ावना योग्य है। जो धर्मात्मा विद्यावान पुत्र होई तौ माता-पिताको सुखकारी होय। जो मूर्ख, अज्ञानी, पापाचारी, अविनीति पुत्र होय तो माता-पितानको दुखकारी होय। ऐसा जानि धर्मा म नेकी पुरुष होय हैं सो अपने पुत्रनकूं धर्मशास्त्रनि विषैं प्रवेश करावैं हैं। जे पंडित धर्मात्मा, धर्मशास्त्रनका अभ्यास करैं सो धर्मशास्त्रके अभ्यास तैं सम्यकदृष्टिका लाभ होय हैं। सम्यक्तके होते, जीव-अजीव तत्वनका जानपना होय है। सो जीवतत्व तौ देखने-जानने रूप है, अरु अजीवतत्वके पांच भेद हैं। ए पांचही जड़ हैं, ज्ञानरहित हैं। ऐसे जीव-अजीव तत्व, जिनदेवने प्ररूपे हैं। तैसेही सम्यकदृष्टी श्रद्धान द्वारा धारण करि, पदार्थनमें हेय-उपादेह करै हैं। ऐसा विचारै हैं जो जिनदेवने जीवाजीव तत्व भेद कहे हैं सो प्रमाण हैं, सत्य हैं। ऐसा दृढ़ श्रद्धान सो व्यवहार सम्यक्त है। दर्शन मोंहनीयकी तीनि, अनन्तानुवन्धीकी चारि, इन सात प्रकृतिनका उपशम होना तथा क्षय होना, ऐसे सात प्रकृतिनके क्षय तथा उपशम होतें प्रगटा जो आत्माका अन्तरंग गुण पर्यायसहित प्रत्येक अनुभवको लिये शुभज्ञान, तातैं षट्द्रव्य नमें ऐसा भाव जानता भया जो जीव, अजीव तत्व कर

दोय भेद तत्व हैं, सो पंचद्रव्य तो ज्ञान रहित अचेतन हैं, तिनके गुण भी अचेतन हैं, पर्याय भी अचेतन हैं। एक जीवतत्व चेतन है ताके गुण पर्याय भी चेतन देखने-जानने हारे हैं, सो ऐसे जीवतत्व भी अनन्त हैं। सो सर्व जीव अपनी-अपनी सत्ताको भिन्न-भिन्न लिये हैं। कोऊ जीव काहूंतैं मिलता नहीं सर्वकी सत्ता जुदी-जुदी हैं। और सर्वके गुण-पर्याय भी भिन्न-भिन्न सत्ताको लिये हैं, कोऊके गुणपर्याय कोऊतैं मिलते नांही ऐसे सर्व संसारी जीव अनन्ते पाइये हैं। तिन विषैं मैं एक सत्तागुणपर्यायका धारी आत्मा, सो अपने शुभाशुभ कर्मनका फल भोगनहारा अरु अपने भावन अनुसार शुभाशुभ कर्मबन्धका करने हारा, एक मैं ही हूं। सो जब मैं ही रागादिक उपाधिसे छूटूं, तौ कर्मबन्धन नाश करि, सिद्धलोकका वासी होहुं। ऐसा आत्माके भेदा-भेद रूप अनुभवविषैं जाके दृढ़ सरधान होयसो निश्चयसम्यक्त है। सो मुक्ति स्त्रीके विवाहकों प्रथम सगाई समानि है॥ ऐसे कहे जे व्यवहार अरु निश्चयसम्यक्त्व, सो तत्वसरधान होतें होय हैं। तातें जिनेन्द्रदेवने प्ररूपै जो जीव-अजीव तत्व, तिन जीवाजीवतत्वनका दृढ़ यथावत् सरधान, सो भव्यन कूं करना योग्य है॥ इहाँ प्रश्न, जीव-अजीव ए दोय तत्व तो और भी अनेक मतनमें कहे हैं। तुमही अपने जिनदेवके भाषें कहनेकी महिमा काहेकों कहो हो? यामें महत्वताका भई? ताका समाधान—हे भाई, तैंने कही सो प्रमाण है। परन्तु सर्वमतनिविषैं जीवाजीवतत्व भेद कहा है सो जिनदेवके कहनेविषैं अरु अन्यमतनके कहने विषैं बड़ा अन्तर है। जैसे बालकके बचन अरु बड़े पंडित पुरुषनके बचनमें अन्तर, एता है। जो बालक समानि ज्ञानी भोरे जीवके बचन प्रतीतरहित हैं और बड़े पंडित पुरुषके बचन प्रतीत सहित होय हैं। तैसे ही सामान्य ज्ञानके धारी तुच्छबुद्धि अज्ञानीके बचनविषैं अरु अन्तर्यामी सर्वज्ञ केवलीके बचनविषैं बड़ा अन्तर है। तातें जिनदेवके कहे जीवाजीवतत्व हैं सो सत्य हैं। तुच्छज्ञानीके कहे तत्वभेद प्रमाण नांही। तातें हे भाई, जिनदेव करि कहे तत्वनकी महत्वता रहैगी देखो जो सामान्य ज्ञानीके बचन तो असत्य हैं और केवलज्ञानी सर्वज्ञके बचन सत्य हैं तातें प्रमाण हैं। यातैं ताका धारण भये तेरा भी भ्रम जाय। ज्ञानकी प्राप्ति

होय, और सम्यक्त्वका लाभ होय। तातें तू धर्मार्थी है सो हे भव्य! तेरे शुभफलके मिलापकी इच्छा होई मिथ्यात्व फंद तें छूटनेकी बांछा होई तौ भले प्रकार धारना।

भो भव्य, तू देखि जो और मतनमें तत्वनका स्वरूप कहा है, सो जैसे अंधनका हाथी देखना। एक-एक अंग हस्तीका कहके, हस्तीके आकारका अभाव करना। तैसे ही भोरे जीवनका तत्व भेद कहना है। जो तत्वका एक अङ्ग लेयकैं प्रकाशैं हैं सो तत्वका अभाव अतत्वरूप कहैं हैं। जैसे छै अन्धोंने एक हस्ती आवता सुना। तब अन्धोंने कही आपनने हस्ती नहीं देखा, सोएक हस्ती आवै है ताहि लिपटि जावो। अरु ताके तनपै हाथ फेरिये ज्यों सर्व हाथी जानिये। ऐसा विचारिकै उस ही हस्तीकूं नजीक आया जान, हस्ती पकड़ा। सो छहोंही अन्धोंने षट्अंग हस्तीके पकड़े। किसीने तौ पांव पकड़ा, किसीने कान, किसीने दांत किसीने सूंड़ि, किसीने पूंछ, किसीने पेट इत्यादिक एक-एक अंग पकड़, तापे अपना हाथ फेरा सो अपना सरधान ऐसा किया जो हाथी ऐसा होय है। अपने मनमें भिन्न-भिन्न कल्पना करि, हस्ती छोड़ा। सो पीछे सर्व अंधे आपसमें कहते भये। एक अंधा वोला हे भाई! हमने हस्ती देखा, तब पांव पकड़ने हारा कहै जो हस्ती थंभसा होय है हमने भले प्रकार देखा। तब कान पकड़नेहारेने कही तू असत्य वोला, हस्ती सूपसा होय है, हमने नीके देखा है। तब दांत पकड़ने हारे ने कही तैंभी नहीं देखा हस्ती मूसल सा होय है। तब सूंड़ पकड़ने हारेने कही तैं भी नहीं देख्या, हस्ती दगली की वांह समान होय है। तब पेट पकड़नेहारा बोला, जो तूं भी असत्य वोला है हस्ती छैने (कंडे) के विठा समानि होय है। तब पूंछ पकड़नेहारा वोल्या रे भाई, तुम काहेको वृथा कहो हो। हमने हाथी भले प्रकार देख्या, हस्ती सोटि समान होय है। ऐसे इन षट् ही अन्धन में विवाद होय है, सो सर्व झूठ है। एक अंगसा हस्ती होता नांहीं। हस्तीका अंग देख्या सो एक अंग कूं हस्ती कहै हैं। नेत्र होय तो सब हस्तीका स्वरूप दीखे, सो नेत्र नांही। तातें इन अन्धनका विवाद मिटता नांही। अपन-अपन अंग कूं सब ही हठतें कहैं हैं। तैसे ही तत्वज्ञानका स्वरूप अतत्वरूप करि कहै हैं। सो ही स्वरूप तोकों सामान्यपनैं समझाय कर कहैं हैं। सो हे भव्य! तू नीके करि धारण

करियो। जीवात्माका देखो, कोई मतवारे तौ सब संसारीके आकार मानैं हैं तहाँ देव, नरक, पशु, मनुष्य तिन अनंते-असंख्याते शरीरमें एक आत्मा मानैं हैं। अरु कोई एक ज्योतिस्वरूप परमब्रह्म है ताका अंश सर्व जगतके घट-घट विषैं कंकरी-पथरी, जल-थल, पवन-पानी सर्व जगह व्याप रहा है। जहाँ-तहाँ उस ही एक परब्रह्मका रूप फैल रहा है। जो कुछ करै है सो वह ही करै है, ऐसा कर्त्ता हर्त्ता है, केई तौ ऐसा ही जानि दृढ़ करि रहै हैं। और कोऊ आत्मा को क्षण भंगुर मानै कि शरीरमें आत्मा छिड़-छिड़ और २ आवै है। कोई कर्तावादी कहैं कि जीवको कोई उपजावै है। ऐसी कहैं हैं कि भगवान नवीन जीव बनाय-बनाय संसारमें धरता जाय है। वही चाहै तब मारै है। कोई एक मतवारे जीवका, अभाव ही मानैं हैं। केई मतवारे मोक्ष आत्माका पीछे फेरि संसार विषैं अवतार मानै हैं। केई मतवारे मोक्ष विषैं आत्मा कूं ज्ञान-रहित मानैं हैं। केई अज्ञानवादी ऐसा कहैं हैं जो आत्मामें परवस्तुके जाननेका ज्ञान है, सो ही उपाधि है। जब ज्ञान मिटैगा, तब मोक्ष होगा। कोई स्थिरवादी ऐसा मानें है जो देव मरै तो देव ही होय। मनुष्य मरै तो मनुष्य ही होय। पशू मरै तो पशु ही होय। नारकी मरै तो नारकी ही उपजै। स्त्री मरै तो स्त्री ही उपजै। रंक मरै तो रंक ही उपजै। राव मरै तो राव ही उपजै। ऐसे अनेक मतवारे जीवतत्वका स्वरूप अपनी-अपनी इच्छा प्रमाण बतावैं हैं। कोई मतवारे अजीवतत्वको भी औरका और ही कहैं। सो कोई मतवारे, कालद्रव्य जड़ है ताको चैतन्य रूप मानैं हैं। ऐसा कहैं हैं जो यह काल द्रव्य है सो यम है। कोई बालबुद्धि मेघ अचेतन कूं देवोंका नाथ इन्द्र मानैं हैं। ऐसे इन आदि जीव-अजीव तत्वनका भेद अन्यमतनविषैं और ही कहैं हैं। जैसे उन्मत्तकी नाईं विपरीत भेद कहैं। सो हे भवि ! तू सुनि। एकाग्र-चित्तकरि तूं इस संवादको धारण करि, ज्यों अनेक नयका ज्ञान बढ़ै, संशय मिटै। तातैं अब सबका भ्रम नाशनेकों जिनमत अनुसार केवलज्ञानधारी सर्वज्ञभगवान भाषे तत्वभेद ताही प्रमाण कहिये है। ताके जाने-सरधान किंये सम्यकदर्शन सम्यकज्ञान होय और अनेक धर्मार्थी जीवनका भ्रम जाय। इहां प्रश्न॥ तुमने ऐसा समुच्चय वचन क्यों न कह्या जो याके सुने सर्वका भ्रम जाय। ऐसा ही क्यों कह्या जो धर्मार्थी जीवन-

का भ्रम जाय ॥ ताका समाधान ॥ जाका भ्रम जाता जानिये, ताका ही कथन करिये। और जाका भ्रम जाता ही नांही, तौ ताका कथन काहे कौं करिये। जैसे सूरजके उदै सर्व संसारका अन्धकार जाय किन्तु जे पर्वतनकी भारी गुफा हैं तिनका अंधकार नांहीं जाय। तौ ऐसा कथन कैसे कहैं, जो गुफानका भी अन्धकार जाय। तातैं जाका भ्रम जाता जानिये, ताहीका कथन इहाँ कहा है। तातैं जे धर्मात्मा निकटभव्य शान्तिस्वभावी हैं तेतौ पापफल नरकादि दुःख जानि पापमार्ग तैं उदास होय, पापकूं तजैं। धर्मका फल स्वर्गादिक परंपराय मोक्षका सुखदाता जानि, धर्मको सेवैं तो याका चित्त जिनदेवकी आज्ञारूप होय प्रवर्तै। अरु जिन आज्ञाकी प्रतीत भये जीव-अजीव तत्वका निर्णय होय, जाकरि सम्यकदृष्टि होय। ता सम्यक्तवके होतें इस धर्मार्थीका भरम भी नाश होय जाय है। जे धर्मार्थी नहीं हैं ते पापबुद्धि तैं उदास होते नांहीं। धर्मके फलकी इच्छा नाहीं। ऐसे भ्रम बुद्धिका भ्रम कैसे जावे और ऐसे भ्रमबुद्धि अनेक धर्मके अंगनकी सेवा करैं, नाना प्रकार तप करैं। ये अनेक शास्त्र पढ़ैं होंय और भली-भली चर्चा धर्मकथा आदि होय तौ भी भ्रमबुद्धि कूं धर्मका लाभ नहीं होय। वह मोक्षमार्गका भूल्या, उलटेपंथका जानेहारा, मोक्ष स्थान नहीं पावे। ज्यौं-ज्यौं ए भ्रमबुद्धि घने-तपकरै, घने २ शास्त्रोंका पाठ करै त्यौं २ मोक्षमार्गते घना २ अंतर होता जाय। जैसे कोई द्वीपांतरका जानेहारा पंथी; राह भूल, उलटी राह लागा। ताको जाना तौ था पूर्व दिशाको, अरु मार्ग लागा पश्चिम दिशाको। सो यह मार्ग भूल्या, जेता-जेता रोज चलै है त्यौं-त्यौं पूर्व दिशा तैं दूर-दूर होता जाय है। तैसे ही यह भ्रमबुद्धि ऐसा जानै है जो मैं भले पंथ लागा हूं। ऐसा जानि यह स्वेछाचारी, काहूका उपदेश मानता नांहीं; तातैं इस धर्म भावना रहित कों जिन आज्ञाका उपदेश गुणकारी नांहीं। इस वास्ते याके भ्रम जानेकी नहीं कहैं। ऐसे तेरे प्रश्नका उत्तर जानना ॥ जो धर्मार्थीका भ्रम जाय और धर्मभावनारहित मिथ्यात्वप्राणीका भ्रम नांही जाय है। जातैं धर्मार्थीका भ्रम जाय ताके निमित्त जो धर्म धुरंधर, धर्मके धारी, परंपराय सांचे धर्मका प्रकाश वांछन हारे, मिथ्यात्वगिरिकौं वज्र समानि ऐसे सुदृष्टि आचार्य कहे हैं—कैसे हैं आचार्य, जिनेन्द्रदेवकी आज्ञाप्रमाण धर्मप्रवृत्तिके करनहारे, भेदज्ञानी, सम्यकदृष्टि, जिनमतके दास, अनेकांत मतके

समझनेहारे, अनेक नयके ज्ञाता, स्याद्वादी, तत्वनका स्वरूप कहैं हैं। हे एकान्त मतके धारी सुबुद्धि पंडित
हौ! तुमतें मैं परमार्थके निमित्त 'जिन' का भाष्या अनेकांत धर्म, ताको रहसि लेय कहूं हूं। जो हे एकान्त तर०
मतके धारी तूं ऐसा मानै है, कि सर्व संसारी जीवनके अनेक शरीर हैं। तिन अनेक शरीरमें तू एकान्त
आद्य० आत्मा मानै है। तू जो ऐसे कहै है कि एक परमात्मा है ताकी ही शक्ति सर्व जगत विषैं घट-घट, जल-थल,
॥५२॥ कंकरी-पथरी, पवन-पानी, आदि सर्वव्यापिनी हैं। ऐसा भ्रम तेरे पाईये है। सो हे भव्यात्मा, तू अब भले
प्रकार विचार देखि। जो परमात्मा तौ निर्दोष-निर्मल है और सर्व संसारी जीव राग, द्वेष, क्रोध, मान,
माया, लोभ रूप मलदोष सहित महमलीन हैं। सो हे सुबुद्धि निर्मल परमात्माकी शक्ति मलीन, दोष सहित
कैसे होय? और परमात्मा है सो तो महासुखी है। संसारी, सर्व ही राग, द्वेष, जन्म, मरण, क्षुधा, तृषा, वायु,
पित्त, ज्वर, कुष्टादिक दुःख तिन करि रहित, सुखका समूह है। संसारी जीव सर्व ही हैं सो इष्टवियोग अनिष्ट
संयोगके दुःख, तनदुःख, मनदुःख, धनदुःख इत्यादिक अनेक दुःखसागर विषैं डूब रहै हैं सो भी हे भव्य, तू
विचारि। जो महासुखी रोगरहित परमात्माकी शक्ति, दुःखमई कैसे संभवे? परमात्मा तौ सुखी, अवनाशी,
निर्दोष जन्म-मरण रहित है तातैं परमात्माकी शक्ति होती तौ सर्व जीव भी निरोग, निर्दोष और महासुखी
होते। सर्व अविनाशी होते, निर्मल होते, जन्ममरण रहित होते। जैसे अग्नि आप तापमई है तौ ताकी प्रभा
जो शक्ति, सो भी तापमई है। तथा जैसे दीपक आप प्रकाशरूप है तो ताकी प्रभा भी प्रकाशमई है। तातें
जैसे वस्तु होय तैसी ही ताकी शक्ति होइ। सो तो परमात्माकी शक्ति संसारी जीवनिविषैं एक भी नहीं
दीखती है। हे भाई तू देखि जो सर्व जीवनि विषैं परमात्माकी एक सत्ता तौ एक जीवकौं सुख होते सर्व ही
जीव सुखी होते और एक दुखी होता तो सर्व जीव दुखी होते। एक जीवका नाश होते सर्वका नाश होता।
जो हे भाई सर्वकी एक सत्ता होती तौ एक जीवकी जो अवस्था होती सो सर्वकी अवस्था होती। जैसे एक
सूर्यकी सत्तामई अनेक किरण अनेक घट-पट व पृथ्वीकों प्रकाशमान किये हैं। सो सूर्य और सूर्यकी किरणें ॥५२॥
तिन दोऊनकी एक सत्ता है। सो उस सूर्यसत्ताका प्रकाश पृथ्वीविषैं जेते घट-पट कंकर-पत्थर जल-थल

पवन-पानी भली-बुरी वस्तु इत्यादिक सर्व प्रदार्थनको जाय प्रकाशमान किये है—सर्वको प्रकाशै है। सर्व मैं रविप्रभा एक सी दीखे है। परन्तु जब सूर्य अस्त होय, तब ताके संग ही ताकी शक्ति रूप जो किरण सो भी अस्त होय। क्योंकि इनकी सत्ता एक है। तातैं सूर्य अस्त होतें किरण भी अस्त भई। अरु किरण अस्त होते सर्व पृथ्वी विषैं अन्धकार होय है। तैसे ही सर्व जीवनिकी सत्ता एक होती तौ सुख-दुख एकै काल एकसा सर्व जीवनिकूं होता। सो संसार विषैं तो कोई जीव सुखी है कोई जीव दुःखी है। कोई रंक है कोई राजा है। कोई रोगी है कोई निरोगी है। कोई दुःख तैं रुदन करै है कोई सुख तैं प्रफुल्लित है कोई कैसा दीखे। काहूके गर्भी है। कोई जीव मरि अन्य गति गया है। कोई आय उत्पन्न भया है। ऐसे सांसारीक दशा भिन्न-भिन्न देखिये है। तातैं हे एकान्तमतके धारण हारे भव्य तूं भले प्रकार विचार। जो एक सत्ता सर्व जीवनिकी कैसे सम्भवै ? और सुनि—जो परमात्मा सब जगत विषैं व्यापक होय शुभाशुभ कर्म जीवन पै करावता तौ परमात्माके पुण्य-पापका बन्ध होता। तुम कहोगे परमात्माके कर्मका बन्ध होता नहीं। तौ ए पाप-पुण्यका बन्ध कौनके भया ? तुम कहोगे काहूको भी नहीं भया तौ पाप-पुण्यका भल वृथा हो गया। अर पाप-पुण्यका फल वृथा भये पापी जीव तौ पाप बधावेंगे-तजैंगे नांही। कहेंगे पापका फल तो कोईको होता नांहीं। अरु कोई पुण्य उपजावनेको नाना दान पूजा तप संयम काहेको करेगा ? क्योंकि पुण्यका फल तो होता नांही। तातैं ऐसे श्रद्धानतें तौ पृथ्वीमें पाप बहुत फैलि जाय। शास्त्र उपदेश देहरे (मन्दिर) बना-बना तप संजम तीर्थ करना इत्यादिक धर्मके अङ्ग हैं सो ए सर्व मिट जायें। सो या वचन कहने विषैं प्रत्यक्षमें बड़ी विपरीतिता प्रगट होय और जे पापाचारी विषयाभिलापीते ऐसा कहेंगे जो हमारी शक्ति पाप करनेकी नाहीं जो कुछ करै है सो परमात्मा करै है। तो पापकी वृद्धि होयगी। जो तुम कहोगे कि ए पाप-पुण्यका फल संसारी जीवनको ही होय है तौ तुम्हारे परमात्माकी एक सत्ताका क्या माहात्म्य रहा ? तातें हे भाई तूं ऐसा भ्रम तजिकै ऐसा दृढ़ करि कि जो जीव पुण्य-पाप करै ताका फल ते ही जीव सुख-दुःख स्वर्ग नरकादिक भोगवैं हैं। ऐसा श्रद्धान होतें यह जीव पापका फल महादुःख जानि पाप तजै और जे जीव दान

पूजा बड़े-बड़े दुद्धर तप संयम इन आदिक शुभ कर्म करैं सो ही जीव स्वर्गादिक विषैं नाना प्रकार इन्द्रिय-जन्य सुख भोगवैं हैं। तातें भो-भो धर्माभिलाषी तूं ऐसा समझि 'जो करै सो पावै।'

अरु कोई भ्रमबुद्धि कहै सो हमको पाप कर्मका बंध होता नांहीं। सो इस अज्ञान आत्माने अपनी दृष्टि ससा, (खरगोश) की सी करलई है। जैसे ससा कान तैं अपने नेत्र मूंद संतोषी भया, तो क्या भया ? जब यह खेटकी (शिकारी) नहीं मारै तब ही सुखी होय। जैसे कोई एक शिकारी एक ससाके मारिवेको बनमें गया सो ससा भागा। ताके पीछे शिकारी लागा। सो ससाके बूते भागा नहीं गया तब अपने कानन तैं नेत्र मूंद करि बैठ रहा। याने जानी शिकारी गया, मोकूं अब यहाँ कोई दीखता नहीं। ऐसा विचारि सुखी भया, तौ क्या भया। पीछे तें आय शिकारीने ससाके शस्त्र मार्या। सो ससा अपनी मूर्खताके जोग मर्या। तैसे ही यह एकान्तमती भोरा जीव ऐसा विचारै है जो ए पाप मोकों नहीं लागै है, ऐसा जानि राजी होय पापभार लेह नरकादिक दुःखको प्राप्त भया चाहै है। सो पापाचारी, परायेधन हरणहारे, पराये मान हरनहारे, अपनी महत्वता बताय औरन कूं छलि अपने उपायन त ताका मान खंड करि, अपने महत्व भावका किंचित चमत्कार औरन कूं बताय कै, अपनी बुद्धिकी चतुरता करि माया जो दगाबाजी ताको विचारि, भोरे जीव-नका मान हरि, धन हरि, बहकाय, कुपंथ लगाय, आपको धर्मी जानि ऐसा मानते भये जो हमको पाप नहीं लागै। ऐसे विचारि पापबंध करि परभव कुगतिके पात्र भये। तातें भो भव्य, तूं ऐसा जानि। ज्यौं संसार विषैं जीव अनन्त है तिनकी सत्ता भी भिन्न-भिन्न अनन्त है, ऐसा तू जानि। पापात्मा पाप तौ आप करै और फल औरनको लगावै। तथा पाप लागै ही नांहीं ऐसा मानै। ऐसे जीव हैं तिनका मनोरथ ऐसा है जो पाप नहीं तजिये। ऐसे दुरात्मा पापारम्भीको कुगतिगामीं जानहु। जे धर्मी हैं ते पुण्य-पापका फल आपको लागता जानि, पापतें भयखाय, पाप तजि, शुभ उपजावे हैं। तातें भो भव्य; जो ऐसे नहीं होती तौ बड़े-बड़े पंडित पुरुष; दान, पूजा, तप, संजम, तीर्थ काहेकों करते। तातें हे भव्य, तूं ऐसा जानि, जो करै है सो ही पावै है। जगतमें भी ऐसा ही सर्वजन कहैं है "जो करैगा सो भोगैगा।" तातें जाका किया कर्म ताही कूं

लागै है। अरु जब ये आत्मा पाप-पुण्य तैं रहित होय है तब परमात्मा होय है। ताहीकौं परब्रह्म कहिये ताहीकों भगवान कहिये। ऐसा दृढ़ जानि दयाभाव सहित प्रवर्तन योग्य है। जगत जीव अनन्त हैं तिनकी सत्ता जुदी-जुदी है। अपने परिणामनके फल करि सुखी-दुखी होय हैं और जाके आप्त आगम पदार्थन विषैं सर्व जीवनिकी एकही सत्ता मानैं हैं सो असत्य है, तजने योग्य है। ऐसे सर्व जगतविषैं एक सत्ता सर्व जीवनकी माननहारे ताकों समझाय, अतत्व श्रद्धान मिटाय, जिनभाषित तत्वका श्रद्धान कराया। सत्यधर्मके सन्मुख किया।

इति सर्व जीवनिकी एक सत्ता माननेहारे एकांतवादीका भ्रम निवारण सम्पूर्ण ॥ १ ॥

आगे क्षणिकमतीका संवोधन कहिये है—केई क्षणिकमतवारे आत्माको क्षणभंगुर समय-समय एक शरीर विषैं अनेक आत्मा क्षण—क्षण और २ उपजते मानैं हैं। ताकों समझाइये है। भो भव्यात्मा क्षणिकवादी मतके धरनहारे तू आत्माको क्षणिकस्थाई मानै है। एक शरीर विषैं क्षण—क्षण और २ आत्मा आवते मानै है सो हमको यह बड़ा आश्चर्य है। तुम सरीखे बुद्धिवान ऐसे भूलो तो भोरे जीवनकों कहा कहिये? हे विचक्षण तू ही विचार। वर्ष-दो वर्ष पहलेकी कोई दस-पांच बात तोकों याद हैं या नाहीं? तथा पहर दोय पहरकी कोई वात तोकों याद है कि नाहीं? जो तोकों याद होय तो तूही विचार कि आत्मा क्षणभंगुर नाहीं। तथा एक-दो बर्ष पहिले तूने काहूकों दस-पांच हजार रुपया कर्ज दिये थे। सो तोकों याद है कि नाहीं। तूने ताके पास तैं खत मंडाया था तापै दस-पॉच भले मनुष्योंकी गवाह कराई थी। सो तोकों यह बात याद है कि नाहीं? तू कहैगा यादि है। तो तेरे मतके आप्त आगम पदार्थ झूठे होंयगे। जो तू कहेगा कि मेरे आप्त आगम पदार्थ झूठे नाहीं सत्य हैं आत्मा क्षणभंगुर है। तो तेरे खत-पत्र दोय वर्ष पहिलेके हैं सो झूठे होय हैं। तोकूं कर्जके दाम नाहीं मिलेंगे। क्योंकि आत्मा तो क्षणभंगुर है। सो एक शरीरमें क्षण-क्षण और-और आवै है। सो कर्ज देनेवाला कोई रह्या नाहीं। आत्मा नवीन आया। सो लेन-देनकी तिन्हें ठीक नहीं। तेरे रुपया गये। अरु गवाह वारे भी सर्व क्षणभंगुर सो भी गये। उनके तन

विषैं अन्य २ आत्मा आया सो उनकी गवाह भी ठीक नाहीं। तातैं गवाह भी झूठी भई। खत मांड्या था सो भी झूठा भया। रुपया गये। और तू कहैगा रुपया कैसे जांयगे ? भले आदमिनकी तौ गवाह है। अरु मोकों भी भलेप्रकार मितीबार याद है। और इनके दोय हजार आये हैं सो मैंने जमा किये हैं। सो मोकों याद है। मेरे कर्जमें सन्देह नाहीं। यामैं सन्देह कहा है? तो हे भाई तेरे मतकी तूही विचार देख तेरा मत तेरे ही श्रद्धान करि झूठा भया तो और विवेकी परभवके सुख निमित्त, तेरा क्षणभंगुर मत कैसे अङ्गीकार करैगा ? अरु एक और भी सुन। हे भाई तेरा क्षणिकमत कोई हमारे ही आगम करि नाहीं निषेध किया किन्तु और भी संसार विषैं जेते तुच्छबुद्धि बालगोपाल हैं तिनकर भी निषेधिये है। देखि, तू किसी बालकसे कहै कि हे पुत्र तोकूं कोई दस-बीस दिनकी बात यादि है। तौ बालक भी कहै मोकों तौ महीना दो महीना की केई बात यादि हैं। तब बालक कौं कहिए। भाई आत्मा तौ क्षणभंगुर है सो शरीरमें क्षिन्न-क्षिन्नमें आवै है तौ तोकों पहिलेकी बात कहांसे यादि होयगी ? तौ बालक भी कहै या बात झूठ है। मोकूं कहौ तो दस-बीस बात पॉच-चार महीनाकी बताऊॅ तो हमको सांचे कहौ। जो कोई आत्मा क्षणभंगुर बतावै है सो झूठ है। बालक भी ऐसा कहै है। सो हे भाई तूं सुनि। देखि बालक अज्ञानी भोरा है वह भी तेरा क्षणिक मत झूठा कहै है। तौ विवेकी कैसे सत्य मान सरधान करै ? और सुन कोई भोरा अज्ञानी पशुओंका चरावनहारा गुवाल कोई क्षणिकमतीके ढोर चरावै था सो ढोरके धनी पास जाय कही। तुमारे ढोर चरावतैं चारि महीना भये, सो अब मेरी चढ़ी गुवाली देऊ। तब ताकूं ता क्षणिकमतीने कही। हे गुवाल, आत्मा तो क्षिनभंगुर है, शरीर में आत्मा छिन-छिन और आवै है। सो दोय महीना पहले कौन आत्मा था, तानैं गुवाली देनी कही थी सो आत्मा अब नाहीं अरु गुवाल भी वह नाहीं। तब ऐसी सुनिकैं गुवालने कही। भो सेठ ऐसे बड़े आदमी होयकें ऐसी महाझूठी-वृथा बात काहेकों कहौ हो। अब तांई शरीरविषैं आत्मा छिन-छिन उपजते मरते सुने नांही। कोई हजारौं बात तौ बीस-बीस बरसकी देखी मोकों यादि है। केई बात हमारे बड़ोंके मुख तैं सुनी थी सो सौ-सौ बरसकी सो भी केतीक यादि हैं। परन्तु ऐसी तुमारी सी झूठ अब तांई

नहीं सुनी। मेरी गुवाली देवो। तब या सेठने नहीं दई। तब गुवालने अपने मनमें विचारि मतौ (सलाह) करिकैं वाकै ढोर अपने घर बांधि राखे। दोय दिन भये जब ढोर नाही आए। तब गुवाल कौं बुलाय सेठने कही। रे गुवाल, दोय दिन भये सो हमारी भैंसि-गईयां नहीं आई सो क्यों ? तब या गुवालने कही। सेठ साहिब, गैया तौ कैसी, अरु भैंसि कैसी ? मोकों कछू ठीक नांही। आत्मा, शरीरमें छिन-छिन और आवै है सो अगले तो गये और मैं तो अब आया हौं। सो मोकों किसीके ढोरनकी ठीक खबर नाहीं। तब या सेठने कही। रे गँवार, हमतैं चौट्टाई (धूर्तता) करि झूठ बोलै है। तब या सेठने कुतवाल कूं कहि, गुवाल कूं रुकाया। तब गुवालने कही मोकों काहेकों रोक्या है। तब कुतवालने कही, सेठके ढोर ल्याव। तब गुवालने कही, मेरो न्याय करौ। तब कुतवालने कही, न्याय काहेका है। गुवालने कही, सेठ कूं पूछौ। तब कुतवालने सेठ कूं बुलवाया। अरु कही, गुवाल कूं क्यों रुकाया है। तब सेठने कही, आजि दोय बरसतें हमारे ढोर चरावे है। सो अब दोय दिनतें, ढोर चुराय राखे हैं। तब कुतवालकूं गुवालने कही। भो कुतवाल, याके मत विषैं एक शरीरमें आत्मा छिन-छिन और-और आवता मानै है। मैंने यापै गुवाली माँगी, तब याने कही गुवाली काहे की। वह आत्मा लैने-दैने वाला नांही। तब मैंने याके ढोर बांधि राखे यह सेठ अपना मत झूठा कहि मेरी ग्वाली मोकूं देय अपने ढोर लेवे। तब कुतवालने हजारोंही आदमीन में सेठको झूठा कह्या। गुवालकी गुवाली दिवाई, ढोर धनीको दिवाये। सो हे भ्रात, क्षणिकवाद मत धरनहारे, तेरे मतकौं गँवार अज्ञान ढोरनका चरावनहारा गुवाल भी झूठा कहै है। सो तूं देखि, यह बाल-गोपाल संसारमें सबतें हीन अज्ञानी हैं, सो भी तेरा मति असत्य कहैं हैं। तौ भो भ्रात क्षणिक मतवारे, जो विवेकी होंय, सो कैसे सत्य कहैं ! तातैं जाके मत विषैं आत्मा क्षणभंगुर कह्या होय ताके आप्त, आगम, पदारथ असत्य हैं। ऐसे याका क्षणिकमत प्रत्यक्ष असत्य बताय स्याद्वादमतके सनमुख किया।

इति क्षणिक मती सम्बोधन। आगे कर्त्ता वादीकों सम्बोधनका संवाद लिखिये है—

केई मतवारे, नवीन आत्मा उपजावनहारा मानैं हैं। ऐसा कहैं है जो कोई नवीन आत्मा बनाय-बनाय पृथिवी

पै धरता जाय है, ऐसा कोई एक भगवान है। याही भगवानकी जब इच्छा होय तब आत्माकों हरै है। जो उपजावै हैं सो ही मारै है। जो ऐसा कहै हैं ताकौं कहिये है। हे भाई, आत्मा कोईका बनाया बनता व उपजाया उपजता, तौ लौकीकमें संतानकी उत्पत्तिके निमित्त बिवाहादि काहे कौं करते। जो कोई पुरुष नवीन आत्मा बनावै था ताहीका सेवा करते। जब वह आत्माका पैदा करनहारा राजी होता, तब सौ-पचास तथा लाख-दो लाख क्षोहणी बंध आत्मा कर देता। जैसी जाकी सेवा देखता, तैसे आत्मा बनाय देता। तौ लोक, चाकर-फौज काहें कौं राखते। अरु विवाहादिक करिकै कुटुम्बादिककी बृद्धि काहे कौं करते। सो ऐसी प्रवृत्ति अनादिकाल तैं कोई सुनी नांही कि कोऊने कोई कैं दसवीस आत्मा बनाय दए। अरु अब कोई बनावनेबारा नाहीं कि वह फलाना तथा कोई देव-दानव नवीन जीव बनावै हैं। कदाचित् तेरे ऐसा ही हठ होय जो, कोई जीवका करता है तौ हम तोकौं पूछैं हैं। कि उस करताने जब पहले कोई ही जीव नहीं बनाये थे। तब संसार-सृष्टि थी या नाहीं। या वह कर्त्ता अकेला ही था। और कहो कि उस करताने पहले कौनसा जीव बनाया था, ताके पीछे कौनसा बनाया। जब नई वस्तु बनाइए है सोई काहूकी नकल बनाइए है। सो प्रथम कोई वस्तु होय तौ बनावै। जैसे कोई सिंहका आकार बनावै है। तौ प्रथम कोऊ सिंह होय तो ताकौ देखि, ताकी नकलका सिंह बनावै है। बिना नकल नवीन वस्तु होती नांहीं। सो करताने जीव किया, सो कौनकी नकल बनाया। और आत्मा, बनाया होय है तौ वह परब्रह्म- आत्मा कूं किसने बनाया। करताका करता बताओ। और तुम कहोगे जो सृष्टि तौ अनादिकी है और करता भी अनादिका है। तो हे भाई, जहाँ अनादि सृष्टि होय, तहाँ नवीन कर्ताका अभाव आया। संसार स्वयंसिद्ध अनादि-निधन है अनादिकालका है। अरु तुम स्वयंसिद्ध आत्माकौं मानते नांहीं। आत्मा नया होता- उपजता मानौ हौ। सो कै तौ कोई करता बताओ जाने श्रृष्टि करी है, तथा सृष्टि जब इस करता ने नहीं बनाई थी तब कछू था कै नांहीं था। अरु तुम कहोगे पहले कछू नहीं था, करता ने बनाई तब भई है, तौ पहले शून्यता आवैगी। जो कर्ता बिना भी संसार रह्या था तौ ऐसे कहने में तुमारे कर्ताका अभाव हो गया। तातैं भो विवेकी, तुम एक बचनकी ठीकता करके

कहो। तव करतावादीने विचारी। जो करता कहैं, तौ संसारका अरु करता इन दोऊका ही अन्त आवे। तव करतावादी वोल्या जो करता भी अनादि अरु सृष्टि भी अनादि है। तव स्याद्वादीने कही जो सृष्टि अनादि है तौ करताकी महंतता कहाँरही। करता कहना शब्द वृथा भया। अरु हे भ्रात, और भी देखो। जो तुम कहौ हौ कि करता प्रथम तो वनावे है अरु पीछे करताही चाहे तव मारे है। तौ या विषै कुछ गंभीरता नाहीं। जो प्रथम तो वनावे पीछे वाकों आपही विगाड़ै तो वालक किसी लीला भई। जैसे प्रथम तौ नाना प्रकार रचना, खेल में वनावे, पीछे विगाड़े। तातें भो भवि, प्रथम तो वनावे पीछे विगाड़ै, ताको वालक समानि कौतुकी अज्ञानी जानना तथा संसारमें कोई एक जीव मारे, ताकों दोष लगावें हैं। सो कोई अनंते जीव मारे, तो ताकौं तौ वड़ाही दोष होय। तथा जाकौं आप पैदा करे, सो पुत्र समानि है, अरु ताहीं कूं मारे तो पुत्र मारे सा दोष लागे। तातैं करता कौं हरतापना संभवे नाहीं। अरु तुम कहोगे करता हरै, ताकों दोष नांहीं। सो तुम देखो कोइको मारे हैं तव प्रथम तो क्रोध-अग्नि उपजे है तव अन्य (दूसरे) का घात करे है। विना कषाय परकी घात होती नांही। तातें जाके कषाय होय सो संसारी, तनका धारी जगत जीव जानना। ता विषै नवीन जीव उपजावनेकी शक्ति होती नाहीं। तातें हे भाई, घनो (बहुत) कहां ताई कहिए। अनेक नयोंसे करतापनेका वचन खंडित होय है। तातें भो धर्मार्थी, ऐसा सरधान तजनाही योग्य है। अव तूं देखि, जो यह संसार अनादि-निधन है, कोईका किया नाहीं। इस संसार विषैं अनंते जीव हैं। सो भी अनादि निधन हैं, काहूके किये नांहीं। अनंते जीव द्रव्य, अपनी-अपनी भिन्न-भिन्न सत्ताकों लिए अपने अपने गुण-पर्याय सहित अनादिकालसे चार गतिनि विषैं, सुख-दुखकों भोगवे हैं। जैसी-जैसी अपनी-अपनी परणति उसके अनुसार पुण्य-पापके फलको भोगता, पुण्य-पाप उपार्जता, जगतमें भ्रमण करे हैं। ताहीका फल सुरग नरकादिकके सुख-दुख कौं पावे है। अरु जव यह आत्मा पुण्य-पापके उपजावने रहित होय है। तव वीतराग दशाकों धारेगा। तव ही सर्व कर्म नासिके, परमात्मा-सिद्ध पद कौं धारेगा। तव यह सिद्ध भगवान, ज्योति-स्वरूप, स्वयंसिद्ध, जगतनाथ काहूका करता होता नांही। अरु जेते करता-हरता हैं, तेते भगवान नांही। और

सिद्ध भये, करता नाहीं। तातैं जो नवीन आत्मा कोई उपजावे है ऐसा सरधान जाकै मतमैं होय, ताकै आप्त आगम, पदारथ असत्य हैं। ऐसैं नवीन जीवका करता कोई है ऐसा मानै था सो ताका सरधान मिटाया शुद्ध सरधान कराया। आत्मा स्वयंसिद्ध है काहूका किया होता नाहीं ऐसा दृढ़ कराय, जिन भाषत सरधान कराया। इति करतावादीको समझाय शुद्ध कीया।

आगे कोई नास्तिकमतनिका संवाद लिखिये हैं। केई मत वारे जीवकों नास्ति ही मानैं हैं। ऐसा कहै हैं जो, जीव वस्तु है ही नाहीं। वह जीवका अभाव मानैं हैं। ते नास्तिमती यह भी कहैं हैं। जो जीव होय तो दया करिए। तातैं जीव नांही, जीवके अभावतैं दयाका भी अभाव है। अरु दयाके अभाव तैं पुन्य-पापका भी अभाव है। जो जीवही नाहीं, तो पुन्य-पापका फल कौन भोगवै? तातैं पुन्य पाप भी नांहीं और पुन्य-पापके अभाव तैं परलोकका भी अभाव है। जो परलोकही, नाहीं, तो पुन्य-पापका फल स्वर्ग-नर्कादिककी गति कहाँ तैं होय। तातैं जीव नांहीं पुन्य-पाप नाहीं नरक-सुरगादिक गति भी नांहीं। संसार भी नांहीं। ऐसा नास्तिमतीका मत है। सो ता नास्तिमती तैं कहिये है सो कौन है। और यह तूं ऐसे ज्ञानका जानने हारा कौन है। जाके ऐसा ज्ञान तैं विचार होय है। सो तूं इसे निश्चय आत्मा जानि। आत्मा बिना, संदेह काहूके होता नांही। आत्मा ही कैं विकल्प उपजैं हैं। ऐसा तूं सत्य करि जानि। यह शरीर है सो तो जड़ है, मूरतीक है। याविषैं देखने-जाननेकी शक्ति नांहीं। या तनकै विकलप होता नांहीं। तातैं यह पूछने हारा, सन्देह करनेहारा, हठका करनहारा, खाटे-मीठेका स्वाद जानने-हारा, अच्छी-बुरी धारि रागदोष करनेहारा, क्रोध मान माया लोभका करनेहारा कोई है। ताही कूं तूं आत्मा जानि और लौकीक विषैं भी जीव ऐसा कहैं हैं, जो फलानां मूवा है, सो फलानी जगह भूत भया है। तथा केई कहै हैं जो हमारा फलाना बड़ा बुड्ढा, आगे मूवा था सो अब आय, हमारे पास पूजा माँगै है। तथा केतेक लोक ऐसा कहै हैं, जो फलाना भूत भया था सो आज फलाने कौं लागा है। ऐसी जगतविषैं प्रसिद्धि सब कोई कहै हैं। हे नास्तिमती, अवार तोकूं भी कहिये। जो मसान भूमि विषैं तुम रात्रि कौं रहौ, तौ तू

भी या कहै कै जो मसांन विषैं बहुत भूत-प्रेत हैं। हम ऐसी भयानीक जगह मैं नहीं जांय, ऐसा तूभी कहै और लोक भी या कहैं हैं। तातैं हे नास्तिमती भ्रात, तूं विचारि। जो कोई जीव है तभी तो भूत भया है और कोई परलोक है तभी तौ व्यंतर देव भया है। तातैं हे नास्ति बुद्धी, तूं ऐसा जानि कि जीव है, अरु परलोक भी है और पापके फलतैं जीव नरक-पशुके दुख पावै है। मनुष्य ही होय तो अंधा, लूला, बहरा, दरिद्री, अभिमानी, रोगी, दीन, वस्त्र रहित होय पुन्यके फल तैं देव होय अरु मनुष्य होय तो सर्व दुख रहित सुखी होय। तातैं विवेकी हैं सो पाप नहीं करैं हैं। बड़े बुधिवान शुभकार्य करैं हैं। एक अज्ञानी है सो भी कहै है। जो कोई हमारी दया लेयकैं हमारी आत्मा जो अन्नपट बिना दुखी है सो देय पोखै। हमारी दया करि रोटी वस्तर देय हमारी आत्मा पोख सुखी करै, ताकौं पुण्य होय। ऐसे रंक भी कहै है। तातैं हे भव्यात्मा, देखि। जीव भी है, जीव की दया भी है। पाप भी है, पापका फल नरकादि दुःख भी हैं। पुन्य भी है, पुन्यका फल स्वर्गादिक भी है। ऐसा जानिकैं अनेक मतनके धर्मात्मा हैं सो पापका निषेध करै हैं। अरु पुन्य करना उपादेय बतावैं हैं। पाप-पुन्य फलके स्थान, अनादि संसारीक देवादिक चारि गति रचना सहित षट्द्रव्यनि करि बनी जो जगत रचना, सो यह चारि गति रचना भी अनादि की है। तातैं हे नास्तिबुधी देख। संसार भी है, अरु सर्वमर्मनाश करनहारा भी है। सर्व दुख तैं रहित सुख समूह अतिन्द्रिय भोगका स्वादी अनंतबली ज्योतिस्वरूप परब्रह्म भगवानपदका धारी सदैव मोक्षरूप है, तातैं मोक्ष भी है। हे नास्तिकमती, तेरा नास्ति-मत सर्वमतन तैं खंड्या जाय है। तेरे नास्तिकमतका सरधान होतें-सर्वमत, देहरे (मंदिर) दान, पूजा, भगवानकी भक्ति, जप, संयम, शीलादिक, भले जगतके पूज्य गुण, तिन सर्वको अभाव होय। तातैं कोई मततैं मिलता नाहीं। सर्व मतनके शास्त्रनके अभिप्राय तैं, अरु लौकीक प्रवृत्तितै नास्ति मत झूठा भया। जो लोक मैं तौ दान-पूजादि गुण पूज्य दीखैं। तातैं नास्तिमत अनेक भाव विचारतैं असत्य हैं। तातैं जाके मत विषैं आत्मा नास्ति कह्या होय। ताके आप्त आगम, पदार्थ, अति हेय हैं। ऐसे नास्तिमतीका श्रद्धान मिटाय

स्याद्वाद मतके सनमुख किया ॥ इति नास्तिमती संवाद विजय कथन ॥ ४ ॥ आगे अवतारवादी एकान्तमतीका संवाद लिखिये है ॥

आगे कई इक अवतारवादी मोक्ष गये आत्माका पीछा अवतार मानैं हैं। ताकौं कहिये है। भो मोक्षजीवन कूं अवतार माननै-हारे भव्य आत्मा तू सुनि। चांवल जामैं निकसैं ऐसा धान ताकौ उगावै तौ उगै है। जब धानकौं कूटि, ताके छिलका दूरिकरि, शुद्ध चांवल भए पीछे उनको उनके ही भुसमैं धरि उगईए, तौ ऊगतौ नाहीं। तैसे ही इस संसारी अशुद्ध आत्माकौ कर्मरूपी छिलका लगा है, तेतेकाल तौ चारि गति शरीरन मैं उपजि, शुभाशुभ फलकौ भोगवता उपजै है। जब नाना प्रकार चारित्र सहित तपकरि अष्ट कर्म नाशतैं, कर्म रहित शुद्धात्मा होय सिद्धलोक विषैं विराजै हैं तब पीछे संसारीक शरीर कबहू नहीं धारै हैं। जे आत्मा अवतार धारैं हैं सो संसारी हैं। शुद्धात्मा नाहीं। शुद्ध है ताके अवतार नाहीं है। कोई कहै जो भगवान तौ शुद्ध ही है परन्तु जब कोई देव, दानव, राक्षस, भगवानकी प्रजाको पीड़ा करै है। तब वह ज्योतिस्वरूप परमात्मा भगवान. प्रजाकी रक्षा करवे कौं, राक्षसनिकै मारिवैकौं, अवतार लेय है इस भांति शुद्धात्मा अवतार नाहीं लेय है। ताकौं कहीए है। हे भाई, तैंने कही सो तेरे कहने करि और दोष प्रगट भया। तूनै कही जो भगवानकी प्रजाकौं राक्षस, देव, दानव, पीड़ा उपजावै हैं तिन राक्षसादि मारवेकौं अरु प्रजाकी रक्षा निमित्त भगवान अवतार लेय हैं। सो प्रजा तैं तो रागभाव आया और राक्षसादिक तैं द्वेष भाव आया। तातैं हे भाई, जाकैं राग-द्वेष होय, सो भगवान नाहीं। भगवानकैं रागद्वेष नाहीं। परकौं मारै सो क्रोधी होय है। सो क्रोधी जीव जगनिंदा पावै है। तातैं क्रोधी होय सो संसारी है, भगवान नांहीं। तातैं धर्मार्थी तूं ऐसा जानि जाकै काम, क्रोध, राग, द्वेष, मान, मत्सर, छल, जन्म, मरण होय सो भगवान नाहीं ऐसा जानना। देखि, गर्भवास मेटवेके निमित्त नाना प्रकार के दुर्धर तप कर बाईस परीषहनके महासंकट सहकैं वीतराग भावधरिकैं महा कठिनतैं कर्मनाशिकरि मोक्षभए तनबंदीखाने तैं छूटै। गरभवासके महादुखनतैं बचै। अब फेरि गर्भवासके विकट दुखनमैं कैसे जाय? कबहूं भी नहीं जाय। जैसे कोऊ भले आद-

मीकौं दोष लगाय कुतवालने पकरि कैं तहखानेमैं मूंधा। तहाँ मलमूत्र करना, तुच्छ अन्न जल देना, सो वह महामरण समानि दुख सहता व्याकुल भया। रोजके रोज नाना प्रकार दुख भोगना। औरनके दुर्वचन सहता। ऐसे महा दुख सदैव देखि व्याकुल होय इस भले आदमीने विचारी, वंदीखानेमैं दुःख भोगतैं दीर्घ-काल भया सो कैसे छूटिये ? तव याने कोई वीचवालेकी वड़ी स्तुतिकरी। अरु कही मैं इहां महादुखी हौं सौ यह कुतवाल माँगै सौ दैहों। मोकों छोड़ो, मैं महा दुखी हों। तव वीचिवारैने याकी दया करि कुतवाल कूं वड़ा धन देना कराय यह छुड़ाया। वांछित धनदेय वीचिवारैकी वड़ी स्तुति करि उपकार मानि छूटा। कठिन तैं अपनै घर आया। कुटुम्वी जनतैं मिल महा सुखी भया। अव कोई उस भले आदमी कौं फेरि कहै तुम इस कुतवालके तहखाने मैं चालौं, तौ वो कैसे आवे कवहूं नहीं आवे तैसे ही तन वंदीखाने तैं महादुख भोंगतैं कोई पुन्यते छूटनैका उपाय गुरुनिका निमित्त पाय जान्या। सो राज संपदा तजि चारित्र अंगीकार करि नाना तपकरि कर्म वंधनका क्षय करि सिद्धलोक कौं प्राप्तभये निरवंध महासुखी भये। सो अव जगत-पूज्यपद पाय वह केवल ज्ञानका धारी परमात्मा भगवान इस दुर्गन्ध स्थान सप्तधात मई गरभस्थान में कैसे आवै कवहूं भी नहीं आवे। तातैं भो भव्य; अव सुनि। जाके मनमें मोक्ष तैं पीछा अवतार होता होय ताके आप्त, आगम, पदारथ हेय हैं। इति अवतारवादीका संवाद कथन॥

आगे अज्ञानवादीका संवाद लिखिये है। अव केई मतवारे मोक्ष आत्माकौं ज्ञान रहित माने हैं। ऐसा कहैं हैं, जो आत्मा विषैं पर पदारथके जाननेका जेता ज्ञान है सो ही उपाधि है। जव परके जाननेके ज्ञानका अभाव होयगा तव मोक्ष होयगी। ऐसा मानै हैं। ताकौ कहिये है। भो मोक्ष आत्माको ज्ञानरहित माननेहारे तू आत्माकौं मोक्षविषैं ज्ञान रहित माने हैं। जो पर पदारथके जाननेका आत्म विषैं ज्ञान है। सो तो आत्माका स्वभाव है। ज्ञान स्वभावका नाश भए आत्माका अभाव होय है। जैसे गमनि विषैं तताई (गर्मी) का गुण है सो तहाँ तताईका अभाव भये अगनिका भी नाश होय। तथा दीपकका गुण प्रकाश है सो प्रकाशका नाश भये दीपकका भी अभाव होय। तातैं हे भव्य परपदारथके जाननेका ज्ञान है सो आत्माका स्व-

भाव है। सोई ज्ञानक अभावतैं आत्माका अभाव होय है। सो आत्मद्रव्यका अभाव कबहूं होता नाहीं। तातैं भो भव्यात्मा, तूं सुनि। आत्मा परपदारथ कौं जानै है। सो परपदारथके जाननें विषैं कछू दोष नाहीं। दोष तौ राग-द्वेष विषैं है। सो राग-द्वेषकरि परपदारथकौं देखना, सो आत्माकी अशुद्धता हैं। और भो अज्ञानवादी, तूं मोक्षभये पीछे, आत्माकौं ज्ञान रहित मानेगा तौ भगवानके सर्वज्ञपनेका अभाव होयगा। तब भगवानकूं अंतरयामीपनेका पद नहीं बनैगा और तब अंतरयामीपना नहीं भए भगवान कूं अज्ञानता आवेगी अज्ञानता आये अज्ञानीकौं जगतनाथपना नहीं संभवै है। तातैं हे अज्ञानवादी, सुख है सो परपदारथके जाननेका ही है। सो जानपना ज्ञानतैं होय है। तातैं ज्ञान बिना सुख नाहीं। सुख बिना दुखी रहै। सो मोक्षजीवकौं दुखीपना संभवता नाहीं। तातैं अनन्त सुखका धनी भगवान है। सो केवलज्ञान ही सुखका कारण जानना। सो तूं देखि, लौकीक विषैं भी जानैं थोरे पदारथ देखे-जाने होंय, ताकैं ज्ञान भी थोड़ा होतैं, सुख भी थोरा होय। विशेषज्ञानी कैं विशेष सुख होय है। जैसे कोई पुरुष अनेक देशनका फिरनहारा होय, अनेक राजसभाका बैठनेहारा होय अनेक मनुष्यन तैं बात करनहारा होय, अनेक तरहके नृत्य-गीतादिकका देखनेहारा होय, अनेकजातिके लौकीक चरित्र देखनेहारा होय, अनेक शास्त्रनिका देखने-जाननें हारा होय, ताकैं ज्ञान विशेष होय। जानें एते स्थान नहीं देखे, ताके ज्ञान भी अल्प होय। सो सुख हैं, सो ज्ञानके आश्रय हैं। सो जाके ज्ञान बहुत, सो बहुत सुखी और जाके अल्पज्ञान ताकैं सुख भी थोरा होय। तथा कोई स्थान विषैं नृत्यगीत अनेक कौतुक होंय हैं। सो जाकौ दीखता नाहीं ताकैं तिनका सुख भी नाहीं। जाकूं अल्प दीखै हैं तिनको अल्प सुख हैं। कोई पुरुष उतंग (ऊंचे) स्थान पै नजदीक बैठा, ताकौं सब दीखै है सो सबै सुखी है ऐसा जानना। तथा जैसे काहू सेठका मन्दिर है सो नाना प्रकारकी महिमाकौं लिए है। कहीं तो अनेक रत्न जड़ित शोभा है, कहीं अनेक प्रकार चित्राम है, कहीं मनोज्ञ महलन सहित बाग हैं। कहीं फुहारे अनेक छूटैं हैं। कहीं नृत्य गान होय है। कहीं अनेक प्रकारकी बिछायत बिछी हैं, कहीं महा सुन्दर नरनारी अनेक वादित्र बजाय क्रीड़ा करै हैं, इत्यादि अनेक शोभा सहित मन्दिर है। तहां केई परदेशी अनेक पुरुष, इस मन्दिरकी शोभा देखने कूं

गये। सो किसीने एक स्थान देख्या, किसीनैं दोय किसीनैं चारि किसीने दस और किसीने सर्व स्थान देखे। सो अब देखि, जानैं जैसा स्थान देख्या, याकैं जानपनेमें आया तैसा हीं सुख भया। जानैं सर्वस्थान देखे ताकैं सर्व सुख भया। तैसे ही यह तीन लोकमन्दिर में अनेक रचना पाइए है। तामैं अनंते जीव परदेशी तमाशगीर आए हैं। तिन जीवन कूं लोक विषैं जेता-जेता पर पदार्थनका जानिपना होय। ता जीवकों तैसा ही सुख होय है। श्रुतज्ञानके वंश भी अनेक हैं। सो कोई जीव श्रुतज्ञान थोरा पढ्या है, ताकैं सुख थोरा है। जो अङ्ग पूर्व विशेष पढ़े हैं तिनकैं बड़ा सुख है। अवधिज्ञानी अपने ज्ञानतैं लाखों योजन प्रमाण क्षेत्रकों अवधिज्ञानतैं जानैं, सो विशेष सुखी है। ये ज्ञान एक स्थान पै तिष्ठता दूरवर्ती पदारथन कौं जानैं, ताके सुख विशेष ही होय। मनः पर्ययज्ञानतैं परके मन-विकल्प जो होंय तिन सबन कौं जानै। ताकें और भी विशेष सुख होय। और इनतैं अनंतगुणा सर्व लोकालोकके घट-घटकी जानै सो केवलज्ञानी महासुखी हैं तातैं भो अज्ञानवादी तू ऐसा जानि। जो परपदार्थनके जाननेका ज्ञान है सो ही सुखका कारण है। परन्तु इतना विशेष है कि जो संसारी जीव परपदार्थन कौं जानैं हैं। सो तो रागद्वेष सहित जानैं हैं। ताकरि कर्मबंधका करता होय है। जे बीतरागी कर्मनाशक सर्वज्ञकेवली स्वपर पदार्थन :कूं जानै हैं सो राग-द्वेष रहित जानैं हैं। सो इन भगवानके रागद्वेष अभावतैं कर्मबंध नहीं होय है। तातैं परपदार्थनका ज्ञान रागद्वेष सहित तौ संसारका कारण है। सोतो आत्मा कूं दुखदाई है। रागद्वेष रहित परपदार्थनका जानपने रूप ज्ञान है सो सुखदाई है। तातें हे भ्रात अज्ञानवादी, तू ऐसा दृढ़ सरधान करि, कि जो ज्ञान है सो आत्माका गुण है। ज्ञान बिना जीव नाहीं। जीवविना ज्ञान नाहीं। ज्ञान अरु जीव इन विषैं गुणगुणीपना है। सो गुणीके नाशतैं गुणका नाश होय, गुणके नाशतैं गुणीका नाश होय। तातैं गुण गुणीका नाम भेद है, सत्ता भेद नाहीं। जैसे लवणमें अरु छारगुणमें नाम भेद है सत्ताभेद नाहीं लवण है सो तौ गुणी हैं अरु क्षारपणा लवणका गुण है। गुणहै सो गुणीके आश्रय है। ऐसे ही आत्मामें अरु जैसें सार गुण हैं सो लवणके आश्रय हैं। ज्ञानमें गुणगुणीपना जानना। आत्मा तौ गुणी है अरु ज्ञान गुण है। जाकरि गुणीकौं जानैं सो गुण कहिये

तैसे आत्माको ज्ञान कर जानिये है। ऐसे ही गुणगुणीमें एकता जानना। एकके अभाव तैं दोऊका अभाव
होय है जैसे सूरज तो गुणी है अरु जाकरि सूर्य जान्या जाय ऐसा प्रकाश सो सूर्यका गुण है। सूर्यके अभाव
होतै तेज-प्रकाशका अभाव होय। प्रकाशके अभाव तैं सूर्यका अभाव होय। तैसे ही आत्मा विषैं अरु ज्ञान
विषैं एकता जानि। नाम भेद है, प्रदेश सत्ता भेद नाहीं। तातैं भो सुबुद्धि, तूं आत्मा विषैं ज्ञानकों उपाधि
मति मानैं। ज्ञान है सो आत्माका गुण जानि। ज्ञानके अभाव तैं आत्माका अभाव होय, आत्माके अभावतैं
मोक्षका अभाव होय मोक्षके अभावतैं कर्मका बधाव होय कर्मके बँधावतैं जगतमें भ्रमाव होय और जगत
भ्रमावतैं दुखका वढ़ाव होय। तातैं भो भव्य, आत्मा तूं जगत तैं छूट्या चाहै अरु सुखकों भोगा चाहै है तौ आ-
त्माकौं मोक्ष विषैं केवल ज्ञान सहित जानि। जाके मत विषैं मोक्ष आत्मा ज्ञान रहित होय ताके आप्त, आगम,
पदार्थ असत्य हेय हैं। ऐसे अज्ञानवादी कौं समझाय शुद्ध श्रद्धान कराया ॥ इति अज्ञानवादीका कथन॥८॥ आगे
स्थिरवादीका संवाद लिखिये है। केई स्थिरवादी ऐसा मानैं हैं जो जैसा मरै, तैसा ही उपजै। जो देव मरे तो देव
ही होय, नारकी मरै तो नारकी उपजै, तिर्यंच मरै, तौ तिर्यंच ही उपजै। तामें भी जैसी जातिका पशु
मरै, सो ही जातिका पशु उपजै। हस्थी मरै तो हस्थी उपजै, घोटक (घोड़ा) मरै तो घोटक उपजै
इत्यादिक जिस जातिमें जैसा मरै सो ही उपजै, अपने स्थानको नहीं तजै। मनुष्य मरै तो मनुष्य उपजै,
तामें भी राव (राजा) मरै तौ राव उपजै, रंक मरै तो रंक उपजै, ऐसैं जो मरैं सो ही उपजै। याके मतका
यों रहस्य है। जो चार गति संसार तौ है। परन्तु जैसा मरैं तैसाही उपजै सो अपने मतके पोषनैंकों ऐसा
शब्द ताके ग्रन्थमें कहैं।

राज करंता जे मरैं, ते फिर राज करांय। मरैं भीख कण मांगते; ते नर भीख मगांय॥

ऐसे शब्द करि स्थिरवादीने अपना मत दृढ़कर रक्खा है ऐसे स्थिरवादी कौं कहिये है—भो भाई, तूं
सुनि। तेरा मत प्रत्यक्ष अनेक नयन करि खंड्या जाय है। तेरा मत कोई मत तैं नाहीं मिलै, तातैं असत्य
है। प्रत्यक्ष तूं देखि। जो तेरा मत प्रमाण होता तौ संसारमें मतान्तर भी नहीं होता, और कोई काहेकौं धर्म

सेवन करते ? जब जैसा मरै तैसा ही उपजे तौ धर्मके अंग कहा फल करेंगे तातैं देखि, अनेक मत वारे कोई तौ नाना तप करै हैं, जप करैं हैं, भगवानकी पूजा करैं हैं। इत्यादिक धर्म अंग सेवनि करि, ऐसा विचारैं हैं जो हमैं धर्मप्रशाद तैं कुगति नहीं होय तौ भलीहै। धर्म फलतैं देवादिक शुभगति होय है, ताके निमित्त केई धर्मात्मा तौ तीर्थ यात्रा करैं हैं तामैं अनेक धन खर्चनैतैं खेद सहे हैं। अनेक घर धन्धा तज, कुटुम्बादि तैं मोह तज दूर देशान्तर जांय हैं। केई परभव सुख कौं नाना तप करैं हैं केई परभव सुखकौं वांछित दान देय हैं, केई भगवानके मंदिर बनावैं हैं, केई धर्मफल कौं भगवानके नामका सुमरन करैं हैं केई राज, संपदा, कुटुम्ब, लोक, इन्द्रिय सुख, शरीरपैं ममत्व इत्यादि सुख छोड़ि दीक्षा धरि वन मैं ध्यान करि अपनैं पापनाश किया चाहैं हैं। इत्यादिक अनेक जीव अनेक मतनमें अनेक प्रकार धर्मका साधन करते देखिये है। तातैं भो भ्रात, तेरे मतका रहस्य लेय, तौ सर्व धर्मसेवनका अभाव होय। तातैं तेरा मत कोई मत मैं संभावता दीखता नाहीं, तातैं असति है। तूं देखि, जो सर्व संसार ऐसा कहै है, जो धर्म सेवन करैगा सो देव पद पावैगा, मनुष्य होयतो बड़े पुण्यका धारी राजपद पावेगा। सेठ पद पावेगा। जे पापाचारी दुर्बुद्धि पापका सेवन करेंगे ते पशु होयंगे। तहां भूख, तृषा, शीत उष्णादिक अनेक दुःख भोगैंगे तथा पापके करनहारे नरक विषैं नाना विधिके छेदन-भेदनादि दुःख पावैंगे। तथा लोक विषैं तथा शास्त्रन विषैं ऐसा कहैं हैं। फलाना धर्मात्मा धर्म प्रशाद तैं देव भया। फलाना पापाचार करि नरक गया। ऐसे-ऐसे व्याख्यान लौकिक विषैं प्रकट सुनिये है। अरु कदाचित ऐसो होती कि जो जैसा मरे तैसा ही उपजै तौ "पुण्य पापका फल जीव भोगवैगा" ऐसा नहीं कहते। तातैं भो भव्य आत्मा, यह चारगति संसार विषैं जीव अनन्त कालका अरहटकी नाई भ्रमण करै है। पापके फल तैं अधोगति विषै और पुन्य फल तैं उर्द्ध गति विषैं इत्यादिक जीव उपजै हैं। तातैं जाके मत विषैं पुण्य–पापका फल उथापि (नष्ट करि) जैसेका तैसाही उपजता मानैं ताके आप्त आगम, पद असत्य हैं। सो हेय हैं। तातैं भो भव्य धर्मार्थी, अशुभ कर्म किये दुःखस्थान विषै उपजै है और शुभ कर्म तै सुखस्थान विषैं उपजैं है। ऐसा धारणा करि मिथ्या श्रद्धान तजि। तो तेरा

भला होय ऐसे या स्थिरवादीका भरम गुमाय, जिन भाषित श्रद्धान कराया इति स्थिरवादीका संवाद कथन
॥७॥ आगें केई विपरीतमति अजीव तैं जीव उपजता मानैं हैं तिनकौं समझाइये है। केई भोले प्राणी ऐसा
कहैं हैं जो यह आकाश तैं जल बरसे है सो इन्द्र है। ताके भरम मिटावे कौं ताकौं कहिये हैं। हे भाई, मेघ
है सो तौ वरषा ऋतु विषैं ऋतुका कारण पाय "पुद्गल" है सो जलमई परणमि जाय है। सो पुद्गलनके
स्कन्ध वरषा ऋतुके कारणतैं जलरूप होंय, धारा सहित वरषैं हैं। सो यह जल अचेतन है जड़ है, चेतन
नाहीं। मूर्तिक पुद्गल है सम्बंध जलमयी भये पीछे अन्तर्मुहूर्त काल गये उस जलमें अपकायक एकेन्द्री थाव-
र नामकर्मके उदयतैं महापापके फल करि आय, एकेन्द्री जीव उपजै हैं। सो यह महा दुःखी हैं। ताकैं एक श-
रीर ही है। च्यारि इन्द्री नाहीं। पाप उदयतैं होय हैं इन्द्र है सो पंचेन्द्री है महा जप, संयम, ध्यान, पूजा,
दान आदि अनेक धर्मके फलतैं होय है। सो इन्द्र देवनिका नाथ बड़ी शक्तिका धारी है। अद्भुत बड़ी लक्ष्मी
का ईश्वर है। अनेक देवांगना सहित सुखका भोगनहारा है ऐसा इन्द्र पद बीतरागी, योगीश्वर समता रसके
स्वादी-षट् कायके पीहर (रक्षक) दीनदयाल, जगत गुरु, उत्कृष्ट दयाके फलतैं इन्द्र होय हैं। हीन पुनीनको
इंद्र पद होता नाहीं। तातैं इन्द्र है सो देव नाथ है और मेघ है सो पुद्गल स्कंधकी मिलापतैं ऋतुका कारण
पाय जल होय वरसै है तामैं पाप करनहारा महा जीवहिंसाका करनहारा जीव आय एकेन्द्रिय उपजै है। यहां
प्रश्न-जो इन्द्र नहीं तौ ऐसा निर्मल आकाश बिषैं अनेक प्रकारके बादल अरु दीरघ गरजनाके शब्द कौन
करै है? और तुम पुद्गल बन्ध कहौ हौ, सो पुद्गल अचेतनमें ऐसी शक्ति कैसैं संभवै। ताका समाधान
जो हे भाई, तैंने कही कि शब्दादिक की शक्ति इंद्र बिना कैसे बनै। सो हे सुबुद्धि पुद्गलकी शक्ति
बड़ी है देखि चिन्तामणि रत्न जड़ है तामैं मनवांछित देवे की शक्ति है पारस पाषाण जड़ हैं उसमें
लोहकौं कंचन करनेकी शक्ति हैं कल्पवृक्ष है सो जड़ है। तामैं वांछित फल देवेके शक्ति है
और और अनेक औषधि हैं सर्व जड़ हैं, तिनमैं अनेक रोग खोवनेकी शक्ति है और धतूरामें ऐसी
शक्ति है जो विवेकीका ज्ञान भंगिकरि नाशै है? इत्यादिक जड़ वस्तूनमें ए शक्ति है के नाहीं? और

देखि हल्दी पीत है साजी श्याम है तिन दोनोंकै मिलाये तैं लाली होय है। और देखो चकमक अरु लोह पाषाणकै मिलाप करि झाड़ वृक्ष दाह करनेकी शक्ति है कि नाहीं। ऐसी अगनि उपजैं है। इत्यादिक और भी अनेक शक्ति पुद्गल द्रव्य मैं है। तैसे ही मेघकी गर्जनाका शब्द भी तूं पुद्गल स्कंध मयी जानना। तातैं हे भाई या मेघ विषैं जीवत्वपना नाहीं, यह अचेतन-जड़ है तातैं तूं इस जड़ द्रव्य विषैं जीवतत्वभाव मत कल्पना करै। यह देवनिका नाथ इन्द्र नाहीं। तूं कहेगा कि इस मेघ कूं तो सब जगतमैं इन्द्र ही कहैं हैं सो हे भाई जे भोरे, सांचे शास्त्रज्ञान रहित जीव हैं तिनने याका नाम रूढ़ितै इन्द्र धर लिया है जैसे कोई भूखे पुरुषका नाम इन्द्रदत्त धर लिया होय। सो इन्द्रदत्त तो ताकों कहिये जो औरनकों इन्द्र पद देय, यह तो भूखा-दीन है। सो याका नाम रूढ़िक नयते इंद्रही कहिये है। तैसे ही आकाश विषैं बिना सहाय जल बरसता देखि गरज-शब्द होता देखि भोरे प्राणी देवत्वभावकी कल्पना करि इन्द्र नाम कहैं। बाकी (वास्तवमें) यह इन्द्र देवनका नाथ नाहीं। चेतना नाहीं, ज्ञान सहित नाहीं, यह मेघ है सो पुद्गलमैं स्कंध ही वर्षा ऋतुका निमित्त पाय जलमयी होय हैं जैसे शीत ऋतुका निमित्त पाय सर्व आकाशमैं पुद्गल महाशील रूप होय हैं उष्ण ऋतुका निमित्त पाय सर्व आकाश विषैं पुद्गल स्कंद उष्ण रूप होय हैं। सो इन तीनों ऋतुका कोई करता नाहीं। अनादितैं ऐसाही स्वभाव है जैसे कालका निमित्त होय ताही प्रमाण पुद्गल रूप परणमैं हैं। ऐसा तूं निश्चय जानना। इस मेघ कूं इन्द्र कहैं हैं सो यह इन्द्र चेतन नाहीं, जड़ है। तातैं भो भव्य, जे विवेकी हैं तिनकौं अजीव विषैं जीव मानना जोग्य नाहीं। ऐसैं मेघ अचेतनत्व विषैं इन्द्र पद देवनाथ माननेका सरधान मिटाय जथावत् सर्वज्ञ केवली भाषित सरधान कराया॥ अरु जाके मत विषैं मेघकौं देवनाथ इन्द्र मानैं ताके आप्त आगम पदारथ सत्य नाहीं होय हैं॥ इति मेघ जड़कौं देवनाथ मानैं था ताका सन्देह निवारक कथन ॥ ८ ॥

आगैं और भी कोई भोरे जीव मन्द ज्ञान तैं अजीवतत्वमें जीवतत्वका भाव मानैं हैं। इस अचेतन काल द्रव्यकों ऐसा कहैं हैं। जो यह कालद्रव्य है सो जम है। सो यह भगवान हजूरके पासका रहनेहारा सेवक

सु० ७०॥ तर० ९८॥ ॥७१॥

है । सो यह भगवानकी आज्ञा पाय जीवनकौं शरीरमें तैं काढ़ ल्यावै है। यह यम महा निर्दयी है। सो जीव मोहके योग तैं कुटुम्ब नहीं तज्या चाहै हैं। तिन कुटुम्बमें तथा ता तनमें सुखी हैं। ताकौं सोंटा तैं मारि-मारि महा दुखी करि जोरावरी शरीर तैं काढ़ि ल्यावै हैं। केई जीव, भगवानके भगत हैं तिनकूं मारै नाहीं। तिनके तनमें छापे तिलक कण्ठमें काष्ठकी माला देखि वाकै तन तैं दूर तैं ही बिनय तैं काढ़ लावै हैं। परन्तु छोड़ता काहूकौं नाहीं। फेर कैसाही समय होय, रात होय दिन होय, शीत उष्ण, बरसा, सुखिया, दुखिया होय, शादी होय या गमी होय, भोजन करता होय, सूता होय, धनधारी होय, रोगी होय, निरोगी होय इत्यादिक चाहे जैसा समय होय परन्तु दया रहित जम काहू कौं छोड़ता नाहीं। ऐसा विभ्रम उपजाय कैं अजीव तत्व विषैं जीवत्वभावकी कल्पना करैं हैं। तिनकौं कहिये है। हे भाई, भगवान तौं काहू कौं मारता नाहीं और काहू कौं मारवेकी अज्ञा भी करता नाहीं। वह भगवान जगतका पिता सर्वका रक्षक दयानिधान, वीतराग, केवल-ज्ञानी, शुद्ध आत्मा, निर्दोष काहूके मारनैंका विचार भी करै नाहीं। यहां भी लौकीकमें किसी कौं कहकैं काहूकौं कोई मरवावैं तौ ताकौं भी पाप लगाय दण्ड पहुंचाइये है। तातैं अल्पसे धर्मधारी जीव होय हैं सो भी पापतैं डर ऐसा बचन नाहीं कहैं, जो तूं याकौं मार। कोई कषायके वष होय कहै ही, तौ ताके धर्म कूं दोष लागै और लौकीकमें कहैं यह महापापी है, यानैं फलानेंकौं फलानेके हाथ मराया है, ऐसा लोक भी कहैं हैं। शास्त्रनिविषैं भी ऐसाही उपदेश देहैं। जो मन बचन काय, कृतकारित अनुमोदना इनका पुण्य-पापमें फल एकसा है। तौ हे भाई, तूं विचार। जो जगपति दयानिधान वीतराग भगवान, परके मारवेका बचन कैसे कहैं। तातैं ऐसा दोष भगवानको लगावना योग्य नाहीं। जो कोई निर्दोष कौं दोष लगावै ताकौं महा-पापी कहिये है। तातैं भो भव्य, भगवान है सो तौ निर्दोष है। वीतराग, दया भण्डार, सर्वका रक्षक है। तिस भगवानके बचन हैं सो सर्व जीवकौं अमृत समान सुखदायी हैं। सो भी अमृत तैं तौ तनका आताप ही मिटै है। भगवानके बचन अमृत तैं जन्ममरण आताप मिटै है तातैं भगवानका बचन परघात रूप होता नाहीं। और जो जमकूं तूं जीव मानैं है। सो जम कोई जीव वस्तु नाहीं। जाकौं तूं जम कहै सो काल

द्रव्य जड़ है, जीव नाहीं। इस संसार विषैं षट् द्रव्य हैं तिनमैं एक जीव और पांच अजीव हैं। तिन अजीव द्रव्यनमें भी एक पुद्गल द्रव्य तौ जड़ मूर्तीक है बाकी चार अमूर्ति हैं। तिन अमूर्तीनमें सर्व भिन्न-भिन्न गुण पर्याय सत्ता धरैं हैं। तिनमें एक काल द्रव्य है ताका गुण तौ वर्तमान है। ताकौ व्यवहार पर्याय समय, घटी, पहर, दिन, पक्ष, मास, वर्ष, पूर्व, पल्य, सागर है सो यह समय-समय करि ही, जीवकी जैसी-जैसी पल्य सागरन आदिकी आयु है सो बीतती जाय है। जा जीवने पूरव भवमें जेते समयनका आयु वान्ध्या है। तैसा स्वासोच्छ्वास भोगि पर्जाय पूरण करि परगति कौं जाय है। ताका नाम भोरे या कहैं हैं। कि काल ले गया। सो जम कोई चेतना नहीं था। ऐही काल द्रव्यकी व्यवहार पर्जाय समय-समय करि प्रवृत्तती पलक, घरी, दिन, पक्ष, बरष तैं जाय है। सो जाका जितना आयु होय तेते समय ही रहै, पीछे तन तजै। बन्धी आयुके समय भोग लिये पीछे एक समय नहीं रहै है। देव, इन्द्र चक्री आदि ये भी तिथि पूरण भये पीछे एक घरी भी नहीं रहैं। जा समैं थित पूरी हो, आत्मा काय तजै है। ताकौं भोरे प्राणी कहैं हैं। जो याकौं जम ले गया। सो काल तौ जीव नाहीं, जो जीवकौं ले जाय यह काल द्रव्य तौ जड़ है अरु जड़त्व ही ताकी पर्याय हैं। सो व्यवहार पर्जाय तौ अपनै स्वभावमयी समय-समय प्रवृत्तती जाय सो तौ अनन्त काल अनन्त परिवर्तनमयी होते चले जांय हैं। तिनमैं इन संसारी जीवनकी थितिके भी समय पूरण होते चले जांय हैं। सो थिति पूरणका नाम मरण कहिये है। सो यह इस जीवहीका उपारजा (किया) है। सो शुभ परिणामन तैं तौ देवनकी तथा उत्कृष्ट भोग भूमिकीआयु कर्म पावै है। पाप कर्म तैं नरकादिका उत्कृष्ट आयु कर्म पावै हैं। भली जायगा ऊँच कुलमें उपजि हीन आयु पाय मरण करै सो पर जीवनकी हिंसाका फल जानना। जैसी-जैसी इस जीवकी परणति शुभाशुभ भई, तेतीही थिति पाई, अरु वह पूरण भये पर्जाय तजता भया। तातैं हे भाई, तू ऐसा भ्रम तजि, कि कोई, जम जीवनकौं लेजाय है। सो जम (काल) कोई जीव नाहीं, जड़ है। तातैं जाके मत विषैं काल जड़ द्रव्य कौं जम नामा जीवमानतै होय ताके आस,

...गम, पदारथ असति हैं। ऐसें काल कौं जम नाम जीव माननेवालेका भ्रम दूर करि शुद्ध सरधान कराया। इति काल द्रव्य-जड़ कौं जम मानने हारे जीवनका सरधान पलटन कथन ॥ ६ ॥

आगे केई मतवारें अजीव वस्तून तैं जीवतत्व वस्तु उपजते मानैं हैं ताका सम्बोधन कथन कहिये है॥ केई अल्पज्ञानी, पञ्च अजीव वस्तूनकों मिलाय कर जीवकी उत्पत्ति मानैं हैं ऐसा कहैं हैं कि जो जीव वस्तु जुदी हो नाहीं, अजीव तत्वनके मिलाप तैं एक जीव शक्ति उपजे है। जैसे, अजीव वस्तु-जड़ द्रव्य जे महुआ बेरजड़ी, गुड़, दही इत्यादि अचेतन वस्तु विषैं—भिन्न, भिन्न देखिये तो मद शक्ति नाहीं अरु इन सबनकों इकट्ठी करि जंत्रमें धरि इन सबका अर्क काढ़िये है, ता अर्क जो दारू, ता विषैं मद शक्ति प्रगट होय है। सो मद भये नाना शक्ति प्रगट होय अनेक जातिके चरित्र जीव ताके पीये करैं हैं मद उतर गये नाना कौतुक करवेकी शक्ति मिट जाय है। तैसे ही पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश इन पंच तत्वके मिलाप कर जीव शक्ति प्रगट होय। भिन्न-भिन्न देखिये तो जीवत्व शक्ति काहूमें नाहीं, मि-लाप तैं जीव होय है। जब शक्ति प्रगट होय तब नाना देखने-जानने मयी क्रिया करै है। अरु जब तत्वनका मिलाप छूट जाय, तब पंच ही तत्व अपने अपने तत्वन विषैं मिल जांय हैं। तब शक्ति भी मिट जाय है। तहां वे एक दृष्टान्त देय अपना मत पोषैं हैं सो सुनो।

दोहा—पवन पेंच आँटी परी, धस्यो बघूस्यो नाम। निकस पेंच बाहर पस्यो, नाम ठाम नहिं ग्राम ॥ १ ॥

ऐसा इस तत्ववादीके मतमें कह्या है जो पवन चलती मैं (वेगमैं) आँटी पड़ गई, ताके योगतैं रज, वालू, रेत, पत्ता, तिणकादि पदारथ उड़ने लगे, जो सबने देखे। तब वाका नाम सबने बघूरया धस्या। विस्तार भया पीछे पवनका पेच पड़्या था सो मिटगया। तब अँधूरेका भी नाम मिट गया तैसे ही अँधूरेकी नांई पंच तत्वनका मिलाप मिटता नाहीं, तेते कालतौ जीवनामा विकार प्रगट भया और सबने देखा, परन्तु जब तत्व विछुरे सो तो अपने-अपने तत्त्वनमें मिले। तब देखिये तौ जीव तत्त्व तौ कछू वस्तु नाहीं। ऐसा केई तत्त्व वादीनका मत है। तिनके मिथ्यात्व दूर करवे कौं स्याद्वादी कहैं हैं। भो तत्ववादी, तं सुनि सिंहनी के

गभतैं मृगनका अवतार होता नाहीं। मृगीके गर्भतैं सिंहका अवतार होता नाहीं। तैसें ही जड़-अचेतन वस्तून तैं चेतन पदारथ वस्तु होती नाहीं। जीव वस्तून तैं अजीव वस्तु होती नाहीं, ऐसा नियम है जो पंच जड़ तत्वतैं जीव होता तो पंच तत्वनतैं लोक भर्या है सो हर कोई पंचतत्व मिलाय जीव तत्व वनाय लेता। पुत्र-कलित्र करिवे कूं काहे कौ कोई उपाय करते। हे तत्ववादी पंचतत्व मिलाय करि तूं हमारे पास पांच जीवतत्व वनाय तौ सही, देखौं केसे वनाइए है। जैसे तैंने दारूका दृष्टांत दिया, सो जैसे गुड़- दही, मऊआ, विरजड़ी, इत्यादिक मिलाय हर कोई दारू कर लेय है तैसे एक—दो जीव तूं भी वनाय लेय। अरु तूं कहेगा, मेरे वने तौ नाहीं वनै। तो हे भाई, ऐसा सरधान झूंठा है। वृथा तूं काहेकौ हठग्राही होय है। अजीव वस्तु तैं जीव वस्तु होती नाहीं। संसार विषैं जीव और अजीव ये दोय तत्व अनादि निधन हैं। यह अजीव वस्तु तैं करथा, जीव होता नाहीं। तातैं जाके मत विषैं पंच अजीव तत्वनका जीव होता मानै, ताके आप्त, आगम, पदारथ, असत हैं। ऐसे अजीवका जीव तत्व होता माने था, ताकौं समझाय, यथा योग्य जिन भाषित तत्वनका सरधान कराया। इति तत्ववादी व पंचतत्व अजीव तैं जीव होता माने था ताका संवाद कथन ॥ १० ॥ अव इन एकांतवादीनके एक पक्ष कूं मिथ्यात वताय इनहींके वचन तिनको केई नय करि स्याद्वाद मततैं मिलाय, सत्यमैं वताईए है ॥ जैसे अन्धनका हाथी, अन्धनके वचन करि एक पक्षतैं असत्य हैं अरु नेत्रन वारा, अंधनके वचन मिलाय सवकों हाथी कहै, कोई—कोई नय अंधनके हाथी कहनेके वचन सत्यमें वतावै, तैसेही कथन कहिए है। भो संसार विषैं एक आत्मा मानने हारे, जो तूं एकही आत्माकी सर्व लोकमें सत्ता मानै है सो या नय करिकैं तौ तेरा शब्द असति वताय आये। जैसे अन्धा दगलीको वाँह ऐसा हाथी मानै, सो तो असति है, ऐसा हाथी होता नाहीं। तो इन अंधेका वचन कोई नयतैं सत्य है। ऐसे ही तेरा सव संसारमें आत्मा है सो सर्व वात तेरी या नयतैं सत्य है। सो तं सुनि इस संसारमें अनंते आत्मा भिन्न-भिन्न सत्ताकों धरैं, सर्व लोकमें सूक्ष्म जातिके भरे हैं। पृथिवी कायिक सूक्ष्म, तेज सूक्ष्म, वायु सुक्ष्म, और वनस्पति सूक्ष्म इन पंचस्थावर सूक्ष्मन करि यह लोक भर्या है। घीव घटवत्। जैसे घीवका घड़ा भर्या

है। तामैं कोऊ जगै खाली नाहीं। तैसे ही यह लोक सूक्ष्म जीवन तैं भरया है। तहाँ बनस्पती सूक्ष्म तो अनन्त हैं। चारि स्थावर सूक्ष्म असंख्यात हैं। सो सर्व सूक्ष्म जीवन करि पूरित है। कोई स्थान खाली नाहीं जल, थल, अग्नि, वायु, आकाश, कंकर, पत्थर, घट, पट, सर्व जगै सूक्ष्म जीव भरया है। जीव बिना कोई चेत्र नाहीं। तेरा बचन सत्य होय है। येता विशेष जानना, जो तेरा बचन एक सत्ता रूप सर्व जीव, सो तो असति है और सर्व जीवनिकी सत्ता भिन्न-भिन्न है। यह जिन बचन सत्य है। तातैं धर्म उपदेश भी संभवै, और पुन्य-पाप भी संभवै है। पाप-पुन्यका फल भी संभवै है। तातैं सर्व संसारमैं जीव भरि पूर हैं। परन्तु एक सत्ता नाहीं। सर्वकी सत्ता भिन्न-भिन्न हैं। ऐसा श्रद्धान कर। इति कोई नय तैं सर्व संसारमैं घट, पट, जल, पवन, पानीमैं आत्मा है ऐसा कथन आगे अवतारवादीका बचन कोई नय प्रमाण बताइये है। अहो अव-तार वादी, तूं मोक्ष आत्मा कौं अवतार मानै है सो मोक्ष दोय प्रकार है एक तो सालोक मोक्ष है सो भोरे जीवतौ सालोक कौं ही मोक्ष कहैं हैं। सो सालोक मोक्षतो ताकौं कहिए जो या चारि गति समानि जनम-मरण दुख सहित होय। इन्द्रीजन्य सुख बहुत होय। जीवना एक शरीरतैं बहुत होय। सागरों पर्यंत असं-ख्यात बरष ताईं जीवना होय। ऐसा इन्द्रलोक, ता इन्द्रलोककौं भोरे जीव मोक्ष कहैं हैं। इहाँ कोई कहै, देव लोकको मोक्ष कौन नयकरि भोरे जीवन नैं मानी ताकौ कहिये। हे भव्य, मोक्ष कर्म रहित है। तहाँ तिष्ठते सिद्ध, सो महा सुखी हैं कबहूं मरैं नाहीं। तातैं तिन मोक्ष जीवनकौं अमर कहैं हैं। इंद्रलोकके देव भी दीर्घ आयुधारी हैं। सो मनुष्यनि अपेक्षा, अत्यन्त जीवैं हैं। मनुष्यके असंख्यातै भव बड़ी २ आयुके होंय तो भी देवका एक भव पूरण नहीं होय। देवका आयु कर्म बड़ा है। तातैं शास्त्रनमैं देवका नाम अमर है और सिद्धनका नाम भी अमर है। सो अमरपनेकी कल्पना करि देवलोककौं भोरे जीवननै मोक्ष मानी है। सो बालक ज्ञानी, ताही तैं इन्द्रकौं भगवान जानि, ऐसा कहैं है। जो मोक्षमैं नाना रतनमई महल हैं। तहाँ भगवान विराजैं हैं। बड़े-बड़े देव, दानव, भगवानके पास हस्त जोड़ै खड़े हैं अनेक अपसरा भगवानपै निरत गान करैं हैं। ऐसा अनेक सुखन सहित भगवान हैं। इनकौं आदिलै बहुत पंचेन्द्री जनित सुख दीरघ जानि भोरे प्राणीन तैं

याका नाम सालोक मोक्ष कहिए है। सो इस सालोक मोक्षका नाथ इन्द्र है। सो भोरे जीव इन्द्रको भगवान मानैं हैं। इंद्रलोकको मोक्ष मानैं हैं सो हे अवतारवादी भव्य, इस सालोक तैं इन्द्र मरि अवतार धरै है सो या नयतैं अवतार मत प्रगट्या है। और दूसरा निरालोक मोक्ष है। सो यह मोक्ष अष्ट कर्मनके नाशतैं शुद्ध परणतिके धारी यतीश्वरोंका होय है। जब यह आत्मा कर्म नाश, तन छोड़ि, मोक्ष होय। सो फेर संसारमैं अवतार नाहीं लेय है। याका नाम निरालोक मोक्ष है। या मोक्षमैं जनम-मरण नाहीं, इन्द्री जनित सुख नाहीं तनका पुद्गलीक आकार नाहीं। निरंजन, निराकार, निरदोष, शुद्ध भगवान सिद्ध हैं। सो निरालोक मोक्ष जानना। भो अवतारवादी भव्य, यह शुद्ध मोक्ष है इहाँ तैं अवतार नाहीं होय है ऐसा जानना। तेरे मतका वचन सालोक मोक्ष जो इंद्रलोक, तहां तैं अवतार जानना। इति अवतारवादीका मोक्ष तैं अवतार कथन ॥ आगे क्षणिकमती नयका स्थापन। जो एक नयतैं तौ असति है और कोई नयतैं आत्मा क्षणभंगुर है ऐसा कहिए है—भो क्षणिक मतवादी भव्य, तूं एक शरीरमैं अनेक आत्मा छिन-छिन आवते मानै है। सो तेरा मत तोकूं प्रत्यक्ष असत्य बताया। सो या नय तौ तेरी खंडी गई। अरु जा नय तैं आत्मा क्षणभंगुर है, सो तोकौं जिन आज्ञा प्रमाण आतमामें क्षणभंगुरपना कहिए हैं, सो सुन। एक शरीरमैं तिष्ठता इस जीवने अपनी विशेष आयुकर्मके जोगतें, अनेक अल्प आयुकेधारी मनुष्य, तिर्यंचनकी पर्याय विनशती देखी। सो यह निकट संसारी जीवनकी पर्याय विनशती देख, उदास होय विचारता भया। जो मेरे देखते एती पर्याय उपजी, एती पर्याय विनशी, सो संसारमें जीवोंकी पर्याय क्षणभंगुर है। ऐसा क्षणभंगुर जगत-जीवोंका जीवन है। ऐसी ही अपनी पर्याय क्षणभंगुर जानि, उदास होय, राज सम्पदा तजि, दीक्षा अङ्गीकार करै है। ऐसे क्षणभंगुरपना जानना है। सो कल्याण करता है। एक शरीरमैं ही आत्मा रहता नांहीं, कबहूं देव होय मरै है। कबहूं मनुष्य होय मरै है। कबहूं पशु होय मरै है। कबहूं नारकी होय मरै है। ऐसे चारि गतिमें अनादि-कालका परिभ्रमण करै है, कहीं थिर रहता नांही। थिरि रहनेका स्थान एक मोक्ष है। ऐसा विचार, संसार दशाकूं क्षणभंगुर जानि, संसारतैं उदास होय, परिग्रह तज करि, मोक्षाभिलाषी अपना कल्याण करै है। तातैं

भो भव्य क्षणिक मतवादी, तूं संसारमें आत्मा तौ सदीव शाश्वत जानि। परन्तु पर्याय चारगति रूप है सो क्षणभंगुर जानि। ऐसा श्रद्धान करि तो तोकौं कल्याण करता होयगा॥ इति क्षणिक मतीनका भ्रम निवारण कथन॥ आगे केई कर्तावादी आत्माकूं भगवान उपजावै है ऐसा मानें हैं। ताका श्रद्धान तौ आगे खंडन कर्या है। परन्तु कर्तापना भी कोई वस्तुका अङ्ग है सो जिन आज्ञा प्रमाण करताका स्वभाव कहिए है। भो कर्तावादी भव्यात्मा, तूं नवीन आत्माका करता भगवान मानै, सो नय तौ तेरी असति है परन्तु कर्त्ताका शब्द कोई वस्तुका अंग है ताका छल लेयकैं भोरे जीवनने कोई भगवान कर्त्ता जान्या है सो संसारीक जीवोंकी पर्यायका कर्त्ता भगवान है, सो तौ नांहीं। अब संसारी जीवनकी पर्यायनका कर्त्ता बतांईए है। सो कर्त्ताके भेद दोय हैं। एक तौ भावकर्म कर्ता है। दूसरा द्रव्यकर्म कर्त्ता है। सो भाव कर्मनका कर्त्ता तौ यह संसारी आत्मा है। अपने रागद्वेष भावन तैं शुभाशुभमरि च्यारिगति रूप उपजावे योग्य विकल्पका करना सो भाव कर्म है। अरु इन भाव कर्मके अनुसार प्रवृत्ते जो लोक विषैं तिष्ठते पुद्गलस्कंध, ज्ञानावरणादिक कर्मरूप, सो द्रव्य कर्म हैं। सो इन द्रव्य कर्मके जोगतैं आत्मा देव, मनुष्य, नारक, पशु, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, पचेंन्द्रिय आदिकी उत्पत्ति रूप आकार सो नाना प्रकार जे शुभाशुभ शरीर तिनका कर्ता द्रव्यकर्म है। सो जैसा-जैसा शरीर आकार होय तैसा-तैसा भीतर आत्माका आकार होय है। ता प्रमाण आत्मा सुख दुखका भोक्ता होय है। हे कर्तावादी! इन शरीर, च्यारि गतिका कर्ता तौ द्रव्यकर्म पुद्गल है। भावकर्म रागद्वेष है, ताका कर्ता आत्मा है। जैसा-जैसा भावकर्म उपार्जता है, तैसा-तैसा शुभाशुभ शरीर होय है। तातैं याका कर्ता आत्मा ही है। ऐसा जानना जो भगवान काहूका कर्ता नाहीं। ताही तैं धर्मात्मानकं पाप कार्यनका कर्तापना तजि, शुभ कार्यनका करता होना जोग्य है। इतिकरतावादीकी एक नय मिटाय जीवादि तत्वनिका करतापना कोई नय बताया॥ आगे नास्तिक मती सर्व प्रकार जीवका अभाव मानै है। ताका एकान्त छुड़ाय, आत्मा कोई नय करि नास्ति भी है ऐसा कथन बताईए है। भो नास्तिक मती, तेरा मत जीवकौं सर्व प्रकार नास्ति मानै है। सो यह एकांत मत तौ असति है। जीव द्रव्यका कबहूं नाश नाहीं। परन्तु जा अपेक्षा जीव नास्ति

भी है ऐसा उपदेश जिन भाषित तत्वनकी नय करि तोकौं बताइए है, सो तूं चित देय सुन । भो भव्य ! जीव, द्रव्यार्थिक नयतै तौ सदीव शाश्वत है । सो द्रव्य वस्तुका तौ कबहूं नाश नाहीं । और देव नारकादि च्यारि गति पर्याय हैं सो नास्तिरूप हैं । सो पर्यायके नाश होते जीवका नाश कहिए है, सो व्यवहार नय है । या व्यवहार नयतें पर्याय विनशते लौकिकमें ऐसा कहैं हैं । जो यह देव जीव मुआ (मरया). यह नारकी जीव मुआ। जो यह नर जीव हुआ । यह तिर्यञ्च जीव हुआ । ऐसा कहैं हैं । सो पर्याय नाशतैं जीवकी नास्ति कही, सो पर्यायार्थिक नय जानना । इति नास्तिक नयकौं सर्व प्रकार असति बताय, कोई नय नास्ति कहैं ऐसा कथन । आगे केई मतवारे मोक्ष आत्माकौं सर्व प्रकार अज्ञान मानैं, ताका एकांत मिटाय कोई नय तैं ज्ञान रहित मोक्ष जीवकौं बताइए है—

भो अज्ञानवादी भव्य आत्मा, तूं सर्व नयकरि मोक्ष आत्मा ज्ञान रहित मानै है । अरु तूं ऐसा कहे है । जो आत्मामें पर पदारथ देखने—जाननेकी शक्ति है सो ही उपाधि है । जब पदारथके देखने-जाननेकी शक्ति मिटैगी तब जीव मोक्ष होयगा । ऐसा एकांत मत तेरा है सो तो असत्य तोकौं पूर्व बताया ही । अब ज्ञान रहित मोक्ष आत्मा है ।यह वचन कोई नय है सो तोकों बताइए है । जो या ज्ञान तैं रहित मोक्ष जीव है. सो तूं चित्तदेय सुनि देखना-जानना तौ जीवका स्वभाव है तातें ज्ञानका अभाव भये तौ आत्माका अभाव होय । तातें जेते इन्द्रिय जंनित पदारथनको देखना-जानना, सो आत्मामें उपाधि है, तबलौं मोक्ष आत्मा नाहीं । इन्द्रिय जनित ज्ञानका अभाव होय, केवलज्ञान होयगा। तब जीव मोक्ष होयगा । तातें उपाधि ज्ञान जो इन्द्रिय जनित ज्ञान, सो तो इन्द्रिय ज्ञान है । तबलौं पदारथनमें राग-दोष होय है । जब इन्द्रिय ज्ञान मिटि केवलज्ञान होयगा, वह अतीन्द्रिय ज्ञान है, सो यह अतीन्द्रियज्ञान आत्माका स्वभाव है । याके भए पदारथ तैं रागद्वेश नाहीं होय है। तातें भो भव्य ज्ञानवादी सुनि, मोक्ष आत्मा है सो सर्वज्ञ लोकालोकका जाननहारा, घट-घटका अन्तरजामी भगवान, ताके अतिन्द्रिय ज्ञान है सो कर्म बन्ध रहित है । सो तो मोक्षजीवका स्वभाव है, ऐसा जानना । मोक्ष आत्मामें इन्द्रिय ज्ञान नाहीं । यह इन्द्रिय ज्ञान है सो विनाशीक है, चंचल

है, हीन ज्ञान है, कर्म बंध करता है। सो यह इन्द्रिय ज्ञान रहित, मोक्ष आत्मा जानना। ऐसा इस नयतैं मोक्ष
आत्मा ज्ञान रहित कह्या। इति मोक्ष आत्मा, इन्द्रिय ज्ञान रहित कोई नय है, सो कथन कह्या। आगे केई
मतधारे जैसाही जीव मरे, तैसाही उपजता मानैं हैं, सो इसका एकांत मत खंडके अब कोई नय करि जैसा
मरै, तैसाही उपजै, है ऐसा कहैं हैं। भो स्थिरवादी, तेरा मत व तेरी नय तो असति है, सो तोकों कह्या अब
कोई नय तेरा बचन सत्य कहैं हैं, सो सुनि जो तूं जानैं कि जैसी पर्याय छोडै सोही पर्याय उपजै, सो सर्व
प्रकार तेरा एकांतमत तो असत्य है। कोई नयतैं वही पर्याय धरै है, कोई और भी पर्याय धरै है, सो तूं
सुनि। जिनदेव कह्या है ता प्रमाण कहिये है—जो मनुष्य मरै तो शुभ भावनतैं देव होय, अशुभ भावनतैं
नारकी व पशु होय। और कोई सरल भावतैं मनुष्यतैं मनुष्य भी होय उपजै है, ऐसा जानना। और तिर्यञ्च
मरै सो शुभ भावनतैं देव होय, अशुभ भावनतैं नारकी होय, कोई सरल भावतैं मनुष्य होय। तथा आर्त
भावनतैं पशुमरि पशु भी होय है, ऐसा जानना। और नारकी मर, नारकी होता नाहीं, यह निश्चय है। और
देव मर देव होता नाहीं। ऐसैं कोई जैसा मरै, तैसाही उपजै और कोई मरै, और ही पर्यायमें उपजै है।
ऐसा जिन भगवानने कह्या है। और तेरे मतमें या कही कि मरै सोही उपजै। सो पर्याय नयतो बनै नाहीं।
सो तूं ऐसा जानि, कि जो मरे सो ही उपजै। आत्माही पर्याय तजि मरण करै है सो ही आत्मा, और पर्या-
यमें उपजै है। सोही आत्मा, अनेक पर्यायमें मरण करै है। यही आत्मा, अपने भाव प्रमाण शुभाशुभगतिमें
उपजै है। सो ऐसे अनन्तकाल भ्रमण करते भया। यही आत्मा मरया, यही उपज्या, ऐसा जानना। इस
नयतैं यह बचन सत्य है कि जो मरै सोही उपजै है। मोक्षभये पीछे मरता भी नाहीं, अरु उपजता भी नाहीं,
ऐसा जानना। इति स्थिरवादीका वचन कोई नय करि सत्य बताया ऐसा कथन ॥

इति सुदृष्टितरंगणी नामग्रन्थमध्ये एकांतवादीनके नय बचन असत्य किए। कोई नय, बचन प्रमाण
बताए। जैसे एक अङ्ग तो हस्ती नाहीं, सर्व झूठे हैं। अंगनका समूह हस्ती है। कोई नय, एक अंग करि
सत्य भी है। ऐसा कथन वर्ननो नाम चतुर्थ पर्व समाप्त ॥ ४ ॥

इति संधिमें अनेक मतनिका विचार किया, ऐसे अन्य मतनके धर्मार्थी जीव थे तिनको समझाय, अब जिन देव करि भाषे जीव अजीव तत्व तिनका स्वरूप कहिए है। सो मोक्षाभिलाषी जीव होंय, सो इन तत्व भेदनकौं समझें। सो जा मोक्षके निमित्त, तत्त्व भेद जानिए, सो प्रथम मोक्षका स्वरूप कहू हौं।

भो मोक्षाभिलाषी हो तुम धर्मार्थी हो, तातैं प्रथम मोक्षका स्वरूप सुनौ। पीछे तुम्हारे इस मोक्षकी इच्छा होयगी, तौ तुमकौं मोक्षका मार्ग भी बतावेंगे। कैसा है मोक्ष ? जेते संसारमें जनम मरण, भूख प्यास, वात पित्त कुष्टादि रोग इन अनादि अनेक दुख हैं। तिन सर्व दुख-दोषतैं रहित है। और अविनाशी, निराकुल, इन्द्रिय रहित, सुखका स्थान है। और अनोपम सर्व लोकालोकवर्ती पदारथका जाननहारा, ऐसा केवलज्ञान सहित भगवान पद, जगतके पूज्यवे योग्य है। ता मोक्ष कौं इन्द्र, देव, चक्री गणधर, मुनि, सर्व सदैव ताकौं वांच्छैं-पूजे हैं। तहांके सुख अखंड हैं, अविनाशी हैं, सर्व कर्म मल रहित हैं निरावाध हैं तिन सुखका कबहूं अन्त नांहीं है। और जेते संसारमें देव, इंद्र, अहमिंद्र, चक्री, कामदेव, विद्याधर, इन सबनिके सुख अनंतकालके बीते, सो सबनिकौं इकट्ठे करिए, तौ भी मोक्ष सुखके एक समय मात्र भी नाहीं होय हैं। इहाँ प्रश्न—जो अहमिंद्र अरु इंद्रके सुखतैं भी बहुत सुख और कहा होयगा, सो कहो ? ताकौं कहिए हैं। भो भव्य सुनि, जैसे कोई पुरुष ऊंटकी असवारी किए राहमें ऊंटको दौड़ावता, चल्या जाय है। सो ताके पीछे एक मारनेको बैरी पीठि पीछे लागा, सो बाकौं देखि भय खाय ऊंट दौड़ाया, सो कुदाता चल्या जाय है। पीछे बैरी भी चल्या आवे है। ऐसे जाते राह (रास्ते) में भूख लागी, अरु प्यास लागी। सो ताके पास लाडू थे सो खाता जाय है। अरु प्यास लागी सो ठंडा नीर था सो वेला (कटोर) भरि, पीवता जाय है। सो कछु अन्न-पानी मुखमें, कछू भूमिमें पड़ता जाय है। ऐसे पुरुषने ऊंटपै लाड खाय, ठंडा पानी पीयकै, क्षुधा तिरषा मेटि, सुख मान्या है ! अरु एक पुरुष अपने घरके बागमें सघन छायामें तिष्ठा ताके पासि अनेक सज्जन सुखकारी बैठे हैं। सो द्वेषी कोई नाहीं। सो या पुरुषने भूख तिरषा मेटवेकौं ठंडा जल पीया भोजन खाया अरु सुखतैं सोय रह्या। सो इन दोनोंमें घना (बहुत) सुख किसकै ? लाडू जलतौ ऊंट बारेने भी खाये। लाडू

जल घर बैठने वारेने भी खाये सो जैसा अन्तर इनके सुखमें है। तैसा अन्तर देव इन्द्र, अहमिंद्रनके सुखमें अरु मोक्षके सुखमें है। मोक्षका सुखतौ निराकुल है, भय रहित है अविनाशी है। और इन्द्र अहमिन्द्रदेवके सुख हैं सो विनाशीक हैं। इनके पीछे काल रूपी वैरी लागा है तातैं भय सहित सुख है। ऐसे सामान्य दृष्टान्तका भाव जानना। सो हे भाई संसारी इन्द्रादिकके सुख इन्द्रिय जनित तिनतैं मोक्षके अतीन्द्रिय सुखतैं अनंतानंत गुणा अन्तर है। तातैं जो भव्य सुखका अर्थी होय सो मोक्ष जावेका उपाय करौ। ऐसा उपदेश सुनि कोई भव्यात्मा मोक्ष सुखका अभिलाषी पूछता भया। हे गुरु नाथ! मोक्षके सुख आपने सर्व दुख रहित कहे। सो मोक्ष कैसे पाईए ताका मार्ग कहौ। तब गुरु हैं सोई शिष्यके प्रश्नपाय ताके हितकूं कहते भये। भो भव्य सुनि! सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र है। सो मोक्ष मार्ग है। सो हे भव्य सम्यग्दर्शन तैं तो मोक्षका सरधान (श्रद्धान) होय है। मोक्ष अनन्त सुखका स्थान है। ऐसे श्रद्धान होते पीछे सम्यक्ज्ञान होय। तातें मोक्षमार्ग जान्या जाय है। ता मोक्ष मार्गमें चालिए है। तातैं प्रथम तौ श्रद्धान चाहिये पीछे जानपना चाहिये पीछे मार्गमें चलना होय है। तब वाञ्छित स्थान पहुंचैं हैं। तातें हे भव्य तूं प्रथम तौ ऐसा सरधान करि कि मोकूं ऐसी मोक्ष कब होय? ऐसे गुरु वचन सुनिकै महा विनयतैं रुचि सहित पूंछता भया। भो गुरो सरधानका करावनहारा सम्यक्त्व कैसे होय सो मोहि कहो। तब गुरु या शिष्यकूं रुचिक जानि कहते भये। तत्वार्थ सूत्रकी फाँकी—तत्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्। याका अर्थ—भो भव्य तत्वनका श्रद्धान है सोही सम्यग्दर्शन है। तब शिष्य कही भो गुरो तत्व कहा सो कहौ। तब गुरु दया करि कही। भो वत्स तत्त्व भेद जीव अजीव कर दोय प्रकार है। तब शिष्य कही भो गुरो जीव अजीवका स्वरूप मोहि विशेष समझाय करि कहौ। तब गुरु कहैं हैं। भो भव्य तूं चित्त देय सुनि। अजीवका स्वरूप तोहि प्रथम कहों हौं। सो अजीव द्रव्य पंच प्रकार है। धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य कालद्रव्य आकाशद्रव्य पुद्गलद्रव्य। ये पंच द्रव्य अजीव हैं जड़ हैं। तिनमें धर्म अधर्म काल आकाश ए च्यारि अजीवद्रव्य अमूर्तीक हैं। सो इनका स्वरूप आगे कहेंगे तातें यहां नहीं कह्या है। और पुद्गल अजीव द्रव्य है, सो मूर्तीक है सो ताके दोय भेद हैं। एक तौ नो

कर्म, एक द्रव्यकर्म। जहां ताकों देखि जों कर्म प्रगट होय, सो नो कर्म। जैसे अपने वरीकौं देखि क्रोध प्रगट होय, सो वैरी कौं क्रोधका नो कर्म कहिए। तथा रूपवान स्त्रीकों देखि विकार भाव होय, सो विकार भावका नो कर्म स्त्री है। ऐसे सर्वत्र नो कर्मका स्वरूप जानना। और द्रव्य कर्म है सो पुद्गलीक है। सो ताके तेईस भेद हैं। सोही कहिए हैं, अणु, संख्याताणु, असंख्याताणु, अनन्ताणु, आहाराणु, आहार अग्राह्याणु, तैजस अणु, तैजस अग्राह्याणु भाषाणु, भाषा अग्राह्याणु मनोवर्गणा, मनो अग्राह्यवर्गणा कार्माणवर्गणा ध्रुववर्गणा, सांतरवर्गणा शून्यवर्गणा, प्रत्येक वर्गणा, ध्रुवशून्यवर्गणा, वादर निगोद वर्गणा, वादर शून्य वर्गणा सूक्ष्मनिगोदवर्गणा, नमो वर्गणा, महास्कंध वर्गणा ऐसें ए तेईस जातिके पुद्गल वर्गणाके भेद हैं। सो अपने अपने स्वभावरूप सदीव वरतैं हैं। ए सर्व भेद पुद्गलके, तीनलोक प्रमाण महास्कंध है तामें तिष्ठे हैं। ए महास्कंध है सो सर्वलोकमें जेती (जितने) परमाणु हैं तिन सर्वका एक बंधन रूप हैं। अनादि निधन महा-वज्र समानि महास्कंध जानना। तामें असंख्यात परमाणु तो ऐसे हैं सो स्कंधरूप नाहीं, एक-एकही हैं। अ-संख्याते स्कंध दोय परमाणुके हैं असंख्याते अस्कंध तीन-तीन परमाणुके हैं। ऐसेही एक-एक अधिक परमा-णूनके स्कंध च्यारि परमाणुका स्कंध, पांचका षट् आदि उत्कृष्ट संख्यात पर्यन्त जानना। सो ए संख्याताणु स्कंध हैं। अब या संख्याताणु स्कंधतें एक अधिक परमाणुके असंख्याते स्कंध हैं। सो ए जघन्य असंख्याताणु स्कंध है। यातें एक परमाणु और अधिकके असंख्याते स्कंध हैं असंख्याते स्कंध ऐसे हैं जो उत्कृष्ट संख्यात तैं तीन-तीन परमाणुके अधिक जानना। च्यारि-च्यारि परमाणु अधिकके असंख्याते स्कंध हैं। पांच अधिकके असंख्याते स्कंध हैं इन अधिक उत्कृष्ट संख्याततें एक-एक परमाणुके स्कंध वधते उत्कृष्ट असंख्यात पर्यन्त जानना। सो एक-एक परमाणुके अधिक हैं सो असंख्याते असंख्याते जानना। उत्कृष्ट असंख्यात परमाणुसे एक परमाणु अधिकके स्कंध असंख्याते हैं। सो यह जघन्य अनंताणुनके स्कंध हैं। दोय परमाणु अधिकके स्कंध असंख्याते हैं। तीन अधिक, च्यारि आदि अधिकके स्कंध एक-एक जातिके असंख्याते स्कंध हैं सो सव अनन्ताणु पुद्गल स्कंध हैं। ऐसे संख्यात, असंख्यात, अनन्त परमाणुके स्कंध हैं। सो सर्व जातिके स्कंध

असंख्याते असंख्याते हैं। ऐसे पुद्गलके स्कंध अनेक प्रकार हैं। तहांजे तैजस जातिके पुद्गल स्कंध हैं तिनका तौ तैजस शरीर होय है। भाषा जातिके पुद्गल स्कंधन करि भाषा योग्य जो वेन्द्रिय आदि जीवनके यथा-योग्य बचन बोलनेकी शक्ति लिये स्थान कंठादि बनि भाषा खिरै है। मन जातिकी वर्गणा करि संज्ञी पंचे-न्द्रिय जीवनके हृदय कमलमें अष्टपाखड़ीका कमलाकार द्रव्य मन होय है। जातें आत्माके शुभाशुभ विचार-की शक्ति होय है। वादर निगोदि वर्गणाके स्कंधन तैं, बादर निगोदिया जीवनके शरीर बने है और सूक्ष्म निगोद वर्गणाके स्कंधतैं सूक्ष्म निगोदिया जीवनके शरीराकार होय हैं। और प्रत्येक जातिकी वर्गणातैं प्रत्येक शरीरनका बंधन होय है। कार्माण बर्गणातैं ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मरूप कर्मस्कंध मई ऐसा कार्माण शरीर होय है। कर्म होने योग्य होंय जे पुद्गल स्कंध सो कार्माण वर्गणा है। तहां आत्माके जैसे-जैसे राग द्वेष भावन सहित आत्मा परिणमै, ताही प्रमाण अष्टकर्म रूप होय कार्माण वर्गणा परणमै है। सो अष्टकर्म कौन हैं। तिनके नाम कहिए हैं। ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, वेदनी मोहनी आयु, नाम गोत्र अन्तराय ऐसे ए अष्ट-कर्म तौ मूल हैं तिनको उत्तर प्रकृति एकसौ अड़तालीस हैं। ज्ञानाबरणीके नाम मतिज्ञानावरणी श्रुतज्ञाना-बरणी अवधिज्ञानावरणी मनपर्यय ज्ञानावरणी केवलज्ञानावरणी ए पंच हैं सो जिस-जिस ज्ञानके आवर्णकी हैं ते-ते ज्ञानकौं घातें तातेंइनका नाम आवर्ण कहिये है। ज्ञान नाम तौ जानपनेका है। जातैं ज्ञेय जानिए, सो तौ ज्ञान है। सो ज्ञानपनेकी अपेक्षा तो एक है। अरु अब एक ज्ञानको जितना-जितना इन पंच ज्ञानावरणीननै आवरण्या है, तेता ज्ञानकी पंच भेद करि कल्पना करो है। अरु जब इन आवरणीनका अभाव होय तब भेद भाव मिटि एक ज्ञान भावही रहै है। पंच भेद ज्ञानावरणीके निमित्ततैं कहिये हैं। ऐसा जानना। और दर्शना वरणी प्रकृति नव हैं। सो प्रथमही चक्षुदर्शनावरणी अचक्षुदर्शनावरणी अवधिदर्शनावरणी केवल दर्शना-वरणी ए च्यारि दर्शनावरणीकी हैं सो अपने आवरणे योग्य दर्शनकौं आवरणे हैं। निद्रा-निद्रा प्रचला-प्रचला स्त्यानगृद्धि निद्रा प्रचला ए नव दर्शनकौं घातैं हैं। यहाँ प्रश्न। जो दर्शन तौ च्यारि भेद रूप है। और दर्श-नकी आवरणी नव है। सो च्यारि दर्शनावरणी तौ च्यारि दर्शनकौं घातैं हैं। यह पंच निद्रा काहेकौं घातैं हैं।

ताका सामाधान। च्यारि दर्शनके क्षयोपशमकी घातक च्यारि दर्शनावरणी हैं। दर्शनकी देखने रूप प्रवृत्ति ताकौं पंच निद्रा घातें हैं। ऐसा जानना। आगे वेदनीयके साता असाता ए दो भेद हैं। सो मोह सहित जीवनकौं वेदनीका उदय साता तो अपना उदय बताय जीवकों सुखी करे है और असाताके उदय तें मोही जीव दुखी होय। ऐसा वेदनी हैं। आगे मोह कर्मदोय भेद हे—एक दर्शनमोह एक चारित्रमोह तहां दर्शन-मोहके भेद तीन हैं—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक प्रकृति मिथ्यात्व, ए तीन भेद हैं। चारित्र मोहके पचीस तिनके नाम-अनन्तानुवन्धी, अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान, संज्वलन इन च्यारि चोकड़ीके क्रोध, मान माया, लोभ इन करि सोलह भेद जानना। नव हास्यादिकके नाम—हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा पुरुषवेद स्त्रीवेद नपुंसकवेद ए पचीस चारित्र मोहनीके हैं। इनका सामान्य अर्थ कहिये है—तहां अनन्तानु-वन्धी क्रोध, महातीव्र पाषाणका रेखा सामानि। याका वासनाकाल अनन्तभवमें भी नहीं जाय जातें एक वार क्रोध भया होय, तो अनन्ते भव तांई तातें समता भाव, नाहीं होय। याके उदयसे प्राणी अनंतकाल संसार भ्रमे है! सो अनन्तानुवन्धी क्रोध जानना। और अनन्तानुवन्धी मान महातीव्र पाषाण स्तंभ समान। कठोर परणामी प्राण देय, पै नमें नाहीं। याका भी वासनाकाल अनंतकाल है। जातें एक वार मान खंडना होय, तातें अनन्तभवनमें भी निशल्यभाव करि नमें नाहीं, सो अनन्तानुवन्धी मान जांनना। और अनन्तानुवन्धी माया महातीव्र वांसकी जड़की गांठी समानि, वचनमें कटुताई रूप भाव रहै, ताका वासनाकाल अनन्त है: जातें एक वार परणतिमें द्वेषभाव होय तो तातें अनंते कालमें भी निशल्यभाव-सरलता नहीं होय। सो अ-नन्तानुवन्धी माया जांनना। अनन्तानुवन्धी लोभ, महातीव्र किरमके रंग समानि जैसे वस्त्र फटै परन्तु किरम का रंग नहीं जाय। ऐसाही यह लोभ है। याका वासनाकाल अनन्त है। एक वार लोभ प्रगटभया पीछे अ-नन्तकाल गए भी समता भाव-निर्लोभता नहीं होय। ऐसे ए अनन्तानुवन्धीकी चौकड़ी ही है। याके फलतें अनन्तकाल संसारमें भ्रमण नहीं मिटै। इनके उदय होते सम्यकभाव नहीं होय। अप्रत्याख्यानकी चौकड़ी-तहां अप्रत्याख्यानका क्रोध, सो हल रेखावत। जैसे हलकी रेखा वर्ष छहमहीनामें वर्षादि कारणपाय मिटै।

तैसें ही यह अप्रत्याख्यान क्रोध मिटै। और अप्रत्याख्यान मान अस्थिके स्तंभके समान जगतविशेष किए नमै है। तैसे ही यह मान कारणपाय विशेष काल गए पीछे मिटै भी है। अप्रत्याख्यान माया हिरनके सींगवत गांठिकौ धरै है। याकी माया बहुतकालगए मिटै है। अप्रत्याख्यान लोभ कुशुंभके रंग समान है। जैसे विशेष जतनतैं कुशुम्भरंग मिटै है। तैसे ही बहुत काल गए यह लोभ जाय है। ऐसे यह अप्रत्याख्यानकी चौकड़ी, श्रावकके अणुव्रतका स्थान जो पंचमगुण स्थान ताकौं रोके है याके उदयमें पंचमगुणस्थान नाहीं होय है। प्रत्याख्यानकी चौकड़ी कहिए है। तहां प्रत्याख्यान क्रोध गाड़ीकी रेखा समानि है। जैसे पांच-च्यारि दिन तथा पहरमें तथा मास पक्षमें गाड़ीकी रेखा मिटि जाय। तैसेही अल्पकालमें प्रत्याख्यान क्रोध उपशांत होय प्रत्याख्यान मान कछू मंद है। जैसा काष्ठका स्तम्भ अल्प जतन तैं नमैं तैंसे ही, स्तुतिमात्र अल्पकालमें उपशांत होय है। प्रत्याख्यानी मायामेंढके सींगमें अल्पगांठि होय तैसेही इस मायाका उदय अल्पकाल होय मिटै। प्रत्याख्यान लोभ है सो हल्दीके रंग समानि है। जैसे हल्दीका रंग अल्प जतनतैं मिटै। तैसेही प्रत्याख्यान लोभ शीघ्र ही मिटै। ऐसे प्रत्याख्यानकी चौकड़ी है। सो अपने उदय मुनि पद नहीं होने देय है। अब संज्वलनकी चौकड़ी कहिए है—सो संज्वलन क्रोध महामंद। जैसे जल रेखा तुरंतमिटै, तैंसे यह संज्वलन क्रोधका उदय मिटै है। संज्वलनमान, उदय देय बेत समान तुरंत मार्दव भाव होय। जैसे बेतका स्तम्भ तुरत नमै है। संज्वलनमाया, गईयाके सींगवत्, अल्प बांकी लिये सरल है। याका उदय, तुरत होय तुरत मिटै है। संज्वलन लोभ पतंगके रंग समानि है। जैसे पतंगरंग तुरत मिटै, तैसे संज्वलन लोभ उदय होय, अल्प रस देय मिटै है। ऐसे संज्वलनकी चौकड़ी अपने उदय होतै यथाख्यात चारित्र नहीं होने देय है। ऐसे तो सामान्य सोलह कषाय जानना आगे नो कषाय तहाँ जाके उदय जीवके हाँसि, कौतुक प्रगटै सो हास्य कर्म है। जाके उदयजीवकूं पर वस्तु शुभलागै सुख उपजावै, सो रतिकर्म है। जाके उदय जीवकूं परवस्तु अनिष्ठ लागै सो अरति कर्म है। जाके उदय जीवकूं चिन्ता शोक होय, सो शोक कर्म है। जा कर्मके उदय जीवका उर कम्पायमान होय, पर वस्तु तैं भय उपजै सो भय कर्म है। जा कर्मके उदय जीवकूं परवस्तु देखि ग्लानि उपजै, सो जगुप्साकर्म

है। जा कर्मके उदय जीवकूं स्त्रीके स्पर्श करनेकी अभिलाषा होय, सो पुरुषवेद कर्म है। जा कर्मके उदयसे जीवकूं पुरुषके सेवन-स्पर्शकी इच्छा होय सो स्त्रीवेद कर्म है। जा कर्मके उदय युगपत पुरुष-स्त्रीके स्पर्शकी इच्छा रूप भाव होय सो नपुंसक वेद कर्म है। ऐसे चारित्रमोहकी पच्चीस कहीं। दर्शनमोहका स्वरूप आगे कहैंगे। आगे देव आयुका उदय जेते काल रहै, तेते काल देवका शरीर आत्मा तैं नहीं छूटै। जाके उदय मनुष्यका शरीर आत्मातैं नहीं छूटै, सो मनुष्य आयु है। जा कर्मके उदय जीव तिर्यञ्च गतिको न छोड़ि सकै सो तिर्यञ्च आयु कर्म है। जा कर्मके उदय जीव नारकीकाशरीर नहीं तज सकै, सो नारक आयु कर्म है। ऐसे चार आयु जानना। आगे नाम कर्म कहिये है सो प्रथम ही वर्ण चतुष्ककी कहैं हैं। सो तहां स्पर्श को आठ-जाके उदय शरीर कठोर होय, सो कठोर कर्म है। शरीर कोमल होय, सो कोमल कर्म है। शरीर भारी होय सो भारी कर्म है। शरीर हलका होय, सो हलका कर्म है। शरीर उष्ण होय सो उष्ण कर्म है। शरीर शीतल होय सो शीतल कर्म है। शरीर चिकना होय सो चिक्कन कर्म है। शरीर रूखा होय सो रूक्ष कर्म है। आगे रसकी—जाके उदय शरीर खाटा होय, सो खट्टा कर्म है। शरीर मिष्ट होय सो मीठा कर्म है। शरीर कड़वा होय सो कड़वा कर्म है। शरीर कषायला होय सो कषायला कर्म है। चिरपरा होय सो चिरपरा कर्म है। आगे गंधकी कहिये-जाके उदय शरीरमें सुगंध होय सो सुगंध कर्म है। शरीरमें दुर्गन्ध होय सो दुर्गन्ध कर्म है। आगे वर्ण कहिए है। जाके उदय शरीर सुरख होय सो लाल कर्म है। जाके उदय शरीर सब्ज (हरा) होय सो हरा कर्म है। जाके उदय शरीर श्याम होय सो श्याम कर्म है। जाके उदय शरीर पीत होय सों पीत कर्म है। जाके उदय शरीर श्वेत होय सो श्वेत कर्म है। ऐसे वर्ण चतुष्क हैं। आगे संहनन षट्के नाम—बज्रवृषभनाराच बज्रनाराच नाराच अर्धनाराच कीलक स्फाटिक ए षट् हैं। अब इनका अर्थ-वृषभ नाम तौ नसका है। अरु नाराच नाम कीलीका है। अरु संहनन नाम हाड़का है। सो जाके उदय नस, हाड़, कीली, बज्रमई होय, सो बज्रवृषभनाराच संहनन कर्म है। जाके उदय शरीरमें नसें तो बज्ररहित होंय अरु कीली, हाड़, बज्रमई होय, सो बज्रनाराचसंहनन कर्म है। संधनिमें दृढ़

कीली होय तीनों ही हाड़, कीली व नसें बज्ररहित जाके उदय होंय, सो नाराच संहनन कर्म है जाके उदय संधनिमें अर्ध कीलिका होय, सो अर्धनाराच संहनन कर्म है। शरीरमें कीली रहित हाड़नकी नौक तैं नौक अड़ी होय, अरु गांठतें दृढ़ होय, सो कीलक संहनन है। शरीरके हाड़, घासके पूला समानि नशा चांमतैं दृढ़ि होंय, सो स्फाटिक संहनन कर्म है। ऐसे संहननकर्म है। आगे संस्थान षट् कहिये हैं। तिनके नाम-समचतुर, निग्रोध परिमण्डल, स्वाति, कुब्जक हुंड़क ए षट् हैं। अब इनका अर्थ बताइये है—तहां जा कर्मके उदय शरीर महा सुन्दर शास्त्रोक्त प्रमाण मई आगोपांग सहित होय, सो समचतुर संस्थान है। जाके उदय शरीर ऊपरि तैं चौड़ा, नीचे तैं कृषि होय, सो निग्रोध परिमण्डल संस्थान है। शरीर ऊपरिवैं कृष अरु नीचे तैं दीर्घ होय, सो स्वाति कर्म है। शरीरमें पीठि, छाती ऊँची होय सो कुब्जक संस्थानकर्म है। शरीर काल मर्यादा तैं बहुत छोटा होय, सो बामन नाम कर्म है। शरीर बेघाटि-रुण्डमुण्ड-हीनाधिक अंगोपांग सहित अशुभ होय, सो हुंडक संस्थान है। आगे च्यारि गति कहिए हैं—जाके उदय देवका शरीर होय, सो देवगति है। जाके उदय मनुष्य शरीर पावै, सो मनुष्यगति कर्म है। और जाकर्मके उदय तिर्यञ्चका शरीर पावै, सो तिर्यञ्चगति कर्म है। जाकर्मके उदय नारक शरीर पावै, सो नारक गति कर्म है। ऐसे गति। आगै गत्यानुपूर्वी कहिए है—तहां देवगतिमें उपजनेहारा मनुष्य अपनी आयुभोग, शरीर तजि, जाकर्मके उदय, ताही मनुष्यके आकार आत्म प्रदेश अंतरालमें राखे, और रूप नाहीं होंय, सो देवगत्यानुपूर्वी है ॥ १ ॥ मनुष्य गतिमें उपजनेहारा जीव, अनियतगतितैं आवै, सो अपने तैजस शरीरके आकार आत्मप्रदेश अन्तरालमें राखै, पलटै नाहीं सो मनुष्यगत्यानुपूर्वी कर्म है ॥ २ ॥ तिर्यञ्च गतिमें उपजनेहारा जीव जा कर्मके उदय जा शरीरकौं तजि आवै ताका आकार उपजनेके संस्थान ताईं लिये आवै और रूप नाहीं होने देय सो तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी कर्म है ॥ ३ ॥ जाकर्मके उदय नरकमें उपजनेहारा जीव परगतिका जैसा शरीर तजै तैसे ही आकार नरकमें उपजनेके संस्थान ताईं आवै आत्म प्रदेश और रूप नाहीं होंय सो नरकानुपूर्वी कर्म है ॥ ४ ॥ ऐसे पूर्वी हैं। आगे पंच शरीर स्वरूप कहिए हैं—तहां जा कर्मके उदय वैक्रियक शरीर

रूप पुद्गलन कूं परणमाय शरीरका बंधान करि पुण्य-पाप फलतैं देव नारकी होय, सो वैक्रियक शरीर है॥ १॥ जाके उदय आहारक जाति शरीर रूप पुद्गलन कें स्कंधकौं परणमाय आहारक शरीरका बंधान होय सो आहारक शरीर है ॥ २ ॥ जाकर्मके उदय पुद्गलका ग्रहण करि मनुष्यतिर्यञ्चके शरीर मई परणमावै सो औदारिक शरीर है ॥ ३ ॥ जा कर्मके उदय तैजस जातिके पुद्गलनकौं ग्रहण करि आत्मा शरीरके बंधान रूप करै सो तैजस शरीर है ॥ ४ ॥ संसारी जीव पुरातन अगले कर्मके शुभाशुभ परिणाम तिनतैं ज्ञानावरणादिक कर्मरूप होनेयोग्य जे कार्माणवर्गणा पुद्गल स्कंध तिनकूं ग्रहण करि अष्ट कमरूप शरीरका बंधान करै सो कार्माण शरीर है ॥ ५ ॥ इति शरीर भये। आगे पंच बंधान व पंच संघातका स्वरूप कहिए है सो जैसे दिवाल कौं गारा ईंट पत्थरादि इनकर दिवाल खड़ी करिये ऐसा तौ बन्धान है। ता दिवाल पै लेप करि साफ करिए तो संघात हैं। तैसे ही शरीरनके बन्धान संघात हैं। तहां इन पंच शरीरनके नस हाड़ मांसादि अवयवनका बन्धानकरि शरीरका करना सो बन्धान है। ते पांच जानना। अरु इन शरीरनमें वातादि लपेटन रूप सफाई सो पंच संघात है। इति वन्धान संघात। आगे पंच जातिका स्वरूप कहिये हैं—तहाँ जाके उदय एकेन्द्रियका क्षयोपशम पावै ताके स्पर्श इन्द्री सहित जो एकेन्द्रियका शरीर तामें आत्माका रहना सो एकेन्द्रिय जाति है ॥ १ ॥ जा कर्मके उदय स्पर्श व रसन इन दोय इद्रियके क्षयोपशम सहित शरीरमें आत्माका रहना सो बेइन्द्रिय जाति है ॥ २ ॥ जा कर्मके उदय स्पर्शन रसन घ्राण इन तीन इन्द्रियके क्षयोपशम सहित शरीरका धारण सो ते इन्द्रिय जाति है॥ ३ ॥ और जा कर्मके उदय स्पर्शन रसन घ्राण और चक्षु इन च्यारि इन्द्रियके क्षयोपशमसहित शरीरका धारना सो चौ इन्द्रिय जाति है। जाकर्मके उदय पांचों इन्द्रियोंका क्षयोपशम सहित शरीरका धारना सो पंचेन्द्रिय जाति है। इति जाति। आगे अंगोपांगका स्वरूप कहिये हैं—अङ्ग आठ वाके उपांग। सो हाथ दोय मस्तक एक नितम्ब एक छाती एक पीठ एक ऐसे आठतौ ए अंग है। अंगमें जे लक्षण होंय, सो उपांग हैं। जैसे शीशमें मुख, कांन, नांक, नेत्रादि ए उपांग है। तथा हाथ, पांवनकी अंगुली आदि अनेक विधि सो उपांग हैं। सो ए अङ्ग-उपाङ्ग तीन शरीरनमें होंय हैं।

तैजस कार्माण के नाहीं। तहां जा कर्मके उदय मनुष्यतीर्यञ्चके शरीरन में अंगोपांग होंय, सो औदारिक अंगोपांग है। और जा कर्मके उदय प्रमत्तगुणस्थानवर्ती मुनीश्वरके मस्तकतैं संशयके निमित्तपाय आहारक शरीरमें अंगोपांग होंय, सो आहारक अंगोपांग है। जा कर्मके उदय देव नारकीके वैक्रियक शरीरमें अंगोपांग होय, सो वैक्रियक अंगोपांग है। इति तीन अंगोपांग। आगे विहायोगति कहिये है। तहां जा कर्मके उदयजीवकी शुभचाल होय, सो शुभ विहायोगति कर्म है। जाके उदय अशुभ चाल होय, सो अशुभ विहायोगति कर्म है। इति चाल। ऐसे पिंडप्रकृति पैंसठि कहीं। आगे अपिंड प्रकृति कहिए है—तहां जा कर्मके उदय जीवका शरीराकार आत्मप्रदेश यथावत् रहै, हलकाभारी नहीं होय, सो अगुरुलघुकर्म है। जहां शरीरमें जाके उदय ऐसे स्थान होंय, जिनकरि पवन खैंचे-निकासे, सो श्वासोश्वास कर्म है। तहां जाके उदय ऐसा शरीर होय, जो मूलमें तो शीतल अरु जाकी प्रभा उष्ण सो आतापकर्म है। सो यह प्रकृति सूर्यके विमान सम्बन्धी पृथ्वी कायक जीव हैं, तिनकैं होय है। इन एकेन्द्रिय बिना और स्थावरनकैं इसका उदय नाहीं। जाका शरीर शीतल होय, व ताकी प्रभा भी शीतल होय सो उद्योग कर्म है। ए प्रकृति एकेन्द्रिय आदि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चनके उदय होय है बाकी तीन गति में नाहीं। जहां जा शरीरमें चिन्ह आंगोपांग होय जाकरि अपना ही घात होय, जैसे साम्हरिके सींगादिक जाके भारतैं मरै सो अपघात कर्म है। जहॉ जाके उदय शरीरमें ऐसे चिन्ह आंगोपांग होंय जाकरि आप परका घात करै सो परघात कर्म है। निर्माण प्रकृतिके दोय भेद हैं। एकस्थान निर्माण—एक प्रमाणनिर्माण है। जहां शरीरमें जाके अंगोपांगके स्थान होंय, सो तौ स्थाननिर्माण कर्म है। जाके उदय शरीरमें अंगोपांगके प्रमाण यथावत् होंय, सो प्रमाणनिर्माण है। जो प्रमाणनिर्माण भला नहीं होय तौ अंगोपांग अधिक हीन होय, कै तौ अंगुली चारि होंय, तथा छह अंगुली होंय, तथा हस्त, पांव, नाक, नेत्र, कानादि छोटे होंय, तथा छह अंगुली होंय, तथा बड़े होंय। अरु जो स्थाननिर्माण भला नहीं होय तौ अंगोपांग स्थान चूकि होंय तब असुहावने होय। ऐसे निर्माणप्रकृति दोय प्रकार जानना। जा जीवनैं पहले भवमें सोलहकारणभावनादिक निमित्तकरि तीर्थंकरकर्मबांध्या होय जाके उदय पञ्चकल्याणक होंय। तथा

दीक्षाके आठवर्ष पहिले जिनने तीर्थंकरका कर्मबाध्या ताके तीनकल्याणक होंय, तथा दीक्षा लिये पीछे बांध्या होंय, ताके दोय कल्याणक होंय, और जाके अन्तमुंहूर्त आयुमें बाकी रह्या ऐसा यतीश्वरकैं तीर्थंकरका बंध भया होय तिनकैं ज्ञान-निर्वाण दोय ही कल्याणक एकैं काल होंय। सामोशरणादि विभूति प्रगट नहीं होंय। ऐसे जा कर्मके उदय पंचकल्याणक तथा तीन कल्याणक होंय, जिनके समोशरणादि विभूति प्रगटै सो तीर्थंकर कर्म है। ऐसा अगुराष्टक। आगे दुकदश है। तहां जाके उदय अपने योग्य जीव पर्याप्ति धारि पांच षट्का धारन करै सो पर्याप्त कहिये। जाके उदय शरीर पर्याप्ति पूरण नहीं होय पहले ही मरण करै सो अपर्याप्ति कर्म है। जा कर्मके उदय एक शरीरका स्वामी एक जीव होय सो प्रत्येक कर्म है। जाके उदय एक शरीरके अनन्त जीव स्वामी होंय, सो साधारण कर्म है। जाके उदय दुख आये दुख मेटवैकी शक्ति होंय, और सुखी होने कौ अपनी शक्ति प्रमाण करि कायकौ चंचल करि सकै सो त्रसकर्म है। जाके उदय सुख दुख आये स्थावरपै ही सहै, मेटनेको असमर्थ सो स्थावर कर्म है। जाके उदय ऐसा शरीर पावै जाकरि अन्य बादर पदार्थन कौं आप रोकै, तथा अन्य बादर पदार्थन करि आप गमन करता रुकै, सो बादर कर्म है॥ जाके उदय आपके ऐसा शरीर होय, सो कोई पर्वत, वज्रादिक तैं नहीं रुकै। तथा आप कोईन कूं नहीं रोकै अग्नितैं, शस्त्रतैं, इत्यादिक निमित्तन तैं नहीं मरै, सो सूक्ष्मकर्म है। महानिष्ट शुस्वर सबकौं प्रिय शब्द निकसै सो सुश्वर कर्म है। जाके उदय ऐसा शब्द निकलै जो सर्व कौं बुरा लगै सो आपकौं भी बुरा लागै सो :दुश्वर कर्म है। जाके उदय शरीरमें कोई ऐसा शुभ चिंह अंगोपांगमें होंय जाकरि सर्वकौं वल्लभ (प्रिय) होय, सो शुभ कर्म है। ताके और उदय शरीरमें ऐसा कोई चिंह होय, जाकरि आप सबकौं बुरा लागे सो अशुभ कर्म है। जाके उदय शरीरके सप्तधातादि चलाचल रहैं जाकरि रोग वेष्टित शरीर होय सो अस्थिरकर्म है। जाके उदय आत्माजहाँ जाय तहां आदर पावै सो आदेय कर्म है। जाके उदय आत्मा जहाँ जाय तहां अनादर पावे, अपमानतें आत्मादुखी होय, सो अनादेय कम है। जाके उदय जीव सुखो रहै और सर्व लोग सुखो कहैं, भले कहै, सो सुभग कम है। जाके उदय

जीव दुख दारिद्र करि पीड़ित होंय ताके जन्मतैंही माता पितादिक कुटुम्बके मरण कूं प्राप्त भए होंय महा दुखी रहता होय, लोग ताकों रंक दीन कहते होंय, सो दुर्भगकर्म है। जाके उदय जगत तैं जश पावै, बिना दिये बिना जाने लोग जाकी कीर्ति करैं सो यशस्कीर्ति कर्म है जाके उदय जगत विषैं बिना जानै बिना देखैं लोग जाकी निंदा करैं अपकीरति धारी होय, सो अयस्कीर्ति कर्म है। ऐसे नाम कर्मकी तिरानबे प्रकृति जानना। इतिनामकर्म। आगे गोत्रकर्म। जहां जाके उदय वैश्य, ब्राह्मण, क्षत्री, इन तीन कुलके मनुष्योंमें तथा चारि प्रकारके देवनमें उपजै सो ऊंच गोत्र कर्म है। जाके उदय नारक, तीर्यञ्च इन दोगतिमें उपजे तथा मनुष्यमें हीनाचारी शूद्र तिनमें उपजे सो नीचगोत्र कर्म हैं। इति गोत्र कर्म। आगे अन्तरायका स्वरूप कहैं हैं। जो कर्मके उदय धन होतें भी दान नहीं दिया जाय सो दानान्तराय कर्म है जा कर्मके उदय अनेक दिनलों उद्यम करै, पराईसेवा करि परिकौं राजी करे, अपनी चतुरतातें सर्वकों प्रसन्न राखैं अनेक उपाय द्वीप, उदधि, फिरि व्यापारादि करै तौ भी लाभ नहीं होय, सो लाभन्तराय कर्म है। जाकर्मके उदयसे वस्तु भोगी नहीं जाय, आपका चित्त अपने घरमें अनेक शुभ वस्तु देख भोग्या चाहे है परन्तु भोगि नहीं सकै, सो भोगअन्तराय कर्म है।जाकर्मके उदय घरमें अनेक उपभोग योग्य वस्तु है विस्तर, हस्थी, घोटक, रतन आभूषन मंदिर, स्त्री रथादि अनेक हैं परन्तु भोगि नहीं सकै सो उपभोगांतराय है। जाकर्मके उदय अनेक भेषजादि यतन करना, नाना प्रकार षट्रस भोजन करना तौ भी तनमें पुरुशार्थ, पराक्रम नहीं होय, सो वीर्यान्तराय कर्म है। इति अंतरायकर्म। ऐसे अष्टमूल कर्मकी एक सौअड़तालीस (१४८) उत्तर प्रकृति कहीं आगे घाति अघाति कहैं हैं। तहां ज्ञानावरनी, दर्शनावरनी, मोहनी, अंतराय, ए चारिकर्म घातिया हैं तिनकी प्रकृति सैंतालीस हैं। वेदनी, आयु नाम, गोत्र, ए चारि अघातिया हैं। इनकी प्रकृति एकसौ एक हैं तहां घातिया के भेद दोय हैं एक तो सघातिया, एक सर्वघातिया। तहां केवल ज्ञानावरनी विना चारि तौ ज्ञानावरनी, तीन दर्शनावरनी, अंतराय पांच, हास्यादि नव, संज्वलनकी चारि और सम्यक प्रकृति ए छब्बीस प्रकृति देश घातिया है। और केवलज्ञानावरनी, केवलदर्शनावरनी, निद्रा पांच, अनंतानुबंधी च्यारि, अप्रत्याख्यान च्यारि

प्रत्याख्यान च्यारि, मिथ्यात्व और सम्यकमिथ्यात्व और ए सर्व इक्कीस सर्वघाती हैं। जे अपने घातवें योग्य जे गुण तिनकौं सर्वप्रकार नहीं घात सकैं। एकोदेश घातैं सो तौ देशघातिया कहिये। और जे अपने घातवे योग्य जे गुण तिनकौं सर्वप्रकार घातैं सो सर्व घातिया कहिये हैं। ऐसे घातियाके दोय भेद कहे आगे जीवविपाकी, पुद्गलविपाकी भवविपाकी क्षेत्र विपाकी, इन सबका स्वरूप कहिए है। तहाँ प्रथम ही पुद्गल विपाकी है सो कहिए है। शरीर पांच, अङ्गोपाङ्ग तीन, संहनन षट्, सस्थान षट्, वर्ण चतुष्टकी वीस, स्थिर, उद्योत आताप, निर्माण, अस्थिर, अगुरलघु, अशुभ, साधारण, प्रत्येक, अपघात, शुभ, परघात ए वासठि प्रकृति हैं सो तो पुद्गलविपाको हैं। इन सर्वका उदय शरीर स्कंध ऊपर ही होय है। जीव पै इनका बल नाहीं। तातें पुद्गलविपाकी कही है। इति पुद्गल विपाकी। आगे जीवविपाकी कहिये हैं। तहां घातियाकी सैतालीस, गोत्रको दोय, वेदनीकी दोय, जाति पाँच, चाल दोय गति च्यारि, तीर्थंकर उच्छ्वास पर्याप्ति—अपर्याप्ति, त्रस, स्थावर, सूक्ष्म वादर, सुश्वर दुश्वर आदेय अनादेय सुभग दुर्भग यशस्कीर्ति अयस्कीर्ति, ऐसे अठत्तरिप्रकृति अपना उदय जीव पै करि सुख-दुख करैं हैं। तातें इनकों जीव-विपाकी कहिए। इति जीवविपाकी। आगेक्षेत्रविपाकी। आनपूर्वी च्यारि ए अपने योग्य अन्तरालका क्षेत्र तामें इनकाही उदय होय है। भावार्थ—जो जीव वर्तमान शरीर तजिकैं वक्रगति सहित अन्य पर्यायमें उपजकौं जाय तब अन्तरालमें कार्माण अवस्थाके क्षेत्र विषैं आनुपूर्वीका उदय होय है। इति क्षेत्रविपाकी। आगे भव-विपाकी। आगे च्यारि आयुकर्मनका उदय अपने अपने भव विषैं ही होय है। तातें च्यारि आयु भवविपाकी जानना। इति भवविपाकी। ऐसे पुद्गलविपाकी वासठि, जीवविपाकी अठत्तर, क्षेत्रविपाकी च्यारि, भवविपाकी च्यारि, ऐसे ए सर्व एकसौअड़तालीस हैं॥ १४८॥ ऐसे कहे जो ए अष्टमूल कर्म सो द्रव्यकर्म है। ए सर्व द्रव्यकर्म पुद्गलनके स्कंध जानना। सो इन अष्टकर्मन करि समस्त संसारी जीव बंधे हैं। सो जीवराशि दोय प्रकार हैं। एकतौ संसारी एक मोक्षजीव। तिनमें संसारीनके दोय भेद हैं। एक भव्य, एक अभव्य। तहाँ अभव्य राशि, अरु भव्यराशितैं अनंतानन्त गुणे जीव और दूरभव्य, अभव्य, समानि कबहूं मोक्ष योग्य

कर्म संकलान (जंजीर) तैं बंधे मोहनृपके
नाहीं। तथा और भी केते मिथ्यादृष्टी जीव मोहरागके चोर सो कर्म संकलान (जंजीर) तैं बंधे मोहनृपके
बंदी खाने पड़े हैं सो मिथ्यात योग बंधानतैं कबहूं नाहीं छूटैं। ऐसे अनादि मिथ्यात्वधारी जीव अनंत हैं। तर०
इनमें कोई जीव मोक्ष जावे योग्य हैं, ते कारण पाय मोक्ष होंय, सो एतो संसारी राशि कही। अरु निकट-
भव्य जीव जो सासादन दूसरे गुणस्थान तैं लगाय अयोगी गुणस्थान पर्यंत है सो यह मोक्षजीव हैं। ए सर्व
मोक्ष जावे योग्य हैं। इनमें यथायोग्य कर्मनका सम्बन्ध है। कोई कर्मबन्ध करने योग्य हैं। इन जीवन पै
द्रव्यकर्मका बंध पाइये है। सर्व अष्टकर्मकी प्रकृति एकसौ अड़तालीस हैं। तिनमें बंध योग्य एकसौबीस हैं।
बाकी अठाईस इनकी इनहीमें गर्भित करी हैं। वर्णचतुष्ककी बीस थीं सो च्यारि ही मूल राखीं, उत्तर भेद
तिनके सोलह सो तिन च्यारिमें ही गर्भित किये और पंच बंधन, पंचसंघात ए दश प्रकृति पंच शरीरनमें
मिला दई। दर्शन मोहके तीन भेद थे सो दोय भेद एक मिथ्यातमें मिलाए। ऐसी वर्णकी सोलह शरीरा-
दिककी दश दर्शनमोहकी दोय। ए सर्व अठाईस एकसौबीसमें गर्भित करीं। एकसौबीस राखीं सो बंध
योग्य प्रकृति नाना जीवापेक्षा एकसौबीस। तिनकौं अब गुणस्थानत्व प्रति कहिये हैं। सो मिथ्यात गुणस्थानमें
आहारक द्विककी दोय एक औरतीर्थंकरये तीन प्रकृति नहीं बंधै हैं। उपरिले गुणस्थानमें यथायोग्य आय मिलैं-
गी। मिथ्यात्वमें एकसोसत्तरा प्रकृति नाना जीवापेक्षा बंधयोग्य हैं। और मिथ्यात्व छूटि जब इस जीवकूं
उपरिले गुणस्थानकी प्राप्ति होय है। तिनकै बंध कहिये है। सो सासादनमें ये सोलह प्रकृतिका बंध नाहीं।
मिथ्यात् हीमें रहै है। तिनके नाम मिथ्यात्व। "नपुंसक वेद" के "नरककात्रिक, ॥३॥ स्फाटिक संहनन, हुंडक
संस्थान, जाति च्यारि, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्ति, आताप, स्थावर ए सोलहका बंध दूसरे सासादन गुणस्थानमें
नाहीं तातें। सासादनमें एकसौ एकका बंध है। तीसरे गुणस्थानमें दूसरे सासादनसे पच्चीसकी व्युच्छित्ति करी
तिनके नाम। अनन्तानुबंधी च्यारि, मध्यके संहनन च्यारि, संस्थानमध्यके च्यारि, निद्रामोटी तीन तिर्यञ्चत्रि-
ककी तीन, दुर्भग, दुस्वर अनादेय स्त्रीवेद, नीचगोत्र १ उद्योतनाम, अशुभ चाल ए पच्चीस तजि तीसरे गुण- ॥६३॥
स्थान छिहंतरि लेय आया यहां देव और मनुष्य आयु ये दो का बंध भी नाहीं चौहत्तरिका बंध तीजे गुण-

सु०
३॥

स्थान है। इहां व्युच्छित्ति नाहीं यहां चौहत्तरि लेय चौथे गुणस्थान आए तहां यहां देवायु मनुष्यायु तीर्थंकर. ए तीन यहां मिलो तब नवं मिल सतेहत्तरिका बंध चौथे गुणस्थानमें है। तहां दशकी व्युच्छित्ति तिनके नाम। ॥६४॥
अप्रत्याख्यानकी च्यारि मनुष्यकाद्विक औदारिक शरीर. औदारिक अंगोपांग. वज्रवृषभनाराच संहनन. इन दशकी व्युच्छित्ति करि सडसठिका बंधतेय पंचम गुणस्थानमें आया। तहां प्रत्याख्यानकी चौकड़ीकी व्युच्छित्ति करितिरेसठि लेय छठेगुणस्थानमें आया। यहां प्रमत्तमें त्रेसठिकाबंध है। यहां षट्की व्युच्छित्ति तिनके नाम अस्थिर. अशुभ. असाता. अयश. अरति. शोक. ए षट्की व्युच्छित्ति करि सत्तावन लेय सातवें गुणस्थान गए. तहां आहारक द्विक मिल्या तब गुणसठिका बन्ध अप्रमत्तमें। तहां देवायुकी व्युच्छित्ति। अठावन लेय आठवें गुणस्थान आया। तहां छत्तीस प्रकृतिनकी व्युच्छित्ति सात भागन। सो प्रथम भागमें निद्रा. प्रचला ए दोय की व्युच्छित्ति। और चार भागमें व्युच्छित्ति नाहीं। छठे भागमें तीसकी व्युच्छित्ति। तहां अगुरुलघु उपघात अपघात और परघात ए च्यारि अगुरुलघु चतुष्ककी हैं। तीर्थंकर. निर्माण. पर्याप्त. प्रत्येक, त्रस. बादर. उच्छ्वास. शुभ, स्थिर. आदेय दो. सुभग दो. वर्णादि चतुष्ककी दो. च्यारि पंचेन्द्रिय दो. समचतुरस्र संस्थान दो. शुभगमन दो. देवगति दो. देवगत्यानुपूर्वी दो. वैक्रियक अंगोपांग दो. आहारक अङ्गोपांग २ वैक्रियक शरीर दो. आहारकशरीर तैजसशरीर कर्माणशरीर दो. ऐसे ए तीस प्रकृतिका छठे भागमें व्युच्छित्ति। अब सातवें भागमें हास्य, रति. भय जुगुप्सा, ए च्यारि. ए सब सातहीं भागकी छत्तीसकी अष्टममें निर्जीर्ण करि नवममें गये तहां बाईसका बन्ध है इहां संज्वलनकी चौकड़ीकी च्यारि, पुरुषवेद. इन पंचनकी व्युच्छित्ति अनिवृत्तमें करि सत्तरप्रकृतिनका बंध दशमें लेय गया। तहां सोलहकी विच्छित्ति। ज्ञानावरणीकी पांच. अंतराय पांच दर्शनावरण च्यारि. उच्च-गोत्र, यशस्कीर्ति. इन सोलहकी विच्छित्ति दशमेंगुणस्थानमें करि। एक सातावेदनी रही सो ग्यारहमें बारमें तेरहमें इन तीन गुणस्थानमें एक साताका बन्ध है। तेरहमें तें चौदहमें गये तब साताकी व्युच्छित्ति. तेरहमें करि चौदहवें गुणस्थान गया। तहां बन्ध नाहीं। यह कर्मबन्ध सयोग गुणस्थानतांई भगवानकें कह्या है। सो ॥६५॥
योगनके निमित्तपाय सातावेदनीका उपचार करि बंध कह्या है। सो बंध स्थिति-अनुभाग रहित है। परन्तु

सुख-दुखदायक तौ प्रदेशबन्ध है। सो आत्माकौं सुख-दुखकारी नाहीं।
निमित्तके सद्भाव होते प्रकृति अरु कषायनके अभाव तैं स्थिति अनुभाग-
स्थिति-अनुभाग है। सो मोहके अभावतैं कषायनका अभाव है। तेरहवेंगुणस्थान तांई कर्मका बन्ध कह्या
बन्धका अभाव है तथापि यहाँ योगत्रिक है। तातैं योगनके निमित्ततैं सम्यकवंत है। सो हमारे कर्मबंध होता
है। केतेक अतत्वश्रद्धानी दीर्घमोहके उदयतैं ऐसा मानै हैं जो हम आपकौं अशुद्धका शुद्धमॉनि
नाहीं—हम अबंध हैं। ऐसा उल्टा श्रद्धानकरि कर्मबन्धके मेटवेतैं निरुद्यमी होय, कहिये है। भो
अनेक असंयमक्रियाकरि विषय-कषायन रूप परणति करि, अपना परभव विगारै हैं। ताकौं यथायोग्य गुणस्थान तॉई
विषयनके लोभी तूं देखि। कर्मनका बंध मुनीश्वरों तैं लगाय केवली भगवान् तांई कर्मका बंध नाहीं होय है।
पदस्थप्रमाण, समस्त संसारी जीवनकौं होय है। जे कर्मरहित जीव हैं तिनके आपका अनादि
तातैं भो भव्यात्मा, तूं स्वेच्छाचार परणाम तजिकैं जिनदेव भाषित प्रमाण, सरधान करि, ऐसे सयोग
संचित कर्मबंध रूप मलतैं शुद्ध होयवेका उपाय करि। तातैं अतीन्द्रियसुखका भोक्ता होय। अल्पकाल रहकै सिद्धपद
केवलीगुणस्थानमें एक सातावेदनीका बंध ताकी व्युच्छित्तिकरि अयोगकेवली होय,
पावै हैं। ऐसा सामान्य बंधकास्वरूप कह्या। इति बंध प्रकरण समाप्तम् ॥ ४ ॥ यहां दर्शनमोहकी तीन
आगे गुणस्थानप्रति कर्मनका उदय कहिये है। तहाँ बंधमें मिथ्यात एक था। तब उदय योग्य
जानना, सो एकसौबीस तौ बंधकी। सम्यग्मिथ्यात व सम्यक्प्रकृति ए दोय और बधाई, आहारकद्विककी दोय।
एकसौबाईस हैं ॥ १२२ ॥ अब नानाजीव अपेक्षा गुणस्थान कहिये हैं तहाँ मिथ्यातमें तातैं प्रथमगुणस्थानमें
तीर्थंकर सम्यग्मिथ्यात, सम्यकप्रकृति, ए पंच प्रकृति मिथ्यातमें उदययोग्य नाहीं। पंचप्रकृति मिथ्यात्वमें
एकसौसत्रहका उदय है। तहां सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्ति, आताप और मिथ्यात ए तहाँ एकसौग्यारह- ॥९५॥
व्युच्छित्ति कर एकसौबारह प्रकृत्ति लेय सासादनमें आया। सो यहाँ नरकानुपूर्वी उतारी, व्युच्छित्तिकरि मिश्र-
का सासादनमें उदय। तहां अनंतानुबंधी चार, जाति च्यारि ॥ ४ ॥ स्थावर इन नवकी तहाँ एक मिश्रमोहनी मि-
गुणस्थानमें एकसौ दोय लेय आया। तीन आनुपूर्वी उतारी तब निन्यानवै रहीं।

सी। तहाँ मिश्रगुणस्थानमें एकसौप्रकृतिका उदय है। तहाँ मिश्रमोहनीकी व्युच्छित्ति तीजे गुणस्थान करि चौथे गुणस्थानमें आया। तहां अनुपूर्वी च्यारि सम्यकप्रकृति ए पंच यहाँ मिली तब चौथेमें एकसौच्यारिका उदय है। इहाँ सत्तरहकी व्युच्छित्ति। तिनके नाम—अप्रत्याख्यान ॥ ४ ॥ देवगति देवगत्यानुपूर्वी, देवायु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरक आयु, वैक्रियक, वैक्रियकअङ्गोपांग, तिर्यचगत्यानुपूर्वी, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अयशस्कीर्ति, अनादेय ए सत्तरह व्युच्छित्ति करि पंचगुणस्थानमें आया। तहाँ सत्यासीका उदय है। इहाँ आठकी व्युच्छित्ति, प्रत्याख्यान च्यारि ॥ ४ ॥ तिर्यंञ्चगति, तिर्यञ्चायु, नीचगोत्र, उद्योतनाम ए आठकी व्युच्छित्ति करि पंचमें तैं छठेमें आया। यहाँ आहारकद्विक मिले तब इकयासीका उदय होय हैं। इहां आहारकद्विककी दोय मोटी निद्रा तीन इन पंचनकी व्युच्छित्ति छठेमेंकरि सातवेंमें आया सो अप्रमत्तमें छिहत्तरिका उदय है। इहाँ संहनन अन्तके तीन सम्यकप्रकृति, इन च्यारिकी व्युच्छित्ति करि आठवेंमें आया, सो यहाँ बहत्तरका उदय है। यहाँ षट् हास्यादिककी व्युच्छित्ति करि नववेंमें आया, तो यहां छयासठिका उदय है। नवमेंमें तीनवेद, संज्वलनकी लोभ बिना तीन, इन षट्की व्युच्छित्ति करि साठि लेय दशवेंमें आया। दशवेंमें सूक्ष्मलोभकी व्युच्छित्ति करि ग्यारहवेंमें आया, यहां गुणसठिका उदय। नाराच, वज्रनाराच, इन दोयकी व्युच्छित्ति करि बारहवेंमें गया। यहां विशेष एता जो नाराच, वज्रनाराच, इन दोय संहनन सहित क्षायिक श्रेणी नहीं चढ़ै है। जो उपशांतके मार्ग आवै सो उपशम श्रेणीवाला आवै है। जे जीव क्षायिकश्रेणी चढ़ै सो पंच संहननकी व्युच्छित्ति सातवेंमें ही करै है। एक वज्रवृषभ नाराचसंहननसहित श्रेणी चढ़ि दशमें ते बारहमें ही आवै। ग्यारहमें नहीं जाय। ऐसा जानना और इहां उपशमश्रेणीवारेकी अपेक्षा ग्यारवेंमें नाराच, वज्रनाराचसंहननकी व्युच्छित्ति कही है। प्रथम संहनन वाला तौ दोऊ श्रेणि चढ़ै है ऐसा जानना। अब ५७ लेय बारहवेंमें आया। तहां ज्ञानावरणी ५ दर्शनावरणी ६ अन्तराय ५ ए सोलह प्रकृति बारवेंमें व्युच्छित्ति करि तेरवेंमें आया। तहाँ तीर्थंकर प्रकृति आय मिली वियालीसका उदय सयोग में है। तहां तीसकी व्युच्छित्ति-वर्णचतुष्ककी ४ अगुरुचतुष्ककी ४ संस्थान ६ चाल २ औदारिक १ औदारिक अङ्गो-

पॉग, तेजस, कार्माण, शुभ, अशुभ, स्थिर, अस्थिर, सुस्वर, दुस्वर, प्रत्येक, निर्माण, वज्रवृषभनाराच संहनन, वेदनी ए तीसकी व्युच्छित्ति तेरवेंमें करि ग्यारह लेय अयोगगुणस्थान गया। तहाँ चौदहवेंमें बारहका उदय अरु बारह ही प्रकृतिकी व्युच्छित्ति पंचेन्द्रिय, पर्याप्ति, त्रस, बादर, मनुष्यगति, मनुष्यायु, ऊंचगोत्र, यशस्कीर्ति, आदेय, सुभग, तीर्थंकर, वेदनी, इन बारहों ही की चौदहवेंमें व्युच्छित्ति करि, आत्मा अष्टकर्म रहित शुद्ध, परमात्मा निरंजन अमूर्तीक, इत्यादि गुण प्रगट होय, सिद्धलोककों प्राप्त होय है। ऐसे सिद्धभगवानकों हमारा नमस्कार होऊ। ऐसे उदयका सामान्यस्वभाव कह्या। इति उदय ॥

आगे सत्ताका स्वरूप संक्षेप कहिए है। तहाँ सत्तायोग्य प्रकृति एकसौअड़तालीस हैं। नाना जीव अपेक्षा जहाँ विशेष है सो पहले कहिये है। जा जाव सम्यक् पायकैं ऊपरले गुणस्थाननमें कबहूं नहीं गया होय, सो ऐसा अनादिमिथ्यादृष्टी, ताके आहारकचतुष्कका च्यारि, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात और तीर्थंकर, इन सात विना १४१ की सत्ता है। सादि मिथ्यादृष्टिकैं जाके मिश्रमोहनीकी सत्ता होय, ताके १४२ की सत्ता है। जहां मिश्रमोहनीकी सत्ता नाहीं, ताकी जगह सम्यकप्रकृतिकी सत्ता होय तौ भी १४२ की ही सत्ता होय। १४१ तो अगली अरु मिश्रमोहनी व सम्यक्प्रकृति इन दोय को और भए, १४३ को सत्ता होय है। जाके तीर्थंकरकी सत्ता होय मिश्र मोहनीका नहीं होय ताके भी १४३ की ही सत्ता होय है। जाके मिश्रमोहनी व आहारकचतुष्ककी सत्ता होय ताके १४८ की सत्ता होय। ऐसे सामान्य सत्ताका स्वरूप कहिए है। विशेष भंग इहाँ ग्रन्थ बढ़नेके भयसे तथा यह बालबोध ग्रन्थ है सो कठिन होनेके भयतैं नहीं लिखे हैं। इनका विशेष श्रीगोमट्टसारजीके "कर्मकांड" महाधिकार तामें विशेष सत्ता अधिकार है तहां तैं जानना। ऐसे सत्ता योग्य प्रकृति नाना जीव अपेक्षा १४८ हैं। तहाँ प्रथम गुणस्थानमें १४८ की सत्ता है। आहारकद्विक, तीर्थंकर इन तीन बिना सासादनमें १४५ की सत्ता है। इन तीन प्रकृतिको जाके सत्ता होय, ताके दूसरा गुणस्थान नहीं होय। सो तीसरे गुणस्थानमें आहारकद्विक आय मिला। तातैं मिश्रमें १४७ की सत्ता भयी। चौथे गुणस्थानमें तीर्थंकर भी मिला, सो चौथेमें १४८ की सत्ता है। यहाँ चौथे गुणस्थानमें नरकायु की

व्युच्छित्ति करि पांचवें गुणस्थान आया। भावार्थ-जाके नरकायु की सत्ता होय ताके पंचम गुणस्थान नहीं होय, तातें पंचवेंमें १४७ की सत्ता है। जाके तिर्यंचायुकी सत्ता होय तिनकौं महाव्रत नहीं होय, तातें तिर्यंचायुकी व्युच्छित्ति पांचवैंमें करि छठेमें आया। तहां प्रमत्तमें १४६ की सत्ता है। इहां व्युच्छित्ति नाहीं। आगे जे जीव उपशमश्रेणी चढ़ैं ताके ग्यारहवेंगुणस्थान लूं १४६ की सत्ता होय है, आगे गमन नाहीं। क्षायकश्रेणी चढ़नेवालाजीव सप्तमगुणस्थानमें अनंतानुबंधी की ४ दर्शनमोहनीको ३, देवायु इन आठनकी व्युच्छित्ति अप्रमत्तमैं करि एकसौअड़तीस लेय अष्टममें आया, इहां व्युच्छित्ति नाहीं। अरु १३८ लेय नवममैं गया। तहाँ नवमें व्युच्छित्ति तिनके नाम—प्रत्याख्यान ४, अप्रत्याख्यान ४, लोभ विना संज्वलनकी ३, हास्यादि ६ ए मोहको २० दर्शनावरणीकी मोटीनिद्रा ३ अार नामकर्मको जाति ४ नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, सूक्ष्म साधारण, अपर्याप्ति आताप स्थावर, ए सोलह नाम कर्मको सर्व मिलि छत्तीस भई। ए नवमेंमैं व्युच्छित्ति करि दशवेंमें आया। इहां एकसौ दोयकी सत्ता है। तहां सूक्ष्म लोभकी व्युच्छित्ति करि बारवेंमें आया। तहां १०१ की सत्ता है। सा इहां ज्ञानावरणी पांच, दर्शनावरणीकीषट् अन्तरायकी पाँच। ए सोलहकी व्युच्छित्ति करि बारवेंतें पच्यासी लेयकै तेरहवेंमें गया। तहां व्युच्छित्ति नाहीं। पच्यासी लेय चौदहमें गया। तहाँ पच्यासीकी सत्ता अरु यहां ही उनकी व्युच्छित्ति सो चौदहवें गुणस्थानके अन्तके दोय समयमें पिच्यासीकी व्युच्छित्ति। सो प्रथम समयमें बहत्तरि, चरम समयमें तेरा। सो प्रथम समय बहत्तरि तिनके नाम वेदनी गोत्रकी एक नीचगोत्र, वरण चतुष्ककी २०, संस्थान ६, संहनन शरीर ५, बंधन ५, संघात ५ अङ्गोपांग ३ चाल २ देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, निर्माण उच्छ्वास अपघात परघात उद्योत प्रत्येक स्वरदुककोदोय शुभ अशुभ स्थिर अस्थिर दुर्भग अनादेय अयश ए सर्व मिलि ७२ जानना ए तौ चौदहवें गुणस्थानका सर्व काल पूरण होते दोय समय बाकी रहे तहाँ ताँई तो व्युच्छित्ति नाहीं। अरु दुचरमसमयमें इन बहत्तरिकी व्युच्छित्ति करी। अब अन्तके समयमें व्युच्छित्ति-पंचेन्द्रिय, पर्याप्ति त्रस, बादर मनुष्यगति मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु, उंचगोत्र, यशस्कीर्ति आदेय, सुभग तीर्थंकर वेदनी ए तेरा प्रकृति चरम

समय व्युच्छित्ति करि जीव सिद्ध होय है। ऐसे अयोगगुणस्थानमें पिच्यासी कर्म प्रकृतिनकी व्युच्छित्ति करि सर्व कर्मरज रहित शुद्ध निरंजन अमूर्ति सिद्ध परमात्मा होंय हैं। ऐसे शुद्धआत्माकों बारंबार नमस्कार होऊ। ऐसे यह पुद्गल द्रव्य संसारी जीवनके रागद्वेष परणामकरि ज्ञानावरणादि अष्टकर्मरूप होय जीवनके बंध उदय सत्ता रूप होय नर नारकादि अनेकगतिनमें भ्रमण करावै हैं।

इति श्रीसुदृष्टितरंगिणीनामग्रन्थ मध्ये अजीवतत्व द्रव्य कर्म पुद्गलोक तिनका बंध, उदय, सत्तारूप परिणमन शक्ति सहित कथन वर्णनो नाम पंचमपर्व सम्पूर्णम् ॥

अथानन्तर मोही जीवनकूं जैसे द्रव्य कर्म नचावै है तैसे ही नाचै है। जैसे बाजीगर दंडकरि बंदरकों अनेक बार नचावै है। तैसे ही संसारी जीवनकौं कर्म बाजीगर आशारूपी दंड तै अनेक बार नचावै है। तथा जैसे कोई नट धनके लोभ तैं अपने एक तनके अनेक स्वांग धरि, लोकन कूं दिखाय आश्चर्य उपजावे। कबहूं राजाका स्वांग धरै, कबहूं रंकका कबहूं स्त्री कबहूं नर कबहूं सिंह कबहूं बकरी कबहूं आदि अनेक स्वॉंग अपने तनके उपरला खलका रूपी वस्त्र ताकूं फेरि-फेरि स्वॉंग बदलि-बदलि तमाशगीरिनकौं हर्ष—विषाद उपजावै है। तैसे ही यह जीवरूपी नट अपने कर्मजनित शरीरका आवरण ताकौ पलटि २ अनेक स्वॉंगकरि नाँचै है। अनेक स्वॉंगधरि जगतमैं नृत्य करता गमन करै है सो या जीवके गमन करवेके मार्ग चौदह हैं। इनही चतुर्दशमार्गनमों अनादि कालका जीव गमन करै है। सोही मार्ग बताइए हैं ॥ गाथा—

गई इंदियं च काये, जोए वेए कसाय णाणेया। संजम दंसण लेस्सा, भविया सम्मत सण्णि आहारे ॥

गति ४ इन्द्रिय ५ काय ६ योग १५ वेद ३ कषाय पचीस ज्ञान ८ संयम ७ दर्शन ४ लेश्या ६, भव्य-अभव्य। मार्गणा, सम्यक् ६ संज्ञी २ और आहार २ ऐसे चोदह भेद मार्गणा हैं। अब इनका सामान्य अर्थ लिखिए है। तहाँ गति नाम कर्मके उदय गतिसम्बन्धी शरीरनके आकार धरना सो गति है। इन्द्रियनामकर्म के उदयतें जेती इन्द्रिय अपने शरीर योग्य इन्द्रियनके आकार होंय सो इन्द्रियमार्गणा है। त्रसस्थावर नाम कर्मके उदय करि त्रस और स्थावर पर्यायमें जन्म लेना सो काय है। नोइन्द्रियकर्मके बलतै अष्टपांखड़ीका

कमलाकार द्रव्यमनके निमित्तपाय आत्माके प्रदेशनका चंचल होना सो मनोयोग है। स्वर कर्मके उदय बचन बोलनेका क्षय, उपशम होना ताके निमित्त पाय आत्माके प्रदेशन चंचल होना सो बचन योग है। पंच प्रकार शरीरके उदयतें यथायोग्य कायका निमित्त पाय, आत्माके प्रदेशनका चंचल होना सो काय योग है। ऐसे योग हैं वेदकर्मके उदयसे स्त्रीकी चाहि तथा पुरुषकी चाहि तथा स्त्री-पुरुषकी युगपत चाहि इत्यादि भाव सो वेद है। चारित्रमोहके उदय क्रोध-मानादिक कषाय रूप होना, सो कषाय है। जाकरि आत्मा स्वपर पदार्थनकों जानै, सो ज्ञान है। मोहके तीव्र उदय करि विषयनमें मोहित होय, दया विषै प्रमादी होय प्रवर्तना सो असंयम है। अप्रत्यक्ष ज्ञानके उदय सहित आत्माका व्रताव्रत रूप युगपत प्रवर्तना, सो देश संयम है। सव सावद्यरहित क्रिया रूप प्रवर्तना, सो सकल संयम है। ताके पंच भेद हैं। दर्शनावरणीके क्षयोपशमतैं स्वपरके देखनेकी शक्ति सो दर्शन है। कषायनमें रंजायमान योग सो लेश्या है। मोक्ष होने योग्य सम्यग्दर्शनादि सामग्री प्रगट होनेकी नाहीं, सो अभव्य है। मोक्ष होनेयोग्य रत्नत्रयादि सामग्री प्रगट होय ताके, सो भव्य है। ता भव्यके तीन भेद हैं। जीव अजीव तत्त्वनका भले प्रकार जानपना दिढ़ि श्रद्धान सो सम्यक् है। सो तत्व श्रद्धान तथा अतत्व श्रद्धान करि षट् भेद रूप है। मनका क्षयोपशम होने योग्य तथा मनका क्षयोपशम नहीं होने योग्य ऐसा जीव सो संगी मार्गणा है। औदारिक वेक्रियक आहारक इन तीन शरीर रूप पुद्गलनका ग्रहण सो आहारक है। कार्माण अन्तरालमें इन तीन शरीरका ग्रहण नाहीं सो अनाहारक है। ऐसे जीवके आवागमन करवेके चौदह मार्ग कहे। और भी जीवके गमनके स्थान हैं सो कहिए हैं—

गाथा—गुण जीवा पज्जत्ती, पाणा सराणा मग्गण ओय। उवओगोविय कमसो, वीसंतु परूवणा भणिद॥

अर्थ—तहाँ गुणस्थान जीव समास पर्याप्ति प्राण संज्ञा चौदह मार्गणा उपयोग ऐसे इस गाथामें वीस प्ररूपणा जानना। अब सामान्य अर्थ—तहां प्रथम गुणस्थाननका सामान्य अर्थ—तहां दर्शन मोह ३ अनन्तानुबंधी ४ इन सात कर्म प्रकृतिनके उदय जीवकों अतत्व श्रद्धान भावका होना ताकरि पंच प्रकार मिथ्यात रूप रहना सो मिथ्यात गुणस्थान है। इसके होतें जेते गुण होंय सो मिथ्यात गुण है। तातें याका नाम मिथ्यात

गुणस्थान है। प्रथमोपशम सम्यक्धारी अपने योग्य अन्तमुहूर्त काल पूरण करतैं, उत्कृष्टपने छह आवली काल बाकी रहतैं अनन्तानुबन्धी च्यारिमें ते कोई एक कषायका उदय होतें मिथ्यात रहित अनन्तानुबन्धी सहित होय सो सासादन सम्यक् कहावे है। सो यह सासादन मिथ्यात समानि गुणको धरै है। जैसे क्षीर भोजन करि पीछे वमन करिए ताका लेश रह जाय अल्पकाल क्षीरका स्वाद रहै पीछे जाता रहैगा। तैसे ही सम्यक् पाय कैं, ताकौं वमन कहिए तजिकैं मिथ्यातकौं आवै है। सम्यक् काल है तातैं सम्यक् कह्या है। तातैं सासादन सम्यक है। मिश्रमोहके उदयतैं मिश्र श्रद्धान होय है। जैसे मिश्री अरु दही मिलायकैं खाये खाटामिष्ट स्वाद दोऊ एकै काल आवै। तैसे ही मिथ्यात अरु सम्यक् इन दोऊ रूप एक श्रद्धान होय है तातैं याका नाम मिश्रगुणस्थान है। दर्शन मोहकी तीन अनन्तानुबन्धी च्यारि इन सातनके क्षयोपशमतैं भया जो आत्माकैं षट् द्रव्य नव पदार्थ पंचास्तिकाय इनके गुण पर्यायनका यथावत श्रद्धानका अनुभव सो ही सांची दृष्टि यही सम्यक कहिए। यह चारित्र मोहकै उदय संयम नहीं धर सकै सो असंयमी है। तातैं अव्रत सम्यग्दृष्टि कह्या है। तहां त्रस हिंसाका त्याग सो तो व्रत है। पंच स्थावरनमें व्रत करना तो है परन्तु सर्व प्रकार हिंसा बचती नाहीं निमित्त पाय स्थावर हिंसा होय है तातैं स्थावर हिंसाका त्याग नाहीं। मन और इन्द्री वश रहती नाहीं। तातैं ग्यारह अव्रत हैं तातैं इस पंचम गुणस्थानमें व्रत अव्रत दोऊ हैं। तातैं याका नाम व्रताव्रत है। तथा अल्प व्रतके योगतैं देशव्रत भी नाम है। तहां प्रत्याख्यान के अभावतैं सकल संयम भया ताके सो एकाग्र ध्यानका अवलम्बन छूटि किंचिद् प्रमादके वश करि आहार विहार उपदेशादि रूप क्रिया वचन इत्यादिक रूप प्रवर्त होना सो प्रमत्त छटा गुण स्थान है। तहां विहार उपदेशादि क्रिया रहित ध्यानावलम्बी योगीश्वर ताकौं प्रमाद रहित अप्रमत्त गुणधारी कहिए। तहां कारण होनेके निमित्त पाय परिणामनको महा विशुद्ध-ताके योगतैं समय-समय अनंत गुणी विशुद्धता लिये समय-समय असंख्यात गुणी निर्जरा कर्मनकी होय सो अपूर्वकरण अष्टम गुणस्थान कहिये। याहीतें अधिक विशुद्धता लिये हास्यादिक नो कषायके रस रहित अपने गुण योग्य काल एक रूप वर्तना अनेक जीवनकी एकसी विशुद्धता होती और रूप नाहीं होनी सो

अनिवृत्त करण है। अल्प मोहके अंशनिका सद्भाव और सकल मोहका अभाव सहित निराकुल सुखका स्थान, सो सूक्ष्मसाम्पराय दशमो गुणस्थान है॥ सकल मोहके उपशम भावतैं आत्माके प्रदेश अडोल—निराकुल सुख मई यथाख्यात चारित्रका स्थान, उपशांत मोह नाम ग्यारमां गुणस्थान है। सकल मोहके क्षय भावतैं प्रगट होय महासुख स्थान, केवल—ज्ञानका निकटवर्ती सो क्षीण मोह बारमां गुणस्थान है। च्यारि घातिया कर्म रहित अनन्त चतुष्टय सहित केवलज्ञानी सकल सिद्ध भगवान्, रागद्वेष कषाय रहित मन वचन काय योग सहित सो सयोग गुणस्थान है। इहां भव्य जीवनके सम्बोधन निमित्त वचनप्राण की शक्ति सहित, वचनयोगके निमित्त पाय वचनका उपदेशरूप खिरना, ताकौं सुनि भव्य ताकौं शिव सुख मार्ग बतावनेकूं दिव्यध्वनि करि उपदेश करते, काय प्राण के जोरतैं काययोगतैं अनेक देशन में विहार कर्म करते, समोशरण सहित विचरैं सो, तेरमां गुणस्थान है। सो याही गुणस्थान विषैं अन्तमुहूर्त बाकी रहै, केईक केवलीन कैं समुद्घात होय है। सो समुद्घात के भेद सात हैं। सो यहां केवल समुद्घातका निमित्त पाय समुद्घातका स्वरूप कहिये हैं। सो प्रथम ही नाम कहिए है—वेदना कषाय वैक्रियक मरणान्तिक तैजस आहारक केवल ए सात तौ समुद्घात हैं। एक भेद उत्पाद ऐसे ए आठ भेद हैं। अब इनका संक्षेप स्वरूप लिखिए है। तहां महावेदनाके योगतैं आत्माके प्रदेश शरीरके बाहिर निकसना, सो वेदना समुद्घात है। सो बात, पित्त, ताप, पेट, नेत्र, क्रिमि इत्यादिक अनेक रोग सहित, कोई जीवके तौ शरीरतैं एक प्रदेश, कोऊ कैं दोय प्रदेश, किसीकैं तीन प्रदेश इत्यादिक अनेक जीवन सम्बन्धी एक-एक प्रदेश बधतैं असंख्यात प्रदेश वधते भेद वधैं हैं। सो उत्कृष्टपने मूल शरीरतैं नव गुणे भये और शरीर प्रमाण ऊंचे ऐसे आत्माकौं तीव्र वेदना होय तौ मारे वेदनाके शरीरकौं छोड़ि प्रदेश बाहिर निकसैं हैं! सो इस वेदना समुद्घात वाले वनस्पति जीव तीन अशुभलेश्या सहित अनंत हैं। वायु तेज अप पृथ्वी इन च्यारि स्थावरन में तीन अशुभ लेश्या सहित जीव असंख्याते हैं। इनका क्षेत्र तीन लोक है सो इसमैं ऐसा कोई प्रदेश क्षेत्र नहीं बच्या है जहां इस आत्मा नै अनन्त-अनन्त बार महादुख भावन करि वेदना समुद्घात तैं

क्षेत्र नहीं स्परसा सो सर्वदेश प्रदेशनि विषैं वेदना भोगी है। सो पाप परणातिका फल जानना ॥ इति वेदना समुद्घात ॥

आगे कषाय समुद्घातका स्वरूप लिखिये है। तहां क्रोधादिक तीव्र कषायके निमित्त पाय आत्माके प्रदेश, मूल शरीरतैं निकसैं तौ एक प्रदेश कोईके दोय प्रदेश तीन प्रदेश आदि एक-एक प्रदेश बधतैं, मूल-शरीरतैं तिगुणै निकसैं हैं। ऊंचे शरीर प्रमाण निकसैं सो घन रूप करिए तौं मूल शरीरतैं नव गुणे होंय सो इस कषाय समुद्घात वाले अशुभ तीन लेश्या वारे बनस्पतीमैं अनंत हैं और वायु तेज अप पृथ्वी इन च्यारि स्थावरनमें असंख्यात हैं। भावार्थ—इस लोक मात्र प्रदेशनमें कोई एक प्रदेश नहीं रह्या जहां अनेकबार कषाय समुद्घाततैं क्षेत्र नहीं स्परसा। यानै सर्वलोक प्रदेशन पै कषाय समुद्घात किए हैं। सो अशुभ फलका उदय जानना। इति कषाय समुद्घात ॥ २ ॥

आगे मारणांतिक समुद्घातका स्वरूप लिखिये है—मारणान्तिक समुद्घात वाले जीव तीन अशुभ लेश्या सहित तिनका क्षेत्र सर्व लोक है। तहां जो जीवमरणके अन्तमुहूर्त पहले अपने शरीरमें तिष्ठता ही आत्मा प्रदेशन कूं बधायकैं अपने उपजनेके स्थान क्षेत्रकूं जाय स्परसै पीछे आय मूल शरीरमें समाहि पीछे मरै। सो पहले तहां ताईं आत्म प्रदेशनकी डोरी पङ्कति रूप विस्तारै सो मारणांतिक समुद्घात है। भावार्थ तीन लोक क्षेत्र विषैं ऐसा प्रदेश क्षेत्र नाहीं, जहां इस आत्माने अनंतबार मारणांतिक समुद्घात करि प्रदेश नाहीं स्पर्शा। सर्व आकाश क्षेत्रनमें मारणांतिक समुद्घात करै है। सो पापके उदयका फल है। इति मारणांतिक समुद्घात ॥ ३ ॥

ऐसे वेदना कषाय मारणांतिक इन तीन समुद्घात सहित अशुभ तीन लेश्या सहित जीव बनस्पतिमें अनन्ते और स्थावर आदि स्थानमैं असंख्याते व मनुष्यनमें संख्याते हैं। ऐसे तीन अशुभ लेश्यामें समुद्घात कह्या। आगे शुभ तीन लेश्यानमें समुद्घात कहिए है। तहां कषाय समुद्घात विषैं तथा वेदना समुद्घात विषैं तौ प्रदेशनिका निकलनेका प्रमाण आगे अशुभ लेश्यामें कहिआए। मूल शरीरतैं नवगुणे चौड़े

शरीर प्रमाण ऊंचे ताही प्रमाण जानना। मारणांतिक समुद्घात विषैं पीत लेश्यावाले भवनत्रिक तथा सौ-
धर्म ईशान वाले देव विहार कर कोई निमित्त पाय तीसरी नारकी पृथ्वी पर्यन्त जांय अरु तहाँ ही आयु अंत
होय मरण करैं, सो जीव आठमी मोक्ष शिलामें वादर पृथ्वी कायमें उपजैं। सो अपने अशुभ भावनकी उपा-
र्जना तैं सो जीव नव राजू क्षेत्र पर्यन्त आत्म प्रदेशकौं बधाय अपने उपजनेका क्षेत्र स्परसै है। ऐसा जानना
और तैजस समुद्घातमें आत्म प्रदेश बारह योजन लम्बे, नव योजन चौड़े और सूच्यांगुलके संख्याते भाग
ऊंचे विस्तरै हैं। तहाँ कोई देशमें बड़ी वेदना प्रजाकौं होय। तथा कोई देशमें महा दुःख ईति भीतिकरि
भरया होय। अरु ताकूं देखि कदाचित ऋद्धिधारी मुनिकौं करुणा उपजै, तौ मुनीश्वरके दाहिने स्कंधतैं शुभ
तैजस पुतला निकसै सो बारह योजन चौड़े क्षेत्र तांईके जीवनकी सर्व वेदना तत्क्षण मेटि, सर्व प्रजाकौं
सुखी करै है। कदाचित प्रजा (देश जीवन) के पापका उदय आवै तौ ऋद्धिधारी मुनिकौं कोप उपजै तौ
बामें स्कंधतैं अशुभ तैजस निकसै, सो अपने विषय योग्य क्षेत्रकूं भस्म करै। पीछे मुनीके आत्म प्रदेश निकसि-
कोपतैं अग्निमई होय पृथ्वीको क्षय करि, पीछे मुनिके तनमें प्रवेश करैं, सो मुनिका तन भी भस्म होय।
ऐसे तैजस दोय प्रकार है। सो तैजस समुद्घात जानना। इति तैजस समुद्घात ॥ ५ ॥ आगे
आहारक समुद्घातका स्वरूप कहैं हैं। तहां आहारक समुद्घात विषैं एक जीव अपेक्षा कोई योगी-
श्वरको तत्वज्ञान विचारमें संशय उपजै, तौ ऋद्धिधारी मुनिकौं ऋद्धियोगतैं आहारक पुतला निकसै सो
संख्यात योजन अढ़ाई द्वीप प्रमाण क्षेत्र लम्बे आत्म प्रदेश होय। अरु सूच्यांगुलके संख्यात भाग चौड़े ऊंचे
विस्तार धरै हैं। शुक्ल लेश्याविना इन लेश्यानमें केवल समुद्घात होता नाहीं। इति आहारक समुद्घात।
आगे केवल समुद्घात विशेष कहिए है। शुक्ललेश्यामें और समुद्घात तो पूर्ववत जानना। केवल समुद्घात-
का विशेष है। सो कहिये है—तहाँ केवल समुद्घातके च्यारि भेद हैं। दंड कपाट प्रतर लोकपूर्ण। तहाँ दंड
के दोय भेद हैं—एक स्थितिदंड एक उपविष्टदंड और प्रतर व लोक पूर्ण इनका एक-एक ही भेद है। तहाँ
पद्मासन सहित दंड समुद्घात होय सो स्थिति दंड समुद्घात है। कायोत्सर्ग आसन सहित दंड होय सो

बातवलय विना लोककी उपविष्ट दंड है । तहाँ स्थितिदंड समुद्घातमें एक जीव अपेक्षा प्रदेशनका विस्तार—बातवलय विना लोककी ऊंचाई प्रमाण है । सो किंचिद् घाटि चौदह राजू प्रमाण तौ लांबे होय है। बारह अंगुल प्रमाण चौड़ा गोलाकार प्रदेश हो है । उपविष्ट दंड समुद्घात विषैं लम्बाई तौ पूर्ववत् ही है। चौड़ाई स्थिति दंडतैं तिगुणी छत्तीस अंगुल प्रमाण गोलाकार दंड हो है। ऐसा तौ समुद्घात कह्या। आगे कपाट समुद्घातके च्यारि भेद हैं। पूर्वाभिमुख स्थिति कपाट, उत्तराभिमुख स्थितिकपाट, पूर्वाभिमुख उपविष्ट कपाट, तहाँ उतराभिमुख उपषिष्ट कपाट पूर्वदिशामुख सहित केवली पद्मासन होय कपाट करैं, सो पूर्वाभिमुख स्थिति कपाट, कहिए। तहाँ इस कपाट में आत्मा के प्रदेश बातवलय विना लोक प्रमाण कछू घाटि चौदह राजू तौ लम्बे हैं। उत्तर दक्षिण दिशा बिषैं लोक की चोड़ाई प्रमाण सात राजू चौड़े हैं। पूर्व-पश्चिम दिशा विषैं बारह अंगुल मोटाई लिये ऊंचे हैं। ऐसे पूर्वा मुख स्थिति कपाट समुद्घात जानना। पूर्वदिशा मुख किए केवलज्ञानी कायोत्सर्ग आसन सहित कपाट समुद्घा-त करैं सो पूर्वाभिमुख उपविष्ट कपाटसमुद्घात कहिए। तहाँ एक जोव अपेक्षा प्रदेशन को लम्बाई कछूघाटि चौदह राजू हैं। चोड़ाई सात राजू और छत्तीस अंगुल मोटाई प्रमाण प्रदेश ऊंचे हैं। ऐसे पूर्वाभिमुख उपविष्ट कपाट समुद्घात है। तथा उत्तराभिमुख स्थिति कपाट समुद्घात ताकौं कहिए है, जहाँ उत्तर दिशा मुख किए केवली पद्मासन सहित कपाट समुद्घात करैं सो कछुघाटि चौदह राजू लम्बे आत्म प्रदेश होय हैं। पूरव-पश्चिम दिशा विषैं अधोलोक नीचे सात राजू आत्म प्रदेश चौड़े होय हैं, अरु उपरि क्रमतैं घटते-घटते मध्यलोकमें एक राजू मोटे पोछे उपरि क्रमतैं बढ़ते-बढ़ते ब्रह्म स्वर्ग पर्यन्त पाँच राजू, उपरि क्रमतैं घटते घटते लोक शिखर पै एकराजू हैं। ऐसे पूर्व-पश्चिम दिशामें लोक प्रमाण प्रतर होय हैं। उत्तर-दक्षिण दिशा विषैं बारा अंगुल प्रदेश मोटे जानना। ऐसे उत्तराभिमुख स्थिति कपाट कह्या। आगे उत्तर दिशा कौं मुखकरि कायोत्सर्ग आसन सहित केवलज्ञानी कपाट करैं, सो उत्तराभिमुख उपविष्ट कपाट कहिए। तहाँ आत्म प्रदेशन की लम्बाई तौ किंचित् न्यून चौदह राजू है। उत्तराभिमुख स्थिति कपाटकी मोटाईका प्रमाण बारह अंगुल है। तातें तिगुणे छत्तीस अंगुल मोटाई आत्म प्रदेश जानना। इति कपाट। आगे प्रतरका स्वरूप कहिये है। तहाँ

तान वातवलय विना सर्व लोक विषै आत्मप्रदेशनका फैलना सो ए सर्व चत्र प्रतर समुद्घात है और वात-वलय सहित सर्व लोक चौदह राजू पुरुषाकारमें सर्व जगह आत्म प्रदेश फैलें सो लोक पूरन समुद्घात है। ।२०६। तातें ही एक जीवके प्रदेश लोक प्रमाण कहे हैं। सो ही "तत्वार्थ सूत्र" में कहिए है। फांकी—"असंख्येयाः प्रदेशाः धर्माधर्मैकजीवानाम्।" याका अर्थ—जो धर्मद्रव्य, अधर्म द्रव्य और जीव इन तीनूंके प्रदेश असंख्याते हैं। तथा लोक प्रमाण है। ॥ इति सामान्य समुद्घात स्वरूप ॥ ऐसें समुद्घातनका सामान्य स्वरूप कह्या। तरं० विशेष 'श्रीगोमटसारजी' सो जानना। तहाँ तेरहवें गुणस्थानमें केवल समुद्घात करें ताका विशेष कह्या। सो याविधि केवल समुद्घात करि पीछें समुद्घात मेटि मूल शरीरमें सर्व आत्म प्रदेश समाहिकें तिष्ठें, सो तेरहवाँ सयोगकेवली गुणस्थान जानना। अन्तर्मुहूर्त पीछें अयोग केवली गुणस्थान होय। तहाँ मन वचन काय योग नाहीं। तातें अयोगचौदहमां गुणस्थान हैं। पीछें इहाँ लघु पंच अक्षर काल प्रमाण स्थिति करि निर्माण हो है। ऐसे सामान्यभाव चौदह गुणस्थानका स्वरूप कह्या। इति गुणस्थान ॥ आगे जीव समास कहिए है। तहां एकेन्द्रिय सूक्ष्म वादर वेन्द्रिय (दोय इन्द्रिय) तेन्द्रिय चौ इन्द्रिय सैंनी असैंनी ऐसे सात भये। तिनके पर्याप्ति, अपर्याप्तिकरि चौदह भेद जीवसमास है। इनहींके विशेषभेद एक दोय तीन च्यारि आदि एक-एक वढ़ती उगनीस (उन्नीस) भेद हो हैं। अड़तीस संतावन चारिसौपट् भेद भी हैं सो आगे कहेंगे। सो भी इन चौदहहीमें गर्भित हैं। इति जीव समास। आगे पर्याप्तिका स्वरूप कहिये है। तहां शरीरादि यथायोग्य इन्द्रियनका पुद्गलीक आकार होना सो पर्याप्ति है। तहाँ औदारिक, वैक्रियक, आहारक इन तीन शरीर जातिकी पुद्गल परमाणुक ग्रहण करि इन तीन शरीररूप परमाणु परणमाय केतीक अस्थि चाँम नशा मांसादि कठिन अवयव करना सो इनका नाम खलरूप है। और केतेक परमाणूनकौं श्रोणित वीर्यादिक रसभागरूप पतले अवयव परणमावै है ऐसे पुद्गलनकौं परिणमाय रस रूप करे। ऐसे अन्तर्मुहूर्त काल यथायोग्य तांई क्रिया करै, सो आहार पर्याप्ति कहिए है। इन ग्रहे पुद्गल स्कंधनकौं आत्मा आकर्षण करि शरीररूप करे सो शरीर पर्याप्ति ।२०६। है। इहां प्रश्न-जो तुमने कह्या कि आहार पर्याप्ति करतें पुद्गल हाड़ मांसादि रूप करे है सो वैक्रियक आहा-

रक शरीरनमें हाड़ मॉस कैसे संभवै ? ताका समाधान-जो पुद्गल तीन शरीर रूप होने योग्य होय ताकौं
आतमा आकरषण करकैं खल रूप रसरूप करै है। सो खलरूप करै तिनकै तो कठोर अवयव अपने शरीर योग्य
बनावै है अरु रसरूप भई तिनकै वह चलै ऐसे रसरूप पतले अवयव बने हैं। पीछे अपने-अपने शरीरनके

अङ्गोपॉगरूप परणमै हैं। तहाँ आहारक वैक्रियक शरीरनकै तौ उन प्रमाण अङ्गोपॉगरूप बनै हैं। औदारिक

शरीरके औदारिक शरीर प्रमाण अंगोपाँग बनै हैं। ऐसे अपने-अपने शरीर पदस्थ योग्य पुद्गल स्कंधनका
परणमणं है। सो सहजैही परणमै हैं। असहाय, विना यतन परणमणा जानना। ऐसे आहार पर्याप्ति करि
पीछे तिन ग्रहे परमाणु कठोर तथा नरम अव्ययरूप पुद्गलनका शरीररूप बंधान करना सो शरीर पर्याप्ति है।
किया जो शरीर ताके यथायोग्य इन्द्रियनके आकार स्थानके स्थान होना सो इन्द्रिय पर्याप्ति है। जा शरीरमें स्वासो-
च्छ्वास लेनेके स्थानक होना सो तिनतैं पवनकौं अङ्गीकार करि बाहिरतैं भीतर लेना पीछे बाहिर काढ़णा।
ऐसे पुद्गलीक आकार शरीरमें होना सो स्वासोच्छ्वास पर्याप्ति है। ऐसे पीछे जिन स्थाननतैं वचन बोल्या
जाय, ऐसे पुद्गलीक आकार शरीरमें होना, सो भाषा पर्याप्ति है। हिरदे विषैं विकल्प करनेका आकार तातैं
शुभाशुभ विचार कीजिए ऐसा अष्ट पांखड़ीका कमलाकार द्रव्यमन पुद्लीक स्कंधका परणमण सो मन पर्या-
प्ति है। इति पर्याप्ति। आगे प्राणनका संक्षेप स्वरूप कहिए है। तहां शरीरादि यथायोग्य इन्द्रियनमें अपने-
अपने विषय ग्रहणकी शक्ति रूप परिणमण, सो प्राण कहिए। तहाँ पंचेन्द्रिय अपने विषयमें रंजायमान करै
सो जैसे स्पर्श इन्द्रिय अपने योग्य अष्ट विषय तिनका निमित्त मिलै सुख-दुख करनेकी शक्ति सो स्पर्श इ-
न्द्रिय प्राण है। जहां रसना इन्द्रिय अपने योग्य पंच विषय तिनमें रंजायमान करै सो रसना इन्द्रिय प्राण
है। घ्राणइन्द्रिय अपने योग्य दोय विषयनमें रंजायमान करै सो घ्राण इन्द्रिय प्राण है। और तहाँ चक्षु इन्द्रिय
अपने योग्य पंच विषयनमें रंजायमान करै सो चक्षु इन्द्रिय प्राण है और जहां श्रोत्र इन्द्रिय अपने योग्य ।१००।
विषयमें रंजायमान करै सो श्रोत इन्द्रिय प्राण है। ऐसे तौ पंचेन्द्रिय प्राण हैं। और जहाँ मन विषैं शुभाशुभ
संकल्प-विकल्प करि हर्ष-विषाद उपजावनेकी शक्ति, सो मन प्राण है। और वचन बोलनेकी शक्ति सो वचन

प्राण है। और जहाँ काय विषैं हलन-चलन रूप गमनागमनकी शक्ति सो काय प्राण है। और जहाँ शरीर विषैं श्वासोच्छ्वास लेनेकी शक्ति सो श्वासोच्छ्वास प्राण है। और जहां अनेक दुख-सुखनमें आत्मा शरीरतैं भिन्न नहीं होय सो आयु प्राण है। ऐसे सामान्य दश प्राण जानना इति प्राण स्वरूप ॥

आगे संज्ञाका स्वरूप सामान्यपने लिखिए है जहाँ वस्तुकी इच्छाका क्षयोपशम होय सो संज्ञा है। जहां आहारकी इच्छारूप निमित्त सहित क्षयोपशम, सो आहार संज्ञा है। और जहां भयका निमित्त मिले भयको इच्छाका क्षयोपशम सो भय संज्ञा है। और जहाँ मैथुनकी सामग्री सहित इच्छाका क्षयोपशम सो मैथुन संज्ञा है। और परिग्रहका निमित्त मिले परिग्रहकी इच्छा सहित क्षयोपशम, सो परिग्रह संज्ञा है। ऐसे सामान्य संज्ञा कही। इति संज्ञा। आगे चौदह मार्गणा, तिनका स्वरूप ऊपर कहा है नाममात्र यहां कहिए है। गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्य, सम्यक्, सैनी, आहार, ए चौदह मार्गणा है। इति मार्गणा। आगे उपयोग—तहां ज्ञानोपयोग आठ प्रकार दर्शनोपयोग च्यारि प्रकार ए दोऊ दर्शन ज्ञान मिलि उपयोग भेद बारह जानना। इति उपयोग। ऐसे सामान्य गुणस्थान मार्गणानिका स्वरूप कह्या। आगे इनहीं गुणस्थाननमें मार्गणा लिखने रूप अलाप कहिए है। सो प्रथम ही गुणस्थाननमें मार्गणादि चौबीस ठाम (स्थान) लगाईये है। तहां चौथे गुणस्थान ताँई तौ गति च्यारि ही हैं। पंचम गुणस्थान में मनुष्य वा तिर्यंचगति है। छठेतैं उपरिले गुणस्थाननमें एक मनुष्यगति ही जानना। इन्द्रिय मार्गणा-सो प्रथम गुणस्थान तौ पंच ही इन्द्रिय धारक जीवनकैं होय है। दूसरेतैं लगाय चौदहवें गुणस्थान पर्यन्त ए सर्व-स्थान पंचेन्द्रिय सैनीकैं होय हैं। कोई आचार्य एकेन्द्रियादि असैनी पर्यन्त जीवनकैं सासादन कहै हैं। ताकी मुख्यता नाहीं जानना। यथायोग्य समझि लेना बहुरि कायमार्गणा-सो प्रथम गुणस्थान तौ षट्काय जीवनकै ही जानना। दूसरेतैं लगाय चौदहवों ताई ए स्थान त्रसजीव कायके होय हैं। आगे योग मार्गणा—तहाँ प्रथम गुणस्थानमें आहारक द्विक विना योग तेरा हैं और सासादनमें भी ए ही तेरा योग हैं। और मिश्रमें मनके च्यारि वचनके च्यारि, कायके दोय ऐसे दशयोग हैं। असंयत चौथैमें आहारक द्विक विना तेरा योग हैं।

पंचओंमें नव, छटेमें आहारक द्विक सहित ग्यारह योग हैं। सातवों ते लगाय बारहवें पर्यन्त नवयोग हैं। तेर-ओंमें सात योग हैं। चौदहवेंमें योग नाहीं। आगे वेद—सो प्रथमतैं लगाय नववें गुणस्थानके सवेदभाग पर्य-न्त तीनों वेद हैं। आगे वेद नाहीं। आगे कषाय-सो प्रथमतैं दूसरे ताईं कषाय पच्चीस ही हैं। तीसरे-चौथेमें कषाय इक्कीस हैं। पंचवेंमें कषाय सत्तरा हैं। छठेतैं अपूर्व करण पर्यंत तेरा कषाय हैं। नववेंमें सात हैं। दशवेंमें एक सूक्ष्म लोभ है। आगे कषाय नाहीं। बहुरि अब ज्ञान कहिए हैं। सो प्रथम-दूसरेमें तो तीन कुज्ञान हैं। तीसरेमें मिश्र ज्ञान है। और चौथे-पंचवेंमें तीन सुज्ञान हैं। और प्रमत्त तैं लगाय बारहवें पर्यंत ज्ञान च्यारि हैं। तेरहवें-चौदहवेंमें एक केवलज्ञान है। आगे संयम कहिए हैं—सो मिथ्यात तैं असंयत पर्यन्त तौ असंयम है। और पंचवेंमें देश संयम एक है। प्रमत्त-अप्रमत्त इन दोऊनमें सामायिक छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि ए तीनि संयम हैं। आठवें-नववेंमें सामायिक, छेदोस्थापना ए दोय संयम हैं। और दशवेंमें सूक्ष्म साम्पराय संयम है। और ऊपरे एक यथाख्यात ही संयम है। आगे दर्शन कहिए हैं-सो प्रथम तैं तीजे पर्यन्त तौ दोय दर्शन हैं। चौथे तैं लगाय बारहवें पर्यन्त तीन दर्शन हैं। तेरहवें-चौदहवेंमें एक केवल दर्शन है। आगे लेश्या कहिए है—सो चौथे गुणस्थान पर्यन्त तौ षट् लेश्या हैं। पंचवें तैं लगाय सप्तम पर्यन्त तीन शुभ लेश्या हैं। अष्टमतैं लगाय तेरहवें गुणस्थान पर्यन्त एक शुक्ल लेश्या है। चौदहवेंमें लेश्या नाहीं। आगे भव्य कहिए है—तहां मोक्ष कबहूं नहीं जाय, सो, अभव्य हैं। मोक्ष जाने योग्य होय सो ताकों भव्य कहिए सो प्रथम गुणस्थानमें तौ भव्य अभव्य दोय हैं। और ऊपरले सर्व गुणस्थान भव्यको होय हैं। आगे सम्यक कहिए है। सो मिथ्यातमें मिथ्यात सम्यक है। सासादनमें सासादन सम्यक है। मिश्रमें मिश्र है और असं-यततैं लगाय अप्रमत्तलौं उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक सम्यक है। आठवेंतैं लगाय ग्यारहवें लूं उपशम और क्षायिक दोय सम्यक हैं। बारवें तैं लेय सिद्धन पर्यन्त एक क्षायिक सम्यक है। आगे संज्ञी कहैं हैं। सो प्रथमगुणस्थानमें सैनी असैनी दोऊ। दूसरे तैं लेय बारवें लौं सैनी ही हैं। तेरवें चौदहवेंमें दोऊ नाहीं। आगे आहार मार्गणा कहिये हैं। तहां प्रथम दूसरे चौथे इनमें आहारक अनाहारक दोऊ हैं। मिश्र तीजेमें व

पंचवोंमें एक आहारक है। छठेमें आहारक अनाहारक दोऊ हैं। अप्रमत्ततैं लगाय बारहवों पयन्त आहारक है। तेरहवें में दोऊ हैं। चोदहवोंमें अनाहारक है। इति प्रथममार्गणाप्ररूपण।

आगे गुणस्थान प्ररूपण--तहां गुणस्थानका स्वरूप अपने-अपने गुणस्थानमें स्वकीय गुणस्थान चोदह ही सामान्यवत जानना। आगे जीव समास गुणस्थान पे लगाइए है। तहां प्रथमगुणस्थानमें चोदह ही जीवसमास हैं। सासादन, असंयत प्रमत्त, सयोगकेवली इन च्यारि गुणस्थाननमें पंचेन्द्रियको पर्याप्ति. अपर्याप्ति, ए दोऊ ही जीव समास हैं। बाकीके सर्व गुणस्थानोंमें एक पंचेन्द्रिय पर्याप्ति जीव समास है॥ आगे पर्याप्ति कहिए हैं—सो प्रथम गुणस्थानतैं लगाय चोदहवें पर्यंत छहों पर्याप्ति हैं। आगे प्राण कहिये हैं—सो मिथ्यात तैं लगाय बारहवों गुणस्थान पर्यन्त तो दश प्राण हैं। और तेरवोंके अपर्याप्तिमें तो आयु काय दो प्राण हैं। पर्याप्तिमें च्यारि हैं। अयोगमें एक आयु प्राण है॥ आगे संज्ञा कहैं हैं—तहां संज्ञा च्यारि हैं। सो तहां प्रथम तैं लगाय प्रमत्त छठे तांई संज्ञा चारों हैं। सातवों आठवों गुणस्थानमें आहार विना तीन संज्ञा हैं। नववोंमें मैथुन परिग्रह दोय संज्ञा हैं। दशवोंमें एक परिग्रह संज्ञा है। आगे कपायनके अभावतैं संज्ञाका भी अभाव है। ए संज्ञा हैं सो कपायनके योगतैं होय हैं। सो अप्रमत्तमें ध्यान अवस्थातैं आहार विहारादि प्रमादके अभाव तैं आहार संज्ञाका अभाव है। भय कपायके निमित्त तैं भयसंज्ञा उपजे है। वेद कपाय तैं मैथुन संज्ञा होय है। लोभ कपायके निमित्त पाय परिग्रह संज्ञा होय है। जहां कपाय नाहीं, तहां संज्ञा भी नाहीं। ऐसे संज्ञा जानना॥ आगे उपयोग बारह हैं—तहां मिथ्यात सासादन इन दोऊ गुणस्थाननमें दर्शन दोय कुज्ञान तीन ए पांच उपयोग हैं। मिश्र गुणस्थानमें मिश्र ज्ञान तीन दर्शन दोय ए पांच उपयोग हैं। कोई आचार्य इयाँ तीन दर्शन भी कहैं हैं। ता अपेक्षा छह उपयोग हैं। चौथे पंचवोंमें सुज्ञान तीन दर्शन तीनि ए षट् उपयोग हैं। छठे तैं लगाय बारवों गुणस्थान पर्यन्त ज्ञानि च्यारि दर्शन तीन ए सात उपयोग हैं। तेरवों चोदहवोंमें केवलज्ञान केवल दर्शन ए दोय उपयोग हैं। ऐसे सामान्य बीस प्ररूपणाका स्वरूप कह्या। इति बीस प्ररूपणा॥ आगे ध्यान आश्रव जाति कुल ए चारि गुणस्थान प्रति लगाईए है—

गाथा—झाणवेय पत्तावेय जायए कुलकोड संजया सब्वे। गाहा तयेण भणिया, कमेण चौबीस ठाणाणीं ॥ १३ ॥

अर्थ—ध्यान सोलह आश्रव सत्तावन (कषाय २५ योग १५ अव्रत १२ मिथ्यात ५ ए सर्व सत्तावन जानना) सो ध्यान अरु आश्रवनका स्वरूप आगे कह्या है। तातें यहाँ नहीं कह्या वहाँ तें जानना। एकेन्द्रिय जातिमें पृथ्वी अप, तेज, वायु, साधारण वनस्पतिके इतरनिगोद नित्य निगोद करि दोय भेद हैं। ए षट् स्थावरनकी सात-सात लाख जाति हैं। प्रत्येक वनस्पतिकी दश लाख जाति हैं। बेन्द्रिय (दो इन्द्रिय) तेन्द्रिय, चौइन्द्रिय, इन तीनकी दोय-दोय लाख जाति हैं। देव तिर्यञ्च, नारकी इन तीननकी च्यारि-च्यारि लाख जाति हैं। मनुष्यकी चौदह लाख जाति हैं। ए सर्व मिल चौरासी लाख जाति जानना। इति जाति ॥ आगे कुल कहिए हैं। सो पृथ्वीकायके बाईसलाख कोड़ि कुल हैं। अप, वायु इन दोऊके सात-सात लाख कोड़ि कुल हैं। तैजस कायके तीन लाख कोड़ि कुल हैं। वनस्पतिके अट्ठाइस लाख कोड़ि कुल हैं। बेन्द्रियके सात लाख कोटि कुल है। तेन्द्रियके आठ लाख कोड़ि कुल हैं। चौइन्द्रियके नवलाख कोड़ि कुल हैं। पंचेन्द्रियके तहां जलचर जीव जेजल ही में रहैं तिनके साढ़े बारह लाख कोड़ि कुल हैं। थलचर जो पृथ्वी पर विचरनेहारे दुपद, चौपद ऐसे जो थलचर हैं सो इनके बारह लाख कोड़ि कुल हैं। नभ में उड़ने हारे पत्ती सो नभचर हैं तिनकेदश लाख कोड़ि कुल हैं। जे छाती ही तैं चलैं ऐसे सर्पादि जीव, तिनके नव लाख कोड़ि कुल हैं। मनुष्यन के बारा लाख कोड़ि कुल हैं। देवनके छब्बीस लाख कोड़ि कुल हैं। नारकीनके पचीस लाख कोड़ि कुल हैं। ए सर्व मिलि एकसौ साड़े सित्यानबे लाख कोड़ि कुल जानना। ऐसे इस गाथाका सामान्य स्वरूप कह्या। अब इन ध्यान आश्रव, जाति कुल च्यारनकों गुणस्थाननपै लगाईए हैं। तहाँ प्रथम ध्यानकूं कहिए हैं। सो प्रथम—दूसरे गुणस्थानमें आर्त रौद्रध्यानके आठ भेद हैं। तीसरे मिश्रमें आर्त--रौद्रके आठ धर्मध्यानके एक आज्ञा विचय ए नव ध्यान हैं। असंयतमें आर्त—रौद्रके आठ भेद अरु आज्ञा, अपायविचय ए दोय धर्मध्यानके ऐसे दश भेद हैं और पंचमेंमें आर्त—रौद्रके आठ स्थानविचय बिना धर्मध्यानके तीन सर्व मिल ग्यारह ध्यान है। प्रमत्तमें धर्मध्यान च्यारि आर्तध्यान निदान बंध बिना तीन ए सात ध्यान हैं। अप्रमत्तमें धर्मध्यानके च्यारि

भेद हैं आठमें ते लगाय ग्यारवें पर्यन्त एक पृथक्त्ववितर्क वीचार नाम शुक्ल ध्यान है। वारहवों गुणस्थानमें एकत्ववितर्कवीचार नामा शुक्ल ध्यान है और तेरवोंमें सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति नाम शुक्ल ध्यान है और चौदहवोंमें व्युपरतिक्रिया निवर्ति नाम शुक्ल ध्यान है। इति ध्यान। आगे गुणस्थान प्रति आश्रव कहिये हैं, आश्रव संतावन हैं तहां मिथ्यातमें आहारक द्विक योग विना पचवन आश्रव हैं। और सासादनमें पंच मिथ्यात व आहारकद्विक बिना पचास आश्रव हैं। मिश्रमें कषाय इक्कीस, योग दश, अव्रत वारह, सर्व मिलि तियालीस आश्रव हैं। आगे चौथेमें अव्रत वारह कषाय इकीस, योग तेरह सर्व मिलि छयालीस आश्रव हैं। पंचममें कषाय सत्तरा, योग नव अव्रत ग्यारा, ए सर्व मिलि सैंतीस आश्रव हैं। प्रमत्तमें कषाय तेरा, योग ग्यारा, ए सर्व मिलि चौबीस आश्रव हैं। सातवें आठवेंमें कषाय तेरा, योग नव मिलि करि वाईस आश्रव हैं। कषाय सात योग नव मिलि आश्रव सोलह नवमें गुणस्थानमें हैं। कषाय एक योग नव मिलि दश आश्रव सूक्ष्म साम्परायमें हैं। ग्यारहवों—वारहवोंमें नवयोग आश्रव हैं। तेरहवोंमें सात योग आश्रव है और चौदहवोंमें आश्रव नाहीं। इति आश्रव॥ आगे जाति गुणस्थानपे कहिए हैं। तहां जाति चौरासी लाख हैं सो प्रथक गुणस्थान मैं तौ सर्व जाति हैं। सासादन, मिश्र, असंयत इन तीनमें देव, नरक, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य इनकी छब्बीस लाख जाति हैं। पंचवोंमें मनुष्य तिर्यञ्च सम्बन्धी अठारह लाख जाति हैं। इति जाति॥ आगे गुणस्थान पै कुल लगाइये हैं। कुल एकसौ साढ़े सत्याणवे लाख कोड़ि कुल हैं। तहाँ मिथ्यातमें सर्व कुल हैं। सासादन, मिश्र, असंयत इनमें एकेंद्री विकलेंद्री संबंधी घटाय एकसौ साढ़े छै लाख कोड़ि कुल हैं। पंचम गुणस्थानमें पंचेंद्रिय तिर्यञ्च, मनुष्यसम्बन्धी साढ़े पचपन लाख कोड़ि कुल हैं। प्रमत्त तैं लगाय चौदहवों गुणस्थान पर्यन्त मनुष्य सम्बन्धी वारा लाख कोड़ि कुल हैं इति कुल॥ ऐसे सामान्य गुणस्थानन पै चौबीस ठाणौं लगाया। अब कहे जो ए जीव तिनमैं स्थावरनके पंच भेदनमें वनस्पती है। सो वनस्पती जीवनकी उत्पत्तिके कारण वीज सोसात प्रकार हैं। सोही कहिए हैं—

गाथा—पल्लव मूल पव्वो, कर कंदोय वोय समुच्छो। भेयो सत्त पयारो, इक अक्खो वणप्फदी बीयो॥ १४॥ ॥११५

अर्थ—पल्लव, मूल, पर्व, कंद, स्कंध, बीज, सम्मूर्च्छन ए सात भेद वनस्पति उपजने कूं बीज समान हैं। जाकी कोंपल उपरितैं तोड़ि लगाय लोग, ऐसे हजारी गेंदा कौं आदि देय केतीक बनस्पति हैं जिनका पल्लव लगावै तौ लगै। सो पल्लव बीज कहिए। तथा अग्रबीज कहिए। केतीक बनस्पती ऐसी हैं। तिनकामूल- कहिये जड़ सो ताकी जड़, कों लगाये लागे, ऐसे कदली आदि अनेक बनस्पती ऐसी हैं तिनका मूल ही बीज हैं। मूलतैं ही उपजैं, तातैं मूल बीज कहिए। केतीक वनस्पती ऐसी हैं,। तिनकी पोरी ही तैं उत्पत्ति हैं। ताकी पोरी लगाय लागै ऐसे सांठे [ईख] आदि सो इनका बीज पोरी ही है तातैं इनकूं पर्व बीज कहिए है। और केतीक बनस्पती ऐसी हैं। तिनका कंदही लगाय लागै। सो कंद ताकौं कहिए है जो भूमिही विषैं जाकी वृद्धि होय ऐसे आदा सूरण, जमीकंद, सकरकंद, रतालु, पिंडालू आदि इनकी कंदही तैं उत्पत्ति है। तातैं इनकौं कंदबीज कहिए है। केतीक बनस्पति ऐसी हैं तिनका स्कंध जो शाखा सो तिनकी छोटी-मोटी शाखा तोड़ि लगाईए तौ लागैं। ऐसे गुलाब, चमेली, अमरवेलि, आदि बनस्पती सो स्कंध बीज है। केतीक बनस्पति ऐसी हैं जिनकी उत्पत्तिकौं कारण बीजही है, बिना बीज नाहीं होय, ऐसे गेहूं, तंदुलादि अन्न ए बीज ही तैं उपजे हैं इनका बीज अन्नादि है केतीक बनस्पती ऐसी हैं जिनकी उत्पत्तिकौं कछू कारन नाहीं बिना बीज सहज ही उत्पत्ति होय ऐसे घास, डाभ, जड़ी, बूटी आदि सो इनकी उत्पत्तिकूं बीजादि नाहीं सो सम्मूर्च्छनपनाही बीज है। ऐसे सात भेदरूप वनस्पतीकी उत्पत्ति कही। इति सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ- मध्ये जीवतत्व वर्णन विषैं चौबीस प्ररूपणा सामान्य गुणस्थान पै समुद्घातके लक्षण तथा सात भेद बनस्पती उत्पत्ति इत्यादि कथन वर्णनो नाम षष्टमोपर्व सम्पूर्णम्। आगे गुणस्थान सम्बन्धी जीवनकी संख्या कहिए है। तहाँ प्रथमही मिथ्याती जीवनकी संख्या कहिये है—

गाथा—थावरमिच्छ अणंतो, विकलतीय पंचखाअ सव्वबिणसंखा देव असखाणोरय मिच्छण रसं स्वमासयं देव ॥ १५ ॥

अर्थ—अब कहिए है जो स्थावर एकेन्द्रिय मिथ्यातीनकी राशि अनंत हैं। और विकलत्रय मिथ्यादृष्टि रासि असंख्यात हैं। मिथ्यादृष्टि देव असंख्यात हैं। नारक मिथ्यादृष्टि असंख्यात हैं। मनुष्य मिथ्यादृष्टि सां-

ख्यात हैं। ऐसे च्यारि गति सम्बन्धी मिथ्यादृष्टीनका प्रमाण कह्या। भावार्थ—पांच स्थावर हैं। तिनमें सर्व तैं थोरे प्रमाणधारी अग्निकायक जीव जानना। सो भी ऐसे-ऐसे असंख्यात लोकनके जेते प्रदेश होंय, तेते अग्निकाय जीव हैं। अग्निकायतें असंख्यात अधिक पृथ्वी कायक जीव हैं। पृथ्वीकायतें असंख्यात अधिक अपकायके जीव हैं। अपतैं असंख्यात अधिक वायुकायके जीवनका प्रमाण है। अग्निकायके असंख्यातवैं भाग घटते वेन्द्रिय जीव हैं। वेन्द्रियतैं असंख्यात घाटि तेंद्रिय हैं। तेंद्रियसे असंख्यात घाटि चौइन्द्रिय हैं चौइन्द्रियतैं असंख्यति घाटि पंचेन्द्रिय हैं। ऐसे सर्वसेथोरे पंचेन्द्रिय हैं। तिनमें भी मिथ्याती बहुत हैं पंचही स्थावरमें सर्व कहे स्थावर तिनतें अनंत गुणे जीव बनस्पतीका प्रमाण जानना। इन पंच स्थावरनमें सूक्ष्म जीवराशि बहुत हैं, बादर थोरे हैं। काहेतें सो बताइये है—कि सूक्ष्म जीवनका क्षेत्र तौ लोक है। सर्व लोक सूक्ष्म पंचस्थावरनतैं जल-घटवत् भरया है। वादर, सहायतैं होय है। सो सहायका क्षेत्र अल्प है। तातें सूक्ष्म राशि विशेष, बादर राशि थोरी ऐसा जानना। सो ए स्थावर विकलत्रय राशि, एतौ सर्व मिथ्यात समुद्रमें मगन ही हैं। और च्यारि गति सम्बन्धी पंचेन्द्रियनमें भी मिथ्यात राशि तौ बहुत है, अरु सम्यग्दृष्टी थोरे हैं। सो अगली गाथा-में सम्यग्दृष्टि च्यार गति संबन्धी सासादन मिश्रगुणस्थान अविरत तथा पंचम षष्टम तैं लगाय चौदहमा गुण-स्थानवर्ती जीवनका प्रमाण कहिए हैं—

गाथा—बावण इकसय चउक्को, सत्ताय तिदसय कोड़ीए। सासा मिस्सा संजय, देस संजाय होयणर भव्वा ॥ १६ ॥

अर्थ—भव्यराशि मनुष्यनमें—सासादन गुणस्थानवर्ती मनुष्य बावन कोड़ि हैं। और मिश्र गुणस्थानवर्ती मनुष्य एकसौ च्यारि कोड़ हैं। और असंयति चौथे गुणस्थानवर्ती मनुष्य सात कोड़ि हैं। और पञ्चम गुण-स्थानवर्ती मनुष्य तेरह कोड़ि हैं। ऐसे सासादनतैं लगाय पञ्चम गुणस्थानवर्ती कहे। सो उत्कृष्टपने कहे। इनतैं अधिक नहीं होंय, ऐसा जानना। इति मनुष्यनमें गुणस्थानवर्ती जीवनका प्रमाण कह्या। आगे देव नारकी, तिर्यञ्चनमैं सासादन, मिश्र, असंयत तिनका प्रमाण, अरु पंचम गुणस्थानवर्ती तियंच और छठे गुणस्थान तैं लगाय चौदहवें गुणस्थानवर्ती मनुष्यनका प्रमाण कहिए है—

गाथा—सुरय सुणारय गतयो; सासामिस्सो असंजविण संखा। असंख पसु अणुवरती, पमत्तादो णो कोड़ि ति उड़ोय ॥ १० ॥

अर्थ—देव नारक तिर्यञ्च यह असंयत सम्यक्दृष्टि, मिश्र सासादन और तिर्यञ्च देश संयमी ए सर्व प्रत्येक असंख्यात जानना। और प्रमत्त तैं लगाय अयोगि पर्यन्त जीवनका प्रमाण तीनि घाटि नव कोड़ि जानना भावार्थ—तीन गति सम्बन्धी सासादन, मिश्र, असंयमो देश संयमी तिनके प्रमाणकी अधिक हीनता बताईए है। सो सर्व तै बहुत सम्यक्दृष्टि, देवनमें हैं। सो हो दिखाईये हैं। तहां प्रथम युगलमें सम्यग्दृष्टि सर्व-तै अधिक हैं। सो असंख्याते हैं। ते सर्व पल्यके असंख्यातवैं भाग जानना। याही युगलके सासादनी हैं और ख्यातवौं भाग ह्यांके मिश्रगुणस्थानी है। और इन मिश्रितैं संख्यातवौं भाग प्रथम युगलके सम्यग्दृष्टितैं असं-प्रथम युगलके सासादना तैं दूसरे युगलके सम्यग्दृष्टि असंख्यातवौं भाग हैं। दूजे युगलके सासादनी हैं। ख्यातवौं भाग यहां ही के मिश्रगुणस्थानी हैं। इन मिश्रनतैं संख्यातवौं भाग इसही दूसरे युगलके सम्यग्दृष्टिनका प्रमाण है। इन सम्यग्दृष्टिनतैं दूसरे युगलके सासादीनतैं असंख्यातवौं भाग तीसरे युगलके सम्यग्दृष्टि हैं। तीसरे युगलके सासादनी हैं। तीसरे युगलके असंख्यातवैं भाग यहीं के मिश्र हैं। इन मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग तीसरे युगलके सासादनी हैं। इनतैं असंख्यातवैं भाग मिश्र गुणस्थानी हैं। सासादनीनके असंख्यातवैं भाग चौथे युगलके सम्यग्दृष्टि हैं। इनतैं असंख्यातवैं भाग पंचम युगलके सम्य-मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग सासादनी हैं। चौथे युगलके सासादनी तैं असंख्यातवैं भाग पंचम युग-ग्दृष्टि हैं। इन सम्यक्तीनतैं असंख्यातवैं भाग ह्यां ही के मिश्र हैं। इन मिश्रन तैं संख्यातवैं भाग पंचम युग-लके सासादनी हैं। पंचम युगलके सासादनीन तैं छठे युगलके सम्यग्दृष्टि असंख्यात गुने घाटि हैं। इन सम्य-क्दृष्टिनतैं असंख्यातवैं भाग मिश्र गुणस्थानी हैं। मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग ह्यां ही के सासादनी हैं। और छठे युगलके सासादनीतैं असंख्यातवैं भाग ज्योतिष देवनके सम्यक्दृष्टि हैं। तिनतैं असंख्यातवैं भाग मिश्र-गुणस्थानी हैं। मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग ज्योतिषीनके सासादनी हैं। ज्योतिषीनके सासादनीतैं असंख्यातवैं व्य-न्तरनमें सम्यग्दृष्टि हैं। ह्यांके सम्यग्दृष्टीनतैं असंख्यातवैं भाग मिश्र हैं। व्यंतर मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग सासादनी व्यंतर हैं। आगे सासादनी व्यंतरनतैं असंख्यातवैं भाग भवनवासीनके सम्यग्दृष्टि हैं। सम्यक्तीनतैं

असंख्यातवैं भाग मिश्र हैं। मिश्रनतैं संख्यातवौं भाग भवनवासी सासादनी हैं। आगे सासादनी भवनवासीनतैं असंख्यातवैं भाग तिर्यञ्चनके सम्यग्दृष्टी हैं सम्यग्दृष्टीनतैं असंख्यातवौं भाग मिश्रगुणस्थानी तिर्यञ्च हैं। मिश्रतैं संख्यातवौं भाग सासादनी तिर्यञ्च हैं। और सासादनी तिर्यञ्चनतैं असंख्यातवैं भाग देश संयमी तिर्यञ्च हैं। और जेते देश संयमी तिर्यञ्च हैं। तितने ही प्रथम नरकमें सम्यग्दृष्टि हैं। इनतैं असंख्यातवैं भाग मिश्रसम्यक्ती हैं। इन मिश्रनतैं संख्यातवौं भाग प्रथम नरकके नारकी सासादनीनतैं असंख्यातवौं भाग दूसरे नरकके सम्यग्दृष्टी हैं। इनतैं असंख्यातवैंभाग मिश्रसम्यक्ती हैं। इन मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग दूसरे नरकके सासादनी जीवनका प्रमाण हैं। और दूजी पृथ्वीके सासादनीनतैं असंख्यातवैं भाग तीसरे नरकमें सम्यग्दृष्टि हैं। इन सम्यक्तीनतैं असंख्यातवैं भाग मिश्र हैं। मिश्रनतैं तीसरे नरकके सासादनी संख्यातवैं भाग हैं। तीसरे नरकके सासादनीनतैं असंख्यातवौं भाग चौथे नरकके सम्यकदृष्टी हैं। इन सम्यक्तीनतैं असंख्यातवैं भाग यहां यहांहीके मिश्र हैं। इन मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग चौथे नरकके सासादनी हैं। चौथे नरकके सासादनीनके असंख्यातवैं भाग पंचम नरकके सम्यग्दृष्टी हैं। इनतैं असंख्यातवैं भाग पंचम नरकके मिश्र सम्यक्ती हैं। मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग पंचम नरकके सासादनी हैं। पंचम नरकके सासादनीनतैं असंख्यातवैं भाग छठे नरकके सम्यग्दृष्टी हैं। इनतैं यांहीके मिश्र असंख्यातवैंभाग हैं। इनतैं संख्यातवैं भाग छठे नरकके सासादनी हैं। इन छठे नरकके सासादनीनतैं सातवें नरकके सम्यग्दृष्टी असंख्यातवैं भाग हैं। इन सम्यक्तीनतैं असंख्यातवैं भाग यांके मिश्र सम्यक्ती हैं। इन सातवें नरकके मिश्रतैं संख्यातवैंभाग सातवैं नरकके सासादनी हैं। इहां ताईं पट युगल भवनत्रिकमें, पंचेन्द्रिय तिर्यंचमैं, सात ही नारकीनमैं, सम्यग्दृष्टिनतैं असंख्यातवैं भाग मिश्र अरु मिश्रतैं संख्यातवैंभाग सासादनी, ऐसा अनुक्रम कह्या आगे सातवौं युगलतैं संख्यातभागका अनुक्रम लिये जानना। आगे सातवें नरकके सासादनीतैं संख्यातवैं भाग सातवैं युगलके सम्यग्दृष्टी देव हैं। सातवैं युगलके सम्यक्तीनतैं संख्यातवैं भाग यांही के मिश्र हैं। इन मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग हैं सातवैं युगलके देव सासादनी हैं। सातवैं युगलके सासादनीनतैं संख्यातवैं भाग आठवें युगल

में सासादनीन आठवं युगलके सासादनीनतैं संख्यातवैं भागि प्रथम ग्रीवेक में सम्यग्दृष्टि हैं। इनतैं संख्यातवैं भाग इहांके मिश्र हैं। इन मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग प्रथमग्रैवेकके सासादनी हैं। इन प्रथम ग्रीवेकके सासादनीन तैं संख्यातवैं भाग दूसरे ग्रीवेकमें सम्यग्दृष्टी हैं। इन सम्यक्तीनतैं संख्यातवैं भाग इहांके मिश्र हैं। इन मिश्रन तैं संख्यातवैं भाग दूसरो ग्रीवेकके सासादनी हैं। इन दूसरीग्रीवेकके सासादनीनतैं संख्यातवैं भाग तीसरी ग्रीवेकके सम्यग्दृष्टीनका प्रमाण है। इन सम्यक्तीनके संख्यातवैंभाग इहांके मिश्र जीव हैं। इन मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग तीसरी ग्रीवेकके सासादनी हैं। इन तीसरी ग्रीवेकके सासादनीनतैं संख्यातवैं भाग चौथीग्रीवेकके सम्यग्दृष्टी है। इनतैं संख्यातवैंभाग इहांके मिश्र सम्यक्ती हैं। मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग चौथी ग्रीवेकके सासादनी हैं। इन चौथे ग्रीवेकके सासादनीनतैं संख्यातवौं भाग पंचम ग्रीवेकके सम्यग्दृष्टी हैं। इनतैं संख्यातवौं भाग इहां के मिश्र सम्यक्धारी हैं। मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग पंचम ग्रीवेक के सासादनी हैं। अरु पंचम ग्रीवेक के सासादनी तैं छठो ग्रीवेक के सम्यग्दृष्टी हैं। सो संख्यातवैं भाग हैं। इन सम्यक्तीनतैं संख्यातवौं भाग इहां के मिश्र हैं। इनमिश्रनतैं संख्यातवौं भाग छठी ग्रीवेक के सासादनी हैं। इन छठी ग्रीवेक के सासादनीतैं सातवीं ग्रीवेक के सम्यग्दृष्टी संख्यातवौं भाग हैं। इनतैं संख्यातवैं भाग यहांके मिश्र हैं। इन मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग सातमी ग्रीवेक के सासादनी हैं। और सातमी ग्रीवेक के सासादनीतैं संख्यातवैं भाग आठमी ग्रीवेक के सम्यग्दृष्टो हैं। इनतैं संख्यातवैं भाग यहाँ के मिश्र हैं। मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग आठमी ग्रीवेक के सासादनी हैं। और आठवीं ग्रीवेक के सासादनीनतैं संख्यातवैं भाग नवग्रीवेक के सम्यग्दृष्टि हैं। इनतैं संख्यातवैं भाग यहां के मिश्र। मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग नववें ग्रीवेक के सासादनी हैं। ऐसै प्रथम युगलतैं लगाय नवग्रीवेक पर्यन्त अनुक्रमतैं असंख्यात भाग कही। संख्यातभाग घटे। परन्तु अन्त ग्रीवेक में जे सम्यग्दृष्टी हैं। ते भी असंख्याते जानना। और इन अंत ग्रीवेकतैं अल्प सम्यग्दृष्टी देव ऊपरले नव अनुत्तरमें हैं। इहां सर्व सम्यग्दृष्टी हो हैं। नवग्रीवेक ऊपरि मिथ्याती नाहीं, सर्व सम्यग्दृष्टी ही हैं। अनुत्तरों तैं थोरे विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित, इन च्यारि विमानमें सम्यग्दृष्टि हैं। इन च्यारि

विमाननतैं असंख्यातवैं भाग जीव सर्वार्थसिद्धि विमानमें हैं। सो सर्व संख्याते जानना। सो केते हैं? सो ही कहिए हैं। अढ़ाई द्वीपवासी मनुष्यन का जो प्रमाण है। तिनतैं नवगुणे सर्वार्थसिद्धि के देवन का प्रमाण जानना। ऐसे च्यारि गति सम्बन्धी सम्यग्दृष्टी, मिश्र, सासादन, देशसंयमी, इनका सामान्य प्रमाण कह्या। आगे कहे गाथां विषैं सकल संयमीन का प्रमाण तीनघाटि नव कोड़ि जीव, नव गुणस्थान सम्बन्धी तिनकौं गुणस्थान प्रति कहिए हैं। सो प्रथमतें छठे गुणस्थानवरती यतीनका प्रमाण पांच कोड़ि तिराणवें लाख अठ्याणवे हजार दोयसे,छै, ५६३६८२०६ जानना। अप्रमत्त सातवें गुणस्थान वरती मुनीनका प्रमाण दो कोड़ि छ्यानवैलाख निन्यानवे हजार एकसौ तीन २९६९९१०३ एते जानना। और च्यारि उपशम श्रेणि के गुणस्थान वारे जीव ग्यारासौ छ्यानवें ११९६ जानना, तेईससौ बाणवे २३९२। और तेरवें सजोग गुणस्थान-वरती जीवनका प्रमाण आठलाख अठ्याणवें हजार पांचसै दोय, ८९८५०२ एते जानना। चौदहवें गुणस्थान सम्बन्धी जीवनका प्रमाण पांचसौ अठ्याणवे जानना। ऐसे प्रमत्ततैं लगाय अयोग पर्यन्त आठ कोड़ि निन्या-नवैलाख निन्यानवे हजार नवसौ सित्याणवे, ८९९९९९९७ ए सर्व जानना। यह नाना जीव नाना काल अपेक्षा उत्कृष्टपने कथन हैं। इनतें अधिक प्रमाण नहीं होय, निश्चय कर ऐसा जानना। छः महीना आठ समयमें "छह सौ आठ" जीव मोक्ष जाय हैं। ऐसी परिपाटी अनादि चली आई है। अधिक-हीन, नाहीं जाय। केई अनंतकाल गएकदाचित विरह काल पड़े तौ पट्मास मोक्ष बन्द होय। कोई जीव मोक्ष नहीं जाय, तौ अंत के आठ समयमें 'छे सौ आठ' जीव मोक्ष होय हैं। ऐसा जानना। और कदाचित उपशम श्रेणि का भी विरह पड़ै तौ छे महीना कोई जीव उपशम श्रेणि नहीं चढ़े। और अन्त के आठ समयनमें 'तीनसौ च्यारि, जीव उपशम श्रेणि मांडै, ताकी विधि—जो प्रथम समय में सोलह, दूसरे समयमैं चौबीस, तीसरे समय में तीस, चौथे समय मैं छत्तीस, पंचम समय मैं बियालीस, छठे समयमें अड़तालीस, सातमैं समयमैं चौवन, आठमैं समयमैं चौवन ऐसे इन आठ समय मैं तीनसौ च्यारि जीव निरन्तर उपशम श्रेणि मांडै। और क-दाचित् क्षायिक श्रेणि का उत्कृष्ट अन्तर पड़ै तौ पट्मास होय, तौ अन्त के आठ समय में 'छहसौ आठ

ले सु० ११८ | ८८० | ११८

जीव निरन्तर माड़ै—सो प्रथम समयमैं ३२, दूसरे समयमैं ४८, तीसरे समय में ६०, चौथे समयमैं ७२, पंचम समयमैं ८४, छठे समय में ९६, सातवें मैं १०८, आठवें मैं १०८, ऐसे आठ समयमें निरन्तर श्रेणि चढ़ै हैं कदाचित् एक समय युगपत क्षायक श्रेणि माँडै तौ च्यारिसौं बत्तीस, जीव एकै काल माँडैं। ताकी बिधि-जो इनमैं कौन-कौन जीव श्रेणी चढ़ैं सौ कहिए हैं। तहाँ बुद्धिबोधित ऋद्धि के धारी १०८ जीव और पुरुषवेद सहित श्रेणी चढ़ैं ऐसे जीव १०८ और सुरगनतैं चय मनुष्य होय महाब्रत धरि क्षपकश्रेणि माँडैं ऐसे जीव १०८ और प्रत्येक बुद्धि ऋद्धिके धारी क्षपक श्रेणी चढ़े जीव १० और तीर्थंकर प्रकृतिके उदय सहित तीर्थं-कर पदवीधारी क्षायिक श्रेणी जीव स्त्री वेद सहित जीव श्रेणी चढ़े ऐसे २० और नपुंसक वेद सहित श्रेणी चढ़ै ऐसे जीव १० मनःपर्ययज्ञान सहित श्रेणी माडैं ऐसे जीव २० और अवधिज्ञान सहित श्रेणी चढ़े ऐसे जीव २८ उ-त्कृष्ट अवगाहनाके धारी मोक्ष होने योग्य शरीर सहित क्षायिक श्रेणी चढ़ैं ऐसे जीव दोय, मोक्ष होने योग्य जघन्य अवगाहनाके धारी ऐसे जीव ४ मध्यम अवगाहनाके धारी श्रणी चढ़ैं ऐसे जीव ८ ऐसे ए कहे जीव युगपत एक समय ४३२ जीव क्षायिकश्रेणि चढ़े हैं सो जानना। युगपत एक समय उपशम श्रेणी चढ़ने वारे क्षायिकतैं आधे इनही पदस्थवारे जीव २१६ जानना कदाचित केवलज्ञानका विरह काल पड़ै तो षट महीना ताँई कोई जीवकूं केवलज्ञान नहीं उपजै। अढ़ाई द्वीप मैं तौ अंतके आठ समयमैं 'बाईस जीवनकूं केवल ज्ञान होय। ताव.। विधि-आदि के षट्समयन मैं तीन-तीन जीव एक-एक समय मैं केवली होंय और अंतके दो समय मैं दोय-दोय जीव केवली होंय, ऐसे अंतके आठ समय मैं बाईस कहे। केई आचार्य, अंतके आठ समयमैं चवालीस केवली कहें हैं। सो आदिके षट् समय मैंषट-षट, अन्त के दोय समयमैं च्यारि-च्यारि जीव केवली होंय। केई आचार्य अठ्यासी केवली कहैं हैं। तहां आदिके षट् समयनमैं बारह-बारह और अन्त के दोय समयमैं आठ-आठ ऐसे अंतके समयमें केवली होंय हैं केई आचार्य अन्तके आठ समयमैं 'एकसौ छिहत्तरि' केवली कहैं हैं। सो आदिके षट् समयनमैं चौबीस-चौबीस और अंतके दोय समय मैं सोलह-सोलह केवली होंय हैं। ऐसा विशेष जानना। ए उत्कृष्ट कहैं हैं। इनतैं अधिक नाहीं हो है, ऐसा जानना। ऐसा सामान्यपने

चौदह गुणस्थान सम्बन्धी जीवन की संख्या कही। विशेष श्रीगोमट्टसारजीके "जीवकांड" तैं जानना। यहाँ राह पावने के निमित्त, तथा यादि राखने—सीखने निमित्त कथन किया है। सो धर्मात्मा जीव इस समान्य कथनकौं जानि महा ग्रन्थन में प्रवेश करो, तातैं मोह मंद होय, सम्यक् श्रुत का प्रकाश होय। ऐसा जानि आत्म कल्याणी जीवनकौं इन ग्रन्थन में प्रवेश करना योग्य है। विरोष यह जो ऊपर कहे सम्यग्दृष्टी तिनविषैं क्षायक सम्यग्दृष्टी वहुत है। और तिनतैं असंख्यातवैं भाग क्षयोपशम सम्यग्दृष्टी हैं। इनतैं असंख्यातवैंभाग उपशम सम्यग्दृष्टि हैं। उपशमतैं असंख्यातवैंभाग मिश्र सम्यक धारी हैं। मिश्रतैं संख्यातवैं भाग सासादनी हैं तहां विशेष एता-जो सर्व तैं सम्यग्दृष्टी, देवलोक में वहुत हैं। तिनमैं भी तीन गतिके सम्यग्दृष्टीनतैं तथा चारौं गतिके सम्यग्दृष्टीनतैं प्रथम युगलमैं असंख्यात गुणे वहुत हैं। ऐसे च्यारों गति संसार मैं तिष्ठे सो जीवनकी संख्या. अरु अपनी-अपनी गति सम्बन्धी गुणस्थानवर्ती जीवनकी संख्या कही। सो इन संख्या मैं संसारी जीव तन धरता, मरता, शुभभावनका फल भोगता, अनादिका भ्रमण करै है। तिन मैं विरले भव्यात्मा सत्संगके निमित्त करि, जिन देवके वचन की प्रतीतिकरि, सम्यग्दर्शनादि मोक्ष मारग योग्य सामग्री पाय, कर्म नाश करि शुद्ध होय, आगे मोक्ष पावें। इति सामान्य जीव तत्त्व कथन॥

आगे धर्मद्रव्य वर्णन। अब अजीव तत्वनमैं धर्म द्रव्य है सो ताका गुण चलन सहाई है। तीन लोकमें तिष्ठते जे जीव, पुद्गल तिनकूं गमन करते धर्मद्रव्य सहाय करै है। जैसे जलचर जीव मच्छी आदि तिनके चलनेकूं जल सहाई है प्रेरक होय गमन नहीं करावै है। जो मच्छादि जीव जलमैं चलैं, तौ उदासीन वृत्ति सहित सहज ही सहाय होय है। तैसे यह धर्म द्रव्य प्रेरक होय जीवादि पदार्थनकौं गमन नहीं करावै है। जो जीव पुद्गल अपनी शक्ति तैं गमन करै, तौ उदासीन वृत्ति तें गमनमैं सहाय होय है। ऐसा अनादि निधन इस द्रव्यका स्वभाव है। ऐसे चलन सहाई गुण सहित धर्मद्रव्य की अनादि स्थिति लोकमैं जानना। और इस धर्मद्रव्यकी पर्याय दोय प्रकार हैं। एक अर्थ पर्याय, सो तो द्रव्यका परणमन है। सो तो व्यंजन पर्याय द्रव्यका आकार है। सो धम द्रव्यकी व्यंजन पर्याय, तीन लोक प्रमाण है। एक पटल रूप है, खंड

सात स्तोकका एक लव मात्र काल पर्याय होय है। साढ़े अड़तीस लवकी एक नाली होय है इस नालीहीका नाम घड़ी है। दोय घड़ीका नाम एक मुहूर्त है। एक समय घाटि दोय घड़ीका नाम अन्तर्मुहूर्त है। तीस मुहूर्तका एक अहोरात्रि है। पन्द्रह अहोरात्रिका एक पक्ष होय है। दोय पक्षका एक मास होय है। दोय मासको एक ऋतु होय है। तीन ऋतुका एक अयन होय है। दोय अयनका एक वर्ष होय है। सत्तरिलाख करोड़ि वर्ष अरु छप्पन हजार करोड़ि वर्ष इन सबनिको मिलाय एक पूरब काल होय है। ऐसे असंख्यात पूरब कालका एक पल्य होय है। दश कोड़ाकोड़ि पल्यका एक सागर होय है। अरु बीस कोड़ाकोड़ि सागरका एक काल चक्र होय है। ऐसे-ऐसे अनन्तानन्त काल चक्र व्यतीत होंय, तब एक कालका परावर्तन होय है। ऐसे कालकी व्यवहार पर्यायका स्वरूप जानना। ऐसे कालतौ द्रव्य, गुणवर्तना लक्षण और कालाणुतैं निपज्या जो समय, घड़ी, दिन, मास, बर्ष, पल्य, सागर, सो पर्याय हैं। ऐसे काल द्रव्यका लक्षण कह्या।

आगे आकाश द्रव्य। आगे आकाश तौ द्रव्य है। ताका अवगाहन देना गुण है। पर्याय लोकालोक प्रमाण है। ता आकाशमें दोय भेद हैं। एक अलोक है, सो अनंत प्रदेशी है तहां और द्रव्य नाहीं, शून्यता लिए है। शुद्ध एक आकाश ही है। एक लोकाकाश है। तहां षट् द्रव्य रचना सहित च्यारि गतिरूप संसार कूं धरे है। अरु कर्म रहित शुद्ध जीव तिन सहित यह असंख्यात प्रदेशी, सो सर्व रचना जामैं पाइए, सो ऐसा लोकाकाश है। यामैं षट् द्रव्य तिष्ठैं हैं। इति आकाश द्रव्य। ऐसे ए षट्ही द्रव्य अपने-अपने गुण-पर्याय सहित, अपने-अपने स्वभावमैं हैं एक क्षेत्रमैं सबकी स्थिति है, परन्तु कोई काहूतैं मिलते नाहीं। ऐसा कोई अनादि व्यवहार है जो कोई द्रव्य काहू द्रव्य तैं मिलता नाहीं। किसीके गुणतैं कोईका गुण नहीं मिलै किसी पर्यायतैं पर्याय नहीं मिलै। ऐसी उदासीन बृत्ति है। जैसे एक गुफामैं षट्मुनि बहुत काल रहे। परन्तु कोई काहूतैं मोहित नाहीं। उदासीनता सहित एक क्षेत्रमैं रहे हैं। तैंसे ही षट् द्रव्य एक लोक क्षेत्रमैं जानना। तिनमैं पंच अजीव द्रव्य हैं। तिन पंच अजीवद्रव्यनके गुण भी अजीव हैं। पर्याय भी अजीव हैं। एक चेतन द्रव्य है। ताके द्रव्य, गुण और पर्याय भी चेतना हैं। तातैं भो भव्यात्मा तू देखि। यह जीव ज्ञानरूप

चौदह गुणस्थान सम्बन्धी जीवन की संख्या कही। विशेष श्रीगोमट्टसारजीके "जीवकांड" तैं जानना। यहाँ राह पावने के निमित्त, तथा यादि राखने—सीखने निमित्त कथन किया है। सो धर्मात्मा जीव इस समान्य कथन कौं जानि महा ग्रन्थन में प्रवेश करो, तातैं मोह मंद होय, सम्यक् श्रुत का प्रकाश होय। ऐसा जानि आत्म कल्याणी जीवनकौं इन ग्रन्थन में प्रवेश करना योग्य है। विशेष यह जो ऊपर कहे सम्यग्दृष्टी तिनविषैं क्षायक सम्यग्दृष्टी बहुत है। और तिनतैं असंख्यातवें भाग क्षयोपशम सम्यग्दृष्टी हैं। इनतैं असंख्यातवेंभाग उपशम सम्यग्दृष्टि हैं। उपशमतैं असंख्यातवेंभाग मिश्र सम्यक धारी हैं। मिश्रतैं संख्यातवें भाग सासादनी हैं तहां विशेष एता-जो सर्व तैं सम्यग्दृष्टी, देवलोक में बहुत हैं। तिनमैं भी तीन गतिके सम्यग्दृष्टीनतैं तथा चारौं गतिके सम्यग्दृष्टीनतैं प्रथम युगलमैं असंख्यात गुणे बहुत हैं। ऐसे च्यारों गति संसार मैं तिष्ठे सो जीवनकी संख्या, अरु अपनी-अपनी गति सम्बन्धी गुणस्थानवर्ती जीवनकी संख्या कही। सो इन संख्या मैं संसारी जीव तन धरता, मरता, शुभभावनका फल भोगता, अनादिका भ्रमण करै है। तिन में विरले भव्यात्मा सत्संगके निमित्त करि, जिन देवके वचन की प्रतीतिकरि, सम्यग्दर्शनादि मोक्ष मारग योग्य सामग्री पाय, कर्म नाश करि शुद्ध होय, आगे मोक्ष पावें। इति सामान्य जीव तत्त्व कथन ॥

आगे धर्मद्रव्य वर्णन। अब अजीव तत्वनमें धर्म द्रव्य है सो ताका गुण चलन सहाई है। तीन लोकमें तिष्ठते जे जीव, पुद्गल तिनकूं गमन करते धर्मद्रव्य सहाय करै है। जैसे जलचर जीव मच्छी आदि तिनके चलनेकूं जल सहाई है प्रेरक होय गमन नहीं करावै है। जो मच्छादि जीव जलमैं चलैं, तौ उदासीन बृत्ति सहित सहज ही सहाय होय है। तैसे यह धर्म द्रव्य प्रेरक होय जीवादि पदार्थनकौं गमन नहीं करावै है। जो जीव पुद्गल अपनी शक्ति तैं गमन करैं, तौ उदासीन बृत्ति तें गमनमैं सहाय होय है। ऐसा अनादि निधन इस द्रव्यका स्वभाव है। ऐसे चलन सहाई गुण सहित धर्मद्रव्य की अनादि स्थिति लोकमैं जानना। और इस धर्मद्रव्यकी पर्याय दोय प्रकार हैं। एक अर्थ पर्याय, सो तो द्रव्यका परणमन है। सो तो व्यंजन पर्याय द्रव्यका आकार है। सो धम द्रव्यकी व्यंजन पर्याय, तीन लोक प्रमाण है। एक पटल रूप है, खंड

देखने-जानने रूप है। सो अनादि परद्रव्यनके मोहतैं, परमैं ममत्व भाव धरकैं, आपा भूलि, पर द्रव्यकौं अपना इष्ट जानि पर रूप सा होय गया। आप अमूर्तीक है। सो भूलितैं आपकूं मूर्तीक जड़ भावरूप मानने लागा परन्तु जड़ नहीं होय गया। आप अपने चेतनाके व्यवहार कौं नहीं तजे है जैसे कोई नट मनुष्य लोभके वशीभूत होय अपने तनपै नाहरकी खालि नाखि, सिंहका स्वांग धरि आया, नाना चेष्टा, कूंदना, धड़ूकनादि भी करै है। ताकूं देखि अजान भोरे जीव याकौं सिंह जानि: भयभीति होय हैं। परन्तु वह सिंह नाहीं है। लोभके वशीभूत होय इस नटनै अपना रूप पशुका बनाया, आपकूं पशू मांनि विचरै है। परन्तु पशु नाहीं, नरही है। तैसेंही यह संसारी जीव अपनी अनादि भूलितैं जा गति मैं गया, ताही गतिरूप होय रह्या। च्यारि गतिके शरीर पुद्गलीक अनेक धारि, आपकौं देव नारकादि आकार मान्या, मैं देव हौं, मैं नारकी हौं, मैं पशु हौं, मैं मनुष्य हौं, मैं सुखो हौं मैं दुखो हौं, यह धनधान्यादि कुटुम्बी मेरे हैं। मैं बड़े तनका धारी हौं। ऐसे आपकौं कर्म निमित्ततैं जड़ समान पुद्गलीक तनमैं तिष्ठता, अचेतनकी चेष्टा बतावता भया। परन्तु अपना विशेष देखना-जानना रूप चैतन्यरूप भाव सो नहीं छुटता भया। आप जीव ही है। जैसे नट, सिंहकी खालि नाखि दूरि भया, तब सबका भरम गया। सर्व याकूं नर मानते भये। यह भी नर ही रह्या, और आगे भी नरही था। भरमतैं सिंह भया था। तैसे तनरूपी खालि तजि, तब शुद्ध आत्मा भया। ऐसे जीव अजीवका स्वरूप है। सो हे भव्य, तू निश्चय करि जानि। जैसे जीव, अजीवका स्वरूप कह्या तैसे ही सम्यक् होते ये बिचार सहज ही होय उपजे हैं। पर वस्तुनतैं ममत्त्व छूटि भरम मिटि शुद्ध श्रद्धान होय है। सो अमूर्तीक शुद्धात्मा सिद्ध भगवान ताका स्वरूप सम्यग्दृष्टी अपने अनुभवनमैं ऐसा विचारै है। जो चौदहवें गुणस्थान जा शरीरमैं तिष्ठता आत्मा, अपनी शुद्ध परणतिके जोगतैं जा शरीरमैं था, ताके हाड़, मांस चांम नशादि जो पुद्गलीक आकार स्कंध सो तिनकौं छोड़िकैं ता शरीरके आकार आप चेतनरूप सिद्ध देव होय तिष्ठै। तैसे ही सम्यग्दृष्टी बिचारै है, जो मैं भी दिव्य दृष्टीतैं निश्चय करि देखौं तौ अपना चैतन्य भाव इस पुद्गलीक शरीरतैं, ऐसे भिन्न विचारौं हौं। कि जो मैं वर्तमानमें ए

शरीर क्षेत्रमें तिष्ठौं हौं। सो या तनमें देखन-जानन हारा गुणतौ मेरा है। यह तन जड़ है। सो आयु अन्त खिरे है। तथा सिद्ध होते खिरे है। सो तैसे ही मैं तौ; या क्षेत्रमें तिष्टौं ही हौं। अरु या तनके चांम, हाड़, मांस, नश, पुद्गलीक आकाररूप मूर्तीक हैं, सो मेरा अङ्ग नाहीं, मैं तौ चैतन्य हौं। ए चांम तनके खिर जावो मांस स्कंध खिर जावो, हाड़ खिर जावो, इत्यादिक पुद्गलीक स्कंध खिरै हैं तौ खिरौ। मैं देखनेजानने हारा, मेरे स्थान मैं तिष्ठों हों। सब पुद्गलीक मूर्तीक मेरे प्रदेशनतें एक क्षेत्र हैं सो, सर्व खिर गये। मैं ही एक, अमूर्तीक देखने-जानने हारा, सिद्धसमांनि आत्मा रह जा हौं। सम्यक होते आपा-पदका विचार ऐसे भी होय है। ए सा विचार होतें सम्यग्दृष्टीन कैं शरीरादि परवस्तुनतें ममत्व छूटेटैं पर वस्तुन तैं ममत्व छूटतैं निराकुलता सहज ही प्रगट होय है। निराकुलता प्रगटै चारित्रकी वधवारी (बढ़वारी) होय है। और चारित्रकी वृद्धितैं विशुद्धताकी विशेष वृद्धि होय है। विसुद्धता वधे (बढ़े) केवलज्ञानकी प्राप्ति होय है। और केवलज्ञान भए संसार भ्रमण मिटि सकल शुद्ध सिद्ध पद पाय सर्व सुखो होय है। पीछे सिद्धस्थान विराजि अकलंक निर्दोष सिद्ध होय है। जगतपूज्य पदधार अविनाशी सुखरूप होय है। ऐसे सिद्ध पदकौं हमारा नमस्कार होऊ। इनको भक्तिके प्रसाद मोकौं इनसा पद होऊ। ऐसे भी सम्यग्दृष्टी भावनाभाय, अतिशय सहित पुण्यबंधका संचय करै है। इहां प्रश्न—जो सम्यग्दृष्टीकौं पुण्यकी इच्छा काहे को चाहिए? और तुमने कह्या जो अतिशय सहित पुण्य का बंध सम्यदृष्टी ही करै है, सो औरन कैं क्यों नहीं होय? अरु अतिशय सहित पुण्य काहेकौं कहिए? ताका सामाधान। भो भव्य, जो पुण्य के बंध भये पीछे वह पुण्य घटने नहीं पावै। दश पांच-भव जेते लेना होय, तेते ऊंच लेय, पीछे ताकौ मोक्ष ही होय हैं। ताकों अतिशय सहित पुण्य कहिए। और कबहूं शुभभावतें पुण्यका बंध होय। कबहुं अशुभ भावनतैं पापबंध होय। पुण्यबंध होता रहि जाय। ता फल कबहूं देव कबहूं पशु होय। ऐसे पुण्यकौं अतिशय रहित कहिए। ए पुण्य, संसारका ही कारण है। ऐसा जानना। और सुनि। भो भव्य! सम्यग्दृष्टीकैं तौ पुण्य बन्धकी इच्छा नाहीं। परन्तु सम्यक भए पीछे दोय-तीन भव लेने होंय, तौ तेते काल संसारमें रहैं। पुण्य-फल सम्य-

नाहीं । अरु पुद्गल परमाणुके गजतैं नापिए तौ असंख्यात प्रदेशी होय । ऐसे इसका स्वरूप है । सौ धर्म तौ द्रव्य है गुण चलन सहाय है । पर्याय तीन लोक है ता सामानि है । इति धर्म द्रव्य ॥

आगे अधर्म द्रव्य । अब अधर्म द्रव्य है अरु ताका गुण स्थिति करण है । तीन लोकमें तिष्ठते जेते जीव पुद्गल तिनकौं स्थिति करनेमें सहाय है । प्रेरक होय स्थिति नाहीं करावै है । जो जीव पुद्गल अपनी शक्तितैं स्थिति करैं तौ यह अधर्म द्रव्य उदासीन वृत्ति धरे स्थिति करतैं सहकारी है । जैसे राहके चलन हारे पंथीकूं ग्रीष्म ऋतुमें वृक्षकी छाया स्थितिकूं करतै सहाय होय है । वृक्ष बुलायकैं पंथीकूं अपनी छायामें बैठारि, सहाय नाहीं करै है । पंथी अपनी ही इच्छा तैं ताप मेटवेकौं वृक्ष नीचे तिष्ठै, तौ उदासीन वृत्ति सहित पंथी कूं स्थितिमें कारण है । ऐसे ही अधर्म द्रव्यका गुण स्थित करना जानना । और अधर्म द्रव्यकी पर्याय भी अर्थ पर्याय, व्यंजन पर्याय करि दोय प्रकार हैं । सो अर्थ पर्याय तौ रतन लहरिवत् द्रव्य परणमण है और व्यंजन पर्याय धर्म द्रव्य प्रमाण लोकके आकार है । ऐसे अधर्म द्रव्यके गुण पर्याय कहे । इति अधर्म द्रव्य ॥

आगे काल द्रव्य । आगे काल तौ द्रव्य है । गुण ताका वर्तना लक्षण है । पर्याय दोय प्रकार हैं । सो अर्थ पर्याय तौ रतन लहरिवत् द्रव्यका परिणमण है । अरु व्यंजन पर्याय द्रव्यका आकार है । जैसे नदी तौ द्रव्य, अरु नदीके दोऊ तटनकी समुद्र पर्यन्त लम्बाईका आकार, सो नदीकी व्यञ्जन पर्याय है । ता नदीमें निरन्तर जलका प्रवाह चलना, रातदिन पानीका वहना सो नदीका गुण है, और नदीके जलमें अनेक प्रकार तरंगनिका उपजना अरु ताहीमें विनसना, सो नदीकी अर्थ पर्याय है । तैसेही काल द्रव्यका नदीकी नाईं निरन्तर वर्तना लक्षण गुण है । कालाणुद्रव्यका मन्द गमन पलटा खाना, एक आकाश प्रदेश पै तिष्ठती जो कालाणु सो पलटि, दूसरे लगते प्रदेश पै आवना सो मन्द गमन है सो याका नाम समय है । सो यह समय कालकी व्यवहार पर्याय है । इस समयतैं, कालका सूक्ष्म अंश और नाहीं । ऐसे-ऐसे समय असंख्यात होंय, तब एक आवली नामा कालकी पर्यायका भेद होय । ऐसी-ऐसी हजारों आवली व्यतीत होंय, तब एक श्वासोच्छ्वास कालका प्रमाण है । सात श्वासोच्छ्वास कालका एक स्तोक नामा कालकी पर्याय होय है और

सात स्तोकका एक लव मात्र काल पर्याय होय है। साढ़े अड़तीस लवकी एक नाली होय है इस नालीहीका नाम घड़ी है। दोय घड़ीका नाम एक मुहूर्त है। एक समम घाटि दोय घड़ीका नाम अन्तर्मुहूर्त है। तीस मुहूर्तका एक अहोरात्रि है। पन्द्रह अहोरात्रिका एक पक्ष होय है। दोय पक्षका एक मास होय है। दोय मासकी एक ऋतु होय है। तीन ऋतुका एक अयन होय है। दोय अयनका एक वर्ष होय है। सत्तरिलाख करोड़ि वर्ष अरु छप्पन हजार करोड़ि वर्ष इन सबनिको मिलाय एक पूरब काल होय है। ऐसे असंख्यात पूरब कालका एक पल्य होय है। दश कोड़ाकोड़ि पल्यका एक सागर होय है। अरु बीस कोड़ाकोड़ि साग-रका एक काल चक्र होय है। ऐसे-ऐसे अनन्तानन्त काल चक्र व्यतीत होंय, तब एक कालका परावर्तन होय है। ऐसे कालको व्यवहार पर्यायका स्वरूप जानना। ऐसे कालतौ द्रव्य, गुणवर्तना लक्षण और कालाणु तैं निपज्या जो समय, घड़ी, दिन, मास, बर्ष, पल्य, सागर, सो पर्याय हैं। ऐसे काल द्रव्यका लक्षण कह्या।

आगे आकाश द्रव्य। आगे आकाश तौ द्रव्य है। ताका अवगाहन देना गुण है। पर्याय लोकालोक प्र-माण है। ता आकाशमें दोय भेद हैं। एक अलोक है, सो अनंत प्रदेशी है तहां और द्रव्य नाहीं, शून्यता लिए है। शुद्ध एक आकाश ही है। एक लोकाकाश है। तहां षट् द्रव्य रचना सहित च्यारि गतिरूप संसार कूं धरे है। अरु कर्म रहित शुद्ध जीव तिन सहित यह असंख्यात प्रदेशी, सो सर्व रचना जामैं पाईए, सो ऐसा लोकाकाश है। यामैं षट् द्रव्य तिष्ठैं हैं। इति आकाश द्रव्य। ऐसे ए षट्ही द्रव्य अपने-अपने गुण-पर्याय सहित, अपने-अपने स्वभावमैं हैं एक क्षेत्रमैं सबकी स्थिति है, परन्तु कोई काहूतैं मिलते नाहीं। ऐसा कोई अनादि व्यवहार है जो कोई द्रव्य काहू द्रव्य तैं मिलता नाहीं। किसीके गुणतैं कोईका गुण नहीं मिलै किसी पर्यायतैं पर्याय नहीं मिलै। ऐसी उदासीन बृत्ति है। जैसे एक गुफामैं षट्मुनि बहुत काल रहे। परन्तु कोई काहूतैं मोहित नाहीं। उदासीनता सहित एक क्षेत्रमैं रहे हैं। तैसे ही षट् द्रव्य एक लोक क्षेत्रमैं जा-नना। तिनमैं पंच अजीव द्रव्य हैं। तिन पंच अजीवद्रव्यनके गुण भी अजीव हैं। पर्याय भी अजीव हैं। एक चेतन द्रव्य है। ताके द्रव्य, गुण और पर्याय भी चेतना हैं। तातैं भो भव्यात्मा तू देखि। यह जीव ज्ञानरूप

ग्दृष्टीनके बंध भए पीछे टूटता नाहीं। सो संसार में रहें जेते देव, इन्द्र, चक्री, महान राजा, सुखी होय पीछे परम्पराय मोक्षही होय। तातें सम्यग्दृष्टी के ऐसा अतिशय सहित पुण्य बंध ही होय है। ऐसा यह सहजही भाव जानना। ऐसे तेरा उत्तर जानहु। ऐसा जीव-अजीव तत्वनका स्वरूप जिनदेवतें दिव्यध्वनि करि कह्या। तैसेही गणधर देवने प्ररुप्या तैसे परम्पराय आचार्य प्ररूपते आए। तिनके भेद पाय-पाय अनेक भव्य प्राणी अनादि मिथ्यात बंधन तोड़ि सम्यग्दृष्टी भए। ताहीका अनुसार लेह इहां भी सामान्य तत्व भेद कह्या है। ताका रहस्य जानि अव भी भव्य तत्त्व ज्ञानी होऊ। इति जिनभाषित अनुसार सामान्य तत्त्व भेद कथन॥ ऐसे अनादि भरम भूले, भोरी चेष्टाके धरन हारे, अतत्व श्रद्धानी जीव कुगुरुनके उपदेशरूपी फांसीमैं परे, धर्मवासना रहित, संसार भोगके अभिलाषी, समता रस विना उत्पत्ति भई है त्रपना रूपी तप जिनकैं, ऐसे ज्ञान चक्षु रहित अन्धसम, वालक सम लीला करन हारे, भोरे प्राणी, तिनकों सोमवुद्धि धर्मार्थी जानिकैं दयाभाव करि तिनके समझावेके अर्थ कुवादीनके प्ररूपे जे अनेक कर्तत्त्व मत, तिन विषैं भिन्न-भिन्न स्वइच्छा वुद्धि कल्पना करि, तत्व भेद कहे थे। तिन वादीनकूं प्रगट असत् करि जिनभाषित जीव अजीव तत्व, द्रव्य गुण पर्याय सहित भिन्न-भिन्न नय करि वताए। सो यह सर्वज्ञ भाषित तत्व भेद सत्य है। काहू वादी करके खंड्या नहीं जाय। ऐसे तत्व भेद है सो प्रमाण है। ए जीव अजीव तत्व सत्य हैं। इति श्री सुदृष्टि तरंगिणी नाम ग्रन्थ मध्ये, अतत्व श्रद्धान अन्य मतन सम्बन्धी जीव अजीव तत्व विपरीत कथन प्ररूपणे हारे कुवादी तिनका भरम मेटि, जिनभाषित तत्वज्ञान वर्णनो नाम, सप्तम पर्वः समाप्तः॥

इन शुद्ध तत्वनका जिस विषैं भले प्रकार कथन पाइए, सो शुद्ध आगम है। और आगम है सो काहूका उपदेश्या नाहीं। जो ऐसे शुद्ध आगमका करता है, सो ही सर्वज्ञ भगवान वीतराग शुद्ध आप्त है। आप्त-नाम भगवानका है। सो उस शुद्ध भगवानकों जान्या चाहिये। सो कैसे जानिए? तो विवेकी ऐसा विचारै जो वस्तु जानिये है, सो गुणतैं जानिए है। तातैं प्रथम ही भगवानके गुण जानें, तौ शुद्ध भगवान जान्या जाय। तातैं भगवानके गुण कहिए है। सो एक तो जिन भगवान वीतरागी होंय, वीतराग भाव विना

सरागी जीवन पै यथावत् उपदेश होता नाहीं, अपना भगत होय ताकी प्रशंसा करै रक्षा करै। अपना भक्त नहीं होय तौ ताकी निन्दा करै, ताका बुरा चाहै। तौ ऐसे देवका :वचन प्रमाण नाहीं। तातैं यथावत् उपदेश, वीतरागी बिना होता नाहीं। तातैं देव वीतरागी चाहिये और सर्वज्ञ चाहिए। सर्वज्ञ विना लोकालोक की नहीं जानैं। जीवनके अतरंग घट-घटकी नहीं जानै, ऐसे तुच्छ ज्ञानीनका वचन प्रमाण नाहीं। तातैं भगवान् सर्वज्ञ चाहिये। और वीतराग सर्वज्ञ तौ है। किन्तु तारक नाहीं, तौ किस कामका भगवान्? काहूका तौ भला करता नाहीं। तातैं भगवान् तारक चाहिये। जाका नाम लिए, ध्यान किए, पूजे, भगतनका भला होय इहाँ प्रश्न—जो भगवान वीतराग है तामैं तारकपना कैसे संभवै? तारकपना तौ सरागी कौं होय है। अरु वीतरागी कूं भगतके तारनेकी इच्छा भए, वीतराग भाव कैसे रहै? अरु विना इच्छा भगतका भला कैसे होय सो कहो। ताका समाधान। जैसे सूर्यके ऐसी इच्छा नाहीं, जो मैं अपना उदय करौं, जिससे कमल प्रफुल्लित होय। परन्तु सूर्यका उदय होते सहजभाव ही कमल प्रफुल्लित होय हैं, सूर्य मैं कोई ऐसा गुण सहज ही पाईए। तैसे ही भगवान् कैं तो ऐसी इच्छा नाहीं, जो भगतनका भला करौं। परन्तु भगवान् मैं कोई तारण गुण सहज ही ऐसा पाईए है। जो ताकरि भगतका भला होय ही होय। और जो सूर्यकी तरफ कड़ी नजरि (दृष्टि) करि देखै, तौ ताके नेत्रन आगे अन्धकारसा फैलिजाय, नेत्रनकी ज्योति मन्द होय, सो सूर्यकै तौ ऐसी इच्छा नाहीं जो मेरी तरफ क्रूर देख्या, तातैं अन्धा करौं। परन्तु सूर्यके तेज मैं कोई सहज ही ऐसा अतिशय है। सो सूर्यकी तरफ सख्त दृष्टि करि देखै, तौ नेत्रकी ज्योति मन्द होय। तैसेही भगवान् की तौ ऐसी इच्छा नाहीं जो इस निंदकका बुरा करौं। परन्तु कोई ऐसाही अतिशय है। जो भगवानकी निन्दा किए नरकादि दुःख सहजही होंय। तातैं भगवान्मैं वीतरागता, सर्वज्ञता, तारकपना, ए तीन गुण तौ मुख्य हैं। अरु और अनंते गुण हैं, तिनमैं केतेक वाह्य, अभ्यंतर गुण अतिशय कहिए हैं। तिनके जानैं भगवान् कौं पहचानिए। सो ही कहिए है—

गाथा—दोह अठारह रहियो, गुणसड चालीय होय सजुत्ता। सवग्गो वीयरायो, सदेवो भव्वतार पणमामी ॥ १८ ॥

अर्थ—दोह अठारह कहिये, अष्टादशदोष रहित होय। गुण सड चालीय होय संजुत्तो कहिए, छ्यालीस गुण सहित होय। सवग्गो कहिए, सर्वज्ञ होय। वीयरायो कहिए, वीतरागी होय। सदेवो कहिए, सो देव। भव्वतार कहिए, भव्यनका तारक होय। प्रणमामी कहिए, ताकों नमस्कार करौं हौं। भावार्थ—जाके राग द्वेष नहीं, सो वीतरागी है। केवलज्ञान सहित होय सो सर्वज्ञ कहिए। जाका नाम लिए पापका नाश होय ऐसे अतिशयका धारी होय और क्षुधादिक अठारह दोष रहित होय और छ्यालीस गुण सहित होय सो देव जानना। तहाँ प्रथम अठारह दोषनका स्वरूप कहिए है। सो प्रथम क्षुधा जगतके जीवनकों महादुःख करन हारा, ताके पोखे बिना मरण होय ये क्षुधा बड़ा रोग है सो जाके ऐसी क्षुधा होय, सो देव नाहीं। जाके बूते (किये), अपनी क्षुधा महाव्याधि ही नहीं मिटी, तो भक्तनकी क्षुधा कैसे मेटे? तातैं भगवान् कैं क्षुधा रोग नाहीं ॥ १ ॥ बहुरि तृषा समान तीव्ररोग दुखदाई नाहीं, जो जलनामा औषध नहीं मिलै, तौ प्राण जाय। ऐसी तृषारूपी व्याधि जाकैं होय, सो देव नाहीं। भगवान् कैं तृषारोग नहीं। अपनीं तृषा तपन जाकैं नहीं मिटी, तो भगतन की तृषा-तपन कैसे मेटै? तातैं प्रभुकैं तृषा नाहीं ॥ २ ॥ बहुरि जहाँ रागभाव होय सो भगवान नाहीं, भगवान्जी कै राग भाव नाहीं ॥ ३ ॥ जाके द्वेषभाव हो सो परका बुरा करै। तातैं जाकैं रागद्वेष होय, सो भगवान् नाहीं। अरु भगवान् कैं द्वेषभाव नाहीं ॥ ४ ॥ जो माता के गर्भमें आवै, गर्भ के महा दुःख, मल-मूत्र विषैं नवमास अधोशीश उर्ध्व पांव महासंकटमैं अवतार लेय, सो भगवान नाहीं। अरु भगवानकैं अवतार नाहीं ॥ ५ ॥ जरा जो बुढ़ापा जाकरि सर्व अंग शिथिल होंय, दीनता पावै, ऐसी जरा जाकैं होय, सो भगवान् नहीं। भगवान् कै जरा नाहीं ॥ ६ ॥ जाका मरण होय सो भगवान् नाहीं, जो अपना ही मरण नहीं मेटै तौ भगतका मरण कैसे मेटै? तातैं भगवान् कैं मरण नाहीं ॥ ७ ॥ जाकैं रोग होय, सो देव नाहीं, जो अपना रोग ही नहीं हरै, सो भगत कूं कैसे सुखी करै? तातैं भगवान कैं रोग नाहीं ॥ ८ ॥ जाकैं इष्ट वस्तुका वियोग होतैं शोक होय, सोदेव नाहीं। जो अपना ही शोक-दुःख नहीं टारि सकै, सो देव, भगत का शोक कैसे टारि सकै है? तातैं जाकैं शोक होय, सो देव नाहीं। भगवान कैं शोक

नाहीं ॥ ६ ॥ जाकैं शत्रु, रोग, मरणादि दुःखन का भय होय, सो भगवान् नाहीं। जो अपना ही भय नाहीं टारै, सो भगतन कौं कैसे सुखी करै ? तातैं सर्वज्ञ देवकैं भय नाहीं ॥ १० ॥ जाकैं विस्मय होय। जो यह कहा भया, तथा बड़ा आश्चर्य भया, ऐसा विद्या रहित अज्ञानीनकैं होय, याका नाम विस्मय है। सो जाके विस्मय होय, सो भगवान् नाहीं। केवलज्ञानीकैं कछू विस्मय नाहीं ॥ ११ ॥ निद्राके जोरतैं प्राणी सर्व सुध-वुध भूलि-जाय। महा प्रमादकी करनहारी, मृतक समान करनहारी, ऐसी निद्रा जाकै होय, सो भगवान् नाहीं। भगवान् सदैव चैतन्यमूर्तीक, जागृत दशारूप, सर्व प्रमाद रहित, जगत गुरुकैं, निद्रा नाहीं ॥ १२ ॥ और जाके खेद होय, सो देव नाहीं। जो अपना ही खेद नाहीं मेट सकै, सो भगतकौं निर्खेद कैसे करै ? तातैं भग-वान सर्व सुखीकैं, खेद नाहीं ॥ १३ ॥ शरीरमैं पसेव होय सो हीन पराक्रमतैं होय है। तातैं जाकैं, पसेव होय सो भगवान् नाहीं। अनंतवली भगवान् कैं पसेव नाहीं ॥ १४ ॥ मद है सो मान कर्मके उदय तैं, मानी संसारी अनेक क्रोधादि कषायनके पात्र, तिनकैं होय है। सो जाकैं मद होय, सो भगवान् नाहीं। भ-गवान् कैं मद नाहीं ॥ १५ ॥ परवस्तु कूं देखि अरति होय है। जो अरति के उदयतैं होय, सो अरति है। जाके कर्म उदय अरति होय, सो भगवान् नाहीं, वीतराग भगवान् कैं अरति नाहीं ॥ १६ ॥ महादुखका मूल, संसार का वीज, संसार भ्रमण करावनहारा ऐसा मोह जाकैं होय, सो भगवान् नाहीं। जगत उदासी भगवान् कैं मोह नाहीं ॥ १७ ॥ और जाकैं रति कर्मके उदय, अनेक वस्तुनमैं हर्ष मानै-रंजावै, ऐसा रति कर्मका जोरि जाकैं होय, सो देव नाहीं। भगवान् बीतराग देव कैं रति नाहीं ॥ १८ ॥ ऐसे कहे अठारह दोष जाके पाईए, सो भगवान् नाहीं। भगवानकैं ए अठारह दोष, सव प्रकार नाहीं ऐसे जानना। और भगवान् कैं छ्यालीस गुण होय हैं, तिंनका कथन कहिए है—

अतिशय चौंतीस। तहां प्रथम ही भगवान अंत का शरीर धरैं हैं। जव गर्भ अवतार होय, तव ए दश अतिशय होंय हैं—सो तहाँ पसेव (पसीना) नाहीं समचतुर संस्थान है, वज्रवृषभनाराच संहनन, तनमैं मल नाहीं शरीर महा सुगंध, अनंत महासुन्दररूप होय है, शरीरमें अनेक भले लक्षण होय हैं, तनमैं स्वेतरुधिर

होय, वचन महासुन्दर मधुर होय, और तिनके तनमैं अनंत बल होय ऐसे दश अतिशय तो जन्मतेही होंय, सो भगवान् जानना। दश अतिशय केवलज्ञान भये पीछे होय हैं। तिनके नाम—तहां समोसरणमें चतुरमुख दीखैं। भगवान्का समोशरण जहाँ होय, तहांतैं चौतरफ सौ योजन दुर्भिक्ष नहीं होय। आकाश निमल होय। सर्व जीवनकैं दयाभाव होय। गमन करते कोई जीवकों बाधा न होय, कवलाहार नाहीं। इहाँ प्रश्न—कवलाहारके षट् भेद हैं सो यहाँ कवलाहार मनैं किया, सो केवलज्ञानमें पंच अहार तौ होते ही हैं। ताका समाधान-भो भव्य, तूं षट् ही प्रकार अहार का स्वरूप सुनि, ज्यौं तेरा सन्देह जाय। प्रथम नामकर्म आहार, नोकर्म आहार ओज आहार, मानसीक आहार, कवलाहार, लेप आहार षट् हैं। अब इनका सामान्य अर्थ कहिए है--तहाँ ज्ञानावरणी आदि कर्म वर्गणाका ग्रहण करना सो कर्म आहार है। सो केवली कैं और कर्मका बंध नाहीं, सो बंधके अभावतैं कर्म का अहार नाहीं। एक सातावेदनीका बंध है सो भी नाममात्र उपचार बंध है। सो स्थिति अनुभाग रहित है। परन्तु उपचार से कर्म आहार इहां कहिए है। औदारिक, शरीर जातिके नोकर्म परमाणुका ग्रहण तेरहवें गुणस्थान तक है। तातैं नोकर्म आहार केवली कैं पाइये है परन्तु यहां कवलाहारको मुख्यता है तातैं याका बिचार नाहीं किया। ओज आहार ताका नाम है। जैसे चिड़िया अंडेनकूं छाती नीचै दाबै तिष्ठी रहै, ताकरि अंडामें उपजनहारेनका पोख है। सो ओज आहार कहिये सो ये आहार अंडज जीवनके होय है और के नाहीं। तातैं केवली कैं ओज आहार नाहीं भोजनपै मन चलै हो तृप्ति होय, सो मानसीक आहार कहिए। यह आहार देवनके होय है, और कै नाहीं तातैं जिनदेव कै मनसा आहार भी नाहीं। शरीरमें लगै तृप्तिता होय, सो लेप आहार है। यह एकेन्द्रियनकैं होय है औरन कैं नाहीं। तातैं भगवान केवली कैं लेप आहार भी नाहीं। अन्न मेवा, जल, इन आदि अहार मनुष्य तिर्यंञ्चन के है, सो कवलाहार है। यह जिह्वा इन्द्रिय द्वारा ग्रहण होय है। सो यह कवलाहार भी, निर्दोष जिन भगवान--कैं नाहीं। अरु यहां मुख्यता कवलाहारके कथन की है। तातैं भगवानकें कोई आहार नाहीं जानना। ऐसे भगवानकैं केवलज्ञान भए कवलाहार नाहीं, केवलज्ञान भए पीछे जगतबंधु कैं उपसर्ग नाहीं होय,

केवलीके शरीरकैं छाया नहीं होय, सर्व विद्याके नाथ हैं, नख केश नहीं वढ़ै, केवलज्ञान उपजतैं जेते थे तेते ही रहैं अनंतवलीकी भौंह टिमकैं नाहीं, एकाग्र रहैं ऐसे भगवानकूं केवलज्ञान होय पीछे, ए दश अतिशय प्रगट होय हैं। ऐसे केवल ज्ञान भए के अतिशय कहे। आगे देवनकृत चौदह अतिशय कहिए हैं-

जब भगवान् केवलीकी समोशरणमैं वाणी खिरै, ताकूं सुनि सर्व प्राणी अपनी-अपनी भाषा मैं समझि लेय हैं। ऐसा ही अतिशय है। जहां भगवान तिष्ठै, तहां तिष्ठते--सर्प, मोर, सिंह-गाय, इत्यादि जाति विरोधी जीव, द्वेष तजि मित्रता भजैं। तहांकी भूमि आरसी समान निर्मल होय, भगवान् विराजैं ता वन में. षट् ऋतुके फल-फूल होंय और समोशरणके चारों तरफ मंद-सुगंध पवन चालै तातैं सुख मई रहैं सर्व जीव सुखी होंय और जहाँ भगवान विराजैं, तहाँ के प्राणी सदीव-सहज ही सर्व भूमि कंटक रहित होय महा सुगंध जल की वर्षा होय। भगवान्जी विहार कर्म करैं, तब पद२ पै देव कमल रचते जाँय, भगवान् जहां पांव धरैं तहां देव पन्द्रह २ फूलनकी पन्द्रह २ पंक्ति करि दोसौ पचीस कमलनका चौकोर समूह धरते जाय हैं। आकाश निर्मलताकूं धरै। रज वद्दलादि नाहीं होंय। दशों दिशा महाशोभायमान निमल भासैं। विहार समय देव अपने शीश पै धर्मचक्र- कौं आगे लिए चलैं अष्ट द्रव्य-पंखा, चमर-क्षत्र, कलश, झारो, दर्पण, (एना) ध्वजा ठौनाँ ए मंगल द्रव्य एक-एक जातिके एक सौ आठ होंय, सो आठसौ चौंसठि भए। तिनकौं एक-एक देव, एक-एक मंगल द्रव्य, विनय सहित भगति [भक्ति] तैं, विहार समय लिए चलैं। आकाश मैं असंख्यात देव जय-जय शब्द करते चले जाँय ॥ ४ ॥ ऐसे चौदह अतिशय देव कृत हैं। सो अतिशयका महात्म तो भगवान्का है, निमित्त मात्र देवनकी भक्तिका सहाय है। ए सर्व मिलि चौंतोस अतिशय भए। आगे वसु [आठ] प्रातिहार्य कहिये हैं—

गाथा—तरु असोय सविठी, दिव्यधुणि चमर सीहपीठाया। भा मंडल दुंदुमि बयणो, आतपहर पातहाज वसुभेयो ॥ १६ ॥

अर्थ—अशोकवृक्ष. महा सुगंधित फूलोंकी वर्षा, दिव्यध्वनि, चमर, सिंहासन, प्रभामंडल, दुंदुभीवाजे और छत्र ए अष्ट प्रातिहार्य हैं। भावार्थ—भगवानके विराजवेकी गन्धकुटी ताके ऊपरि अशोक नाम रतनमई वृक्ष है। तामैं ऐसा अतिशय पाइए है, जो ताकौं देखैं महातीव्र शोक होय, सो भी जाता रहै और सुखी होय

। १ । जहाँ भगवान् विराजैं, तहाँ कल्प वृक्षनके रतन मई, महा सुगंधित, कोमल अनेक वरणके फूलोंकी वर्षा होय ॥ २ ॥ भगवान्‌की बाणी बिन अक्षरी, मेघकी गर्जना समान, होटतैं होट नहीं लगै, सर्व जीवनकौं हितदाई, अनेक संशय नाशनी, भगवान्‌की दिव्यध्वनि खिरै है। सो एक दिन मैं तीन बार प्रभात, मध्यान्ह और सॉझ खिरै । कोऊ शास्त्रन मैं अर्धरात्रिकूं खिरै, ऐसी कहो है । ताकी अपेक्षा एव, दिन मैं च्यारि बार बांणी खिरै है। सो एक-एक वांणीकी ध्वनि छै-छै घड़ी पर्यन्त काल समय होय । सो दिव्यध्वनि प्रातिहार्य कहिए है ॥ ३ ॥ चौसठि चमर इन्द्रनके हस्ततैं ढुरैं हैं॥ ४ ॥ अति रमणीक, महामनोग्य, अनेक शोभा सहित रत्न मई, मेरु समान उतंग कौं धरै, सिंहासन है । ताके चारों पायनकी जगह, च्यारि बैंठे सिंहनके आकार रतन मई, महा सौम्य मूर्तीक, सर्व अङ्ग सुन्दर, नेत्र, कर्ण मुख जिह्वा, केशावली आदि सर्व नख, मानो साक्षात कोई धर्मात्मा श्रावकव्रतके धारी सिंह ही भक्तिके भरे सिंहासन धरैं तिष्ठैं हैं। ऐसा सिंहासन प्रातिहार्य है ॥ ५ ॥ भगवान्‌के शरीरकी प्रभाका चौतरफ मंडलाकार होना, सो प्रभा मंडल है । तामें देखैं जीवन कूं परभव केई (बहुत) दीखैं हैं ॥ ६ ॥ अनेक जातिके वादित्र (बाजे) मधुर शब्द सहित एक रँग होय बाजना. सो दुंदुभी प्रातिहार्य है ॥ ७ ॥ भगवानके मस्तक पर तीन क्षत्र फिरैं सो मानों तीन लोककी प्रभुताई बतावैं हैं सो क्षत्र प्रातिहार्य है ॥ ८ ॥ ऐसे आठ प्रातिहार्य कहे । अनंत पदार्थन देखने—जानने रूप प्रवृतैं, सो अनंतज्ञान व अनंतदर्शन कहिए । अनंत पदार्थनके देखने-जाननेसे अनंत ही अतीन्द्रिय सुख है। अन्तराय कर्मके नाशतैं अनंतपदार्थ जाननेकी प्रगटी जो शक्ति सो अनन्तवीर्य है । ऐसे ए अनंतचतुष्टय हैं इन सर्वकौं मिलाए जन्मके दश, केवलज्ञानके दश, देवकृत चौदह, प्रातिहार्य आठ, अनंत चतुष्टय चार, सर्व मिल छयालीस गुण हैं । सो ए गुण जामैं पाइए सो तरण तारण, शुद्ध भगवान सम्यग्दृष्टीन करि पूज्य-वेयोग्य जानना। ऐसा भगवान् उपादेय है । इति सुदेव लक्षण । आगे कुदेवका लक्षण कहैं हैं—

जहां ऐसे लक्षण होय सो कुदेव । जो सरागी होय भक्त कूं देखि राजी होय अपना अविनयवान् देखि कोप करै । ऐसा रागी-द्वेषी होय, तिनकूं लोक विषैं भी और कोई २ जीव ऐसा कहै हैं जो यह देव रीझै

तौ राज—सम्पदा देय सुखी करै है। ए देव कदाचित कोप करै तौ दुखी करै रोग करै पीड़ा देय धन रहित करै मरण करै। और कल्पवासी भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी ए च्यारि जातिके देव हैं सो योनिभूत देव हैं। जन्म—मरण सहित है। अपने किये पुण्यके फल ताहि भोगवै हैं। ए सौम्यदृष्टी, तिनकूं देखै सुख होय है। ए काहूकूं दुखी करते नाहीं। और केतेक भोरे प्राणीनतैं अपनी बुद्धि कल्पना करि देवनाम देव, स्थापन किए सो लौकीक देव हैं। सो ए लोकनकौं आश्चर्यकारी हैं। सो ऐसा कहै हैं। जो हमकौं पूजौ, तृपति करौ अनेक भोग योग्य वस्तु हमकौ चढ़ावो, तो हम तुमतैं प्रसन्न होय हैं। ऐसी सुनि भोरे जीव, केतेक तौ ऐसा कहै हैं। जो याकौं तेल चढ़ाय प्रसन्न होय है। केई कहैं, या देव कौं सिन्दूर चढ़ाय राजी होय है। केई कहैं, याकौं बड़ा रोट चढ़ाय सन्तुष्ट होय है। कोई कहैं याकूं जीर्ण वस्त्र चढ़ानू यह नये देय है। कोई कहैं, या देव कौ गुड़ चढ़ै है। कोई कहैं याकौं मोदक (लड्डू) चढ़ाईए है। कोई कहै, याको फूल फल पत्र दोभ चढ़ाये प्रसन्न होय है। कोई कहैं याकौं मदकी धारा चढ़ावो। कोई कहै याकौं जीवका भक्षण चढ़ै है। इत्यादिक अनेक लौकिक देव हैं। सो इनकी चैष्टा रागद्वेषरूप जानि, सम्यग्दृष्टी जीवनकै सहजही हेय भावरूप हैं। त्यागवे योग्य हैं। इनकी सेवा-भक्ति सुख दैने योग्य नाहीं। ए संसारी देव हैं, ऐसा जानना। इति कुदेव कथन॥ आगे गुरु परीक्षा में ज्ञेय, हेय, उपादेय बताइए है—

गाथा—कोहादीय कसायो, गंथो गह तंतमंत च कत्ताए। पर वंचण पासंडो, पूजा सत्तार वंच्छई कुगुरो॥

अर्थ—क्रोधादि कषाय सहित होय। ग्रन्थ जो परिग्रह ताका धारी होय। तंत्र, मंत्र, नाड़ी वैद्यकका करता होय। परकौं ठगनेहारे होय, पाखंडी होय पूजा-मान बड़ाईकौं आप चाहता होय ताकूं कुगुरु जानहु। भावार्थ-जे अपना मान भए राजी होंय, अपना अपमान भए क्रोधी होंय, आपकौं कोई आय नमस्कार करै स्तुति करै तासों खुशी होंय, व भला भोजनदीये राजी होंय, परकौं धनवान जानि ताकी विशेष सुश्रूषा आव आदर करैं। कोई धन अपनी नजरि लाय करै ताकौं भला सेवक मानैं, इत्यादि लक्षण तैं कुगुरु जानहु। और परिग्रह धारिकै आपकूं गुरुपद मानता होय रागद्वेष भाव सहित होय तथा बड़े धनका धनी होय, और

धन मिलायवेकी इच्छा होय बहुत खेद खाय द्रव्य इकट्ठो करने कौं महा लोभी होय और अपने गुरुपद मनायवेकौं अनेक जंत्र मन्त्र तन्त्र वैद्यक ज्योतिष इन आदि अनेक चमत्कार प्रकट करि, भोरे जीवनकौं विस्मय उपजाय मोहित करै सो कुगुरु है। और परके ठगवेकौं महाप्रवीण होय अपने चित्तकी बात महागूढ़ राखिकैं अपनी बुद्धिके बलतैं भोरे जीवनका धन हरवेकौं आप महा समता भाव धरै अनेक मिष्ट बचन बोले। आये भक्तका भले प्रकार सत्कार करै। परकौं संतोष विश्वास उपजाय तिनतैं पुजावना तिन भोरे जीवनकौं अपने प्रति नमावना सो कुगुरु है। आपकूं गुरुपद मान हिंसा रूप प्रवर्तना अरु हिंसाका उपदेश देना। आप क्रिया-हीन होय खाद्य-अखाद्यके विचार रहित होय, उपसर्ग आये दीन होय। साता भये प्रफुल्लित होय। चाम घास वक्कल इत्यादिक पटकाधारी होय। याचना जो रंकवृत्ति ता याचनाका धारी होय, सो कुगुरु हैं। आपका अपमान भए तथा आपकौं मनवांछित दान नहीं दिये परकौं सराप देवेकौं महाक्रोधी होय। आपकूं गुरु संज्ञा मानि अवधि धारत होय पर पीड़ा करवेकौं निरदई होय। अरु पराए आश्रयकूं वाञ्छता होय। और मिष्ट सुर करि गावना-बजावना आदि क्रिया करि अन्य गृहस्थीनकौं राजी करवेका उपाई होय। रसायन रसकूप धातु मारवेकी प्रवीणता बताय, अपने वशीभूत करवेकी इच्छा होय। भूख तृषा शीत उष्णादि परीषह आये महा कायर होय। काम विकार रोकवेकौं असमर्थ होय। स्त्री सहित होय। तथा मन इन्द्रियके जीतवेकौं दीन होय। तथा इन्द्रिय फाड़ि तामैं लोह सांकल तथा कड़ी नाथे होय। तथा संसारी गृहस्थीनकी नांई नाता पालता होय। होली, दिवाली, त्योहार आए बहिन बेटीनकौं भेंट देता होय, सो कुगुरु है। ध्यान-अध्ययन विषैं प्रमादी होय। शरीरके धोवने पौंछने खुजावने पियावने लिटावने उठावने आदि काय सुश्रूषामें प्रवीण होय। आचार्यनकी परम्पराय परिपाटी मर्यादाका लोपनेहारा होय। रात्रिविषैं अन्न-जलका ग्रहण करता होय। अज्ञान तपस्या करता होय और महल मन्दिर अटारी बनाय स्थिति करता होय। कूप बावड़ी तलाव बाग बनवायकैं अपना नाम चलायवेकी इच्छा होय। इत्यादिक अनेक भेष बनाय अपनी-अपनी परणति लि-

ए जगतमैं आपकूं गुरुपद मानै है। सो ए कुगुरुनके लक्षण हेय जानना। इति कुगुरु वर्णन। आगे सुगुरु तरण-तारण, संसार सागरकौं नौका समान तिनका स्वरूप कहिए है—

गाथा—अरिमित जीतव मरणं, तिणधण सुहदुह सकल समभावो। यो गुरु भवदधिणावो विराई णगणणाणमय जोई ॥ २० ॥

अर्थ—बैरी अरु मित्रमें समभाव होय। जीतव्य मरण मैं समभाव होय। तिनका अरु कंचनमें समान भाव होय। सुखदुख मैं समभाव होय। और जो गुरु भवदधि कूं नाव समान होय। वीतरागी होय नग्न होय ज्ञान मूर्ति होय सो यतीश्वर हमारे गुरु हैं।

भावार्थ—जिन यतीश्वरन कैं अपनी निंदा करनहारा क्रूर स्वभावी, अविनयी अपना द्वेषी अरु अपनी सेवाका करनहारा विनयवान शिष्य तथा अपना मित्र इन दोऊन मैं समभाव होय सो गुरु पूज्य हैं। बहुत काल शरीरमैं रहना सो जीवना। अरु अल्पकालमैं तनका तजना सो मरण। इन जीवन-मरण दोऊमैं जिनकैं समभाव होय सो जगत गुरु हैं। तनके पुष्ट करनहारे नाना प्रकार भोजन। नानाप्रकार तन निरोगतादि अनेक सुख। तथा अनेक परीषहनका खेद। तन-रोगादिक अनेक दुख। इन सुख-दुखमैं समताभाव जाकैं होय, सो सुगुरु हैं। जीर्ण घासके तिनका मैं अरु नाना प्रकार रतनादि स्वर्ण इनमैं समता होय इत्यादिक वीतरागता सहित गुण जामैं होंय ते गुरु भव समुद्रके तारवेकौं नौका समान हैं। कैसे हैं उन गुरुका काहूतैं रागद्वेष नाहीं, वीतरागी हैं। और अन्तरङ्ग तो कषाय कीच रहित महा निर्मल। अरु बाहिर सर्व प्रकार परिग्रह रहित मातृजात नगन हैं। मति श्रुति, अवधि, मनःपर्यय इन आदि महा अतिशयकारी ज्ञानके धारी हैं। ऐसे योगीश्वर सो सुगुरुहैं। इन्द्र देवादि चक्रवर्त्यादि सम्यग्दृष्टी जीवन करि पूजने योग्य हैं। आगे सुगुरु ही का स्वरूप कहिए है—

गाथा—मणइन्दी जय सूरा, वीरा संकट सहण दो वीसा। तण खीणा मण सुखिया, सो होई गुरु तरण तारए ॥ २१ ॥

अर्थ—पंचइन्द्रिय अरु मन ए महा बलवान हैं। इनके वश इन्द्र चक्री आदि तीन लोकके राजा होय रहे हैं। जैसे मन-इन्द्री चलावै है तैसे इन्द्रियादिक चालै हैं। तातें संसारमैं ए मन इन्द्रिय ही महा योधा है। तिनके

जीतनेकौं यतीश्वर ही महा सूरमा हैं। और कैसे हैं गुरु बाईस संकट जो परीषह तिनके देखैं ही बड़े-बड़े साहसीनका साहस भयखाय जाता रहै। ऐसे दुर्धर परीषह तिनके जीतवेकौं येही योगीश्वर महा धीरवीर हैं। सो इन परिषहनका स्वरूप आगे कहैंगे तातैं यहां नाहीं कह्या। फेरि गुरु कैसे हैं ? नानाप्रकार तपरूप अगनि मैं जल्या शरीर सो तन तपतैं महाक्षीण भया है। वाकी नसैं चांम हाड़नका जाल रह गया है॥ तातैं तनके तौ क्षीण हैं अरु मन विषैं समताभाव करि अनुपम अमृतपानतैं महा सुखी हैं। सो ही गुरु तरण-तारण हैं। ये ही सम्यग्दृष्टीन करि पूजने योग्य उपादेय हैं। आगे और भी सुगुरुका स्वरूप कहिए है—

गाथा—पंच महाव्वय सहियो, समदीपन अक्खगयन्द बशीकरई। आवसि षट् सेसो जो सत्त अट्ठवीस मूलगुण साहू॥ २२॥

अर्थ—पंच महाव्रत सहित होंय, पंचसमितिके रक्षक होंय, पंच इन्द्रियरूपी हस्ती कूं वशीकरनहारे होंय, षट् आवश्यकन मैं सावधान होंय, और जो सात शेष गुणके धारक होंय,। ऐसे अठाईस मूल गुण जा मुनि कैं होंय, सो शुद्ध गुरु हैं। भावार्थ—जे जोगीश्वर ध्यान-अध्ययन विषैं प्रवीण, जगत गुरु, अठाईस मूल गुण पालवे मैं प्रमाद रहित होय प्रवर्तैं हैं। सो ही मूलगुण यतीश्वरका धर्म है। सो मूलगुण बताइए हैं। महाव्रत पाँच, समिति पांच, पंच इन्द्रिय वशीकरण, आवश्यकषट्, भूमिशयन, मंजनतजन, बसनत्याग कच-लोंच, एक बार भोजन, आसनस्थिति, दंतधोनेका त्याग, ए सर्व मिलि अठाईस भए। अब इनका सामान्य स्वरूप कहिए है। प्रथम ही महाव्रतका सामान्य लक्षण-तहाँ सर्वत्र स्थावर जीवन पै समताभावधरि, जगतका पीर हर, परमदयालु, कोमल चित्तका धारी, जगत जीव सर्व आप समानि जानि सर्वजीवकी रक्षा करनी, सर्व प्रकार हिंसाका त्याग, सो अहिंसा महाव्रत है। याहीका नाम अभयदान है। केई भोरे जीव जन्मते गौपुत्रके मुखमैं मोती सुवर्ण धरि दान देना, ताकौं अभयदान कहैं हैं। सो यह उपदेश लोभके महात्म्यतैं भोरे जीव-नकूं लोभी गुरुने बताया है। अभय नामतौ वाकौं कहिए जो ताकूं सर्व भयतैं रहित करै। मरणतैं राखै, ताका नाम अभयदान है। सो ए अभयदान वाकौं होय जो हिंसा रहित व्रतका धारी होय॥ १॥ सर्व प्रकार असत्यका त्यागी होय, जिन आज्ञा प्रमाण बोलना, सो सत्यमहाव्रत है॥ २॥ और सर्व प्रकार अदत्तादान

जो बिना दिया पदार्थ नहीं लेना, राह पड़ी वस्तु मन बचन काय करि नाहीं लेय, इत्यादिक चोरीका त्याग, सो अचौर्य महाव्रत है ॥ ३ ॥ सर्व प्रकार स्त्रीके विषयनका मन बचन काय, कृत कारित अनुमोदना करि देवस्त्री, पशुस्त्री, मनुष्यस्त्री, काष्ट पाषाण की अचेतन स्त्री, इन च्यारि प्रकार स्त्रीनके भोग स्पर्शनादि विषय का त्याग, सो ब्रह्मचर्य महाव्रत है। इहां प्रश्न-जो चेतन स्त्रीका त्याग सो शील है। अरु अचेतन स्त्रीका भोग त्यागको शील कह्या, सो ब्रह्मचर्य महाव्रत हैं। सो अचेतन मैं भोग काहेका है? ताका समाधान—भो भव्य! भोग हैं सो यथायोग्य मनकरि, बचन करि, काय करि तीन प्रकार हैं। चैतन्य स्त्री-भोगतो तीनों प्रकार करि होय है। सो तुम भले प्रकार जानो हो हो। और अचेतन स्त्री तैं काय वचनका भोग तो नाहीं बनै है। और मनके भोगकौं अचेतन स्त्री कारण है। अचेतन स्त्री कूं देखि हर्षका होना कि जो यह चित्रांम काष्ट पाषाण की स्त्री महा सुन्दर है याका रूप देवांगना समान है। इत्यादिक अचैतन स्त्री कूं देखि चेतन स्त्रीका सुमरनि करि हर्षका होना, सो मन सम्बन्धी तथा कोई प्रकार वचन सम्बन्धी भोग जानना। तातें ब्रह्मचर्य व्रतका धारी अचेतन और चेतन स्त्रीका त्यागी जानना। यह ब्रह्मचर्य महाव्रत है ॥ ४ ॥ कषाय नव, मिथ्यात एक, संज्वलनकी चौकड़ी चार, ये चौदह प्रकार अंतरंग परिग्रहका त्याग और धन, धान्य, दासी, दासादि दस प्रकार बाह्य परिग्रह ए चोबीस प्रकार परिग्रहका त्याग, सो नगन यतीकैं परिग्रह त्याग नामा महाव्रत है ॥ ५ ॥ इति महाव्रत ॥ आगे पंच समितिका स्वरूप कहिए है—तहां योगीश्वर दयाके भंडार जब पृथ्वी विषैं बिहार करै तब चलते च्यारि हाथ धरती देखतैं चले हैं। सर्व जीवन प्रति महा कोमल चित्तका धरनहारा करुणानिधान, धरती देखै कि कोई जीव हमारे तनतैं पीड़्या नहीं जाय। जैसे काहूका रतन भूमि विषैं पड़ गया, सो रतन शोधवे निमित्त नीची दृष्टी किए, धरती देखता चालै। तैसे ही जगतका पीर हर, जीवरूपी आप समानि रतन, ताके बचावनेके निमित्त देखता चलै, सो ईर्या समिति है ॥ १ ॥ यतीश्वर बचन बोलैं, तब महा हित वचन बोलै। ताकूं सुनि अन्य जीव सुखी होय, पुण्यका बंध करैं। ऐसा पाप रहित जिन आज्ञा सहित मिष्ट वचन बोलैं, सो भाषा समिति है ॥ २ ॥ भोजन समय यती भोजन करैं तब मन वचन काय

एकाग्र करि भोजन विषैं दृष्टी राखैं सो निर्दोष छ्यालीस दोष टारि [बत्तीस अंतराय, चौदह मलदोष टारि] भोजन करैं। सो भी यती, जगत भोगनतैं उदासीन, तन ममत्व रहित, निष्प्रहता लिए भोजन करै। सो मुनिका भोजन पंच प्रकार है। सो ही कहिये है। प्रथमनाम-गोचरी, भ्रमरी, गरतपूरन, दाह शमन, ओंगण। इनका अर्थ-जैसे गैया बनमैं चरै सो घास रूखड़ी वृक्षकूं चरै, सो मूलतैं नहीं उपारे। ऊपरि-ऊपरि तैं चरै। तैसे ही मुनि गृहस्थकूं नहीं सतावै, सहज भ्रमण करि भोजन लेंय। सो गोचरी भेद है ॥ १ ॥ जैसे भ्रमर फूलकूं नहीं सतावै दूरतैं बास लेय, तैसे मुनि गृहस्थकूं नहीं सतावै, गृहस्थकूं घरतैं दूरि अंतर गमन करै, यह पड़गाहै तब भोजन लेय। सो भ्रमरी भेद है ॥ २ ॥ जैसे कोई खाड़ा (गड्ढा) पूरै तब घास, लकड़ी, पत्थर, राख, मिट्टी, धूल जो हाथ आवे, तातैं खाड़ा पूरै। तैसेही यतीनाथ क्षुधारूपी खाड़ा पूरैं। सो चाहे तौ भोजन रस सहित होय तथा रस रहित होय। मुनि, योग्य भोजन आचार सहित लेंय। पीछे कैसा होय, इनकैं स्वादतैं काम नाहीं। क्षुधारूपी खाड़ा जैसे-तैसे भरैं, सो गर्त पूरण है ॥ ३ ॥ जैसे घर कूं अग्नि लगै तब राखि धूलि पानीसे जैसे बने तैसे बुझावें। तैसे ही मुनिकों नीरस तथा रस सहित चाहै जैसा भोजन मिलौ, क्षुधा अग्नि बुझावनी। सो याका नाम दाह शमन है ॥ ४ ॥ गाड़ी नहीं चलै तब तिल तेल घृततैं ओंगके चलाय जैसे-तैसे मंजिल (रास्ता) काटि, घर पहुंचैं। तैसेही मुनी मोक्ष घर जातैं तनरूपी गाड़ी पै चलैं हैं। सो रूखा-सूखा शीत-उष्ण चाहै जैसा होहु, शुद्ध आहार चाहिये सो जब क्षुधाका निमित्त जानैं तब भोजनका ओंगन देय मोक्ष घर पहुंचे, सो ओंगण भेद है ॥ ५ ॥ ऐसे यती भोजन करैं, सो दोष रहित करैं, दोष कैसे, सो कहिए हैं—

गाथा—दोह छियाली रहियो, अंताय तीस दो शुद्धो ॥ दह चव मल दोह हीणो, मुणि भोयण होइ णिदोसो ॥ २३ ॥

अर्थ—छ्यालीस दोष, बत्तीस अन्तराय, चौदह मल दोष, जहाँ एते दोष टलैं, तब मुनीश्वरका भोजन शुद्ध होय है। भावार्थ—यतीका भोजन निर्दोष होय, तौ लेय हैं। कदाचित् दोष लगै तौ अन्तराय करैं। सो दोष कैसे सो कहिए हैं। प्रथम छ्यालीस दोषके नाम—अर्थ कहिए है। तहां प्रथम उद्गम दोष सोल-

है, सो दाताके आधीन हैं। इनकी रक्षा दातारके आधीन हैं। इनको सावधानी दातार करें, नहीं तो दातार कौं दोष लागै। तिन सोलाके नाम—तहाँ मुनिके निमित्त भोजन करे तौ दाताकौं दोष लागे। याका नाम उद्दिष्ट दोष है॥ १॥ तहां आगे भोजन किया होय अरु मुनिकौं आये जानि, उस भोजनकों अल्प जानि तामैं और अन्नादि मिलाए मुनीकौं भोजन देय तौ दाताकों दोष लागे। याका नाम साधिक (अध्यधि) दोष है॥ २॥ मुनीश्वर कौं अप्राशुक जो सचित भोजन देय तौ दाताकौं दोष लागे याका नाम पूर्ति कर्म दोष है॥ ३॥ केई असंयमीकी भाँति मुनीकौं भोजन देय तौ दाताकौं दोष लागे याकानाम मिश्र दोष है ॥४॥ जिस पात्र में भोजन किया (वनाया) था तातैं काढ़ि और पात्रनि में धरि मुनीकौं भोजन देय तौ दाताकौं दोष लागे। याकानाम स्थापिमन्यस्त दोष है॥ ५॥ कोई व्यंतरादिक देवनके निमित्त भोजन किया होय तामैं मुनिकौं दान देय तौ दाताकौं दोष लागै। याका नाम बलिदोष है ॥ ६॥ कालकी हीनता अधिकता तथा भोजनका समय चूकि पड़गाहना, तथा काल जा दुर्भिक्ष ताके योग करि जो सस्ता धान होय, सो उसका मुनीकौं भोजन देय। तथा आपकूं आकुलता जानि शीघ्र-शीघ्र भोजन देय। तथा धीरे-धीरे भोजन देय। ऐसे कालकी हीनता-अधिकता करि यथायोग्य भोजन नहीं देय, तौ दाता कौं दोष लागे। याकानाम प्राभृतक दोष है॥ ७॥ मुनि महाराजके घर आने पर, भाजनोंका अन्य स्थानसे अन्य स्थान पर ले जाना, वर्तनोंका भस्मसे मांजना, जलसे धोवना, तथा मंडपका उघाड़ना, दीपकका उद्योत करना, सो प्रादुष्कर नामा दोष है॥ ८॥ मुनीश्वरकौं भोजनके निमित्त आए जानि, तत्काल ही अपना सचित्त द्रव्य व अचित्त द्रव्य देय करके अहारकों मोलि ल्याय साधुकों आहार देवै वा मंत्र तंत्र विद्या परकूं देय भोजन बनवायकें मुनिकौं दान देय तौ दाताकौं दोष लागै। याका नाम क्रीत दोष है॥ ९॥ अपनी शक्ति तौ नाहीं परन्तु पराया कर्ज लेय मुनिकौं भोजन देय तौ दाताकूं दोष लागै याकानाम प्रामित्य दोष है॥ १०॥ अपने घरमें हीन अन्न था जो जवारि कोदूं, सो तिनकूं बदलाय तंदुल गेहूं लाय मुनीकौं दानदेय, तौ दाताकौं दोष लागे, याकानाम परिवतित [परावर्त] दोष है॥ ११॥ अन्य गृह, अन्य ग्राम, स्वदेश व अन्य देशसे आये हुए

भोजनको, दाता मुनिको पड़गाह करके देय, तो दोष लागे । ताका नाम अभिघट [अभिहृत] दोष है ॥१२॥ और यतिकौं पड़गाह लाये, कोई वस्तु किसी पात्रमें थी ताका मुख बंधा था ताका मुखखोलि, मुनिकौं दान देय, तौ दाताकौं दोष लागै । याका नाम उद्भिन्न दोष है ॥ १३ ॥ और मुनि आए पीछे, कोई वस्तु ऊपरले खंड है ताकूं, लाय मुनिकौं भोजन देय, तौ दाताकौं दोष लागै, याकानाम मालारोहण दोष है ॥ १४ ॥ और श्रावक कूं तौ मुनीदान देवेकी वांछा नाहीं, परणामण में भक्ति नाहीं । परन्तु राजा, पंच, नगरके लोक धर्मात्मा है, सो राजपंचके भय करि लोक दिखावने कूं मुनिकौं दान देय, तौ दाताकौं दोष लागै । याका नाम आच्छेद दोष है ॥ १५ ॥ अनिसृष्ट [निषिद्ध] दोष दो प्रकार है । एक ईश्वर दूसरा अनीश्वर । तहाँ घरका मालिक तो होय परन्तु मंत्री आदिके आधीन होय, सो सारक्ष ईश्वर है । और जो मंत्री आदिके आधीन न हो सो असारक्ष ईश्वर है । और जो मंत्री आदिके अधीन न होकर उनसे सलाह लेकर कार्य करता है सो सारक्षासारक्ष ईश्वर है । इस प्रकारके ईश्वरसे प्रतिषिद्ध आहारको देना, सो ईश्वर निषिद्ध दोष है । जाका घर-धनी तौ नाहीं, और ही आय दान देय, तौ दाताकौं दोष लागै । याकानाम अनीश्वर निषिद्ध दोषहै ॥१६॥ इनका जतन दाता करै ॥ यह उद्गम दोष कहे ॥ आगे सोलह उत्पादन दोष हैं । सो पात्रके आधीन हैं । सो ही कहिये हैं । तहां मुनीश्वर दाताके घर भोजनकौं जांय ताके बालकन कूं धायको नाईं रमावैं । सिंगारादि करावैं । तौ यतीकौं दोष लागै । याकानाम धात्री दोष है ॥१॥ यतीश्वर भोजनकौं दाताके घर जाय कैं ताकौं संम्बन्धी व दूरदेशके समाचार कहैं तौ पात्रकौं दोष लागै । याका नाम दूत दोष है ॥ २ ॥ मुनीश्वर दाताकूं निमित्तज्ञानादि अतिशय बताय भोजन करैं तौ यतीश्वर कौं दोष लागै याकानाम निमित्त दोष है । ॥ ३ ॥ मुनीश्वर दाताके घर जाय आजीविकाकी बात कहैं जो आज काल भोजनका निमित्त अल्प है इत्यादिक कहि भोजन करैं तौ मुनीश्वरकौं दोष लागै । याकानाम आजीव दोष है ॥ ४ ॥ यतीश्वर दाताके सुहावनी बात कह भोजन लेंय तौ मुनीकौं दोष लागै । याकानाम विनयक दोष है ॥ ५ ॥ मुनि दाताके घर भोजनकौं जाय नाड़ी वैद्यकादि औषधि बताय भोजन करैं तौ मुनिकौं दोष लागै । याका नाम चिकित्सा दोष है ।

॥ ६ ॥ जहां मुनीश्वर भोजन समय कोईपै कोप करि भोजन करैं तौ यतीकौं दोष लागै याकानाम क्रोध दोष है ॥ ७ ॥ मुनि आपकूं उत्तम राजबंशका जानि दाताके घर मान सहित भोजन करैं तौ यतीकौ दोष लागै याका नाम मान दोष है ॥ ८ ॥ यतीश्वर अपने चित्तकी गूढ वार्ता कोईकौ नहीं जनावता भोजन करै तौ यतीकौं दोष लागै । याका नाम माया दोष है ॥ ९ ॥ यती भले भोजनकौं रुचि सहित करै तौ मुनिकौं दोष लागै । याका नाम लोभ दोष है ॥ १० ॥ मुनिराज दाताके घर जाय भोजन किये पहले दाताकी स्तुति करैं तौ यतीकौं दोष लागै । याका नाम पूर्व स्तुति दोष है ॥ ११ ॥ यतीश्वर भोजन लिये पीछे दाताकी स्तुति करै तौ मुनीकौं दोष लागै । याकानाम पश्चात् स्तुति दोष है ॥ १२ ॥ यतीश्वर श्रावकनकौं पढ़ाय भोजन करैं तौ यतीकौं दोष लागै । याकानाम विद्या दोष है ॥ १३ ॥ यती मंत्र तन्त्र जंत्र टोना जादू इन आदि अनेक अतिशय अपने अपने श्रावकनकौं बताय तिनकैं भोजन करैं तौ मुनीकौं दोश लागै । याकानाम मंत्र दोष है ॥ १४ ॥ मुनीश्वर गृहस्थन कूं नेत्रका अंजन पेट रोग-कूं चूरन बताय भोजन करैं तौ यतीकौं दोष लागै। याका नाम मूल कर्म (वश्यकर्म) दोष है ॥१६॥ यह षोड़स दोषोंकी यती सावधानी राखै नांहींतो मुनिकौं दोष लागै यतीका पद कलंक पावै । ऐसे सोलह उत्पादन दोष हैं ।आगे ऐषणा दोष दश कहिये हैं । भोजन करते ऐसा सन्देह उपजे जो यह भोजन शुद्ध है अथवा अशुद्ध है ऐसा सन्देह होतैं भोजन करै तौ यतीश्वरकौं दोष लागै याका नाम शंकित दोष है ॥ १ ॥ यती दाताके हाथ चीकने देखैं तथा बासन चिकने देखैं तौ भोजन नहीं लेंय अरु लेंय तो यती कौं दोष लागै । याका नाम मृक्षित दोष है ॥ २ ॥ सचित्त वस्तु तैं व भारी अचित्त वस्तुतें भी ढांकी जो भोजन वस्तु सो यती नहीं खाँय खाँय तौ मुनीकौं दोष लागै । याका नाम पिहित दोष है ॥ ३ ॥ सचित्त पृथिवी जल अग्नि वनस्पति बीज तथा त्रस जीवके ऊपर धऱ्या हुआ आहार मुनि नांहीं गृहण करें यदि करेंतो याका नाम निक्षिप्त दोष है ॥ ४ ॥ सूतकके घर, रोगीके हाथका, वृद्ध बालक नपुंसक गर्भ सहित स्त्री इनके करतैं भोजन नहीं लेंय, और जलती अग्निकौं बुझावती देखैं, तथा स्त्रीकों बालक चुखाती, बालककौं आंचलसे छुटा

वती देखैं, तौ भोजन नाहीं करैं। करैं तौ दोष लागै, याका नाम दायक दोष है ॥ ५ ॥ जो भोजन पृथ्वी, जल, हरितकाय पत्र पुष्प, फल, बीज इत्यादिक करि मिल्या होय, सो मिश्र दोष सहित है ॥ ६ ॥ भयसे अथवा आदरसे वस्त्रादिकको यत्नाचार रहित खींच कर जो मुनीश्वरको आहार देना, सो व्यवण [साधारण] दोष है ॥ ७ ॥ जा बस्तुका वर्ण नहीं फिरया होय, अधकच्ची वस्तु होय, सो यतीश्वर नहीं लेंय याकूं लेंय तौ दोष लागै। याका नाम अपरिणत दोष है ॥ ८ ॥ यती भोजन समय दाताके हाथ व तौला, भरत्याई, हांडी तथा और पात्र, खिचड़ीतैं तथा व्यंजन तिरकारी तैं लिपटे देखैं तौ गुरुनाथ भोजन नहीं करैं। करैं तौ दोष लागै। याका नाम लिप्त दोष है ॥ ९ ॥ जो हाथकी चंचलता कर छाछ, घृत, दुग्धादिका झरना अथवा छिद्र सहित हस्तनिकर बहुत भोजन तो गिर जाय अर अल्प गृहणमें आवे, अथवा हस्तपुटको पृथक करके भोजन करना, सो त्यक्त दोष है ॥ १० ॥ ए दश ऐषणा समितिके दोष हैं।

आगे च्यारि खेरीजि [फुटकर] दोष अथवा भुक्ति दोष कहिए हैं। जहाँ शीत उष्ण वस्तु मिलाए सुख निमित्त खावना, ताका नाम संयोग दोष है ॥ १ ॥ भोजनका प्रमाण तथा कालका प्रमाण ताकौं उलंघिकैं भोजन करै, तो यतीकौं दोष लागै। याका नाम प्रमाण दोष है ॥ २ ॥ भला भोजन, षट्रस सहित मिष्ट भोजनकौं, रति सहित खाय खुशी होय दाताकी सुश्रुषा करैं तौ मुनीश्वरकौं दोष लागै, याका नाम अंगार दोष है ॥ ३ ॥ यतीकौं रूखा-सूखा, रस रहित, प्रकृति विरुद्ध भोजन मिलै तौ अरुचि सौं खांय, तौ यतीकौं दोष लागै। याका नाम धूम दोष है ॥ ४ ॥ ए च्यारि खेरीज हैं। ऐसे उद्‌गम सोलह, उत्पादन सोलह, ऐषणा दश, खेरीज च्यारि। सब मिलि छ्यालीस दोष भए। इन टले शुद्ध भोजन हो है। इति छ्यालीसदोष ॥ आगे बत्तीस अन्तराय कहिए हैं। जहाँ मुनि भोजन करतैं कोई काकादिक जीव बीट करता देखैं, तौ भोजन तजैं। याका नाम काक अन्तराय है ॥ १ ॥ गमन करते साधुके पगमें अमेध्य जो मल लग जाय, तो भोजन नाहीं करें। याका नाम अमेध्य अन्तराय है ॥ २ ॥ मुनिके भोजन करतैं वमन होय जाय तौ, भोजन तजैं याका नाम छर्दि अन्तराय है ॥ ३ ॥ मुनीश्वरको भोजनके लिये गमन करते समय कोई रोक देवे, तौ भो-

जन तज । याका नाम रोधन अन्तराय है । ४ । भोजन समय मुनि आपकैं तथा परकैं लोहू चार अंगुल या अधिक बहता देखैं, तो भोजन तजैं । याका नाम रुधिर अन्तराय है । ५ । साधु दुःख शोकादिकतें आपके अश्रुपात देखें, अरु समीपवर्ती जननका मरणादि कर अति रोदन-विलाप श्रवण करें तो भोजन तजैं । याका नाम अश्रुपात अन्तराय है । ६ । भोजन करतैं दातार तथा पात्र कोई प्रमाद वशाय, जंघा नीचेका अङ्ग छीवै तौ यती भोजन तजैं । याका नाम जान्वधः परामर्श दोष है । ७ । जानु प्रमाण तिर्यग् निक्षिप्त काष्ठादिका उल्लंघन करना सो जानुव्हतिक्रम अन्तराय है । ८ । यती भोजन करतैं कोई मनुष्यकौं नाभि नीचैं मस्तककौं नवायनिकलता देखैं, तो यती भोजन तजैं याका नाम नाभ्यधोनिर्गमन अन्तराय है । ९ । और मुनि भोजन समय तजी वस्तुका ग्रहण करैं, तौ भोजन तजैं । याका नाम प्रत्याख्यात सेवन अंतराय है । १० । भोजन करतें यती सामने दूसरेसे कोई जीव मरा देखें तो भोजन तजैं याका नाम जंतुवध अन्तराय है । ११ । भोजन करतें काकादिक जीव ग्रास लेजाय, तौ यती भोजन तजैं । याका नाम काकादि पिण्डग्रहण अन्तराय है । १२ । भोजन करतैं पात्रके हाथतैं ग्रासपिण्ड भूमिमें पड़े तौ यती भोजन तजैं । याका नाम पिण्डपतन अन्तराय है । १३ । और साधूके हाथमें जीव स्वयं आकर मर जाय तौ भोजन तजें । याका नाम पाणिजंतु वध अन्तराय है । १४ । भोजन समय यती आमिष [मांस] व मुर्दा देखैं तौ भोजन तजैं । याका नाम मांसादि दर्शन अन्तराय है । १५ । भोजन समय कोई उपसर्ग होय तौ यती भोजन तजैं । याका नाम उपसर्ग अन्तराय । १६ । भोजन करते समय यतीके दोनों पांवके बीचमें होय पंचेन्द्रिय जीव कोई गमन करता मुनि जानैं तो भोजन तजैं याका नाम पंचेन्द्रिय जीव गमन अन्तराय है । १७ । भोजन करते दाताके हाथतैं भूमिमें पात्र पड़े, तौ भोजन यती नहीं करे । याका नाम भाजन संपात अन्तराय है । १८ । भोजन करतैं मुनीश्वर अपना मल खिरया जानैं तौ भोजन नहीं लेय । याका नाम उच्चार अन्तराय है । १९ । भोजन करतैं यति आपके मूत्र खिरया जानै तौ अन्तराय होय । याका नाम प्रस्रवण अन्तराय है । २० । भोजन समय मुनि प्रमाद वशाय भूलमें, शूद्रके घरमें

प्रवेश कर जाँय, तौ अन्तराय करैं, याका नाम अभोज्य गृह प्रवेश अन्तराय है। २१। यतीका मूर्छा कर पतन हो जाय, तौ अन्तराय करैं। याका नाम पतन अन्तराय है। २२। भोजन समय कर्म करि, भूलिकैं तथा प्रमाद तैं तथा तनकी हीन शक्ति तैं कबहूं मुनि बैठि जाँय, तौ अन्तराय होय याका नाम उपवेशन अन्तराय है। २३। भोजन करतैं कोईकौं कुत्ता, बिल्ली काटिता देखितैं भोजन तजैं। याका नाम सदंश दृष्ट अन्तराय है। २४। भोजन पहले सिद्ध भक्तिके पश्चात् करतैं भूमिस्पर्शैं तौ अन्तराय है। याका नाम भूमि स्पर्श अन्तराय है। २५। भोजन करतैं मुनीश्वर स्वतः कफादिकका निष्ठीवन करैं तौ भोजन तजैं याका नाम निष्ठीवन अन्तराय है। २६। भोजन समय मुनि अपने उदरतैं कृमि खिरी जानैं, तो अन्तराय करैं। याका नाम कृमि गमन अन्तराय है। २७। भोजन समय दाताके बिना ही दिए प्रमाद योगतैं कोई भोजन यती अङ्गीकार करैं, तो भोजन तजैं। याका नाम अदत्त ग्रहण दोष है सो अन्तराय है। २८। खड्गादितैं कक्करते साधुका कोई घात करै वा अन्यका घात करै, तो अन्तराय होय। याका नाम शस्त्रप्रहार अन्तराय है। २९। भोजन समय मुनिनाथने नगरमैं जाते, नगरमें अग्नि लागी देखी तौ भोजन तजैं, याका नाम ग्रामदाह अन्तराय है। ३०। भोजनकौं नगरमैं जाते कोई पड़ी वस्तु पावतैं ग्रहणकरैं तौ भोजन तजै याका नाम पादग्रहण अन्तराय है। ३१। भोजन कौं नगरमैं प्रमाद बशाय कोई राह पड़ी वस्तु हाथतैं छींव तौ भोजन तजै, याका नाम कर ग्रहण अन्तराय है। ३२। ऐसे जगतका गुरु शरीरतैं मोहका तजनहारा, संसारीक सुखतैं उदास इन्द्रिय जनित आनन्दतैं निष्प्रह ए बत्तीस अन्तराय भोजन समय टालैं, तब शुद्ध भोजन होय है। चौदह मलदोष और टालैं, तिनके नाम कहिए है—नख, रोम मृतक जीव हाड़ गेहूं—जब अन्नके वाह्य—अभ्यन्तर अवयव पक्व रुधिर तिलादिकके सूक्ष्म अवयव, चाम, रुधिर आमिष ऊंगने योग्य बीज फल जाति आदादि कन्द (अदरक आदि) मूलादि मूल ऐसे चौदह मलदोष हैं सो मुनिके भोजनमैं आवें तौ तथा केईक देखैं तौ वे भोजन तजैं। ऐसे छयालीस दोष बत्तीस अन्तराय और चौदह मल दोष टालैं। तब बीतरागी गुरुका शुद्ध भोजन होय है। याका नाम तीसरी ऐषणा समिति है॥ ३॥ आदान तौ नाम लेनेका है, अरु निक्षेपण नाम धरवै

का है। सो पुस्तक पीछी कमण्डल शरीर इनकूं जहां धरै सो निर्जीव जगह देखि धरै। इनको उठावै तब जतन तैं उठावै। सो आदाननिक्षेपण समिति है ॥ ४ ॥ और यति तनके मल—मूत्र सो निर्जीव भूमि देखि नाखैं (डालैं) सो प्रस्थानी [व्युत्सर्ग] समिति है ॥ ५॥ ए पांच समिति कहीं। आगे पंचेन्द्रिय वशीकरण कहै हैं। सो तहां स्पर्शके आठ विषय हैं। तिन आठको निमित्त मिलै राग-द्वेष नहीं करै सो स्पर्शन इन्द्रिय विजयी साधु कहिए ॥ १ ॥ रसना इन्द्रियके पांच विषय हैं। सो इन पांचका निमित्त मिलै तहां राग-द्वेष नहीं करै सो रसना इन्द्रिय विजयी साधु कहिए ॥ २॥ घ्राण इन्द्रियके विषय दोय हैं। तिनका निमित्त मिलैं, रागी द्वेषी नहीं होय सो घ्राण इन्द्रिय विजयी साधु कहिए ॥ ३ ॥ चक्षु इन्द्रियके पंच विषय हैं। तिनका निमित्त मिलै रागी-द्वेषी नहीं होय, सो चक्षु इन्द्रिय विजयी साधु कहिए ॥ ४ ॥ श्रोत्र इन्द्रियके तीन विषय हैं। तिनका निमित्त मिले रागी-द्वेषी नहीं होय, सो श्रोत इन्द्रिय वशीकरण (विजयी साधु) कहिए है ॥ ५ ॥ ऐसे पंच इन्द्रियनके विषयका निमित्त मिलै रागी—द्वेषी नहीं होय सो पंचेन्द्रिय विजयी साधु हैं। बहुरि आवश्यक षट्का स्वरूप कहिए है। सो प्रथम ही सामायिक आवश्यक कहिये है—

गाथा—णाम सथापण दव्वो खेत्तो कालेय भाव सम्मायो। एसड भेय मुणिंदो, अह णिस धारणेय आवसियो ॥

ऐसे सामयिकके षट् भेद हैं। नाम सामायिक, स्थापना सामायिक, द्रव्य सामायिक, क्षेत्र सामायिक, काल सामायिक और भाव सामायिक। अब इनका अर्थ सामान्य करि बताइए है। तहां इष्ट पदार्थ राग रंग गीत नृत्य रूप रतन कंचन सपूत पुत्र भाई माता पिता राज इन आदिक वस्तुके नाम सुनि राग नहीं करना सो नाम सामायिक है। तथा शत्रु अविनयी दुराचारी इत्यादि खोटे नाम सुनि द्वेष नहीं करना सो नाम सामायिक है तथा ऐसा विचारना कि जो मैं सामायिक करौं हौं, इत्यादिक भावना सो नाम सामायिक है। और मनुष्य पशु तथा मिट्टी काष्ट पाषाणके मनुष्य पशूनके नाना प्रकार आकार देखि ऐसा नहीं विचारना कि ए भला है ए भला नाहीं। तथा वावड़ी कूप सरोवर मन्दिर आदि देखि राग द्वेष भले बुरे नहीं कल्पना सो स्थापना सामायिक है। और चेतन अचेतन द्रव्य—पदार्थ देखि राग द्वेष नहीं करै तथा कोई भव्यात्मा

द्रव्य सामायिकके सर्व पाठ जाननेवारा संध्या समय सामायिक करवेको पद्मासन तथा कायोत्सर्ग तनकी मुद्रा किए तिष्ठै है। ताका चित्त वशीभूत नाहीं, सो अनेक जगह भ्रमण करै है। अरु पाठ शुद्ध पढ़ता तिष्ठै है सो जीव तथा शरीर सामायिक रूप है, ताकूं द्रव्य सामायिक कहिये। और स्वर्ग नरक पाताल मध्यलोकके अनेक द्वीप—समुद्र, अढ़ाई द्वीप विषैं तिष्ठते आर्य—मलेच्छ क्षेत्र, वन वाग पर्वत इत्यादिक जो सुख-दुख रूप शुभाशुभ देश ग्राम क्षेत्र तिनमैं रागद्वेष नहीं करना सो क्षेत्र सामायिक है। वसंतादि षट् ऋतु तथा शीत उष्ण वर्षाकाल तथा शुक्लपक्ष कृष्णपक्ष तथा दिन रात्रि तथा वार नक्षत्रादि ए शुभाशुभ देखि इनमें राग द्वेष नहीं करना। तथा उत्सर्पिणी अवसर्पिणी तथा प्रथम दूजा तीजा चौथा पंचमा छठा काल इन सब कालन की प्रवृत्ति विषैं शुभाशुभ नाहीं होना रागद्वेष नाहीं करना सो काल सामायिक है। सामयिक करते जीव--अजीवादि तत्वन मैं तौ उपयोगकी प्रवृत्ति शरीरकी एकाग्रता-निश्चलता और मिथ्यात प्रमादके अभावतैं शुद्ध समता रस भींजते भाव और सामायिक करते बचन, मन, काय इनकी एकता सहित सामायिक ही विषैं भावनकी प्रवृत्ति, सर्व जीवनतैं स्नेहभाव सर्वको रक्षाभाव व्रत संयमकी बढ़वारी रूप परणाम धर्म शुक्लध्यान मई भाव चेष्टा सो भाव सामायिक है। सो इन षट् भेद रूप सामायिकका धरनहारा शुद्ध भावन सहित जगत गुरु मुनीश्वर षट् कायका पीर हर सो सदीव सर्वकाल सर्व संयमका धारी गुरुके सामायिक आवश्यक है ॥ १ ॥ यतीश्वर कैं अरहंत-सिद्धकी बारंबार स्तुति सो स्तवन आवश्यक है ॥ २ ॥ अरहंत सिद्ध कौं बारंबार नमस्कार रूप मन बचन काय सो बंदना आवश्यक है ॥ ३ ॥ कोई प्रमाद वशाय संयमकों दोष लागा होय तो ताकों यादि करि ताके दूर करवेकों क्रिया करनी सो प्रतिक्रमण आवश्यक है ॥ ४ ॥ और पाप क्रियाका त्याग सो प्रत्याख्यान आवश्यक है ॥ ५ ॥ और तहां शरीर तैं मोह रहित होय प्रवर्तना ध्यान रूप होना, तन त्याग रूप उदास भावना कायोत्सग आसन करि तिष्ठना सो कायोत्सर्ग आवश्यक है ॥ ६ ॥ ऐसे महाव्रत, समिति पंचेन्द्रिय वशीभूत करण षट् आवश्यक, सात खेरीज गुण ऐसे अष्टाविंशति मूल गुणकी रक्षा रूप सदीव प्रवर्तना सो गुरु बंदने योग्य हैं।

इति श्रीसुदृष्टितरंगिणी नाम ग्रन्थ मध्ये अठाईस मूल गुणनमैं ऐषणा समितमैं छयालीस दोष बत्तीस अन्तराय चौदह,मलदोष रहित शुद्ध ऐषणा समिति सहित गुण वर्णनो नाम अष्टमपर्व सम्पूर्णम् ।

आगे भी मुनिधर्मकी प्रवृत्ति है। तहां तेरह प्रकार चारित्र--उत्तमधर्म सो पंच महाव्रत पंच समिति इनका स्वरूप तौ ऊपरि कहि आए हैं। तीन गुप्ति तिनका स्वरूप कहिए है। जहां मनका चिंतवन होय सो जिन आज्ञा अनुसार होय। सर्व जीवन कूं सुख रूप प्रमाद रहित मनका विचार अपने अभिप्राय विना और रूप नहीं होय सो मन वशी जानना। याहीका नाम मनगुप्ति है। जहाँ बचनका बोलना सो स्वपर-हितकारी जिन आज्ञा समानि बोलना आत्माके अभिप्राय बिना प्रमाद बचन नहीं बोलना सो प्रमाद रहित सत्य जिन आज्ञा अनुसार कहना सो वचन वशी जानना याहीका नाम वचन गुप्ति है। जहाँ कायतैं चालना सो समिति सहित चालना अपने आंगोपांग चंचल करना सो जिन आज्ञा अनुसार करना महादया भावन सहित शांति मुद्रा कर रहना अशुभ तनकी शुश्रूषा रूप नहीं रहना अपनी काय करि कोई प्राणी भय नहीं करै सो मुद्रा बनाय तिष्ठकैं रहै। आत्माके अभिप्राय बिना कायक्रिया प्रमाद तैं नहीं करना सो कायका वशी करना है। याही-का नाम काय गुप्ति है। ऐसे तेरह प्रकार चारित्र जानना। इस चारित्र सहित जे मुनि होंय सो गुरु सत्य जानना। येही गुरु सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन रत्नत्रय सहित हैं। सो सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्र का स्वरूप तौ ऊपरि कहि आए हैं। अरु सम्यग्ज्ञानका स्वरूप कहिए है। सो सम्यग्ज्ञान पांच प्रकारका है। जिन आज्ञा अनुसार स्वपर पदार्थनका स्वभाव जानना सो सम्यग्ज्ञान है। इनका स्वरूप आगे कहेंगे, तहां तैं जानना। ऐसे शुद्धरतनत्रयका धारी योगीश्वर सम्यग्दृष्टीनका गुरु है पूजवे योग्य है। येही गुरु महा-धीर कर्मशत्रुके जीतवेकूं महा सामंत तन ममत्त्वके त्यागी जगत गुरु कर्म शत्रुनके किए महाघोर परीषह तिनके सहवेंकूं साहसी हैं। ते परीषहनके भेद बाईस हैं। सो ही कहिए हैं—

गाथा—छुद तिस सीतय उसणऊ, दंसा णगणाय अरतितीय चज्जाए ॥ आसण सयण कुवयणं, बधबंधा आवमालाभो ॥ २४ ॥
गद तण फासय मल्लयो; सक्कारो पुरुसकार पण्णाय ॥ अण्णाणोय अदसणं, सव्वे वाबीस गुण सहधीरा ॥ २५ ॥

युग्मार्थ—क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमसक नगन अरति स्त्री चर्या आसन शयन दुर्वचन बधबंधन याचै नाहीं अलाभ रोग तृणस्पर्श मल सत्कार—पुरस्कार प्रज्ञा अज्ञान, अदर्शन ए बाईस उपद्रव हैं। अब इनका अर्थ कहिए है। तहां मुनीश्वर नाना उपवासके पारणेको भोजन समय नगर मैं जाॅय अरु तहां अन्तराय होय, तौ यती व्रतका लोभी, पीछा बनकूं जाय। क्षुधातैं तन महाक्षीण होय परन्तु जगतगुरु, परणति खेद रूप नहीं करैं। अन्नके सहाय बिना तनने अपनी सत्ता छोड़ दई, परन्तु यतीने अपना मनका पुरुषार्थ नहीं तजा, सो शिथिल भया शरीर ताकूं अपने पुरुषत्व करि यथावत उचित क्रिया चलावते भए। जैसे कोई दीपान्तरका जानेहारा सेठजी कर्णरथ पै चढ्या गमन करै है, सो कहीं—कहीं पर्वतनकी घाटी विकट पत्थरन सहित आवै। तहाॅ रथकूं जीर्णजानि जतनतैं साधि, द्वीपान्तर पहुंचै। तैसे यती मोक्ष द्वीपका चलनेहारा, तन रूपी रथपै चढ़िके जाय है। सो कहीं क्षुधा परिषह रूपी घाटी आवे है तहां महा उदासीन वृतका धारी अपनी साहस वृत्ति कर क्षुधा परीषह कूं जीतै सो क्षुधा परिषह विजयी साधु कहिए ॥ १ ॥ तहां जे गुरु नाना तप उपवास दुर्धर करते जेठ मासके दीर्घघामनिका निमित्त पाय भई जो तन विषैं तपनकी ज्वाला, अरु ऐसा ऋतु मैं भोजनकौं नगर मैं गए, तहाॅ प्रकृति विरोधी दाहकारी भोजनका निमित्त मिल्या। तथा मासोपवासीकौं नगरमें अन्तराय भई। ताके निमित्त तैं बधी (बढ़ी) जो तनमैं तृषाको वेदना, ताके निमित्त पाय सर्व शरीर अग्निवत तपि चला, नेत्रनकैं आगे तमारे आवनें लगे, तारागनसी (चिनगारीसी) नेत्र पै टूटनैं लगी, लोचन फिरने लगे इत्यादिक भई जो तृषाको बाधा, ताकौं सहते धीर साधु वीतरागी मुनी खेद भाव नाहीं करैं। ताकूं तृषा परीषह विजयी साधु कहिए। २। तहां राज अवस्थामें शीतको बाधा मेटवें कौं अनेक उपाय करते अग्नि, रुई, रोम शाल दुशाले, रजाई कोमल स्त्रीके तनका उष्ण स्पर्श अनेक गर्म मेवा भोजन और औषधादिक रस भोगना। और अनेक महलनके गर्भनकैं अन्दर सोना इत्यादि गृहस्थ अवस्था मैं तनके जतन करते सो अब यतीपद विषैं नदीतट चौपट बन इत्यादिक शीतके स्थान तिनमैं तिष्ठतैं योगीश्वर समता रस पीवते, ध्यान अग्निकी महिमा विषैं तपते शीतकी बाधा नहीं गिनैं सो शीत-परीषह विजयी

साधु कहिए। ३। वहुरि समता रस अमृतके स्वादी यतीश्वर, तपकरि भया जो तन चीण ताकरि तनकी शोभा अरु ज्ञान शोभा प्रगट करी ऐसे तपज्ञान भण्डार यती, चैत्र वैशाख ज्येष्ठ इन मासनके घामनि करि सूखि गए हैं नदी सरोवरके नीर, अरु वनके वृक्षनके पत्ता अरु कूप वावड़ीनके जल नीचे वैठि गए। और पृथ्वी, पर्वत, अग्निवत तप चले। वन वाग शोभा रहित होय गये। ऐसे दुर्धर (घोर) घामन में अनेक वनचर जीव अपने-अपने स्थाननमें गमन तजि तिष्ठ रहे। केईक पशु वृक्षनकी छायामें तिष्ठ रहे हैं। मार्ग चलनहारे पंथीजन मनुष्य, सो भी मार्ग तजि वैठि रहे हैं। ऐसे घामन विषैं योगीश्वर, पर्वतनके शिखरन पै, शिलान पै समता सुधारस पीवने हारे। सुखतैं अडोलशरीर करि तिष्ठते, नहीं है परणति में खेद जिनके, ऐसे यतीश्वर सो उष्ण परीषह विजयीसाधु कहिए। ४। वर्षाकाल विषै वर्षाका निमित्त पाय, वृक्षनके नीचे डांस, मसक, विच्छू, कानखजूरे, आदिक दुःखके उपजावन हारे जीव, मुनिके तनकूं उपद्रव करैं है। तिन यतीन के तनकौं काटै हैं। तनकैं लिपटै हैं। तिन वाधाके आगे, जगतका पीर हर दया भण्डार तनकौं नहीं हिलावे हैं। ऐसा विचारै है जो मेरा तन चंचल भया तौ ए हीन शक्तिके धारी दीन जीव भय पावैंगे। तथा दीन जीवन की घात होय तौ हिंसाका दोष उपजेगा, ऐसा जानि तिन दीन जीवनकी रक्षा कूं धीर-वीर अपनी काय निश्चल करि वाधा सहता कायर भाव नहीं करैं, सो दंशमशक परीषह विजयी साधु कहिए। ५। जे गृहस्थ अवस्थामैं आप चक्री, कामदेव मण्डलेश्वर, महामण्डलेश्वरादि वड़े पदधारी राज सम्पदा में, तनमें अनेक श्रृंगार करते तनक भी शरीर उघड़ता तौ लज्जाकौं धरते अपने तनकी शोभा आपही देखि-देखि देवनका रूप अल्प मानते महाभोगी शरीरके अंग--उपांग उघाड़ते शंका करते सो ही अब संसारकी दशा विनाशीक जानि सर्व राज-सम्पदा चपलासी चपल जानि तातैं ममत्व छोड़ि नग्न अवस्था धारि निशंक निर्विकार पद धरि जगत शंकाकूं छोड़ि नग्न पद धारते भए। सो नगन परीषह विजयी साधु कहिए।६। और जे वीतरागी इन्द्रियनकौं अनेक अनिष्ट सामग्री मिलै भी चित्त अरति रूपी नहीं करैं, सो अरति परीषह विजयी साधु कहिये।७। जो निर्विकार यती, देवाङ्गना, मनुष्यनी, तिर्यञ्चनी, काष्ठ-पाषाण-चित्रामकी सुन्दर पुत्तलिकायें ए चेतन-अचेतन च्यारि प्रकारकी

स्त्रीनका निमित्त मिलै रागद्वेष नहीं करैं। तहां कोई देवांगना तथा विद्याधरी आय यतीपै अनेक हाव-भाव विनय मंदहास्य नेत्रनतैं सरागता बताय यतीकौं विकार उपजावे तौ भी यह ज्ञान सम्पदाकाधारी सुमति रूपी सखी करि जान्या है मोक्ष स्त्रीका स्वरूप अरु सुख तिननैं सो यती मोक्ष स्त्री अनुरागी इन च्यारि जाति स्त्रीनके शुभाशुभ देखि रागद्वेष नहीं करैं सो स्त्री परीषह विजयी साधु कहिये ।८। और राज अवस्थामैं जे रथ पालकी घोटकादिकी सवारी करते। पांवन कबहूं नहीं चलते सो अब वही सुकमाल सत्संगके निमित्त पाय सर्व सम्पदा बिनासीक जानि सर्व वाहनकी सवारी तजि नगन अवस्था धरि एकाएक वनविषैं पगप्यादे फिरैं हैं सो बिहार करतैं कोमल पावनमैं कंटक तिनका पाषाण खण्ड कठिन धरती चुभती भई। ताकरिपावनमें रुधिर धारा चलती भई। ताकरि भी यती समता रसका भस्मा धीर बीर साहसी संयमका लोभी खेद नहीं लेता भया। सो चर्या परीषह विजई साधु कहिये। ९। और मुनि गुफा मशान मण्डप वृक्षके कोटर वनादिक मैं तिष्ठैं आसन करैं वहां आगे पीछे विचारैं जो यहां गुफादिमें सिहांदिक जीवन के खोजि बिल मालूम होय है। तौ इस स्थानमें तो नाहीं रहे ? यह स्थान आगे काहू जीव करि रोक्या गयो तो नाहीं ? कदाचित कोऊ देवादिकके क्रीड़ाका स्थान न होय। और कौऊ स्थानमें काहूका ममत्व भाव होय ऐसे स्थानन में यती नहीं रहै ऐसे अनेक विचार सहित निर्दोष स्थान तामै काहूका ममत्व नांहीं ऐसे स्थानमैं स्थिति करि तिष्ठैं अरु तिष्ठैं पीछे कोई देव विद्याधर सिंहादिक दुष्ट जीव उपद्रव करि स्थानतै यती कौं चलाया चाहैं तौ यती महा धीरजका धारी शूरवीर साहसी समता रसका स्वादी सकल परीषह सहै परन्तु आसन नहीं तजै सो जगत गुरु आसन परीषह विजयी कहिये। १०। और मुनिनाथ निशि दिन ध्यान अध्ययनमें वितावैं प्रमाद वशी नहीं होंय। कदाचित प्रमाद वसाय निद्राकर्मका उदय होय ही तौ पिछली रैनि (रात्रि) तुच्छ निद्रा करि प्रमाद खोवैं। सो भी सोवैं तो महाविकटासन सोवैं। तिन आसनके नाम वताइये हैं। गौदूहन आसन, वीरासन, धनुष्कासन, वज्रासन, मडासन इन आदि अनेक आसन हैं। अब इनका अर्थ कहिये है। तहां जैसे गैयाके दूहनकौं ग्वाल बैठे। ऐसे प्रमाद खोवनेकूं तिष्ठैं सो गोदूहन आसन है। और तहां जैसे लो

किकमें भोरे जीवन नें हनुमानका स्थापन किया है सो वीरासन है। जैसे शूरवीर लड़वेकूं ठाड़ा होय यती प्रमाद शत्रु तें लड़वेकूं वीरासन करे। तथा जैसे लौकिक में धनुष वांका होय है तैसे यतीश्वर तनकूं वांका भूमि में डारि शयन करें सो धनुष्कासन है। और जैसे वज्र दण्ड भूमि डारिये तब सरल सूदा पड़ा रहे। तैसे यति सरल तन करि आंगोपांग सोवें सो वज्रासन है। तथा जैसे मसान भूमिमें डरया मुर्दाका तन चेतना रहित अडोल पड़ा होय। तैसे यती मसान भूम्यादिमें सर्वश्वासोच्छ्वास मेटि शरीर कूं काम गुप्तिके योगतें लम्बा कर तिष्ठे सो मड़ासन है। इन आदि क्रियादि करि प्रमाद कों गोय ध्यान अध्ययन में स्थिर रहे सो शयनाशन परीषह विजई कहिये ॥११॥ और जे दुष्टनर योगीश्वर कों देखि दुर्वचन कहे हैं कोई कहे चोर है कोई कहें ठग है, कोऊ कहें पाखंडी है। कोऊ कहें दीन है, कोऊ कहें रंक है। कोऊ कहें कमा-ऊ है। और केई कहें राज लक्षण नाहीं तातें राज तजि उदर भरवेकूं मुनी भया है। इत्यादिक दुष्ट अज्ञानी जीव वचन रूपी वाणन करि मुनिकूं पीड़ाका निमित्त मिलावें हैं तो भी योगीश्वर समता रसका भरया भली भावना भावने हारा वीतरागी कोईके वचन रूपी वाण अपनी समता रूपी ढाल करि अपने लागने नहीं देय और परणाम निर्दोष राखे सो दुर्वचन परीषह विजयी साधु कहिए ॥ १२ ॥ और कोई पापीजन निर्दोष वीतराग मुनिकूं मारें हैं ॥ बांधे हैं केई अग्नितें जलावें हैं। इत्यादिक उपद्रव करें हैं। तो भी करुणाभावी समता सागर जगतका पीर हर कोई तें द्वेष भाव नहीं करे। जो कोई निर्दयी पुरुष मुनीकों लात मुक्कीतें मारें। तब योगीश्वर ऐसा विचारें जो मोतें याका कछू अपराध बना है तातें यह मारे है। यह कोई दयावान है। तातें मोकूं लकड़ी तें तो नहीं मारे है। तनतें ही देय है। कोऊ कठोर चित्तधारी मुनी कूं लाठी लड़की तें मारें तो ऐसे विचारें जो कोई शस्त्रतो नहीं मारे है। और कोऊ पापात्मा शस्त्र ही मारे तो यती ऐसा विचारें जो मैं चेतना अमूर्तीक मेरा तो घात है नांहीं। मैं इस तन बंधन बंदीग्रहमें रुका हों। सो यह उपकारी मोकूं करुणा करि तन बंदी ग्रह तें छुड़ावे है ऐसा विचारें समता रसका धारी आपमें दोष जाने पर तैं दोष भाव नहीं करे सो वधवन्धन परीषह विजयी साधु कहिये ।१३। जो मुनीश्वर तप भण्डार अनेक

उपवासनके पारणे नगरमैं भोजनकौं जांय तहां अन्तराय होय तौ पीछे बनकौं जांय ध्यान अध्ययन करैं। दूसरे दिन फिर जांय तब अन्तराय होय ऐसे अनेक उपवासनके पारणे मुनीकौं ऊपरा उपरि अन्तराय होय तौ भी ज्ञानामृतपानपुष्ट यती तनतैं निस्पृह चुधाके योगतैं याचना नहीं करैं। ध्यानमूर्तिक चारित्रभंडार अपनी संयम प्रतिज्ञाका लोभी अपनी अयाची वृत्ति मलीन नहीं करै सो अयाचना परीषह विजयी साधु कहिए ॥ १४ ॥ मुनीश्वरके भोजनकौं नगर मैं भ्रमतैं अन्तराय होय। तथा काहूनैं पड़गाहा नाहीं। ऐसे बहुत दिन भए होंय भोजनका लाभ नहीं होय तौ परम योगी तनका त्यागी सन्यासी गुरुकौं खेद नाहीं होय तो यतीश्वर पुद्गलीक तनकूं जुदा जानि उपचार नाहीं करैं सो रोग परीषह विजयी साधु कहिए। १६। राज अवस्थामें गलोचा गदेलादिक (गद्दादि) अनेक कोमल बिछौना पै पांवधरैं सो ही जीव जगका विभव विनाशीक जानि सवविषय सामग्री विषवत जानि करि जगत पूज्य यतीपदकौं धारि एकाकी कठिन धरती पै चलै सो कोमल पांवन लगै जो तीक्ष्ण कांटे, पाषाण खंड, काष्ठखंड, तिनकादिक तिनकरि पांव फटि गए सो पांवनतैं श्रोणितकी धारा चली तौ भी यती ईर्या समिति धारक चित्त विषैं कायर नाहीं होय, सो तृणस्पर्श परिषय विजयी साधु कहिए। १७। जे राज अवस्था मैं अनेक सुगंध लेप, चन्नन अरगजा अतर खुशबू केशर कस्तूरी आदि अनेक सुगन्ध लेप करि गमन होते, सो ही अब सर्वदशा संसारीक की विनाशीक जानि तनतैं ममत्व भाव छोड़ि, डारी है तनकी शोभा जिनने। तिनका सर्व तन मांस सूख गया। नशा जाल रह गया। यावज्जीवन स्नानका त्यागी, तपकरै तनपै मैलि पुञ्ज जमि चल्या। सो वाह्य मैलि करि शरीरतैं बास चलने लगी है। तो भी नासिका इन्द्रीका वशीभूत करने हारा ग्लानिचित्त नाहीं करै। ताको मल परिषह विजयी साधु कहिए। तहां मलके दोय भेद हैं। एक द्रव्यमल एक भाव मल। तहां द्रव्यमलके भेद दोय हैं। एक वाह्यद्रव्यमल। एक अंतरंग द्रव्यमल। सो कीच, कांदो पसेवतैं रजका जमना ए तौ वाह्यद्रव्य मल है। ज्ञानावरणादिक द्रव्य कर्मका आत्माकें लेप सो अंतरंग द्रव्य मल है। और रागद्वेष भाव पाप परणति ए भाव मल है। ऐसे कहे जो मल तिनमैं भाव मलका त्यागी, अंतरंग पवित्र है आत्मा तिनकी, सो अति महा निर्मल है। और द्रव्य

मलतैं समभावी यति सो मल परीषह विजयी साधु कहिए । १८ । राज अवस्थामैं आप चक्री थे । तथा कामदेव तथा विद्याधर मण्डलेश्वर महामण्डलेश्वर इन आदि बड़े वंशके राजा थे सो मानके अर्थ अनेक युद्ध करते । अनादर भए दण्ड देते अपना अमल [हुक्म] सर्व पर चलावते । सो ही अब संसार दशा चंचल जानि, राजभार तजि नगन होय, बनवासी भए । सो अब वैराग्यके बल करि कषाय जीती, सो ऐसे जगतगुरु बीतरागीको कोई मंदभागी अज्ञानी आव-आदार नहीं करैं नमस्कार वन्दना नहीं करैं ताजीम नहीं करैंतौ बीतरागी सर्वका बंधू काहू तैं रोष भाव नहीं करै सो सत्कार पुरस्कार परीषह विजयी साधु कहिए । १६ । जे जगत गुरु नाना प्रकार तप भण्डार अनेक चारित्र गुणके धारी बीतरागीकौं, कोई ज्ञानावरणी कर्मके क्षयोपशमतैं तथा उदयतैं ज्ञानकी बढ़वारी नहीं होय तो यतीनाथ और मुनीश्वरनकौं अनेक शास्त्रनके पाठी विशेष ज्ञानी देखि ऐसे नहीं विचारैं । जो मैं बड़ा तपसी बड़ी उम्रकाहूं भले पदका धारी, सो मेरी विशेष बुद्धि नाहीं मोकौं कोई कहा कहेगा ? ऐसा विचार नहीं करै, सो प्रज्ञा परीषह विजयी साधु कहिए । २० । यतीकौं तपस्या करते, चारित्र पालते, बहुत दिन भए होंय, अरु कर्म योगतैं कोई अवधि मनःपर्यय केवलज्ञान नहीं भया होय तौ योगीश्वर अपना चित्त धर्मतैं तथा चारित्र तैं अरुचिभाव नहीं करैं हैं । सो साधु अज्ञान परीषह विजयी कहिए । २१ । मुनीकौं तप करते चारित्र पालते बहुत दिन होंय अरु तप बलतैं कोई ऋद्धि नहीं उपजी होय, तथा कोई निमित्त ज्ञानादिक अतिशय नहीं देख्या होय, तौ ऐसा नहीं विचारै जो आगे शास्त्रनमैं ऐसी मुनी थी जो तपके बलतैं अनेक ऋद्धि होय हैं । सो हमकौं कछू प्रगट नहीं भई । सो न जानै शास्त्र भाषित सत्य है तथा असत्य है । ऐसा सन्देह रूप मिथ्या मई विकल्प नहीं करैं सो अदर्शन परीषह विजयी साधु कहिए । २२ । ऐसे बाईस :परीषह सहबेकौं धीर सोही जगतका गुरु है । सो ही गुरु सम्यग्दृष्टीन करि पूज्य है । सो ही गुरु जानना । सो ऐसे मुनीश्वरनके भेद दश हैं । सो ही कहिए—

गाथा—सूरोप वज्झाय तपसी, सिसिगलांणगण कुलय संजाती । साहू मणोगय दहदा, जोई भेयाण जिणसुते भासई ॥ २६ ॥

अर्थ—आचार्य, उपाध्याय, तपसी, शिक्षि, ग्लाण, गण, कुल, संघ, साधु, मनोज्ञ । ए मुनि जातिके दश भेद हैं । तहाँ प्रथम आचार्यका स्वरूप कहिये है—

गाथा—दहधम्मो तप बारह आवसि सड़ पण्णाचार तीए गुत्ती । इण छतोस गुण जुत्तो, सूरो जगपूज्ज होई मुणणाहो ॥२७॥

अर्थ—धर्म दश भेद, बारह भेद तप, षट् भेद आवश्यक, पंचभेद आचार, गुप्ति भेद तीन, ऐसे ए सर्व छत्तीस गुण आचार्यजीके हैं । तहाँ प्रथम ही दशधर्म भेद कहिये है—

गाथा—सार खमा मादव्वो, आज्जव सच्च सौचधर्म्म संज्जाए । तप तागो अहकंचो, बंभचज्जाय धम्म दह भेवो ॥ २८ ॥

अर्थ—उत्तमक्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन, ब्रह्मचर्य ए दश प्रकार धर्म हैं । तहां प्रथम ही उत्तमक्षमाका लक्षण कहिए है । तहां आप समान पदके धारी जीवनका शुभाशुभ चारित्र देखि क्षमा करनी सो क्षमा है । आपके पदतैं :हीन शक्तिके धारी तथा चौइन्द्रिय, तेन्द्रिय बेन्द्रिय एकेन्द्रिय आदि ए महा हीन शक्तिके धारो तिनतैं समता भाव क्रोध नहीं करना सो उत्तम क्षमा है । इहां प्रश्न, जो पंचेन्द्रिय आदि आप समान पदधारी तौ कोपादि कषाय करैं हैं सो इन तैं द्वेषभाव नहीं करना सो तौ क्षमा जानिए है । और एकेन्द्रिय जीवन पर्यन्त जीवन कैं तौ कोई कैं कोप करनेकी शक्ति नाहीं इनतैं क्षमा कैसे करैं ? इनतैं क्षमा करनी सो उत्तम क्षमा कैसे कही, सो कहौ । ताका समाधान ! भो भव्य, तूँ चित देय सुनि । जो आप समान पदस्थधारी जीवन तैं तो कोपका कारण, इनकी हिंसाका निमित्त तो अल्प समय पाय परै है । अरु एकेन्द्रिय विकलत्रयकी हिंसाका निमित्त वारंबार बहुत मिलै है । ताही तैं श्रावककैं स्थावर हिंसा नहीं बचै है । इनकी हिंसा महाव्रती यती तैं बचै है । सो तू सुनि वनस्पती तोड़ना, तुड़ावना, खावना, मसलना, चालते खूंदना, सुखावना, छीलना छोलवाना, सूघना, इत्यादीक मिटै तब वनस्पती एकेन्द्रिय की हिंसा नहीं लागै । और कच्चे जलका छीवना, ऊलातपावना, स्नान करना धोवना धुवावना, पीना, और कौं प्यावना इत्यादि जलका कार्य छूटै, तब जल काय स्थावरनकी हिंसा छूटै है । और अग्निका बारना, कहिकैं जलवाना, छीवना, दावना, प्रगट करना दीपक करना, करावना, याकी प्रभा मैं तिष्ठना इत्यादिक अग्निके आ

रम्भ छूटैं तब अग्निजीवनका पाप छूटै है। और पवन पंखेतैं लेना, कपड़ा हलावना कूदना, हाथन तैं तारी बजावना, फूकैं देना, वस्तु पटकना इत्यादि पवन घातके कार्य छूटें तब पवन कायकनकी हिंसा छूटै। और पृथ्वीका खुदावना, खोदना, झाड़ना, छीवना, फोड़ना, फुड़ावना इत्यादिक पृथ्वी कायके कार्य छूटैं। तब पृथ्वी एकेन्द्रियकी हिंसा छूटै है। इत्यादि पंच स्थावरनकी हिंसा कही। विकलत्रयकी हिंसा तब टरै। जब जतन तैं चलै, जतनतैं बैठे, जतनतैं सोवे जतनतैं बोलैं, जतनतैं खाय जतनतैं वस्तु धरती पै धरै, जतनतैं उठावै, खाजि चलै तौ नहीं खुजावै, अन्न मेवा जे वस्तु खावे योग्य होय सो खाय अयोग्य नहीं खाय। अन्न, तेल घीव मेवादिक किरानादिक वस्तु नहीं वेचै, नहीं लेय इत्यादिक जे कार्य एकेन्द्रियके आरंभ घात निमित्त बहुत हैं। तातें जो इनकी रक्षा रूप वर्तना सो उत्तम क्षमा जानना। सो ए कहे जेते कार्य्य सो सर्व ही सर्व प्रकार यती महाव्रती कैं पलै हैं। गृहस्थ कैं नाहीं। तातें याका नाम उत्तम क्षमा कह्या है। १। और अष्टप्रकार मदका त्याग सो मार्दव धर्म है। २। और भावन में दगावाजोका त्याग और वाह्याभ्यन्तर एकसी मन काय की क्रिया सरल भाव कुटिलता रहित परिणाम सो आर्जवधर्म है। ३। और मन बचन कायकर असत्यका त्याग जिन आज्ञा प्रमाण हित मित बोलना सो सत्यधर्म है। ता सत्य वचनके दश भेद हैं सो कहिए है

गाथा—जणवद संवदिठवणा, णाम सत्तोय रूपी पत्तीतो। ववहारण संभावण, भावउपमाए सत्यदह भेवो ॥ २६ ॥

अर्थ—जनपद सत्य संवृत्ति सत्य स्थापना सत्य नाम सत्य रूप सत्य प्रतीति सत्य व्यवहार सत्य संभावना सत्य भाव सत्य उपमा सत्य ए दश। इनका अर्थ। तहां जिस देश विषैं जिस वस्तुका जो नाम होय ताको तैसेही कहना जैसे कर्नाटक देशमें उड़दनका नाम भूतिया कहै हैं। सो वह देश प्रमाण है। याकानाम जनपद सत्य कहिए। १। बहुरि जाको वहु जीव मानैं ताकौं तैसाही कहिए। जैसे काहू निर्धन पुरुषका नाम लक्ष्मीधर हैं। ताको सर्व देश नगरके लोक लक्ष्मीधर ही कहैं हैं। याकानाम संवृत्ति सत्य है। २। और जहां काहू राजाकी छवी काहूनै काष्ठ पाषाण चित्रामकी करी है। सो वा छवि कूं राजा कहना जो यह फलाने राजा की छवी है ऐसा कहना याकानाम स्थापना सत्य है। ३। जिसका नाम लोकमें प्रसिद्ध होय तिस वस्तुकूं

ताहीं नाम लिए सब जानै। जैसे काहू देशके पुरुषका नाम बाबा है। तिसकूं सर्व देश नगर बाबाही कहे। सो याकानाम ठाम (स्थान) पूछिए तो बाबाके नामतें मिलै तातें बाबा कहना याकानाम सत्य है। ४। और शरीरके वर्णकी अपेक्षा करि कहना जो यह काला है लाल है इत्यादिक कहना सो रूप सत्य है। ५। और वर्तमान कालमें बस्तुकौं छोटी बड़ी कहना जो बड़ीकी अपेक्षा ये छोटी है। छोटी की अपेक्षा यह बस्तु बड़ी है। ऐसा कहना सो प्रतीति सत्य है। ६। और नैगमनय करि बचन बोलिए सो व्यवहार सत्य है। जैसे कोई कमर बांध घरतैं विदाहोय परदेश कूं गया। अरु बाके घर कोऊ तब ही पूछे, जो फलाना कहां है तब वाके घर वारे कहैं, वह तो फलाना देश गया। सो तुरंत तौ ग्राम वाहिर भी निकस्या नहीं होयगा देश गया कैसे कहैं हैं। तौ इन घर वारोंकी तरफतैं गया ही कहिए, सो व्यवहार सत्य हैं। ७। इन्द्र विषैं ऐसा बल है जो चाहै तौ पृथ्वीकौं उठाय लेय। सो पृथ्वी तौ अनादि ध्रुव है। काहूनै उठाई नाहीं परन्तु इन्द्रमें ऐसी शक्ति जाननी। सो शक्ति अपेक्षा कहिए। सो संभावना सत्य है। ८। सिद्धान्त शास्त्रके अनुसार अमूर्तीक पदार्थनका श्रद्धान। जैसे धर्म अधर्म द्रव्य लोक प्रमाण हैं तथा जलकी बूंदमें असंख्याते जीव हैं। परन्तु प्रत्यक्ष नाहीं। जिन प्रमाण हैं, सो सत्य है। याकानाम भाव सत्य हैं। ६। कोई बस्तुकी कोई बस्तुकूं अपेक्षा देनी जैसे यह राजा कल्प वृक्ष सो वृक्ष नाहीं मनुष्यही है। परन्तु वांच्छित दान देय है। ताकी अपेक्षा लेय कल्प वृक्ष कह्या याकानाम उपमा सत्य है ।१०। ऐसे कहे जो सत्यके दश भेद सो नय प्रमाण ए दश ही सत्य हैं। तातैं जो इन दश भेद बचननकौं बोलैं सो सत्य है। ४। परबस्तुका सर्व प्रकार त्याग सो शौच धर्म है। ५। पंचेन्द्रिय और मनका बश करना सो इन्द्रिय संयम है। और षट् कायक जीवनकी दया रूप प्रवर्तना सो प्राण संयम है। ऐसे दोय भेद रूप संयम धर्म है ।६। बाह्य अभ्यन्तर करि तप भेद बारह हैं। सो तप करना सो तप धर्म है ।७। मन बच कायतैं परबस्तुके ममत्व भावका त्याग, सो तथा तन धन कुटुम्बादिका त्याग सो त्याग धर्म है ।८। वाह्य आभ्यन्तर दोय प्रकार परिग्रहका त्याग सो आकिंचन धर्म है। ६। चेतन अचेतन स्त्रीका भोग

अभिलाषका त्याग सो ब्रह्मचर्य धर्म है। सो आगे या ब्रह्मचर्यके दश अतीचार हैं सो कहिए हैं। शील व्रत का धारी शरीरकौं शृंगार सुगंध लेपन नहीं करै। धोवना, पोंछना स्नानादि तनकी सुश्रूषा नहीं करनो। इत्यादिक कहे कार्य करै तौ व्रतकौं दोष लागै। १। और पेट भर भोजन करै, गरिष्ट भोजन करै, वेश्यादिकके गीतनाद नृत्य सुनै शीलवान पुरुष स्त्रीका निमित्त करै। शीलवान स्त्री पुरुषका निमित्त मिलावै, गृहस्थ अवस्थाके इन्द्रिय जनित भोग सुख रूप जानि तिनकौं बिचारै, आपने तथा स्त्रीके आंगोपांग निरख रागद्वेष करै स्त्रीनके आव आदर सुश्रूषा सत्कार बहुत करना सो शीलको दोष है पूरब भोगे जो सुख इन्द्री जनित तिनको बार-बार बिचारे स्त्रीके मिलापकौं बार बार आरति करना चाहना वीर रजके खेरवेका जैसे तैसे उपाय करना ये दश अतीचार शीलके सो शील धर्मको मलीन करे हैं। तातैं ब्रह्मचर्य व्रतका धारी ए दश दोष नहीं लगाय कै अपना ब्रह्मचर्य वृति निर्दोष राखे हैं। याका नाम ब्रह्मचर्य धर्म है। इति दश धर्म। तप बारह इनका स्वरूप आगे कहेंगे। आवश्यक षट और गुप्ति तीन इनका स्वरूप आगे कह आये। पंचाचारका स्वरूप आचारसारजीसे जानना ऐसे धम दश, तप बारह, आवश्यक षट पंचाचार ५, गुप्ति तीन इन छत्तीस गुण सहित आचार्य मुनिके भेद हैं।

इति श्री सुद्दृष्टितरंगनी नाम ग्रन्थ मध्ये अष्टाविंशति यतीका धर्म तेरह प्रकार चरित्र रत्नत्रय बावीश परीषह कथन दशभेद सत्य अतीचार शीलके दश छत्तीस गुण आचार्य वरननो नाम पर्व पूर्णम् ॥ ६ ॥

आगे पच्चीस गुण सहित उपाध्यायका स्वरूप कहिये है।

गाथा—अङ्ग एकादह जुत्तो चउदह पुव्वाय णाण संजुत्तो सो उवझाओ अप्पा,- गुणवीसाय पण सहिओ। ३०।

अर्थ—ग्यारह अंग चौदहपूर्व उपाध्यायजीके ए पच्चोस गुण हैं। सो ही संक्षेप मात्र कहिये हैं। आचारांग, सूत्रांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्तयांग, ज्ञातृकथांग, उपासकाध्ययनांग अन्तकृतदशांग अनुत्तरोपपाददशांग, प्रश्नव्याकरणांग, विपाकसूत्रांग ए ग्यारह अंग है। अब इनका अर्थ सो जिस-जिस अंगमें जो कथन है ताकी मुख्यता लेयकैं सामान्य भाव इहां कहिये हैं। तहां प्रथम ही गणधर देव नैं प्रश्न किये। जो

हे प्रभो ! कैसे खाईए ? कैसे बोलिये, कैसे चालिये कैसे बैठिये इत्यादिक क्रिया तौ कीजै अरु पाप नहीं लागै सो मार्ग बताइये जिस करि जीवनका कल्याण होय। ऐसा प्रश्न होते जिन देव ऐसा उत्तर करते भए। जो यतन तैं खाईए। यतनतैं चालिए यतनतैं बोलिए यतनतैं बैठिये। इत्यादिक जो क्रिया करिए सो यत्नतैं करिये तो पाप नहीं लागै। यतीके आचारका कथन जहां चलै सो आचारांग नाम अंग है। इसके अठारह हजार पद हैं। १। आगे जहां देव धर्म गुरुका विनय ऐसे कीजिए। ऐसे विनयतैं देवकी पूजा कीजै। विनयतैं शास्त्रनका वांचना सुनना धरना राखना गुरुकौं वन्दना करनी पूजा करनी सो विनयतैं करनी। ऐसे विनयका कथन तथा अपना मत परके मतनकी क्रिया स्वभाव प्रवृत्ति आदि कथन होय सो दूसरा सूत्रांग कहिए याके छत्तीस हजार पद हैं। २। आगे जीवस्थानके एक भेदकौं आदि एक एक जीव समासवधावते [बढ़ावते] च्यारि सौ षट् स्थान आदि जीवके स्थानका कथन होय जामैं सो तीसरा स्थानांग है। याके बियालीस हजार पद हैं। ३। आगे जहां द्रव्य क्षेत्र काल भाव करि सम ही समका जामैं कथन होय। जैसे धर्म, अधर्म द्रव्य लोकाकाश सम हैं। तथा सब सिद्ध राशि सम है। इत्यादिक तौ द्रव्य सम हैं क्षेत्रकरि प्रथम नारकका प्रथम पाथरेका प्रथम इन्द्रकविल पैंतालीस लाख योजन प्रमाण है। और अढ़ाई द्वीप पैंतालीस लाख योजन है। और प्रथम स्वर्गका प्रथम इन्द्रक रुचिक नाम सो पैंतालीस लाख योजन है। और मोक्ष शिला पैंतालीस लाख योजन है और सिद्धनके विराजिवेका सिद्धक्षेत्र पैंतालीस लाख योजन है। ये पंच पैताले हैं सो क्षेत्रसम हैं। तथा जम्बूद्वीप सर्वार्थसिद्धिविमान सातमें नरकका इन्द्रक विल नन्दीश्वर द्वीपकी वापिका ये चार एक लाख योजनक्षेत्र प्रमाण हैं। तातैं क्षेत्र सम कहिये इत्यादिक क्षेत्र समान जानना। आगे समयतैं समय सम है उत्सर्पिणी अपसर्पिणी दोऊका दस दस कोड़ा कोड़ी सागर काल है, तातैं सम हैं। इत्यादिक काल समके भेद हैं। केवल ज्ञान केवल दर्शन ए दोऊ भाव सम हैं। इत्यादिक भाव सम हैं। ऐसे समही समका व्याख्यान जामैं होय सो समवायांग है। याके एक लाख चौसठि हजार (१६४०००) पद हैं। ४। आगे जहां गणधर देवने प्रश्न किए। भो भगवान् ये वस्तु अस्ति हैं अथवा नास्ति हैं ? अरु जीव एक है या अ-

नेक हैं। जीव सादि है कि अनादि है ? इत्यादि साठ हजार प्रश्न किए। तहाँ उत्तर कि वस्तु द्रव्य की अपेक्षा सदैव अस्ति है द्रव्य वस्तुका नाश कबहूं होता नाहीं। और वस्तु पर्याय की अपेक्षा नास्ति है। जितनी पर्यायें उपजैं हैं सो निश्चय करि नाश होहैं सो जीव अनन्त है और नाम अपेक्षा तो एक है कि यह जीव द्रव्य है। जैसे बहुत रतनकी राशि है सो नय अपेक्षा तौ रतन राशि एक। अरु पर्याय गुण सत्ताकी अपेक्षा रतन भिन्न भिन्न अपनी कीमत लिए हैं। केई रतन उत्कृष्ट हैं केई मध्यम हैं केई हीन हैं, झूठे हैं। तैसेही जीव भी पर्याय सत गुणतैं जुदे भिन्न-भिन्न हैं केई सिद्ध हैं केई संसारी हैं। तामें भी केई भव्य हैं केई अभव्य हैं। ऐसे अपने कर्म उपार्जन प्रमाण फलरूप हैं। और जीव द्रव्य अपेक्षा अनादि है। पर्याय अपेक्षा सादि हैं। इत्यादि अनेक उत्तर करते भए। ऐसा कथन जामें चलै सो व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग है। याके २,२८,००० पद हैं जहां समोशरण कथन तथा दिव्यध्वनि खिरवेका कथन। तथा तीर्थंकरनके अतिशयनका कथन इत्यादिक कथन जामैं होय सो ज्ञातृकथा छठा अंग है। याके पांचलाख छप्पन हजार पद हैं।६। आगे श्रावका आचार ग्यारह प्रतिमादि जामैं श्रावककौं धर्म कर्म रूप कैसे प्रवर्तना इत्यादिक कथन जामैं होय सो उपासकाध्ययन सातवां अंग है। याके ११ लाख सत्तर हजार पद हैं।७। एक-एक तीर्थंकरके समयमें दश दश मुनीश्वरोंने आयुके अन्तसमय केवल ज्ञान पाया तिनकूं अन्तकृत केवली कहिए। तिनका कथन जहां चलै सो अन्तकृत दशांग है याके २३,२८००० पद हैं।८। एक एक तीर्थंकरके समयमें दशदश मुनीश्वर अति उपसर्ग सहकैं अहमिंद्र भए। तिनका कथन जहां चलैं सो अनुत्तरोपपाद दशांग है। याके ९२,४४००० पद हैं।९। जहां होनहार त्रिकाल सम्बन्धी होय सो बतावैं। मुठी वस्तुराखि पूछै तौ बतावैं। इत्यादिक जो प्रश्न करै सो ही बतावैं याका नाम प्रश्नव्याकरण अंग है। याके ९२, १६,००० पद हैं। १०। जहां कर्मका उदय भया तब शुभाशुभ रस जिसजिस तरह जीवने उपार्जे अरु वे जिस-जिस तरह उदय होय। ऐसा कथन जामैं होय सो विपाक सूत्र नामा अंग है। याके १८४,००००० पद हैं। ११। ऐसे ग्यारह अंगका ज्ञान उपाध्याय जीकूं होय। और चौदह पूर्वका स्वरूप नाम लिखिये है। तहां उत्पाद पूर्व अग्रायणी पूव वीर्यानुवाद अस्ति- ।१५८।

नास्ति, ज्ञानप्रवाद, सत्यप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद, प्रत्याख्यान, विद्यानुवाद पूर्वकल्याणप्रवाद, प्राणवाद क्रियाविशाल पूर्व, त्रिलोकबिन्दुपूर्व ए चौदह पूर्वके नाम हैं। अब इनका अर्थ। ताका रहस्य लेय सामान्य अर्थ दिखाईए है। तहां व्यय ध्रुव उत्पादका लक्षणकों लिए षट् द्रव्यादि वस्तुनका परणमण है। जहां इन व्ययध्रुव उत्पादका लक्षण होय सो उत्पाद पूर्व है। याके एक कोड़ि पद हैं। जहां वस्तु कहा पदार्थ कहा द्रव्य कहा सुनय कहा कुनय कहा इत्यादिक व्याख्यान जामैं होय सो आग्रायणी पूर्व है। याके छ्यानवै लाख पद हैं। जामैं वीर्यका कथन जो आत्मवीर्य कहा भाववीर्य कहा इत्यादि वोर्यका कथन जहां होय तहां सामान्य भाव जो चेतना शक्ति सहित अनंन पदार्थन मैं प्रवर्तते खेद नहीं होय सोही अनन्त वीर्यरूप आत्माका परणमण सो कालवीर्य जानना। और अनन्त पदार्थ जीव अजीवनकों अवगाहना देनेकी शक्ति सो क्षेत्रका वीर्य है। और इस लोक मैं तिष्ठते द्रव्य जीवाजीवरूप षट् द्रव्य तिनका तीन काल सम्बन्धी शुभाशुभ परणमण जानने रूप केवल ज्ञान सो भाववीर्य है। इत्यादिक वीर्यका ही व्याख्यान जामैं होय सो वीर्यानुवाद पूर्व है। याके सत्तरि लाख पद हैं और जीवअजीवादि द्रव्यनके स्वभाव अस्तिनास्ति रूप काल क्षण आदि जामैं कथन होय सो अस्तिनास्ति पूर्ण है। याके साठिलाख पद हैं। और जहां आठ ज्ञानका लक्षण कहा ज्ञानका फल कहा। ज्ञानका विषय कहा। इत्यादिक कथन जामैं होय सो ज्ञान प्रवाद पूर्ण है। याके एक घाटि एक कोड़ि पद हैं और जहां नाना प्रकार वचत बोलनेके भेद। ए बचन सत्य हैं। ए असत्य हैं। ऐसे निर्धार करता नय प्रमाण लिए कथन जामैं होय सो सत्यप्रवाद नाम पूर्व है। याके एक कोड़ि षट् पद हैं। जहां आत्माकी स्तुति बनायवेका तथा निश्चय व्यवहार रूप नयन करि आत्म स्वभावका साधना सो आत्म प्रवाद पूर्ब है। याके छत्तीस कोड़ पद हैं और तहाँ आठ मूलकर्मके उत्तर भेद एकसौ अड़तालीस तिनका स्वरूपबंधरूप जो आत्मा अमूर्तीक ए कर्म कैसे बांधै सो बंध और बंधे पीछे जेते काल अवाधा पूरण न होय उदय नहीं आवै सो सत्व है। आवाधा पूरण भए उदय होय सो अपना रस कर्म प्रगट करि जीवकूं सुखी दुखी करैं सो उदय, ऐसे बंध उदय सत्तारूपका परणमना सो कर्म प्रबादनाम पूर्ण है। याके एक कोड़ असी

लाख पद हैं। जहां व्रत विधि व्रतका फल चारि निक्षेपणानका विस्तार इत्यादि जहां कथन होय सो प्रत्याख्यान पूर्व है। याके चौरासी लाख पद हैं। जहां अनेक विद्या साधनेका विधान, विधानकौं कैसे साधिए सो विधान विधानके सिद्ध होने योग्य तप जान जो मंत्रतें जो विद्या सिद्ध होय ऐसे मंत्रसे फलानी विद्या सिद्ध भई तथा ऐसा फल करै या विद्या की इतनी सामर्थ है। अष्ट निमित्तज्ञानके भेद इत्यादिक कथन विद्यानुवाद पूर्वमें होय है। तहां निमित्त ज्ञानके आठ भेद बताइये है।

गाथा—अन्तरिक्खं भौमाए, अङ्ग सुर णिमित्त णाण विजणायो। लक्खण सुपणय छिण्ण वत्थु णिमित्त णाण भेदाइ। १।

अर्थ—अन्तरिक्ष निमित्त, भौम निमित्त, अंगनिमित्त, स्वरनिमित्त, व्यञ्जननिमित्त, लक्षणनिमित्त स्वप्ननिमित्त, छिन्न निमित्त,। अब इनका सामान्य अर्थ। जहां सूर्यचिन्ह, शशिचिन्ह, तारानक्षत्रचिन्ह, बादलचिन्ह, संध्या समय आकाशके वर्णादिकचिन्ह, इत्यादिक आकाशमें शुभाशुभ उल्का (विजुली) पातादि देखि शुभाशुभ कहैं। सो अन्तरीक्ष निमित्तज्ञान हैं। १। भूमिमें रतन, सुवर्ण, चांदी पाषाणादिक भूमिके चिन्ह जानि शुभाशुभ बतावै सो भूमि निमित्तज्ञान है। २। मनुष्य तिर्यञ्चनके शरीरके रस, रुधिर, प्रकृति, इत्यादि चिन्ह देखि शुभाशुभ कहै सो अंग निमित्तज्ञान है। ३। जहां मनुष्य तिर्यञ्चनके शब्द सुनि शुभाशुभ होनहार कहै सो स्वरनिमित्त ज्ञान है। ४। जहां शरीरके तिल, मसा, करमें पांवमें उरमें मुखपै इत्यादिक अंग उपांगमें तिल मसा देखि शुभाशुभ होनहार बतावै सो व्यंजन निमित्त ज्ञान है। ५। जहां शरीरमें श्रीवत्स लक्षण, स्वस्तिक भृंगार, कलश, वज्र मत्स्यादिक चिन्ह देखि शुभाशुभ बतावै सो लक्षण निमित्तज्ञान है। ६। कोई वस्तु वस्त्रादि मूसादिक पशुनैं काटी होय। ताकौं देखि शुभाशुभ चिन्ह बतावै सो छिन्ननिमित्तज्ञान कहिए। ७। जहां नाना प्रकारके स्वप्न तिनकूं जानि तिनके शुभाशुभ लक्षण कहै सो स्वप्न निमित्तज्ञान है। ८। ऐसे ए आठ प्रकार ज्ञानकौं आदि अनेक ज्ञानका शुभाशुभ बतावै सो विद्यानुवाद नामा पूर्व है। याके एक कोड़ी दश लाख पद हैं और जहां तीर्थंकरके पंच कल्याणक तथा और चरम शरीरनके एक दोय कल्याणनका कथन तथा ज्योतिष देवनका गमन क्रिया होय सो कल्याण वाद पूर्व है। याके छ-

छ्बीस करोड़ पद हैं। और जहां वैद्यक कथन, व्यंतरादिक वशीभूत करवेके विधान, विष उतारवेके मंत्रादिक इत्यादिक विधान जहां होय सो प्राणवाद पूर्व है। याके तेरहकरोड़ पद है। और जहां संगीतकला छंदकला, अलंकार कला चित्राम कला, शिल्पकला, गर्भाधान शोधवेकी कला, तथा स्त्रीनकी चतुराई हावभाव रूप चौसठिकला इत्यादिक कथन जहां होय सो क्रियाविशाल पूर्व है। याके नब्बे कोड़ि पद हैं। जहां त्रिलोक विन्दु मैं तीन लोक उर्ध्व, मध्य, पाताल तथा पाताल लोक विषैं प्रथम पृथ्वी रतनप्रभा ताके तीन भेद हैं। खरभाग, पंकभाग, अब्बहुलभाग। तहां खरभाग सोलह हजार योजन मोटा है ताकू हजार हजार योजनके मोटे सोलह भेद हैं। तिनके नाम चित्रापृथ्वी, वज्रापृथ्वी, वैडूर्या, लोहिता, मसास्कल्या, गोमेधा प्रवाला, ज्योतिरसा, अंजना, अंजनमूलिका अंकापृथ्वी, स्फाटिका चंदना सर्वार्थका, वकुला शैला, ऐसे सोलह भाग हैं। पंक भाग चौरासी हजार योजन है। इन दोऊ भागनमें तौ व्यंतर भवनवासी देव बसैं हैं। और अस्सी हजार योजनका जाड़ायण (मोटा) लिये अब्बहुल भाग है। तहां प्रथम नरक है। तहां पाथड़े तेरा हैं। और सर्वविल तीस लाख हैं। तहां आयु उत्कृष्ट एक सागर है। कायकी ऊंचाई सवाइकतीस हाथ है। ऐसे प्रथम नरक। १। आगे दूसरा शर्करानामा नरक तहां पाथड़े ग्यारह। काय साढ़े वासठि हाथ आयु तीन सागर, और विल पचीस लाख, मोटाई पृथ्वीकी बत्तीस हजार योजन है। २। वालुका नरकमें पाथरे नव, बिल पन्द्रह लाख, आयु सात सागर, पृथ्वीको मोटाई अठाइस हजार योजन, और काय एक सौ पचीस हाथ। इति तीजी नारक। ३। चौथी पृथ्वी पंकप्रभामें पाथड़े सात आयु सागर दशकी काय दोय सै पचास हाथ है। भूमिकी मोटाई चौवीस हजार योजन है और विलनका प्रमाण दश लाख है। ऐसे चौथी नारक। ४। आगे धूम प्रभा पांचवी नारक। तहां पाथड़े पांच काय हाथ पांचसै आयु सत्तरह सागर विलनका प्रमाण तीन लाख पृथ्वीकी मोटाई बीस हजार योजन इति पांचमी नारक। ५। आगे छठी पृथ्वी तमनामा तहां पाथड़े तीन है। काय एक हजार हाथ है। बिलनका प्रमाण पांच घाटि एक लाख है। भूमिकी मोटाई सोलह हजार योजन है। इति छट्ठी पृथ्वी। ६। आगे सातमी पृथ्वी महातम। तहां पाथड़ा एक है। विल पांच हैं। काय दोय हजा

र हाथ (पांच सै धनुष) है। आयु तेंतीस सागर है। भूमिकी मोटाई आठ हजार योजनकी है। इति सातमी पृथ्वी। ७। ऐसे अधो लोकका सामान्य कथन कह्या।

आगे मध्य लोक एक राजू विस्तार सहित है। तहां असंख्याते द्वीप असंख्याते समुद्र हैं। तहां असंख्यातद्वीप तौ तिर्यक लोक है। तिनके मध्य मैं अढ़ाई द्वीप पेंतालीस लाख योजन क्षेत्र मनुष्य लोक है। इससे आगे मनुष्यका गमन नाहीं। तहां प्रथम लाख योजन विस्तार सहित जम्बूद्वीप है। तहां दोय चन्द्रमा दोय सूर्य हैं। और लवण समुद्र मैं चन्द्रमा चार हैं। सूर्य चार हैं। सो ए सागर दोय लाख योजन विस्तार धरे है। जम्बूद्वीप तें दूना जानना। तहां आगे च्यारि लाख योजन विस्तार सहित लवणोदधितें दूना वड़ा धातकी खंड द्वीप है। तहां चन्द्रमा वारह और सूर्य वारह हैं। और धातकीखंडतें दूना विस्तार सहित आठ लाख योजन विस्तार धरैं कालोदधि समुद्र है। तहां चन्द्रमा बियालीस हैं सूर्य बियालीस हैं। ताकें आगे यातें दूना विस्तार सहित पुष्कर द्वीप है। ताके अर्द्ध मध्य भागमें मानुषोत्तर पर्वतके वाहर कूं आधे पुष्कर द्वीप में चन्द्रमा वहत्तरि हैं और सूर्य वहत्तरि हैं। ऐसे ए सर्व मिल अढ़ाई द्वीप विषैं चन्द्रमा एक सो वत्तीस और सूर्य एक सौ वत्तीस जानना। तहां एक चन्द्रमाका परिवार कहिए है। तहां चन्द्रमा एक, सूर्य एक, ग्रह अठ्यासी, नक्षत्र अठ्ठाईस, छ्यासठि हजार नव सौ पिचहत्तरि कोड़ाकोड़ि तारे हैं। यह एक चन्द्रमा ज्योतिषी देवनका इन्द्र, ताका सर्व परिवार जानना। सो जम्बूद्वीप विषैं चन्द्रमा दोय, सूर्य दोय, ग्रह एक सौ छिहत्तरि नक्षत्र छप्पन, और तारे एक लाख तेतीस हजार नव सौ पचास कोड़ाकोड़ि हैं। सो जम्बूद्वीपके भाग भरत क्षेत्र समान करिए, तौ एक सो नव्वे होंय। सो भरत तैं लगाय विदेह पर्यन्त क्षेत्र पर्वत दुगुने दुगुने विस्तार वाले हैं। और विदेह क्षेत्र तें उत्तर दिशाकौं क्षेत्र पर्वत हैं। सो ऐरावत क्षेत्र पर्यंत अर्ध अर्ध हैं ऐसे जम्बूद्वीपकी शलाका भरत क्षेत्र समान एक सौ नव्वे कही।१।२।४।८।१६।३२।६४।३२।१६।८।४।२।१। ए सर्व एक सौ नव्वे हैं सो एक एक शलाका पै केते तारे आए सोही कहिए हैं। तहां भरतक्षेत्र पै सात सौ पांच कोड़ाकोड़ि तारे हैं। और हिमवत पर्वत पै चोदह सौ दश कोड़ाकोड़ी तारे हैं। और हैमवत क्षेत्र पै अट्ठाइससो वीस कोड़ा-

कोड़ी तारे हैं। और महा हिमवत पर्वत पै छप्पन सौ चालीस कोड़ाकोड़ी तारे हैं। और हरिक्षेत्र पै ग्यारय हजार दोय सौ अस्सी कोड़ा कोड़ी तारे हैं। और निषध पर्वत पै बाईस हजार पांच सौ साठि कोड़ा कोड़ी तारे हैं। और विदेह क्षेत्र पै पैंतालीस हजार एक सौ बीस कोड़ा कोड़ी तारे हैं। और नील पर्वत पै बाईस हजार पांच सौ साठि कोड़ाकोड़ी तारे हैं। और रम्यक क्षेत्र में ग्यारह हजार दोय सौ अस्सा कोड़ा कोड़ी तारे हैं। और रुक्मि पर्वत पै छप्पन सौ चालीस कोड़ा कोड़ी तारे हैं। और हिरण्यवत क्षेत्र पै अट्ठाईस सौ बीस कोड़ा कोड़ी तारे हैं। और। शिखरी पर्वत पै चौदह सौ दश कोड़ा कोड़ी तारे हैं। और ऐरावत क्षेत्र पै सात सो पांच कोड़ा कोड़ी तारे हैं। ऐसे जम्बूद्वीपके एक सौ नव्वे भागन पै तारानका प्रमाण कह्या। ऐसे अढ़ाई द्वीप सम्बंधी चन्द्रमा सूर्यनका प्रमाण परिवार सहित कह्या। आगे मध्यलोक में असंख्यात द्वीप हैं। तिन में आदिके सोलह द्वीपनके नाम कहिए हैं। जम्बूद्वीप, धातकी खंड, पुष्करद्वीप, बारुणी द्वीप, क्षीखर द्वीप, घृतवर द्वीप, क्षुद्रवर द्वीप, नंदीश्वर द्वीप, अरुणवर द्वीप, अरुणाभासवर द्वीप, कुंडलवरद्वीप, संखवर द्वीप, रुचिकवर द्वीप, भुजंगवर द्वीप, कुसंगवरद्वीप, क्रौंचवर द्वीप, ए आदिके सोलह द्वीप कहे। आगे असंख्याते द्वीपनके अंतके सोलह द्वीपनके नाम बताईए हैं। मशिलाद्वीप, हरताल द्वीप, सिंदूरवर द्वीप, श्यामवर द्वीप, अंजनवर द्वीप, हिंगुलवर द्वीप, रूपवर द्वीप, सुवर्णवर द्वीप, वज्रवर द्वीप, वैडूर्यवर द्वीप, नागवर द्वीप भूतवर द्वीप पक्षवर द्वीप देववर द्वीप अहमिंद्रवर द्वीप और स्वयंभू रमण द्वीप ए अंतके द्वीप कहे। और विशेष एता जो आदि दोय समुद्रद्वीपनका नाम तो और और है। बाकी असंख्याते द्वीप समुद्र हैं तिनका समुद्रका नाम सोंही द्वीपका नाम जनना। ऐसे सामान्य मध्यलोकका कथन कह्या। सो एक राजू तौ मध्यलोक चौड़ा है। लाख योजन मेरु प्रमाण मध्यलोक की ऊँचाई है। तामें ही ज्योतिष लोक जानना और ज्योतिषी देवनका प्रमाण अढ़ाई द्वीप सम्बन्धी सामान्य कहिये है। तिनमें ध्रुवतारानका प्रमाण कहिए है। तहां जम्बूद्वीप सम्बन्धी ध्रुवतारे छत्तीस हैं। ३६। लवण समुद्र में १३६ ध्रुव तारे हैं धातकीखंड विषै एक हजार दश हैं। कालोदधि समुद्र विषैं ध्रुवतारे ४११२० हैं। आधे पुष्कर द्वीपमैं मनुष्य लोककी तरफ

५३२३० ध्रुवतारे हैं ऐसे सर्व मिलि अढ़ाई द्वीपके विषैं ६५,५३५ ध्रुवतारे हैं। अब मध्यलोक सम्बन्धी अकृत्रिमजिन चैत्यालय जहां जहां हैं सो ही बताइए है। तहां एक मेरु सम्बन्धी च्यारिबन हैं। एक एक बन में च्यारि च्यारि जिन मंदिर हैं। सो च्यारि बनके सोला जिन मंदिर भये। और एक मेरु सम्बन्धी च्यारि गजदंत हैं। तिन पै च्यारि मंदिर हैं। षट कुलाचलन पै षट्। जम्बू शालमली दोय बृक्षन पै दोय मंदिर हैं। विजयार्ध चौंतीस पै चौंतीस जिन मंदिर हैं। बखार सोलह पै सोलह ही मंदिर हैं। ऐसे एक मेरु सम्बन्धी अठहत्तरि भए सो पांचनके मिलाए तीन सौ नब्बे होय। इष्वाकार च्यारिन पै च्यारि जिन मंदिर हैं। मानुषोत्तरको चारों दिशा सम्बन्धी च्यारि जिनग्रह हैं। नंदीश्वरके च्यारि दिशा सम्बन्धी बावन जिन मन्दिर हैं। और ग्यारहमाँ कुंडलगिरी द्वीपके मध्य भाग कुंडलगिरी है ताकी चारों दिशा च्यारि जिन मंदिर हैं। और तेरमां रुचक गिरीद्वीप ताके मध्यभागमें रुचिकगिर पर्वत है। ताके चारों दिशा च्यारि मन्दिर हैं। ऐसे सव मिलाईए तौ च्यारिसौ अठावन भए, तिनकूं बारंबार नमस्कार होहु। ऐसे यहां सामान्य मध्यलोकका कथन पूर्ण किया। आगे उर्ध्व लोक रचना सामान्य कहिये। तहां स्वर्ग लोकके दोय भेद हैं। एक कल्पवासी एक कल्पातीत। तहां कल्पवासीनके स्वर्ग सोलह हैं। तिनके नाम। सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव कापिष्ट, शुक्र, महाशुक्र, सतार, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्छुत ए सोलह हैं। तिनके आठ युगल जानना तहां युगल-युगल प्रति उत्कृष्ट आयु कर्म कहिए है। तहां प्रथम युगलमें दोय सागर कुछ अधिक उत्कृष्ट आयु है। दूसरे युगलमें उत्कृष्ट आयु सात सागर कुछ अधिक है। तीसरे युगलमें दश सागर कुछ अधिक उत्कृष्ट आयु है। चौथे युगल विषैं चौदह सागर कुछ अधिक आयु है। पांचमैं युगलमें सोलह सागर कुछ अधिक आयु है। और छठे युगलमें अठारह सागर कुछ अधिक आयु है। सातमैं युगलमें बीस सागर आयु है। आठमें यगलमें आयु बाईस सागर है। उपरि नव ग्रैवेयक हैं तहां प्रथम ग्रैवेयकमें तेईस सागर आयु है। दूसरे ग्रैवेयकमें चौवीस सागर है। तीजे ग्रैवेयकमें पचीस सागर है। चौथे ग्रैवेयकमें छब्बीस सागर है। पांचमी ग्रैवेयकमें सत्ताइस सागर है। छठी ग्रैवेयकमें अठाईस सागर है। सातमी ग्रैवेयकमें गुणतीस [उन-

तीस] सागर है। आठमी ग्रैवेयकमें तीस सागर है। नवमी ग्रैवेयकमें इकतीस सागर उत्कृष्ट आयु है। ऐसे अच्युत स्वर्गतें एक एक सागर अधिक ग्रैवेयक पर्यंत बधाय [बढ़ाय] लेनी। और नव अनुदिशमें बत्तीस सागर है। पंच पंचोत्तरमें तेतीस सागर आयु है। इति आयु। आगे युगल प्रति कायका प्रमाण कहिये है। युगल प्रति शरीरनकी ऊंचाई। तहां प्रथम युगलके देवनकी काय हाथ सात है। दूजे युगलके देवनकी काय हाथ षट् है। तीसरे युगलके देवनकी काय हाथ पांच है। चौथे युगलके देवनकी काय हाथ पांच है। पंचम युगलके देवनकी काय हाथ च्यारि है। और छठे युगलके देवनकी काय हाथ चार है। और सातवें युगलके देवनकी काय हाथ साढेतीन है। और आठवें युगलके देवनकी काय हाथ तीन है। नव ग्रैवेयकमें प्रथम त्रिकके देवनकी काय हाथ अढ़ाई है। दूसरे त्रिक देवनकी काय हाथ दोय हैं। तीसरे त्रिक देवन और नव अनुदिशकी काय हाथ डेढ़ हैं आगे पंच पंचोत्तरनके देवनकी काय हाथ एक है इति काय। आगे स्वर्गन के पटल कहिये हैं तहां प्रथम युगलके पटल इकतीस हैं। और दूजे युगलके :पटल सात हैं। और तीसरे युगलके पटल च्यारि हैं। चौथे युगलके पटल दोय हैं पंचम युगलका पटल एक है। छठे युगलका पटल एक है सातमें युगलके पटल तीन हैं। आठमें युगलके पटल तीन हैं। नव ग्रैवेयकनके पटल नव हैं। नव अनुत्तरनका पटल एक है पंचपंचोत्तरका पटल एक है ऐसे सर्व स्वर्गनके पटल त्रेसठि हैं। इति पटल। आगे स्वर्ग प्रति इन्द्र कहिये है। तहां प्रथम युगलके इन्द्र दोय हैं। दूसरे युगलविषै इन्द्र दोय हैं। तीसरे युगलमें इन्द्र एक है। चौथे युगलमें इन्द्र एक है। पंचमें गलमें एक इन्द्र है। छठे युगलमें इन्द्र एक हैं। सातमें युगलमें इन्द्र दोय हैं। आठवें युगलमें इन्द्र दोय हैं। और अहमिन्द्रनमें इन्द्र नाहीं। वह सर्व ही आप आप इन्द्रसम हैं इति इन्द्र संख्या आगे स्वर्गप्रति बिमानकी संख्या कहिये है। तहां प्रथम स्वर्गके विमान बत्तीस लाख हैं। और दूसरे स्वर्गके अठाइस लाख बिमान हैं। ऐसे सर्व मिलि प्रथम युगलके साठि लाख विमान हैं। तीसरे सनत्कुमार स्वर्ग के बारह लाख बिमान हैं और चौथे महेन्द्र स्वर्गके आठ लाख विमान हैं ए सर्व मिलि दूसरे युगलके बीस लाख विमान हैं। ब्रह्म, ब्रह्मोत्तरके मिलि च्यारिलाख विमान हैं। चौथे युगलके पचास हजार बिमान हैं। पंच

म युगलके चालीस हजार बिमान हैं। छठे युगलके षट् हजार विमान हैं और सातवें युगलके अरु आठवें युगलके मिलिकै सात सौ विमान हैं और नव ग्रैवेयकके तीन त्रिक हैं। तहां प्रथम त्रिकके १११ विमान हैं दूसरे त्रिकके १०७ विमान हैं तीसरे त्रिकके [९१] विमान हैं। ऐसे सर्व मिलि नवग्रैवेकके ३०९ विमान हैं। नव अनुत्तरोंके ९ विमान हैं। पंच पंचोत्तरोंके पांच बिमान हैं ऐसे सर्व कल्पातीतनके ३२३ विमान हैं उर्ध्वलोकके स्वर्गवासी देवनके विमान मिलाईए तो ८४,९७,०२३ विमान हैं। सो इन सर्व बिमाननमैं एक २ जिन मंदिर है तिनकौं हमारा बारंबार नमस्कार होहु। इति बिमान संख्या। आगे धरतीतैं स्वर्गकी उंचाइ कहिये तहां पृथ्वीतैं लगाय लाख योजन ऊंचातो प्रथम युगलका प्रथम इन्द्रक है और पृथ्वीतैं डेढ़ राजू ऊंचा प्रथम युगलके इकतीसमा पटलका इन्द्रक है। पृथ्वीतैं तीन राजू अरु अन्त पटलके अन्त पटलतैं डेढ राजू ऊंचा दूसरे युगलका अमल है। दूसरे युगलतैं आधाराजू उर्ध्वकौं तीसरे युगलका अमल है। तीसरे युगलतैं आधा राजू तांई ऊपर चौथे युगलका अमल हैं। चौथे युगल तैं आधा राजू ऊपर तोंई पांचमें युगल का अमल है। पांचमें युगल तैं आधराजू ऊंचे तांई छटा युगल का अमल है। छठे यूगल तें सातमां युगल आधा राजू ऊंचा है। सातमैं युगलतैं आठमां युगल आधा राजू ऊंचा हैं। ऐसे षट् राजू मैं तो सोलह स्वर्गके आठ युगल हैं। ऊपरि राजूके आदि नव ग्रैवेयक हैं राजूके मध्य भाग विषैं नव अनुत्तर है। राजूके अंत सर्वार्थसिद्धि है। ताके ऊपर संख्यात योजन सिद्धसिला है। ताके ऊपरि तनवातवलय में सिद्ध चक्र चैतन्य अमूर्तिक सिद्ध भगवान विराजै हैं। तिनको बारंबार नमस्कार होहु। और जिस क्षेत्रमैं सिद्धदेव विराजैंसो पैंतालीस लाख योजन सिद्ध क्षेत्र है। तिस उत्कृष्ट तीर्थक्षेत्र कूं नमस्कार होहु। इति स्वर्गन की ऊंचाई।

आगे विमाननके वर्ण कहिये है। आगे प्रथम युगलके विमाननके पंच ही वर्ण हैं। दूसरे युगलके बिमान कृष्ण विना च्यारि वर्णके हैं। तीसरे युगलके बिमान नील, कृष्ण बिना तीन बर्णके है चौथे युगलके बिमान तीन कृष्ण बिना तीन बर्णके हैं पंचम युगलके विमान पीत स्वेत दोय वर्णके हैं। छठे युगलके बिमान पीत स्वेत वर्णके हैं। और सातमें युगल, आठमें युगल तथा अहमिन्द्रनके बिमान ए सर्व एक शुक्ल वर्णके ही हैं। इति

र्ण। आगे स्वर्गनके आधार कहिये हैं। तहां प्रथम युगल तौ जलके आधार है। दूसरा युगल पवनके आधार है। तीसरा युगल, पवनके आधार है चौथा पांचमां, छठा ए तीन युगल जल पवनके आधार हैं। सातमां, आठवां युगल तथा अहिमिन्द्रनके बिमान सर्व आकाशके आधार हैं। इति आधार। आगे स्वर्ग प्रति देवनके काम सेवन कैसे है सो बतावैं हैं। प्रथम युगल मैं देवनकौं काम सेवन मनुष्य पशुवत है। दूसरे युगल मैं तनतैं तन स्पर्श कर तृप्ती होय है। तीसरे युगल मैं देव देवीनकौं परस्पर राग दृष्टि करि रूप देखि ही भोगन की तृप्ती होय है चौथे युगलमें भी रूप देखि तृप्ति होय है। पंचमें छठै युगलमें देव देवीनका परस्पर रागका भरचा शब्द सुनि भोगवान् तृप्ती होय है और सातवें आठमें युगलनके देव देवीनके मनमें भोग अभिलाषा भई अरु तृप्ती होय है। अरु ऊपरि ले अहमिन्द्रनकौं काम सेवनकी इच्छा नाहीं। इति काम सेवन। आगे देवनके अवधि क्षेत्र कहैं। तहां प्रथम युगलके देवनको अवधिका विषय प्रथम नरक पर्यंत जानैं। इतनीही विक्रिया होय, अधिक नाहीं। और दूसरे नरक पर्यंत दूसरे युगलके देवनकी अवधि, विक्रिया है और तीसरे देवन की अवधि विक्रिया तीसरे नरक पर्यंत हैं। चौथे युगलके देवनकी अवधि, तीसरे नरक पर्यन्त शुभाशुभ जानने। इतनी ही विक्रिया होय। पंचमें छठे युगलके देवनकी अवधि, विक्रिया चौथे नरक पर्यंत जानना। और सातमें आठमें युगलके देवन की अवधि, विक्रिया पंचम नरक तांई होय। नव ग्रैवेयकके देवनकी अवधि, विक्रिया छठे नरक पर्यंत होय है। नव अनुदिश पञ्च पञ्चोत्तरनके देवनकी अवधि, विक्रिया सातमें नरक पर्यंत होय हैं। विषेष एता, ऊपरले देवनकी विक्रिया विविक्तपने तौ तीसरे नरक पर्यंत ही है। आगे नाहीं। अरु शक्ति रूप सातमें तांई कही है। और अवधिज्ञान अपने अपने विषय योग्यके शुभाशुभभाव सर्व जानैं हैं। इति अवधि, विक्रिया। आगे देव चए पीछे केतेक काल पीछे देव तहां उपजै ताका स्वर्ग पर्यन्त अन्तर कहिए है। तहां प्रथम युगल विषैं अन्तर उत्कृष्ट सात दिनका है। पीछे कोऊ उपजै ही उपजै।। दूसरे युगल मैं पन्द्रह दिनका अन्तर है। तीसरे युगलमें अन्तर एक मासका है। चौथे युगलमैं अन्तर एक मासका है। पञ्चमें छठे युग-

लमें अन्तर उत्कृष्ट दोय मासका है। और सातवें आठवें युगलमें च्यारि मासका है। ऊपर अहमिन्द्रन में उत्कृष्ट अन्तर षट् मासका है। ऐसे उत्कृष्ट अन्तर षट् मास है। पीछे अपने अन्तर उपरान्त कोई पुण्याधिकारी जीव उपजै। स्थान खाली रहै तौ इतना रहै। मध्यके अनेक भेद हैं इति उत्पत्ति अन्तर। आगे देवनके मनसा भोजन केतेक कालमें होय सो कहिए है। तहां देवनकी जितने सागरकी आयु होय तेते हजार वर्ष गये भोजन पै मन होय है। पीछे तृप्ती होय है। और जहां जितने सागरकी आयु होय तेते पक्ष गये स्वासोच्छ्वास होय है। इति भोजन श्वासोच्छ्वास। आगे स्वर्ग प्रति देवनके मुकुटके चिन्ह कहिए हैं। सूर, हिरण, महिष, मछलो, कछुवा, मैंडक, घोटक (घोंड़ा) हस्ती चन्द्रमा, सूर्य खड्गी. बकरी बैल कल्पबृक्ष इत्यादिक चिन्ह देवनके मुकुटनमें होय हैं। इति मुकुट चिन्ह। आगे। देवनके विमाननकी मोटाई स्वर्ग प्रति कहिए है। तहां प्रथम युगलके विमाननकी मोटाई ११२१ जानना दूसरे युगलके विमाननकी मोटाई १०२२ योजन जानना तीसरे युगलके विमाननकी मोटाई ९२३ योजन जानना। चौथे युगलके विमाननकी मोटाई ८२८ योजन जानना। पंचमें युगलके विमानकी मोटाई ७२५ योजन जानना। छठे युगलके विमाननकी मोटाई ६२६ योजन जानना। सातमें युगलके विमाननकी मोटाई ५२७ योजन जानना। आठमें युगलके विमाननकी मोटाई ४२८ योजन जानना। नवग्रैवेयकके विमाननकी मोटाई ३२९ योजन जानना। नव अनुत्तर विमानन की मोटाई २३० योजन जानना पञ्च अनुत्तरनके विमाननकी मोटाई १३१ योजन जानना। ऐसे स्वर्ग प्रति विमाननकी मोटाई कही। इति विमाननकी मोटाई। आगे स्वर्ग प्रति देवनके लेश्या कहिए है। तहां प्रथम युगलमें लेश्या पीत है। दूसरे युगलमें पीत पद्म दोय लेश्या हैं। तीसरे युगलमें पद्म लेश्या है। चौथे युगलमें लेश्या पद्म है। पञ्चम युगलमें लेश्या पद्म है। छठे युगलमें पद्म शुक्ल दोय लेश्या हैं हैं। सातमें आठमें युगल तथा अहमिन्द्रनमें लेश्या एक शुक्ल है। इति लेश्या। आगे स्वर्ग प्रति देवांगनाकी उत्कृष्ट आयु कहिए है। तहां सौधर्म प्रथम स्वर्गके देवीनकी आयु पांच पल्य है। ऐशान स्वर्गके देवनकी देवीनकी आयु सात
पल्यकी है। आगे तीसरे स्वर्गतें लगाय बारहवें पर्यंत दोय-पल्य बधती [बढ़ती] जानना। ऐसे पल्य। ५। ।१६८।

७।६।११।१३।१५।१७।१६।२१।२३।२५।२७। अनुक्रम तैं जानना । और तेरहवें स्वर्गकी देवीनकी आयु चौतीस पल्यकी है । और चौदहवें स्वर्गकी देवीनकी आयु इकतालीसपल्यकी है। और पन्द्रहवें स्वर्गकी देवीनकी आयु अड़तालीस पल्यकी है । और सोलहवें स्वर्गकी देवीनकी आयु पचपन पल्यकी है। ऐसे स्वर्ग प्रति देवीनकी आयु कही । इति देवीनकी आयु । ऐसे सामान्य देव लोकका कथन कह्या । ऐसे अधोलोक मध्य लोक उर्ध्व लोकका व्याख्यान जामैं होय सो त्रिलोकविन्दु नामा चौदहमां पूर्व जानना । ऐसे ग्यारह अंग चौदह पूर्व-ज्ञानके धारी होय सो उपाध्याय मुनि हैं। ये गुरु नगन बीतराग पूजवे योग्य हैं। और जिनकी तप करनेकी बड़ी शक्ति होय, नाना प्रकार तप करते शरीर मन वचन शिथिल नहीं होंय सो तपसी जातिके मुनि कहिए। ऐसे दुर्धर तपनकौं तपसी करैं तिनका संक्षेप कथन कहिए है। प्रथम जिनेन्द्रगुणसम्पत्ति नाम तप कहिए है। या तपके उपवास तिरेसठि, तिनकी विधि सोलह कारण भावनाका पड़िवा सोलह, और पंच कल्याणक की पांचैं पांच, प्रातिहार्यकी आठैं आठ, चौंतीस अतिशयकी दशैं बीस, और चौदसि चौदह, ऐसे एक एक तिथिका एक एक उपवास करे ताके सर्व मिल उपवास त्रेसठि करैं। सो यतीश्वर निर्ममत्व इस तपकूं करैं हैं। याका नाम जिनगुणसम्पत्ति तप है। आगे श्रुतिज्ञानतप कहिए है। याके उपवास एकसौ अठावन । तिन की विधी, मतिज्ञानके उपवास अठाईस, और ग्यारह अंगके उपवास ग्यारा । उपक्रमके उपवास दोय । अरु सूत्रके पद अठ्यासी लाख ताके उपवास अठ्यासी । प्रथमानुयोगका उपवास एक । और चौदह पूर्वके उपवास चौदह । और पांच चूलिकाके उपवास पांच । अवधिज्ञानके उपवास षट् । मनपर्ययके उपवास दोय । केवल ज्ञानका उपवास एक ऐसे एक सौ अठावन उपवास, जो यती तनतैं निस्प्रह होय सो इस तपको करैं है। ऐसा श्रुतिज्ञान तप जानना। आगे कर्मक्षय तप कहिये है। अष्टकर्म नाश करनेके निमित्त तपसी जातिके मुनि कर्मक्षय तप करैं। याके उपवास एकसौ अड़तालीस हैं। तिनकी विधी चौथिके उपवास सात। सातेंके उपवास तीन । नवमीके उपवास छत्तीस । दशमीका उपवास एक । बारसिके उपवास सोलह । चौदशके उपवास पच्यासी । ऐसे एक सौ अड़तालीस उपवास सहित तप करैं। आगे सिंह निष्कीड़ित तप कहिये है यह तप एक

सौ सतहत्तरि दिनका है। तिनमैं उपवास तौ एक सौ पतालीस। अरु पारणा बत्तीस तिनकी विधि कहिए है। उपवास १, पारणा १ उपवास २, पारणा १। उपवास १, पारणा १। उपवास ३ पारणा १। उपवास २, पारणा १। उपवास ४ पारणा १। उपवास ३, पारणा १। उपवास ५, पारणा १। उपवास ४, पारणा १। उपवास ६, पारणा १। उपवास ५, पारणा १। उपवास ७, पारणा १। उपवास ६, पारणा १। उपवास ८, पारणा १। उपवास ७, पारणा १। उपवास ६, पारणा १। उपवास ८, पारणा १। उपवास ७, पारणा १। उपवास ८, पारणा १। उपवास ६, पारणा १। उपवास ७, पारणा १। उपवास ५, पारणा १। उपवास ४, पारणा १। उपवास ५, पारणा १ उप० ३, पारणा १। उप० ४, पारणा १। उप० २, पारणा १। उप० ३, पारणा १। उप० १, पारणा १। उप० २, पारणा १, उप० १, पारणा १। ऐसे १४५ उपवास और ३२ पारणा करि व्रत करैं हैं। ४। आगे सर्वतोभद्र तप कहिए है—याके उपवास ७५, पारणा २५। सर्व एक सौ दिनका तप है। ताकी विधि—उप० १, पारणा १। उप० २, पारणा १ उप० ३, पारणा १। उप० ४, पारणा १। उप० ५, पारणा, १ उप० ३, पारणा १। उप० २ पारणा १। उप० १ पारणा १। उप० ५, पारणा १। उप० ४, पारणा, १। उप० ३ पारणा १। उप० २, पारणा १। उप० ३ पारणा १। उप० ४ पारणा १। उप० ५ पारणा १। उप० १ पारणा १। उप० ४ पारणा १। उप० ३ पारणा १। उप० २ पारणा १। उप० १ पारणा १। उप० ५ पारणा १ उप० ४ पारणा १। उप० ५ पारणा १। उप० १ पारणा १। उप० २ पारणा १। ऐसे यह व्रत गुरुनाथ निशंक होय करैं हैं। आगे महा सर्वतोभद्र तपकी विधी—उपवास १ पारणा १। उप० २ पारणा १। उप० ३ पारणा १। उप० ४ पारणा १। उप० ५ पारणा १। उप० ६ पारणा १। उप० ७ पारणा १। उप० १ पारणा १। उप० २ पारणा १। उप० ३ पारणा १। उप० ४ पारणा १। उप० ५ पारणा १। उप० ६ पारणा १। उप० ७ पारणा १ उप० १। पारणा १। उप० २ पारणा १। उप० ३ पारणा १। उप० ४ पारणा १। उप० ५ पारणा १। उप० ६ पारणा १। उप० ७ पारणा १। उप० १ पारणा १। उप० २ पारणा १। उप० ३ पारणा १। उप० ४ पारणा १। उप० ५ पारणा १। उप० ६ पारणा १। उप० ७ पारणा १। उप० १ पारणा १।

उप० २ पारणा १ । उप० २ पारणा १ । उप० ४ पारणा १ । उप० ५ पारणा १ । उप० ६ पारणा १ । उप०७ पारणा १ । उप० १ पारणा १ । उप० २ पारणा १ । उप० ३ पारणा १ । उप० ४ पारणा १ । उप० ५ पारणा १ उप० ६ पारणा १ । उप० ७ पारणा १ । उप० १ पारणा १ । उप० २ पारणा १ । उपवास ३ पारणा १ । उपवास ४ पारणा १ । उपवास ५ पारणा १ । उपवास ६ पारणा १ । उपवास ७ पारणा १ । या भांति उपवास १६६ हैं और पारणा गुणचास हैं । ए सर्व मिलि दोयसौ पैंतालीस दिनका तप है । या तपकौं तपसी जाति के गुरु करैं । इति महासर्वतोभद्र तप । ६ । आगे लघु सिंह निष्कीड़ित तप कहिये है । इस लघु सिंह निष्कीड़ित तपकौं यती करैं । ताकी विधी कहिए है—उपवास १ पारणा १। उपवास २ पारणा १। उपवास १ पारणा १।उपवास ३ पारणा १।उपवास १ पारणा एक। उपवा०४ पारणा एक। उपवास ४ पारणा एक। उपवास ५ पारणा एक। उपवास ४ पारणा एक। उपवास ५ पारणा एक। उपवास ५ पारणा एक। उपवास ४ पारणा एक । उपवास ५ पारणा एक । उपवास ३ पारणा एक। उपवास ४ पारणा एक। उपवास २ पारणा १। उपवास १ पारणा १ । ऐसे यह लघु सिंह निष्कीड़ित तपके उपवास ६० और पारणा बीस सर्व मिलि ८० दिनका तप है । ताहि तपसी गुरु करैं । इति लघुसिंह निष्कीड़ित तप । ७ । आगे मुक्तावली तप कहिये है उपवास १ पारणा १ । उपवास २ पारणा एक । उपवास ३ पारणा एक । उपवास ४ पारणा एक । उपवास ५ पारणा एक । उपवास ४ पारणा एक । उपवास ३ पारणा एक । उपवास दो पारणा एक । उपवास एक पारणा एक । ऐसे या तपके उपवास पच्चीस और पारणा नव सर्व दिन चौंतीसका तप है । याकौं मुक्तावली तप कहिये । याकौं करैं सो यती तपसी गुरु कहिये । इति मुक्तावली तप । ८ । आगे रत्नावली तप कहिये है । रत्नावली तपकी विधि—उपवास एक पा० एक । उप० २ पारणा एक । उप० ३ पारणा एक । उप० ४ पारणा एक । उप० ५ पारणा एक । उप० ५ पा० एक । उप० ४ पा० एक । उप० ३ पा० एक । उप० २ पा० एक । उप० एक पारणा एक । ऐसे या रत्नावली तपके उपवास तीस और पारणा दश सर्व चालीस दिनका तप है । ताकौं तपसी गुरु करैं हैं । इति रत्नावली तप । ६ । आगे कनकावली तप कहिए है । कनकावली तपकी विधि—शुक्लपक्षकी पड़िवा पांचैं और दशैं ए

तीनतौ शुक्लपक्षकी और कृष्णपक्षकी दोज छठि और बारसि ऐसे एक महीनाके उपवास षट् होंय । एक वर्षके बहत्तरि उपवास करे । ऐसा कनकावली तपकों तपसी करें हैं । इति कनकावली तप ।१०। आगे आचार वर्धन तप कहिये है । आचारवर्धन तपकी विधि—उपवास एक पारणा एक । उप० २ पा० एक । उप० ३ पारणा एक । उप० ४ पा० एक । उपवास ५ पारणा एक । उपवास ६ पारणा १ । उपवास ७ पारणा १ । उप० ८ पारणा एक । उपवास ९ पारणा एक । उपवास दश पारणा एक । उपवास ९ पारणा एक । उपवास ८ पारणा एक । उपवास ७ पारणा एक । उपवास ६ पारणा एक । उपवास ५ पारणा एक । उपवास ४ पारणा एक उपवास ३ पारणा एक । उपवास २ पारणा एक उपवास एक पारणा एक । ऐसे या व्रतके उपवास सौ और पारणा उन्नीस सब मिलि एकसौ उन्नीस दिनका तप है । ताहि वीतराग तपसी करें हैं । इति आचार वर्धन तप ग्यारह आगे सुदर्शन तप कहिये है। या तपकी विधि—जहां उपशम सम्यक् क्षयोपशम सम्यक् और क्षायक सम्यक् ये तीन सम्यक् हैं । तिन एक-एक सम्यक्के शंका कांक्षादि आठ-आठ दोष हैं । सो तीनों सम्यक्के चौबीस मल दोष भये । तिन चौबीस दोषके चौबीस उपवास एकांतर करें । या तपके सब अड़ता-लीस दिन भये ॥ १२ ॥ इत्यादिक तप तपसी गुरु करें । इनकों आदि लेय अनेक दुद्धर तप तीन कालके करें । अपनी परणति महाधर्म शुक्लध्यानमय राखि समताकी वृद्धि करें सो तपसी जातिके मुनि हैं । जे यति आचार्यके पास शास्त्र अभ्यास करें तिनकूं शिष्य जातिके मुनि कहिये । जैसे लौकिकमें जेते जाका पिता जीवें ताकौं कुमार कहें हैं । तैसे जेते काल जिनके आचार्य गुरु विराजे होंय उन गुरुन पै शास्त्राभ्यास करें, सो शिष्य जातिके मुनि कहिये । ४ । अनेक रोगन सहित शरीरके धारी मुनीश्वर, वीतरागी, तन भोगनतें उदास आतम रसराते, शान्त चित्तके धारी, सो ग्लानि जातिके मुनि हैं । ५ । बड़े-बड़े यतीनका संघ, सो गण जातिके मुनि हैं । सो बड़े—बड़े यतीनके तीन भेद हैं । वय करि बड़े, तथा गुण—ज्ञानादिक करिके बड़े, तथा दीक्षा करि बड़े, यतीनका समूह, सो गण जातिके मुनि हैं ।६। श्रावक, श्राविका, मुनि अर्जिका, इन चारों प्रकारके संघमें रहें, सो संघ जातिके मुनीश्वर हैं । ७ । जे मुनि

शिष्यनकी आम्नाय जानैं, दीक्षा देनेकी विधि जानैं, इत्यादिक मुनि-धर्मकी क्रिया मैं प्रवीण होय, सो कुल जातिके मुनीश्वर हैं । ८ । जे बहुत कालके दीक्षित होंय, सो साधु जातिके मुनीश्वर हैं । ९ । जे वाह्य परिग्रह का त्याग करि नगन होय, गुरु चरणारविन्दनके पास मुनिपद धरवे कूं सन्मुख भया, मुनि होयबेकी क्रिया नेग—चार करावता होय, सो मनोज्ञ जातिके मुनि हैं ।१०। ऐसे दश जातिके मुनिपद पूज्य हैं आगे ऐसे गुरुके विचारने योग्य समाचार दश हैं । महा मुनि इनका विचार कैसे करैं, कहां करैं सो कहिये हैं । सो प्रथम ही नाम "आचारसार" ग्रन्थ अनुसार कहिये हैं । इच्छाकार मिथ्याकार तथाकार इच्छा व्रत आशीष निषधिका अप्रच्छिन्न प्रति प्रछिन्न आन मंत्र संश्रय अब इनका सामान्य अर्थ कहिये है । पुस्तक आतापन योगादि अनेक शुभ क्रिया अपने हित निमित्त सीखी जाय, विनय सहित आचार्य पै याचै, सो इच्छाकार है । विना उपदेश, आप अपनी इच्छातैं अपने हितकारी परभव सुखकारी पुण्यकारी वस्तु बिचारि करि गुरुन पै याचना करै सो इच्छाकार समाचार है । १ । जे यती महाधर्म मूरती उदासवृत्तिका धारक च्यारि गतिके जन्म-मरण करि खाया है भय जानैं सो मुनि ऐसा बिचारैं जो मैंने अपनी अज्ञान अवस्था मैं अनेक पाप किये तिनका फल अब समझा सो पापका फल अनिष्ट जानि महा भयभीत होय या कहैं जो मेरे एकीएक अगले पाप मिथ्या होहु । अब मैं पाप नहीं करूंगा । ऐसे पापतैं भय खाय निःशल्य होय सो मिथ्याकार समाचार कहिये । २ । जहां तत्व पदार्थनकौं श्रद्धै सो सत्य जिन आज्ञा प्रमाण श्रद्धा है । तथा जिन अंग—पूर्व शास्त्रनका गुरु मुखतैं श्रवण करना सो विनय सहित करना । तथा आप सभाजनकूं हितका करनहारा उपदेशक है सो जिन आज्ञा प्रमाण कहै । अरु कदाचित अपनी इच्छाकरि (मनमाना) उपदेश करै तौ महान् पापी होय । तातैं जीवनकौं दयापूर्वक कहै । जिन आज्ञा सहित सत्य कहै । अपनी बुद्धितैं बनाय नहीं कहै तथा आप जिन आज्ञा प्रमाण श्रद्धान राखै । औरकौं धर्म-राह बतावै सो जिन आज्ञा प्रमाण कहै । सो तथाकार समाचार कहिये । ३ । और आगें किये जो गुरुके निकटि आतापन योग तथा उपवासादि तप धर्मोपकरण पीछी कमंडल पुस्तकादिक तथा महाव्रतादि जो मोक्षमार्गकी साधक क्रिया तिनमैं स्वेच्छोरूप नहीं प्रवर्तें सारी मुनि

धर्मकी साधन हारी जो प्रवृत्ति सो तामैं प्रमाद छोड़ि साहसी होय पापतैं भय खाय व्रतका लोभी धर्मात्मा शिष्य गुरुकी आज्ञा प्रमाण प्रवर्तै सो इच्छाव्रत समाचार कहिये । ४ । शिष्य गुरुके पासि तीर्थादि जानैंकौं सीख मांगै तव ऐसे विनय सौं कहै । भो प्रभो ! अव तांई आपके पद्–कमलके शरण रह्या संयम निधि पाई । अव मेरा मन सिद्ध-क्षेत्रादि यात्राकौं है । सो मोपै दया भाव करि आज्ञा देउ । ऐसे भक्ति सहित विनय पूर्वक विनती करि मौनि करि गुरुके निकट हस्त जोड़ि खड़ा होय रहै । यथायोग्य अन्तरतैं तिष्ठै । तव ऐसे वचन आचार्य शिष्यके सुनि दयाभाव शिष्यपै धारि शिष्यके चारित्रकी वधवारी (वढ़नेवारी) की वांच्छातैं आचार्य मंगलीक वचन कहैं । भो वत्स हे आर्य ! तेरे व्यंतरादि उपसर्गतैं रहित संयमकी प्रति पालना होऊ । ऐसे आचार्य शिष्यकौं मोक्ष रूप लक्ष्मीकी प्राप्ति वांच्छते आशीष देय सो आशीष नामा समाचार है ।५। जेमुनीश्वर जहां जाय तिष्ठैं ता जगहके ऋषि देव मनुष्यादि होय तिनकौं यतीश्वर ऐसा वचन कहैं । जो हम इहां तिहारी आज्ञा सहित तिष्ठैं हैं । ऐसा कहिकैं विश्राम करें । सो निषधिका समाचार है सो निषधिका तौ मुनिजा स्थानपै गुफा मसान वृक्षकी कोटर मंडप वसतिका इत्यादिक स्थानकनके देव–मनुष्यादिककी आज्ञा सहित तिष्ठैं सो निषधिका समाचार जानना । ६ । ऊपर कहाजो आशीष समाचार कहां करैं सो कहिये है—मुनीश्वर जहां तिष्ठै थे ता स्थानक तजि अन्य स्थान जांय तव जातैं यतीश्वर तहांके रक्षक देवादिक कूं ऐसे हित-मित वचन कहैं । जो हम तिहारे स्थानपै रहे सो अव हम चलैं हैं । ऐसे प्रियवचन कहि गमन करैं सो आशीष कहिये । और अप्रच्छनी समाचार सतावैं । ताका अर्थ मूल ग्रन्थ आचारसारजी तैं जानना । ७ । यती कौं अपना लौंच करना होय तथा नवीन ग्रन्थ जोड़वे विषैं प्रारम्भ करना होय तथा कोई अपूर्व ग्रन्थ वांचना होय तथा नगर मैं भोजनकौं जाना होय तथा इन आदि कोइक महान् कार्य करना होय, तौ आचार्यपै आय विनय सहित हस्त जोड़ मस्तक, नमाय, गुरुपै आज्ञा याचै । सो जैसी गुरुकी आज्ञा होय, ताही प्रमाण करैं । सो प्रति-प्रच्छिन्न समाचार कहिये । ८ । और जव काहू मुनिकूं पुस्तक चाहै, सो अपने गुरु पास होय तौ गुरु पास होय तौ गुरुकी आज्ञा सहित लेय तथा अपने गुरुपै नाहीं होय और संघमें आचा

र्यके पास होय और शिष्यको ल्यावना होय, तो गुरुकी आज्ञातैं ल्यावै। अपनीं इच्छातैं नहीं करै, सो आन मंत्र समाचार कहिये हैं। ६। आगे संश्रय। सो संश्रयके पांच भेद हैं। सो कहिये—विनय संश्रय, क्षेत्र संश्रय, मार्ग संश्रय, सूत्र संश्रय और सुख—दुख संश्रय। ऐसे ये पंच भेद हैं। अब इनका सामान्य अर्थ कहिये हैं। तहां कोई मुनीश्वर अन्य देशान्तर तैं आवै तौ जिस संघमें आवे तिस संघके यती आचार्य महा हर्ष सहित प्रमाद रहित होय आये मुनिके सत्कार कौं ताजीम (स्वागत) देय ताके अर्थ सात पैंड़ सन्मुख जाय यथा योग्य नमस्कार करें। पीछे आये मुनिके मार्ग खेद निवारण कूं यथा योग्य तिष्ठवेकौं स्थान देवें। पीछे मुनिके चारित्रकी कुशल पूछैं। या कहें हे प्रभो तिहारे रतनत्रय कुशल हैं? याका भावार्थ यह जो तुम्हारे मोक्षमार्ग निरतिचार रह्या ऐसे आये मुनिकौं महा विनय सहित वचन कहि अपना धर्मानुराग प्रगट करते मन वचन कायकी क्रिया करि तिनकूं साता उपजावैं सो विनय संश्रय इति विनय संश्रय कहिये ॥ १ ॥ आगे क्षेत्रसंश्रय। तहां जिस क्षेत्रका राजा पापी होय अन्याई होय अनाचारी होय तिस क्षेत्रमें यती नहीं रहैं। तथा जिस देशका कोऊ रक्षक नहीं होय राजा रहित क्षेत्र होय तो उस देशमें मुनि नहीं रहैं। और जिस देश-नगरमें जीवहिंसा विशेष होय, तहां यती नहीं रहैं। तथा जिस देशमें पापी-निर्दयी जीवनकी वधवारी (बढ़वारी) की प्रवृत्ति होय। जहां धर्म रहित विपरीत जीवनका अधिकार होय ऐसे क्षेत्रमें यतीश्वर नहीं रहैं। तथा जो देश दीक्षा योग्य नहीं होय तथा जहांके जीव महा कसाई होंय भोग-रत होंय अनाचारी शुभ आचार रहित होंय दीक्षा योग नहीं होय तिस क्षेत्र विषैं जगत गुरु नहीं रहैं। और जिस देशमें अकाल पड़ गया होय अन्नकी वेदना करि अनेक जीव दुखिया होय रहे होंय इत्यादिक उपद्रव सहित क्षेत्रमें मुनिका धर्म सधै नाहीं। तातें दयाभण्डार संयमका लोभी ऐसे क्षेत्रनमें नहीं रहै। अरु कदाचित रहै तो संयम नष्ट होय तातें ऐसे कहे कुक्षेत्रनमें योगीश्वर नहीं रहैं ॥ और कैसे क्षेत्रनमें रहैं सो कहिए हैं। जहां कोई जातिका उपद्रव नहीं होय जिस क्षेत्रका राजा धर्मी होय देशकी प्रजा धर्मात्मा होय, दयावान होय दीक्षा योग्य जीव होंय संयमी जीवनकी प्रवृत्ति शुभाचारी होंय इत्यादिक शुभक्षेत्रका विचार

करि अपने संयमकी रक्षा योग्य क्षेत्रमें रहैं। सो क्षेत्र संश्रय कहिए। इति क्षेत्र संश्रय ॥ २ ॥ आगे मार्ग संश्रय कहिये है—जहां कोऊ मुनि देसान्तर तीर्थ विहार करतैं वहुत दिनतैं मिले होंय। तथा अपूर्व मिलाप होय। तब यतीश्वर परस्पर-आपसमें सुख दुख परीषहादिक में चारित्रकी कुशल पूछैं। सो मार्ग संश्रय है। इति मार्ग संश्रय ॥३॥ आगे सुख-दुख संश्रय जहां कोई महामुनिकों देव मनुष्य पशुकृत महाघोर उपसर्ग हुआ ताकरि पीड़ित मुनिकौं देखि तिनकौं साताके निमित्त औषधि आहार रहनेको स्थानादिक देय साता उपजावै साता भये पै ऐसे बचन कहै विनय सहित धर्म अमृतकी धारा बढ़ावते वचन वोले। जो हे यतीनाथ, हम दुख-सुख मैं तिहारे हैं। इत्यादिक हित-मित वचनका कहना सो सुख-दुख संश्रय है ॥ ४ ॥ आगे सूत्र संश्रय कहिए है। तहां शिष्यने कोऊ आचार्यके पास अनेक शास्त्रनका अभ्यास किया। श्रुत समुद्रका पारगामी होय वहुत काल पर्यन्त पठन-पाठन किया अनेक शास्त्र गुरुके मुखतैं सुनैं तिनका रहस्य पाय सुखी भया। पीछे कोऊ और आचार्यनके ज्ञानकी महिमा सुनि तिनके शास्त्र सुनिनैंकी इच्छा होय तथा अन्यमतके अनेक षट् मतन सम्बन्धीं शास्त्रका रहस्य जाननेकी इच्छा होय। तथा कोई तीर्थ विहार करवेकी इच्छा होय इत्यादिक अपने उरका रहस्य गुरुके पास कहै। पीछे आचार्यकी आज्ञा सहित एक मुनि साथ तथा दोय मुनि साथ तथा अनेक मुनि संघ सहित विहार करै सो सूत्र संश्रय है। इति सूत्र संश्रय ॥ ५ ॥ ऐसे दश समाचार मुनीश्वरके विचारवे योग्य हैं सो कहे। ऐसे कहे जो गुरु दश भेद सो यह गुरु जब भगवानके मंदिर विषैं दर्शनकौं प्रवेश करैं सो कैसे जांय ? सो कहिए है। उक्तं च "आचारसारजी।"

श्लोक—सर्वव्यासंगनिर्मुक्तः, सशुद्धकरणत्रय। धौतहस्तपदद्वंद्वः, परमानन्दमंदिरम् ॥ १ ॥
चैत्यचैत्यालयादीनां स्तवनादौ कृतोद्यमः। भवेदनन्तसंसारसंतानोच्छित्तये यतिः ॥ २ ॥

अर्थ—सर्व संग रहित होए मन-वचन काय शुद्ध करि दोऊ हाथ पांव धोय महा हर्ष सहित चैत्यालय विषैं जाय प्रतिमाजीकी स्तुति करै सो यती अनंतभव संसारका छेदन करै है। भावार्थ—जब महामुनि श्रीभगवान्के दर्शनकौं चैत्यालयमें प्रवेश करैं। तब कमण्डल पीछी पुस्तकादि परिग्रह होय सो तिनकौं बाह्य

स्थान प, एकान्त उच्च स्थान पै धरिकैं आप निःपरिग्रह होय मन वचन काय शुद्ध करि अपने दोय हस्तपांव प्राशुक जलतैं धोयकैं हर्ष सहित परमानन्दित होय ईर्या समिति करि जिन मंदिरमैं प्रवेश करैं। पीछे भगवान्की स्तुति करिवेका उद्यम करैं। विनयतैं अनेक स्तवन करैं। कैसी है भगवान्की स्तुति अनंत संसार भवनकी मृत्यु-उत्पत्तिकी पंक्ती ताकी छेदनहारी है। कैसी स्तुति करैं? सो कहिये है—

श्लोक—तथार्हदादपश्वास्तरागदोष प्रवृत्तयः। भक्तिः भक्त्यनुसारेण, स्वर्गमोक्षफलप्रदा ॥ ३ ॥

अर्थ—आप भक्ति रस करि भींजते मुनीश्वर भगवान्की स्तुति करैं। भो भगवन् तुम अष्ट कर्म रहित वीतरागी हो आपके रागद्वेष भाव नाश हो गये हैं। सो हे भगवन्! तुम तौ भक्तनकौं स्वर्ग-मोक्ष नहीं करौ हौ। परन्तु हे भगवन् हमसे भक्तजन हैं तिनके भावनकी प्रवृत्ति आपके चरण-कमलनमैं भक्ति रूप भई। सो वह भाव भक्तिही भक्तन कूं स्वर्ग-मोक्षकी दाता है। आपतौ वीतराग हो ही परन्तु भक्तिकी महिमा अपार है। तातैं इह बात निश्चय भई जो आप बीतरागी ही हौ।

श्लोक—घोरसंसारगम्भीरे, बारिरासौनिमज्जताम्। दत्तहस्तावलम्बस्य जिनस्येक्षणार्थमागमेन॥ ४ ॥

अर्थ—हे भगवन! यह संसार-सागर दुख-जलि करि भरया। तिस विषैं डूबते हमसे संसारी जीव तिनकौं हस्तावलम्बन करि आप काढ़ौ हौ। सो तिहारे देखवेकौं भक्तजन आवैं हैं। भावार्थ—जिनदेवकी स्तुति मुनिजन करैं हैं। हे नाथ! यह संसार-सागर महा गम्भीर जाका छोर नाहीं। तामैं पड़ते (गिरते) हमसे संसारीजीव तिनकूं आप अपनी वाणीरूपी हस्तावलम्बनका सहाय देय दया-भाव करि भव जलमैं डूबते बचाबैं। तातैं हे प्रभु तुमकूं परम उपकारी जांनि आपके दर्शनकूं हम आये हैं। तथा संसार जलमैं डूबते भव्य जीव तिनपै दया भाव करि आप अनेक जीव डूबते बचाऔं हैं। सो तिहारा जगत यश सुनि जे भव्य हैं सो तिहारे देखबेकौं आबै हैं। तिन भव्यनका भी यही मनोरथ है। जो हे भगवन् हमकूं भी संसार-समुद्र मैं ते डूबनेते राखौ। इत्यादिक बीतरागी मुनि भी जिनदेवकी स्तुति ऐसे करैं हैं। विनय तैं हस्तपांव धोय हर्ष आनन्द सहित धरती देखते ईर्या करते जिनदेवके मंदिरनमैं जांय हैं। तातैं अब भी जो भव्य जीव हैं

जिनकौं भक्तिका फल लैना होय, सो भव्य जीव धर्मात्मा मन वचन, कायकी क्रिया शुद्ध करि हर्ष सहित
सु० जिन दर्शन कूं करना, सो ईर्या सहित करना योग्य है। आगे कहे हैं जो यह मुनि अपनी प्रमाद अवस्था तैं
१७८। मन-बचन-कायतैं, कोई क्रिया में सूक्ष्म अतीचार लगै तौ ताके मेटवेकौं कायोत्सर्ग करैं। कायोत्सर्ग उसका नाम है जो अपनो भूलिकी आलोचना, निंदा, गर्हा करै, सो कायोत्सर्ग कहिए। सो केतेक काल तांई कायोत्सर्ग करै ? ताके कालका प्रमाण बताईए है। कौन २ प्रमाद कार्य भये कायोत्सर्ग करैं, सो स्थान बताइये है—

श्लोक—ग्रन्थारम्भे समाप्ते च, स्वाध्यायेस्तवनादिषु। सप्तविंशतिरुच्छ्वास, कायोत्सर्गा मता इह ॥ ५ ॥

अर्थ—मुनीश्वर इतनी जगह कायोत्सर्ग करैं। एक तौ कोई नूतन ग्रन्थ जोड़वेका प्रारंभ करैं, तब प्रथम कायोत्सर्ग करैं। जब शास्त्रकी पूर्णता हो चुकै, तब कायोत्सर्ग करैं। शास्त्रका स्वाध्याय करैं, तब कायोत्सर्ग करैं, अर्हन्त सिद्धजीके गुणोंका स्तवन करैं, तब कायोत्सर्ग करैं। इन जगह योगीश्वर कायोत्सर्ग करैं। ताके कालका प्रमाण सत्ताईस श्वासोच्छ्वास है। भावार्थ—इतनी जगह धर्म क्रियान में प्रमाद वशाय अतीचार लागा होय, तौ ताके मेटवेकौं यती कायोत्सर्ग करैं, सो एक-एक कायोत्सर्गका काल सत्ताईस-सत्ताईस श्वासोच्छ्वास है।

श्लोक—अष्टाविंशति मूलेषु, दिनस्य मल शुद्धये। अष्टाग्रशत मुच्छ्वासाः, निशायामपि तद्दलम् ॥ ६ ॥

अर्थ—यतीश्वर अपने अठाईस मूलगुणनकौं, तथा और व्रतकौं, कोई प्रमादवशाय अतीचार लागा जानैं, तौ ताके शुद्ध करवेकौं कायोत्सर्ग करैं। सो च्यारि प्रहर दिनमैं कोई अतीचार लागा होय, तौ ताकौं यादि करि ताके मेटवेकौं कायोत्सर्ग करैं। ताका काल एक सौ आठ स्वासोच्छ्वास है। कोई च्यारि प्रहर रात्रिमैं दोष लागा होय, तो ताके मेटवेकौं चौवन स्वासोच्छ्वास काल तांई कायोत्सर्ग करैं।

श्लोक—पाक्षिके त्रिशतं ज्ञेयं, चतुर्मास समुद्भवे। चतुः शतं शतं पंच, सांवत्सरे यथागमम् ॥ ७ ॥

अर्थ—और जहाँ यतीश्वर अपने व्रतमैं पन्द्रह दिन विषैं अतीचार लागा जानैं। तौ ताके मेटवेकौं तीन-सौ श्वासोच्छ्वास काल तांई कायोत्सर्ग करैं। और च्यारि महीनामैं अपने संयम कूं दोषलागा यादि आवै ।१०८–

तो ताके दूर करवेकौं च्यारि सौ श्वासोच्छ्वास काल तांई कायोत्सर्ग करैं। आपकौं वर्ष दिनमैं कोई दोष लागा यादि होय, तिसके मेटवेकौं पांचसो श्वासोच्छ्वास काल तांई कायोत्सर्ग करैं।

श्लोक—पंचविंशति रुच्छ्वासा गोचरे जिन वंदना। गते मले निषद्यायां, पुरीषादि विसर्जने ॥ ८ ॥

अर्थ—जो यतीश्वर गोचरी जो नगर मैं भोजनकौं जायकैं आवै, तब राह मैं प्रमादवश दोष लागा होय तौ ताके दूर करवेकौं पचीस श्वासोच्छ्वास काल तांई कायोत्सर्ग करैं। कहीं जिन बन्दनाकौं गये होंय, तौ राहमैं प्रमाद वशाय हिंसा भई ताके मेटवेकौं पचीस श्वासोच्छ्वास काल तांई कायोत्सर्ग करैं। आपतैं गुण अधिक आचार्यादिक मुनीश्वरौंकी वंदनाकौं गये होंय अरु गमन करते दोष लागा ताके मेटवेकौं कायोत्सर्ग करैं। ताका काल पचीस श्वासोच्छ्वास जानना। यती कोई स्थान तजि कोई और ही स्थान जाय तिष्ठैं। तो पचीस श्वासोच्छ्वास काल तांई कायोत्सर्ग करैं। तनका मल चेपवे जांय, तब आयके कायोत्सर्ग करैं। मूत्र चेपैं तब कायोत्सर्ग करैं। नाकका मुखका श्लेष्मा चेपैं तब कायोत्सर्ग करैं। सो पचीस-पचीस श्वासोच्छ्वास काल तांई कायोत्सर्ग करैं। ऐसे कहे जे ऊपरि अपने संयम कूं अतीचारके स्थान तिनके मेटवे कौं यथा योग्य काल तांई कायोत्सर्ग करि शुद्ध होंय, सो गुरु बंदवे योग्य हैं। कैसे हैं गुरु संसार दशा तैं उदास हैं। तनतैं निष्प्रहहैं पंचेन्द्रिय भोगनतैं विमुख हैं। आत्मीक रस कर रांचे, धर्म मूर्ती, जगत वल्लभ, जगत पूज्य पाप कर्म तैं भयभीत दयानिधान मुनि अपने दोष मेटवेकौं ऐसे कायोत्सर्ग करि शुद्ध हो हैं। ऐसे कहे भेद सहित यतीश्वर अनेक गुण सागर पूजवे योग्य हैं। ये ही गुरु उपादेय हैं। पहले कहे कुगुरुनके लक्षण तिन सहित होंय ते कुगुरु हेय हैं। जे गुरु होय शिष्य ते छल करि शिष्यका धन हरै वाकौ अपने पांव-न नमाय मान करै सो कपटी गुरु पाषाणकी नाव समान शिष्यके परभव सुधरवेविगड़वेका जाकै सोच नाहीं सो गुरु लोभी आप संसार-सागर डूबैं और शिष्यनकौं डोवैं। ऐसे गुरु विवेकीन करि तजिवे योग्य हैं। इति गुरु परीक्षामैं हेय-उपादेय कही।

इति श्रीसुद्रष्टि तरंगिणी नाम ग्रंथ मध्ये गुरु परीक्षामैं आचार्यादि दश भेद मुनि अरु मुनि योग्य समाचार दश आचारसारजी ग्रन्थानुसार कायोत्सर्ग करनेके स्थान तथा कायोत्सर्गका काल वर्णनोनाम दशमोध्यायः समाप्तः ॥ १० ॥

आगे धर्म विषैं हेय-उपादेय कहिये है। तहां प्रथम ही कुधर्मके लक्षण कहिये हैं—

गाथा—केवलणाणय रहियो कल्लाण जीव परघादो। माण णांण धण हरयो एवं कुधम्मभासियो देवं ॥ ३२ ॥

अर्थ—जो धर्म केवल ज्ञान रहित होय दया भाव रहित होय पर जीवका घातक होय मान ज्ञान धनका हरणेबारा होय ऐसा होय सो कुधर्म है। ऐसा जिनदेवने कह्या है। भावार्थ—जो धर्म केवल ज्ञानीके बचन रहित होय हीन ज्ञानीके बचन करि प्ररूप्या होय दया भाव रहित हिंसा करवेका जामैं उपदेश होय। जीव हिंसामैं बड़ा पुण्य बंध बताया होय। पराए मान हरबेका छल-बल करि परकूं अपने पांव नमावेका कथन होय सो कुशास्त्र है। तथा जिनकौं सुनि, भोरे जीव ज्ञान बढ़ाबेकी इच्छा तजैं सो ये पराए ज्ञान हरनहार कुशास्त्र कहिए। पराया धन पापमैं लागै ऐसा उपदेशदाता शास्त्र सो कुशास्त्र है। भोरे जीवनकौं बहकाय पापपंथ लगाय नरक मंदिरका हिंसा द्वार तामैं घालि नर्क मंदिर पहुंचावै सो कुधर्म है। और जा विषैं अनेक माया-चार सहित पाखण्डिन करि भोरे जीवनके ठगनेका कथन होय सो कुधर्म है। जामैं अनेक विषय कषाय पो-षनेका कथन होय सो कुधर्म है। जिनका उपदेश सुनैं स्त्रीनके भोगकी इच्छा होय धन बढ़ाबेकी इच्छा होय राजकी इच्छा होय तिनकौं सुनि युद्धकी इच्छा होय सो कुशास्त्र हैं। और अपनी महंतता प्रगट करवेके नि-मित्त कोई व्यंतरादिक देवनका सहाय पाय बनाए होंय सो कुशास्त्र हैं। और जहां अनेक अभक्ष वस्तुका भोजन कह्या होय तथा जामैं आचार जो भली क्रिया ताका निषेध करि हर कछूका भोजन बताया होय ऐसा अनाचार सहित होय, सो कुशास्त्र है। जहां मद्य-मांस—भक्षणमैं पाप नहीं कह्या होय, सो कुशास्त्र है। और जिनमैं तीर, गोली बन्दूक, पिंजरा, फंदा फांसी, धनुष, बाण, तोपकी नालि, रामचंगी, दारू, रंजक, छुरी, कटारी, बरछी, गुप्ती, इत्यादि हिंसाके कारण ए सर्व शस्त्र तिनके बनायवे की कला-चतुराई कही होय, सो कुशास्त्र हैं। नाना प्रकार चित्रांम कला, शिल्पकला इत्यादिक चतुराई जहां कही होय, सो कुशास्त्र हैं। और जहां कुदान जो स्त्रीका दान, रति दान, दासी दान, दास दान, ए विषई जीवनके प्ररूपे, परस्त्रीनके भोगनकी इच्छावारे पंडित, तिन के कहे है। जिनमैं ऐसा कथन चलै, सो कुशास्त्र हैं। जिनमैं कुतपहिंसाकारी, कुतीर्थनकी महंतताका कथन

हो, सो कुशास्त्र हैं। जिनमैं विषय पोषनेके कारण राग-रंग, नृत्य-गान बजावनेकी कला प्ररूपी होय, सो कुशास्त्र हैं। जहां मंत्र, जंत्र, तंत्र ठान टोणा इत्यादिक परके बसीकरणादिका कथन होय, सो कुशास्त्र हैं। जिनके सुनैं हिंसा मोह क्रोध मान लोभ बढै, सो कुशास्त्र हैं। जिनके सुनें कामकी उत्पत्ति होय, जिनमैं चार कला का व्याख्यान होय कंदमूल सहित भोजन, रतालू, पिंडालू, जमीकंद, गूलर, बड़फल, पीपरफल इत्यादिकन का भक्षण करै पाप नहीं कह्या होय, सो कुशास्त्र हैं। जिनमैं भूत-प्रेतादि व्यंतरदेव तथा अपनी मति कल्पना करि माने ऐसे शीतलादिक देवनका चमत्कार, जिनकी पूजा करवेकी विधि तिनके प्रसन्न होनेकी बिधि अरु प्रसन्न भये प्रगट होय पुत्रादिककी प्राप्ति यह फल, इत्यादिक जहां कथन—उपदेश होय, सो कुशास्त्र हैं। अनेक शास्त्र जो परमार्थ कथा रहित, पापबंधके करने हारे, हीन ज्ञानी कुकविनके प्ररूपे स्वेक्षा करि रचे जो रसिक प्रिय सुन्दर श्रृंगारादि विषयों कर पूर्ण हैं सो कुशास्त्र हैं। क्योंकि ये मोक्षमार्ग रहित संसार दशाके बढ़ावन हारे ही हैं। ऐसा जानना। तातें तजनै योग्य हैं। इन ही शास्त्रनकी आज्ञा प्रमाण जीवका श्रद्धान सो ही कुधर्म है। इनका फल अनिष्ठ जांनि सम्यग्दृष्टीनकी दृष्टी मैं सहज ही हेय भासैं है। इति कुधर्म कथन। आगे सुधर्मका कथन संक्षेप कहिए है।

गाथा—अपरापर अविरुद्धो णवणय भंगाय सत्तस्याज्जुत्तो। पण पमाण अखण्डो सधम्मो जिण भासयो सुद्धं ॥ ३३ ॥

अर्थ—अपरापर जो आगे-पीछे-अन्त तांई शुद्ध कथन होय। नव नय, सप्तभंग "स्यात्" पद सहित होय पंच प्रमाण करि अखंडित होय सो धर्म जिन भाषित शुद्ध धर्म है। भावार्थ—भगवानकी वाणी में जो वस्तु निषेध करी ताका ग्रहण कोई भी जिनशास्त्रमें नाहीं। जैसे कोई शास्त्रनमैं प्रथमही सप्त व्यसनका निषेध किया ताका ग्रहण आदितैं अन्त तांई कहूं नाहीं तथा और क्रोधादि कषाय पापके अर्थ अभक्षादि अनाचार हिंसादिक पापनका निषेध किया तिनका ग्रहण कोई भी शास्त्रनमैं नाहीं। ताका नाम आदि-अंत-अविरुद्ध कहिये। और जो जिस बस्तुकूं कहीं तौ निषेधी कहीं ग्रहण करी। सो कथन विरुद्ध रूप है। ताते सत्यधर्म आदि अंत शुद्ध है। और नव नयके नाम—नैगम संग्रह व्यवहार ऋजूसूत्र शब्द समभिरूढ़ एवंभूत द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इनका सा-

मान्य अर्थ—जिस वस्तुका प्रारम्भ किए ही ताकौं भई कहिये। सो नैगमनय है। जैसे कोई पुरुष घर तजि अन्य देश
३० कूं गया। सो दस-बीस दिन गये पहुंचेगा। तुरत ही बाके घर वारोंको पूछिए जो फलाना कहां है? तब वह तर०
२। घरबारे कहैं, फलाना देश गया। सो तुरंत तौ अपने नगरमैं ते ही निकसा नहीं है। परदेश गया काहे कूं कहे हैं? परन्तु इनकी तरफ तैं गया सबतैं मिलि बिदा मांगि गया तातैं इनकी तरफ तैं गया कहिए। यह नैगम-नय हैं। ऐसे ही अनेक जगह लगाय लेना।१। एक बचनमैं बहुतका नाम ग्रहण होय सो संग्रह नय है। जैसे काहूने कही वह बाग है। सो बाग कछू वस्तु नाहीं किसी वृक्षका नाम बाग नाहीं। जुदे-जुदे वृक्ष देखिये, तौ बाग कछु वस्तु नाहीं। परन्तु बहुत वृक्षनका समूह होय सो बाग कहिये। याका नाम संग्रह नय है। तथा बहुत मनुष्यके समूहकौं यात्रा कहिये। तथा हाट कहिये। तथा गुदरी कहिए। तथा बारात कहिये। ए सर्व यथायोग्य कारण पाय संग्रह नयके शब्द हैं।२। जातैं लौकिक सधै, सो व्यवहार-नय है। जैसे हुंडी बिषैं लाख रुपये सौ योजन दूर क्षेत्र पै दिशावर, तहां कूं लिख दिए। वह तनकसा कागज काहूकूं दिया। सो वाने परतीत करी, रुपये दिए, हुंडी लई। पाछे दूसरा दिसावरसैं हुंडीके लाखां रुपए पावना सो व्यवहार नय है। तथा ऐसा कहना जो यह हमारा पुत्र है, ए पिता है, ए माता है ए स्त्री है ए अरि (शत्रु) है ए मित्र है इत्यादिक ए सर्व बचन व्यवहार नय करि प्रमाण हैं। निश्चय-नय करि आत्मा काहूका पिता-पुत्र नाहीं। संसार भ्रमण करते ऐसे अनंते नाते भए हैं। परन्तु लौकिक नय करि सत्य भी हैं। तातैं यह व्यवहार नय है।३। और "तक्काले तम्मंये परणतों" याका अर्थ—जिस कालमें द्रव्य जैसा है, तैसाही कहिए। जैसे कोई कच्चा आम है ताकौं तब खट्टाही कहिए। तिस ही आमकौं पालमैं देय पकाय लाल-पीत करिए तब ही उस आमकौं मिष्ट कहिए। जब कच्चा था, तब खट्टाही था। अरु अब पका, तब मिष्ट ही है। तथा कोई पुरुष काहू तैं युद्ध करै है तब ताकूं क्रोधी कहिए। जिस समय वही जीव पूजा-दान करता होय तब धर्मी कहिए।
जिस समय जैसा होय तैसाही कहिए, सो ऋजुसूत्र नय है।४। और शुद्ध शब्दका मानना सो शब्द नय ।१८२।
है। जैसे काहूने कही राजा। तब शब्द नय बारा कहे। राजा कहना अशुद्ध शब्द है। तातैं ऐसा कहौ नरेन्द्र

यह शुद्ध शब्द है। इत्यादिक शब्दके शुद्ध अशुद्ध भावकी अपेक्षा बोलिये सो शब्द नय है। ५। जिस वस्तुमें गुण तो और अरु नाम और सो समभिरूढ़ नय है। जैसे चलती कूं गाड़ी कहिए। तथा गाड़ी कूं उखली कहिए। तथा बलहीनकौं जौरावर नाम कहना। तथा धन हीनको लक्ष्मीधर कहिए। ए सर्व बचन समभिरूढ़ नय तैं सत्य हैं। ६। जा वस्तुकौं जैंसीको तसीही कहिए। जैंसे काहूकौं राज करते राजा कहिए सो एवं भूत नय है। ७। और वस्तुका कबहूं अभाव नाहीं। जैसें जीवका कबहूं अभाव नाहीं। ऐसा कहना द्रव्यार्थिक नय है। जैसे कहिए जीव चेतना रूप अविनाशी है, अजर है अमर है शुद्ध है, अमूर्तीक है इत्यादिक कहिए सो निश्चय (द्रब्यार्थिक) नय है। तथा ऐसे कहिये जो एक ही जीव च्यारि गतिमें भ्रमण करै है यह निश्चय नय है। ८। ऐसा कहिये जो यह देव जीव ये मनुष्य जीव ए पशु जीव ये नारकी जीव इत्यादिक कहना सो पर्यायार्थिक नय हैं। तथा ऐसे कहिए जो एजीव अनंतकालका जन्म-मरन करै है। ए सर्व पर्यायार्थिक नय हैं। ६। इनका सामान्य भाव कह्या। विशेष नव ही नयनका नय चक्र आदि ग्रन्थन तैं जानना। इनही नव नयन करि अनेक वस्तुनका स्वभाव साधिये है। आगे कहिये है सप्तभंग सो भी इनही नय करि सिद्ध होय हैं। तिनके नाम—स्यात् अस्ति स्यात् नास्ति स्यात् अस्तिनास्ति स्यात् अवक्तव्य स्यात् अस्ति अवक्तव्य स्यात् नास्ति अवक्तव्य स्यात् अस्तिनास्ति अवक्तव्य। ए सप्तभंग हैं। अब इनका अर्थ—एक ही वस्तु पै नय प्रमाण सप्तभंग साधिए है। जैसे कोई नय कही हमारा तन स्वद्रव्य, क्षेत्र काल, भाव स्वचतुष्टयकी अपेक्षा अस्ति है। तब जैनी नै कह्या स्यात् कोई नय करि। १। तब काहू ने रतन पै अशर्फी धरी और कही कि रतन पर द्रव्यके चतुष्टय करि नास्ति और मेरी अशर्फी अपने द्रव्य क्षेत्र काल भाव करि स्वचतुष्टयकी अपेक्षा अस्ति है। तब जेनीने कह्या स्यात् कोई नय करि। २। अपने चतुष्टयकी अपेक्षा रतन अस्ति है। पर अशर्फीके चतुष्टयकी अपेक्षा रतन नास्ति है। अरु अशर्फीके चतुष्टयकी अपेक्षा अशर्फी अस्ति है। रतनके चतुष्टयकी अपेक्षा अशर्फी नास्ति है। ऐसे एक बारही एक वस्तुमें अस्ति नास्तिपना दोऊ सधे है। तातें अस्ति नास्ति। तब जेनीने कह्या स्यात् कोई नय करि। ३। जो रतन कूं अस्ति कहिये, तौ

अशर्फी अपने चतुष्टयकौं लिए है। सो ताकौं नास्ति कैसे कहिए ? अरु रतनकूं नास्ति करि अशर्फी अस्ति कहिए तौ रतन अपने चतुष्टय तैं अस्ति है ताकौं नास्ति कैसे कहिए ? अरु एक ही वार अस्तिनास्ति कही जाती नहीं। तातैं अवक्तव्य कहैं। तब जैनी ने कह्या स्यात् कोई नय करि। ४। अरु हे भाई ! रतन तौ अस्ति है अपने चतुष्टय करि और रतनके चतुष्टय करि अशर्फी नास्ति भी है। परन्तु कही नाहीं जाय। क्योंकि अपने चतुष्टय तैं अशर्फी अस्ति है तातैं स्यात् अस्ति अवक्तव्य है। ५। असर्फीके चतुष्टय करि रतन नास्ति है। परन्तु कह्या नहीं जाय क्योंकि रतन प्रत्यक्ष है। तातैं स्यात् नास्ति अवक्तव्य कहैं। ६। रतन अपने चतुष्टयकी अपेक्षा अस्ति है। अरु पर चतुष्टयकी अपेक्षा नास्ति है। परन्तु दोऊ एकही वार कहे जाते नाहीं। अरु अशर्फी अपने चतुष्टयकी अपेक्षा अस्ति अरु परके चतुष्टयकी अपेक्षा नास्ति है परन्तु कह्या नहीं जाय। तातैं स्यात् अस्ति-नास्ति अवक्तव्य कहैं। ७। ऐसे सप्तभंग अनेक पदार्थन पै द्रव्य क्षेत्र काल भाव करि साधिये। ऐसे सप्तभंगन सहित जिनवाणीमैं कथन है। बहुरि कैसा है जिन धर्म जो पंच प्रमाणन करि खंड्या नाहीं जाय हैं। सो पंच प्रमाण कौनसे ? सो कहिए हैं। लौकिक प्रमाण परंपराय प्रमाण अनुमानप्रमाण शास्त्र प्रमाण और प्रत्यक्ष प्रमाण ये पंच प्रमाण हैं। सो इन करि जो धर्म खंड्या जाय सो धर्म झूठा है। इन पांच प्रमाणोंका सामान्य भेद करि निर्धार करिए है। जो वस्तु लौकिक विषैं निषेधी होय सर्व करि निंदवे योग्य होय जाके किये राज पंचका दिया दण्ड पावैं ऐसी क्रिया जाके देव-गुरु करते होंय सो ताके देव-गुरु झूठे हैं। तिनके करवेका जिनके शास्त्रनमैं कथन होय तिनका धर्म झूठा अयोग्य है। तजिवे योग्य है। सो ही कहिये है। जैसे लौकिकमैं सप्त व्यसन निंद्य हैं। सो जिनके देव-गुरु द्यूत-व्यसन रमते होंय सो हीन हैं। लौकिकमैं द्यूत रमैं ताकूं लुच्चा कहैं हैं। तिस जुवारीकी कोई प्रतीत नहीं करै। ऐसा जुवा जाके देव-गुरु रमते होंय सो धर्म तजिवे योग्य है। पर जीवनके मांसकलेवर कोई छीवता नाहीं अरु कदाचित् छीवै ही तौ महा ग्लानि उपजै। जब स्नान करै सर्व वस्त्र उतारै तब शुद्ध होवै। जाके देखै ही घृणा आवै दीखते महा अशुभ महा दुर्गन्ध जाकौं स्वनादिक (कुत्ते आदिक) भी नहीं ग्रहैं ऐसा अशुचिका समूह

आमिष है। ऐसे मांसकौं जाके देव-गुरु खावते होय जिनके शास्त्रनमैं मनुष्यनकूं मांसका भोजन लेनै योग्य कह्या होय। सो धर्म पापाचारी तजवे योग्य है यः धर्म लौकिकके निषेधवे योग्य है। और मदिराके पीये बुद्धि नष्ट होय। माता पुत्री स्त्री भगिनी इत्यादिक भेद ताकौं नहीं भासै ए सर्व एकसी जानै। पग-पग पै मूर्छाखाय पड़े है। लोकन मैं हाँसि होय अनेक लोक ताकी अज्ञान चेष्टा देखि कौतुक देखवेकौं इकट्ठे होंय ताकी सर्वजन निंदा करैं। ऐसी मदिरा जगत-निंद्य ताकौं जाके शास्त्रन मैं लेने योग्य कही होय ऐसी मदिरा जाके देवगुरु-भक्त लेते होंय सो धर्म निंद्य हीन तजिवे योग्य है। ये भी लौकिकके निंदवे योग्य है जिस वेश्याका तन सदीव सूतवत है। जाकी जाति कुल-की खबर नांहीं। सर्व ऊंच नीच कुलके मनुष्यनकी भोगन हारी। निर्लज्जताकी हद्द जाके घर मार्गकी राह विवेकी भूल हू नहीं जाय। ऐसी कुशील मंदिर या वेश्या जाके घर गमन किए लोक निंदा पावै। पंच सुनै तौ पांति तैं निकासै। ऐसी वेश्या—कंचनोका सेवन जाके देव-गुरु—भक्त करते होंय सो धर्म भी असत्य पापमई, झूठा है। यह भी लौकिक तैं निंद्य है। कोई जीव काहू जीवका घात करै, तौ लोक कहैं, याने पंचेन्द्रिय मनुष्य या पशु जीव मार्‍या, सबनैं देख्या। सो यह महा पापी है। हत्यारा है। तब पंच तौ याकौं जीव-हत्या लागी जानि, न्यातितैं निषेधैं। और राजा याकौं पापी जानि, बिना प्रयोजन दीन-पशुका घाती देख, घर लूटि ले, ताका हाथ नांक छेदै। ऐसा प्रत्यक्ष लौकिकमैं जीव घात करना जाके शास्त्र मैं पुण्य कह्या होय, और जाके देव-गुरु-भक्त जीव घातमैं मगन होय, जीव घात करते होंय। सो धर्म, दया रहित, जीव घातक, तजवे योग्य है। ये भी धर्म लौकिक तैं निंद्य है। क्यों, जो लौकिक है तो दया करि जीवनकी रक्षाकौं सदाव्रत देय हैं। पशुनकौं घास निक्षेपै है, प्यासेन कूं जल देय हैं। नग्न वस्त्र देय है। रोगीकौं भेषज देय है। इत्यादिक जैसे तैसे जीवनकी रक्षा करै है। जाके धर्ममैं जीव घातमैं पुण्य कहा होय, जीवनकी हिंसा कही होय, सो धर्म दया रहित, असत्य है। यह धर्म भी लौकिक करि खंड्या जाय है। जे पराया चेतन-अचेतन परिग्रह, छल—बलि करि हरै, ताकौं चोर कहिए। सो जीव राज, पंच करि दंडवे योग्य है। लोक निंद्य है। सो ऐसी चौरी जाके देव--गुरु करते होंय। अपने भक्तकौं छलतैं फुसलाय वाका धन ठगैं

पराई स्त्री, पुत्री शुभ देख, ले जाँय, सो चोर। ऐसे कथन जाके धर्ममैं होय। जाके देव-गुरुने पराया धन, स्त्री पुत्री हरना कह्या होय, सो धर्म असत्य है। यह भी चौर धर्म लौकिक तैं निंद्य है तातैं हेय है। परस्त्रीके सेवनके योग तै पंच तौ जाति तैं निकासैं हैं। इस कुशीलो पुरुपका राज, घर लूटै है अंग उपांग छेदै है, मारै है। खररौपणादि (गधे पर सवारी) अपमानादिक अनेक दुख देय है। ऐसी अवार लौकिक विषं प्रत्यत्त देखे हैं। अरु जाके धर्ममैं परस्त्रीका सेवन, जो परस्त्री जाका भरतार जीवता होय, तथा भर्तार रहित विधवा होय, तथा विना व्याही कुमारी होय, तथा दासी होय, इत्यादिक परस्त्री हैं। तिनके सेवनका दोष, जिनके धर्म विषैं नहीं कह्या होय। जाके देव-गुरु परस्त्री हरले जांय, तथा उनके सेवन करते दोप नहीं कह्या होय। जाके देव-गुरु परस्त्रीनतैं हाँसि-कौतुक करते होंय, परस्त्री सेवते होंय, सो धर्म भी कामी देव-गुरुनका उपदेश्या असत्य है। यह भी लौकिक करि खंडिये है। कुशील है सो तो महापाप, लोकमैं प्रगट कह्या। अरु शील है सो उत्तम धर्म है। तातैं यह भी धर्म, लोकापवाद सहित तजवे योग्य है। ऐसे सात व्यसन लौकिक मैं दंडवे योग्य कहे हैं सो ऐसे व्यसनोंका प्रवेश जाके धर्ममैं पाईए, जो धर्म लौकिक नय प्रमाण तें खंड्या जाय, सो असत्य है। जो क्रोधी होय, ताकौं लोक कहैं यह महा क्रोधी है। पापी, वात कहै ही लड़ै है। मारै है। याका सहज-स्वभाव सर्प समान है। जो कोई मानी होय, ताकौं लोक कहैं यह वड़ा मानी है, सो कहीं मारया जावेगा, वहुत-मान योग्य नाहीं। मायावीकौं लोक कहैं, यह वड़ा दगाबाज है। याके चित्तकी कोई नहीं जानैं। यह महा पापी है। कोई लोभी होय, तो ताकौं लोक कहैं, यह वड़ा लोभी है। याके पास वड़ा धन है। यह वा धन कूं नहीं खाय है। नहीं काहूकौं खवावे है। नहीं धर्ममैं लगावै है। और भी धन जोड़वे का उपाय करै है। ऐसे यह क्रोध-मान-माया--लोभ सहित जीव होंय, जो पर कूं मारने कूं शस्त्र धारते होंय ऐसी कषाय जाके धर्ममैं करनी कही होय, जाके देव--गुरु--भक्त महा कपायी होंय, सो भयानीक धर्म तजवे योग्य है। तातैं धर्म कपाय रहित है। लौकिक विषैं वड़ा परिग्रह-आरंभ होय, ताकूं वड़ा गृहस्थ कहिए। पुत्र-स्त्री आदि कुटुम्ब होय, काहू तैं स्नेह, कांहू तै द्वेष करनहारा होय, रागी-द्वेषी होय, ते गृहस्थ हैं। सो

जाके धममैं परिग्रह-आरंभ-कुटुम्ब सहित, रागी-द्वेषी देव-गुरु, कहे होंय। सो धर्म संसार विषैं भ्रमण करावन हारा है। क्यों ? देखो, लोक विषैं तो त्याग पूज्य है। अब भी जो घर कूं तजि, वनमैं रहैं। नगन रहैं। तथा लंगोट मात्र होय, तिनकूं बड़े-बड़े परिग्रह धारी राजादि, पूजते देखिए हैं। तातैं परिग्रह सहित जे देव-गुरु हैं, सो लौकिक तैं निषेधिये है। तातैं धर्म सो ही सत्य है जाके देव-गुरु, राग-द्वेष-परिग्रह रहित होंय। इत्यादिक लौकिक प्रमाण तैं जो धर्म खंड्या जाय, तो और प्रमाण तैं तो खंडे ही खंडे। ऐसे जे-जे दोष लौकिक निंद्य हैं, तिन सहित कोई धर्म होय सो असत्य है। कोई लौकिक मैं भगवानकी पूजा करै, दान देय, तप संयम करै समता भाव सहित रहै, शीलवान होय, जाके क्रोध-मान माया-लोभ दीर्घ नाहीं होय, इत्यादिक गुण हैं, तिनकौं सर्व लोक पूजैं हैं। अच्छे जानि प्रशंसा करै हैं। कोई जीव प्रभुकी पूजा स्तुति करै, तो ताकौं देखि लोक कहैं, यह धन्य है, भलाभक्त है। याके सदीव प्रभुकी भक्ति-पूजा-सुमरण हो रहे है। ऐसा जानि सर्व पूजैं। कोई धर्मात्मा कूं दान देता देखैं, तौ लोक कहैं। यह धन्य है। महा दयावान है। बहुत दीनन कूं दान देय, तिनकी रक्षा करै है। कोई तपसी नाना उपवास सहित अनेक तप-संयम करता होय, तौ लोक याकी अवस्था देखि, हर्ष पाय कहैं। यह तपसी महा संयमी है, पूज्य है। सर्व याकों ऊंच जानि पूजैं। कोई समताभावी कूं, दुष्ट जीव दुर्वचन कहै, मारे, बंधन देय। अरु वह तपसी काहू कूं कछू नहीं कहै। कोई तैं द्वेष नहीं करै, समता भाव राखै, तौ उस तपसी कूं लोक कहैं, यह धन्य है। बड़े धीर समता परिणामी हैं। ऐसा जानि सकल लोक पूजै हैं। कोई मान नहीं करै, तो लोक कहैं यह बड़ा मनुष्य है। याकैं मान नाहीं। कोई दगाबाज नाहीं होय तौ लोक कहैं, यह बड़ा शुद्ध जीव, सरल परिणामी है। याके कुटिलताई नाहीं, यह धन्य है। ऐसा जानि स्तुति करैं, याकौं पूजैं। कोई परिग्रह पुत्र स्त्री घर धन तजि बनमें रहै तौ लोक कहैं यह धन्य है। सर्व घर--धन--भोग तजि समता धरि योग धर्या है। ऐसा जानि सर्व लोक पूजैं। और कोई नगन रहता होय। मिलै तौ खाय नहीं भूखा रहै। काहू पै जांचै नाहीं। तौ लोक याकी पूजा करैं। ऐसे कहे लौकिक करि पूजबे योग्य जे जगत गुण सो जिस धर्ममैं इन गुणनका कथन होय सो धर्म पूजबे योग्य

सत्य धर्म है। ऐसे तौ लौकिक प्रमाण करि धर्मकी परिक्षा करिये। सो यह जिन धर्म लौकिक करि पूज्य है। ऊपर कहे जे गुण यह तिन सहित है। तातें लौकिक प्रमाण करि खंड्या नहीं जाय है। ऐसे लौकिक प्रमाण करि अखंड जिन धर्म जानना। इति लौकिक प्रमाण ॥ १ ॥

आगे परंपराय प्रमाण कहिये है। बहुरि परंपराय ताकौं कहिए। जो बस्तु आगे तैं होती आई होय। अरु काल-दोष तैं वर्तमान काल कबहूं नहीं होय, तो परंपराय तैं जानि लेनी। जैसे अपने पितामह (पिताके पितादिक) कुलविषै आगे बड़े थे अवार बर्तमानकाल मैं नाहीं सर्व परलोक गए। परन्तु तिनकी बड़ाई धन को प्रचूरता हुक्म शुभ क्रियादि और के मुख तैं सुनि जानिए है जो हमारे बड़े ऐसे थे। तिनकी ऐसी धर्म-कर्म रूप व्यवहार—चलन क्रियाथो। ऐसी प्रतीति भई। तथा कागज-पत्रन तैं देखिये जो अपने बड़ौंके लाखौं रुपये औरन से लेने हैं। और लाखौं ही बड़ौंके शिरके देने हैं। सो सर्व रोजनामचा खातान तैं जानिये। परंपराय प्रमाण करिकै ही लेनेवारों नैं लीजिये हैं। और देनेवारोंकौं दीजिए है। सो आप तौ लेने देने तैं वाकिफ--हाल नाहीं। परन्तु रोजनामचा-खातान तैं खत-पत्रन तैं देना-लेना सत्य होय है। सो यह परंपराय प्रमाण है। तैसे ही तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण बलभद्र प्रतिनारायण कामदेव नारद रुद्र मण्डलेश्वर महामण्डलेश्वर अर्धमण्डलेश्वर इत्यादि पदस्थधारी पुरुष आगे भये थे। अब कालदोष तैं इन पदस्थधारी नाहीं परन्तु तिनके नाम लौकिक में सुनिए हैं। सो तिन पदवीधारीन पुरुषनके कुल तिनके माता-पितानकी परिपाटी आदिक कथा। तथा तिनकी उत्पत्ति नाम राज्य-सम्पदा भोग सुख पुरुषार्थ शूरपणा पराक्रम सैन्य दल इत्यादिक वार्ता है सो परंपराय प्रमाण है। सो ऐसा परंपराय शास्त्रन तैं जानिए अरु लौकिक तैं जानिए है ऐसा ही श्रद्धान करिए है। सो जिनके धर्मशास्त्रन में एसे पुरुषनको उत्पत्ति कुल राजु-सम्पदा भोग सुख वैराग्य भए दीक्षा ग्रहण मुनिपदका पालना मुनि—श्रावकनका आचार प्रवृत्ति इत्यादिक कथन जहां पाइए सो धर्म सत्य है। सो ऐसे परंपराय करि मिलता होय सो धर्म सत्य है। और नग्न गुरु जिनका निर्दोष भोजन आरंभ रहित बीतराग अनेक गुण सम्पदा सहित देव-इन्द्रन करि बन्दनीक मुनीश्वर आगे थे अब कालदोष तैं

नाहीं परन्तु शास्त्रनतैं सुनिये हैं कि ऐसे गुरु होंय सो आगे थे सो ऐसे गुरुनका कथन जिस धर्ममें होय सो धर्म परंपराय प्रमाण है। तथा नवनिधी चौदह रतन कल्प वृक्ष पारस चिन्तामणि, ए उत्तम वस्तु हैं। सो इनका नाम तो सुनिए है। और अवार काल-दोष तैं दीखती नाहीं। आगे थे सो तिनके नाम गुण आकार और ए कौन-कौन कैं होंय सो ऐसा कथन जिस धर्म विषैं होय सो धर्म परंपराय प्रमाण करि शुद्ध सत्य है। या नय तैं भी अखंड है। ऐसा जिन धर्म अखंड जानना। इति परंपराय प्रमाण ॥ २ ॥ आगे अनुमान प्रमाण कहिये है। वहुरि अनुमान ताकौं कहिए जो अपनी बुद्धिके प्रभाव करि वस्तुकौ यथावत् विचारकै श्रद्धान कीजिये जैसे लौकिकमें तथा परंपराय धर्म दया सहित कहें हैं। अरु कोई अल्पज्ञानी खेटक (शिकारी) व्यसन रंजित धर्म हिंसा में बतावै तौ विवेकी अनुमाम तैं ऐसा विचारैं। जो हिंसामें धर्म होय, तो दीन जीवनकौं तौ सर्व मारैं। रंकन कूं दान कोई भी नाहीं देय। जहां रंक जाय सो धर्म होनेकूं हर कोई ही मारै। सर्व जीव धर्मके लोभी परस्पर वह वाकौं मारै वह वाकौं। धर्मके वास्ते सर्व परस्पर युद्ध करि मरैं। सो तौ अनुमान में तुलती नाहीं। और लौकिक में भी दीखती नाहीं। और लोक में भी धर्मके निमित्त केई तौ सदावर्त देते दीखैं हैं। केई धर्म निमित्त प्यासे कूं जल पियावैं है। केई दया करि शीत में दीननकूं वस्त्र देय हैं। इत्यादिक तो लौकिकमें दीखैं हैं। सो ऐसा भासै है कि धर्म दयामय ही है। और हिंसामैं धर्म संभवता नाहीं ऐसा विचार बुद्धि ही तैं अनुमान करि धर्मका श्रद्धान दयामई करै। इनकौं आदि अनेक नयन करि, वस्तुकौं अनुमान तैं विचारना। सो अनुमान प्रमाण सत्य है। ऐसे जिस धर्म मैं अनुमानका कथन होय, सो सत्य धर्म जानना। सो जिन धर्म अनेक नय युक्ति और अनुमानका समुद्र है। सो यह अनुमान नय तैं अखंड जानना। इति अनुमान प्रमाण ॥ ३ ॥

आगे शास्त्र प्रमाण कहिए हैं। केतेक वस्तु पदार्थ ऐसे हैं, जो शास्त्रन तैं प्रमाण कीजिये है। द्रव्य—पदार्थ अपने श्रद्धान पूर्वक तथा प्रत्यक्ष पूर्वक भासै हैं। सो तौ निसंदेह हैं ही। और केई पदार्थ ऐसे हैं। जिनकौं निर्धारि करनेको बुद्धि, समर्थ नाहीं। तिन वस्तुनका निर्धार शास्त्रन तैं करिए है। जैसे लौकिक मैं

किसीके लेने-देने में संदेह होय तो सर्व कहैं तुम अपने कागज-रोजनामचा-खाते लावो। जो कागजन में निकसैं सो सत्य है। तैसेही केतेक वस्तु मति श्रुत ज्ञान तैं प्रत्यक्ष गोचर नाहीं। जैसे स्वर्ग-नरककी कहा रचना है ? तीन लोककी रचना कैसे हैं ? जीव देव मनुष्य पशु नारक में कैसे भ्रमैं ? सिद्ध पद कैसे होय ? इत्यादिक। तथा मेरु पर्वत कुलाचल महान नदी असंख्यात द्वीप समुद्र इत्यादिक नाम तो सुनिए हैं, परन्तु प्रत्यक्ष नाहीं। सो शास्त्रन तैं जानिए हैं सो जिन शास्त्रन में इन स्वर्ग नरककी रचना आयु काय दुख सुखका कथन होय तथा मेरु कुलाचलादि अगोचर वस्तुनका कथन जिस धर्म में होय, सो धर्म सत्य है। अनेक शास्त्रनमें प्रमाण करि भी यह जिन धर्महो अखंड्या जानना। इति शास्त्र प्रमाण ॥ ४ ॥ आगे प्रत्यक्ष प्रमाण कहिए है। बहुरि जो वस्तु इन्द्रिय गोचर तथा श्रद्धान गोचर दृढ होय सन्देह रहित होय सो प्रत्यक्ष कहिए है। जैसे कोई पुरुष अपने गले विषैं रतननका हार परम उत्तम पहरे तिष्ठै है। ताकी शोभा देखि-देखि आनन्दित होय है। सो हार वा पुरुषके प्रत्यक्ष है। कोई आय तिस पुरुष कूं कहै, जो यह हार नाहीं है और ही कछू है, तौ वह पुरुष कैसे मानै ? कहने वारे कूं ही मंदज्ञानी जानै। वाकैं तौ प्रत्यक्ष है। ताकै सुख कूं भोगवै है। तैसेही जीवकैं सम्यग्दर्शनादिक गुण मई रतननका हार धरनेहारा भव्य कै आप आत्म-देखने जानने वारा जो आत्मा सो प्रत्यक्ष है। इहां कोऊ प्रश्न करै। जो आत्मा तौ अमूर्तीक है। सो अमूर्तीक द्रव्य अव्रतसम्यग्दृष्टीकैं प्रत्यक्ष कैसे होय ? ताका समाधान। जो प्रदेशनकी अपेक्षा तौ आत्मा प्रत्यक्ष नाहीं परन्तु गुण अपेक्षा प्रत्यक्ष है। चैतन्य गुण सम्यग्दृष्टी कैं प्रत्यक्ष अनुभव में आवै है। तातें प्रत्यक्षसी प्रतीत कं लिये है। जैसे तहखाने में तिष्ठता कोई पुरुष राग करै है। सो पुरुष तो दृष्टि गोचर नाहीं। परन्तु राग कौं सुनैं तैं ऐसी दृढ़ प्रतीत होय है, जो यह राग है, ताकों कोई पुरुष करै है यामें सन्देह नांहीं। तैसे ही इस जड़ तन विषैं देखने—जानने रूप क्रिया, अनेक चेष्टाका करनेहारा आत्मा है सो मैं ही हौं। मैं ही देखूं जानं हौं। सुख-दुख में ही वेदूं हूं और नाहीं। ऐसा प्रत्यक्ष होते कोई देव भी कहै जो तूं आत्मा नाहीं देखने जाननेहारा कोई और ही है। तौ सम्यग्दृष्टीन कौं वा देवकी ही मिथ्या बुद्धि भासैं। परन्तु आप आत्मा है

तामैं सन्देह नाहीं। ऐसी दृढ़ प्रतीत सहित प्रत्यक्ष भाव भासै है । अब प्रत्यक्ष देखने जाननेहारा आत्मा तो मैं हौं सो नाहीं, यह कैसे कह्या जाय ? जो वस्तु सन्देह सहित होय तौ तामैं 'हां' 'ना' भी कही जाय। निसन्देह विषैं परोक्षसा सन्देह कैसे कह्या जाय ? ऐसे दृढ़ जानि सम्यग्दृष्टीनकैं आत्म स्वभावकी प्रत्यक्षता कही है। ऐसें अनेक वस्तु निसन्देह होय सो प्रत्यक्ष प्रमाण कहिए है। ऐसे प्रत्यक्ष प्रमाण वस्तुका स्वरूप जिन धर्म मैं बहुत है। तातें और के प्रत्यक्ष प्रमाण तैं अखंडित जिन धर्म, सत्य है। ऐसे लौकिक विषैं धर्म दयामई है। और परंपराय भी धर्म दयामई अनुमान मैं भी धर्म दयामई और शास्त्रन मैं भी धर्म दयामई और प्रत्यक्ष भी धर्म दयामई। ऐसे पंच प्रमाण जिन धर्म मैं मिलैं हैं। तातें काहूके भी पंच प्रमाण करि अखं-डित, जिन धर्म है सो सत्य है। ऐसे अनेक नयन करि धर्मकी परीक्षा करी सो जिन धर्म पूज्य है। इति प्रत्यक्ष प्रमाण ॥ ५ ॥

इति श्री सुदृष्टि तरंगिणी नाम ग्रंथ मध्ये शुद्ध धर्म परीक्षा, सप्तभंग नवनय, पंच प्रमाणादि कथन सुधर्म-कुधर्म में ज्ञेय-हेय-उपादेय वर्णनो नाम एकादश पर्व सम्पूर्णम् ॥ ११ ॥

आगे किस प्रकारकी संगति करनी। सो तामैं ज्ञेय हेय उपादेय कहिए है—

गाथा——सुह दुह दाणदि जहियो, सो उपादेयो संग हिद करदो। हेय हेय विभावो, सुदिट्ठी सो होय आदायो ॥ ३४ ॥

अर्थ——जो दुख दायक जगत निंद्य संग होय, सो तजिए। और हितकारी संग होय सो उपादेय है। इस तरह योग्य-अयोग्य विचारि संग करै सो आत्मा सम्यग्दृष्टी जानना। भावार्थ—सम्यग्दृष्टीन कैं ऐसा विचार सहज ही होय है विवेकी जो संगति करै, तामैं तीन भाव हो हैं। शुभाशुभ भाव संगका समुच्चय विचारना सो तो ज्ञेय संग है। ताही ज्ञेय के दोय भेद हैं। एक तजन योग्य एक ग्रहण योग्य। तहां ऐसा विचारै जो जिस संगति तैं आपकौं दोष लागै, तथा अपयश होय, तथा आपकूं निंदा आवती होय, तथा पापका बंध होता होय, सो संगति नहीं करनी। तथा जिस संगतें अपना यश होय, लोकन मैं सत्कार होय, भली वस्तुका लाभ होय, शुभ कर्मका बंध होय इत्यादिक सुबुद्धि प्रगटै, कुबुद्धि नाश होय जो अपने भलेकी

संगति होय, सो करै। पीछे ऐसा बिचारै जो इतने तौ कुसंग हैं—चोरीके करनहारे निशदिन चोरीकी चतुराईकी नाना कला करनहारे चोर तथा पराये द्रव्य हरवे कौं अनेक छल-छिद्रम करैं, विचारैं, ते चोर हैं। अरु माया करि नाना प्रकार भेष धरि परकौं ठगैं सो चोर हैं। तथा पराये ठगवे कौं अनेक असत्य वचन भाखनेहारे, इत्यादिक लक्षण सहित होंय सो चोर हैं। तिनका संग हेय है। भीजे तांत सूत्र रेशम वस्त्रकी फांसी बनाय पर जीवनका घात करि पराया द्रव्य हरैं सो फांसिया चोर हैं। तथा स्त्रीका स्वांग मांगता वैरागी जोगी व्यापारी अनेक भेष धरि परकूं छलतैं मारि द्रव्य हरैं सो ठग जातिके चोर हैं। राहके मारनेहारे जे जबरदस्ती धन खोसैं नहीं देय तौ मारैं। ऐसे निरास करनेहारे भील मीणा मौढ़ मेर इत्यादिक ए चोर हैं। जैसे लौकिक मैं चोर-चकार कहैं हैं जो पराये घर फोड़े छल-छिद्र करि पराया धन हरैं। ,सो तो चोर कहिये जे जबरीतैं पराया माल खोसैं आपकौं जोरावर मानैं तुरंगनके असवारादि तिनतैं दीन जन डरैं। बहुत धनके धरन हारे गिरासियादिक ए चकार है। ऐसे चोर अरु चकार ए चोरके दोय भेद हैं। इनकौं आदि और भी लकड़ी, घास, भाजीके चोर अरु इन चोरनके मित्र तथा चोरनकी विनय करनहारे चोरनके पास बैठने हारे ए सब चोर समान जानि विवेकी पुरुष इनका संग तजैं हैं। और द्यूतकार जो चौपरि गंजफा नरद मूठि होड़ादिक। जुवाके खेलने मैं प्रवीण द्यूत व्यसनके प्रसिद्ध व्यसनी तिनकूं सब जानैं जो ए प्रसिद्ध जुवारी हैं। ऐसे द्यूतनका कुसंग तजना योग्य है। जे अभक्ष्यके भखनेहारे मलिन प्राणी मांसाहारी अशुचिके भोगी तिनका संग तजने योग्य है। जे मद्यपायी मदोन्मत्त खफ्त दिवाने समान बेसुधि जिनके वचननकी प्रतीति नांहीं ऐसे मद्यपी जीवनका संग तजिवे योग्य है। और वेश्या व्यसनी निर्लज्ज विनय रहित वेश्यानके संगमके तथा गानेके नृत्यके लोभी कौतुकी तिनका संग तजवे योग्य हैं और जे महा हिंसक जीवनके घाती महा पापी निर्दयी भील चंडाल मोघिया कसाई खटीक इन आदिक जे करुणा रहित नाशकारी ज्ञान अंध दुराचारी इन आदिक हिंसक जीवनका संग तजवे योग्य है। और जे परस्त्रीनका रूप देखि भोग अभिलाषी कुशीलके प्यारे दुर्बुद्धि तिनका संग तजवे योग्य है। ऐसे कहे ये सत व्यसनी जीव पापी पाखंडी तीव्र क्रोधी मानी मायावी

लोभी हाँसि कौतुक मद मत्सरके धारी तिनका संग तजवे योग्य है। इत्यादिक कहे कुसंगनका त्याग सो सम्यग्ज्ञान सत्य है। इति हेय संग। आगे उपादेय संग एते संग सुखकारी हैं। तीर्थंकर केवली मुनीश्वर व्रती श्रावक सम्यग्दृष्टी शान्त स्वभावी दानी तपसी जपी संयमी धर्मध्यानी धर्मचरचा करनहारे ऊंचकुली, दयावान विद्यावंत इत्यादिक गुणवान पुरुषनकी संगति पूज्य है। ये पुरुष प्रगटपने जगतमें पूज्य पदधारी हैं। इनका यश सब लोग कहैं है। ये शुभाचारी हैं। ऐसे ऊंच पुरुषनका संग करना उपादेय है। ऐसे सम्यग्दृष्टीनकी बुद्धि सहज ही शुभ संग चाहती व अशुभ संगतैं उदासीन होय है। इति संगति में हेय ज्ञेय उपादेय अधिकार। आगे विचार मैं हेय ज्ञेय उपादेय कहिये हैं।

गाथा--असुहो बिचारो हेयो, चदुधो धम्म झाण चिंतायं। सम्मं तं सहल सुहावो, गेहेआदेय हेयणे माए ॥ ३५ ।

अर्थ—तहां सम्यग्दृष्टी जो विचार करै सो सहज ही ज्ञेय हेय उपादेय करि तीन प्रकार होय जाय है। तहां भले-बूरे बिचारका समुच्चय विचार करना सो तौ ज्ञेय है। ताहीके भेद दोय हैं। एक विचार तौ हेय हैं एक उपादेय हैं। सो प्रथम हेय जो त्याग योग्य सर्व विचार ताका स्वरूप कहिये है। विचारनाम ध्यानका है। सो अशुभ ध्यानके दोय भेद हैं। एक आर्त विचार है एक रौद्र विचार है। जहां परवस्तुकी चाहि सो आर्त है। जहां पर जीवनका वुरा चिंतवना सो रौद्र विचार है। सो आर्तके चार भेद हैं। एक तौ भली वस्तुका वियोग होय तब ऐसा विचार उपजै जो ये भली वस्तु थी। मोकूं इष्ट थी। याके निमित्त पाय माकौं विशेष सुख था। अब मेरा सुख गया। ऐसे पुत्र भाई मात तात धन हस्ति घोटिक राज मित्र शरीरादिकका वियोग होते मोहके वशी होय शोक करै। सो इष्ट वियोग रूप विचार है। यह विचार विवेकीन कौं त्यागने योग्य है। याका नाम इष्ट वियोगज आर्तध्यान कह्या है ॥ १ ॥ दूसरा भेद अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान है। ऐसे विचार जहां आपकूं नाहीं चाहिये ऐसे जो खोटे निमित्तका मिलाप होना। ऐसे खोटे मिलाप तैं ऐसा विचार होय, जो मोकौं मिल्या सो मोहि खेदकारी है। मैं याकौं नहीं चाहै था। याके निमित्त तैं मोकौं अरति उपजै है। ऐसे बैरी तथा जाका बहुत धन देना होय, तथा राह जाते चोर नाहर इत्यादिकका मिलाप होते,

इनके भय दूर करवेका निमित्त पाय, परणति खेद रूप होय विचार करना, सो अनिष्ट संयोगज आर्त विचार है ॥ २ ॥ और तीसरा आर्त विचार ताकौं कहिए। जो अपने तनमें पाप कर्म उदय होते भए जो नाना रोगनकी उत्पत्ति, तिनके तीव्र दुख देख ऐसी अरति करनी जो रोग तीव्र है, कौन उपाय तें जाय, तथा कब जायगा ? ताके मेटवेकूं अनेक सोच, चिन्ता, मन्त्र, जंत्र, तन्त्र औषधादि करना। तथा अन्यकूं तीव्ररोग देख कैं आप डरना, जो ऐसा रोग मोकौं नहीं होय तो भला है। ऐसे रोग पीड़ाका निमित्त पाय वारंवार विचार करना, सो पीड़ा चिंतवन आर्तध्यान है ॥३॥ चौथा विचार जो कोई धर्म-कर्मका कार्य करते पहले ऐसा विचार कर जो मोकूं याका ऐसा फल होहु। याका नाम निदान बंधा आर्त विचार है ॥४॥ आगे ए आर्त प्रगट होने के चिन्ह कहिए है। प्रथम तो अंतरंग चिन्ह जो अंतरंगमें परिग्रहकी तीव्र वांछा होय, जो मैं बहुत धन कैसे पाऊं। १। कुशीलकी इच्छा जो मोकों स्त्रीका निमित्त कब मिलेगा। ऐसी चिंता होय। २। माया कुटिलताई रूप परणति, अपने चित्तके छल कुटिलता औरन कौ न जनावना सो आर्तका लक्षण है। ३। अंतरंगकों दाह ऐसा रहै जो कोई कों साता नहीं चाहै। और कों सुखी देखि आप वाके दुखी करनेका उपाय विचारना ॥ ४ ॥ और लोभ परणति, जो राज व लक्ष रुपय होते तृभी नहीं होय ॥ ५ ॥ अपने भावनका कृतघ्नीपना, जो और अपने ऊपर उपकार करै, काहूका उपकार होय तो ताकूं भूलिकैं उलटा तातैं द्वेष भाव करना ॥ ६ ॥ चित्तमहा चंचल करना ॥ ७ ॥ पंचेन्द्रिय विषयनकी वारंवार चाहना करना ॥ ८ ॥ सदीव शोक रूप परणति राखना ॥ ९ ॥ ए नव चिन्ह तो अन्तरंग आर्त होतें प्रगटें हैं। बाह्य चिन्ह आर्तके तहां दिन-दिन प्रति खांन-पांन अल्प होता जाय, तन क्षीण होय सो तन सोखन है ॥ १ ॥ शरीरका वर्ण मारे चिंताके फिर जाय सो विवर्ण चिन्ह है ॥ २ ॥ कपोल पै हाथ धरि बैठना, सो आर्त चिन्ह है ॥ ३ ॥ तीव्र चिन्ता तें वार-वार नेत्रन तैं अश्रुपातका चलना ॥ ४ ॥ ए च्यारि चिन्ह बाह्य प्रगट होय हैं। ऐसे चिन्ह संहनन सहित आर्तध्यानके जानना। सो ऐसा विचार तिर्यञ्च गतिका दाता जानना। ऐसा आर्तभाव सम्यक भये सहजही हेय होय है। सम्यग्दृष्टीके त्याग भाव ही रहै हैं। इति आर्त विचार ॥ आगे रौद्र विचार कहिए है। रौद्र विचार ताकों कहिए।

जहां पर-जीवनकौं आप मारि हर्ष मानैं, तथा और को आदेश देय जीव घात कराय, हर्ष मानैं। तथा औ कोई काहू जीवकूं मारता आप देखै तब हर्ष मानैं। तथा काहू कूं युद्ध करते देखि हर्ष मानैं। तथा अपनी चतुराई करि औरन कौं परस्पर युद्ध कराय कैं हर्ष मानैं। कोई अन्य जीवके, हाथ कान नांकादिक अङ्ग-उपांग छेदकैं आनन्द मानैं। तथा और कोई, काहूके अंग-उपांग छेदता होय ताकौं देख आप हर्ष मानैं। तथा और का घर-धन लुटता देख आप आनन्द मानैं। इत्यादिक जीवन कूं दुखी देखि आप हर्ष पावै, सो हिंसानन्द रौद्र विचार है ॥ १ ॥ जहां अपनी चतुराई करि असत्य बोलि हर्ष मानैं तथा औरनकौं झूठ बोलते देखि हर्ष मानैं, जाकौं झूठ प्रिय होय इत्यादिक झूठ मैं आनन्द मानैं। सो मृसानन्द रौद्रध्यान है आप चोरी करि आनन्द मानै औरको आदेश देय चोरी कराय आनन्द मानैं। कोईके चोरी भई सुनि आनन्द मानैं। चोर ताकौं अति प्यारे लागें। इत्यादिक चोरीके कार्य कारणनकौं देखि आनन्द मानैं, सो चौर्यानन्द रौद्र ध्यान विचार है ॥ ३ ॥ जहाँ बहुत परिग्रह इकट्ठे करि आनन्द मानैं, और॰ आप गेया, भेंसि, बैल घोड़ा हाथी गाड़ा गाड़ी रथ, सैन्यादिक परिग्रह तथा महल बाग कूप बावड़ी तलाब इनकौं आदि बहु आरंभ करि आनन्द मानैं। तथा और कौं ऐसे आरम्भ करावते देखि आनन्द मानैं, इत्यादिक बहुत परिग्रहमैं बहु आरम्भन मैं आनन्द का मानना। सो परिग्रहानन्द रौद्र ध्यान है ॥ ४ ॥ ऐसे च्यारि भेद रौद्र विचार हैं। सो नरक गतिके दाता जानना। ऐसे रौद्र ध्यान च्यारि भेद रूप है। आर्त विचार सम्यग्दृष्टी कैं सहज ही हेय हैं। ए आर्त विचार रौद्र विचार ए दोऊ ही अशुभ फलके दाता हेय हैं। ऐसी: जानि इन कुविचारन कूं तजै हेय करै है। इति कुविचार। आगे सुविचार कहिए है। तहां धर्मात्मा जीवनकैं निरन्तर सहजही ऐसा विचार रहै है। जीवाजीव पदार्थ केई प्रगट हैं, केई अप्रगट हैं। केई भासै हैं, केई ज्ञानकी मंदता करि नाहीं भासैं हैं। परन्तु जैसे जिनदेवने केवलज्ञान करि कह्या है, सो प्रमाण है। मेरी मन्द बुद्धि करि माकूं नाहीं भासै, तो मति भासौ। परन्तु केवलीके कहे मैं मेरे संशय नाहीं। जिनदेवका कह्या प्रमाण है। ऐसा दृढ़ प्रतीत रूप विचार करना, सो आज्ञा विचय धर्म ध्यान है ॥ १ ॥ और जहां निरन्तर ऐसा विचार रहै जो मेरा धर्म निर्दोष कैसे रहै ? मेरे आयु

पर्यंत धर्मका साधन कैसे रहै ? और मेरे तत्वज्ञान कैसे बढ़ै ? और धर्मध्यान मैं चित्तकी एकता कैसे होय ? मेरे क्रोध मान माया लोभ कषायनको घटवारो कैसे होय। समता भाव कैसे बढै। मैं शांतिरस अमृतका पान कब करूंगा ? मेरे संयमभाव कब प्रकट होंयगे ? इत्यादिक समता सहित धर्म ध्यान बढ़ावे रूप धर्मरचा रूप बारंबार विचारका होना सो अपाय विचय धर्मध्यान है ॥ २ ॥ पूर्व पुण्यके उदय करि प्रगटी जो अनेक सम्पदा, अनेक पंचेन्द्रिय जनित भोग सुख, तिनकूं पाय धर्मात्मा हर्ष नहीं करैं, मगन नहीं होय और ऐसा विचारै, जो मैं या संसारमैं भ्रमण करते अनेक बार नरकादिक, तिर्यंचादि एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय आदिके महा दुःख मैंने अनेक बार भोगे अनेक बार पशु होय मनुष्य होय घर-घर बिक्यौ। भूख सही। अनेक बार वनस्पति मैं उपजि कटिके अनंतानन्त भाग होय बिक्यौ। इत्यादिक अनेक आपदाका भोगनहारा मैं संसारी जीव, सो कोई किंचित पुण्यके उदय देव, इन्द्र, चक्री विद्याधर, मण्डलेश्वर इत्यादिक विभूति, पंचेन्द्रिय सुख मोकूं आय मिले हैं। सो यह सुख-सम्पदा कर्मकी करी है। सो सर्व चपल है। अपना अल्पकाल उदय करि जाते रहैंगे। ऐसा जानिकं सम्यक् धनधारी, भोगरक्त चित्त नहीं करै। मगन नहीं होय सो विपाक विचय धर्म ध्यान है। तथा अपने कोई पापके उदय तैं अनेक दुख, संकट, आपदा, वेदना, शरीर पै आई होय। तो ज्ञाता पुरुष असाता नहीं करै, दुख नहीं मानें। ऐसा विचारे, जो मैं पूर्व भवमैं देव राजादिकके अनेक पंचेन्द्रिय सुख भोगे, कामदेव समान शरीर सम्पदा भोगी है। अब कोई किंचित् पाप कर्मके उदय मोकों तन पीड़ा वेदना भई है। सो आप ही अपना रस देय, खिर जायगी। इत्यादिक शुभ विचार करि खेद नहीं करे। ऐसेही साताके उदय सुख नाहीं मानैं। आसाताके उदय दुखी नहीं होय। ऐसे विचारका नाम विपाक विचय धर्म ध्यान कहिये। ३। स्थान, जो तीनौं लोकके आकारका विचार। जो ए तीन लोक पुरुषाकार है। अनादि निधन है। षट् द्रव्यनतैं भरथा, च्यारि गति जीवनका स्थान तहां संसारी प्राणी शुभाशुभ भावनका फल भोगता तन धरता, तजता अनंतकालका भ्रमण करता सुख दुख भाव करै है। ताहीके फल फिर जन्म-मरण बढ़ावै है। रागद्वेष भाव तजि कर्म नाश मोक्ष होवे सो लोकके शीश सिद्ध

होय विराजैं हैं। वे सिद्ध भगवान् जगत दुखतैं रहित हैं। जन्म-मरण संसार भ्रमण ए सर्व दोष छांड़ि, सुखी होय हैं। ते सिद्ध दो प्रकार हैं। जो च्यारि घातिया कर्म रहित, केवलज्ञान सहित, अनन्त सुखी, समोशरण सहित, अनेक लक्षणोंसे मंडित, परम औदारिकके धारक सो तौ सकल सिद्ध हैं। और ज्ञानावरणादि अष्ट कर्म रहित, अमूर्तो, चेतन, शुद्धात्मा सो अकल सिद्ध हैं। औदारिक शरीरका नाम कल है। शरीर रहित अकल हैं। इन दोय गुण सहित जो सिद्ध हैं सो सर्व लोकके मस्तक, मुकुट समान विराजैं हैं। ऐसे लोकालोकका विशेष विचार चिंतवन-ध्यान करना, सो संस्थान विचय धर्मध्यान है ॥ ४ ॥ ऐसे कहे जे च्यारि प्रकार धर्मध्यान, सो धर्मात्मा जीवनके सहज ही होय हैं। यह विचारका फल स्वर्गादि उत्तम गति है, परंपराय मोक्ष होय है। तातैं ए विचार धर्मात्मा जीवन करि, उपादेय-करने योग्य हैं। इति धर्मध्यान ॥ आगे शुक्ल ध्यान—जहां आत्म स्वभावका अरु पुद्गल स्वभावका, भिन्न-भिन्न विचार करना, सो पृथक्त्ववितर्क विचार शुक्ल ध्यान है ॥ १ ॥ मनकौं एकाग्रभावकरि एक ही अर्थके विचार करतैं केवलज्ञान होय, सो एकत्ववितर्क विचार शुक्ल ध्यान है ॥ २ ॥ जहां मन-वचन-काय योगके अंश सूक्ष्म करने रूप आत्म परणति, सो सूक्ष्म क्रिया प्रतिपात नाम शुक्लध्यान है। यहां मन प्राणके अभाव होते विचारका भी कथन नाहीं। एक आत्मभाव ही शुद्ध रूप है ए तीसरा शुक्लध्यान है ॥ ३ ॥ जहाँ पुद्गलीक तन क्रियाका सम्बन्ध छोड़ि निर्बंध भाव होना, सो विपरीत क्रिया निवृत शुक्लध्यान है ॥ ४ ॥ इत्यादिक शुद्ध विचार सो उपादेय हैं। ऐसे विचार निकट संसारी जीवनकैं होय हैं। तथा कर्म रहित जीवनके होय हैं। संसारी, धर्म रहित, भोरे, परभवमें विपरीत दुख-फलके उपजावन हारे जीवन कूं ऐसा विचार महा दुर्लभ है। दीर्घ संसारी, भव भ्रमणहारे, अशुभ भावनाके धारी जीवनकौं तौ, शुभ विचार होना महा कठिन है। ऐसे शुभाशुभ विचारमें सम्यग्दृष्टी जीवन कौं हेय-उपादेय करना महा उत्तम है। सो शुद्धदृष्टिके होते, हेय-उपादेय भाव सहज ही प्रगट होय हैं। इति विचार विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय भावाधिकार समाप्त भया ॥

आगे आचार जो क्रिया, तामैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिए है। तहां समुच्चय शुभाशुभ क्रियानके विचार, सो

तो ज्ञेय हैं। अरु ताही ज्ञेयके दोय भेद हैं।सो एक तो शुभाचार है, सो तौ उपादेय है। एक अशुभाचार है, सो
ी सु० हेय है सो जहां दया सहित चलना, भूमि विषैं जीव देखि, बचाय चलना, सो शुभाचार है। बोलना सो सर्व कूं
१९८। सुखकारी बचन, दया सहित, हित मित, सत्य, पुण्यकारी वचन बोलना सो शुभ क्रिया है। और स्नान करना तरं०
सो गाले जलतैं करना, सरोवर नदी वापीन मैं प्रवेश करि नहीं सपरना आपके शरीरकी आताप तैं बहुत जल
जीवनका घात होय है तातें यह कार्य तजना भला है। और कदाचित् ऐसा ही निमित्त मिलै, तौ जलाशय
मैं ते जल गालि, दूर जाय स्नान करना, यह शुभाचार है। चौका देना बुहारी देना, तौ भूमि शुद्ध देखि,
जीव बचाव करना ए शुभाचार है। अग्नि प्रजालना सो ईंधन भूमि शोधि, शुद्ध देखि जलाना, यह शुभाचार
क्रिया है। और पीसना सो अन्न, चक्की शोधि, दिनको, उद्योत स्थान मैं, दृष्टी गोचर देख पीसना सो शुभा-
चार है। धोवना सो गाले जलसे वस्त्रादि धोवना। कचारना, सो दिन छित उद्योत स्थानमैं कचारना। रांधना
भोजन करना सो सब दिनमें करना, सो शभाचार है। इत्यादिक क्रिया करनी सो सर्व विचारि देखि दया
भावनतैं करनी, सो शुभ क्रिया हैं। और आभूषण—वस्त्र पहिरना सो शभाचार है। और अपनी वय प्रमाण
पहराव बंदेज राखै सो शुभाचार है। जाकरि लौकिक निंदा नहीं पावै। जैसे ऊंच कुलमैं वस्त्र-आभूषण प-
हनते आये ता प्रमाण पहरै। जो राज करन हारे होय तथा सेठ व्योपारी होय तथा निर्धन होय तथा धनवान
होय। सो सर्व अपने अपने पदस्थ माफिक राखै। इत्यादिक शुभाचारकी प्रवृत्ति सो शुभ क्रिया है। ऐसी
क्रिया-आचार विवेकीन करि उपादेय है। इति शुभाचार ॥ आगे अशुभाचार कहिये है। विना देखैं शीघ्र शीघ्र
चलना वेमर्याद विना विचारै राज विरुद्ध लोक विरुद्ध वचन बोलना सो कुक्रिया है। और अनेक आचा
र ऊपरि कहे तिनतैं विपरीत खोटे आचार परपीड़ाकारी दया रहित बोलना नदी सरोवर विषैं कूदना बड़े
द्रह अनगाले जलके समूह तिन मैं पैठना तैरना कौतुक सहित सपरना सो कुक्रिया हैं। तथा वस्त्रादि धोवना
और कुल—निंद्य इत्यादिक बे—मर्याद आभूषण-वस्त्रका पहरना सो कुआचार है। सो ए क्रिया तजवे योग्य ।१९९।
हैं ॥ ए घरन सम्बन्धी केतीक क्रिया हैं। सो स्त्रीनके आधीन हैं। तिन स्त्रीनके दोय भेद हैं। एक स्त्री तौ

आचार क्रिया रहित धर्म भावना तैं विमुख विषय—कषाय मैं रंजायमान क्रोध—मान माया-लोभ सहित क्रूर स्वभाव धरनहारी कुटिल चित्तकी धरनहारी अपने शील गुणकी रक्षाका नहीं है लोभ जाके अशुभ भावना हीनाचरणी इत्यादिक कुलक्षण सहित खोटी स्त्री होय हैं। एक स्त्री है सो शुभाचरणी धर्म परणतिकौं धरै पवित्र चित्तकी धरनहारी शीलगुण सहित होय। गुरुजन जो सास श्वसुर माता पिताकी आम्नाय प्रमाण विनय सहित प्रवर्तनहारी, सौभाग्य गुणकी धरन हारी यशवंती, भले गुण सहित स्त्री होय हैं। यह दोय जाति, शुभाशुभ स्त्रीको जाननी। सो इनकी कूंखि विषैं भी जो बालक अवतार लेय, सो शुभ स्त्रीके गर्भ तैं शुभ सन्तानकी उत्पत्ति होय। और अशुभ स्त्रीकी कूंख तैं अशुभ जीव अवतार लेय है। जैसे पृथ्वी विषैं दोय खांन निकसैं, सो एक खान मैं तौ उत्तम रतनादिक निकसैं हैं। कोऊ खांन मैं लोहा निपजै है। तैसेही स्त्रीनकी शुभ-अशुभ कूंखि जानना। सो तिन शुभ-अशुभ सन्तान होवेके कारण बताइए है—

गाथा—पुच्छवती जुगवासर, संवत संताण होय विण सीलो। विसणाणी अपलच्छो, धम्म रहीयो अण्णि विणचारो ॥ ३१ ॥

अर्थ—तहां पुष्पवतीस्त्री धर्म सहित नारी होय, ताकौं कोई कुवुद्धि पुरुष पहले दिन तथा दूसरे दिन, तातैं संगम करै। अरु ताकौं सन्तान उपजै तो वह शील रहित, परस्त्री वेश्यादिक विषै महा काम लम्पटी होय सप्तब्यसनी होय, अपलक्षणी होय धर्मरहित होय, अज्ञानी होय, अनाचारी होय। भावार्थ जो स्त्री स्त्रीधर्म—ऋतुवती होय ताके करबे योग्य क्रिया कहिए है। जो खोटी स्त्री हैं ते तौ स्त्रीधर्म भए सर्व पुरुष स्त्री बालकनकों छीवैं हैं। घरका सकल धंधा काम करै हैं। घरके घटपटादि सर्व छीवै हैं। तन शृंगार करैं हैं। ताम्बूल खाय, गरिष्ट पेट भर भोजन करैं गीत नृत्यादि रति क्रिया करैं। हाँसि कौतुकादिक क्रीड़ा करैं। अपना तन, अन्य जीवनके तनतैं स्पर्श करावैं। इत्यादिक क्रिया कही सो ए अनाचार रूप क्रिया हैं। सो इस रूप रहनेसे खोटी स्त्री जानना। हे भव्य यह ऋतुवतीस्त्री, अस्पर्श शूद्र समान है। छीवे योग्य नाहीं। याके खान पानका बासन अस्पर्श शूद्रके बासन समान है। तातैं जो स्त्री, स्त्रीधर्म क्रिया मैं शिथिल है। सो महा अशुभ, पाप क्रिया कर्मकं उपजाय प्रमाद योग तैं अपना पाया

मनुष्य भव बिगाड़ि परभवकूं दुख करैं है। तातें ऊपर कही जो स्त्रीधर्म भए पीछे अशुभ क्रिया सौ नहीं करना योग्य है खोटी स्त्री ऐसी क्रिया करैं हैं॥ अब शुभ स्त्रीनकी क्रिया कहिए है सो जे शीलवान स्त्री हैं ते ऋतुवंती भये पीछे अपने मलिन वस्त्र उतारकैं अप्रच्छन्न धोवै कोई देखे नाहीं। आप स्नान कर कैं उज्ज्वल और वस्त्र पहिरकैं एकांत स्थानमें तिण-घास-डाभका बिछौना बिछाय तिष्ठैं। अपना मुंह काहूको नहीं दिखावै। नहीं काहूका मुख आप देखैं। भोजन करैं सो रस रहित-नीरस भोजन करैं। सो हू उदर भर नहीं खांय दिनमें निद्रा नहीं करें और तनपै शृंगार नहीं करैं। तांबूलादिक नहीं खांय। गीत-नृत्य हाँसि-कौतुक आदि नांहीं करैं। सुगन्धादिक तन लेपन नाहीं करैं। अंजन सुरमादि नेत्रनमें अंजन नहीं करैं। हाथपांवके नख नाहीं सुधारैं। अपना अंग छिपाय तीन दिन अप्रच्छन्न रहैं। सो रात्री में ऋतुवंती भई होय दिन नाहीं गिनै। जो सूर्यके उद्योत ऋतुवन्ती भई होय तौ दिन गिनै। ऐसे तीन दिन एकांत में रहैं। भोजन पातलमें खाय तथा कड़ाहीमें खाय। जल पीवैकौं मिट्टीका बासन राखै तातैं जल पीवै। शुद्ध भए मिट्टीके बासण डार देय तथा फोरि डारै चौथे दिन शुद्ध होय स्नान करि अपने पतिका मुख देखै। तथा पंचमे दिन पतिका मुख देखे पीछे सास ननदका मुख देखे ऐसी उत्तम स्त्रीकैं आस रहै। पति संगमतैं संतान होय। सो पवित्र बुद्धिका धारक पिता समान रूप-गुण-लक्षण-कायका धारी होय। शुभाचारी दयावन्त धर्मवन्त-शीलवन्त इत्यादिक गुण सहित शुभपुत्र होय॥ अब कुस्त्रीका स्वरूप कहिये है। जो कुस्त्री तथा खोटी स्त्री है सो ऋतुवन्ती भए पीछे पहले दिन तथा दूसरे दिन विषैं ही कुशील सेवन करैं है। जे महा अभागी भोरे काम-लम्पटी दुर्बुद्धि हैं तिनके वीर्यतैं जो पुत्र-पुत्री होय सो कुशीलवान होय द्यूतादिक सप्त व्यसनी होय, मांस भक्षी होय सुरापायी होय वेश्यागमनी होय जीव घाती-निर्दयी होय, चोरकला मैं प्रवीन होय, परस्त्रीका इच्छुक होय, अभक्षका भोगी अभक्ष भक्षण हारा होय शुभ अशुभ विचार रहित महा मूर्ख अज्ञानी अंध समान होय। खाद्य-अखाद्यके विचार मैं पशुसमान अनाचारी होय महा क्रोधी होय मानी होय महा दगाबाज होय लोभी होय अविनई होय इत्यादिक अपलक्षणी होय। परभवके सुखका कारण जो धर्म तातें रहित अधर्मी होय। माता पितान कौं दुखदाई अविनयी होय। विशेष

ज्ञान-कला-चतुराई लौकिक कला तैं रहित मूढ़ होय। कुरूप होय दीन होय दरिद्री होय बाल अवस्था ही तैं बड़े कोपका धारी होय। महामानी होय क्रूर दृष्टि होय। अपना मान भंग भए मरन विचारै देशान्तर निकस जाना विचारै। महा गूढ़ चित्तका धारी अपने चित्तका अभिप्राय काहू कों नहीं जनावै। महालोभी तन देय धन नहीं देय। आप भूख सहै अपयशादि तैं नाहीं डरै जैसे—तैसे धन जोरै ऐसा लोभी होय। इत्यादिक अनेक औगुणी होय। ऐसे पुत्र तैं कुल-कलंक चढ़ै है। तातैं तिन उत्तम कुलके स्त्री-पुरुषन कूं ऋतु समयकी क्रियामैं प्रमाद तज शुभ रूप प्रवर्तना योग्य है। और जे उत्तम स्त्री हैं सो ऊपर कहि आए शुभस्त्रीनके शुभ लक्षण स्त्री धर्मकी मर्यादा, सो ताही प्रमाण प्रमाद रहित पालैं हैं। उत्तम धर्मात्मा स्त्री, मन्द है भोग अभिलाषा जाकै ऐसी शुभ स्त्री महा सती कैं, चौथे दिन स्नान करि पति संग तैं गर्भ रहै, तथा पंचम दिन तथा षष्टम दिन तथा सप्तम दिन भर्तार तैं संगम तैं गर्भ रहै है। ता गर्भ विषैं शुभात्मा पुण्य बन्ध करनेहारा अन्य गति तैं चय करि, ताके गर्भ विषैं अवतार लेय। सो चौथे दिनका गर्भ रह्या जीव मंद कषायी, धर्म रुचि सहित, संयम—सम्पदा सहित, सम्यग्दर्शन रतनका धारी होय है। और पंचम दिनका गर्भ रह्या होय, तहां महा उत्तम जीव आय अवतार लेय, सो पुण्याधिकारी अनेक राज भोगका भोक्ता होय, पीछे अणुव्रत तथा महाव्रतका धारी होय। षष्टम दिनका गर्भ रह्या, सो जीव दया रसका धारी, देशव्रत धारी शुभ गति जाय तथा महाव्रती होय। और सप्तम दिनका गर्भ रह्या जीव निकट संसारी भव्यात्मा आय कैं अवतार धरैं सो अनेक पंचेन्द्रिय भोग सुख भोगि तीर्थंकर, चक्री, कामदेवादिक, महान राज सम्पदा भोगे पीछे संयम पाय सिद्ध पद पावे ऐसा पुत्र होय। ऐसे शुभ स्त्रीनकी शुभ क्रिया कही। इस तरह शुभाशुभ क्रियाचार कह्या। सो विवेकीनकों समझि अपने भले योग्य होय, सो करना योग्य है। इति आचार क्रिया मैं ज्ञेय-हेय उपादेय कही॥ आगे कहैं हैं जो उत्तम श्रावकनके धर्म आभूषण कर्म आभूषण क्या सो कहिए है। सो आभूषण भेद दोय हैं। एक तो धर्म आभूषण, एक कर्म आभूषण। इन दोय आभूषण सहित होय तेही महा सुन्दर हैं। तेई बड़भागी हैं। ते ही सराहवे योग्य हैं। सो दोय भेद आभूषणका, विशेष कहिए है। जो

कर्म अपेक्षा हाथ आभूषण चूरा अगूंठो आदिक जिन तैं कर शोभै सो कर आभूषण हैं। धर्मात्मा जीवनकैं जिन हाथन तैं देव-गुरु धर्मकी पूजा करतैं, नमस्कार करतैं कर दोऊ कमलाकार होंय। सो ही हाथनका पावना सुफल है। जिन हाथन तैं देव पूजादि शुभ कार्य करना सो ही कर आभूषण है ॥ १ ॥ भुजबन्ध-बाजूबन्धादि जातैं भुज शोभै सो भुजा भूषण है। सो ये कर्म सम्बन्धी भुज आभूषण हैं। और धर्मात्मा जीव जिन भुजनतैं परजीवनकी रक्षा करैं तिनकूं देखि कोई दुष्ट जन दीन जीवनकूं नहीं पीड़ित करि सकै। साधुनकी रक्षा तिन भुजन तैं दुष्ट जीवनकौं पीड़ा-दण्ड देनेकी शक्ति दीन जीवनकी रक्षा कूं योधा, शरण आयके रक्षक, इत्यादिक पुरुषार्थ तिन करि जाकी भुजा शोभायमान है, सो ही भुज अभूषण हैं। यातैं धर्मात्मा पुरुषनके भुज शोभा पावैं ॥ २ ॥ कंठी माला हार इन आदिक आभूषण जिनतैं उर शोभा पावै है। सो उर आभूषण हैं। ए कर्म सम्बन्धी हैं। जा उर मैं सदीव अरहंतादि पंचपरमेष्ठीके गुणनका सुमरण वैराग्य चिंतवन बारह भावना, तथा सोलह कारण भावनाका चिन्तवन करना, सो धर्मात्मा जीवनकै उर आभूषण हैं ॥ ३ ॥ पांवनके आभूषण जातैं पद शोभा पावै, सो कर्म सम्बन्धी पद आभूषण हैं। धर्मात्मा जीवनके जिन पावन तैं सिद्ध क्षेत्रादि यात्रा करिए सो पद पाएका फल है, सो पद आभूषण है ॥ ४ ॥ आगे मुकुट, तुररा, शिरपेंचादि इनतैं शिरकी शोभा होय सो शिर आभूषण कर्म सम्बन्धी हैं। जा शिरतैं देव गुरु-धर्मकूं नमस्कार कीजिये, सो शिर सफल है। धर्मी—जीवन कैं ये शिर आभूषण हैं ॥ ५ ॥ और कर्मकी अपेक्षा मुखमण्डलके तिलकादि आभूषण हैं। तथा ताम्बूलादिक पानका खावनादिक ए सर्व मुखके आभूषण हैं। इनतैं मुख भला शोभै है धर्मात्मा जीवनकैं जा मुखतैं सर्व हितकारी मिष्ट हितामत वचनका बोलना सो मुख आभूषण है। तथा अन्य जीवनके रक्षक दयामई बचन जा मुखतैं बोलना तथा सम्यक प्रकार सत्य मन बचनकी एकता सहित जिस मुखतैं पंच परमेष्ठीकी स्तुति करना तथा जा मुखतैं इन्द्र चक्रवर्ती नारायण कामदेवादि महान पुरुषनकी कथा करिए सो मुखका श्रृंगार है। तथा मुनि गणधरनके बचन सुनिकैं पीछे अपने मुखतैं वही बचन औरनपैं प्रकाशित करना सो मुख सफल है। तथा यथायोग्य विनयकारी करना परके श्रवणनकूं हितकारी बचन जा

मुखतैं बोलना सोही धर्मकारी जीवनकैं मुख आभूषण है। ॥६॥ कर्म अपेक्षा नेत्र—अंजन जाकरि नेत्र भले लागैं सो अञ्जनादि नेत्रके आभूषण हैं। धर्मात्मा जीवनके जिन नेत्रनतैं जिनदेवका दर्शन करिकैं हर्ष मानिए सो ही नेत्र आभूषण हैं। तथा जिन नेत्रनतैं अनेक जिन शासनके शास्त्रनकों परमार्थ—दृष्टी करि देखिये, सो नेत्र सफल हैं। तथा पर वस्तु जे सुन्दर स्त्री, देवांगनादिकका रूप जे परम पदार्थ तिनकूं निर्विकार क्रूरता रहित होय देखना सो नेत्रनकौं अभूषण हैं। तिन करि नेत्र सफल हैं ॥ ७ ॥ कर्म अपेक्षा, कर्ण मंडन जो कुण्डलादिक जिनतैं कान भले शोभैं सो कर्ण आभूषण हैं। और धर्मात्मा जीवनकैं जिन काननतैं जिनगुण श्रवण करना। तथा तीर्थंकर, केवली गणधरादिक महामुनीनके गुण श्रवण करना। तथा जिन भाषित दया मई धर्मका जिन काननतैं सुनना सो कान कूं आभूषण हैं। कान पाए का फल है ॥ ८ ॥ और कर्म सम्बन्धी तन—मण्डन वस्त्रादि अनेक तन आभूषण हैं। इनतैं तन भला शोभै है। और धर्म सम्बन्धी जा तनतैं महाव्रत—अणुव्रत पालना पंच समिति तीनि गुप्ति ए गुण रतन करि तन शोभायमान करना सो तन पाए की शोभा है। तथा जा तनतैं कोई जीवनकूं नहीं पीड़ना अन्यको रक्षा करनी तनका भयानीक आकार बनाय भोरे जीवनकूं भय नहीं उपजावना जा शरीर तैं शुभाचार करि शान्ति मुद्रा सहित रहना अपनी मूर्ती देखि और कौं विश्वास उपजावना सो ही तन आभूषण है। ऐसा तन सफल है ॥ ९ ॥ कर्म अपेक्षा घर मंडन धन की वृद्धि सहित सपूत पुत्रका होना। आज्ञाकारिणी सुलक्षणी शीलवान विनयवान रूपादि गुण सहित भली स्त्रीका होना सो तथा माता पिता भाई पुत्रादि सकल कुटुम्ब विषैं परस्पर स्नेह, इत्यादिक निमित्तनका मिलना, सो यातैं घर भला दीखै। सो कर्म अपेक्षा ए घर आभूषण हैं। धर्म अपेक्षा जा घर विषैं शुभाचारी दयावान धर्मी जीव होंय तथा जा घर में मुनि श्रावकादि धर्मात्मा जीवनका सदीव प्रवेश होय। सो घरको शोभा कारक घर आभूषण हैं। यातैं घर सफल है ॥ १० ॥ कर्म अपेक्षा धन मंडन चित्तकी उदारतापने सहित अपनै अनेक जीव—कुटुम्बादिक तिन सब में बाँट खावना। पंचेन्द्रिय सुखमें लगावना रतन कनकादिकके अनेक मनोग्य मन्दिर बनाय तिनमैं अनेक चित्रामांदि शोभा कराय रहना। अनेक जातिके जननकूं यशके निमित्त

दान देना, और पुत्र पुत्री आदिककी शादीनमैं द्रव्य लगावना तथा पुत्रादिककी उत्पत्तिके उत्सवनमैं धन खर्चना तथा भाई बन्धु मित्रनमैं धन देना तथा बहिन—भांजीकूं धन देना इत्यादिक स्थानकन मैं उदारता सहित हित मित करि धन लगावना सो धनका आभूषण है। यातैं धन शोभायमान होय है। और धर्मकी अपेक्षा अपना धन उदारता सहित धर्मानुराग करि नवधा भक्ति सहित मुनि कूं दान देना तहां धन लगावना ॥ १ ॥ तथा सुवर्ण चांदीके अक्षरन सहित स्पष्ट भारी पत्रन विषैं शास्त्र लिखाना। तिनमें अनेक भारी मोलके मनोज्ञ वस्त्रनके पूठे बंधन कराय लगावना ॥ २ ॥ तथा जिन पूजा विषैं मोतीनके अक्षत सुवर्ण चांदीके फूल रतननके दीपकादि उत्तम अष्ट द्रव्य मिलाय प्रभूकी पूजामें लगावना। तथा भारी पूजा—विधान तीन लोकके जिन मन्दिरकी पूजा, तथा तेरह द्वीपकी पूजा तथा नन्दीश्वर विधान पूजा तथा अढ़ाई द्वीपका विधान तथा जम्बूद्वीप विधान कर्मदहन विधान पंचपरमेष्ठी विधान पंचकल्याणकादि अनेक विधान कराय जिन पूजा मैं धन लगावना ॥ ३ ॥ महादार्घ उत्तुंग विस्तार सहित, जिन मन्दिर कराय तिन विषैं अनेक चांदी-सुवर्णका चित्राम तथा शुभ रंगका चित्राम करावना, तामैं धन लगावना। तथा अनेक परदा चांदनी, गलीचा शतरंजादि अनेक बिछावना तथा नौबत, निशान, घंटा, छत्र सिंहासन, चमर, ध्वजा इत्यादि करावना तथा पूजाके उपकरण थाल, रकेबी झारी प्यालादि अनेक चांदी-सुवर्णके करावना इत्यादिक शोभा सहित जिन मंदिर बनाय तामैं धन लगावना ॥ ४ ॥ जिन विम्बनकी विधी सहित, जिन बिम्ब करावना। सो ताका संक्षेप विधान कहिए हैं। सो जिन विम्ब करनेकौं प्रथम तौ पाषाण कूं खांनि देखै, सो उत्तम रतन समान पाषाणकी खानि देखै। पीछे पहले दिन तौ खानि-शोधन-क्रिया करै। पीछे तहाँ अनेक वादित्र सहित शिल्प शास्त्रका वेत्ता शिल्पी सो अपना तन शुद्ध करि, उज्ज्वल वस्त्रधारि, उस खानिकी शास्त्रोक्त पूजा करै। पीछे पाषाण काटै, सो शुद्ध पाषाण होय तौ लावै। रेखा जो जनेऊ तामैं नहीं होय, बीधा नाहीं होय, गल्या नाहीं होय, ऐसे अनेक दोष सौं रहित शुद्ध पाषाण लावै। पीछे एकांत स्थान पै प्रतिबिम्बका निर्मापण करै। तहां शिल्पी अरु करावनहारा धर्मी श्रावक दोऊ शील सहित रहैं। जेते काल काम करै तेते काल प्रमाद रहित शिल्पी रहै। प्रमाद

भये विनय करि उठ खड़ा रहै, काम नहीं करै। ऐसे जेते दिन प्रतिबिम्बनका निर्मापण करै, तेते ब्रह्मचर्य सहित रहै। दीन-दुखीन कूं सदीव दान भया करै। शिल्पी एक बार भोजन करै, सो भी अल्प करै। तन मैं विकार नहीं होय। इत्यादिक अनेक शुद्धता सहित जिन बिम्ब कराय धन लगावै। सो धन सफल है ॥ ५ ॥ पीछे जिन बिम्बनकी प्रतिष्ठा करावै। तहां देश-देशके धर्मी श्रावक विनय तैं पत्रनतैं न्योते देयकैं बुलावै, पीछे सर्वकी आये पै सुश्रूषा करै। बांच्छित दान दुखित-भुखितकूं अन्न वस्त्र देय और याचिकनिकूं प्रभावनाके हेतु बांच्छित पट आभूषण घोटिक दान देय इत्यादिक उत्सवन मैं धन खर्चै। सो धन सफल है ॥ ६ ॥ सिद्ध क्षेत्रादिककी यात्राके निमित्त अनेक साधर्मी आप जैसे धर्मात्मा जीवनकूं संघ लेय यात्रा करै सो मन्द गमन करै। जामें मुनि-श्रावक व्रतीनका निर्वाह होय, ऐसे तौ चलै। राह मैं, वन मैं, नगर मैं, तहां जे-जे जिन मंदिर आवैं, तहां-तहां सर्व जगह भगवानकी पूजा—उत्सव करते चलैं। दीन-दुखतन कौं दान देता, संघकी समाधाना करता, निराकुलभाव सहित यात्रा करि, धन खर्चै। सो धन सफल है ॥ ७ ॥ ऐसे मुनिदान, शास्त्र लिखवाना, जिन पूजा, जिन बिम्ब करावना, जिनमंदिर करावना, जिन प्रतिष्ठा करावना, सिद्धक्षेत्र यात्रा, इन सप्त क्षेत्रनमैं धन लागै। सो धनकौ आभूषण है ॥११॥ कर्म अपेक्षा पुत्र मंडन जाकौं कहिए, गुरुजन जो माता-पितादिक बड़े होंय तिन कूं सुखदायक होय, और यथायोग्य सर्वके विनय-साधनमैं प्रवीण होय। माता--पितादिकनिकैं वह आप ही सपूत कहाय, अपने गुणनतैं माता-पितानिकौं साता उपजावै। लोकनमै अपनी सज्जनता, विनय-गुण, उदारतादि गुण प्रगट करि, सर्व सपूत तैं कहावे सो ए पुत्र कौं आभूषण हैं। धर्म अपेक्षा चल्या आया जो अनादिकालका श्रावकनका धर्म, ताकौं उत्तम जानि सेवते आए तीर्थंकरादि उत्तम श्रावक, ताको परंपराय लिये देव-धर्म-गुरुकी विनय सहित, च्यारि प्रकार संघ की सेवा कूं लिये, शुभाचार रूप, देव-धर्म-गुरुकी श्रद्धा सहित, धर्मकौं दृढ़ करि, अशुद्ध क्रिया आचार कूं टालिकै, अपने कुल—मर्याद जो श्रावक धर्मकी परिपाटी, वड़े चले आए ता प्रमाण माता-पिताके आप चालै, कुल-धर्मतैं छूटै नाहीं। आप माता-पितानकी धर्म मर्यादा नहीं तजै, सो पुत्रकौं आभूषण है ॥ १२ ॥ लौकिक

अपेक्षा स्त्री मंडनदोऊ पक्षकी मर्यादा कूं पवित्र करती। गुरुजन जो सास-स्वसुर-भर्तारादि तथा माता-पिता तिन दोऊ पक्ष में विनय सहित चलन होय, सो स्त्रीको आभूषण हैं। या करि लोकन तैं प्रशंसा पावै, भली दीखै है। धर्म आभूषण ये हैं जो शुभाचार सहित होय, शील--शृंगार जाके उर में होय, पति आज्ञामें तत्पर होय, देव-धर्म-गुरुकी परिपाटीकी जानन हारी, दृढ़ श्रद्धान सहित होय सो स्त्री, धर्मात्मा, लज्जाके भार करि नम्रीभूत दृष्टी धरै, संसार भोगन तैं उदास, भर्तार आज्ञा भंग नहीं करवेकूं भोगन कूं भोगवै है। ऐसे गुण सहित जा स्त्री के आभूषण होय, सो स्त्री महा सुन्दर जानना। यह कहे जे गुण, सो स्त्रीनके आभूषण हैं ॥ १३ ॥ ऐसे कहे जे कर्ममण्डन आभूषण और धर्म मण्डन आभूषण, सो विवेकी ऊंचकुली धर्मात्मा पुरुषन कौं, दोऊ जातिके आभूषण पहरना योग्य है। कर्ममण्डन तैं तन भला दीखै है, इहां शोभा पावै और धर्म मंडन तैं या भव, परभव दोय ही भव, शोभा होय है। तातैं ऐसा जानि, ऐसे दोऊ भव यश-सुख निमित्त, दोऊ आभूषण उर विषैं धारणा योग्य है। ऐसे दोऊ भव सुधारनेका निमित्त योग्य काय, कोई दीर्घ-पुण्य तैं मिले है। तातैं भव-भव मैं सुख यश जिनकौं चाहिये, सो भव्यात्मा धर्मका शरण लेहु। ऐसे शुभ खान-पान तथा अशुभ खान पान तथा स्त्री धर्मके भेद तथा धर्म कर्म आभूषण इत्यादिक कथन ऊपर कहि आए। सो विवेको जीवन कूं इन विषैं ज्ञेय हेय उपादेय करना योग्य है। अशुभ आचारका त्याग व शुभका ग्रहण कार्यकारी है ॥

इति श्री सुदृष्टि तरंगिणी नाम ग्रंथ मध्ये, शुभाशुभ आचार, स्त्रीधर्म वर्णन, धर्मकर्म आभूषण कथन वर्णनो नाम द्वादश पर्व सम्पूर्णम् ॥ १२ ॥

आगे खान पान विषैं ज्ञेय हेय उपदेय कहिए है। तहां खान पान क्रिया है, सो द्रव्य क्षेत्र काल भाव करि, विचार देखि करना योग्य है। सोई द्रव्य विषैं तौ शुभाशुभ जीवन कूं विचारना। क्षेत्रमैं शुभाशुभ क्षेत्र-का विचारना। और काल मैं शुभाशुभ कालका विचारना। भावनमैं शुभाशुभ भाव विचारना। ऐसे विधी विचारिए, जो यह खान पान किस जीव नें किया है? सो करनेहारा आचरणी धर्मी है, अथवा मूर्ख है, पापाचारी मलीन है? सो तौ द्रव्य विचार है। यह खान पान किस क्षेत्रका किया है? सो क्षेत्र योग्य है वा अयोग्य है? ऐसे

क्षेत्र बिचारिए। ए खान पान किया, सो कौन कालमें किया है ? सो काल योग्य है, वा अयोग्य है ? ए खान पान किया, सो कैसे भावन तैं किया ? सो वाके भाव शुभ है, अथवा अशुभ हैं ? ऐसे भावनका विचार करै। ऐसे बिचार कैं, विवेकी खानपानमैं ज्ञेयहेयउपादेय करै। सो कैसे करै सो कहिए है। तहां क्षेत्र ऐसा होय जो हाड़ नहीं दीखै, मांस पिण्ड नहीं दीखै, जहां रुधिर नहीं दीखै, जहां मदिरा नहीं दीखै, तजी वस्तु अपने भोजनमैं नहीं आवे, अपने भोजनमैं जीव पतन नहीं होय, जहां पंचेन्द्रियका मल नहीं दीखै, ए सात कारण रहित शुद्ध क्षेत्र होय। जहां अंधकार नहीं होय, बहु मनुष्यपशूनका गमन नहीं होय, एकांत होय, सो भोजनपान शुद्ध है। और भली क्रियावान भोजन करने हारा होय। भोजन करने हारेका शरीर शुद्ध होय, करनहारा दयावान होय, करनेहारा पाप तैं डरता होय, खांसी श्वास रोग नहीं होय, करनेहारेके तनमें जुकाम नहीं होय, कफ नहीं होय, बमन नहीं होय, अतीसार नहीं होय, तनमें फोड़ा-दुखना नहीं होय, राजरोग कुष्टादि नहीं होय, खुजलो नहीं होय इत्यादिक रोग-दुखन करि रहित, शुद्ध भोजन करन हारा होय, बिकलता रहित होय, सो द्रव्य शुद्ध है। तथा भोजन मैं आवैं ऐसे अन्न, जल, घृत दुग्धादि तथा तंदुल, गेहूं, चना मूंगादि अन्न बींधे गये, जीव सहित नहीं होंय। तथा घृत-जल, चर्मादिकका नहीं होय। इत्यादि वे भी द्रव्य शुद्ध जानना। काल शुद्ध जो रात्रिका किया आरम्भ नहीं होय, बड़ी बारजो भोजनकी मर्यादाका काल उलंघन नही भया होय, तथा रात्रि बसाया बासी नहीं होय। इत्यादिक काल शुद्ध होय, सो काल शुद्ध जानना। भाव शुद्धता, जो करने हारा भोजनका, सो बिकल परिणामी नहीं होय। भोजनका स्वाद-लम्पटी नहीं होय, भोजनकी तीव्र छुधा सहित परिणामी नहीं होय। योग्य-अयोग्य भोजन मैं समझने हारा होय। इत्यादिक धर्मवान विवेक सहित जाके भाव होंय, सो भाव शुद्ध जानना। क्रोधी नहीं होय, जो भोजन करते लड़ता जाय, कोप बचन कहता जाय। इत्यादिक शुद्ध होय, सो भाव शुद्ध है। ऐसे द्रव्य—क्षेत्र-काल-भाव करि खान-पान शुद्ध होय, सो शुद्ध है। धर्मात्मा जीवन करि उपादेय है। इति शुद्ध खान-पान। आगे अशुद्ध खान-पान बताइए है। जहां भोजन करनेहारा क्रोधी, भोजन करता ही परतैं शुद्ध करता जाय वे मर्याद

बोलता जाय सो खान पान अशुद्ध है विकल परिणामी होय, भोजनका भूखा, लोलुपी होय सो भोजन करता कछू कछूखावता जाय सो भोजन अशुद्ध है । इत्यादिक भाव अशुद्ध हैं ॥ १ ॥ रात्रिका पीसा-पकाया—आरम्भा होय बहुत कालका मर्यादा रहित होय गया होय। तथा रात्रिका किया बासी होय। इत्यादिक काल-अशुद्ध है ॥ २ ॥ अंधकार क्षेत्रमें किया, जहाँ छोटे-बड़े जीव पतनादिक की ठीक ना होय, जहाँ बहुत जीवनको गमन होय, चौपट स्थान होय, जहाँ बहुत जीवनकी उत्पत्ति होय, मच्छर-चींटी-मक्खी बहुत होंय इत्यादि क्षेत्र-अशुद्ध है ॥ ३ ॥ करनेहारेका तन, रोग पीड़ित होय । खांसी, श्वांस, खुजरी, जुखामादि रोग सहित होय । तनमैं फोड़ा दुखना बहुत होय, निद्रा जाके तनमैं बहुत होय, इत्यादिक दोष सहित करनेवारा होय, सो द्रव्य अशुद्ध है । तथा शोधा अन्न न होय, जल अनगाला होय, घृत चर्मका होय, आटा रात्रिका पीसा होय, इत्यादिक द्रव्य अशुद्ध है ॥ ४ ॥ सो ऐसे द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव करि अशुद्ध होय सो खान—पान अशुद्ध है धर्मात्मा जीवन करि हेय है । और राह चलते खातेपीते जाना । चौड़े बैठि खावना । पांति विरो-धीके संग बैठि खावना । कौतुक सहित खावना । बाजारमैं बिकता, सोधा तैयार भोजन मोल लेय खावना । इत्यादिक खान-पान अशुद्ध हेय है । ऐसे जानि विवेकी हैं तिन कूं शुभ भोजन ग्रहण और अशुभ भोजन तजन योग्य है । इति खान-पानमैं ज्ञेय हेय उपादेय कही । आगे वचनमें हेय, ज्ञेय उपादेय कहिए है । तहां शुभाशुभ समुच्चय वचनका जानना सो ज्ञेय है । ता ज्ञेयके ही दोय भेद हैं । एक उपादेय है और एक तजवे योग्य है । सो जहां जो अन्य जीव कूं सुखदाई होय दया सहित होय क्रोध मान कुटिलता लोभ इन च्यारि कषाय रहित होय धर्म-बुद्धि सहित होय । दान पूजा शील संयम तप व्रतादि महान पुरुषनकी चर्या सहित होय । तथा धर्म उत्सव वचन शांति भाव सहित हित वचन सौम्यता सहित प्रिय वचन इत्यादिक जिन आज्ञा सहित सत्य हित-मित वचन है सो उपादेय है । इति उपादेय वचन । आगे हेय वचन कहिए है । तहाँ क्रोध वचन मान—माया—लोभ वचन सप्तव्यसन रूप वचन पाप पोषण झूठ वचन सो या झूठिके च्यारि भेद हैं सोही कहिए है । एक तो छती वस्तुकौं अछती कहना सो असत्य है ॥ १ ॥ अछतीकौं छतीकहना सो

भी झूठ है ॥ २ ॥ वस्तु थी तौ कछू और ही अरु वाकूं कहना कछू औरही सो भी झूठ है ॥ ३ ॥ जिन आज्ञा रहित परमार्थ तैं शून्य ऐसा वचन सो झूठ है ॥ ४ ॥ योग्य अयोग्य वचन भेद हैं सो कहिए हैं।

गाथा—वयणो हेयादेयो, सत्तोपादेय वयण जिण थुणि सो। हेयो वयण अनत्तो, णिंदो कुगइदेय सुत रहियो ॥ ३७ ॥

अर्थ—वचन हेय उपादेय रूप है। सो सत्य तौ उपादेय है। सो वचन जिन आज्ञा प्रमाण है, ग्रहवे योग्य है। अतत्व वचन है सो हेय है निंद्य है कुगतिका दाता है और जिन आज्ञाके विरुद्ध है। भावार्थ—सत्य जिन वचन सो तौ उपादेय है। और अतत्व असत्य बचन हेय है। ता असत्यके भेद ग्यारह हैं। सो ही कहिए है। प्रथम नाम-अभ्याख्यान कलह बचन, पैशून्य वचन, असम्बद्ध प्रलाप वचन रति बचन अरति वचन उपाधि वचन निकृष्ट वचन अपरख्याति वचन मौखर्य वचन और मिथ्या वचन। अब इनका अर्थ—तहाँ ऐसा वचन बोलना कि देखो याने बहुत बुराई करी याने बहुत बुरा वचन कह्या याका नाम अभ्याख्यान वचन है। तहां ऐसा कहना जातैं परस्पर युद्ध होय सो कलह वचन है। ऐसा वचन कहना सो जाकरि पराया छिपा दोष प्रगट होय सो पैशून्य वचन है। जहाँ धम अर्थ काम मोक्ष इनके सम्बन्ध तैं रहित बोलना सो असम्बद्ध प्रलाप बचन है। इन्द्रियनकौं सुखदाई जाकूं सुनि रति उपजै ऐसा बचन बोलना सो रति वचन है। जाकूं सुनि इन्द्रिय मन कूं अरति उपजै अनिष्ट लागै सो अरति वचन है। जहाँ अति परिग्रहकी आसक्तता रूप लोभकी वृद्धि लिए वचनका बोलना सो उपाधि वचन है। जहाँ व्यवहार विषैं ठगवे कूं जुगत रूप वचनका बोलना सो निकृष्ट बचन है। जहां देव गुरु धर्म व्रतादिक पूज्य स्थान तिनकौं अविनय रूप वचन कहना सो अपरख्याति वचन है। जहां चोरनकी चतुराई कलाकी सुश्रूषा रूप वचन सो मौखर्य वचन है जहां धर्म घातक दया रहित अव्रत पोषित बचन सो मिथ्या बचन है। इन कूं आदि जे अशुभ बचन सो सम्यग्दृष्टीकैं सहजही हेय हैं। जो बिना प्रयोजन परस्पर बात करना सो विकथा वचन है। ता विकथाके भेद पच्चीस हैं। सो ही कहिए हैं। प्रथम नामस्त्री कथा धन कथा भोजन कथा राज कथा चोर कथा बैर कथा पर पाखंड कथा देश कथा भाषा कथा गुणबंध कथा देवी कथा निष्ठुर कथा पर पैशून्य कथा कंदप कथा देश

कालानुचित कथा भरड कथा मूर्ख कथा आत्मप्रशंसा कथा पर परवाद कथा पर जुगुप्ता कथा परपीड़ा कथा कलह कथा परिग्रह कथा कृष्यारंभ कथा संगीत कथा ए पचीस हैं। इनका अर्थ—जहां च्यारि [पुरुष परस्पर बतलावना ताका नाम कथा है। सो शुभकारी बचन बतलावना, सो तो शुभ कथा है। वृथा बिना प्रयोजन बतलाय, पाप बंधकरि, काल गमावना, सो विकथा है। ताके यह पचीस भेद हैं। सो जहां परस्पर स्त्रीनके स्वरूपकी, चालकी, यौवनकी, इन आदिक स्त्रीनकी परस्पर कथा करि, काल गमाय, पापका बंधकरि परभव बिगाड़ै, सो स्त्री विकथा है। जहां परस्पर धनकी वार्ता करना, जो धनवान् धन्य हैं। धन बिना जीवन कहां है? धनवानकी सब सेवा करैं हैं। जगतमैं धन ही बड़ा है। ये धन कैसे पैदा करिए? पारस तैं धन होय, रसायन तैं धन होय, चिन्तामणि मिले भला धन होय है। गिरा पावै, गड्या पावै, कोऊ देवादि मिलै तौ धन जांचै। फलाने राजाकैं धन बहुत है। केई कहैं उस सेठ कैं बड़ा धन है। इत्यादिक परस्पर धनकी कथा करना, सो धन विकथा है। जहां परस्पर भोजनकी बात करना। जो कोई कहै यह भोजन भला है वह भोजन भला है, वह व्यंजन भला है, वह भोजन भला बनावै है, इत्यादिक भोजन की कथा है। जहां राजानमैं काहू की बड़ाई, काहूकी निंदा। राजानके न्याय-अन्यायकी बात। तथा फौजकी दीर्घताकी तथा लघुताकी कथा। ऐसे कोई राजाकी निंदा, कोईकी स्तुति करि, परस्पर काल खोय बात करना, सो राज विकथा है। जहां अनेक चोरनकी चतुराई की कथा। कोई चोरके पुरुषार्थकी कथा। चोरन कूं ऐसो दंड देना। वे चोर जोरावर हैं। इत्यादिक परस्पर चोरनकी बात करना, सो चोर कथा है। और जहां कोऊ कहै। मेरे-वाकै बैर भाव है। केई कहैं वाके-वाकैं द्वेष है। याके केई बैरी हैं। कोऊ कहै, हम वाके क्या सारे हैं? इत्यादिक परस्पर कथा करनी, सो बैर कथा है और जहां पराया छिपा दोष प्रगट करना। वह कहै तूं महा पाखंड़ी है। कोई कहै तेरे दोषमैं सब जानूं हूं वह कहै, तोसे दुराचारी संसारमैं नाहीं। इत्यादिक परस्पर बात करना सो पर-पाखंड विकथा है। जहां देशनकी निंदा-स्तुति करनी। कोई कहै यह देश भला है, वह देश भला नाहीं। उस देशमें शीत-गर्मी बहुत वा देशमैं अन्न नाहीं होय वा देश में जल थोरा इत्यादिक देशनकी बात करना सो देश विकथा है। जहां कु-

कविनके किये अनेक छंद कवित्त गीत दोहा पहेली साखी कहानी किस्सा इन आदि अनेक वचन वंधान परमार्थ रहित जिनकी कथा जो वाने रस-कवित्त बनाये हैं। वाने वा राजाके भले-यशरूप कवित्त किए हैं। वह बहुत किस्सा-कहानी जानै है। इत्यादिक कथा करनी सो भाषा कथा है। तथा पशूनके वचन जो वह सूवा भला बोले है वाकी मैना अच्छी बोले है बाकी तूती अच्छी बोलै है। तीतुर लाल कबूतर काक कोयल गर्दभ स्वानादि अनेक पशूनकी भाषा-शुभाशुभ की कथा करनो सो भाषा कथा है। और पराए गुण मेटने रूप उपाय राज पंचसभामें ऐसा कहै जो वामें कहा गुण है? वैसे तुम कूं बहुत बतावैंगे। याही तैं बहुत गुणी हमने देखे हैं। केई कहैं हमनैं बातैं भी घने गुणी देखे हैं। केई कहैं यह कहा है वामें बड़े गुण हैं। इत्यादिक परस्पर कथा करना सो गुण वंध-कथा है। जहां कुदेवनका अतिशय-करामातकी कथा जो केई कहैं शीतला जागती ज्योति हैं। केई कहैं वह भैंरो प्रत्यक्ष कोई कहै वह देवी प्रत्यक्ष हैं। बेटा, धन देय है। इत्यादिक परस्पर कथा करनी सो देवी कथा है। जहां कोई कहै तूं महादुष्ट है। यह महापापी है। याकी मूर्खता जगत जानैं है। ऐसे परस्पर कठोर वचन बतलावना सो निष्ठुर वचन कथा है। जहां पराया बुरा करबेकी बात पराई निंदा की बात परकौं पीड़ाकारी वचन इत्यादि परस्पर कथा करनी सो परपैशून्य विकथा है। जहां नाना प्रकारकी शृंगार कथा जाके सुनैं चित्त विकार रूप होय ऐसी कथा परस्पर करना सो शृंगार कथा है। और जहां इस देशमें यह रीति भली है यह रीति भली नाहीं। वा देशमें फलानी वस्तु अच्छी नाहीं वह वस्तु अच्छी है। इत्यादिक परस्पर बतलावना सो देश कालानुचित विकथा है। और जहां कौतूहल हांसी रूप परस्पर हर्ष हर्ष गाली बोलना विपरीत बोलना सो भण्ड कथा है। और जहां अविवेकी वार्ता करना सो मूर्ख विकथा है। और जहां परस्पर अपने गुणन की कथा। जहां कोई कहै, अहो! हममें ऐसे गुण हैं। केई कहै हैं परोपकार हमनैं केई करे हैं केई कहैं, हम बड़े मनुष्य हैं, हमसे कोई नाहीं। इत्यादिक अपने-अपने गुणकी सर्व कथा करैं सो आत्म प्रशंसा नाम कथा है। परस्पर औरनकी निंदाकारी कथा करनी सो पर-परवाद कथा है। और जहां अन्यका शरीर तथा वस्त्र मलिन देख तथा रोग-मलीन देख, ग्लानि रूप कथा करै सो दुर्गंध विकथा हैं। और परको

दुखी करनेकी परके घर लूटनेकी इन आदि औरन कूं आकुलताकारी कथा करना सो पर-पीड़ा कथा है। और जहां परस्पर युद्ध करनेकी लड़नेकी कथा करनी सो कलह विकथा है। परिग्रह बधावै (बढ़ावै) की वार्ता परस्पर करनी सो परिग्रह कथा है। और परस्पर खेती निपजनेकी कथा है। जो अबके मेघ भला हैं धरती हमनैं बहुत जोती है। वानें छोड़ दई धरती थोरी उठाई इत्यादि खेतीकी कथा सो कृष्यारंभ विकथा है। जहां नाना प्रकार राग नृत्य गीतादिक की कथा सो संगीत विकथा है। ऐसे ए पच्चीस विकथा रूप वचन हैं। सो सर्व पापकारी तजवे योग्य जानना। ऐसे शुभाशुभ वचनमैं हेय ज्ञेय उपादेय कह्या। इति वचनमैं ज्ञेय हेय उपादेय कथन। आगे द्रव्य क्षेत्र काल भावका स्वरूप लिखिये है—

गाथा—दव्वो खेतो कालय, भावो चत्तादि भेय जिण उत्तं। गेयोपादेय हेओ, सम्मोदिट्ठी सोवि णादव्वो ॥ ३८ ॥

अर्थ—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, ए चारि भेद जिन देवने कहे हैं। तिनमैं हेय-ज्ञेय उपादेय करै, सो आत्मा सम्यग्दृष्टी जानना। भावार्थ—द्रव्य क्षेत्र काल भाव करि वस्तुनका धारन होय है। तहां प्रथम ही द्रव्य विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिए है। समुच्चय जीवका जानना, सो ज्ञेय है। ताही ज्ञेयके दोय भेद हैं। एक हेय एक उपादेय। सो तामैं जाकूं परद्रव्य जानिये सो हेय है। जैसे पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल। और आप आत्म तत्व भेद ज्ञानका विचारनहारा अनुभवी हेय-ज्ञेय-उपादेयका करनहारा आत्म द्रव्य है। ता एक आत्माके सिवाय अनन्ते जीव द्रव्य और ऐसे ही षट् ही द्रव्य हैं। सो परज्ञेय जानि हेय हैं. तजवे योग्य हैं। ए सर्व अपने आत्म स्वभाव तैं भिन्न हैं तातैं तजवे योग्य हैं। इनके गुण-पर्याय भी जड़ हैं, अज्ञान हैं मूर्ती हैं अमूर्ती हैं, तातैं हेय हैं। इहां प्रश्न-जो मूर्ती तौ तजवे योग्य हैं यह हमने भी जानी। परन्तु अमूर्ती चेतना गुण सहित इनकूं हेय क्यौं कह्या ? ताका समाधान-भो भव्य जो तेरे मन मैं पुद्गल द्रव्य पर है ऐसी आई है तौ ये भी आजाय है। तू चित्त देय सुनि। देखि पुद्गल तौ मूर्तीक है। सो पर है ही, सो तैं जानो ही है। धर्म-अधर्मादि च्यारि द्रव्य अमूर्तीक तौ हैं परन्तु चेतना रहित जड़ हैं। तातैं तजवे योग्य हैं तातैं हेय हैं। और आप स्वभाव तैं अन्य जीवनके प्रदेश सत्व गुण पर्याय भिन्न हैं। उनके किये रागद्वेष भावका फल आपकौं नहीं

लागै। अपने किये रागद्वेषका फल उन परजीवन कूं नहीं लागै। अन्य कूं सुख भए आपकूं सुख नाहीं। परकूं दुख भए आपकूं दुख नाहीं। अन्य जीवकूं मोक्ष भए आपकूं मोक्ष नाहीं तातें संसार विषैं अनंते जीव हैं सो सर्व भिन्न-भिन्न हैं। अपने अपने परणामके भोगता हैं। और संसारी भोरे जीव भी ऐसी कहैं हैं कि जो करेगा सो पावैगा ऐसी सर्व जगत मैं बात प्रगट है। तातें अनेक नयन करि भी विचार देखि कि आप तैं भिन्न और अनंते जीव हैं। सो भी पर द्रव्य जानि तजवे योग्य है। तातें हेय किये है। ऐसा समाधान जानना। और भी सम्यग्दृष्टी समता रस प्रगट भए बैराग्य बाढ़ावे कूं जगतका स्वरूप विचारैं। सो द्रव्यनमें अल्प बहुत तो ऐसे विचारैं। जो जीव द्रव्यन मैं तीनगतिके जीव तौ बहुत हैं। और मनुष्य गतिके जीवद्रव्य बहुत ही थोरे हैं। तहां देव च्यारि प्रकार हैं। सो जुदे जुदे असंख्याते हैं। और नारकी सात हैं। तहां भी एक एक मैं जीव असंख्यात हैं। और तिर्यंच गति विषैं जीव तथा पृथ्वी काय अपकाय तेजकाय वायुकाय इन सर्व मैं असंख्याते असंख्याते जीव हैं। तिन सर्व तैं थोरी जीव राशि अग्निकाय है। सो भी असंख्यात लोकनके जेते प्रदेश होंय तेते जानना। सोई बताइए है। एक सूच्यांगुल क्षेत्र प्रमाण एक प्रदेश सूचीमें केते प्रदेश हैं सो सुनौं असंख्यात सागरके जेते समय होंय तेते प्रदेश जानना। एक अंगुलके क्षेत्र के ऐते प्रदेश होंय तौ हाथ भरके केते प्रदेश होंय ? तौ एक कोसके केते होंय ? तौ सर्व लोकके केते होंय ? सो ऐसे ऐसे असंख्यात लोक के जेते प्रदेश हैं तेते तेजकायक जीव जानना। ए सर्वतें थोरे हैं। और इन तेजतैं असंख्यात अधिक पृथ्वी कायक हैं। पृथ्वी तैं असंख्यात बढ़ते अपकायक हैं। अपते असंख्यात अधिक वायु कायके हैं बायुकायतैं असंख्यात अधिक प्रत्येक वनस्पतीके जीव हैं। प्रत्येकतैं तथा सर्व जीवराशितैं अनंतगुणे साधारण वनस्पती जीव हैं। इनही पंच स्थावरनमें सूक्ष्म और वादर दोय भेद हैं। तहां आश्रय विना उपजैं आयु अन्त बिना मरैं नाहीं काहूतें रुक न सकै सो सूक्ष्म हैं। परकौं रोकैं परतैं आप रुकैं शस्त्रादिकतैं घात पावैं सहायतैं उपजैं सो वादर हैं। सो बादर चार स्थावरन मैं असंख्यात हैं। वादर तैं असंख्यात गुणें सूक्ष्म हैं साधारण मैं बादर अनन्त हैं। तातें अनन्तगुणे सूक्ष्म साधारण हैं। वेन्द्रियतैं तेन्द्रिय चौन्द्रिय

पंचेन्द्रिय व तिर्यञ्चराशि असंख्यात असंख्यात है और कर्मभूमिके मनुष्य सर्व संख्यात हैं। ऐसे जीव द्रव्य अपेक्षा कथन कह्या। इति द्रव्यक्षेत्र काल भावका स्वरूप। आगे षट्काय जीवनके शरीरनके आकार कहिए हैं। तहां पृथ्वीकायकका आकार मसूरके समान है और अपकायकका आकार जलविन्दु समान है। तेज कायकका आकार बहुत सूजीके समूह समान है और पवनकायकका शरीर आकार ध्वजा समान है। वनस्पती के तनका आकार अनेक प्रकार है वेन्द्रिय, तेन्द्रिय चौइन्द्रिय पंचेन्द्रिय जीवनके शरीर के आकार अनेक प्रकार हैं। इति षट्काय शरीराकार। आगे षट्कायका आयुकर्म कहिए है। तहां पृथ्वीके भेद दोय। एक नरम और एक कठोर। पीली मिट्टी खड़ी मिट्टी गेरू मिट्टी आदि ए नरम पृथ्वी काय हैं। याकी उत्कृष्ट आयु बारह हजार वर्ष प्रमाण है। कठोर पृथ्वी जो हीरा रतनादि पाषाण ताकी उत्कृष्ट आयु बाइस हजार वर्ष है। जल कायकी उत्कृष्ट आयु सात हजार वर्ष है। अग्निकायकी उत्कृष्ट आयु तीन दिन है। पवन कायकी उत्कृष्ट आयु तीन हजार वर्ष है। वनस्पती कायकी उत्कृट आयु दश हजार वर्षकी है। जलकी जोंक गिंडोला लट, नारुवादि वेन्द्रिय जीवनकी उत्कृष्ट आयु बारह वर्ष हैं। चींटी खट्मल कुंथुवादि तेन्द्रियकी उनचास दिनकी है। चौइन्द्रिय मक्खी, भौंरा टीड़ी आदिकी उत्कृष्ट आयु षट्मासकी है। और असैनी पंचेन्द्रियकी उत्कृष्ट आयु कोड़ पूर्व वर्ष प्रमाण है। सैनी पंचेन्द्रिय विषैं देव नारकीनकी उत्कृष्ट आयु तेतीस सागरकी है। उत्कृष्ट भोग भूमियां मनुष्य तीर्यञ्चनको तीन पल्यकी है। कर्म भूमियां मनुष्य-पशुकी उत्कृष्ट आयु कोड़ि पूर्व वर्ष प्रमाण है। देव नारकीकी जघन्य आयु दश हजार वर्षकी है। मनुष्य तिर्यंचनकी जघन्य आयु अन्तमुंहूर्त है। इति षट्काय आयु आगे षट्काय जीव उत्कृष्ट कर्मस्थिती केती करैं, सौ कहिए है। तहां पंच स्थावर एकेन्द्रियनकी उत्कृष्ट कर्मस्थिती एक सागर जानना और सर्व अष्ट कर्मनमैं उत्कृष्ट स्थिति दर्शन मोहनीयकी जानना। वेन्द्रिय उत्कृष्ट कर्मस्थिति बांधैं तौ पचास सागर जानना। और तेन्द्रिय उत्कृष्ट कर्मस्थिति बांधे तो पचास सागर जानना और चौइन्द्रिय उत्कृष्ट कर्मस्थिति बांधे तौ सौ सागर जानना। व असैनी उत्कृष्ट स्थिति हजार सागरकी बांधै है। संज्ञी पंचेन्द्रिय उत्कृष्ट सत्तरि कोड़ाकोड़ि सागर

कर्म स्थिति बांधै है। इति कर्मस्थिति। आगे षट्कायनकी पंचेन्द्रिय हैं तिनके आकार कहिए है। तहां स्पर्शन इन्द्रिय शरीर है, सो शरीरन के आकार अनेक प्रकार तैसेही स्पर्शन इन्द्रियन के भी आकार जानना। और रसना इन्द्रियका आकार गो के खुर के समान है और नासिका इन्द्रियका आकार तिल-फूल के आकार है। और नेत्र इन्द्रियका आकार मसूरकी दाल समान है। श्रोत इन्द्रियका आकार जवकी नालीके आकार है। इति आकार। आगे पंचेन्द्रियन का विषय केता-केता है। सो बताइए है। तहां संज्ञी पंचेन्द्रिय स्पर्शन, रसना, घ्राण इन तीन इन्द्रियन तैं उत्कृष्ट नव नव योजन की जानैं। और नेत्र इन्द्रिय तैं उत्कृष्ट सैंतालीस हजार दोय सौ तिरेसठित योजन जानैं हैं। और श्रोत इन्द्रिय उत्कृष्ट बाहर सौ आठ योजनकी जानै। इति सैनी। आगे असैनी विषैं—तहाँ असैनी पंचेन्द्रिय स्पर्शन इन्द्रिय तैं उत्कृष्ट चौसठिसौ धनुषकी जानैं। और रसना इन्द्रियतैं उत्कृष्ट पांचसौबारह धनुषकी जानै। नासिका इन्द्रिय तैं च्यारिसौ धनुषकी जानैं। और चक्षु इन्द्रिय तैं गुणसठि (उनसठि) योजनकी जानैं। और श्रोत्र इन्द्रिय तैं आठ हजार धनुषकी जानैं। इति असैनी। आगे चौइन्द्रिय का विषय—तहां चौइन्द्रिय स्पर्शन इन्द्रिय तैं बत्तीस सौ धनुषकी जानैं। और रसना इन्द्रियतैं दोयसौ छप्पन धनुष कीजानैं। घ्राण इन्द्रिय तैं दोय सौ धनुषकी जनैं॥ और चक्षु इन्द्रियतैं गुणतीससौचौवन योजन जानैं। इति चौइन्द्रिय। आगे तेन्द्रियका विषय—तहां तेन्द्रिय, स्पर्शन इन्द्रिय तैं सोलह सो धनुषकी जानैं। रसना इन्द्रियतैं एक सौ अठाईस धनुषकी जानैं है। घ्राण इन्द्रिय तैं सौ धनुषकी जानै है। इति तेन्द्रिय। आगे वेन्द्रियका विषय—और वेन्द्रिय स्पर्श तैं आठसौ धनुषकी जानैं और रसना इन्द्रिय तैं चौंसठि धनुष की जानै। इति वेन्द्रिय। आगे एकेन्द्रियका विषय—तहां एकेन्द्रिय स्पर्शन इन्द्रियन तैं च्यारि सौ धनुष की जानैं। इति एकेन्द्रिय विषय। ऐसे पंचेन्द्रियका विषय कह्या आगे एकेन्द्रियके भेदन में निगोदि। सो निगोदि पंचस्थान हैं, ताको भोरे जीव पंच गोलक कहैं हैं। सो कहिए हैं। उक्तं च सिद्धान्त गोमट्टसार—

गाथा——जंबूदीवं भरहो, कोसल सागेदतग्घराइं वा। खंधडरअवासा, पुलवि सरीराणि दिट्ठंता॥ ३६॥

अर्थ—जैसे जम्बूदीप, तामैं भरतक्षेत्र, भरतमैं कौशल देश, देशमैं साकेत नगर नगरमें घर। तैसेही निगोदिके पंच गोलक हैं। स्कंध, अंडर, आवास, पुलवी और शरीर ए पंच गोलक हैं। इनका सामान्य स्वरूप कहिए है। तहां एक सूजीकी अणी (नोंक) पै साधारण वनस्पतिके जेते स्कंध आवें। तेते स्कंध कूं ले केवलज्ञानी सर्वज्ञ कूं पूछिए। भो प्रभो इन विषै जीव संख्या कहौ। तब ज्ञानी कहैं। इस सूजीके ऊपर निगोदि हैं। तामैं असंख्यात लोक प्रमाण स्कंध हैं। तिस एक-एक स्कंधमें असंख्यात-असंख्यात लोक प्रमाण अंडर हैं। एक-एक अंडर मैं असंख्यात-असंख्यात लोक प्रमाण आवास हैं। एक-एक आवासमें असंख्यात-असंख्यात लोक प्रमाण पुलवी हैं। एक एक पुलवीमैं असंख्यात असंख्यात लोक प्रमाण शरीर हैं। एक एक शरीरमैं अक्षय अनंत जीव हैं। एक एक शरीरमैं तैं जीव घड़ी घड़ी में अनन्त अनन्त निकसि मोक्ष जाया करैं सो ऐसे अनंतकाल तांई मोक्ष जाया करैं, तौ भी एक शरीर खाली नहीं होय। तातें वाका नाम अक्षय अनंत है। ऐसे सूजीके अणी प्रमाण साधारण निगोदके जीवनकी दीर्घता है। ऐसी निगोदि तैं तीन लोक भरया है। कोई भोरे जीव ऐसा मानै हैं। जो सातवें नरकके नीचे पांच गोलक हैं, तहां निगोदियानका स्थान है। सो हे भव्य हो, ऐसा नाहीं है। ए भ्रम है। पंच गोलक तौ एक स्कंधमैं ऊपरि कही, तैसे हैं। या सर्व लोकमैं निगोदि राशि जलके घटवत् भरी है। ता निगोदके दोय भेद हैं। एक तो नित्य निगोद एक इतर निगोद है। सो अनंत कालसे जाने विहार राशि स्पर्शी ही नाहीं सो तौ नित्य निगोदि कहिए। और जे जीव निगोदि तैं निकसि विहार राशि च्यारि गति पाय फेरि कर्म तैं निगोदिमैं गया सो इतर निगोदिया कहिए। ऐसे निगोदि आदि पंचेन्द्रिय पर्यंत जे जीव हैं सो इन षट्कायका उत्कृष्ट आयु तौ ऊपरि कहि ही आए हैं। और जघन्यमैं विशेष एता जो बहुत ही अल्प आयु कर्म षट्कायका होय तो एक श्वासके अठारहवैं भाग होय। एक अन्तर्मुहूतमैं उत्कृष्ट भव धरै तौ छयासठि हजार तीन सौ छत्तीस वार जन्मे और एते ही बार मरै है। सो ही विधिवार कहिए है। तहां पृथ्वीकाय अपकाय तेजकाय वायुकाय और बनस्पतीके भेद प्रत्येक साधारण करि दोय हैं। सो एक शरीरका एक जीव स्वामी होय सो तौ प्रत्येक वनस्पती है। जहां ।२१६।

एक शरीरके अनंत जीव स्वामी होंय सो साधारण बनस्पती है। तहां प्रत्येक वनस्पतीका एक शरीर नाश भये एक जीवका ही घात होय। साधारण बनस्पतीका एक शरीर घात होतैं अनंत जीवनका घात होय है। तातैं धर्मात्मा जीवनकूं साधारण बनस्पतीका विशेष यतन करना योग्य है। ऐसे साधारण प्रत्येक बनस्पती तिनमैं तैं प्रत्येक बनस्पती लीजे। ऐसे पंच स्थावरके सूक्ष्म वादर करि दश भेद हैं। एक प्रत्येक वनस्पती ए सर्व ग्यारह भेद एकेंद्रियके भए। तिनमैं जुदे-जुदे छै हजार बारह छैहजार बारह जन्म मरण करैं तौ ग्यारह स्थानके मिलि छ्यासठिहजार एक सौ बत्तीस जन्ममरण भए सो तौ एकेंद्रियके जानना। वेन्द्रियके अस्सी तेन्द्रियके साठ चौन्द्रियके चालीस पंचेन्द्रियके चौबीस तिनमैं आठ भव सैनी आठ भव असैनीके और आठ भव मनुष्यके ए चौबीस पंचेन्द्रियके। सर्व मिलि छ्यासठि हजार तीन सौ छत्तीस जन्म-मरण षट्काय जीवनके होय हैं। सो सर्व जीवनमैं मनुष्य राशि अल्प है। चेत्र विषैं देव नारकीनका क्षेत्र असंख्यात योजनका है। और तिर्यञ्चका एकेंद्रिय अपेक्षा सर्व लोक त्रस अपेक्षा भी असंख्यात योजन चेत्र है। सर्व तैं अल्प चेत्र मनुष्यका है सो पैंतालीस लाख योजन प्रमाण है। काल अपेक्षा भी देवनारकीनका आयुकाल तौ असंख्यात वर्ष प्रमाण है। मनुष्यका काल थोरा है। या मैं जीवन अल्प है। भाव अपेक्षा देव नारकी पशु उपजनेके भाव बहुत हैं। अल्पसे पुण्यरूप भाव होंते देव होय है और अल्पसे पापन तैं नरकके दुखका भोगता होय है और आर्तभाव तैं तिर्यञ्च होय है। सो आरति जीवकूं सदीव ही लगी रहै है। परन्तु मनुष्य होवेके भाव महा कठिन हैं। कोई दीर्घ पुण्य भाव नाहीं पाप भाव कोई नाहीं। मध्य भाव सरल भाव मंद कषाय भाव व्रत सम्यक् रहित भोरे सरल कोमल भाव ऐसे महा कठिन भाव तैं मनुष्य होय। सो ऐसे मनुष्य होनेके भाव थोरे काल करि मनुष्य थोरा काल जीवे। चेत्र करि मनुष्यका क्षेत्र थोरा है। भाव भी मनुष्य होनेके थोरे है। सो द्रव्य चेत्र काल भाव करि मनुष्य थोरे हैं। याका निमित्त मिलना कठिन है। तातैं ऐसी मनुष्य पर्याय द्रव्यम ज्ञेय हेय उपादेय करना योग्य है। इति द्रव्यमैं ज्ञेय हेय उपादेय कथन। आगे चेत्रमैं ज्ञेय हेय उपादेय कहिये है। तहां शुभाशुभ चेत्रका जानना सो तो ज्ञेय है। ताके दोय भेद हैं एक हेय एक उपादेय। सो

जिस क्षेत्रमें चोर रहते होंय हिंसाधारी मद्यपायी रहते होंय, सो क्षेत्र तजवे योग्य है। जहां महाक्रोधी, मानी, मायावी, महालोभी रहते हों सो क्षेत्र हेय है। जहां धर्म रहित, दुराचारी, पापी जीव रहते होंय, सो क्षेत्र तजवे योग्य है। जहां कामीजीवनकी क्रीड़ाका अप्रच्छन्न स्थान होय, सो क्षेत्र तजवे योग्य है। जहां भांड़, बालक, निर्लज्ज पुरुष कौतुक करते होय, इत्यादिक क्षेत्र जहां आपकौं पाप लागै, निंदा आवे, सो क्षेत्र तजवे योग्य है। जहां धर्मात्मा तिष्ठते होंय, धर्मचर्चा होती होय, तथा जिन मंदिर होय, तथा वन, मसान, गुफा विषैं बीतरागी मुनि विराजते होंय, सो क्षेत्र, तीर्थ समान उपादेय है। इत्यादिक शुभ क्षेत्र, व्यवहार नय करि उपादेय हैं। और निश्चय नयतैं परद्रव्य क्षेत्र हेय हैं। अरु स्वद्रव्य क्षेत्र जो असंख्यात प्रदेशरूप, आत्माकार, ज्ञानमई, अमूर्तीक, पुरुषाकार आत्मा करि रोक्या जो क्षेत्र, सो उपादेय है। इति क्षेत्र विषैं ज्ञेय हेय उपादेय। आगे कालमें ज्ञेय हेय उपादेय बताईए है। तहां शुभाशुभ समुच्चय कालका जानना सो ज्ञेय है। ताके दोय भेद हैं। एक हेय है, एक उपादेय है। तहां तीर्थंकरके गर्भ, जन्म, तप ज्ञान और निर्वाण ए पञ्च कल्याणकनके काल हैं, सो उपादेय हैं। ए शुभ काल हैं। तथा अष्टान्हिका आदि बड़ी प्रभावना उत्सवके काल तथा भादवांजी आदि संयमके दिन, संवर सहित रहनेके दिन तथा आठैं चौदश पर्वके दिन तथा जिस दिन उपवास, एक अन्तर, बेला, तेलादि तपदिन सो यह सब काल उपादेय हैं। तथा जिस समय अपनी परणति भली होय, शुभ धर्मध्यानरूप शास्त्र अभ्यासरूप, तपरूप, संयम शीलरूप, समता भावरूप, इत्यादिक अपने भावनकी विशुद्धता रूप काल सो शुभकाल उपादेय है। तजवे योग्य जो खोटे पर्व होंय। हिंसाका काल होय। तथा जिस समय क्रोध मान माया लोभकी तीव्रता होय। तीन वेदन मैं कोई वेदका तीव्र उदय होय, सो समयकाल हेय है। तथा कलहकारी पर्व होय, जिस पर्वका निमित्त पाय भले जीव विपरीत बुद्धि होंय। ऐसा मानैं, जो आज वर्ष दिनके त्योहार का समय है। या मैं ऐसी खोटी चेष्टा हो। ऐसे पर्वकाल हेय हैं। और जिस कालमें कोई दया रहित कठोर परणामी ऐसा विचारै जो आजका बड़ा दिन है। यामैं जीव घात किये बड़ा पुण्य होय है। आगे बड़े करते आये है। ऐसी जानि तिस दिन पापरूप

परणमैं, सो काल हेय है। कोई ज्ञान धन रहित भोरे जीव ऐसा मानैं, जो आज का दिन—मास भला है। इन दिनोंमें नदी सरोवर वापीनमैं जाय, अनगाले जल मैं स्नान करे तौ बड़ा पुण्य है। तथा वृक्षन मैं लाय जल डारिए तौ पुण्य होय, ऐसी क्रिया करना जिन दिनोंमें कही होय, सो पर्व हेय है। केई मिथ्या रस भीजे जीव ऐसा समझै हैं। जो या पर्व मैं वनस्पती काटिए, छेदिए, पत्ता-फूल तोड़ि देवादिक कौं चढ़ाईए, तौ बड़ा पुण्य होय। ऐसे पर्व काल भी हेय हैं केतेक भोरे जीव ऐसा मानै हैं, जो आजदिन ए पर्व ऐसा है, इन दिनों मैं अपने घरका भोजन नहीं खाईए। घरके वस्त्र नहीं पहरिए। परतैं भीख मांग कैं खाइए व वस्त्र पहरिये, तौ भला फल होय, ऐसे पर्व—काल भी हेय है। तथा जगत, अज्ञान दुख करि भरया ऐसा मानैं हैं। जो कोई व्यंतरादि देवता तथा कोऊ कुगुरादिकके चमत्कारका दिन जानि कहैं, जो फलानैं की तीर्थयात्राका काल है। इत्यादिक काल सम्यग्दृष्टी तें सहज ही हेय है। तथा पंचमा—छठा काल की प्रवृत्ति हेय है। इत्यादिक पापकारी धर्म-रहित दिन-पर्व-काल सो हेय हैं, तजवे योग्य हैं। इति काल विषैं ज्ञेय—हेय—उपादेय कथन। आगे भाव विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिए है। तहां शुभाशुभ भावनाका समुच्चय जानना, सो ज्ञेय भाव है। ताही ज्ञेय के दोय भेद हैं। एक शुभभाव, एक अशुभभाव। तहां क्रोधभाव, मानभाव, मायाभाव, लोभभाव, सप्तव्यसनभाव, द्यूतभाव, अभक्ष्य-भक्षण भाव, सुरापान भाव, वेश्यागमन भाव, पापार्घ जो जीव हिंसाभाव, परद्रव्यादि हरण जो—चौर भाव, परस्त्रीनसंग—कुशीलभाव, धर्मघातिकभाव इत्यादिक कुभाव तजवे योग्य-हेय हैं। व्रत भंजनभाव तपशील संयम दयामार्ग के भंजनभाव पाखंडभाव इत्यादिक दुराचारभाव हैं सो विवेकी जीवन करि तजवे योग्य हैं। इति हेयभाव। आगे उपादेय भाव—तहां ऊपरि कहे जो कुभाव तिनितैं विपरीत भाव जो तप भाव दान भाव शील भाव पूजा भाव परवस्तु त्याग रूप जे-संतोषभाव वीतराग भाव शुद्धोपयोग भाव तीर्थ वंदनारूप भाव करुणा भाव सर्वहित भाव सर्व जीवतें मैत्री भाव गुणीतैं प्रमोद भाव माध्यस्थ भाव सो जहां दुखित दीन जीव दरिद्री रोगी इत्यदिक कूं देखि कोमल भाव राखना सो करुणा भाव है। और सर्व जीवन कूं आप समान जानि सर्व की रक्षा करनी सो

मैत्री भाव है। और आपतैं गुणाधिक कूं देखि हर्ष उपजना, सो प्रमोद भाव है और पापी पाखंडी, दुराचारी धर्मद्रोही, अन्याई, कृतघ्नी, स्वामीद्रोही, मित्रद्रोही, विश्वासघाती. इत्यादि दुष्टजीव कूं देखि, रागभाव-द्वेषभाव नहीं करना, सो माध्यस्थभाव है। विनयभाव, प्रभावना देखि प्रभावना करवे रूप भाव, इत्यादिक शुभ भाव हैं। सो विवेकी पुरुष कौं उपादेय हैं। तथा सम्यग्दृष्टीन कैं सहजही उपादेय हैं। इति भाव। ऐसे द्रव्य—क्षेत्र—काल—भाव करि, भेदन मैं हेय-उपादेय कथन। आगे तप विषैं ज्ञेय-हेय उपादेय कहिए है।

गथा—पणग्गि आदि कुनवो' द्वादश तवोय कम्म पगवज्जो। चउ गई हेउ कुतवो सुह तवजीव रक्खु पादेओ ॥ ४० ॥

अर्थ—तहां पंचाग्नि आदि संसार कारण, कुतप हैं। और अनशनादि वाहर तप सुतप हैं, सो कर्म पर्वातन कौं वज्रसमान हैं। तातैं जे हिंसा सहित, जीव घातक तप हैं,। सो तजवे योग्य हैं। और दया सहित, जीव रक्षाकारी सुतप उपादेय हैं। भावार्थ—तप भेदनमैं समुच्चय तपका जानना सो तो ज्ञेय है। ताही के दोय भेद हैं। एक हेय तप और एक उपादेय तप। तहां पंचाग्नि व तनके नख केश वढ़ावना तप सो कुतप हेय हैं। ऊर्ध्व मुख तप भूमि गड़ना तप, तरु झूलना तप भोजन सहित उपवास मानना तप दिन कौं अन्न तजि रात्रि भोजन सहित तप, ए कुतप हैं, सो हेय हैं कुदेवनके साधनकूं कुतप सो हेय हैं तथा पुत्र धन स्त्री इन आदिक अभिलाषा सहित तथा शत्रुके नाशके अर्थ तप ये कुतप हैं, हेय हैं जीवतही अग्नि मैं प्रवेश करि जल मरण तप अन्न तजि बनस्पति फल फूल पत्ता दूध दही मठा इत्यादिकका भक्षण तप इन्द्रियका छेदन करि तामैं लोहकी कड़ी-सांकल नाथना तप नीचा शिर उर्ध्व पांव करि तपना शीश पै अग्निधारण तप शीशपे तथा हस्तपै शिलाधारण तप, ए सर्व कुपत हैं शस्त्रधारा तैं मरना जलधारा में प्रवेश करि मरण तप तथा चाम टाट घास रोमके वस्त्र रख राक्षस तप करना इत्यादिक ऐ सर्व कुतप हेय हैं। इति कुतप आगे सुतप कहैं हैं। जिसतपके करते स्वर्ग-मोक्ष होय, सो शुभ तप है। ताके वारह भेद हैं। तिनमैं षट् वाह्य व षट् अभ्यंतरके हैं। सो तहां अनशन, अवमोदर्य व्रत-परिसंख्यान रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन कायक्लेश ए षट् वाह्य तप हैं। और प्रायश्चित्त विनय, वैयाव्रत स्वाध्याय व्युतसर्ग और ध्यान ए षट् अन्तरंग तप हैं। अब सबनिका सामान्य अर्थ कहिए है—तहां वर्ष षट्

मास चौमास पक्ष पंच दिन दो दिन एक दिन इत्यादिक उपवास करना, सो अनशन तप है। १। भूखतैं आधा चौथाई तथा कछू घाटि खाना सो अवमोदर्य तप है। २। रोजके रोज षट् रसनमैं तैं कोई एक-दो च्यारि रसनका त्याग सो रस परित्याग तप है। ३। जो रोजिके रोजि खान-पानका प्रमाण तथा और भोग उपभोग योग्य जे सर्व वस्तु तिनका प्रमाण करना सो व्रत परिसंख्यान नाम तप है। ४। और जहां तिष्ठैं, तहां स्थानकी शुद्धता करितिष्ठैं शून्य-एकान्त ऐसे स्थानको देखें जहां संयमकी विराधना न हो सो विविक्त शय्यासन तप है। ५। अन्तरंगकी विशुद्धता बढ़वेकूं वाह्य] तनकौं जैसे कष्ट होंय सो ही निमित्त मिलावना सो कायक्लेश तप है। ६। ए षट् तपकौं वाह्य कहैं। इनकूं करैं तब औरकौं जान्या परै जो याके तप है तातैं वाह्य तप कहिए। और जहां अपने तप—चारित्रकूं तथा षट् आवश्यककौं तथा मूलगुणन इत्यादिक अपने मुनिधर्म कौं कोई अतीचार लागा जानैं। तो गुरुके पास अपने अंतरंगका दोष जाकूं और कोई नहीं जानैं ऐसा छिपा दोष ताकौं धर्मका लोभी गुरुनपै प्रकाशै। पीछे गुरुका दिया दण्ड लेय लगे दोषकौं शुद्ध करै सो प्रायश्चित्त तप है। ता प्रायश्चित्तके दश भेद हैं सो कहिए हैं। आलोचना, प्रतिक्रमण तदुभय विवेक व्युतसर्ग तप छेद मूल परिहार और श्रद्धान ए दश भेद हैं। अब इनका विशेष-जहां प्रमाद वशाय अपने मुनिपदकूं दोष लाग्या जानि उर विषैं आलोचना करै। तथा गुरुके पास जाय प्रकाशै पापतैं भय खाय जैसे आप कौं दोष लागा होय तैसे ही मन-वचन-कायकी सरलता सहित जिस-जिस विधितैं दोष लागा होय तिस विधी तैं आप गुरुनके पास कहै। तब सहज ही लाग्या पाप नाश होय। इनके परणामनकी सरलता तैं निर्दोष संयम होय, दोष नाशै सो आलोचना प्रायश्चित्त है। केतैक पाप ऐसे हैं जिनका दण्ड आलोचना ही है। आलोचना ही तैं दोष मिटै। जैसे लौकिक मैं काहूका विगाड़ किसी तैं भया होय। तो, जाय धनी तैं कहै जो मेरे प्रमाद तैं भूलिकर आपका विगाड़ मोतैं भया। अब आपकी इच्छा सो करौ। मोतें भूलि भई आप बड़े हौ नीकी जानौं सो करौ। ऐसे कहे तौ धनी याकूं सरल जानि यातैं द्वेष नाहीं करै दिलासा दे सीख देय। दोष दूर होय तैसे आलोचना शुद्धभाव तैं किए दोष जाय है॥ १ ॥ जहां अपने चरित्र कौं दोष

लाग्या जानि आप मनमें बहुत पछतावै। अपनी निन्दा-गरहा करै तो दोषदूर होय जैसे लौकिकमैं काहूतैं पंचनकी चूक भई होय तौ वह जाय पंचन पै सरल-दीनः होय कहै। जो मोपै चूक भई आगेसे मैं ऐसी कबहूं नहींकरूं। अब पंचनकी आज्ञा होय सो मोकौं कबूल है। ऐसे कहते पंच याकूं सरल जानि दोष माफ करैं। तैसेही केतेक दोष ऐसे हैं जो निन्दा गर्हा किये जांय हैं। सो प्रतिक्रमण आलोचना है ॥ २ ॥ जहां अपने चरित्रकों कोई दोष लागा जानैं तौ गुरुके पास भी कहै अरु बारंबार आलोचना अपनी निन्दा गरहा भी करै तो दोष मिटै। केतेक दोष ऐसे हैं जो लौकीकमैं काहूका विगाड़ रूप काहूतैं भूल होय गयी होय तो धनी पै जाय कहै जो मैं आपके पास आया हौं आपका कार्य मोतैं कछू बिगड्या है मैं महामूर्ख मेरे कर्तव्यका निमित्त देखो। आप बड़े हो। जैसे भला होय सो करो। मैं तौ भूल्या हौं। ऐसे कहै तौ धनी याकूं निश्शल्य जानि—भला मनुष्य जानि दोष क्षमा करै। तैसे ही केतेक दोष ऐसे हैं। सो तिनके मैटवेकौं गुरु पास भी अपना दोष प्रकाशै अरु अपनी निन्दा-गर्हा भी करै। याका नाम तदुभय प्रायश्चित्त है ॥ ३ ॥ जहां आपकूं कोई वस्तुकरि दोषलाग्या होय पीछे ताकौ यादि भए वाके दूर करवेको जा वस्तु तैं दोष लागा था ता वस्तु ही का त्याग करै, तब दोष दूर होय। जैसे लौकिक मैं कोई भूलिकैं किसी मार्ग राजग्रहमैं जाय पड्या तहां पकड़्या। कही चोर है, मारो। तब यानैं कही भूलिकैं इस राह आया हौं, चोर नाहीं। अब कबहूं इस राह नहीं आऊंगा, मोहि तजौ। तब राजाके सेवकौं ने याकों शुद्ध जानि तज्या। अरु कही अवकैं बच्या है। अब इस राह आये माऱ्या जायगा। या कहि कैं छोड़्या दोष मिट्या। तथा कोई रोगी कूं घृत मनैं था सो वानै लोभकरि घृत खाया तब रोग दीर्घ भया। तब वैद्यनै कही तैं घृत खाया तातैं रोग बढ़्या। तेरे घृततें राग बहुत तातैं रोग मिटता नाहीं। तब रोगीने आपकूं घृततैं महादुख होना जानिकैं जीवन लौ घृतका ही त्याग किया तब वैद्यनैं याकूं सुखी किया। तैसे केतेक दोष ऐसेहैं जो जिस वस्तुके मोहतैं दोष लागै, ता वस्तुका ही त्याग करै तब दोष मिटैहै, यह विवेक प्रायश्चित्त है ॥ ४ ॥ जहां मुनीश्वर अपनैं चारित्रकौं दोष लागा जानैं, तौ ताके दूर करवे कौं कायोत्सर्ग करैं। तहां पंच परमेष्ठीकी स्तुति व अपनी आलोचनादि करैं, तब

दोष मिटै। जैसे लौकिक मैं कोऊ आप मैं दोष लागा होय, ताहि जानि पंचनमैं खड़ा होय हाथ जोड़ि कहै मोतैं भूल भई, तुम बड़े हो ऐसे पंचनकी स्तुति अपनी दीनता करी। तब पंचयाकौं सरल जानि चूक माफ करि शुद्ध करैं। तैसे केतेक दोष ऐसे हैं, जो कायोत्सर्ग करैं, तथा आलोचना किए नाश जांय सो व्युत्सर्ग प्रायश्चित्त कहिए ॥ ५ ॥ जहां यती अनेक उपवास धुरंधर तप करनहारा वीतरागी तप करतें कोई प्रमाद वशाय अपने तप कौं दोष लागा जानि याद करि आचार्यन पै कहै। तब गुरु याकौं कोई यथा योग्य प्रायश्चित्त देंय, सो यह मुनीश्वरका दिया प्रायश्चित्त ताहि महा विनय सहित लेय, तब दोष दूर होय। जैसे लौकिकमैं काहूमैं कोई चूक परै तब थोरा-बहुत द्रव्य लगाय चेत कराय शुद्ध करैं। तातैं केतेक दोष ऐसे हैं, जिनमें आचार्य प्रायश्चित्त तप बतावै हैं। ताही प्रमाण तप धारण करै तब शुद्ध होय। सो याकानाम तप प्रायश्चित्त है ॥ ६ ॥ जहाँ कोई बहुत दिनके दीक्षित बड़े तपसी तिनकूं प्रमाद वशाय कोई दोष लागे, तब याद करि आचार्यकूं कहैं। तब गुरु इनको दीक्षा मैं के केतेक दिन छेद नाशें। दीक्षाके दिन घटाय शुद्ध करैं। जैसे लौकिक मैं काहू मैं चूक पड़ै, तब पंच वाकै पासतैं केतेक दिनकी कमाईका धन खर्चाय, वाके घरतैं धन घटाय निर्धन करैं। आगेतैं ऐसा काम फेरि नाहीं करै। तैसे ही केतेक दोष ऐसे हैं जिनके प्रायश्चित्तमैं दीक्षा दिन घटावैं। जैसे पांचसौ वर्ष तप कस्या होय तौ दोयसौ पचास वर्ष यथायोग्य घटावैं, तब शुद्ध होय याका नाम छेद प्रायश्चित्त है ॥ ७ ॥ कोई मुनिकौं मानके योगतैं दोष लागा होय। तथा कोई मुनि धर्मकूं तजि खोटा मार्ग सेवन कस्या होय इत्यादिक बड़ा पाप किया होय पीछे आप गुरु पै कहै तौ आचार्य याकी सर्व दीक्षा छेदैं। नए शिरतैं दीक्षा देंय तब शुद्ध होय। जैसे लौकिक मैं कोई कौं भारी दोष लागे तौ ताकौ सर्व घर-माल-धन लूटैं रंक समान करि डारैं तब शुद्ध होय अब नये शिरतैं कमावो तब खाओ-इकट्ठा करो। तैसे केतेक दोष ऐसे हैं जो आचार्य याका दीक्षा धन सर्व छेदैं गृहस्थ समान असंयमी कर नये शिरतैं दीक्षा देंय तब निर्दोष शुद्ध होय। याका नाम मूल प्रायश्चित्त है ॥ ८॥ और नवमा परिहार प्रायश्चित्त है। दोय भेद हैं। एकतो अनुपस्थापन एक पारंचिक। तहां अनुपस्थानके भेद दो। एक निज गुणस्थापन

एक परगण स्थापन। तहां शिष्यमैं प्रायश्चित्त भये आचार्य शिष्यकौं अपने ही संघ मैं राखैं सो निजगण स्थापन प्रायश्चित्त है। और शिष्य मैं चूक भए संघतैं काढ़ि देंय, पर संघमैं राखैं। जैसे लौकिक मैं भी काहू मैं कोऊ चूक भए राज-पंच अपनै नगरतैं निकासि देंय पराए देश मैं राखैं। शुद्ध भए बुलावैं। तैसे संघतैं काढ़ि परगण मैं राखि शुद्ध करैं। ऐसे केतेक दोष हैं आचार्य जिनमैं यह दण्ड देय शुद्ध करैं हैं सो परगण स्थापन प्रायश्चित्त है। इनमैं निजगण स्थापन उत्तम है। और परगण स्थापन बहुत मानभंगका कारणहै। तातैं महा सखत है। सो यह उत्कृष्ट दण्ड कौनसा है। और कौन गुनाह पै कौन मुनि कूं होय सो कहिए है। उक्तं च आचार सार ग्रन्थे—

श्लोक—द्वादशाब्देषु पण्मास, षण्मासानसनंमतम्। जघन्ये पंच पंचोपवासं, मध्यासु मध्यमम्॥ १॥

अर्थ—जहां कोई शिष्य पै उत्कृष्ट दंड देय, तो षट्-षट् मासके उपवास उससे बारह वर्ष पर्यंत करवावैं और जघन्य दंड देय, तौ पंच-पंच उपवास बारह वर्ष लौं करावैं। मध्यम दंड देय तो उत्कृष्ट और जघन्यके मध्यमैं यथायोग्य उपवास करवावें। और जिनकौं ऐसे भारी दंड होंय सो संघ मैं कैसे रहैं? सो कहिये है। ऐसा दंड होय तिस शिष्यकौं आचार्य की ऐसी आज्ञा होय जो संघतैं बत्तीस धनुष अन्तर तैं तौ रहौ। सर्व संघकौं नमस्कार करे। संघके मुनि ताकौं पिछान नमस्कार नहीं करैं। ताका दोष जगतमैं प्रगट करवेकौं ऐसी आज्ञा होय, जो पीछी उल्टी राखौ। मौनतैं रहो, कोई मुनि—श्रावकतैं बोलै नाहीं। कदाचित् बोले ही, तौ संघनाथ—आचार्य—अपना गुरु तातैं बोलै, नहीं तो मौनि रहै। ऐसा दंड ऐसी चूक भए होय, जो काहू मुनि नै कोई मुनिका शिष्य फुसलाय हरले गया होय तथा कोई मुनिकी पीछी, कमंडल, पुस्तकादि हस्या होय। तथा कोई श्रावकका पुत्र रतन, स्त्री, सुवर्णादिक हरे होंय, तथा कोई मुनि-श्रावकका चेतन-अचेतन परिग्रह हस्या होय। तथा याकौं आदि और अन्याय कार्य, मुनिधर्मका भंजक—असंयम सेवन कस्या होय, तिस मुनिकौ ऊपरि कहे दंड होय हैं। ऐसे दंड कौनसी शक्ति वारे कूं होंय, सो कहिए हैं। जे मुनि महाज्ञानी, दस पूर्वके पाठी होंय, हीन ज्ञानीन तैं दीर्घ दण्डकी सामर्थ्य नाहीं। जैसे बहुत कटुक भेषज स्यानै पुरुष ही पीवैं। और

बालक तै अज्ञान तैं नहीं पाई जाय, यह कड़बी औषधिके गुण नाहीं जानैं। तैसे अज्ञानी शिष्य, गुरुके दिये दीर्घ दंडका मर्म नाहीं जानैं। तातैं महान् ज्ञानीकौं होंय है। वज्र-वृषभ-नाराच-संहनन आदि तीन संहननका धारी होय, हीनशक्तिकौं नाहीं होय, दीर्घ शक्तिवानकौं होय। क्योंकि जो आचार्य महादयालु, जगत–वल्लभ सर्वके मात-पिता, सर्वके हित वांच्छिक हैं। सो जैसे शिष्यका भला होता जानैं, सो ही प्रायश्चित्त देंय। कोई शिष्यतैं द्वेष-भाव नाहीं। अपनी मान-बड़ाई नाहीं जैसे शिष्यनका पाप क्षय होय, निरतिचार संयम तैं स्वर्ग-मोक्ष होय, सोही करैं हैं। जैसे कोई परोपकारी वैद्य, अनेक रोगीनकौं कोई कारण तैं खान-पान मनै करे है, काहू कूं लंघन करावै है काहू कूं कटुक भेषज देय है। सो रोगीन तैं द्वेष नाहीं, उनके सुख हेतु बतावै हैं। तैसे आचार्यनका दंड जानना। वह धर्मात्मा शिष्य गुरुका दिया दंड महा विनय तैं आदर करि लेय, सो निज-गुण-स्थापन प्रायश्चित्त है। पर-गण-स्थापन ताकौं होय, जो आचार्यका दिया दंड महामद सहित अंगीकार करै। ताकौं आचार्य संघ तैं काढ़ि देंय। जैसे लौकिक मांहि जो कोई राजाकी आज्ञा नहीं मानैं, तौ राजा ताकौं अपने देश-नगर तैं निकासै। तैसे आज्ञा प्रतिकल शिष्य कूं संघतैं निकासि देंय। तथा मानी शिष्यकूं और संघमैं खिदाय, शुद्ध करैं। जैसे लौकिक मैं अपना पुत्र घरकी दूकान पै सीखै नाहीं तौ ताकौं परकी दूकान पै राखि, गुणवान करि शुद्ध करैं। तैसे ही शिष्यका भला जैसे होता जानै, तैसे ही भला करैं। ए पर-गण-स्थापन प्रायश्चित्त कहिए। तथा कोई शिष्य गुरु पै मद सहित प्रायश्चित्त याचै, तौ आचार्य शिष्यकौं मद सहित प्रायश्चित्त याचता देखि, ऐसा कहैं। तुम फलानै आचार्य पै जावो वह तुमकौं प्रायाश्चित देंयगे। तब शिष्य गुरुकी आज्ञा पाय और आचार्यके पास जाय प्रायश्चित्त याचै। तब वह आचार्य शिष्यकौं मद दोष सहित जानि ऐसी कहैं तुम अपने ही गुरु पै याचो। तब शिष्य अनादर जानि पीछा अपने गुरु पै आवै। प्रायश्चित याचै। तब गुरु और आचार्यके पास फिरावैं। तब वह भी दंड नहीं देय फिर अपने ही गुरु पै आवै। ऐसे सात संघ मैं सात आचार्यनके पास खिदावै। कोई भी या मानी शिष्यकौं दंड नहीं देंय तब यो अपने गुरु पास आय मान तजि सरल होय कहै। मोकौं प्रायश्चित्त देहु। तब गुरु याकौं विनय सहि-

त देखि निःशल्य प्रायश्चित्त याचता देखि प्रायश्चित्त देय शुद्ध करें । इत्यादिक ए अनुपस्थानके भेद जानना । आगे पारंचिक प्रायश्चित्तका स्वरूप कहिए है । जाने मुनि अर्जिका श्रावक श्राविका इन च्यारि संघ कूं उपद्रव किया होय । तथा कोई पृथ्वीके राजातैं द्वेष-भाव किया होय । तथा जाकूं काहू स्त्री तें कुशील सेवनादि अन्याय मार्गका दोष लागा होय । तिस मुनि कूं वड़े दंड होंय जैसे ऊपर उत्कृष्ट दंड कहे सो होंय । पीछें धर्म रहित क्षेत्रनमें राखैं और सर्व लोकनकौं ऐसा जनावैं जो ए मुनि महापापके करनहारे हैं । वड़े पापी हैं तातैं आचार्यनैं संघतैं इनकों काढि दिये हैं । संघ वाहिर किया है । ऐसा दीर्घ दंड अपमानका कारण लोकनिंद्य ता दंड कूं पायकैं यह धर्मात्मा शिष्य हर्ष सहित परणति राखि गुरुकी आज्ञा प्रमाण प्रवर्ते है। कैसा है शिष्य महावैराग्य करि सर्व अंग भरया है । वड़ी शक्तिका धारी ज्ञानका भंडार गुरुके दिए प्रायश्चित कूं पाय वढ़्या है वहु हर्ष जाकैं, सो ऐसा आचार्यका दिया दंड पाय ऐसा विचारे, जो आजका दिन धन्य है । जो आचार्य हमकों प्रायश्चित्त देय, शुद्ध करें हैं । हमारे पाप दूर करवेका इलाज वताया है । सो अव हम गुरुके प्रसाद तैं पापकूं मेटि, मोक्ष चलेंगे । ए गुरु धन्य हैं । ऐसा हर्ष सहित प्रायश्चित्त लेय । ऐसे शिष्यन कूं ऐसे दंड होय हैं । ऐसे पारंचिक प्रायश्चित जानना । जैसे लौकिकमें राजा दीर्घ दंडवारे कौं लोकके जनावैकौं, सर्व नगरमैं फेरैं । सर्वकूं ऐसा कहैं जो यह राजाका गुन्हगार है। यानैं ऐसा निंद्य कार्य किया था, सो ऐसा दंड पाया है । तैसे ही केतेक पाप ऐसे हैं जो ऐसा दीर्घ दंड भए ही शुद्ध होय है, याका नाम परिहार प्रायश्चित्त है । कोई शिष्य ने जिन आज्ञा लोप, मिथ्यामार्ग सेया होय, तौ गुरु ता शिष्यकी सर्व दीक्षा छेद नवीन दीक्षा देय, तव शुद्ध होय । जैसे लौकिकमैं काहू नैं अपना कुल—कर्म तजि, कोई नीच—कर्म किया होय । तौ राज-पंच वाका घर लूटि लेंय । सो केतेक दोष ऐसे हैं, सो सर्व दीक्षा छेद, नवीन दीक्षा देय, छेदोपस्थापन करावे, तव शुद्ध होय । याका नाम उपस्थापन प्रायश्चित्त है । ऐसे प्रायश्चित्तके दश भेद कहे । अपना लाग्या दोष कूं याद करि प्रायश्चित्त लेय शुद्ध होय, सो प्रायश्चित्त तप है ॥ ७ ॥ और आपतें गुणाधिकका विनय, सो विनय च्यारि भेद है । सो ही कहिए है । प्रथम नाम—ज्ञानविनय, दर्शनविनय, चारित्रविनय

और उपचारविनय। इनका सामान्य अर्थ—तहां विनयतैं शास्त्र बांचना, विनयतैं शास्त्रका सुनना, और पद, बिनती, पाठ, स्तुति पढ़ना सो विनयतैं। तथा शास्त्र लिखना-लिखावना, सो विनय तैं। तथा शास्त्रके मनोज्ञ पूठा-बंधना करि हर्ष माननो, इत्यादिक ज्ञान विनय है॥ १॥ अपने दृढ़ श्रद्धान् कूं भलीभांति पालना, ता सम्यक् कूं पचीस दोष नहीं लागवे देय। राजा पंच कुटम्बादि व्यंतरादि देवनकी शंका छांड़ि निःशंक होय अपने जिन-भाषित-तत्वनिका श्रद्धान दृढ़ रखना सो दर्शन बिनय है॥ २॥ जहां पंच महाब्रत पंच समिति तीन गुप्ति इन तेरह प्रकार चारित्र कूं विनय सहित पालना। तथा इन चारित्रोंके धारक मुनीनका विनय सो चारित्रका विनय है। तथा चारित्रकी तथा चारित्रके धारककी बारम्बार प्रशंशा-स्तुति करना सो चारित्र विनय है॥ ३॥ जहां यथायोग्य द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव देख सर्वका विनय करना सो उपचार विनय है। तहां उपचार विनयके दोय भेद हैं। एक धर्म सम्बन्धी विनय एक कर्म सम्बन्धी विनय। जहां देव धर्म गुरु तीर्थ चारित्र तप और व्रतकी पूजा—स्तुति-प्रशंसा करना सो धर्म उपचार विनय है। तथा पंचपरमेष्ठी सम्मेदशिखरजी आदि सिद्ध क्षेत्र अष्ठान्हिका आदि शुभकाल सर्व जीवके हितभाव धर्म-शुक्लभाव ए सर्व धर्म सम्बन्धी द्रव्य क्षेत्र-काल-भाव हैं। सो इनकी अष्ट द्रव्यसे पूजा-स्तुति करनी सो धर्म सम्बन्धी विनय है। राज पंच माता पिता व्यवहार गुरु जाते ज्ञान लाभ भया होय तथा उम्र करि बड़े तिनका यथायोग्य विनय सो उपचार विनय है॥ ८॥ मुनि अर्जिका श्रावक श्राविका इन च्यारि प्रकार संघके धर्मात्मा जीवनं कूं तनमें खेद देख तिनके पांव दावना यतन करना सुश्रूषा करना सो वैयावृत तप है॥ ९॥ स्वाध्याय जो शास्त्र बांचना प्रश्न करना औरनकूं जिन धर्मका उपदेश करना और बारम्बार तत्वनका विचार सुन्या जो गुरु मुखतें उपदेश ताका बारंबार चिंतवन तथा जिन आज्ञा प्रमाण श्रद्धानरूप भावनकी प्रवृत्ति ए पंच भेद स्वाध्याय हैं। जहां आत्महित कूं निराकुल चिंतवन करवे कूं तत्वनका ज्ञान बढ़ावे कूं कषायनका बल तोरवे कूं शांतिरस पीववे कूं भेद-ज्ञान वेचारवे कूं स्व-स्वभाव विषैं मगन होवे कूं शास्त्राभ्यास करना सो स्वाध्याय तप है। तथा तत्वनमें कोई प्रकार संदेह हो तो ताके मेटवे कूं प्रश्न करना। तथा अनेक नयका ज्ञान बढ़ावे कों अनेक युक्ति सहित तत्व

भेदनका प्रश्न विशेष ज्ञानीनतैं करना सो स्वाध्याय है। जहां जिन भाषित तत्वनकी प्रतीति करना कि जो जिनदेवने कह्या है सो प्रमाण है। ताही जिन-आज्ञा-प्रमाण श्रद्धानका करना। ताही आगम प्रमाण आपरहना सो आम्नाय भेद स्वाध्याय है। जहां भव्य जीवनकूं मोक्षमार्ग होवे कूं परभव सुधारवे कूं संसार दुख मेटवे कूं तत्वज्ञान बढ़वे कूं आत्मीक ज्ञानकी प्राप्ति होवे कूं परोपकार परणति करि और जीवन कूं धर्मका उपदेश देना सो धर्मोपदेश स्वाध्याय है। अंगीकार किया उपदेश ताकौं चलते-बैठते-सोवते सदीव चिंतवन करि संसारीक पदार्थनका यथावत् चिंतवन करना। संसार दशा कूं अथिर विचारना तथा इस जीव कूं मरण समय कोई शरण नाहीं। माता-पिता मंत्र-तंत्र-जंत्र देव इन्द्र व्यंतरादिक कोई याकों शरण नाहीं। याके शरण याके सहाय कोई नहीं हैं। ऐसे अनेक नयन करि वस्तु कूं अशरण जानि चिंतवन करना सो अशरण चिंतवन है। संसार षट्द्रव्यन करि भर्या ता विषैं जीव पर-वस्तु कूं मोहभाव कर अपनी मानता ताविषैं रति भाव मानता सो संसार भाव चिंतवन है। संसार मैं ए जीव अनादिकालका च्यारि गतिमैं भ्रमण करता सुख दुखका भोगता होय है। सो एकला आत्मा ही है। कोई नाहीं। जब जीव अपने शुभभाव करि देव होय तब नाना सुखका भोगता एकला ही होय है। जब अपने पाप भाव करि जीव नरक जाय है। तब दुख भी एकला ही भोगवै है। तिर्यञ्च-मनुष्य विषै भी प्रसिद्ध दीखै ही है। जब इस प्राणीकौं पाप उदयतैं तीव्र दुक्ख होय है। तौ सर्व कुटुम्ब-जन देखा ही करैं हैं। ये ही पड़्या विलाप करैं है। कोऊ बटावता नाहीं। च्यारि गतिके दुख-सुख एकला आत्मा ही भोगवैहै ऐसा चित्तमैं विचारै सो एकत्व-भाव चिंतवन है। संसारमैं जेते पदार्थ हैं तेते कोई काहूतैं मिलता नाहीं। सर्व अपने-अपने स्वभाव करि अन्य-अन्य हैं। ऐसा विचार होय सो अन्यत्व-भाव-चिंतवन है। शरीर अशुचि पुद्गल पिण्डमई अपावन सप्तधातुका मन्दिर ग्लानिका स्थान ता विषै निर्मल आत्मा अमूर्तीक ज्ञानमई कर्मवश तैं एक-मेक दीसै है परन्तु अपने चैतन्य भावकूं नहीं तजै। यहां प्रश्न—जो शरीरकौं ऐसा ग्लानिका स्थान बताय कथन किया सो यामैं ज्ञानकी कहा ।२२८।
महत्वता भई? अरु शरीर कूं ऐसा ग्लानि रूप श्रद्धान करै तो श्रोतान कैं कषायनकी क्या समानता

भई ? यामैं तौ एक दुरगंच्छा नाम कर्म और बंध्या। दुरगंच्छा प्रगट भये सम्यग्दर्शन कूं मलीनता आवेगी। तातैं शरीर तैं ग्लानि मैं तौ कछ नफा नहीं भासै है ? ताका समाधान भो भव्य, जैसे कोई मनुष्य शीतांगमें डूबि रहा होय ताकूं कोई औषधि लगता नाहीं जानि भला वैद्य होय सो तिस रोगीकूं ज्वरकी आताप बढ़ावेका उपाय करै। सो ऐसा विचारै जो या रोगीका आयु कर्म है अरु रोग जाने वाला है तौ ज्वर बढ़ेगा। मरन होना है तो शीतांग मिटैगा नाहीं मेरो औषधि वृथा जायगी। तैसे यह संसारी जीव अनादि मिथ्यात शीतांग मैं डूबि रह्या है। सो कोई उपाय नाहीं। तातैं हमने दुरगंच्छा रूपी ज्वर की आताप बढ़ावे कौं यह उपाय किया है। सो हे भव्य जो तेरे तनतैं अनादि एकताके मोह तें अपनपा मानि शरीर मैं मगनता भई ताके पोषवेकूं तूं अनेक मिथ्यात कार्य करै है। अरु जब तेरे शरीरतैं मोह बुद्धि टूटि या सप्तधातु मई फासै तौ चेतन भाव तैं प्रीत आवै सम्यक् होय। तातैं हमने शरीरतैं दुरगंच्छा उपजावेकूं अशुचि भावनाका कथन किया है। सो जब शरीर तैं दुरगंच्छा होय तौ हमारा उपाय सिद्ध होय। तनतैं भिन्नि जानतैं अनादि मिथ्यात शीतांग मिटै मोक्ष होवेकी आशा बढ़े। तातैं ए कथन जानना। ऐसा तेरे प्रश्नका उत्तर है। तातैं अशुचि भावनाका चिंतवन है। और जीव राग-द्वेष भावकरि मिथ्यात अविरत योग कषाय इनके निमित्तकौं पाप कर्म आश्रव करै है। सो ऐसे विचारका करना सो आश्रवानुचिंतवन है। जहां आश्रव भाव रोकिए सो संवर है। सो मिथ्यात आश्रव रोककैं तौ सम्यक् होय। अव्रतभाव रोककें व्रत भाव होय और योगिनकी अशभता मेटि शुभता होय कषाय मेट बीतराग भाव होय। ऐसे करि मोह मन्द करि रागद्वेष भाव निवारिना आश्रव रोकि संवर करना सो संवरानुचिन्तवन है। और विशुद्ध भावना करि सत्ता कर्मन कूं खेरि असत्व रूप करना सो निर्जरा है। सो निर्जराके दोय भेद हैं। एक सविपाक एक अविपाक। तहां अपनी पूरण तिथि करि कर्मका खिरना सो सविपाक निर्जरा है। जो तप-संयमके योगतैं यथा परणामणकी विशुद्ध तातें कर्मका खिरना सो अविपाक निर्जरा है। ऐसे विचारका नाम निर्जरानुचिन्तवन है। जहां तीन लोक-संस्थान जो आकार ताका विचार भेद-भाव करना सो लोकानुचिन्तवन है। जीवाजीव आदि वस्तु अपने

स्वभाव कूं न तजै स्वभाव रूप रहै परभावरूप नहीं होय सो ऐसे विचारका नाम धर्मानचिन्तवन कहिए। अपने स्वभावमें रहना सो तौ सुलभ है पर-स्वभावरूप होय सो दुर्लभ में। जैसे जीव कूं चैतन्य भाव रहना ज्ञान मई रहना धर्म भावना होना इत्यादिक जीवके गुण मई जीवकूं रहना सो सुलभ है। इन मई रहतैं कछु उपाय—खेद नाहीं करना परै है सहज ही है। जीवकूं जड़ होना मूर्तीक होना महा दुर्लभ है। अनेक कष्ट खाए भी जड़त्व—मूर्तीक नहीं भया जाय है। इत्यादिक चिंतवन सो दुर्लभानु चिंतवन है। ऐसे अनेक प्रकार जिन भाषित तत्वनिका चिंतवन सो अनुप्रेक्षा नाम स्वाध्याय भेद है। ऐसे पंच भेद स्वध्याय कह्या। तनतै ममता भाव रहित होय एकासन खड़ा ध्यान करना सो कायोत्सर्ग तप है। जहां मन वचनकी एकता रूप धर्म ध्यानरूप भावनाकी थिरता और कषायनकी मंदता सहित आपापरके निर्धाररूप ध्यान करना सो ध्यान नाम तप है। ऐसे बारह प्रकार तप हैं। सो सुतप उपादेय हैं। इति तप विषै ज्ञेय हेय उपादेय कह्या।—आगे व्रत विषै ज्ञेय हेय उपादेय कहिये हैं। जहां सुव्रत व कुव्रतका समुच्चय जानना सो तौ ज्ञेय है। ताहीके दोय भेद हैं। एक सुव्रत और एक कुव्रत। जहां भोरे जीवनके प्ररूपे परमार्थ शून्य अपनी अज्ञान चेष्टा करि जो वृत करै सो कुव्रत है। केतेक तौ क्रोध पोखवेके वृत हैं। केतेकमान पोखवे के हैं। केतेक मायापोखवेके वृत हैं। केतेक लोभ पोखवे के वृत हैं। ऐसे क्रोध मान माया लोभ पोखवे कौं जो वृत हैं सो सम्यदृष्टी मैं हेय हैं। जहां पर जीवनके मारवे कौं शत्रु आदिके दुख देवे कौं इत्यादिक विचार सहित व्रत करना यथा—जो मेरा फलाना शत्रु है सो क्षय होहु। ताके निमित्त एक बार खाना वहुत धन दान देना पूजा—उपवास करना रस रहित खाना भूमि सोवना नांगे पांव फिरना एक अन्नही खाना एक रस ही खाना इत्यादिक विधि सहित उपवास व्रत करना, सो क्रोध सहित व्रत कहिए। अपनी आज्ञा कोई नहीं मानता होय, वश नहीं होता होय। ताके वश करवे कूं अपने बलकी सामर्थता तौ नाहीं, अरु मान पोखा चाहै। ताके निमित्त कोई देव-व्यंतरके साधनकूं व्रत करना, पराया मान खंडन कूं व्रत करना, सो मान पोखिव्रत है। जो व्रत आप छल सहित करै। परिणाम तौ दुराचार रूप, और लोकनके दिखावेकूं, आप धर्मी वाजवे कूं व्रतका करना, सो माया पोखि व्रत है। अन्य

जीवनके धन हरवे कूं, हाथी- घोड़ा हरवे कूं, मंदिर हरवे कूं, नाना युक्तिके व्रत करना। तहां ऐसे विचारना जो मोकौं राज मिलै, पुत्र मिलै, कुटुम्बकी वृद्धि होय, या व्रत तैं धन मिले इत्यादि व्रत हैं। सो लोभ पोषित व्रत हैं। तिन व्रतनको लौकिक मैं भोरे जीवन मैं ऐसी प्रवृती है कि जो यह व्रत करै तौ शत्रु नाश होय। कोई व्रतनका फल ऐसा कह्या है जो याके किए बैरी वश होय, आप ही आय नमैं। केई व्रतनका फल ऐसा प्ररूप्या है जो याके किये राज सभामैं आदर पावै, सभा वशि होय। केतेक व्रतनका फल ऐसा कह्या, जो इनकौं करै तौ लोकमान्य होय, जगत मैं पूजा पावै। या व्रततैं धन होय। और स्त्री करै तौ बहुत दिन लौ ताका सुहाग रहै, भर्तार मरै नाहीं, पुत्र होय, सासश्वसुर सर्व ताकी आम्नाय मानैं, यश पावै भर्तार वश होय। इत्यादिक व्रत हैं सो क्रोधी, मानी, मायावी, दगावाज, लोभी, पाखंडी जीवनके प्ररूपे हैं। जो भोरे जीवनको तनिक कौटिल्य ताका लोभ बताय, अपनी महंतता--धर्मात्मापना बताय लोकनका धन हरि लेय जाते रहैं। ऐसे दुरात्मा जो ऊपरी तैं शान्ति मुद्रा भेषि बनाय, भोरे जीवनकूं विश्वास देय, ठग लेंय। ऐसे जीव धर्म भावना रहित, तिन मैं ए कुव्रत प्ररूपे हैं। सो सम्यग्दृष्टी करि सहज ही हेय हैं। और जे व्रत हिंसा करि सहित होंय, जिन व्रतनमैं अनगाले जलमैं नित्य सपरना कह्या होय। तथा जिन व्रतन मैं नाना प्रकार अन्नादिक वनस्पतीका उगावना कह्या होय, सो व्रत हेय हैं। तथा जिन व्रतन मैं ऐसा कह्या हो, कि जो पशूनकों भोजन दिए अपने देवादि तृप्त होंय, सो व्रत हेय हैं। और जिन व्रतन मैं दिन-भोजन छोड़ि, रात्रि भोजन कह्या है। सो व्रत हेय हैं। जिन व्रतनमैं ऐसा कह्या, जो आज मोटा-बड़ा रोट खावना योग्य है, ऐसे व्रत हेय हैं। कोई व्रत ऐसा जिसमैं लड्डू खावना कह्या है, ऐसा व्रत हेय है। कई व्रतन मैं ऐसा कह्या है जो आजि सूत व रेशमके तागा बनाय ताकौं एती गांठि दीजिये पीछे भुज-बंध करना कह्या, सो व्रत हेय हैं। तथा इस व्रत के दिन पशूनकौ पूजिए, घास पूजिये तथा पंचेंद्रिय पशूनका मल-मूत्र पूजिये तथा इस व्रतमैं तिल-तेल ही खाईए है। तथा इस व्रतके दिन गुड़-भोजन शुभ कह्या इत्यादिक इन्द्रियनके पोषनेहारे कामी-लोभी जीवनके प्ररूपे तन पुष्ट कारी व्रत सो हेय हैं। तथा इस व्रतमैं दूध-दही खाईए है। तथा दूध ही डारिए है। तथा इस

व्रत मैं जीवनकौं मारिए इत्यादिक कुव्रत भोरे जीवनकें करवे योग्य हैं। इन्हें मानी ज्ञान-धन-हीन जीव ही करै हैं। ऐसे ही मोही जीवनके प्ररूपे हैं। सो ए व्रत मोक्ष—मार्गके ज्ञाता सम्यग्दृष्टीके धारी जीवन कूं सहज ही हेय हैं। इति कुव्रत। आगे सुव्रत कथन-भो भव्य सुव्रत तिनका नाम है जिनके किए अपने अगले पापनका नाश होय। जिन व्रतनका नाम लिए पुण्य बंध होय। जिन व्रतनके आगे दाताका निशान प्रगट चलता होय सो दयासागर शुभ-व्रत हैं। जिनमैं पापारंभका त्याग होय शुभाचार सहित जिनमैं क्रिया कही होय। सप्त-व्यसनादिक पाप तिनकी प्रवृत्ति नहीं होय। जहां व्रत दिन द्यूत खेलना मने किया होय। व्रतमैं मांस भक्षण नहीं कह्या होय। जिन व्रतनमैं मदिरा पान नहीं होय। जिन व्रतनमैं वेश्यादिक कुट्टनीका सेवना नृत्यादि देखना नहीं होय, सो शुभ व्रत हैं जिन व्रतनमैं दीन जीवनकी हिंसा तजि, दया कही होय। तथा जिनमैं मनुष्य-घात, भैंसा-घात, बकरी-घातादिक खोटक क्रिया नहीं होय, सो शुभ व्रत हैं। जिन व्रतनमैं पराई वस्तुकी चोरी नहीं कही होय। जिनमैं पर-स्त्रीनका सेवन, पर स्त्रीनकौं रति दानादिक कुशील क्रिया जामैं नहीं होय, सो सुव्रत हैं। जिन व्रतनमैं तन धोवना, सपरना अभक्ष खावना, कुशब्द बोलना, नहीं कह्या होय सो शुभ व्रत हैं। जिन व्रतनमैं शस्त्र चलावना नाहीं कह्या होय, सो शुभ व्रत हैं। जिन व्रतनमें शस्त्र चलावना नाहीं कह्या होय, तथा पाषाण चलावना मिट्टी राख-बगरावना नहीं होय सो सुव्रत हैं। पाखंड रहित होय क्रोध मान माया लोभ इत्यादिक दोष रहित होय सो शुद्ध व्रत हैं। जा व्रतके किए परणाम समता सहित रहैं सो सुव्रत हैं। जिस व्रतमै एकेन्द्रिय आदि त्रस-स्थावर जीवनकी दया रूप क्रिया होय सो शुभ व्रत हैं। और दान पूजा शील संयम तप इन सहित होंय सो सुव्रत हैं। तिन व्रतनके भेद बारह हैं। तिनके नाम पंच अणुव्रत हैं। तहां अहिंसाणुव्रत सत्याणुव्रत अचौर्याणुव्रत ब्रह्मचर्याणुव्रत और परिग्रहत्यागाणुव्रत। ए पंच अणुव्रत हैं। जहां एकोदेश हिंसाका त्याग तहां त्रस हिंसाका तौ सर्वप्रकार त्याग होय। और स्थावर हिंसाके आरंभ मैं दयाभाव सहित प्रवर्तना सो अहिंसाणुव्रत है॥ १ ॥ जहां झूठ बोले राजा दंड दे पंच भंडै ऐसी तीव्र झूठका त्याग सो सत्याणुव्रत है ॥ २ ॥ जाके किए राज दंडै पंचलोक भंडै ऐसी तीव्र झूठका त्याग सो

अचौर्याणुव्रत है ॥ ३ ॥ बड़ी-परस्त्री माता सम बरोवर भग्नी सम लघु पुत्री सम चिंतवन करि तजै तिनमैं विकार भावका त्याग घरकी--परणी स्त्रीके संभोग मैं तीव्र तृष्णाका त्याग सो ब्रह्मचर्याणुव्रत है ॥४॥ वर्तमान समय अपने पुण्य प्रमाण परिग्रह मैं तैं कछू घटायकैं ताका त्याग सो परिग्रह त्यागाणुव्रत है॥५॥ ऐसे पंच अणुव्रत हैं। आगे च्यारि शिक्षा व्रत कहिए हैं। सामायिक, प्रोषधोपवास भोगोपभोग प्ररिमाण और अतिथिसंविभाग आगे इनका अर्थ--इन व्रतोंकी साधनरूप किया है, तातैं इनका नाम शिक्षाव्रत है। तहां तोन काल समायिककी विधीकी साधना सो सामायिक शिक्षाव्रत है॥ १ ॥ आठैं चौदशके दिन सोलह प्रहरका पापारंभका त्यागरूप एक स्थानमैं धर्म ध्यान सहित प्रतिज्ञाका साधन सो प्रोसधोपवास शिक्षाव्रत है ॥२॥ आगे अपने पुण्य प्रमाणमैं तैं घटाय भोग-उपभोगका राखना, सो भोगोपभोग परिमाण शिक्षाव्रत है ॥ ३ ॥ जहां अपने निमित्त किया भोजन तामैं तैं मुनि त्यागी श्रावकादिककूं दानका देना सो अतिथि करण शिक्षा व्रत है ॥ ४ ॥ ए च्यारि शिक्षा व्रत। आगे तीन गुणव्रतके नाम—दिग्व्रत देशव्रत और अनर्थ दंडका त्याग। अब इनका समान्य अर्थ—जहां दशों दिशा विषैं पापारंभ निमित्त गमनागमनका सो दिग्व्रत है ॥ १ ॥ दिग्व्रतमैं तैं घटाय रोज व्रत नियम करना सो देशव्रत है ॥ २ ॥ जहां बिना प्रयोजन पापारंभका त्याग सो अनर्थ दंडका त्याग सो अनर्थ दण्ड गुणव्रत है ॥ ३ ॥ ऐसे पंचाणुव्रत च्यारि शिक्षाव्रत तीन गुणव्रत सर्व मिलि बारह व्रत हैं सो ए व्रत पाप नाशक पुण्य वृद्धि करन हारे सुव्रत जानना। इन व्रतनके किये तैं जग-यश होय पाप नाश होय। समता भाव होय बुद्धि उज्वल होय दया मई भाव होंय कुबुद्धिका नाश होय सुबुद्धिकाप्रकाश होय। ऐसे अनेक पाप-दुख मिटि अनेक गुण प्रगट होय हैं। जैसे काहू पुरुषकूं तीव्र क्षुधा लागी तब वह बिना भोजन शिथिल होय नेत्रन आगे तमारे आवैं, चल्या नाहीं जाय। भागा नहीं जाय। बुद्धि मैं युक्ति नाहीं उपजै। पुरुषार्थ जाता रहै। दीन होय पराधीन होय इत्यादिक अनेक रोग व दुख प्रगट होंय। और जब पेट भर भोजन मिलै तब सर्व रोग-दुख एक समयमैं जाता रहै है। तैसेही विवेकी कौं भला ज्ञान होतैं सुव्रत रूपी भोजन मिलतैं ही कुभावरूपी अनेक दुख-खोटे व्रत रूपी जो वेदना थी सो सर्व नाशकूं प्राप्त भई। तब अनेक शुभ दायक

भाव होय हैं अनेक युक्ति उपजने लगी ताकरि तत्त्वनका भेदाभेद विचारि अपना कल्याण करै है। ऐसा जानि विवेकीनकौं अनेक विधी विचारि करि सुखका लोभी धर्मका इच्छक अनेक मतनका रहस्य देखि जहाँ शुभ तर०
दया भावनकूं लिये उज्ज्वल आचार सहित व्रत होंय सो करना योग्य है। जा व्रतके किए तैं पापनाश होय सो व्रत उत्तम है। और जिस व्रतके किए पाप उपजै सो हेय करना योग्य है। विवेकी जीवनकूं अपने विवेक तैं भले-बुरे व्रतकी परीक्षा कर लेनी। कोई कहै हमारा व्रत भला है। तो काहूके कहै तैं ही नहीं लेना। अपनी अपनी सब ही भली कहैं हैं यह जगतकी रीति हो है। परन्तु विवेकी परीक्षा करि जो अङ्गीकार करै सो व्रत पक्का है। जैसे गुदरी मैं अनेक प्रकार रतनादि विकैं हैं। तहां केई तौ सांचे रतन लिए खड़े हैं। केई झूठे रतन लिए खड़े हैं सो ग्राहककूं सर्व अपना-अपना रतन सांचा ही कहै हैं। सो वेचने वारा तौ कहे ही कहै। परन्तु लेने वारोंको अपनी चौकस कर लेना योग्य है। काहूके कहने पै नहीं जाय। तैसेही धर्म दुकान अनेक हैं। अपने अपने व्रतकौं सर्व उत्तम मानै हैं। परन्तु धर्मात्मा जीव अपनी बुद्धिके बल करि परीक्षा करै। जहां शुद्ध दया सहित व्रत होय, सो करना। तिनका स्वरूप ऊपरि कहि आये हैं। अनेक शुभ व्रत हैं व अनेक अशुभ व्रत हैं। इनकी परीक्षा निमित्त अनेक व्रतनका लक्षण कह्या है। तातैं परखकैं करना। इनका विशेष आगे व्रत प्रतिमा मैं कथन करेंगे तहां तैं जानना। इति व्रत विषैं ज्ञेय हेय-उपादेय कथन। आगे दान विषैं ज्ञेय हेय उपादेय कहिये है। तहां समुच्चय शुभा शुभ दान का जानना सो तौ ज्ञेय है। ताही ज्ञेयके दोय भेद हैं। एक सुदान ज्ञेय तौ उपादेय है। दूसरा कुदान ज्ञेय सो हेय है। सो प्रथम दानका लक्षण कहिये है। सो जाके देते चित्त महा भक्तिरूप होय सो दान हैं। तथा दानको देते चित्तदया मई होय सो दान है। और जाके देते मनमैं नहीं तौ भक्तिभाव होय नहीं दया भाव होय सो दान देना ऐसा है। जैसा राजा कौं दंड देना। ए दान दंडसमान है सो कुदान जानना। जैसे काहूके तन पै पीड़ा आई होय तब लोभी पुरुष रोगी कूं भोरा जानि या कहै। जो हाथी का दान देय तथा घोड़ेका
दान देय तीड़ागाथ—रथका दान देय। इसी प्रकार विषय-सेवनके स्थान घर सो मन्दिर दान। सुवर्ण-चांदी ।२४४।

दान। विषय-सेवन कौं दासी-दास दान स्त्रीका दान कन्या दान धरती दान तिल दान उड़द दान श्यामवस्त्र दान तेल दान इत्यादिक दान जो हैं सो लोभी जीवनके तौ प्ररूपे हैं। अरु भोरे जीवन कौं अज्ञान जानि कहैं हैं। सो कुदान हैं। सो विवेकीन कौं तजना योग्य है। इति कुदान। आगे सुदान—तहां सुदानके च्यारि भेद हैं। भोजन दान, औषधि दान, शास्त्र दान, और अभयदान। अब इनका अर्थ—तहां अपने निमित्त भोजन किया तामैं तैं पहले मुनिकौं तथा त्यगी-श्रावक कौं तथा अर्जिका कौं यथायोग्य महा हर्ष धारि विनय सहित दान देना सो भोजन दान है। तथा कोई यती श्रावकादिकका निमित्त नहीं होय तो दीन बूढ़ा वालक रंक भूखा अशक्त अंधा लूला इन आदिक कौं असहाय देखि इनके तन की रक्षा कौं करुणा भाव सहित अन्न दान देना सो याका नाम भोजन दान है। याके फलतैं सदा सुखी होय अन्न-धन वहुत होय अन्न वहुतन कौं देय खाने वारा उदार चित्तका धारी होय ॥ १ ॥ जहां मुनि आर्जिका श्रावक त्यागी इनकें तन पीड़ा देखि इन योग्य प्राशुक औषधि देना। तथा कोई गरीब रंक भूखा दुखिया वालक वृद्धादि असहाई निर्धन होय ऐसे जीवन कौं रोग वेदना देखि धर्मात्मा पुरुष अपना चित्त करुणा रूप करि औषधि करना जतन करना सो औषधि दान है। याके फल तैं शरीर निरोग होय ॥ २ ॥ जहां मुनि अर्जिका श्रावकादिक धर्मात्मा पुरुषनके पठन-पाठन कौं शास्त्र देना सो शास्त्र दान है सो लिखाय देना तथा आप लिख देना तथा अन्य भव्य जीवन कौं धर्मोपदेश देय धर्म विषैं सन्मुख करना पढ़ावना भूलेकूं बतावना सो शास्त्र दान है। याके फलतैं अतिशय ज्ञानका धारी होय जहां अन्यजीवनका दुखमैटि सुखी करना कोई दुष्ट दीन—जीव पशुमनुष्यादिक कौं मारता होय तौ अपनी शक्ति प्रमाण ज्ञान धन बल हुक्मादिक करि मारते कूं वचावना। आप कोई जीवन कौं नहीं सतावना सर्व कूं सुखी करना। सर्व जीवन तैं मैत्रीभाव रखि सर्वकौं सुखी चाहना सो अभयदान है। याके फलतैं आप अक्षय पद जो मोक्ष पद ताहि पावै। तथा कोई भव धरना होय तौ देव इन्द्रादि पद पावै। तथा मनुष्य होय तौ चक्री त्रिखंडी भटादि महायोधा दीर्घ आयुका धारी होय। ऐसा फल अभयदानका जानना। यह अभयदान है ॥ ४ ॥ ए च्यारि प्रकार दान हैं सो शुभ दान हैं। ए दान सम्यग्दृष्टीन करि उपा-

देय हैं। इति दानमैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कथन। आगे पात्र विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिए है। तहां समुच्चय सु
पात्र-कुपात्रके भेदका जानना सो तौ ज्ञेय है। ताही ज्ञेयके दोय भेद हैं। एक सुपात्र है एक अशुभपात्र है।
तहां अशुभके भेद दोय हैं। एक अपात्र एक कुपात्र। तहां कुपात्रके तीन भेद हैं। जघन्य मध्यम उत्कृष्ट।
तहां बाह्य अट्ठाईस मूलगुण धारी होय और अन्तरंग सम्यक् रहित होय सो उत्कृष्ट कुपात्र है। बाह्य श्राव
कव्रतका धारी ग्यारह प्रतिमा विषैं प्रवर्तता शुभाचारी, धर्मध्यानी, जिन आज्ञा प्रमाण श्रावक क्रिया सहित किंतु
सम्यक् रहित सो मध्यम कुपात्र है। व्यवहार सम्यक् देव-गुरु-धर्मकी दिढ़ प्रतीत सहित होय किन्तु भेद-
ज्ञान रहित, अनन्तानुवन्धी की चार और दर्शन मोहकी तीन ऐसी सब सात प्रकृतिके क्षयोपशम रहित नि
श्चय सम्यक् जाकै नाहीं, सो जघन्य कुपात्र है। यह आप षट्द्रव्य, नवपदार्थ, पंचास्तिकायके नाम और कौं
कहै। धर्म वांच्छा सहित, पाप क्रियातैं विमुख, निश्चय भाव भेद ज्ञान करि आपा परके गुण भेद तैं विमुख,
सम्यक् रहित, अविरत गृहस्थ, सो जघन्य कुपात्र है। ए तीन भेद कुपात्र हैं। सो औरन कूं मोक्ष—राह वता-
वैं, किन्तु आप मोक्ष—राह नहीं लागे हैं। इन्हें मोक्ष—मार्गका सुख नाहीं। जैसे राजाका रसोइया अनेक
प्रकार सुन्दर व्यंजन रसोई करि, राजाकौं जिमावै, राजी करे। किंतु आप वाके किए भोजनका स्वाद नहीं
जानैं। तथा जैसे अनेक व्यंजन भोजन महामिष्ट स्वाद रूप हैं तिनमें सर्व जगह हँडियामें धातुका चमचा
फिरै, परन्तु व्यंजन भोजनके स्वाद कूं नहीं पावै। तैसेही अनेक तत्वज्ञानका रहस्य मुखतैं वतावै, मोक्ष होने
के उपाय वताय औरनकूं तत्व रसका स्वाद कराय, मोक्ष मार्ग वताय, सुखी करै। परन्तु आप तत्वरस स्वाद
नहीं पावै, सो कुपात्र है। तातैं कुपात्र तजवे योग्य हेय है। इति कुपात्र भेद तीन। आगे अपात्र भेद तीन
कहै हैं। जे जिन आज्ञा रहित लिंगके धारी, परिग्रह सहित, आपकूं यतीपद—गुरु संज्ञा माने हैं। नाना प्रका
र तप संयम ध्यान करै हैं। राग द्वेष पीड़ित उसके धारी, क्रोध मान माया लोभ करि मंडित, मंत्र तंत्र
जंत्र, औषधि, रसायन धातुमारणा, ज्योतिष, वैद्यक, नाड़ी इत्यादिक चेष्टा करि आजीविका करने हारे होंय,
अनेक भेष-स्वांगके धारी, सो उत्कृष्ट अपात्र हैं। सो औरन कूं तौ ए कुमार्ग उपदेशैं हैं, अरु आप शुभ मार्ग

रहित हैं। जैसे कोई ठग, राजाका भेष धरि, औरन पै अमल चलावै, अरु कहै जो मैं राजा हौं। जो मेरी सेवा करैगा, सो अनेक रिद्धि पाय, सुखी होयगा। तब ऐसा जानि, भोरे-गरीब जीव ठगकौं राजा जानि, ताकी सेवा करैं हैं। सो ए भोरे जीव ही ठगावै है। क्यों, जो ए ऊपरि तैं राजा भया है। अरु अन्तरंग मैं भांड है। सो उल्टा कछू भीख मांगेगा, देवेकौं समर्थ नाहीं। यामैं राजाका एक भी चिन्ह नाहीं। आपही भूखा है। औरन कूं सुखी करवे कूं असमर्थ है। तैसे ही ए अपात्र, आप धर्म-वासना रहित है। तथा और कूं धर्मफल बतायवे कूं असमर्थ है। सो ऐ उत्कृष्ट अपात्र हैं। तातैं तजवे योग्य—हेय हैं। जे गृहस्थ, कुटुम्बादि सहित, जिन आज्ञा रहित, हिंसा—मई तप—संयमके धारक, कन्दमूलके भक्षक कूं आचार्य, सत्य धर्म-दया मई तातैं रहित, कुधर्म-हिंसा मार्गी, आपकूं वृती, तपी, जपी, संयमी, धर्मात्मा मानने हारे, सो मध्यम अपात्र हैं और जिन आज्ञा रहित गृहस्थाचारके धारी, नाम-पूजा-दानादि—अंगी आपकौं जानन हारे, अभक्षके खाने हारे, हिंसा धर्मके लोभी, दया रहित गृहस्थी, आपकूं धर्मी जानें, सो जघन्य अपात्र हैं। ए अपात्रके तीन भेद हैं। इति अपात्र। आगे सुपात्र नव भेद कहैं हैं। तहां सुपात्रके प्रथम तीन भेद हैं। उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य। तहां उत्कृष्ट पात्रके तीन भेद हैं। उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य। तहां तीर्थंकर राज अवस्था तजि दिगम्बर भये, ज बतैं केवल ज्ञान नहीं होय, तब लौं छद्मस्थ दशामैं हैं। तेते इनकौं आहर देना, सो ये उत्कृष्टके उत्कृष्ट पात्र हैं। जिनकूं चारित्रके वलि करि अनेक ऋद्धि उपजी होय। अवधि मनपर्यय ज्ञानादि अनेक उत्तम ऋद्धि धारी यतीश्वर, सो उत्कृष्टके मध्यम पात्र हैं। अष्टविंशति मूलगुण, तेरह प्रकार चारित्रका प्रतिपालक, बीतराग सम्यक् सूर्यके धारी यतीश्वर, सो उत्कृष्ट पात्रके जघन्य पात्र हैं। ए तीन भेद उत्कृष्ट पात्रके कहै। इति उत्कृष्ट पात्र भेद तीन। आगे मध्यम पात्रके तीन भेद कहिए हैं। तहां ग्यारहवीं दशवीं प्रतिमाका धारी त्यागी श्राव- क सो मध्यम सुपात्रका उत्कृष्ट भेद है। पंचमी छठी सप्तमी अष्टमी नवमी प्रतिमाके धारी श्रावक सो मध्यम सुपात्रके मध्यम पात्र हैं। प्रथम तैं लगाय चौथी प्रतिमा पर्यंत सम्यग्दृष्टी श्रावक सो मध्यम सुपात्रके जघन्य त्र जानना। ये मध्यम पात्रके तीन भेद कहे। इति मध्यम सुपात्र भेद तीन। आगे सुपात्र जघन्य पात्रके

तीन भेद कहिए हैं। तहां क्षायिक सम्यक् सहित अव्रत-गृहस्थ सो जघन्य सुपात्रका उत्कृष्ट पात्र है। उपशम सम्यग्दृष्टीका धारी व्रत रहित असंयमी गृहस्थ सो जघन्य सुपात्रका मध्यम पात्र भेद है। क्षयोपशम सम्यक् सहित अव्रती गृहस्थ सो जघन्य सुपात्रका जघन्य भेद है। ए तीन भेद जघन्य सुपात्रके हैं। ऐसे नव भेद सुपात्र कहे। आगे कहे जो ऊपरि तीन भेद अपात्रके तिनकूं उत्कृष्ट पात्र जानि विनय-भक्ति करि गुरु जानि दान देना तो अपात्र दान है। याका फल ऐसा है। जैसे जलके स्थानके मेवेके पेड़ गुलाबके पेड़ विषैं जल और डारिए तौ उस पेड़का नाश फल व शोभाका नाश और जल डाख्या सो वृथा गया क्योंकि आगे धरती जलतैं पूर्ण थी ही तामैं और जल डाख्या सो पेड़ गलि गया। सर्व करी मिहनत वृथा गई। ऐसा ही अपात्र-दान है। दिया धन नाश, फल नाश, सुख नाश। ताकै योगतैं निगोद नरकादिक दुख प्रगटफल होय है। तातैं अपात्रका दान हेय है। कुपात्रकूं गुरु जानि भक्ति सहित दानका फल कुभोग भूमिका मनुष्य होय। इहां प्रश्न जो कुपात्र दानका फल हीन कह्या सो हमकौं सुपात्रका भेद कैसे मिलै? देने वाला तौ बाह्य चारित्रकी तथा मूल गुणनकी शुद्धता देखि दान दिया चाहै है। लाखौं हजारौं मुनियोंमें सम्यक् धारी यतीनाथ तौ थोरे अरु सम्यक् रहित शुद्ध मूल गुण धारी गुरु बहुत सो देनेवारा शुद्ध मूलगुण देखि पीछे ऐसा विचारे जो ए कुपात्र हैं वा सुपात्र है? तो अविनय होय पाप लागै। तातैं केवलीके जानने योग्य बात श्रावक कैसे जानैं? सुपात्र कुपात्रकी बात तौ केवल ज्ञान गम्य है। सो या दान देने वारेके नफा नहीं भासै है। कोईसे दाताकैं भला फल होय तौ होय, नहीं यामैं तौ दानका अभाव होयगा यह सन्देह है। ताका समाधान-भो भव्य! यह बात तूने कही सो सत्य है परन्तु हे भव्यात्मा, जैसे काहू राजाका राज बैरीने छीन लिया है सो वह बाहरे जाय फौज बन्दी करि, युद्ध करै। राजका तखत ताके हाथ नाहीं परन्तु राज—भ्रष्ट भी राजा हो बाजे है। युद्ध कर रह्या है। सो वैरीकौं जीत कभी राज पावैहोगा, तासूं राजा ही कहिए हैं। तैसे जे मुनि सम्यक् सहित चारित्रके धारक थे सो कोई कर्मकी जोरावरी तैं मोहकी प्रबलता करि सम्यक् राजपद छूटि गया होय, तौ भी वह यती अपनी चारित्र सैन्या जोड़ि कैं मोह राजा तैं युद्ध कर रहे हैं। सो कबहूं मोहकौं जीति सम्यक् राज लेंयगे। तातैं ऐसे मुनि

जिनकौं सम्यक् कभूं होय कभूं जाय ऐसे निमित्त जिनकैं बनि रह्या होय तिन्हें कुपात्र ही जानना। कोई जीव कर्म योगतैं चारित्र मोहकी मंदता तैं चारित्र तौ धाख्या होय। अरु कै तौ अभव्य होय तथा दूरानदूर भव्य होय—अभव्य राशिसा होय। ऐसे मिथ्यादृष्टीके धारी मुनि सो कुपात्रन मैं जानना। सो ऐसे मुनि करोड़ोंमें भी एक—दोय नहीं होय हैं कठिन तैं होंय। सो ए कुपात्र हैं। तथा जे मुनीश्वर चारित्र-मूलगुण धारैं हैं। परन्तु अन्तरंग कषायनके योगतैं तिनके मूलगुण दूषित हैं। सो मुनि अपनी मायाचारी करि अपने दोष वाह्य प्रगट नहीं करैं हैं। वाह्य, शुद्ध मूल गुणसे दीखैं हैं। अन्तरंग-ज्ञानीके जाननैमें दोष सहित हैं। ऐसे कषाय भार करि सहित मूलगुणके धारी सो मुनि कुपात्रनमें हैं। सो ऐसे भी मायावी मुनीश्वर बहुत थोरे ही हैं। कोई करोड़ो-अरवोंमें एक होय तौ होय। नाहीं हौय तौ नाहीं। ए मुनि कपात्र हैं। सो कोई दाताके अशुभ कर्मतैं ऐसे मुनिके दानका निमित्त मिलै, तौ कुभोगभूमिका फल होय। नहीं मुनि-दानका फल और मिथ्यादृष्टी जीवन कैं तथा पशूनकैं, सुभोग भूमिका फल होय है। और सम्यग्दृष्टी हैं, तिनकूं दानका फल स्वर्ग—मोक्ष ही जानना। ऐसा तेरेका प्रश्न उत्तर जानि। सुपात्रनके दान देनेकी बुद्धि सदीव राखना, अनु-मोदना करनी। ए सर्व उत्तम फल दाता जानना। कुपात्रका निमित्त कदाचित अशुभ उदय तैं बनै तौ बनै, नहीं तो सदीव सुपात्रनका निमित्त जानना। जैसे देशांतरके फिरन हारे व्योपारो, द्वीपान्तर जाय अनेक कष्ट खाय बहुत धन कमाय ल्याय, सुखी होने हारे ताका निमित्त तौ बहुत है। देशांतर मैं लुट जानैं हारे, जहाज डूबनैं हारे ऐसा निमित्त कबहूं कुकर्म तैं होता है। कमा लाने वारे बहुत हैं। तैसे कुपात्रनका निमित्त अल्प है। सुपात्रके निमित्त को दीर्घता है। ऐसे राह लुटनेकी नांई कदाचित् कुपात्र-दानका निमित्त मिलै तौ कुभोग भूमिका फल जानना। तहां कुभोग भूमिमैं आकार शरीरका नीचे तौ मनुष्यका सा होय है और मुख तिनके पशुअनके आकार हैं। सो कोईका मुख सिंह कैसा है। किसीका हस्ती सा मुख है। कोईका सूअर कैसा मुख है। कोइके मुख घोड़े कैसे हैं। केईका मुख मोर सा है। केइनके कान लम्बे हैं। केइनके ऊंट समान मुख हैं। इत्यादिक आकार जानना। धरती रंधन जोः बिल तिनमैं रहैं हैं। केई वृक्षनके स्थल—कोटरनमैं रहैं हैं।

और तहांकी भूमिकी मिट्टी अमृत समान, तिसका भोजन है। एक पल्यकी आयु अरु एक कोसका शरीर होय है। ऐसा कुपात्र दानका फल है। सुपात्र दानका फल स्वर्ग—मोक्ष है। तथा तीन पल्य, दोय पल्य, एक पल्य, आयुके धारी, भोग भूमियां होय हैं। ऐसे कहे अपात्र—कुपात्र तौ विवेकीन कौं होय। कहे नव प्रकार सुपात्र भेद, सो उपादेय हैं। यथा योग्य पूजिवे-प्रशंसवे योग्य हैं। इति पात्र में ज्ञेय-हेय-उपादेय कथन। आगे पूजा विषैं ज्ञेय हेय उपादेय कहिए है। तहां सुपूजा कुपूजाका समुच्चय जानना, सो तो ज्ञेय है। ताके दोय भेद हैं। एक सुज्ञेय है, एक कुज्ञेय है। तहां वीतराग होय, जाकैं अपने सेवकनतैं राग नाहीं, कि जो यह मेरा भक्तिवंत है, निश दिन-मोकौं आराधै है, सो यातें प्रसन्न होय, याकूं सुखी करौं। ऐसे विचारका नाम तौ राग-भाव है। जो आपकौ नहीं पूजै, अपना विनय नहीं करै निंदा करै आपकी प्रशंसा नहीं करै तौ तातें द्वेष भाव करै ताके मारवे कौं ताकौं रोग करै। इत्यादिक दुख देनेका उपाय करै सो द्वेष-भाव जानना। ऐसे राग-द्वेष जाकैं नहीं होय सो वीतराग समता सुख-समुद्रका वासी परम पवित्र देव, ताकी सेवा पूजा- वंदना है सो सुपूजा है। लोकअलोक जानने हारा, इस तीन लोकमें जेते जीव-अजीव पदार्थ समय समय जैसे-जैसे परणामैं हैं, आगे अनंत कालमें जैसे परणामेंगे अतीतकालमें ऐसे परणामे आये ऐसे तीन-काल तीन लोकके विषैं अनंते जीव जैसे भाव-विकल्प रूप परणामैं हैं। सबके घट-घटकी जानैं। ऐसा अन्तर्यामी सर्वज्ञ भगवान् अनंत गुण भण्डार ताकी पूजा है सो सुपूजा है। ऐसे वीतराग सर्वज्ञ कौं बारंबार नमस्कार होऊ। इति सुदेव पूजा। आगे सुधर्म पूजा कहिए है। तहां सर्वज्ञ-वीतरागका वचन सोई शुभ धर्म है। सर्वज्ञपने तैं कछू छिपा नाहीं। वीतराग भावन तैं जैसा भासै जैसाका तैसा कहै। औरकी और नहीं कहै। सो ऐसे भगवानके वचन प्रमाण हैं। इनके भासै वचनहीका नाम शुद्ध मार्ग रूप भला धर्म है। सो ही धर्म यथार्थ सत्य है। या धर्ममें कहे जो पदार्थ सो प्रमाण हैं। ये ही धर्म पूज्यवे योग्य उपादेय है। इस ही धर्म प्रमाण जो दीक्षाके धरन हारे दिगम्बर वीतराग इन्द्रियन सुखनतैं विमुख आत्मरसके स्वादी तपसी नगन तन धारी षट्कायके रक्षक विनकारण जगतबन्धु मोक्ष अभिलाषी और के हित वांछक सो ऐसे गुरु पूज्य हैं उपादेय

हैं। ऐसे कहे जे देवधर्म गुरु इनकी पूजा है सो सुपूजा है। सम्यग्दृष्टीन करि उपादेय है। इति सुपूजा ॥ आगे कुपूजा कहिये है। तहां ऊपरि कहि आये देव धर्म गुरुका स्वरूप तिसतैं बिपरीत जो अपनी सेवा पूजा प्रशंशा करै जासूं संतुष्ट होय ताकं कहे तोकूं धन दैं हौं। जो आपकी सेवा चाकरी सुश्रूषा नहीं करै तौ अपनी भक्ति तैं विमुख, आपका निंदक जानैं ताकौं डरावे। कहे, याकौं रोगी करौं। याका धन-पुत्र हरौं, याकौं बहुत दुखी करूंगा। ऐसे किसी तैं राग, किसी तैं द्वेष करनै हारो देव, सो सरागी संसारी है, हेय है। इनकी पूजा सो कुपूजा है। देव तौ कहावै, अरु गई वस्तु कूं खोजता फिरै, नहीं मिलै तौ शोक करै, ऐसे अज्ञानी देव, मोही देवनकी पूजा है, सो कुपूजा है। तथा और के मारवे निमित्त अवधि धारि, त्रिकराल रूप वनाय, सुभट सा दीखै। जाकी छवि देखि, जीवन कौं भय होय। ऐते भयानीक देवकी पूजा है सो कुपूजा है। जिन सरागी देवों की छवि देखै, भगत जगतके जीव, तिनकूं कामचेष्टा होय, सरागता बढ़ै। स्त्री संगम आदि अनेक इन्द्रिय भोग याद आवैं। ऐसे विकारी देवनकी पूजा है, सो कुपूजा है। इन्ही कुदेव सरागीनके उपदेशे शास्त्र, चमत्कार रूप फाँसी कूं धरे, हिंसा आरंभके प्ररूपण हारे शास्त्र, तिनकूं सुनै इन्द्रिय भोगकी अभिलाषा रूपी अग्नि प्रगट होय। श्रोतानिका चित्त स्त्रीनके भोग रूप होय, ऐसे विकार भावका उपजावन हारा कथन जिन शास्त्रन में होय, तिन शास्त्रनकी पूजा सो कुपूजा हैं। क्रोध मान माया लोभ सहित परिग्रही, गृहस्थ समान पापारंभ कुशील-असंयमके धारी अपनी महिमा बड़ाई-सत्कार-पूजाके वांच्छक अनेक भेष धरन हारे, जंत्र—तंत्रका चमत्कार भोरे जीवनकूं बताय अपना गुरुपद मनावतें होय तथा ज्योतिष—वैद्यकादि विद्याकरि राजानकूं रिझावेकी अभिलाषाधारी, याचनावृतकौं लिए विषयाभिलाषी, मोही घर तजै पीछै भी लौकिक गृहस्थनकी नाईं नाता—सगाईकी बुद्धि राखते होंय, इत्यादि कुआचार सहित जो होंय और आपकौं गुरु मनाय पुजावैं, सो ऐसे गुरुकी पूजा करनी सो कुपूजा है। और एकेंद्रिय घास—वृक्षनकी पूजा करनी, सो कुपूजा है। भूमि पूजा अग्नि—पूजा, जलका पूजन अन्नकी पूजा ए कुपूजा जानना। इहां प्रश्न—जो इनका पूजन क्यों निषे-धा ? इनमैं तौ देवत्व-भाव प्रगटपनै दीखै है। देखो अन्न अरु जल है, सो तो सर्व जगत—जीवनकी रक्षाका

आधार है। इन बिन प्राण रहैं नाही। तातैं सर्वका रक्षक देव जानि पूजना योग्य दीखे है। और अग्नि है सो याका तेज प्रताप प्रत्यक्ष दीखे है। इस अग्नि करि अनेक कार्यकी सिद्धि होय है। अन्नादिकका पचावना इसही तैं होय है और भी अनेक अलौकिक कार्य अग्नि तैं होते दीखैं हैं। तातैं यामैं भी देवत्व—भाव भासे है। वनस्पती है सो वृक्षादिक तौ सर्व जीवनकी रक्षा सुखकौं छाया करैं हैं। और धरती है सो प्रत्यक्ष धीरजता लिए सर्व जगतका भार सहै है। कोई तौ धरती को खोदैं हैं। कोई यापै अग्नि प्रजालैं हैं। कोई यापै कूड़ा डारै हैं। केई मल—मूत्रादि डारैं हैं इत्यादिक जगत-जीव उपद्रव करैं हैं। परन्तु धरती काहूतैं द्वेष नहीं करै है। ऐसी वीतराग दशा धरै है। तातैं प्रत्यक्ष देवता है। ऐसा जानि पूजिये है। ताका समाधान—भो भोरे सरल परणामी सुनि। हे भव्य, चित्त देय के धारन करना। जो पदार्थ जगत मैं पूज्य है—बड़ा है—श्रेष्ट है। ताका अविनय कोई करै भी. तो कदाचित् भी नहीं होय है। या लौकिक प्रवृत्ति अनादि-कालकी तीन लोक मैं चली आवै है। जो पूज्य हैं ताका अविनय जो करै, सो ताकूं महा-पापी कहैं हैं। तातैं हे भाई, तूं देखि। अन्न अरु वनस्पतीका तौ सर्व भक्षण करैं हैं। और जलकौं पीवै हैं, डालै हैं, हाथ-पांवन तैं मर्दन करै हैं। कोई अन्न पीसै है। कोई वनस्पती छेदन करैं हैं। इत्यादिक क्रिया होतैं, विनय सधता नाहीं। तौ पूज्य-पद कैसे संभवै? अग्निकौं जलाइए, बुझाइए, पीटिये दाविए, हाथ-पांवके नीचे मसलिए, इत्यादिक अविनय होय है। और सबतैं हीन मनुष्य होय, सो भी इनका अविनय रूप परणमैं है। तातैं इनमैं देवत्व भाव नाहीं ये कर्म—योगतैं एकेन्द्रिय भये हैं। सो पूर्वला पापका फल भोगवै हैं। महा अविनय-अनादरके स्थान भए हैं। तातैं भव्य ऐसा जानि। अविनयका स्थान जो वस्तु होय सो पूज्य नाहीं। तातैं इनकी पूजा है, सो कुपूजा है। इत्यादिक ऊपर कहे जे स्थान सो सम्यक् भाव मैं हेय कहे हैं। इति कुपूजा। ऐसे सुपूजा—कुपूजा मैं ज्ञेय हेय-उपादेय कथन।

इति श्री सुदृष्टि तरंगिणी नाम ग्रन्थ मध्ये व्रत दान पात्र पूजा, धर्म-अंगनमैं ज्ञेय-हेय-उपादेय वर्णनो नाम, चतुर्दश अधिकार सम्पूर्णम् ॥ १४ ॥

आगे तीर्थ विषैं ज्ञेय-हेय उपादेय कहिए है। तहां सुतीर्थ कुतीर्थका समुच्चय जानना सो तो ज्ञेय है।

ताके दोय भेद हैं। एक सुतीर्थ है। तहां अढ़ाई द्वीप प्रमाण पैंतालीस लाख योजन क्षेत्र लोकके शिखर, सिद्ध लोक सो शुद्ध तीर्थ है। तथा सिद्ध आत्माके असंख्यात प्रदेशन करि रोक्या हुवा सिद्ध क्षेत्र, सो पूजवे योग्य है। सो ही शुद्ध तीर्थ है। तथा जहां तैं यतीश्वर शुद्धोपयोग करि अष्टकर्मका क्षय करि सिद्ध पद पाया सो सुतीर्थ है। जैसे सम्मेद शिखरजी, गिरनारजी, आदि वीस तीर्थंकरनकौं आदि अनेक मुनि जहांतें सिद्ध भये तातैं सम्मेद शिखर सिद्धक्षेत्र तीर्थ है नेमिनाथजी तीर्थंकर आदि बहत्तरि कोड़ि सात सौ यती कर्मनाश जहां सिद्ध भये तातें गिरनारजी सिद्ध क्षेत्र तीर्थ है। शत्रुंजयजी तहां तैं तीन पांडव आदि आठ कोड़ि यतीश्वर मोक्ष गये। तातें तीर्थ है। अष्टापद जो कैलाश पर्वत जहां तैं आदि-देव वृषभनाथ आदि लेयकैं अनेक ऋषिनाथ निर्वाण गये। तातैं कैलास तीर्थस्थान है। चम्पापुरी तैं वासुपूज्य वारहवें तीर्थंकर आदि अनेक तपनाथ कर्म हरि मोक्ष गए। तातें उत्तम तीर्थ है। पावापुरी तैं अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामी आदि अनेक योगीश्वर मोक्ष गए। तातें शुभ तीर्थ है। और तारवरजी तैं साढ़े तीन कोड़ि यती वैकुंठकूं गये, तातें भला तीर्थ है। तथा पावागिर तैं रामचन्द्रके पुत्रादि पंच कोड़ि तपसी जामन—मरण तैं रहित भए। तातें शुद्ध तीर्थ है। गजपंथाजी तैं बलभद्र आदि आठकोड़ि गुरुने अमूर्तीक पद पाया, तातें गजपंथाजी उत्कृष्ट तीर्थ है। तुंगीगिरजी तैं रामचन्द्र, हनुमान सुग्रीव आदि निन्यानवे कोड़ि ऋषिराज भव समुद्र पार भए। तातें तुंगीगिर उत्तम तीर्थ है। तथा श्री सोनागिरजी तैं साढ़े पांच कोड़ि गुरु सिद्ध भए, तातें पूज्य तीर्थ है। और रेवा नदीके तटन तैं रावणके पुत्र आदि साढ़े पांच कोड़ि यती निर्वाण गये, तातें जगत पूज्य तीर्थ है। तथा रेवा नदीके तट, सिद्धवरकूट नाम पर्वत है। ताकी पश्चिम दिशा तैं दोय चक्री, दश कामदेव, आदि साढ़े तीन कोड़ि मुनि सिद्ध लोक गए, तातें उज्वल तीर्थ है। और बड़वानी नग्रकी दक्षिण दिशामें चूलगिर नाम पर्वत है। तहां तैं इन्द्रजीत रावणका पुत्र कुम्भकरण रावणका भाई इन आदि अनेक ऋषीश्वर मोक्ष भए तातें भला तीर्थ है। और अचलापुरकी ईशान दिशा विषैं मेढ़गिर नाम पर्वत है। तहां तैं साढ़े तीन कोड़ि मुनि निरंजन भए, तातें यह मंगलीक तीर्थ पूज्य है। तथा कोटिशिला तैं, पांचसौ कलिंग देशके राजा अरु दश-

रथजीके केतेक पुत्रनकौं आदि दे एक कोड़ि मुनि सिद्ध भए तातें उत्तम तीर्थ है। तथा पंचमेरु तें अनेक चारण मुनि सिद्ध भये तातें तीर्थ है। तथा इस ही अढ़ाई द्वीप में अनेक अतिशय तीर्थ हैं। तथा नन्दीश्वर द्वीप आदि अनेक तीन लोक क्षेत्र विषैं, अकृत्रिम जिन मन्दिर हैं, सो तीर्थ हैं। तथा और तप—ज्ञान निर्वाण—कल्याणादि अनेक स्थान हैं। जो सर्व योग्य पूजवे योग्य हैं, शुद्ध तीर्थ हैं ऐसे कहे जे सकल तीर्थ सो सम्यग्दृष्टीन करि पूजवे योग्य तीर्थ हैं। तथा राग द्वेष क्रोधादि कषाय रहित शुद्ध पद दयामयी भाव, निर्मल भाव सो उत्कृष्ट निकट तीर्थ हैं। इन तीर्थनको वीतरागी मुनीश्वर भी वन्दना हेतु यात्रा करैं, तौ सरागी सम्यग्दृष्टी गृहस्थी हैं। सो उन्हें ऐसे तीर्थनकी वन्दना करि अपने लाग्या जो अनादि पाप—मेल, ताकौं तीर्थ—जल करि धोय, शुद्ध—पवित्र होना, योग्य ही है। ए कहे तीर्थ जिनके किए पाप नाश होय, कषाय मंद होय, सुबुद्धि प्रकाश होय। तातें ए कहे तीर्थ सो यती—श्रावकन करि पूजवे योग्य हैं। तातें उपादेय हैं। इति सुतीर्थ ॥ आगे कुतीर्थका लक्षण कहिए हैं। तहां केतेक भोरे-प्राणी जे पुण्य-उदय रहित हैं ते औरन कूं अनेक राज-भोग भोगते देख, लोभाचारी, विषय पोखवे कूं, वांच्छित सुखकूं उद्यम करता, काहू अज्ञान गुरु कौं पूछ्या। वानें याकूं मूर्ख जानि वहकाया। जो तू महा दीर्घ जलके समूहमें प्रवेश करि, जल पातन (मरन) करै, तौ यह वड़ा तीर्थ है। केतेक भोरे प्राणी धन, राज, स्त्री, तन सम्बन्धी अनेक वांच्छित भोगके अभिलाषी होय। काहू कौतुकी पुरुषकूं पूछ्या, जो वांच्छित सुख ए कैसे मिलै? तव तिस निर्दयी नै कौतुक हेतु, याकौं मूर्ख जानिकैं कहीं। जो जलती अग्निमें निःशंक होय प्रवेश करै, अपना तन भस्म करै, तौ या उत्तम तीर्थके फलतैं तोकूं वांच्छित भोग मिलैं। सो तू अग्नि-तीर्थ भला जानि। ऐसा जनि, बाल बुद्धि, लोभी, अग्निही में प्रवेश करि, तीर्थ मानते भये। सो हे सुबुद्धि, अग्नि प्रवेश तीर्थ सुबुद्धीनके करवे का नहीं है। सो कुतीर्थ हेय जानना। और केई भोरे जीव ज्ञान-धन रहित सुन्दर स्त्रीनके भोगकी इच्छा वारेने काहू कूं पूछी। जो सुन्दर स्त्री-भोग कैसे मिले? तव याकं ज्ञान हीन जानि काहू निर्दयी ने कौतुक निमित्त करि बहका दिया। कही हे भाई जो शस्त्रधारा तीर्थ वड़ा है। सो तू शस्त्रके मुख निशंक होय मरण

करै तौ तोकूं जोगणी देवी है सो अपना भरतार करै। तहां देवांगनाके भोग भोगना मनुष्यनकी कहा बात है। तातें तूं शस्त्र धारा तीर्थ तैं मरि। सो यह भोगार्थी भोरा जीव ऐसी ही मानि धारा तीर्थ स्वीकार किया सो हे भव्य यह धारा तीर्थ हास्य वचन तैं चल्या है तातें हेय है। यह शस्त्र तैं आप मरै सो महा संक्लेश भाव होय। और कूं आप रणमैं मारै सो महा रौद्र भाव होय। सो परघात करने हारे पापभार सूं देव लोक कैसे होय? परन्तु जैसे अज्ञान पतंग दीप कूं महा सुन्दर जानि विषय भोगके लोभ तैं दीपकमैं पड़ि भस्म होय है। क्योंकि ए पतंग ज्ञान रहित है। तातैं अपना पुण्य तो नहीं समझै है। अरु बड़े भोग चाहै है। तातैं मरणकौं पाय हीन ही गतिमैं उपजै है। तैसे ही ए भोगाभिलाषी शस्त्रके मरण कूं तीर्थको कल्पना करि शस्त्र धारारूपी दीपकमैं पतंगकी नाई भस्म होय हैं। सो रौद्र—भावन तैं मरि अशुभ गति जाय हैं। देव सुख तौ शील पालना तप जप संयम करना दान देना प्रभु सेवा पूजा करना दया भाव राखना समता पालनी इत्यादिक पुण्य भावन तै होय। तातें हे सुबुद्धि ए तीर्थ नाहीं। शस्त्रधारा कुतीर्थ है। तातें विवेकमैं तजवे योग्य है। हे भाई जो शस्त्रधाराका मरण तीर्थ होता। तौ जगत जीव शस्त्र तैं डरते नाहीं सब ही शस्त्र तैं मरते। यह तौ महा सुगम है। निकट ही है। कछू धन लागता नाहीं। परन्तु तूं विचार। जो लोग खेद खाय लाखौं धन खरचि, हजारों कोस तीर्थन कूं जाय हैं, अरु शस्त्र तैं डरे हैं। तातें ए कुतीर्थ जानना। और यहां कोई कुबुद्धि कहै जो यह धारा तीर्थ हर जगहके करनेका नाहीं। महा सूरिमाके करनेका है। तौ भो भव्य, सुनि। बड़े बड़े महांन वंशके उपजे सूरमा-राजा, आगे राज सम्पदा छोड़ि, युद्ध,-शस्त्रघात छोड़ि समता धारि तप लेय बनमैं तिष्ठ समता भाव धर नाना प्रकार तप करते, शुभ मान्या। भली देवादि गति गए, सुखी भए। जो शस्त्र-धारा तैं भला होता तौ महा सामंत कुलके, तप काहेको लेते? तातें धारा-तीर्थ तजिवे योग्य हेय है। अरु केई भोरे जीव नदीनके तैं पाप उतरता मानैं हैं। जो उन नदीके जलमैं स्नान करै पाप-मल धुवै है। सो यह कहने वारा भोरा शिथिल श्रद्धानी है। धर्म--गांठ रहित है। इस ही बात पै दृढ़ खड़ा नहीं रहै है। याहीकौं कहिए हैं।जो

इस शूद्रसे मिट्टीका कलश लेय कैं इस नदीके जलमैं दश-पांच बार अच्छी रीति तैं धोय लेय। जिससे वे शूद्रका मिट्टीका कलश, पवित्र होय। ता पीछे इस कलश तैं जल पीया करो। यातैं सपरो (स्नान) करो। तो यह कहै, ये शूद्रका वर्तन मिट्टीका है हम यातैं जल कैसे पीवैं? कैसे सपरैं? यह मलीन है। याही भ्रम-बुद्धिकी ग्लानी नहीं जाय। तौ याकौं कहिए। हे विवेकी तू देखि। यह मिट्टीका बासन हैं। ताकौं अग्निमैं जाल्या है। ऐसे शुद्ध कलश ताकूं नदीमैं दश-पांच बेर धोय शुद्ध किया। ताकू तूं पवित्र मानता नाहीं। तौ हे सुबुद्धि देखि। ए शरीर महा मलीन सात धातु रूप अपवित्र अरु पाप मैल तैं मलीन आत्मा सो इस नदी के जल तैं सपरै (स्नान करै) तो कैसे पवित्र होय है? तू ही तौ इस जल तैं धोये पीछे वासनकी घिन नहीं तजै है। तौ और कोई विवेकी परभव सुखका लोभी आत्मा शुद्ध होता कैसे मानै? तातैं तेरे ही एकान्त बुद्धिका हठ है। भो भव्य जिनका हृदय कठिन दया भाव रहित है ते अनगाले जलका समूह नदीका स्नान तीर्थ कहै हैं। नदी है सो तनका मैलि दूर करवे योग्य है। अरु आत्माकैं पाप मैल लाग्या है ताके मैटवेको समर्थ नाहीं। तातैं ऐसा जानना जो पाप मैल दूर करवे कूं दान पूजा भगवानका सुमरणादि धर्म अंग ए उत्तम तीर्थ समता भावके कारण समर्थ हैं। नदी तीर्थ हेय है। और ज्ञान चक्षु रहित प्रांणी समुद्रकौं तीर्थ कहैं हैं। ऐसा उपदेश करैं हैं अरु आप अच्छैं हैं। जो जेती नदी तीर्थ रूप हैं सो सर्व यामैं आय मिली हैं अरु बहुत जलका समूह है। तातैं सबतैं बड़ा तीर्थ समुद्र है। या विषैं स्नान किए पाप कटते मानैं हैं। सो आचार्य कहैं हैं। हमकूं बड़ा आश्चर्य यह है। जो जाके जल तैं स्पर्श भए तन फाटै जाके योग तैं केतेक तौ जलमैं पैठते (घुसते) डरैं हैं। उसे केतेक भोरे आत्माराम तीर्थ मानैं हैं। सो जाका जल तनके लगते खेद करैं तो स्नान किए सुख कैसे होय? तातैं हेय है। और केतेक सामान्य बुद्धिके पात्र ऐसा समझैं हैं तथा औरनकौं उपदेश करैं हैं कि धरती माता बड़ी धैर्यकी धरनहारी है। याकौं जगतके जीव अनेक प्रकार खोदैं फोड़ैं हैं। यापै कोई धूरा डारै हैं। तौ भी धरती खेद नाहीं मानैं है। और इस धरती तै उपज्या अरु इस ही धरतीमैं मिलना है। तातैं जीवत ही धरती में गड़ना शरीर सहित धरती में प्रवेश करना सो धरा तीर्थ

है। या समान और तीर्थ नाहीं। ऐसा समझा जीवताही धरतीमैं गड़ि प्राण नाशै है। और याकौं धरा तीर्थ मानैं हैं। और यो भोरा जीव ऐसा नहीं समझै है जो धरती तीर्थ होती तौ यामैं मलमूत्र कैसे करते? खोदन जालनादि अविनय भी नहीं करते? तातें हे भव्य ऐसा जानना जो सर्व धरती तीर्थ नाहीं। सिद्ध क्षेत्रकी धारा तौ तीर्थ है और अन्य धरतीतीर्थ हेय है।

इति श्रीसुदृष्टितरंगिणी नाम ग्रन्थ मध्ये तीर्थ परीक्षा विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय विचार पंच-दश सम्पूर्ण ॥ १५ ॥

आगे परस्पर काल गमावना रूप जो चरचा तामें ज्ञेय हेय उपादेय कहिये है—

गाथा—पुण्णदा अघखय कारिय, चरचोपादेय परमफलदायी ॥ पावमई शुभहारी, सा चरचा तु हेय जिण मग्गो ॥ ४१ ॥

अर्थ—जा चरचा तैं पुण्य होय पापका नाश होय। सो चरचा तौ उपादेय है। और जातें पापकर्म उपजैं और अगले किया पुण्य कर्म ताका अभाव होय ऐसी चरचा हेय है। ऐसा जिनदेव नै कह्या है। भावार्थ—चरचा नाम परस्पर वार्तालाप (बोलने) का है। सो बतलावना है सो विवेकी जीवनकौं ज्ञेय-हेय उपादेय करि बतलावना योग्य है। सो ही कहिए है। शुभाशुभ चरचाका समुच्चय भेद सो तो ज्ञेय है। ताके ही दोय भेद हैं। एक शुभ चरचा है। और एक अशुभ चरचा है। सो जहां तीर्थंकर चक्रवर्ती नारायण बलभद्र कामदेव देव इन्द्र इत्यादिक महान् पुरुषनकी उत्पत्ति राज सम्पदा भोग सुख इनका वैराग्य इनके स्वर्ग मोक्ष होनेका कथन सो प्रथमानुयोग ताकी चरचा परस्पर करना। सो पापकौ नाशै अरु पुण्यफल देय ऐसी चरचा धर्मात्मा सम्यग्दृष्टीन कौं उपादेय है। तीन लोककी रचना जो अधोलोक सात राजू तहां भवनवासी व्यंतर देव पुण्यका फल भोगते सुख समुद्र में मगन भए काल गवांवैं हैं। ताके नीचे सात नरक हैं। तहां जीव बड़े पापनका फल भोगते, महा दुख समुद्रमैं डूब रहे हैं। विलाप करते, काल व्यतीत करै हैं। और मध्य लोक विषैं असंख्याते द्वीपसमुद्र हैं। तिनमैं पैंतालीस लाख योजन तौ मनुष्यलोक हैं। बाकीके सर्व द्वीप नमैं तिर्यक् लोक है। अढ़ाई द्वीपमैं मेरु कुलाचलादिककी चरचा सो उपादेय है। और उर्ध्वलोक विषैं सोलह स्वर्ग हैं। अहमिन्द्र, सर्वार्थसिद्धि आदिके देव, पुण्य फल-सुख भोगते सुखी हैं। तिनके ऊपरि सिद्ध लोक,

तहां अनन्ते सिद्ध-भगवत विराजैं हैं। ऐसे इन तीन लोककी चरचा परस्पर करनी, सो करणानुयोग चरचा सम्यग्दृष्टीन करि उपादेय-करवे योग्य है। और जहां मुनि-श्रावकके समिति, गुप्ति आदि ग्यारह प्रतिमादि आचारकी चरचा करना, सो चरणानुयोगकी चरचा उपादेय है। जहां जीव द्रव्य, पुद्गल द्रव्य, धर्म, अधर्म, काल, आकाश ए षट् द्रव्य हैं। जीव तत्व, अजीवतत्व, आश्रवतत्व, बंधतत्व, संवरतत्व, निर्जरातत्व और मोक्षतत्व। इनमैं पुण्य और पाप मिलाये नव पदार्थ। ऐसे षट् द्रव्य, सप्ततत्व, नव पदार्थ, आदिकी चरचा परस्पर करना सो उपादेय है। याका नाम द्रव्यानुयोग चरचा है। तथा जीव कर्म तैं कैसे वंध्या है? कैसे छूटै? इत्यादिक चरचा उपादेय है। तथा अनेक तीर्थों की चरचा, दान पूजा, शील, संयम, तप, व्रत, दया भाव, जीवनकी रक्षा इत्यादिक केवली भाषित चरचा, सो उत्तम चरचा है। तातैं पापका नाश और पुण्य कर्मका संचय होय है। तातें उपादेय है। इति शुभ चरचा। आगे कुचरचा-हेयका स्वरूप कहिए है। जहां परस्पर चरचा तैं पापका बंध होय, आगेका किया पुण्य सो क्षीण होय, ऐसी चरचा होय हेय है। भावार्थ—कुदेव, कुगुरु और कुधर्म इनकी पूजा-भक्तिकी चरचा। इन कुदेवादिकके अतिशय-चमत्कारकी चरचा प्रसंशा रूप वात, सो हेय है। अपने-पराये राजानके युद्धकी वात, हारे-जीतेकी, निन्दा-प्रशंसाकी चरचा, तथा खोर की चतुराई की चरचा, मंत्र, जंत्र, तंत्र, टोणा, चौमणा, ज्योतिष, वैद्यकादिके चमत्कारको चरचा, मल्ल युद्ध हस्ति-घोटकादिकी लड़ाईकी चरचा, ए कुचरचा हेय हैं। तथा स्त्रीनके रूपलावण्यकी वार्ता करनी। तथा स्त्रीनके अनेक शुभाशुभ चरित्र, कला, गीत, गान, गालि, नृत्य, भोग, चेष्टादि की चरचा, सो हेय है। तथा अनेक प्रकार भोजन, व्यंजन, रस-पान, भोगोपभोगमैं अच्छे-बुरेकी चरचा, सो हेय है। और कूं पीड़ा उपजायवेकी, पराधन नाश करावेकी, पराए मान खंडनकी परस्पर चरचा सो हेय है। अनेक देशनमैं, किसीको भला किसीको बुरा कहनेकी चरचा। परस्पर युद्ध होय, द्वेष बंधै, ताकी चरचा। तथा स्वचक्र-परचक्रादि सप्त ईति-भीतिको चरचा, सो हेय है। और तन रोगादिक उपजवेकी, क्षय होयवेकी इन आदि अनेक विकथा रूप चरचा, अशुभ बंधको करन हारी, सो हेय हैं।

इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थे मध्ये चरचा विषैं ज्ञेय- हेय-उपादेय वर्णनो नाम सोलहवां अधिकार संपूर्णम् ॥ १६ ॥

आगे अनुमोदना अधिकारमें ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिये है। तहां शुभाशुभ कार्यनकी अनुमोदनाके समुच्चय भावका जानना, सो तो ज्ञेय है। ताहो ज्ञेय के दोय भेद हैं। एक शुभ अनुमोदना है। एक अशुभ अनुमोदना है। भावार्थ—जहां लौकिक कार्यन मैं, पुत्र-पुत्रीके शादी-व्याहमें, मंदिर-महलके आरम्भ मैं, युद्ध विषैं, अपने मनकी अनुमोदना हेय है। तथा भले रूपमैं, भले भोजन मैं, कूपसे पानीके काढ़िवे मैं, वापी-तालावके खुदावै मैं, इत्यादिक भूमि खोदनेके आरम्भमैं अनुमोदना, पाप-बंध करै है, तातैं हेय है। तथा काहू ने काहू पै शस्त्र चलाया, लकड़ीका प्रहार किया, यह देखि, अनुमोदना करनी हेय है। तथा काहूका धन लुटता देखि-सुनि तथा तन पीड़ा देखि, तथा काहूके हाथ-कान-नाकादि अंग उपांग छेदते देखि, अनुमोदना करना हेय है। तथा कोईके कुतप व कुज्ञानकी दीर्घता देख, अनुमोदना करनी हेय है। और कोई कुदेव-गुरुनके बड़े आरंभी बड़ा द्रव्य लागतके मन्दिर मठ स्थान देखि अनुमोदना करना, अशुभ फलदायक जानि, हेय है। और तीर, गोली, नाली, तोप, बन्दूक, कमान, छुरी, कटारी, शमशेर, बरछी इत्यादि अनेक शस्त्र, जीवघातके कारण देखि इनकी अनुमोदना करनी हेय है। और कोई भला बाणावणी (धनुर्धारी) अनेक शस्त्र कलामैं प्रवीण तीर गोला गोलीका चलावने हारा पुरुषकी अनुमोदना हेय है। तथा नदी सरोवरन की पाली (बांध) फोड़िकैं तथा फूटी देखि कैं तथा नगर बन मैं अग्नि लगी देखि तथा नगर मुल्क कौं लुटता देखि सुनिकैं अनुमोदना अशभ फल देन हारा है। तातैं हेय है। और कुतीर्थनके स्थान तथा तिनके कर्ता देखि तिनकी अनुमोदना करनी हेय हैं। और कृष्यारम्भ पशु संग्रह खेटकादि जीवघात विषैं हर्ष करना हेय है। और अनेक मिथ्यात कारणन मैं तथा बहु पापारंभ परिग्रहके विकल्पन मैं हर्ष अनुमोदना ये जानि तजना सो गुणकारी है। इति पाप अनुमोदना हेय। आगे शुभ अनुमोदना उपादेय कहिए है। जहां मुनीश्वर ध्यानाग्नि तैं कर्मनाशि निरंजन भए तिनकी बन्दना मैं हर्ष करना उपादेय है। तथा कोई भव्य आत्मा गुरुका उपदेश पाय संसार दशा त

उदास होय तप करता होय तामें अनुमोदना उपादेय है। तथा कोई जिन दीक्षा धारी मुनीश्वर शुक्ल ध्यान करि च्यारि घातिया कर्म नाशके केवलज्ञान पाया, तिनकी बन्दना में हर्ष-अनुमोदना उपादेय है। और जिन कालन मैं निर्वाण केवल ज्ञान, तप कल्याणक हुए तिन कालनकी पूजा-बन्दना विषैं अनुमोदना उपादेय है। और जहां कोई भव्यात्मा धर्मी जीवकौं सम्यक प्रकार बारह प्रकार तप करता देखि तथा अनेक तीर्थ सिद्ध क्षेत्रनकी बन्दना करते देखि, तथा अकृत्रिम अरु कृत्रिम जिन चैत्यालयोंकी बन्दना करता देखि, इन कार्यन मैं भव्यात्मा कूं प्रवर्ते देखि, तिनको अनुमोदना करना उपादेय है। तथा तीर्थंकरके पंचही कल्याणकनके समय देखि—सुनि हर्ष भाव, उपादेय है। तथा अष्टान्हिकाके दिन मैं इन्द्रादि देव नन्दीश्वर द्वीप विषैं जाय पूजा—उत्सव करैं, तिस काल मैं बन्दना करना हर्ष सहित—तामैं अनुमोदना उपादेय हैं। और श्री दशलक्षण पर्व आदि मैं पूजा संयम तप जे भव्य करैं, तिनकी अनुमोदना उपादेय है। तथा जिन मन्दिर कराय तिनकी प्रतिष्ठाका उत्सव करि हर्ष मानना तथा और भव्य नै किया होय तो ताकी उत्तम भावना देखि हर्ष अनुमोदना करना उपादेय है। और जहां निरन्तराय करि मुनिका दान आपकैं तथा परकैं भया जानि अनुमोदना करना उपादेय है। तथा कोई भव्यात्माकूं जिनवाणीका अभ्यास करता देखि तथा सुनि हर्ष करना उपादेय है। तथा कोई धर्मात्मा कूं दीन जीवन कूं दया भाव सहित दान देता देखि हर्ष करना, उपादेय है। तथा काहू भव्यात्मा पुरुषकी करी जिन मन्दिरको अनेक शोभा-रचना देखि, अनुमोदन करना उपादेय है। तथा जिन मन्दिरके उपकरण छत्र, चमर सिंहासन भामण्डल घंटा चन्दोवा तथा पूजाके उपकरण थाल रकेबी झारी प्यालादि देखि हर्ष करना उपादेय है। तथा उत्कृष्ट अक्षर पत्र, बन्धना पूठा सहित शास्त्र देखि तथा काहू धर्मी नै शास्त्र लिख्या तथा लिखाया देखि अनुमोदना करनी उपादेय है। तथा कोई भव्यका मिथ्यात नाश सम्यग्भाव भया जानि तथा कोई जीव धर्म सन्मुख भया देखि इनको हर्ष अनुमोदना करना उपादेय है। और पंच परमेष्ठीकी भक्ति सहित जीवकौं देखि तथा तीर्थंकरका समोशरण देखि तथा रचना सुनि तथा मुनि अर्जिका श्रावक श्राविका च्यारि प्रकार संघकौं देखि हर्ष भाव करना। और अपनेसे गुणाधिक धर्मात्मा

जीवकूं देखि अनुमोदना करना, उपादेय है। तथा किसी धर्मात्मा जीवकूं तीर्थयात्राकूं उत्सव सहित जाता देखि अनुमोदना करनी तथा कोई धर्मात्मा जीवनकौं साता देखि तथा धर्मी जीवनके समूह में साता सुनि अनुमोदना करनी उपादेय है। ऐसे कहे जो अनेक पुण्य उपजवेके पूज्य स्थान तिन सर्वमैं सम्यग्दृष्टी जीवनकौं हर्ष अनुमोदना करना उपादेय है।

इति श्री सुदृष्टि तरङ्गिणी नाम ग्रंथ मध्ये अनुमोदना भेदको परीक्षा विषे ज्ञेय-हेय-उपादेय कथन वर्णनो नाम सतरहवां पर्व सम्पूर्ण ॥१७॥

आगे मोक्ष विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कथन कहिए है—

गाथा—मोक्खे गे हे पादे, आवागमणोय मोक्ख हे भणियो। कम्म विमुक्को मोक्खो, पादेयो सुह दिट्ठीए ॥ ४२ ॥

अर्थ—मोक्ष विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय है। सो जो आवागमन सहित मोक्ष है सो तौ हेय है। और कर्म रहित मोक्ष है सो सम्यग्दृष्टी जीवन करि उपादेय है। भावार्थ—समुच्चय मोक्षका जानना सो तौ ज्ञेय है। ताही ज्ञेयके दोय भेद हैं। तहां भोरे जीवनकी कल्पी जो लौकिक मोक्ष सो ता मोक्षकौं ऐसी मानैं हैं। कि जो आत्मा मोक्ष जाय सो तहां महा सुखी रहै। पीछे शुद्धात्माकी इच्छा होय तो संसार विषैं पीछे आवै। सो ऐसी मोक्ष संसार समान है। काहे तैं ? जो जनम-मरण तौ संसारका स्वभाव है। अरु मोक्ष विषैं जामन मरण नाहीं है। तातैं जे अल्पज्ञानी मोक्ष जीवनकौं जन्म लेना फेरि मानैं हैं। सो मोक्ष हेय है। शुद्ध जो मोक्ष है। तहां गया जीव फेरि अवतार लेता नाहीं। जैसे पृथ्वीकी खानि विषैं तैं अग्नि आदिके निमित्त पाय करि यतन पूर्वक काढ्या जो सुवर्ण, सो मिट्टी तैं भिन्न भये पीछे मिट्टीमें मिलाइये तौ मिलता नाहीं। तैसे ही शुद्ध जीव, कर्म मल दूरि कर मोक्ष भए पीछे तन रूपी मिट्टी मैं मिलता नाहीं। तातें मोक्ष भए पीछे जिस मोक्षतैं पीछा जन्म होय सो मोक्ष विवेकीनके तजवे योग्य हेय है। अरुके तेक भोरे पण्डित हैं ते मोक्ष जीवकौं रागद्वेष सहित मानैं हैं ऐसा कहै हैं जो मोक्ष मैं भगवान्, सर्व संसारी जीवन पै लेखा लेय है। सो जाने अपनी भक्ति नहीं करी तिनकूं नरक-कुंड मैं डारै है। और जाकूं अपना भक्त जानै है ताकौं अपने पास मोक्ष मैं राजी होय राखै है। सो भो भव्य हो ऐसा राग भाव अरु द्वेष भाव मोक्ष मैं नाहीं। जहां राग-द्वेष होय सो

संसार स्थान जाना। तातैं रागद्वेष सहित जो मोक्ष होय सो हेय है। और केतेक संसारी चतुर नर ऐसा मानैं हैं। जो मोक्ष विषैं पंचेन्द्रिय महासुख है। या कहैं हैं जो मोक्ष विषैं भगवानकूं इन्द्रिय जनित वड़ा सुख है। ऐसा सुख और कहूं नाहीं उत्कृष्ट भोजन अमृतमई भोगने योग्य रस ताकूं भोगवै है। और अनेक सुख नासिका इन्द्रिय कूं सुखदाई ताहि सूंघै है। और नाना प्रकारके नृत्यगीत वादित्र भगवान्‌के मुख आगे मोक्ष मैं अनेक अप्सरा चरित्र सहित करैं हैं। तिनकौं भगवान् देखि महासुख भोगवैं हैं। इन आदि अनेक अप्सरानकों भोग सहित अनेक इन्द्रिय जनित सुखकूं भोगवै है। सो हे धर्मात्मा जीव तूं चित्त देय सुनि। अरु मनमैं विचारि। जहां इन्द्रिय सुख है। सो मोक्ष नाहीं संसारही जानना। और मोक्ष है तहां इन्द्रिय जनित सुख नाहीं। मोक्ष सुख तौ इन्द्रियनतैं अतीत है। अतीन्द्रिय सुखका भोगता शुद्धात्मा है। इन्द्रिय सुख आकुलता रूप है और मोक्ष आकुलता रहित है। तातैं जिस मोक्ष मैं इन्द्रिय सुख होय सो मोक्ष हेय है। और केतेक ज्ञान-चक्षु-हीन ऐसा कहै हैं। जो मोक्ष विषैं भगवान सदीव वैठे पुस्तकके पत्र देखा करैं हैं। तहां संसारी जीवनके आयुषका प्रमाण लिख्या है। सो जाका आयुष्यके दिन पूरण होंय तव भगवान्‌के सेवक सदीव पासही रह्या करैं हैं तिन यमन (सेवकन) कूं खिदाय (भेज) ताका जीव भगवान् अपने पास मंगाय लेंय। पीछे सुख दुख देय हैं। या जीवका लेखा लेय हैं। जो तैं संसार मैं जायकैं कहा किया, सो वाकौं पूंछे हैं। सो वानै पाप किए होंय तो तहां भगवान्‌के लोक मैं नरक कुंड है तहां नाखि दुखी करैं हैं। और वानै पुण्य किए होंय तौ भगवानके लोक मैं नाना प्रकार रतन मई महल हैं सो ताकों धन-धान्य तैं भरे महल-मंदिर देय सुखी करैं हैं। जैसा जाका शुभाशुभ कर्तव्य होय तैसा ही सुख-दुख भगवान् देय हैं। ऐसे रात्रि दिन भगवान् निरन्तर लेखा देखा करैं हैं। ऐसा विकल्प सदीव मोक्ष मैं भगवान् कौं वतावैं हैं केते पंडित विवेकी भूले ऐसा कहै हैं। तिनकौं कहिए है। भो मोक्षाभिलाषी हो मोक्ष विषैं ऐसा विकल्प नाहीं जहां विकल्प है ते संसारी स्थान जानना। मोक्ष तौ निर्विकल्प है, निराकुल है। तातैं जाकी मोक्ष विषैं इतना विकल्प होय सो मोक्ष हेय है। और केतेक जीव ऐसे ही शरीर सहित मोक्ष मैं हैं। ऐसी कहैं हैं कि जापै

भगवान् कृपा करि राजी होंय। ता मनुष्य कूं अपना भक्त जान यह सप्त धातुके भरे शरीर सहित हो, अपने पास मोक्ष मैं बुलाय सुखी करै है। जो कोई नगर भरके लोक भगवानकी भक्ति करैं तौ भगवान संतुष्ट होय सर्व नगरके लोकनकों हो अपने पास मौक्ष मैं बुलाय लेय हैं। केतेक जीव ऐसा मानै हैं तिनकौं कहिए है। भो सुज्ञानी जीव तूं समझि। यह अपवित्र शरीर महा मलीन सप्तधातु व मल-मूत्रका भरया, मूर्तीक जड़ शरीर, सो तौ मोक्ष मैं जाता नाहीं। अरु जहां इस मूर्तीक शरीरका आना-जाना होय सो संसार अवस्था ही है। मोक्ष विषैं मूर्तीक शरीर है नाहीं मोक्ष मैं अमूर्तीक शरीर है। तातैं जाकी मोक्ष मैं मूर्तीक शरीर जाना हो सो मोक्ष हेय है। अरु केतेक ज्ञान-दरीद्री मोक्ष मैं शून्य भाव मानै हैं। जीव ऐसा कहैं हैं। जो जेते सुख हैं। सो तो सर्व संसार मैं हैं। स्त्री सम्बन्धी भोग सुख। नाना प्रकार षट् रस मेवादि मोदकादि जिभ्या इन्द्रियके सुख। तथा नाना प्रकार सुगंध नासिका इन्द्रियके सुख। और नाना प्रकार रतन-कनकके आभूषण वस्त्र स्त्रीनके रूप नृत्य-शोभादि अनेक चक्षु इन्द्रियके सुख। और अनेक प्रकार मिष्ट-सुर सहित अनेक संगीतादि रागको वीणा, बांसुरी, पखावज, तन्दूरादि अनेक सचित्त—अचित्त मिश्र स्वरनके मनोज्ञ राग शब्द, सो कर्ण इन्द्रियके सुख। ए पंच ही इन्द्रिय सम्बन्धी जेते सुख हैं सो संसार मैं ही हैं। ए सुख मोक्ष मैं नाहीं, वहां तौ शून्य है। नहीं कछू सुख, नयीं कछु दुख। शून्य रूप है। नहीं बोलना, नहीं चालना, नहीं गावना, नहीं खावना, केवल एक शून्यता। ऐसी मोक्ष केई जीव मानै हैं। ताको कहिए है। भो मोक्षके बांच्छक, सुनि। अरु विचार देखि। सुख रहित शून्यता तौ मूर्ख कैं होय। तथा सौतके होय। तथा बायु-सन्निपात रोग बारे कैं होय। तथा सुख रहित शून्यता दीन-दरिद्री कैं होय। तथा जाके इष्टका वियोग होय, शोक करि भरया होय, अज्ञान-मोह तैं जड़ समान होय गया होय तथा काष्ठ पाषाणकी मूर्ती, चेतना भाव रहित कैं होय इत्यादिक स्थानकनमैं शून्यता होय। और परमात्मा, शुद्ध निराकार चेतनमूर्ती ज्ञान भण्डार कैं मोक्षमैं शून्यता नाहीं। महासुख सागरमैं मगन हैं। जेते सुख संसारमैं हैं तिनतैं अनंतगुणे सुख मोक्षमैं हैं। तातैं जाकी मोक्षमैं शून्यता भाव होय सो मोक्ष हेय है। इति

हेयमोक्ष । आगे उपादेय मोक्ष कहिए है । भो सुखके अर्थी, तूं चित्त लगाय सुनि । जो आत्मा जामन मरण के सहा दुखन तैं भय खाय, दिगम्बर पद धारि, नाना तप करि, कर्म बंधन-छेद, मोक्ष कौं प्राप्त भया । सो अब जन्म मरण तैं रहित होय भव बंधन तैं छूटा, मोक्षके ध्रुव स्थान विषैं तिष्ठ्या । सो आवागमणका महा दुख मिटाय सुखी भया । और मोक्ष विषैं राग द्वेषका अभाव होतें महा सुख होय है । ए राग द्वेष हैं सो सोही महा दुख हैं । सो मोक्षमैं ए राग द्वेष नाहीं । मोक्ष जीव अनंत सुखका धारी है । जे संसारीक इन्द्रिय जनित सुख हैं सो सर्व विनाशीक हैं । क्षणभंगुर व पराधीन हैं । सो इन्द्र चक्री कामदेव नारायण बलभद्र और अहमिन्द्रादिक ए सर्व देव मनुष्यन कैं अनंतकालका सुख है । तिस सुख तैं भी अनंत गुणा अतीन्द्रिय सुख मोक्षका सुख है । तातें मोक्ष सुख इन्द्रिय रहित है । तातें ही उपादेय है । अर मोक्ष जीव विकल्प रहित एकै काल सर्व जगतके पदार्थनका स्वरूप जानै है । और विकल्प है सो जो हीन ज्ञानी व हीन शक्ति होय तिन कैं होय है । तातें अनंतज्ञान शक्तिकाधारी परमात्मा कैं विकल्प नाहीं । और सर्व द्रव्य कर्म अरिनका नाशि करि तज्या है औदारिकादि पुद्गलीक स्कंधमई शरीर जानै सो सिद्ध पदका धारी सिद्ध जीव सो अमूर्तीक है । निरंजन दशा धरै सुखका पिंड है । और केवल ज्ञान केवल दर्शन करि सर्व लोकालोकका वेत्ता है । ए सर्वज्ञ वीतराग घट घटके अन्तर्यामी भवसागरके तारक हैं । और चैतन्य सदीव आनंद मूर्ती जड़त्व भाव जो शून्यता दशा तातैं रहित हैं । ऐसे जामन मरण रहित राग द्वेष बर्जित अतीन्द्रिय सुखका भोगी बिकल्प रहित निराकार पुद्गलीक शरीरतैं रहित सर्वज्ञ पद धारी ज्ञान मूर्ती चेतन चमत्कार लिए ऐसे गुण का धारी मोक्ष जीव है । सो ऐसो मोक्ष उपादेय है । इस मोक्षका नाम लिये सुमरण किये पूजा किये श्रद्धान किये आशा किये महा पुण्य फल होय । तातें परभवमैं उत्तम पद पाय परंपराय मोक्षका वासी होय । तातें सम्यग्ज्ञान सम्पदाके धारक भव्यात्मा कौं ऐसी मोक्ष उपादेय है ।

इति श्रीसुदृष्टि तरंगिणी नाम ग्रन्थ मध्ये मोक्ष तत्व विषैं ज्ञेय-हेय उपादेय वर्णनो नाम अष्टा दश पर्व सम्पूर्णम् ॥ १८ ॥

आगे ज्ञान विषैं ज्ञेय हेय उपादेय कहिए हैं—

गाथा—गेय हेयोदेओ, णाणत्तय वसु मेय जिणउत्तं । जाण कुणाणय हेयं, उवादेयं पण सुद्ध णाणंतु ॥ ४३ ॥

अर्थ—ज्ञेय हेय उपादेय करि ज्ञानके आठ भेद हैं। तिनमैं तीन कुज्ञान तौ हेय हैं अरु पंच सुज्ञान उपादेय हैं ऐसा जिनदेवने कह्या है। भावार्थ—सुज्ञान कुज्ञानका समुच्चय जानना सो तो ज्ञेय है। और ताही के दोय भेद हैं। एक ज्ञान हेय है। एक ज्ञान उपादेय है। तहाँ कुमति ज्ञान कुश्रुतज्ञान कुवधि ज्ञान ए हेय ज्ञान हैं। सो ही कहिए हैं। जहाँ हिंसाज्ञानकी चतुराई होना। जहाँ जीव पकड़ने कूं जाल बनायवेका ज्ञान अरु ता ज्ञान तैं फंदा करना फाँसी पींजरा छूरी कटारी बरछी तलबार बन्दूक इन आदि अनेक हिंसाके कारण शस्त्र बनाबना सो कुज्ञान है। तथा चित्राम शिल्पकला भंड कला युद्ध कला चौर कला इनकूं आदि परके ठगवे की अनेक चतुराईकी युक्तिका उपजना सो कुज्ञान है। तथा और जीवन कौं अनेक दुख देनेकी कला चोर व कुमारगी जीवन कौं दंड देवेकी कला—चतुराई जो इसकूं ऐसे मारिए तौ बहुत दुखी होय इत्यादि ए कुज्ञान है। और कौतुक हाँसी अनेक भाव करि परकौं खुसी करिए। तथा नाना प्रकारके स्वांग धारि लोकन कूं आश्चर्यका उपजावना। चोरी व परदारा सेवनमैं प्रीति भाव इत्यादि ज्ञानकी चेष्ट लौकिकमैं प्रवर्तती है सो कुमति ज्ञान है इति कुमति ज्ञान। आगे कुश्रुतज्ञान कूं कहिए हैं। तहाँ युद्ध शास्त्रनका ज्ञान नाना प्रकार रसिक प्रिय श्रंगार शास्त्र आदि कामोत्पत्तिके कारण रसशास्त्र संगीत शास्त्रादिक कुश्रुतज्ञान हैं। और हिंसाके कारण जिनमैं परजीव घातका उपदेश सो कुश्रुत है तथा जिनमें कुदेव कुगुरुनके पोषवेकूं अनेक द्रव्य चढ़ावेका कथन तथा ए देव ऐसा भक्ष लेय है, तब तृप्त होय है। इत्यदिक कथन जिन शास्त्रन में होय सो कुश्रुत है। तथा कुगुरु पोषवे कूं ऐसा भोजन ऐसे वस्त्र, धन, मन्दिर, देव, गुरुकी सेवा कीजै। तथा दासी दास स्त्री गुरुनकी सेवाकौं दीजे, तौ अप्सरानका भोगी होय ऐसा फल पावै। तथा गज घोटक रथ पालकी गुरुन कूं दीजिए तौ देव-विमान का फल पावै। इत्यादिक कथन जिन शास्त्रन में होय सो कुश्रुत है। इन कुश्रुत शास्त्रनका जाकै ज्ञान होय सो कुश्रुत ज्ञान है। सो सुदृष्टिन करि हेय है। इति कुश्रुत ज्ञान। आगे विभंग ज्ञानका कथन करिये है। तहां आत्म हितकूं कारण सम्यग्दर्शन सो ऐसे सम्यक बिना मिथ्या भाव सहित इस भव-परभवकी वार्ता जानना

तथा दूरवर्ती पदार्थन कौं जाने सो विभंगज्ञान है। तथा याहीका नाम कुअवधि भी है। ऐसे कहे जो सामान्य अर्थ सहित कुमति कुश्रुत और कुअवधि ए तीन कुज्ञान सो सम्यग्दृष्टीन तैं हेय हैं। ऐसे तीन कुज्ञान कहे। आगे पांच सुज्ञान कहिए हैं प्रथम नाम—मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मनः पर्यय ज्ञान और केवल ज्ञान। तहाँ मति ज्ञान कहिए है—सो मति ज्ञानके तीन सौ छत्तीस भेद हैं सो सुनो। प्रथम भेद चार-अवग्रह ईहा अवाय और धारणा। इनका अर्थ जहाँ पदार्थका दूरतैं सामान्यावलोकन होय जैसे काहू ने दूर तैं एक स्थंभ देखा परन्तु भेदाभेद नाहीं किया सामान्यसा भाव जो कछू है देखा। ऐसे भावका जानना सो अवग्रह कहिए। और उसही देखे स्थंभ मैं भेदाभेद करना। जो यह स्थंभ है या मनुष्य है? ऐसे विकल्पका नाम ईहा भेद है। पीछे वाही स्थंभकौं जान्या। जो मनुष्य तौ नाहीं स्थंभ है। ऐसे विचारका नाम अवाय कहिए। और आगे बहुत दिन पहले स्थंभ देखे थे। तिनका सुमरण किया। जो आगे स्थंभ देख्या तैसा ही यह है। सो स्थंभ है। निश्चयतैं ऐसे दृढ़ भाव विचारना सो धारणा है। ऐसे अवग्रह ईहा अवाय और धारणा इन च्यारि भेदन करि पदार्थ जानिए। सो मति ज्ञान भेद है। अरु ए ही च्यारि भेद पंचेन्द्रिय और मन इन षट् तैं परस्पर लगाय गुणिए तौ चौबीस भेद होय हैं। जैसे स्पर्श इन्द्रिय तैं कोई वस्तु—पदार्थ स्पर्श्या। तब सामान्य भाव जान्या जो कछू है। विशेष भेद नहीं किया। सो स्पर्श इन्द्रिय तैं अवग्रह भया। फेरि विचारी जो ए पदार्थ पांव तैं स्पर्श्या सो कहा है? कठोर २ है गोल है। सो कै तौ कोई रतन है या कंकड़ है। इस विचारका नाम स्पर्श इन्द्रियका ईहा भेद है। फेरि याहीको विचारिये कि जो यह गोल है साफ हैं सो रतन है। इस विचारको नाम स्पर्शन इन्द्रिका अवाय भेद है। और तहाँ आगे कबहूं पांव नीचे रतन आया था ताकी यादि करि जानी जो आगे पांव नीचे रतन आया था तैसा ही ए भी है सो रतन ही है। ऐसा निश्चय करना सो स्पर्शन इन्द्रियकी धारणा है। ऐसे कहे स्पर्शन इन्द्रिय तैं च्यारि भेद। सो ऐसे ही रसना घ्राण चक्षु श्रोत्र और मन इन छहों तैं लगाय चौबीस भेद हैं। और इन चौबीस मैं स्पर्शन रसन घ्राण और श्रोत्र ए च्यारि भेद मिलाये अठाईस होंय। इन अठाईस भेदनकौं बहु बहुविध आदि बारह भेदन तैं गुणिए तौ ।२५६।

तीन सौ छत्तीस भेद मतिज्ञानके होंय। इन मतिज्ञानके भेदनकी पल्टनका एक विधान और तरह हैं। सो व-तावैं हैं। अवग्रहादि च्यारि भेदन कूं पंचेन्द्रिय और मनतैं गुणें चौबीस भेद होंय। इन चौबीसकौं बहु आदि बारह भेदन तैं गुणें दोय सौ अठ्ठासी होय है। सो ए तो अर्थावग्रहके हैं। और स्पर्शन रसन घ्राण श्रोत्र इन च्यारि इन्द्रिय तैं बहु आदि बारह भेदन कौं गुणें अड़तालीस भेद भए सो ए व्यंजनावग्रहके हैं। दोऊ मिल तीनसौछत्तीस भेद रूप मतिज्ञान होय हैं। इहां सामान्य भाव कह्या। विशेष श्रीगोमट्टसारजी तैं जानना। इति मतिज्ञान भेद। आगे श्रुतज्ञानका सामान्य भेद कहिये है—श्रुतज्ञानके अनेक भेद हैं। तहां मूल भेद दोय अंग द्वादश अरु प्रकीर्णक भेद चौदह। तहां द्वादशांगके भेद दोय। ग्यारह अंग अरु बारहवें अंगके पंच भेद तहां चौदह पूर्वका कथन है। तिनही अंग-पूर्वन मैं गर्भित योग च्यारि प्रथमानुयोग, करणानुयोग चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग। इन योगन मैं कथन जहां तीर्थंकर चक्री प्रतिचक्री इन्द्र देव इत्यादि महान पुरुष-नकी कथा जामैं होय सो प्रथमानुयोग है। और तीन लोककी रचनाका जामैं कथन होय सो करणानुयोग है और मुनि श्रावकनके आचारका जामैं कथन सो चरणानुयोग है। और षट् द्रव्य नव पदार्थ सप्त तत्त्व पंचा स्तिकायका कथन जहां होय सो द्रव्यानुयोग है। तहां षट् द्रव्यके गुण पर्यायका कथन सो तिन द्रव्यन करि संसार रचना च्यारि गति बनी है ऐसा कथन। और द्रव्यमें षट्गुण हानि वृद्धिरूप परिणमण सो तथा द्रव्य का अपने अपने व्यय ध्रौव्य उत्पाद सहित तीन भेद रूप प्रवर्तना कथन सो ए सर्व श्रुतज्ञानके भेद हैं। तहां उत्पाद व्यय ध्रौव्यका सामान्य कथन कहिए है—जो वस्तु बिनसै सो तो व्यय कहिए। और नवीन वस्तुको पर्यायका उपजन सो उत्पाद है। और वस्तुका सदीव शाश्वत रहना सो ध्रुव है। जैसे करका कनकका चूड़ा तुड़ाय कुण्डल करवाना। सो इसी ही मैं तीन भेद सधैं सो बताइए हैं। तहां द्रव्य भाव तौ सुवर्ण सो शास्वत सो ध्रुव कहिये। चूड़ाकी पर्याय टूटी सो ताकूं व्यय कहिए। और कुन्डल बन्या सो ताकी पर्याय न्यूतन उत्पन्न भई ताकूं उत्पाद कहिए। ऐसे ए तीन भेद जानना। तैसे ही आतमा तौ द्रव्य और मनुष्य पर्याय छोड़ि देव भया। सो मनुष्य पर्यायका तौ व्यय भया और देव पर्यायका उत्पाद भया। जीवत्व भाव दोऊसैं

शाश्वत है। सो ध्रुव है। ऐसे नय भेद तैं व्यय ध्रुव उत्पाद अनेक पदार्थन में साधना। ऐसे अनेक नयका स्वरूप श्रुतज्ञान तैं जानिए है। तातैं श्रुतज्ञान उपादेय है। और श्रुतज्ञान तैं और भी ज्ञाता ज्ञान व ज्ञेयका स्वरूप जानिये हैं। तातैं उपादेय है। तहां ज्ञाता तो आत्मा है। ज्ञाताका गुण ज्ञान है और ज्ञानके जानपने मैं आवे सो ज्ञेय है। ज्ञान सर्व ज्ञेयका जाननहारा है। ऐसा ज्ञाता ज्ञान व ज्ञेयका स्वरूप श्रुतज्ञान तैं जानिए है। तातैं उपादेय है। और भी श्रुतज्ञानके स्वरूपमें ध्याता ध्येय व ध्यानका स्वरूप कहिए है। तहां ध्याता तौ आत्मा है। और जा वस्तु कूं ध्यावै सो ध्येय है। और ध्यावते ध्याताके भावका विकल्प सो ध्यान है। जैसे धर्मी आत्मा तौ ध्याता है। पंचपरमेष्ठी ध्येय है ताकौं ए ध्याता ध्यावै है। और पंचपरमेष्ठीके गुणनका सुमरण सो ध्यान है। तथा और दृष्टान्त करि कहिए है। जहां कोई पापी आत्मा तौ ध्याता है। और परस्त्री भलेरूप सहित देखि ताके मिलाप की चाह ध्येय है। और उस स्त्रीके रूपादिक गुण ताका विचार सो आर्तध्यान है। ऐसे अनेक जगह ध्याता ध्येय ध्यानका स्वरूप सधै है। सो ऐसा भाव श्रुतज्ञान तैं जानिए है। तातैं उपादेय है। और भी कर्ता कर्म क्रियाका स्वरूप श्रुतज्ञान तैं कहिए है। कर्ता तौ आत्मा है। और जो वस्तु यानै बनाय तैयार करी, सो कर्म है। अरु उस वस्तुके करते, भई जो मन-वचन-कायकी हल-चल, सो क्रिया है। जैसे कोई धर्मात्मा जीव अष्ट द्रव्य मिलाय भगवानका पूजन करै है। सो तो कर्त्ता है। और ताके फलतैं देवगति, देवायु, सुभग आदेय, सौभाग्य, सातावेदनी आदि अनेक बंध किये जो शुभकर्म, सो इसका कर्म है। और पूजा विषैं भले भावका राखना, विनयतैं कायका राखना विनयतैं वचनका बोलना, विधि सहित हाथ जोरैं हर्षतैं खड़ा रहना, इत्यादिक भक्ति-भाव रूप प्रवृत्ति सो क्रिया है। तथा और तरह कहिए हैं। जैसे कोई जड़िया तौ कर्ता है। और नाना प्रकार रतन जड़ि करि, तैयार किया जो मुकुट तथा हार, सो कर्म है। और इनके करते भई जो मन-तनकी प्रवृत्ति, सो क्रिया है। ऐसे अनेक पदार्थन पै लगावना। इस विधान रहित नय-प्रमाण कथन श्रुतज्ञान तैं पाईए है। तातैं उपादेय है। और भी श्रुतज्ञान तैं पल्य-सागरका कथन कहिए है। तहां पल्य भेद तीन। जघन्य मध्यम अरु उत्कृष्ट। तहां जघन्यका स्वरूप कहिये है—

ए जघन्य पल्य ऐसे हैं जैसे मानी-मनेसाके प्रमाण बांधने कूं रत्ती हौंय हैं। रत्ती तैं मासा मासा तैं रुपया, रुपैया तैं सेर सेर तैं मनादिक। जैसे रत्ती तैं मनेसा का प्रमाण किया तैसे जघन्य पल्यतैं सागरकी उत्पत्ति होय है। सो ही कहिए है—एक बड़ा योजनका प्रमाण सहित गोल गड्ढ़ा कीजिये तेताही चौड़ा तेताही ऊंडा (गहरा) तामैं। भोग भूमिको बकरोंका तुरंतका भया बच्चा ताके रोमका अग्र भागका बारीक खंड लीजिये। तिन रोम—खंडन तैं वह कूप भरिए। दृढ़ करि कूटि-कूटि धरती बरोबर भरिये। ता पीछे सौ वर्ष जांय तब एक रोम काढ़िए। फेरि सौ वर्ष गये एक रोम काढ़िए। ऐसे करते सर्व कूप खाली होय। ताकूं जेता काल लागै सो जघन्य व्यवहार पल्य कहिए है। और जघन्य पल्यमैं जेता रोम आवे तितने कूप कूं उस ही कूप प्रमाण करि वैसे ही रोमों तैं भरिए-दृढ़ करिए। असंख्यात वर्ष जांय तब एक-एक रोम काढ़तैं एक कूप दोय कूप रितावतैं सर्व खाली होंय। सर्व कूपनके रोम खाली होंय। ताकौं जेता काल लागै सो मध्य पल्य कहिए। और इस मध्य पल्यके जेते रोम भए तेते ही कूप उस ही विस्तार प्रमाण बनाए। वैसे ही रोमन तैं सबको दृढ़ भरिए। पीछें असंख्यात लाख कोटि वर्ष गए एक रोम काढ़िए। फेरि एता ही काल गए एक रोम काढ़िए। ऐसे करते- करते सर्व कूपनके रोम खाली होंय। ताकौं जेता काल लागै सो उत्कृष्ट पल्य है। याही उत्कृष्ट पल्य तैं देव नारकी भोग-भूमिन की उत्कृष्ट आयु-कर्म है। और मध्यम पल्य तैं द्वीप-समुद्रन को गिनती होय है। सो पचीस कोड़ाकोड़ी मध्यम पल्य प्रमाण हैं। और दश कोड़ा-कोड़ी पल्यका एक सागर होय है। मध्य पल्य दशकोड़ा-कोड़ीका मध्य सागर होय है। उत्कृष्ट दश कोड़ा कोड़ी पल्य गये उत्कृष्ट सागर होय। ऐसे सामान्य करि पल्यका कथन किया। विशेष श्रीत्रिलोकसारजी आदि ग्रन्थ तैं देखि लेना। ऐसे पल्य सागरका भाव श्रुतज्ञान तैं जानिए है। तातैं श्रुतज्ञान उपादेय है। और भी श्रुतज्ञान तैं कृतघ्नी विश्वासघातीका स्वरूप जान्या जाय है। सो कहिए है—जो पराया किया उपकारकौं भूले सो कृतघ्नी है। सो कृतघ्नीके भेद तीन हैं। घर पर और धर्म। इन तीनका उपकार अन्य जीव पै होय है। सो जैसे माता पिता ने बालक अवस्था मैं महा यतन किये। शीतकाल मैं तथा उष्णकाल मैं अनेक सहाय करि मोहके बशीभूत

होय अनेक यतन करि पाल रक्षा करी। तरुण किया सो बड़ा भया तब माता पिताका उपकार भूलि उनतैं द्वेष भाव करि जुदा होना अविनय करना कटु बचन बोलना दुख देना माता पिता तैं ईर्षा करनी सो ए घर कृतघ्नी कहिए। तथा और अन्य घरमैं बड़े थे। तिननें भी बालपने मैं अनेक तरह रक्षा करी। ऐसा विचार करैं जो ए बड़ा होय तब हमारी आज्ञा मानैगा। हमारी सेवा करैगा हमको बड़ा मानैगा। एसी आशा करि कुटुम्बके लोगन नैं प्रति पालना करी थी। सो बड़ा भए उल्टा कुटुम्बकौं दुखी करना सो घर कृतघ्नी है। ऐसा जानना। और कोई जो परजन बड़े मनुष्य बस्तीके और जातिके तिननैं कोई भूखा देखि अन्न दिया, नागा देखि वस्त्र दिया बेरुजगार देखि रुजगार लगाय दिया निर्धन देखि धन दिया स्थान रहित देखि रहवेकौं मंदिर स्थान दिया इत्यादिक दुखन मैं सहाय किया। और रोगीकों पीड़ावान देखि अनेक औषधि देय अच्छा किया। ऐसे अनेक दुःख मैं सहाय करि सुखी किया। अरु पीछे कर्म योग तैं आप शक्तिवान भया तब उन उपकारीका उपकार भूलि द्वेष करै। सो पर—कृतघ्नी कहिए। और जाकूं महा अज्ञानमें प्रवर्तता देखि पाप करता देखि परभव नरक पड़ता देखि कोई धर्मात्मा दयाभाव करि अज्ञानता छुड़ाय ज्ञान करावता भया। और पाप—मागतैं बचाय धर्मका पंथ बतावता भया नरकादि खोटी गति तैं बचाय शुभगति बतावता भया लोकनिंद्य—अनाचार छुड़ाय, सुआचार बतावता भया। जानी यह जीव सुखी होय तो भला है, ताके निमित्त शुभ पंथ लगाया। अरु पीछे आपकैं कछू सामान्य भाव—ज्ञान भया, शास्त्र रहस्य पाया। तब उसके उपकार कौं भूलि, द्वेष—भाव करना, सो धर्म कृतघ्नी है। ऐसे तीन भेद कृतघ्नीके कहे हैं। सो महा पापके स्थान हैं। तातैं हेय हैं। आगे विश्वासघातीका स्वरूप कहिये है। तहां परकौं विश्वास उपजावना। कहना जो मैं तेरी सहाय करूंगा। धन द्योंगा। तेरा दुख-दारिद्र हरूंगा। तू कछू उपाय मति करै। ऐसे अनेक मिष्ट वचन बोलि, विश्वास उपजाय पीछे काम पड़े नट जाय। दगा दे जाय। कहैमोतैं तौ अवार नहीं होय। ऐसे कहि ताके कार्यका घात करै। ऐसी कहै सो विश्वासघाती कहिए। जैसे यहां एक कल्पना करि लौकिक दृष्टान्त बनाय, विश्वासघातका लक्षण कहिए है। जैसे एक किसानने असाढ़ महीनामैं नाना प्रकार खेद खाय, हल ।२६०।

चलाय कै खेत शुद्ध कर राखे थे। सो जब भला मेघ वर्षे पीछे, सर्व खेती बार घरन तैं बीजकी मोटि (गठरी) बांधि बनकौं चाले। तब एक किसानकों देखि एक दुष्ट-मनुष्यकी खोपड़ी राहमें पड़ी थी सो हंसती भई। तब किसान कूं आश्चर्य भया। जो ए निर्जीव-खोपड़ी हाड़की क्यों हँसी ! तब इस किसान नै कही। हे खोपड़ी तूं क्यों हँसै है ? तब खोपड़ीने कही तोकों देखि हँसौ हौं। मैं देवता हौं सो तेरे पै राजी भई। सो अब खेतमैं बीज बोवे मति जाय। मैं तेरे खेतमैं बिना बोया ही बहुत अन्न करूंगी। तब या किसाननै जानो यह देवी है। सो या मोपै राजी भई। तब किसान याके बचनका विश्वास करि घरि गया। और अन्य किसान अपने खेतनमें बीज बोय घर आये। पीछे दस बीस दिन गए। अपने अपने खेत देखवेकों सब किसान चाले। अन्न उगा देखि, राजी भए। तब यानैं भी विचारी जो मेरे खेत मैं भी अन्न भया होय। सो ए भी देखवेकों चल्या। सो राह मैं खोपड़ी फिर हँसी। तब किसानने कही, क्यों हँसै है ? तब कही तोकौं देखि हँसै हूं। तू कहां जाय है ? तब किसान नै कही। औरनके खेत हरे—भरे शोभा देय हैं। सो मैं अपने खेतकी शोभा देखवैकों जाऊं हों। तब खोपड़ी कहै है रे भाई, मैं तेरे पै तुष्टी हौं। औरन तैं बहुत अन्न तेरे खेतमैं करूंगी, सन्तोष राखि। तब किसान, खोपड़ीके बचनका विश्वास करि घरि गया। जब महोना एक-डेढ़ भया, तब सर्व किसान अपने—अपने खेतनतं फल ले-ले अपने-अपने पुत्रनके निमित्त घर आये। तब किसानके बालक औरन पै अनेक फल देखि, रुदन करते भए। अरु फल मांगते भये। तब किसान नैं विचारी, जो औरनके फल आये, सो मेरे खेतमें भी फल आये हों हैं। ऐसी जानि वनकूं खेतके फल लेनेको चाला। तब राह मैं खोपड़ी हंसी। तब किसानने कही तू कहा हँसै है ? औरनके खेतनमें फल भए और सर्वके बालक खाए हैं। और मेरे बालक फल बिना रुदिन करै हैं। तब किसानके बचन सुनकर खोपड़ी हंसकैं कहती भई। भो सुबुद्धि, धीरज राखि। सोचि मति करै। मेरे बचनका कछू तौ विश्वास राखि। तेरे खेतमें एते फल—अन्न होयगा। जो तेरे बूतो गाड़ानितैं ढोवा भी नहीं जायगा। परन्तु विश्वास राखि, सोच मति करै। ऐसे कही, तब फिर पीछा घर आया। जानी देवके बचन

हैं, सो अन्यथा नहीं हो हैं। ऐसा विश्वास धरि घर तिष्ठ्या। पीछे महीना दोय-एक भये। और लोक अन्न कूट उड़ाय, गाड़े भरि-भरि अपने घर लाये। तब या किसान नैं विचारो, जो मेरा खेत देखौं तौ सही। तब और ही राह होय कैं, किसान खेत पै गया। सो देखै तो घास ऊगा है। कोरे मिट्टीके ढीमा पड़े हैं। ऐसा खेत देखि किसानकी छाती टूट गई। महा दुखी भया। रुदन करता भया। जो वर्ष दिनकी रोटी गई। अब कहा करै? तब खोपड़ी याकौं रोवता देख हँसी। तब किसान नैं कही कहा हँसै है? मैं तेरे बचनका विश्वास करि खेत मैं बीज नहीं डारया। अब और तौ बहुत अन्न लाये, अरु मेरे खेत मैं कछू नहीं। तैंने मुझे विश्वास देय, बुरा किया। तब यह दुष्टकी खोपड़ी महा हास्य करि कहती भई। भो भाई किसान, तू सुनि। हमनैं जीवतैं बहुतनका विश्वास देय बुरा किया था। और मुए पीछे तो एक तेरा ही बुरा किया है। सो जे दुष्ट, खोपड़ी समान विश्वासघाती महापाप मूर्ति जीव सो विश्वासघाती हैं। ए कहे जो कृतघ्नी व विश्वासघाती ते बड़े पापी हैं। इनका स्वरूप श्रुतज्ञान तैं पाईए है। सो श्रुतज्ञान उपादेय है। च्यारि गतिके जीवनकी आगति-जागति श्रुतज्ञानतैं जानिए है। सो कहिए है। तहां जिन स्थान तजि, जा स्थानमें उपजै, सो जागति कहिए। और अन्य स्थान तजि निज स्थानमें आवै सो आगति कहिए। तहां प्रथम देवगतिमें आगति कहिए है। सो एती जायगाके देव गति में आय उपजैं सो कहिये है। मिथ्यादृष्टी भोगभूमियां—मनुष्य तिर्यंच कर्म भूमियां-मनुष्य, तिर्यंच, सैनी तथा असैनी ए तो सब भुवनत्रिक मैं शुभभाव—फलतैं उपजैं हैं। और सम्यग्दृष्टी भोग भूमियां मनुष्य तिर्यंच ए सर्व पहले दूजे स्वर्ग पर्यन्त उपजै हैं। और कर्म भूमिके मनुष्य, स्त्री तिर्यंच सोलह स्वर्ग पर्यन्त उपजैं हैं। और सम्यग्दृष्टी तथा मिथ्यादृष्टी, मुनि लिंग धारि ग्रैवेयक लौं जाय हैं। और नव अनुत्तर अरु पंचपंचोत्तर इन चौदह विमानन मैं सम्यग्दृष्टी मुनि ही जाय हैं। इति देवगति मैं आगति। आगे देवकी जागति कहिए है—च्यारि प्रकारके देव मरि कहां जाय उपजै हैं सो जागति है। तहां भवनवासी, व्यंतर ज्योतिषी देव पहले दूजे स्वर्गवासी देव ए मरि करि पृथ्वी कायिक, अपकायिक, बनस्पती सैनी-पंचेन्द्रिय—तिर्यञ्च और मनुष्य इन पंच जगतमैं जाय उपजैं हैं। और तीसरे स्वर्ग तै लगाय

स्वर्ग पर्यंतके देव चयकैं, मनुष्य तिर्यञ्च सैनी पंचेन्द्रियमें उपजें हैं। और तेरह स्वर्ग तैं लगाय नव ग्रैवेयक पयन्तके देव चयकरि सम्यग्दृष्टो तथा मिथ्यादृष्टो मनुष्य ही उपजैं हैं। और नवग्रैवेयक तैं ऊपरले देव चयकैं सम्यग्दृष्टी मनुष्य ही उपजैं हैं। इति देव जागति। आगे नारकी को आगति-जागति कहिए है—तहां नारकी जीव मरि एती जगह मैं उपजैं सो कहिए है—प्रथम तैं लगाय छठी नारकी पर्यन्तके जीव निकस, मनुष्य तिर्यञ्च कर्म भूमिके ही होंय। और सातमी नारकीका निकस्या पंचेन्द्रिय-सैनी-तिर्यञ्च ही होय है। और विशेष यह है जो पहलो-दूजो तीजी नरकका निकस्या कोई जीव सम्यग्दृष्टी तीर्थंकर भी होय है। चौथी नरकका निकस्या तीर्थंकर नहीं होय है, चरम शरीरी होय तौ होय। और पंचम नारकीका निकस्या, चरम शरीरी नहीं होय महाव्रत धरै तो धरै। और छठे नारकका निकस्या, संयमी नहीं होय हैं। और विशेष एता जो नारकी, असैनी मैं नहीं उपजै हैं। इति नारकी जागति। आगे नारक मैं आगति कहिए है। नारकी मैं एती जगतके जाय हैं, सो कहिए हैं-प्रथम नरक मैं तौ सम्यग्दृष्टी-मिथ्यादृष्टी मनुष्य तिर्यञ्च-पंचेन्द्रिय सैनी ए जाय हैं। और मनुष्य, पंचेन्द्रिय-सैनी तिर्यञ्च, अरु जलका उपज्या सर्प ए दूसरी नारक पर्यन्त जाय हैं। मनुष्य, तिर्यञ्च, अजगर तथा काला फणधारी सर्प ए चौथे नरक पर्यन्त उपजै हैं। और मनुष्य, तिर्यंच, नाहर ए पञ्चम नरक पर्यन्त उपजै हैं। और मनुष्य तिर्यञ्च स्त्री छठे नरक पर्यन्त उपजै हैं। मनुष्य अरु तिर्यञ्च सातमें नरक पर्यन्त उपजै हैं। ऐसे नरक मैं आगति जानना इति नरक मै आगति। आगे मनुष्य मैं आगति कहिए है। मनुष्य मैं एती जगहके आवैं सो कहिए है। तहां सातमी नारकीके निकसे और अग्निकाय, वायुकाय भोग भूमिके मनुष्य तिर्यंच, इन बिना सर्व जगहके जीव आय मनुष्य गति मैं उपजै हैं। इति मनुष्य मैं आगति। आगे मनुष्यको जागति कहिए है। तहां मनुष्य कहां-कहां जाय उपजैं सो कहिए हैं। सो मनुष्य भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष सोलह ही स्वर्ग मैं व सर्व अहमिन्द्र देवन मैं उपजैं। सातों ही नारकी मैं उपजैं। और पृथ्वी अप तेज वायु वनस्पती बेन्द्रिय तेन्द्रिय चौइन्द्रिय पंचेन्द्रिय सैनी असैनी तिर्यञ्च इन सर्व स्थाननमें मनुष्य उपजैं हैं। और भोग भूमियां मनुष्य तिर्यञ्च कर्मभूमियां मनुष्य और

मोक्ष आदि सर्व स्थानक मैं मनुष्य उपजैं हैं। ऐसा तीन लोक मैं अरु च्यारि गति मैं कोई स्थान शुभ अशुभ रह्या नाहीं जहां मनुष्य नाहीं जाय। सो मनुष्य कूं सर्व स्थान आगार (घर) है। इति मनुष्य जागति। आगे तिर्यंचकी जागति कहिए है। तहाँ एकेन्द्रिय पंचस्थावर विकलत्रय ये मरकर देव नारकी भोग भूमियां-मनुष्य तिर्यञ्च इन विषैं नाहीं उपजैं हैं। इन विना कर्म भूमिके मनुष्य तिर्यंच सम्बन्धी सर्व स्थानकनमैं उपजं हैं। विशेष एता जो पंच स्थावरन मैं के अग्निकाय-वायुकायके जीव मनुष्य मैं नहीं होंय। पंचेन्द्रिय असैनी तिर्यञ्च मर करि मन विकल्प बिना शुभ-भावन तैं भवनत्रिक मैं उपजैं हैं। विकल्प विना अशुभ भाव तैं मरि, प्रथम नारकी पर्यन्त उपजैं हैं। भोग भूमि बिना, कर्मभूमिके मनुष्य-तिर्यञ्चनमैं सब स्थानकनमैं उपजैं हैं। सैनी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, भवनत्रिक तैं लगाय सोलहवें स्वर्ग पर्यन्त तो देवमैं उपजैं हैं। सातों ही नरकों विषैं उपजैं हैं। कर्म भूमिके मनुष्य, तिर्यञ्च, एकेन्द्रियादि पंच स्थावरन मैं, विकलत्रय, सैनी, असैनी, विषैं उपजैं हैं। तथा भोग भूमिके मनुष्य-तिर्यञ्च विषैं उपजैं हैं। ऐसो तिर्यञ्चकी जागति कही। इति तिर्यञ्चकी जागति। आगे तिर्यञ्चगतिमैं आगति कहिये है। तहां पंच स्थावर विकलत्रय इनमैं सर्व देव, व सात ही नारकीके और भोग भूमियां बिना कर्मभूमि सम्बन्धी सर्व मनुष्य-तिर्यञ्च उपजैं हैं। विशेष एता जो अग्नि-वायु विना तीन स्थावरनमैं भवनत्रिकके तथा पहले-दूजे स्वर्गके देव आय उपजैं हैं। सैनी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चमैं, भवनत्रिकतैं लगाय बारहवें स्वर्ग पर्यन्तके देव और भोग भूमि बिना, सात ही नारकीके जीव आय उपजैं हैं और कर्म भूमिके एकेन्द्रिय आदि विकलत्रय पंचेन्द्रिय पर्यन्त सर्व जीव एकेन्द्रिय आदि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च विषैं आय उपजैं हैं। इति च्यारि गति सम्बन्धी आगति-जागति कथन। ऐसे च्यारि गति दण्डकनका कथन श्रुत ज्ञान तैं जानिए है। तातैं श्रुतज्ञानउपादेय है। और इस ही श्रुतज्ञानतैं निमित्त-उपादानका स्वरूप जानिए है। सोही कहिए है। प्रथम नाम—निमित्त और उपादान। अब इनका विशेष कहिये है। जो द्रव्य की शक्ति, द्रव्य ही तैं उपजै, सो तो उपादान कहिए। पदार्थके मिलाप तैं शक्ति प्रगटै, सो निमित्त कहिए। जैसे जीव विषैं, शुभाशुभ रूप होय राग-द्वेष परिणमणकी शक्ति, सो

तौ जीवका "उपादान" है। जिन पदार्थनके निमित्त पाय रागद्वेष रूप भया, सो वह पर पदार्थ "निमित्त" है। सो इस निमित्त-उपादान तैं ही शुभाशुभ कर्मबन्ध आत्मा कैं होय हैं। सोही कहिए है। जैसे जीवका उपादान भी भला होय। पूजा, दान, शील, संयम, तप, जिनशास्त्रनका स्वाध्याय तथा सुनना, तथा मुनि श्रावकादि धर्मी जीवनका संग इत्यादिक शुभ ही निमित्त होंय, तौ दीर्घ स्थिति लिए शुभ भावकर्म उपजैं। ताके फल, आत्मा भव-भव सुखी होय। जहां आत्माका उपादान खोटा होय। क्रोध, मान, माया, लोभ, चोरी, जुआ, परस्त्री, हाँसी, कौतुक, दुराचारी, सुरापायी जीवनका सम्बन्ध, आदि पापकारी निमित्त होंय, तौ आत्मा कैं दीर्घ पाप भावकर्म, बड़ी स्थिति लिए उपजै। ताकरि भव—भव मैं दुखी होय। कहीं उपादान तौ आत्माका शुभ है। अरु निमित्त अशुभ होय, तौ पापबन्ध नहीं होय। शुभ उपादान तैं पुण्यका ही बन्ध होय है। जैसे कोई मुनि तथा श्रावक महा धर्मात्मा, धर्म ध्यान सहित बनादिक स्थानकन मैं तिष्ठै। तहां आय, कोई पापी उपसर्ग करै। पाण्डवन की तथा वारिषेणजी की नाईं निमित्त खोटा होय। तथा सेठ सुदर्शन की नाईं निमित्त खोटा होय। तौ फल भला ही उपजै है और, जहां उपादान तो खोटा, अशुभ, दगावाजी रूप होय, क्रोध-मानादिक कषाय रूप होय। अरु निमित्त भला होय। पूजा, दान, शास्त्र सुनना-पढ़ना, तप, संयमादिक अनेक भले निमित्त होंय, तौ भी उपादान अशुभके योग तैं पापबन्ध ही होय है। जैसे कोई चोर पराया धन हरवें कूं धर्मात्माका स्वांग बनाय अनेक धर्म सेवन पूजा—पाठ, तपादिक करै है। परन्तु अशुभ उपादानके योग तैं पापहीका बन्ध करै है। तैसे ही इस जीवके अनेक भावनकी प्रवृत्ति होय है। जैसे कहीं तौ जैसा निमित्त, तैसा ही उपादान भाव होय है। तहां तौ उत्कृष्ट शुभ-अशुभका बन्ध और कहीं निमित्त तौ और ही और उपादान और ही, तहां फल उपादन प्रमाण होय है। तातैं विवेकी हैं। तिनकौं परभव सुखके निमित्त तौ भले निमित्त मिलावने। उपादान सदीव भला ही राखना योग्य है। भले निमित्त तैं शुभ उपादान वारे जीवन कैं बड़ा शुभ फल उपजै है। और भले निमित्त तैं परंपराय उपादान भी शुभ हो जाय है। और खोटे निमित्त तैं उपादान भी खोटा ही होय है। सो जगतमैं प्रसिद्ध देखिये है। भले

कुलके जीव खोटे निमित्तन तैं चोर जुआरी कुआचारादि कुलक्षण सहित खोटे होते देखिये है। और हीन कुलके उपजै जीव भली संगति तैं ऊंचे होय सुखी देखिये है। तातैं विवेकी जीवकूं निमित्त भले राखनेका उपाय सदीव राखना योग्य है। निमित्त तैं उपादानकी शुद्धता होय है। जैसे अग्निके निमित्त सुवर्णके उपादानकी शुद्धता होय है। ताम्बा आदि कुधातनके निमित्त तैं, सुवर्णके उपादानकी मलिनता होय है। ऐसे जानि, निमित्त भला ही मिलावना योग्य है। जहां-तहां निमित्त की मुख्यता है। सोही दिखाईये है। देखो आदिनाथ स्वामी, उत्कृष्ट भले उपादानके धारक, तिनके अशुभ निमित्त तैं, तियासी लाख पूर्व, कषायन मैं जाते भए। दीक्षा रूप भाव नहीं भये। तब इन्द्र महाराज ने अवधि तैं विचारी, जो तीर्थंकर भगवान्का सर्व आयु-कर्म पंचेन्द्रिय भोगनमें व्यतीत भया। अरु भगवान् कैं विरक्ति नहीं भई। सो कोई निमित्त विचारिए तब इन्द्र नै एक नीलांजना नाम अप्सराका आयु कर्म बहुत ही अल्प जानि, इसकों आज्ञा करी। सो ये देवी ने इन्द्रकी आज्ञा लेय, भगवान्के आगे अद्भुत नृत्य-गान आरम्भ्या। सो याके नृत्य कौं देखि, सर्व सभा के देव-मनुष्य आश्चर्य कूं पावते भए। जो ऐसा नृत्य इन्द्रकौं भी दुर्लभ है। ऐसे नृत्य करते समय उसका आयु पूरण भया। जिससे आत्मा तौ परगति गया। अरु शरीर, दर्पण की छायाके प्रतिबिम्बवत् अदृश्य होय गया। सो नृत्यका उत्सव भंग नहीं होनेकूं, इन्द्र नै तत्क्षण वैसीही देवांगना रचि दई, सो नृत्यकी ताल-राग चाल भंग नहीं होने पायी। यह चरित्र सर्व सभाके जीव मनुष्यादि थे, तिन काहूनैं नहीं जान्या। सब नै जान्या वही देवी नचै है। अरु इस चरित्र कौं भगवान् ने अवधि तैं जान्या, जो वह देवी नृत्य करती, काय तजि अन्य लोक गई। यह इन्द्रनै नई रचिदई है। अहो, संसार चपल व विनाशीक है। इत्यादिक प्रकार वैराग्य उपाय, दीक्षा धरि, ध्यानाग्नितैं कर्मनाश, सिद्ध भये। सो यहां भी देखो, निमित्त ही को महंतता आई। तातैं सत्पुरुषन कूं अपने कल्याण कूं, कुसंग हेय करि, शुभ निमित्त करना सुखकारी है। जैसे बनै तैसे ही भला निमित्त गुणकारी है। ऐसे एतौ जीव कूं जीवका निमित्त कह्या। अब पुद्गलका पुद्गल तैं निमित्त उपादान कहिये है। तहां हल्दी तौ स्वभाव तैं ही पीत है। याकौं घसिकैं जल मैं घोलिए, तौ भी पीत ही जल

होय। सो ऐसे पीत जल मैं साजी डारिए, तौ साजीके निमित्त तैं सर्व जल, लाल होय है। सो लाल होयने की उपादान शक्ति तौ हल्दीकी ही है। परंतु निमित्त साजीका मिलै लाल होय है। और स्फटिक मणि निर्मल है सो ताके नीचे जैसा डांक दीजिये, तैसाही मणि भासै। लाल डाक दिये, मणि लाल भासे। पीत डांक दिये, मणि पीत होय। श्याम डांक दिये, मणि श्याम होय। सो मणि, स्वभाव तैं तौ महा निर्मल-श्वेत है। परन्तु जैसे डांकका निमित्त मिलै है, तैसाही भासै हे। सो लाल, पीत, श्याम होनेकी उपादान शक्ति तौ उस स्फटिक मणि की है। अरु निमित्त नीचले डांकका है। सौ यहां भी निमित्तकी प्रधानता आई। और जैसे लोहा धातु, नीच धातु है। परन्तु जब ऊंच जो पारस पाषाणका निमित्त मिले, तब कंचन होय है। सो सुवर्ण होनेकी उपादान शक्ति तो लोहा हीं में है, और धातन मैं नाहीं। परन्तु जब पारसका निमित्त मिलै तौ सुवर्ण होय है। सो हे भव्य, जीव तैं जीवकूं, पुद्गल तैं पुद्गल कूं, जहां-तहां निमित्त ही की महंतता है। तातैं विवेकीन कूं भला निमित्त मिलावना ही योग्य है। विशेष एता है जो अपने परणामण की विशुद्धता तैं अधिक विशुद्धता का निमित्त होय तो अपना उपादान, निमित्त प्रमाण करना और अपने भावनकी विशुद्धता तैं निमित्त सामान्य है, तौ अपना उपादान, निमित्त प्रमाण नहीं करना। इत्यादिक विचार हैं सो सम्यग्दृष्टीन कूं अपनी बुद्धि करि विचारना योग्य है। ऐसा श्रुतज्ञान तैं निमित्त-उपादान का स्वरूपजानिए है। तातैं श्रुतज्ञान उपादेय है। इतिनिमित्त-उपादान। आगे श्रुतिज्ञान तैं और भी सुवाणिज्य-कुवाणिज्य का स्वरूप जानिए है। सो हीं कहिये है —

गाथा—हिंसावाणिज्ज हेयं, तिल धातु आदि भूमिजलखंण्डो। अप्पारंभो सुह कज्जो, विणहिंसा णित्त मादेओ॥

अर्थ—हिंसाकारी वाणिज्य तजवेयोग्य है। तिल, लोह कूं आदि धातुका व्यापार, तजवे योग्य है। और जामैं अल्प आरम्भ होय सो शुभ वाणिज्य करना। जामैं हिंसा नाहीं, ऐसा वाणिज्य उपादेय है। भावार्थ— जे सम्यग्दृष्टी धर्मात्मा हैं। सो वाणिज्य करनेमैं ऐसे ज्ञेय-हेय-उपादेय विचारैं हैं। सो दिखाईए है। तहां शुभ-अशुभ वाणिज्यका समुच्चय जानना, सो तो ज्ञेय है। ताके दोय भेद हैं। एक शुभ वाणिज्य है, एक

अशुभ वाणिज्य है। तहां जो हिंसा, झूठ, चोरी दोष रहित होय, सो शुभ वाणिज्य है। हीरा, मोती इत्यादिक जवाहिरात सीधा लेना और सीधा ही देना। संचय करि बहु दिन नहीं राखना, यह निर्दोष वाणिज्य, उपादेय है। चांदी, सुवर्ण, टके, रुपये, असर्फी लेना, तैसे ही देना। तथा जरकस, तास, गोटा मुकेशाद सीधे लेना तैसे ही देना, ए निर्दोष वाणिज्य, उपादेय है। तथा पराया गहना राखि व्याजका वाणिज्य, सो शुभ वाणिज्य है। ए कहे जो व्यापार सो अग्नि-जलके आरम्भ रहित तौ शुभ वाणिज्य हैं। और जिनमें जलका तथा अग्निका आरम्भ होय, तो ये आरम्भी हिंसा सहित वाणिज्य हेय हैं। और सूजी आजीविका, वचन आजीविका, दृष्टि आजीविका, और कष्टी आजीविका। ये च्यारि आजीविकाके भेद हैं। तहां चिकन काढ़ना, कसीदा करना, वस्त्र सीवनादि, दरजीका काम जे सूजीं तैं कमावैं सो सूजी आजीविका है। सो निर्दोष है, उपादेय है। और लेने-देने वारेके बीचि विषैं दूत होय व्यापार करादेना, अपने वचन ज्ञानके बळ करि आजीविका पैदा करै। जैसे लौकिकमें दलाली करनेहारे, सो हिंसादि दोष रहित, शुभवाणिज्य है। सो उपादेय है। याका नाम वचन आजीविका है। और जे अनेक रतन, अशर्फी रुपैया परख देना। परखाई लेनेकी आजीविका करनी। सो दृष्टी आजीविका है। और अपने तनतें कष्ट करि, पराया कार्य कर देना। जैसे लौकिकमें हम्माली आदि शीश गांठि भारि धरि आजीविका करैं सो कष्टी आजीविका है। ए कही जो च्यारि प्रकार आजीविका सो सामान्य पुण्य तैं लगाय विशेष पुण्य पर्यन्त अरु नीच कुली तैं लगाय ऊंच कुली पर्यन्त, सामान्य ज्ञानी तैं लगाय विशेष ज्ञानी पर्यन्त जे धर्मात्मा जीव चोरी झूठ हिंसा आरम्भ तैं भयभीति ते सन्तोषी गृहस्थ, इन च्यारि प्रकार शुभ वाणिज्य करि आजीविका करैं सो उपादेय है। इत्यादिक किसब(व्यापार) जल, अग्नि आदिक बड़े आरम्भ रहित हैं। चोरी, झूठ, हिंसा रहित हैं। तातें निर्दोष हैं। और एही झूठ, चोरी आदि सहित होंय, तो ए ही पाप करता होंय, सो हेय होंय। जैसे हीरा, मोती रतनका व्यापार करनहारा, द्रव्य लगाय, लोभ निमित्त धरती खुदाय कढावै। तौ पापवंध करता, आरम्भी व्यापार होय। चांदी सुवर्णका वाणिज्य करनहारा, बहु आरम्भ-अग्नि तपावना, जलाना, फूंकना, धौंकनादि आरम्भ सहि

त होय, तौ अयोग्य है, हेय है। तथा सूजीवारा पराया वस्त्रादि चोरै, तो सूजी आजीविका भी सदोष होय दलाली वाला बहुत झूठ बोलि लेने-दैने वारेका बहुत माल-धन ठिगावै, तौ वचन आजीविका मैं भी दोष लागै, पाप होय। दृष्टि आजीविका वारा अपने लोभ कूं भला-बुरा परखै, तौ चोरीके दोष सहित होय। और कष्टी आजीविका वारा भी लोभाचारी होय पराये गठियाका माल लेय तौ चोरके दोष सहित होय। तातें दोष सहित तौ सर्व ही हेय हैं। परन्तु दीर्घ तृष्णा रहित, पाप तैं डरनैहारे भव्यन कूं, रतन-सुवार्णादिक, सूजी आजीविका, दृष्टी आजीविका वचन आजीविका, कष्टी आजीविका ए कहे जो किसब सो सुखकारी हैं। आप-परकौं हितकारी हैं। तातें धर्मात्मा जीवन करि उपादेय हैं। यह लौकिक व्यापार कहे। अब निश्चय शुभाशुभ व्यापार कहिये है। तहां राग द्वेष क्रोध मान माया लोभादि कषायभाव, मिथ्यातभाव निशदिन आर्तरौद्र परणातिका रहना, शोक चिंता भाव आदि भावनका व्यापार सो हेय है। और सम्यक सहित आत्मीक भाव,पर वस्तुके त्यागका भाव,तप-संयमादि भावनकी सदीव परणाति, सो ए शुभ व्यापार है, निश्चय उपादेय है। ऐसे विवेकी जीवन कूं अनेक नयन करि व्यापार भेद जानना योग्य है। इति शुभ वाणिज्य। आगे अशुभ वाणिज्य कहिए है। जहां अग्नि-जलका बहुत आरम्भ होय। बहुत अग्नि जलावनी-बुझावनी होय, बहुत जल मथन करना होय नाखना होय, गाले अनगालेका बिचार रहित होय। जहां झूठ, चोरी, दीर्घ माया करना इत्यादिक खोटी वृत्तिका वाणिज्य होय, सो हेय है और बहुत जीवनकी उत्पत्ति-मृत्युका आरम्भ जा किसब मैं होय सो अशुभ-हेय है। जहां बहुत अन्नका संग्रह भंडसाल करि बहुत दिन राखना। तथा सन, चाम, केश, हाड़ादि, इन विषैं जीवनकी उत्पत्ति बहुत होय है। तहां सदींका निमित्त पाय हिंसा बधै निर्दयी भाव होय। तातें हेय है। और शहद, विष, फांसीका रस्सा, छरी-कटारादि, शस्त्र, कुसी कुदाली, फावड़ा, इत्यादिक वाणिज्य हिंसाके कारण हैं। तातें अशुभ हैं। जहां लोहा ताम्बा जस्ता सोना चांदी हीरादिककी खान खुदावना। तथा धरती खोदना-खुदावनाके किसब सो अशुभ हैं। खेती जोतना-जुतावना सो हिंसा सहित तजने योग्य हैं। साजी फिटकरी नील आल फूल कंद मूल इत्यादिक ए हिंसाके कारण हैं। तातें अयोग्य हैं

और भी इनकौं आदि जे पापकारी वाणिज्य होंय सो हेय हैं। जे धर्मात्मा जीव हैं सो दयाके निमित्त ये वाणिज्य नहीं करै है। अपना धर्म निर्दोष राखनेकों सर्व दोष तजैं हैं॥ येते किसब वारन तैं वाणिज्य नहीं करैं तब दया-धर्म निर्दोष है सो ही कहिए। तहां चांडाल कसाई चमार राहके मारन हारे भीलादिक चोर इनकौं कर्ज नहीं देय। अरु देय तौ इनके स्पर्श तैं तथा इनके विश्वास तैं अल्पकाल मैं क्षय होय। तन धनादि विनाश पावैं। परभवकौं पाप बंध होय। तातैं इनका वाणिज्य हेय है। और धोबी लुहार छीपी कुम्हार तीर तुपकादि (बन्दूक) शस्त्रनके करनहारे इत्यादिक हिंसाके अनुमोदन हारे हैं सो इनका वाणिज्य हेय कह्या है। ऐसे कहे जे किसब तिन सबकूं सम्यग्दृष्टी धर्मात्मा दयाधर्म पालक जिनाज्ञा प्रतिपालक करुणानिधान उज्वल धर्मका दास इन किसवन में चौगुणे होते होंहि तौ भी नहीं करै। आप धर्मात्मा परभव सुखका लोभी इन लोक निंदाकों बचाय यशका इच्छुक लोभके वशीभूत होय कैं कुवाणिज्यनका विश्वास अपने घरमैं नहीं आवने देय है। ऐसा वाणिज्य भेद श्रुत ज्ञान तैं जान्या। तातैं श्रुत ज्ञान उपादेय है। इति कुवाणिज्य। ऐसे वाणिज्यमें ज्ञेय हेय उपादेय कहो॥ आगे इसही श्रुत ज्ञानका जघन्य मध्यम उत्कृष्ट करि तीन प्रकार स्वरूप कहिये है। तहां सर्व ज्ञान तैं छोटा सो तौ जघन्य जानना और सर्व द्वादशांग प्रकीर्णादि श्रुत ज्ञान सो उत्कृष्ट जानना। और मध्यके अनेक भेद जानना। ऐसे तीन भेद रूप है सो याका स्वरूप आगे कहेंगे। मूल श्रुत ज्ञान है ताके दोय भेद हैं। एक तो अक्षरात्मक एक अनक्षरात्मक। तहां अक्षर छंद पद काव्य गाथा फांकी आदि शब्द तैं उत्पन्न भया सो अक्षरात्मक श्रुत ज्ञान है। और भाव ही तैं उपजै अक्षर रूप नाहीं सो अनक्षर श्रुत ज्ञान है। सो एकेन्द्रियादिक पंचेन्द्रिय पर्यन्त सर्व ही जीवन कै होय। परन्तु इस अनक्षरात्मक ज्ञान तैं कछु व्यवहार प्रवृत्ति नाहीं। जीवके भाव विचारकी सो ही जीव जानै। तथा केवली जानैं। तातैं इसकी मुख्यता नहीं लई। और दूसरा अक्षरात्मक ज्ञान है। तातैं कर्म धर्म कार्यनकी प्रवृत्ति होय है। जातैं लौकिक मैं लेने देने रूप खाता रोजनामचादि सर्व व्यवहार काय होय हैं। और धर्म शास्त्रका पठन पाठन प्रवृत्ति सो भी अक्षरात्मक ज्ञान तैं होय है। ताके बीस भेद हैं। सो ही कहिए है। उक्तञ्च श्रीगोमट्टसारजी सिद्धान्त— ।२७०।

गाथा—पज्जायक्खर पदसंघादं पडिवत्ति आणिजोगं च ।। दुगवार पाहुडंच य पाहुडयं वत्थु पुव्वं च ।। ४५ ।।

अर्थ—पर्यायज्ञान अक्षर ज्ञान, पद ज्ञान संघातज्ञान प्रतिपत्तिकज्ञान, अनुयोग ज्ञान प्राभृतक प्राभृतक-ज्ञान प्राभृतक ज्ञान वस्तुज्ञान और पूर्वज्ञान ए दश भेद भये। सो इन दशनके संग समास लगाय लेना जैसे पर्याय पर्यायसमास ऐसे सर्व जगह लगाय बीस भेद होय हैं। सो ए बीस भेद अक्षरात्मक श्रुतज्ञानके जानना। अब श्रुतज्ञान काहे कौं कहिये है। ताका स्वरूप कहैं है। सो अत्तर विषैं जो अर्थ होय ताकूं जानने रूप जो भाव सो श्रुतज्ञान कहिये। ता श्रुतज्ञानके ए बीस भेद हैं। तातैं इस ज्ञानको घातनहारी वरणी सो भी बीस भेद रूप परणामि बीस ही भेदरूप श्रुतज्ञान कूं घातैं हैं। तातैं श्रुतज्ञानावरणीके भी बीस भेद जानना। अब इन बीसनका सामान्य अर्थ कहिए है। प्रथम पर्यायज्ञान जघन्य भेद है। सो अत्तरके अनन्तवें भाग ज्ञान है। इस ज्ञानका आवरण इस ज्ञानकूं घात सक्ता नाहीं, ऐसा ही अनादि स्वभाव, केवलज्ञान मैं भास्या है। जो कदाचित् इस ज्ञानकौं भी आवरण घातै, तौ ज्ञानका अभाव होय। और ज्ञान-गुणके अभाव तैं, गुणी ए आत्माका अभाव होय। और आत्माका अभाव भए संसार च्यारि गतिका अभाव होय। सो संसारका अभाव तौ कबहूं होता नाहीं। तातैं आत्माके सद्भावतैं ज्ञानका सद्भाव है। सो सर्व श्रुतज्ञान केवल-ज्ञानादि सर्व ज्ञानकौं आवरण घातै। परन्तु इस अत्तरके अनन्तवें भाग ज्ञानकौं नहीं घातै है। तातैं यह ज्ञान निरावर्ण सदीव रहै है। सो यह जघन्यज्ञान कौन समय होय है सो कहिए है। सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक के उपजनेके पहले समय पर्याय नाम जघन्यज्ञान होय है। सो सूक्ष्म निगोदिया अपने योग्य एक अन्तरमुहूर्तके बटवारे मैं छह हजार बारह क्षुद्रभव तिनमैं जन्मता-मरता अत्यन्त संक्लेशिता रूप भ्रमण करता अन्यके क्षुद्र भव विषैं वक्रता लिए जो विग्रह गति करि जन्म धर्या होय ता वक्र गतिके पहले समय मैं जघन्यज्ञान होय है। तिसही जीवकैं ता समय स्पर्शन इन्द्रियका जघन्य मतिज्ञान है। तिसही जीवकैं ता समय जघन्य अचक्षु दर्शन होय है। इहां बहुत क्षुद्र भवके धरते-धरते बधी जो संक्लेशता तिन दुखरूप परणामनतैं निमित्तपाय तीव्र अनुभाग लिए ज्ञानावरणादि कर्मनका उदय होते महादुखरूप क्षुद्र भवोंका अन्त क्षुद्र भवका प्रथम

समय विषैं पर्यायज्ञानके अनन्तवें भाग जघन्यज्ञान कह्या है। यह ज्ञान अविनाशी है। याका कवहूं नाश नाहीं। ऐसा नियम जानना। पीछे द्वितीयादि समयन मैं ज्ञान वधता होय है। सो इस जघन्य ज्ञान विषैं अनन्त भाग वृद्धि असंख्यात भागवृद्धि संख्यात भाग वृद्धि, संख्यात गुण वृद्धि असंख्यात गुणवृद्धि अनन्त गुणवृद्धि यह षट् स्थानरूप महानवृद्धि संभवें अनंत अविभाग प्रतिच्छेद लिए अन्श हैं। इहां प्रश्न—जो जघन्य ज्ञान मैं अनन्त भाग कैसे संभवैं? ताका समाधान जो अनन्तके अनन्त ही भेद है। तहां चौदहाधाराके कथन मैं द्विरूपवर्गधारा विषैं कथन किया है जो अनन्तानन्त वर्गस्थान गए पीछे सर्व जीव राशिका प्रमाण होय है। और जीवराशि तैं अनंतगुणी राशि पुद्गल है। और पुद्गल राशि तैं अनन्त गुणी राशि, तीन कालके समय हैं। और सर्व काल समय राशि तैं सर्व आकाश प्रदेश राशि अनन्त गुणी है। और सर्व आकाश प्रदेश राशि तैं अनंतानंत वर्ग राशि गए सूक्ष्म निगोदिया जीवके जघन्य ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदनका प्रमाण होय है। ऐसा आगम मैं कह्या है। तातैं यामैं अनन्तभाग वृद्धि संभवे है। ऐसा यह पर्यायज्ञान प्रथम भेद जानना। ॥ १ ॥ अव यातैं अनंतानंत अविभाग प्रतिच्छेद वधैं तव पर्याय समासका प्रथम भेद होय। तातैं अनंतानंत अविभाग प्रतिच्छेद वधैं तव पर्याय समासका दूसरा भेद होय। ऐसेही अनंतानंत अविभाग प्रतिच्छेद वधैं। एक—एक स्थान वधैं सो तीन स्थान पांच आदि असंख्यात लोक प्रमाण षट् स्थान पतित वृद्धि होय तव तांई पर्याय समासके भेद होय हैं। सो वृद्धिका अनुक्रम ऐसा है जो अनन्त का प्रमाण मैं तौ जीवराशि जानना। असंख्यातके प्रमाण मैं असंख्यात लोक प्रमाण जानना। और संख्यात वृद्धिमें उत्कृष्ट संख्यात है। ऐसी अधिकता-हीनता करि षट् गुण हानि-वृद्धि जानना। ऐसे षट् स्थान पतितनकी हानि-वृद्धि होते असंख्यात लोककी अन्तकी हानि-वृद्धि पूरी होते एक भेद घाट पर्यन्त सर्व ए पर्याय समास ज्ञानके भेद जानना। ॥ २ ॥ आगे अक्षर ज्ञान कहिए है। सो वह पर्याय समासके अन्त भेद मैं एक भेद और मिलाईए तव अक्षर ज्ञान है। सो यह अर्थाक्षर नाम ज्ञान है। सो सर्व श्रुतज्ञानके संख्यातवें भाग यह अक्षर ज्ञान है ॥ ३ ॥ और याके आगे एक-एक अक्षर ज्ञानकी वधवारी होतैं एक अक्षर घाटि

पद अक्षर पर्यन्त ज्ञान बधै, वहां लौं अक्षर समास ज्ञान कहिए ॥ ४॥ आगे या अक्षर समास ज्ञानके अन्त भेद मैं एक अक्षर और मिलाए पद ज्ञान होय है ॥ ५॥ आगे पद ज्ञानका प्रमाण कहिए है। सो यह तीन प्रकार है। अर्थ पद प्रमाण पद और मध्यम पद ये तीन भेद हैं। तहां ऐसा कहना जो "अग्न्यानयः"। याके पद हैं, दोय अग्नि और आनय। याका अर्थ ऐसा जो अग्नि आनि देओ। इत्यादिक अर्थ जिन अक्षरनतैं निपजै, सो अर्थ पद कहिए। और कहिए जो "नमः श्री वर्द्धमानाय"। याका अर्थ यह जो श्री वर्द्धमान स्वामी को ननस्कार होहु। यह आठ अक्षरनका पद भया। सो याका नाम प्रमाण पद है। और सोलासौ चौंतीस कोड़ि तियासी लाख सात हजार आठसौ अठ्यासी अपुनरुक्त अक्षरनका एक पद होय। सो यह मध्यम पद है ॥ ५ ॥ इस पदके ऊपर एक-एक अक्षर ज्ञान बधता-बधता एक पद जितने अक्षर बधैं तब पद ज्ञान दूना होय है। यातैं एक-एक अक्षर और बढ्या सो बधते-बधते एक पद अक्षर बधैं, तब ज्ञान तीन गुणा होय। ऐसे ही अनुक्रमकौं लिए एक-एक अक्षर बढ़ते पद होंय तब चौगुणा पद ज्ञान, पचगुणा, षट् गुणा ऐसेही संख्यात हजार पद ज्ञान जितने अक्षरन मैं एक अक्षर ज्ञान घटाय तहां तांई पद समासके भेद जानना ॥६॥ या राशि विषैं एक अक्षर और मिलाए संघात ज्ञान होय है ॥ ७ ॥ सो इस ज्ञानतैं च्यार गति मैं तैं एक गति निरूपण सम्पूर्ण करैं, सो संघात नाम श्रुति ज्ञान है। बहुरि इस संघात ज्ञानके ऊपर एक-एक अक्षर का अनुक्रम लिये बढ़ते-बढ़ते पद होंय। अनेक पदनका समूह संघात, याही अनुक्रम करि एक संघात दोय संघात तीन च्यारि आदि संघात, हजार संघात होंय। तहां अन्तका संघात विषैं एक अक्षर घाटि पर्यन्त, संघात समासके भेद हैं। ऐसे संघात समास जानना ॥ ८ ॥ अब इस उत्कृष्ट संघात समास विषैं एक अक्षर ज्ञान और बढ़ाईए, तब प्रतिपत्तिक नाम श्रुतज्ञान हो है। या प्रतिपत्तिक श्रुतज्ञानका धारी च्यारि गतिका स्वरूप यथावत् व्याख्यान करैं सो प्रतिपत्तिक श्रुत ज्ञान कहिए ॥ ९ ॥ इस प्रतिपत्तिक ज्ञानतैं एक-एक अक्षर बधता पद होय है। पदतैं बधतैं-बधतैं संख्यात हजार पद बधे संघात होय संख्यात हजार संघात बधत एक प्रतिपत्तिक होय। और संख्यात हजार प्रतिपत्तिक ज्ञानके अन्त भेद मैं एक अक्षर घटि होय तहां तांई

प्रतिपत्तिक समास नाम ज्ञान हो है ॥ १० ॥ आगे इस प्रतिपत्तिक समासके अन्त भेद में एक अक्षर और मिलाईये तब अनुयोग नाम श्रुत ज्ञान होय है। सो इस तैं चौदह मार्गणाका स्वरूप भले प्रकार कह्या जाय है। यह अनुयोग नाम ज्ञान है ॥ ११ ॥ आगे इस अनुयोगके एक-एक अक्षर ज्ञान वधतैं पूर्ववत् अनुक्रमतैं पद ज्ञान पदतैं संघात प्रतिपत्तिक अनुयोग सो च्यारि आदि अनुयोग विषैं अन्त भेद मैं एक अक्षर घाटि तांई; अनुयोग समान श्रुत ज्ञान होय है ॥ १२ ॥ ऐसे अनुयोग समासके अन्त भेद विषैं एक अक्षर और मिलाये प्राभृतक-प्राभृतक ज्ञान होय है ॥ १३ ॥ इस प्राभृतक-प्राभृतकके ऊपरि एक-एक अक्षर वधतैं-वधतैं पूर्ववत् अनुक्रमतैं पद संघात, प्रतिपत्तिक अनुयोग प्राभृतक-प्राभृतक ऐसे अमुक्रमतैं चौईस प्राभृतक-प्राभृतक होंय। तहां अन्त भेद मैं एक अक्षर घटता रहै यहां तांई प्राभृतक—प्राभृतक समास ज्ञान होय है ॥१४॥ आगे इस प्राभृतक-प्राभृतक समास विषैं एक अक्षर और मिलाईये तब प्राभृतक ज्ञान होय है ॥ १५ ॥ भावार्थ—एक प्राभृतकके चौईस प्राभृतक-प्राभृतक अधिकार होय हैं। और इस प्राभृतक ऊपरि एक-एक अक्षर की बधवारी लिए, पद संघातादि अनुक्रमतैं वधवारी लिए चौबीस प्राभृतक होंय। तहां अन्तके भेद मैं एक अक्षर घटता रहै तहां तांई प्राभृतक समासके भेद जानना ॥ १६ ॥ आगे इस प्राभृतक समासमैं एक अक्षर ज्ञान और मिलाए वस्तुनाम श्रुत ज्ञान होय है ॥ १७ ॥ आगे इस वस्तु ज्ञान पै एक अक्षर वधतैं-वधतैं पद संघातादि सर्व अनुक्रम पूर्ववत् करि वृद्धि होते, दश आदि वृद्धि होते अन्त भेद मैं एक अक्षर घटै, तब तांई वस्तु समास श्रुत ज्ञान है ॥ १८ ॥ आगे इस वस्तु समास मैं एक अक्षर और वधाईए तब पूर्व नाम श्रुत ज्ञान होय है ॥ १९ ॥ इस ही पूर्व मैं चौदह भेद है। तिनका स्वरूप आगे कहि आए हैं। तातैं इहां नहीं कह्या है। और पूर्व ज्ञानके ऊपर एक-एक अक्षर ज्ञान वधतैं-वधतैं पूर्व अनुक्रमतैं पद संघातादि अनुक्रमतैं एक अक्षर घाटि श्रुत ज्ञान पर्यन्त, पूर्व समास है ॥ २० ॥ ऐसे बीस भेद श्रुत ज्ञानके कहे। विशेष इनका श्री गोमटसारजीके श्रुतज्ञानाधिकारतैं जानना। ऐसे यह श्रुतज्ञान कह्या। सो यह श्रुतज्ञान, केवलज्ञानकी सी महिमाकौं धरै है। केवलज्ञान तौ प्रत्यक्ष है। अरु श्रुतज्ञान परोक्ष है। परन्तु, केवलज्ञान समान, लोकालो

क तीनकाल सम्बन्धी सकल-तत्व-प्रकाशी है। यहां प्रश्न-जो केवलज्ञान तौ अनन्त है। सो अनन्त पदार्थन में अनन्त अर्थ रूप होय प्रवर्तें है। और श्रुतज्ञान संख्यात अक्षर मई है। सो केवलज्ञानकी बरोबर कैसे संभवै ताका समाधान—जो हे भाई, तेरी बात प्रमाण है। परन्तु तू चित्त देय सुनि। या प्रश्नका उत्तर धारण किए सम्यक् हो है। हे भव्य, केवलज्ञान तैं कछू छिपा नाहीं। मूर्ती-अमूर्ती पदार्थ सर्व प्रकाशै। ऐसा केवलज्ञान लोकालोक तीनकालका प्रकाशनहारा है। सो जे-जे पदार्थ केवलज्ञान में भास्या, सो सर्व रहस्य केवलीके मुखतैं खिर्या, सो ही गणधर देव नै प्रगट करि उपदेश दिया। सो मूर्ती-अमूर्ती द्रव्यनका स्वरूप, तीनलोक तीनकाल सम्बन्धी रचना, श्रुतज्ञानके द्वारा सर्व कही। ताकौं भव्य सुनि-सुनि रहस्य पाय, मोक्ष—मार्ग पावते भए। तातैं श्रुतज्ञान कूं केवलज्ञान समान कह्या। और भी देखो, हे भव्य हो सुनौ। जो केवलज्ञान जाकैं होय, सो केवली कहावै है। जाकैं सर्व श्रुतज्ञान हो, ते यतीनाथ श्रुत-केवली कहावैं हैं। तातैं भी केवलज्ञान समान कह्या। ऐसा जानना।

इति श्री सुदृष्टि तरङ्गिणी नाम ग्रन्थ मध्ये, सामान्य श्रुतज्ञान वर्णनो नाम, उगणीसवां पर्व सम्पूर्ण भया ॥ १९ ॥

आगे अवधिग्यानका स्वरूप कहिये है—

गाथा—देसा पस्म सव्वा तिय भेयावधिणाण जिण भणियं। जाणय मुत्ती दव्व तीताणागत वत्तमाणाय ॥ ४६ ॥

अर्थ—देशावधि, परमावधि और सर्वावधि ए तीन भेद अवधिज्ञान, जिनदेव नैं कह्या है। सो यह ज्ञान अतीत, अनागत और वर्तमान, तीनकाल सम्बन्धी मूर्ती द्रव्यकौं जानैं है। भावार्थ—अवधिज्ञान मुर्ती पदार्थों को जानै है। सो अतीतकाल में मूर्तीक पदार्थ जैसे जैसे परणमैं। स्पर्शके विषय रूप, रसनाके विषय रूप नासिकाके विषय रूप, नेत्रके विषय रूप, कर्णके विषय रूप स्थूल सूक्ष्म रूप, जे जे पुद्गल स्कन्ध परणमैं। सो सो अपने अपने विषय प्रमाण सर्वकूं अवधिज्ञान जानै है। और आगामी काल मैं मूर्ती पदार्थ जैसे परणमैंगे, सो तिन सबकूं अवधिज्ञान जानै है। और वर्तमान काल सम्बन्धी जो पदार्थ, तीन लोकमैं जैसे जैसे परणमते हैं। तिन सबकूं अपने विषय प्रमाण क्षेत्र कालकी, अवधिज्ञानी जानैं हैं। ऐसे अतीत अनागत वर्त-

मान काल सम्बन्धी द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपने विषय योग्य दूरवर्ती तथा नजदीकवर्ती सर्व पदार्थन कूं, अवधिग्यानी जानैं। सो अवधिज्ञान तीन प्रकार है। सो ही कहिए है। देशावधि, परमावधि और सर्वावधि। तहां देशावधिके षट् भेद हैं। तिनकूं कहिए है। अनुगामी, अननुगामी वर्धमान, हीयमान, अवस्थित अरु अनवस्थित। ए षट् भेद हैं। अब इनका सामान्य लक्षण कहिये है। जो अवधिज्ञान जिस पर्यायमें भई, तामैं आयु पर्यन्त रहै, अथवा ए जीव परगति जाय, तब भी याकी संग परगतिमें जाय, सो अनुगामी कहिये ॥ १ ॥ जो अवधिज्ञान भले निमित्त पाय, जा पर्याय व जा स्थान मैं भया, सो ताही पर्याय व ता स्थान पर्यन्त रहै। परन्तु अन्य गति व अन्य स्थान मैं संग नहीं जाय, सो अननुगामी कहिए ॥ २ ॥ और जा अवधिज्ञान तैं जबतैं शुभ निमित्त भया, तबतैं पर्याय पर्यन्त अपनी स्थिति प्रमाण काल तांई समय समय विशुद्धता सहित, ज्ञानके अंश वृद्धि ही भया करैं, सो वर्द्धमान अवधिज्ञान जानना ॥ ३ ॥ जो अवधि, महा विशुद्धताके प्रभावतैं भला निमित्त पाय जिस जीवकैं जा समय भई, तबही तैं अवधिग्यानके अंश घटते जांय सो पर्याय पर्यन्त घट्या ही करैं। अपने काल थितिकी मर्याद मैं घट चूकैं, सो हीयमान अवधि जानना ॥ ४ ॥ और जो अवधि जबतैं भई तबतैं जैसी की तैसी रहै। अपने काल-प्रमाण जेती थिति या ज्ञान की रहै, तेते अंश घटै-वढ़ै नाहीं। जा समय उपजी थी, तेते ही अंश रहैं सो अवस्थित अवधिज्ञान कहिये ॥ ५ ॥ और जो अवधिज्ञान जबतैं भया, तबतैं कबहूं तौ घटै, कबहूं वढ़ै। ऐसे चपल रह्या करै। सो अनवस्थित अवधिज्ञान कहिए ॥ ६ ॥ ऐसे इस देशावधिके षट् भेद हैं। तहां अनुगामीके तीन भेद हैं। एक स्वस्थान अनुगामी, एक परस्थान अनुगामी, एक उभय अनुगामी। तहां जो अपने क्षेत्र में ही यावज्जीवन अपने साथ जावे, अथवा भवान्तर में जावे, उसे स्वक्षेत्र अनुगामी कहैं हैं। जो पर-क्षेत्र में यावज्जीवन अथवा भवान्तरमें अपने साथ जावे, उसे पर-क्षेत्रानुगामी कहते हैं। तथा जो स्वक्षेत्र व परक्षेत्र में यावज्जीवन व भवान्तरमें साथ जावे उसे उभयानुगामी कहते हैं। अननुगामी भी तीन प्रकार है-स्वक्षेत्राननुगामी, परक्षेत्राननुगामी और उभयाननुगामी। तहां जो स्वक्षेत्रमें भी आ-
।२०६।
युपर्यन्त अथवा भवान्तरमें साथ न जावे, उसे स्वक्षेत्राननुगामी कहते हैं। जो परक्षेत्रमें और भवान्तरमैं साथ

न जावे उसे परक्षेत्राननुगामी कहते हैं। तथा जो स्वक्षेत्रमें आयु पर्यन्त अथवा भवान्तरमें और परक्षेत्रमें साथ न जावे, उसे उभयाननुगामी कहते हैं। ए तीन भेद अननुगामी के कहे। अब आगे क्षेत्र-काल अपेक्षा अवधिज्ञानकी अधिकता तथा हीनता रूप कथन करे हैं, सो सुनो। जो जीव अवधि तैं क्षेत्र-अपेक्षा जितने क्षेत्र की जानै है सो कालअपेक्षा थोरे कालकी जानै है। ऐसे और भेद कहिए हैं-तहां जघन्य अवधिका धारो, क्षेत्र अपेक्षा अंगुलके असंख्यातवें भाग क्षेत्रकी जानैं, सोही जीव काल अपेक्षा, आंवलिके असंख्यातवें भाग कालकी जानैं, सो भी असंख्यात समय जानना। और अंगुलके संख्यातवें भाग क्षेत्र की जानैं, सोही जीव काल अपेक्षा, आंवलिके संख्यातवें भाग कालकी जानैं। ए प्रथम भेद है ॥ १ ॥ और दूसरे भेदमें अंगुल मात्र क्षेत्रकी जानै, सो ही जीव काल अपेक्षा, किञ्चित् नून आँवलि—मात्र काल की जानैं ॥ २ ॥ और तीसरे भेदमैं क्षेत्र अपेक्षा, सात आठ अंगुलके क्षेत्रकी जानै, सो ही जीव काल अपेक्षा, सात आठ आँवली कालकी जानै ॥ ३ ॥ और चौथे भेद मैं क्षेत्र अपेक्षा, एक हाथ क्षेत्र की जानै, सो ही जीव कालअपेक्षा, अन्तर मुहूर्त काल की जानै है ॥ ४ ॥ और पंचम भेद मैं क्षेत्र अपेक्षा जो जीव एक कोस क्षेत्र की जानै, सो ही जीव काल अपेक्षा, अन्तर मुहूर्त काल की जानै ॥ ५ ॥ और छठे भेद मैं क्षेत्र अपेक्षा, एक योजन क्षेत्र की जानै, सोही जीव काल अपेक्षा, किञ्चित् नून मुहूर्त कालकी जानै ॥ ६ ॥ और सातवे भेदमें क्षेत्र अपेक्षा, पचीस योजनकी जानै। सो ही जीव काल अपेक्षा, किञ्चित् नून एक दिन—कालकी जानै ॥ ७ ॥ और आठवें भेद मैं क्षेत्रअपेक्षा जो जीव भरत क्षेत्र प्रमाण क्षेत्र की जानैं। सोही जीव काल अपेक्षा, पञ्च दिन कालकी अगली पिछली जानै है ॥ ८ ॥ और जे जीव क्षेत्र अपेक्षा, जम्बूद्वीप प्रमाण क्षेत्र की जनै, सोही काल अपेक्षा, किञ्चित् नून एक मास की जानै है ॥ ९ ॥ और दशवें भेद मैं क्षेत्र अपेक्षा, अढ़ाई द्वीप क्षेत्रकी जानैं, सोही जीव काल अपेक्षा, एक वर्ष काल की जानै है ॥ १० ॥ और ग्यारहवें भेदमें क्षेत्र अपेक्षा, कुण्डलगिर ग्यारहवैं द्वीप पर्यन्त क्षेत्र की जानैं, सो ही जीव काल—अपेक्षा, कछू घाटि आठ सात वर्ष की जानै ॥ ११ ॥ और बारहवें भेद मैं क्षेत्र अपेक्षा, संख्यात द्वीप समुद्र क्षेत्र की जानैं, सोही जीव

संख्यात वर्ष कालकी जानै है ॥ १२ ॥ और तेरहवें भेद मैं क्षेत्र अपेक्षा, असंख्यात योजनकी जानैं, सो ही जीव काल अपेक्षा, असंख्यात वर्ष—कालकी अगली पिछली जानै है ॥ १३ ॥ और चौदहवें भेद मैं तेरहवेंते असंख्यात गुणी क्षेत्रकी जानैं, सोही जीव काल अपेक्षा, तेरहवेंते असंख्यात गुणे काल की अगलीपिछली जानै है ॥ १४ ॥ ऐसे चौदहवें तैं पन्द्रहवां ॥ १५ ॥ पन्द्रहवें तैं सोलहवां ॥ १६ ॥ सोलहवें तैं सत्तरहवां ॥ १७ ॥ सत्तरहवें तैं अठारहवां ॥ १८ ॥ अठारहवें ते उगणीसवां ॥ १९ ॥ ए परस्पर क्षेत्र-काल अपेक्षा असंख्यात-असंख्यात गुणे बधते जानना। ऐसे करते अन्तके भेद मैं देशावधि का उत्कृष्ट क्षेत्र लोक प्रमाण है। और काल-अपेक्षा एक समय घाटि एक पल्य कालकी अगली पिछली जानै है। ऐसे त्रिकाल सम्बन्धी क्षेत्र कालका विषय प्रमाण जघन्यतैं लगाय उत्कृष्ट पर्यन्त देशावधिका विषय कह्या है। सो अपने विषय योग्य क्षेत्र काल मैं प्रवर्त्तते पुद्गल स्कन्धनकी सन्सारी जीवनकी पर्याय पलटणि रूप क्रिया कूं जानै है। इस तीन सौ तेतालीस राजू लोक क्षेत्र मैं जीव-अजीव पर्याय जैसे-जैसे भई आगे होयगी और हैं। सो तीन काल सम्बन्धी अपने विषय प्रमाण क्षेत्र-कालकी जानै सो देशावधि कहिए। इति देशावधि। आगे परमावधिका संक्षेप कहिए है। परमावधिवाला यती देशावधितैं असंख्यात गुणी क्षेत्र कालकी जानै है सो क्षेत्र-अपेक्षा तौ ऐसे ऐसे असंख्याते लोक क्षेत्रकी जानैं है। और कालकी अपेक्षा सागर की अगली पिछली जानै है। इति परमावधि। आगे सर्वावधिका संक्षेप कथन कहिए है। सो परमावधितैं असंख्यात गुणी क्षेत्र कालकी सर्वावधिधारक यति जानैं। इति सर्वावधि। ऐसे अवधिज्ञानके तीन भेद कहे सो यह अवधि दोय प्रकार है। एक भवप्रत्यय और एक गुणप्रत्यय। तहां गति स्वभावतैं जन्म धरते अवधि होय सो भवप्रत्यय कहिये। सो देव नारकीकैं तथा तीर्थंकर कैं होय, सो भवप्रत्यय है। और जहां तहां तप संयमतैं तथा भगवानके दर्शनतैं स्तुतितैं परणामणकी विशुद्धतातैं अवधिज्ञान होय सो गुणप्रत्यय है। ऐसे सामान्य अवधिज्ञानका स्वरूप जानना। इति अवधिज्ञान संक्षेप सम्पूर्णम्। आगे मनःपर्ययज्ञानका सामान्य भाव कहिये है—

गाथा—मण पज्जयणाणवण्णी, खयोवसमज्जस्स होइ सो जीवो ।मण पज्जयक्खु पावई, दो भेयो होइ उज्जु विउलमई ॥ ४७ ॥

अर्थ—मनःपर्ययज्ञानावरणी ताका क्षयोपशम जा जीव कैं होय सो मनःपर्यय ज्ञान पावै । सो ज्ञान ऋजुमति विपुलमति भेद करि दोय प्रकार है । भावार्थ—जिस जीवकै मनःपर्यय ज्ञानावरणीका क्षयोपशम होय है । ताके दोय प्रकार ऋजुमति और विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान होय है। सो इनका विषय कहिए है । तहां कुटिलता रहित-सरल मन सरल वचन और सरल काय करि किये जो कार्य नाना प्रकार विकल्प तीन काल सम्बन्धी तिनकूं जानै । सो ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञान है । इति ऋजुमति मनःपर्यय । आगे विपुलमति मनः पर्ययका संक्षेप कहिए है । तहां सैनीके मन सरल, बचन सरल, काय सरल, किए जो विकल्प तिन सबकौं जानै। और मन कुटिल बचन कुटिल अरु काय कुटिलता करि किए जो विकल्प रूप कार्य, तिन सबकूं जानैं सो विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान हैं। इति विपुलमति । तहां ऋजुमति तौ प्रतिपत्ति है सो होय भी अरु जाता भी रहै । भये पीछे तें जाता रहै, सो प्रतिपत्ति कहिए । भावार्थ—जिस यतीश्वरके ऋजुमति ज्ञान होय । अरु वह मुनीश्वर पर्याय छोड़ि देवलोकमें असंमयी उपजै तौ यह ज्ञान पर पर्यायमें नाहीं जाय । उस मुनिकी पर्याय ही मैं रह्या । देव भये जाता रहै रहै नाहीं । तातें ऋजुमति प्रतिपत्ति है । और जा यतीश्वरकैं विपुल मति ज्ञान होय सो जाता नाहीं । इसे ज्ञान सहित केवलज्ञान होय सो ता केवलज्ञान मैं मिलिजाय है । तातें यह विपुलमति ज्ञान विशुद्ध है। चरमशरीरिन कैं होय । ए ज्ञान भए संसार भ्रमण नाहीं होय है । ऐसा जानना । तहां मनःपर्ययज्ञानीका विषय काल अपेक्षा उत्कृष्ट असंख्यात काल समयकी जानैं । और क्षेत्र अपेक्षा पैंतालीस लाख योजन अढ़ाई द्वीप क्षेत्रकी जानैं विशेष एता जो मनुष्य लोक तौ गोल है । अरु मनःपर्याय ज्ञानका विषय चौकोर है। तातें मनुष्य लोक वारे च्यारू कोणयां मैं तिष्ठते देव तथा तिर्यंच तिनके मन विकलपको भी जानें। ऐसे उत्कृष्ट मनःपर्याय ज्ञानका विषय कह्या । इति मनःपर्याय ज्ञानका संक्षेप वर्णन । आगे केवलज्ञान संक्षेप वर्णन—

गाथा—तिकाले तियलोये, खट दव्वं जहा य पण्णत्ती । जाणय केवलणाणय, जुगपद्दे कंकालम्हि विण भेदो ॥ ४८ ॥

अर्थ—तीनकाल और तीन लोक विषैं द्रव्य जैसे जैसे परणमैं, तिनकौं केवलज्ञानी निरखेद ऐके काल सबकूं युगपत जानैं है। भावार्थ—सर्व ज्ञानावरणी कर्मके चय उत्पन्न भया जो केवलज्ञान, सो क्षायिक ज्ञान है। सो याके होतें अनन्त अलोकाकाश ताके मध्यभाग तिष्ठता असंख्यात प्रदेशरूप लोकाकाश ता विषैं तीन लोक रचना षट् द्रव्य करि वनी है। ता विषैं त्रस नाड़ी है। ता विषैं देवादि च्यारि गति अनन्तकालकी ध्रुव बनी हैं। तिन मैं संसारी जीव, अथिर पर्याय धारी उपजै हैं। और यह लोक, षट् द्रव्यन करि भर्‌या है। सो ए षट् द्रव्य जैसे-जैसे परणमैं, तिन सबकूं केवलज्ञानी जानैं हैं। सौ कहिए है। जीव द्रव्य अनन्त है। सो अनन्ते जीव, समय—समय जैसे-जैसे राग-द्वेष भाव क्रोध मान-माया लोभ भाव, हास्य-भय शोकादि कषायनके अंश सहित ज्यौं-ज्यौं परणम्या ताकूं केवलज्ञानी युगपत जाने हैं। एक एक जीवने अनन्तकाल संसार—भ्रमण करतैं, एक एक पर्याय च्यारि गति सम्बन्धी अनन्त—अनन्त धरी हैं सो केवलज्ञानी जानैं है। इस जीवने देव पर्याय अनन्तवार पाई सो देवगति में नाना भोग भोगते भया जो शुभाशुभ भावनका परणमण ताकूं केवली जाने हैं। अनन्तवार इस जीवनैं पाप भावनतैं नर्क पर्यायके दुख देखे तिनमैं भये जो संक्लेश भाव तिनकूं केवलग्यान जाने है। पशु पर्याय एकेन्द्रियादि पंचेन्द्रिय पर्यन्त अनन्तवार पाई। तिनमैं भए जो राग-द्वेष भाव तिनकूं केवलग्यान जाने है। संसार भ्रमतैं अनन्तवार भया जो मनुष्य तिन पर्यायनमैं भये जो शुभाशुभ भाव, तिन सबकौं केवलग्यानी जानै हैं। और च्यारि गतिमैं भ्रमतैं परणम्या जो पुद्गलस्कंध पर्यायन रूप अनेक रूप, तिन सबकौं केवलग्यान जानैं है। और अवार वर्तमान कालमैं च्यारि प्रकार देव सर्व मनुष्य पशु और नारकी च्यारि गतिके जीव सुख-दुख रूप प्रवर्तें हैं। तिन सबकूं केवली जानैं हैं। और पुद्गल स्कंध जे-जे स्पर्श रस गंध वर्ण होय परणम्या ते-ते सर्व केवली जानैं हैं। और आगामी अनन्तकाल विषैं एक एक जीव अनन्त देव पर्याय और धारेगा। ऐसे अनन्ते जीवन सम्बन्धी अनागत अनन्त पर्यायन मैं समय-समय क्रोध मानादि कषाय रागद्वेष भाव रूप अनन्त जीव ज्यौं ज्यौं परणमैंगे ते केवलग्यान सर्व पहले ही जाने हैं। अनागत अनंत पर्यायन मैं अनन्त कालकी देवनकी पर्यायरूप पुद्गल स्कंध सो केवलग्यान पहले ही

जानैं है। ऐसे अतीत, अनागत और वर्तमान इन काल सम्बन्धी देवनके भाव विकल्प सो अरु इन देव पर्याय रूप परणम्या जो समय-समय अनन्त पुद्गल परमाणु सर्वकूं केवलग्यानी युगपत एक समय जानैं हैं। और ऐसे ही एक एक जीव अतीत अनागत काल विषैं अनन्तानन्तो मनुष्य पर्याय नीच ऊंच कुल तहां नीच कुल भीलादिकका, और अनन्ती पर्याय ऊंच कुल क्षत्री वैश्यादिकका तिन मैं भये जो समय समय इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग पीड़ा—चिन्तवन निदानबंधादि आर्तभाव तथा च्यारि भेद रौद्र भाव। इनके निमित्त पाय जो क्रोध-मानादिक राग द्वेष भावन रूप परणमन, तिन सर्व कूं केवल ग्यानी जानैं हैं। और इन अनन्त मनुष्य पर्यायनमैं परणम्या जो जा-जा रूप स्पर्श रस गन्धादिक पुद्गल पर्याय स्कन्ध रूप परमाणुका परणमण तिन सबकौं केवली जानै हैं। और वर्तमान मैं जो सर्व संख्याते मनुष्य ऊंच नीच कुल तिनमैं जैसे-जैसे समय समय क्रोधादिक कषाय राग द्वेष भावका पलटन तिन सबकूं केवलज्ञानी जानैं हैं। और वर्तमान इनही मनुष्य पर्याय रूप परणम्या जो पुद्गल स्कन्ध तिन सबकूं केवलज्ञानी जानै है। और अनन्त अनागत काल विषैं अनन्ती—अनन्ती मनुष्य पर्याय एक-एक और धारैगा तिनमैं होयगें जो जो रागादि भाव विकल्प ते ते सर्व केवल ज्ञानी जानैं हैं। और अनागत काल मैं होयगी जो मनुष्य पर्याय तिन रूप परणमैंगे जो पुद्गल स्कंध तिन सबकूं केवलज्ञानी जानै हैं। ऐसे कहे जो अतीत अनागत वर्तमानकाल सम्बन्धी मनुष्य पर्यायन मैं अनेक भावनके परणमण तिन सबकौं केवल ज्ञानी युगपत जानै है। और ऐसेही एक-एक जीव अनन्त अनन्त पर्याय नारकी धरि आया। अबार धरै है। आगामी और धारैगा। ऐसे तीन काल सम्बन्धी नारक पर्यायन मैं भये जो भाव विकल्प तिस सर्वकौं केवलग्यानी जानैं हैं। और ऐसे अतीत अनागत बर्तमान काल विषैं एक एक जीव अनन्त तिर्यंच पर्याय जो एकेन्द्रिय बेन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रिय पञ्चेन्द्रिय पृथ्वी अप तेज वायुवनस्पति इतरनिगोद नित्यनिगोद इनके सूक्ष्म बादर रूप पर्याय प्रत्येक वनस्पती सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित इत्यादिक तथा अनेक भेद मई पशु पर्याय और श्वासके अठारहवें भाग आयुके धारी अलब्ध्यपर्याप्त जीव, सैनी असैनी एक अन्तमुहूर्त मैं छ्यासठि हजार तीन सौ छत्तीस जन्म मरण रूप पर्याय तिन सर्व पर्यायनकौं एक-एक जीव

२८१।

अनन्त २ बार धरि आया तिनमैं भये जो भाव विकल्प तिन सर्वकौं केवलग्यानी जानैं है। और इन पर्याय रूप परणम्या जो अनन्तकाल तांई पुद्गल स्कंध तिनकौं केवलग्यानी जानैं हैं। ऐसे च्यार गतिके जीवनके परणाम और ग्यानावरणादिक कर्म रूप भये जो अनन्ते जीवनके भावनका निमित्त पाय पुद्गल कर्म तिनकौं केवल ग्यानी जानैं हैं। और पुद्गल अनेक रूप भए हीरा माणिक, मोती, पन्ना, पारस मिट्टी, खाक, पाषाण, संस, धात्वादिक अनेक रूप परणमैं जो पुद्गल स्कंध तिन सबकूं केवलग्यान जानैं हैं। और तीन काल सम्बन्धी धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य कालद्रव्य आकाशद्रव्य इन अमूर्तीक द्रव्यनका षट् गुणी हानि वृद्धिकौं लिए परणमण तिन परणमण अंशनकूं केवलग्यानी जानैं हैं। ऐसे अलोकमें तिष्ठता लोक ता लोकमें तिष्ठते षट् द्रव्यके परणमण तीन काल सम्बन्धी तिन सर्व कूं केवलग्यान जानैं हैं। इस केवलग्यानके होते ही अनन्त चतुष्टय संग ही प्रगट होय हैं। अनन्तग्यान अनन्तदर्शन अनन्तसुख अरु अनन्त वीर्य। तहां ग्यानावरणी कर्मके क्षय तैं अनन्त केवलग्यान होय। सर्व दर्शनावरणीका नाश भये केवलदर्शन होय। मोहकर्मके क्षय होतैं क्षायिक सम्यक् तथा यथाख्यात चारित्र रूप निराकुल भाव रूप अनन्त सुख होय। अन्तराय कर्मके सर्व अभावतैं अनन्त वीर्य होय। तिनमैं केवलग्यान केवलदर्शन होते तीनलोक व तीनकाल सम्बन्धी पदार्थनका जानपना होय और अनन्तवीर्य होतै अनन्त पदार्थ देखनेकी अनंतशक्ति प्रगट होय है। जो अनन्तशक्ति नहीं होती तौ अनन्त पदार्थके देखनें तैं खेद होता और मोह कर्मका क्षय होता नाहीं पर पदार्थ मैं रागद्वेष होता, यथावत् सुखी नहीं होता। तातैं केवलग्यान दर्शनतैं तो मूर्ती अमूर्ती पदार्थ जाने। और अनन्तवीर्य तैं सर्व पदार्थके देखते खेद नहीं भया। ऐसे अनन्त चतुष्टय सहित केवलग्यानका धारी सयोग केवली अतीन्द्रिय सुख भोगता तिष्ठै है। ऐसा सुख संसार दशामें जो तीन काल सम्बन्धी अनन्ते अहमिन्द्र देव इंद्र सामानिक च्यारि प्रकार देव अनंते चक्री षट्खंडी कामदेव अनंते नारायण प्रतिनारायण बलभद्र अनंते ही मण्डलेश्वर राजादिक अनेक और अतिशय सहित पुण्यके धारी पुरुष विद्याधरादिक इन सबनका इंद्रिय सुख तीन काल सम्बन्धी इकट्ठा कीजे तौहू केवलग्यानके अनंतवें भाग नहीं होय ऐसा सुख केवलग्यान भए हो

है। संसारी सुख तौ ऐसा है। जैसे कोइ पुरका राजा काहूं बैरोको बंदी पड़्या है। सो राज धन सम्पदा बहुत है। सो रुका है तौ भी खान पान वस्त्र आभूषण तौ वांच्छित पहिरै है। और भोजन रस मय करै है। सो इंद्रिय सुख मैं कमी नाहीं। परंतु वंदी मैं पड़ा है। सो महादुखी ही रहै है। सो और जो रुके नाहीं स्वेक्षा सुख सूं राज करै हैं, ते महासुखी हैं। तैंसे ही देवादिक संसारी जीव मोह राजाकी बंदी मैं हैं। सो शुभ कर्म उदय तैं इंद्रिय जनित सुख तौ है। परंतु निबंधन सुख नाहीं और केवलग्यानीका सुख स्वेच्छाचारी राजाकी नांई निबंध सुख है। तातें केवलीका सुख अपार है। ऐसे केवलग्यान सहित भगवान कौं हमारा नमस्कार होऊ इति केवलग्यानका कथन।

इति श्री सुदृष्टितरङ्गिणी नाम ग्रन्थ मध्ये अवधि मनः पर्यय केवलज्ञान वर्णनो नाम वींसवां पर्व सम्पूर्ण ॥ २०॥

आगे कहै हैं जो इस मनुष्य आयुके दिन सोई भई मोतिनकी माला ताकौं भोरा जीव वृथा खोवै है। ताहि दृष्टांत देय दिखावै हैं—

गाथा—मुत्तादामं तग कज्जय, भंजय मूढ़ा णाण रहिया जे। इम अखफल सुह लुहदो, भंजय णरो आयु दिण मुत्त फलं ॥ ४६ ॥

अर्थ—मोतीनकी माला धागाके निमित्त कोई मूढ़ अज्ञानो मनुष्य तोड़ि डारै। तैसेही इन्द्रिय सुखका लोभी मनुष्य आयुरूपी मोतीनकी माल तजै है। भावार्थ—जैसे कोई मूर्ख जीरण गल्या वस्त्र फाटा देखि ताके सीवनेकौं तागा ढूंढै था। सो नहीं मिल्या तब मनोहर मोतीनकी माला थी। सो ताहि देखि विचारी जो इस वस्त्र सीवने कौं तागा मेरी मोतीकी माल मैं है। तब तागा निमित्त मूरखने मोतीकी माला तोड़ि कैं तागा लेय जीरण वस्त्र सोया। सो मोती तागा बिना विखर गये। सो इसकी मूरखता तो देखो कि जीर्ण वस्त्रके निमित्त मोतीकी माला वृथा करी। सो यह महामूर्ख जानना। तैसेही भोरे संसारी जीव इन्द्रियनके विनाशीक आकुलता सहित सुख रूपी पुराणा वस्त्र तामैं भी जारि जारि फाटि रह्या गल्या जाके राखै लज्जा आवैं। नाख (फैंक) देने योग्य मलीन ताकौं बहुत दिन थिरीभूत राखवे कूं अरु तिसतैं अपनी शोभा जानिकैं आप ज्ञानकी मूढ़ता तैं ऐसे ग्लानि कारी इन्द्रिय सुख रूप कपड़ा ताके सीवनेकौं अपने मनुष्य आयुरूपी

मोतिनका हार तोड़ि ताके दिन-घड़ी रूप तागा काटि विषय सुख कषायरूप वस्त्र कौं शाश्वता राखनेकौं सोवता भया। अरु मनुष्यायु रूपी मोतीनका हार शोभा मैं नहीं समझा। सो आयुषके समय तेई भए मोती २८०
तिनकौं वृथा खोवता भया। सो इस भूलकी कहा कहिए। अब मनुष्य आयु बार-बार कहां है। विषय भोग तौ गति गतिमें आवै हैं। आगे बहु भोगे हैं। तातें जो मनुष्य आयुरूपी मोतीनका हार तोड़ि तिसके दिन रूपी तागा लेय कैं विषय कषाय रूपी वस्त्र सींव राखि सुख मानैं। ताके ज्ञानकी कहां तांई हीनता कहिये। जैसे कोई ग्यान दरिद्री भोरा जीव सुखके निमित्त भ्रमण करते मनुष्य पर्याय रूपी चिन्तामणि मन वांछित सुखका देने हारा रतन पाया। तोकौं अल्पग्यानी-भोरा जीव विषय कषायरूपी कोरे चनेके लिये वेंचे। तथा कोई जीव सुखके निमित्त अनेक देशान्तर भ्रमता भ्रमता कल्पवृक्ष पावे। ताके पास बालबुद्धि हलाहल जहर जांचे। तैसे मनुष्य पर्याय शिव सुखकी दाता ताकूं पाय हीन ज्ञानी विषय भोग कालकूट हलाहल जहर जांच हर्ष मानै। ऐसेही मनुष्य आयुरूपो हार तोड़ि तोड़ि ताका डोरा लेय विषय कषाय मई वस्त्र का सींवना जानना। आगे अपनी भूल करि आप बंध्या है सो ही दृष्टान्त द्वारा बतावैं हैं—

गाथा—सुक शालणी कप मुट्ठई, मुकरम्हि भमं पत्ति जह साणो। इम चेदण भमभूलइ, अप्पं बंधइ रायदोसादो ॥ ५०॥

अर्थ—जैसे नलनीका सुवा (तोता), कपिकी मूठी, कांचके महलमैं दूसरा स्वान नाहीं। तैसे ही आत्मा भ्रम भूला, रागद्वेष तैं आप ही बंध्या है। भावार्थ—नलनीका सूवा (तोता), नलनी पै बैठिकें आपही उलट्या है। सो पंजन तैं नलनीको दिढ़ि पकड़े है। सो ऊर्ध्व पांव, अधोकूं शरीर होय झूले। काहू नैं पकऱ्या नाहीं बांध्या नाहीं। आपही ऐसा समझै है जो मैं इस नलनाकौं तजौंगा, तौ मेरे लगेगी। तथा उसे भ्रम भया, जो मोकौं काहू ने पकड़ि उलटा बांधि दिया है। ऐसे भ्रमतैं आप महादुखी भया बंध्या। भ्रमजाय, तौ काहू नै पकऱ्या नाहीं, सहज ही नलनी तजै नभमें उड़जाय और सुखी होय। तैसे आप अपनी भूलतैं परवस्तु मैं राग-द्वेष करि, कोऊको भला मानै है, काहूकौं बुरा मानै है। ए मेरो है, ए मेरी नाहीं। ऐसे भ्रम करि आ- २८४
पही बंध्या है। भ्रम गए, सहजही सुखी होय है। और सुनो, जैसे बन्दरकौं पकरनेवारे ने एक तुच्छ मुखका

गाथा—तसकर पय णिप वहणी, दुभखो लोयं पाव गद पंचो । दुठणरपसु यमं णिंदो, पं तीयदहभय रहय सुद्धादा ॥ ५१ ॥

अर्थ—तसकर कहिये चोर, पय कहिए जल, णिप कहिए राजा, वहणी कहिए अग्नि, दुभखो कहिए दुर्भिक्ष, लोय कहिए लोक, पाव कहिए पाप, गद कहिए रोग, पंचो कहिए पञ्च, दुठणरपशु कहिए दुष्ट नर-पशु, यम कहिए काल, णिंदो कहिए निंदा, एतीयदहभयरहयसुद्धादा कहिए इन तेरह भय करि रहित शुद्धात्मा होय है। भावार्थ—शुद्धात्मा कौं चोरका भय नाहीं। सो चोरके अनेक भेद हैं। एक धर्म-चोर एक कर्म चोर सो ही कहिए है जो धर्म स्थान जो देहरे (देवालय), तिन देहरेनकी वस्तु चोरना, भगवानके छत्र, चमर, प्रतिबिम्ब, सिंहासन, भामण्डल, थारी, रकेबी, झारी, झालरि, मजीरा, घंटा, जाजम, चाँदनी, परदादि उपकरण वस्तुनकौं चोरै सो धर्म-चोर कहिए। तथा शास्त्र-चोर, सो शास्त्रजीके बन्धन, पूठाका चोरना, सो धर्मचोर है। तथा कपटाई करि छल तैं धर्म सेवन करै, सो धर्म-चोर है। धर्म स्थान तैं कोऊ गृहस्थकी वस्तु चोरना, सो धर्म-चोर है। तथा कषायके वशीभूत प्रमादी होय धर्म वासना रहित अपना हिरदै करकै, पीछे रुचि रहित किंचित् कोई धर्म अंगका साधन लोकके देखनेकौं करै है। सो धर्म-चोर है। तथा धर्मकी सेवा करि धर्मका सेवक बाजि (कहलाकर) पुजाया लोकमान्य भया। पीछे कोइ पापकर्मके योगतैं धर्म रहित होय उल्टा धर्मका द्वेषी होय। सो धर्म-चोर है। एतो धर्म-चोरके भेद कहे। और कर्म-चोर हैं सो इनके भी अनेक भेद हैं। मुख्य ये हैं-एक तन-चोर, एक धन-चोर और वचन-चोर। तहां जे कोई पराए बेटा-बेटी, पर-स्त्रीकी चोरी कर, परस्थानमें जाय बेचना। तथा हस्ती, घोटक, गाय, महिषादिक पशूनकी चोरीका करना। सो तो तन-चोर कहिए। और पराए घर विषैं ओड़ादेय (फोड़कर) चुराना। मन्दिरन पै छल-बल करि चढ़ि चोरना। पराए धरे धन कौं आप जानि ले आवना, सो ए सर्व भेद धन-चोरके हैं। पराया दिया-धरामाल राखि लेना। जानता ही भोले राखना। इन आदिक अपने छल करि पराया धन चोरै, सो धन-चोर कहिए। और परके छिपे गुप्त वचन होय, ताकी कोई रहसि जानि, ताकौं प्रगट करना, सो वचन-चोर है। तथा मुखतैं असत्यका बोलना, सो वचन-चोर है। इत्यादिक ए कर्म-चोर हैं। ऐसे जे धर्म-चोर और कर्म-चोर, सो कर्म-चोरतैं अनन्तगुणा पाप

धर्म-चोरका है। ऐसे कहे जो अनेक भेद चोर सो ऐसे चोरनका भय, सन्सारी परिग्रहीनकूं है। और अनन्त गुणोंका धारी, अतीन्द्रिय सुख धनके धारी परमात्माकूं, चोरका भय नाहीं ॥ १ ॥ और थोरी दीर्घ मेघकी वर्षाका भय, तथा नदी सरोवर समुद्र कूप वापी आदि जलका भय, सन्सारीक तन धारी जीवनकूं होय है। और शुद्धात्मा, अमूर्तीक अनन्तसुखके धनीकौं, जलका भय भी नाहीं ॥ २ ॥ और राज भय सो राजका भय चोरनकूं, परस्त्री लम्पटन कूं होय, और अन्यायमार्गीनकूं, असत्य वचनीकूं इन आदिक पाखण्डीनकूं राजका भय होय है। और निर्जरण, कर्म रहित, परमेश्वर, शुद्धात्माकूं, राज भय नाहीं ॥ ३ ॥ और अग्निका भय है सो काष्ठ, वस्त्र, तृण, सुवर्ण, चांदी, रतनादि, मनुष्य पशुनके पुद्गलीक शरीर इन आदिक धनधान्यादिक सर्व वस्तु पुद्गल स्कंध है। तिनकूं अग्निका भय है। तथा इन पुद्गल स्कंधन में जिस जीवका ममत्व भाव होय, तिस रागी कूं अग्निका भय है। और अमूर्तीक, ज्ञानपिण्ड, शुद्धात्माकौं अग्निका भय नाहीं ॥ ४ ॥ और अन्न ही है सहकारी जाका, ऐसा जो पुद्गल शरीरका धारी, परिग्रही, बहु कुटुम्बी, मोही, संसारी जीव, दुर्भिक्ष होते कुटुम्ब रक्षा तथा अपने तनकी रक्षाका करनहारा, ताकूं कालका भय हो है। क्यों? यह मोही परिग्रही तन धारी, सो याकौं दुर्भिक्षका भय होय है। और पुद्गल शरीर रहित और कुटुम्बादि जन रहित, वीतराग, मोह रहित, शुद्धात्माकौं दुर्भिक्षका भय नाहीं ॥ ५ ॥ और लौकिकका भय है। सो जे तस्कर होय, द्यूतके रमणहारे होंय पल (मांस) भक्षी होय मदिरा पायी होय, वेश्या घर गमनी होय पर जीवनका घाती होय तथा परस्त्री भोगनहारेकौं इन सप्तव्यसन सहित, पापाचारी, अयोग्य पन्थके चलनहारे जीवनकौं लौकिकका भय होय। तथा क्रोधी, मानी, दगावाज, महा लोभाचारी, पाखण्डी, ठग, अनाचारी, विश्वासघाती, स्वामी-द्रोही, मित्र द्रोही, इन आदि अनेक कुमार्गीनकूं, लोकका भय होय है। और जगत पूज्य, सर्व बल्लभकौं, लोकालोक ज्ञाता सर्वज्ञकौं, वीतराग, अमूर्तिक देवकौं, लोकका भय नाहीं ॥ ६ ॥ और सरागी, बहु कुटुम्बी बहु आरंभी, संसारी, रागद्वेष सहित, पापाचारी कं पापका भय है। तिनकूं पाप दुखी करैं है। और वीतरागी, जगतका पीर हर, पाप पुण्य संसार मार्ग तातैं रहित कर्म कालिमा वर्जित शुद्धात्मा कूं पापका भय

है सो भी। गणधार कय भत्ती कहिए, रतन की धारा भक्ति करि करै। तो सुरणारखग पूजय कहिए, देव मनुष्य विद्याधर पूजैं ताको विसमय कहिए, कहा विस्मय है। धम्म सेय सिव कज्जे कहिए, मोक्ष-अर्थ धर्म सेवन करि। भावार्थ—भगवान की भक्ति आदि धर्मका फल ऐसा-जो ताके प्रसाद तैं अचेतन आकाश तैं भी रतनकी धाराकी वर्षा होय कैं, धर्मात्मा जीवनकी महिमा प्रगट करै है। सो मानूं धर्मात्मा जीवनकी सेवा हो करै है। इहां प्रश्न-आकाश तो जड़ है। सो भक्ति कैसें करै ? रतनधारि तो देव करैं हैं। सो यहां आकाश की भक्ति कैसे भई ? ताका समाधान-सो आकाश जड़ तो है। याके भक्ति-भाव वैसे होय, या बात तो प्रमाण है। सर्व जानैं हैं, चेतना नाहीं। परन्तु धर्मका महातम ऐसा है जो आकाशमें तिष्ठते पुद्गल-द्रव्य-स्कन्ध, सो रतनादिक रूप परणमि कैं, ताकी वर्षा होनै लगै है। तातें हे भव्य, जीवन कूँ अतिशय बतानेके निमित्त ऐसा कह्या है। जो आकाश भी धर्म-प्रसाद तैं, रतन-धारा वर्षाय, धर्मात्मा जीवनकी सेवा करैं, तौ चेतन द्रव्य जो देव, चक्री, खग, नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र, कामदेव, महामण्डलेश्वरादि राजा ए; और भवनपति, ज्योतिषपति, व्यन्तरदेव, कल्पवासी, कल्पातीतादि देव ए चेतन पदार्थ धर्मप्रसाद तैं, धर्मात्मा जीवन को, तथा धर्मकी सेवा करैं, तौ अचरज कहा है। करैं ही करैं। ऐसा जानि भव्य जीवन कौं, धर्मकी तथा धर्मी पुरुषन की सेवा-भक्ति करना योग्य है। इति। आगे कहैं हैं जो ऐसे २ पुण्याधिकारी, पदस्थवान, पुरुषनके भोगइन्द्रिय सुख हैं सो विनाशीक हैं। ऐसा दिखावैं हैं—

गाथा—रायधरा महरायो, अधमंडयमण्डे यमहामण्डो। अधचक्की महचक्की, खगसुर देवाण सयल सुह अथिरो ॥ ५२ ॥

अर्थ—राजा, महाराजा, अर्ध मण्डलेश्वर, मण्डलेश्वर, महामण्डलेश्वर, अर्ध चक्री, सकल चक्री, खगेश्वर, देव, इन्द्र इन सर्वके सुख अथिर हैं। भावार्थ—जाके घरमें कोटि ग्राम होय, सो राजा है। सो इस राजाके वांच्छित भोग ॥ १ ॥ और जाकी ऐसे-ऐसे पांच सौ राजा सेवा करैं-चाकर होंय, सो अधिराज कहिये। ताके सुख देखते ही विनशै हैं ॥ २ ॥ और एक हजार राजा जाकी चाकरी करैं, सो महाराजा है। ताकी विभूति ॥ ३ ॥ अरु दोय हजार राजा जाकी आज्ञा मानै, सो अर्धमण्डलेश्वर कहिये। तिनकी सम्पदा ॥ ४ ॥ और

चार हजार राजा जाके चरण-कमलकी सेवा करें, सो मण्डलेश्वरनाथ कहिये । इनके भोग ॥ ५ ॥ आठ हजार राजा जाकी आज्ञा मानैं, सो महामण्डलेश्वर कहिये । ताकी सम्पदा ॥ ६ ॥ और जाकी सोलह हजार आर्य-खण्डके राजा सेवा करें सो तीन खण्डका अधिपति कहिए । ताके भोग ॥ ७ ॥ और बत्तीस हजार देश आर्यखण्डके, तिनके बत्तीस हजार राजा जिसको सेवा करें, सो चक्रवर्ती-षट्खण्डनाथ है । ताके पुण्यका महात्म कछु कहनेमें नहीं आवै । छयानवे हजार तौ देवांगना समानि, महासुन्दर, विनयवान् रानी हैं । नवनिधि व चौदह रतन, इनके दीए अनेक वांछित भोग । जाकी हजारों देव आज्ञा मानै । चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख रथ, इत्यादिका नाथ, मनुष्यनका इन्द्र । ताकी ए ऋद्धि ॥ ८ ॥ और महा मान शिखर पै चढ़्या, महा अतिशय सहित पुण्यका धारी, इत्यादिक पदस्थका धारी पुरुष, अपनी सम्पदा कूं स्थिरी भूत जानि, सदीव सुखसागरमें मगन रह्या चाहै था, सो इनकी सम्पदा देखतैं देखतैं नाश कूं प्राप्त होय गई । जैसे बिजली अल्प उद्योग करि नाशकूं प्राप्त होय है, तैसे ही महा-चपल सम्पदा विनश गई । तथा और विद्याधर महा अतिशयवान् पुण्यके धारी, देवन समानि निवासी वांछित भोगनके निवासी । और च्यारि प्रकारके देव, अद्भुत रसके भोगी महा पराक्रमी । तथा देवनका नाथ जो इन्द्र, जाकी मन अगोचर लक्ष्मी । असंख्यात देवीनिकी सराग चेष्टा करि मोहित होय रह्या है चित्त जाका । अनेक मन, वचन, काय के चाहे इन्द्रिय भोग तिनका भोगी देवेन्द्र । ऐसे कहे जो देव मनुष्यनकी सर्वोत्कृष्ट सुख सम्पदा सो सब विनासीक स्वप्नसम भ्रम उपजावनहारी जानना । भो भव्य हो ! देखो । ऐसी महान् सुख सम्पदा तौ थिर रही नाहीं, तो तेरी तुच्छ पुण्य करि उपारजी, अल्प सम्पदा पराधीन सो ए कैसे स्थिर रहेगी ? तातैं ऐसी जानिके तुच्छ स्थिति धारी चपला-विनाशीक सम्पदा तैं ममत्व छोड़िकर मोक्षके सुख अविनाशीक तिनके निमित्त धर्मका सेवन करना योग्य है । ।२९०।
इति आगे ऐसा बतावैं हैं । जो माता पितादि सर्व जन अपने-अपने स्वार्थके बंधन तैं बन्धे हैं—

गाथा—जणक पितामह जणणी, तिय सुन मित्तादि बन्ध पुत्तीए । सामी भिक्खिक दासो, ए सहु णिज्ज काज बन्ध वन्धाणी ॥ ५४ ॥

अर्थ—जणक कहिए पिता । पितामह कहिये, पिताका पिता । जणणी कहिये माता । तिय कहिये स्त्री ।

सुत कहिए पुत्र । मित्तादि कहिए, मित्र बन्ध कहिये भाई । पुत्तीए कहिये पुत्री । स्वामी कहिये सरदार । भिक्खिक कहिये मँगता। दासो कहिए चाकर । ए सहु कहिए, ये सर्व ही । णिज्ज काज बंध बंधाणी कहिये अपने-अपने कार्य रूपी बन्धन करि बंधे हैं । भावार्थ—जातैं आप उपज्या सो अपना पिता है । सो पिता पुत्रकी बालापनेमें सेवा करै है । नाना प्रकार खान-पान शीत—उष्णतैं रक्षा करै है । सो ऐसा विचारै है जो ए मेरा पुत्र है। यातैं मेरा नाम चलेगा । मेरी वृद्धपनेमें सेवा करेगा । इत्यादि स्वार्थके बन्धनमें बन्ध्या मोह वश होय, नेह उपजाय पुत्रकी रक्षा करै है । और पीछे पुत्र कुपूत होय, अविनयवान् होय तौ तातैं स्वारथ नहीं सधता जानि मोह तजै । घरतैं निकास देय, मारि डालै जुदा करै। बटाऊ (साझेदार) हूतैं बुरा लागै। और पिता का पिता पोतेतैं मोह करै है । सो यह जानकर कि ए हमारे पुत्रका पुत्र है । सो मेरा नांती है। यह वड़ा होयगा तब मेरी बृद्ध अवस्थामें सेवा करेगा। ऐसा स्वारथके बन्धन मैं बन्ध्या, नांती जानि बाबा रक्षा करै ।और माताने नव मास उदरमें रक्षा करा जनम भए पीछे मोहके वश ये पुत्रकी रक्षा करै है। सो भरी रातिमें शीतकाल समय मल—मूत्र करै तब आप तौ शीत आगे (गोले) में रहे अरु पुत्रको सूखेमें राखै है। सो ऐसा विचारै है जो बड़ा होय कमाय मोकूं खुवाय सुखी करेगा। मेरी आज्ञा मानैगा । ऐसे स्वारथके बंधन तैं बंधी माता पुत्रकी रक्षा करै है । और पति नाना कष्ट पाय द्रव्य पैदा करै सो लायकै स्त्री कूं देय । नानाप्रकार पंचेन्द्री जनित भोग सामग्री मिलाय स्त्रीकूं सुखी करै है। तातैं स्त्री ऐसा जानै है ।सो मेरे मनवांच्छित भोगका देनेहारा एक भरतार है । ऐसै स्वारथ तैं बंधी स्त्री भरतारकी सेवा करै है । और कदाचित् भरतार मन्द कुमाऊ होय हीन भागी होय दरिद्री होय अपने सुखका कारण नाहीं होय तो अपने स्वारथ रहित भरतारकौं तजै है । और पुत्र अपने योग्य खान पान असवारी वस्त्रके दाता माता पिताकूं जानकै, पुत्र माता पिताकी सेवा करै है। और ऐसा जानै है । ये माता पिता हमारा जतन करैं हैं । ऐसे स्वारथतैं बन्ध्या पुत्र माता-पिता की सेवा करै है, आज्ञा मानै है । कदाचित् अपना स्वारथ सधता न जानै तो माता पिताकूं तजै है। और मित्र है । सो स्नेह करै है । और ऐसा विचार करै है ।.जो ये धनवान् है । हुकुमवान है । राज पञ्चनमें इसका

बड़ा चळन है। तातैं यातैं द्रव्यका सहाय कामपड़ैं होय है। तथा खान पान भलो वस्तु वस्त्रादि मिलै है तथा प्रयोजन पड़े कष्टमें सहाय करै है। ऐसे स्वारथके बन्धन तैं बन्ध्या मित्र स्नेह करै है कदाचित् अपना पुण्य घटै हुक्म मिटै धन घटै तो मित्र अपना प्रयोजन सधता न जानि मित्रता तजै है। तातैं मित्र भी स्वारथके बन्धनतैं बन्ध्या स्नेह करै है। और बन्धु जो भाई हैं, सो अपना मनोरथ सधै तबलै सनेह रूप रहैं। प्रयोजन सधता नहीं जानि जुदा होंय। पुत्री है सो अपना प्रयोजन सधै तबलूं माता पितानकी सेवा करै, उपकार मानै। और स्वामीकी आज्ञा प्रमाण सेवक चलै। जबलौं अनेक कारज घरके सुधरे, तबलूं स्वामी कहै मेरा भला सेवक है। और जब आज्ञा न मानै, तौ दूर करै चाकरीसे छुड़ाय देय। तातैं स्वामी भी अपने स्वारथके बन्धनतैं बन्ध्या सेवा करावै है। और भिक्षुक जो जाचक मंगता, ताकी याचना भंग न होय जबलौं अन्न वस्त्र धन पावै तबलौं जश गावै। याचना भंग भयें यश न गावै निन्दा करै। तातैं याचक भी स्वारथके बन्धनतैं बन्ध्या है। और सेवक है सो स्वामीके घरतैं अनेक अन्न धन ग्राम हस्ती घोटकादि सुख सामग्री पावै है। तेते काल सेवक भलीभांति स्वामीकी सेवा करै है। और अपनो प्रयोजन जब नहीं सधै तब सेवा चाकरी तजै तातैं सेवक भी अपने स्वारथके बन्धन तैं बन्ध्या है। इत्यादि कहे जे नाते ते सब अपने २ स्वारथके जानना। बिना स्वारथ संसार प्रयोजनवारे, जीव तैं स्नेह करते नाहीं। ऐसा ही अनादि स्वभाव जगतका जानना। और धर्मरसके पीवनहारे त्यागी ज्ञानी जग तैं उदासीन समता भावी दयाभण्डार परमार्थ मार्गके वेत्ता धर्मस्नेही ये जीव जातैं स्नेह करैं, जाकी रक्षा करैं सो स्वारथ रहित। तातैं धरमी पुरुषनकौं कोई इन्द्रिय जनित स्वारथ न चाहिये। इनका स्वारथ परमार्थ निमित्त है। ऐसा संसारका स्वभाव ही स्वारथ मई जानि, विवेकी हैं तिनकौं अपने स्वारथ साधवे कौं परमार्थ मार्ग चलना योग्य है जातैं परम्पराय मोक्ष होय है। आगे जिन जिन पदार्थनका चपलता रूप सहज ही स्वभाव है, सो मिटता नाहीं। ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—स्वांण पुच्छ अहि गमणो दुठ चित्तो सहल वक्र णहपायो। पीपल दल करि कण्णो सठ मण अस्थि सुह णाह ध्रुव भावो ॥ ५१ ॥

याका अर्थ—स्वांण पुच्छ कहिये कुत्तेकी पूंछ। अहि गमणो कहिये सांपकी चाल। दुठ चित्तो कहिये ।२६५

दुष्ट जीवका चित्त सहल वक कहिए सहजही वांकका है। णहपायो कहिये इनके मिटावेका उपाय नाहीं। पीपल दल कहिये पीपलका पात (पत्ता)। करि कणणो कहिये हाथीका कान। सठ मण कहिए मूरखका मन। अख सुह कहिए, इन्द्रियोंके सुख। णाह ध्रुव भावो कहिये, ए ध्रुव भाव नाहीं। भावार्थ—कुत्तेकी पूंछ, सहज ही बांकी होय। ताके सीधी करवेकौं, कोऊ उपाय नाहीं। याका सहज ही स्वभाव वैसा है। और सर्पकी चाल स्वभाव ही तैं बांकी है। याभी कोऊ उपाय तैं सीधी होती नाहीं। तैसे ही दुष्ट-जीव-पापाचारीनका चित्त भी, सहज ही बांका-कुटिल है। दगाबाजी कर भरया है। याका भी सहज-स्वभाव है। या दुष्टकी बहुत सेवा करौ, तथा याका विनय करौ, याते नमो, तथा याकौं बहुत धन देऊ, इत्यादिक अनेक उपाय करौ, परन्तु कोई भी उपाय तैं इस अनाचारीका चित्त, सीधा नाहीं होय। यातैं भो भव्य! तू सर्व जगह प्रमाद-रूप रहियो। परन्तु दुष्ट-जीवके संग होतैं, गाफिल-प्रमाद रूप मत होईयो। भो भव्य! काले सर्प तैं क्रीड़ा करते प्रमाद रूप रहै, तो मरण पावै। सो एकही भव दुखी होय। परन्तु तूं या दुष्टके स्नेह-संग पाय, गाफिल रहेगा, प्रमादके वशीभूत होयगा, तो तेरा भव-भव बिगड़ जायगा। महा-दुर्गतिमें पड़ेगा। यहां प्रश्न-जो तुमने कह्या, दुष्टके स्नेह तैं भव-भव दुख उपजै, सो संग कीए ही दुष्ट कैसे भव बिगाड़ेगा? ताका समाधान-जो हे भव्य, तू सुनि। याका उत्तर समझैं—श्रद्धान कीजे, तेरा बहुत भला होयगा। और ज्ञान बधवारी होयगी। भले-बुरे जीवन की परीक्षाका ज्ञान प्रगटैगा। तातैं भो धर्मी! चित्त लगायके सुनना। आप काहू तैं द्वेष करै, तो दूसरा भी आपतैं द्वेष करै। सो यह सब संसारी जीवन की रीति हैं। परन्तु भो भ्रात! दुष्ट ताका नाम है, जा बिना-दोष परतैं द्वेष करै। याही परीक्षा करि तू दुष्ट कूं जानलेना। आपतौ कोई प्रकार तैं द्वेष—भाव नाहीं करै। और जे दुष्ट हैं ते पराया धन, हुकुम, वस्त्र, आभूषण, हस्ती, घोटक, रथ, पालकी आदि असवारी देख, बिना प्रयोजन सहज ही द्वेष भाव करैं। लोकमें काहूका बड़ा यश, गुणी जीवनके मुख तैं सुनि, यह पापी वृथा ही द्वेष करै। तथा कोई को सुमारग लगता देखि, धर्म सेवन करता देखि, द्वेष करै। कहै, ए बड़ा धर्मात्मा भया। हमारे आगे याके बड़े अनेक पाप करते देखे थे। इत्यादिक परकौं सुखी देख,

आप निरंतर दुख करे। परकौं रोग, शोक, चोट लागी देख, परकूं दुखी दरिद्री देखि, आप राजी होय। सो दुष्ट जानना। सो या दुष्ट, जगत निंद्यके संगतैं भला जीव निन्द्य होय, अपयश पावै, अनादर होय। ता अनादर तैं, आत्मा दुखी होय है। तातैं दुष्टका संग मनै कीया है। और जो तू कही परभवमें दुष्ट दुखदायी कैसे होय ? सो भी तू चित्त देय सुनि। जब दुष्ट जनतैं प्रीति होय। तब वह पापाचारी, पाप कार्यनमें रंजायमान करावै है। यह बिना कारण सहज स्वभाव, धर्म तैं द्वेषभाव करनहारा दुराचारी, धर्म भावना रहित, अनेक अभक्षादि भोजन करनहारा, याकौ कोई धरम नाम भला लगता नाहीं। सो पुन्य तैं छटाय, पाप पंथका प्रेरक होय है। जैसे बनै तैसे, अनेक जुगति देय कैं, हाँसि कौतुकनमैं, इन्द्रिय नित भोगन मैं लगाय, धर्म तैं भृष्ट करि, पाप कार्यनमें तन, मन, धन, वचन तैं अनेक प्रकार सहायक होय है। पाप करावै स्नेही कूं दुर्बुद्धि करि पापबन्ध कराय, परभव विगाड़ै। तातैं अनेक दुख ए जीव पावै। ऐसा जानना। तातैं भो भव्य तूं याका संग स्नेह, नरक पशूनके दुखका दाता ही जानना। तातैं या दुष्ट जीवका निमित्त सब प्रकार दुखदाई जानि, तजना सुखदाई है। और कदाचित् भो धर्मात्मा ! तूं सरल बुद्धि है सो दया भाव करि कभी ऐसा विचारैगा, जो मैं कोई नय दृष्टान्त करि, याकौं धर्म विषैं लगाय, याका भला करूंगा। सो परोपकारी भव्य, तूं ऐसा भ्रम तज देय। याका सुलटणा महा आसाध्य नहीं होने जैसी वार्ता जानि। जो कुत्तेकी पूंछ की कुटिलाई मिटै सूधी होय. तो इस दुष्टकी दुष्टता छूटि धर्म रूप होय। तथा सर्पकी चाल वक्रता तजि, सरल होय, तो इस कुबुद्धि कौं धर्म रुचि होय। तातैं जैसे नागकी चाल अरु स्वान की पूंछ, इनकी वक्रता अनादि की, कोई उपाय तैं नहीं मिटै। तैसे ही दुष्टस्वभाव, सहज ही अनाचार रूप होय है। याके धर्म कदाचित भी नहीं होय। तातैं ऐसा जानि, दुष्टका संग स्नेह तजना योग्य है। और तन धनादि सामग्री विनाशीक है। सो इनतैं ममत्व भाव तजना योग्य है। जैसे पीपलका पत्ता, चंचल है। तथा गज कर्ण, चपल है तथा मूरखका मन चपल है। तैसे ही हे भव्य तूं ये जगतके इन्द्रिय जनित सुख चंचल जानना। ए पीपल पात गज कर्ण मूरखका मन सहज ही चपल है। तैसे ही इन्द्रिय जनित सुखन कूं सहज ही विनाशीक जानि

इन तैं ममत्व भाव तजि धर्म विषैं लगना जोग्य है। तूं विवेकी धर्मार्थी है तातैं तोकूं धर्मका उपदेश कहैं हैं। सो तूं सुनि। जो धर्मार्थी हैं तिनका चित्त तो धर्मके उपदेश सुनिनें में लगै है। और मूरख धर्म वासना रहित प्राणी है, तिनका चित्त धर्मोपदेश तैं चंचल होय है, स्थिरी-भूत रहता नाहीं। यह अज्ञान, धर्मके स्वरूपमें समझता नाहीं। इस दुरात्माका उपयोग, विकथा लड़ाई, राज-कथा धन-कथा पर की निन्दा करना इत्यादि पाप स्थानकन में तो निःप्रमाद होय भले-प्रकार मन-वचन काय की एकता सहित या कुबुद्धिका चित्त लागै है। और धर्म-पन्थ-विसरे जीव कौं धर्मोपदेश दीजिये। तब ये धर्म-दरिद्री और विकल्प विचारै धर्मोपदेश नाहीं धारै। तथा धर्म सुनतैं निद्रा आवै सो शयन करै--ऊंघै। और कदाचित् जागै तो दूसरे मनुष्यन तैं जो पासि तिष्ठ्या होय तातैं वार्ता करनेलगै। सो आप तो पापी है ही। परन्तु समीप तिष्ठ्या जो जीव ताकौं बातों लगाय वाका धर्म घाति करि वाका परभव बिगाड़ै। तो ऐसे जीव धर्म सन्मुख कैसे होंय? तातैं कुटिलचित्त धारी मायाचारी दुष्ट-जीवन कूं धर्मोपदेश लागता नाहीं। तातैं जे जीव विवेकी हैं तिनकौं धर्मोपदेशमें प्रमाद करि चित्त चंचल राखना योग्य नाहीं। आगे जिन--आज्ञा रहित जे अतत्व-श्रद्धानी महा-पंडित भी होंय तो ताके मुखका उपदेश सुनना जोग्य नाहीं। ऐसा कहै हैं—

गाथा—अहिसिरणग उक्कट्ठो, गह्ये पाणांत होय णेमाये। इव मिछि मुह उपदेसो, सधा कुगय देय भवमयणं ॥ ५६ ॥

याका अर्थ—'अहिसिरणग' कहिये, सर्पके शीसपै मणि रत्न है सो। 'उक्कट्ठो' कहिये, उत्कृष्ट है। 'गह्ये पाणांतहोय' कहिए, ता रतन कौं ग्रहे प्राणनका नाश होय है। 'णेमाए' कहिये, निश्चय तैं। 'इवमिछिमुह उवदेशो' कहिये, तैसेही मिथ्यादृष्टी जीवनके मुखका उपदेश जानना। 'सधा कुगय देय भवमयणं' कहिये, इनका श्रद्धान कीए कुगतिके अनेक जनम-मरण देय है। भावार्थ—नागके मस्तक पर मणि है, सो महा उत्कृष्ट है। अनेक गुण सहित है। सो ताका लोभ कीये, कोई उस रतनको लीया चाहै। तो लोभ भी नहीं सधै, अरु मरण को पावै। क्यों, जो रतन तो बहुत अच्छा है परन्तु महा बिष-हलाहल भर्या, चपल-बुद्धि, महा क्रोधकषायका धारी भुजंग, काल-रूप, ताके पासि है। सो विषका भर्या सर्प, ताके शिर तैं मणि-रतनका लेना, सो ही मरण

का कारण जान। सो हे भव्य ! तैसे कुदेव, कुगुरु, कुधर्म ताका सेवनहारा, जिन-भाषित-धर्म तैं विमुख, महा क्रोध-मानादि कषायरूपी जहर तैं भरया मिथ्यादृष्टी, सो ही भया सर्प, ताके पास भली-विद्या रतन है। परन्तु कदाचित् याके मुख तैं उपदेशरूपी रतनको ग्रह्या चाहै, तथा भला जानि श्रद्धान करै तो कुगति जे नरक-पशु गति, सो तिनके जनम मरणके तीव्र दुख कूं प्राप्त होय है। यहां प्रश्न जो तुमने कह्या सो सत्य, इसकी मिथ्या दृष्टि तो हम भी जानैं हैं। परन्तु हमकूं शास्त्र वांचनेका ज्ञान नाहीं। अरु जिनवाणी सुनवेकी बड़ी अभिलाषा है। तातें यद्यपि इस मिथ्यादृष्टी कूं शास्त्रका विशेष ज्ञान नाहीं है। परन्तु अनेक संस्कृत, प्राकृत, छंद, गाथा की वाचनकलामें प्रवीण है। वाचनकला भली है, अच्छे स्वर तैं कहै है। अर्थ भी सर्व खोल देय है। कंठ अच्छा है। सो हम याके पास जिन आम्नायके शास्त्र बचाय, ताकैं अर्थका ग्रहण करि, धर्म ध्यानमें काल गमाय पुण्यका संचय करेंगे। यामैं कहा दोष है ? ताका समाधान जो हे धर्मानुरागी, तू भी सुनि। ए मिथ्यात्व मूरति, क्रोध मान माया लोभका पोषणहारा, दश वचन जिनवचन अनुसारि कहेगा तो तिनमैं भी दोय वचन मिथ्यात्व पोषक कह जायगा। सो तुमकं विशेषज्ञान तो है नाहीं। जो ताका निर्धार करोगे। सो सामान्यैं ज्ञानके जोगतैं तुम मिथ्या कूं भला जानि श्रद्धान करोगे। अरु मिथ्यावचन श्रद्धान भये तुम्हारा धर्म रतन शुद्ध श्रद्धान ताका अभाव होयगा। संसार भ्रमण होयगा। च्यारि गतिके दुख जनम मरणके भोगवोगे। तातैं मिथ्यातीके मुखका उपदेश योग्य नाहीं। और जो जिन-भाषित तत्वनका वेत्ता होय। सुदेव-वीतराग गुरु-नगन वीतराग धर्म-दयामई ऐसे देव-गुरु-धर्मका दृढ़ श्रद्धान होय। अरु जाकों वाचनकला अल्प होय तथा ज्ञान जाकैं सामान्य भी होय तो ताकै मुखका धर्मोपदेश ता सुखदाई है। परन्तु मिथ्यादृष्टी अतत्व-श्रद्धानीका धर्मोपदेश भला नाहीं। जैसे कोई दोय पुरुष परदेश-ग्रामान्तर गए। सो तिनमें एक तो शुभाचारी है व एक कुआचारी-भोरा है। सो दोऊ ही रसोई नहीं बना जानैं। जब भोजनकी भूख लागी। तब परस्पर बतलावते भए। जो हे भाई ! भूख लागी कहा कीजिये ? पैसे तो बहुत हैं पर रसोई करना नाहीं आवे। तब वह भोरा-जीव जो आचारमें नहीं समझै था। सो बोल्या। हे भाई ! भूख लागी है तो इस भठियारीके घर तुरन्तका

किया मनवांछित स्वादका देनेहारा भोजन ताजा है। सो या माँगे दाम देय भोजन करौ। तब दूसरे आचारीने कह्या। भो भाई भठियारीके घरका भोजन भला है अनेक रसमय स्वाद सहित है तो कहा भया। परन्तु आचार रहित है। तातैं अयोग्य है। और जातिके सुनैं तो जाति तैं निषेधैं। पांति तैं उठाय देंय। अभक्ष्यके योगतैं परभवमें नरकादि दुख होंय। तातैं हम तो अपने हाथ तैं अथवा अपना जाति भाई होयगा ताके हाथकी कच्ची-पक्की नीरस खाय चारि दिन परदेशके काटि नाखैंगे। और मरण कबूल है, परन्तु भठियारीकी रोटी नहीं खांयगे। ऐसा भठियारीका भला भोजन तजि अपने जाति भाईकी करी कच्ची-पक्की रूखी सूखी अंगीकार करि अपना धर्म राख्या। और जे अज्ञानी आचार रहित होंय भूख मेटवे कूं स्वाद लम्पटी होंय ते भठियारीकी रोटी खाय हैं। परन्तु आगे कूं जातिमें गये याका अनाचार सुन्या जायगा, तब जातिसे निकास्या जायगा। पर-भव दुर्गति में पड़ैगा। तैसे ही भठियारीके भोजन सदृश मिथ्यातीका उपदेश जानि सम्यग्दृष्टी दृढ़ श्रद्धानी कूं तजना जोग्य है। और कोई भोरे ऐसा कहैं—जो शास्त्र तो जिन आम्नायके हैं। सो कोई ही होऊ, वचवायके अर्थ समझ लेंयगे। ते भोरे श्रद्धान रहित शिथिल परणामी नामचार धर्मी, जिन-धर्मका सेवन करि परभव सुख चाहैं हैं। सो ये शिथिल परणामी, अचार भठियारीकी सी रोटी खाय, सुखी हुए हैं। परन्तु परभवमें तौ जिन आज्ञा प्रमाण दृढ़ श्रद्धानका फल होय है। सो याकूं परभव में तो कुगति दुख होंयगे। तातैं हे भव्य, तूं धर्मफलका लोभी है अरु मोक्ष मारगका अभिलाषी है तो मिथ्यादृष्टीके मुखका उपदेश तोकूं श्रोत्र द्वारे भला सुर व भला कण्ठके जोगतैं अच्छा भी लगता होय तो भी सर्पकी मणिवत् भठियारीके भोजनवत् तजना जोग्य है। ऐसा जानना। और केतेक भोरे संसारी चतुर जीव ऐसा श्रद्धान करैं हैं, जो मिथ्याती है तो वह है, अपनेकूं कहा? अपनें कूं तो वचवाय लेना। और एक दोय बचन कोई मिथ्यात रूप खोटे कह गया होय, तो वह जाने। वह बलवान् है। सो जिन भाषित अनेक वचनोंमें कोई दोय वचन अतत्वरूप सरधे गये तो कहा होय है? ताका समाधान जो हे भव्य ऐसा विचार तौ महादुखदायी जानना। जैसे भला षट्रस सहित पुष्टिका करणहारा भोजन वनाया और कदाचित् ऐसे उत्कृष्ट भोजनमें थोड़ासा

हलाहल विष डाल दिया होय तो उस ही भले भोजनकों खाए मरण होय। तैसे ही जिन वचन स्वर्ग मोक्ष फलके दाता हैं। तिनके सुनैं जीवका कल्याण होय समभाववधै। ऐसे वचनकौं उपदेशमें कोई पापी आत्मा, कषायरूपी हलाहल-जहर नाखिकैं कथन करै। तो श्रोतानकों दुखदाता होय। ऐसा जानि मिथ्याती बहुत ज्ञानी होय और आप भोरा होयतो अपने मुख तैं पंच परमेष्ठीके नामका जाप करना परन्तु मिथ्यातीके मुखतैं उपदेश नहीं धारना। आगे सर्प हू तैं दुष्ट जीवनकों विशेष बतावै हैं—

गथा—खल अहि कूर सुहावो, तिणमहि खल अति कूरता होई॥ अहिमन्तर उवचारो, दुठ उवचारोयलोयतिय दुलहो॥ ५७॥

याका अर्थ—खल कहिये दुष्ट। अहि कहिए सर्प। कूरसुहावो कहिए इनका क्रूर स्वभाव है। तिणमहि खल अति कूरता होई कहिये तिनमें खलकी क्रूरता बड़ी है। अहिमन्तर उवचारो कहिए सर्पका उपचार तो मंत्र है। दुठ उवचारोयलोयतियदुलहो कहिये दुष्टका उपचार तीन-लोकमें दुर्लभ है। भावार्थ—जो दुष्ट हैं सो पर कौं धर्म-कर्म कार्यनमें निराकुल-सुखी देख विना प्रयोजन दुखी होय हैं। ऐसा जो दुष्ट सो पर कौं दुखी देखि आप हर्ष मानता होय। सो एक तो यह। और दूसरा सर्प। ए दोउ महा क्रूर स्वभावी हैं। परन्तु इनमें दुष्ट-जनकी क्रूरता विशेष जानना। काहे तैं सो कहिये हैं—जो महा विषका भर्या काल-रूप सर्प ताके खाये नाहीं बचै। कर्म जोग तैं बचै नाहीं तो मरै ही है। ऐसे भयानक सर्पकी पूंछ तैं पॉव लागै तो यह सर्प काटै। सो याका विष दूर करबेका अनेक मन्त्रादिक इलाज है। परन्तु विना ही कारण द्वेष रूपी विषका भर्या दुष्टात्मा याकी क्रूरता मैटै कौं कोई तीन लोक विषैं उपाय दीखता नाहीं। तातैं भो भव्य! सर्पकी क्रूरता तैं इस दुष्टकी क्रूरता अधिक जानना। तातैं अपने विवेकबल तैं ऐसे दुष्टनको परखकैं इन सके तैं बचना बहुत सुखकारी है। जो कुसंगति तैं बचि सत्संग मिलाय अपना भला करना है सो मनुष्य पर्यायके विवेकका येही उत्तम फल है। आगे सज्जन-दुर्जनका स्वभाव बताईये है—

गाथा—मक्षक जौंक पणंगा, दुठादि चतुक होय दुखदायो। ईख दंड कणक सुअगरा सयणादि चतुक होव सुहगेयो॥ ५८॥

याका अर्थ—मक्षक कहिए, माखी। जौंक कहिये, जल-जोंक। पणंगा कहिये, सर्प। दुठादि चतुक होय ।२९८।

दुख दायो कहिये, दुष्टजनकों आदि लेय च्यारों दुखदाई हैं। ईख दण्ड कहिये, सांटा (गन्ना)। कणक कहिये, सोना। सुअगरा कहिये, शुभ अगर-चंदन। सयणादि चतुक होय सुहगेयो कहिए, सज्जन पुरुषको आदि च्यारों सुखदाई जानना। भावार्थ—माखी, जोंक, सर्प अरु दुष्ट-नर ए च्यारि परजीवनकों दुखदाई कहे सा ही कहिये हैं—जो माखी, पराये भोजन-जलमें पतन होय मरण करि पीछे अन्न-जल लेने वाले कूं दुखी कर। सो देखो, इस माखी की दुष्टता। जो पहिले तो आप मरि, पीछे और कूं दुखी करै। और जलकी जौंकका ऐसा ही सहज स्वभाव है। जो दूधका भरा आँचल पर लगावैं तो दूध कूं तजि, लोहू कूं अंगीकार करै है। सर्पका ऐसा स्वभाव है जो ताकों दुग्ध पिवाइये, तो जहर होय। सो प्यावनेवाला बहुत दिन पर्यन्त सर्पको दुग्ध प्याय पुष्ट करै। परन्तु कदाचित् प्यावनेहारा गाफिल रहेगा, तो ताही कूं खायगा। और ऐसे ही दुष्ठ-प्राणी पै अनेक उपकार करि, ताकी रक्षा करि, पालि, पुष्ट करो। परन्तु यह दुष्ट-जन, सर्व उपकार भूलि कैं उल्टा उपकार-करता तैं द्वेष-भाव ही करै है। यह अपने स्वभाव ताकों न तजै। जैसे माखी आप मरकर, परकों खेद उपजावै। ऐसे ही दुष्ट-जन आप मरकर, औरकों दुख उपजावैं। सो ही कहिये है—जैसे कोऊ दुष्ठ-अज्ञानी, काहू तैं कषाय-भाव करि विचारता भया, जो याके घरमें धन बहुत है। सो मैं याके शिर कूप-बावड़ी-नदी विषै, डूबि मरौं। तथा विष-खाय मरौं, तथा छूरी-कटारी खाय मरौं, तौ राज्य याका सर्व-धन खोंसि लेयलूटि लेय। पंच याकों, जाति तैं निकासैं। तब याका जगतमें मानभंग होय महा-दुखी होय। सो देखो, माखी-समान दुष्टका ज्ञान, जो आप मर करके परकौं दुखी कीया चाहै। सो दुष्ट तो माखी समान जानि। और कोई दुष्ट जौंकके समानि चित्तके धारी होय हैं। जैसे जौंक, गुण जो दुग्ध ताहि तजि, औगुण जो लोहू, ताकूं ग्रहै है। तैसे कोई दुष्टन पै चाहै जेता उपकार करो। वह सर्व कूं भूलि, पीछे औगुण ही ग्रहण करि, उल्टा द्वेष-भाव ही स्वीकार करै है। जैसे श्वान कूं कोई चाहै जैसा उपकार करो। भोजन देय, अनेक आभूषण पहिरावो। तथा पालकीमें बैठावो। चाहै-जैसा लाड़ करो। परन्तु यह अज्ञानी श्वान जब हाथ तैं छूटेगा तब घूरेमें ही जाय और कुत्तेनमें जाय तिष्ठैगा। और भले आभूषण, पालकीके गुण नाहीं

विचारै है। तैसे दुष्ट भी कभी किए उपकार रूपी आभूषण, तिन सबको भूलि आप सरीखे दुष्ट-नीच पुरुषनका संग करि, दुख ही उपजावैगा। तथा सर्प कूं बहुत काल तांई दूध प्याय, पुष्ट करि, अनेक प्रकार प्रतिपालना करौ। परन्तु इस सर्पकी रक्षा करनहारा कदाचित् प्रमाद सहित होय, सर्प कूं अपना पाल्या जानि; वातैं गाफिल रहेगा, तो यह पापी विषका भरया सर्प, याकौं खायगा। पालनहारेका मारनहारा होयगा। याकैं ऐसा विचार नाहीं जों याने तौ मोहि दूध प्याय पाल्या है। यह पापी अपना स्वभाव नाहीं तजै। तैसे ही दुष्ट जीव पर अनेक उपकार करौ। परन्तु जाका नाम दुष्ट है सो अपना स्वभाव नाहीं तजैगा। यह उपकारी का द्वेषी ही होयगा। ऐसे कहे जो माखी, जौंक, सर्प, दुष्ट-जन ये चारी सब कूं दुखदाई जानना। और सांठे (गन्ने) कूं जेता पेलोगे ज्यों २ चिसिटोगे, तो भी त्यों २ मिष्टता ही देयगा। और कनक कूं जेता अग्नि तपाओगे-जारोगे तेता ही नरम होय, निरमल-निर्दोष होयगा। तैसे भला शिष्य-विद्यार्थी लौकीक गुरु जो विद्या पढायवेवारा ताकी मार खाय उपकार मानै। ऐसा विचारै जो यह शिक्षा-दायक गुरु मो पै ऐसा उपकार करै है। जो अपने परणाम संक्लेश करि मोकौं उत्तम धन जो विद्या देय है। तातैं यह धन्य है। ऐसा जानि लौकीक गुरु तैं भला-शिष्य प्रसन्न ही होय है। सो ये शिष्य कनक समानि जानना। और अगर-चन्दन ताकौं जेता छेदो तेती ही सुगन्ध देय है। जेता घिसो तोड़ो जालो पर चन्दन उत्तम है सो त्यों-त्यों भली सुगन्धि देय है। तैसे ही सज्जन पुरुषनकौं भी कोई पापी दुर्वचनादिसें उपद्रव करै दुख देय तो धर्मात्मा-पुरुष द्वेष नाहीं करैं। जैसे राजा श्रेणिकका पुत्र-वारिषेण महा धर्मात्मा सज्जन-स्वभावी सो ए राजपुत्र पर्वके दिन उपवास करि रात्रि-समय मसान-भूमिमें सर्व जीवन तैं क्षमाभाव किए कायोत्सर्ग-मेरुकी नांई धीर-चित्त किए धर्मध्यान रूप तिष्ठै था। सो चोर नै भयतैं चोरीका हार इनके पासि डारि गया। सो चोर तो भाग गया। अरु पीछै कुतवाल आया। सो हार देख्या व राजपुत्र देख्या। सो याने जानी ये ही चोर है। सो बिना समझै, कुतवालने राजा तैं कही। हे नाथ! वारिषेणने चोरी करी। तब राजा श्रेणिक भी न्याय मारगके वश, कछु न विचारता भया। राजा नै मारनेकी आज्ञा दई। तब कुतवाल मसानमें जाय वारिषेण

प्रै मारिवे कूं खड्ग चलाया। तब कुमारके पुण्य प्रभाव तैं शस्त्र था, सो फूल माला भई। देवोंने आय सहाय किया। जब ये अतिशय ऐसा हुआ। तब मुनि कैं राजा श्रेणिक, पुत्र पै गया। क्षमा कराय कही पुत्र घर चालो। तब वारिषेणने कही हमारा सबतैं क्षमा भाव है। हमारे प्रतिज्ञा थी कि उपद्रव मिटै दीक्षाका शरण है। सो अब उपसर्ग गया तब दीक्षा लई। कोई राजा तैं व कुतवाल तैं सुबुद्धि कुमारने द्वेष भाव नाहीं किया। सो सज्जन पुरुषनका सहजही ऐसा स्वभाव है जो परकी अज्ञान चेष्टा नहीं देखैं अपने सज्जन भाव ही की रक्षा करैं। तातैं ईख-दण्ड कनक अगर चंदन और सज्जन-पुरुष ये च्यार पदार्थ सब जीवनकूं सुखदाई हैं। ऐसा जानना। तातैं जे विवेकी हैं तिनकूं क्रूरता तजि, सज्जनता अंगीकार करना जोग्य है। इति श्रीसुदृष्टि-तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, हेय-उपादेय स्वरूप वर्णनो नाम इकईसवां पर्व सम्पूर्ण भया ॥ २१ ॥

आगे ऐसा कहैं हैं जो मूरखको धर्मोपदेश कार्यकारी नाहीं—

गाथा—अन्धपैदीपणकज्जो, वधरोरागस्स हीजतियसंगो। पतिगतनारिसिंगारो, जोसठयासेयधम्म विणकज्जो ॥ ५६ ॥

अर्थ—अन्धे पै दीपक है, सो कार्यकारी नाहीं। बहरे पर राग (गाना) कार्य-कारी नाहीं। अरु हीजरे (नपुंसक) कौं स्त्रीका संग वृथा है। पति रहित स्त्रीकूं, शृंगार कार्यकारी नाहीं। तैसे ही मूरखनकूं धर्मकी कथा कार्यकारी नहीं। भावार्थ—अन्धे पै पञ्चवरन रतनके प्रकाश कार्यकारी नाहीं। तथा अनेक रंग विरंग स्वर्ण व रतननके चित्राम शुभाकार अन्धे पै वृथा हैं। तथा अनेक दीपकनकी माला जो दीप माला सो भी प्रकाश अन्धे पै वृथा है। तैसै ही अज्ञानी मूरख पै धर्मोपदेश धर्म कथा वृथा है। और बहरै पै अनेक सुस्वर कंठ सहित मधुर स्वरको लीए अनेक रागका गावना। सुन्दर वीणा बांसुरी वाजादि अनेक वादित्रनके सुर। ये सब गाना बजावना बहरे पै वृथा है। तैसे हो मूरखके पासि धर्म कथा वृथा है। और नपुंसकके पास सुन्दर स्त्रीका मिलाप वृथा है। तैसे ही मूर्ख पै धर्म-कथा करना वृथा है। और पति बिना जो विधवा स्त्री सो शृंगार करि कौन कौं दिखावे? भरतार तौ है नाहीं। और पर-पुरुष कौं अपना सिंगार दिखावे तौ कुशीलका दोष लागै। तातैं स्त्रीका सिंगार भरतारके आश्रय ही, उसे शोभायमान करै है। भरतार बिना विधवा

स्त्रीका अनेक शृंगार बृथा है। तैसेही मूरख पासि धर्म कथा बृथा है। कैसा है मूरख,जो ज्ञान नेत्र रहित अन्ध सामानि है। ये जिन वचन परभव सुख देनेहारे, तिनके सुननेकूं वधरे समानि, कुकथा का अभिलाषी, क्रोधाग्नि करि भस्म भया है हृदय जाका, अरु तूने प्रश्न कीया, सो प्रमाण है। जो उपदेश है सो भोरेकूं ही है। परन्तु मूरख भोरे दोय प्रकार हैं। एक स्वभाव ही तैं उपज्या तब तैं कछू समझता नाहीं। ऐसा भोरा, पुण्य पापमें समझता नाहीं। काहूके धर्म भावतैं द्वेष नाहीं। आगे कबहूं धर्मका उपदेश मिल्या नाहीं। ऐसें भोरे जीवनकूं तौ क्रोध-मानादि कषाय भी दीर्घ अंश सहित नाहीं। अनादि सहज (स्वभाव) की मूर्खता लिए है। ऐसे भोरे जीव सरल भाव सहित कौं तो जिन-आज्ञामें धर्मोपदेश कह्या है। ऐसा भोरा उपदेश जोग्य है। और ये जीव धर्मोपदेश स्वीकार करि अपना भला भी करैं हैं। तातैं ये उपदेश-योग्य हैं। और एक मूरख जानता-पूछता ही क्रोध, मान माया लोभके वशीभूत होय; धर्मका भला उपदेश नाहीं अंगीकार करै है। ऐसेकूं धर्मोपदेश नाहीं। काहे तैं सो कहिये है। जो कोई धर्मी जीवतैं प्रथम तो स्नेह था। सो वाके निमित्त पाय धर्मका सेवन विषैं लगा रह्या-धर्म सेवन कीया करथा। और जब उस धर्मात्मा तैं कोई कारण पाय स्नेह टूटि गया तब यानैं उस धर्मात्मातैं द्वेष-भावके जोग तैं, व्यसना सक्त होय धर्म सेवन तजिदिया। और मूरखका संग पाय,कुमार्गी भया। अब याकूं धर्मोपदेश कठिन होय गया। अब याके कठोर हृदय विषैं कोमल बचन परै नाहीं। तब और कोई पापी जन कोई धर्मात्माका द्वेषी था, सो यापै जाय अनेक सेवा चाकरी खुसामद करि ताकौं मित्र समानि करि पीछे वातैं कही। जो ये धर्मात्मा है सो हमारा द्वेषी है। तातैं तुम हमरे हितू हो, कृपा करौ हो सो या धर्मी तैं स्नेह-सत्कार तजौ। हम तो आपके सेवक हैं। मान-कषायके जोग तैं औरकूं नाहीं देखे है, और कदाचित् देखे तो तुच्छ देखे है। जैसे महा अन्ध तौ कोई पदार्थ देखता नाहीं। और अल्प अन्ध होय है सो परके बड़े पदार्थन कौं छोटे देखे। तैसे मूरख जानना। तथा महा मायावी, बांसकी जड़की लाठी समानि है गांठ-गठीला कुल हृदय जाका। तथा हिरण सलानि चंचल वकचित्तका धारो तथा नाग-गमन समानि हृदयका; धारो, दुराचारी, मूर्खता सहित ऐसा मायावी, दगावाज होय। तथा

महालोभी मार्जार (बिल्ली) समानि आमिष (मांस) भक्षी तथा विषभरे (छिपकली) समानि आमिष लोभ धारक तथा मधुमाखी समानि लोभका धारी ऐसे क्रोधी-मानी मायावी व लोभी, शान्ति रस भाव जो समता भाव ताकरि रहित सप्त व्यसनी और अनेक दोषन सहित ताका निवास इत्यादि औगुणनका धारी, भले गुण रहित सत पुरुषनकी निन्दा करनहारा सत्संगीनकी सभामैं अनादर जोग्य ऐसा महा मूरख, ताके पासि धर्म कथा करना बृथा है। तातैं महा पण्डित विवेकी जन जो सम्यग्दृष्टीके धारी हैं सो मूर्खन कूं धर्म का उपदेश नाहीं देय हैं। यहां प्रश्न—जो तुमने यहां कह्या कि मूरखन कूं उपदेश देना जोग्य नाहीं। सो संसारमें पण्डित तो थोड़े दीखें हैं। और भोरे मूरख जीव बहुत देखिए है। सो उपदेश बिना मूर्खका भला कैसे होय ? और समझै को कहा उपदेश है ? वह तौ सब जानै। अरु उपदेश तो असमझ-मूर्ख-भोरे ही कूं है। सो जोग्य है। यहां भोरे कूं उपदेश मनै कैसे कीया ? ताका समाधान भो भव्य, जो इत्यादिक कपट वचन कहे। तब वा मूरख नैं वा मूर्खके कहे तैं, शुद्ध-धर्मात्मा तैं द्वेष भाव करि, आप भी हठी भया। अरु कुमारग सेवन करता भया। जब उस धर्मात्मा कौं देखे, तब ही द्वेष-भाव रूप भाव होजांय। सो इनका सत्संग छूटिगया। तथा जो संग भया, ताकरि हृदय कठोर भया। अनाचार भला लागनै लागा। तातैं यह भी जानता-पूंछता पापी-मूरखके कहे तैं, शुद्ध धर्म छोड़ कुमारग लागा। उल्टा धर्म तैं तथा धर्मी-जीवन तैं द्वेष-भाव करि, पाप-रूप प्रवृत्त्या। ऐसी कहने लगा, जो हमारा होना है सो होय है। ऐसी जातिका भोरा-मूख होय सो अपने हिताहितमें तो नाहीं समझै और कषाय तीव्र होंय ऐसे कूं धर्मोपदेश नाहीं है। वाहीकी काल-स्थिति पकि जाय, संसार निकट रहि जाय, तब सहज ही कषाय मंद होय जाय। सत्संगमें आय, अपनी भूलि मानि, अपनी-अज्ञानताको निंद्य, प्रायश्चित्त लेय, शुद्ध होय, धर्म सेवन करै तो करै। बाकी ऐसा मूरख, उपदेश तैं नाहीं सुलटै है। तातैं ऐसे क्रोधी कौं धर्मोपदेश मनै कीया है। और आप मानी है, सो धर्म स्थानहै जाय कैं, देव-गुरु-धर्म कौं नमस्कार करता, चित्तमें लज्जा उपजावै। और कोऊ धर्मात्मा, समता भाव सहित, ताकौं देखि, ताकूं सामान्य जानि, विनय-भाव नाहीं करै। तौ आप कौं विशेष पुण्यात्मा जानि,

धर्मात्मा जीवनके अविनय रूप प्रवर्त्तै। ऐसे दोरच मानी-मूरख कूं, धर्मोपदेश नहीं होय। तथा आप कैं तो काहू तैं मान-भाव नाहीं। आप तौ सुजीव है। परन्तु कोई महापापी मानका निमित्त पाय कैं, सुधर्म तैं तथा धर्मी जीवन तैं, द्वेष-भाव करै। परके कहैं, धर्मका तथा धर्मी-जीवनका अविनय करै। ऐसे भोरे-मूरखन कूं धर्मोपदेशनाहीं। कोई मायावी-दगावाजी, जीव, जो जानतेही भोरे जीवनकौं वहकावेकौं तथा ठगवैकौं, देव-धर्म-गुरुका स्वरूप और ही रूप कहै है। नय-जुगति देय कें, कुदेव-कुगुरु-कुधर्मका अतिशय प्रगटावता, लोगन को ठगै। ऐसे मायावी तथा अनेक उपाय करि अपना महन्तपना दिखाय, तिन भोरे जीवन कूं अपने पांयन नमावै। कोई जुगति तैं, उनका धर्म लिया चाहे। ऐसे दगावाज प्राणीको धर्मोपदेश नाहीं। और केई महा-लोभी, मायाचारी, मनोवांच्छित इन्द्रिय-जनित सुखकी इच्छा के धारनेहारे, गज-घोटिक-पालकी-रथादिकी अ-सवारीके वांच्छन हारे, जिनका पुण्य तौ कम-हीन पुन्यी, कमावै-पैदा करवेकी तो जिन्हैं शक्ति नाहीं और भो-गोपभोगकी दीर्घ तृष्णा सो अपने ज्ञानके वल तैं भोरे जीवन कूं अपने वढ़त्व-भावका चमत्कार वताय, अ-पना त्यागी-निष्प्रहपना वताय, पराए, घोटक-रथादि असवारीका लोभी। पराये धनका इच्छुक-लोभी, इन कौं सुधर्मका उपदेश नाहीं। क्योंकि ऐसे भोगी, पाखण्डी, मायाके जोग तैं इन्द्रिय-भोगके भोगनहारे इनकौं ध-र्म रुचै नाहीं। और सुधर्म रुचै, तो याके भोग-भाव, लोभादि सर्व हीअवश्यहोछूटि जांय। सो यो महा-कषायी, भोगी, मानी, इन्द्रिय सुख भोग्या चाहे। सो ऐसे जानते-पूछते धर्म-रहित मूरख कौं धर्मोपदेश मनै है। और भोरे सरल मूरखन कौं धर्मोपदेश लागै। ऐसा जानना ये तेरे प्रश्नका उत्तर है। या भांति मूरख दोय भेद कहे। जैसे रोगी जीव दोय प्रकार है। सो महारोगी, और असाध्य वेदनाके धारी। एक देशान्तरी वैद्य आया सो वानै दोऊ रोगी देखै। सो उनकी नाड़ी-परीक्षा करि, सव शुभाशुभ जानि कही, ये रोगी तो इलाज जोग्य है। अरु ये रोगी असाध्य है, याका इलाज नाहीं। तव काहूने कह्या, जो याका इलाज काहे तैं नाहीं? तव वैद्यने कहो। एक रोगोका आयु-कर्म बड़ा है। और एकका आयु-कर्म अल्प है, सो मरेगा। याका जतन नाहीं। याके ऊपर जितने जतन करौ, सब वृथा जांय, जतन लागै नाहीं।

सब जीवन पर दया भाव करि सबही की रक्षा करना योग्य है। और जे कसाई हैं सो अपने प्रयोजन पोखवे कूं असवारी कूं केऊ दूध पीवे कूं, केऊ भार लादवेकूं केई लड़ाई देखवे कूं इत्यादिक अपना विषय पोषवे निमित्त स्वारथकौं पशु पाल रक्षा करैं। बंधनमें राखें। सो ऐसा पालना तो पापकारी है, जोग्य नाहीं है। और जिनकूं निरबंध राखि स्वच्छंद उनकी इच्छा प्रमाण दया भावन करि राखै। तिनकूं दीन असहाय दुखी जानि रक्षा करै। सो या बात धर्मात्माको योग्य ही है। भले प्रकार दया धर्म अंगका पालक तो एक जैनीही है। औरन कूं दया उपजती नाहीं। तातैं दया निमित्त यथा योग्य सर्व पशूनकी रक्षामें पुण्य हो है, दोष नाहीं। ऐसा जानना। तथा खेतीके करते धरती फाड़ते प्रत्यक्ष पंचेन्द्रिय आदि जीवनकी हिंसा होती अपने नेत्रन तैं देखिये है। परन्तु खेती वारी पांवतैं दाबि चल्या जाय ताकौं करुणा भाव नाहीं होय। तातैं जैनी दयावान्कूं खेती करना योग्य नाहीं। खेतीमें दया नाहीं। और खेटक करनहारा शिकारी जीव सो प्रत्यक्ष निर्दई है। जे दीन पशु महा भयवान् है सदैव हृदय जिनका बनके विषैं कोईके पांवनका तनिक भी खटका सुनैं हैं तो चौंकि उठैं हैं। महा भयवंत होय इत-उत देखने लागैं हैं। और कोई जीव आवता देखैं तो भयवान् होय बनमें भागि जांय हैं। मारे भयके बस्तीमें कब्हूं नाहीं आवैं हैं। सदीव उद्यानमें ही रहैं हैं। सूखे तृण खाय, अपने तनकी तथा अपने कुटुम्ब की रक्षा करैं हैं। भयके मारे काहूके खेत में नाहीं घुसैं हैं। दूर तैं वस्त्रादिकका खेतमें बिजुकादि देखि, नर बैठा जानि, भागि जांय, ऐसे अज्ञानी हैं। भोरे हैं। वन—तृणका भोग करि, नदी-तलावनका जल पीवैं है। महाभय तैं, महा कठिन तैं जीवैं है। तिनका काहू तैं द्वेष नाहीं। काहूका बिगाड़ करैं नाहीं। ऐसे बिचारे असहाय--दीन पशु, तिनकूं जे प्राणी हतैं हैं। ऐसे पाप करते जिनका हृदय नाहीं कंपै है। ते प्राणी पापाचारी, महाकठोर; वज्र समान चित्तके धारी हैं। ऐसे दया रहित जीव, कैसे दुख सागरमें जाय मगन होंयगे, सो हम नहीं जानैं, सर्वज्ञ-भगवान् जानैं। ये खेटक-किसब दया रहित है, सो दयावान् जीवके तजवे योग्य है। तथा जे राजा हैं तिनका चित्त भी बहुत कठिन होय है। राज्यके निमित्त तैं अनेक युद्ध करना। नर हतन, ग्रामादि दाहके पाप करतें, उन्हें दया नाहीं होय

तैसे ही जाका परभव भला होय, ऐसे सहजका भोरा-मूरख तो उपदेशके जोग्य है। याकौं धर्मोपदेश लागै भी है। और जिसकी परभवमें बुरी-गति होय, वह जानता भी कषाय-जोग तैं, सुधर्म तैं विमुख होय। ऐसे जीवन कूं धर्मका उपदेश, सुहावता नाहीं। तातैं धर्मोपदेश लागता नाहीं। यहां बहुरि प्रश्न-जो तुमनै कह्या कि धर्मका उपदेश कोई कौं तो है, कोई कूं नाहीं। सो भगवानका उपदेश तौ सर्व कूं चाहिये। और कोऊ कूं होय, कोऊ कूं नाहीं, तो इसमें वीतरागता कहां रही? सरागता आवेगी। ताका समाधान-जो हे भव्य तूनै कही सो सत्य है। परन्तु अब तूं चित्त देय सुनि। जैसे जगत विषैं वैद्य दोय प्रकार होय हैं। एक तौ भोरा अरु मानी वैद्य होय है। एक परमार्थी, सरल परिणामी अरु विशेष ज्ञानी। ये दोय जातिके वैद्य हैं। सो कोई भोरा-वैद्य शास्त्र-ज्ञान तैं रहित, नाड़ी-परीक्षा, दृष्टि परीक्षा मूत्र-परीक्षा, पसेव-परीक्षा, शकुन-परीक्षा इन आदिक जे वैद्यके गुण, तिन रहित मूरख वैद्य होय। सो तो लोभके वशि तथा मान-बड़ाईके अर्थ अपनी महन्तता भोरे जीवनको बतायवे कौं, अजान वैद्य औषधि देय जतन करे। सो केतेक रोगी, दीर्घायुके धारी, सो तो कोई अपने पुण्य तैं बचै है। रोग कुछ दिन दुख देय, आखिर जाता रहै। सो वह भोरे-रोगीने जानो, या वैद्यने मोहि भला किया है। सो इस वैद्यका जश कीया, धन दीया। और जो अल्प आयुका धारी रोगी था सो जतन करते औषधि देय तैं ही मर गया। सो इस रोगीके पर-वारे इस वैद्यकी बहुत निन्दा करैं। जगह-जगहमें वैद्यकी निन्दा करते भये। सो जीवना-मरना तो कर्मके आधीन है। वैद्यका कछू सहारा नाहीं। परन्तु या वैद्यकी इतनी अज्ञानता है। जो बिना-विचार परीक्षा-रहित इलाज करै है। तातैं वृथा जगतमें निन्दा करावे। सो तो ये मूरख-वैद्य कहावैं हैं। और जे विवेकी वैद्य हैं। सो अनेक वैद्यक शास्त्रोंके ज्ञान सहित नाड़ी-परीक्षा मूत्र-परीक्षा दृष्टि-परीक्षा पसेव-परीक्षा शकुन-परीक्षाके ज्ञान सहित होंय। सो नाड़ी-परीक्षा तो हस्तकी पांवकी शीशकी छाती की नसें देख शुभाशुभ रोगका कहना सो नाड़ी-परीक्षा है। और मूत्रकी वर्ण स्पर्श गन्ध छींटादि लक्षण देख शरीरके रोगनका शुभाशुभ जानना सो मूत्र-परीक्षा है। और रोगीके नेत्र व शरीर की दशा देखि दृष्टि ही तैं रोगीका शुभाशुभ जानना सो दृष्टि-परीक्षा कहिए और रोगीके शरीरके

है। तातें राजा पै भी दया नहीं पलै। और वैद्य हैं सो औषधिके निमित्त अनेक वनस्पति कटावैं। अनेक की छाल उपड़ावैं। अनेक वनस्पति की जड़ खुदवावैं। अनेक कंदमूल-साधारण वनस्पतिका रस कढ़ावना, पिसवाना, इत्यादिक वड़ी हिंसा करते भी ताका चित्त दया भाव रूप नहीं होय है। तथा आली (गीली) वनस्पति की लकड़ी जलाय, वहुत दिन अग्निका आरम्भ करते भी, चित्तमें दया भाव नाहीं होय है। तातैं वैद्यका किसब, दयावान् नाहीं करैं। और छीपा, ताकें अनगाले जलसे धोवना, बिलोवना, उकालना. वड़ी अग्निका आरम्भ करना, इत्यादिक आरम्भ मैं याके भाव, दया रूप नाहीं होंय। तातें छीपा पैं भी दया नाहीं पलै। धोबीके किसबमें भी अनेक अनगाले जलका मथन, सर्व दिन अनगाले जलका बिलोवना, अनेक हिंसा का समूह, छीपाकी नाईं आरम्भका किसब है सो दया रहित है। यातैं यह भी किसब, दयावान् नाहीं करैं। और रथवाहक जो गाड़ी-रथके हांकनेहारे कूं, वैल कूं मारते, दया नहीं आवे। तातें यह किसबमें दया नाहीं वन रक्षक जो माली, बागकी रक्षाका करनहारा, सदैव खेतीहारे की नाईं हिंसा-आरम्भ रूप है तातैं मालीके किसब वारे पै भी दया नाहीं पलै। और मांस-भक्षी जो आमिषका खानेहारा, महाग्लांनि उपजावनहारा, ऐसे मांसाहारी पै दया नाहीं पलै। ऐसे कहे जे सर्व किसबके करनेहारे, इन पै करुणा नाहीं पलै। इनसे, सहज ही ऐसा कठोर स्वभावी जीव होय है। तातें दयावान् हैं तिनकौं कहे जो दया रहित किसब तिनमें फँसना योग्य नाहीं। तिन किसब वारेमें भी वाणिज्यके निमित्त, लोभ करि फँसना योग्य नाहीं, ऐसा जानना। आगे ऐसा कहैं हैं कि कृपणादिकका धन ये कृपण नहीं भोगवैं हैं—

गाथा—संचय पिपील धाणो, माखिक संचय मधुमुखलक्ष्यो। किप्पण संचय लच्छी, एण भुञ्जय अप्पणभुंजयती ॥ ६० ॥

अर्थ—संचय पिपील धाणो कहिये, चींटीका धान्य संचयना। माखिक संचय मधु मुख लक्ष्यो कहिए, माखी अपनी लार जो शहद ताकूं संचै है। किप्पण संचय लच्छी कहिये, सूमका जोड़्या धन। एण भुञ्ज-यती कहिए ताकौं ये नाहीं भोगवैं हैं, और ही भोगैं हैं। भावार्थ—बनकी रहने हारी चींटीका समूह है। सो तिननैं बड़ा खेद खाय-खाय एक-एक अन्नका मुखमें बन तैं ल्याय-ल्याय इकट्ठा कर्‌या। सो आप

कौं तो भोगने की शक्ति नाहीं सा भोग सकी नाहीं अरु वृथा मोहके मारे, लोभ करि, अन्नका संग्रह करया। सो बहुत दिन इकट्ठा करते पांच-च्यारि सेर इकट्ठा भया। तब कोइ पापी, अन्यायी निर्दई अन्नके भूखे, लोभी, निर्धन, भीलादिकने आय चींटीनका घर जानि, तिननैं बिलकी धारा खोदि, अन्न लिया। सो हे भव्य हो, देखो। इन चींटीनका लोभ-स्वभाव जगतमें प्रगट, सब जानै थे। जो चींटी अन्न जोड़ि इकट्ठा करैं हैं। ता संचयके निमित्त तैं कोई दुष्ट प्राणी, पराये मालके खानेहारे ने, घरकों फोड़या। सो घरका नाश भया और घरके क्षय तैं, चींटीनके तनका नाश भया, अन्न गया। सो ये प्रगट देखो। येते दुख, अन्न संचयतैं भये। जो आप खाय लेती, तो दुख नाहीं होता। तातैं जे विवेकी हैं तिनकौं अपने कुमाये धन कौं, अपने हाथ तैं भोग लेना योग्य है। और माखीनका समूह वनस्पतिका रस अपने मुखमें ल्याय उदरमें खाया पीछे अज्ञानता करि, मोहके मारे, लोभ धारी मुखकी राह होय उदरका खाया रस हुलक करि पीछे काढ़या आप भूखी रह उसे संचय कीया। सो चोरनके भय तैं आकाश विषैं जाय, एकान्त जगह छत्त बान्धा। अपने ज्ञान प्रमाण, बहु यत्न तैं बड़ा विषम स्थान देखि, छत्ता करि तामैं जुदा घर बनाय, सर्व माखीन ने अपना-अपना रस, भेला किया। जब बहुत दिननमें सर्वके घर, रस तैं भरि गये। इकट्ठा बहुत भया। तब कोई पापीजन-लोभीके नजर छत्ता आया। याने जानीं, यामैं बहुत मधु है। सो लेनेका उपाय किया। सो जायगा महा विषम, उतंग देखि, दाव नहीं देख्या। तब लोभीने नीचे आग जलाई। बहुत धूम करी। सो धूमके निमित्त पाय, दुखी, होय, सब माखी उड़ गईं। तब वाने छत्ता बांससे तोड़ि लिया। माखी थान भ्रष्ट भईं। दुखी होय, दशोंदिशामें भ्रमती भईं। सो देखो, इननैं लोभ करि भूखी ही रह कैं, पेटका उगला काढ़ि इकट्ठा करि जोड़या था, ताके योग तैं दुखी भयी। जोड़या रस गया। जो खाय लेतीं, तो खेद नहीं होता। सो देखो, माखीने तो लोभ कीया जो उलाकको संच्या। परन्तु जगमें ऐसे-ऐसे लोभी-दरिद्री पड़े हैं। सो माखी का उलाक भी नहीं देखि सकें। सर्व लीया। तो ऐसा लोभी, मनुष्यनका उलाक कैसे छोड़े ? ऐसे लोभी-बुद्धिकों धिक्कार होऊ। तातैं जो लोभी धन पायकैं, धर्ममें लगाय, नाहीं भोगवेगा, सो माखीन की नांई

दुख पावैगा जो सूम जन हैं सो भी चींटी की नांई माल जोड़ि २ खेद खाय तो इकट्ठा कीया। सो मूरखनै नाहीं तो आप खाया, नाहीं और कूं दीया, नाहीं धर्ममें लगाया, नाहीं कुटुम्ब कूं खुवाया। आप भूखा रह, तुच्छ खाय मोटा वस्त्र पहिर दीन वृत्ति धारि माल जोड़्या। बहुत भय भये धरतीमें धर्‌या। जब आप मुवा तो धरतीका धरतीमें रह्या। तथा जीवित रह्या तो याकौं धनवान जानि राजाने कोई दोष लगाय लूटि लिया या लोभीने पूर्व पुण्य तैं पाया था। सो यानैं धर्म-कर्मका फल कछू नाहीं पाया। तातैं भो भव्य हो पापीका धन धर्ममें नाहीं लागै बृथा ही जाय। सो ये चींटी माखी सूम इनका पैदा कीया धन ए नाहीं भोगवैं हैं और हो भोगवैं हैं। तातैं विवेकी हैं तिनकौं पाया धन तैं धर्म उपार्जना योग्य है। अब येते जीव दया-रहित हैं सो ही कहिये हैं—

गाथा—सवर खटी चिंयालो, मदवेचा मदपाणकर यूतो। तस सठ कुलहीणो, दुठचित्तो यरहय करणाये ॥ ६१ ॥

अर्थ—सवर कहिए, भील। चिंयालो कहिये, चाण्डाल। खटी कहिये, खटोक। मदवेचा कहिए, कलार। मदपाणकर कहिये, मद पीनेवाला। यूतो कहिए, जुवारी। तसयर कहिये, चोर। सठ कहिये, अज्ञान। कुलहीणो कहिए, कुलहीन। दुठचित्तोय कहिये, दुष्ट परणामी। रहय करणाये कहिए, ये सव दया करि रहित हैं। भावार्थ—बनचर-बनका रहनेहारा पशु, ता समानि अज्ञान, नाहर समानि हिंसक, ऐसा जो भीलका हृदय, सो सहजही दयारहित-कठोर होय है। यातैं दया नहीं बनै। तथा मृत पशूनका चरम उतारैं, घर ल्यावै, धोवै, पकावै, रंगै, बेचै सो खटोक। याका भी चित्त महा अनाचार रूप, वज्रपरणामी, यातैं दया नाहीं पलै। और जाकैं सदीव जीवनकी हिंसा करि, जीवनका मांस बेचवेका किसव है, सो चाण्डाल है। सो ये भी महा निर्दई है। यातैं भो दया-भाव नहीं पलै। और मद बेचा कहिए कलाल, दारूका बेचनहारा। अनेक जीवनकी घाति करि, मद करै। अनेक क्रिमि, पानीमें किलबिला उठैं। उनकौं उछलती देखै, तव उस जल कूं यंत्रमें डालि, दारू करते, ताकौं दया नहीं होय। तातैं ये भी दया नहीं पालै। और मदका पीवनहारा, बेसुध-दया रहित है। और चोर, जे पर धनका हरनहारा, महा निर्दई, तातैं भी दया नाहीं बनै। और जो शुभाशुभ विचार रहित,

जन्मका अज्ञानी, खादि-अखादिके ज्ञान रहित, पुण्य-पाप भावना रहित, भोरे जीव, यातैं भी दया नहीं पलै। काहे तैं जो दया तो, पुण्य—पापमें समझै, ज्ञानवान् होय, तातें सधै है। सो ये ज्ञान रहित है, यातैं दया नाहीं वनै। और कुलहीन होय, तातैं भी दया नाहीं वनै। जो ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय इन तीन कुलके उपजे, ऊंच कुली हैं, इनतैं दया वनै है। और आगे कह आए भील, चाण्डालादिक नीच-कुलके जीव, तिनतैं दया-भाव नहीं वनै। और जाका चित्त नरम होय, सज्जन-स्वभावी होय, सबके भलेका वांच्छिक होय, इत्यादि उत्तम गुण जाकैं होंय। तातैं दयाभाव पलैं है। और जे दुष्ट परणामी, बहुतका बुरा वांच्छनेहारे जीवन तैं दया नहीं पलैं। तातैं ऊपरके कहे किसब तिन सबतैं दया, भाव नहीं वनै। ते मनुष्य दया रहित हैं। सो विवेकीन कौं, इनका सङ्ग करना योग्य नाहीं। तथा दया रहित हैं, तिनके साथ लेन—देन, विस्वास भी योग्य नाहीं। इनके सङ्ग तैं, वणिज तैं, विश्वास तैं, कुवुद्धि होय। अपने परणाम निर्दई होंय। हिंसा कैसा दोष लागै। वातैं नरकादिक दुख होय। यहां प्रश्न? जो तुमनैं कही कि ऊंच कुलीन तैं दया होय, नीच कुलीन तैं नहीं सधै। सो संसारमें तो देखिये है जो घने ऊंच कुलीन हिंसक, जीव घातक, अनाचार रूप भावादि सहित, निर्दई, हैं। और केई नीच कुली, अपने योग्य ज्ञान-प्रमाण सुमार्गी—दयावान् दीखैं हैं। यहां नियम तो नाहीं भया। ताका समाधान—हे भव्य, तैंने कही सो प्रमाण है। परन्तु जैसे कोई रतनकी खानि है। तामैं रतन निकसैं हैं। ताके सङ्ग अनेक अन्य पाषाण भी निकसैं हैं। परन्तु खानि रतनकी ही कहिये। और कोई हीन पुण्य तैं पाषाणादि निकसै, तो निकसौ। नियम नाहीं है। तैसे ही ऊंच कुलीनमें दयावान् ही उपजैं हैं। और कोई पूर्व जाका बिगड़ना होय, ऐसे पापाचारी जीव ऊंच कुलमें हीन-पुण्यी निर्दई होय, तो नियम नाहीं। रतन खानिमें पाषाणवत् जानना। और जैसे पाषाणकी खानिमें खोदतें, कोई रतन निकसै तो निकसौ परन्तु बहुतता करि खान, पाषाणकी है। तैसे नीचकुलीनमें पूर्व-पुण्यके जोग तैं, कोई धर्मात्मा-दयावान् होय, तो नियम नाहीं। जैसे पाषाण खानितैं रतन उपजना जानना। किन्तु बहुतता, हीन कुलनमें दया रहितकी ही है, ऐसा जानना। तातैं नीच कुलनमें दयावान् भी होय हैं। और ऊंच कुलमें निरदई भी होय हैं। यामें नि-

यम नाहीं। संसारकी अनेक दशा हैं। तातैं विवेकीन कूं, दया-रहित जीवनका निमित्त छोड़ि, दया-भाव रहना योग्य है। आगे कहैं हैं जो सन्तोषी आत्मा, अपने निर्धनपने तथा दरिद्र आएमें, ऐसी भावना भावै है। सो कहिए है—

गाथा—दालय तवयपसायो, मम सिद्धो भवय अमुत्त सहु लोय। मम सहु लोय पसन्ती,लोए आदाय णाहि मम जोई ॥ ६२ ॥

अर्थ—दालय तवय पसायो कहिए दारिद्र तेरे प्रसाद तैं। मम सिद्धो भवय अमुत्त सहु लोय कहिये, मैं सिद्ध समानि सर्व लोकमें अमूर्ति समाया। मम सहु लोय पसन्ती कहिये मैं, तो सर्व लोककूं देखूं हूं। लोए आदाय णाहि मम जोई कहिये लोकके आत्मा मोकौं कोई भी नहीं देखैं हैं। भावार्थ—जे धर्मात्मा समता-रसके पीवनहारे सो दारिद्रके उदयतैं ऐसा विचार करि खेद मिटाय सुखी होय हैं। भो दारिद्र तूने बड़ा उपकार किया। जो तेरे प्रसादतैं मैं सिद्ध समानि अमूर्ति भया संसारमें रहों हों। सो मैं तो सर्व जगत-जीवन कौं शुभाशुभ चरित्र करते निर खेद देखूं हौं। मौकौं जगतके जीव कोऊ नहीं देखैं हैं। जैसे अमूर्ति सिद्ध तो सर्व लोक जीवनकौं देखैं हैं। और लोकके जीव सिद्धन कूं कोऊ ही नहीं देखैं। सो ऐसी दशा सिद्ध समानि हमारी भी भई। सो ये तेरा उपकार है। अब मैं सन्तोषके सहाय तैं, निराकुल-सुखी भया तिष्ठूं हूं। ऐसे दारिद्रको आशीष वचन कहैं हैं, सो जानना ॥ ६२ ॥

आगे ऐसा कहैं हैं जो धर्म सेवतौं जीवनकी अभिलाषा च्यार प्रकार है—

गाथा—धम्मो चतुपयारो चातुरता लोय रज्ज लोभाये। पम्मथ्यो सिव मग्गो सेसा संसार सायणो मगणो ॥६३॥

अर्थ—धम्मा चतुपयारो कहिये धर्म सेवन च्यार प्रकारका है। चातुरता कहिये चतुरताई कूं। लोय रज्ज कहिए लोकके राजो करवे कौं लोभाए कहिए लोभकूं। पम्मथ्थो सिवमग्गो कहिये परन्तु परमार्थीक धर्म मोक्ष मारग है। सेसा संसार सायणो मगणो कहिये, वाकी जो धर्म हैं सो संसार सागरमें डुवोनेवाले हैं। भावार्थ—धर्म सेवन जगत जीव करैं हैं तिनके अभिप्राय च्यारि प्रकार जुदे २ हैं। कोई जीव तौ चतुराईके अभिलाषी हैं। जो लोक हमको ऐसा कहैं कि ये काव्य छन्द गाथा पाठ पद बिन्ती जानैं हैं। भला चतुर है।

यह जैसी सभामें जाय तैसीही बात कर जानै है। धर्मकी भी भली २ बात कथा चर्चा पद विनती पाठ जानै है। हमकूं लोक धरमी कहें चतुर विवेकी कहें ऐसी अभिलाषा सहित धर्मका साधन करना। सो चतुरताके हेतु धर्मका सेवन करै है। इनकौं मोक्ष वांछा नाहीं। और केतेक जोव परके रञ्जायवे कौं धर्मात्मा कहायवे कूं धर्मका साधन करैं हैं। जैसैं और जीव राजी होय तैसें करैं। सो परके रंजायवेकौं भले स्वर तैं मधुर कण्ठ तैं काव्य गाथा कवित्त पद विनती महाराग धरि तालवन्ध गाय औरकों खुसी करवेकौं नाना गान पाठादि करैं। जो ये सर्व सभाजन राजी होंय हमकौं भले कहैं। ऐसा जीव लोक रञ्जायवेका अभिलाषी है। सो ऐसा जीव जेते तप संयम ध्यान पठन करै है सो सर्व लोकनके रञ्जायवेकूं करै है। केतेक जीवनका ऐसा अभिप्राय है। और आत्माके कल्याणका स्थान जो मोक्ष सो ये मोक्ष भावना रहित हैं। केतेक संसारमें धर्म क्रिया करनेहारे मनुष्य ऐसे भी जानना। और कोई लोभ अभिलाषी धर्मका साधन लोभकूं करैं हैं। पंचेन्द्रिय सुखकी सामग्री धर्म सेवनके जोगतैं मिलती जानि धर्म सेवन करैं हैं सो लोभी वारीक वस्त्र तथा दुशाला रेशमी रोमी आदि अनेक भारी वस्त्रके स्पर्शकी है इच्छा जिसकैं सो स्पर्शन इन्द्रिय पोषवेकूं धर्मका सेवन करि भोरे जीवनकूं अपना धर्मीपना बताय उनका धन खरचाय बड़े भारी मोलके वस्त्र अपने तन पै राखै। दश दिन पहिरकरि पीछे अपना जस करावने कूं याचकन कूं दे डारे। अपना यश अपने आगे कान तैं सुनि राजी होय। ऐसा भोरा प्राणी जो पराया धन खरचाय अपना जश गावैं। अपने चतुराईके जोगतैं लोकनका भारी धन खरचाय भारी वस्त्र पहिर लेना सो स्पर्शन इन्द्रिय पोषनेके निमित्त धर्मका साधन करै है। और केतेक रसना इन्द्रिय पोषवे कूं धर्म सेवन करैं जानै हम भला तप करैंगे तो भक्तजन भला भोजन देंयगे। सो औरनकूं अपना धर्मात्मापना बतायवे कौं धर्मका अंग जप तप आदिक प्रगट करि नानाप्रकार षट्रस भोजनके लोभ कौं धर्मका सेवन करैं हैं। सो केतेक जीव ऐसे रसना इन्द्रिय पोषने कं धर्म सेवनेहारे हैं। और केतेक नाना सुगंध की इच्छाके लोभी केशनमें तेल फुलेल इतरादि सुगंध मंगाय लगावना। तन पै व वस्त्रमें लगाय खुशी रहना। सो सुगंध (घ्राण) इन्द्रियके पोषने कौं धर्म सेवन करैं हैं। केई प्राणी ऐसे ही

हैं। और चक्षु इन्द्रियके लोभी चक्षुके विषय पोषने कौं नृत्य करैं हैं। तथा औरन पै नृत्य कराय देखवेके इच्छुक भले रूपवान् पुरुष स्त्रीनका रूप देखवे कौं धर्मका सेवन करैं हैं। तथा अन्य भोरे जीवनकूं ठगि तिनका धन लगाय अनेक चित्रामादि रचना। कांचके मन्दिर करवाय तिनमें रहके देखि-देखि हर्ष-सहित तिष्ठवे की है अभिलाषा जिनकौं सो केई ए चक्षु इन्द्रियके भोग कूं धर्मका सेवन करैं हैं। और केईक श्रोत्र इन्द्रिय के भोगी; अनेक राग आप करि जानैं है। तथा औरके मुखतैं अनेक राग वादित्र सुनवे की है इच्छा जिनकैं इत्यादिक कान इन्द्रिय पोषवेकूं धर्मका सेवन करैं हैं। ऐसे स्पर्शन रसना घ्राण चक्षु श्रोत्र इन पांच इन्द्रिय पोषवेकौं धर्मसेवन करे है। और केतेक धन इकट्ठा करवेकूं धनके लोभी धर्म-सेवन करैं हैं; वनै जैसे धन पैदा करना। सो आप तो अनेक उपवास करैं। तपस्वीका रूप धरि औरन पै द्रव्यकी आज्ञा करि तिनका धन लेय आप सञ्चय करैं। नानाप्रकार बडे विधानादि पूजा करनी। करनेहारे पै धन लेना। ऐसा ही उपदेश देना जातैं भोरे जीवनके घरका धन अपने घरमें आवै। और लोभके पोषवे कौं धनवानका आदर करना। अरु निरधन धर्मात्मा पुरुषका निरादर। इत्यादिक लोभके अनेक भेद हैं। सो केतेक जीव ऐसे हैं जो लोभके निमित्त धर्मका सेवन करै हैं। और केतेक धर्मात्मा सम्यकदृष्टी जगत उदासी परमारथ जो मोक्ष सो ऐसे परम अर्थके निमित्त धर्म सेवन करैं हैं। सो अनेक नय विचार समता वधावना धर्मात्मा जीवनतैं स्नेह करना वांच्छा रहित तप करना इत्यादि कार्य करैं हैं। यहां प्रश्न—जो यहां कह्या कि वांच्छा-रहित तप करैं। सो वांच्छा रहित तप कैसे होय ? तप करैं हैं सो सुखकी वांच्छाकूं करैं हैं। वांच्छा बिना तो फल रहित तप भया। याकी महिमा कहा भयी ? ताका समाधान—जो धर्मात्मा दृढ़ सम्यक्‌के धारी हैं ते इन्द्रिय जनित सुखके निमित्त तप नाहीं करैं हैं। मोक्षाभिलाषीनकैं तप है सो मोक्ष निमित्त हैं सो स्वर्गादिक इन्द्रिय जनित सुख तौ सहजही होय है। जो तप मोक्ष करै तातैं स्वर्ग तो बिना—वांच्छाके होय। जैसे खेतीका करनहारा धरतीमें अन्न बोवे है सो वाका अभिप्राय ऐसा नाहीं जो मेरे खेतमें घास होउ। वाका मन तो अन्न वांच्छै है। परन्तु जानै अन्न बोया ताके घास तो बिना वाच्छांके होय तातैं जाने तपरूपी अन्नका बीज

धर्म—धरामें वोया है। सो मोक्षकी अभिलाषाके निमित्त है। सो स्वर्गादि घासकी नाई सहज ही होय। यहां फेरि प्रश्न—जो मोक्षकी वांच्छा तैं तप किया सो भी वांच्छाः भई। निरवांच्छापना तो नहीं रह्या। यामें भी वांच्छा भई। ताका समाधान जैसे कोई पुरुष धन कुमावे। सो एक पुरुष तो ऐसा विचार करे। जो धन वहुत कुमाइये तो व्याह कीजे घर वढ़े वेटा वेटी होय गृहस्थपना भला लागै। विना स्त्री घर वढ़ता नाहीं। ऐसा जानि धन कुमावे है अरु कोई पुरुष धन कुमावे है सो ऐसा विचारै है। जो वहुत सा धन होय तो वेश्याकूं देय वांच्छित भोग भोगिये। जो व्याह कर्‍या चाहै है सो तो गृहस्थपनेका घर वांधि सुखी भया चाहै है। सो यो विचारा तो दोष रहित है। क्यों ? जो गृहस्थी ताका ही नाम है। जो घर वांधि स्त्री परणि वेटी-वेटा आदि कुटुम्ब तें सदैव सुखी होय। और दूसरा वेश्यावारेका विचार अज्ञानता सहित है। जो धनका धन खोवना, अरु वेश्याके किञ्चित् सुख भोग पाप कमावना। सो ए जीव भोरा है। तैसे जो जीव तप करि मोक्ष चाहै है। सो तो ध्रुव (नित्य) सुखका अभिलाषी मोक्ष-स्त्री परणि सिद्ध पदमें घर वांधि अनन्तकाल सुखी भया चाहै है। सो ऐसे तो योग्य ही है। याकौं वांच्छा नहीं कहिए। ये घर वांधि ध्रुव रहना है। और जे तपरूपी धनतैं वेश्या समानि चञ्चल देवादिकके सुख चाहैं ते विवेकी नाहीं ऐसा जानना। तामैं भी ये विशेष कि जो परभवके इन्द्रिय जनित वांच्छित सुखके निमित्त धर्म सेवें सो धरमी और इसी भव सम्वन्धी धन पुत्र स्त्री रोग नाशादिक कूं धर्म सेवें सो पापी हैं। ऐसा जानना। तातैं सम्यग्दृष्टीका तप इन्द्रिय सुख अपेक्षा निरवांछि है। और जिन-आज्ञा प्रमाण देव-धर्मका सेवना मोक्ष-मार्ग के निमित्त धर्मका सेवना दया पूर्वक यत्नतैं तप संयम पूजा दानादिक धर्मके अंगनका सेवना सो पारमार्थिक धर्म-सेवन है। ऐसे च्यारि ही प्रकार भिन्न २ धर्म सेवनेवाले जीवनका अभिप्राय जानना। तिनमें पारमार्थिक धर्म सेवन है सो तो मोक्ष मार्ग है। और वाकीके धर्म सेवनके भाव है सो अल्प सुख देयकै संसार समुद्र में नाखैं (डालैं) हैं। तातैं ऐसे भले-बुरे धर्मकी परीक्षा करि धर्म सेवन करना सो कषाय सहित इन्द्रिय-सुख की वांच्छा करनेहारे ऐसे कुगतिदाई कुधर्म भाव तजि परमार्थिक धर्म-सेवन करना योग्य है। आगे शास्त्र छंद काव्य गीतके जोड़नेहारे कवीश्वरनका जो अभिप्राय है सो ही कहिये है—

गाथा—धम्मी धम्म फल हेतव, जाचिक उदराय अधम्म लोभादी। परजणाय भंडय, णलजय हासि, जोड वकताए ॥ ६४ ॥

अर्थ—धर्मी तो धर्म-फल हेतु, जाचिक उदर भरवेके हेतु अधर्मी लोभके हेतु भांड़ परके रञ्जायवेके हेतु, निलज्ज हांसी—कौतुकके हेतु जोड़के वक्ता होय है। भावार्थ—जोड़ कलाका ज्ञान अनेक जीवन कैं होय। श्रुतज्ञानावरणीके क्षयोपशम करि अनेक भले—भले पण्डित होय हैं सो अनेक शास्त्र जोड़े हैं। कोई अनेक छन्द काव्य, गाथा जोड़ैं हैं। कोई पद—बिन्ती जोड़ैं हैं। केई गीत किस्सा कहानी जोड़े हैं। इत्यादिक अनेक जोड़कलाके ज्ञान सहित प्राणी पाइये हैं। परन्तु इन जोड़ कला करतेमें परणति-अभिलाषा जुदो २ हैं। अरु जुदी २ अभिलाषा होते तिन जोड़-कलाके ज्ञानका फल भी जुदा-जुदा पावैं हैं। जोड़-कला करते अंतरंग जैसी अभिलाषा होय है तैसा ही फल होय है। सोही कहिए है। कोई धर्मात्मा जीवनकौं तो श्रुतज्ञानकी अभिलाषा है। सो तो शास्त्रके छन्द गाथा काव्य पद बिन्ती जोड़ैं हैं। सो धर्मके फलको इच्छाकूं लिये परभव स्वर्ग—मोक्षादि सुखकी वांच्छा सहित हैं। अन्तरंगके श्रद्धानकौं लिये जोड़कला करैं हैं। सो इस ज्ञानका फल धर्म मोकूं ही उपजो ऐसी वांच्छा लिये शस्त्रादि जोड़ें हैं। कोई तो ऐसे हैं सो इन्हें धर्मातमा जानना। और केई जाचिक-जीवन कैं श्रुतज्ञान की विशेष बढ़ती है। सो ए जाचिक छन्द काव्य गीत इनकी जोड़-कला करैं। सो इनका अन्तरंग उदर भरवेका है। जो हम कोई राजादि बड़े पुरुषका यश करैं तो ग्राम गज घोटिक धन मिलै। ताकरि सर्व कुटुम्बकी प्रतिपालना होय। फलाना राजा यशका लोभी यश चाहै है। अरु चित्तका उदार है। ऐसे पुरुषका यश करै तो बहुत दिनकी आजीविका मिलै। सो जांचकि उस राजाके राजी करवें कौं अनेक छंद गीत कवित्त काव्य श्लोक बनावै। सो अपनी बुद्धिके जोगतैं जोड़-कला करै। तामैं दीरघ अर्थ छन्द महा सरल अक्षर महा ललित व्यञ्जनोंका सुन्दर मिलाप इत्यादिक अन्तरंग अभिप्राय सहित ज्ञान तैं जोड़-कला करै। सो जाचिक जानना अर केई जीव भला ज्ञान पाय बुद्धिका प्रकाश पाय जोड़-कवित्त करैं। छन्द व गीत बनावें। सो जोड़-कला करतैं उनके ऐसे अन्तरंगका अभिप्राय होय। जो हममें बड़ा ज्ञान है सो कोई ग्रन्थादि काव्य छन्द बनाइये

तो जगमें पण्डितपना प्रगट होय जश होय। ऐसा जानि केई तो जशके लोभकौं जोड़-कला करैं। केई अज्ञानी इन्द्रिय-सुख भोगवेकौं जोड़-कला करैं हैं ते पापी जानना और केई भांड़नमें तीक्ष्ण श्रुतज्ञान होय है। सो भाड़ भी जोड़-कला करै हैं। सो ऐसी अनोखी नकलैं जोड़ैं। ऐसी बात बनाय ठाढ़ी करैं। कि ताकी जोड़-कला देखी अनेक मनुष्य राजी होंय हंसैं प्रसन्न होंय। भांड़की तारीफ करैं। ऐसी नकलैं अपनी बुद्धि तैं ज्ञानके जोग तैं जोड़िके औरनकौं प्रसन्न करैं। सो परके रञ्जायवे कौं गीत काव्य गाथा छन्द कथादिक जोड़ैं सो भांड़ कहिये। भांड़का अभिप्राय जोड़-कला करते परके रञ्जायवे रूप होय है। और केई निर्लज्जी जीवनकौं भी ज्ञानकी बढ़वारी होय है। सो ए निर्लज्ज पुरुष जोड़-कला करैं। सो याकी जोड-कला हांसी-कौतुकके निमित्त है। जैसे काहु जीवन तैं होरीके भंडउवा जोरे। तथा काहू निर्लज्ज स्त्रीने बडा ज्ञान पाय पापनी नैं गावेके निमित्त गाली-गीत, बनाये, ताका गावना। सो श्रोता ताकी जोड़ि-कला सुनि कैं, विकारी-जीव लज्जा रहित हाँसि-कौतुक रूप प्रवृत्तैं। ऐसी जोड़—कलाके ज्ञान-धारी जीव होंय, सो निर्लज्ज कहिए। ऐसे पञ्च प्रकार जोड़--कला करनेके मुखिया हैं। तिनमें जे सुबुद्ध पुरुष हैं सो बुद्धिपाय, धर्म-फलके इच्छुक होय, धर्म मई, दया सहित, पुण्य—दायक जोड़ कला करैं हैं। सो तो धर्म—मूर्ती सत-पुरुषनके प्रसंशवे योग्य हैं और बाकीके च्यारि जातिके कवीश्वर हैं सो पाप-बंध करनहारे हैं। ऐसे श्रुतज्ञान सहित खोटे कवीश्वर होंय हैं सो तजिवे योग्य हैं। आचार्य कहैं हैं कि संसार भ्रमतैं अनन्ते—भव अज्ञानताके होय हैं। तब एक भव विशेष श्रुतज्ञान सहित विवेक चतुराई सहित ज्ञानका मिलै है। सो ऐसा उत्तम ज्ञान कौं पायकें यह जीव कुकाव्य करि वृथा खोवैं हैं। ये सर्व जाति जोड़—कला है। सो तो हीन ज्ञानीन तैं नहीं होय है। जे जीव विशेष ज्ञानी होंय महा चतुर होंय अनेक नय—विवेकके ज्ञाता होंय तीक्ष्ण ज्ञानधारी होंय तिनतैं जोड़ि-कला होय। सो ऐसे तीक्ष्ण ज्ञानका धारी उत्तम बुद्धि भूले तौ यह बड़ा आश्चर्य है। अहो भव्य तुच्छसा इन्द्रिय सुख अरु अज्ञानी-जीवनके मुखकी प्रशंसाके निमित्त, ऐसा उत्कृष्ट ज्ञान, वृथा करै है। सो हम कहा उलाहिना देहिं ? तैंने वैसी करी, जैसे कोई बंदर कूं रतन—कंचनके आभूषण पहराय, मोतीकी माला ताके उरमें डारि,

मस्तक पै रतन-जड़ित मुकुट धारि, अनेक वस्त्र पहराहि, शोभायमान किया और अनेक मेवा ल्याय, ताके आगे खायवे कूं धरै। ऐसेमें कोई बनका बन्दरने, नीमकी निवोरी दिखाई। कही, ये बनका भोजन लेऊ। अरु सैन तैं, कहता भया। जो हे मित्र, आप बन्दीमें कहां बैठे हो? ऐसे यह बन्दर, अज्ञानी बन्दरके स्नेहतैं अरु निवोरीके लोभ तैं, अपने शिरका रतन-मुकुट फैंकि, मोतीनकी माला व वस्त्र डारि, उत्तम भोजन-मेवा तजि कैं, बनमें जाय। सो इस बन्दरकी भूल कहां ताईं कहिए? तैसे, बन्दरकी नाईं भूले जो पण्डित, ताकों कहां कहिए। ये विनाशीक-भोगके अर्थि तथा लोक-प्रशंसा कूं अपना भला ज्ञान, मलीन करैं हैं। ये जोड़ि-कला करिवेका उत्तम ज्ञान पाय, ताके भेदको नहीं जानता, पापको उपावै। सो इस बातका बड़ा आश्चर्य है। इस भूलकी कहा कहिये? जैसे एक कटईया, लकड़ी काटवे कौं बनमें गया। वाने एक चिन्तामणि रतन पाया। ताकूं याने उठाय लिया। ताकों देखि विचारा, कि कोंऊ रंगदार पाषाणकी गोली है। अच्छी दीखै है। याकूं घर ले चलूं। यातैं लड़का खेला करेगा। ऐसो जानि या मूरख नैं परख्या बिना, चिन्तामणि रत्नको लेय कैं, अपनी फटी लँगोटी ताकी गांठि बांध्या। फेरि बनमें लकड़ी काटने लगा। सो काठके भारको बाँधि, अपने शीश पै धरि, बन कौं तजि, घरको आवैं है। सिर पै भार है। सो धिक्कार इस अज्ञानता कौं। जो चिन्तामणि तो पूंछली तैं बंध्या है, सो तो पासि है। और शीश पै काट-भार है। ऐसे ही सर्व भार तैं राह दुखी भया, घर आया। शामको गुदरीमें काठ-भार बैंचने गया। सो भूखा ही, दरिद्री भया खड़ा है। चिन्तामणि पास है, परन्तु भेद पाये बिना, दुखी होय रह्या है। पीछे दोई पैसा कों भार बैंच, घर आया। तब पैसा स्त्रीके हाथ दये। कही, इनका अन्न ल्याव। आठ कौड़ीका तेल ल्याव। ताके उद्योतमें रोटी करि देना। सो पहर भर रात्रि गई तक, सब घरके मनुष्य भूखे मरे, अरु चिन्तामणि पासि है। परन्तु बिना भेद पाये, सुख नाहीं। भूखा काठ बेचनहारा कही, सिताब(शीघ्र) रोटी करि। पीछे पूंछली तैं चिन्तामणि खोलि, स्त्री कूं दिया। अरु कही, ये गोली अच्छी है। आज बनमें पाई। सो लड़के कौं खेलने कौं दीज्यो। ऐसे कह कैं पूछली तैं चिन्तामणि खोलि, स्त्रीके हाथि दिया। सो खोल तैं ही अन्धेरे घरमें प्रकाश होय गया। ता प्रकाशि कों देखि, अभागे-

अज्ञान ने कही। भो स्त्री, यह पथरा भला। याके प्रकाश तैं रोटी किया करि। आठ कौड़ीके तेलकी किफायत भई। सो एक आलेमें चिन्तामणि धरि दिया। अब याके उद्योत् तैं, रोजिके रोजि रोटी किया करै। सो देखो, कर्म चरित्र। जो चिन्तामणि तो घरमें है, अरु दुख-दरिद्र नहीं गया! ताको भेद नहीं पाया। याका भेद पायेबिना, बहुत दिन लूं काठका भार बह्या, दुख पाया। अरु ऐसा सुखमानै, जो इस पथराकी गोली तैं आठ कौड़ीका रोजि तेल आवै था, सो बच्या। याके प्रकाश आगे, तेल नहीं चाहिये। तैसे ही ये कुकवि, चिन्तामणिरतन समानि उत्तम जोड़ि-कलाका श्रुतज्ञान, ताकूं कठेरेके आठ कौड़ीके तेलि समानि, विषय-सुखके निमित्त वृथा कठेरेके रतनकी नाईं खोवैं हैं। तातैं इन कुकवियोंका ज्ञान रूपी चिन्तामणि रतन है सो इसका भेद पाये विना, पथराकी गोली समानि जानना। इन कुकवीन नैं इस ज्ञानका भेद नहीं पाया। कैसा है यह ज्ञान, मनवांछित सुखका देनेहारा है। ताकौं पायकैं, ज्ञानकी मंदता तैं, इन्द्रिय जनित सुख, चञ्चल, विनाशीक, तिनके निमित्त और अज्ञान जीवनका कीया तुच्छ लौकीक यश ताकै वास्ते भला-ज्ञान खोवैं। सो ये कुकविश्वरनका स्वरूप जानना। तातें तिस ज्ञान कूं पाय धर्मात्मा तो धर्म सम्बन्धी जोड़ कला करि पुण्य बन्ध करैं। अरु मूर्ख कवि हैं सो ज्ञान पाय खोटी जोड़ि-कला करि पाप बन्ध करैं हैं। ऐसा जुदा-जुदा सब जोड़-कला वारे जीवनका भाव जानना। अब उस कठेरेने रतन पाया था, तो ताके घरमें है। ताकी कथा कहिये है-सो ऐसे काठ वेचतें कठेरे कौं बहुत दिन भये भये सो एक दिन रात्रि समय उस ही राह एक जौंहरी आय निकस्या। सो इस कठ्याके घरमें सूर्य समानि प्रकाश देख्या। तब जौंहरीने विचारी जो दीपकका प्रकाश तो ऐसा होता नाहीं। तब जौंहरी इस कठेरेके घरमें देखता भया। सो देखै तो चिन्तामणि रतन है। तब उस जौंहरीने कठेरे कूं बुलाय चिन्तामणिका भेद बताय कही। रे मूर्ख तेरे घरमें मनवांछित सुखका देनेहारा चिन्तामणि है। अरु तूं अज्ञानता तैं काठका भार बहै है, अरु दरिद्री होय रह्या है। अब यापै जांचि। तूं जांचेगा, सो ही मिलैगा; तब कठेरा ने जांचो। भो चिन्तामणि रत्न, मोकूं खीर भोजन देहु। तबही खीर मिली। तब कही मोकूं धोती देय तब धोती मिली

तब या कठेरेने घर धन आभूषण वस्त्र जो-जो जांचे सो सर्व मिले। तब कठेरा आप सेठके पांव पड़्या उपकार मान्या। तब सेठ यातैं राजी भया। सेठ उपकार करि अपने घर गया पीछे कठेरा अपनी अज्ञानता जानि पछताया। जो देखो मेरे घरमें वांच्छित सुखका दाता रतन अरु मैं दरिद्री रह्या। सो ये सेठ धन्य है जो इस चिन्तामणिका भेद बताया। अब मैं सुखी भया दरिद्र-दुख गया। पीछे रात्रि व्यतीत भई। प्रभाति, राजा कैसी विभूति प्रगट करि लोक-पूज्य होता भया। चिन्तामणिके प्रभावतैं काठ ढोना गया। परम सुखी भया। तैसेही इस आत्माका ज्ञान यापै ही है। परन्तु भेद पाये बिना अज्ञानी भया फिरै है कठेरेकी नाईं दरिद्री होय रह्या है। जब गुरु प्रसाद तैं ज्ञान चिन्तामणिका भेद पावैं, तो जगत-दुख जाय सुखी होय पूज्य पद पावै उपकारी की सेवा करै। तातें विवेकी हैं ते भला ज्ञान पाय धर्ममें लगाय धर्म सेवन पूजा भक्ति, जीवाजीवतत्व विचारादि करि भली जोड़ि कला करहु।

इति श्रीसुद्दष्टि तरङ्गिणी नाम ग्रन्थ मध्ये काव्य-परीक्षा वर्णनो नाम बाईसवां अधिकार सम्पूर्ण भया ॥२२॥

आगे पंचम कालको महिमा कहिये है—

गाथा—जहि थति अरि हितदूरउ तीथथाणेय रजय विणखेदो। रंजय तहां न सुसंगो ए कलुबल गेयतज्ञ समभावो ॥ ६५ ॥

अर्थ—जहि थति अरि कहिये जहां रहिये है तहां बैरी पाईये है। हित दूरउ कहिये हितू हैं। सो दूर हैं। तीथथाणेय कहिये तीर्थ स्थान। रजय विणखेदो कहिये रंजय बिना खेद है। रंजय तहां न सुसंगो कहिये, रंजत हैं तहां सुसंग नाहीं है। ए कलुबल कहिये ये कलयुगका बल है। गेयतज्ञ समभावो कहिए पण्डित हैं ते यह देख समताभाव राखैं हैं। भावार्थ—जे तत्त्वज्ञानी धर्यात्मा हैं सो जगतकी बिटम्बना देखि ऐसा विचारैं हैं। जो देखो पंचमकालकी महिमा। कि जहां सदीव रहिए, जा क्षेत्रमें बहुत दिनका वास ऐसे क्षेत्रमें तो अदेखा—बैरी जन बहुत हैं। सो कोई धर्म कर्म खान-पान देख सकता नाहीं। और अपने स्नेही हैं सर्व प्रकार सुखके कारण हैं, तिन तैं बड़ा अन्तर है। वह सजन हैं सो दूर ही देशमें बसैं हैं। और जो तीरथ समान उत्तम स्थान हैं जहां रहैं सदीव पुण्यका बन्ध कीजे। सतसंगी जीव पूजा शास्त्र ध्यान चरचाका सदीव निमत्ति

सो जहां रहने कूं सदा मन चाहै। ऐसे उज्ज्वल स्थान पे रुजगारकी ठीकता नाहीं। सो खान-पानकी थिरता बिना रह्या जाता नाहीं। और जहां भला रुजगार है। खान पानकी चिन्ता नाहीं। ऐसे क्षेत्रमें सत्संग नाहीं। जहाँ अपना परभव सुधारिए सो पुण्यके निमित्त ध्यानाध्ययन पूजादिक निमित्त नाहीं। ये पंचमकाल की जोरावरी है। ऐसे खोटे कालमें भली वस्तुका सिलाप थोरा है। पापकारी कुआचारी अशुभ वस्तुनका निमित्त बहुत है सो इसका यह सहज स्वभाव है। शुभ निमित्त अल्प अशुभका निमित्त बहुत ऐसी इस कालकी सहज प्रवृत्ति है। ताके मेटवे कूं कोई उपाय नाहीं होन हार कोई मेटता नाहीं। जा-जा समय सुख-दुख होवना है सो हो है। ऐसा जानि धर्मात्मा विवेकी तिनकौं समताभाव राखि धर्म-ध्यानका आश्रय लेना योग्य है ॥६५॥

अगे कहैं हैं कि शुभभावना बिना करनी का फल शुभ नाहीं। ताकौं दृष्टान्त देय बतावैं हैं—

गाथा—सुक पठती वक झाणो, खर भसमी पसु णगण तरु कट्ठो। उरण सिरकच मुड़ई, भावो सुधी विणा ण सोझंती ॥ ६६ ॥

अर्थ—सुक पठती कहिए तोतेका पढ़ना। वक झाणो कहिये वकका ध्यान। खर भसमी कहिए गधेका राख लगावना। पशु णगण कहिए पशूका नगन रहना। तरु कट्ठो कहिए वृक्षनका कष्ट सहना। उरण सिर कच मुड़ई कहिए, भेड़के बालका मूड़ना। भावो सुधी विणा ण सोझन्ती कहिए, ये सब शुभभाव बिना मोक्ष न होंय। भावार्थ-जीवका भला तथा बुरा, इस हीके परणामन तैं होय है। तातें शुद्ध-भाव बिना, जीव चाहै जैसा कष्ट करौ, भला होता नाहीं। जैसे तोता रात्रि-दिन राम-राम किया करै है। परन्तु याकें राम-नाम तैं कछु प्रीति नाहीं। ऐसा बिचार नाहीं, जो राम-नाम ल्यौं हों त्यों मेरा कल्यण होयगा तथा ये राम-नाम उत्कृष्ट है। याका नाम जो लेय सो सुखी होय है। ऐसा भेद-भाव नाहीं। जैसे पढ़ावनेहारा पढ़ावै है, उसी ही प्रकार पढ़ै है। यातैं याके भावनकी शुद्धता नाहीं। अरु शुद्धता बिना, सूवेका पढ़ना-पढ़ावना वृथा ही जानना, फल-दाता नहीं। बगुला, पानी विषैं एक-चित्त करि, कायकी ध्यानाकार ऐसी मुद्रा बनावै है। जैसे भला तपस्वी ध्यान करै। ऐसी ही नासादृष्टि करि, बगुला भी ध्यान करै है। परन्तु परणाम तो भले नाहीं। मच्छीनके घात-रूप हैं। सो भाव प्रमाण खोटा ही फल मिलेगा। ध्यानके आकार, भली-मुद्रा सहित, काया करी

है सो भाव शुद्ध बिना भला-फल होता नाहीं। तातैं शुद्ध भाव बिना, वगुलेका ध्यान वृथा है। अर विभूति जो राख लगाये भला होय तो गरधव सदीव ही विभूति विषैं, लोट्या ही करै है। परन्तु गरधवके ऐसा विचार नाहीं जो राख लगाये, मेरा भला होयगा। यह सहज ही, ज्ञान रहित है। तातैं राख तनके लिपेटे पुण्य होता नहीं। अपने भोरेपन तैं, तनकी शोभा मिटाना है। बाकी शुद्ध-भाव बिना, राख लगाए मोक्ष होती नाहीं। जो भाव-शुद्ध बिना मोक्ष होय, तो गरधव कौं भी होय। नगन-तन तैं मोक्ष होय, तो सर्व पशु नगन ही रहैं हैं। तातैं शुद्ध-भाव बिना नगन रहना, पशुके कष्ट समान है। बड़ा कष्ट पाये मोक्ष होय, तो वृक्षनकौं होय। वृक्ष, शीत कालमें तो च्यारि महीना, शीत सहैं हैं। उष्ण-काल मैं, च्यारि महीना, सूर्यकी आताप सहैं हैं। अर चारि महीना वर्षा-कालमें, सर्व पानी तनपैं सहैं हैं। ऐसे तीनों ऋतुके बड़े कष्ट, शुद्ध-भाव बिना तरु सहैं हैं। परन्तु कष्टके खाये शुद्ध-भाव बिना भला होय, तो इन वृक्षनका होता, ऐसा जानना। शुद्ध-भाव बिना, मूड़ मुड़ाये भला होय, तो भेड़का होय। भेड़ कूं बरस-दिनमें कई बार मूँड़िए। सो भाव-शुद्ध बिना, मूड़—मूड़ावना कहिये केश-लोंचन, करना भेड़के मूड़ने समानि है, ऐसा जानना। सो भावनकी शुद्धता बिना, शास्त्रादिका पढ़ना सूवे समानि है। शुद्धभाव बिना ध्यान, वगुले समानि है। शुद्ध-भाव बिना विभूति लगावना, गरधव समानि है। शुद्ध भाव बिना नगन रहना, पशू समानि है। शुद्ध भाव बिता तीनों ऋतुके तन पै कष्ट सहना, वृक्ष समानि है। शुद्ध भाव बिना शीश मुड़ावना, भेड़ समानि है। तातैं हे भव्य, मोक्षका कारण एक शुद्ध भाव है। सो जे विवेकी हैं, ते रागद्वेष मिटाय अपने हितकौं, परभव सुधारवे कौं, भावनकी शुद्धता करो। यहां प्रश्न—जो तुमने कह्या कि शुद्ध-भाव बिना, तप संयम, पठन—पाठनादि धर्मका फल अल्प होय है, तथा नहीं होय है। शुद्ध भाव बिना जो स्वाध्याय-शास्त्रोपदेश करना, शास्त्र सुनना, ध्यान करना, सामायिक करना इत्यादिक धर्मके अङ्गके सेवनेहारे हैं। सो धर्म सेवन करते, शुद्ध भाव सहित तो कोई दीखता नाहीं। आरत, रौद्र ध्यान बहुतके होय है। शुभ भाव वारे, अल्प हैं। और जेते जीव, अवार धर्म अंग सेवन करैं हैं। तिनकैं शुभभाव अल्प भासै है। सो इनको धर्म सेवनका फल शुभ होयगा, वा नहीं होयगा? ताका समाधान भो

भव्य, तूं ने प्रश्न महामनोज्ञ किया। सत्पुरुषन कूं सुख पहुँचावनहारा, अनेक जीवनका संशय मेटनेहारा, ऐसे भाव सहित तेरा प्रश्न है। सो अब चित्त देयके उत्तर सुन। इस उत्तरका धारण किये धर्मके अङ्गन तैं विशेष प्रीति उपजैगी। धर्मके सेवनेहारे जीवनके अभिप्रायके दोय भेद हैं। एक तौ धर्म फलके हेतु सेवैं हैं। एक लोभी, कषायके पोषनैं कूं, धर्म सेवन करैं हैं। सो जे भव्यात्मा, धर्म कूं बड़ा जान, धर्म फलका लोभी भया, दान पूजा तप ध्यान शीलादिक करैं हैं। सो परभवके कल्याण कूं शुभभाव लिए करैं हैं। पीछे कर्मके जोग तैं कारण पाय, भाव-चंचल भी होंय, अरति उपजावैं, तौ याका शुभ-फल जाता नाहीं। जैसे कोऊ भव्यात्मा, सामायिक करवे कूं पद्मासन या कायोत्सर्ग कायका आसन करि, चित्त भला करि, सामायिक करै है। सो सामायिक कौं बैठा, तब अभिप्राय तो अच्छा था। अरु मन—वचन—कायकी प्रवृत्ति भी अच्छी थी। पीछे कोई कर्म-जोगतैं रागभावनकी प्रबलता करि, परणाम और ही विकल्प-कषाय रूप होने लगे। मन चंचल होय रह्या। परन्तु काय, सामायिक रूप है। परणति, कर्मकी जोरावरी तैं याकै हाथ नाहीं। अभिप्राय याका ये ही है जो मैं सामायिक करौं हौं। सो ऐसे धर्मात्माका सामायिकका फल जाता नहीं। जैसे कोई सामायिक करनेहारा भव्य जीव, सामायिक समय, घरके अनेक कार्य तजि कैं, धर्म-बुद्धिका प्रेरचा, घर तैं धर्म स्थानमें जाय, तनकी शुद्धताकरि, अल्प परिग्रह राखि, कायोत्सर्ग तथा पद्मासन ध्यान धरि, पंचपरमेष्ठीके गुणनका विचार करि, अपने किये पाप यादकरि, तिनकी आलोचना बार २ करि, अपनी निन्दा करि, सर्व जीवन तैं समता-भाव करि, ऐसा विचार करता भया। जो धन्य हैं वे मुनीश्वर तथा उत्तम प्रतिमाधारी श्रावक जो सर्व आरम्भ-पाप तैं निर्वृत्त होय, सुख भोगवैं हैं। ऐसी दशा मोरी कब होवेगी ? ऐसे तपकी भावना भावता, सामायिक करै। एते हीमें एक चिंताकारी बात यादि होती भई। कि जो एक हजार दीनारकी थैली वा दुकानवारे कूं भूलि आया। सो याके याद होते मन तो चंचल होय, आरतिके जाल मैं पड्या। सामायिकमें चित्त नाहीं लागै। तब यह धर्मात्मा विचारै, जो मेरे दोय-घरीकी मर्यादा है। सामायिक कौं बैठा हौं। सो अब कैसे उठ्या जाय ? मेरे भाग्यकी है तो मिलेगी ही, कहां जायगी ? अरु मेरे भाग्यमें नहीं होय,

तौ अब ताईं, प्रगट-चौड़ी जगहमें से, कैसे बची होयगी ? और अब मैं कदाचित् लोभके जोग तैं उठौं हौं तौ प्रतिज्ञा मेरी भंग होय। प्रतिज्ञाके भंग होते, मेरा परभवबिगड़े है। काया-धर्म, नाश होय है। तातैं जो होनहार है, सो होयगी। मैं दोय घड़ी तो नाहीं उठौं हौं। प्रतिज्ञा पूरण भये जो होनहार है सो हो जा है। ऐसा विचार तनकौं स्थिरीभूत किए, तिष्ठ्या है। जो-जो सामायिककी क्रिया बन्दना, आलोचना सामायिक इत्यादिक पाठ पढै है। परन्तु मन-चंचल भया, सो सामायिक मैं नहीं लागै है। तो भी ये धर्मात्माका धर्म-फल जाता नाहीं। और कदाचित् दीनारोंके लोभ तैं सामायिक छोड़ि उठ खड़ा होता तौ पापवन्ध होता। धर्म क्रियाका अभाव होता। तातें ये धर्मात्मा अपनी प्रतिज्ञा तजि, उठै नाहीं। तौ परणति चंचल भले ही होऊ। या धर्मात्माका अभिप्राय भला है। अभिप्राय शुभ थिरीभूत नहीं होता तो सामायिक तजि करि जाता। तातैं अभिप्राय शुद्ध रहते तत्वश्रद्धान दृढ़ता कौं लिये हैं। सो ऐसा धर्मात्मा उत्तम धर्मी ही है। ऐसे ही श्रद्धानकी दृढ़ता अरु परणतिका आरति भाव सर्व धर्म अङ्गनमें लगाय लेना। सो ऐसे धर्मीका तौ विकल्प होतें भी धर्म जाता नाहीं ऐसा जानना। और एक लोभके निमित्त धर्म स्वांग धरि तप संयम ध्यान जिनवानीका पाठ इत्यादिक धम अंग करै। और अभिप्राय चोरीका है। जैसे रुद्रदत्त चोर था, सो लोभकों देहरे (जिनमन्दिर) जीका माल चोरवेकौं धर्मात्मा ब्रह्मचारीका भेष धरि नाना तप, संजम, भले पाठ करता सेठके घर आय, धर्मात्मा होय, जिन मन्दिरमें रह्या। सो जिन-मन्दिरके चंवर, छत्र, कलशादि चोरे। खोटे अभिप्राय तैं धर्म-सेवन करै था, सो तिनका फल तो नहीं लगा। अरु खोटे अभिप्रायके जोगतैं मरि नरक गया। तातें ऐसे धर्म-सेवन मैं तोकौं दोय भेद कहे, सो जानना। जाका धर्म-सेवनमें अभिप्राय धर्म रूप है ताकैं तो पुण्य फल होय है। जिसके धर्म-सेवनमें अभिप्राय खोटा होय। ताकैं पापबन्ध होय है। तातैं शुद्ध-भावनके अभिप्राय बिना जो धर्म सेवन है। सो ऊपर कहे तोता, बगुलादिक तिन समानि जानना। शुद्ध-भावन बिना धर्म साधन लौकिकके दिखावेकूं करैं हैं। ते जीव धमके अभिलाषी नाहीं। इनका धर्म-सेवनका कष्ट बृथा ही जानना। जैसे कोई सेठका मन्दिर बनै है। तहां अनेक मजूर लगे हैं तिनकूं मजूरी करते देखके एक अज्ञानी

पागल पुरुष आया सो आप भी बिना कहे अपनी इच्छा तैं ही, मजूरी करता भया। सो औरन तैं यह पागल बहुत भार उठावैं। मजूर उठावैं पाँच सेरका पाषाण तो ये पागल उठावै दश पंसेरीका पत्थर। मजूर ल्यावैं एक पत्थर तौ ये पागल ल्यावै दश-पत्थर। सो याकी मजूरी देख कैं अजान पुरुष ऐसा विचारै जो यह मजूरी बहुत करै है। सो याका रोज भी बहुत होयगा। ऐसे सब दिन मजूरी करी। सांझको मजूर छूटे। तब जिनके नाम मड़े थे, तिन सब मजूरनको दिन मिल्या। सो अपने घर जाय सुखी भये। जब इस पागलने भी मजूरी मांगी। तब दरोगाने कागदमें याका नाम देख्या, सो नाहीं निकस्या। तब याकूं, पूंछे तूं कब लागा था? तब यानैं कही मेरो मन आई तब ही लागा। तब याकौं पूंछी तोकौं कोऊने लगाया था? तब या पागलने कही, हमकौं कौन लगावै, हम ही अपने मन तैं लगे थे। तब सबने जानी, ये मजूर नाहीं, कोई पागल है। तब धक्के दिवाय कढ़ा दिया। मंजूरी नहीं मिली धक्के मिले। सबनै जानी, दीवाना है। मिहनत वृथा गई क्यों गई? सो कहिये है। ये दिवाना काहूका चाकर तो भया नाहीं। अपनी इच्छा-रूप रह्या। बंध रूप नाहीं इस दिवाने कैं एता विचार नाहीं। जो मैं फलानेका चाकर हौं यापै कहिकर काम करौं। जो धनीकी आज्ञा मानता नाहीं अपनी इच्छा रूप है तातैं मंजूरी नहीं मिली। खेद वृथा गया। तैसेही यह जीव एक शुद्ध धर्म की परीक्षा करि जाकौं कल्याणकारी जानैं, ताकी आज्ञा प्रमाण धर्मका सेवन करै। तथा धर्मके अंग दान पूजा तपादिक करै तो धर्मका फल भी लागै। और धर्म-स्वांग तो बहुत धारै परन्तु कोई आज्ञा रूप नाहीं स्वेच्छा स्वच्छंद होय धर्म अंगका सेवन करै। अनेक कष्ट करै, सो वृथा जाय। जैसे पागलकी मजूरी वृथा भई तैसे जानना। ऐसे धर्मअंग सेवनहारे जीवनके दोय भेद कहे। सो हे भव्य तूं जानि। जो धर्मकी आज्ञा सहित धर्म अंगनका सेवन करैं हैं। और निमित्तके दोष तैं उनके परणाम चंचल भी होंय तो उनका धर्मफल जाता नाहीं। और कोई जीव सर्वज्ञदेवकी आज्ञा रहित भया क्रोध मान माया लोभके जोग तैं छल-बलकं लिये पाखंड सहित धर्म सेवन लोक दिखावन कौं करै तिनका फल भी वृथा होय। ऐसे जानना। यह तेरे

प्रश्नका उत्तर है। तातैं भावनकी शुद्धता सहित धर्म सेवनही मोक्ष मार्ग जानि। शुद्ध भाव बिना खेद ही है, सो भी वृथा जानना। आगे और कहैं हैं जो शुद्ध-भाव बिना धर्म-अंग वृथा है—

गाथा—मखि पतङ्ग दहकाया तसयर चित्तोय णमण तण होई ॥ सुरतरु देयहु दाणो,' भावो सुधी विना ण सोभंती ॥ ६७ ॥

अर्थ—मखि पतंग दहकाया कहिए, माखी व पतङ्ग काया दहै हैं। तसयर कहिये चोर। चित्तोय कहिए चीता। णमण तण होई कहिये इनके तन में बहुत नमन है। सुरतरु देवहु दाणो कहिये कल्पवृक्ष मनवांच्छित दान देय। भाओ सुधी बिना ण सोभंती कहिये परन्तु भावकी शुद्धता बिना मोक्ष मारग नाहीं। भावार्थ—भावनकी शुद्धता बिना मोक्ष नाहीं होय है। नाना तप संयमादिके खेद, सर्व वृथा जानना। सो भाव शुद्ध बिना केतेक तौ भोरे जीव मोक्षके निमित्त अपना भला तन अग्निमें भस्म करैं हैं। सो ऐसे अग्निमें जलनेके कष्ट तैं मोक्ष होती तो शुद्ध भाव बिना माखी व पतङ्ग कौं होय। माखी व पतङ्ग दीपकमें निशङ्क होय, तनको दाहैं हैं। सो अज्ञान संक्लेश भावनतैं मरि खोटी गति ही विषैं उपजैं हैं। तातैं शुद्ध भाव बिना कायका जलाना वृथा है। और काय तैं अत्यन्त नमैं विनय किये शुद्ध-भाव बिना मोक्ष होती तो चोर पराए-घरमें चोरीकूं जाय तब अपना तन शीश नवावता जाय है। सो यह मायावी, दगादार महा खोटे अन्तरङ्गका धारी ये चोर। तथा चीता पशु है सो अन्य जीवनकौं मारै है तब पहले अपनी कायकूं बहुत नमाय करि पीछे चोट करै। सो काय नमाए—विनय किये शुद्ध-भाव बिना मोक्ष होय तो चोर तथा चीते कौं होय। तातैं धर्म अभिलाषी पुरुषनकौं भाव ही शुद्ध करना स्वर्ग मोक्षकारी है। और शुद्ध भाव बिना दान दिए मोक्ष होय तो कल्पबृक्ष कौं होय जो वांच्छित फल देय है। तातें तस्कर चीता माखी पतंग कल्पबृक्ष ज्ञान रहित हैं। खोटे भाव सहित हैं। इन कूं परभव सुख नाहीं। तातें ऐसा निश्चय करना, कि परभवके हितका कारण भाव की शुद्धता है। तातैं धर्मार्थी जीवनकूं भावकी शुद्धता करना योग्य है। आगे सुसंग—कुसंगके वांच्छिक जीवनकूं बतावैं हैं—

गाथा—वायसस्सांण अणाणी, हीण सङ्गोय रञ्जई मूढो। हंस चतुर णर णाणी, ऊंच सङ्गोय वंछिका गेयं ॥ ६८ ॥

अर्थ—वायस कहिए, कौवा। स्साणं कहिए, कुत्ता। अणाणी कहिये, अज्ञानी। हीण सङ्गोय कहिये, नीच सङ्ग विषैं। रञ्जय मूढ़ो कहिये, मूरख राचैं हैं। हंस चतुर णर णाणी, ऊंच सङ्गोय वाञ्छिका गेयं कहिये, हंस, चतुर मनुष्य व ज्ञानी पुरुषन कौं ऊंच-सङ्ग ही सुहावै। भावार्थ—काक कौं चाहै जेते ही रतनमई आभूषण पहराय कैं शृंगारो। चाहे जैसा भोजन देय पोखौ। चाहै जैसा खेद खाय, पढ़ावो। कनकके पिंजरे में राखो। इत्यादिक याका लाड़ चाहै जैसा करो। परन्तु जब या काक हाथ-पिंजरे तैं छूटै, तब ही ये अज्ञानी, नीच जहां स्थान होयगा तहां ही जायगा। तथा आप समानि काक बैठे होंयगे, तहां जाय तिष्ठैगा। और कुत्तेकूं, चाहे जैसा भला-भोजन करावौ। अनेक भले आभूषण याके तनमें पहरावो। पालकी व रथकी असवारीमें धरो। नाना बिछौना, गादी, जाजमैं पै राखो। इत्यादिक अनेक भले निमित्त मिलाय कैं राखौ। परन्तु जब यह डोर तैं छुटैगा, तब ग्राम-श्वानन विषैं जाय रमनै लगेगा, तथा घूरा पै जाय तिष्ठैगा। ऐसा ही याका सहज-स्वभाव है। और अज्ञानी कौं चाहे जेता समझावो—पढ़ावो, परन्तु याकी अज्ञानता नाहीं जाय। याका सहज-स्वभाव ऐसा ही जानना। सो अज्ञान, ताके अनेक भेद हैं। तहां एक अज्ञान तौ ऐसा है। जो और कला धर्म--कर्मकी सब जाने है। अनेक भेद—भाव समझै है। परन्तु शास्त्र-बांचनेके ज्ञानसे रहित है। कोई पूर्व—कर्म जोगतैं श्रुतज्ञानावरणके उदय तैं संस्कृत, प्राकृत, देश-भाषादिक शास्त्रनके बांचनेका ज्ञान नाहीं। तातैं याकौं अज्ञान कहिये। और एक अज्ञान ऐसा है जो ताकौं शास्त्र-बांचनेका ज्ञान तौ है। परन्तु योग्य—अयोग्य, भली—बुरी, पुराय—पाप, हित—अनहित, इत्यादिक शुभाशुभ विचारतैं, हृदय जाका रहित होय। जैसे तोता कौं पढ़ाय पण्डित किया। सो तोता कौं जैसे काव्य-छन्द पढ़ावो सो पढ़ै। ताका पढ़ना देखि और जन राजी होंय। ऐसा पढ़ाय तैयार किया। परन्तु याके मुख आगे अंगुली करो, तो काट खाय। तथा पिंजरे तैं खोल देव, तो मूरख उड़ जाय। कछू विचारै नाहीं। जो मैं इस रतन—पींजरेमें, भले भोजन—जल खावता सुखी हौं। मोकौं इननै पढ़ाया है। सो ये अज्ञान, सर्व भूलि, पींजरा छोड़, जाता रहे। सो कोई ऐसा ही मूरख, अनेक शास्त्र संस्कृत—प्राकृतादि तो वाँचि जानै, परन्तु कषाय-सहित, महामानी,

पापका भय नाहीं, पुण्य-फलकी चाह नाहीं, ऐसा हित--अनहित रूप भाव नहीं समझै। काम, क्रोध, लोभ, बहुत होय जाकें। सो पढ्या-अज्ञान कहिये। एक शुभाशुभ विचार रहित होय, अरु अक्षर—ज्ञान तैं भी रहित होय, ताकौं भी अज्ञान कहिये। और एक बालक अज्ञान होय। सो सुख--दुःखके स्थान-भेद नहीं समझै। ज्यों बालक कौं, वाके माता—पिता कहैं हैं। पुत्र! भोजन खायकैं, पालने झूलो-सोवो। अरु घाम में मति जाओ, यहां शीतल जल पीवो। लड़कों में मनि जाओ, वह मारेंगे। ऐसी हितकारी-सुखदायक शिक्षा, अपने बालक कौं कहैं हैं। ताके भेद नहीं समझा जो बालक-अज्ञान, सो माता-पिताके वचन उल्लङ्घकैं, छिपकैं, बड़ी घाममें ही भागकैं, बालकनमें खेलवे जाय है। तहां शीशमें रज भरै। घाम तनपै सहै। प्यास लागी, सो सहै है। भूख लागी है। औरनके मुखकी गारी सहै है। कोई शिरमें मारे, सो भी सहै है। इत्यादि खेदके स्थाननमें तो जाय। अरु सुख-स्थान अपना घर, तहां नहीं रहै। ऐसा अज्ञान ये बालक है। और एक अज्ञान ग्वाल है। जो सदीव ढोर चरावै। बन ही में रहै, या मैंभी शुभाशुभका ज्ञान नाहीं। इस गोपाल को शालका जोड़ा दीजिये। तो ये आज्ञानी नितंब-वल्लभ, शालके मोल-गुण कूं नहीं जानता-संता, बैठे है तहां शालकूं, पंद नीचे देय बैठे। इसको विशेष-विवेक नहीं होय। सदीव पशूनकी संगति मैं रहै। सो तैसी ही बुद्धि धारै हैं। इस गंवार कूं बनमें (प्यास) लागै, तब नदीमें जाय, पशूकी नाईं मुख ही तैं जल पीवै, हाथ तैं नहीं पीवै। खड़ा ही नीतादिक बाधा करै। याकें शुभाशुभकी खबरि नाहीं। तातें ग्वाल भी अज्ञान है। इत्यादिक कहे मूरखनके भेद, सो इन सब कूं नीच-संग ही भला लागै है। और ऊंच-संगमें जातैं-बैठतैं-बोलतैं, लज्जा उपजै है। जैसे कोई भले-आदमीका पुत्र, होरीके दिनमें, अपनामुख श्याम बनाय, नीच-संगके मनुष्यनमें खुसीभया, रमै था—स्वछंद खेले था। सो तहां कोई भला-आदमी आय निकसै, तो लज्जा खाय, छिपि जाय है। उस कारे-मुख सहित, भले-संगमें लज्जा उपजै। तैसे इस अज्ञान कौं सुसंगमें लज्जा उपजै है। और अपने समानि, अज्ञानके धरनहारे जीवहोंय, तिनमैं ये अज्ञानी प्रसन्न रहै है। तातैं ये काक श्वान, अज्ञान इन कूं नीच-स्थान ही प्रिय है। सो इनका ये सहज-स्वभाव जानना। एतेन कूं ऊँच-संग भला

लागै है। सो ही कहिये है। एक तो हंस, महासमुद्रका रहनेहारा, मोती चुगनेहारा, उज्ज्वल बुद्धि, निर्मल नीरका पीवनहारा, ऐसे भले-स्थानका रहनेहारा, सुबुद्धि, महासुन्दर तनका धारी, हंस कूं ऊंच-स्थान ही अच्छा लागै है। जहां वड़ा दरयाव होय, वड़े जलका विस्तार घणा-जल होय, हंस तहां सुखी होय। जे चतुरनर हैं सो भी तहां राजी होय हैं, जहां अनेक-कलाके धारी, विवेकी, चतुर, राजकुमारादि, उज्ज्वल-बुद्धि, आप समानि धर्म-कर्म कलामें समझते होंय। अनेक शुभ-विवेक वार्ता होती होय। नाना नय-जुगतिनकी रहसि सहित प्रश्न उत्तर होते होय। अनेक धर्मकथा चरचा, शास्त्राभ्यास कौं लिये, होती होय। जहांकी चतुराई में तिनकूं भला लागे कुसंग तें अरति होय सो चतुर कहिए। और जे धर्मात्मा हैं। तिनकूं धर्मस्थान सोही ऊंच स्थान प्यारा लागै है। सो जहाँ प्रथमानुयोग करणानुयोग द्रव्यानुयोगकी कथा पाप हरनी पुण्य करनी बात होती होय सो स्थान धर्मात्माकूं भला लागै तथा जहां अनेक मतान्तर की रहसि कूं लिये तत्व भेदनका निरधार होता होय जिनतें मोक्षमार्ग जान्या जाय संसार भ्रमण छूटे परभव सुख होय लागे पाप नाश होंय इत्यादिक ऊंच स्थानकमें रंजायमान होय सो ज्ञानी कहिए। ऐसे कहे जे सुसंग हंस चतुर नर ज्ञानी पुरुष इनकौं ऊंच संग प्रिय लागे है। इनका ये ही सहज स्वभाव है। सो हे भव्य हो जे नीच हैं तिनकौं नीच संग प्रिय है। ऊंचनकौं ऊंच संग प्रिय है। ऐसी परीक्षा करि नीच ऊंचकी पहिचान करना। जिसमें तेरे भले की होय तिस संगतिमें रंजना नगन होना योग्य है ॥ ९८ ॥ आगे हितूनके परखिवेकूं नव स्थान दृष्टान्त पूर्वक बतावैं हैं—

गाथा—णिपभय खेद दरिदये, भोयण सतयार अज्जपण्णाको जराशक्ति अखझहीयो इथल हित हेम पाख कसटीये ॥ ९९ ॥

अर्थ—णिपभय कहिये राजाका भय। खेद कहिये रोग। दरिदये कहिये दारिद्र। भोयण कहिए भोजन सतयार कहिए सत्कार। अज्जपण्णामो कहिये, आरजो परणाम। जरा कहिए वृद्धपना। असक्ति कहिए हीन शक्ति। अखझहीयो कहिए इन्द्रियनके बल घटैं। इ थल हित हेम पाख कसटीए कहिए ए स्थान हित रूपी कनकके परखवे कौं कसौटी हैं। भावार्थ—संसारमें अपने हितकारी जीव तेई भए स्वर्ण तिनके परखवेकौं ए कहे स्थान सो कसौटी समानि हैं। सोई बताइए हैं। जहां एक तो भूप भय होव। तव राजाका कोप अपने

ऊपरि होय तब अपनी सहायकूं अपनी चाकरी करै। सो भला चाकर जानना। जो ऐसे समयमैं पासि रहै, विनय करै सेवा करै सो सांचा चाकर है। अरु कुटुम्बादि, मन्त्री, जे भूपके कोपमें सहाय करें सो सांचा हितू जानना ॥१॥ नाना प्रकार तन विषैं कुष्टादि रोगकी वेदना भई होय। ता समय मल-मूत्रादिकी समेटणा करै सो ही भला सेवक सोही कुटुम्ब सोही मित्रादि जानना ॥२॥ जब पाप उदय तैं दरिद्र आवे धनकी हीनता होय। ता समयमें भूख प्यास सहकैं जो सेवा करै सो भला सेवक कहिए। जो इस दरिद्र दशामें संग रहै विनय तैं पूर्ववत् रहै सो ही कुटुम्ब सोही मित्रादिक जानना ॥३॥ भोजन देते यथायोग्य आदरतैं विनय सहित अन्तरंगके स्नेह तैं भोजन देय सो सांचा हितू सोही कुटुम्ब सोही मित्र सांचा है। सोही सेवक भला है ॥ ४ ॥ आवते, जावते, बोलते यथायोग्य अन्तरंग मोह सहित सत्कार करै। आव आदरैं सोई सांचा मित्रादिक सज्जन जानना ॥५॥ सरल भाव तैं कुटिलाई तजिकैं विनय तैं सेवा करै सो भला सेवक है। सोही मित्र कुटुम्बादि जानना ॥ ६ ॥ और शरीरमें कुमावेकी शक्ति घटै। कुटुम्बादिक सर्व रक्षा करवेकी शक्ति घटै। तन अतिही पराधीन होय। बचन बोलतैं मुखतैं नीर चलै। अंग उपांग कम्पन लागैं। इत्यादिक अवस्था जरा आए होय तरुणपना जाय तब कोई विनय कहित सेवा करै सो तो सेवक। और या दशामें आदर सहित सेवा चाकरी करै आज्ञा मानै सोही भला पुत्र भाई स्त्री आदिक कुटुम्बी मित्र जानना॥ ७ ॥ उदय तैं उठतैं वैठतैं मल-मूत्र खेपनेतैं शरीरकी शक्ति घट गई होय, ता समय अशक्त भए पीछे सेवा चाकरी करै सोही मित्र, कुटुम्बादि जानना ॥ ८ ॥ जा समय पचेंद्रिय शिथिल होंय। तथा एक दोय इन्द्रियकी प्रवृत्ति जाती रहै। नेत्रनतैं नाहीं सूझे नहीं दीखै। तथा काननतैं नहीं सुनै। इस समयमें जो कोई, विनय सहित आज्ञा प्रमाण सेवा करै, सोही मित्र, सोही सेवक, सोही स्त्री-पुत्रादि, सांचे जानना ॥ ९ ॥ ऐसे कहे जो सेवक, मित्र, पुत्र, स्त्री, भाई, माता-पितादि—स्नेही सोही भये कञ्चन, तिन सबके परखिवे कों ये नव स्थान कसौटी समानि हैं। जैसे कसौटीपै घिसे, भले-बुरे कञ्चनकी परीक्षा होय, तैसेही इन नव स्थानकनमें मित्र, सज्जन, कुटुम्बादिककी परीक्षा होय है। बाकी भले विषैं तो अनेक चाकरी करैं हैं। कुटुम्ब, पुत्र, स्त्री आदि आज्ञा मानैं ही मानैं। क्योंकि यतो सर्वका

रक्षक है। परन्तु उक्त नव स्थानकनका अवसर आय पडै, तव चाकरी करै, सोही सांचा नाता जानना ॥६६॥

आगे ऊपर कहे जे कसौटी समानि सर्व स्थान, इनपै कौन २ कौं परखिये, सो कहैं हैं—

गाथा—ए णव ठाण कसौटी, पीय तीय मित्तादि पुत्त सजणाणी। संजय तव धम्म कणका, घसि पवणय पमाण सुदिट्ठी ॥ ७० ॥

अर्थ—ये उक्त नव स्थान, कसौटी समानि हैं। अरु पिया, स्त्री, मित्रादि, पुत्र और अनेक सज्जन और संजय कहिये संयम, तव कहिए तप, धम्म कहिये धर्म, ये सव कहिये ये सर्व ही, स्वर्ण समानि हैं। घसि पखणय पमाण सुदिट्ठी कहिये, नय-प्रमाण इन कूं घसि कैं शुद्धदृष्टी होय, सो परखै। भावार्थ—ऊपरि गाथा में कहे नव भय—राज भय, रोग भय, दरिद्र भय, भोजन नहीं भये, असत्कार भये, सरल भाव भये, वृद्ध भये, तन अशक्त भये, इन्द्रिय वलहीन भये, ये नव स्थान कसौटी समानि जानना। सो इन कारण पड़ैं तव धर्म—कर्म सम्वन्धी जो पदार्थ तेई भये कनक, तिनकौं परखिये। स्त्री तो भरतार कूं, इन कारणमें परखै। और भरतार, स्त्री कौं इन कारणमें परखै। मित्र, मित्र कूं इन कारण में परखै। और भाई, भाई कौं इन कारण पै परखै। पुत्र, पिता कौं इन कारण में परखै। और पिता, पुत्र कौं इन कारण में परखै। सेवक स्वामी कूं और स्वामी, सेवक कूं इन कारणनमें परखै। और चित्तकी धीरजता, धर्म कार्यनमें, तप करतैं, संयमकी रक्षा करतैं, इन कारण पै परखिये। इत्यादिक कहे जे धर्म-कर्म सम्वन्धी कार्य सर्व-अंग, इन नव अवसरनमें दृढ़ रहै। सो साँचा धर्म—कर्म अङ्ग जानना। वाकी पुण्य—उदयमें अपने-अपने स्वार्थ पूरवे में तो, सव ही सहाय करैं। व धर्म-सेवन करैं। परन्तु ऊपर कहे अङ्गनमें-सहायमें दृढ़ रहै, सो धन्य कहिये ॥ ७० ॥

आगे एक दुःख कौं अपनी-अपनी कल्पना करि, अनेक उपचार वतावैं, सो कहिये हैं —

गाथा—वैद्यो कथयत रोगो, भूतो चयटक गहण मंत्तीए। पुव्वो पाजय णाणय, एक गद जथा दिट्ठि भासन्ती ॥ ७१ ॥

अर्थ—इस जीव कौं कोई पाप उदय करि, एक रोग होय। ताकौं जगतके चतुर जीव, अपनी दृष्टि माफिक उस दुखका कथन करैं। सो कोई वैद्य कौं पूछिए, जो हमैं खेद काहे तैं है, सो कहो। तो कोऊ ज्वर, वाय, खांसी, स्वांसादि रोग वतावे। और कोऊ मंत्रवादी—चेटकी कूं पूछिये। जो हम दुखी हैं, सो

क्यों हैं ? तब कहै, तुमकौं ऊपरला फेर है। जोरावरी भूत-प्रेतकी झरपटमें आय हौ। सो हममंत्र, जंत्र, तंत्र गंडा कर देंयगे, सो सब रफै होय साता होय जायगी। और निमित्तज्ञानी कूं पूछिये, जो हम कूँ खेद क्यों है ? तब कहै, तुमकौं शनीचर-मंगलादि ग्रहोंकी क्रूरता है। सो इनका कीया खेद है। तातें इनकी पूजा करौ। दान देऊ। फलाने नक्षत्रमें, साता होयगी। और कोऊ धर्मात्मा, संसार-भ्रमणका जाननहारा, पुण्य-पाप का समझनेहारा, तत्वज्ञानी, सम्यग्दृष्टी कूं पूछिये, जो हमको खेद है सो क्यों ? तब समता-रस-रंगीला कहै। भो भव्य, कोऊ पूरव उपार्जित पापका अशुभ-फल प्रगट भया है। इस भवमें ताने दुख कीया है। तातें तुम विवेकी हौ, पाप का फल ऐसा दुखदायक जानि, पाप मति करौ। तातें परभवमें फेरि दुख नहीं होयवे कूं, धर्म-सेवन करौ, परभव सुख पावोगे। धर्मात्मा ऐसी कहै। ऐसे एक दुख होय, ताके दूर करवेके अर्थि, जो कोई कूं पूछिये, सो अपनी २ जैसी-जाकी दृष्टि होय, जा वस्तुके अतिशयमें जाका चित्त रंजाय, मान होय, सो ही इस जीव कूं सहायकारी भासै है। सो जैसा जाका ज्ञान था तैसा ही इन्होने इलाज बताया। सो विवेकी इन सबके वचन सुनि, धर्मात्माका वचन सत्य जानि, श्रद्धान करि, पापका फल दुख जानि पाप तजि, धर्मके सेवनमें जतन करैं हैं ॥ ७२ ॥ आगे ऐसा कहैं हैं जो पहलैं घर कौं तजि, कुटुम्ब कौं तजि भेष धरि, फेरि घर मित्र चाहै ताकों कहा कहिए। सो बतावैं हैं—

गाथा—मिंदयतजि कुटइछये, दाणो तजि देण मूठ जाचंती ॥ बंधू तजि इछमित्तो, तव गय को होय सांगधर आदा ॥ ७५ ॥

अर्थ—मिंदयतजि कुटइछय कहिये मंदिर छांड़ि टपरिया (झौंपड़ी) चाहै। दाणो तजि देण मूठ जाचंती कहिये दानका देना तजि उल्टा भीख मांगै। बंधू तजि इछमित्तो कहिये कुटुम्ब तजि फेरि मित्र चाहै। तब गयको होय सांगधर आदा कहिये, तेरी कौन गति होयगी ? हे स्वांग धरनहारे आत्मा। भावार्थ—केतेक भोरे शुभ विचार रहित इन्द्रिय सुखके लोभी प्रमादी तिननैं गृहकी अनेक क्लेशता देखि उदास होय, घरकूं तजि भेष धार्या पीछे भेषका निर्वाह करना विषम जानि जांचने लागे। फिर इन्हैं टपरिया छप्पर मिंदर बनाते देखि औरतें स्नेह करते देखि इत्यादिक विपरीत भेष देखि कैं गुरु हैं, सो दया करि शिक्षा सहित हि-

तोपदेश करते भये। भो भव्य तेरे पुण्य तैं तेरे पुण्य-प्रमाण मन्दिरमें रहै था। तिसको तजि जोग धार्‍या। सो तू अब मन्दिर बनावाया चाहै। तथा घासकी कुटी व छप्पर बनवानेके निमित्त आश्रय देखता फिरै है। सो हे भाई तू पहिले क्यों भूल्या? हे भव्य! अपने घरमें तव तौ तूं औरनकूं स्थान देय सहाय करै था। अब घर तजि टपरिया बनवानेकूं, दीन भया फिरै है। तातें घर तजना योग्य नाहीं था। और अब तज्या ही है। तौ बन-बिहार करना योग्य है। गुफा, मसान (मरघट) वृत्तकी कोटरमें तिष्ठना जोग्य है। अरु ऐसी शक्ति तेरी नहीं थी तो घर जतना योग्य नहीं था। और देखि हे भव्य! घर विषैं था तो अपनी शक्ति प्रमाण दीन-दुखीकों दान देय दयाभाव करि पोखे था। अब तूं घर विषैं दान देना तजि उल्टा घरि-घरि दीन भया भीख जांचता फिरै है। सो भी तो कूं योग्या नाहीं। तो कूं अजांचीक रहना योग्य है। और सुनि हे भाई! घरके पिता, माता, पुत्र, स्त्री, भाई, सज्जन मित्रादि स्नेही मोहके करनहारे तिन कूं तजि, अब भेषि धरि अन्य गृहस्थनकौं संबोधन देय खुशामदि करि विनय करि तिनतैं नेह बधाय मोहके बंधनमें फेरि बन्ध्या चाहै है। अर वह तो तैं मोह करते नाहीं। तातैं मोह बधावना था, तौ तोकौं घर तजना योग्य नाहीं था। अरु अब घर तज्यो है तो निरमोही रहना योग्य है। तातें हे अजान भोरे तैं घर तजि मन्दिर बनाये। तुम दान देना तजि उल्टे याचना कूं आये। तथा तुम घरके कुटुम्बी मोही तजि औरनतैं स्नेह करते फिरौ हौ। सो हे भोरे ऐसे तेरे भांड़-बहुरूपिया कैसे नाना स्वांग देख हमकौं बड़ा आश्चर्य आवै है। सो तेरी कौनसी गति होयगी सो हम नहीं जानैं अन्तर्यामी जानैं। ऐसी शिक्षा उत्तम जीवनकों गुरु देते भए। सो विवेकी हैं तिनकौं तजे पीछे ग्रहण करना योग्य नाहीं। अरु कभूं तजे कभूं अंगीकार करै, सो ताका तप लेना बालकका सा चरित्र है। तथा नटके समानि स्वांग धरना जानना। ऐसा जानि विवेकी जो धर्म कार्य करैं सो प्रथम ही विचारकैं करना योग्य है ॥ ७२ ॥ आगे ऐसा कहैं हैं जो कौन वस्तु तजि किस वस्तु तजि किस वस्तुकौं राखिये, सो ही बतावैं हैं—

गाथा—पुरतज्जे धण कज्जय सहधणतज्जेय काजकुलरक्खो। कुल तज्जय तणकज्जय पुरधणकुलकाय तज्यधम्मकज्जाय ॥ ७३ ॥

अथ—पुरतज्जे धएा कज्जय कहिए पुर तौ धनके निमित्त छांड़िए है। सहधण तज्जेय काज कुल रक्खो कहिए सो धन कुलकी रक्षाके निमित्त तजिए है। कुलतज्जय तएा कज्जय कहिए कुलको तनके वास्ते तजिए है। पुरधएा कुलकाय तज्यधम्मकज्जाय कहिए पुर धन कुल काय ए सब धर्मके निमित्त तजिए है। भावार्थ—जगत जीव कुटुम्ब मोह तैं तथा मानादि कषाय पोषवे कौं तथा परम्पराय आपकौं सुख होयवे कौं इत्यादिक कर्म कार्यनके निमित्त सहायकारी सुखकारो धन जानि ताके पैदा करवेकौं यह विवेकी अपनी बुद्धिके बलतैं अरु पुण्यके सहाय तैं घर तजिकैं द्वीपान्तर समुद्र बन इन आदिक विषम स्थान कानन (बन) मैं प्रवेश करि बहुत कष्ट खाय क्षुधा तृषा शोत उष्ण अनेक कष्ट सहके धन पैदा करै है। तब धरनके निमित्त घर तजिए। ए बात प्रसिद्ध है। जो देशान्तर जाय धन कुमाय लावै है- तब धन होय है और ऐसे कष्ट करि कुमाया धन सो कुटुम्बकी रक्षाकौं खरचिए खुवाइये है। कोई ऐसा कार्य बनजाय जो धन गए कुटुम्ब बचै तो कुटुम्बकौं राखिए धन दीजिए सो कुल कुटुम्बकी रक्षाके निमित्त धन तजिए। और कोई काम समय ऐसा आवै है। जो अपने तनको रक्षाके निमित्त कुल कुटुम्ब कौं तजिए है। और कदाचित् अपने धर्मकूं प्रयोजन आय पड़ै, तो कुल पुर, धन सबही धर्मकी रक्षा कौं तजिए। तनादिक तजै धर्म रहै तो तनादिक सबकौं तजिकैं अपने धर्मकी रक्षा कीजिए। यहां प्रश्न ? जो तुमने कह्या। काय तजिकैं भी धर्म राखिए सो काय गई तब धर्म कहां रह्या ? अभी लौकिकमें भी ऐसा कहैं हैं कि काया राखै धर्म रहै है तो काय गए धर्मरहो कैसे कहो हो ? ताका समाधान हे भव्यात्मा तैंने कही सो सत्य है। तेरा प्रश्न हमारे उपदेशतैं मिलता ही है। और लौकीकमें कहैं हैं, सो भी प्रमाण है ये भी सत्य है। परन्तु याका भोरे जीव भेद नाहीं जानैं हैं लौकीकमें काया राखैधर्म कहैं हैं सो सत्य है। याका स्वरूप आगे कहैंगे। अरु लौकिकमें भोरे या कहैं जो अपनी काया राखैं धर्म है सो ऐसा नाहीं। काया राखैं धर्म कैसे रहै। सो ही कहिये है। सो हे भव्य तू चित्त देय सुनि। तूने प्रश्न भला किया। घने जीवका संशय मेटनेहारा तथा तेरा संशय मेटनेहारा प्रश्न है। सो तू उत्तर कूं चित्तदेय सावधानी तैं सुनि। तोकूं हम पूछैं है जो एक शूरमा है। ताकौं कोई बड़े योद्धा नैं आय ललकारचा। कही वह शूरमा कहां जाका में नाम

सुन्या करौं हौं। वह महायोद्धा होय सूरमा होय तो मोतैं आय युद्ध करै। वाके हस्तमें बड़ा शस्त्र है। देख्या सोहो मारचा। सो अब इस शूरमा कौं कहा योग्य है? इसका धर्म कैसे रहै? इस वैरीके सन्मुख आय युद्धमें अपनी काय शस्त्रन तैं खंड २ करि मरै तो धर्म रहै? तथा भागकैं अपना तन राखै तौ धर्म रहै? सो कहौ। तब वाने कही भागि जाय तो निन्दा होय। शूरमा तो मरै तबही धर्म रहै। तब तोकूं कहिये है। हे भव्य यहां काया अपनी राखै धर्म रहै। ऐसा कहना झूठा भया। अपनो काया राखै धर्म रहै। तो शूरमा मरता नाहीं। तातैं जे विवेकी हैं सो धर्म राखवे कौं काय भी तजि धर्म राखैं हैं। ऐसा जानना। ऐसे धर्मकूं पुर धन कुलः काय सबहीतजैं हैं और धर्म राखै हैं। अब सुनि तैंने कही जो काया राखै धर्म है। सो श्रेष्ठ धर्म है। यो भी जिनेन्द्रदेवका उपदेश है। जो काया राखै धर्म है। परन्तु ज्ञान-अंध प्राणी इसके भेदकूं पावैं नाहीं हैं। धर्म तो काया राखे ही है सो तुम सुनौ। अब यामें भेद भाव है। सो अन्तर भेद कहिए है। काय भेद षट् है। सो इन षटकायकी रक्षा सो ही धर्म। सो कहैं हैं। पृथ्वी काय अप काय तेज काय वायुकायाके वनस्पति काय त्रसकाय ये षट् काय हैं इनकौं राखै सो धर्म है। पृथ्वी जो भूमि ताहि विना प्रयोजन खोदै नाहीं जालै नाहीं पीटै नाहीं इत्यादिक पृथ्वीकायकी रचा करि दया भाव करि हिंसा नाहीं करै। सो पृथ्वीकायकी रचा है। अपकाय जो जल सो जलकूं विना प्रयोजन जारे नाहीं नाखै नाहीं तथा प्रयोजन होय तहां जतनतैं घी तेलकी नांई जलकूं वर्ते। विना प्रयोजन डारै नाहीं ऐसे जलकायकी रक्षा करै। और अग्निकाय तैं बिना प्रयोजन तो आरंभ नहीं करिए। मुजाईए नाहीं जालिए नाहीं जहां अग्निका प्रयोजन भी होय तो घटाय कैं कीजिये। ऐसे अग्नि-काय कौं राखै विना प्रयोजन पंखादि वस्त्र हिलावना झटकनादि क्रिया करि पवनकायकौं नहीं सताइये। सो पवन कायकी रक्षा है। वनस्पतीके प्रत्येक साधारण दूभ घास पत्ता बेलि छोटे वृत्त बड़े वृक्ष गुल्म कन्द मूल इत्यादिक हरी नीली कूं विना प्रयोजन खेद नाहीं करे। काटै नाहीं छेदे नाहीं छीलै नाहीं पीलै नाहीं हाथ पांव तै मर्दन नाहीं करें इत्यादि विधिसे वनस्पति कायकी रक्षा करै। और बेइन्द्रिय जौंक इल्ली नारू आदिक केंचुवा ए बेइन्द्रिय हैं। इनको काया राखै। और तेइन्द्रिय खटमल चींटी तिरूला

करनी। पढ़नेमें लज्जा करै, तो ज्ञानकी वृद्धि नहीं होय। यातैं शास्त्राभ्यास-पढ़नेमें लज्जा नहीं करनी। चरचा-नमें, प्रश्न करिवेमें, तत्व विचारमें, उपदेश करतैं, इत्यादिक विद्याभ्यासके ध्यानमें स्वाध्यायमें लज्जा करै, तो आप ही अज्ञानी रहै। अपना विगाड़ होय। तातैं विद्याके स्वाध्याय करवैमें, लज्जा नहीं करनी ॥ १० ॥ ऐसे भोजन, व्यापार, युद्ध, नृत्य, गीत, द्यूत, वाद, भोग, वादित्र, पठन इन कहे दश भेदन विषैं, चतुरनकों लज्जा जोग्य नाहीं।

इति श्री सुद्रष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, अनेक नय सूचक, उपदेश-कथन वर्णनो नाम, तेईसवां पर्व संपूर्ण भया ॥ २३ ॥

आगे ऐसा बतावैं हैं कि जो पक्ष, सबल होय तो निर्वलका भी कार्य सिद्ध होय—

गाथा—गिरि-सिर तरु-फल पकऊ, 'काको भक्षंति पक्षबल दीणो। णभूतव्यं सिंहो, पक्षीणो जय गज-घटा सूरो ॥ ७६ ॥

अर्थ—गिर-सिर तरु फल पकऊ कहिए पर्वतके शिखरपर एक वृक्षके फल पके हैं काको भक्षंति पक्षबल दीणो कहिये ताकौं काक तो पंखनके बलतैं दीन है तौ भी खाय है। पक्षीणो कहिये परन्तु पंखा नहीं तातैं णभूतव्यं सिंहो कहिये ताकूं सिंह नहीं भोग सकै है। जय गज घटा सूरो कहिये यद्यपि ये गजनके समूहकूं जीतवेकूं शूर है। भावार्थ—पक्षनका बल होय तौ समान्य बल धारीका भी कार्य सिद्ध होय। और पक्षनका बल नहीं होय तो बड़े बलवान्का भी कार्य सिद्ध नाहीं होय है। सो ही बतावैं हैं। जैसे कोई एक पर्वतके उतंग शिखर पर एक वृक्ष है। ताके भले फल मिष्ट लागैं हैं सो ताकूं खायवे कूं कोऊ समर्थ नाहीं। ऊंचा बहुत है। सो ता फलकों काक तौ अपने पंखनके बल तैं भोग सकै। और तिस फलके भोगवेकौं सिंहकी समर्थ नाहीं। क्यों ? जो सिंहके पांखनका बल नाहीं। बड़े २ हाथिनका समूहकौं तो सिंह जीतै, ऐसा बलवान् है। परन्तु उत्तंग पर्वतके शीश पर वृक्षनके फल खायवेकौं समर्थ नाहीं। काहे तैं, कि पांख नाहीं। सो देखो, पांखनके बल तो काक भी बड़ा फल खावै। अरु पंख विना सिंहके हाथ भला—फल नहीं आवै। तातैं सर्व तैं बड़ा बल पंखनका जानना। तातैं विवेकी हैं ते पक्षबल नहीं तोड़े हैं। जैसे कोई बड़ा राजा है। ताके धन खजाना बड़ा है। आप महा बलवान् होय। बड़ा गढ़ होय। ऐसा होय। परन्तु अपनी

पक्षके योद्धानका अपमान करि तिन बड़े सामँतनका सहाय पक्ष तोड़ै तो आप राज्य भ्रष्ट होय। और योद्धानका पक्ष होय हजारों राजा जाकी पक्ष होंय। तो जीत पावै सुखी होय। तातैं विवेकी होय तिनकौं तन तैं धन तैं राज तैं विनय तैं जैसे बैने तैसे पक्ष बल राखना योग्य हैं तिनमें उत्कृष्ट पक्ष धर्मका है। ताका ही सहाय राखना योग्य है। आगे हित है सो बड़ा बल है। ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—णेह बल रघु-हरि दोऊ दहमुह जय सीय लेय लंकाए। दहसिर बन्धु विरोधय तण कुल खय राय खोय अपसाओ ॥ ७७ ॥

अर्थ—णेह बल रघु हरि दोऊ कहिए परस्पर स्नेहके बलतैं राम-लक्ष्मण दोऊ। दह मुह जय कहिए दशमुख कौं जीत कैं। सीय लेय लंकाए कहिए सीता कौं लेय लंकासे आये। दहसिर बन्धू विरोधय कहिए दशशीशने बंधुके विरोध तैं। तण कुल खय राय खोय अपसायो कहिए तन कुल अरु राज्यका क्षय करि अपयश पाया। भावार्थ—परस्पर बन्धूनके स्नेह होय सोही बड़ी सैन्य है। स्नेह ही बड़ा बल है। सो ही बड़ा खजाना है। सो ही बड़ा पुण्यका उदय है। सो ही बड़ा यश है। और परस्पर बन्धुनमें विरोधका होना सो ही बड़े पापका उदय है। सो ही अपयश है। सोही हार है। जैसे राम लक्ष्मण दोऊ भाइनने परस्पर स्नेह रूपी सैन्या तैं अपने बन्धु स्नेहके बलतैं रावण तीन खंडका स्वामी महा मानी बड़ा जोधा च्यारि हजार अक्षोहणी दलका ईश तिसकौं युद्ध विषैं जीत्या। ताकौं मार अपनी स्त्री महासती ताहि लई। पीछे इन्द्रकी विभूति समानि संपदा सौं भरी देवलोकको शोभा सहित ऐसी लंका-पुरी ताका राज्य पाय इन्द्रकी नांई लङ्कामें प्रवेश करते भये। सीता सहित लंकाका राज्य पाय सुखी भये सो यह दोऊ भाईनके परस्पर स्नेह रूपी सैन्य बलका महात्म जानना। और परस्पर बन्धु विरोध तैं रावणका क्षय भया। रावणने भोरापनें तैं भाई विभीषणसे द्वेष भाव करि देश तैं काढ्या। सो भाई विरोध तैं विभीषण रामचन्द्र पै गए। सो राम महा सज्जन, आएके रक्षक विभीषणकूं स्नेह देय राखा। विभीषणके जातैं रावण निष्पत्ती भया। युद्ध मैं मार्‍या गया। सो तन नाश भया कुल नाश भया। अरु राज्य भ्रष्ट होय अपयश पाय कुगति गए। सो ए बन्धु विरोधके अन्यायका फल है। तातैं विवेकी हैं तिनकूं जशकूं व सुख कूं बन्धून विषैं स्नेह-भाव राखनेका उपाय राखना

कुंथूवादि जीव तेन्द्रिय हैं ।इनकी काया राखै । और चौइन्द्रिय माखी मच्छर टीड़ी भ्रमर डांस इत्यादिक चौइन्द्रिय जीव इनकै तनको रक्षा करै इनकौ घातैं नाहीं । पंचेन्द्रिय हस्ती घोटक कुत्ता बिल्ली मनुष्य, देव, नारकी ए पंचेन्द्रिय हैं इन पै समता भाव राखि इनके रक्षा रूप भाव राखि दया करै । ऐसे त्रस जीव च्यारि प्रकार हैं । तिनकौं पीड़ै सतावैं नाहीं सो त्रसकाय की रक्षा है । ऐसे पृथ्वी अप तेज वायु वनस्पती त्रस ये षट्काय हैं । इनकी कायाकी रक्षा करै सतावै नाहीं मारै नाहीं । मन वचन काय करि इन षट्भेद काया हैं । तिनकी रक्षा सो ही धर्म है । सो श्रावक तो एक देश रक्षा करैं । मुनि सर्व प्रकार करैं । इन षट्कौ राखैं हैं । सोही मोक्षमारग-धर्म है । ऐसे इन षट् काया कौं राखै धर्म कह्या । सो काया राखै धर्म जानना । आगे ऐसा कहिए है, जो जहां ऐतो वस्तु नहीं होय तो तिस देश नगरकूं तजिए—

गाथा—जहि पुर णह सतकारो, णह-वंधव णह मित्त जिणगेहो । विद्या धम्म ण सुसंगो, सह पुर देसोय हेय बुध आदा ॥ ७४ ॥

अर्थ—जहि पुर णसह सतकारो कहिये, जिस पुरमें सत्कार नहीं होय । णह-बन्धव णहमित्त जिण गेहो कहिये, जहां बांधव नहीं होंय, मित्र नहीं होंय, जिन मन्दिर नहीं होंय । विद्या धम्मण सुसंगो कहिये, विद्यावान् नहीं होंय, धर्म नहीं होय, सत्संग नहीं होय । सह पुर देसोय हेय बुध आदा कहिये, सो पुर-देश बुद्धिमान आत्माके तजवे योग्य है । भावार्थ—जे विवेकी हैं ते ऐसे अशुभ देशादि होंय, तहां नहीं रहैं । सो ही कहिये है । जहां जिस पुर-स्थानमें अपना आदर-सत्कार नहीं होय, तहां विवेकी नहीं रहैं । रहैं, तो अनादर पावैं हैं । और अनादर तैं, परणति संक्लेश रूप होय है, पाप बंध होय है । तातैं रहना ही भला नाहीं । और जहां अपने भाई-बन्धु-कुटुम्बी-सहकारी सज्जन नहीं होंय, तहां नहीं रहना । और जहां जिनमन्दिर नहीं होंय, धर्म-प्रवृत्ति नहीं होय, तो ऐसे धर्म-रहित क्षेत्र विषैं, धर्मका लोभी धर्मात्मा सुजीव नहीं रहै । और जा देश-पुरमें विद्यावान्-पण्डित नहीं होंय, तिस क्षेत्रमें नहीं रहिये । अगर रहै, तो अपना ज्ञान नष्ट होय । अज्ञानी जीवनके संग तैं, आप अज्ञानी होय । जैसे गोपाल, पशूनके सदीव सङ्ग तैं, आप भी पशु समानि, अज्ञानी रहै है । और जीवका भला करनहारे शुद्ध-धर्मकी प्रवृत्ती-क्रिया जहां नाहीं होय, ता क्षेत्रमें नाहीं रहै ।

कुधर्मीनमें रहै, तौ सुधर्मका अभाव होय। तातैं धर्म-रहित क्षेत्रमें नहीं रहिये। और जहां खोटे-संगके मनुष्य सप्त व्यसनी होंय। चोर, ज्वारी, अनाचारी जीव होंय। अरु सत्संगतिके सुआचारी नहीं होंय, तहां नहीं रहिये। और ऊपर कहे कारण जहां होंय, तहां बुद्धि-बलका धारी धर्मात्मा, ऊंच-संगका वांछिक, ऐसे स्थानमें नहीं रहै। और जो रहै, तो अपने भले गुण-धर्मका अभाव होय। ऐसा जानना। आगे इन स्थानमें लज्जा करिये नाहीं, ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—हार विहारे जूझे, णित गीतेय द्यूत वादाए। भोगो वाजय पठनी, यह दह थलेय लज्ज नहिं सुद्धा ॥ ७५ ॥

अर्थ—भोजनमें, व्यवहार में, युद्ध में, नृत्य करनेमें, गीत गानेमें, जुआ खेलनेमें, वाद-विवाद (शास्त्रार्थ) करनेमें, पंचेन्द्रिय भोगनमें, वादित्र बजावनेमें, पढ़नेमें, इन दश स्थाननमें, विवेकीन कौं लज्जा करना योग्य नाहीं है। भावार्थ—जहां भोजन जीमतैं लज्जा करै, तो भूखा रहै, खेद पावै, लोक-हाँसि होय, भोरापना प्रगट होय। जैसे धर्म-परीक्षामें मूरखनकी कथा कही। तहां एक मूरख ससुरार जाय, भोजनमें लज्जा करि, रात्रिकौं कोरे चांवल खाय, मुख फड़ाया। लोक-हाँसि भई, अज्ञानता प्रकट भई। तातैं भोजनमें लज्जा करै, तो इस मूरख ज्यों खेद-हांसी पावै। तातैं यहां लज्जा नहीं करना ॥१॥ और व्यवहार विषैं लज्जा करै, तो व्योपार नहीं बनै। तातैं व्योपारमें लज्जा नहीं करनी ॥२॥ और वैरी तैं युद्ध करतैं लज्जा करै, तौ युद्ध हारै मारया जाय ॥३॥ और नृत्यमें लज्जा करै, तो नृत्य-कला यथावत् नाहीं बनै समय वृथा जाय। तातैं नृत्य-समयमें लज्जा नहीं बनै ॥४॥ ज्वारी कौं द्यूत-रमते लज्जा नहीं होय। तहां लज्जा करै, तो धन हारे। तातैं द्यूतमें लज्जा नहीं करनी ॥५॥ और वाद समय, परवादी (प्रतिवादी) सूं धर्म-कर्मका वाद करतैं लज्जा करै, तो वाद हारै। तातैं वाद-समय लज्जा नहीं करनी ॥ ६ ॥ और पंचेन्द्रियभोगन समयमें लज्जा करै, तो इन्द्रिय-सुख नाहीं होय। तातैं पंचेन्द्रिय-भोग समय लज्जा नहीं करनी ॥ ७ ॥ और वादित्रौंके बजावेमें लज्जा करैं, तौ वादित्र-कला सम्पूर्ण नहीं बनै। तातैं वादित्र-समय लज्जा नहीं करनी ॥ ८ ॥ गावनेमें लज्जा करै, तो गावना नहीं बनै। तातैं गावनेमें लज्जा नहीं करना ॥ ९ ॥ शुभ-ज्ञानके बढ़ावे कौं, परभव-सुख पायवे कौं, शास्त्राभ्यास करने-पढ़ने विषैं, लज्जा नहीं

जोग्य है। और जिन जीवन कैं रावणकी नाईं तीव्र कषाय उदय आवैं तब बन्धु विरोध होय ऐसा जानना। आगे न्याय मार्गकी महतता बताइए है और अन्यायका फल कहिए है—

गाथा—जुगभट रघु हरि न्यायो दहसिर जय सैण सहित जस पायो। दहमुख ठाण अणायो कुलवलतण णास अयस दुगताई ॥ ७८ ॥

अर्थ—रघु-हरि दोऊ ही भटोंने न्यायके प्रसाद तै दसशोशकूं सैन्या सहित जीत यश पाया। अरु दसमुख अन्याय करि कुल फौज निज तन इनका नाश करि अपयश पाय दुर्गति गए। भावार्थ—राम लक्ष्मण ए दोऊ महा सुभट सर्व राजनीतिके वेत्ता आप दोऊ भाई रावणके जीतवे कौं लंका चालने कौं उद्यम भए। तब सुग्रीवादि बंदर वंशीनके राजा सर्व आय कहते भए। हे स्वामी! वह महा योद्धा है। तीन खंडके सामंतनके जीतबेका उस एकलेमें बल है। एसा रावण महापराक्रमी चक्रका धारक तीन खण्ड नाथ ताके संग अनेक बिद्याके नाथ बड़े राजा अनेक देव जाके आज्ञाकारी और हजारों देव जाके तनकी रक्षा करैं हैं। ऐसा जो रावण ताके जीतवेकौं इन्द्र भी सामर्थवान नाहीं है। ऐसे त्रिखंडी नाथके जीतवे कौं उद्यमी भये हो सो तुह्मारा उद्यम कैसे पूर्ण होयगा? और कदाचित ये बातैं रावणने सुनी तो तुह्मारा तन सहजही संकटमें पड़ेगा सो तुम विवेकी हो विचार देखो। तुम तौ दो भाई हो अरु रावण पृथ्वीनाथ है। कैसे जीत पावोगे। तातैं विचार कैं उद्यम करना योग्य है। इत्यादिक रावणके पराक्रमकी बात सर्व विद्याधरोंने कही। तब इन विद्याधरोंके बचन सुनि कैं दोऊ भाई निशंक होय कहते भये। भो विद्याधोश हो तुमने रावणके बल पराक्रम पुण्य की महिमा हमारे आगे कही तुमकों रावण ऐसा ही भासै है। जैसे अनेक बिना सींगके भेड़नका समूह तामैं एक शृंगका धारी मीढ़ा होय है। सो सर्व भेड़नकौं बली हो दीखै है। वह अज्ञान भेड़नका समूह ऐसा नाहीं जानै है, जो यह फलानी भेड़का बच्चा है। सो जेते हम हैं तैंसा ही ये है। हमसे ही याके माता पिता हैं। परन्तु याके शृंग देखि सर्व भेड़ उस मीढ़ा तैं भय खाय डरैं हैं। सो मीढ़ा सर्व भेड़नके समूह कौं बलो भासै है। सो सर्व भेड़—बकरी उस मीढ़ाके दास होय उसकी आज्ञा मानैं हैं। और वह मीढ़ा उन सब बकरी—भेड़नका नाथ होय अनेक भेड़ अपनी आज्ञा रूप देख तिन सहित वह मीढ़ा महा मानो भया स्व-

च्छंद होय वन विषैं वांका २ फिरै है। सो जब तांई नाहरका शब्द वनमें नहीं भया तब तांई वह मीढ़ा फूल्या फूल्या वनमें फिरै है। और जब सिंहकी गर्जनाका शब्द भया तब ताकूं सुनि कैं मीढ़ादि सर्व भेड़ वकरी भय कर कंपायमान होय खान-पान की सुधि भूलि जांय हैं। जीवनका संदेह करैं। ऐसे ही तुम जानों। जब तांई रामवलीके धनुषकी टंकार नहीं भई तब तांई रावण रूपी मीढ़ा नभचर रूपी भेड़नमें मानी भया है। जब हमारा सिंह समानि शब्द भया तब रावण मीढ़ा कूं सैन्या रूपी भेड़न सहित जीवना कठिन जानो। अहो। खगाधीश हो चोरका पराक्रम कहा? रावण चोर है।अन्याय पथका धारी है। जो राजा होय अन्याय करे। तो ताका पराक्रम नष्ट होय। तुम मति डरो तुम्हारा चित्त भयरूप भया होय। तो तुम जाय अपने घर कुटुम्बमें तिष्ठौ। हम तो न्याय पे युद्ध करैं है। सो सांचे होंयगे तो दोऊ भाई जीतेंगे। ऐसी कहि रावण तैं युद्ध कीया। सो अपनी न्याय रूपी सैन्याके वल करि दोऊ भाई रावण कूं मारि सर्व सैन्या सहित जीत्या। ताकरि पृथ्वी मण्डलमें यश प्रगट होय पवनकी नांई भ्रमता भया। सो यौ तो सत्य मार्गकी महिमा जानौ। और रावण अर्द्ध चक्रवर्ती महा वलवान् वड़ी सैन्याका धारी था। सो भी अन्यायके जोगतैं युद्ध हारा। अन्यायके योग तैं, दोय पुरुषन तैं भंग पाय मार्‌या पर्‌या। सो ए अन्यायका फल है सो न्यायका फल रामचन्द्र कूं अरु अन्यायका फलरावणकूं मिल्या। ऐसा जानि अन्याय मार्ग तजि न्याय मार्ग रूप परणमन करना योग्य है ॥ ७८ ॥ आगे अनेक संकटन विषैं पूर्व पुण्य जीवकूं सहाय है। ऐसा कहैं हैं—

गाथा—रण वण अरि जल ज्वाला। सायर सखरेय सैण पम्मत्ते, मग गज हय असवारो; एको संणाय पुव्व पुण्णाए ॥ ७९ ॥

अर्थ—रण कहिये, युद्धमें वण कहिए वनमें। अरि कहिये वैरी तैं। जल कहिए नीर तैं। ज्वाला कहिए अगनि तैं। सायर कहिये समुद्र तैं सखरेय कहिये पर्वत तैं। सैण कहिये सोवनेमें। पम्मत्ते कहिये प्रमाद समय। मग कहिये मार्ग जाते। गज हय असवारो कहिये हाथी घोड़ाकी असवारी समय। एको संणाय पुव्व पुण्णाए कहिये इन कहे ऊपरले स्थानकनमें एक पूरव भवका कीया पुण्यही सहाय जानना। भावार्थ— जब प्राणी युद्धकों जाय है। तव शरीर पे रचाकूं वखतर टोप पाखर झिलमिल (वस्त्र विशेष) पेटी ढ़ाल अनेक

वस्तु अपने तनकी रक्षा कूं राखै है। और ऐसा बिचारता जाय है। जो पराये तीर गोली आवेगी तौ बखतर टोपादिक तैं रक्षा होयगी। और मेरे पास सुभट सैन्या बहुत है सो मैं जीतूंगा। ऐसा विचार करै है सो सब बृथा है। रणतैं जीवित आवना जीति आवना सो सर्व फल एक पूर्वले पुण्यका है। पूरव पुण्य नाहीं होय तो मरण ही होय है ऐसा जानना। और कोई दीरघ अटवी (बन) में भूलकर आ गया होय तो तहां अनेक सिंह सुअरादि दुष्ट जीवनतैं बचना। तथा चोरादिके भय तैं वचि सुख तैं घर आवना। सो भी पूरव-पुण्यका ही सहाय जानना और कोई दीरघ बैरीके दावमें आजाय, तहां भी पूरव-पुण्य सहाय है। कोई नदी सरोवरके दीरघ जलमें जाय पड़ै तो वहां भी पूर्व पुण्य सहाय जानना। दीर्घ अग्नि बीचमें पड़ जाय, तहां भी पूरव पुण्य सहाय है। कदाचित् समुद्रमें जाते तामें जाय पड़ै। तो वहां भी पूरव पुण्य सहाय है। और अनेक भयके स्थान ऐसे भारी पर्वतनके समूहमें जाय पड़ै। तहां पुण्य ही सहायक होय है। सो कैसे हैं पर्वत उत्तङ्ग शिखरकों धरैं बड़ी २ गुफान करि पोले अत्यन्त भयके उपजावनहारे सिंहादि क्रूर-जीवन करि भरे, ऐसे पर्वतनमें बचावनहारा एक पुण्यही है। जब जीव, निद्राके उदयतें निद्राके वशि होय, तब मृत्युकी नांई आशंका उपजै है। बेसुध होय पराक्रम रहित होय है। ऐसी अवस्थामें बैरी चोर अग्नि सर्पादिक जीवनतैं वचावनहारा पुण्य ही है। प्रमाद दशामें अनेक कार्य करै है सो अनेक स्थाननमें प्रमाद तैं चलै है। प्रमाद तैं बोलतैं प्रमाद तैं खावतैं प्रमाद तैं भागतैं, इत्यादिक प्रमाद दशानमें पुण्य सहाय करै है। अनेक संकटनमें, अनेक रोगके संकटनमें, बैरीके संकटमैं, सिंहादिक जीवनके संकटमें, अग्नि-जलादि अनेक संकटनमें पुण्य सहाय करै है। जब जीव, हस्तीकी असवारी करि भ्रमै है तब, तथा घोटक-असवारी करि भ्रमैं तब, इनकी असवारीका निमित्त, काल समान भयदाई है। सो इन गज-घोटककी असवारीमें, पुण्य ही सहाय है। ऐसे ऊपर कहे जे सर्व स्थान, तिन में कालका प्रवेश है। ये सब स्थान, दुखके कारण हैं। सो इनमें निर्विघ्न राखनहारा, पुण्य ही जानना। तातैं -वेकी जीव हैं, तिनकौं भव-भव सुखके निमित्त, पुण्य-उपाजन करना योग्य है। हे भव्यात्मा, तूं महा संकट , धन भी उपाया चाहै है। सो संकट-खेद किये तौ धनका उपाजंना दुर्लभ है। तूं संकट सेवन करके,

धर्मका सेवन करै । तो धमके प्रसाद तैं, धन होना सुगम है । देखि, कष्ट तैं धन होय, तौ नीच-कुली हिम्मालादि, शीश-भारादिक ढोवन कार्य वहुत करैं हें । सो तिनका उदर भी कठिनता तैं भरे है । तातें तूं धनका अर्थी है, तौ तुझे धर्मका ही सेवन करना योग्य है ॥ ७९ ॥ आगे ऐती वस्तु काहूके कार्यकारी नहीं, ऐसा वतावैं हैं—

गाथा—सर-जल-गत तरु-छाया, सुत-गुण-गत धण-दाण पुस्स गंधाऊ । कण्णा तव गत साधउ, इव धम्म-गत-णर णेण-गय काया ॥ ८० ॥

अर्थ—सर जल गत कहिये, सरोवर तो नीर रहित । तरु छाया गत कहिये, वृक्ष छाया रहित । सुत गुण गत कहिये, पुत्र गुण रहित । धन दाण-गत कहिये, धन दान रहित । पुस्स गंधाऊ कहिये, फूल सुवास रहित । कंणा तव गत साधऊ कहिये, दयाभाव रहित साधु । इव धम्म गत णर कहिये, ऐसा ही धर्म-रहित मनुष्य । णेण गय काया कहिये, जैसे नेत्र रहित शरीर । भावार्थ-सरोवरकी शोभा जल है । सरोवरका विस्तार तौ वड़ा होय । पक्की-सुन्दर पारि होय । ऐसे सरोवरमें जल नहीं होय । तो जल रहित सरोवर वृथा है । और वृक्षकी शोभा, छाया तैं है । वृक्ष वड़ा होय । दूर तैं दीखे, ऐसा है । अरु छाया रहित है । तो वृथा है । पुत्रकी शोभा सुपूत है । सुपूत-पुत्र सव कूं सुखकारी है । और पुत्र तौ है । परन्तु अनेक दोष सहित होय, अविनयी होय, व्यसनी होय, ऐसे अपयशकारी, अवगुण करि सहित होय, गुण-रहित पुत्र होय, तौ वह पुत्र वृथा है । धन है, सो दान तैं सफल होय है । धन तौ वहुत है किन्तु दान रहित हे, तौ धन वृथा हे । और फूल हे सो सुगन्ध तैं भला लागै है । फूल दीखनेका तो भला हे, परन्तु सुगंध रहित हे । तौ वह फूल वृथा है । साधु है सो दयाभाव सहित, महा तपस्वी होय, सो पूज्य है । और साधू हे अरु दयाभाव रहित है । तप भावना रहित, दीन होय । तौ ऐसा साधू वृथा है । शरीर है, सो नेत्रन तैं सफल है । जो शरीर तौ है, किन्तु नेत्र रहित है । सो काया वृथा है । तैसे ही मनुष्य पर्याय, धर्म तैं सफल है । और जैसे ऊपर कहे-सर, जल विना वृथा है । तरु, छाया रहित वृथा है । इत्यादिक कहे ए वृथा-स्थान तैसे ही धर्मविना, मनुष्य-पर्याय वृथा जानना ।

तातें विवेकी हैं, तिनकौं पाई पर्याय कौं, धर्म विषैं लगाय, सफल करना योग्य है ॥ आगे ये वस्तु पर-उपकार कौं बनी हैं, सो बताईये है—

गाथा—सरता-पय पुख-गंधउ, तरु-साया-फल ईख-मधुराई। सज्जण तणधन वाचउ, इ पर-उवकार कारणं सव्वे ॥ ८१ ॥

अर्थ—सरता पय कहिये, नदीका नीर। पुख-गंधउ कहिये, फूलकी सुवास। तरु साया फल कहिये, वृक्षकी छाया व फल। ईख मधुराई कहिये, ईख जो सांठेका मिष्टपना। सज्जण तण धण वाचऊ कहिये, सज्जनका तन-शरीर धन, वचन। इ पर-उपकार कारणं सव्वे कहिये, ये कही जो वस्तु सो सब पर-उपकारके निमित्त बनी हैं। भावार्थ-नदीका जल, नदी नहीं पीवे। परोपकार निमित्त, अन्य जीवनके पोषवे कौं, सुखी करवे कौं, जलका प्रवाह सहज ही बह्या कर है। फूलकी खुशबू, फूल नहीं सूंघै है। परन्तु और जीवनके सुखी करवे कूं, फूल खुसबू कौं धारैं हैं। और वृक्षनकी सघन-शीतल छायामें, वृक्ष नहीं बैठैं हैं। जीवनके खुसी करवेके अर्थ, परोपकार कूं, सघन-छाया कूं वृक्ष धारैं हैं। और वृक्षके मनोहर-मिष्ट फल, वृक्ष नहीं खांय हैं। परन्तु परके उपकारके निमित्त, अन्य जीवन कौं पोषवे कूं, सुखी करवे कूं, वृक्ष फल धारण करैं हैं। ये औरनके पत्थर भी खाय, मिष्ट-फल देंय, ऐसे उपकारी हैं। सांठे हैं सो आपनो मिष्ट रस, आप नहीं भोगैं हैं। परन्तु परके उपकार कूं, परके पोखवे कूं, सुखी करवे कूं, रसका धारण करैं हैं। ऊपर कही वस्तून के गुण, सो सब पर-उपकारके कारण हैं। तैसे ही सज्जन-धर्मात्मा-दयावान् पुरुष हैं, तिनका शरीर-पुरुषारथ, पर जीवनकी रक्षाकौं पर उपकारके निमित्त बन्या है। और जीवन कूं सज्जन नाहीं सतावैं हैं। और सज्जन पुरुषनका बचन भी पर-उपकारके निमित्त है। जैसे परजीवका भला होय पर-जीव सुखी होंय ऐसा बचन बोलैं हैं। और सज्जनका धन पाप-हिंसामें नहीं लागै। जहां अनेक जीवनकूं पुण्य उपजै धर्मात्मा जीवनकूं अनु-मोदना करि पुण्य उपजावै तथा अनेक जीवनकी जहां रक्षा होय इत्यादिक धर्म स्थानकनमें सज्जनका धन लागै। ऐसे ऊपर कहे जे-जे स्थान सो सर्व पर उपकार कौं बने हैं, ऐसा जानना ॥ ८१ ॥ आगे इन षट् स्था-ननमें लज्जा नहीं करनी, ऐसा कहिये है—

गाथा—जिण पूजा मुणि दांणउ पत्ताखाणाय झांण आलोय । गुरुय णिज अघ जंपय इह षड थाणेय लज्ज नहिं वुद्धा ॥ ८२ ॥

अर्थ—जिण पूजा मुणि दांणाउ कहिये जिणपूजा अरु मुनि दानमें । पत्ताखाणाय झाण आलोये कहिये त्याग मैं ध्यान मैं आलोचनामें । गुरुय णिज अघ जंपय कहिये गुरुके समीप अपने दोष कहनेमें । इह षड् थाणेय लज्ज नहिं वुद्धा कहिये इन षट् स्थानकनमें लज्जा नहीं करनो । भावार्थ—जिन पूजामें लज्जा करै तो पूजाका फल नाहीं पावै । तातैं अन्तर्यामी सर्वज्ञ वीतराग भगवानकी पूजा निशंक होय अष्टद्रव्य तैं करनी । ज्यों उत्तम फल होय ॥ १ ॥ और यतीश्वरके दान देने विषैं लज्जा करै तो दानके फलका अभाव होय तातैं जगत गुरु, दयाभण्डार नगन तन धारी वीतरागी, समता समुद्रके वासी गुरुनकूं दान दीजिये; तब निशंक होय दीजिये । तब उत्कृष्ट पुण्य फल होय । ऐसे मुनीश्वर कौं कोई मिथ्यादृष्टी भक्ति भाव तै दान देय तो ये उत्कृष्ट भोग भूमिमें तीन पल्यकी आयु सहित तीन कोसके तन सहित उत्तम मनुष्य होय । और जो सम्यग्दृष्टी ऐसे गुरुकों दान देय तौ कल्पवासी-देव होय। तातें मुनिके दानमें लज्जा नहीं करनी ॥ २ ॥ और प्रत्याख्यान जो कोई वस्तुका त्याग करना तथा कोई नियम-आखड़ी करनी होय तौ निशंक होय करिये । सर्वमें प्रगट कर दीजे यामैं लज्जा नहीं करिये । लज्जा करै तो त्यागका अभाव होय । तथा कारण पाय नियम भंग होय । तातैं निशंक होय त्याग प्रगट करनेमें लज्जा नाहीं करिये ॥ ३ ॥ और लज्जा सहित ध्यान करै, तौ चित्त स्थिरीभूत नहीं रहै । फल हीन होय तातैं निशंक होय ध्यान करै तौ उत्कृष्ट फल होय । यातैं ध्यानमें लज्जा नहीं करिये ॥ ४ ॥ और अपने किये पापन कौं यादि करि; आलोचना करतैं लज्जा नहीं करिये । कदाचित् ऐसा विचारै, जौ मैं ऐसा बड़ा आदमी होय अपनी निन्दा कैसे करौं ? तौ पाप कटै नाहीं । तातैं निशंक होय अपनो अज्ञानता प्रमाद बुद्धिकी बारंबार आलोचना किये पापका नाश होय । ऐसा जानि आलोचना करते लज्जा नहीं करनी ॥ ५ ॥ और गुरुको पासि जाय अपने दोष प्रकाषिये—कहिये, तो दोष जाय । और गुरु पै अपने दोष प्रकाश तैं लज्जा करै तो दोष नाहीं जाय । जैसे सद्वैद्यके पास रोगी अपना रोग प्रकाशतै लज्जा करै भय करै तो रोग नहीं जाय आप दुखी रहै । वैद्य पै रोग प्रगट करै, तो वैद्य औषध देय सुखी

करै। तातैं निशंक होय गुरु पै अपना दोष कहिए, लज्जा नहीं करिए, तौ दोष जाय ॥ ६ ॥ ऐसे कहे ऊपर षट् स्थान, तिनमें लज्जा नाहीं करिए। ऐसा जानना ॥ आगे साहस तैं सर्व संकट मिटै है, ऐसा कहैं हैं—

गाथा—रोगे रण संणासे संकट मरणे य झांण तव धम्मे। दालद्दयेजल गहणं साहसे सफलं होय सहु धारा ॥ ८३ ॥

अर्थ—रोगमें रणमें सन्यास समयमें अनेक संकटनमें मरणसमय ध्यान समय तपमें धर्मसेवनमें दारिद्रमें दीरघ जलके तिरवेमें इन सर्व जगहमें साहस तैं सब कार्य सफल हो हैं। भावार्थ—पाप कर्मके उदय करि आए नाना प्रकार वात पित्त ज्वर कफ खांसी स्वासादिक अनेक रोग तिनकरि बधी जो वेदना सो काहू तैं मिटती नाहीं। रोये-चिन्ता किए, भरम खोवना है। सुखदाता नाहीं। तातैं विवेकी हैं ते ऐसा विचारैं जो मैंने पूर्व पाप कर्मउपार्ज्या है, सो अब विलाप किए कहा होय? कैसे जाय है? तातैं राजी होय मोकौं भोगना है। ऐसासाहस विचारै तब सर्व रोग सहजही जाय। वेदना मन्द होय जाय है। तातैं रोग-दुखमें साहस चाहिये। और युद्ध विषैं अरि कौं प्रवल जानि संग्राम विषम देखि, करि कायर भाव करै। कंपायमान होय, धीरजता तजि भागै। तौ लज्जा आवै। युद्ध हारि जाय। कुलकूं दाग लागै। तातैं रणमें साहस चहिये जा-करि जय होय। और काहू धर्मात्माने अपना आयु-कर्म निकट जानि कैं इस धरमी जीव नैं परभव सुधारवे कौं अनशनका धारण किया होय। खान-पान तजि कुटुम्ब व शरीर तैं मोह तजि आप तुच्छ परिग्रह कूं राखि धर्मध्यान रूप तिष्ट्या है। किन्तु काय तैं आतमा छूटतैं ढील होय है। सो ज्यों-ज्यों दिन घड़ी निकसैं हैं, त्यों २ यह सन्यास धारनहारा ऐसा विचारै। जो अब आतमा तन तैं शीघ्र छूटै तौ भला है। अब मेरा साहस रहता नाहीं। इत्यादिक अस्थिरता भाव विचारै तौ व्रत तै डिगना परै। तातैं व्रतकी रक्षाके निमित्त ऐसा विचारै, कि मैंने इस कायका ममत्व त्यागा। धर्मध्यान मई निराकुल होय तिष्ठू हूं। अब यह तन जब जाय तब जावो मेरे कछु खेद नाहीं। ऐसा साहस सन्यासमें भले फलका दाता है। तातैं सन्यासमें साहस चाहिये। और मरण समय महा-वेदनामें मोहके वशि करि आकुलता करै। तो मरण तौ टलता नाहीं परन्तु कायरता तैं मरण बिगड़ जाय, कुगति होय तातैं मरण-समय धीरजता सहित मोह रहित परणाम करि मरण करै।

तो परभव सुधरै तातैं मरण समय साहस चाहिये। और कर्मके उदय तैं जीव पै अनेक प्रकार संकट आय पड़ैं हैं। तिनमें धीरजता होय तो बड़ा संकट सुगम भासे। धीरजता विना दुखमें बड़ा खेद होय। तातैं दुख संकटमें साहस चाहिये। और ध्यान करते चित्तकी एकाग्रता सहित धर्म ध्यानका विचार करता पुण्यका संचय करै है। ता समय कोई पापी जन आय धर्मध्यान तैं डिगाया चाहै। ताके निमित्त अनेक कुचेष्टा करे। सो वाके उपसर्ग तैं चंचल भाव होय तो धर्मका फल हीन होय। धीरजता राखे तो पूजा पावे। जैसे वह सेठ चौदशकी रात्रि स्मशान-भूमिमें प्रोषध सहित ध्यान धरि तिष्ठै था। पीछे दोय देव, धर्मकी परीक्षाकौं आये तब सम्यग्दृष्टी देवने कही ये सेठ गृहस्थ है। हमारा धर्मी है सो आज चौदशकूं उपासा ध्यान रूप है। ताहि डिगावौ तौ जाने। तब इस ज्योतिषी मिथ्यादृष्टी देवने सर्व रात्रि अनेक उपसर्ग किये सो नाहीं डिग्या तब धीरजता देखि देवने सेठकी पूजा करी। तातैं ध्यानमें साहस चाहिये। अनेक तप करते कबहूं तन तैं मोह उपज आवै। विषय कषायकी इच्छा होय आवे। तब तप तैं दीरघ खेद जानि विमुख चित्त करे। तौ तपका फल नष्ट होय। तातैं तप मैं खेद होय तैं तपका लोभी साहस राखे तौ तपका उत्कृष्ट फल होय। और अपने सुधर्मका घात करनहारे अनेक पापी जन आपकौं धर्म तैं चलाया चाहैं। तो पापी जनके उपद्रव किये में अपना धर्म रतन राखवे कूं साहस राखना योग्य है। पुण्यके उदयमें तौ सब कोई धर्ममें धीरज राखैं हैं। परन्तु जब पापका उदय प्रकट होय है। तब दरिद्रतामें धीरज परणाम राखना, ये महा विवेकीका बल है। तातैं दरिद्रतामें धीरज साहस योग्य है। और जब कोई कर्मके जोग तैं कोई दीरघ जलमें जाय पड़ना होय अरु कोई उपाय नाहीं दीखै। तब एक साहसही सहाय जानना। ऐसे कहे जे ऊपर अनेक अशुभ कारण हैं, तिनमें साहसही जोग्य है ऐसा जानना ॥ ८३ ॥ आगे ये तीन स्थान विवेकी जीवके हाँसिके कारण हैं ऐसा दिखावैं हैं—

गाथा—अगय पठत आयाणो, विविधा सिंगार काय विधवायो। जग निन्दो खुलचित्तो, ए तीए थाणेय हाँसि मग गेयो ॥ ८४ ॥

अर्थ—अगय पठत आयणो कहिये, अजान होय कैं आगे बोलै। विविधा सिंगार काय विधवायो कहिये,

विधवा-स्त्री नाना-शृंगार शरीर पै करै। जग निन्दो खुसचित्तो कहिये, जगत निन्द होय कैं, सदा खुशी रहै। ए तीए थाणेय हाँसि मग गेयो कहिये, ये तीनों स्थान हाँसिके कारण जानना। भावार्थ—आपकौं जो पाठ आवता नाहीं, सो और कोई पढ़ता होय, ताके आगे २ आप बोलै—पढ़ै, सौ भोरा—अज्ञानी जीव, विवेकीन करि निन्दा पावै। सो जीव, हाँसिका स्थान है। यहां प्रश्न-जो अज्ञान-जीवनका भोरापना देखि, विवेकी जीव कौं बतादेना योग्य है। परन्तु हाँसिका करना, जोग नाहीं। ताकासमाधान-जो अज्ञानी दोय प्रकारके हैं। एक तौ भोरा, अजान; सरल-परणामी अज्ञान। सो आप कौं ऐसा मानैं; जो मैं कछु समझता नाहीं। मोकौं कोई धरमका मारग बताय, मेरा परभव सुधारै, तौ वा पुरुषका उपकार भव-भव नहीं भूलूं। ऐसा धर्मार्थी होय, सो तो भली सीख मानैं। रुचि तैं अंगीकार करै। ऐसे भोरे-अज्ञानी जीवकी हाँसि तौ विवेकी नाहीं करैं। ऐसे कूं तौ भूले पै बताय, ताकौं सुमारग लगाय, ताका भला करैं। और एक अज्ञानी-हठी-मानी होय है। सो आप कूं पण्डित मानता-संता; अपना महन्तपना औरन कौं बतावता-संता, ऐसा अज्ञानी मान-बुद्धि तैं काहू कूं पूछता नाहीं। आपकौं आवता नाहीं। पठन करै, तब औरनके आगे २ बोले। सो ऐसा मानी-अज्ञानी आप अपने कौं पण्डित मानैं। ते जीव हाँसि कूं प्राप्त होय हैं। और जिस स्त्रीका पति मर गया होय। ऐसी विधवा स्त्री; शरीरमें नाना-प्रकार शृङ्गार करै। ताम्बूल खावना; दर्पणमें मुखकी शोभा देखनी, शरीर कौं वस्त्र पहराय निरखना; अञ्जन-सुरमा नेत्रमें अंजन करना; ऐसी स्त्री निन्दा पावै। स्त्रीकी शोभा; पतिके पीछे थी। सो पति मुए पीछे, शृङ्गार करि अपने तनकी शोभा और कूं दिखाया चाहै। सो कुशील दोष-मण्डित-स्त्री. विवेकीनके हाँसिका मारग है। और जे जीव जगत-करि निन्द्य होंय। सर्व जगत-जन कौं अप्रिय होंय। जग निन्द्य क्रिया- आचारके धारी होंय। जहां जांय, तहां अनादर पावैं। ऐसा जीव, अपयशकी मूर्ति जाकौं लोकनिन्दाका भय नाहीं, महा निर्लज्ज होय सदैव हरषतैं फिरै, सुखी रहै। ऐसा पाप—निशान मूरख जगमें हाँसिका मारग है। ऊपर कहे ये तीन जातिके जीव, सो हाँसिके मारग जानना। तातैं विवेकी जन हैं तिन कूं जगत-निन्द्य कार्य तजना योग्य है। तातैं जे अल्प पढ्या होय, ताकौं तो विशेष-ज्ञानीके पीछे पढ़ना

योग्य है और विधवा स्त्रीको शृंगार करना योग्य नाहीं। जगत-निन्द्य जीवकौं देश-नगर तजि देना तथा लज्जा सहित रहना, ये बात सुखकारी है सो ही करना भला है ॥ ८४ ॥ आगे ऐसा कहैं हैं जो अनादर तो किनका गुण है, और किनका आदर भी दुख है, सो बताईये है—

गाथा—वर सतसंग अपमाणो, हेयो कुसंग जंतु सतकारो। जिम जुर जुत पय हेयो, लंघण, पादेय कटुक भेषजये ॥ ८५ ॥

अर्थ—वर सतसंग अपमाणो कहिये, सत्संगमें अपमान होय तो गुणकारी है। हेयो कुसंग जंतु सत्कारो कहिये; कुसंगी जीवनमें गये अपना सत्कार भी होय तो भी तजवे योग्य है। जिम जुर जुत पय हेयो कहिये, जैसे ज्वर वारे कूं दुग्ध तजना योग्य है। लंघण पादेय कटुक भेषजये कहिये, तथा लंघण अरु कटुक औषधि उपादेय है। भावार्थ—सत्संगमें सप्त व्यसनके धारी जीव अपमान पावैं हैं। काहे तैं, सो कहिये हैं। जो सत्संग है सो जगत—गुण करि भरया है। यहां जगत-निन्द्य औगुण, तिनके धारी औगुणी जीव, तिनका सत्संगमें प्रवेश पावता नाहीं। सत्संगमें औगुणी-जीव अनादर पावै। और कोई सत्संगमें आदर चाहै; तौ कुसंग के दोष तजौ। गुण कौं धारौ, ज्यों सत्संगमें आदर पावो। और जे औगुणी हैं तिनका आदर, सत्संगमें होता नाहीं। ये सत्संग धन्य है जो औगुणका प्रवेश नहीं होने देय है। हे भव्य हो, यो सत्संग जो अनादर करै, सो परके दोष मिटायवे कूं करै है। तातैं सत्संगका अनादर ही भला। सत्संगीन कैं काहू तैं द्वेष नाहीं। जो कुसंगी जीव अपना औगुण छांड़ि देय, तौ वाहीका आदर करैं। तातैं हे सुबुद्धि! जो तू अपना भला किया चाहे, तो सत्संगमें रह। सत्संगका अपमान तेरे दोष छुड़ावे कूं है। तातैं सत्संगी तेरा अपमान करैं हैं। सो तेरे उत्कृष्ट सुखका कारण है। सत्संगके अपमान तैं कदाचित मानके योग तैं बुरा मान्या तौ तेरा परभव विगड़ जायगा। तेरा औगुण नहीं जायगा। तातैं तूं अपना विवेक प्रगट करि जस चाहै है। तौ सत्संगके पुरुष जो तेरा अपमान करैं हैं सो परमार्थके अर्थ जानना। हे भव्यात्मा जबलौं तोकूं कुसंगका आदर प्रिय लागै है। तबलौं तेरा दोष मिटता नाहीं अरु सत्संगका अपमान भला लागता नाहीं। तातैं तोकूं कुसंगका सत्कार स्नेह-भाव तजना योग्य है। जैसे जुर सहित रोगी कूं दुग्ध अच्छा भी लागै है। परन्तु ज्वरके जोगतैं तजना योग्य है। और कटुक-कड़वी औषधि तथा लंघन उपादेय गुणकारी है।

तैसेही सत्संगके पुरुष तो मैं औगुण जानि तोसूं स्नेह नहीं करै हैं। वर्तमान कालमें तोकूं मान बुद्धिके जोग तैं बुरा भी लागै। परन्तु तूं विवेकी है। सो कड़वी औषधिकी नाईं तथा लंघनकी नाईं सुखकारी जानना। और सुनि हे भव्य कुसंगका सत्कार ज्वरके मांहि दुग्ध समानि है। सो किञ्चित सुखदेय पीछे दीरघ दुख कूं करै है। तैसेही कुसंगके अज्ञानी व्यसनी अपराधी जीव तेरा सत्कार करैं हैं। ताका सुख किंचित कौतुक परणतिकी खुसी प्रमाण है। पीछे तिनका फल विषम दुखकारी है। जहां कोई सहायो नाहीं ऐसे नरकके दुख ताहि भोगनैं पड़ैं हैं। ऐसा कुसंगका फल पीछे परभवमें लागै है। तातैं जैसे स्याना रोगी दूध तजै तैसे कुसंग तजना योग्य है ॥ ८५ ॥ आगे षट् भेद म्लेच्छताके बतावै हैं—

गाथा—मण तण घर पुर देसा खंडादि खंडमलेच्छ भेयाए। नहिं सुआचरण धम्मो सो अणाजथल भासियो सुत्त ॥ ८६ ॥

अर्थ—मण कहिये, मन। तण कहिये शरीर। घर कहिये मन्दिर। पुर कहिये नगर। देसा कहिये देश खंडादि खंड मलेच्छ भेयाए कहिये खंडको आदि लेय म्लेच्छताईके षट् भेद जानना। नहिं सु आचरण धम्मो कहिए, तहां पर शुभ आचरण नाहीं शुभ धर्म्म नाहीं सो अणाज्जथल भासियो सुत्त कहिए सो अनार्य क्षेत्र सूत्र विषैं कह्या है। भावार्थ—भो भव्य मलेच्छपनेके षट् भेद हैं। सो ही कहिए हैं। सो जहां शुभ आचार नाहीं सुधर्मकी प्रवृत्ति जहाँ न होय। तिस स्थान कौं म्लेच्छ कहिए। सो ता स्थानके षट् भेद हैं। मन म्लेच्छ तन म्लेच्छ घर म्लेच्छ पुर म्लेच्छ देश म्लेच्छ और खंड म्लेच्छ। ए छह भेद हैं। सो ही अर्थ सहित बताइए है, जहां जाके मनमें शुभ आचार नहीं होय। सुधर्मकी जाके मनमें प्रवृत्ति नहीं होय। सो मन म्लेच्छ समानि है याकूं मन म्लेच्छ कहिए। और जा शरीर तैं सुआचार अरु धर्म सेवन नहीं बनैं। सो तन म्लेच्छ समानि है। याका नाम तन म्लेच्छ है। और जाके घरमें सुआचार सहित धर्म नाहीं। सो घर म्लेच्छ समानि है। याका नाम, घर मलेच्छ है और जा पुर विषैं सुआचार अरु धर्म प्रवृत्ति नहीं होय। सो वह पुर, म्लेच्छके पुर समानि है। याका नाम पुर म्लेच्छ है। और जा देशमें शुभ आचार सहित धर्म-प्रवृत्ति नहीं। सो देश म्लेच्छनके देश समान है। याका नाम देश म्लेच्छ है। और जा खंडमें शुभाचार सहित धर्म नहीं। सो खंड-म्लेच्छ है। ऐसे

म्लेच्छ पनेके षट् भेद कहे। सो इनमें जहां जहां धर्म प्रवृत्ति नाहीं सो म्लेच्छ जानना। इनकों सुधर्मका उपदेश शुभ लागता नाहीं। धर्ममें रुचि होती नाहीं। ए कुआचारी, अभक्ष—भक्षणहारे हैं। सो कुगति-गामी जानना ॥

आगे मूढ़ताके सात भेद बतावैं हैं—

गाथा—जाय लोय धम्म मूढ़य मूढ़ो मण काय वयण विवहारो। जथारीय विपरीयो मिच्छाइट्टोय होय सय जीवो ॥ ८७ ॥

अर्थ—जाय कहिए जाति मूढ़। लोय कहिए लोक मूढ़। धम्म मूढ़य कहिए धर्म मूढ़। मूढ़ो मण कहिए मन मूढ़। काय कहिए तन मूढ़। वयण कहिए वचन मूढ़। विवहारो कहिए व्यवहार मूढ़। जथारोय विपरीयो कहिए इन आदि यथायोग्य विपरीत क्रियाके धारी। मिच्छाइट्टीय होय सय जीवो कहिये ए सब जीव मिथ्यादृष्टी जानना। भावार्थ—मूढ़ता नाम मूरखताका है। जो भली बुरीके भेदको नहीं जाने। योग्य अयोग्य खाद्य-अखाद्यके भेद रहित हठग्राही होय ताकों मूढ़ कहिए। तहां कोई पाप क्रिया परभव दुखकरणहारी कोई जीव करै था। ताकौं देख काहू धर्मात्माने दया—भाव करि मनै किया। कही हे भव्य, ए कार्य परभव दुख देने-हारा है। तूं मति कर दुखी होयगा। ऐसी कही। ताकौं सुनि वह मूढ़ अज्ञानी कहता भया। हे भाई ए क्रिया तो हमारी जातिमें करनी कही है। निंद्य नाहीं। जो बुरी होती तौ हमारे बड़े जातिमें काहे, कौं करते ? तातैं जो अपने बड़े आगे सूं करते आये जातिमें सब करैं ताकौं कैसे तजैं ? ऐसा हठी महा ढीठ कठोर परणामी पाप क्रियाको नहीं छोडै। सो जाति मूढ़ कहिए ॥ १ ॥ लोक मूढ़ ताकौं कहिए जो लौकिक अनेक खोटी पद्धति अज्ञानता रूप पाप रूप क्रोध-मान-माया लोभ रूप चोरी जुवा परस्त्री गमनादिक अनेक पाप रूप क्रिया कोई अज्ञानी जीव करै है। सो ऐसी अयोग्य क्रिया करता देखि कोऊ धर्मात्माने प्रार्थना करि मनै किया जो हे भाई ए कूकारज महा दुख दायक लोकनिंद्य मति करै। तोकूं दोऊ भव दुःख करेंगे। ऐसे हित-बचन कहे। तब वह अज्ञान दरिद्री मूर्ख बोलता भया। हे भाई हम ही इस कारजकौं नहीं करें। ऐसी क्रियाके करता तौ लोकमें बहुत हैं। तुम किस-किसकूं मनै करोगे ? संसारमें सर्व लोग करैं हैं। इस भांति जो अ-

ज्ञान लोकनकी देखा-देखी खोटा कार्य करै आप ज्ञान अंध कछू विचारे नाहीं, हठग्राही पोप क्रिया करै है। सो लोक मूढ़ कहिए ॥२॥ और धर्म मूढ़ ताकूं कहिए है। जो तहां आगे कोई कुल विषैं तथा लोक विषैंअज्ञानता करि तथा बिना विचारे तथा विना परखै खोटा धर्म हिंसा सहित सेवते आए। ता विषैं प्रत्यक्ष जीव हिंसा है। ऐसे मार्गके उपदेशदातकौं महा क्रोध मान माया लोभकी तीव्रता है। पंचेन्द्रिय भोगनके पोखनहारे तप संयम रहित देव होंय तिनकूं मानैं। ते जीव भोरे धर्म-मूढ़ता लेय हैं। कैसा है वह देव जाकी छवि देखै महा-भय उपजै। ऐसी विकराल मुद्राका धारी होय। निरदई मांसाहारी होय। ऐसे देव कूं प्रभु मान पूजैं देव मानैं हैं, बड़े क्रोधका धारी अनेक शस्त्रनके धारनहारे बहु परिग्रही भयानक आकार धारैं, क्रूर वचनके धारी जाका विनय नहीं करैं तो मारै महा-मानी, और भोरे जीवनसूं अपनी सेवा करावनहारा और नय-जुगति देय पराया धन खावनहारा मायावी लोभी अभक्ष्य भोजनके करता तिनकौं गुरु मानै। हिंसा किए धर्मका उत्तम फल होय भोग-भोगवे तैं पुण्य होय ऐसा कथन जहां पाइये ऐसे शास्त्र तैं धर्म मानैं। ऐसे कुदेव कुधर्म कुगुरुके सेवनहारे भोरे जीव धर्मार्थी धरम जानि कुमारग हिंसा रूप कुआचार रूप प्रवृत्तते भये। ते जीव मोक्ष मारग जानिते संते धर्मफलके लोभी लोकारूढ़ धर्म सेवते भये। तिनकौं कोई साँची दृष्टिवारा धर्मात्मा देखि दया करि कहता भया। भो धर्मार्थी हो तुम धर्मके अर्थ पापका सेवन मति करो। यह जीवघातक मांसाहारी देव नाहीं है। भगवान्का ए चिन्ह नाहीं है। परिग्रह धारी शस्त्रधारी कषाई गुरु नाहीं। हिंसामयी धर्म नाहीं। हे भव्य तूं विचारि कैं देखि कैं देव धरम गुरुका सेवन करना ज्यों तेरा भला होय। ऐसे धर्मात्मा के वचन सुनि, यह अज्ञानी ज्ञान दरीद्री शुभा-शुभ विचार रहित बिना समझै ही हठग्राही ऐसा कहता भया। हमारे बड़े बूढे आगे तैं एही धर्म सेवते आये हैं। और हमारे धर्ममें ऐसेही देव धरम-गुरु होय हैं। आगे तैं हमारे कुलमें ऐसाही धर्म सेवते आये हैं, सो हम भी सेवन करैं हैं। ऐसा कहि कैं हठग्राही कुल धर्मपाप पंथ नहीं तजै। सो धर्म मूढ़ता कहिए ॥ ३ ॥ मन मूढ़ता ताकों कहिए, जाका मन सदा ही चंचल रहै। थिरी नाहीं होय। महा लोभ करि मोहित होय। जाका मन सदीव ऐसा विचार करै जो मोकौं घना धन कैसे मिलै ? कोई

देवताकी सेवा करौं तो मोकों मांगै सो देवे सो अवारके समय तौ शीतला प्रत्यक्ष देखिए है। ताकौं पूजें तौ धन मिलैं। सो ऐसा विचार कर धनका लोभी अनेक देवनको पूजा करै तथा ऐसा विचारै जो हमैं पड्या गिर्‌या माल मिल जाय तौ भला है ताके निमित्त धरतीके गड़े पाखान उपाड़ि २ धन देखता फिरै। ऐसी अवस्था सहित ए अज्ञानी धर्म पंथका भूल्या प्राणी सदीव मनकी मूरखता नहीं तजै। ऐसे भरमबुद्धि कूं कहिए जो तूं मनकी थिरता राख। कुदेवादिक मति पूजो इससे पाप होयगा। धन मिलैगा नाही। तो ताकौं सुनि अज्ञानी कहता भया। जो पाप कैसें हो है ? यह देव है, राजी भये धन देना इनकैं सुगम है। अनेकन कौं वाञ्छित देय है। ऐसा जानि अपने मन विषै कुदेव कुधरम कुगुरु इनके पूजिवैकी मूरखता नाहीं छोड़े। सदीव मनकूं आर्त्त-रौद्र रूप राखै, सो मन मूढ़ता कहिए ॥ ४ ॥ जाकी काय तैं शुद्ध देव धरम गुरुकी सेवा नाहीं बनै। विनय भक्ति तिनकी नहीं बनें कुदेवादिककी नमनता याने बहुत करी होय। और वाही तैं जाका शरीर महा भयानीक होय। नेत्र क्रूरता लिए लाल होंय। तनपै भस्मी शिर पै सिन्दूरकी बिन्दी होय। और कंठ शीश भुजामें अनेक ताबीज होंय। अरु हस्तमें अनेक लोह ताके चूड़ा होंय। ऐसे धर्म ध्यान रहित शांति मुद्रा सौम्य भाव रहित होय। महा भयानीक विपरीत तनका धारी तामें धर्म मानता होय। ताकौं कोई कहै, लोकों धर्मका फल चाहिए है तौ शान्ति मुद्रा राखौ। भयानीक आकार रहना तजौ। तौ ताकूं सुनि मूढ़-आत्मा एसी कही। जो हम अन्तरंगमें तो शान्तही हैं। बाह्य लोक दिखावै कूं अपना-आप छिपाय रहवेकूं बाह्य भयानीक-स्वांग राखैं। ऐसी नय-जुगति देय। परन्तु कायकी क्रूरता नहीं तजै। सो तन मूढ़ता कहिए। तथा शरीरकी चाल मदोन्मत्त ईर्या समति रहित होय। और जीव ताकौं देखि भय खाय दुखी होते होंय। बिना प्रयोजन अपने हाथ पावनतैं जीवनकौं दुख देता होय। ऐसी विकट कायका धारी दया रहित मुद्राका धारी शरीरकौं उद्धत् राखता होय। सो काय मूढ़ता कहिए ॥ ५ ॥ जहां जिन आज्ञा रहित पापकारी पर-जीवनकूं भयकारी शोककारी बचन बोलना। अपनी इच्छा प्रमाण स्वेच्छाचारी बचन पापकारी बोलना। सो बचन मूढ़ता है। याकौं कोई कहे तुम ऐसे कषाय बचन मत कहो। तथा देव कूं गालो, गुरुकूं गाली तथा गृहस्थन

कौं गाली, कठिन ऐहे अयोग्य बचन मति कहो। तो वह मूरख कहै, हम इसी तरह देवकी स्तुति करैं हैं। गृहस्थीन कौं ऐसे ही दबाय देय हैं। ऐसे कहै परन्तु क्रोधादि—कषाय पोषवेके पापकारी—बचन नहीं तजै। सो बचन—मूढ़ता है। जा बचन तैं पराया तन क्षय होय। धन क्षयकारी मान क्षयकारी ऐसे बिना विचारे बचनका बोलना जाकै सुनैं सर्व सभा-जन दुख पावैं सो बचन मूढ़ता है। तथा जा बचनकौं सुनि सव-कुटुम्ब दुख पावै सो कुटुम्ब-विरुद्ध कहिए ऐसे वचन तथा राज्य-सभा विरुद्ध बचन जाकै सुनै राजसभा दुख पावै। इत्यादि वचनका बोलना, सो वचन-मूढ़ता है ॥ ६ ॥ व्यवहार-मूढ़ ताकौं कहिये। जहां अयोग्य-हिंसाकारी व्यापार कूं ऐसा मानना, जो ये किसब हमारे आगे तैं चल्या आया है। हमारे बड़े, पीढ़ियों तैं यही किसब करते आये हैं। सो बुरा है तो भला है। अरु भला है तो भला है। कुलका किसव कैसे छोड़ैं ? ऐसा जानि, महा हठग्राही, पाप कारी-हिंसामई किसब नहीं तजैं। सो विवहार-मूढ़ता है ॥ ७ ॥ ऐसी कही जे सात जाति की मूढ़ता, ताकौं अपनी २ हठ बुद्धिकरि, यथायोग्य विपरीत भावना सहित धारि, अङ्गीकार करना। ऐसे श्रद्धानका धारण जिनकै होय, सो मिथ्यादृष्टी जानना।

इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, जाति-व्यवहारादि कथन वर्णनो नाम, चौवीसवाँ पर्व सपूर्णम् ॥ २४ ॥

आगे हितोपदेश दिखाइये है। तहां मिथ्याज्ञान अरु सम्यग्ज्ञानके प्रकाश कौं दृष्टान्त करि दिखाइये है—

गाथा—उपल वहणि मिछिणांणो, कय उदोय फुणस्याम उर जायो ॥ हाटक सम सम्यणांणो, तव वहणी जुइ विमल तण होई ॥ ८८ ॥

अर्थ—उपल वहणि मिछिणांणो कहिये, काष्ठ-छाणेकी अग्नि समान मिथ्याज्ञान है सो। कय उदोय फुणस्याम उर जायो कहिये, उद्योत करि फेरि श्याम शरीरको धरै है। हाटक सम सम्यणांणो कहिये, सम्यक्ज्ञान स्वर्ण समानि है। तव वहणी जुइ विमल तण होई कहिये, तप रूपी अग्नि तैं विशेष प्रभा धरै है। भावार्थ—आत्म स्वभाव अरु पर-जड़भाव इनके जुदे २ जानवैकौं, अनुभवन करवैकौं अतत्व श्रद्धानी मिथ्यादृष्टि का ज्ञान असमर्थ है। इस मिथ्याज्ञानका प्रथम तो किंचित् प्रकाश होय। ताके फलतैं एक भव देवादिके सुख पावै। पीछे उस देवादि-भवमें भोगाभिलाषी चित्त होय, आर्त्त-रौद्र परणति करि, संक्लेशताके फल तैं, एकेन्द्रिय

आदि होय, संसार-भ्रमण करै। तथा मिथ्यात-कर्मके योग तैं कदाचित् मनुष्यमें उपजै, तौ नीच-कुलमें धनवान्-हुकमवान् होय। राज्य-संपदाका धारी, तीव्र क्रोध-मान-माया-लोभ-का धारी, संक्लेशी होय। इत्यादिक सामान्य सुखका धारी होय। पीछे अनेक पाप करि, अनेक हिंसा-दोष उपाय, नरकादि-दुख कौं प्राप्त होय। ऐसा होय तब मिथ्याज्ञानका प्रकाश, मंद होय। बहुत-काल मिथ्यात्वका फल रहता नाहीं। जैसे छाणेकी अग्नि, प्रथम तौ तेज-प्रकाश करै है। पीछे प्रभा-रहित होय, श्यामता धारि, भस्मी होय। तैसेही मिथ्याज्ञान जानना। ये मिथ्याज्ञान है सो अंधेके ज्ञान समानि है। जैसे अंधा चलै, तब अनुमान तैं चलै। परन्तु यथावत्, मार्गका शुभाशुभ नहीं भासै। तैसे ही मिथ्याज्ञान तैं शुद्ध यथार्थ-मार्ग नहीं भासै। यहां प्रश्न-जो मिथ्याज्ञानी धर्मात्मा हैं। तिनकूं यथावत् पुण्य-पापका मार्ग नाहीं भासै, तौ नौ-ग्रीवादिक कैसे जांय? देवादि गतिमें भी जांय हैं, सो शुभाशुभ-मारग जानै बिना पापका तजन व पुण्यका ग्रहण, तप-संयम-चारित्रका सेवन कैसे संभवै? ताकौं पुण्य-पापका मारग तौ भासै है। भले प्रकार मिथ्याज्ञान कूं अंधेके ज्ञान समानि कैसे कह्या? ताका समाधान-जो पुण्य—पाप तौ संसार-बनके मारग हैं, यथार्थ शुद्ध मोक्षका मारग नाहीं। मिथ्याज्ञान तैं मोक्ष मारग नहीं सूझै है। तातै मोक्ष पंथके जानवे कूं अन्धसमानि जानना। और सम्यक्ज्ञान है। सो स्वर्ण समानि है। जैसे स्वर्णकूं ज्यों २ अग्नि पै तपाइए, त्यों २ ताकी प्रभा, बढवारीकौं प्राप्त होय है। और कंचन शुद्ध होता जाय है। तैसेही सम्यक्ज्ञान रूप स्वर्ण है सो ताकौं ज्यों २ तप रूपी अग्नि कर तपाया जाय, त्यों २ परम विशुद्धता कौं प्राप्त होय है। सो यह सम्यक्ज्ञान, ज्यों २ निर्मल होय, त्यों २ बढ़ै। सो बढ़ता-बढ़ता केवलज्ञान पर्यन्त, सम्यक्ज्ञानावधि पूर्ण होय है। सो केवल-ज्ञान भये, ज्ञानकी मर्यादा पूरण होय है। सदा रहै है। ये सम्यक्ज्ञान, भये पीछे मिथ्याज्ञानकी नाईं, जाता नाही। सदीव अनंतकाल ताईं रहै है। ये ज्ञान मोक्ष ही करै है। तातैं मिथ्याज्ञानी, अङ्ग-पूर्वनका पाठी भी होय, तौ संसारका ही कारण है। और सम्यक्ज्ञानका अंश भी प्रकट होय, तौ बढ़वारी कौं प्राप्त होय, केवलज्ञान ही करै है। तातैं मिथ्याज्ञान, हेय कह्या है। और सम्यक्ज्ञान, उपादेय कह्या है। तातैं विवेकी पुरुष हैं तिनकूं, मिथ्याज्ञान तजि कैं, मोक्षका करनहारा

सिद्ध पदका देनेहारा, कर्म्मनका नाश करनहारा, ऐसा सम्यक्ज्ञान जैसे बनै तैसे, प्राप्त करना योग्य है ॥ ८८ ॥

आगे इन्द्रिय सुख तैं आत्मा तृप्त नहीं भया, सो ही दिखाइये है—

गाथा—हरि हल सुर खग चक्की, पुण फल सुह भुंजेय ण धपे। तव लव सुह णर आदा, धपो किं धम्मसेय सिव कज्जे ॥ ८९ ॥

अर्थ—हरि कहिये, नारायण। हल कहिये, वलभद्र। सुर कहिये, देव। खग कहिये, विद्याधर। चक्की कहिये षट्खण्डी चक्री। पुण फल सुह भुंजेय ण धपे कहिये, पुण्यका फल सुख भोग्या, तौ भी नहीं तृप्त हुआ। तव लव सुह णर आदा कहिये तो हे आत्मा मनुष्यनके अल्प सुख तैं। धपो किं कहिये कैसे तृप्त होयगा ? धम्मसेय सिव कज्जे कहिये तातैं धर्मका सेवन मोक्षके निमित्त करो। भावार्थ—ये जीव तीन खंडका स्वामी सोलह हजार स्त्रीनके संग भोग भोगनहारा भया। तहां भोगन तैं तृप्त नहीं भया। तथा हरि कहिए जो देवनाथ इन्द्र सो तानैं अनेक देवाङ्गना सहित अनेक वांच्छित भोग भोगे, तौ भी तृप्त नहीं भया। तथा अनेक देवीन सहित सुख भोगनहारे देवपदके अनेक सुख भोगे परन्तु तृप्त नहीं भया। अनेक गीत नृत्य वादित्रादिके अद्भुत लक्ष्मी सहित कौतूहल करि अनुपम भोगमें रम्या तहां भी ये आत्मा तृप्त नहीं भया। तथा और भी देव समानि संपदाके धारी ऐसे विद्याधर तिनके सुख भोगनहारे अनेक प्रकार अढ़ाई द्वीपमें स्वेच्छा फिरि क्रीड़ा करते दीरघ सुख भोगे तौ भी आत्मा विद्याधरनके सुख तै भी तृप्त नहीं भया। और षट्खंडका पति छ्यानवै हजार देवाङ्गना समानि रूप गुण की धरनहारी स्त्री तिन सहित मन-वांच्छित देवेन्द्रकी नाईं सुख समूह दीरघ-काल ताईं नये-नये भोगे तौ भी आत्मा तृप्त नहीं भया। और भी अनेक मनोग्य वांच्छित अद्भुत सुख भोगे। संसारमें कोई ऐसा सुख नाहीं बच्या, जो आत्माने अनेक बार पुण्यके उदय तैं न भोग्या सर्व भोग्या। चिरकाल ताईं भोगनमें ही रंजायमान रह्या। सो हे भव्यात्मा ! तुच्छ पुण्य तुच्छ पुरुषारथ अल्प स्थिति सहित महां चपल मनुष्यके सुख तिन मैं तूं कैसे तृप्त होयगा। तातैं हे निकट संसारी। समता भाव धरि भोगन तैं उदास होऊ या मनुष्य पर्यायकी अल्प स्थिति और रही है। ता मैं अब तोकूं मोक्ष होनेकूं धर्मकाही साधन करना योग्य है। फेरि ऐसा अवसर कठिन है। और हे सुबुद्धि ! इन्द्रियनके सुख तौ तैंने अनेक बार भोगे।

तिनकूं फेरि भोगनेमें कहा प्रीति करै है। और जो नवीन सुख जो कबहूं नाहीं भोगे होंय, ऐसे सुखकूं भोगवै तो नवीन सुख होय। तातें मोक्षका सुख तैंने कबहूं नहीं भोग्या है। सो याके भोगवेकूं धर्मका साधन करना योग्य है। येही विवेकका फल है। ऐसा जानना। आगै दीरघ दुःख नरक—पशूनके तिनतैं नहीं डरया, तौ तपके तुच्छ दुखतैं कहा डरै है। ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—असुहं फल णक तिरियो, भुंजे दुह अणेय मूढ आदाए। तो तव लव दुह आदा, कम्पय किं सेय धम्म सिव कज्जे ॥ ६० ॥

अर्थ—असुहं फल णक तिरियो कहिये अशुभके फल नरक—तिर्यंच गतिके। भुंजे दुह अणेय मूढ़ आदाए कहिए भोरे आत्माने अनेक दुख भोगे। तो तव लव दुह आदा कहिए तो तपके अल्प दुखन तैं आत्मा। कंपय किं कहिए कहा कंपै है। सेय धम्म सिव कज्जे कहिए मोक्ष होवे कूं धर्मका सेवन करि। भावार्थ—भो आत्माराम! तूं ने अशुभके फल करि नरकमें छेदन भेदन आदि पञ्च प्रकार दुख अनेक बार सहे सो कर्मके वसि पराधीन होय महा दुःखनकूं सहजही भोग लए। और तिर्यंचनके दुख अनेक प्रकार। भूख, तृषा, शीत, उष्ण, दंश—मंसादि बहुत वेदना पराधीन पशु कायकी भोगी। सो भी सहज भोग लई। सो तहां तू डरया नाहीं। तौ हे भोरे प्राणी! तप विषैं नर्क—पशु तैं अधिक दुख नाहीं। बहुतही अल्प दुख है। तातैं हे भव्यात्मा! तूं तप-दुख तैं मति डर। तप विषैं तो स्वाधीन खेद है। सो सुख समान है। और पराधीन दुखके भोगतैं विकल्प होय तिनकरि तो पाप बंध होय है। तातैं परम्पराय आगामी कालमें भी दुख फलही होय है। स्वाधीन तपका खेद सहते परणामनमें सन्तोषी धर्मात्मा कैं विकल्प नाहीं होय है, तातें पुण्य का बंध होय। ताकरि आगामी कालमें भी सुख फल होय। तातें नर्क-पशूनके दुख तैंने पराधीन होय सहे, तहां तो डरया नाहीं। तौ तिनतैं बहुत थोरे तपके खेद तैं, तूं मति डरे। समता सहित तपका खेद सह। अङ्गीकार कर। ज्यों तेरे समभावना सूं किए नाना प्रकार तप तिन करि कर्मका नाश होय मोक्ष होय। तातें तोकूं धर्म—साधन ही सुखकारी है। ऐसा जानि वारम्बार जिन भाषित धर्मका समता करि सेवना योग्य है ॥ आगे माया कषायका फल और कषाय तैं अधिक बतावैं हैं—

गाथा—मायागभ असुहो, णिगोयदा अणि. कसाय णकदायो। माया जुत सयल कसायो इक बे ते चवाक्ष तण देई ॥ ६१ ॥

अर्थ—मायागभ असुहो कहिए माया गर्भित जे पाप हैं। णिगोयदा कहिए वे निगोदके दाता हैं। अणि कसाय णक दायो कहिए और कषाय नरककी दाता हैं। मायाजुत सयल कषायो कहिए, माया सहित सकल जो सर्व कषाय। इक बे ते चवाक्ष तण देई कहिए एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय चौइन्द्रिय इनके तन देंय। भावार्थ—सर्व कषायनमें मायाका फल बहुतही पापकौं उपजावे है। जे जीव निगोदमें उपजि महा दुखी होंय सो माया कषायका फल है। और अन्य जो क्रोध, मान, लोभ इन कषायन तैं नर्क होय है, निगोद नहीं होय। और इन तीन ही कषायनमें जो माया कषाय आन मिलै, तो मायाके जोग तैं क्रोध मान लोभ इन तीनमें एकेन्द्रिय दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय चौइन्द्रिय होय ऐसे फल कौं उपजावै। तातैं सर्व कषायनमें माया कषाय दीरघ निखध्य व पापकारी है। तातैं विवेकी पुरुषनकूं परभव सुखके निमित्त माया शीघ्रही तजना योग्य है। यहां प्रश्न—जो क्रोध मान लोभ इनका फल नरक कह्या। और मायाका फल विकलत्रय आदि निगोद कह्या। सो इनमें अन्तर कहा ? अरु माया कूं निखध्य कह्या। सो दुख तो नरकमें बड़ा दीखे, निगोदियाका दुख तो भासता नाहीं। तातैं जाका फल बहुत दुखकारी होय ताकौं निखध्य कहिये। तौ दुख तो निगोद में अल्प भासै है। अरु नरकमें बहुत भासै है। अरु यहां माया कषाय कौं निखध्य विशेष किया सो काहे कौं ? ताका समाधान-भो भव्यात्मा ! तू ने प्रश्न भला किया। अब याका उत्तर तूं चित्त देय सुनि। नरक दुख तौ वाह्य, विशेष-विकराल भासै है। परन्तु पाँचों इन्द्रिय साबूत-पूर्ण हैं। अरु इन्द्रिय-ज्ञान सबका खुलासा है। तातैं दुख थोड़ा है। आपकों कोई नारकी मारै तब तौ दुख होय है। पीछे आप कोई नारकीकौं मारै तब आप खुशी होय। आप पै दुख आए ताकौं मेटवेका उपाय करै है। बैरी कूं तथा स्नेही कूं जानै है। अवधि आदि मति—श्रुति-ज्ञानकी प्रबलता पाईये हैं। तातैं इस नरकमें सुखका निमित्त है। पांचों इन्द्रियनका क्षयोपशम है। परके मारवे कूं तनका पराक्रम होय है। बड़ा आयु कर्म है। तातैं यहां नरक विषैं जीव अल्प दुखी है। और एकेन्द्रियके चारि इन्द्रिय नाहीं। कर्मके उदय आया दुख ताकूं मेटवेकी शक्ति

नाहीं । महां दीन अल्प समय मैं मरण पावै । और अल्प शीतके दुखतैं मरण पावै । महां अशक्त ज्ञान रहित तातैं एकेन्द्रिय महा दुखका स्थान है । तथा जैसे कोई चोर कौं पांव बांधि उल्टा टांगि दिया । पीछे च्यारों तरफ तैं अनेक बांसन, कोड़ाकी मार दीजिये, सो महा दुखी है । सो एसा दुख तो नारकीन कौं है । और एक चोरका मुख विषैं वस्त्र भरि ऊपरि तैं सूजीकर मुख सीं दीजिये । मल-मूत्रके द्वार सब वंद कर दीजिये सो महा दखी भया । पीछे नाक मैं वस्त्र भरि सूजो तैं सीं दिया । कानमें वस्त्र भरि कान सीं दिया । नेत्र सीं दिये । पीछे सव तन कौं बांधि गठिया सी बनाय कैं एक खालकी मसकमें डारि मसक ऊपर तैं सीं दई सो गोला सा वनायकैं ऊपर दस-वीस मनकी एक शिला धर दई । सो अव इसके दुखकी केवली जानैं । और कौं तो वाह्य दुख दीखै । परन्तु याके गूढ़ दुखकी औरनकौं तो ठीक नाहीं । सो ऐसा दुख निगोद एकेन्द्रियके जानना । तातैं नारकीनके दुख तैं असंख्यात गुणा निगोद एकेन्द्रियके दुख जानना । ऐसे ही वेन्द्रियके भी तीन इन्द्रिय नाहीं । तातैं ताकूं भी । तथा तेइन्द्रियके दो इन्द्रिय नाहीं । सो भी महादुखी । चौइन्द्रियके एकेन्द्रिय नाहीं । सो भी महा दुखी । ऐसे विकलत्रयके महा दुख सो भी नारकीन तैं असंख्यात गुणा दुखी है तातैं इन विकलत्रय जीवन में महा पापके उदय तैं आवै है । ताकरि महा दुखी जानना । सो ये जीव माया कषायके जोग तैं इस भवसागरमें पड़े हैं । तातैं मायाही में दीरघपना जानना । हे भाई ! और तीन कषायन के रस तो जानि लीजिए है । परन्तु माया नाहीं जानी जाय । जो जानिये, ताका उपचार भी कीजिये । जाननेमें नहीं आवै ताका इलाज कहा वनै ? सो क्रोधादि तौ जानिए है । और कोई क्रोध करै तौ ताका उपचार यह कि जो कोई क्रोधी मारता आवै ताके पास दीनता पकरि रहै तौ मारै नाहीं । आर कोई पापी-मानी आपकौं मारने आवै तो ताके पासि अपना मान तजि, वाका विनय करै । वाकी स्तुति करै तो मानी मारै नाहीं । और कोई लोभी आपकौं मारै तौ वाकौं बहुत धन देय तौ लोभी मारै नाहीं ऐसे क्रोध मान लोभ इन तीन कषायनका तौ उपचार है । याका उपचार किए शान्त हो जाय । परन्तु यह दगावाज ऊपर तैं नमन करै । मुख देखे दीन वचन वोलै । सेवक होय, पुत्र सम होय । पीछे दाव लगै दगा

करै। याका उपचार विवेकीन तैं भी नहीं बनै। तातैं महा मूढ़ है। इस कषायका फल दीरघ पापकारी है। ता पापके फल तैं जीव, नरकनके दुख तैं बड़ा दुख निगोद आदिका पावै है। ऐसा जानि माया कषाय कूं तजना। तथा इन पापाचारी—मायावी जीवन कौं अपने बल तैं पहिचान, तिनका संग तजना भला है। ऐसा जानना। आगे धर्मका फल इन्द्रिय—जनित इन्द्रिय-सुख है। यातैं नरकादिक खोटी गति नहीं होय है। नरक दाता और ही कार्य हैं। सो बतावैं हैं—

गाथा—धम्म तरु फल अख सुहयो, सो फल दुगय देय णह कबऊ। धम्म कालय अघ करऊ, कुगय फल देय सोय कीयाय ॥ ९२ ॥

अर्थ—धम्म तरु फल कहिए धर्म वृषका फल। अख सुहयो कहिए इन्द्रियनके सुख। सो फल दुगय देय णह कबऊ कहिए सो फल दुरगति कबहूं नहीं देय। धम्म कालय अघ करऊ कहिए धर्म कालमें पाप करै तो। कुगय फल देय सोय कीयाय कहिए सो क्रिया कुगतिका फल देय है। भावार्थ--यहां कोई ऐसा जानैं कि जो इन्द्रियनका सुख है सो धर्म घात करके जीवनकौं दुर्गति करै है। सो हे भाई! तूं चित्त देय सुनि। इन्द्रियके सुख हैं सो तौ पुण्यका फल है। सो पुण्य फलतैं देव इन्द्र चक्री काम देवादिकका सुख है सो हजारों स्त्रीनके संग नानाप्रकार पंचेन्द्रिय मन-वांछित सुख-भोग भोगवैं हैं। अनेक रथ हाथी घोटक पैदल आदि अधिक सैन्या सहित, निरखेद भये, अपनो शुभ परणतिका फल ताहि भोगवैं हैं। सो ये पुण्यका फल है। सो पुण्यका फल इन्द्रिय सुख है। सो ही पुण्यका घात कैसे करै? जे फल हैं सो अपने वृक्षका नाश नहीं करैं। तातैं इन्द्रिय सुख धर्म घात करते नाहीं। इन्द्रिय सुखन तैं दुर्गति होती नाहीं; ऐसा जानना। यहां प्रश्न? जो जगह-जगह शास्त्रनमें ऐसा सुनिये है कि जो फलाना राजादि पुरुष, इन्द्रिय—सुखमें मगन होय, नर्कादिक गये। तहां जे महान-बुद्धि चक्रधर राजा थे, सो जगतके भोगन तैं उदास होय, इन्द्रिय-जनितसुख दुर्गति-दाई जानि, सर्व राज्य-भोग सम्पदा तजि, दीक्षा धरते भये। तातें इन्द्रिय जनित सुख पापकारी नहीं होता, तौ काहे कूं तजते? और यहां ऐसा कह्या जो इन्द्रिय-सुख धर्मका घात नहीं करै है। इन्द्रिय-सुख तैं नरकादि खोटी गति भी नहीं होय है। सो ये बात कैसे बनै? ताका समाधान-जो हे भव्यात्मा! तेरा प्रश्न प्रमाण है। परन्तु अब चित्त

देय सुनि। जो वस्तु जातैं उपजै है सो ताका नाश नहीं करै। सो देखि, इन्द्रादिक पद, चक्रीपद है, सो वांच्छित इन्द्रिय भोगके सुखका सागर है। जो इन्द्रिय जनित सुख तैं दुर्गति होती, तौ इन्द्रन कौं होय। तथा देवन कूं तथा भोग-भूमियान कूं, परभव दुर्गति होय। तातैं ऐसा जानना। जो खोटी गति होय है सो इन्द्रिय सुखका फल नाहीं। जातैं इस जीव कूं खोटी गति होय है, सो तोकौं बताइये है। जे जीव धर्म-काल विषैं, धर्म कूं भूलि करि, विषयकषायसें रंजायमान होय कैं, धर्मका घात करैं। तिस धर्मघातके पापतें नरकादि खोटी गति होय है। तातैं नरकादि दुख, धर्मघातका फल जानना। तातैं विवेकी हैं तिनकूं धर्म सेवनके कालसें धर्म घाति करि, पाप-विकल्पमें काल गमावना, योग्य नाहीं। तातैं धर्मात्मा गृहस्थ हैं सो तिन्हें प्रथम प्रभात धर्म-काल विषैं, भले प्रकार निर्मल भावना सहित धर्मकार्य करि, पुण्यका संचय करना योग्य है। पीछे अपने पूर्व-पुण्यका फल इन्द्रिय जनित सुख; ताहि भोग्या करौ। ऐसे सदीव धर्म-कालसें धर्म का सेवन करना। और अन्य-कालमें कर्मकार्य करना। ऐसे करि पुण्यका संग्रह करै। ताके फल, फेरि भी परभवमें देवादिकके इन्द्रियजनित सुख—भोग पावै है। और जे जीव धर्म कौं भूलि करि, धर्म—काल विषैं इन्द्रिय जनित भोगनमें रक्त होय, सुख मानैं, सो मानौ। परन्तु पूर्वले पुण्यका फल भोगि चुकैगा, तो पीछे धर्म—फल विना, नर्कादि गति होयगी, ताके दुख कूं भोगवेगा। जैसे कोई एक भला व्यापारी, अनेक व्यापार करि, अपनी वृद्धिके बल करि, बहुत धन:कमाया। सो दूसरे दिन सुख तैं भोगवै है। अरु जब दुकान पै कमाईका समय आया, तब अनेक सुख भोगे थे तिनकूं तजि, दुकान पै जाय अनेक व्यापर-कला करि धन कमावै। तो दूसरे दिन, सुख तें भोग्या करै। ऐसे भोगके कालमें भोग-सुख करै, परन्तु अपनी कमाईका समय आवै तब अनेक काम छांड़ि, जाय कमावै। कमाईका काल नहीं चूकै। सो तो सदैव कमावै-खावै, सुखी रहै। और जे जीव एक बार व्यापार करि धन कमाया। सो धन लेय, नाना प्रकार सुख करता भया। अरु फेरि कुमाईका काल आया, तब भी नांच-नृत्य, खान-पान, भोगहीमें रत भया धन उड़ाया करचा, कुमाई कूं नहीं गया। कमाईका काल, वृथा गमा दिया। और आगे कमाया था, सो धन खाय लिया। सो जी-

व कमाई विना रंक होय, भीख मांगेगा, दुखी होयगा, ऐसा जानना। तथा कोऊ एक पुरुष कैं एक बाग है। तामें नाना प्रकारके मेवा होय हैं। अरु महा-सुन्दर सघन-छाया महा-शोभायमान तामें पांच सौ रुपया साल का मेवा होय, ताहि बेंचि, तामें कुटुम्ब कौं पाले। ऐसे सालकी साल, पांच सौ रुपयाका मेवा बेंचि, सुखी रहै। अनेक मेवा आप भोगवे। वागकी भली रक्षा किया करै। ऐसे बहुत दिन बीत गये। बागकी रक्षा करै दुष्ट पशून तैं बचावै। बन कौं निर्विघ्न राखै। ताके फलन करि अपने कुटुम्बका पालन करै। आप आनंद सूं रह्या करै। ऐसे बाग तैं, जाकौं देख तैं सुख होय। सो एक बार काष्ठ काटनहारे आये, इस बाग बारे कौं कही। तेरा बाग मोलदे। तब याने पांच सौ रुपयामें बाग बेच्या। सो वह बाग काटकैं लकड़हारे ले जांय हैं। सो देखो याकी मूर्खता, जो सालकी साल पांचसौ रुपया देनेहारे बाग कूं काष्ठ काटनहारे कूं देय है। सो ये रुपैया एक बारके होय जांय हैं। पीछे आप दुखी होय है। बागकी शोभा जाय है। मिष्ट फल जांय हैं। बागका नास जाय है और आप कुटुम्बी सहित दुखी होय है। ये रुपया बरस-एकमें खालेवे है। तथा उस वनकी रक्षा छाँड़ि, कोई विषय-कषाय नृत्य—गीतादिमें लागि जाय है। सौ बागके बिगड़नै तैं बड़ा दुखी होय है। एकबार ही नृत्य—गीतके सुख हो हैं। परन्तु जिस बागके पीछे, सर्व कूं रोटी थी। सोच नहीं रहै था, सर्व गीत-नाच अच्छे लागैं थे। सो उजाड़्या। तो सर्व कुटुम्बी सहित दुखी भया। जैसे बाग रहै सुखी रहेगा, तैसे ही धर्म रूपी बागके फलन करि सदीव सुखी रहै है। ऐसे धर्मबागकी रक्षा कूं भूलि, बिषय—कषाय में मगन होय रहैगा, तौ धर्म रूपी बाग के विनाश तैं आप दुखी होयगा। एक बार का ही बिषय—सुख होयगा। और पहले सदीव बाग की रक्षा करि, पीछे विषय—सुख भोगेगा। तो ताके फल तैं सुखी रहैगा। तातें हे भव्य, तू ऐसा जानि। जो आत्मा कूं नरकादि खोटी गति होय है। सो ये धर्म—घात का फल जानना। जे जीव धर्म-कालमें धर्म घाति करि, पापका सेवन करि, विषय—भोगनमें रत होवेगा। सो नर्कादि कुगतिके दुख भोगवेगा। और जो धर्म—कालमें धर्मका सेवन सहित, धर्मकी रक्षा करेगा। पीछे अपने विषय-भोग भोग्या करैगा। अपने पुण्य—प्रमाण मिले जो भोग, सो संतोष करि भोगैगा, तो

खोटी गति न होयगी। ऐसा जानना। और तैंने कही, आगे बड़े २ राजा इन्द्रिय-जनित सुखनकूं पापरूप जानि, तिनकूं तजि, उदास होय, दिगम्बर होय, दीक्षाधारी। सो हे भाई, सुनि। इन राजाननें दीक्षा धरी। अरु इन्द्रिय जनित भोग तजे। सो नरकादिकके भय, दीक्षा नहीं धारी है। नरकादिकके दुखनका अभाव तो गृहस्थ अवस्थाके धर्म सेवन करि होय। घरही विषै अपने कुटुम्बमें तिष्टतें, धर्म का सेवन करि, सुखतें पर्याय छांड़िते, तो देवादि शुभ गति पावते। परन्तु हे भाई, घर विषै, कर्मका नाश करि मोक्षस्थान चाहै। सो घरमें मोक्ष नाहीं होय। तातें भव्यात्मा, जे निकट संसारी हैं। तिनने मोक्ष होवे कूं, सर्व कर्मनाश करि शुद्ध भाव होवे कूं, राग—द्वेष तजवे कूं, केवलज्ञान प्रगट करवे कूं, जनम—मरणके दुख दूरि करवे कूं, सिद्ध पदके ध्रुव पायवे कूं, दीक्षा धारी है। ऐसा भाव जानना। जिन्हें नरकादिक खोटी गति होय है सो धर्मको छांड़ि धर्म—कालमें पापका सेवन करें हैं। ते दुखीही होय हैं। और धर्मात्मा गृहस्थन कौं इन्द्रिय—सुख भोगतें पाप होता नाहीं और मोक्ष सुख, अविनाशी—अतीन्द्रिय—भोग सुख, मोक्ष बिना होता नहीं। तातें जे मोक्ष—सुखके वांछक होंय, ते तो दीक्षाही धारें हैं। और जिन भव्यन कूं मोक्ष वांछा तो है, पर दीक्षा धरवे कूं समर्थ नाहीं। ऐसे धर्मात्मा गृहस्थ हैं, सो घरही विषै मुनिका दान, जिन देवकी पूजा, शास्त्रन का श्रवण-पठन, संयम, शक्ति प्रमाण तप, इत्यादिक धर्मका सेवन कर ताके फल देव-पद, भोग भूमि फल, चक्रीपद, इत्यादिक पावैं। सो इन देवादिक पदनमें निशदिन अद्भुत इन्द्रिय जनित सुख- भोग, आयु पर्यंत भोगवें हैं। तातें हे भव्यात्मा, इन्द्रिय जनित सुख तैं पाप होता, दुर्गति, होती तो गृहस्थ-धर्मात्माका परभव कैसे सुधरता? अरु धर्मी-श्रावक धर्म-रसके स्वादी, घरके सुख कैसे भोगते? तातें अनेक नयन करि विचारिये है तो पाप एक धर्मघातका नाम है। भोगनमें पाप नाहीं। तातें विवेकी धर्मात्मा हैं तिनकौं एक धर्म-कालमें धर्म—सेवन ही योग्य है। आगे मुनिश्वरोंके मोक्ष कौं कारण, श्रावकका घर है। ऐसा कहें हैं—

गाथा—जीय सुद्धव मोक्खो, मोक्खोस्सगण रयण मुण साहो। मुणणर तण आहारो, मोयण सागय गेह कर होई॥ ८३॥

अथ—जीय सुह चय मोक्खो कहिये, जीव सुख कौं चाहै सो सुख मोक्ष विषै है। मोक्खोत्तयण रयण सुण साहो कहिये, सो मोक्ष रत्नत्रय से होय है अरु रत्नत्रय मुनि पद तैं होय है। मुणणरतण आहारो कहिये, मुनि पद मनुष्य शरीर तैं होय है अरु शरीर भोजन तैं रहै है। भोयण सावय गेहकर होई कहिये, सो भोजन श्रावकके घर करि होय है। भावार्थ—ये सर्व च्यारि गति संसारी जीवनकी आशा, एक सुख है। सो सुख सर्व चाहैं हैं। अरु आया सुखका वियोग भये, जीव दुखी होय है। तातैं ऐसा जानिये है। कि विनाश रहित अविनाशी सुख कौं जीव चाहैं हैं। सुखतैं एक छिनक भी अन्तर नहीं चाहैं हैं, ऐसा सर्व जीवनका अभिप्राय है। सो हे भव्य जीव हो! संसारमें देव-मनुष्यनके सुख हैं। सो तो विनाशीक हैं। कोई पुण्य जोग तैं होय हैं। पीछे अपनी स्थिति—मरजाद पूर्ण भये पर्यन्त रहैं हैं। पूरण भए पीछे सुख नाश होय है। सुख नाश भये, बड़ा दुखी होय है। जैसे विद्युत पात, अल्प उद्योतका चमत्कार करि, पीछे अन्धकार करै है। तैसे ही इन्द्रिय—सुख तौ तुच्छ सा चमत्कार, सुखकी वासना सी बताय, पीछे दुख ही उपजावै है। तातैं ऐसा विनाशीक सुख होने तैं, न होना भला है। यह जीव तौ निरंतर अविनाशी सुख कूं चाहै है। तातैं हे सुखके अर्थी जीव हो! तुम्हारी वांच्छा प्रमाण सुखका स्थान सिद्ध पद है। तहां ध्रुव-अविनाशी सुख है। सो सुख, सर्व कर्मके नाश तैं पाईये है। तातैं तुम कौं सदीव अविनाशी सुखकी अभिलाषा है तौ जैसे बनै तैसे सर्व कर्मनका नाश करौ, ज्यों मोक्ष होय। सर्व सुखका स्थान मोक्ष है। सो सुखका आश्रय जो मोक्ष है, सो रत्नत्रयके आधीन है। सो सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ये तीन रत्नत्रय, मोक्षका आश्रय हैं। रत्नत्रय बिना, मोक्ष नाहीं। और रत्नत्रय हैं सो मुनि पदके आश्रय हैं। मुनिपद, बिना रत्नत्रयके होता नाहीं। मुनिपद है सो नर तन बिना होता नाहीं। तातैं मुनिपदका आश्रय, नरका शरीर है। मनुष्य शरीरकी स्थिरता, भोजन बिना रहती नाहीं। तातैं मनुष्यके तनका आश्रय भोजन है। और मुनिश्वरका भोजन, धर्मी श्रावक सुआचारी बिना होता नाहीं। तातैं जे उत्तम श्रावकके मन्दिर हैं सो ही मुनिके तनका आश्रय जानना। तातैं ऐसा जानना। कि जो मोक्ष मारग है, सो श्रावकके घर तिनकै आधीन है। मुनिपद बिना, मोक्ष नाहीं।

और श्रावक धर्मात्माके घर विना, मुनिके शरीरका सहकारी भोजन होता नाहीं। तातें जो शुभ श्रावकनका घर भोजन देने कौं नहीं होय। तो मुनिका धर्मनाहीं होय। अरु मुनि धर्म नहीं होय, तौ मोक्ष मारग भी नहीं सधै। तातें ऐसा जानना, जो मोक्ष मारगका आश्रय श्रावकका घर ही है। ऐसा जान धर्मात्मा श्रवकन कूं शुभ आचार रूप प्रवर्तना योग्य है। आगे वुद्धि, धन व तन पायेका फल कहै हैं—

गाथा—वुधिफल तत्व विचारइ, तण फल तव तीथ झाण चारत्तो। धण फल पूजा दाणउ, वच फल परपीय जंतु रख सत्तो ॥ ६४ ॥

अर्थ—वुधिफल तत्व विचारइ कहिये, वुद्धिका फल-तत्वनका विचारना है। तण फल तव तीथ झाण चारत्तो कहिये, तनका फल-तप, तीरथ, ध्यान और चारित्र है। धण फल पूजा दाणउ कहिये, धनका फल-दान पूजा है। वच फल परपीय जंतु रख सत्तो कहिये, वचनका फल-परकौं प्रिय दयामई सत्य बोलना है। भवार्थ—जे सुवुद्धि कूं पाय, धम मारग भूलि कैं विषयनमें प्रवृत्ति करि, पाप करि, शीश अशुभ भार लिया। सो तो वुद्धि भई ही निष्फल भई। और जिन भव्य जीवन नैं वुद्धि पाय करि, तत्वनका विचार करि, पाप कर्मका क्षय व पुरायका संचय करि, मोक्ष होनेका उपाय विचार किया। सो ही वुद्धि पायेका उत्कृष्ट फल है। मनुष्य शरीर पायकैं अनेक पापकारी स्थाननमें प्रवृत्ता, पर पीड़ा करी, परधन हरया, परस्त्री रम्या, पाप स्थाननमें तीरथ जानि भ्रमण किया। इत्यादि कार्य पापाचार करि अशुभ कर्मकाबंध किया, सो तो तन पाया जैसा नहीं पाया। शरीर विरथा गया। जो शरीर पाय निहिंसक, आरंभ रहित, दया भाव सहित, अंतरंग तप षट्, बाह्य तप षट्, ऐसे वारह तप कूं करै, सो तन-फल है। तथा जहां तैं कर्म नाश कर जतीश्वर मोक्ष गये, सो स्थान शुद्ध तीर्थ है। सो जा शरीर तैं तिस स्थानकी वंदना—पूजा करनी, सो शरीर सफल है। जिस शरीर तैं विकराल भेष धरि, पाप—पाखंड धरि, औरन कूं भय उपजाया। सो शरीर विरथा है। और जा शरीर तैं कायोत्सर्ग—मुद्रा तथा पद्मासन मुद्रा धरि, समता भाव धरि और जीवन कूं विश्वास उपजाय सुखी किये। धर्म ध्यान, शुक्ल ध्यान रूप भाव सहित ध्यान किया, सो काय सफल है। और पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्ति ये तेरह प्रकार चारित्र तथा वारह व्रत जा शरीर तैं बन्या

होय, सो तन पाया सफल है। जा धन करि पापारंभ क्रिया करि, परभवकूं दुख उपजाया होय, सो धन वृथा है। तथा जा धन तैं अन्य जीवन कूं मोल लेय मारे हौंय, जा धन तैं पर-जीव बन्दी में किये हौंय, परस्त्री सेवन किया होय तथा वेश्या—गमनमें दिया होय, नाच कराय गान कराय इत्यादिक विकार भावनमें धन दिया होय सो धन वृथा है। तथा द्यूत रमनेमें धन दिया तथा द्यूत रमनेके कारण चौपड़ि गंजफा, शतरंज इन आदि द्यूत कार्यके उपकरन तिनकौं बहुत मोल देय लेना बहुत धन देय चांदी—स्वर्णादिके बनवावना महा अनुरागी सहित धन लगाय द्यूतकी शोभा करनी, सो धन विरथा है। जा धन त मुनि वीतरागकूं दान दिया होय जिन भगवानकी पूजाकी होय सो धन पाया सफल है। और मुख पाय, वचन तैं अनेक जीवनके मान खण्डन किये हौंय। पर जीवनकूं कटु वचन कहि दुख उपजाया होय। तथा विरथा—बे प्रयोजन बचन अनर्थ दण्डके उपजावणहारे ऐसे बचन इत्यादिक पापबन्ध करनहारा बचन बोलन सो बचन पाया जैसा नाहीं पाया वृथा वचन है। जिन बचनोंकूं अन्य जीव सुनि साता पावैं। जिन वचनोंकी प्रतीत करि और जीवनकौं स्थिरता होय सुख पावैं। ते बचन दया सहित हिंसा पाप रहित सत्य इत्यादिक जिन देवकी आज्ञा—प्रमाण हित मित बचनका बोलना सो बचन पाया सफल है। ऐसा जानिकैं विवेकी हैं तिनकौं बुद्धि पाय कैं तो जीवाजीवादिक तत्वनका विचार करि बुद्धि सफल करना जोग्य है। और तन पाय तप तीरथ ध्यान करि तन सफल करना भला है। धन पाय दान—पूजादि करि पुण्य उपजावना अच्छा है। बचन पाय हित मित सत्य बोलना और भी इन आदि सुकार्यनमें विषैं शुभ रूप रह कैं, भव सफल करना योग्य है। ऐसा जानना। आगे एते निमित्त, काल—मृत्यु समान जानि तिनमें सावधान रहना ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—दुठणारी सठ मित्तऊ, गूढ जाणंत मंत्र जे भत्तो। अहथत घर विसपाणो, एसहु णमत्ताय द्वार जम्म गेयो ॥ ६५ ॥

अर्थ—दुठणारी कहिये दुष्ट स्त्री। सठ मित्तऊ कहिये मूर्ख मित्र। गूढ़ जाणंत मंतजे भत्तो कहिये गूढ़ बातकौं जो सेवक जानता होय। अहथित घर कहिये, घरमें सपका बास। विषपाणो कहिये, विषका भोजन। ए सहु णमत्ताय कहिये ए सब निमित्त। द्वार जम्म गेयो कहिए काल समानि जानना। भावार्थ—इस जीवके

पाप कर्मका उदय आवै तब ऐसा निमित्त मिलै। जो घर विषैं महा दुष्ट स्वभाववाली कलह कारिणी, विनय लज्जारहित तीक्ष्ण—कटुक बचन भाषणी क्रोधादि कषायन सहित, कामाग्नि जिसकैं तीव्र होय। इनकूं आदि लेकर अनेक अनाचार औगुण करि भरी स्त्री मिलै। सो मरण समान दुख सदीव जानना। तथा आप तो महाविवेकी होय नाना नय-जुगतिका जाननेहारा होय। चतुर, अनेक कलाका धारी धर्म—कर्म कार्यमें प्रवीण होय और जिनसैं सदीव रहना ऐसे मित्र जो आपके पास निरंतर रहैं सो मूरख होंय। तौ आप तौ विचारै कछु भला कार्य अरु मूरख मित्र ज्ञान हीन वह विचारै निंद्यकार्य। अरु समझते नाहीं, कहिये कछू अरु वह मन्दज्ञानी करै कछू। सो ऐसे मूरखके निमित्त तैं विवेकी कौं मरण समान निमित्त है। और कोइ अपनी गूढ़ वारता है जो काहूकौं कहनेकी नाहीं। उस बातकूं कोई जाने, तौ आपकूं दुख होय। और राज-पंच कदाचित् सुनि पावैं तौं दण्ड देय। ऐसी वारता गूढ़ थी सो पहिले कोई चाकरकूं अपना जानि मित्र जानि कही होय। तो वह चाकर मित्र काल पाय जिनका प्रयोजन नहीं सधै, द्वेष रूप होंय। तब ए ही मित्र काल समानि हैं तातैं विवेकी होंय सो स्नेहके वश सेवककौं तथा मित्रकौं अपने घरकी छिपी गूढ़ वारता नहीं जनावैं हैं। जनावैं तो कबहू काल समानि दुखदाता जानना। जा घर विषैं सर्प होय ताही घर विषैं निपदिन रहना होय। तौ कभूं न कभूं मरण होय। तातैं विवेकी जा घरमें सर्प होय तहां नहीं रहै। और हलाहल विषका खावना। सो मरणका कारण है। इत्यादिक कहे जे खोटे निमित्त, सो कबहूं न कबहू मरण करैं तातैं विवेकीनका इतनी जगह सावधानी ही जीतव्य जानना। आगे एती जगह मुनीश्वर नहीं रहैं। अरु रहें तो अपना संयम नष्ट होय ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—जहि मुणि थति णह भूपो, णीरो तण धाण अलप तंह होई। णह धम्मी जण धम्मो, स पुर देसोय तजये जोई ॥६६॥

अर्थ—जहि मुणि थति णह भूपो कहिए वहां मुनिकी स्थिति नाहीं जहां राजा नहीं होय। नीरो तण धाण अलप तंह होई कहिए जल घास अन्न जहाँ थोरा होय। णह धम्मी जण धम्मो कहिए, धरमी जन अरु धर्म जहां नहीं होय। स पुर देसोय तजए जोई कहिए, सो पुर—देश योगीश्वर तजै हैं। भावार्थ—इतनी

जगह मुनीश्वर नहीं रहैं। एकतो जा देश में तथा पुरमें आगे मुनिका वास नहीं होय। जा देश-पुरके बनमें मुनि रहते होंय, तहां रहैं। तथा मुनि थिति करने जोग्य जो स्थान नहीं होंय, तो ता क्षेत्रमें योगीश्वर नहीं रहैं। रहैं तो संयम जाय। और जा देश—नगरका कोइ राजा नहीं होय, तौ ता क्षेत्रमें मुनीश्वर नाहीं रहैं। क्योंकि राजा रहित क्षेत्रनमें प्रजा दुखी होय है। जीवनकी दशा अन्यायी होय, जीव तहां अनाचारी होंय निर्दयी होंय, इत्यादिक अनेक विपरीतता होंय। सो यतीका धर्म तहां सधै नाहीं। न्याय राज्य बिना दुष्ट प्राणी, दीर्घ शक्तिके धारी होंय, सो दीन जीवन कूं पीड़ा देंय। सो दीन जीवनकूं दुख होता देखि, दया भण्डारका हृदय कोमल, सो अशक्तिवानोंका दुख देखा जाता नाहीं। राजा होय तौ हीन शक्तिके धारी जीवनकूं, बड़ी शक्तिका धारी पीडित नहीं करि सकै। और कदाचित् दीनकौं शक्तिवान् सतावैं—दुख देंय, तौ राजा दण्ड देय। और राजा नहीं होय तो प्रजा दुखी होय। सो प्रजाका खेद दया-सागर देखि, दुखी-चित्त होंय। तातैं राज्य रहित क्षेत्र विषैं जतीश्वर नाहीं रहैं। और जिस देश में नदी सरोवर, कूप बावड़ीनका नीर कठिनता तैं मिलता होय। तहां यतीश्वरका धम पलै नाहीं। ऐसे क्षेत्रमें नाहीं रहैं। और जहां तिर्यंचनके तनका आधार जो तिण, सो घासकी बाहुल्यता होय तो पशू साता पावैं, सुखी रहैं। और जहां घासकी उत्पत्ति अल्प होय ताकरि घासके खानेहारे तिर्यंच पीड़ा पावैं। ऐसे क्षेत्रनमें करुणासागर नहीं रहैं। और जिस क्षेत्रमें अन्नकी उत्पत्ति थोरी होय, तहांके जीव सदीव अन्नकी चिन्ता सहित रहते होंय। तो ऐसे क्षेत्र में मुनीश्वरका धर्म, निरावाधा नहीं सधै। तातैं ऐसे क्षेत्रमें दया—भंडार जगत—गुरू यतीश्वर नही रहैं। जिस देश-पुर विषैं सुआचारी धर्मात्मा जीव नहीं रहते होंय, तो यतीके भोजनका अभाव होय। पापाचारी, अभक्ष्यके खानेहारे दया रहित जीवन करि भरया ऐसा कुक्षेत्र तहां जतीका धर्म नहीं सधै। तातैं ऐसे धर्मी जीवन रहित क्षेत्रमें नहीं रहैं। और जहां जिन धर्मकी प्रवृत्ति नहीं होय। जहां जिन चैत्यालयमें जैन शास्त्राभ्यास नहीं होय। तो ऐसे कुक्षेत्रमें मुनीश्वर नहीं रहैं। इत्यादिक कहे जे आकुलताके कारण खोटे स्थान, तहां जगत पीर-हर नहीं रहैं। कदाचित् रहैं तो संयम तैं नष्ट होंय। ऐसा जानना। आगे इन जीवनका विश्वास नहीं करिये, सो बताईये है—

गाथा—णख संगा पसु णदियो, विसदंती सत्थणग तीय मदपायो। कितघण स्वामी दोहो, गभ खल चित्तोय णाहि विसयासो ॥१७॥

अर्थ—णख संगा पसु कहिये, नख सींगके पशू। णदियो कहिये, नदी। विस कहिये, जहर। तथा दंती कहिये, दंतवारे तिर्यंच। सत्थणग कहिये जाके हाथमें नग्न शस्त्र होय। तीय कहिये, घरकी स्त्री। मद्पायो कहिये दारुका मतवाला। कितघण कहिये कृतघ्नी। स्वामी दोहो कहिये, स्वामी द्रोही। गभ खल चित्तोय णाहि विसयासो कहिये गूढ मनका धारी दुष्ट परणामी इन सबका विश्वास नाहीं करिये। भावार्थ—जे जीव नखतैं पर जीवनका घात करनहारे ऐसे रीछ सिंह श्वान मार्जार इत्यादिक दुष्ट तिर्यंच, ऐसे नखी जीवनका विश्वास करना जोग्य नाहीं। और जे जीव सींगन तैं पर जीवनकूं मारै सेऐ भैंसा बृषभ मीढ़ा, मृगादिक, ये तीक्ष्ण सींगके धारी तिर्यंचोंका विश्वास करना जोग्य नाहीं। और आप बहुत ही बलवान् जलका तैरनेहारा होय तौ भी सावन-भादवाकी वर्षान करि चढ्या जो वे-मरजाद जल ऐसी भयानीक नदी बहती होय, ताका विश्वास करना योग्य नाहीं। और महा हलाहल जाके खाये मरण होय। देखे ही प्राण जांय ऐसे विषका, कौतुक मात्र भी विश्वास करि खावना योग्य नाहीं। तथा विषके धरन हारे क्रूर सर्प-बिच्छू आदिक विषवाले जीव तिन विषीनका विश्वास नहीं करिये। और जे जीव दांतन तैं परजीवनका घात करैं काटैं-मारैं ऐसे मगर चीता, ल्याली, स्यार और ये सिंह श्वान दांत-दाढ़ तैं भी मारैं। तातैं सिंह श्वान, सूस, गेंड़ा हाथी इत्यादि जे दन्ती हैं। सो इन दन्ती तिर्यंचनका विश्वास करना योग्य नाहीं। और जाके हस्तमें नगन शस्त्र होय, ताका विश्वास नहीं करिये। और स्त्री का ज्ञान महा शिथिल होय है। ताका चित्त महा चंचल होय। ताके उर विषैं कोई बात ठहरे नाहीं विषयनकी अभिलाखनी कार्य—अकार्यमें नाहीं समझै। इत्यादिक अज्ञान चेष्टा की धरनहारो जो स्त्री पर्याय, महालोभकी धरनहारी, ऐसी स्त्री अपने घरकी भी होय तौ भी ताका श्विास नाहीं कीजिये। अरु मदिरा-पीयी मदके असलसैं बेसुध भया। ताकों भले-बुरेका भेद कछु नाहीं। जाका ज्ञान सर्व भ्रममयी होय गया है। जाकें अपनी परणति अपने वश नाहीं। पराधीन अज्ञान चेष्टाका धारणहारा ऐसा मदोन्मत्त खस समानि बेसुध ताका विश्वास नाहीं करिये। और जे जीव पराए किए उपकारकौं भूलें सो

कृतघ्नी कहिऐ। काहूने भूखेकूं भोजन दिया नंगेकूं वस्त्र दिया। रोग विषैं मरतेकौं अनेक यतन—औषधि करि बचाया। तुच्छ पदस्थ तैं पड़े पदस्थका धारी कीया आदर रहित कूं आदर सहित कीया। निरधनकूं धनवान् कीया। इत्यादिक उपकार जापै किये होंय तौ भी तिन सबकूं भूलि जो दुर्बुद्धि उल्टा द्वेष करै। अरु ऐसा कहै, तुमने कहा किया? हमारे भाग्य तैं भया। तथा हमारी बुद्धिके योगतैं हम सुखी भए व हमने पाया है। ऐसे कहनहारा पराए किए उपकारनका उगलनहारा कहिए तजनेहारा—भूलनेहारा ऐसे कृतघ्नो-पापाचारीका विश्वास नहीं करिये। क्योंकि जानैं अनेक उपकार किए तिसका ही नहीं भया। तो ऐसा कु-बुद्धि जीव औरके अल्प उपकारकौं कहा मानेगा! ऐसा जानि यातैं डरिकर इस कृतघ्नीका विश्वास नहीं करिए और एक स्वामी द्रोही, सो जिस स्वामीके प्रसाद अनेक सुखपाए धन पाया छोटे तैं बड़े होय गए समयपाय उसही स्वामीका द्वेषी होय बुरा चाहे ताकूं दुखदाई होय। ऐसे स्वामीद्रोही अपजसकी मूर्तिअमृत समानि महालोभी ताका विश्वास नहीं करना भला है और जो अपने चित्तकी बारता औरनकौं नहीं जनावै महामूढ़ हृदयका धारी। मनमें और बचनमें और कायमें और ऐसी कुटिल परणतिका धारी। तीव्र माया कषायके उदयका भोगनहारा, दगाबाज ताका विश्वास नहीं करना। ए स्वामी द्रोही है। काहूका मित्र नहीं है। तातैं इस स्वा-मोद्रोहीका विश्वास नहीं करना। और एक दुष्ट है सो पराया सुखकूं देखि आप दुखी होय। पर जीवनकूं दुखी देख आप सुखी होनेहारा, रौद्र परणामी दुष्ट है। सो ऐसे दुष्टका विश्वास नहीं करना। यातैं नखी सीं-गा नदी विषो दंती नगन शस्त्र धारी मदोन्मत्त कृतघ्नी स्वामोद्रोहो दुष्ट स्वभावी इन दश जातिके जीवनका विश्वास न करना सुखकारी है।

इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, अनेक जुगति उपदेश वर्णनो नाम, पच्चीसवीं संधि पूर्ण भयी ॥ २५ ॥

आगे मुखमें मोठा, पीठ तैं द्वेष करनहारा ऐसा मित्र, तजवे योग्य है। सो दृष्टान्त सहित बतावैं हैं---

गाथा—पूठय काजय हंता, पतखो पीय वयण सिरणावो ॥ सय सठ मायापिंडऊ, जय विसकुम्भोय वदन पय जेहो ॥ ६८ ॥

अर्थ—पूठय काजय हंता कहिये, जो पीछे तौ कार्यका घात करै। पतखो पोय वयण सिरणावो कहिये,

प्रत्यक्ष मीठा बोलै, मस्तक नवावै। सय सठ माया पिंडऊ कहिये, सो मूरख दगावाजी का पिण्ड जानना। जय विस कुंभोय वदन पय जेहो कहिये, जैसे मुख पै दूध लग्या विष तैं भर्या कलश होवै। भावार्थ—जो कोई ऐसा दुर्बुद्धि—कुटिल अपना मित्र होय, तो ताकौं पहिचान कैं तजना भला है। कैसा है वह मित्र, पीठ पीछे तौ अपनी निन्दा करै, हाँसि करै। सदीव ऐसा छल देखा करै जाकरि मान खण्ड करै, तथा धन नाश करावै। मारनेकूं, दुखी करवे कं छल देखा करै। इत्यादिक दुष्टता राखै। अरु प्रत्यक्ष मिलै तब मुंह पै हाथ जोड़ि, बारम्बार बहुत शीश नवाय, विनय करै, मिष्ट बचन बोलै, मुख—प्रसन्न करि बातं करै,। स्नेह जनावै, सेवक होय रहै। धरती तैं हस्त लगाय सलाम करै। पुत्र सा होय रहै। किन्तु अन्तरङ्ग की दुष्टता नहीं तजै। ऐसे दुष्ट चित्तका धारी पाखण्डी, मायावी मित्रकूं तजना ही सुखकारो है। कैसा है यह मित्र, जैसे विषका भर्या कलश होय, ताके ऊपर थोरा दूध भर्या होय। सर्व अनजान जीवन कूं, सर्व कलश दूधका भर्या भासै। सो कोई याकौं दूधका भर्या जानि, ऊपरके दूध कूं खांयगा तौ प्राण तजैगा। तातैं वह दूध भी जहर समानि है। तातैं या सर्वही विषका भर्या जानि, तजना भला है। तैसेही अन्तरंग दोष करि भर्या, मुख मीठा, ऐसा मित्र, विषके कलश समानि जानि तजना योग्य है। आगे एती सभा विषैं सभा विरोध बचन न बोलै। ऐसा बतावैं हैं----

गाथा—धम्मसभा णिप पंचय, जाय लोयोय वंधुवगणाणी। इणविरुद्ध वच करई, सचर सठ लोयणिद दुहलेहो ॥ ६६ ॥

अर्थ----धम्म सभा कहिये, धर्म सभा। णिप कहिये, राज्य सभा। पंचय कहिये, पंच सभा। जाय कहिये, जाति सभा। लोयोय कहिये, लोक सभा। वन्धु वगणाणो कहिये, बन्धुवर्गों में। इणविरुद्ध वच करई कहिये, इन विरुद्ध बचन का बोलना। सचर सठ कहिये, सो जीव मूरख। लोयनिंद दूह लेहो कहिये, लोक निन्दा अरु दुख पावै। भावार्थ—विवेकी होंय सो एती जायगा मैं सभा बिरुद्ध बचन नहीं बोलैं। और एती सभान में सभा विरोधी बोलै, ताकं मूर्ख कहिये। सो ही बताइए है। एक तो मोक्ष मारग सूचक धर्म तथा धर्मके कारण जिन धर्म कों सेवनहारे धर्मात्मा जीव। तिन धर्मात्मा जावनकी सभा विषैं सर्व ध-

र्मात्मा जीव धर्मको बढ़ावे कौं, प्रभावना होवे कौं, पुण्य बढ़ावे कूं नाना चरचा करते होवें। तिस अवसरमें सर्व सभाके धर्मात्मा पुरुषों ने ऐसा कह्या, जो यहां कछू द्रव्य लगावना। तथा तन तैं यहां कछू खेद खावना ज्यों पुण्य होय। ऐसा प्रबन्ध विचारया। सो सब कौं परस्पर बूझ चले कि जो धर्मबुद्धि कूं यह उपाय विचारया है, सो इस प्रबन्धमें सर्व प्राणीन कूं रहना योग्य है सो ऐसा सुनि कैं कोई कहै, जो हम काहूके प्रबन्ध में नहीं, अपनी इच्छा होय तैसे धर्म साधन करेंगे जाकौं प्रबन्धमें रहना हो सो रहो, हम नहीं हैं। ऐसी धर्मात्मा-सभाके खंडवे कों मद सहित वचन बोलै, सो महामूरख कहिये। ये धर्म सभा विरोधी वचन महा पाप-फलका दाता, धर्म घातक वचन है। सो धर्मात्मा विवेकी ऐसा नहीं बोलै। धर्मात्मा होय, सो धर्म प्रबन्ध रूप वचन सुनि कैं, हर्ष सहित सर्व कूं ऐसा कहै, जो तुम धन्य हो। भली विचारी। हम आज्ञा प्रमाण सर्व के वचन प्रबन्ध में शामिल हैं। सर्व ने करी, सो हमकूं प्रमाण है। ऐसा वचन सभामें बोलना, उत्तम धर्म फलका दाता, धर्म सभासुहावता होय है। सो ऐसी बोलनेहारा पुरुष प्रसंशा योग्य है। और जो पापात्मा होय, सो धर्म सभा विरोधी वचन बोलै है, सो ये पाप बन्धका कारण है। तातें पाप तैं भय खाय, धर्मात्मा धर्म-सभा विरोधी वचन नहीं बोलैं हैं॥ १ ॥ और राजानकी सभा विषैं वचन बोलिये सो सत्य व विनय सहित, अपने-पराए पदस्थ प्रमाण, राजा आदि सर्व सभा कूं सुहावता वचन बोलना, सो विवेकीका धर्म है। और कदाचित् राजाके अविनय सहित तथा सभा कूं अप्रिय, सभा विरुद्ध वचन बोलै, तो मरणादि दुख कूं प्राप्त होय। तातें राज्य-सभा बिरुद्ध वचन नहीं बोलिये ॥ २ ॥ और पचनमें जहां सर्व पञ्च भले-मनुष्य न्यातिके तथा परन्यातिके मिल, मनसूबा तथा न्याय करैं हैं। तथा कोई प्रबन्ध करते होंय। तहां कोई परस्पर पूछैं हैं। भाई हो, सर्व पंचनका यह प्रबन्ध है। सो इस मनसूबेमें कायम हो अक नाहीं? फलाना जी, पंच तुम पै ऐसा दोष लगावैं हैं। सो ऐसा दंड विचारैं हैं। सो तुमको कबूल हैं कि नहीं? तब विवेकी पुरुष तो ऐसा कहै। कि भाई! हम बड़े हैं, तथा धनवान हैं। तथा राजपंचनमें बड़ा हमारा पदस्थ है तो कहा भया। ये हम कूं दोष है। सो सर्व पंच मिल ठहरावें, सो हमको प्रमाण है। पंचनकी आज्ञा हमारे

शिर पर है। इत्यादिक पंचनकी बड़ाई व अपनी लघुता रूप वचन बोले, सो विवेकी है। सो वचन बोलना, पंचनमें प्रसंशा योग्य है। यश दायक है। और कोई भोरा, मन्द ज्ञान करि, अपयश कर्मके उदय, ऐसा कहै। कि जो हम को दोष लगावै हैं। ऐसे-ऐसे दोष बारे तो हम पंचनमें घने बतावेंगे। हमारे ऊपर कोई दोष लगावेगा तो हमभी पंचन तथा कहनेवारे कूं राजी करोंगा। सर्व पंचनमें लाय ऐसी विपत्ति डारोंगा, सो सर्व घर-धन से जायगा। एक-दोयकी आबरू ले मरूंगा। मोकों दोष लगावनहारा तथा दण्ड देनेहारा कौन है? घनो करोगे तो पंच अपनी पंचायती लेवेंगे। मेरे कछु पंचन तें अटका नाहीं। इत्यादि पंचनमें सभाविरोध वचन बोले, सो जीव अपयशकी मूर्ति, पंचन करि निन्दा पावै है। ताकों महा मूरख कहिये। तातें पंचनमें सभा-विरोध वचन नहीं बालिये ॥ ३ ॥ जहां अपनी जाति इकट्ठी होय, कोई जातिका प्रबंध बांध्या होय। तहां कोई जातिमें प्रवृत्ति नाहीं है। तथा कोई जातिका खान-पान मनें हैं। तथा कोई अभक्ष खान पान मने है। तथा कोई रीतिका वस्त्र-आभूषण राखना मनाहै। तथा कोई व्यापार-वणिज, बांकी पाग बांधना, फेंटाका बांधना, शस्त्रका बांधना, इत्यादिक मलिन-क्रिया खोटा-चलन मनें है। सो काहू तें कोई एक बात अयोग्य बन गई। ताकों जातिके सब पंचोंने बुलाय कें कही। हे भाई, तुमने अज्ञानता करि यह जाति-विरोधी कार्य किया है। सो सर्व जाति तेरे पे दण्ड मांगे है। तैंने पंचनकी मर्यादा उल्लंघन करी है। तातें ये दण्ड देहु। तब जे विवेकी, जाति मर्यादका जाननेहारा होय। सो तो जातिके वचन सुनि कें, आपहस्त जोरि निन्ता करें। जो अयोग्य आचार मोतें बन्या तो सही है। अब जो सर्व जातिकी आज्ञा होय, सो ही मोकों प्रमाण है। अब आगे तें ऐसा आचार-क्रिया नहीं करूंगा। ऐसा वचन सर्व जाति कों सुखदाइ बोलना, सो तो यश पावनेका कार्य है। कोई मूरख होय सो ऐसे कहे, जो हम काहूको चोरी थोड़ी ही करी है। जाति दण्ड देय सो जाति कोई राजा थोरी ही है। ऐसी सीख और काऊकों देय तो देय। हम तो जैसी हमारी इच्छा होयगी तैसा खान-पान, आभूषण-वस्त्र करेंगे। किसका मुंह है सो हमकों मनें करेगा। इत्यादिक जाति विरोधी वचन बोलना सो मूर्खता है। निन्दा पावै है। तातें जाति स-

भामें सभा विरोध बचन नहीं बोलना ॥ ४ ॥ लौकिक विषैं भला कार्य प्रगट होय ताकौं निन्दिये नाहीं और लौकिक विषैं जो कार्य निंदनीक होय, ताकूं अङ्गीकार नहीं करिये सो ताकौ विवेकी कहिये। जैसे चोरी, जुआ, परस्त्री व्यभिचार वेश्यागमन पर जीवघात मद्मांसादि खाना इत्यादिक सप्त व्यसन कारज ये लौकोक कर निन्ध है। सो इनकौं करै अरु ऐसा कहै कि जो हमारी इच्छा होयगी सो करेंगे। हमारा कोई कहा करेगा ऐसा बचन कहै ताकूं मूर्ख कहिये। निन्दा पावै है। तातें लोक निन्ध कारज नहीं करिये ॥ ५ ॥ अपने कुटुम्ब माता पिता पुत्र भाई स्त्री इत्यादिक सज्जन स्नेही बन्धुओंके समूहकौं सुख उपजावै ऐसा बचन बोलै सो तो विवेकी है। और बन्धु विरोध बोलना जो ये सर्व कुटुम्ब मोकौं हन्या चाहै है। मैं जानूं हूं मोहि देखि नाहीं सकै हैं। मेरे सर्व द्वेषी हैं। सो मेरो दाव लगैगा तौ मैं भी सबका घाल करूंगा। तथा मेरे इनपै कहा अटक्या? मेरे पास धन होयगा तो आपही आय: मेरे पांयन परैंगे। इत्यादिक जिनकूं सुनि सर्व कुटुम्बकूं दुख होय। जिन करि सर्व कुटुम्बका मान खण्डन होय ऐसे कुटुम्ब दुखदायक बचन बोलना सो मूर्खता है। तातें कुटुम्ब विरोधी बचन नहीं कहिये। ऐसे धर्म सभा, राज सभा पञ्च सभा, जति सभा, लौकिक सभा, बन्धु सभा इतने स्थान कहे तिनकौं दुखदाई सभा विरोध बचन बोलै तौ इस सभा विषैं पञ्च निन्ध होय, लोक निन्ध होय, बन्धु वर्ग करि निन्ध होय, ये तीन निन्दा लेय पीछे जीवना बृथ है। ऐसा पुरुष जीवताही सर्वकूं मृतक समान भासै है। ताकरि तो यह भव बिगड़ जाय है। और राज सभा विरुद्ध तैं तनका घात धनका घात होय आँगोपांग छैदन होय इत्यादिक होय। और धर्म सभा विरोधतैं पाप बन्ध होय ताकरि नरकादि दुर्गतिके दुख पावै तातैं धर्मात्मा विवेकी दोऊ भवके सुख यशका अभिलाषी होय तिनकौ ऐसा वचन हित-मित सर्वकूं हितकारी बोलना। ऐसा जानि विरुद्ध बचनका त्याग करना जोग्य है। आगे शास्त्राभ्यास करिकैं येते गुण नहीं भये तो वह शास्त्रके अभ्यासका शब्द काकके शब्द समान है। ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—सुत सुणि पथण णयोगा णधम्मो णय सांतरसपाणो। तऊपथण किंहकाजउ वायसइव धुणि थांणि उयलायो ॥ १०० ॥

अर्थ—सुतसुणि कहिये शास्त्र सुनि। पथण कहिए पठन करि णयोगा कहिए नहीं वैराग्य। ण धम्मो

कहिए नहीं धर्म। णायसांतरसपाणो कहिए, नहीं शान्ति रसका:पान। तऊ पथणा किंह काजउ कहिए सो पठना किह काज है ? वायस इव कहिऐ काककी नाईं। धुणिथांणि कहिए धुनि करि। उयलायो कहिए उकलाया। भावार्थ—यह जिनेन्द्र देव करि कह्या जो दयामयी धर्म सहित शास्त्रनका कथन तिनका रहस्य पाय अनेक धर्मधारी जीवनने अपना कल्याण किया। सो ऐसे शास्त्रनका अभ्यास करके तथा सुनि कैं भी जाका हृदय वैराग्यकूं नहीं प्राप्त भया। तो ऐसे शास्त्रके पढ़ने तैं तथा सुनिवे तैं कहा कार्य सिद्ध भया ? और जिन जीवननैं दयामई रस कर भरे ऐसे शास्त्र तिनका अभ्यास करके भी पाप कार्यनतैं भय खाय धर्म रूप नहीं आचरण किया परणति विषैं धर्मकी अभिलाषा रूप नहीं भया। तो ऐसे आगमके अभ्यासका खेद वृथा ही गया। और आप समान सर्व षट्कायक जीव हैं ऐसे भेदका बतावनहारा शास्त्र तिनका अभ्यास करि सुनिकैं भी सर्व आकुलता रहित शान्त रस करि भरचा समता समुद्र ताका अर्थ रूपी अमृतकूं पीय संतोषकूं नहीं पाया। तौ ऐसे शास्त्रनके सभ्यास करि भया जो खेद सो विरथा ही गया। और कर्म नाश मोक्ष विषैं धरनहारा पर वस्तु तैं खेद-छुड़ाय निरबन्ध करनहारा ऐसे शास्त्र तिनके अभ्यास करके भी आत्मीक रस पाय निराकुल दशा नहीं करी तो शास्त्रनके अभ्यासका खेद करि किछू सिद्ध नहीं भया। भो भव्य शास्त्रनका अभ्यास करि नानाप्रकार पठन-पाठन करि अनेक शास्त्र गुरुनके मुख तैं सुनि तिन करि अक्षर ज्ञान तो बहुत किया बांचना भले प्रकार सीखा अनेक छन्द काव्य गाथा संस्कृत, प्राकृत करि देश भाषा करि उपदेश देना भी सीखा इत्यादिक चतुराई तो तैंने सीखी। किन्तु वैराग्य भाव न बढ़ाया। पाप तज धर्म दयामई नहीं सुहाया। और क्रोध-मानादि कषाय बुझाय शान्ति सुधा रस नहीं पिया तो शास्त्रका पठन-पाठन वृथा ही गया। सम्यग्दृष्टीके मूल अनुभवका फल स्वभाव-परभावका निरधार ए सर्व ऊपर कहे जो गुण सो सर्व आत्म-कल्याणके कारण हैं। सो शास्त्राभ्यास तैं होय हैं। शास्त्रनका अभ्यास करि अनेक जीव मोक्ष मारग जानि समता भाव धरि मोक्षकूं पहुंचैं हैं। ऐसे शास्त्रनका अभ्यास करि अनेक खेद खाय पठन करि ऊपर कहे गुण ताकूं प्राप्त नाहीं भया तो सर्व खेद विरथाही गया। जो शास्त्राभ्यास तैं वैराग्य नहीं भया धर्म अच्छा नहीं लाग्या नहीं शान्त भाव भये तो

तेरा शास्त्राभ्यासका शब्द ऐसा भया जैसा दीरघ शब्द करि काक उकलावै है। तैसे इन गुण विना शास्त्रके वांचनेका शोर काक शब्द वत् जानना। आगे मरण हू तैं अधिक निद्राको बतावैं हैं—

गाथा—णिंदा मीच समाणो, मीचोय गभवान्त होई इकवारऊ णिंदो छिंण छिंण घादय णाण आदाए देयगय असुहो ॥१०१॥

अर्थ—णिंदा मीच समाणो कहिये निद्रा तौ मौति समानि है। मोचोय गभवान्त होइ इकवारऊ कहिए मौत एक भवमें एक बार होय। णिन्दो छिंण छिंण घादय कहिये निद्रा छिन-छिन घात करै है। णाण आदाय कहिये इस प्रकार आत्माके ज्ञानकूं घात कर। देय गय असुहो कहिये अशुभगति देय है। भावार्थ—यह संसारी जीव तौ मोहके वशीभूत भये निद्रा कर्मके उदय भया जो आत्माके ज्ञान दर्शनका घात ताके निमित्त पाय आत्मा जड़ समानि होय ता निद्राको प्राप्त भए जीव साता आनन्द भया मानैं हैं। सो हे भव्य ए निद्रा मृतक समानि चेष्टा लिए जाननी। तथा इसे मृतक हूं तैं अधिक दुख दायक जानना। सोही बताईये है। जो मृत्यु है सो तो एक:शरीरके उदय विषैं एक बार आयुके अन्त उदय होय आत्माके दर्शन-ज्ञानकूं घातै है। और निद्रा है सो आत्माका मुख्य गुण ज्ञान-दर्शन ताकौं छिन-छिनमें घातै है। और ए निन्द्रा भले गुणका घाति करि, अशुभ कर्मका बन्ध करि खोटी गति देय है। तातैं निद्राकूं मृत्यु तैं हू दीरघ दुख-दाता जानना। ताही तैं जोगीश्वर निद्राका प्रवेश अपने स्वभावमें नहीं होने देंय हैं ऐसा जानना। आगे दुष्ट जीवनका स्वभाव दृष्टान्त देकर बतावैं हैं—

गाथा—दुज्जण जोंक समभावो इगओयण इग रुधर गह लेई। सथण लगो वा पोसउ णिजणिजपकत्य णाहिको जहई ॥ १०२ ॥

अर्थ—दुज्जण कहिए दुर्जन। जौंक कहिए जौंक। सम भावो कहिए ए एकसे हैं। इग ओयण कहिए एक तौ औगुण। इग रुधर गह लेई कहिए एक रुधिर गहलेय। सथण लगो कहिए थन तैं लागै। वा पोषऊ कहिये भावै पोषै। णिज णिज पकत्य कहिए निज २ प्रकृति। णाहिको जहई कहिए कोई तजता नाहीं। भावार्थ—संसारी जीवनके अनेक स्वभाव होंय हैं तिनमें केतेक ऐसे हैं। जो परकौं दुख दाई दुष्ट स्वाभावीं पर दुख सुखिया पर सुख दुखिया अन्य जीवनकूं दुखो दरिद्री रोगी शोकी भयवान् मान भङ्गी इत्यादिक

असाता सहित देख महा सुखी होंय कोई सुखियाको अच्छी तरह खावता पहिरता अच्छे भोग भोगता, नाचता गावता हँसता रोग रहित धनवान् इत्यादिक प्रकार सुखी देखै तौ दुखी होय। ऐसे पापाचारी दुष्ट अङ्गी रौद्र परिणामीको दुरजन स्वभावी जानना। सो ए दुर्जन स्वभावो अनेक दोषन तैं भरचा है। याका सहज स्वभावही दुराचार है। याकौं शुभ करवेका कोई उपाय नाहीं। याकौं शुभ भी करो तो दोष ही अङ्गीकार करै। इस दुष्टका स्वभाव जौंक समान है। जौंक अरु दुर्जन इन दोऊनका एक स्वभाव है। दुर्जन अवगुणका ही ग्रहण करै है। यह याका सहज स्वभाव ही है। जौंक है सो लोहूका ही ग्रहण करै। इस जौंक का भी यही स्वभाव है। देखो इस जौंकको दूधके भरे आंचल तैं लगावो, तौ दूध तज कैं स्तनका लोहू पीवै। और इस दुर्जनकौं चाहे जेता पोषौ, ताके ऊपर चाहे जेता उपकार करौ परन्तु इसका जब प्रयोजन नाहीं साध्या तबही सर्व गुण भूलि करि औगुण ही अङ्गीकार करै। यह अवगुणग्राही इसका अनादि स्वभाव ही जानना ऐसे जौंक अरु दुर्जन इनकी प्रकृति स्वभाव है। सो अपने स्वभावकूं कोई तजता नाहीं। कोई जतन तैं स्वभाव काहूका पलटता नहीं। सो ऐसा जानि इस दुष्ट जनका संग हेय करना भला है। आगे अपने भावनकी उपराजनातैं ही रोगकी दीरघता होय है ताही कौं बतावैं हैं—

गाथा—कच कच गद विण संखो जे पुव्वो पाय जंतु तण होई। उदय काल अणठो भोगे ण ठयण और को पायो ॥ १०२ ॥

अर्थ—कच कच कहिये, रोम-रोम। गद विण संखो कहिये, अगणित रोग हैं। पुव्वो पाजेय जन्तुतण होई कहिये, अगले भवके उपारजे, जीवके शरीरमें होंय हैं। उदय काल अणठो कहिये, उदय आये अनिष्ट हैं। भोगे ण ठयण औरको पायो कहिये, भोगे ही जांय और कोई उपाय नाहीं। भावार्थ—इन संसारी जीवनके तन विषैं देखिये, तौ एक २ बालके ऊपर अनेक २ रोगनकी उत्पत्ति है। रोम-रोम, रोगन तैं भरया है। सो इस जीवने पूरव भवमें जैसे उपारजे हैं तैसे ही शरीरमें रोग हैं। सो तिष्ठै हैं, सत्तामें बैठे हैं। सो वर्तमान काल तौ कोई ही रोग दुखदाई नाहीं। परन्तु जब अबाधा काल पूरण होय उदय आवैंगे, तब महाभयानीक दुख कूं करेंगे। तब अनिष्ट लागगा। दीरघ वेदना प्रगट होयगी। तिनके आगे, आत्मा दुख भो-

गता-भोगता शिथिल होयगा। अनेक कष्ट उपजेंगे। तिनके दूर करवे कूं कोईको सामर्थ्य नाहीं। मंत्र, तंत्र, जंत्र, देव साधन, ज्योतिष, वैद्यक इत्यादिक सर्व उपाय विरथा होय हैं। तातैं पूरव पाप-परणामनका बन्ध, ताकौं भोगे ही जाय है। और कोई मेटनेका उपाय नाहीं। ऐसा जानि विवेकी धर्मात्मा पुरुषन कूं उदय आई असाता मैं समता सहित दृढ़ रहना योग्य है। आगे और दुखमेटनेका तथा रोगके मेटनेका तौ उपाय है परन्तु कालका उपाय नाहीं। ऐसा बतावैं हैं---

गाथा—खुधा अण तिषणीरो, आमय कुठादि होउ उववारो। अन्तकणह उवचारो, हरिसुर कम्पय दीण लख होई ॥ १०४ ॥

अर्थ—खुधा अण कहिये, क्षुधा कूं अन्न। तिषणीरो कहिये, तृषा कूं नीर। आमय कुठादि होऊ उवचारो कहिये, कोढ़ कौं आदि लेय सब रोगों का भी उपचार है। अंतक णह उवचारो कहिये, परन्तु कालका उपचार नाहीं। हरिसुर कम्पय दीण लख होई कहिये, इन्द्रदेव भी उसे देख, दीन होय कंपायमान होंय। भावार्थ—इस संसार में अनेक वेदना---दुखका इलाज है। परन्तु कालका यतन नाहीं। सो ही बताईये है। बड़ा रोग भूख है, ताका इलाज तो अन्न का भोजन है। ताकरि क्षुधा रोग उपशान्त हो जाय है। और तृषा रोग की औषधि जल है। सो तृषा, जल तैं उपशान्त हो जाय है। और कुष्ट रोग, वायु, पित्त, ज्वर, क्षय, :खांसी, स्वांस इत्यादिक रोगन के जतन कूं अनेक औषधि कही हैं। तिन करि रोग उपशान्त होय है। परन्तु एक काल रोगका उपचार नाहीं। ए काल कोई भी जतन तैं मिटता नाहीं। इन्द्र, देवादि ऐसे भी, कालका आगमन देखि, कम्पायमान होंय हैं। ताका नाम सुनतैं, बड़े २ योधा दीनता कूं धारैं हैं। ताते हे भव्य, इस काल तैं बड़े-बड़े नहीं बचे, तीन लोक में कोई ऐसा स्थाननाहीं, जहां काल तैं बचे। सर्व स्थानकन में जहां जाय, तहां मारै। तातैं हे धरमी, तू काल तैं बच्या चाहै है तो मोक्षके पहुंचने का उपाय करि। तातैं तनका धरना—मरना सहजही मिटै। मोक्षमें काल नाहीं। और मोक्ष बिना सर्व लोक स्थान में, सर्व संसारी तनधारी जीव, कालका भोजन है। आगे इष्ट वियोग कहां है, कहां नाहीं है। ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—इठ व्योगा णठ जोगा, इठजोगा णठ वयोग कव होई। ये भवचर ववहारऊ, सिद्धो विवरीय रहइ इण संगो ॥ १०५ ॥

अर्थ—इठ योगा णठ जोगा कहिये, इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग। इठ जोगा णठ वयोग कव होई कहिये, कबहुं इष्टका संयोग, अनिष्टका वियोग। ये भवचर ववहारऊ कहिये, ये संसारी जीवन का व्यवहार ही है। सिद्धो विवरीय रहई इण संगो कहिये, सिद्ध इन सव तैं विपरीत--रहित हैं। भावार्थ----जे संसारी तनधारो जीव हैं। तिनकौं कबहुं इष्टका वियोग, कवहु अनिष्टका संयोग होय है। तिन करि आत्मा दुखी होय, विकल्प—आरति करि पापका ही वन्ध करै है। कबहू इष्टका संयोग होय है, अनिष्टका वियोग होय है। तब जीव पुण्यके उदयमें हर्ष मानै है। सो ऐसा दुख—सुख संसारी जीवोंका विवहार ही जानना। और ये कहे इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोगादिक दुख सुख सो सिद्धनमें नाहीं। सिद्धन कों इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोगादिक के कारण नाहीं। तातैं कारणके अभाव तैं संसारी सुख-दुख भी नाहीं। तातैं सिद्ध भगवान् सदा सुखी जानना। आगे काल आगे कोऊ शरण नाहीं, एक धर्म शरण है। ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—जम्मण मण जग लगऊ, सुर णर णारय तिरीय कहिं भाजय। सहु अंतक मुह कवलय, एको संणाय धम्म अणिणाहो ॥१०६॥

अर्थ—जम्मण मण जग लगऊ कहिये, जन्म-मरण जग कौं लागा है। सुर कहिये, देव। णर कहिये, मनुष्य। णारय कहिये, नारकी। तिरीय कहिये, तिर्यंच। किंह भाजय कहिये, कहां भागैं। सहु कहिये, सर्वही। अंतक मुह कवलय कहिये, ये सब अंत में कालके मुख का ग्रास हैं। एको संणाय धम्म कहिये, एक धर्म का शरण है। अणिणाहो कहिये, और नाहीं। भावार्थ--शरीर--इन्द्रिय नाम--कर्मके उदय तैं नवीन पर्याय का उपजना, सो तो जन्म कहिये, और उत्पत्ति भई थी जो पर्याय सो अपनी थी, मर्याद पर्यंत रही। पीछे आयुके पूरण होते पर्याय तैं छूट कैं अन्य गति जाना, सो मरण कहिये। इसकी आयु-स्थिति का प्रमाण है। सो समय तैं लगाय घड़ी, पहर, दिन, वर्ष, पल्य, सागर सो ही बताये है। तहां जघन्य युगता असंख्यात समय जाय, तब एक आंवली कहिये। और असंख्यात आवली काल व्यतीत भये, तब एक श्वासोच्छ्वास काल होय है। ऐसे श्वासोच्छ्वासन तैं संसारीजीवन की स्थित है। सो

ये संसारी जीव इस शरीर में इतने श्वासोच्छ्वास रहेगा। सो काय का आयु-कर्म जानना। सो यह पर्यायधारी संसारी जीव, जब अपनी स्थिति प्रमाण श्वासोच्छ्वास भोग चुके हैं, तब मरजाद पूर्ण होते, आत्मा पुद्गलीक शरीरके संग कूं तजै है। ताका नाम विवहार नय करि लौकिकमें मरना कहैं हैं। ऐसे ये जन्म—मरण, इन जगवासी तनधारनहारे जीवन कूं सदैव लगा है। नाना प्रकार भोगनके भोगनहारे, अनेक ऋद्धिके धारी, सागरों पर्यंत जीवनहारे, ऐसे जो देव हैं। तथा नानाप्रकार दुख--सुख करि मिश्रित जीवनहारे, जो मनुष्य पर्याय धारी। अनेक मन--अगोचर दीरघ--दुखन का सागर ऐसी नरक गति है। अल्प-सुख, दीरघ-दुखका स्थान तिर्यंच गति है। ऐसे चारि गतिके जीव समुच्चय अनंत हैं। सो ये जन्म-मरणके दुख से भागकर कहां जांय? सर्व जायगा काल मारै है। तातें ये सर्व च्यारि गति वासी जीवनके तन आकार हैं, सो सर्व कालके ग्रास हैं। भावार्थ—कोई जीव कूं अब, कोई कूं चारि दिन पीछे, काल सर्व कूं खायगा। बचवेका कोई उपाय नाहीं। केवल एक धर्म शरण है, और नाहीं। तातें विवेकी जन जन्म-मरणके दुखन तैं डरथा होय ते भव्यत्मा, धर्मका सेवन करि, सिद्धमें चालो। ये पुद्गलीक तन छोड़ि, अमूर्तीक पद धारो। तहां सदीव सुखी रहोगे। वहां कालका आगमन नाहीं। यहांके शुद्ध अमूर्तीक आत्मा, कालके भय करि रहित हैं। तातें जे च्यारि गतिके मरण तैं भागि, काल तैं बच्या चाहो, तो धर्मका शरण लेहु, और शरण नाहीं। आगे अग्नि भेद तीन प्रकार हैं। सो ये अग्नि काहे-काहे कूं जालै। ऐसा बतावै हैं—

गाथा—सोगोणल जे दभय, दभय जे आतिभाण वहणीए। उपला अयणी दभय, इय त्रय ज्वालाय काय मण दाह ॥ १०९ ॥

अर्थ—सोगोणल जे दझय कहिये, सो शोक अगनि तैं जलै। दझय जे आतिझाण वहणीए कहिये, जे आर्त्तध्यान रूप अग्नि तैं जल्या। उपला अयणी दझय कहिये, जो काष्ठ-छांणैं (कंडा-उपला) क अग्नि तैं जला। इव त्रय ज्वालाय काय मण दाहू कहिये, इन तीन अग्नि कर काय-मन जालै है। भावार्थ--शोक अगनिके वहुत भेद हैं। तहां असाता कर्मके उदय तैं इष्ट वस्तुका वियोग भया। ताके निमित्त पाय, कर्मके उदय करि भई जो मनकी भस्म करनहारी शोक रूपी अग्नि, सो ताकरि दग्धायमान जो जीव, सो सदीव

चिंतावान भया, अशुभ कर्मका बंध करता, दुखी होय। तन दुर्बल होय। तातैं इस शोकको अग्नि कहिये। जैसे अग्निका दग्ध्या पुरुष कूं दुखके आगे अन्न नहीं भावै, निद्रा नहीं आवै। सुखके निमित्त नृत्यादि मिलै तो भी दाहके दुख तैं सुखी नहीं होय। तैसेही शोक-अग्नि करि जाका हृदय जल्या होय, ताकौं शोक तैं अन्न नहीं भावै, निद्रा नहीं आवै। अनेक गीत, नृत्य, वादित्रनके सुखतैं अरुचि होय, सुख न होय। इस शोकके तीव्र उदयमें बुद्धि नष्ट होय। उक्ति-जुक्ति नहीं उपजै है। भला ज्ञानका अभाव होय। पढ्या ज्ञानादिक यादि नहीं आवै। अनेक रोगनकी उत्पत्ति होय। इत्यादि दुख, शोक अगनि करि जल्या, ताकैं प्रगटैं हैं। जाके शोक अग्नि उरमें होय, ताके बाह्य चिन्ह एते होंय, सो कहिये हैं। चित्त तो ताका विभ्रम रूप, भ्रमता होय। गाल पै हस्त देय कैं बैठना। अश्रुपात होना। दीर्घ श्वासोच्छ्वास लेना। रुदन करना। ये सबही कारण दुखके बढ़ावनहारे हैं। ताहीतैं विवेकी समता दृष्टिके धारी धर्मात्मा, इष्ट वियोगमें शोक नहीं करैं। ये तो शोक अग्नि है ॥ १ ॥ अब आर्त ध्यान रूप अग्नि है। सो याकौं, कारण रूपी पवन जब मिलै है। तब प्रज्वलित होय, दाह उपजावै है। सोही कहिये है। जो भली वस्तु गई, ताके विचार तैं आर्त्त अग्नि बढ़ै है। तथा खोटी वस्तुके मिलापकी चिंता, ताके निमित्त तैं आर्त्त अग्नि बढ़ै। तथा रोग पीड़ा काहूकी देख ऐसा विचार उपज्या, जो मेरे रोग न होय तो भला है। तथा मेरो रोग कैसे जाय? ताकी आर्त्त अग्नि प्रज्वलै है। और कार्य किये पहिले, आगामी फलकी आरति। इत्यादिक अनेक प्रकार आरति सोही भई अगनि; सो इस अगनि करि जल्या पुरुष कूं, बड़ा दुख होय। सो इस आरति कौं कैसे जानिये। सो कहिये है। एकान्त बैठना, आरति वाले कूं मनुष्यनकी भीड़ अच्छी नाहीं लागै है। तातैं इकला, एकान्त स्थानमें बैठे। और की बात नहीं सुहावै। शोर होय-बहुत जन बतलावते होंय, सो नहीं सुहावै। चित्त उदास रहै। खान-पानकी अभिलाषा नहीं होय। भोगनमें रक्त-भाव नहीं होय। पुरुषारथकी अति मन्दता होय। आलस भाव शरीरमें प्रमाद होय। इत्यादिक ये आर्त्त भाव हैं। सो सर्व पापबन्धके कारण हैं। तातैं इसे आरति अग्निका दुख विशेष है। यह दूसरी आरति अग्नि है ॥ २ ॥ तीसरी छैंणा-लकड़ीकी अग्नि है।

सो इस अग्नि कूं सर्व संसारी जानें। और याके जालनैं तैं सर्व जीव दुख खाय हैं॥ ३॥ ऐसे ये तीन अग्नि हैं। तिनमें शोक अग्नि अरु आर्त्त अग्नि, इन दोय अग्निको मोही जीव, ज्ञानकी मन्दता तैं नहीं जानें हैं। और ये दो अग्नि जो दाह-दुखा करें हैं। ताकौं भी अज्ञानताकी विशेषतासे नहीं जानें हैं। और जे जिन देवकी आज्ञा प्रमाण चहनेहारे, तत्वश्रद्धानी, शुभाशुभ भाव विकल्पके रहस्य जाननेहारे, समदृष्टी, ज्ञानी हैं आत्म-काया न्यारी-न्यारी। तिन मिथ्या परणतिजारी, सदीव अनुप्रेक्षाके चिन्तवनहारे, जगत दशा तैं उदासी, अल्पकालमें जे जीव शिव जासी, जे अनुभव रसके भोगी हैं, ते इन दोऊ अग्निके भेद-भाव जानैं हैं। सो काष्ठ-लकड़ी की जो उपल अग्नि है। सो तो ऊपर तैं तन कौं जारै है और ये दोऊ शोक व आर्त्त अग्नि हैं। सो अन्तरङ्गमें आत्माके प्रदेशमें दाह उपजाय, मन कौं सदीव दाह करैं। और काष्ठ आदिकी अग्निका जल्या तो एक भवमें दुख पावै। परन्तु शोक व आर्त्त अग्निका जल्या, भव-भव विषैं दुख पावै। तातैं जे विवेकी हैं तिन्हें समतारूपी शीतल-जल लेय करि, शोकादि अग्नि कौं बुझावना योग्य है। इन दोऊ अग्निके जले भवान्तरमें दुख पावें। ऐसा जानि शोक आरति तजना सुखकारी जानना। आगे विद्यादिक अनेक भले गुण है, तिनकौं इन्द्रिय-सुख रूपी ठग हैं, सो ठगैं। सो बतावैं हैं—

गाथा—बोधय तव चारत्तो, संजम झांणोय साम्म पणणो। ए सह्नु गुण जग पूज्यौ, अख सुह वंचय तसयरा बुधे॥ १०८॥

अर्थ—बोधय कहिए ज्ञान। तव कहिये तप। चारत्तो कहिये चारित्र। संजम कहिये, संयम। झांणोय कहिए ध्यान। साम्म परणामो कहिए शान्त परणाम। एसह्नु गुण कहिए ये सब गुण। जग पूज्यो कहिए, जगत पूज्य हैं। अख सुह वंचय तसयरा बुधे कहिए इन्द्रिय सुख है सो इनके ठगनेको चोर समानि जानि, पण्डितजन चेतो। भावार्थ—नान प्रकार शास्त्रनका अभ्यास सो ही भया वाँछित सुखका दाता मोक्ष मारग दिखावे कूं दीपक समान चिंतामन रतन। सो सहज ही स्वर्गादिक सुखका देनेहारा ऐसा जो विद्याभ्यास, जगत पूज्य गुण ताके ठगवेकौं इन्द्रिय जनित सुखकी अभिलाषा चोर समानि है। भावार्थ—ऐसे ज्ञान गुणके धारी ज्ञानी भी कदाचित् इन्द्रिय सुखनकी आरतिमें आपड़ैं। तो वह आरति धर्मशास्त्रनका ज्ञान ठगलेय लूटि

लेय है । तातैं जिनदेव भाषित विद्याका भावी शुभाशुभ पंथका वेत्ता इन्द्रिय जनित सुखनमें धर्म छाड़ि नहीं
जाय है । और अनेक प्रकार दुर्धर तपके धारी तपस्वी अनेक ऋद्धि संयुक्त औरनकूं पुण्य-सम्पदाके दाता,
जगत पूज्य गुण भण्डार ऐसे तपस्वी भी कदाचित् इन्द्रिय सुखनकी लालच करि भोगनकी अभिलाषा करैं २०८
तो तपादिक अनेक गुण सो इन्द्रिय चोर लूटि लेंय हैं। तातैं जो सांचे तपस्वी वीतराग दशाके धारी हैं
सो इन्द्रिय जनित भोग तैं राग भाव नहीं करैं। अपने तप धनकी रक्षा करैं। चारित्र जो पञ्च महाव्रत पञ्च
समिति तीन गुप्ति ए तेरह जाति चारित्र मोक्ष रूपी द्वीपकूं पहुंचावनेकूं जहाज समानि, त्रिभुवनके जीवन
करि बन्दनीक। ऐसे चारित्र रतनके ठिगवेकूं जो इन्द्रिय सुखनकी भावना है सो लुटेरे समानि है। जो ऐसे
चारित्रका धारी यतीश्वर भी कदाचित् अपने धर्म तैं बिछुड़कैं भोगन विषैं आवे तो ताका चारित्र रतन चुराया जाय
है। तातैं जेते चारित्रधारी तपोधनी हैं। ते इन्द्रिय भोगन तें राग भाव तजें हैं। पंचेन्द्रिय तथा मनका जीतन-
हारा षट् काय जोवनका रक्षक संयमी इन्द्रिय संयमी प्राण संयमका धारी जोगी जगत वंदनीक भी भोग
विषैं अभिलाषा करै, तो अपना संयम रतन ठिगावे। तातैं जे संयमके लोभी हैं ते अपने गुणकी रक्षाके हेतु
भोगनकी इच्छा नहीं करैं। और स्वर्गादिकका दाता धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान करि मोक्षका अविनाशी
सुख पावैं। सो ऐसे धर्म-शुक्लध्यानके धारक यतीश्वर भी कवहूं इन्द्रिय जनित सुखके प्रेममें पड़ि जांय तौं अ-
पना ध्यान धन गुमावैं। सो ध्यानी समता रसका भोगी इन्द्रिय सुखकी चाह नहीं करै। और सहज सुधार-
सका स्वादी अनेक तत्त्व विचारके जोर करि कषायनका मद तोड़ करि मोहको निर्बल पाड़ि आप समता सा-
गरमें प्रवेश करि निराकुल तिष्ठनेहारा ऐसा जतीश्वर कदाचित् इन्द्रिय सुखके द्वार सराग चित्त करि निकसै
तौ इन्द्रिय चोर ताका समता धन छिनाय लेय कें भिखारी सा करि डाले। तातैं जे समता रसके स्वादी निरा-
कुल भोगके वांच्छक हैं। ते इन्द्रिय भोगनके मारग भी चित्त कूं नहीं चलावैं। ऐसे कहे जे ज्ञान तप चारित्र
संयम शुभ ध्यान समभाव ये सर्व गुण जगत पूज्य हैं। सो इन गुण रतन ठगवेकूं इन्द्रिय सुख चोर रूप हैं।

तातैं जो अपने धर्म गुणको बचायवेकी चाहि होय,तौ इन्द्रिय भोगकूं धर्मके कालमें नहीं सेवना योग्य है। आगे इष्ट वियोगके दोय भेद हैं सो बतावैं हैं—

गाथा—जुगभे यंठ वियोगो, इकासो इग होय णय आसो। थिति खय विणासउ, आसय जे भिण गमण उ अण ठांणय ॥ १०६ ॥

अर्थ—जुगभे यंठ वियोगो कहिए इष्ट वियोगके दोय भेद हैं। इकासो कहिए एक आशा सहित। इग होय णय आसो कहिए एक बिन आश। थिति खय कहिए स्थितिके चय भए। विणासउ कहिए सो बिन आस। आसयजे कहिऐ आस सहित जो। भिणगमण उ अण ठांणय कहिए और स्थान जानेकूं भिन्न होय गमन करै। भावार्थ—संसार विषैं इष्ट वस्तु चेतन-अचेतन इनका वियोग होय है। ताके दोय भेद हैं। सो [illegible] हैं। चेतन इष्ट जे माता पिता भाई पुत्र स्त्री हाथी घोटकादिक चेतन पदार्थ। इनके वियोगके दोय [illegible] आशा सहित वियोग है और एक आशा रहित वियोग है। तहां जिस चेतन पदार्थ की [illegible] करि जो आत्म पर्याय छोड़ि परलोककों गया सो अब यातै वियोग भया सो अब [illegible] नाहीं। ए तो आशा रहित वियोग है। और कोई अपना इष्ट एक स्थान तैं भिन्न होय [illegible] मिलना सो ये आशा सहित वियोग है। यातैं मिलनेकी आशा है। ऐसे वियोग [illegible] आशा सहित वियोगमें तो अल्प दुख होय है। और आशा रहित [illegible] पदार्थ रतन आभूषण वस्त्र मंदिरादिक काहूकों मांगे दिए होंय। [illegible] भाजन करि धनका वियोग होय सो आशा सहित [illegible] मिलना है और जो धन अचेतन वस्तु चोरी गई होय [illegible] स्थानमें गई ताके आवेकी आ- [illegible] आवनकी हानि है। और जो वि- [illegible] नाहीं है। [illegible] विनाशीक हैं,

दान क[illegible]

सर्वज्ञ-केवली त[illegible]

—जिण गण मुण वच सावय, अत[illegible]

अर्थ—जिण कहिये, केवली। गण [illegible]

कहिये, इनके बचन। अतसय जुय वयण कोई[illegible]

सम्यग्दृष्टी हैं। मिच्छो वच कहिये, परन्तु मिथ्यादृष्टि के [illegible]

कर्मके आधीन हैं। अपनी स्थितिके प्रमाण रहैं हैं। जो भली वस्तु अपने पुण्यके उदय मिलै सो भी अपनी स्थिति प्रमाण रस देय विनस जाय है। स्थितिकी पूरी भए देव इन्द्रकी राखी भी नहीं रहै। और अनिष्ट वस्तुका मिलाप पापके उदय तैं होय। सो ए काहूकी घेरी जाती नाहीं अपनी स्थिति पूरण किए जाय। सो जे भोरे मोही परवस्तुकों अपनी करि दृढ़ राखनेहारा जीव तौ इष्टके वियोगमें महा दुखी होय है। और सांची दृष्टीके धारी परकौं पर जाननहारे तिनकौं खेद भाव नाहीं होय। आगे जैसी परणति विषय कषायमें सांची होय लागै है, तैसे ही धर्म विषय लागै तौ कहा फल होय ? सो बतावैं हैं—

गाथा—जे मण विसय कसायो, जेहो लगाय धम्म कज्जाए। तउ लव काल णरंजण, इंदो अहमिन्द सयल मगलाहो ॥ ११० ॥

अर्थ—जे मण विसय कसायो कहिये, जे मन विषय-कषायमें लगै। जेहो लगाय धम्मकज्जाए कहिये, तैसे धरम कारजमें लगावै। तउ लव काल णरंजण कहिये, तौ थोरे ही कालमें निरंजन होय। इंदो अहमिंद सयल मगलाहो कहिये, इन्द्र अरु अहमिंद्र सम्पूर्णके सुख सहज ही राहमें प्राप्त होंय। भावार्थ—जीवन कीसंसार विषैं अनेक परणति है। सो अनादि कालका भूल्या ये जीव, धर्मके स्वाद कूं नहीं जानै। अनंतकालका विषय कषाय मोहित जीव, गति-गतिमें भ्रमणनेहारा प्राणी, इद्रिय-सुख कूं बहुत चाहै है। परन्तु जगवासी जीवका चित्त, जैसे विषय—कषायमें रंजायमान होय, एकाग्र लागै है। तैसाही यदि धर्म विषैं एकचित्त होय लागै, तौ अल्पकालमें ही सिद्ध-निरंजन पद पावै। तहां अनंतकाल सुखी रहै। और इन्द्रपद, अहमिन्द्र पद जो नव ग्रीवक, नव अनुत्तर, पंचपञ्चोत्तर इन कल्पातीत देवनके सुखतो सहजही राहमें आय, प्राप्त होंय हैं। तातैं विवेकी जीवन कौं विषय—कषाय तजि धर्म विषैं लागना योग्य है। आगे ऐसा कहैं हैं जो कृपण अपने तन कौं ठगै है—

गाथा—किप्पण णिज तण वचय, वंचय सुयपणण जणक तीए मित्तोय। तण दे तण णह दाणो, धम्म रहीयो मित्य काय सम जीवो ॥ १११ ॥

अर्थ—किप्पण णिज तण वञ्चय कहिये, सूम अपने शरीर कौं ठगै है। वंचय सुयपणण कहियें, अपनी जननी कौं ठगै। जणक कहिये, पिता। तीए कहिए स्त्री। मित्तो कहिये, मित्र। इनकौं ठिगै है। तणदे तण-

गाह दाणो कहिये, तन देय परन्तु तृणका दान नहीं देय। धम्म रहीयो मित्य काय-सम जीवो कहिये, धम करि रहित जीव मृतकके शरीर समानि है। भावार्थ—जे जीव महा कृपण मनके धारी सूम हैं। सो अपने तन कौं आदि लेय सर्व कुटुम्ब कौं ठगैं हैं। सो ही बताईयें है। अपने तन निमित्त अल्प-भोजन रस-रहित खाय, पेटमें भूखा रहै। लोभी उदर-भर भोजन नहीं करै, भूख सहै। शीत-कालमें तनपै मोटा वस्त्र सो भी अल्प, साता तैं सम्पूरण तन नहीं ढकै, शीतकी वेदना सहै। घास, लकड़ी जलाकर तातैं तन तपाय, शीत-काल पूरण करै, बहुत कष्ट सहकैं दिन बितावै। दाम-दाम जोड़ि साता मानै। ऐसे तन कूं कष्ट देय। जा तन तैं भार बहि-बहि, मजूरी कराय धन कुमाया, ताही तन कौं नहीं पोषै। पेट भर भोजन नहीं देय। ऐसा लोभी अपने तन कूं ठगनेहारा कहिये। और पुत्र है सो भूखका मरया रुदन करै। औरके बालक अच्छा खाय पहरैं; तिनकौ देखि याकै पुत्र यापै अच्छा खान-पान माँगैं—तरसैं, परन्तु ये लोभी दया रहित भोजन नहीं देय, तब पट-भूषण कहां से पावैं। ऐसे ये सूम, पुत्र कूं ठगनेहारा कहिये। और या सूमकी माताने, नव मास पेटमें राखा था। ऐसी माता, पुत्र पै भला भोजन-वस्त्र माँगै। कहै हे पुत्र, अपने घरमें धन अटूट है। अरु तूं हम कौं पेट भर अन्न भी नहीं देय। सो हे पुत्र, हम ऐसा किसकूं कहैं? हमकौं भूख रहै है, शीत वेदना रहै है, अग्नि तैं ताप, दिन—रात काटैं, सो तोहि दया नाहीं आवै है? ऐसे वचन माताके सुनि कैं सूम अगल-बगल हो जाय। सुनि-अनसुनी करै। परन्तु दाम एक भी नहीं देय। सो माताका ठगनहारा कहिये। और इस सूमका पिता, सो ताने बड़े २ कष्ट सहकैं, द्वीप-सागरन उद्यान-नगर-देशनमें गमन करि-करि अनेक भूख-प्यास सहकैं, पापारम्भ ठानि अनेक द्रव्य उपार्ज्या। जब जानी कि मेरो पुत्र नाहीं, सो धन घर सोहता नाहीं। तब पुत्र बिना, धन-सम्पदा वृथा जानता भया। तब पुत्रके निमित्त अनेक कुदेव-कुभेष पूजे। अनेक मंत्र, तंत्र, यंत्र, करि-करि पापारम्भ बांध्या। और—और व्याह किये। अनेक स्त्री परन्या। तब कोई कर्म जोग तैं एक पुत्र भया। तब पिता बहुत सुख किया। याचकिन कूं मन-वांछित दान दिये। पुत्र जन्मका बड़ा उत्सव किया। पीछे अनेक भले-भोजन लाय पुत्र कूं दिया। अनेक पट-भूषण देय, लाड़िला

राखा। ऐसे जतन करि बढ़ाया, तरुण किया। आप केतेक दिनमें वृद्ध भया। तनकी शक्ति घटी। पुत्र बालक था सो अब तरुण भया। तब पुत्रका व्याह करि घरका धनी कर्‌या। सर्व घरका धन धान्य पुत्र ने पाया। अब पिताका तन, दीन भया। इन्द्रिय बल घट्या। तब पुत्र पै भला भोजन माँगै, सो नहीं देय। वस्त्र मांगै, नहीं देय। देय तो तुच्छ देय या बहकाय देय। सो अपयशकी मूर्ति, लोभी पुत्र, पिताका ठगनेहारा कहिये। और अपनी स्त्री, भला भोजन-वस्त्र-आभूषण मांगै। कहै हे पति, औरनके घरकी स्त्री देखो, भला खाय-पहरैं हैं। अरु तुम्हारे घरमें बड़ा धन है अरु हमारा यह हवाल है। जो अन्न, तन कौं तो देय। ऐसे दीन वचन स्त्री कहै। परन्तु यह लोभी स्त्री कूं भी नदेय। सो स्त्रीका ठगनेहारा कहियै। और अपने मित्रनकी मजलसमें जाय, सो उनका धन तो आप खाय आवै। अरु अपना धन मित्रन कूं नहीं खुवावै। सो मित्रनका ठगनेहारा कहिये। ऐसा कृपण, अशुभ परणतिका धारी, दयाभाव रहित है। ये कठिन उरका धारी सूम, सो मरै, अपना तनका घात करै, परन्तु दानके निमित्त घासका तिनका नहीं देय। ऐसा सूम, निर्लज्ज, दुर्भागी, निंदाका पात्र, धर्म भावना रहित, जीवत ही मृतक समानि जानना। भावार्थ—ऐसे इस जीवका जीवना त्रिथा है। ये सूम जैसा जीया तैसा न जीया। आगे भिक्षुक है सो मांगनेके मिस करि, मानूं घर घर उपदेश ही देय है। ऐसा बताईये है—

गाथा—भिक्षक घय घय वोधय, भो सत पुंसाह देह धग दाणं। विण दीए मम जोवो, लहुवण 'वारवार जाचंनी ॥ ११२ ॥

अर्थ—भिक्षक घय घय वोधय कहिये, मंगता घर-घर उपदेश देय है। भो सतपुंसाह कहिये, भो सत्पुरुष हो। देय धन दाणं कहिये, धग कौ दानमें देओ। विण दीए मम जोवो कहिये, बिना दिये मोकों देखो। लहुवण कहिये, मैं तनक सा होय। वारवार कहिये, घड़ी घड़ी। जाचंनी कहिये, मांगों हो। भावार्थ—ए रंक जो भिक्षा मांगनहारे—मंगता, घर घर विषैं भूखके मारे याचते फिरैं हैं। सो आचारज कहैं हैं। ए रंक आप जाँचैं नाहीं हैं। मानूं कृपण, कठोर चित्तके धारी, दया रहित जीवन कूं अपनो दशा दिखाय, उपदेश ही देय हैं। तिनके निमित्त ए भिक्षा मांगनेहारे घर-घरमें ऐसा कहते फिरैं हैं। हे धर्मात्मा पुरुष हो!

तुम्हारे पास धन है सो ताकौं दानमें लगाओ, दान कूं करो। नहीं तो पीछे हमारी सी नाईं पछतावोगे। बिना दान दिये, हम को देखो। हमने पूरव भवमें धन पाया, परन्तु दान नहीं दिया। सो अब या भवमें पेटभर भोजन नाहीं। तन पै ढाँकने कूं वस्त्र नाहीं। महा अपमानित भये, दारिद्रके जोग करि दीन होय, रंक भये घर--घर अन्न के दानो याचैं हैं, तौ भी उदर नाहीं भरै है। सो हे सत्पुरुष हो, हमने या बात सत्य मांनी। जो लौकिक में ऐसी कहैं हैं कि जो दिया सो पावै, बिना दिये हाथ नहीं आवै। सो अब हमने निश्चय जानी प्रतीत, आई कि जो हमने पूरव--भवमें नहीं दिया, तातें लाचार-असहाय होय बारम्बार कहिये घड़ी-घड़ी याचैं हैं। तथा वार-वार कहिये घर-घरके वारने नगर में माँगते फिरैं हैं। तथा बार-बार कहिये हमारा बाल-बाल अशीष देय भिक्षा मांगैं है। तथा बार-बार कहिये अपने घर तैं बाहिर याचैं हैं। तथा बार २ कहिये बायर-बायर करि पुकारैं, शोर करि याचैं हैं। तौ भी उदर नहीं भरै है। तथा वार-वार कहिये, नीर-नीर प्यावो, मारे प्यासके प्राण जांय हैं। सो पानी पियावो, पानी पियावो। ऐसे दीन भये तृषाके दुख तैं पुकारैं हैं सो पापके उदय, कोई जल भी नहीं देय। ऐसे हम बिना दिये, कहां तैं पावैं ? महा दुखी भये फिरैं हैं। तातें हे भव्य हो, बिना दान दिये, हमारी सी नाईं दुख पावोगे। अरु हमारी नाईं, पीछे पछताओगे। तातें अब कछु दान देने की शक्ति होय, तो दान करतैं मति चूकौ। ऐसे ये रंक हैं सो भिखारी का भेष करि, मानो उपदेश ही देंय हैं। या भांति भिखारीका दृष्टांत देय, दान का मार्ग बताया। तातैं जो विवेकी हैं सो अवसर पाय, तिन कूं दान देना योग्य है॥ ११२॥

आगे सर्वज्ञ-केवली तैं लनाय सम्यग्दृष्टी के अरु मिथ्यादृष्टी के वचन-उपदेश विषैं, अन्तर बतावैं हैं—

गाथा—जिण गण मुण वच सावय; अतसय जुय वयण होय समदिट्ठी। मिच्छो वच त्रिण अतसय, इम णिप्प रंकेय वयण भेयाय॥ ११३॥

अर्थ—जिण कहिये, केवली। गण कहिये, गणधर। मुण कहिये, मुनीश्वर। सावय कहिये, श्रावक। वच कहिये, इनके बचन। अतसय जुय वयण कहिये, अतिशय सहित वचन। होय समदिट्ठी कहिये, ये सम्यग्दृष्टी हैं। मिच्छो वच कहिये, परन्तु मिथ्यादृष्टि के बचन। विण अतसय कहिए, बिना अतिशय

हैं। इमि कहिए, जैसे। णिप्प कहिए, राजा। रंकेय कहिए, रंक के। वयण भेयाय कहिए, वचन का भेद है। भावार्थ—जे वचन अतिशय सहित होंय, सो वचन तो सत्यपणे कूं लिए हैं। तातै तिन वचन का धारण किये तो तत्वज्ञानी होय है। और जे वचन अतिशय रहित होंय, तिन वचनों तैं तत्वज्ञानी नहीं होय। सो ही कहिये है। जो केवल ज्ञानी सर्वज्ञ भगवान के वचन की धुनि सुनतैं ही श्रवण पवित्र होंय, पापका नाश होय। तत्वज्ञान के भेद कौं दिखावै है। ऐसे भगवान अन्तरजामी के वचन, अतिशय सहित हैं। और इन्हीं भगवान के वचन-प्रमाण अर्थ कौं लिए, च्यारि ज्ञान के धारी गणधर देव के वचन प्रमाण हैं। ये वचन अतिशय सहित हैं। ताते सत्य हैं। और इनहीं गणधर देवके वचन-प्रमाण अर्थ सहित प्ररूपे जो आचार्य, उपाध्याय, साधु मुनिराज इन योगीश्वरों के वचन है, सो अतिशय सहित हैं। तातैं प्रमाण हैं। और इनही आचार्यन के अर्थ कूं लिये, इनके प्रमाणे कूं लेय भाषे, पंचम गुणस्थान धारी श्रावक तिनके वचन, अतिशय सहित हैं। तातैं प्रमाण हैं। और इन्हीं केवली, गणधर, आचार्य इनके भाये अर्थ, तिनही प्रमाण अर्थ का धारण करणहारे चतुर्थ गुणस्थान के धारी सम्यग्दृष्टी जीवनके वचन, देव-गुरुके कहे अर्थ प्रमाण हैं। तातें अतिशय सहित हैं। ऐसे जिन वचन, गणधर वचन, आचार्य मुनिके वचन श्रावक सम्यक् धारी के वचन असंयमी यती के वचन, ये सर्व सम्यग्दर्शन के धारी हैं। सो इन सर्वके वचन यथायोग्य अतिशय सहित हैं। सो हो कहियो हैं। केवली तीर्थंकर के वचन, अनक्षर मेघ-ध्वनि समानि हैं। तिसके सम्बन्ध से देव मनुष्य, तिर्यंच ये तीन गतिके जीव इनके श्रवण निकट तिष्ठते पुद्गल स्कन्ध, सो अक्षर रूप सहजही परणमें हैं। ताकरि ये सर्व उन्हें अपनी भाषारूप समझ लेय हैं। ऐसा अतिशय तो भगवान के वचन विषैं है। और गणधर देवके वचन, अक्षर रूप हैं। सो तिनका विश्वास तीन लोकके जीवन को होय। तिन के श्रवण किये, पापका नाश होय। ऐसे इन गणधर देवके वचनका सहज स्वभाव ही है। ऐसे अतिशय गणधर देव के वचन का है। मुनीश्वरों के वचन राग-द्वेष रहित, सरल, मिष्ट, सर्व जीवन कूं सुखकारी हैं। तातैं इनकी भी प्रतीत कर, सर्व जीव-धर्म-सन्मुख होंय। ऐसा अतिशय, मुनिके वचन

का जानना। और श्रावक-व्रती अरु असंयत सम्यग्दृष्टी, ये भी केवली के वचन-प्रमाण अर्थ कूं लिए उपदेश करैं हैं। तातैं इन तत्वज्ञानी के वचन भी सर्व धर्मी जीवन कूं, प्रतीति उपजावैं हैं। तातैं ये भी अतिशय सहित हैं। और मिथ्या दृष्टीके वचन जिन-भाषित-अर्थ रहित हैं। तातैं असत्य हैं। अतत्वके प्ररूपणहारे, राग द्वेष-सहित हैं। तातैं अतिशय रहित हैं। अप्रमाण हैं। ऐसा जानना। जैसे राजा का वचन जो निकसै, सो सर्व कौं प्रमाण है। सत्य है। सर्व अङ्गीकार करैं हैं। और भूपका वचन उल्लंघन किये दण्ड पावै दुखी होय। भूपकी आज्ञा मानै, सुखी होय। तैसे सर्वज्ञ भगवान्, जगतका राजा। ताके वचन प्रमाण चालै, सुखी होंय। जिन-वचन उल्लंघन किए, पाप बन्ध होय। दुख उपजै। तातैं राजाका वचन अतिशय सहित है। और रंकका वचन अतिशय रहित है। रंक काहूके ऊपर कोप करै, तो कछू होता नाहीं। तथा कोई पर राजी होय, तो कार्यकारी नाहीं। रंक कहै, तेरा घर लूट लेहों। तो यातैं घर लुटता नाहीं। और रंक कहै कि राजपद दे देहों। तो राज्य मिलता नाहीं। तातैं रंकका शुभाशुभ वचन बोलना, वृथा है। रंकके वचनमें अतिशय नाहीं। तैसेही अतिशय रहित मिथ्यादृष्टीके वचन, असत्य, अप्रमाण, रंकके वचन समानि निरर्थक, पापकारी, अतत्वश्रद्धान सहित हैं। तातैं मिथ्यादृष्टी, मिथ्या श्रद्धानीके वचन अप्रमाण पापकारी जानि, ग्रहण नहीं करिये। ये भले फल रहित, सुखकारी नाहीं। जैसे कोऊ राजाकी सेवा करि ताकौं राजी करिये। तो राजी भये कबहूं दारिद्र खोवै। धन देय, ग्राम देय, सुखी करै। तातैं राजाकी सेवा तो, शुभ फलदायक है। और कोई रंककी अनेक प्रकार सेवा करि, रंक कूं रिझाय, राजी करै। तो सेवाका फल विरथा जानना। वह रंक आपही दरिद्री-भूखा है, दुखी है। तो और कौं कहा सुखी करैगा? तैसे ही तीन लोकके राजा इन्द्र, चक्री, धरणेन्द्र हैं। सो इन राजानके राजा भगवानकी जो सेवा करैं, तौ सुखी होंय। तिनके वचन प्रमाण करि चालै, तौ देव सुख, इन्द्र सुख, चक्री सुख, खगपति सुख, मण्डलेश्वर राजा आदि अनेक पदके सुख निश्चय ही पावै है। और मिथ्या श्रद्धानीके बचन प्रमाण चालै, तौ सुख

नाहीं। ऐसा जानि मिथ्या वचन, शुभ भावना रहित, इनका विश्वास नहीं करना। ये अतिशय रहित हैं। सम्यक् सहित श्रद्धावानके वचन सुखकारी हैं। ये अतिशय सहित वचन जानना ॥

इति सुदृष्टि तरङ्गणी नाम ग्रन्थ मध्ये, हितोपदेश कथन वर्णनो नाम, छब्बीसवां पर्व सम्पूर्ण ॥ २६ ॥

आगे षट् लेश्या कथन बताईये है—

गाथा—किण्हं णील कपोतय असुह लेष्साह जीय पण्णामो। पीता पम्मा सुक्का ये सुह लेस्साय होय खण भेया ॥ ११४ ॥

अर्थ—कृष्ण, नील, कपोत ये तीन अशुभ लेश्या हैं। पीत पद्म शुक्ल ये तीन शुभ लेश्या हैं। भावार्थ—ऐसे जीवके अशुभ—शुभ परणामपर षट् भेद लेश्याके हैं। योग अरु कषायके मिलाप तैं शुभाशुभ जीवकी परणतिका होना सो लेश्या है। सो इनका स्वरूप कहिये है। जहां बड़ा क्रोधी होय। वेर नहीं तजे। परके बुरा करवेका सहज स्वभाव होय। महा दुष्ट परणामी होय। स्वामो--द्रोही होय। माता-पितादि गुरुजनकी आज्ञा तैं विमुख होय। अविनयी होय। और देव गुरु धर्मकी आज्ञा तैं प्रतिकूल होय। राज विरोध क्रियाका करनहारा होय। जुआ आमिष (मांस) मदिरा वेश्या घर गमनी जीव घाती चोर परस्त्री लम्पटी इत्यादिक सप्त व्यसन कर रंजायमान पापाचारी अनेक दोषनकी मूर्ति ऐसे अशुभ भाव जाके होंय। सो इन लक्षण सहित जे जीव भाव सो कृष्ण लेश्या है। तथास्वेच्छाचारी स्वच्छन्द होय। तथा धर्म क्रिया विषैं प्रमादी होय। मन्द बुद्धि, आलसी शिथिल शब्दी होय परके किये गुणका लोपनहारा कृतघ्नी होय विशेष ज्ञान कला चतुराई करि रहित होय। पंचेन्द्रिय विषयका लोलुपी होय। महा मानी होय। अत्यन्तगूढ़ चित्तका धारी होय मायावी होय जाके चित्तकी और नहीं पावे। इत्यादिक चिन्ह कृष्ण लेश्याके जानना इति कृष्ण लेश्या ॥ १ ॥ आगे नील लेश्या बहुरि जाकैं बहुत निद्रा होय परके ठगवेकी कला चतुराईमें प्रवीण होय तथा और सीखवेकी वांच्छा होय। और अत्यन्त लोभके उदय सहित धन-धान्यादिक इकट्ठे करिवेकों अनेक आरम्भ करता होय। और काम चेष्टा करि बहुत ही विकल होय इत्यादिक लक्षण जाके होंय सो नील लेश्या है। इति नील लेश्या ॥ २ ॥ आगे कापोत तहां औरनकौं दोष लगावैका सहज स्वभाव होय। अनेक नय जुगति देय

परकी निन्दा करनहारा होय । जो हँसि-हँसि पराया बुरा करै। पराई निन्दा करै चुगली करै। ऊपर तैं विनयवान् होय अन्तरङ्गमें पराया बूरा चाहै । बुरा करवेका उपायी होय। परकौं भला खाता-पीता पहरता देखि आप खेद पावै । परकों सुखी देख नहीं सुहावै । परके दुख करवेकौं अनेक उपाय करता होय । सदीव जाका चित्त शोक रूप रहता होय । जाके निरन्तर भय रहता होय । और परका अपमान करिं सुख मानता होय । अपने मुखतैं अपनो बहुत प्रसंशा करता होय । आप जैसा पापी चोर असत् मारगी और कौं जानि कोईका विश्वास नहीं करै । आपकी बड़ाई करै खुशामद करै ताकौं राजी होय धन देवै । अपने पराये हेतु कौं नहीं समझै । युद्ध विषैं मरणकी जाकी इच्छा होय इत्यादिक चिन्ह जाके होंय सो कापोत लेश्या जानना । इति कापोत लेश्या ॥ ३ ॥ आगे पीत लेश्या तहां कार्य-अकार्यकौं समझै । खाद्य-अखाद्य कौं भी जानैं । भोगवे व नहीं भोगवे योग्य वस्तुकौं जानैं । षट् द्रव्य गुण पर्यायका जाननहारा होय । सर्व पदार्थनमें समता होय । पूजा जप तप, दान विषैं प्रीतवान् होय । दया धर्म चलावेका अधिकारी होय। मन-बचन-काय करि कोमल होय । इत्यादिक लच्चण सहित होय सो पीत लेश्यी जीव है । इति पीत लेश्या ॥ ४ ॥ आगे पद्म लेश्या तहां भद्र परिणामी होय । त्यागी होय । भले कार्य रूप भाव होंय । महाव्रत-अणुव्रतका वांच्छक होय । सिद्ध क्षेत्र तीर्थ वन्दनाका अभिलाषी होय । पंच-परमेष्ठीकी पूजा विषै उत्सववन्त होय । कष्ट उपद्रव भये धीर बुद्धि होय । देव-गुरु आदिका भक्त होय । इत्यादिक शुभ चेष्टा सहित जाके लच्चण होंय सो पद्म लेश्यी है । इति पद्म लेश्या ॥ ५ ॥ आगे शुक्ल लेश्या-तहां पक्षपात करि काहू कूं बुरा नहीं कहै । सर्व जीवन पै दया करि मैत्री भाव राखै और इष्ट-अनिष्टमें बहुत राग-द्वेष नाहीं करै । और कुटुम्बादिक तैं अल्प राग करै । धर्मी जीवन विषैं प्रीतिवान् होय । इत्यादिक लक्षण सहित होय सो शुक्ल लेश्या है । इति शुक्ल लेश्या ॥ ६ ॥ आगे लेश्यानके भावका स्वरूप कहैं हैं । तहां लेश्या द्रव्य और भाव करि दोय भेद रूप हैं तहां जैसा शरीरका वर्ण होय सो तो द्रव्य लेश्या है । जीवके जैसे भाव होंय सो भाव लेश्या है । सो तिन भाव लेश्याका दृष्टांत दिखाय भावनकी लेश्या प्रगट करैं हैं । तहां एक बनमें लकड़ी काटनहारे षट् पुरुष आये । सोतिन सबनके पास कुठार हैं । सो एक

आमके वृक्षके नीचे घनी छाया देख बैठ गये। तब एक पुरुष बोल्या कि भाई, भूंख लागी है। तब तिनमें एक कृष्ण लेश्यी जीव बोला कि भाई जो अपने पे कुठार हैं। सो इस आम पे जो फल लगे हैं। सो लग जावो। मारे कुठारनके आमकूं पीण तैं काटो सो सबके पेट भरें। ये तौं कृष्ण लेश्यो है ॥ १ ॥ दूसरा बोल्या जो पीड़ तैं काहेकूं काटो वृथा वृक्षका खोज मिट जायगा। तातैं। आधा एक तरफ तैं बड़ी साखा काटो सो सब खांयगे। अपन-लायक वहुत हैं। ये नील लेश्यी है ॥ २॥ पीछे तीसरा बोल्या जो आधा गिराये सूं वृथा वृक्ष-की शोभा जायगी तातैं एक छोटी शाखा काट लेऊ। सो अपनकौं वहुत हैं। ऐसा कापोत लेश्यी है ॥ ३ ॥ तब एक बोल्या, जो शाखा काहे कौं काटो। झूमके-झूमके तोड़ो सो खाय लेय हैं। ये पीत लेश्यी है ॥ ४ ॥ तब पंचम पुरुष बोल्यो जो झूमकेनमें कच्चे-पक्के सब ही हैं। तातैं पके आम तोड़ लेउ और अपनी क्षुधा मेटो। ये पद्म लेश्यी जानना ॥ ५ ॥ तब षष्टम पुरुष बोल्या। हे भाई हो इस वृक्षकूं काहे कौं सतावो हो भूमि विषैं अपने खाने योग्य तो वहुत पड़े हैं। सो पके पके खाय कपनी भूख मिटावो। ये शुक्ल लेश्यी है ॥ ६ ॥ ऐसे षट् प्रकार भाव भेद जानना। इन परणामन करि अपने तथा परके परणामनकी परीक्षा करि लेश्याके अन्तरङ्ग भाव जानना। सो अशुभ भावनके वेग कूं पहिचान, तजना योग्य है। ऐसे भेद ज्ञानी जड़—भाव तजि चैतन्यके विकल्प जानि अशुभता तजि, शुभभाव रूप रहना विचारैं हैं। इति षट् लेश्या। आगे नव भेद योनि कथन—

गाथा—संवत्त सीत सचितो, मिस्सो सेताण जोणि णव.भेयो। सलय कुम्मो वंसय, तीए गम्भो समुच्छ उववादो ॥ ११५ ॥

अर्थ—संवत्त कहिये, संवृत। सीत कहिये शीत। सचितो कहिये, सचित्त। मिस्सो कहिये, मिश्र। सेताण कहि-ये इन तीननकी प्रतिपक्षी। जोणि णव भेयो कहिये इसप्रकार योनिके नव भेद हैं। संखय कहियो, शंखा योनि। कुम्भो कहियो, कूर्म योनि। वंशय कहिये, वंशा योनि। तीए गम्भो कहिए ए तीन भेद गरभजके हैं। समुच्छ कहिए, और सम्मूर्छन योनि। उववादो कहिए तथा उपपाद योनि। ऐसे योनि भेद कहे। सो प्रथम गभजके तीन भेद कहिए हैं शंखा योनि वंशा योनि कूर्म योनि ए तीन गर्भजके और नव भेद ऊपर कहे और सम्मूर्च्छन

उपपाद सो इन सबका स्वरूप सामान्य सा कहिए है। तहां तीन भेद गरभजके हैं। सो तिन योनिमें कौन कौन उपजैं सो कहिए है। तहां जा स्त्रीकी शंखावर्त नाम शंखके आकार योनि होय तामैं पुरुषका वीर्य नहीं ठहरै। सो स्त्री जगमें वन्ध्या कहावै ॥ १ ॥ वंशपत्र योनि जा स्त्रीकी होय तामैं सामान्य पुरुष उपजैं। पद्वी धारक तीर्थंकरादि महान पुरुष नहीं उपजैं ॥ २ ॥ कूर्मोन्नत योनि जो कछुवाके आकार जा स्त्रीकी योनि होय तामें तीर्थंकरादि महान् पुरुष उपजैं हैं। सामान्य पुरुष इस योनिमें नाहीं उपजैं ॥ ३ ॥ ए तीन भेद गर्भजके हैं। तहाँ माताका श्रोणित व पिताका वीर्य ए दोऊ मिल गर्भसूं उपजै, सो गर्भज कहिए। माता-पिताके निमित्तबिना जाकी उत्पत्तिहोय सो सम्मूर्च्छन कहिए सो वादर सम्मूर्च्छन जीवनकी उत्पत्ति तौ पृथ्वी आदिके आश्रय तैं होय और सूक्ष्म जीवनकी उत्पत्ति विना सहाय आकाशमें होय। सो ए सूक्ष्म सम्मूर्च्छन जन्म जानना देवनकी उत्पाद-शय्या रतनमई कोमल सुगन्धित शय्या तामें देवनका जन्म होय। नारकीनके उपजनेके स्थान महा दुर्गंधित, घिनावने अनिष्ट ऊंटके मुखाकार नर्कक्षितिके लूमते घटाकारवत् स्पर्शकूं धरै, सो नारकीके उपजनेका स्थान है। ऐसे देव नारकीका उपपाद जन्म है। ए तीन भेद जन्म गर्भज सम्मूर्छन उपपादके कहे। अब नव भेद योनिका भाव कहिए है। तहां अन्न जीव करि ग्रहे जे योनि स्थान जैसे पचेन्द्रिय तिर्यंच मनुष्य उपजनेकी योनि सो सचित्त योनि है ॥ १ ॥ अन्न जीवन करि नहीं ग्रहे ऐसे पुद्गल स्कन्धकी योनि जैसे देव नारकीनकी सो अचित्त योनि है ॥ २ ॥ केईक योनि स्थान सचित्त-अचित्त मिले स्कंधकी हैं, सो मिश्र योनि स्थान है ॥ ३ ॥ उपजनेके पुद्गल स्कंध शीत होंय जैसे सातें व छठें नरकके नारकीकी शीत योनि है ॥४॥ उपजनेके योनि स्थानके पुद्गल स्कंध उष्ण होंय। जैसे तीजे वा चौथे नरक पर्यंत नारकीनके उपजनेके उष्ण योनि स्थान हैं ॥ ५ ॥ अरु उपजनेके स्थान शीत उष्ण दोऊ स्कंध रूप होंय सो मिश्र योनि स्थान हैं ॥ ६ ॥ जीव उपजनेका योनि स्थान प्रगट नहीं दीखै सो संवृत योनि स्थान है ॥ ७॥ उपजनेके योनि स्थान प्रगट दीखें सो विवृत योनि स्थान है ॥ ८ ॥ जीव उपजनेके योनि स्थानके पुद्गल ३६५
स्कंध कछु प्रगट होंय कछु अप्रगट होंय सो मिश्र योनि स्थान है ॥ ९ ॥ ऐसे सामान्य भेद नव कहे, विशेष

चौरासी लाख हैं। इति योनि स्थान ॥ आगे इन योनिन तैं उपजे जीव तिके कौन कौनके शरीरमें निंगोद नाहीं सो कहिए हैं—

गाथा—केवलकायमहारो, सुरणारय तण भोमि जल तेऊ। वाय चसु इय ठांणय; रहि नहि णिगोय जिण भणियं ॥ ११६ ॥

अर्थ—केवलीके शरीरमें आहारक शरीरमें देवनके शरीरमें नारकोनके शरीरमें पृथ्वी काय अप काय तेज काय और वायु काय इन आठ स्थाननमें निगोद नाहीं। ऐसा जानना। आगे इन आठ जातिके जीवनतैं शौच नहीं पलै, ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—रोगी लोलु दलद्दो; वुधहीणो कुसंग होय मद पाणो। परवस आलस सहितो, एवसु आदाय सोच णह पालय ॥ ११७ ॥

अर्थ—रोगी, इन्द्रियनका लोलुपी, दरिद्री, बुद्धि हीन, कुसंगी, मद पायी, पराधीन और आलसी इन आठ जातिके जीवन तैं शौच नाहीं पलै। भावार्थ—रोगी तो अति वेदनाके आगे खाद्य-अखाद्य, योग्य-अयोग्य नाहीं विचारै। अपवित्र-पवित्र नहीं विचारै। मारे वेदनाके जो मिलै सो ही खाय। मूढ़ वैद्य जैसा भक्ष्य अभक्ष्य कहै, सो खाय। तातैं शौच नाहीं वनै ॥ १ ॥ जो इन्द्रियनका लोलुपी होय। सो खाद्य-अखाद्य, योग्य अयोग्य नहीं विचारै। जैसे वने तैसे अपने विषयका पोषण करै। अपने कुल योग्य खान पानका विचार नाहीं। तातैं तिन लोलुपी तैं शौच नाहीं पलै ॥२॥ जे पूर्व पापके उदय करि भये जो दरिद्री, सो मारे दरिद्रके केवल उदर पूरणाही कर्या चाहैं। सो योग्य अयोग्य नाहीं विचारैं जैसे वनैं तैसे-उदर भर्या चाहैं। ताके तृष्णा अधिक सो तृष्णा तौ पुण्य तैं पूरी जाय अरु पुण्य, आगे उपार्ज्या नाहीं। तातैं पुण्य रहित जीव जैसे तैसे पेट भरै सो इस दरिद्रीसें शौच नाहीं पलै ॥३॥ बुद्धि रहित होय ताकैं योग्य-अयोग्यके विचारका विवेक नाहीं। ज्ञानकी मंदताके योग करि पशू समानि खान-पानादि करै रात्रि दिवसका भेद नाहीं, भक्ष्य-अभक्ष्यका ज्ञान नाहीं तातैं बुद्धि रूपी संपदा करि रहित हीन—बुद्धि जीव तैं, शौच नाहीं पलै ॥ ४ ॥ और कुसंग के धारनहारे, सप्तव्यसनी जीवनके स्नेही, तिनकी संगति तैं, स्नेह के बंधान करि तिनमें तिन जैसा ही खान-पान करैं। हीन कुली, हीन ज्ञानी, सप्तव्यसनी, जैसा अनाचार रूप खान-पान करें। तैसाही तिनकी संगति में आपकौं करना

पड़ै। तातैं कुसंगीन तैं सोच नाहीं पलै ॥ ५ ॥ मदिरपायी कूं सुध-बुद्धि नाहीं। खान-पानके योग्य-अयोग्य खाद्य-अखाद्य का ज्ञान नाहीं। जैसे खपत-बेसुध होय, तैसेही मदिरापायी बेसुध है। तातैं मदिरापायी तैं शौच नाहीं पलै ॥ ६ ॥ और पराधीन होय, सो पराई मर्जी सौं चाल्या चाहै। आप दयावान संयमी होय, अरु संयमी का सेवक होय। तौ आपके तौ संयम पालवे का काल है। यदि स्वामी संयमी न होय, तो जा समय सरदार ने कही, यह आरम्भ करो। सो नहीं करै तौ आज्ञा भंग भये, चाकरी बनै नाहीं। तातैं असंयम रूप आरम्भही कार्य, संयमके कालमें करना पड़ै। इत्यादिक पराधीनता तें शोच नाहीं पलै ॥ ७ ॥ और जे आलसी-प्रमादी होंय, सो जैसा मिलै तैसा भक्षण करैं। प्रमाद के वशीभूत खाद्याखाद्य योग्या-योग्य नहीं विचारैं। तातें जे आलसी-प्रमादी होंय, तिनसौं शौच नाहीं पलै ॥ ८ ॥ ऐसे और ग्रन्थ के अनुसार कह्या है। जो इन आठ जाति के जीवन तैं शौच नाहीं सधै। तातैं इनकौं धर्म-लाभ नहीं होय। और शुभाचार इनके हृदय में तिष्ठता नाहीं। ऐसा जानि विवेकी जीवन कौं, इन आठ जातिके निमित्तन तैं रहित होय, सुआचार रूप रहना योग्य है। आगे निमित्त ज्ञानके आठ भेद हैं सो कहिये हैं—

गाथा—अंग भोम अंतरखऊ; विंजण सुर छिण्य लक्खणो सुपणऊ। इव वसु भेयव भणियं, णिमित्त णाणाय देव सर्वज्ञो ॥ ११८ ॥

अर्थ—अंग कहिये, शरीर। भोम कहिए, पृथ्वी। अन्तरखऊ कहिए, अन्तरीक्ष। विंजण कहिए, व्यंजन निमित्त। सुर कहिए, शब्द। छिण्य कहिये, छिन। लक्खणो कहिए, लक्षण। सुपणऊ कहिये, स्वप्न। इव वसु भेयव कहिए, ये आठ भेद। भणियं कहिये, कहे हैं। णिमित्त णाणाय कहिए, निमित्त ज्ञान के। देव सर्वज्ञो कहिए, सर्वज्ञ देव ने। भावार्थ—निमित्त ज्ञान के आठ भेद हैं सो ही कहिए हैं। मनुष्य-पशुके तनके आंगोपांग देख, ताके शुभ-अशुभ बताय देना। जो याके एक नेत्र नाहीं, तो ऐसा फल। दोऊ नेत्र नाहीं, ताका ऐसा फल। मूके, लूले, टूटे, कूबरे, बावने का फल कहै। जाके तनका रस खट्टा तथा मिष्ट व कड़ुवा होय, इत्यादिक जैसा तनको रस होय, सो फल कहै। तथा तनका रुद्र, श्याम व लाल वर्ण होय, ताका फल कहै इत्यादिक शरीर के लक्षण देखि शुभ-अशुभ का फल सुख-दुख कहै। सो अंग-निमित्त

ज्ञान है ॥ १ ॥ और भूमि विषैं जहां-जहां जो वस्तु होय, सो जानै। जो इस जगह रतन-खानि है। यहां कंचन-खानि है। यहां विभूति है। यहां एते खोदो, अस्त्र समूह है. ताकौं जानैं। तथा इहां जल है। इहां पाखान है। इहां धन है। इत्यादिक भूमिमें जहां-जहां शुभ-अशुभ चिन्ह होंय, तिनकौं जानें, सो भूमि निमित्त ज्ञानी कहिये ॥ २ ॥ और आकाश के विषैं वादर पटल; घन; गाज, बिजली चमकना; चन्द्रमा; सूरज, नक्षत्रादिक इत्यादिक तैं आकाश का शुभाशुभ चिन्ह देखि; सुख—दुख बतावै। सो अंतरीक्ष-निमित्त-ज्ञानी है ॥३॥ और जहां मनुष्यका शब्द सुनि शुभ-अशुभ कहैं। तहां चाण्डाल, कृषक, वैश्य, ब्राह्मण क्षत्रिय इत्यादिक मनुष्यन के शब्द सुनि, सुख—दुख कहैं। तथा पशून के शब्द तीतुर, मोर, काक, सारस, श्वान, गृद्ध, स्यार मार्जार, व्याघ्री इत्यादिक पशून के शब्द सुनि, शुभ-अशुभ फल बतावैं। सो सुर-निमित्ति ज्ञान है ॥ ४ ॥ और व्यंजन जो शरीर में तिल मसा देखि, सुख-दुख कहैं। मुख पै तिल, करमें तथा उरमें मसा। पीठ में, नासिका, कान, गाल, अंगुरी इत्यादि हाथ-पांव अंगमें तिल—मसा देखि, शुभ-अशुभ कहैं। सो व्यंजन-निमित्त ज्ञान है ॥ ५ ॥ और लक्षण जो शुभ चिन्ह श्रीवृप, स्वस्तिक, भृंगार, कलश, वज्र, मछली इत्यादि शुभ तथा कोई अशुभ चिन्ह इत्यादिक शुभ-अशुभ चिन्ह शरीर में देखि, सुख—दुख कहैं। सो लक्षण निमित्त ज्ञान है ॥ ६ ॥ और छिन निमित्त ज्ञान—सो कोई वस्त्रादि वस्तु कूं मूसादि जीवन कर काटी देखि, ताकरि शुभाशुभ फल कहै। सो छिन निमित्त ज्ञान कहिये ॥ ७ ॥ और स्वप्न—जो शुभाशुभ स्वप्नकौं जानि, ताका सुख—दुख कहै। सो स्वप्न निमित्त ज्ञान है ॥८॥ ऐसे निमित्त ज्ञान आठ प्रकार कह्या। इहां सामान्य कह्या। विशेष अन्य ग्रन्थनतैं जानना। आगे ज्ञानके आठ अंग बताईये है—

गाथा—विंजन अर्थ समग्गह, सब्दार्थोभय कालधेणोय। उपझाण विणय; समधय, बहुमाण गुवादि वसु अंगय ॥ ११९ ॥

अर्थ—विंजन कहिये, व्यंजनोंजित ॥ १ ॥ अर्थ समग्गह कहिये, अर्थ समग्रह ॥ २ ॥ सब्दार्थोभय कहिये, शब्दार्थ उभय पूर्ण ॥ ३ ॥ काल धेणोय कहिए, यथा काल अध्ययन करना ॥ ४ ॥ उपझाण कहिए, उपध्यान समर्धित ॥ ५ ॥ विणय समधय कहिए, विनय समर्धित ॥ ६ ॥ बहुमाण कहिए, बहु मान समर्धित

अंग ॥ ७ ॥ गुत्रादि कहिए, गुरुवादि निन्हव अङ्ग ॥ ८ ॥ वसु अंगय कहिए, ये ज्ञानके आठ अंग हैं।

भावार्थ—जो विना अर्थ विचारै ही पाठका पढ़ना। तहां गाथा, काव्य, छन्द, श्लोक, पद, बिन्ती, सामायिकादि पाठका पढ़ना। सो याका नाम व्यंजनोर्जित अंग है। १। और जो शास्त्र तो नाहीं, परन्तु अपने उर विषैं, एकान्त बैठा, शास्त्रन का अर्थ विचार करै, सो ये भी ज्ञानका अंग है। याका नाम अर्थ समग्रह अंग है। २। और जहां शास्त्र, काव्य, गाथा, छन्द अर्थ सहित पढ़ै। पाठ भी पढ़ै, अरु अर्थ का भी विचार करै। सो ये भी ज्ञानीका अंग है। याका नाम शब्दार्थो-भय पूरण अंग है। ३। और जहां जिस कालमें जैसा शास्त्र चाहिए, तैसाही काव्य वखान करै। जैसे प्रभात कालको कौन शास्त्र वांचिए। मध्यान्ह में कौन शास्त्र वांचिए। शाम कौं कौनका अभ्यास कीजिए। रात्रि कौं कौनका अभ्यास कीजिए। तथा बाल्य अवस्था में कौन शास्त्रका अभ्यास कीजिए। तरुणावस्था में कौन शास्त्रका अभ्यास करैं। वृद्धावस्थामें कौन शास्त्रका अभ्यास करैं इन आदि कालमें जैसा शास्त्र चाहिये, तैसाही विचार कैं काल-योग्य शास्त्रका अभ्यास करैं। तैसाही उपदेश देय। सो ये भी ज्ञानका अंग है। याका नाम कालाध्ययन ध्रुव प्रभाव नाम अंग है ॥ ४ ॥ औप शास्त्राभ्यास निरप्रमाद होनेके निमित्त उपवास-एकासन करना, रस तजना, अल्प भोजन करना। ऐसा विचारना जो मेरे शास्त्राभ्यासमें प्रमाद नहीं होय, ताके निमित्त तप करना। सो ये भी ज्ञानका अंग है। याका नाम उपध्यान समर्धि अंग है ॥ ५ ॥ और जहां शास्त्रका विनय करना। बांचना, सो विशेष उत्तम विनय से बांचना। सुनना सोभी एकचित्त करि विनय तैं सुनना। उपदेश देना, सो पर-जीवनके कल्याणहेतु विनय तैं देना। शास्त्र धरना—उठावना, सो भी विनय तैं। इत्यादिक शास्त्रका विनय करना, सो ये भी ज्ञानका अंग है। याका नाम विलय समर्धित अंग है। ॥ ६ ॥ और जाके पास आपने ज्ञानाभ्यास किया होय, जातैं आपको ज्ञानकी प्राप्ति भई होय, ताकी बहुत सेवा-चाकरी करना। ताकी बारम्बार प्रशंसा करना, बारम्बार ताका उपकार स्मरण करना। ताका उपकार जन्मान्तर नहीं भूलना। सदीव धर्म-पिता जानना। इत्यादिक ज्ञान-दान देनेवारेका विनय करना, सो भी

ज्ञानका अंग है। याका नाम वहुमान समर्थित अंग है ॥ ७ ॥ और आपने जा गुरुके पासि शास्त्राभ्यास किया होय, ता गुरुको नहीं छिपाईये। भावार्थ—जा गुरुके पास तैं आपने ज्ञान-धन पाया होय, ऐसा जो गुरु। सो कर्म योग तैं-पीछे आपकौं विशुद्धताके योग तैं, तथा तप-ध्यान करि अनेक ऋद्धि आप कौं प्रगट भई होंय। मति, श्रुत, अवधि, मनः पर्यय ज्ञानादिक अनेक ऋद्धि प्रगटी होंय और अपना गुरु ज्ञानदाता, तिन कैं अवधि-मनः पर्यय नाहीं। अरु गुरुका नाम प्रसिद्ध नाहीं। आपकौं ज्ञान वड़ा, आपका नाम जगतमें प्रसिद्ध होय, तौ भी अपने ज्ञानदाता गुरुको नहीं छिपाईये। ये भी ज्ञानका अंग है। याका नाम गुरुवादि निन्हव अंग है। तथा आप भला सम्यक्ज्ञान मोक्षमारगके पन्थका वतावनेहारा, पर जीवका उपकारी, शुद्ध तत्व आप कूं भले रूप आवता होय, तो ताकौं नहीं छिपाईये। जो ज्ञान दया-भण्डार, दयाका मारग प्रगट करनहारा, अनेक संशय नाशनेहारा, उत्तम ज्ञान, जाकौं आप जानता होय, तो ताकौं नहीं छिपाईये। ये भी ज्ञानका अंग है। तथा परम कल्याणकारी, तत्व प्रकाशी कथन सहित शास्त्र, अपने पास है। सो कोई धर्मात्मा पुरुष अपनेमें तत्वज्ञान होनेका अभिलाषी आय कहै। जो फलानो पुस्तक आप पै होय तौ हमको स्वाध्याय कौं हमारे मस्तक पे विराजमान करो, तौ हम पुण्य उपारजैं। तौ अपने मस्तक जे शास्त्र होंय, ताकौं नहीं छिपाईये। यह भी ज्ञानका अंग है। याका नाम भी गुरुवादि निन्हव अंग है ॥ ८ ॥ ऐसे ज्ञानके आठ अंग हैं। सो धर्मात्मा जीवन करि धारवे योग्य हैं। ये आठ अंग ज्ञानके जे भव्यात्मा विनय सहित पालैं, सो तत्वज्ञान संम्पदाके धारी होंय। ऐसा जानि निकट भव्यन कौं, ज्ञानके अंगन की रक्षा करना योग्य है। आगे मुनिजन कौं ध्यान करवेके कारण दश स्थान वतावैं हैं। इतनी जायगा परणामनकी विशुद्धता विशेष बढ़, ध्यानकी एकाग्रता विशेष होय, सो ही वताईये है। ध्यान कौं कदाचित् एकान्त क्षेत्र नहीं होय, वहुत जीवन के शब्दका कोलाहल होय, अनेक जीवनका आवनाजाना होय, तो ऐसे स्थानमें परणति चंचल होय। तातैं ध्यान कौं एकान्त स्थान चाहिये। एकान्त विना ध्यानकी सिद्धी नाहीं होय ॥ १ ॥ अशुद्ध क्षेत्र होय तो ध्यान लागै नाहीं, तातैं रमणीक-निर्मल क्षेत्र चाहिये, तब ध्यानकी शुद्धता होय ॥ २ ॥ और जहां काष्ठकी व चित्राम

की पुतरी नहीं होंय । रंगमहल, रमणीक बिछौने इत्यादिक सराग क्षेत्र नहीं होय । महा उदास, वैराग्य बढ़नेका कारण, राग रहित क्षेत्र चाहिये, तातैं ध्यानकी सिद्धि होय ॥ ३ ॥ तथा महा पर्वतनकी गुफा होय ॥४॥ तथा उतङ्ग, मनोहर, उदार पर्वतनके शिखर होंय ॥५॥ तथा निरमल जल करि सहित बड़े सरोवर तथा वहती गहन बड़ी नदी, तिनके तट ध्यान योग्य हैं ॥ ६ ॥ तथा जीर्ण उद्यान, अरु महा भयानीक, मोही जीवन कूं भय उपजावनहारी, विकट, वृक्ष रहित अटवी, ध्यान योग्य क्षेत्र है ॥ ७ ॥ तथा दीरघ सघन वृक्षन करि भरया बन होय, सो ध्यान योग्य क्षेत्र है ॥ ८ ॥ और जहां अति शीत नहीं होय, ते क्षेत्र ध्यान योग्य हैं ॥ ९ ॥ तथा जहां बहु उष्ण नहीं होय, सो क्षेत्र ध्यान योग्य है ॥ १० ॥ ऐसे दश क्षेत्रनमें ज्ञान-वैराग्यके बढ़ाने रूप भाव होंय । धीरजता होय, क्षमा भाव होय। इत्यादिक, भाव सहित ध्यान सिद्धिके क्षेत्र जानना । आगे परणामों की विशुद्धता कूं कारण, आलोचना भाव है । सो आलोचनाके अतिचार दश हैं । तहां प्रथम नाम कहिये--आकम्पन, अनमापित, दिष्ट, वादर, सूक्ष्म, शब्दाकुल छिनि बहु अविक्त तत् सेवत ऐसे ये दस अतिचार हैं । तिनका सामान्य स्वरूप कहिये है—जहां कोई मुनीश्वर कौं अपने संयममें दोष लाग्या दीखै । तब वह यतीश्वर पापका भय खाय गुरुन पै पाप दूर करने कूं दण्ड-प्रायश्चित्त जांचता भया । सो दण्ड जांचता कबहूं ऐसा विचार करैं जो आचार्य दीर्घ दण्ड नाहीं बतावैं तो भला है । ऐसा भय करना सो आकम्पन दोष है ॥ १ ॥ और कोई यती कौं दोष लाग्या होय तौ अपने गुरु पै जाय अपने प्रमादकी निन्दा करै । आलोचना सहित अपना लाग्या दोष प्रगट करि गुरुपै दण्ड जांचता ऐसा विचार करै जो मेरा तन निर्बल व रोग पीड़ित है सो दीरघ दण्ड सहवेकी मोरी शक्ति नाहीं । तातैं आचार्य मोकौं अल्प दण्ड बतावैं तौ भला है । ऐसे विचारका नाम अनमापित दोष है ॥ २ ॥ और यती आप कौं कोई दोष लाग्या जानैं तौ विचारैं । जो मेरा दोष फलाने नैं देखा है तौ अपना दोष गुरु पै कहैं अपनी निन्दा-आलोचना करैं । और जो अपना दोष काहू ने नहीं देखा होय तौ गुरु पै नाहीं कहैं । ताका नाम दिष्ट दोष है ॥ ३ ॥ यतीश्वर कौं कोइ सूक्ष्म दोष लागा होय तौ गुरुपै नाहीं कहैं । कोई वादर-बड़ा दोष लागा होय तौ मानके निमित्त

और के दिखावने कौं आचार्य पै कहैं आलोचना करैं सो वादर दोष है ॥ ४ ॥ जहां मुनीश्वर कौं कोई वादर दोष लाग्या होय तौ आचार्यके पासि नहीं कहैं। और सूक्ष्म दोष लगा होय तौ मान—बड़ाई लोक-प्रशंसा कौं गुरुपै जाय प्रकाशैं। अपनी आलोचना करैं। सो सूक्ष्म दोष कहिये ॥ ५ ॥ और कोई मुनि कौं दोष लागा होय तौ गुरुपै कहैं तौ सही परन्तु मान-बड़ाईके अर्थ दोष छिपाय कैं कहैं। सो अपना नाम तौ नहीं लेंय। अरु गुरुपै कहैं। भो गुरो ऐसा दोष काहू मुनि पै लागा होय तौ ताका कहा दंड ? सो कहो। ऐसे आलोचना सहित पूछना। अरु निन्दाके भय तैं अपना नाम प्रगट नहीं करना याका नाम छिनि दोष है ॥ ६ ॥ और कोई मुनि कौं दोष लागा होय सो गुरु पै एकान्ततौ नहीं कहैं। अरु जब आचार्य बहुत मुनि श्रावकन सहित तिष्ठे होंय तब मानका लोभी अपनी प्रशंसा करावनेका अभिलाषी गुरु कौं कहै। तथा अनेक स्वाध्यायका शब्द होय रह्या होय तथा आचार्य उपदेश करते होंय तथा और शिष्यनका प्रश्न होय रह्या होय इत्यादिक समय देखि भरी सभामें प्रश्न-उत्तरके शोरमें अपना दोष गुरुपै कहै आलोचना करै। सो गुरुने कछू सुन्या कछू नाहीं। ऐसा अवसर देखि कहना सो याका नाम शब्दाकुल दोष है ॥ ७ ॥ और कोई मुनि कौं दोष लाग्या होय सो गुरुपै जाय अपना दोष कहै। आलोचना करै। तब गुरु याके पाप नाशने कूं प्रायश्चित्त देंय। सो गुरुका दिया प्रायश्चित्त सुनि विचारी जो गुरुने प्रायश्चित्त भारी बताया। तब ऐसी जानि और ही आचार्य पै जाय आलोचना सहित अपना दोष कहै। तब उनने भा दंड दिया ताकौं भी भारी दंड जानि और आचार्यके संघमें जाय आलोचना करि अपना दोष कहै। ऐसे ही जब ताईं कोई आचार्य अल्प दंड नहीं बतावैं तब लूं अनेक आचार्यन पै जाय आलोचना करि अपना दोष कहै याका नाम वहु दोष है ॥ ८ ॥ कोई मुनि कौं दोष लागे सो पापके भयतैं अपना दोष प्रकाश तौ सही। परन्तु मान--बड़ाई लज्जाके योग तैं आचार्य कूं नाहीं कहैं। मेरा अपयश-निंदा होयगी ताके भय तैं गुरुपै नहीं कहैं। अरु कोई आप तैं छोटे पदस्थधारी तथा आपके समानि होंय तिस मुनि कौ कहैं। ताके पास अपना दोष अलोचना सहित प्रगट करैं। सो याका नाम अविक्त दोष है ॥ ९ ॥ और कोई मुनि कौं दोष लगा होय सो मान-ब-

डाई अपयश-निंदाके भय त गुरु पै नाहीं कहैं। और जब कोई आपजैसा दोष और मुनि कौं लागै, सो आचार्य कौं वाकौं प्रायश्चित्त देते देखि, आचार्य कौं आप कहै। भो नाथ, इन मुनीश्वर सा दोष मोकौं भी लागा है। सो जैसा दंड या मुनि कौं दिया, तैसा ही मोकौं देव। ऐसी अलोचना सहित कहना, सो याका नाम तत्सेवत दोष है ॥ १० ॥ ऐसे आलोचनाके दश दोष हैं। सो जो अंतरंगके धर्मात्मा हैं तिनकौं अपने धर्म कौं सुधार राखना उत्कृष्ट है। इति आलोचनाके दश दोष। अब आचार्य कोई शिष्यके कल्याण होने कूं दीक्षा देंय, तो ये दश काल टालि दीक्षा देय हैं। इन कालनमें दीक्षा नाहीं देंय। सो बताइये है। तहां प्रथम नाम-ग्रहोपराग कहिये, जाकौं कोई अशुभ ग्रह होय, तो दीक्षा नहीं देंय॥ १ ॥ सूर्य ग्रहण होय ॥ २ ॥ चन्द्रका ग्रहण होय ॥ ३ ॥ इन्द्र धनुष चढ़्या होय ॥ ४ ॥ जाकौं उल्टा ग्रह आया होय ॥ ५ ॥ तथा आकाश बादलन करि आच्छादित होय रह्या होय ॥६॥ तथा जिस जीव कौं महिना खोटा होय ॥ ७ ॥ तथा अधिक मास होय ॥ ८ ॥ तथा संक्राति दिन होय ॥ ९ ॥ क्षय तिथि होय ॥ १० ॥ इन दश अवसरनमें भला ज्ञाता, निमित्त ज्ञानके वेत्ता आचार्य, शिष्य कौं दीक्षा नहीं देंय। और कदाचित् कोई ज्ञानकी मंदताके जोग तैं इन दश कालनमें दीक्षा देंय, तौ आचार्यनकी परम्पराका लोप होय, निंदा पावैं। जिन आज्ञाका उल्लंघन करनहारा जानि, सर्व आचार्यनके संघ तैं बाहरे होंय, संघ तैं निकसैं, अपमान पावैं। तातैं ये दश काल टालैं हैं। और जिन दिनोंमें दीक्षा होय सो बताईये है। शुभ दिन, शुभ नक्षत्र, शुभ योग, शुभ मुहूर्त शुभ ग्रह इत्यादिक शुभ कालमें दीक्षा होय है। और दीक्षा कौन २ गुण सहित कौं होय है। सो ही बताईये है। बुद्धिमान् होय। विशुद्ध कुल होय। गोत्र शुद्ध होय। शरीरके आंगोपांग शुद्ध हौंय। तहां कांणा, अंधा, लूला, ठूंठा, बांवना, कूबड़ा, रोगी, वधिर इत्यादिक दोष रहित होय, सुन्दर मूरत होय। मंद कषायी होय। जाकैं पंचेन्द्रियभोगन तैं अरुचि होय। मोक्षाभिलाषी होय। शुभ चेष्टा सहित प्रकृति होय। शुभाचारी होय। हाँसि—कौतूहल रहित, नेत्रन करि चमत्कारक होय। महा वैराग्य दशा करि पूरित होय। इत्यादिक

गुण सहित जो शिष्य होय, तिनकौं दीक्षा होय। ऐसे मुख्य गुण हैं सो कहे। बाकी इनमें सामान्य-विशेष योग्य—अयोग्य सम्हाल कैं—विचार कैं आचार्य करैं हैं। ऐसा जानना।

इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, षट् लेश्या, योनि भेद, निगोद रहित स्थान, निमित्त ज्ञानादिक कथन वर्णनो नाम, सत्ताईसवां पर्व सम्पूर्णम् ॥ २७॥

आगे दशकरणका निमित्त पाय, कर्मनकी अवस्था कहिये है। प्रथम नाम-बन्ध उदय, सत्ता, उत्कर्षण, अपकर्षण संक्रमण उपशान्त निधत्ति निकांचित और उदीरणा ये दश हैं। अब इनका अर्थ—तहां प्रथम बन्ध करण कहिये है। सो जीव अपने शुभाशुभ परणामन तैं कर्मनका बन्ध करै है। सो बंध च्यारि प्रकार है। प्रकृति बन्ध प्रदेश बन्ध स्थिति बन्ध और अनुभाग बन्ध तहां प्रथम प्रकृति बन्धका स्वरूप कहिये है। सो नाना जीव नाना काल अपेक्षा एक सौ बीस प्रकृति बन्ध योग्य हैं। सो ही कहिये है। ज्ञानावरणी ५, दर्शनावरणी ९, वेदनीय २ मोहनीय २६, आयु ४, गोत्र २ अन्तराय ५, ये सात कर्मको प्रकृति ५३, भई। अब नाम कर्मकी वर्ण चतुष्क ४, संस्थान ६ संहनन ६ गति ४ गत्यानुपूर्वी ४ शरीर ५ जाति ५, आंगोपांग ३, चाल २ अगुरु लघु अष्टक ८, दश दुकको २० ऐसे नाम कर्मकी सड़सठ। सर्व मिलि अष्ट कर्मकी एकसौ बीस प्रकृति बन्ध योग्य हैं। सो मनुष्य गतिमें तो सर्वका बन्ध है। तातें मनुष्य विषैं एकसौ बीस बन्ध योग्य हैं। तिर्यंच गतिमें पंचेंद्रियके बन्ध योग्य एकसो सत्तरा है। आहारक दुकको दोय और तीर्थंकर एक इन तीन बिना जानना। बेन्द्रिय तेन्द्रिय चौइन्द्रिय इन विकलत्रयमें बन्ध योग्य प्रकृति एक सौ नौ हैं। वैक्रियक अष्टककी आठ, आहारक दुककी दोय और तीर्थंकर एक इन ग्यारह बिना विकलत्रयमें १०९ का बन्ध है। पंच स्थावरमें बन्ध योग्य विकलत्रयवत् एक सौ नव प्रकृति हैं। विशेष एता जो अग्नि व वायु कायक इन दोय थावरनकैं ऊँच गोत्र व मनुष्यायु इन दोय बिना एक सौ सात प्रकृतिका बन्ध है देवनके वैक्रियक अष्टकको आठ, विकलत्रयकी तीन आहारक दुककी दोय सूक्ष्म साधारण और अपर्याप्त—इन षोडश बिना समुच्चय १०४ का बंध है। तहां विशेष एता जो दूजे तैं ऊपरि तीसरे स्वर्ग तैं लगाय बारहवें स्वर्ग पर्यंतके

देवनकैं एकेन्द्रिय जाति थावर नाम और आतप इन तीन विना १०१ का बन्ध है। वारहवें स्वर्ग तैं ऊपरिके देवनकैं विकलत्रयकी तीन और उद्योत इन च्यारि बिना सत्यानवेका बन्ध है। ऐसे देवका बन्ध कह्या। नारकीनके एक सौ बीसमें वैक्रियक अष्टककी आठ विकलत्रय तीन स्थावर एकेन्द्रिय साधारण अपर्याप्त सूक्ष्म आहारक दुककी दोय आतप इन उन्नीस बिना समुच्चय १०१ का बन्ध है। विशेष एता जो तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध तीसरे नरक तांई है आगे नाहीं। तातैं तीजी पृथ्वी तैं नीचे एक सौ प्रकृतिका बन्ध है। सातवें नरकमें मनुष्यायु विना निन्यानवैका बंध है। ऐसे च्यारि गति विषें यथोयोग्य सामान्य बन्ध कह्या। विशेष एता जो एक जीव कैं एकै काल अपेक्षा तीन गतिमें तौ गुणसठ प्रकृतिनका बन्ध है। तिर्यंच गति विषैं एकै काल तीर्थंकर प्रकृति बिना अट्ठावन प्रकृतिनका बन्ध है। इहां प्रश्न जो तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध तौ मनुष्यमें ही कह्या। परन्तु यहां देव नारकीमें भी कह्या सो कैंसे बनै ? ताका समाधान। जो हे भव्य प्रश्न तुम्हारा प्रमाण है। प्रथम तौ तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध मनुष्य ही कैं होय है। या बात प्रमाण है। परन्तु मनुष्य गतिका किया बन्ध देव नारकीमें जाय है। तातें तहां बन्ध और गतितैं जानना। यहां फेरि प्रश्न-जो तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध करनहारा सम्यग्दृष्टी देव गतिमें जाय। सो देवमें तौ तीर्थंकरका बन्ध करै है, सो सम्भवै। परन्तु तीर्थंकर प्रकृतिका बंध करनहारा जीव नरकमें कैसे जाय ? ताका समाधान कोऊ जीव नैं मिथ्या-दशामें प्रथम नरकायुका बन्ध किया था पीछे उस निकट भव्यात्मा संसारी जीवकैं सम्यक् भया सो तीर्थंकर व केवलीके निकट निमित्त पाय षोड़स भावना भाय तथा इनमें तैं एक दोय आदि कोई भावना भाय परणामनकी विशुद्धता तैं तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध कर पीछे आयु बन्धके योग तैं जीव नरक जाय। तहां तीर्थंकर बन्ध लिये जाय। ताकी अपेक्षा बन्ध कह्या है। सो प्रथम नरकमें जानेहारा जीव तौ सम्यक् सहित भी जाय है। और दूजे व तीजेका जानेहारा जीव सम्यक् कूं तजकैं जाय है। सो अन्तमुहूर्त मिथ्यात रहै। कारमान तैं जाय पर्याप्ति पूरण करै। जहाँ तांई पर्याप्ति पूरन नाहीं करै तहां तांई तौ मिथ्यात्व है। पर्याप्ति पूरण किये तीर्थंकर बन्ध वारे कैं सम्यक् होय है। तब तैं तीर्थंकर बन्ध जानना। ऐसे च्यारि गतिमें

वन्ध कह्या। सो ये तो प्रकृति वन्ध है। और इन एक-एक प्रकृतिकी साथि अनन्त परमाणु स्कंध रूप होंय। सो समय प्रवद्धकी गेलि केती परमाणु वन्धी तिनकी संख्या सो प्रदेश वन्ध है। वन्धी जो कर्म प्रकृति तिनमें मोहकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण हैं। नाम व गोत्रकी वीस कोड़ा कोड़ी सागर स्थिति है। आयु कर्मकी तेतीस सागर स्थिति है। ज्ञानावरणी दर्शनावरणी वेदनी अन्तराय इन च्यारि कर्मनकी तीस-तीस कोड़ा-कोड़ी सागरकी स्थिति है वेदनीकी जघन्य स्थिति द्वादश मुहूर्तकी है। नाम व गोत्र इन दोय कर्मनकी जघन्य स्थिति आठ-आठ मुहूर्तकी है। वाकी औरनकी जघन्य स्थिति एक अन्तमुहूर्तकी है। ऐसे यथायोग्य स्थितिका वन्ध होना सो स्थिति वन्ध है। वन्ध कर्म विषें उदय भये जैसा रस देनेकी शक्ति जो ये कर्म उदय भये एता रस प्रगट करेगा। सो अनुभाग वन्ध है। ऐसे कहे जो च्यारि प्रकार वन्ध सो वन्ध है। सो प्रकृति व प्रदेश वन्ध तो योगन तें होय है। स्थिति व अनुभाग वन्ध कपायन तें होय है। ऐसे तो ये वन्ध करण जानना। इति वन्ध करण॥ १ ॥ आगे उदय करण कहिये है। तहां उदय भी च्यारि प्रकार है। प्रकृति उदय प्रदेश उदय स्थिति उदय और अनुभाग उदय। तहां प्रथम ही प्रकृति उदय कहिये है। सो नाना जीव नाना काल अपेक्षा उदय योग्य प्रकृति एक सो वाईस हैं। तहां ज्ञानावरणकी ५, दर्शनावरणकी ६ वेदनीयकी २ मोहनीकी २८ आयु कर्मकी ४ गोत्रकी २ अन्तराय कर्मकी ५ ऐसे सातकी ५५ नाम कर्मकी वर्ण चतुष्ककी ४ संहनन ६ संस्थान ६ गति च्यारि गत्यानुपूर्वी ४ शरीर ५ जाति ५ अंगोपांग ३ चाल २ अगुरु अष्टककी ८ और दश दुककी २० ऐसे नाम कर्मकी ६७। सर्व मिलि १२२ उदय योग्य प्रकृति जानना। तामें तिर्यंच सम्वन्धी १२ तिर्यंच गति तिर्यंच गत्यानुपूर्वी तिर्यंचायु जाति च्यारि स्थावर सूक्ष्म साधारण आतप और उद्योत ये प्रकृति तिर्यंच द्वादश हैं। और वैक्रियक अष्टक इन वीस विना मनुष्य योग्य एक सौ दोय हैं। अव देव योग्य उदयकी प्रकृति कहिये हैं। ज्ञानावरणकी ५ दर्शनावरणकी ६ वेदनी की २ मोहनीकी नपुन्सक विना २७ आयु गोत्र ऊंच अन्तरायकी ५ ऐसे सात कर्मकी ४७ वर्ण चतुष्ककी ४ (संहनन नाहीं) संस्थान एक समचतुर गति गत्यानुपूर्वी, शरीरकी तीन अंगोपांग चाल जाति अगुरुलघु

उच्छ्वास उपघात परघात निर्माण दश दुककी बारह सर्व मिलि नाम कर्मको तीस ऐसे देव योग्य उदय प्रकृति सतत्तरि हैं। सो नाना जीव नाना काल अपेक्षा समुच्चय कथन जानना। नारकी कैं उदय योग्य प्रकृति छिहत्तरि हैं। सो देवके उदयकी प्रकृतिनमें तौ दोय वेद घटाय दीजे। अरु नपुन्सक वेद मिलाइये। यथा-योग्य प्रकृति पलट देनी। शुभको जायगा अशुभ प्रकृति करनी ऐसे नरकमें उदय योग्य प्रकृति छिहत्तरि हैं, तिर्यंचके उदय योग्य प्रकृति एकसौ सात हैं। एक सौ बाईसमें तैं वैक्रियक अष्टककीं आठ मनुष्य गति आ-दि तीन आहारक दुककी दोय तीर्थंकर ऊंच गोत्र इन पन्द्रह बिना एक सो सात प्रकृतिका तिर्यंचनके उदय है। विशेष तहां एता जो पंचेन्द्रिय तिर्यंचके उदय योग्य प्रकृति निन्यानवैं हैं। तिनके नाम ज्ञानावरणीकी पांच दर्शनावरणी नव वेदनी दो मोहनी की अट्ठाईस आयु गोत्र नीच अन्तराय पांच ये सात कर्मकी इक्या-वन। वर्णकी च्यारि संहनन षट् संस्थान षट् गति गत्यानुपूर्वी शरीर तीन जाति अंगोपांग चाल दोय और तीथंकर व आतप इन दोय बिना अगुरु अष्टकको छह और दश दुककी मैं तैं सूक्ष्म साधारण स्थावर इन तीन बिना सत्तरा ऐसे नामकी अड़तालीस सर्व मिलि निन्यानवैं हैं। अब एकेन्द्रियके उदय योग्य प्रकृति अस्सी हैं। ताकी विधि-ज्ञानावरणकी पाञ्च दर्शनावरण नव वेदनी दोय मोहनी चौवीस आयु नीच गोत्र अन्तराय पांच ए सात कर्मकी सैंतालीस। आगे नामकी-तहां वर्णकी च्यारि संस्थान गति गत्यानुपूर्वी शरीर तीन एकेन्द्रिय जाति तीर्थंकर विना अगुरु अष्टकको सात दश दुककी पन्द्रह ऐसे नाम कर्मकी तेंतीस सर्व मिलि एकेन्द्रियके उदय योग्य प्रकृति अस्सी। अब विकलत्रयके उदय योग्य प्रकृति कहिये हैं। सो एकेन्द्रि-यके उदय योग्य मैं तैं सूक्ष्म साधारण स्थावर आतप ये च्यारि तो काढ़िए। अरु संहनन अंगोपांग चाल स्वर त्रस ये पांच मिलाईये तब विकलत्रयके उदय योग्य प्रकृति इक्यासी। ऐसे कहे जो सामान्य भाव च्यारि गति सम्बन्धी उदय सो प्रकृति उदय कहिये। और समय-समय ये प्रकृति उदय आवैं तब तिन प्रकृतिनके संग जेती-जेती प्रमाण कर्म उदय आय खिरैं सो प्रदेश उदय है। सो ही संक्षेप दिखाइये है। तहां एकलो अणुका नाम तौ वर्ग है। अनन्त वर्गका समूह सो वर्गणा है। और असंख्यात लोक प्रमाण वर्गणा स्कन्ध

मिलाईये तब एक स्पर्धक होय। ऐसे असंख्यात लोक प्रमाण स्पर्धक मिलाईये तब एक गुण हानि होय। ऐसे असंख्यात लोक प्रमाण गुण हानि कौं मिलाईए तब एक नाना-गुण हानि होय। ऐसे असंख्यात लोक प्रमाण नाना-गुण हानिको मिलाईए तब एक अन्योन्याभ्यस्त राशि होय। ऐसी असंख्यात लोक प्रमाण अन्योन्यभ्यस्त राशि स्कन्ध मिलाईए तब एक प्रकृति होय। ऐसे उदय योग्य प्रकृति तिनके साथ जेते प्रदेश उदय आय खिरैं सो प्रदेश उदय है। और जिस प्रकृतिकी जेती जघन्य-उत्कृष्ट स्थिति थी तिनमें तैं जो समय घाटि उदय आवैं सो स्थिति उदय है। और जिस प्रकृतिके उदय होते जो शुभाशुभ रसका प्रगट होना सो अनुभाग उदय कहिये। ऐसे सामान्य करि च्यारि प्रकार उदय कह्या॥ २॥ अब सत्व करण कहिये है। तहां ऊपरि कहि आए जो बन्ध सो कर्म बन्धे पीछे जेते काल उदय होय नहीं खिरैं। आत्माके तैं एक क्षेत्र कर्म रहैं। सो सत्व करण है। सो सत्व करण भी चारि प्रकार है। प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग। तहां प्रथम ही प्रकृति सत्व कहिये है। सो सत्व योग्य प्रकृति एक सौ अड़तालीस हैं। सो नाना जीव नाना काल अपेक्षा हैं। और एक जीवकैं एकै काल तीन आयु बिना भुज्यमान आयु सहिय एकसौ पैंतालीसका सत्व है, और भुज्यमान वारेके तीर्थंकर बिना एकसौ चवालीसका सत्व है, और कोईके तीन आयु, आहारक चतुष्क व तीर्थंकर बिना एक सौ ४० का सत्त्व है। किसीके आहारक चतुष्क, तीर्थंकर और बध्यमान आयु सहित एक सौ छयालीसका सत्त्व है। एक सौ अड़तालीस में तैं बद्धयमान वारे के तीर्थंकर और दोय आयु इन तीन बिना, एक सौ पैंतालीस कासत्व है। किसीके आहारक चतुष्क, तीनआयु इनसात बिना एक सौ इकतालीस का सत्व है। और आहारक चतुष्क व दोय आयु,इन षट् बिनाकोई बद्धयमान आयु वारेकैं एक सौ ब्यालीस का सत्व है। ऐसे अनेक प्रकार नाना जीव कैं सत्व पाईये। ताका सामान्य कथन कह्या। सो याका नाम सत्व करण है॥ ३॥ और जैसे कच्चे आमों कौं पाल-पत्ता देय, सिताब (जल्दी) पकाईये। तैसे ही जिस कर्म की स्थिति बहुत होय, ताकौं बलात्कार तप-संयमादि करि, ताकी स्थिति घटाय उदय कालमें लावना, सो उदीरणा में। भावार्थ—जो कर्म की बहुत स्थिति कूं घटाय, थोड़ी

करि, खेरना सो उदीरणा करण है ॥४॥ जिन कर्मन को बहुत स्थिति थी सो तिनके निषेक, नीचले थोरीरी स्थिति वारेनमें मिलाय, उदयमें ल्यावना, सो अपकर्षण है ॥ ५ ॥ जिन कर्मन की स्थिति थोरी थी, तिनके निषेक नीचले तैं लेय, ऊपरले बड़ी स्थितिके निषेकनमें मिलावना, सो उत्कर्षण है। भावार्थ—जा कर्म की स्थिति थोरी थी ताकी बडी करना, सो उत्कर्षण है ॥ ६ ॥ आगे शुभ भावन तैं पुण्य प्रकृति बांधी थीं ताके निषेक पाप परणामन तैं पाप प्रकृति रूप करना। तथा आगे अशुभ भावन तैं पाप प्रकृति बांधी ताकौं शुभ भावनाके फल तैं पल्टाय पुण्य प्रकृति रूप करना, सो संक्रमण है ॥ ७ ॥ कर्म उदयावली वांछि है। सो उदयावलीमें कर्म कोई उपाय तैं नहीं आवैं, सो उपशान्त करण कहिये ॥ ८ ॥ जिन कर्मनके परमाणु संक्रमण नहीं होंय। तथा उदयावलीमें नहीं आवैं। सो याका नाम निधत्ति करण है ॥ ६ ॥ जा कर्मके परमाणु उत्कर्षण जो कर्म स्थितिका बढ़ावना, अपकर्षण जो कर्म स्थितिका घटावना, संक्रमण जो कर्म कौ और रूप करना, सो जामें तीनों ही नहीं होय उदयावलीमें नहीं आवै। जिस अंशन करि बन्ध्या है, तिन ही अंशन करि उदय आवै। सो निकांचित नाम करण है ॥ १० ॥ ये दश करण हैं। इनकौ जानैं कर्मकी अवस्था भले प्रकार जानी जाय है। ऐसा जानना। इति दश करण। विशेष इनका श्रीगोम्मटसारजी तैं जानना। ऐसा करणका स्वरूप, मिथ्यात गये जानिये है। सो मिथ्यातका स्वरूप कहिये है। मिथ्यातके दोय भेद हैं। सादि मिथ्यात और अनादि मिथ्यात। सो जीव कैं अनादिकाल संसार भ्रमण करतैं, कबहूं भी सम्यक्त्वका लाभ नहीं भया होय, सो तो अनादि मिथ्यादृष्टी है ॥ १ ॥ और जे जीव सम्यक्त्व कूं पाय, पीछे पाप भाव-अतत्वकी वान्छा तैं मिथ्यातमें आया होय, सो सादि मिथ्याती कहिये ॥२॥ इनके होतैं कर्मका स्वरूप नहीं पावै। इति मिथ्यात। आगे भाव भेद तीन बताईये है। शुद्ध भाव, शुभ भाव और अशुभ भाव। इनका अर्थ—तहां राग-द्वेषका अभाव, शत्रु-मित्र, कंचन-तिण, रतन—पाषान इनमें राग-द्वेष नहीं होय, सो शुद्ध भाव कहिये। ॥ १ ॥ दान पूजा शील-जप तप संयम ध्यान शास्त्राभ्यास इत्यादिक क्रिया रूप शुभ भावनको प्रवृत्ति, सो शुभ भाव हैं ॥ २ ॥ और जीव हिंसा भाव असत्य भाषण भाव परद्रव्य हरण

भाव पर-स्त्री लम्पट भाव पुण्य उपरान्त परिग्रहके इकट्ठे करवे रूप भाव सप्त व्यसन भाव पाखंड भाव हाँसि कौतुकादि भण्ड भाव रुद्र भाव आरत भाव क्रोध मान माया लोभ भाव इत्यादिक पाप बन्धके कारण सो अशुभ भाव हैं ॥ ३ ॥ ये तीन भावके भेद हैं। तिनमैं शुद्ध भाव तौ भव्य ही कैं होय हैं। शुभ अशुभ ये दोय भाव, भव्य तथा अभव्य दोऊनके होय हैं। तहां भव्यके भी तीन भेद हैं। निकट भव्य दूर भव्य और दूरानदूर भव्य। तहां जे जीव थोड़े काल बिषैं मोक्ष जांय, सो निकट भव्य हैं ॥ १ ॥ जे जीव बहुत कालमें मोक्ष होंय। तथा कबहूं न कबहूं अनन्त कालमें होंयगे, ऐसी केवल ज्ञानमें भासी है। सो दूर भव्य हैं। मोक्ष होवे योग्य हैं, तातें इनको दूर भव्य जानना ॥ २ ॥ जे जीव भव्य हैं, केवलज्ञानमें भासे हैं। सो भव्य राशि हैं। परन्तु मोक्ष होनेकी सामग्री जो सम्मग्दर्शनादि जिनके कबहूं प्रगट नाहीं होय। सदीव संसार वासी, अभव्य समानि, कबहूं मोक्ष नहीं जांय, सो दूरानदूर भव्य हैं ॥ ३ ॥ यहां प्रश्न—जो भव्य कह्या अरु मोक्ष कबहूं नहीं होय, सो कैसे बनै ? ताका समाधान—हे भव्य, तू चित्त देय सुनि। अभव्य राशि तौ बहुत ही अल्प है। सो देखि। सर्व जीव राशि तैं अनन्तवें भाग तो सिद्ध राशिका प्रमाण है। सिद्ध राशि तैं अनन्तवें भाग, अभव्य राशि है। सो भी जघन्य जुगता अनन्त है। सो ये अभव्य तौ जव कहिये तुच्छ राशि जानना। और भव्य राशि बहुत है। सो सुनि, ज्यों तेरा भ्रम जाय। एक महा छोटा खस-खस दाने प्रमाण निगोद स्कन्धमें, असंख्यात लोक प्रमाण निगोद शरीर हैं। तहां एक-एक शरीरमें अक्षय अनन्त जीव हैं। इनका अन्त नाहीं। इस शरीरमें तैं निकसि-निकसि अनन्तकाल तांईं, अनन्त जीव मोक्ष होवो करैं, तौ भी केवली कूं पूछिये, तब ही उस शरीर तैं निकसे तिनतैं अनन्त गुणे जीव, भव्य राशि और कहैं। ऐसे ही इस संसार तैं अनन्त काल तांईं जीव मोक्ष होवो करैं, तौ भी सिद्ध राशि तैं अनन्त भव्य जीव जब पूछौ, तब ही केवली बतावैं। तातें सदीव मोक्ष जातैं भी, जब केवली कूं पूछिये तब ही अभव्यन तें अनन्त गुणे भव्य, एक शरीरमें जानना। और कदाचित् मोक्ष जाते-जाते, भव्य राशि मोक्ष जा चुकै, तो मोक्षका पीछे अभाव होय। मोक्ष बन्द होय। सो मोक्ष मारग कबहूं बन्द होता नाहीं, शाश्वत् है। छह महीना आठ समयमें, छह

सौ आठ जीव, निरन्तर मोक्ष जांय। सो ये अनुक्रम कबहूं बन्द होता नाहीं। सो ऐसा जानना कि जो अनन्ते जीव, भव्य-राशिमें ऐसे हैं, सो कबहूं मोक्ष होते नाहीं। जब केवली कूं पूछौ, तब ही अभव्य राशि तैं अनन्त गुणे भव्य बतावैं। तामें दूरानदूर भव्य राशि भी, अभव्यन तैं अनन्त गुणी जानना। सो ये दूरानदूर भव्य, अभव्य समानि हैं। इति। आगे तीन भेद आंगुलके कहिये हैं। सो प्रथम ही नाम-उच्छेद आंगुल १ आत्म आंगुल २ प्रमाण आंगुल ३ इनका अर्थ—तहां प्रथम ही उच्छेद आंगुल कौं बतावैं हैं। ताके निमित्त, उगणीस भेद गिणती कहिये। अवसनासन, सनासन, तटरेणु, त्रसरेणु, रथरेणु, उत्तम भोग भूमिके बालका अग्रभाग, मध्य भोगभूमिके बालका अग्रभाग, जघन्य भोग भूमिके बालका अग्रभाग, कर्म भूमिके बालका अग्रभाग, लीख, सरसौं, जव नाम अन्न, आंगुल, ये तेरह स्थान हैं। सो अवसनासन स्कन्ध तैं लगाय, आंगुल पर्यंत तेरह स्थान, आठ-आठ गुणा अधिक जानना। भावार्थ—जैसे अवसनासन स्कन्ध है सो अनन्त पुद्गल परमाणूनका स्कन्ध होय है। आठ अवसनासनका, एक सनासन स्कन्ध होय है। आठ सनासन मिलाये, तब एक तटरेणु होय है। आठ तटरेणु मिलाये, तब एक त्रसरेणु होय हैं। ऐसे आठ-आठ गुणा आंगुल पर्यंत जानना। इस आठ जव प्रमाण उच्छेद आंगुल तैं पांच सौ गुणा प्रमाण-आंगुल है १४ चौवीस आंगुलका एक हाथ होय है १५ च्यारि हाथका एक धनुष होय है १६ दो हजार धनुषका एक कोस होय है १७ च्यारि कोसका एक योजन होय है १८ असंख्यात योजनका एक राजू होय है १९ उगणीस भेदनमेंसे तेरहमा भेद, आठ जव प्रमाण उच्छेद आंगुल है जिस कालमें जैसा शरीर होय तैसा ही आंगुल, सो आत्म आंगुल जानना। अवसर्पिणीका प्रथम चक्रवर्ती, पांच सौ धनुषके शरीर धारा, ताका आंगुल सो ये प्रमाणांगुल है। सो ये उच्छेद आंगुल तैं पांच सौ गुणा मोटा, प्रमाण-आंगुल जानना। इति। आगे अक्षर के तीन भेद हैं, सो कहिये हैं। प्रथम नाम-निवृत्ति अक्षर लब्धि अक्षर, स्थापना अक्षर, अब इनका अर्थ-तहां ओंठ' तालवादि स्थान तैं उत्पत्ति होय जो शब्द रूप अक्षर, सो निवृत्ति अक्षर है। १। ज्ञानावरणी कर्मके क्षयोपसम तैं भई जो पदार्थ जाननेकी भावेन्द्रिय द्वारा अक्षर शक्ति, सो लब्धि अक्षर है। २। जो अपने-अ-

पने देश भाषा रूप अक्षरनका आकार बनायके, तिन तैं कर्म-धर्मका कार्य करना, शास्त्र पढ़ना—समझना। इत्यादिक सो स्थापना अक्षर है। ३। ऐसे तीन भेद अक्षर जानना। इति। आगे पर्याप्तिके तीन भेद-पर्याप्ति। १। अपर्याप्ति तिसका ही नाम निर्वृत्य पर्याप्ति। २। लब्धि अपर्याप्ति। ३। इनका अर्थ—जहां पर्याप्ति नाम कर्मके उदय सहित जीव पर्याप्ति पूरण करे, सो पर्याप्ति है। १। पर्याप्ति प्रकृतिके उदय सहित जीव जेते काल शरीर पर्याप्ति पूरण नहीं किया होय, सो निर्वृत्य पर्याप्ति जीव है। २। अपर्याप्तिके उदय सहित जीव शरीर पूर्ण करतैं पहले मरण करे है, सो लब्धि अपर्याप्ति है। ३। ऐसे तीन भेद पर्याप्तिके जानना। इति। आगे चक्षु दर्शनके दोय भेद हैं। एक शक्ति चक्षु दर्शन। १। एक व्यक्त चक्षु दर्शन। २। इनका सामान्य अर्थ—अपर्याप्ति प्रकृतिके उदय सहित ऐसे लब्धि अपर्याप्त, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रियके शक्ति चक्षु दर्शन है। इनके चक्षु दर्शनका क्षयोपशम तो है, परन्तु अपर्याप्ति कर्म उदय तैं, अपर्याप्त दशामें ही मरैं हैं। तातैं प्रगट नहीं होने पावै। तातैं शक्ति चक्षु दर्शन कहिए। १। पर्याप्त चौइन्द्रिय सो ये व्यक्त चक्षु दर्शनी हैं। २। इति। आगे उपशम सम्यक्के दोय भेद बताईये हैं—प्रथमोपशम सम्यक्। १। द्वितीयोपशम सम्यक्। २। इनका सामान्य अर्थ—तहां अनादि काल संसार भ्रमण करते कबहूं मिथ्यात छूटि सम्यक् होय। आगे कबहूं नहीं भया था, अब ही अनन्तकालमें सम्यक् भाव जिस जीवकैं होय, सो प्रथमोपशम सम्यक् है। १। श्रेणी चढ़ते अप्रमत्त गुणस्थान विषैं क्षयोपशम सम्यक् तैं उपशम सम्यक् होय सो द्वितीयोपशमसम्यक् कहिये। २। इति आगे योग स्थानके तीन भेद बतावैं हैं—प्रथम उत्पाद योग स्थान। १। एकांत वृद्धि योग स्थान। २। परणाम योग स्थान। ३। इनका सामान्य अर्थ-तहां जो उपजनेके प्रथम समयमें ही जो योग स्थान होय सो उत्पाद योग स्थान है। याका जघन्य व उत्कृष्ट काल एक ही समय है। १। उपजनेके द्वितीय समय तैं लगाय, पर्याप्ति पूरण होनेके एक समय घाटि पर्यंत एक-एक समय बढ़ाईये। तातैं एकान्त वृद्धि योग स्थान हो है। याका भी जघन्य व उत्कृष्ट काल एक समय है। २। पर्याप्ति पूर्ण हो चुकी तब तैं लगाय आयु पर्यन्त होय सो परणाम योग स्थान है। ३। यहां प्रश्न—जो परणाम योग स्थान

तौ पर्याप्त जीव कैं सम्भवै है। और अपर्याप्ति कर्मके उदय वारे कैं कसे सम्भवै ? ताका समाधान-जो इस लब्धि अपर्याप्त जीवका आयु, श्वासके अठारहवें भाग है। ताके तीन भाग कीजिये, सो दोय भाग विना एक भाग अन्तका है। सो याका परणाम योग स्थान जानना। ये तीन योग स्थान कहे। इनका विशेष श्रीगोम्मटसारजीके जीव कांड तैं जानना। इति। आगे धर्ममें अरुचि होवेके तीन कारण बताईये हैं। एक तौ जो जीव जन्मका ही अज्ञान हैं। ताकों अज्ञानताके योग करि धर्म्म तैं अरुचि रहै है। १। कोई जीवकैं कषायके दोष तैं धर्म तैं अरुचि होय है। २। कोऊके धर्म सेवन करते ही, पापके उदय तैं अरुचि होय। ३। अब इनके दृष्टान्त दिखाइये है। तहां जैसे कोई जीव जन्म रोगी तथा जन्म दरिद्री इन दोऊ ही नैं कबहूं घृत-मिश्रीका भोजन नहीं किया। इनके स्वादकूं कबहूं नहीं पाया। तैसे ही कोई पापात्मा अनादि ज्ञान-दरिद्री मिथ्या रोग पूरित सहज ही अज्ञानता करि पाप-पुण्यके भेदकूं नहीं जानै। तातैं धर्मतैं अरुचि होय है। १। दूसरा जो कोई जीव कषाय करि तथा जाकैं कोई खोटी आयुको बन्ध होय गया होय ताकरि कोई तैं लड़-पड़ा। सो वाके ऊपरि अपघात करवेकूं कूप नदी, बावड़ीमें कूदि मरै। तथा कोई पै जहर खाय व छूरी कटारी करि, मरै। तैंसे ही पाप कर्मके उदय करि धर्म सेवन करता भी काहू तैं द्वेष भाव करि धर्म तैं अरुचि करै है। २। कोई अच्छी तरह खाता-पीता जीव कैं पाप कर्मके उदय तैं पेटमें रस बढ़ चल्या। ताके योग तैं खान-पान तैं अरुचि होय चली। ज्यों-ज्यों पेटमें रस बढ़ने लगा त्यों-त्यों रोग बढ्या। त्यों-त्यों अन्न तैं अरुचि होय चली तैसेही अच्छा भला धर्म सेवन करता ही जीव पाप उदय तैं तथा कोई खोटी गतिके बन्ध तैं तथा आयुके बन्ध योग तैं शनैः-शनैः धर्म तैं अरुचि करै है। दीरघ आरतिके योग तैं भोगासक्त भया ताके दोष करि धर्म तैं अरुचि करै है। ३। ये तीन भेद भाव तैं धर्ममें अरुचि करि पाप बंध करि आत्मा अपना परभव बिगाड़ै है। ऐसा जानना। इति। आगे तीन शल्यके भेद कहिये हैं—माया शल्य। १। मिथ्या शल्य। २। अग्र सोच (निदान) शल्य। ३। इनका अर्थ-तहां मायाको परणति आप तज्या चाहै है। धर्म सेवन करै। परन्तु अपने हृदयतैं माया नाहीं जाय। कबहूं न कबहूं मायाकी वासना प्रगट हो ही जाय सो माया शल्य कहिये। १। जहां धर्म सेवन

करतैं मिथ्यात आप तज्या चाहै कुदेवादिककी सेवाका भी त्याग करै, परन्तु कारण पाय कबहूं न कबहूं अतत्व भाव उपजै है। मिथ्या भाव तैं अतत्व उपजै तथा जिन भाषितमें संशय होय सो मिथ्या शल्य है। २। जहां धर्म सेवन निरवांच्छित होय कैं सेवतैं ही चित्त मैं कबहूं न कबहूं धर्म सेवनतैं पहिले ही सेवनके फलकी वाच्छां होय कि धर्मका मोकौं क्या फल होयगा? तथा नहीं होयगा। तथा ऐसा फल उपजियो इत्यादिक भाव विकल्प, सो अग्रसोच (निदान) शल्य है। ३। इति। आगे निक्षेप च्यारिका स्वरूप कहिये है। प्र-म नाम-नाम, स्थापना द्रव्य, भाव अब इनका अर्थ—तहां कोई वस्तुका कछू नाम कहना, सो नाम निक्षेप है। १। कोई वस्तुका आकार करना, सो स्थापना निक्षेप है। २। और कोई वस्तु-पदार्थ होवे कौं कोई वस्तु होय सो द्रव्य निक्षेप है। ३। वस्तु प्रत्यक्ष होय सो भाव निक्षेप कहिये है। ४। यहां इनका दृष्टान्त करि कहिये हैं। जैसे बृषभ आदि तीर्थंकरोंके नाम लेय सुमरन करि पुण्यका बंध करना सो नाम निक्षेप है। १। चौबीस तीर्थंकरोंके शरीरके आकार वर्ण लक्षण रूप सहित कायोत्सर्ग तथा पद्मासन प्रतिमा रतनकी स्वर्णकी चांदीकी धातुकी मनोग्य उत्तम पाषाणकी स्थापना करि पूजा स्तुति करि पुण्य उपार्जन करना, सो स्थापना निक्षेप है। २। तीर्थंकरका जीव परगतिमें ही है। अरु षट मास पहिले नगरकी रतन मई रचना पंचाश्चर्य करि उपजावना। तथा जो तीर्थंकर भये हैं। तिनके गर्भकल्याणादि अतिशयका उछाह करि स्तुति करि पुण्यका बांधना सो द्रव्य निक्षेप है। तीर्थंकर भये नहीं हैं परन्तु वह गर्भमें तिष्ठतो आत्मा तीर्थंकर होने योग्य है। काल पाय तीर्थंकर पद पावेंगे। सो द्रव्य तीर्थंकर कहिए। सो इनकी सेवा पूजा किये पुण्य वन्ध होय है सो द्रव्य निक्षेप है। ३। जहॉं समोशरण सहित गन्ध कुटी विष सिंहासन युक्त कमल तिसतैं अन्तरीक्ष चार अंगुल विराजमान भगवान् घातिया कर्म नाश करि अनन्त चतुष्टय सहित विराजमान दिव्य ध्वनि करि उपदेश देते तिष्ठैं सो भाव निक्षेप है। इनको पूजा—स्तुतिकूं करि पुण्य उपावना, सो भाव निक्षेप है। ४। ऐसे च्यार निक्षेप तीर्थंकरके हैं। यहां एक दृष्टान्त और भी कहिये है। काहूका नाम सिंह कहना सो नाम सिंह है। काष्ठ पाषाण चित्रामका नाहरका आकार बनाया सो स्थापना सिंह है। नाहरकी पर्या-

यमें उपजवेकूं सन्मुख भया जो जीव सो तौ अन्तरालमें है, सो द्रव्य नाहर है। साक्षात् कूदता फांदता बोलता सिंह सो भाव सिंह है। इत्यादिक भेद सब जगह चेतन अचेतन पदार्थन पै लगावना। इन च्यारोंके मारै पाप होय व इन पै दया भाव किये पुण्य होय। मिट्टीके स्थापना-नाहरके फोड़े मारैका दोष लागै है। यहां निक्षेपनका स्वरूप सामान्य कह्या। विशेष विवेकी सम्यग्दृष्टी अपने ज्ञानके महात्म्य करि सव स्थान पै यथायोग्य लगाय लेना। इति। आगे अलौकिक मानके च्यारि भेद हैं। सो बताईये है। प्रथम नाम-द्रव्य मान क्षेत्र मान काल मान और भाव मान अब इनका अर्थ—सोइन च्यारों मान विषैं जघन्य मध्यम उत्कृष्ट ये तीन तीन भेद हैं। तहां मान नाम प्रमाणका है। सो जो एक पुद्गल परमाणु है सो जघन्य द्रव्य मान है। यातैं छोटा द्रव्य और नाहीं। महास्कंध तीन लोकके प्रमाण, सो उत्कृष्ट द्रव्य मान जानना। या महास्कंध तैं बड़ा और पुद्गल स्कंध नाहीं। तातैं महास्कंध उत्कृष्ट द्रव्यमान जानना। पुद्गल परमाणूसे ऊपर, महास्कन्धसे एक पुद्गल परमाणु कम जो बीचके भेद हैं, सो मध्यम द्रव्य मान है। १। और एक प्रदेश आकाशका क्षेत्र, सो जघन्य क्षेत्र मान है। यातैं छोटा क्षेत्र नहीं। और तीन लोक क्षेत्र प्रमाण क्षेत्र सो लोकाकाशकी अपेक्षा उत्कृष्ट क्षेत्र मान है। और अनन्त अलोकाकाश चत्र है सो उत्कृष्ट क्षेत्र मान है। या अलोकाकाश तैं उत्कृष्ट क्षेत्र नाहीं। और एक प्रदेशके ऊपर तैं एक-एक प्रदेश बढ़ता उत्कृष्ट पर्यन्त मध्यके भेद हैं। ये क्षेत्रमानके तीन भेद हैं। २। और एक समय तैं छोटा काल—भेद नाहीं। तातैं एक समय तो जघन्य काल मान है। और अतीत, अनागत, वर्त्तमान ए तीन कालके जेते समयनका प्रमाण सो उत्कृष्ट काल मान है। और दूसरे समय तैं एक-एक समय काल बढ़ता सो उत्कृष्ट तैं एक समय घाटि पर्यन्त मध्यके भेद हैं। ऐसे काल-मानके तीन भेद कहे। ३। और सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तक जीव एक अन्तर्मुहूर्तमें छ्यासट हजार तीन सौ छत्तीस जन्म-मरण करै। सो तिनमें छह हजार ग्यारह जन्म मरण निगोदिया सम्बन्धी करि चुक्या होय। अरु बारहवें जन्म धर तैं, प्रथम समयमें अक्षरके अनन्तवें भाग ज्ञान रहै है। सो जघन्य ज्ञान है। सो ही जघन्य भाव-मान जानना। यातैं अल्प भाव-मान नाहीं। और इस जघ-

न्य भाव तैं एक-एक ज्ञान अंश बढ़ते एक अंश घाटि केवलज्ञान पर्यंत मध्य भाव मानके भेद हैं। और सर्व तीन कालकी जाननहारा अंतरजामी सर्वज्ञके केवल ज्ञान है सो उत्कृष्ट भाव मान है। ये तीन भेद भाव मानके जानना। ४। ऐसे सामान्य च्यारि भेद मानके जानना। इति। आगे अर्जिकाजीके च्यारि गुण कहिये हैं प्रथम नाम-लज्जा। १। विनय। २। वैराग्य। ३। शुभाचार। ४। इनका अर्थ—प्रथम अर्जिकाजीका रहनेका स्थान बतावैं हैं। सो जहां अजिकाजीके रहनेका स्थान होय सो नगर तैं अति दूर नहीं होय। बहुत नजदीक भी नहीं होय। ऐसा यथायोग्य कोई मध्य स्थान होय तहाँ तिष्ठै। और जब आहार कौं नगरमें जाय तौ अकेली नहीं जाय, कोई बड़ी अर्जिकाजीके साथ जाय। सो भी मौन सहित, विनय तैं, अङ्ग सङ्कोचती, नीची दृष्टि किए, ईर्य्या समिति सहित, नगरमें भोजन कौं जाय। तन को छिपाए रहे, अङ्गोंपांग प्रगट नहीं दिखावै। एक पट तैं सर्व तन कौं आच्छादित राखती, लज्जा सहित प्रवृत्ते, सो लज्जा गुण कहिए।१। और अर्जिका जी आचार्य के दर्शन कौं जांय, तौ पांच हाथ अन्तर तैं विनय सहित नमस्कार करैं हैं। उपाध्याय जी के दर्शन कौं जांय, तब षट हाथ तैं नमस्कार करैं हैं। साधु जी के दर्शक कौं अर्जिका जी जांय, तब सात हाथके अंतर तैं नमस्कार करैं। सो अर्जिका जी इन गुरौं को नमस्कार करैं, तब पंचॉग नमस्कार करैं। अर्जिका जी कौं गुरुन पै कोई प्रश्न करना होय, तौ अकेली जाय, नहीं करैं। एक बड़ी अर्जिका कूं अपना प्रश्न कहै, जो इस प्रश्नका उत्तर गुरुके मुख तैं सुन्या चाहौं हौं ऐसा कहि, बड़ी अर्जिका जी कौं अगवानी करि, प्रश्न करावै। और भी इनकौं आदि देव, गुरु, धर्म, विषै योग्य विनय सहित रहै, सो विनय गुण है। २। और निरन्तर वैराग्य बढ़ावनेके अर्थ, अनेक तप करना। यत्न तैं संयम—ध्यान करना। निरन्तर संसारकी अनित्यताका विचार करना। भोगनको भुजंग समानि जानना। तनकौं सप्त धातु मई जान, ताके धारण तैं चित्तकी उदासीनता, इत्यादिक भावन सहित विरक्त भाव रहना, सो वैराग्य गुण है। ३। और परम्पराय जिन आज्ञा प्रमाण कही है जो अर्जिका के आचार की प्रवृत्ति, ताही प्रमाण क्रिया करनी, सो शुभ आचार गुण है। ४। इन च्यारि गुण सहित होय,

सो सतीन में परम शिरोमणि, धर्म्म मूर्ति अर्जिका जानना। इति आर्यिका गुण। आगे दत्ति भेद च्यारि कहिये है। तहां नाम—पात्रदत्ति। १। समदत्ति। २। करुणादत्ति। ३। सर्वदत्ति। ४। अब इनका अर्थ— तहां मुनिराज कौं नवधा भक्ति करि दान देना, तथा आर्यिका जी कूं भोजन—वस्त्र भक्ति सहित दान देना। तथा त्यागी, अवलि खलिक, प्रतिमाधारी, तिन कौं भोजन—वस्त्र देना तथा संघ में मुनि—श्रावकन कौं कमण्डलु—पीछी देना। इत्यादिक चारि प्रकार संघमें महा विनय सहित भक्ति-भाव करि दान देना, सो पात्रदत्ति है। १। और आप समानि धर्म श्रद्धा का धारक गृहस्थ, धर्मात्मा, ज्ञानी, वैराग्यवान, संतोषी, सम्यग्दृष्टी, शुद्ध देव—गुरु—धर्मको श्रद्धाको समझनेहारा, उत्तम शुभ कर्मी, ताकौं यथायोग्य भक्ति—अनुराग करि, विनय पूर्वक भोजन—वस्त्रादि देना। तिन को स्थिरता करनी, साता करनी, सो समदत्ति है। प्रयोजन पाय इनकौं दान दीजिये तथा उनका आप लीजिये। तातैं इनका लेना-देना सो समदत्तिहै।२। जहां दीन, दरिद्री, अंधा, भूखा बालक, वृद्ध, अशक्त, रोगी; असहाय, इत्यादिक कौं देखि अनुकंपा करि, दया-भाव सहित दानका देना, सो करुणादत्ति है। ३। जहाँ सर्व परिग्रह—आरम्भका त्याग करि मुनीश्वरका पद धरना, सो सर्वदत्ति है। अब कछु देनैका नाम नहीं, जो देना था सो सर्व दिया। सर्व संसारमें तिष्ठते जो—जो त्रस—स्थावर जीव, तिन सबमें समता भाव करि, सबकौं अभय दान देना, सो ये सर्वदत्ति जानना। ४। ऐसे दत्ति चारि। इति दत्ति। आगे कुलकर तैं लगाय भरत चक्रवर्ती पर्यन्त जीवनमें, चूक भये दण्ड होय। ताके भेद च्यारि हैं। सो बताईये हैं—तहां तीजे काल के व्यतीत भए, पल्य का अष्टम भाग काल, बाकी रह्या। तब ज्ञान का सामान्य—विशेष भया। कोई जीव विशेष ज्ञानी, कोई जीव सामान्य ज्ञानी। ताके योग तैं कुलकर भए। सो और जीवनमें ज्ञान अल्प और कुलकरन में ज्ञान विशेष भया। सो प्रथम कुलकर तैं लगाय पंचम कुलकर पर्यन्त कोई चूक भए, जीव कौं ऐसा दण्ड होय जो "हा"। याका अर्थ यो, जो "हाय—हाय! (यह कार्य मति करौ)"।१। ऐसेही पंचम तैं लगाय दशवें पर्यन्त ऐसा दण्ड जो "हा मा"। याका अर्थ यह, जो "हाय-हाय! यह कार्य मति करो"। २। और वृषभ देव पर्यन्त पंचम

कुलकरों के वारे ऐसा दण्ड भया, जो "हा मा धिक्" याका अर्थ—"हाय हाय। यह कार्य मति करौ तौ कों धिक्कार है"। ३। पीछे काल—दोष तैं जीवन के कषाय बढ़ी। तब राज—दण्ड भी दीरघ भया। सो चूक भए भरत चक्रवर्ती के समय वारे जीव, वक्र-कषाई भए। अपराध बड़े करने लगे। सामान्य दण्डका उल्लंघन करने लगे। तब छेदन-भेदन, बध-बन्धनादि दण्ड भये। ४। ऐसे दण्ड भेद च्यारि कहे। सो जीवन की जैसी—जैसी कषाय भई, तैसा २ दण्ड विधान चल्या। सो अब देखिये है। जो दीरघ चूक तैं, दीर्घ दण्ड पावैं। अल्प चूक तैं थोरा दंड पावै और चूक रहित व गुण सहित जीवन की, पूजा होती देखिए है। तातें ऐसो जान, विवेकी पुरुषन कूं चूक (भूल) भाव छांड़ि, गुण करना योग्य है। इति दण्ड भेद।

इति श्री सुदृष्टियरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, दश करणादि भेदवर्णनो, नाम अट्ठाईसवां पर्व सम्पूर्णं ॥ २८ ॥

आगे श्रावक की क्रिया पच्चीस हैं। इन—इन भावन तैं जीव, कर्म का आश्रव करै है, सो ही बताईये है। प्रथम सम्यक्त्व की क्रिया कहिए है—तहां अठारह दोष रहित शुद्ध देवकी पूजा, शुद्ध गुरु की पूजा, शुद्ध धर्म की पूजा, जिन बिम्ब की पूजा, सिद्धक्षेत्र पूजा। धर्मात्मा पुरुषन के गुणनमें अनुराग भाव, वात्सल्य भाव। दीन, दुखित, रोगी, दुखी—दरिद्री, इत्यादिक क्लेशवान् जीवन कौं देख, दया भाव करैं। समता भाव बढ़ावै। इत्यादिक समभावना सहित जीव, शुभ कर्मका आश्रव करै है। याका नाम सम्यक् क्रिया है। ये तौ शुभ आश्रव है। १। आगे मिथ्यात प्रवर्द्धिनी क्रिया कहिये है—तहाँ कुदेव पूजा, कुगुरु पूजा, कुतीर्थ पूजा, हिंसा सहित कुतप तिनके करवे की भावना, औरन के हिंसा तपकी प्रशंसा, कुदान करवे की अभिलाषा, कुव्रतन में काय की प्रवृत्ति, सर्वमें विनय, सुदेव—सुगुरु, कुदेव—कुगुरु, इनकौं एक से जानना, इत्यादिक भावन तैं अशुभ कर्मका आश्रव होय है। याका नाम मिथ्यात प्रवर्द्धिनी क्रिया है। ये शुभ कर्म कौं उपजावै है। २। और असंयम प्रवर्द्धिनी क्रिया कहिए है—तहां मनमें अनेक विकल्प धन—धान्य की चाह करना। भोग—उपभोग में अभिलाषा रूप रहना, इन्द्रियन के पोखवे की वांच्छा इत्यादि असंयम के विकल्प रूप मनका वेग, सो मन असंयम है। पंचेन्द्रिय अपने विषय कौं चाहती। [illegible]

रसना इन्द्रिय, षट्रस के भोग में लुब्ध। स्पर्श इन्द्रिय, अपने अष्ट विषयन में लुब्ध। घ्राणेन्द्रिय, सुगन्ध इच्छुक। नेत्र इन्द्रिय, पंच वर्ण विषैं लुब्ध। श्रोत्र इन्द्रिय, सुस्वर शब्द-वादित्रन में लुब्ध। इत्यादिक इन्द्रिय असंयम रूप। ऐसे मन व इन्द्रिय आत्मा के वश नहीं रहैं। और त्रस-स्थावर के षट् कायन की दया नहीं पालै। ऐसे बारह असंयम रूप भावन के विकल्प तैं, अशुभ कर्म का आश्रव जीव करै है। याका नाम असंयम प्रवर्द्धिनी क्रिया है। ३। आगे प्रमानी चोथी क्रिया कहिए है—तहां जो जीव प्रथम तो आप संयम, व्रत आखड़ी कौं धारतैं तपके फल का बांच्छिक होय। तपस्वी नाम बाजै। पीछै काल पाय तप कष्ट तैं भय खाय जलकी इच्छा अन्नकी इच्छा स्त्रीको इच्छा। शीत—उष्ण नहीं सह्या जाय सो और असंयमी जीवकौं खावते—पीवते, स्त्री संग करते, शीत—उष्णमें अनेक तनके जतन करते सुखी देखि, विचारो। जो मैं तो संयम तैं दुखी होय रह्याहौं और ये असंयमी सुखी है, अच्छा खाय है—पीवै है। ऐसे भाव करि आप संयमी होय कर, पीछे प्रमाद योग तैं पाप उदय करि, असंयम कूं भला जान, संयम तैं विचल्या चाहै। सो प्रमादिनी नामकी क्रिया है। ऐसे भाव तैं अशुभ कर्मका आश्रव होय है। ४। आगे ईर्यापथ क्रिया कहिए है। सो याकरि दोय भेद आश्रव होय है। जो जीव अंतरंग में सर्व जीव पै दया भाव करि, गमन करतैं नीची दृष्टि करि देखता चालै। धीरा चालै। छोटा—बड़ा जीव नजर में आवे, सो राह में बचाय लेय, ऐसे दया भाव सहित जतन तैं भूमि शोधता गमन करै, तौ चलता जीव कैं ही पुण्य का आश्रव होय। और गमन करते, ईर्या तजि, प्रमाद तैं उतावला चालै। राह में आप समान आत्मा अनेक, छोटी कायधारी, पशु चींटा—चींटी हैं तिनकी रक्षा रहित, प्रमाद तैं गमन करता आत्मा, अशुभकर्म का आश्रव करै। याका नाम पंचम भेद ईर्य्यापथ क्रिया है। ५। आगे प्रादोश की क्रिया कहिये है—जहां ये जीव धर्म भाव तजि क्रोध के वशीभूत होय, अनेक पाप करै। जाकौं क्रोध का उदय होय तब जीव घात करै; दया तजै। क्रोधी जीव देव गुरु, माता आदि गुरुजन का अविनय करै। शस्त्र घात तैं, आप तन हतैं। क्रोधी अग्नि तैं ग्राम बन, घर जालै। क्रोधी नर, पुत्र, स्त्री, भाई आदिका घात करै। इत्यादिक पाप, क्रोध भाव तैं करै। तहां

ये है—तहां जानैं शरीर पाय, चोरी करी। जीव घात किया। पर स्त्री सेवन किया। मद्य—मांस भक्षण किया। अपने कुल निंद्य, अपने धर्म निंद्य, खान—पान निंद्य क्रिया करि। द्यूत रम्या। युद्ध क्रिया। पर जीवन कूं भय उपजाये। इत्यादिक ता शरीर तैं बहुत अपराध किये। ताके फल तैं शरीरकी नाक छेदन कराई, पांव छेदन कराये, इत्यादिक अंग—उपांग छेदन सहित रहै। तौभी परघातका तौ उद्यम क्रिया करे। ऐसे बहुत पापअकार्य करि, भाव विगाड़ि, अशुभ कर्मका आवक किया। और शुभ कर्म लौ शरीर कौं धारि, कबहूं नहीं करया, अपराध कीये। सो सातमो कायिक क्रिया है ॥ ७ ॥ आगे अधकरणी क्रिया कहिये है—तहां जाकौं हिंसाके उपकरण, बहुत वल्लभ (प्यारे) लागें। तोर, तलवार, तुपक, तोप, सेल, बरछी, कटारी, छुरी इत्यादिक अचेतन, हिंसाके उपकरण हैं। सो ये जा कूं बहुत अनुराग उपजावैं। तिनके निमित्त शृङ्गारवे कौं अनेक द्रव्य लगाय आभूषण करावै। तथा चीता, बाज, श्वान, सिंह, सुअर, मार्जार, चोर, ऐंठा देनेहारे, घर फोड़नेहारे, ठग, फांसी करनहारे इत्यादिक ये चेतन, हिंसाके उपकरण जाकौं प्यारे लागैं इनकौं भला भोजन देय। बड़े भारी वस्त्र देय। इत्यादिक चेतन-अचेतन हिंसाके पापके सहाई उपकरण तिनकौं देखि हरष भाव करना सो अशुभ आश्रवके करनहारे भाव जानना। याका नाम आठवीं अधकरणी क्रिया है ।८। आगे परितापकी क्रिया कहिए है। तहां अपनी इच्छा करि जान पूछ करि ऐसो क्रिय करै जाकरि पर जीवन कूं पीड़ा होय। जैसे काहूने कौतुक हेतु हस्तीका युद्ध कराया। मीढेनका युद्ध कराया। क्रूर जीव नाहरका युद्ध क्रिया सर्प नेवलेकी युद्ध क्रिया घोटक युद्ध महिष युद्ध, ऊँट युद्ध, नर युद्ध इत्यदिक युद्ध क्रिया अन्य जीवनकी करावनी। तिन तौं कोईके शिर फूटैं। केईके पद भङ्ग भये। इत्यादि अन्य जीवनकूं बलात्कार दुखी करि आप हर्ष पावना। सो परितापकी क्रिया, अशुभ आश्रवको करनहारो है तथा नदी कूप बावड़ी, सरोवर विषैं, कौतुक हर्षके हेतु कूदना ताकरि दोन जीव जलचर, तिनका घात करना, दुखी करना। जान-पूंछ काहू के लात, मूकी लाठी शस्त्र मार दुखी किए। इत्यादि क्रिया करि अशुभ कर्मनका आश्रव करना

याका नाम नववीं परितापकी क्रिया है। ९। आगे प्राणपातकी क्रिया कहिये है। तहां जो जीव अपने तनतैं परजीवनके तनका नाश करै। जैसे खेटक करनेवालेकी क्रिया। तथा चांडालादिक दया रहित, पर जीवनका घात करनहारे तिनकी क्रिया। तथा चोर व फँसियारा अपने हाथ तैं पर जीवनका घात करैं, सो क्रिया। इत्यादिक पर जीव घातवेकी क्रिया हैं। सो सर्व पापका आश्रव करैं हैं। याका नाम प्राणपातकी दशवीं क्रिया है॥ १०॥ आगे दर्शन क्रिया कहिये है —जहां पराया भला रूप देखवेकी इच्छा, कोई स्त्री-पुरुषका अच्छा रूप सुनै, तौ ताके देखवेकी अभिलाषा होवेकी क्रिया। पुरुष कौं अनेक पट—आभूषण पहराय, स्त्रीका रूप आकार बनाय, देखवेके परणाम। कोई देव, देवी, मनुष्यनीके रूपका बखान सुनि कैं, तैसे रूप देखवे कूं चित्तका विह्वल होना। तथा अनेक प्रकार षट्रस भोगवेकी अभिलाषा। रसनाके रंजावनेहारे भोजन तैं सुखी, रसना कूं अरति उपजावनेहारे भोजन—रस मिलै दुखी, ऐसे भावन तैं जीव अशुभ कर्मका आश्रव करै। याका नाम ग्यरहवीं दर्शन क्रिया है॥ ११॥ आगे स्पर्शनकी क्रिया कहिये है। तहां जो जीव अपने कायके स्पर्शने कूं कोमल शय्याके निमित्त, सचित्त फूल—बौंड़ी तिनकी शय्या रचना करै। तामें शयन करि—लोट, आनन्द मनवै। पापका भय नाहीं, दयाका विचार नाहीं, हिंसाका तरस नाहीं. अपनी इन्द्रिय पोषी जाय सो करना। तथा योग्य-अयोग्य कुल नहीं विचारै। भावै स्पर्शवे योग्य होऊ, भावै नीच अस्पर्शवे योग्य होऊ, जाका तन सुन्दर होय कोमल होय, सौ स्पर्शन इन्द्रियका भोगनेहारा ताकौं स्पर्शै है। नीच—ऊंच नहीं विचारै। सो बारहवीं स्पर्शन क्रिया है॥ १२॥ आगे प्रत्यायिनी क्रिया कहिये है। जहां पाप करवेके कारण नाना प्रकार शस्त्र, तीर, गोली, छुरी, कटारी, तरवार, जाल, पींजरा, फाँसि, फंदा, चेप, कुप, इत्यदिक हिंसाके कारण शस्त्र तिनकी अत्यन्त चतुराई बनावनेको जानैं होय। सो ऐसे अद्भुत् शस्त्र बनावै, तैसे और कोई तैं नहीं बनैं। ऐसे अपूरव दुखके कारण शस्त्रादि करवेकी कला-चतुराई, सो महा अशुभ कर्मका आस्रव करै। याका नाम प्रत्यायिनी क्रिया है॥ १३॥ आगे समन्तानुपातनी क्रिया कहिये है। जो गृहस्थके मन्दिर प्रसूतके स्थान हैं। ये भोगी जीवनके स्पर्श करवेके हैं। जहां सराग क्रीड़ा सदीव होय। सो ऐसे स्थान त्यागीनके रहवेके

नाहीं। ये सराग स्थान त्यागीन कौं योग्य नाहीं, अयोग्य हैं, भयके कारण हैं। तातें जो यती आदि संयमी, इन गृहस्थनके घरमें आवे, तौ महा सावधान, प्रमाद रहित, वीतराग दशा सहित, भोजन निमित्त आवें। सो जेते काल सराग नहीं होंय, दोष टालि भोजन लेय। सो जातें तथा आवतें, संयमी अपने तनके श्लेपमादि मल-मूत्र, प्रमादके योग तै कदाचित् गृहस्थीके घर विषें नाखें। तौ ऐसे प्रमाद-भावन तें अशुभ आस्रव करैं। याका नाम समन्तानुपातनी क्रिया है ॥ १४ ॥ आगे अनाभोग क्रिया कहिये है। जहां विना देखे वस्तु कौं धरती पै धरना, विना देखे धरती तैं उठाना। सो यती तौ कमण्डलु, पीछे, तन इत्यादिक धरें सो विना शोधे धरती, विना पीछी तें पूछैं, धरे तो अशुभ आश्रव करैं हैं। और श्रावक भी अनेक वस्तु धरना--उठवना विना देखे, प्रमाद सहित करैं, तौ अशुभ आश्रव करैं। याका नाम अनाभोग क्रिया है ॥ १५ ॥ आगे स्वहस्त क्रिया कहिये है। तहां जे दुराचारी, दुष्ट स्वभावका धरनहारा, महा पापी, अपने हाथ ऐसे पापका कार्य करे। जो ऐसा निषिद्ध खोटा कार्य-और तैं नहीं वनें। ऐसी कायका धारी महा पाप आस्रव करे। यह ऐसा पापी है कि यदि याके कहै कोऊ पाप कार्य न करे। तथा कोई करता पाप कार्य तें डरे। तौ यह निर्दयी ऐसा प्रेरक होय कहै। जो हे भाई, यो पाप हमारे शिर है। तू मत डरे। ये पापका कार्य निशङ्क होय करि। ऐसे भावका धारी वड़े पापका आस्रव करे। याका नाम स्वहस्त क्रिया है ॥ १६ ॥ आगे निसर्ग क्रिया कहिये है। तहां जा दुरात्मा कौं भला कार्य तो सिखाये ही नहीं आवे। शुभ कार्यन विषें मूढ़ता, भली वात वोलना न आवे। और अनेक कुकार्य, विना सिखाये ही अपनी वुद्धि तें उपावे। अनेक युक्ति, पाप कार्य करवेकी उपजे। आप करे, औरन कूं कुकार्य उपदेशे। ऐसे जीव अपने भाव तें पाप कर्मका आस्रव करैं। याका नाम निसर्ग क्रिया है ॥ १७ ॥ आगे विदारण क्रिया कहिये है। तहां जो जीव अपना अवगुण लोकनमें आप प्रगट कहै। जो मैं वड़ा चोर हूं। मो सा और नाहीं। अनेक संकटमें, महा गूढ़ स्थानमें, धन धर्‌या होय, तहां तैं ल्याऊं। तथा कहै, जो मो सा ज्वारी और नाहीं। तथा कहै, हम परस्त्री सेवनहारे हैं। तथा कहे, मैं वड़ा पाखण्डी हूं मो सा पाखण्डी और नाहीं। वड़ा झूठा हों। तथा मैं वड़ा दगावाज हों। इत्यादिक अपने अवगुण

की प्रसंशा, अपने मुख तैं करै। ऐसा जीव अपने भावनकी वक्रता करि, अशुभ कर्मका आश्रव करै। सो याका नाम, विदारण क्रिया है॥ १८॥ आगे जिन आज्ञाउल्लंघन क्रिया कहियो है। जो जीव विषय-कषायनमें उद्यमी, पंचेन्द्रिय पोषवे कूं अनेक उद्यम करै। कदाचित् तनकी शक्ति नहीं भई होय, तो बुद्धि बल करि मन तैं बड़ा उपाय करै। परन्तु जैसे बने तैसे, विषय पोषण करि' सुख मानै। जिनके सेवन तैं पुत्र वधन होता जानै, ऐसे कुदेव तथा जिन तैं रसायन होती जानै तथा वैद्यादिक कलाके धारी, जंन्त्र—मन्त्रादि चमत्कार बतावनहारे—गुरु, इनकी सेवामें सावधान। तिनकी आज्ञा प्रमाण तौ करै। जिन भाषित धर्म सेवनमें शिथिल, स्वर्ग—मोक्षदाता तप, ब्रत, पूजा करवैमें प्रमादो। कायर ऐसा कहै, जो मेरे तनमें शक्ति नाहीं। अशक्ति जानि, आलस सहित, शुद्ध धर्म की क्रिया करै। सो भी अपनी इच्छा रूप करै जिन आज्ञा प्रमाण नाहीं करै। ऐसे भावनका धारी अशुभ आश्रव करै। याका नाम जिन आज्ञा उल्लंघन क्रिया है। १६। आगे बीसवीं अनादर क्रिया कहिये है। जो जीव शास्त्रोक्त तप संयम पूजा दान, चारित्र, ध्यान पाठादि धर्म क्रिया करै सो सर्व अनादर सहित करै। यह अभागी धर्म भावना रहित पापाचारी आर्त्त रौद्रके विकल्पन करि भखा है हृदय जाका। ताकैं चोर-ज्वारीनका तौ आदर आप जैसे पापी पाखण्डी सप्त व्यसनी चोरनके सहाई तिनका आदर करै। और महालोभी परस्त्री इच्छूक धनके लोभ कौं व परस्त्री वश करवै कौं अनेक मन्त्र-तन्त्रनका साधन करै तप करै जप करै सो महा आदर सूं करै। अरु कल्याणकारो धर्म क्रिया आदर बिना करै। ऐसी परणतिका धारो, अशुभ कर्मका आस्त्रव करै। याका नाम अनादर क्रिया है। २०। आगे आरम्भ क्रिया कहिये है। तहां अपनी शक्ति तौ आरम्भ करवैकी नाहीं। तब और के किये पापारम्भ तिनकौं देख हर्ष करना। जैसे किसोके किये मन्दिर गढ़ कोट कूप बावड़ी सरोवर बनते देखि-महा आरम्भ देख आप अनुमोदना करनी। तथा परके व्याहमें बड़ा आरम्भ देखि प्रसंशा करनी। इत्यादिक भावनतैं अशुभ कर्मका आश्रव करै है। याका नाम आरंभ किया है। २१। आगे परग्राहणी क्रिया कहिये है। तहां जे जीव लोभके भरे योग्य अयोग्य नहीं गिनैं। ये लेने योग्य है ये नहीं लेने योग्य है। ऐसा भेद तीव्र

लोभके उदय नहीं विचारै। पर वस्तु अपने हाथ आवै सो सब लेय। देव धर्मका माल जो धर्म निमित्तका और भगनी पुत्रीका भानजेका इत्यादिक ये लौकिक निंद्य पर द्रव्य है। सो जो महा लोभ सहित जीव होय है सो लोभी धर्म-अर्थका भी द्रव्य विषयमें लगावै। बहिन-भानजेका धन लेय। इत्यादिक लोभीके हाथ आवै सो तजै नाहीं। ऐसे पर माल ग्रहण रूप भावनका धारी अशुभ कर्मका आश्रव करै। याका नाम पर-ग्राहणी क्रिया है।२२। आगे माया नाम क्रिया कहिये है। तहां जे जीवपर जीवनकौं ठगवेकौं महा चतुर अनेक युक्ति देय अनेक विद्याकर पराया धन हरैं। अनेक कलान करि अपने विषय-कषाय पोषण करैं। इत्यादि पाप कार्यनमें तौ प्रवीण होय हैं। और जे जिन भाषित शुद्ध धर्मकी क्रिया तिनमैं मूरख समानि भोरा जिन पूजा नहीं जानै जो कैसे करैं व कैसे पढ़ें हैं। भगवान्‌की स्तुति नहीं करि जानैं। प्रभुका दर्शन नहीं करि जानैं। जिनकी दया महा पुण्यकारी होय ऐसे षट् काय जीव तिनके नाम-भेद नहीं जानै। संसार भ्रमणके जो स्थान च्यारि गति ताका स्वरूप नहीं जानैं। आप जीव है सो आपकूं जीवत्व भाव नहीं जानैं। इत्या-दिक कल्याणकारी धर्म सम्बन्धी बात क्रिया तौ नहीं जानै। ऐसे भावका धारी जो पापमें चतुर धर्ममें मूढ़ सो पाप आश्रव करि परभव बिगाड़ै है। याका नाम तेईसवीं माया क्रिया है। २३। आगे मिथ्या दर्शन क्रिया कहिये है। जो जीव आप मिथ्यात्व रूप क्रिया करै। औरनकूं उपदेश देय। जैसे आप तौ धनका लोभी तथा मान-बड़ाईके अर्थ मिथ्या देव-गुरुकी सेवा करै। जो मोकूं धन देय मोकूं पुत्र हाथी घोटक देय इत्या-दिक वस्तुके लोभकौं मिथ्या-मारग सेवन करै। तथा और भोरे अज्ञानी जीवनकूं उपदेश देय कुदेवादिकके अतिशयकौं कहै कि ये देव प्रत्यक्ष वांछित देय है। हमने इनकी सेवा करी सो हमें ऐसी वांछित वस्तु देय हमारी वांछा पूरी करी। इत्यादिक अतिशय जानि देवादिककूं आप सेवना औरनकूं उपदेशना। सो ऐसे भावन तैं जीव संसार दुख देनहारे पापकर्म ताका आश्रव करैं हैं। याका नाम चौबीसवीं मिथ्या दर्शन क्रिया है। २४। आगे अप्रत्याख्यान क्रिया कहिए है। सो जे जीव अज्ञानताके योग तैं तथा परणामनकी क्रूरता तैं सर्व ही पाप कार्य करैं कोई पापका त्याग नाहीं। ते मूर्ख केई तो ऐसा कहैं जो हम तौ भोरे हैं।

हमकौं पाप नहीं लागै जो समझै हैं, ताकौं पाप भी लागै है। सो हम तौ कछू समझते नाँहीं जो पाप कहा होय है अरु पुण्य कहा होय है ? और केई जीव कहैं हैं कि जो हे भाई पाप-पुण्य तो है ही नाहीं। तातैं भय काहेका ? निशंक होय भोग सुख करना। केई प्राणी कहैं हैं। अरे देख लेहैं जब मरेंगे तब हाल तौ अपनी इच्छा होय सो करौ। मरतीबार धर्म सेय लेहैं। केई कहैं हैं कि जो तुम चाहौ सो करौ पाप होय तौ याका फल हमकूं लागै। इन क्रियान तैं नर्क होय तौ हमें होऊ। हे भाई यहां ही वांच्छित नहीं मिलै तौ नर्क है। और यहां ही सुख मिलै तो स्वर्ग है। तातैं सुख तैं रहौ। हालही छते सुख काहे कौं तजौ हौ ? इत्यादि स्वेच्छाचारी होय सर्व पाप करैं। योग्य-अयोग्य कछू विचार नाहीं। कोई पापका त्याग नाहीं करैं। ऐसे भावनके धारी अशुभ आस्रव करैं। याका नाम पच्चीसवीं अप्रत्याख्यान क्रिया है। २५। इति पच्चीस क्रिया आस्रवकी कहीं। आगे राजा श्रेणिकने श्री गौतम स्वामी तैं प्रश्न किये थे तथा तीर्थंकरको माता तैं देवाङ्गना ने प्रश्न किये थे तथा और अनेक शास्त्रनमें धर्मी जीवनके प्रश्न प्रमाण यहां पुण्य-पापका फल प्रगट जानवेकूं शिष्यनकी प्रश्नमाला लिखिये है। तहां शिष्य गुरुके पास विनय सहित होय पुण्य-पापके फल प्रगट जानवेकूं प्रश्नमालाकी जो पंकति सो पूछै है। हे गुरु-देवजी ! यह जीव अन्धा कोन पाप तैं होय। तब गुरु कही जिन जीवनने अन्य भव विषय अंस जीवनके नेत्र दुखाये होंय परके नेत्र फोड़े होंय। परकी आंख दुखती देख सुखी भया होय। परकौं अन्धा भया जानि अनुमोदना करी होय। अन्धे जीवनकी हांसि करि बहकाया होय। अन्धेनका धन वस्त्र छल-बल करि हरया होय इत्यादिक पापन तैं जीव अन्धे होंय तथा नेत्र रहित तेइन्द्रिय आदि अन्धे जीव उपजैं हैं। १। बहुरि शिष्य पूछै है। भो प्रभो ! जीव बधरे कौन पाप तैं होंय ? सो दया करि कहौ। तब मुनि कही जे जीव अपने कानन तैं विकथा सुनि हर्ष पाया होय। सत्य वचन सुनि ताकूं असत्य कहा होय। झूठा वचन सुनि जानि ताहि सत्य करि मान्या होय। तथा अपराधी चुगलनके मुख तैं असत्य पापकारी वचन सुनिकैं पर जीवन पर दोष लगाय घर लूट्या होय। दण्ड कर दिया होय। घर स्त्री गज घोटकादि खोंस लिये होंय। औरनके कान द्वेष-भाव करि छेदन किये होंय। तथा औरनकूं बधरे जानि कुवचन

बोले होंय। तथा परकूं बधरे जानि ताकी हांसि कौतुक करि हर्ष मान्या होय। पराये दीनताके वचन न्याय रूप सुनिकैं अनसुने किये होंय। तथा दीन आय-आय याचना रूप वचन, कहैं तिनकूं सुनि मानके जोर तैं जबाब नहीं दिया होय। तथा अन्य जीवन नें आपकूं भला मनुष्य जानि विनय-वचन कहे नमस्कारादि किया तिनकौं मानी होय पीछे प्रति उत्तर नमस्कारादि नाहीं कस्या। सुन्या-अनसुन्या किया होय। इत्यादिक पापन त बधिरा होय है। तथा कान रहित चौइन्द्रिय होय है।२। पीछे और प्रश्न शिष्य करता भया। हे यतीनाथ! लूला कौन पाप तैं होय? तव यती कही। हे वत्स! जाने परभवमें अपने हाथ तैं परके पाँव तोड़े होंय। तथा दीन पशूनकूं लाठी-लोठी मारि दया रहित चित्त करि तिनके पांव तोड़े होंय। तथा शस्त्र तैं दीन पशूनके पांव तोड़े होंय। पर कौं लूला—पग रहित जान ताका वस्त्र वासनादि ले भागा होय। तथा परके पाँव छेद तैं आप खुशी भया होय तथा इस कौतुक कूं देख हर्षाया होय। तथा पर कौं लंगड़े जानि वहकाये होंय, ताकी हँसी करी होय। इत्यादिक पाप तैं लंगड़ा होय। तथा पाँव रहित, हलन-चलन रहित एकेन्द्रिय होय।३। वहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ! मुख रहित तथा मुख सहित मूंका, कौन पाप तैं होय? तव गुरु कही। हे वत्स सुबुद्धि! चित्त देय सुनि। जिन जीवन नैं परके मुख मूंदि, तिन्हें शस्त्र मारे होंय। तथा मुखमें शस्त्र घालि, वचन वन्द करि, दुखी किया होय। तथा पर कौं भले वचन वोलते देखि, ताकौं मनै किया होय। तथा मुख पाय कैं असत्य वोलिकैं, अन्य जीवनका वुरा किया होय। तथा रसना इन्द्रियका लोलुपी वहुत रह्या, ताके निमित्त अनेक जीवनकी हिन्सा करी होय। तथा अभक्ष्य वस्तु तो रसना तैं वहुत भली लागी होय। तथा मुख करि अन्य जीवनकौं कोप करि श्वानादिककी नाईं काटे होंय। तथा और कं मूंका देखि, तिंनको हांसि करि, वहकाये होंय। तथा अन्य जीवनकं प्रच्छन्न वचन, जामें वह नहीं समझै ऐसे वचन वोलि, दुर्वचन कहि कैं हर्ष मान्या होय। इत्यादिक पापनतैं मूंका होय है।४। तव फेरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे नाथ, यह जीव निर्धन कौन पाप तैं होय? तव गुरु कही। भोवत्स! जिननैं पर भवमें अन्य जीवनका धन चोर करि, उन्हे निर्धन किया होय। तथा पर कौं झूठा

दोष लगाय, आपने जबरी तैं ताका धन लूट, अन्य कौं निर्धन किया होय। तथा पर कौं भय देय, दुख देय ताका धन छीन लिया होय। तथा धन जोड़वे कौं अनेक स्वाङ्ग धरि, पराया धन ठगा होय। ऐसे अपराधी जीव, निर्धन होय हैं। तथा परकौं धनवान् न देख सक्या होय। परके घरमें धन देखि, आप दुखी भया होय। तथा परकौं धनवान देखि ताके धन खोवने कूं अनेक चुगली, राज-पंचनमें करि, ताका धन नाश कराय, निर्धन किया होय। तथा अन्यकूं धनकी पैदायश कोई कार्यमें जानी, ताके कार्यका घात किया होय। इत्यादिक पाप-भावन तैं प्राणी, भवांतरमें निर्धन होय। तथा निर्धन होनेके अनेक भेद है। जिननैं पराया-धन अग्निमें जलता देखि, हर्ष पाया होय। तथा अपने पराये-धन कौं अग्नि लगाय, निरधन किया होय तौ तिस पाप तैं अपना धन अग्निमें जल आप निर्धन होय। तथा पर-धन जलमें डूबता देखि-सुनि हर्ष पाया होय तथा अपनी दगावाजी त नदी-सरोवरमें पराया धन डुबोय पर कौं निरधन किया होय। तिस पाप तैं भवान्तर में आपका धन नदी-सरोवरमें जहाज डूबैं, नाव डूबै। ऐसे आप निरधन होय। तथा औरनके घर-नगर लुटे सुनि-देखि, आप सुखी भया होय। तौ आप भी ताकै फल तैं फौजनिसूं लुटि, निर्धन होय। तथा परका धन, आपने जबरई लूटया होय। तथा परका धन चोरन तैं लुटता देखि तथा सुनि, आप हर्ष मान्या होय। ताकै पाप तै भवान्तरमें आपका धन चोरन तैं लुटि, आप निर्धन होय। इत्यादिक निर्धन होनेके अनेक भेद हैं। जा—जा परणामन तैं परकौं निर्धन वांच्छया होय' तथा जा-जा प्रकार पर कूं निरधन भये देखि, आप खुशी भया होय। तिस ही निमित्त पाय, आप निर्धन होय ॥ ५ ॥ बहुरि शिष्य प्रश्न किया। भो गुरुनाथ! यह जीव धनवान् कौन पुण्य तैं होय? तब गणधर ने कही। हे भव्यात्मा, जिन जीवन नैं निरधन पुरुषको दया करि, तिनकौं दान देय, धनवान् करि, सुखी किये होंय। तथा निर्धन जीव देखि, तिनकी दया करि धनवान् होना बांच्छा होय। तथा पर जीवन कूं धन प्राप्ति भई सुनि, आप सुखी भया होय। इत्यादिक शुभ भावना तैं, आप धनवान् होय ॥ ६ ॥ पीछे फेरि शिष्य प्रश्न किया। भो गुरुदेव, यह जीव, पुत्र रहित कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही। जो जीव परभवमें परके पुत्र नहीं देख सक्या होय। पर जीवन कूं पुत्रकी प्राप्ति भई सुनि, आप-

नैं दुख पाया होय । परके पुत्रका मरण सुनि, आप सुखी भया होय । तथा पर-पुत्र देखि, हरया चाह्या होय । इत्यादिक पापन तैं जीव, पुत्र रहित होय ॥ ७ ॥ पीछे फेरि शिष्य प्रश्न किया । नाथ ! यह जीव कौन पुण्य तैं पुत्र सहित होय है ? तब गुरु कही । हे वत्स, जिन जीवन नैं भवान्तरमें पर जीवन कौं, पुत्र सहित देखि सुख मान्या होय । तथा पर कौं पुत्रकी प्राप्ति सुनि, हर्ष पाया होय । तथा पर कौं पुत्र रहित आर्तध्यानी-दुखी पुत्रका अभिलाषी देखि, ताकी दया भाव करि, ताकौं पुत्र होना वांछा होय । इत्यादिक पुण्य तैं पुत्र सहित होय ॥८॥ पीछे फेरि शिष्य प्रश्न किया । हे नाथ ! यह जीव कूं कुपूत पुत्रका संयोग, कौन पाप तैं होय ? तब गुरु कही । हे वत्स, जिननैं पर पुत्र कूं बहकायवेमें सहाय दी होय, उसे पाप कार्यनमें लगाय, अनेक कुबुद्धि सिखाय, माता-पिताका अविनयी किया होय । ताकौं अनेक कुमारग लगाय, माता-पिता तैं युद्ध कराया होय । पुत्रके पास माता-पिताकी निंदा करी होय । तथा परका सुपूत पुत्र देखि, ताकौं नहीं सुहाये होंय । तथा परके पुत्र चोर, ज्वारी, कुशील आदि विशेष व्यसनी देख, आप हर्षवन्त भये होंय । पर कूं अनाचारी देखि, सुख पाया होय । इत्यादिक अशुभ भावन तैं, कुपूत पुत्रका संयोग होय है ॥ ९ ॥ पीछे फेरि शिष्य प्रश्न करता भया । हे जगत्पति ! सुपूत पुत्रका लाभ कौन पुण्य तैं होय ? तब गणधर ने कही । जिन जीवन ने पराये कुपूत-कुमारगी पुत्रन कौं अनेक शिक्षा देय, सुमारग लगाये होंय । अनेक नय-युक्ति करि, तिनकूं सुबुद्धि उपजाय, माता-पितानकी आज्ञामें किये होंय । परके सुपूत पुत्र देख, आप कूं सुख उपज्या होय । परके सुपूत पुत्रनके शुभ लक्षण देखि, तिनकी प्रशंसा करी होय । पुत्र कूं माता-पिता सूं विनयवान् देखि, आप हर्ष पाया होय । इत्यादिक शुभ भावना तैं, सुपूत पुत्रका लाभ होय है ॥ १० ॥ पीछे फेरि शिष्य प्रश्न करता भया । हे नाथ, खोटी स्त्री, कौन पाप तैं पावै, सो कहौ । तब गुरु कही । हे वत्स, जे जीव परके घरमें खोटी स्त्री-कलहकारणी देखी, सुखी भये होंय । तथा पर स्त्री भर्तारमें माया करि, कलह कराया होय । परस्पर द्वेष पाड़ि, आप हरषाया होय । परके घरमें सती, विनयवती भली स्त्री देखि, आप कौं नहीं सुहाई होय । परकी भली स्त्रीन कौं देखि, तिनकी निंदा करी होय । इत्यादिक पापन तैं परभवमें खोटी स्त्री पावै ॥ ११ ॥ फेरि शिष्य

प्रश्न किया। हे नाथ! भली स्त्री कौन पुण्य तैं पावै? तब गुरु कही। हे भव्यात्मा! जानै पर-स्त्रीनके अवगुण छुड़ाय, उन्हे गुणवती करी होय। तथा पर-स्त्रीनके शीलादिक गुण, भरतारके विनय रूप देखि, जाकौं सुख भया होय। तथा पर-स्त्रीनके शील-गुणकी रक्षा करी होय। तथा शीलवान् सती स्त्रीनकी प्रसंशा करी होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं शुभस्त्री पावै ॥ १२ ॥ तब फेरि शिष्य प्रश्न पूछी। हे नाथ, ये जीव संसारमें अपमानी कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही। हे भव्य, जिनने परभवमें अनेक जीवनका मान खण्ड्या होय। तथा माता-पिता गुरुजनका मान नहीं राखा होय। तथा देव-गुरु-धर्मका अविनय किया होय। तथा पर जीवन कूं अल्प पुण्यी जानि तिनका अनादर करि, पर जीवन कूं दुख उपजाया होय। तथा अपनी महिमा अपने मुख तैं करि, पर कौं निंदे होंय। तथा आप कूं महन्त जानि, दीन जीवन कूं पीड़ा उपजाई होय। इत्यादिक पाप भावन तैं, पर-भवमैं अपमानी होय ॥ १३ ॥ बहुरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे गुरुदेव जी, जीव जगमें कीर्तिवान् कोन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही। जिन जीवनने अपने मुख तैं परभवमें तीर्थंकर चक्री कामदेवादिक महा पुरुषनके गुणकी कीर्त्ति करी होय। परकीं कीर्त्ति सुनि आप सुख पाया होय। पराये दोष देख आपने दाबे होय। तथा देव-गुरु-धर्मकी महिमा अपने मुख तैं करी होय। तथा माता-पितादि गुरुजनकी विनय सहित सेवा-चाकरी करी होय। इत्यादिक पुण्य भावन तैं कीर्त्तिवन्त होय है ॥ १४ ॥ तब फेरि शिष्य मस्तक नमाय पूछता भया। भो त्रयज्ञानी! इस जीवका सर्व कुटुम्ब दुख-दायक कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही। हे शिष्य जिननैं परके कुटुम्बमें परस्पर साता देखि आपने दुख मान्या होय। परके कुटुम्बमें कलह देखि सुख पाया होय। तथा परके घरमें परस्पर भ्रातृ-स्नेह देखि अपनी दगाबाजी तैं झूठे वचन बनाय इतके उत-उतके इत कहि परस्पर द्वेष कराय हर्ष मान्या होय। इत्यादिक पाप चेष्टा तैं सर्व कुटुम्बी-जन दुख दायक होय हैं ॥ १५ ॥ तब फेरि शिष्य पूछी। हे जगत पूज्य! सर्व कुटुम्ब सुखदायक कौन पुण्य तैं होय है। तब गुरु कही। हे वत्स, हे आर्य, जाने औरके कुटुम्बमें परस्पर द्वेष देखि, अपनी बुद्धिके बल करि, तिनका परस्पर ४२९
स्नेह कराय, सुखी किये होंय। परके कुटुम्ब विषैं परस्पर स्नेह देखि, सब कूं साता देखि, आपनैं हित पाया

होय, आप सुखी भया होय। परके कुटुम्ब सुखी करवे कूं, बहुत धन दिया होय। तनका कष्ट तथा बुद्धिके प्रकाश करि, परके कुटुम्बमें साता करी होय। इत्यादिक शुभ भावना तैं, सर्व कुटुम्ब सुखदायक पावै ॥ १६ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे संघनाथ, शरीर विषैं रोगका समूह कौन पाप तैं होय ? तब गुरु कही। जाने परभवमें कोऊ कौं औषधि दान देते मनै किया होय। परके शरीरमें रोग देखि, सुखी भया होय। पर शरीर रोग रहित देखि, आप दुख पाया होय। तथा पर जीवन कूं, रोग वांच्छा होय। औरनके शरीरमें रोग देखि, बहुत ग्लानि करी होय। तथा रोगी जीव देखि, तिन पै दया भाव नहीं किया होय। तथा अन्य जीवनके तन विषैं रोग बढ़वे कौं, दगाबाजी तैं, अनेक वस्तु खुवा दई होय। तथा कबहूं, औषधि दान नहीं दिया होय। तथा पराये तनमें रोग देखि, तिनकी हाँसि करि उन्हे वहकाये होंय, तिनकी निन्दा करी होय। इत्यादिक पाप भावन तैं रोगी-तन होय ॥ १७ ॥ आगे शिष्य फेरि प्रश्न किया। भो प्रभो ! ये जीव, निरोग शरीर कौन पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही। हे वत्स ! जिन जीवन ने पूरव भवमें सुपात्रनके तनमें रोगकी बाधा देखि, भोजन समय प्राशुक औषधि देय, साता उपजाई होय। तथा दीन-दुखितनके तनमें रोग देखि, करुणा भाव करि रोग नाशने कूं औषधदान दिये होंय। तथा परके शरीरमें रोग देख अनुकंपा करी होय। तथा परका निरोग शरीर देखि सुखी भया होय। तथा पराये शरीरमें रोग देख, ग्लानि नहीं की होय। तिनकी दया करि साता वांच्छी होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं रोग रहित शरीर होय है ॥ १८ ॥ फेरि शिष्य पूछी हे गुरुनाथ ! क्रूर परणामी दुरजन-स्वभाव जीवनमें कौन कर्मके उदयतैं होय ? तब गुरु कही। हे भव्यात्मा जे जीव दुराचारी नरकनके निवास तैं बहुत काल दुख भोगि निकसै होंय। सो नरकका आया प्राणी पूरव पाप तैं महा क्रोधी दुराचारी क्रूर परणामी होय। तथा पूर्व भवमें मनुष्यायुका बन्ध करि पीछे कुसंगका निमित पाय महा क्रूर हिंसा मई वर्त्या होय। सो जीव पूर्वली वासना सहित दुराचारी होय क्रोधी होय। तथा जाका परभव बुरा होय। हे गुरो। सज्जन भाव सहित जीव कौन पुण्य तैं होय है ? तब गुरु कही। हे वत्स जो जीव देव गति आदि शुभ गति तैं आया होय। सो जो पूरव-भवकी भली चेष्टा थी सो

ताही कूं लिये दया-भावकेफल तैं महान् पुरुषनकी संगति पाय तामें भले उपदेश सुनि सज्जन स्वभावी होय तथा पर जीवनकी सज्जनता देखि हर्ष पाया होय। बड़े गुरुजनकी सेवा चाकरी सुश्रूषा करी होय। इत्यादि पुण्य तैं सज्जन स्वभावी होय। २०। तब फेरि शिष्य पूछी। हे गुरो ये जीव समता भावी कौन पुण्य तैं होय है ? तब गुरु कही। हे धर्मार्थी सुनि। जे भव्य जीव परभवमें मुनि श्रावकनकी शांत मुद्रा देखि हर्षे होंय। तथा जिनेन्द्र देवकी शाँत मुद्रा देखि पद्मासन कायोत्सर्ग मुद्रा देखि जिनने अनुमोदना करी होय। तथा परजीवनके क्रूर बचन सुनिकैं समता धर तिंन पर क्रोध-भाव नहीं किये होंय। औरनकी क्रूरता देखि आपने तिन पै दया करी होय। तथा संसारकी विटंबना देखि संसार तैं उदास भये होंय। तथा धन-तनादि संपदा सामग्री चंचल देखि राग द्वेषादि भाव दुखदाता जानि क्रोध मानादि तजि मन्द कषाय रह्या होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं समता भाव प्रगट होय है। २१। तब फेरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे जगत गुरु ! यह जीव धर्मात्मा कौन पुण्य तैं होय ? तब दयालु भाव सहित गुरुने कही। हे भव्यात्मा हे भद्र परणामी जिन जीवन नैं परभवमें महा समता भाव राखे होंय। धर्मात्मा जीवनकौं धर्म सेवन करते देख अनुमोदना करि पुण्य उपाया हो। तथा अनेक जीवन पै दया भाव किये होंय। तथा धर्म उत्सव देखि हर्ष पाया होय। तथा धर्मके अनेक भेद हैं। सो जिस जातिके धर्म अङ्ग देखि आपकों अनुमोदना उपजी होय। तिस ही जातिके धर्म अंगका लाभ परभवमें जीवकौं होय है। सो ही कहिये है—जिस जीवने परभव विषैं और धर्मात्मा जीवनकौं तप करते देखि हर्ष किया होय। तपस्वी पुरुषनकी सेवा-चाकरी करी होय। तपकौं उत्कृष्ट सुखदाता जानि ताके करवेकी अभिलाषा करी होय। इत्यादिक तप अंगकी अनुमोदनाके फल तैं भवांतरमें तप धर्मका लाभ पावै। बहुरि जिनने औरनकौं भगवान्की पूजा व स्तुति करते देखि अनुमोदना करी होय। तथा भगवान्के भक्त जन देखि तिनमें प्रीति भाव करि तिनकी सेवा-चाकरी करि होय। आपकौं भगवान्की पूजा करवेका अभिलाष बहुत रह्या होय। इत्यादिक पूजाकी अनुमोदना चाहि रूप भाव पटल तैं भवांतरमें प्रभुकी पूजाके भाव होंय। पूजा धर्म अंग पावै। और जिन जीवननें परभवमें अन्य जीवन कूं नियम

आखड़ी करते देख तथा घृत-दुग्धादि रसनकों त्याग करते देख तथा ताम्बूल वस्त्रादि परिग्रहके प्रमाण करते देखि तथा दया भाव सहित प्रवृत्ति देख तिनकी प्रसंशा करी होय। तथा अन्यकूं संयमी देखि संयमकी अभिलाषाकी होय। इत्यादिक संयमकी अनुमोदनाके फल तैं भवांतरमें संयम-संपदा पावै। और जिननैं परभवमें और जीवनकौं सिद्ध क्षेत्र यात्राकूं गमन करते देख तथा सिद्ध क्षेत्र बन्दनाके निमित्त संघजाते देखि ताकी अनुमोदना करी होय। तथा सिद्ध क्षेत्र यात्रा करवेकी अभिलाषा रही होय। तथा सिद्ध क्षेत्र यात्रा करवे वारौंकी सहायता करि साता उपजाय सुखी किये होंय। इत्यादिक पुण्य भावनतैं भवांतरमें सिद्ध क्षेत्र यात्राका बहुत लाभ होय। परभवमें आचार्यनकौं उपदेश देता देख तिन धर्मी पुरुषनका उपदेश सुनि तिनके ज्ञानकी शान्ति-भावनकी प्रशंसा की होय। धर्मके उपदेश दाताकी भक्ति करि आनन्द मान्या होय। इत्यादिक भावन तैं धर्मोपदेश देनेका उत्तम ज्ञान पाय अपना तथा पर जीवनका कल्याण करै है। ऐसे धर्म अंगनके अनेक भेद हैं। सो जा-जा धर्म अंगका सहाय किया होय अनुमोदना करी होय ताही धर्म अंग-का लाभ होय। धर्मका फल उपजावै॥ २२॥ बहुरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे नाथ यह जीव बलवान् कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही। हे भव्य जिन जीवन नैं परभव विषैं दीन-जीवनकी दया करि रक्षा करी होय। तथा अशक्त जीवनकौं देखि तिन पै दया भाव करि तिनके दुख मैट सुखी करवेकौं अनेक उपाय करि रक्षा करी होय। निर्बल जीवनकौं भलै भोजन पान देय दया भाव करि सुखी किये होंय। नंगेनकूं वस्त्र, रोगीनकौं औषधि देय पुष्ट किये होंय। औरनकौं अनेक साता उपजाय रक्षा करी होय। इत्यादिक शुभ भावनतैं जीव भवान्तर विषैं बलवान् होय ॥२३॥ बहुरि शिष्य प्रश्न किया हे नाथ, हे यति पति, यह जीव निर्बल कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही। हे वत्स जिन जीवनने पर जीवनका खान-पान बन्द करि निर्बल करि डारे होंय तथा दीन जीव बल रहित देख तिनकी हांसि करि तिनकौं लज्जावान् किये होंय। तथा बल रहित जीवनकौं मारे होंय बांधे होंय लटकाए होंय। आपकौं बलवान् जानि अपने बल-मद आगे औरनकौं बल रहित जानि अनेक भय उपजाय दुखी किये होंय तथा अपने बल मदके आगे सिंह-हस्तीकी नाईं मदोन्मत्त बर्त्या होय।

अन्य जीवनका बल देख आपने द्वेष-भाव किया होय। इत्यादिक पाप भावनतैं बल रहित होय है ॥ २४ ॥ फेरि शिष्य पूछी। हे नाथ! यह जीव भयवान् कायर चित्तका धारी कौन पाप तैं होय। तब गुरु कही। हे भव्यात्मा सुनि। जिन जीवननैं पर जीवनकौं अनेक भय उपजाये होंय। प्राण नाशका भय देय कंपायमान करे होंय। धन नाशका भय दिया होय। घर लूटवेका भय दिया होय। तथा ताकी आबरू-खंडवेका भय दिया होय। तथा घरके मनुष्य पकड़वेका भय दिया होय। तथा राजपंचका भय बताय, भयवन्त किये होंय। तथा चोर सिंह हस्ती इन आदि पशूनका भय देय दुखी किये होंय। तथा रण तैं भागते भयवन्त दीन जीव, तिनकी हांसि करी होय। तथा औरनकौं भयवन्त कायर देख आप हर्षवन्त भया होय। इत्यादिक दया रहित भावन तैं कायर होय है ॥ २५ ॥ बहुरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे गुरो यह जीव शूरवीर निर्भय कौन पुन्य तैं होय? तब गुरु कही। हे वत्स जिन जीवन नैं परभवमें दीन जीवन कौं अभयदान दिया होय। करुणा करि परजीवनकी रक्षा करो होय। तथा किसी जीवने काहू दीन-दुखी जीवकौं भय बताय दुखी किया होय। ताकौं देख आप दया भाव करि, अपने भुजबलतैं दीनकौं दुष्ट तैं बचाय, सुखी करि, भय रहित किया होय। तथा त्रस-स्थावर जीवन पै दया-भाव राखे होंय। तथा अनेक जीवनकूं राज, पंच दुष्ट, सिंहादि जीव तिनके उपद्रव तैं बचाय निर्भय किये होंय। तथा भयवन्त जीवनके दया भाव करि स्थिर भाव किये होंय। तथा भय रहित सुखी जीवनकूं देख आपकूं सुख भया होय। इत्यादिक शुभ भावनके फल तैं निशंक चित्तका धारी शूरवीर होय है ॥ २६ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरूजी! यह जीव उदारचित्त सहित दातार कौन पुन्य तैं होय? तब गुरु कही। हे भव्यात्मा जिन जीवन नैं पर जीवनकौं सुपात्र दान देते देख, अनुमोदना करी होय। तथा दीन दुखित-सुखित देख तिन जीवनकी तानैं दया करो होय। तथा दान देनेको बहुत अभिलाषा करी होय। तथा धर्म निमित्त धन देते सुख पाया होय। इत्यादिक शुभ भाव तैं उदार चित्त सहित दाता होय है ॥ २७ ॥ बहुरि फेरि शिष्य कही। हे यति पति, यह जीव सूंम किस कर्मके उदय करि होय सो कहो। तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभवमें कोई जीवकूं दान देते मनैं किया होय। औरनकौं

धन खर्चते देख आपने दुख मान्या होय। पर भवमें नाना कष्ट पाय धन जोड़ि कर आप नहीं खाया नहीं औरनकूं खुवाया अरु और धन जोड़वेकी अभिलाषा रही होय। अत्यन्त तीव्र तृष्णाके भावनमें मरण किया होय। तथा औरनके दानकी निन्दा करी होय। इत्यादिक पाप-भावन तैं सूमता सहित लोभी होय ॥ २८ ॥ फेरि शिष्य पूछी। यह जीव पण्डित कौन कर्म तैं होय? तब गुरु कही। हे वत्स, जिन जीवन नैं पर-भवमें विद्याका दान दिया होय। औरनकूं पण्डित-विद्यावान् जीव देख तिनकी सेवा-चाकरी करी होय। अज्ञानी जीवनकी संगति तैं जिनके अरुचि रही होय। जो धर्म शास्त्रनके वेत्ता हैं तिनकी स्तुति करी होय। तथा धर्म शास्त्रन कौं आप लिखे तथा घर-धन खरचके लिखाय धर्मात्मा-जीवनके पठन-पाठनकौं दिये होंय। तिन शास्त्रनके उपकरण जो पूठा-बंधना उत्तम कराये होंय। तथा शास्त्राभ्यास करवेकी बहुत अभिलाषा रही होय तथा अन्य विद्या अभिलाषी भव्य जीवनकौं धर्म शास्त्रका ज्ञान कराया होय। इत्यादिक पुण्य-भावन तैं पण्डित होय ॥ २९ ॥ और फिर शिष्य पूछी। हे नाथ! हे तपोधन! यह जीव मूरख कौन पाप तैं उपजै है? तब गुरु कही। जिन जीवन नै पण्डितनकी हांसि करी होय। तथा धर्म शास्त्रके सुनवेमें अरुचि भाव किये होंय। तथा धर्म शास्त्र चुराये होंय। तथा तिनके बंधन-पूठे चुराये होंय। तथा धर्मार्थी पण्डित तैं द्वेष-भाव किये होंय। इत्यादिक पापन तैं मूरख होय ॥ ३० ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव पराधीन कौन पापा तैं होय? तब गुरु कही। हे भव्य जिन जीवन नै परभवमें पर जीवनकौं बन्दीमें राखे होंय। तथा अन्य जीवनकूं तुच्छ धन देय अपने वशीभूत राखे होंय। तथा कर्जादिकके आवने करि निरधन जीवनकूं रोके होंय तिनकौं तुच्छ-अल्प अन्न-जल देय अपने वश राखे होंय। तथा बलात्कार-जोरावरी करि पर-जीवनकौं अपने आधीन राखे होंय। तथा पराधीन जीवनकी हांसि करी होय। तथा पशून कौं राखि, तृण—जलदेनेमें प्रमादी रह्या होय। इत्यादिक पापन तैं पराधीन होय ॥ ३१ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे प्रभो, यह जीव स्वाधीन कौन पुण्यतें होय। तब गुरु कही। जिन जीवननें परभवमें अन्य कौं खान—पान देय कुटुम्ब सहित तिनकी स्थिरता करी होय। तथा दीन जीवन कौं खान-पान देय, साताकारी

बचन कहि, तिनकौं निराकुल किये होय। तथा पराधीन जीव देखि ताकौं अनुकम्पा उपजी होय। पर जीवन कूं स्वाधीन—सुखी देख, आप सात पाई होय। इत्यादिक पुण्य तैं स्वाधीन होय है।३२। बहुरि शिष्य प्रश्नपूछो। हे गुरो, यह जीव कुरूप किस पाप तैं होय? तब गुरु कहो भो भव्यात्मा, जिन जीवन कौं परभव मेंपराय रूपकी महिमा नहीं सुनाई होय। तथा कोई पाप-उदय तैं जो रूप रहित भया होय, तिन जीवनके तनकी ग्लानि करी होय, सो जीव कुरूप होय। तथा कूरूपमनुष्य देखि, ताकी हाँसि करी होय। तथा पराया भला रूप देख ताकौं दोष लगाया होय। तथा पराये भले रूप कूं बिभूति—धूळ-कर्दमादि लगाय, विपरीत करि डारया होय। इत्यादिक भावन तैं कुरूप होय। ३३। बहुरि शिष्य पूछी। हे ज्ञानमूर्ति! ये जीव रूपवान कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही। हे वत्स जिन जीवननैं परभव मैं पर जीवनका रूप देख, निरविकार चित्त किये देख,सुख मान्या होय। तथा पर जीवन कूं रूपके योग तैं अनादर पाया देख तिनकी दया करि, रूपवान होना वांच्छया होय। धर्मका सेवन करि, रूपवान होना वांच्छया होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं रूपवान होय है। ३४। तब फेरि शिष्य प्रश्न किया। हे धर्ममूर्ति, यह जीव पुण्यके उदयकरि अनेक भोग्य वस्तु मिली तिन कौं भी नहीं भोग सकै, सो यह कौन पापका फल है? तब गुरु कही। जिन जीवननैं परभवमें अन्य जीवन कौं अन्न, जल, मेवा, पान, मिठाई इत्यादिक खावने विषैं अन्तराय किया होय। तिन कूं भली वस्तु द्वेष-भाव करि, खावने नहीं दई होय। औरनकौं सूखी-रूखी, कोरी-रस रहित खावता देखि, आप खुशी भया होय। औरनकौं सुख तैं खान-पान करते देख नहीं सुहाया होय। औरन कं भूखे-प्यासे देख, तिनकी हांसि करि होय, दुर्वचन कहि दुखी किये होंय। आप रसना इन्द्रियका लोलुपी होय नाना प्रकार भोग वस्तु भोगी होय। अपने विषय-पोषने कौं नाना प्रकार छल-बल दगाबाजी करि रसनादिकके विषय भोग सुख मान्या होय। तथा परका भोजन श्वान-मार्जारादि पशू ले गये देख आप सुखी भया होय इत्यादिक पापन तैं छती (उपस्थित) वस्तु भोगमें नहीं आवै। और कदाचित् लोभका मारया दुग्धादि भली वस्तु खाय ही तो रोग बधै दुखी होय। तातैं अन्तराय कर्मके उदय भली वस्तु नहीं पचै है। ३५। और

शिष्य प्रश्न किया। हे सुखमूर्ति! जाके घरमें सुन्दर स्त्री वस्त्र आभूषण घोटक रतनादिक भली वस्तु उपभोग योग्य पाईये और भोग नहीं सकै। सो यह कौन पापका फल है सो कहौ। तब गुरु कही। जिन जीवन कौं परभव विषै पराये हस्ती, घोटक, स्त्री बाहनादि उपभोग योग्य पदार्थ सुन्दर देख कैं आपकौं नहीं सुहाये होंय। तिनके भले पदार्थ देख छल-बल करि लूट लिये होंय। भय देय जोरावरी खोंस लेय आप भोगे होंय। पराये भले पदार्थ उपभोग योग्य देख जाकौं नहीं सुहाये होंय। पराये घरमें भली वस्तु रतन हस्ती आदि देख भय बताया होय कि जो ये भली वस्तु राजमें छिना देहौं। कहै कि ये वस्तु राजा देखेगा। तौ खोंसेगा। इत्यादिक पाप तैं अच्छी वस्तु नहीं भोग सकै है ॥ ३६ ॥ बहुरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे गुरो, ये जीव तीव्र क्रोधका धारी किस पाप तैं होय? तब गुरु कही। हे वत्स जा जीवनें परभवमें क्रोधी जीवन कूं क्रोध करते देखि, भले जानें होंय। तथा पर जीवन तैं युद्ध करवेका जाका स्वभाव, परभवमें बहुत रह्या होय। तथा पर कूं युद्ध करते देखि, सुख मान्या होय। तथा परभवमें आप सिंह, सुअर, श्वान, सर्प, भीलादिकी पर्याय धारि, पर जीव अनेक पीड़े होंय। तथा समता भावके धारी धर्मात्मा तिनकौं देखि, तिनके समभावनाकी निंदा करी होय। शान्त परणाम जीवनकी हाँसि करी होय। इत्यादिक पापन तैं महा क्रोधी होय ॥ ३७ ॥ बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे गुरो, यह जीव आप तौ मान चाहै, अरु मान नहीं रहै। सो ये किस पापका फल है, सो कहौ। तब गुरु कही। हे भव्यात्मा, जिन जीवन नैं पर जीवनका मान नहीं राखा होय। तथा अपने तन, धन, यौवन, राज, हुकुम, बल इत्यादिकके गर्व करि, अन्य जीवनका अनादर किया होय। तथा आप कौं भला मनुष्य जानि और जीवन नैं शीश नमाये, सो तिनकौं शीश नमाते देखि, अपने मान-भाव तैं परकौं तुच्छ जानि, पीछा शीश नहीं नमाया होय। तथा गुरुजन की आज्ञा तैं प्रतिकूल होय स्वच्छंद वर्त्त, बड़ेनकी आज्ञा खण्डी होय। तथा दीन जीवन कौं जोरावरी भय देय, अपने पाँयन नमाये होंय। तिनके मान खण्ड किये होंय। तथा कहीं किसीका मान खंड भया सुनि, आप सुख पाया होय। इत्यादिक क्रूर भावन तैं अपमानी होय, मान चाहै अरु ना रहै ॥ ३८ ॥ बहुरि शिष्य ने प्रश्न किया। भो दयासागर!

यह जीव अपना मान नहीं कराया चाहै, अरु बिना चाहै ही और जीव आय-आय मस्तक नमावैं, आज्ञा मानैं सेवा करैं। सो ऐसी महिमा कौन पुण्य तैं होय, सो कहो। तब गुरु कही। हे भव्य, सुनि। जिन जीवन नैं परभव विषैं, महा भक्ति करि शुभ भावन तैं देवधर्म-गुरुकी सेवा-पूजा, विनय सहित मस्तक नमाय करी होय। ताके फल तैं ताकी सेवा देव करैं, ऐसा इन्द्र होय। तथा मनुष्यनका इन्द्र चक्री होय, तथा अर्ध चक्री होय तथा अनेक राजान करि बन्दनीक महामण्डलेश्वर मण्डलेश्वर राजा होय। इत्यादिक पदके धारी पृथ्वीपति होंय। तिनकौं बड़े-बड़े महंत राजा स्वयमेव ही भक्ति सहित शीश नमावैं हैं। तथा जिन जीवन नैं परभवमें गुरु-जन जो माता-पिता तिनकी सेवा करवे कौं बारम्बार शीश नमाय विनय तैं चाकरी करी होय। ताके पुण्य तैं सर्व कुटुम्बके आज्ञाकारी रहैं सर्वमें आदर पावै। तथा जिसने परभवमें अन्य जन, अपनी वय तैं बड़े पुरुष तिनका विनय करि मान राख साता उपजाई होय, आदर किया होय। सो जीव बड़े-बड़े वयके धारी पुरुषनके बंदवे-सराहवे योग्य हैं। आप तैं बड़ी-बड़ी उमर करि सहित जीव आय-आय शीश नमावैं, मान राखैं, ऐसा होय। तथा जो विवेकी, संसार रचनाका जाननहारा, धर्म शास्त्रका पाया है रहस्य जानैं, यथायोग्य विधि वेत्ता, सो जिसने बल, कुल, धन, बुद्धि, वय इत्यादिक करि जे छोटे, तिन सबका यथायोग्य विनय करि सत्कार करि साता उपजाई होय। तिन सबका मान राखा होय। सो जीव जगतमें प्रशंसा पाय, सर्व करि पूज्य होय। ताकौं जगत-जीव स्वयमेव ही आय-आय शीश नमावैं, याका मान राखैं, ऐसा पदधारी होय। तथा जानैं कोऊ ही जीवका मान खण्डन नहीं किया होय। पर जीवन कूं अनेक आदर करि सुखी किये होंय। इत्यादिक शुभ भावनके फल तैं ऐसा पद पावै, जो आप तौ अपना मान नहीं चाहै, अरु अन्य जीव अपनी इच्छा तैं यातैं स्नेह करि आय-आय शीश नमाय, आदर करैं। ऐसा जानना ॥ ३६ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुनाथ जी! यह जीव दगावाज-मायावी कौन पाप तैं होय, सो कहो। तब गुरु कही। हे वत्स, दगावाजके अनेक भेद हैं। सो जिस जीव नैं परभवमें पराये भले तप कौं देख, दोख लगाय, ताकी निंदा करी होय। तौ वह पापके फल तैं भवान्तरमें जब कबहूं मनुष्य होय तप धारण करै, तौ मानके अर्थ करै। अंतरंगमें धर्म-

चाह नहीं रहै। लोगनमें पुजावे कौं, दगावाजी भाव करि तपस्वी होय। ताके तपमें दगा होय। प्रच्छन्न भोजन लेय, अरु औरन कौं तप-अनशन बतावै। इत्यादिक तप पावै, तौ दगा सहित तपस्वी होय। और जिन जीवन ने पराये भले दानमें दोष लगाय, दगा करि निंदा करी होय। सो जीव इस पाप तैं भवान्तरमें जब कबहूं मनुष्य होय दान देय, तौ दगा सहित दानका देनेहारा होय। आप दान देय, सो लोगनकौं तौ वहुत द्रव्य बतावै, अरु आप थोड़ा ही धन दान देय। लोक जानैं, याका दान दगावाजी लिये हैं। सो निंदा पावै। वस्त्र देय, तौ जीर्ण तौ देय, कहै बड़े-बड़े मोलके नूतन वस्त्र दिये। इत्यादिक पाप भावन तैं, दानमें दगा करनेहारा होय। और जिन जीवन नैं परभवमें पराये भले धर्म, पूजा, सामायिक, ध्यान, अध्ययनादि अनेक धर्म अङ्ग हैं तिनकूं देख, शुद्ध धर्म अङ्गन कौं दोष लगाया होय, ताकौ पाप फल तैं भवान्तरमें कबहूं मनुष्य उपजें तौ ऐसे होंय, कि धर्मका सेवन करैं तौ भाव रहित करैं। प्रभुकी पूजा करैं, तौ भाव रहित करैं। अल्प धन लगावैं, लोगन कौं कहैं हमने बड़ा धन लगाया है। और घरमें धन होतैं भी, धर्म कार्यमें धनका काम पड़ै तौ अपनी दगावाजी-चतुराई तैं, अपना निरधनपना बताय, घरका दुख बतावैं। धर्ममें धन नहीं खरचैं। ता पाप-फल तैं, धन रहित, धर्म विषैं दगावाज होंय। और जाने परभवमें पराये ध्यान कौं दोष लगाय, हाँसि करी होय। सो ताके पाप तैं भवान्तरमें दोष सहित, ध्यानका धारी होय। बगुलाकी नांईं कुध्यानी होय। धर्म-अंग सेवन करै, सो दगा सहित करै। तथा परभवमें दगा सहित धर्मके सेवनेहारे तिनके पाखंड देख, तिनकी प्रशंसा करी होय। इत्यादिक पाप भावन तैं जीव धर्म-दगावाजी करनेहारा होय और जिन जीवन ने परभवमें अन्य जीवन कौं कुटुम्ब तैं दगावाजी करते देख, सुख पाया होय। ते जीव भवान्तरमें कुटुम्ब तैं, दगावाजी करनेहारे उपजें। और जिननैं परभवमें दगावाजी सहित आजीविका पूरी करते देख, तिनकी मायाकी प्रशंसा करी होय, सुख पाया होय। सो जीव भावान्तरमें अपनी आजीविका दगावाजी तैं पूरी करैं, ऐसे होय। और दगावाजीके अनेक भेद हैं। सो परभवमें जैसा दगा, भला लागा होय। तैसा ही दगावाज उपजै है। इत्यादिक भले धर्म कार्यन कौं जैसी दगावाजीके कार्य जानें होंय। तैसी ही जातिका धर्म-दगा-

वाज उपजै है। तथा जैसे कर्म कार्यन कौं दोष दिये होंय, तिस जातिका कर्म कार्यनमें दगावाज उपजै है ॥ ४० ॥ बहुरि फेरि शिष्य प्रश्न पूछी। हे गुरो, यह जीव चोर कौन पाप तैं होय ? तब गुरु कही। परभवमें चोरनको भले जानें होंय। तथा चोरन तैं व्यापार करि, तिनका बड़ा नफा खाय, चोरन तैं हित किया होय। तथा चोरनका सहकारी होय, पराये धन हराये होंय। अपने मनमें पराये धन चुरावेकी अभिलाषा रही होय। इत्यादिक पाप भावन तैं जीव, चोर उपजै है ॥ ४१ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह हिंसाका करनहारा जीव, कौन कर्म तैं होय ? तब गुरु कही। जिननें परभवमें हिंसा भली जानी होय। तथा हिंसक जीवन कूं हिंसा करते देख, तिनकी अनुमोदना करी होय। तथा परभवमें हिंसा करवेकी अनेक कलाचतुराई सीखी होय। तथा परभवमैं आपने अनेक हिंसाके उपकरण बनाये होंय। तथा तीर, तुपक, जाली, फन्दा, चेप, गुलेल सेल्ह, बर्छा आदि अनेक शस्त्र राखि, आप सुख पाया होय। तथा शस्त्रनके उज्वल करनेकी, तीक्ष्ण करवेकी चतुराई परभवमें करी होय। तथा परभवमैं शस्त्र बेंचे होंय, बनाये होंय। इत्यादिक पाप तैं परभवमें शस्त्र तैं मरै तथा आप हिंसक होय ॥ ४२ ॥ बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे जगत गुरो, यह जीव क्रिया रहित अनाचारी किस पापतैं होय जाकौं खान—पानकी सुधि नाहीं, बिकल भाव सहित सदीव रहै। सो कौन पापका फल है ? तब गुरु कही। जिनने परभव मैं शुभ आचारी जीवनकी निंदा करी होय। तथा भला आचार देख जाकौं नहीं सुहाया होय। तथा आचार करवे में प्रमादी रह्या होय। तथा परभवमें पराई जूंठी खाय, सुख मान्या होय। तथा आगे परभव, पशु पर्यायमें—श्वानादि की पर्यायमें अशुभ भक्षण करे होंय। तथा सिंहकी पर्यायमें तथा और पशूनकी पर्यायमें जहां खाद्य—अखाद्यका भेद नाहीं जान्या, तहां विचार रहित वरत्या होय। तथा औरन कों अभक्ष्य वस्तु खावते देख, आप सुखी भया होय। तथा अनाचारी जीवनमें विशेष रह्या होय। तथा अनाचारी जीवनकी प्रशंसा करी होय। तथा और का अनाचार देख, आपकौं अनाचार करवे की अभिलाषा रही होय। इत्यादिक पापन तैं पशु होय तो श्वान, वायस, गर्दभ आदि अशुभ भक्षककी पर्याय धरै। तथा मनुष्य होय तो भीलादि नीच कुली होय। कदाचित् ऊंच कुली होय, तौ शूद्र समान अनाचारी

होय। ४३। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जोव शुभ आचारी कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही। जिन कूं परभव में अनाचार—प्रक्रिया देख कैं ग्लानि उपजी होय। तथा भला आचार सहित, दयामई प्रवृत्ति देख, हर्ष मान्या होय। तथा परभव में भले सुआचारी क्रियावंत पुरुषन की संगति रही तथा भली लागी होय। तथा अभक्ष भक्षण तैं अरुचि भाव रहे होंय। और जिनकूं कुशब्द भले नहीं लागे होंय। और सप्त व्यसनादि अनाचार देख, तिनकूं कुफलदायक जानि, तजे होंय। और पराये दान, पूजा, शील, संयम, तप, व्रत, दयामई आचार देख, तिनकी अनुमोदना करी होय। तथा परभव में आपकूं शुभाचार भले लागे होंय। तथा भले आचार करवे की आप कूं इच्छा भई होय। इत्यादिक शुभ परणामन तैं शुभाचारी होय। ४४। बहुरि शिष्य पूछो। हे गुरो, संसार में भाईं समान वल्लभ नाहीं। सो ऐसे भाई—भाई में परस्पर द्वेष कौन पापतैं होय! तब गुरु कही। भो भव्य! सुनि। जिनने परभव विषैं एक माताके गर्भमें निकसे दोऊ भाईन का युगल, तथा हस्ती, घोटक, भैंसा, श्वान, मीढ़े, तीतुरि, लाल, मुनैयां, मुर्गा, मोर, तथा मनुष्य इत्यादिक दुपद, चौपद, भूचर, नभचर, पशु—मनुष्यन के युगल तिनकौं कौतुकके हेतु तथा द्वेष भाव करि तिनकूं परस्पर लड़ाये होंय। तथा कोई दो भाईयों को परस्पर लड़ते देख, सुख मान्या होय तथा कोई दोय भाईनमें स्नेह देख, नहीं सुहाया होय। तथा अपनी चतुराई करि, बीचमें माया—दगावाजी करि, दोय भाईन कौं परस्पर लड़ाय दिये होंय। तथा कोऊ कौं खोटी सलाह देय, परस्पर दोय भाईन में द्वेष पाड़ि दिया होय। तथा कोई को, भायन में दोष करावे की वांछा सहित पर्याय छूटी होय। इत्यादिक पाप भावन तैं भाई—भाई, शत्रु समानि होंय। ४५। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे गुरु, भाई—भाई में परस्पर स्नेह कौन पुण्य तैं होय। तब गुरु कही। जिसने परभव में और के दोय भाईन में स्नेह देख, सुख मान्या होय। तथा दोयन कौं लड़ते देख, आपने सज्जनता करि समझाय, दोयन की राड़ि (लड़ाई) मिटाय, स्नेह करा दिया होय। इत्यादिक भले भाव तैं, भाईन मैं परस्पर स्नेह पावै। ४६। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे ज्ञानवान, माता—पुत्र में द्वेष कौन पाप तैं होय। तब गुरु कही। जो परभवमें परके

माता-पुत्र तिनमें स्नेह नहीं देख सक्या होय। परके माता—पुत्रन कौं लड़ाय सुख मान्या होय। माता—पुत्र लड़ते देख, खुशी भया होय। इत्यादिक द्वेष भावन तैं माता—पुत्र मैं द्वेष होय। ४७। बहुरि शिष्य पूछी। हे करुणानिधान! माता—पितान कैं पुत्र का वियोग किस पाप तैं होय। तब गुरु कही। जिसने परभव में पशु-पखेरून के बच्चन कूं पकड़ि, माता-पिता तैं उनका वियोग किया होय। तथा जो पराया पुत्र चोरी तैं तथा जोरी तैं पकड़ ले गया होय। तथा काहूका पुत्र भला देख, ताकौं शस्त्र तैं तथा विषादि तैं मार, वियोग कख्या होय। तथा किसी कें पुत्रका वियोग देख, आप खुशी भया होय। तथा किसी का पुत्र—वियोग, वांछ्या होय। इत्यादिक पापन तैं माता—पितान कैं, पुत्र वियोग होय। ४८। बहुरि शिष्य कही। हे दायानिधान! पुत्रका वियोग न होय सो कौन पुण्य तैं? सो कहो। तब गुरु कही। जानैं परभवमें पर के पुत्र का वियोग सुनिकैं दयाभाव करि, वाकूं पुत्रका मिलाप वांछ्या होय। तथा काहू का गया पुत्र बहुत दिन विषैं मिलाप भया सुनि—देख, आप सुखी भया होय। तथा किसी का पुत्र कोई दुष्ट बन्दी में ले गया सुनि, ताकौं धन देय तथा जोरी तैं छुड़ाय, जाका पुत्र वाकौं दिवाया होय। तथा कोई पशू का पुत्र बिछुड़्या देख, ताकी दया करि, तलाश करि लाय, ताके पुत्र का संयोग कराय दिया होय। तथा कोईकौं हो, पुत्रका वियोग नहीं वांछ्या होय। इत्यादिक पुण्य-भावन तैं पुत्र न बिछुड़ेका लाभ होय ॥ ४९ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे जगत गुरो! पिता पुत्रके निमित्त अनेक कष्ट पाय पुत्रकी उत्पत्तिकौं चाहै। सो ऐसे पिता-पुत्रमें परस्पर द्वेष कौन पाप तैं होय। तब गुरु कही। जिनने परभवमें पराये पिता-पुत्रमें द्वेष कराया होय। तथा तिनकौं लड़ते देख आप सुखी भया होय। तथा औरके पिता-पुत्रमें स्नेह देख आपकूं नहीं सुहाया होय। तथा औरके पुत्र-पितामें द्वेष कराय दिया होय। तथा कोईके पुत्र-पितामें द्वेष चाह्या होय इत्यादिक अशुभ भावनतैं पिता-पुत्रमें द्वेष होय ॥ ५० ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! पिता-पुत्रमें स्नेह कौन पुण्य तैं होय तब गुरु कही। जिननैं परभवमें औरके पिता-पुत्रमें स्नेह देख सुख पाया होय। पराये पुत्र-पिता में द्वेष भाव देख अपनी बुद्धिके बल करि दोऊनकौं समझाय, स्नेह कराय दिया होय। औरनके पिता-पुत्रनमें

स्नेह चाह्या होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं पिता पुत्रमें स्नेह होय ॥ ५१ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो गर्भमें पुण्याधिकारीका अवतार भया कैसे जानिये। तव गुरु कही। जाके गर्भमें आवते माता-पिता प्रसन्न चित्त रहैं। कुटुम्बमें मङ्गल होय। माताका चित्त भगवान्‌की पूजा रूप होय। ताकैं दानकी अभिलापा होय। दिन-दिन कुटुम्ब तं जाकी प्रीति वधै। माता-पिताका चित्त उदार होय। माता-पिता कुटुम्ब जनके तथा परजनके सत्कार रूप प्रवर्तैं। माताके चित्तमें उज्ज्वल भली वस्तु आचार सहित उपजी ताके खावनेकी अभिलाशा होय। तथा माता पिताकूं दीरघ धनका लाभ होय। माता-पिता कोई दीन-दुखी दरिद्री कौं देखैं तौ तिनका चित्त दया रूप होय। इत्यादिक शुभ लक्षण सहित शुभ जीवका अवतार जानना ॥ ५२ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ पापात्माका अवतार कैसे जान्या जाय। तव गुरु कही। जाके गर्भमें आवते माता-पिताकौं दुख-संकट होंय। अभक्ष्य वस्तु खावने पर मन चलै। माता-पिताका चित्त क्रूर होय। चित्त उद्वेग रहै। कुटुम्बमें क्लेश वधै। माता-पिताके मनमें सूमता प्रगटै। क्रोध मान माया लोभादि कषायनकी तीव्रता वधै। माता-पिताका चित्त, दुराचार मई होय। घर-धन नाश होय तथा माता-पिताकी मृत्यु होय। इत्यादिक चिन्ह गर्भमें आवते होंय तव पापाचारी जीवका अवतार जानना॥ ५३ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो अनेक भोग योग्य वस्तु, अन्न, मेवादि पट्रसका भोगी, सुगंधादि भली वस्तुका भोगनेहारा जीव किस पुण्य तैं होय। तव गुरु कही। जिननैं पर-भवमें दीन-दुखी जीवनकूं देख दयाभाव करि दान दिये होंय। तथा परभवमें मुनि-श्रावककौं भक्ति सहित दान दिये होंय औरनकूं दान देते भले जाने होंय। और जीवनकौं भला अन्न मेवा मिठाई खावते देख, अनेक सुगंधादि सहित सुख देख, आपने हर्ष पाया होय। इत्यादिक शुभ भावन तें वांछित भोग योग्य, पट् रस मेवादि भली वस्तुका भोगी होय ॥ ५४ ॥ बहुरि शिष्य प्रश्न पूछी। हे गुरो यह जीव अनेक उपभोग योग्य वस्तु विस्तर आभूषण, मन्दिर हस्ती घोटक रथादि वाहन पालकी आदि बहुत पदार्थका भोगी किस पुण्य तें होय। तव गुरु कही। जानैं परभवमें मुनिनकौं वस्तिकाका दान दिया होय। तथा श्रावकनकौं तथा आर्यिका कौं वस्त्र दान दिये होंय। तथा जिनदेवकूं छत्र चमर सिंहासन आदि उपकरण करायके पुण्य

पाया होय । तथा पर जीवनकूं वस्त्र भूषण पहरे देख आप हर्ष मान्या होय । तथा जिननैं सर्व जीवनकूं सर्व प्रकार सुख वांछ्या होय । इत्यादिक शुभ भाव सहित होय तौ अनेक उपभोगनका भोगनहारा होय ॥५५॥ बहुरि शिष्य पूछी । हे नाथ, ये जीव बावने शरीरका धारी कौन कर्म तैं उपजे है ? तब गुरु कही जानेपर भव मैं परकूं छोटे शरीरका धारक देख, तिनकी हांसि निदा करी होय तथा आप बड़े तनका धारक होय, अभिमान किया होय । परका बावना शरीर देखि आप हर्ष पाय भला जान्या होय । अपने बड़े तनतैं अन्य छोटे शरीर वालोंकौं पीड़ा पहुंचाई होय। इत्यादिक अशुभ भावन तैं छोटे शरीरका धारी बावना होय है ॥ ५६ ॥ बहुरि शिष्य पूछी । हे मुनिनाथ इस जीवकूं कूबड़ा शरीर किस पाप भावन तैं होय। तब गुरु कही । हे दयालु चित्तके धारनहारे वत्स ! तूं चित्त देय सुनि । जिन जीवन नैं परभवमें पर जीवनकौं लाठी, लात मूकी मारि ताके हाड़ तोड़ तिनकूं दुखी करि आप सुख पाया होय । तथा पराये शरीरकूं गांठ-गठीला रोग-सहित देख आप सुखी भया होय। तथा औरनका शरीर आंका--बांका कुरूप देख हांसि करी होय। अपने भले तनका भारी गर्व कर औरनकों बहकाए होंय। इत्यादिक अशुभ भावन तैं कूबड़ा शरीर होय है ॥ ५७॥ बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरो, ये जीव देव किस पुण्य तैं होय । तब गुरु कही । जिन जीवन नैं परभव में सम्यक् धारा होय। तथा पंच परमेष्ठीकी पूजा वंदना स्तुति करी होय । तथा तप, शील, संयम पाले होय । तथा दीन जीवनकी रक्षा रूप भाव करि करुणा भाव धारेहोंय । तथा मुनि श्रावकादिक च्यारि संघका वैय्या-व्रत कर्‌या होय । तथा भले भाव सहित जिनवाणी सुनी होय इत्यादिक धर्मका सेवन कर्‌या होय । तथा औरनकों धर्म सेवते देख अनुमोदना करी होय। तथा नन्दीश्वर द्वीप कुण्डलगिरि रुचिकगिरि आदिक चेत्रनके जिन मन्दिर बन्दनाकी अभिलाषा राखी होय । इत्यादिक धर्म भावन तैं देव होय है ॥ ५८॥ बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरो मनुष्य किस भाव तैं होय । तब गुरु कही । जिननैं परभवमें सरल भाव राखे होंय। कोई जीवनतैं द्वेष--भाव नहीं किये होंय । मन्द कषाय धरै, धर्म भाव सहित आर्जव परिणामी रह्या होय । इत्यादिक शुभ भावन तैं मनुष्य होय ॥ ५९ ॥ बहुरि शिष्य पूछी हे करुणानिधान यह जीव नरक किस पाप तैं

पावै ? तब गुरु कही। जिननैं परभवमें अनेक पर-जीव सताये होंय। दीरघ क्रोध धारया होय। जाका हृदय महा दगाबाजी तैं भरया होय। जानैं मद्य-मांसादि अभक्ष्य भक्षण करे होंय। धर्म भाव सहित, पाप सहित वरत्या होय। तथा धर्म तैं द्वेष भाव करि पाप कार्यनकी रचा करी होय। तथा पर जीवनके मारवे—बांधवेकी विशेष इच्छा रही होय। इत्यादिक भावन तैं नरकमें उपजै है ॥ ६० ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुदेवजी ! यह जीव पशुमें किस पाप तैं उपजै। तब गुरु कही। जिननैं परभवमें पर स्तुतिकी आरति करी होय। कर्मके वश अनेक खान-पानकी आरति धन जोड़वेकी आरति शरीर पुष्ट करनेकी आरति करी होय। इत्यादिक भाव जानैं अशुभ राखै होंय। तथा अक्रिया सहित खान-पान करे होंय। तथा खाद्य-अखाद्य वस्तुका विचार नहीं करया होय। प्रमाद सहित धर्म भावना रहित वरत्या होय। इत्यादिक अज्ञानता सहित अनेक आर्त्त-ध्यान तैं तिर्यंच होय ॥ ६१ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुजी, यह जीव कुभोग भूमिका मनुष्य जाका मुख तौ अनेक पशूनके आकार अरु नीचले आंगोपांग सर्व मनुष्यनकेसे महा सुन्दर सुघड़ होंय, सो ऐसा शरीर कौन कर्मके उदय तैं पावै। तब गुरु कही। जा जीव नैं पूर्व भवमें मिथ्यादृष्टी मुनिकौं दान दिया होय तथा कुमुनीनकौं भक्ति करि दान दिया होय। तथा शुभ मुनिनकौं कपटाई सहित दान दिया होय। तथा मुनीश्वरोंको दान देते चित्त लोभ रूप रह्या होय, तथा मानी चित्त रह्या होय तथा मानकी इच्छा रही होय। तथा मुनीश्वरकौं दोष—सहित भोजन दिया होय। तथा नवधा भक्तिमें अभिमान रख्या होय। तथा दाताके सात गुण * हैं, तिनमें कोई हीन होय। इत्यादिक भावन तैं कुभोग-भूमियां मनुष्य होय है ॥ ६२ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो सुभोग भूमि विषैं तीन पल्यकी आयु सहित, देव समान दश प्रकार कल्प बृक्षनके दिये सुख तिनका भोगता, किस पुण्यतैं होय सो कहौ। तब गुरु कही। जानैं परभव विषैं नवधा भक्ति सहित (१ प्रतिग्रह, २ उच्च स्थान, ३ अंघ्रि प्रक्षालन, ४ अर्चा, ५ आनति, ६ मन शुद्धि ७ बचन शुद्धि ८ काय शुद्धि ९

* भक्तिकं तौष्टिकं श्राद्धं सविज्ञानमलोलुपं। सात्विकं क्षमकं सन्तः दातारं सप्तधाविदुः ॥ १ भक्ति २ तुष्टि, ३ श्रद्धा, ज्ञान ५ अलोलुप (अलोल्य) ६ सत्व ७ क्षमा ये सात दाताके गुण हैं।

अन्न शुद्धि ये नवधा भक्ति हैं।) दान दिया होय। तथा और भव्यनकूं मुनि दान देते देख अनुमोदना करी होय। तथा मुनीश्वरोंकौं दान देवेकी अभिलाषा रही होय। तथा मुनिदान समय देवनके पंचाश्चर्य होते देख तथा सुनि कैं मुनिके दानकी महिमा-बड़ाई करी होय। तथा मुनि दान देनेहारे दाताकी स्तुति करी होय इत्यादि शुभ भावन तैं उत्कृष्ट भोग भूमियां होय है॥ ६३॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! कुक्षेत्रका वास किस पापकर्म तैं होय। तव गुरु कही। जिन जीवन नैं परभव विषैं पर जीवनकूं झूठा दोष लगाय सुक्षेत्रन तैं निकासि उद्यानमें राखा होय। तथा म्लेच्छनके भोग भले लागे होंय। तथा कोई पै कोप करि ताहि पकड़ निर्जन—भयावने स्थान में राखा होय। तथा कुक्षेत्र में वास करनेहारे, अनाचारी जीवन की प्रसंशा करी होय। तथा पशु पालक होय, उद्यान में रहके, हर्ष पाया होय। इत्यादिक कुचेष्टा तैं, कुक्षेत्र का वास पावै।६४। बहुरि शिष्य पूछी। हे ज्ञाननेत्रे, सुक्षेत्र का वासी जीव किस पुण्य तैं होय, सो कहो। तव गुरु कही। जाने परभव में कुक्षेत्रवासी जीवन की दया करि सुक्षेत्र में बसाये होंय। तथा दीन—दुखित जीवन कूं उद्यान में से ल्याय, सुख में राखे होंय, तिनकौं साता उपजाई होय। तथा आपने राज्य भोग छोड़, तप लेय, बनमें रहवे का उद्यम किया होय। तथा बनवासी मुनीश्वरों की धीरजता देखि, प्रसंशा करी होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं, सुक्षेत्र का वास पावै। ६५। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे नाथ, यह जीव अल्प आहार में संतोषी किस पुण्य तैं होय। तब गुरु कही। जिननैं परभव में मुनीश्वरों कों अल्प दान एक—दोय ग्रास देय, अपना भव सफल मान्या होय। और दीन-भूखे जीवन कूं वांछित भोजन देय, तृप्त किये होंय। तथा परभव में अनेक वांछित भोग थे तिनकौं छांड़ि, उदास होय, अल्प भोजन राखा होय। अनेक सुभग रसका त्याग किया होय। इत्यादिक समता भावके फल तैं अल्प भोजन में तृप्त होय है।६६। बहुरि शिष्य पूछी। हे पूज्य, ये जीव बहुत भोजन करवे की इच्छा राखै, अरु मिलै नहीं। सो यह कौन कर्म का उदय है, सो कहो। तब गुरु कही। जिननैं परभव में अन्य जीवन कौं तरसाय, भोजन दिया होय। तथा परभव में मनुष्य, श्वान मार्जारादि की पर्याय में पराया भोजन, ले भाज्या होय। तथा धर्मात्मा जीवन

का अल्प भोजन देख, हाँसि करी होय। तथा पशु—हस्ती, घोटक, बैल, महिष आदि अनेक जीवन का बहुत भोजन देख, सुख मान्या होय। तथा परभव में रात्रि—दिन मुख तैं भोजन करता भी, तृप्त नहीं भया होय। इत्यादिक अशुभभावन तैं बहुत भोजन करता, तृप्त नहीं होय है। ६७। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु देवजी ! यह जीव चतुराई-कलारहित मूर्ख, हृदय शुन्य, लौककि ज्ञान रहति, किस पाप तैं उपजै ! तब गुरु कही। जाने परभव में पराई कला-चतुराई देख द्वेष—भाव तैं, दोष लगाय हांसि करी होय। अरु अपने दोष छिपावे कूं अनेक माया-चतुराई करि, अपना दोष छिपाया होय। भांड-कला देख, हरष पाया होय। पराया गावना, खावना, हाव-भाव, नृत्य, वादित्रादि कला देख, तातैं द्वेष भाव किया होय। पराई चतुराई प्यारी नहीं लागी होय। तथा परभवमें याके रिझावे कूं, काहू ने अनेक कला-चतुराई करि राजी किया, ताकी रीझ (इनाम) पचाय गया होय। इत्यादिक पापन तैं मूढ़, लौकिक ज्ञान-चतुराई रहित होय है ॥ ६८ ॥ बहुरि शिष्य पूंछी। हे ज्ञानमूर्ति, यह जीव लौकिक कला-चतुराई सहित कौन पुण्य तैं होय ? तव गुरु कही। जिन जीवन नैं परभवमें औरनकी गान, नृत्य, वादित्र, चित्रकला, शिल्प-कलादि अनेक चतुराई देख, हरख पाय, तिन कूं उदार चित्त सहित अनेक रीझ दई होय। पराई चतुराई, विवेक,-भला ज्ञान देख, भला लाग्या होय। तिनकी प्रशंसा करी होय, कहीकी याकी ज्ञान-कला, शास्त्र प्रमाण है। गुणी जन-का आदर किया होय। इत्यादिक अपनी सज्जनता प्रगट करि, औरनके सुखी करवेके निमित्त भला ज्ञान खर्च किया होय। सो जीव लौकिक कला-चतुराईमें प्रवीण होय ॥ ६९ ॥ बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे गुरो ! यह जीव बहुभारका बहनेहारा मनुष्य-पशु, किस पाप तैं होय है ? तब गुरु कही, जिन नैं पर-जीवन पै बहुत भार लादा होय। तथा बेगारि पकड़, तापै बराजोरि भार धर्‍या होय। तथा पशून पै बहुत भार देय चलाये होंय। तथा अल्प भारका नाम लेय, बहुत भार बांध-धरा होय। तथा अपने लोभ कौं, पर जीवन पै भार लादि कुटुम्बकी रक्षा करी होय। तथा पर पै दीरघ भार लदा देख हर्ष पाया होय। इत्यादिक भावनके अशुभ फल तैं बहुत भारका वहनेहारा होय है। तिर्यंचमें वृषभ महिष ऊंट गर्धवादि बहुत भार वहनेहारा होय।

मनुष्यनमें बहुत भार बहनेहारा हिम्माल व बेगारी होय ॥ ७० ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ यह जीव रंक दरिद्री किस पाप तैं होय ? तब गुरु कही। जिननैं परभवमें अपनी अन्याय बुद्धि तैं जोरी करि अनेक जीवन कौं दुखी करि धन खोंसि निर्धन-दरिद्री करे होंय। तथा पर जीवन कौं लुटे-खुसे देख हर्ष मान्या होय। तथा कोई रंकका जोड़्या अल्प धन सो परभवमें चोरया होय। तथा कोई दीन-दुखी जोवन कूं दुर्वचन कहि पीड़े होंय। तथा दीन-दरिद्री जीवन कौं देख तिनकौं झूठा चोरीका दोष लगाया होय। तथा दीन-दरिद्री जीव देख तिनकी हाँसि करी होय। इत्यादिक परभवमें पाप भाव करे होंय जिन तैं ये जीव रंक-दरिद्री होय है ॥ ७१ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुजी ! यह जीव कुकाव्य-कलाका धारी चतुर कौन कर्म तैं होय ? तब गुरु कही। जिन जीवन कूं कुकथा भली लागी होय। तथा कहानी-किस्से भले जानि-सुनि हरष पाया होय। तथा लौकिक चतुराईके शास्त्र धर्म जानि दान दिये होंय। तथा उदर पूरणके कारण ऐसे ज्योतिष वैद्यक सुभाषित-सभा चातुरीके शास्त्र तथा शिल्प कलादिक चतुराईके शास्त्र धर्म जानि दान दिये होंय तथा धर्मके अर्थ औरन कौं लौकिक विद्या कला-चतुराई सिखाई होय। तथा अपवित्र शरीर तैं धर्म शास्त्रनका अभ्यास कर्या होय। तथा अनेक आरंभ अन्याय-पाप करि धन उपाय वह धन शास्त्रनकी लिखाई निमित्त दिया होय। तथा आप उत्तम धर्म सेवता कुकवीनके ज्ञानकी प्रशंसा करी होय। व आप कौं सीखवेकी वांच्छा रही होय। इत्यादिक भावन तैं जीव भवान्तरमें कुकवि होय है ॥ ७२ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ सुकवि धर्म शास्त्रनके छंद-काव्य-कलाका जोड़नेहारा सुबुद्धिका धारी किस पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही। जिननै परभवमें गणधरादि कविनाथ गाथा-छंद-काव्यके करता आचार्य तिनको काव्य-कला शास्त्रनमें देख-सुनि तिनका रहस्य जानि कविनाथ जो गणधरादि तिनको महिमा करी होय। तथा सुकाव्य धर्म शास्त्रनके करता तिनकौं देख अंतरंगमें प्रसन्न होय, तिन तैं वात्सल्य भाव जनाये, होंय। तथा धर्मकी जोड़-कला करते सुकविनको सेवा-सहाय करि, साता उपजाई होय। तथा सुकविनके किये छंद, गाथा, श्लोक तिनकौं वांचि, धर्मका रहस्य जानि, हरषायमान होय, कविनकी प्रशंसा करी होय। तथा धर्म शास्त्रनकी जोढ़-कला

करते कवीश्वरकी, कछू सहाय करी होय। इत्यादिक शुभ भावना तैं विशेष ज्ञानका धारी सुकवि होय ॥ ७३ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव दीरघ आयुका धारी, जन्मान्तर पर्यंत सुखी कौन पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही। जिननैं परभवमें पर जीवन कूं मरते बचाय, फिर तिनकौं अनेक भोजन कराय, वस्त्रादि देय, मिष्ट वचन भाषण करि साता उपजाई होय। तथा अनेक जीवनकों बंदी तैं छुड़ाय, सुखी करे होंय। पर जोवन कूं सुखी करवेकी सदीव अभिलाषा रही होय। औरन कों अल्पायु मरते देख, संसार तैं उदास होय, दया-भाव सहित जाका चित्त भया होय। दीन जीवनकी रक्षा, विशेष चाही होय। इत्यादिक शुभ भावना तैं, दीरघ आयुधारी, जीवन पर्यंत सुखी रहै ॥ ७४ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव दीरघ आयु पाय, दुखी किस पाप तैं रहै है ? तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभवमें पर जीवनका घात किया होय। अनेक जलगाहन, तरु छेदन, भूमि खोदन, अग्नि जालन इत्यादिक क्रियाके आरंभ तैं अनेक जीव त्रस-स्थावरनका घात किया होय। अनेक छोटी कायके धारी दीन-जीवनकौं सताये होंय। और कौं दुखी या रोगी रोवते देख खुसी भये होंय। पर कौं सुखी देख, ताका बुरा करना वांच्छा होय, इत्यादिक पाप-भावना तैं दीरघ आयु पाय दुखी होय ॥ ७५ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुजी, ये जीव सदीव शोक रूप कौन पाप तैं होंय ? तब गुरु कही। जे जीव परभवमें पर जीवन कूं शोक सहित देख, सुखी भया होय। तथा पर कौं द्वेष भाव तैं भय देय, शोक उपजाया होय। तथा असत्य वचन तैं हाँसि करि कही, फलानी जगह तेरा धन राहमें लूट्या गया। ऐसा कहि शोक उपजाया होय। तथा परके शोकमें ताकी हाँसि करी होय। तथा पराये मंगलाचारमें उपद्रव कर्या होय। इत्यादिक पापन तैं शोकवन्त रहै ॥ ७६ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव सदीव शोक रहित सुखी, किस पुण्य तैं होय है ? तब गुरु कही। जिन जोवन नैं परभवमें तीर्थंकरके पंचकल्याणक उत्सव देख, हर्ष—अनुमोदना करी होय तथा जिन पूजा, जिन प्रतिष्ठा, सिद्ध क्षेत्र यात्रा कूं संघ जावता इत्यादिक उत्सव देख, बहुत हर्ष किया होय। धर्म उत्सव करनेहारे जीवकी बड़ी प्रशंसा करी होय। अनेक जीवनके शोक जानैं धन तैं, मन तैं, तन तैं अनेक उपाय करि मिटाय, सुखी करै होंय। तथा और जीवन

कौं शोकवन्त देख. करुणा भाव करि तिनकौं सुख वांछ्या होय। पर कौं सुखी-मङ्गलाचार रूप देख, सुख पाया होय। इत्यादिक शुभ भावना तैं शोक रहित, सदैव सुख रूप होय ॥ ७७ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुदेव, यह जीव अनेक जीवन करि पूज्य, बहुतन का ईश्वर, कौन पुण्य तैं होय ? तब गुरु कहो। जाने परभवमें अनेक धर्मात्मा जीवनकी, वैय्याव्रत करि, साता उपजाई होय। तथा देव-गुरु-धर्म कूं उत्कृष्ट जानि पूजे हौंय। तथा औरन कौं धर्मात्मा जीवनकी सेवा करते देख, तिनकी अनुमोदना करि, तिनकौं भले जाने हौंय। तथा परभवमें जाने अनेक जीव असहाई-दीनकी दया करि अन्न देय, धन देय तथा वस्त्रादि तैं सुखी किये हौंय। तथा जाकैं च्यारि प्रकार संघकी सेवा करवेकी अभिलाषा रही होय। इत्यादिक पुण्य भावन तैं बहुत जीवनका नाथ होय ॥ ७८ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ, यह जीव कौन पाप तैं बहुत जीवनका दास होय। तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभवमें अन्य जीवन कौं भय देय, तिन तैं बेगारि कराई होय तथा सेवक राखि, चाकरी कराय, कछू दिया नाहीं होय। तथा सेवकन कौं रुजगार हेतु भेले राखे हौंय। तथा पर जीवन कौं अपराधी देख, सुख पाया होय। इत्यादिक पाप भावन तैं बहुतका दास होय ॥ ७९॥ बहुरि शिष्य पूछो। हे गुरो, यह नपुन्सकलिङ्गी काहे तैं होय ? तब गुरु कही। जाने परभवमें पुरुष कौं नारी का आकार बनाय, सुख पाया होय तथा कोई नर, स्त्रीका रूप बनाय लोकन कौं मोह उपजावै था सो ता रूप देख, आप हरष मान्या होय। तथा नपुन्सक जीवन कूं नाचता-गावता कौतुक-हाँसि करते देख, तिनकी चेष्टा आपकौं प्यारी लागी होय। तथा अन्य जीवन कूं नपुन्सक, जोरी तैं कर डार्या होय। तथा नपुन्सकका संग भला लाग्या होय। तथा नपुन्सक मनुष्य कैसी चेष्टा करवेकी, आपके अभिलाषा भई होय। तथा परस्त्री व पर पुरुषनके बीचि आप दूत होय, तिनका शील खंडन कराया होय। तथा एकेन्द्रिय, बेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौइन्द्रिय ये नपुन्सक वेदी हैं तिनकी हिंसा करते करुणा नहीं भई निरदई रह्या होय। इत्यादिक पाप चेष्टा तैं जीव नपुन्सक होय। तथा स्थावर, विकलत्रय होय ॥ ८० ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे ज्ञान सरोवर गुरो? यह जीवकी स्त्री पर्याय, कौन कर्म तैं होय ? तब गुरु कही। जिसने परभवमें स्त्रीनका संग भला जानि,

तिनमैं स्त्री कैसी चेष्टा करि सुख माना होय। तथा अपनी चेष्टा औरन कौं स्त्री कीसी बताय, औरन कौं वशीभूत किये होंय। तथा स्त्रीनमें मोहित बहुत रह्या होय। तथा परभवमें आप पुरुष था, सो नारीका रूप बनाय, औरन कौं मोह उपजाया होय। इत्यादिक कुचेष्टा तैं स्त्री पर्याय होय ॥ ८१ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव एकेन्द्रिय स्थावर किस पाप तैं होय? तब गुरु कही। जो परभवमें बीतराग देव-धर्म-गुरुकी निंदा करि, द्वेष भाव करि, सुखी भया होय। तथा देव-गुरु-धर्मकी व धर्मात्मा जीवनकी, कुसंगके दुर्बुद्धि जीवनका निमित्त पाय, निंदा करी होय। ते जीव साधारण वनस्पति व निगोदिया होंय। तथा जानैं परभवमें वृक्ष छेदे होंय। तथा अनेक वनस्पति खोदी, छेदी, छीली होंय। तथा बहुत भूमि खोदी होय। तथा जल डाल्या होय। तथा अग्नि प्रजाली-बुझाई जिससे पवनकायके जीव घाते होंय। इत्यादिक पंच स्थावरनकी दया रहित प्रवृत्या होय। तथा औरन कौं पंच स्थावर घात करते देख, अनुमोदना करी होय। इत्यादिक पाप तैं एकेन्द्रिय स्थावर काय होय ॥ ८२ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव विकलत्रयमें कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही। जे जीव विकलत्रय आदि त्रस जीवनकी घात करते, निर्दय रूप रहे होंय। तथा तिली गेहूं आदि अन्नकी भण्डशाला (बंडा-खत्ती धरि) करि बहुत दिन राखि, अनेक त्रस जीवनका समूह उपजाय कैं, क्षय किया होय। तहां दया नहीं उपजी होय। तथा त्रस जीवन सहित अनेक मेवा, फल, फूल पकवानादि अनेक रसना इन्द्रियके वशीभूत होय, भक्षण किये होंय और दया नहीं उपजी होय। तथा नर पशूनका मूत्र इकट्ठा करि त्रस जीवनकी उत्पत्ति-क्षय होते, दया नहीं उपजी होय। इत्यादिक विकलत्रयकी दया रहित वर्ते होंय, सो जीव विकलत्रयमें होंय ॥ ८३ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। गुरुजी, यह जीव विकलांगी, अंगोपांग रहित कौन पाप तैं होय। तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभव विषैं पर-जीवनके हाथ, पांव, कान नाक, शीश अंगुली आदि अङ्ग-उपाङ्ग छेदन किये होंय। तथा कोईके अङ्ग-उपांग छेदते देख, हरष पाया होय। तथा दीन-पशूनके अङ्ग-उपांग शस्त्रन तैं छेदन किये होंय। तथा पाहन लाठी लात मूकी तैं पराधीन नर-पशुनके अङ्गोपांग तोड़ि डारे होंय। तथा अंगोपांग रहित जीव देख तिनकी हाँसि करि, हरष मान्या

होय। इत्यादिक पापन तैं बिकल अंगी अंगोपांग रहित होय है॥ ८४ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो अष्ट अंग सहित सम्पूरण, कौन पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही। जिननैं परभव विषैं अन्य जीवनके अंग-उपांगकी रक्षा करी होय। तथा कोईके हाथ-पांवादिक अंग-उपांग कटते राखे होंय, दया भाव करि धन देय बचाये होंत। तथा औरनके अंग-उपांगमें दुख देख, आप दया करि औषधि देय, ताकौं साता करी होय। तथा अंगोपांग रहित काऊ कौं देख, अनुकम्पा करो होय। तथा औरनके अंगोपांग शुद्ध-पुष्ट देख, सुख मान्या होय। इत्यादिक पुण्य भावन तैं अष्ट अंग शुद्ध पावै ॥ ८५ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव नीच कुली किस पाप तैं होय। ? तब गुरु कही। जिन जीवनने परभवमें ऊंच कुली पुरुषोंकी निंदा करी होय। तथा अपने मुख तैं अपनी प्रशंसा करो होय। तथा पराये भले गुणनका आच्छादन किया होय। तथा अपने औगुण आच्छादन किये होंय। तथा पराये दोष प्रगट करे होंय। तथा नीच कुलीनके खान-पान विषैं रंजायमान होय, अनुमोदना करी होय। तथा अपने अभिमान करि औरनका अनादर किया होय। तथा नीच संगमें बहुत रह्या होय। इत्यादिक अशुभ भावन तैं नीच कुली होय ॥ ८६ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुदेव ऊंच कुली कौन पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही। जानैं सत्पुरुषनके गुणकी प्रशंसा करी होय। तथा अपने औगुण गुरुन पै प्रगट प्रकाशे होंय। तथा पराये औगुण देख आच्छादन करे होंय। तथा चारि प्रकारके संघ की सेवा करी होय। तथा दुराचार तैं डर्या होय। अनेक दीन-जीवन कूं अनेक भोजन-पान-वस्त्र देय, सुखी करि मिष्ट वचन तैं साता उपजाई होय। तथा अपने भावन तैं कोऊका भी अनादर नहीं कर्या होय। तथा आप दीन समानि आपकौं जानि, अभिमान रहित रह्या होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं ऊँच कुली होय ॥ ८७ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु, यह जीव नीच कुलमें उपजै। तिनकौं दीरघ धन, हुकुम, लोकमें मान पुरुषारथ होय सो कौन पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभवमें अनेक अज्ञान तप करे कबहूं अन्नका त्याग करि, साग-भाजी भोजन करो होय। तथा बनफल-पत्ताका भोजन कर्‌या होय। तथा सर्व त्याग, दूध लिया होय। मही पिया होय। घासि घोटके पिया होय। अग्निमें तन तपाया होय। ऊर्ध्व पांव-

अधो शीश, झूल्या होय। भूमि गड़्या। पर्वत पतन किया। जल पतन, इत्यादिक बाल तपस्वी होय, अनेक कष्ट, धर्मके निमित्त सहे होंय। तथा अज्ञान तपस्वीन कौं, भले धर्मात्मा जानि विनय सहित सरल भावन तैं तिनकी पूजा करी होय। धर्मके निमित्त याचकन कौं दान दिया होय। तथा लौकिक कार्यनमें धर्म जानि धर्म फल कौं धन खर्चा होय। तथा अपनी अज्ञानता त अन्य भोरे जीवन कूं धर्मी जान पूजे होंय। तथा आप ज्ञान रहित होय, मंद कषायी रह्या होय। इत्यादिक भावना सहित नीच कुल में उपजि, धन-वान—हुकुमवान् होय। सो तिर्यंच गति का बंध किये पीछे ऐसे भाव होंय, तौ शुभ भावनाके फल तैं कोई राजा का हस्ती—घोटकादि पशू होय। ताके पीछे अनेक जीव पलैं। भले वस्त्र--अभूषण, भले भोजन का भोगनहारा आप सुखी होय। तथा पहिले मनुष्यायु का बंध किया होय, तौ नीच कुल में उपजै। सो हुकुम का धारी होय तथा पहिले देवायु का बंध किया होय तौ भवनत्रिक में अल्प ऋद्धिका धारी, हीन देव होय। इत्यादिक भावन तैं ऐसे होंय। ८८। बहुरि शिष्य पूछी। ये जीव ऊँच कुली होय दीन दशा धारै, धन रहित होय। सो किस पापका फल है? सो कहिये। तब गुरु कही। जिसनैं परभव में शुभ भावन तैं ऊँच गोत्र का बंध करि पीछे विपरीत कषाय रूप भाव भये, सो मान के वश होय, मोह के जोर तैं मदोन्मत्त होय, पर जीवनका मान खंड कर, हर्ष पाया होय। आप गुरु जनकी आज्ञा रहित रह्या होय। तथा दीन जीवन पै द्वेष-भाव करि तिनकूं कुवचन करि पीड़ा उपजाई होय। परका धन छल-बल करि नाश कराय, सुख पाया होय। इत्यादिक पाप भावन तैं उँच कुली होय, परन्तु धन-धान्यादि रहित, दीन दशाका धारक होय। ८९। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुजी, यह जीव बहुत देशान्तर भ्रम आजीविका पूर्ण करै। ऐसा किस कर्म तैं होय? तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभव में दीनकौं दान दिये होंय, सो अनेक जगह भ्रमाय-भ्रमाय दिया होय। तथा दानके दाम अन्य ग्राम में बताय, दीनकौं भटकाय दान दिया होय। तथा और दीननपै अनेक सेवा-चाकरी कराय बहुत दिन तक भटकाय, पीछे दया करि दान दिया होय। तथा अनेक ग्राम-देश भ्रमाय, सेवा-चाकरी कराय, पीछे धर्म जानि दान दिया होय। तथा कासीदनकौं अनेक देश

भ्रमाय, ताकी चाकरी नहीं दई होय। तथा कसर करि दई होय तथा धर्म निमित्त परकौं ग्राम, धन, वस्त्र देय तिनतैं अनेक चाकरी कराय, बहुत देश-नगरकौं कासीद (हलकारे) की नाईं भ्रमाय, तिनपै खेद कराया होय। तथा धर्मात्मा पुरुषन कूं आधीन राख, अनेक देश-ग्राम अपने संग भरमाय, तिनकी स्थिरताकौं आजीविका बताई होय। तथा देशान्तरकी आजीविका करनेहारे जीवको हाँसि करी होय। आप मद करि एक जागि तिष्ठा, धन पैदा करता, मत्सर भाव करि अन्यकौं बहकाये होंय। इत्यादिक अशुभ भावना सहित, भवान्तरमें मनुष्य होय, तौ देशान्तर भ्रमण करि आजीविका पूरण करणहारा होय। ६०। बहुरि शिष्य पूछी। हेगुरो, यह जीव एक स्थान पै तिष्ठा, आजीविकाकौं अनेक धन पैदा करता, कौन पुण्यतैं होय? तब गुरु कही। जिसने परभवमें अनेक धर्मात्मा जीवनकी स्थिरता कौं खान-पान धन-दानादि देय निराकुल, धर्म सेवन कराया होय। तथा अनेक पशु तथा दीन मनुष्य इनकौं अशक्त देख, दुखी देख, तिनकी दया करि तिनके स्थान बैठे ही असहाय जानि, तिनके खान-पानकी खबर लेय, साता उपजाई होय। तथा निर्धन धर्मात्मा जीवनकौं निराकुल धर्म सेवन करते देख, समता सहित देख, तिनकी प्रसंशा करी होय। तथा औरनकौं सुख तैं धन पैदा करते देख, खुशी भया होय। इत्यादिक शुभ भावन तै एक स्थानमें धन पैदा करि सुखी होय। ६१। बहुरि शिष्य पूछी। हेगुरो! यह जीव दगावाजी सहित आजिविका पैदा करनेहारा किस पापतैं होय? तब गुरु कही। जानैं परभवमें दानमें कपटाई करी होय। दीन जीवन कूं कपटाई सहित दान दिये होंय। गुरुजन जो मुनि, तिनकौं भक्ति—भाव रहित दान दिया होय। दुखित-भुखितनकौं दया रहित दान दिया होय। तथा मायातैं उदर भरनेहारे चोर, फांसी, गिरी, ठग तिनकी कला-चतुराई देख, तिनके ज्ञानकी प्रसंशा करी होय। तथा पराया धन धरया ही जानता, मुकरि गया होय। औरनके भले किसवकौं दोष लगाया होय। इत्यादिक पाप भावन तैं दगावाजी सहित अजीविका करनेहारा होय। ६२। बहुरि शिष्य पूछी। हे दयालु गुरुनाथजी! सरल भाव सहित सत्यवादी होय आजीविका पूर्ण करै, सो किस पुण्यतैं करैं? सो कहो। तब गुरुजी कही। जिननैं परभवमें सरल भाव तें धर्मराग करि धर्मात्मा जीवन कूं अन्न-पान

विनय सहित देय, साता करी होय। तथा दगाबाजी रहित, दया सहित, दीन जीवन कूं खान-पान देय रक्षा करी होय। औरनकौं निर्दोष आजीविका उपजावते देख, तिनकी प्रसंशा करी होय। तथा परभवमें सत्यवचन व सरल भाव सहित आजीविका नहीं मिलै भी, अनेक भूख सही, संकट सहे। परन्तु कपटाई सहित उदर पोषण नहीं किया होय। इत्यादिक शुभ भावनतै, न्याय सहित सरलतातैं आजीविका पैदा होय है ॥ ६३ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। यह जीव नर व पशु होय, घर-घर बिकता फिरै। सो कौन पाप-कर्मका फल है ? तब गुरु कही। परभवमें जा जीवनैं बल करि, छल करि,पराये पुत्र-पुत्री बैंचे होंय। तथा पराये पशु छल-बल करि हरके, घर-घर बैंचे होंय। तथा पराये पुत्रादि मनुष्य तथा हस्ती, घोटक, महिष वृषभ, आदि जीव कोऊके प्रबल शत्रुने अन्याय भावतैं लूटि, पकड़ल्याय घर-घर बैंचे होंय, तिनकौं देख सुखी भया होय। तथा बीचमें दलाली खाय, पराये मनुष्य-पशु बिकाये होंय। इत्यादिक भावनतैं आप घर-घर विषैं बिकै है। ६४। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, एकबार ही बहुत जीव—समुदाय मरणकौं प्राप्त होय। सो कौन कर्मके उदयतैं होय ? सो कहिये। तब गुरु कही। परभवमें जिन बहुत जीवननैं एक ही बार पाप उपाया होय। जैसे कोई, मनुष्यकूं तथा पशुकूं मारै है। तहां कौतुकके हेतु अनेक जीव देख, सुखी होय, पाप भार उपाया होय। तथा कोइ नरनारीकूं अग्निमें जलते देख, अनेक जीव सुखी भये होंय, अनुमोदना करी होय। तथा युद्ध विषैं अनेक जीवनका मरण सुनि तथा देख, अनेक जीव राजी होय, हर्ष पाया होय। तथा अनेक जीवनिनैं मिलि वीतराग देव—गुरु-धर्मकी निंदा–हाँसि करी होय। इत्यादि पाप भावनतैं समुदाय सहित अनेक जीव मरण पावैं हैं। ६५। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे गुरो ! यह जीवनके समुदायकूं सुख किस पुण्यतैं होय ? तब गुरु कही। जिन जीवननैं तीर्थंकरके गर्भ उत्सव, तथा देवनके किये जन्मोत्सव, तप उत्सव ज्ञान उत्सव, निर्वाण उत्सव इन पाँच कल्याण के बड़े उत्सव, अनेक देव सहित, इन्द्र-शची कौं करते देख तथा सुनि, जिन जीवननैं इकट्ठे होय, अनुमोदना करी होय। तथा इन्द्र महाराज इन्द्राणी सहित अनेक देव लेय, नन्दीश्वर जी के उत्सव कौं जाते देख तथा सुनि, परम सुख कूं पाय, अनेक जीवन के समुदाय ने अनुमोदना करि

पुण्य बांध्या होय। तथा बड़ा संघ सिद्धक्षेत्रकी यात्रा कौं जाता देख, ताका जय-जयकार उत्सव देख, अनेक जीवन नैं अनुमोदना करि, पुण्य बन्ध किया होय। तथा च्यार प्रकार संघकी वीतरागता देख, अनेक जीवोंने सुख पाया होय। तथा समोशरण की महिमा देख, तथा बड़ी पूजा—विधान—प्रतिष्ठा तिनके उत्सव देख तथा शास्त्रन तैं सुनि, अनेक जीवन कौं अनुमोदना उपजी होय। इत्यादिक शुभ कार्यन में अनुमोदना करि, बहत जीवन नै समुच्चय पुण्य बन्ध किया होय। तिनकूं समुदाय ही सुख होय है। ६६। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, बहुत जीव एक बार ही तप लेय, स्वर्ग—मोक्ष कौं सङ्ग ही जांय। सो किस पुण्यका उदय है सो कहो। तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभव में तीर्थंकरों को, देवोपुनीत राज्य—सम्पदा छांड़ि तप लेते देख, तथा चक्रवर्ती षट् खंड की विभूति तृणवत् तजि दीक्षा लेंय, तिस उत्सव कौं देख, तथा बलभद्र, कामदेव, मण्डलेश्वरादि महा राजान् कौं दीक्षा लेते देख, हर्ष करि अनुमोदना करी होय। तथा एक—एक राजान्की संगति करि, अनेक राजा व तिनकी रानी, राज्य—संपदा छांड़ि, दीक्षा लेंय। ऐसे हजारों जीवनकी दीक्षा देख तथा शास्त्रन तैं सुनि, बहत भव्य जीवन नैं एकबार ही तपकी अभिलाषा सहित अनुमोदना करि, समुदाय सहित पुण्यका बन्ध करि, वैराग्य भाव किये होंय। इत्यादिक समुदाय पुण्य तैं, समुदाय तप अङ्गीकार कर स्वर्ग—मोक्ष होय है। ६७। बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ, बहुत जीवन कैं एकही बार रोग होय। सो किस कर्म तैं होय। तब गुरु कही। जिननैं परभव में वीतरागी यतीश्वर का, जो अपने शरीर ही तैं निष्प्रयोजन हैं तिनका शरीर मलीन देख तथा तप तैं क्षीण देख तथा मुनीश्वरके शरीरमें दीरघ रोग देख बहुत जीवनमें एक ही बार ग्लानि करी होय। तथा निन्दा करि अनादर किया होय। तो उन बहुत जीवन के एक साथ ही रोग होय तथा कोई आर्यिका के तनमें रोग देख तथा धर्मात्मा श्रावक, श्राविका अविरत सम्यक्दृष्टी इनके शरीर रोग तैं क्षीण व अशुचि देख, बहुत जीवन नै एक ही बार ग्लानि करी होय। इत्यादिक अशुभ भावन तैं बहुत जीवन के एकही बार रोग होय है। ६८। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु जी! इस जीव कं पर स्त्री तथा पर पुरुष कूं देख

काम विकार होय, मोह उपजै। सो किस कर्म का फल है। तब गुरु कही। जो जीव परभव की स्त्री होय। तथा परभव में जिनको परस्पर व्यभिचारका बन्ध भया होय। तथा परभव की हांसी, खिलवती, नाच, गीत की सुहवति–संग का जीव होय। इत्यादिक परभव के विकार सम्बन्ध तैं भवान्तर में ताकौं देख काम—विकार होय है। ९९। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! पर जीव कौं देख, विना कारण द्वेष–भाव होय। सो कौन कारण। तब गुरु कही। जाकौं देख द्वेष भाव होय, सो परभवका बैरी होय। आपने वाकौं परभवमें दुखी किया होय। तथा वानैं आपकौं काहू तैं युद्ध कराय, हर्ष मान्या होय। तथा आपने वाकौं भिड़ाय, सुख मान्या होय। इत्यादिक पूर्व द्वेष जातैं होय ताकौं देखे भवान्तरमें द्वेषभाव होय॥ १००॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुजी पर जीव देव मनुष्य पशु ताकौं देख हर्ष होय। सो कौन सम्बन्ध है? तब गुरु कही। कोई परभवका पुत्रका जीव होय। तथा भाईका जीव, तथा माताका जीव तथा बहिनका जीव तथा पिताका जीव इत्यादिक परभवका कोऊ कुटुम्बी जीव होय। तथा परभवका कोई मित्र होय। तथा अपना कोई परभवमें उपकार करनहारा होय। तथा आपने वाके ऊपर कोई उपकार परभवमें किया होय। इत्यादिक सम्बन्ध वातैं कोऊ पूरव भवका होय ताकी सूरत देख मोह उपजै है॥ १०१॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुदेव अपने दुखमें बिना प्रयोजन कोई आय सहाय करै। सो कहा सम्बन्ध? सो कहिये। तब गुरु कही। परभवमें आपने वाके ऊपर कोई उपकार किया होय। जो भूखे कूं अन्न-भोजन दिया होय सो आय आपकौं बड़े सङ्कटमें भोजनका सहाय करै। जानैं तृषावन्त कौं जल प्याय साता करी होय। सो आपकौं दीर्घ पर्वत बन उद्यानमें तथा युद्धमें जहां जल नहीं होय तृषा-सङ्कटमें प्राण जांय ऐसे दुःखनमें जल प्याय सुखी करै। तथा जानै नग्न रहते कौं वस्त्र देय साता करी होय। सो भवान्तरमें ल्याय अनेक वस्त्र नजर करै। तथा आपने काहू कौं अभय-दान देय दुख तैं मरतैं बचाया होय तो वह हस्ती सर्पादि दुष्ट जीवन करि प्राण जावतैं आय सहाय करै मरते कौं बचावै है। तथा महा संग्राम विषैं आय सहाय करै। इत्यादिक जाके ऊपर जाने जैसा उपकार किया होय तैसा ही आपकौं दूसरा भी आय सहाय करै है। तथा नये सिरे तैं उपकार करवेकी अभिलाषा होय

है ॥ १०२ ॥ बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरुनाथ ! जाका धन रोग निमित्त बहुत लागै । परन्तु सुख नहीं होय । सो कौन पापका फल है ? तब गुरु कही । जानैं परभव विषैं अनेक भोरे जीवन कौं बहकाया होय । और तिनकौं रोग नाश करि पुष्ट करवेका लोभ देय तिनका धन छल-बल करि आप लिया होय । तथा रोग नाशक लोभ देय ताका बहुत धन खराब कराया होय । तथा अल्प मोलकी वस्तु देय बहुत धन छलि करि लिया होय । तथा अन्य कौं दुखित-रोगी देख तिनका धन औषध निमित्त विरथा लागता देख आपने हर्ष मान्या होय । तथा पर कौं रोग नाश करवे निमित्त कुदेवादिकके निमित्त पूजा बताय ताका धन क्षय किया होय । तथा कोई रोगी कौं ग्रह-नक्षत्रका भय देय तिनका धन ग्रह-दानमें क्षय कराया होय । इत्यादिक कुभावन तैं भवान्तरमें मनुष्य होय ताका धन रोग निमित्त जाय है ॥ १०३ ॥ बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरो इस जीवका भला धन कुव्यसन विषैं लागै । सो किस पापाका फल है ? सो कहो । तब गुरु कही । जानैं परभवमें पराया धन कुव्यसन विषैं शिक्षा देय लगवाया होय । तथा पराया धन कुव्यसनमें लागता-उजड़ता देख आप सुखी भया होय । द्यूत रमाय पराया धन हरा होय । अभक्ष्य भक्षण कराय परधन खोया होय । तथा आपने चोरी करि पराया धन हरा होय । मदिरा प्याय धन ठगा होय । तथा वेश्याके नाच-गान व पर स्त्री आदि भोगनमें पर धन नाश होता देख आप खुशी भया होय । इत्यादिक पाप तैं भवान्तरमें कुव्यसनसों धन नाश होय है ॥ १०४ ॥ बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरो ! यह जीव गर्भमें ही कौन पाप तैं नाश हो जाय ? तब गुरु कही । जिन नैं पर जीवन कौं परभवमें गर्भमें ही मारे होंय । अनेक बनवासी पशु तिनकूं आप निर्दयी होय, गर्भमें ही हते होंय । तथा आप दाईका स्वांग धारि, अनेक स्त्रियोंके बालक गर्भमें ही मारि डारे होंय । तथा औषध देय तथा जंत्र मंत्र करि गर्भका निपातन किया होय । तथा परके बालक गर्भ विषैं मरे सुनि आप सुखी भया होय । तथा कोई तैं द्वेष भाव करि ताका बालक किसी कौं कहिके गर्भमें हीं नाश कराया होय । इत्यादिक पापन तैं जीव भवान्तरमें गर्भमें ही मौत पावै है ॥ १०५ ॥ बहुरि शिष्य कही । हे गुरो ! इस जीव कौं भली सीख बुरी क्यों लागै सो कहो । तब गुरु कही । जानैं पर कौं अनेक खोटी सीख देय, परका बुरा

करि, आप सुख पाया होय। तथा पर कौं खोटी सीख देय, कुमारग चलाया होय। तथा गुरु जन जो माता पितादिक, तिनके हितकारी शिक्षा वचन सुनि, जाकौं नहीं सुहाये होंय। जिननैं उल्टे गुरु जन कौं अविनय वचन कहे होंय। औरन कों अविनय सहित चलते देख, आप राजी भया होय। शिक्षाके देनेहारे गुरु जन, तिनकी हाँसि करी होय। स्वेच्छाचारी पशु पर्याय, तामैं तैं चय कैं मनुष्य भया होय। तथा पापाचारो, अविनयी कुसंगी जीव तिनके वचन भले लागे होंय। इत्यादिक पाप भावन तैं, भली सीख वचन नहीं सुहावैं हैं॥ १०६ ॥

बहुरि शिष्य पूछो। हे गुरो! इस जीव कौं अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञानको प्राप्ति कौन शुद्ध परणति तैं होय? तब गुरु कही। हे भव्यात्मा, सुनि। जिननैं परभवमें तपस्वी मुनि अवधि-मन पर्यय ज्ञान धारी, तिनके ज्ञानका माहात्म्य देख, हर्ष पाया होय। तथा ऐसे दीरघ ज्ञानके धारी तपस्वी, तिन की सेवा-चाकरी करि, अपना भव सफल मान्या होय। तथा ऐसे अवधि-मनःपर्ययादि ज्ञनका अतिशय देख, तिनकी बहुत महिमा करी होय, बारम्बार स्तुति करी होय, तिन तापसी ज्ञान-भंडार यतीनकी वैयाव्रत करवेकी अभिलाषा रही होय, तथा मुनि पद धारि अवधि मनःपर्यय ज्ञान उपायवेकी वांच्छा रही होय। तथा केवलीके वचन सुनि, सत्य जानि हर्ष पाया होय। तथा केवलज्ञानीके अतिशय, देव-इन्द्रन करि बन्दनीक जानि, आपकूं केवलीके गुण तैं बहुत अनुराग भया होय। तथा केवलज्ञानीके वचन प्रमाण तीन लोक, तीन काल, जीव-अजीवादि द्रव्य, तिनके प्रमाणका स्वरूप, परोक्ष तौ जान्या होय अरु ताके प्रत्यक्ष जानवेका परम अभिलाषी भया, वीतराग भावनकी इच्छा सहित प्रवृत्तका होय। इत्यादिक शुद्ध भावना तैं अवधि-मन पर्यय-केवल ज्ञानकी महिमा प्रशंसा भक्तिभाव सहित कर, तिन उत्तम ज्ञानकी प्राप्ति कौं दीक्षाका उद्यमी भया होय। इत्यादिक शुद्ध भावना सहित जीवन कूं भवान्तरमें अवधि, मन पर्यय, केवल ऐसे उत्कृष्ट ज्ञानकी प्राप्ति होय है ॥ १०७ ॥

बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुजी! इस जीवका धन, धर्म कार्यन विषैं लागै। सो किस पुण्यका फल है? सो कहो। तब गुरु कही। जिन जीवन ने परभवमें औरन कों धर्म विषैं धन खच करते देख, अनुमोदना करि हर्ष उपाया होय। तथा आपने चोरी दगाबाजी रहित, न्याय मारग सहित, धन उपारज्या होय। औरन कौं

तीर्थ स्थानमें धन लगावते देख तथा जिन मन्दिरके करायवेमें द्रव्य लगावते देख तथा पूजा-प्रतिष्ठा विषैं धन लगावते देख, आपने विशेष अनुमोदना करी होय। तथा आपने परभवमें अनेक प्रभावना अंगनमें द्रव्य लगाया होय। तथा औरन कौं इन स्थानकनमें धन लगावते देख, भले जानें होंय। ऐसे पुण्य परणामन तैं इस जीवका धन शुभ कार्यमें लागै है ॥ १०८ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव व्रत लेय भंग करि डारै। सो किस कर्मका फल है। तब गुरु कही। जानै परभवमें पर जीवनके व्रत भंग किये होंय। तथा पराये शुद्ध व्रत कौं दोष लगाया होय। तथा अन्य अज्ञानी जीवन कौं व्रत लेय भंग करते देख अनुमोदना करी होय। तथा कोई धर्मात्मा जीवनका व्रत, कोऊ दुष्ट भंग करै है। सो तामैं सहाय होय, पराया व्रत भंग कराया होय। तथा बाल्यावस्थामें अनेक बार कौतुक मात्र आखड़ी लेय-लेय कैं भंग करी होय। इत्यादिक अशुभ कर्म तैं भवान्तरमें शिथिलांगी व्रत करनेहारा होय ॥ १०६ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव पशु पर्यायमें उपजि कसाईके हस्त तैं मरे। सो कौन पापका फल है। तब गुरु कही। जिसने परभवमें कसाईका किसब (व्यवसाय) किया होय। तथा जिननैं परभवमें अन्य जीवों कौं विश्वास देय, अनेक भले खान-पान तैं पोष, तिनका घात किया होय। तथा पर-जीवन कौं छल-बल करि हते होंय। तथा पर-जीवन कौं मोल लेय, मारे होंय। तथा पर-जीवनके अण्डा मोल लेय मारे, तथा अण्डे बैंचे होंय। तथा पर-जीवन कौं पालि पीछे लोभके अर्थ, कसाईन कौं बैंचे होंय। तथा बिना अपराध बन-जीवन कौं अपने हाथ तैं हते होंय। तथा कसाईके घरका आमिष मोल लाय, भक्षण कर्‌या होय। तथा पर-जीवन कौं कसाईके हाथ तैं मरते देख, सुख मान्या होय। तथा पर-जीवनका आमिष बहुत खाया होय। इत्यादिक पापन तैं जीवकी कसाईके हाथ तैं मौति होय ॥ ११० ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव पापपरणामी, पाप क्रिया सहित कौन पाप तैं होय। तब गुरु कही। जानैं परभवमें पापी, चोर, ज्वारीनका संग बहुत किया होय। तथा पर-जीवनका घात किया होय। तथा पापी जीवन कौं कुबुद्धि-पाप रूप क्रिया करते देख, अनुमोदना करी होय। तथा हिंसा सहित जीवन कौं कुबुद्धि-पाप रूप क्रिया करते देख, अनुमोदना करी होय। तथा हिंसा

सहित पाखंडी जीवनके कल्पित देव-गुरु मांस-भक्षी, तिनकी सेवा-पूजा करी होय। तथा धर्मात्मा जीवनकी निन्दा करि, अविनय करि सुख मान्या होय। तथा शुद्ध देव—गुरु—धर्मकी निन्दा करि, विपरीत भाव रह्या होय। इत्यादिक अशुभ भावन तैं पापी, पापक्रियाका करनहारा होय है ॥१११॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव भली उत्तम मनुष्य पर्याय पाय, खपत कैसे पाप तैं होय। तब गुरु कही। जानै परभवमें अन्य जीवन कौं मंत्र यंत्र करि खपत करे होंय। तथा अनेक जड़ी बूटी खुवायके, जीवन कूं खपत करे होंय। तथा केई जीव पापके उदय तैं खपत होय गये, तिनकी हाँसि करी होय। तथा केई खपतकी अज्ञान चेष्टा देख, तिनकौं चोरी आदि झूठा दोष लगाया होय। तथा कोई हौल दिल कूं स्वच्छंद प्रवृत्तता देख, ताकौं मारया होय। तथा मदिरादि अमल पीय, अपनी अज्ञान चेष्टा करि, सुख मान्या होय। तथा कोई मदिरा पीवनेहारा, तिनकी अज्ञानचेष्टा देख, आप सुख मान्या होय। इत्यादिक पाप चेष्टा तैं जीव भवान्तरमें खपत होय है ॥ ११२ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव कुशीलवान् किस पाप तैं होय। तब गुरु कही। जानैं परभवमें वेश्या का संग बहुत किया होय। तथा वेश्या, नृत्यकारिणी तथा कुशीली स्त्री, नपुन्सक पुरुषाकार तिनके संग बहुत अज्ञान चेष्टा देख, तथा उन समान आप कुचेष्टा करि, हरष मान्या होय। तिन मैं गोष्ठी कर, रम्या होय। और जीवन कौं कुशील करते देख, अनुमोदना करी होय। तथा श्वानादिक पशु पर्यायमें कुशील रूप बरत्या होय। तथा औरनके बीचमें दूत होय, कुशीलमें सहायता दी होय। तथा दिन विषैं कुशीलके वीर्यका उपज्या होय। इत्यादिक पाप भाव तैं कुशीली ही होय ॥ ११३ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ, ये जीव शीलवान किस पुण्य कर्म तैं होय। तब गुरु कही। जानै परभवमें शीलवान् पुरुष स्त्री जीवनकी प्रशंसा करी होय। तथा शीलवान् पुरुषके शील राखवे कौं सहाय करी होय। पूर्वै संयमी पुरुषनकी संगति करी होय। तथा कुशीलन की संगति तैं मन उदास रह्या होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं शीलवान् होय ॥ ११४ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव जनमते ही मरण कौं प्राप्त किस पाप तैं होय। तब गुरु कही। जानैं औरन कौं जन्मते ही मारे होंय। तथा अल्प आयुके धारी जनमते ही मरते देख, हरष पाया होय। तथा द्वेष भाव तैं कोई कौं

जनमते देख, हस्त तैं मार्‍या होय। तथा सम्मूर्च्छन एकेन्द्रियादि त्रस जीवनके घातके उपाय करि तिनकी हिंसा करी होय। इत्यादिक पाप भावन तैं जन्म समय ही आप मरण पावै ॥ ११५ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव बन्दी होय, पर वश परके किये दुख कौं सहै। सो किस पापका फल है। सो कहो। तब गुरु कही। जिननैं बिना अपराध धनके लोभ कौं पर जीव जोरावरी पकड़ि कैं बन्दीगृहमें राखे होंय। तथा परभवमें दुपद, चौपद, नभचर, जलचर, उरपद इत्यादिक पशून कौं बलात्कार, पींजरा-फंदा आदि धनमें राखे होंय। तथा पर जीवन कौं द्वेषभाव करि, चुगली खाय, पराये मान खण्डन कौं, धन नाश कौं, झूठा दण्ड लगाय, बन्दीमें दिवाये होंय। तथा पर कौं बन्दीगृहमें देख, अनुमोदना करि खुशी भया होय। इत्यादिक पाप त, जीव नृपादिकका बन्दी होय ॥ ११६ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव अकस्मात् शस्त्र तैं, फांसी तैं, गोला तैं, सिंहादि दुष्ट पशून तैं, अग्नि तैं, जल तैं, विष तैं, इत्यादिक कारण तैं मृत्यु पावै। सो किस पापके फल तैं पावै? सो कहो। तब गुरु कही। जानै परभवमें पर जीवन कूं दोष लगाय, विष देय मारे होंय तथा विष? मूए देख, हर्ष पाया होय। सो जीव इस पापसे अकस्मात् मृत्यु पावै। और जानैं पर जीवन कौं फांसी तैं मारे होंय। तथा फांसी तैं मूये सुनि, अनुमोदना करि हर्ष पाया होय। ते जीव चोरनका निमित्त पाय, फांसी तैं मरै। और जिननैं पर जीवन कौ तीर, गोली, बर्छी, कटारी, छुरी, तलवारादि शस्त्रतैं मारे होंय। तथा मुये सुनि, अनुमोदना करी होय। ते जीव अकस्मात् शस्त्र तैं मौति पावैं। और जिन जीवननैं परभवमें सिंहादि जीवनकौं शस्त्र तैं हते होंय। तथा औरनतैं मारे सुनि, सुख पाया होय। ते जीव सिंहादिक दुष्ट जीवनतैं आकस्मात् मृत्यु पावैं। और जिननैं पर जीवन कूं अग्निमें जाले होंय। तथा अग्निमें जले सुनि, हरष पाया होय। सो जीव आकस्मात् अग्निमें जलैं। और परजीवनकौं जिनने जलमें डुबोय मारे होंय। तथा जलमें डूबे सुनि, सुख पाया होय। ते जीव अकस्मात् जलमें डूबि मरैं। इत्यातिक जे पाप क्रिया, ताही निमित्त पाय आकस्मात् मरण होय। ११७। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव परका खानाजाद गुलाम, किस पापतैं होय? तब गुरु कही। जानैं पर-

भवमें बलात्कार पर-जीवनकौं गुलाम किये होंय। तथा धन लोभ देय तथा भूखेकौं खान-पान वस्त्रादिकका लोभ लगाय, तथा पराया मनुष्य विकते देख मोल देय इत्यादिक कारणतें पर जीवनकौं गुलाम किये होंय। तथा अन्य जीव कोईका गुलाम भया होय। तथा अपने बीचि-दूत होय, किसीकौं किसीका गुलाम कराया, दलाली खाय हर्ष पाया होय। इत्यादिक पापनतें जीव भवान्तरमें आय, अन्य घर विक गुलाम होय। ११८। बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ, यह जीव लोक-निंद्य कौन पापतें होय ? तब गुरु कही। जानें जगत्पूज्य जो वीतराग देव--धर्म--गुरुकी निन्दा करी होय। तथा और कोई देव--धर्म-गुरुके निन्दक जानि तिनमें प्रीति भाव किया होय। तथा तीन जगत्पूज्य, प्रसंशा योग्य ऐसे वीतरागादि उत्तम गुण, तिनकी निन्दा कारी होय। तथा धर्मात्मा पुरुषनकी निन्दा करी होय। तथा लोकनिन्द्य पुरुषनके संगकौं पाय, अनेक निन्द्य-कार्य किये होंय। अयोग्य खान-पान करे होंय। इत्यादिक पापनतें, जीव लोक—निन्द्य पद पावे। ११६। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु देव, इस जीवकौं पुत्र स्त्री, माता, पिता, भरतार आदि इष्ट वस्तुका वियोग किस पापतें होय ? तब गुरु कही। जानें पर-पुत्र हरे होंय। तथा पराये पुत्र हरे जान, जानें अनुमोदना करी होय। तथा पराई स्त्रीकौं, ताके भरतारतें वियोग कराया होय। तथा परस्त्री पुरुषका वियोग सुनि हरष पाया होय ताके स्त्रीका वियोग होय तथा परका कुटुम्ब-माता-पितादिक तें वियोग कराया होय तथा परका कुटुम्बतें वियोग सुनि, महा हर्षवान् भया होय। इत्यादिक पाप भवनतें भवान्तरमें जीव के कुटुम्बादिकका वियोग होय है। १२०। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु देव, इस जीवकौं धनका वियोग किस पापतें होय ! तब गुरु कही। जानें परभवमें परका धन हर्या होय। तथा चोर तें जल तें, अग्नितें राज्यतें, फौजतें इत्यादिक निमित्त पाय, परका धन नाश भया सुनि, अनुमोदना करी होय। इत्यादिक अशुभ भावनतें भवान्तरमें आपकौं धनका वियोग होय है। १२१। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुजी ! इस जीवके घरमें अग्नि किस पाप तें लगे है। तब गुरु कही। जानें परजीवन के घरमें आग लगाई होय। तथा पराया घर जलते देख, हरष पाया होय। इत्यादिक पापन तें घरमें अग्नि लगे है। १२२। बहुरि शिष्य पूछी हे नाथ, इस

जीवकैं कण्ठ विषैं नरैल समान भेद किस पाप तैं होय। तब गुरु कही। जानैं परभव में पर जीवन कौं लाठी, सोठी, मूंकी मार ताका कंठ सुजाय दिया होय। तथा जानैं परके मुख आगे भार बांध, दुखी कर्‌या होय। तथा परके कंठ में भेद देख, ताकी हांसि करि बहकाय, हर्ष मान्या होय। इत्यादिक पाप भावन तैं भवान्तर में आपके कंठसें नरैल तैं दीर्घ भेद हो है। १२३। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! यह जीव सर्व कौं वल्लभ किस पुण्य तैं होय। तब गुरु कही। जानैं परभवमें सर्व संसारी जीवन तैं स्नेह भाव कर्‌या होय। तथा देव, गुरु, धर्म जाकौं महा वल्लभ लागे होंय। तथा जाकौं परभवमें च्यारि प्रकारके संघके धर्मात्मा जीव, महा वल्लभ लागे होंय। तथा गुनी जन तैं स्नेह जनाया होय। तथा दीन—दरिद्री दुखित-भुखित, सोच जलधि में पड़े महा दुखी जीव तिनकौं देख, दया भाव करि तिनकौं स्नेह सहित विश्वास उपजाय, सुखी किये होंय। इत्यादिक शुभ भावन तैं जीव भवान्तर में सब कूं सुखदाई परम वल्लभ होय। १२४। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुनाथ जी! इस जीवके घर, सदीव मंगल रहै। सो किस पुण्य तैं होय। सो कहो। तब गुरु कही। जो परभव में तीर्थंकर के पंच कल्याणक देख तथा सुनि करि, हर्षवन्त भये होंय। तथा जिन पूजा, जिन प्रतिष्ठादि मंगलाचार उत्सव देख, अनुमोदना करी होय। तथा पुण्योदय तैं काऊ के घर मंगलाचार गाजते—बाजते देख, हर्षित भया होय। तथा कोईके घर शोक, चिन्ता, भय देख, तिनकी दया करी होय। इत्यादिक पुण्य भावन तैं सदीव घरमें मङ्गल होय है। १२५। ऐसे एक सौ पच्चीस प्रश्न शिष्य नैं गुरु तैं स्व-पर कल्याण के अर्थ किये। सो ये प्रश्न हैं, इनमेंके केतेक प्रश्न तो त्रैलोक्यनाथ की माता तैं देवांगना ने करै हैं। तिनके उत्तर तीर्थंकर की माता ने दिये हैं। और केतेक प्रश्न, राजा श्रेणिक महा धर्ममूर्ति बुधिवान तानैं गौतम स्वामी गणधर तैं करे। तिनके उत्तर श्री गौतम स्वामी ने यदि हैं। सो इनकौं इकट्ठे करि, यहां भव्य जीवन के कल्याण हित, समुच्चय बखान क्रिये। तिनके भेद जानि, पाप पंथ तजि, सुपंथ लागि, अनेक जीवन नैं पुण्य बंध क्रिया। और इनकौं सुनि अनेक भव्य, पुण्य उपारजैंगे। तातैं विवेकी इस प्रश्न माला कौं बांचि, निकट संसारी इनका रहस्य

पाय, अपना कल्याण करें। इस प्रश्नमालाके धारण किये, भव्य जीव भव—भव में सुखी होंय। कैसी है ये प्रश्नमाला, गुरुके वचनरूपी महा शुभ सुगंधित फूल तिनकी बनाई है। सो इस माला कों निकट भव्य मोक्षरमणी का दूलह, हर्षाय कैं अपने हृदय विषैं पहरि, सुखी होऊ। कवीश्वर कहैं हैं, इस माला कूं मैं अपने हृदय में फेरि, अपना भव सफल जानि कृत—कृत्य भया। और भी जे अमर-पदके लोभी इस प्रश्नमाला कों अपने कंठ में पहिरेंगे। ते भव्यात्मा कल्याण के वांछी, सुबुद्धि, युग भवमें तथा भव—भव में शोभा पावेंगे। ऐसी जानि इस प्रश्नमाला कूं धारण करहु।

इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रंथ मध्ये, अनेक ग्रंथानुसारेण, प्रश्नमाला कर्मविपाक वर्णनो नाम. गुणतीसवां पर्व सम्पूर्ण ॥२६॥

आगे हिंसा विषैं पुण्यका प्रभाव बतावैं हैं—

गाथा—पय वहणी थल पदमो, जल मथ घी धाण होय तुख खंडय ॥ रवि हिम ससि तप करई, तव हिंसा पुण्य देय भो आदा ॥ १२० ॥

अर्थ—पय वरणी कहिये, जल विषैं अगनि। थल पदमो कहिये, पृथ्वीमें कमल। जल मथ घी कहिये, पानीके विलोये घृत। धाण होय तुख खंडय कहिये, भूसके कूटे अन्न। रवि हिम कहिये, सूर्य्यके ऊगते शीत। ससि तप करई कहिये, चन्द्रमा तपति करे। तव हिंसा पुण्य देय कहिये, तो हिंसा पुण्य देय। भो आदा कहिये, हे आत्मा। भवार्थ—जल विषैं अगनि कवहूं नहीं होय। तैसे ही जीव हिंसा विषैं पुण्यका फल कवहूं नहीं होय। और कठोर भूमि विषैं कमल कदाचित् न होय। तैसे ही हिंसामें धर्म--फल नहीं। और जल विलोए घृत कवहूं न होय। तैसे ही प्राणी घातमें पुण्य नाहीं। और तुषके कूटे अन्न नहीं निकसे। तैसेही जीव घात तैं पुण्य नाहीं होय। और सूरजके उदय होते शीत नहीं होय। तैसे ही जीव घात किये धम नाहीं। और चन्द्रमाके उदय होते, आताप नहीं होय। तैसे ही हिंसा विषैं पुण्य कदाचित् नाहीं। ऐसे कहे जो ऊपर एते नहीं होने योग्य स्थान। तैसेही जीव घातमें हिंसा होय है, अरु धर्म कवहू नहीं होय। सो हे भव्यात्मा, तूं भो परभव सुधारवेके निमित्त, ऐसा श्रद्धान दृढ़ करि। कि जो जीव घात विषैं कोई प्रकार पुण्य नाहीं। ऐसा श्रद्धान तोकूं भव—भव विषैं सुखकारी होयगा। ऐसा जानि, अपने समान सर्व

जीव कूं जानि, तिनकी दया भाव सहित रहना योग्य है। आगे फुनिहिंसा विषैं पुण्यका अभाव बतावैं हैं—

गथा—अह मुह अमि सुन वंझय, गणकासुत जनक सिध अवतारो। सठ सुचि सूम उदारऊ, तव जीव हिंसोय देय पुण आदा॥ १२१॥

अर्थ—अह मुह अमि कहिये, सर्पके मुखमें अमृत। सुत वंझय कहिये, बंध्याके सुत। गणका सुत जनक कहिये, वेश्याके पुत्रका पिता। सिध अवतारो कहिये, मोक्ष भये पीछे जीवका अवतार। सठ सुचि कहिये, मूर्खके शौच। सूम उदारऊ कहिये, सूमका मन उदार। तव जीव हिंसोय देय पुण आदा कहिये, हे आत्मा तब जीव हिंसामें पुण्य होय। भावार्थ—महा भयानीक काल रूप सर्पके मुखमें अमृत होय, तो जीव हिंसामें पुण्य—फल होय। और बांझके पुत्र होता नाहीं। सो बांझके पुत्र होय, तो प्राणी वधमें पुण्य होय। और वेश्या के पुत्रके पिता होता नाहीं, तैसे ही जंतु-बधमें हिंसा होय, तहां धर्म नाहीं। और शुद्ध जीव कर्म नाश सिद्ध होय, तिस मोक्ष जीवका संसारमें अवतार नाहीं। तैसे ही जीव हिंसामें पुण्य नाहीं। और मूर्खके शौच नाहीं होय, तैसे ही हिंसामें पुण्यका फल नहीं होय। और सूम शरीर देय, परन्तु दान कूं एक दाम नहीं देय। सो या सूमका चित्त उदार होय, तो हिंसामें पुण्य-फल होय। ऐसे ऊपर कहे कारण, सो कवहूं नहीं होय। तैसे ही धर्मात्मा तूं ऐसा जानि। जहां जीव घात होय, तहां पुण्य फल नहीं होय। तातैं ऐसा जानि, जीव घात तजि, दया सहित रहना योग्य है। आगे और भी हिंसाका निषेध बतावैं हैं—

गाथा—पच्छिम रवि सिल तरई, भू पलट वहण सीत तण धरऊ। मेर चलय अंध देखय, तव हिंसा देय पुण आदा॥ १२२॥

अर्थ—पच्छिम रवि कहिये, सूर्य पच्छिम दिशासे उदय होय। सिल तरई कहिये, शिला तैरे। भू पलटय कहिये, पृथ्वी उलट-पलट होय। वहण सीत तण धरई कहिये, अग्नि शीतल तन धरै। मेर चलय कहिये, मेरु चलै। अंध देखय कहिये, नेत्र रहित देखै। तव हिंसा फल देय पुण आदा कहिये, हे आत्मा तौ हिंसाका फल पुण्य होय। भावार्थ—पश्चिम दिशामें सूर्य कबहुं नाहीं ऊगे। तैसे ही हिंसामें धर्मकाफल कबहूं नहीं होय। और पाषाणकी शिला जल विषैं तैरे, तो हिंसामें धर्म होय। और पृथ्वी पल्टै तौ हिंसामें धर्म होय। सो पृथ्वी कबहूं पलटती नाहीं अनादि ध्रुव है। तैसे ही हिंसामें पुण्य फल नाहीं। और अग्नि शीत अंग

धरै तौ हिंसामें धर्म फल होय। और सुमेरु पर्वत अनादि अचल है सो ये मेरु हाले तो हिंसामें धर्म फल होय। और जन्मके अन्धे कों कछु नहीं दीखै। तैसे ही जीव घातमें पुण्यका फल कबहू नहीं होय। ऐसे ये कहे नहीं योग्य स्थान तैसे ही हिंसा विषै धर्म कदाचित् नाहीं। ऐसा जानि हिंसा धम तजि दया सहित धर्मका अंगीकार करना योग्य है। आगे फुनि हिंसा निषेध—

गाथा—पंग चढ़य गिरि सिहरे, बधरो रंजाय राग सुद पाई। कातर रण जय पावय, तव हिंसा फल होय पुण आदा ॥ १२३ ॥

अर्थ—पंग चढ़य गिरि सिहरे कहिये पैर रहित पुरुष पर्वतके शीश पर चढ़ै। बधरो रंजायमान राग सुद पाई कहिये बहरा रागके सुख कों पावै। कातर रण जय पावय कहिये कायर युद्धमें विजय पावै। तव हिंसा फल होय पुण आदा कहिये हे आत्मन्! तो हिंसामें पुन्य फल होय। भावार्थ—पांव रहित पुरुष कों परके सहाय विना अल्प भी नहीं चल्या जाय। सो ऐसा पंगल पुरुष उत्तंग पहाड़के शिखर पर भागिके चढ़े तो जीव घातमें पुण्य होय। और बहरा पुरुष कान तें कछू सुनता नाहीं। सो बहरा पुरुष रागके सुन्दर शब्द सुनि राजी होय तो हिंसामें पुण्य होय। और जे कायर नर होंय सो युद्ध तें डरैं। सो कायर पुरुष बैरीकी सेना भगाय जीति पावे तो हिंसा विषै धर्मका लाभ पावै। और ऊपर कहे जे कारण सो कदाचित् नहीं होंय। तातैं हे धर्म फलके लोभी सर्व जीव आप समान जानि सबकी रक्षाके निमित्त उपाय करना सो भव-भवमें सुखकारी है। आगे फुनि हिंसा निषेध—

गाथा—जम उर करुणा धारय, काको मुह सोच मिरय तण जीवो। दुठ जण पर सुह इच्छय, तव हिंसा फल होय पुण आदा ॥ १२४ ॥

अर्थ—जम उर करुणा धारय कहिये, कालके हृदय करुणा होय। काको मुह शौच कहिये, काकका मुख पवित्र होय। मिरय तण जीवो कहिये, मृतक जीवै। दुठ जण पर सुह इच्छय कहिगे, दुष्ट पुरुष परके सुख कौं वांच्छे। तव हिंसा फल होय पुण आदा कहिये, हे आत्मा तो हिंसाके करनेमें पुण्य होय। भावार्थ—यम जो काल, सो जड़ दया रहित है। सो काल कों दया आवे, संसारी जीव नहीं मारै, तो हिंसामें पुण्य फल होय। और काकका मुख तौ सदा अपवित्र ही है। सो कदाचित् काकका मुख शौच रूप होय, तो हिंसामें

पुण्य फल होय। और आयु कर्म पूरण होय जे आत्मा पर्याय तज मरा, सो कबहू जीवता नाहीं। सो मृतक जीवै तौ हिंसामें पुण्य होय। और जे दुष्ट स्वभावी, पर दुख रंजन, पर कौं सुखी देख महा दुख होंय। सो ऐसा क्रूर स्वभावी दुर्जन प्राणी, पर जीव कौं साता देख सुखी होय, तो हिंसामें पुण्य होय। ऐसे ऊपर कहे कारण सो कबहुँ नहीं होंय, सो ये होंय तो जीव घातमें धर्म होय। तातैं धर्म लोभी कूं धर्मके निमित्त, दया भाव करना योग्य है। आगे बहुरि हिंसाका निषेध करिये है—

गाथा—विस पय जीवय जोवो, णागो गमणाय सरल तण होई। स्वाण पुच्छ सु ध होवय; तव हिंसा फल होय पुण आदा॥ १२५॥

अर्थ—विस पय जीवय जीवो कहिये, जहर खाय कैं जाव जीवै। णागो गयणाय सरलतण होई कहिये, सर्प सीधा होय चालै। स्वाण पुच्छ सुध होवय कहिये, कुत्तेकी पूंछ सीधी होय। तब हिंसा फल होय पुण आदा कहिये, हे आत्मा! तो हिंसामें पुण्य होय। भावार्थ—हलाहल जहर खाय कोई जीवता नाहीं। ऐसा विकट विप खाये जीवैं, तौ हिंसामें धर्मफल होय। और काल नाग, सहज ही वक्र चाल चालै। सो कबहुं सांप सूधा होय गमन करै, तौ हिंसामें शुभ फल होय और श्वानकी पूंछका सहज स्वभाव ही वक्र है। सो कदाचित् श्वानकी पूंछ सूधी होय, तौ हिंसामें धर्म होय। ऐसे ऊपर कहे नहीं होने योग्य पदार्थ होंय, तौ हिंसामें धर्म होय। तातैं हिंसा तजि, दयाका पथ समझनेमें अपनी रक्षा जाननी। आगे और भी ऐसा कहैं हैं जो जीव-घातमें पुण्य नाहीं—

गाथा—रज पीलय णेह पावई, रजनी रवि विहोंति णम णपाये। काय धरा णह खपई, तव हिंसा सु ह देय णेमाए॥ १२६॥

अर्थ—रज पीलय णेह पावइ कहिये, रजके पेलैं तैं तेल होय। रजनी रवि कहिये, रात्रिमें सूर्य होय। बिहोंति णभ णपाए कहिये, बालिश्त तैं आकाश नपै। काय धरा णह खपई कहिये, कायके धारी मरैं नाहीं। तब हिंसा सुह देय णेभाए कहिये, तो निश्चय तैं हिंसामें पुण्य होय। भावार्थ—रज जो बालू-रेत ताकौं घाणीमें पेलैं तैं तेल निकसै, तौ हिंसामें धर्म-फल होय। अरु रात्रि कौं सूर्यका उद्योत होय, तौ हिंसामें पुण्य होय। और अंगुल-बालिश्त करि आकाश नापना होय, तौ हिंसामें धर्म-फल होय। और

शरीरअवतारका धारी, सदीव शाश्वत रहे, तो हिंसामें पुण्य होय। ऐसे ऊपर कहे जे नहीं होने योग्य कार्य, सो ये होंय तौ हिंसा विषें पुण्य होय। ऐसा जानि धर्मके इच्छुक धर्मी जीव हैं तिनकौं, दया-भावका मार्ग जानना योग्य है। आगे हिंसामें धर्म नाहीं, ऐसा और भी बतावें हैं—

गाथा—खल पीलय सनेहो, सायर लंघाय पाल मज्जादो। णरु सुहत्तें सुर अघ दय, तव हिंसा फल देय सुह आदा॥ १२७॥

अर्थ—खल पीलय सनेहो कहिये, खलीके पेले तेल निकसै। सायर लंघाय पाल मजजादो कहिये, समुद्र अपनी पारकी मर्यादा लंघे। णक सुहत्तं कहिये, शुभ कार्य किये नरक होय। सुर अघ दय कहिये, स्वर्ग स्थान पाप फलतें होय। तव हिंसा फल देय सुह आदा कहिये, हे आत्मा तौ हिंसाका फल शुभ होय। भावार्थ—जैसे मूरख खलीकौं पेल तेल काढ्या चाहे, सो कबहू नाहीं निकसै। जो खली पेले तेल निकसैं, तौ हिंसामें पुण्य होय। और समुद्र अपनी मर्यादा को उलंघे, तौ हिंसामें धर्मका फल होय। और पापके करनहारे कुगति जांय सो कदाचित् पाप करनहारे देव होंय, तौ हिंसामें पुण्य होय। और पुण्यके करनहारे स्वर्ग—मोक्ष जांय हैं। सो यदि धर्म किये नरक होय, तो हिंसामें धर्म लाभ होय। ऐसे ऊपर कहे स्थान, ते नहीं होने योग्य हैं। तैसे ही हिंसामें शुभ नाहीं है। तातें तूं अपना कल्याण चाहे है। तो समता भाव करि सुखी होयगा। आगे फेरि हिंसामें धर्मका अभाव बतावें हैं—

गाथा—जड़ दव्वो जुय णाणऊ, चेदण दव्वोय होय विण णाणो। फलहो कय जस होई, तव हिंसा पुण देय णेमाए॥ १२८॥

अर्थ—जड़ दव्वो जुय णाणऊ कहिये, अचेतन द्रव्य ज्ञान सहित होय। चेदण दव्वोय होय विण णाणो कहिये, चेतन द्रव्य ज्ञान रहित होय। कलहो कय जस होई कहिये कलह करते यश होय तव हिंसा पुण देय णेमाए कहिये, तौ हिंसा पुण्यका फल देय। भावार्थ—जीव विना, पांच द्रव्य हैं। पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाश। ये पांच द्रव्य अनादि तैं जड़त्व भाव कौं लिये हैं। इनके गुण भी जड़ हैं, और पर्याय भी जड़ हैं। सो ये अजीव द्रव्यनमें ज्ञानका अभाव है सो इनमें ज्ञान होय, तौ हिंसामें धर्म—फल होय। और चेतन, गुण सहित देखने-जाननेहारा, दर्शन-ज्ञानका समूह, सो याका ज्ञान कर्म-योगतैं घटे, तौ अक्षर

के अनंतवें भाग रहै, परन्तु ज्ञानका अभाव कबहू नहीं होय । अरु कदाचित् जीव ज्ञान रहित होय, तो हिंसामें धर्म फल होय, । तथा अपयशका कारण कलह है । सो कलह-युद्ध किये यश होय, तौ हिंसाके किये पुण्यका फल होय । ऐसे ऊपर कहे कार्य होंय, तो हिंसामें धर्मका फल होय । तातैं धर्म इच्छुक ! धर्मके निमित्त, दया धर्मका अध्ययन करहु । और भी अब करुणाका स्वरूप कहैं हैं, और दयाका फल कहिये हैं--

गथा—दीरघ थिति भू जसयो, गद रह तण भोय इच्छ सहु होई ॥ सु र,चक्की सु ह सह लय, ये करुणा फल होय णेमाए ॥ १२६ ॥

अथ—दीरघ थिति कहिये, बड़ो आयु । भू जसयो कहिये, धरतीपै यश । गद रह तण कहिये, रोग रहित शरीर । भोय इच्छ सहु होई कहिये, मनवांच्छित भोग । सुर चक्की कहिये, देव चक्रवर्ती । सुह सह लय कहिये, इनके सुख सहज ही होंय । ये करुणा फल होय णेमाए कहिये, ये दयाका फल निश्चयसे जानना । भावार्थ—इस जीव की भव—भवमें रक्षा करनहारी, दया है । सो दया भाव जिनके सदीव रहै है, तिनकी आयु तो सागरों पर्यंत बड़ी हो है । और जे दया भाव रहित होय हैं, ते जीव अल्पायु पाय मरण करैं हैं । और दयाके फलतैं जगतमें सहज ही यश होय है । और जो जीव पर-भवमें पराया यश नहीं देख सक्या । तथा जिसने महा निर्दय भाव करि पराया यश हत्या है । ते जीव, दया रहित भावनके फलतैं, दयातैं प्रगट भया जो यश, सो ऐसा यश चाहैं, तौ लाखों दाम खर्चें भी यश मिलै नाहीं । यशके निमित्त प्राण देय मरैं तौ भी दया बिन यश नहीं मिलै । दीन होय बोलै, सबतैं नम्रीभूत होय मस्तक नमावै, तौ भी यश नहीं मिलै । काहे तैं, जो पर भव विषैं पराया मान राखा होय, प्रण राखे होंय, इत्यादिक मन—वचन—काय करि सर्व कौं साता करी होय, ते जीव सहज ही जगतमें यश पावैं । तातैं यश है सो दया भावका फल है । और निरोग शरोर पावना, आयु पर्यन्त सुखी रहना, सो दया भावका फल है और मन वांच्छित सुखका मिलना, सो दया भावका फल है । जो मनमें कल्पना करी सो ही वस्तु देवादिककी नांई तुरंत मिलै, सो दया भावका फल है । और दया बिना ये जीव तृण जो घास, सो भी पेट भर नहीं भोगवै है । सदीव अन्न व तन करि बहुत दुखी होय, सो दया रहित भावका माहात्म्य है । और देवनके

नाना प्रकार भोग, असंख्यात द्वीप—समुद्रनमें गमन, नंदीश्वर, कुण्डल गिरि, रुचिकगिरि इन द्वीपनमें भगवानके मन्दिर हैं तिनकी यात्राका करना, ये शुभ फल उपावना और असंख्यात देव—देवी आज्ञा मानैं, अनेक देवांगनाके समूह तिनका आयु पर्यन्त सुख, सो दया भावका फल है। और चक्रीके चौदह रत्न, नव निधि, छियानवै हजार स्त्रियां, षट् खण्ड का राज्य इत्यादिक सुख सो भी दया भावका फल है। और ऊपर कहे जे भले फल, दीर्घ आयु जगत यश, निरोग तन, वांच्छित भोग, देव सुख, चक्री सुख ये सर्व दया भावका फल जानना। आगे और भी दया भावका फल कहिये है—

गाथा—सुर तरु चिन्ता रयणो, काम धेयोय पास पासाणऊ। चित्ता लता सुसंगो, ये सहु किप्पाय भाव फल आदा ॥ १३१ ॥

अर्थ—सुर तरु कहिये, कल्पवृक्ष। चिंता रयणो कहिये, चिन्तामणि रतन। काम धेयोय कहिये, कामधेनु। पास पासाणऊ कहिये, पारस पाषाण। चित्ता लता कहिये, चित्रावेलि। सुसंगो कहिये, सत्संग। ये सहु किप्पाय भाव फल आदा कहियो, हे आत्मा ये सब दया भावका फल है। भावार्थ--दश प्रकार कल्पवृक्ष कर दिये जो उत्तम भोग, सो दया भावका फल है। और मन-चिंते भोग सुखका देनेहारा चिन्तामणि रत्नका मिलना, सो कृपा भावका फल है और वांच्छित सुखकी देनहारी कामधेनु गायका मिलना, यह भी दया भावका माहात्म्य है। और कुधातुकों सुवर्ण करनहारा जो पारस-पाषाण सम्पदा-सागर ताका मिलना, सो भी दया भावका फल है। और अल्प वस्तुको अटूट करनेहारी चित्रावेलि नामक वनस्पति ताका पावना, ये भी दया भावका फल है। और पापके उदय, निर्दयी-भावनके फल करि, अनन्तकाल कुसंग विषैं गमन होता आया। सो ताके सम्बन्ध तैं त्रस-स्थावरनकी अनेक पर्याय धरि दुख विषैं डूबा। सो अदयाका फल है। जब जीवका संसार निकट होय, तब याकों सत्संगका मिलाप होय है सो सत्संग का मिलना भी दया भावका फल है। ऐसे ऊपर कहे सुर तरु, चिन्तामणि, कामधेनु, पारस, चित्रावेलि, सत्संग ये तीन जगतमें उत्कृष्ट वस्तु हैं। सो दया भावके फलतैं मिलैं हैं। ऐसा जानि विवेकी पुरुषनकों पर-जीवनको रक्षा रूप भाव राखना योग्य है। आगे और भी दया भावका फल बतावैं हैं—

गाथा— सहु हित पज्जाओ, आदे सहु थाण सुंद तण होई। इंद अहमिन्द णगंदउ, किप्पा भावोय होय फल येहो । १३१ ॥

अर्थ—सहु हित कय पज्जाओ कहिये, सर्व कौं हितकारी पर्याय। आदे सहु थाण कहिये, सर्व स्थान विषैं आदर। सुंद तण होई कहिये, सुन्दर शरीर होय। इन्द कहिये, इन्द्र पद। अहमिन्द कहिये, अहमिन्द्र पद। णगंदउ कहिये, नागेन्द्र पद। किप्पा भावोय होय फल येहो कहिए, दया भावका भल ऐसा होय है। भावार्थ—जिनका मुख देखतें ही सर्व जीवन कूं सुख उपजै, विश्वास उपजै, मोह उपजै, ऐसी सुन्दर काया पावनी, सो दया भाव का फल है। दयाभाव बिना महा कुरूप, भयानीक, रौद्र आकार, सर्व कौं अरति उपजावै ऐसा शरीर पावै है। और जिन जीवन का जगह-जगह आवै-आदर होय, जिनकूं देख सर्व प्राणी प्रीति भाव करैं, ऐसा आदेय कर्म के उदयवारा सर्व कों वल्लभ होय। सो दया भावका फल जानना। और जाका शरोर महा सुन्दर, कामदेव के शरीर की शोभा कूं जीतै, देवन के मनकों मोह उपजावै, अद्भुत शोभाकारी शरीर, सो दया भाव का फल है। और ग्लानि उपजावनहारा, विकट, असुहावना, कुरूप इत्यादिक अशुभ कर्म के उदय का शरीर पावना, सो निर्दई भाव का फल है। और देवन का नाथ, असंख्याते देव-देवी जिसकी आज्ञा मानैं, आय-आय महाभक्ति करि अपना शीश नमावैं, सर्व देव जाकी स्तुति करैं, ऐसा इन्द्र पद का पावना, सो भी दया भाव का फल है। तथा कल्पातीत जो देव हैं, जिनकी महिमा वचन-अगोचर है। जितना सुख सर्व कल्पवासी सोलहों स्वर्गोंके इन्द्र—देवन का है, तिन तैं अधिक कल्पातीत जो अहिमिन्द्र तिनका है। यहां प्रश्न—जो तुमने कह्या कि कल्पवासी देव-इन्द्रन तैं अहमिन्द्रन कैं सुख अधिक है। सो कल्पवासी देव-इन्द्रन कैं तो अनेक देवांगना हैं। तिन सहित सुख भोगैं हैं। और अनेक देव आय-आय शीश नमावैं हैं। असंख्याते देवों के नाथ हैं। पंचेन्द्री सम्बन्धी सुख मान पोषवै सम्बन्धी सुख, सो सर्व इन्द्रन कैं प्रत्यक्ष दीखैं हैं। परन्तु अहिमिन्द्रों के देवांगना नाहीं, कोऊ आज्ञाकारी सेवक-देव नाहीं। तौ इनकैं कल्पवासी इन्द्रन तैं अधिक सुख कैसे सम्भवै? ताका समाधान--भो भव्य! तुम चित्त देय सुनो। सुखके दोय भेद हैं। एक तो संक्लेशता सहित सुख, एक निराकुलता

सहित सुख। सो संक्लेश सुख तैं, निराकुल सुख अधिक है। जैसे एक पुरुष अपनी रत्नोंकी पोट अपने शीश पै धरै, अपने घर कौं, राहमें चल्या जाय है। अरु भले मोदक खावता जाय है। ताकरि सुखी है। और एक पुरुष अपने मन्दिरमें तिष्ठता, शीतल जल पीवता, भला मोदक खायके सुखी है। इन दोऊनमें तूं विचार, जो विशेष सुखी कौन है? जाके शीश मोट है अरु मोदक खावता राह चलता जाय है, ताका सुख तौ आकुलता सहित है और शीश भार रहित, एक स्थान तिष्ठता मोदक खाय, सो सुख निराकुल है। सो कल्पवासीका सुख तौ शीश गठियावारेका सा है। अरु अहमिन्द्रनका सुख, एक स्थान तिष्ठनेहारे समान है। ऐसा जानना। और सुनौं, जो व्रती पुरुष हैं, सो तौ मंद कषायन करि सुखी हैं। और इन्द्र-चक्री ये सुखी हैं सो संक्लेश-सुखी हैं। ताही तैं देव, इन्द्र, चक्री आदि बड़े २ पदधारी, व्रती पुरुषन कौं पूजे हैं, सुश्रूषा करैं हैं। अरु ऐसी याचना करैं हैं। जो हे गुरो! तुम्हारी भक्तिके फल तैं, हमारे भी आप कैसा निराकुल-स्वाधीन सुख होय। अरु हमारे शान्ति भाव प्रकटै। ऐसी प्रार्थना करैं हैं। सो यहां भी निराकुल सुखको महिमा आई। तैसे ही इन्द्र-देवनका सुख तौ साकुल है। और कल्पातीतनका सुख निराकुल है, मन्द कषाय रूप है। तातैं कल्पातीतन तैं कल्पवासीन का सुख अधिक जानना। तथा जैसे एक पांवरा—खुजली के रोग वाला पुरुष, ताने एक टटेरेका टूंक पाया। सो तिस टटेरेके टूंक तैं अपना तन खुजाय, सुखी भया। सो टटेरेमें कहा सुख है? परन्तु याके तनमें खुजली का रोग है। सो टटेरे तैं खुजाया, तब खाजिका दुख मिटने तैं कछू सुखी भया और कोई पुरुष खाज रहित सुखी है। सो ये भी सुखी है। सो इन दोऊनमें खुजली रोग वारे तैं, उस निरोगी कैं बड़ा सुख है। तातैं हे भव्य! देवांगना के सुख की वांच्छा सो ही भया खुजली का रोग सो जब देवांगना का निमित्त पावै, तब किंचित् सुखी होय है। सो ये खुजली वाले रोगी समानि है। जब काम रूपी खुजली चलै, तब देवांगना रूप टटेरा तैं खुजाय सुखी होय। सो कल्पवासी देव-इन्द्रन का सुख देवांगना का जैसा जानना। अरु अहमिन्द्रन का सुख है सो खुजली रहित, निरोगी पुरुष जैसा है। इन कल्पातीतन कैं, काम रूप खुजली रोग नाहीं। तातैं ये परम सुखी हैं। कल्पावासीन कैं काम रोग है। अरु

कल्पातीतन का रोग रहित सुख है। ऐसे तेरे प्रश्न का उत्तर जानना। सो ऐसा जो अहमिन्द्र पद है, सो उत्तम दया का फल है। और भवनवासी देवनका नाथ नागेन्द्र ताका पद, सो भी करुणाका फल है। तातैं हेभव्योत्तम ! ये ऊपर कहे उत्कृष्ट पद, सो इन सर्वके सुख, सर्व दया भावका फल है। ऐसा जानि विवेकी पुरुषन कौं सर्व हितकारिणी जो दया, ताकौं धारणा योग्य है। आगे और भी दया भावकी महिमा कहिये है—

गाथा—तण वीजय बहु दासऊ; भय रहियों सोक तीत चतुयायो। तणांत लव चिर सुहियो, ए किप्पा फल होय सुह आदा ॥ १३२ ॥

अर्थ—तण वीजय कहिये, तनका वीर्य। बहु दासऊ कहिये, बहुत दास। भय रहियो कहिये, भय रहित। सोक तीत कहिये, शोक रहित। चतुयायो कहिये, चतुर। तणांत लव कहिये, तनके अन्त लूं। चिर सुहियो कहिये, बहुत काल तक सुखी। ए किप्पा फल होय सुह आदा कहिये, हे आत्मा ! ये दयाभावका फल है। भावार्थ—शरीर विषैं, बड़ा वीर्य होय। सो जैसे चक्रीमें षट्-खण्डके मनुष्यन तैं अधिक पराक्रम होय है। ऐसा बल पावना। तथा तीन खण्डके मनुष्यनमें जेता बल होय, तेता पराक्रम एक वासुदेवमें होय, जैसा जोर पावना। तथा कोड़ि योद्धानका बल एक पुरुषमें होय, ऐसा कोटी भटका बल पावना। लाख जोधान कौं एकला जीतै, सो लख भट है। ऐसा बल पावना। सहस योद्धा जीतै, सौं सहस्र भटका बल पावना। शत भटकौं जीतै, सो शत भट होना। ऐसे कहे जो पराक्रम, सो सब दयाका फल है। जिन जीवन नें हिंसा करि पर-जीव घाते हैं। ते जीव भवान्तरमें एकेन्द्रिय-विकलत्रयमें हीन-शक्ति धारी उपजैं हैं। और कदाचित् तिर्यंच-पंचेन्द्रिय उपजैं, तथा मनुष्य उपजैं तो दीन, रोगी, शक्ति रहित, दरिद्री, हीन भागी होंय। सो ये भी पर जीवन कौं दीन जानि, तिनकी घातका फल जानना। और अनेक सेवक, बड़े-बड़े सामन्त, महा बलके धारी योधा, पराक्रम धारी पै आय-आय हस्त जोड़ नमस्कार करैं। ऐसे बली, मानी राजा हजारौं जाकी सेवा करैं, आज्ञा याचैं, विनय करैं, सो ऐसा पद पावना भी दया भावका फल है। पर जीवन की सेवा आय-आय करना, हस्त जोड़ आज्ञा माननी, सो हिंसा भावका फल है। आर जिननैं परभवमें तीर

गोली, गिलोल, लाठी, मूकी, शस्त्रादिक तैं पर जीवन कूं भय उपजाया होय। ताके पाप फल तैं भवान्तरमें आय मनुष्य-पशुमें उपजै, तहां भयानीक रहै। सदीव ताका हृदय, भय तैं कम्पायमान होय। सो भयके सात भेद हैं। इस भवका भय, परभवका भय, मरणका भय, रोगका भय, अनरक्षा भय, गुप्त भय और अकस्मात् भय। ये नाम हैं। अब इनका सामान्य स्वरूप बताइए हैं। तहां इस पर्यायमें मोकों कछु दुःख नहीं होय। ऐसा विचार राखना, सो इस भवका भय है ॥ १ ॥ और परभवमें मोकौं तिर्यंच गतिके दुःख नहीं होंय, नरकके दुख नहीं होंय तो भला है। ऐसे विचारका नाम, परलोकका भय है ॥ २ ॥ मरण समय महा वेदना होती सुनिये है। सो मरण समय मोकों वेदना नहीं होय, तो भला है। ऐसे विचारका नाम, मरण भय है ॥ ३ ॥ और जहां औरनकी अनेक रोग-वेदना देख, भयवन्त होना। जो ये रोगके वड़े दुःख हैं मोकों कोई बड़ा रोग नहीं होय तो भला है। ऐसे भय रूप रहना सो रोगका भय है ॥ ४ ॥ और जहां यह कहना कि जो मेरे कोई सहायक नाहीं। सहाय विना सुख कैसे होय? मैं अशक्त हों। ऐसे भय रूप होय विचार करना सो अनरक्षा भय है ॥ ५ ॥ और यहां मोकों तथा वहां मोकों, कोई भय नहीं होय। मैं इस घरमें बैठा हों सो घर नहीं गिर पड़ै। तथा इस घरमें कोई सर्पादि दुष्ट जीव मोकों खाय नहीं। तथा कोई बैरी मोकों मारै नहीं। इत्यादिक भय रूप भाव रहना, सो गुप्त भय है ॥ ६ ॥ मोकों कोई अचानक-अकस्मात् भय नहीं होय तो भला है। ऐसे भावनमें भय राखना सो अकस्मात् भय है ॥ ७ ॥ ऐसे कहे जे सप्त भय सो जीवन कूं दुख उपजावैं हैं। सो ऐसे भयका होना सो निर्दय भावन तैं पर कौं भय उपजाया, ता पापका फल है। इन ही सप्त भय तैं रहित, निर्भय भाव निशंक होय रहना सो दया भावका फल है। और जिननैं परभवमें मन, वचन काय करि पर-जीवन कौं शोक कराया होय तिस पापके फल तैं भवान्तरमें सदीव शोक रूप रहैं। सदीव शोक रहित सदा सुखी मंगलाचार रूप रहना, सो दया भावका फल है। जानैं पर कौं बुद्धि सीखवेमें, ज्ञानाभ्यसमें घात करी होय। द्वेष भाव तैं पराई बुद्धि, घात करी होय। सो बुद्धि रहित मूर्ख उपजै। अनेक बुद्धिका प्रकाश पावना, अनेक कला पावनी, धर्म-कर्म सम्बन्धी अनेक चतु-

राईका पावना, इत्यादिक गुण होना, सो पर-जीवनकी दयाका फल है। कोई जीव माताके गर्भमें आया, सो नव मास तो उदरमें दुखी भया। फेरि जन्म धरया। सो जन्म तैं ही माता-पिताका मरण भया। तब असहाय होय, महा दुख तैं आयुके वशाय जीय, तरुण भया। सो भी ऐसे ही अन्न रहित, पट रहित धन रहित, मान रहित इत्यादिक महा दुःख तैं पर्याय पूरी करि, परभव गया। सो ये निर्दयी भावनका फल है। जब तैं माताके गर्भमें आए, तब ही तैं सदीव घरमें पूरण मंगलाचार होना। जन्म भया तब तैं ही, अनेक दान, पूजा, गीत होते भए। अनेक सुख पूर्वक तरुण अवस्था कौं प्राप्त होय, महा सम्पदाके धनी हुए, सो दया भावका फल है। सो ऐसा जानि अपने सुख कौं, पर जीवनकी रक्षा करना योग्य है। आगे और भी दया भावकी महिमा बतावैं हैं—

गाथा—झहियो आरय झाणउ तणांगोपांगाय सहु णीको। सउ बन्धव णेह करयो कोमल चित्तोय होय किप्पाए॥ १३३॥

अर्थ—झहियो आरय झाणउ कहिए, आर्त्तध्यान करि रहित होय। तणांगोपांगाय सहु णीको कहिए, तनके अंगोपांग सकल शुद्ध होंय। सउ बन्धव णेह करयो कहिए, सकल बांधवन विषैं प्रीति होय। कोमल चित्तोय कहिए, कोमल चित्तका होना। होय किप्पाए कहिए, ए सब दयाभाव तैं होय। भावार्थ—जीव कूं नहीं सुहावती जो वस्तु, तिनके मिलाप कर भई जो आरति, तथा भली वस्तुके जानेकी आरति, खोटी वस्तुके मिलापकी आरति, रोग होनेकी तथा भयके मेटनेकी आरति, तथा आगे मैं ऐसा करूंगा इत्यादिक भावनके विचार कर अपने उरमें खेदका करना, सो निर्दय भावका फल है। और इन च्यारि भेद आर्त्तभाव रहित निराकुल सुख रूप भाव रहना, यह दयाका फल है। और जिननैं अंगोपांग सहित सुघड़ शरीर पाया होय, सो दयाका फल है। तिन अंगोपांगके नाम हस्त दोय, पांव दोय, छाती, पीठ, मस्तक और नितम्ब ए अष्ट अङ्ग हैं। सो इनका शुभ-शास्त्रों प्रमाण आकार पावना सो करुणा भावका फल है। और केई नेत्र रहित केई जिह्वा रहित केई श्रोत्ररहित इत्यादिक उपांग रहित होना। तथा पांव रहित, हाथ रहित होना। अंगुली, नासिकादि अंगोपांग करि हीन होना। महा विकट शरीर का आकार, भयानीक पांव केरूप होना, महा कुघाट शरीर पावना, ये

सब निर्दय परणाम का फल है। और सर्व कुटुम्ब माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री इत्यादिक सर्व बांधव सुखकारी मिलना, सो दया भाव का फल है। पुत्र भला, ताकूं पिता खोटा। भला पिता कूं पुत्र खोटा। भली माता के पुत्र-पुत्री दोऊ खोटे। पुत्र—पुत्री कों माता खोटी। परस्पर भाई खोटे। भली स्त्री कूं भर्तार खोटा। भले भर्तार कूं, स्त्री खोटी। इत्यादिक परस्पर कुटुम्ब विषैं विरोध भाव केई महा क्रोधी, केई मानी, केई दगाबाज, केई लोभी, केई कुव्यसनी, केइ चोर, केई ज्वारी, केई पाखंडी और केई परस्पर बांधव द्वेष सहित विरोधी मिलैं, सो हिंसा भाव किये, तिनका फल है। और जिन जीवनके दीरघ पुन्यका फल उदय होय, सो कोमल चित्त पावैं। ताकैं कोई तैं द्वेष भाव नाहीं। कोई कूं दुख नहीं वांछै। सर्वका हित वांछनहारा ऐसा कोमल चित्त पावना, सो दया भावका फल है। और जाकौं पर जीव बहुत दुखी देख, दया नहीं उपजै। ऐसा कठोर चित्त पावना, सो निर्दय भावका फल है। ऐसे ऊपर कहे शुभ लक्षण, आरति रहित शुभ भाव, शुद्ध अंगोपाग, कुटुम्ब मोही, कोमल चित्त ये सब शुद्ध सामग्री पावना, सो दया भावका फल है। आगे करुणा भावकी महिमा और भी कहिये है—

गाथा—कम्म हणी शिव कण्णी, तणी भव णीर वीर षड कायो। जणणी इव जीव रखय, किप्पा इव जोय होय शिव आदा ॥ १३४ ॥

अर्थ—कम्म हणी कहिये, कर्म नाश करनी। शिव कणणी कहिये, मोक्ष कारणी। तणी भव णीर कहिये, संसार-जलकौं जहाज। वीर षड कायो कहिये, षट्काय कों भाई सम। जणणी इव जीव रखय कहिये, माता समान जीवकी रक्षा करनहारी। किप्पा इव जोय होय शिव आदा कहिये, दयाभाव कों ऐसा जानै तो यह आत्मा मोक्ष होय। भावार्थ—धर्मके अनेक अंग हैं। तप, जप, संयम, व्रत, ध्यान, नग्न रहना, बड़ें—बड़े तप करना। पक्ष, मास, वर्षके अनशन करना महाव्रत, समिति, गुप्ति पालना। इन्द्रियनका जीतना। भूख—प्यास सहना पञ्चाग्नि तपना। शीशपै केशनका बधावना। चर्मादिक तैं शरीर ढांकना। वस्त्र का त्याग करना। ऊर्ध्व पांव, अधो शीश झूलना। भूमि विषैं गड़ि मरना। जीवत ही अग्निमें जरना। पर्वत पात करना। जल प्रवाह लेना। कंद, मूल, बनसपति खावना। अन्न तज, दूध-मठा पीवना। इत्यादिक

अनेक कष्ट मारग हैं सो यह जीव, धर्मके निमित्त अनेक कष्ट खाय है। सो ये कहे जो कष्ट, सो दया भाव बिना मोक्ष मारग नहीं करैं। सर्व बृथा ही जांय हैं। तातैं जेते धर्म अंग हैं, तिनमें यह जीव-दया सर्व का मूल है। कैसी है यह दया, सर्व कर्मनकी काटनहारी है। दया भाव बिना, निर्दयी जीवोंके कर्म कटै नाहीं फेरि यह दया कैसी है, या बिना सिद्ध पद नहीं होय। कैसा है सिद्ध पद, जन्म-मरण रहित है। निराकार, निरंजन-कर्म अंजन रहित है। फेरि कैसा है मोक्ष पद, देव, इन्द्र चक्री, धरणेन्द्रादि महान पुरुषों करि पूजवे योग्य है। सो ऐसे सिद्ध पदकों यह दया भावही देय है। दया रहित प्राणीनकौं ऐसा सिद्ध पद होता नाहीं। बहुरि कैसी है दया, संसार-समुद्रके दुख-जल, ताहि पारि करवे कौं, जहाज समान है। दया नाव बिना, संसार-सागर तिरया नहीं जाय है। हिंसा-धर्म है सो पाहन जहाज समानि है सो ये आप भी डूबै है और पाहन-नावका आश्रय लेनेहारा भी डूबै है। तातैं हिंसा तजि, दया भाव राखना भला है। बहुरि ये दया भावना कैसी है। षट् कायक जीवनकी रक्षा करवे कौं भाई समान है। कैसे हैं षट् कायक, सो कहिये हैं। पृथ्वी कायिक तौ, मिट्टी-पाषाणादिकके जीव है। अपकायिक, जलके जीव हैं। तेज कायिक, अग्निके जीव हैं। वायु कायिक, पवनके जीव हैं। बनस्पति कयिक, हरी—पीली बेलि, घास, बृक्ष। इन आदि अनेक तनके धारी पञ्च स्थावर हैं। और त्रस जो बेइन्द्रिय-इल्ली जोंक, नारुवा, कैंचुवा अदि बेइन्द्रिय हैं। तेइन्द्रिय,-चींटी, चींटा, खटमल, कुंथुवा, इन आदि अनेक तनके धारी तेइन्द्रिय हैं। और चौइन्द्रिय में मक्खी, मच्छर, भ्रमर, टिड्डी, इन आदि चउ इन्द्रिय हैं। पंचेन्द्रियमें देव, मनुष्य तिर्यंच, नारक ये सर्व त्रस हैं। सो ऐसे कहे जो त्रस-स्थावर षट् कायिक जीव, सो इनकी रक्षा करवे कौं दया भाव, भाई समानि है। और इन षट् कायिक जीवनकी रक्षा करवे कौं दया, माता समानि है। जैसे माता पुत्रकी रक्षा करै है। ऐसेही दया, सब जीवोंकी रक्षा करै है। तातैं हे भव्यात्मा, ये दया सर्व गुण भण्डार जानि, याका साधन करि। याके उत्कृष्ट सेवन कौं जानैं, तो कूं मोक्ष होयगी। यहां प्रश्न-जो दया के उत्कृष्ट जानैं ही मोक्ष कैसे होय ? दया पालैगा तो मोक्ष होयगी। ताका समाधान—जो हे भव्य, जो तैंने कही सो सत्य है। परन्तु जाकौं उत्कृष्ट

जानैं तो ताका सेवन भी करै। तातैं प्रथम पक्का श्रद्धान करावना, कि दया तैं मोक्ष होय है। जैसे लौ-
किक में भी ऐसी प्रवृत्ति देखिये है। जो जाकौं बड़ा मानैं, तो ताके वचन की भी प्रतीति करै है। जो
फलाना बड़ा आदमी है, उदार है, ताकी सेवा किये अनेक जीव धनवान् होय सुखी भये। सो मोकों भी
याकी सेवा मिलै, तौ मोकों भी धन मिलै। मैं भी सुखी होऊं। ऐसे पुरुष की सेवा विना, चाकरी विना,
दरिद्रता जाती नाहीं। ऐसा दृढ़ श्रद्धान होय है। तब पीछे यह धनका इच्छुक, सुख के निमित्त, उस ऊंच
पुरुष की सेवा करवे कौं. वाके पास जाय, मान तजि, नमस्कार करि, बारम्बार शीश नमावै, विनय करै है।
ताकी आज्ञा प्रमाण करै। निश-दिन सेवाविषैं सावधान रहै। अनेक भूख—प्यासादिक कष्ट सह करि भी
रहै। कष्ट सहै, परन्तु उसकी आज्ञा भंगा नहीं करै। जब वह बड़ा पुरुष, याकी सेवा बहुत प्रीति सहित
जानैं, तब वह उत्कृष्ट पुरुष याकौं धन देय सुखी करै है। और कदाचित् सेवा करनेहारे कौं वड़े पुरुष का
उत्कृष्टपना भासै ही नाहीं, बड़ा ही नहीं जानै, तौ सेवा वैसे करै? अरु सेवा नहीं करै, तौ याका दुख—
दरिद्र कैसे मिटै। तातैं प्रथम ताके बड़प्पन कौं जानै, तौ पीछे श्रद्धान होय। जो ये बड़ा पुरुष है, याकी
सेवा किये सुखी होऊंगा, तब सेवा करै ऐसी प्रतीति लौकिक में प्रत्यक्ष देखिए है। सो पहिले जानपना
होय। पीछे श्रद्धान होय। ता पीछे ताकी सेवा करी जाय। तैसे ही दया—भाव की उत्कृष्टता पहिले जानै,
तौ पीछे ताका दृढ़ श्रद्धान करै। पीछे दया कौं उत्कृष्ट जानि, ताकी रक्षा करै-सेवा करै। दया धर्म की
पूजा करै-विनय करै। जब याके ऐसा सांचा दृढ़ श्रद्धान प्रगटैगा। तब इस निकट संसारी भव्य के ऐसे
परणाम होंयगे, जो सुख का समूह तौ मोक्ष स्थान है। अरु मोक्ष है, सो दया—भाव तैं होय है। सो मैं
महा गृहारम्भ विषैं पड़्या हों। तहां पर—जीवन की रक्षा होती नाहीं। मोकौं मोक्ष के सुख कैसे होंय?
तातैं सर्व प्रमार दया—मारग सद्गुरु जानैं हैं। वह गुरु दया का भण्डार बाजैं हैं। तातैं मैं गुरु के पास जाय,
विनती करौं। तौ दया के समूह मोपै कृपा करके, मेरा मनोरथ पूर करेंगे। एसा विचार करि, ये भव्यात्मा,
मोक्षाभिलाषी, श्री गुरु पै जाय, नमस्कार करि, तीन प्रदक्षिणा देय, महा विनय सहित हस्त जोड़ खड़ा

होय, अपना अन्तरंग अभिप्राय कहता भया। हे नाथ! हे दीन दयालु! मैंने सांसारिक सुख बहुत भोगे। परन्तु हे नाथ! मेरी वांच्छा पूर्ण नहीं भई। जैसे कोई अन्तरंग ज्वर का रोगी, सदीव क्षीण तन होय। सो तन पुष्ट करवे की बड़ी इच्छा जाकैं, सो तन स्थूल करवे कौं अनेक पुष्ट--गरिष्ट भोजन करै। परन्तु पुष्ट होता नाहीं, दिन--प्रति क्षीण होता जाय है। याकी इच्छा पूरतो नाहीं। तातैं दुख ही बधै है। तैसे ही हे नाथ! मैंने सुखी होयवे कूं अनेक भोग-सामग्री पाय-पाय भोगी। परन्तु सम्पूर्ण सुखी नहीं भया। सो मेरे सर्व सुखी होयवे की इच्छा बनी रहै है। मेरैं इच्छा नाम रोगका महा दुख, मिटता नाहीं। तातैं भो जगत गुरु! जैंसे मोकौं सम्पूर्ण सुखकी प्राप्ति होय, सो ही उपदेश करो। जाकै धारण किए, मैं सुखी होऊं। अब मोकों यह इन्द्रिय जनित सुख है सो महा भय उपजावै है, प्रिय नाहीं। तातैं अब आज्ञा करौ, सो ही करूं। तब योगीश्वर ने जानी, जो ये जीव मोक्ष सुख कौं बड़ा--सर्वोत्कृष्ट जानै है, ताही के योग करि याके दृढ़ श्रद्धान प्रगट्या है। ऐसा विचार, आचार्य दया भाव करि कहते भए। भो भव्य! तैंने भली विचारी। यह सांसारिक भोग, अज्ञानी जीवन कौं अपने सुख की आभासा सी दिखाय, मोह उपजावैं हैं। बाकी यैं सर्व--इन्द्रिय भोग, रोग करि पूरित हैं। गुण रहित हैं। जैसे शरीर बाह्य में मोही जीवन कौं सुख की आभास सी बताय, मोहित करै हैं। बाको सुख रहित है। सप्त धातु मई, श्रोणित, पक्व रुधिर, अस्थि, रोम, तिन करि स्थान--स्थान पूरित है। ऊपर चरम तैं लिपटा है। विनाशीक है। इत्यादिक अनेक अवगुण करि भरा है। तातैं हे भव्य! ऐसा विचार, जो ये शरीर विनश्वर है। सो याके आसरे जो इन्द्रिय जनित सुख, सो ये कैसे स्थिरीभूत रहेंगे? और हे भव्य, देख। शरीर तौ ऐसा है, अरु तूं इस शरीर में बैठा है। बहुत काल का या तन के मोह करि इसमें बंध्या है। तातैं तूं विषयन तैं उदासीन भया है। सो हे भव्यात्मा! ऐसा ही तूं इस शरीर तैं भी उदास होऊ। ज्यों तेरी अभिलाषा पूर्ण होय। क्योंकि ये शरीर विनाशीक है। तातैं अब जेते याकी स्थिति है तेते तूं यातैं दीक्षा अङ्गीकार कर उत्कृष्ट दय-धर्म पाल। और मोक्ष जा। क्योंकि जो त्रस-स्थावरकी सर्व प्रकार दया, इस गृहस्थावस्थामें तौ पलै नाहीं। काहे तें, जो इस परि-

ग्रहके संयोग तैं उत्कृष्ट दया पलती नाहीं। लंगोट मात्र परिग्रह होय, तौ भी सम्पूर्ण दया नहीं बनै, तो इस बहुत परिग्रहमें कैसे पलै ? तातें हे भव्यात्मा, सर्व प्रकार त्रस-स्थावर जीवनकी दया, महाव्रत भये पलै। तातें अब तूं भले प्रकार महाव्रत अङ्गीकार कर। समता भाव धारि, शुभ भाव धारि। त्रस-स्थावर जीवनकी रक्षाके निमित्त सर्व जीवन तैं क्षमा भाव करि कैं, सर्व कूं अभय दान देय। तब तूं सर्व दया का धारी भया जातें अब तेरे नूतन कर्मका बन्ध हो गया नाहीं। और आगे तैंने अज्ञानावस्थामें इन्द्रिय और शरीरके पोषवे कूं हिंसा करि कर्म कों बांधे थे, सो याही शरीर तैं नाना प्रकार तप करकै, पिछले कर्मनका नाश करि। सर्व कर्मका नाश भये, तूं मोक्ष सुख पावैगा। सो वह मोक्ष-सुख अविनाशी है, अखण्ड है अनंत है। ये सुख भये पीछे जाता नाहीं। हे भव्य यहां तेरी अभिलाषा पूरी होयगी। ऐसे आचार्य ने कह्या सब शिष्य गुरुकी आज्ञा सुनि महा विनय तैं उल्लास करि ऐसा विचारता भया। जो आजका दिन धन्य है। आजि मोकों गुरु ने ऐसा इलाज बताया जा करि मेरे पूरव किये पापका नाश होयगा। और अनन्त सुखका स्थान सर्व कर्म रहित निरंजन पद केवलज्ञान सहित सिद्ध पदकी प्राप्ति होयगी। सो अब तौ श्री गुरुके प्रसाद करि मैं मोक्षको पाऊंगा। सो ये उपकार गुरुनका है। ये गुरु वांच्छित सुख देने कूं कल्पवृक्ष समान हैं। परन्तु कल्पवृक्ष तौ एक स्थान ही स्थिरीभूत रहे। यापे कोई चल करि आवै तौ फल पावै। घर बैठे देने नाहीं जाय है। और तामें भी यह भोजन-भूषणादि इन्द्रिय जनित सुख देय सो भी शाश्वत नाहीं। किञ्चित् काल सुखसा दिखाय विनश जांय। और श्री गुरु कल्पवृक्ष हैं। सो भव्य जीवन कूं घर बैठे ही वांच्छित सुख देवे कूं आप देश विहार करि सबकी आशा पूरे हैं। तातैं श्री गुरु धन्य हैं। जिनकी क्रिया करि संसारी जीव मोक्ष पावैं। ऐसे नाना प्रकार गुरुकी महिमा करि पीछे शिष्य गुरुके बताये नाना प्रकार तप तिनकों करि सर्व कर्म नाशके मोक्ष-रानीका भर्तार होय है। तातें प्रथम जानना होय पीछे जानी वस्तुका पक्का श्रद्धान होय। सो श्रद्धान होय तो कष्ट पाय कें भी अपने भलेका कार्य करै ही करे। ऐसे तेरे प्रश्नका समाधान जानना। तातें हे भव्य पहिले तो भली-बुरी वस्तुका जानपना

होय। भले प्रकार जाने पीछे ताका दृढ़ श्रद्धान होय और भली-बुरीका निरधार करै है। और कोई बाल-बुद्धि पदार्थ कौं जानैं। परन्तु तामें ताका ग्रहण-त्याग नहीं करि जानै। ऐसे मिथ्यादृष्टी मोहित भोरे जीव संसारमें बहुत हैं। इनके ज्ञानके जानपनेका इनकौं कछु नफा नाहीं। इन मिथ्याज्ञानीनका जानपना निज-पर जीवनके ठगवे कौं प्रगट होय हैं। और सम्यक्त्व सहित जानपना है सो तामें पहिले श्रद्धान करि पीछे तिनका त्याग-ग्रहण होय है। सो जो अपने भले योग्य हितकारी परभवमें सुखकारी होय सो ताका तो ग्रहण करै। और जो पदार्थ आपकौं इस भव-परभव में दुखकारी होंय, पाप बंध करता होंय, परंपराय जातैं दुख होता जानैं, तिनपदार्थनका त्याग करै। ऐसा त्याग-ग्रहण करि सम्यक्दृष्टी जीव नैं ऐसा विचार्या। जो सर्व धर्म-अङ्गनमें एक दया भाव है सो मुख्य धर्म है। काहे तैं जो तप, संयम, दान पूजादि हैं सो तो धर्मके अङ्ग हैं। जीव दया है सो ये मूल धम है। इस जीव दया के पालवे के निमित्त धर्म है। सो हिंसाके कारण राज्य, गृहारम्भ छाँड़ि अपने तन सम्बन्धी भोगन तैं ममत्व भाव छोड़ कैं, पीछे मोह तजि, नग्न काय होय, सर्व षट्कायिक जीवन के सुख देवे कौं, आप यतीका पद धर्या। तहां सर्व प्रकार जीवन की रक्षा करि, जगत्पूज्य सिद्ध पद ताकौं पाय मोक्ष स्थान विषैं अखण्ड सुखी होता भया। तातैं यह बात सिद्ध भई, कि जो दया ही धर्म है। दया बिना कोई धर्म कहै, सो वृथा है। और लौकिक में भी बाल—गोपाल दया ही कौं धर्म कहै हैं। तथा और देखो, इस दया की षट् मत विषैं प्रसिद्ध है। व सर्व जीव यश गावैं हैं। देखो जो अज्ञान-रंक भूखा होय, सो भी ऐसा कहै है। कि जो हम भूखे हैं सो कोई दया धर्म का धारी होय, सो हमारी दया कर हमारा दुख मैटो। सो देखो, रंक भी ऐसा जानैं हैं। और दया कौं ही धर्म कहैं हैं। तौ जे विवेकी हैं सो तौ दया में धर्म कहैं ही। तातैं ऐसा जानना, जो ये दया सो ही धर्म है। तातैं जगह जगह जिनेश्वर देव ने भी ऐसा ही कह्या है। कि दया धर्म है। सो अब ऐसा विचार कैं, धर्म एक दया ही का निश्चय करना। अब ऐते भी कोई प्राणी, जीव घात में ही धर्म मानैं, तो याका चित्त ही महा कठोर है। याका परभव बिगड़ना है व दुखी होना है। याकौं परभव में दुखदायक पर्याय उपजैगो। दीन, दरिद्री,

अन्धा, असहाय हीन होना है। तथा नारकी व पशु होना है। इन स्थान में महादुखी होयगा। इसका किया ये ही भोगवेगा। इसके श्रद्धान की यही जानै। परन्तु हमने तौ ऐसा ठीक किया, कि जो धर्म एक दया-भाव है। तातैं जिनकौं परम सुखकी इच्छा होय। सो धर्मात्मा, सर्व जीवन तैं क्षमा भाव करि षट् काय जीवन कौं अभयदान देओ। बहुत कहवे करि कहा। ऐसा अवसर फिर मिलना कठिन है।

इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, हिंसा निषेध, दया का माहात्म्य वर्णनो नाम तीसवां पर्व सम्पूर्णम्।

आगे राज लक्षणों का स्वरूप कहिये हैं। जाकरि प्रजा सुखी होय, राजाका तेज-प्रताप बधै, लक्ष्मी बधै, यश होय, सुखी रहै, परभव सुधरै। ऐसे गुण श्री आदि पुराण जी अनुसार कहिये है—

गाथा—षट् गुण चव विद्याए, पण बल अणि होय सुभग गुण सेसा। सउ णिप जस लछि पावइ, फुण तव लेय होय सिव णाहो ॥ १३५ ॥

अथ—षट् गुण चव विद्याए कहिए, छह गुण अरु च्यारि विद्या। पण बल अणि होय सुभग गुण सेसा कहिए, पंच बल और अनेक गुण होंय। सउणिप जस लछि पावइ कहिए, सो राजा यश-सम्पदा पावै। फुण तव लेय होय सिव णाहो कहिए, फिर तप लेय मोक्ष लक्ष्मी का भरतार होय। भावार्थ—ऐसे षट् गुण, च्यारि विद्या अरु पंच—बल ये राजान के गुण हैं। सो जिनमें ये गुण होंय, सो भला प्रजापति है। सो ही प्रथम षट् गुण कहिए हैं। प्रथम नाम संधि, विग्रह, यान, आसन, संस्थान और आश्रय। ये षट् भेद हैं। अब इनका विशेष कहिए है। तहां कोई आप तैं अधिक बलवान राजा, बड़ो फौज का धारी होय। तथा आगे कहेंगे राजाओं के पांच गुण, सो आप तैं पर-राजा के पास बहुत होंय आप तैं पंच बल भी तिस राजाके पास बलवान होंय। जातैं युद्ध किए जीतिए नाहीं। ऐसा बलवान बैरी होय। तौ ताकौं ग्राम, देश, धरती देय राजी कीजिए। हस्ती-घोटकादि दीजिये। अपने घरका उत्तम रतन-धन दीजिये। ताकी विनय कीजिये। ताकी सेवा चाकरी कीजिये। जैसे बनै तैसे, प्रबल बैरी को राजी कीजिये। तासों स्नेह होय, सो ही कीजिये। ताका नाम संधि नामा गुण है। सो जो विवेकी राजा--मंत्री, भली बुद्धि कौं धरैं हैं। सो इस संधि गुण कौं अवसर पाय प्रगट करि, अपना राज्य राख, सुखी होंय हैं। और ये संधि

गुण जामें नहीं होय, तौ अपने तें विशेष जोरावर राजा तें युद्ध करि, रावण की नाँईं मरण पावै। कुल क तनका, धनका दाय होय। राज्य जाय दुखी होय। जातें विवेकी राजा हैं ते कोई ऐसे ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, जानके इस संधि गुण के बल करि बैंरी कौं उपशान्त करैं हैं। आप तें जोरावर राजा तें शीश नमावते, उसकी सेवा करते, अपना मान-खंड नहीं मानैं। बलवान—सेवा, अपनी रक्षा का कारण जानि, संधि करैं हैं ये विवेकी राजाका धर्म है। इति प्रथमं संधि गुण ॥ १ ॥ आगे विग्रह गुण कहिये है। तहां और कोई राजा प्रबल—बैरी धीठ बुद्धि होय। धन देते, देश देते, चाकरी कबूल करते, हस्ती-घोटकादि देते, इत्यादिक विनय करते जो बैरी उपशान्त नहीं होय, तो पीछे युद्ध करै। युद्ध में शंका नाहीं करै। निशंक होय बैरी तैं युद्ध करै। अपना पुरुषार्थ-पराक्रम प्रगट करै। सो विग्रह नाम गुण है ॥ २ ॥ आगे यान गुण है सो कहिए है। जे महान् वंश के उपजे राजकुमार, तिनकौं यान गुण में प्रवीणपना चाहिये। सो ही वताईए हैं। हस्ती की असवारी, गज का जीतना, गज क्रीड़ादि में गज को चलावना, अपने वश हस्ती करना। इन आदि गज-असवारीमें सावधान रहना। और घोटक चढ़ना, दौड़ावना दुष्ट अश्व को वशीभूत करना इत्यादिक घोड़े की असवारी में सावधान होय। तथा रथके चलावैमें सावधान होय। रोज की असवारी जानैं, सिंह की असवारी जानैं। करहा सांड की असवारी करना जानैं। महिष की असवारी, वृषभ की असवारी, गैंडा की असवारी, इत्यादिक असवारिन में प्रवीणता, सो यान गुण है। सो ये गुण राज—पुत्रन में अवश्य चाहिए। ये गुण नहीं होंय, तो युद्ध हारैं। और अन्य राज-पुत्रन में जांय, तौ लज्जा पावैं। तातें यान गुण चाहिए। इति यान गुण ॥ ३ ॥ आगे आसन गुण कहिए है। राजानमें आसन गुण चाहिए। तहां बैठवे की दृढ़ आसन चाहिए। जहां तिष्ठै, तहां एकासन दृढ़ होय बैठे, चलाचल आसन नहीं राखै। कबहूं कहीं, कबहूं कहीं ऐसे चंचल भाव नहीं होय। एक स्थान दृढ़ होय तिष्ठै। तथा देशान्तर गमन करते जहां मुकाम करै, तहां अपने तनकी सावधनी करै। जहां जल तृण अन्नकी प्रचुरता होय, तहां मुकाम करै। तथा सैन्याके लोकनकी रक्षा करै। जहां डेरा होय, तहां अपने तनके

मोही सेवक-सुभट तिनके डेरा अपने चौ-तरफ राखि, अपने तनकी रक्षा देख, मुकाम करै। इत्यादि सावधानी राखनी। सो आसन गुण कहिए। ये आसन गुण है ॥ ४ ॥ आगे संस्था गुण कहिए है। संस्था गुण ताकौं कहिये जो अपने मुख तैं वचन बोलना, सो फेरि अन्यथा नहीं होय। वचनकी दृढ़ता राखनी जो बचन बोल्या, सो ताकी मर्यादा निवाहनी। तन गये भी जो वचन कह्या, ताकौं नहीं उल्लंघिये। जैसे दसरथ राजाने अपनी रानी कैकईको वर दिया सो समय पाय वानै पुत्र-भरत कूं राज्य याच्या। सो अयोध्याका राज्य भरत कूं देय, वचन राख्या। तैसे ही राजान कौं अपने वचनकी दृढ़ता राखनी, सो संस्था गुण है। ये वचन-दृढ़का गुण राजामें नहीं होय, तौ ताकी प्रजा दुख पावै। अन्याय विस्तरै। राजाका वचन प्रतीति रहित भये, अपयशादि दोष प्रगटै। तातैं वचन सत्य बोलना, सो संस्था गुण है। इति संस्था गुण ॥ ५ ॥ आगे आश्रय गुण कहिये है-सो राजानमें आश्रय गुण चाहिये। कोई भयवंत होय, जोरावरका सताया, अपने आश्रय आवै तो आप ताकूं अपने शरण राखै। संतोष उपजावै। तथा आप पै भय आये, आप तैं प्रबल होय ताके आश्रय जाय, सुखी होना। सो अपने तैं बड़े के शरण जावेमें, अपना मान खंड नहीं मानना, और अन्य कूं अपने आश्रय राखनेमें काहूका भय नहीं करना। ये आश्रय नाम गुण है। ये गुण नहीं होय, तो महिमा नहीं पावै।। तातैं आश्रय गुण राजानमें चाहिये। इति आश्रय गुण ॥ ६ ॥ ऐसे राजोंके षट् गुण जानना। आगे राजोंके सीखवे योग्य च्यारि विद्या हैं, तिनका कथन कहिये है। प्रथम नाम आनीषकी विद्या, त्रई विद्या वर्ता विद्या और दण्डनी विद्या, ये च्यारि हैं। अब इनका सामान्य स्वरूप कहिये है। जैसे जौंहरी अपनी बुद्धिके योग तैं, भले-बुरे रत्न कूं जानैं। तैसे ही विवेकी राजा, प्रथम तो अपने-पराये बल-पराक्रम कौं जानै। ऐसा विचारै, फलाने राजाका पराक्रम ऐसा, उस राजाकी सैन्या इतनी, भुजबल ऐसा, वाके एता मुल्क ऐसा खजाना है। ऐसे-ऐसे सामन्त राजा ताके सेवक हैं। ऐसे बुद्धिमान् मंत्री हैं। और मेरे शरीरका जोर एता है, मेरा एता मुल्क है, एता खजाना है। एते सामंत-सेवक हैं। ऐसे मंत्री हैं। इत्यादिक भेद जाने, सो विवेकी राजा है। और जो अपने-पराये पराक्रम विषैं नहीं समझै, तो आप तैं बड़े बलवान् राजा तैं

द्वेष करि, अपना राज्य खोय, दुखी होवै। अपने सेवक, मित्र, प्रजाके लोग इनके स्वभाव कूं जानैं। जो ए बुरा है, ये भला है। ये दुष्ट अंगी है, ये सज्जन अंगी है। ये गुण-लोभी है। ये सत्यवादी है। ये झूठा है। ये स्वभावका धरनहारा है। ये पराया बुरा करनहारा, चुगल है। ये परके भलेका करनहारा है। यह यशका लोभी है। ये धनका लोभी है। ये चोर स्वभावी है। यह क्रोधी है। ये मानी है। यह दगाबाज-मायावी है। यह सरल स्वभावी है। यह चित्तका उदार है। यह सूम है। यातैं मोकौं सुख है। यातैं मोकौं निन्दा आवे है। यातैं मेरा यश होय हैं। यह पर कौं पीड़ै है। ये परका रक्षक है इत्यादिक विवेक-विद्या, राज पुत्रन कौं सीखना सुखकारी है। याका नाम आनीषकी विद्या है। इस विद्याका ज्ञान होय, तौ अपने ज्ञान-बल तैं, कठोर चित्ती है तिनकौं कोमल करे। यहां प्रश्न-जो कठोर स्वभावी है तिनकौं कोमल स्वभावी कैसे करे? ताका तौ स्वभाव ही कठोर है, सो वस्तुका स्वभाव कैसे मिटै है? ताका समाधान-जैसे पृथ्वी-काय स्वर्ण चांदी, तांवा, पीतल, लोहादि अनेक धातु करि, अनेक बर्तन बनैं है। सो ये सर्व ही धातु कठोर हैं। सो भला करीगर, इन धातूनकी कठोरता जानि, प्रथम तौ अग्नि में तपावे है। पीछे घन तैं, हथौड़े तैं कूटै है। बहुरि तपावै है। ऐसे करते, कछू नरम पड़ै है। तब छोटी हथौड़ी तैं अल्प पीटै है। ऐसे सख्त, महा-कठोर धातु भी विवेकीके हाथ पड़ै है, तब नर्म होय है। तैसे ही दुष्ट मनुष्य है, सो महा कठोर है। तिनकौं विवेकी राजा, अपनी न्याय बुद्धिके बल करि उनकौं, उन योग्य कठोर दण्ड ही देय है। तब दुष्ट प्राणी भी, राजाके दीरघ भय करि अपनी कठोरता तजि कोमलता रूप होय हैं। पीछें तिनकौं भला निमित्त मिलै, तौ वे भी अपना भला करैं हैं। ऐसे यह आनीषकी विद्या है सो महान् वंशमें उपजे जो विवेकी राजा, तिनके सीखवे योग्य है ॥ १ ॥ आगे दूसरी त्रई विद्या। सो विवेकी राजा शास्त्रनके वेत्ता, जान्या है इस भव-परभव सुधरनेका भेद जिननैं, सो महान् बुद्धि धर्मशास्त्रके वेत्ता पाप-पुण्यके फल कौं जानि आप पाप तजि अनेक धर्म अंग दान-पूजादि तिन रूप परणमैं। और जिन क्रियान तैं पाप बधै हिंसा होय दुराचार प्रगटैं ऐसी क्रिया अपने मुल्कमें नहीं होने देंय। अनेक पाप क्रिया अज्ञानी जीवनके करवेकी जिनकौं करि भोरे

जीव अपना मन [illegible] । [illegible] कौं [illegible] होय। इत्यादिक पाप प्रवृत्ति कौं जानि विवेकी राजा आप तजै और पापके करनहारनि कौं [illegible] तिनकौं मने करै। अपनी प्रजा पाप रूप प्रवर्तै ताकौं दंड देय धर्ममें लगावै। जो प्रजा धर्मात्मा दयावान् सज्जन शुद्ध प्रवृत्तिकी धारी होय ताकी रक्षा सहित शुश्रूषा करै। जैसे प्रजा धर्म रूप प्रवर्तै सो ही कार्य करै। पृथ्वीमें शुभाचार वधावै। धर्म क्रिया भला आचार आप करै। औरन कौं उपदेश देय पूजा दान शील संयम तप व्रत इत्यादिक धर्मको वधावै। पाप कौं मेटै। निरंतर धर्म सेवनका भाव राखै। संसार भोग विनश्वर जानि विषयनमें रत नहीं होय। आगे महान् राजा भरत चक्री आदि बड़े-बड़े पुरुष राज्य संपदा छोड़ जिनेश्वरी दीक्षा धरि तप करि मोक्ष गये। तिनके गुणनकी कीर्ति करता वैराग्य भावनाका अभिलाषी प्रजाकी रक्षा करता ऐसे भावन सहित राज्य करै। सो यह नाम दूसरी विद्या है ॥ २ ॥ आगे तिसरी वार्ता विद्या है। तहां नीति शास्त्रन तैं जानी है राजानकी परंपराय जानैं। सो यशका अर्थी राजा अपनी प्रजा कूं पालवेकी सुखी राखवेकी है वांछा जाकै। ऐसा सुबुद्धि राजा प्रजा के न्याय अन्याय, सुख दुख जानिवे कौं फैलाये हैं देश नगरमें हलकारे रूपी नेत्र जानैं। जैसे नेत्रन से राग देखा जाय तैसे बड़े राजाके नेत्र हलकारे हैं। सो तिन सूं दूर दूरकी बात जानी जाय है। सो विवेकी राजा दसौं दिशा हलकारे भेजा पृथ्वीकी खबर राखै। स्व चक्र पर चक्रकी हीनता अधिकता जानैं। तिन हलकारेन तैं योग्य अयोग्य सब जानै। सो अपनी प्रजा कौं दुखदाई चोर चुगल पाखंडी अदेखा दुराचारी दीन जीवन कौं सतावनहारा इत्यादिक दुष्ट जीवन कौं जानि अपने मुल्क देश तैं निकास देय। और जे धर्मात्मा सज्जन दयावान् संतोषी संयमी न्यायी इत्यादिक गुण सहित साधु जन होंय तिनकी सेवा चाकरी रक्षा करैं। इत्यादिक हलकारान तैं प्रजाकी कथा जानै। ऐसी विवेक बढ़ावनहारी यह विद्या जिस राजाके हृदयमें वसै ताका यश होय। प्रजा सदीव सुखी रहै। यह तीसरी वार्ता विद्या है ॥ ३ ॥ आगे चौथी दण्डनी विद्या है सो यातैं विवेकी राजा अपनी न्याय बुद्धि करि अपनी बस्तीमें चोर चुगल जो अपनी आज्ञाके प्रतिकूल होय सप्त व्यसनका उपदेशक होय तिनकौं दंड देय दुखी करि लोकन कौं बतलावै कि जो कोई न्याय

तजि अन्याय चलैगा। सो ऐसा दुखी होय दंड पावैगा। और बस्तीमें जो भले मनुष्य न्यायवान् होंय तिनकी रक्षा करै। ये दण्डनी नाम चौथी विद्या है ॥ ४ ॥ ऐसी च्यारि विद्या कही। सो महान् कुलके उपजे दोऊ पक्ष जिनके पवित्र होंय ऐसे राजकुमारन कों सीखना मंगलकारी है। ये सब विद्या, जिस भूपतिके हृदयमें तिष्ठैं, सो राजा यश पावै। परम्पराय शुभ गति भोग, मोक्ष पावै। इति च्यारि राज्य विद्या। आगे राजाके पंच बल कहिये हैं। प्रथम नाम-भाग्य बल, दैव बल, मंत्र बल, शरीर बल और सामंत बल। अब इन पंच बलनका सामान्य अर्थ कहिये है। जानैं पूर्व-भवमें विशेष पुण्य किया होय, सो पुण्यके उदय-वाला जीव राज्य पावै। तौ ताकै पुण्यके आगे, अन्य राजा सहज ही भय खाय, आय-आय शीश नमावैं सेवा करैं, आज्ञा याचैं, अपने मुकुट नमावैं, ताकौं अपना प्रभु मानैं। जैसे तीन खंडका राजा वासुदेव, तथा षट्खण्डका राजा चक्रवर्ती है। सो इनका राज्य, पुण्यके उदयका है। क्योंकि जो इनकी दृष्टि महा सौम्य है। वचन महा मिष्ट हैं। तिनकी मूर्ति महा विश्वास उपजावनहारी, सुन्दर मनकौं मोह उपजावै। महा सज्जन, तिनके वचन सुनतैं पर जीवनकूं समता होय स्थिरता बन्धै। आप तौ ऐसे और इनका बाह्य प्रताप ऐसा कि तिनके भयसूं देव विद्याधर कंपायमान होंय। कोई आज्ञा भंग नहीं करि सकै। बिना भय बताये ही बड़े-बड़े पृथ्वीपति आय-आय मुकुट नमावैं। ऐसा उनके पुण्यका तेज है। जैसे सूरज, मूलमें तौ तिसकी प्रभा शीतल है परन्तु औरनकौं तेजकारी होय है। तैसे ही सूर्यकी नांईं तेज धारै। सो राजाओंका भाग्य बल है ॥ १ ॥ और कर्म जाका भला करै, ताकौं कौन विगाड़ि सकै? जाकौं कर्म भला दिखावै ताकी बुराई काहू तैं नहीं होय। जैसे रावण तीन खण्डका गाथ सर्व विद्याधरनका नाथ महा न्यायी, महा बलवान्, अरु जिसके विभीषण-कुम्भकरणसे भाई अरु इन्द्रजीत-मेघनादसे पुत्र जाके। ऐसा रावण जानैं इन्द्र-विद्या-धरकौं जीत्या। अरु जीवता पकड़ लाया। ऐसा राक्षसनका पालनहारा, तीन खण्डका अधिपति। ऐसे बलीकौं राम-लक्ष्मण दोई भाइनने युद्धमें जीत्या। ये कर्मका बल है। जाकौं कर्म जितावै सो जीतै। जाका कर्म भला करै ताका भला होय। सो दैव बल है। तथा जैसे मैनासुन्दरीने कही। सुख-दुख कर्म करै सो होय। तब

ताके पिताने द्वेष-भावतैं कर्म-परीक्षा करवेकूं अपनी पुत्री श्रीपालजीकूं, कोढ़ी जानि परनाई। पीछें शुभ कर्म तैं श्रीपालजीका कुष्ट गया। राज्य पाया। मैंनासुन्दरी आठ हजार रानीनमें पट्टरानी होय सुखी भई। तव ताके पिताने देख कर्म-कर्तव्य सांचा जाना। सो यह दैव वल है॥ २ ॥ और जानें नाना प्रकारकी विद्याका साधन करि अनेक विद्यान कौं अपने आधीन करी। तिन विद्यानके प्रसाद करि अनेक मानी राजा जीति अपनी आज्ञा मनवावे। सो मन्त्र वल जानना ॥ ३ ॥ और अपने शरीरका भुजवल वड़ा होय। कोटि भट लक्ष भट सहस्र भट इत्यादिक अनेक हस्ती-सिंहकूं जीतनेका पराक्रम होना। तथा अनेक सैन्याकूं आप एकला ही जीते ऐसा शरीर-वल पावना सो शरीर वल है ॥ ४ ॥ और जाकी आज्ञा विषै अनेक वड़े-वड़े सामन्त राजा होंय। सर्व सैन्याके सुभट अपनी आज्ञा प्रमाण होंय। वहुत सामन्तनका नाथ होय। सो सामन्त वल है ॥ ५ ॥ ये राजाके पांच वल हैं। सो विवेकी राजाकौं इनकी इच्छा करनी योग्य है। इति राजाके पांच वल। ऐसे राजाके षट् गुण, च्यारि राज्य विद्या, पांच वल। ये सर्व राजाकी सम्पदा है। जिनकी ऐसी सम्पदा होय ते राजा सदीव सुखके भोगता होय यश पावे। तप लेय, देव इन्द्र अहमिन्द्र निर्वाण एते पद पावै हैं। ये शुभ राज लक्षण कहे आगे पुण्याधिकारी पुरुषनके सीखवेकी विद्या हैं, तिनके नाम-लक्षण कहिये है। तहां प्रथम नाम-प्रथमानुयोग करणानुयोग, चरणानुयोग द्रव्यानुयोग शिक्षा कल्प व्याकरण, छन्द अलंकार ज्योतिष निरुक्त अतिहांसि पुराण मीमांसा और न्याय ये चोदह विद्या हैं। अव इनका विशेष कहिये है। तहां सामान्य बुद्धिनकौं धर्म विषैं लगाववेकूं अनेक महान् पुरुष तीर्थंकर चक्रवर्ती नारायण काम-देवादि पुरुषनकी कथा पुन्य पापका फल नरक-स्वर्गका सुख-दुख कथन इत्यादिक हितोपदेश देनेकी कला, सो प्रथमानुयोग नाम विद्या है॥१॥ अधो लोक मध्य लोक ऊर्ध्व लोक इन तीन लोकनकी सर्व रचना लोकका जो आकार तामैं च्यारि गति रचनाका कथन इत्यादिक तीन लोकके कथन उपदेश करवेकी कला सो करणानु-योग विद्या है ॥२॥ और जहां मुनि श्रावकके आचार विषैं प्रवीणता इनके खान-पानकी विधि जानना। मुनि कौं पड़गाहवेकी विधि व नवधा भक्तिकी विधि समझना त्यागी-प्रतिमाधारी श्रावककूं भोजन निमित्त ल्या-

यवेकी विधि तिनकूं भोजन देवेकी विधि इत्यादिक यती-श्रावकके उपदेश करवेकी कला सो चरणानुयोग विद्या है ॥ ३ ॥ और जहां षट् द्रव्य इनके गुण-पर्यायका समझना । जीवके राग-द्वेष भाव जैसे होंय सो जानना । और पुद्गलके स्कंध ज्ञानावरणादि कर्म रूप कैसे होंय ? और जीव कर्मन तैं कैसे बन्धै, कर्मन तैं कैसे खुले ? इत्यादिक कर्मका बन्ध होना उदय होना सत्त्व रहना इत्यादिक द्रव्यानुयोगके उपदेश देवेकी कला सो द्रव्यानुयोग विद्या है ॥ ४ ॥ और शिष्यनके कल्याण होनेके निमित्त यथायोग्य उपदेश देनेका ज्ञान जो बालककौं उपदेश ऐसे दीजिये, तरुणकौं उपदेश ऐसे वृद्धको उपदेश ऐसे विशेष ज्ञानीकों ऐसे सामान्यज्ञानी कौं ऐसे ऊंच-कुलीकूं उपदेश नीच-कुलीकूं उपदेश चंचल बुद्धिकूं ऐसे बालकतरुण स्त्रीकूं वृद्ध स्त्रीकूं, पति सहित स्त्रीकूं विधवा स्त्री कौं ऐसे इत्यादिक यथा योग्य उपदेश देनेकी कला । जैसे शिष्यजनका भला होता जाने, तैसे तिनके परभव सुधारवेकौं उपदेश देना सो शिक्षा-कल्प विद्या है ॥ ५ ॥ अनेक प्रकारके शब्दको स्पष्टता विभक्ति सहित पद सहित लिंगके साधन, धातूनके साधन सहित, शुद्ध शब्दका बोलना । अनेक गद्य काव्य, छन्दनका विभक्ति अर्थ सहित पदच्छेदन सहित, भले प्रकार अर्थ करना । इत्यादिक संस्कृतका विशेष ज्ञान बधावना सो व्याकरण विद्या है ॥ ६ ॥ जहाँ अनेक जातिके छन्द गाथा, आर्या, श्लोक काव्यइत्यादि बहुत प्रकार छन्दकी चाल जानना, परकौं उपदेश देना शिखावना सो छन्द विद्या है ॥७॥ जहां नाना प्रकार अलंकार जैसे स्त्रीका मुख चन्द्रमाके समान तथा यह नरेन्द्र अपने प्रतापके आगे सूयकूं जीतै है । इत्यादिक अलंकार कलाका सीखना-जानना-उपदेश देना सो अलंकार विद्या है ॥ ८ ॥ जहाँ चन्द्रमा, सूर्य्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा, इत्यादि इनके गमनागमन क्रिया तैं शुभाशुभ फलका सीखना जानना उपदेशना सो ज्योतिष विद्या है ॥ ९ ॥ जहाँ नाना प्रकारकी युक्तिका ज्ञान, अनेक युक्ति उपजावना । बहु प्रकार दृष्टांतादि कलाका सीखना उपदेश देना सो निरुक्त विद्या है ॥ १० ॥ जहाँ अनेक चतुरता सहित सभा रंजित बोलवेकी कला जैसा अवसर देखे तैसे शब्द बोलवेकी कला जैसा मनुष्य देखै तैसा बोलवेका ज्ञान इत्यादिक सभा व समय पहिचान अपना-पराया पदस्थ पहिचान बोलना, इत्यादिक चतुराई सहित, सर्व सभा रंजन,

मिष्ट विनयकारी, आनन्दकारी वचन बोलवेकी कला सो अति-हांसि कला नाम विद्या है ॥११॥ और जहां धर्म कथाके अनेक पुराण वांचना, कंठ पाठ जानना-पढ़ना उपदेशना सो पुराण विद्या है ॥ १२ ॥ और जहां अनेक मीमांसादि मतांतरके शास्त्रनका पढ़ना रहस्य जानना। अनेक मतान्तरके वाद जीतवेकी कला नास्तिकमती, एकान्तमती, विनयवादी इन आदि अनेक मतनका रहस्य जानना, सीखना, औरनकों उपदेश देना, सो मीमांसा विद्या है ॥ १३ ॥ और अनेक-प्रकार तर्क-युक्ति उपजाय, प्रश्न करना। न्याय करि पर-वादीकी असत्य युक्तिका खण्डना। अपना न्याय वचन स्थापना। पर-वादी अनेक असत्य युक्ति देय ताका रहस्य जानि ताका खण्डना। इत्यादिक न्याय पूर्वक नय-युक्तिका सीखना औरनकों उपदेश देना सो न्याय विद्या है ॥ १४ ॥ ऐसे ये चौदह विद्या शास्त्रोक्त कहीं हैं। सो ज्ञान वढ़ावेके पात्र पुरुषनकों सदीव इनका अभ्यास करना योग्य है। इति शास्त्रोक्त चौदह विद्या कहीं। आगे लौकिक चौदह विद्या कहिये हैं। तहां प्रथम नाम ब्रह्म, चातुरी, वाल, वाहन, देशना, वाहु, जल, रसायन, गान, संगीत, व्याकरण, वेद, ज्योतिष और वैद्यक। ये चौदह लौकिक विद्या हैं। अब इनका सामान्य स्वरूप कहिये है। तहां आत्मा चैतन्य है। ज्ञान रूप है, शुद्ध है, अशुद्ध है, इत्यादिक आत्माकाका स्वरूप जानिये सो आत्म विद्या, सो ही ब्रह्म विद्या है ॥ १ ॥ जहां नाना प्रकार वातनका करना। राज्य सभा, पंच सभा, जैसी सभा होय तैसी वात करना। परकौं रंजावना। चित्रकला, शिल्पकलादि अनेक लौकिक चातुरी सीखना, सो चतुराई विद्या है ॥ २ ॥ बाल्यावस्था हीतें अनेक प्रकार विद्याओंका सीखना, सो वाल विद्या है ॥ ३ ॥ जहां हस्ती घोटक, रथादिककी असवारी जानना सीखना, सो वाहन विद्या है ॥ ४ ॥ धर्मोपदेश देवेकी कला, सो देशना विद्या है ॥ ५ ॥ जहां दण्ड पेलनादि पर मल्ल जीतवेकी चतुराई नाना कलाका कूदना-फाँदना नेजम झाड़ना, मोगरी फेरना इत्यादि कला सीखना, सो वाहु विद्या है ॥ ६ ॥ जल विषैं नाव चलावना, जहाज चलावना, भुजबल तैं तेरनेकी कला सीखना सो जल विद्या है ॥ ७ ॥ बहुरि कुधातु कूँ सुधातु करना। जैसे तांबेकूं स्वर्ण करना, रांगको चांदी करना। पारा-हरतालादि शुद्ध करि, रसायन पैदा करना। इत्यादिक कला सीखना सो रसायन विद्या है

॥ ८ ॥ और जहां अनेक स्वर सहित काल मर्याद रूप मिष्ट स्वर सहित ताल कूं लिये गावना, सो गान विद्या है ॥ ६ ॥ अनेक प्रकार वादित्र कला, नृत्य कला, इनके हाव-भाव गति ललितला, चाल, ताल, इत्यादिकमैं शास्त्रोक्त समझना, सो संगीत विद्या है ॥ १० ॥ और अक्षरका सुस्पष्ट स्वर, व्यंजन, विभक्ति सहित समझना, सो व्याकरण विद्या है ॥ ११ ॥ और अनेक शास्त्रनका सीखना सो वेद विद्या है ॥ १२ ॥ पंच प्रकार ज्योतिषी वेदनकी चाल करि शुभाशुभ जानना, सो ज्योतिष विद्या है ॥ १३ ॥ अनेक प्रकार शरीरके रोग जानवेकी बहुत परीक्षाका जानना। हाथकी नस, मस्तककी नस, पांवनकी नस, हृदयकी नसोंका परखना। सो याही नसोंकी परखाईका नाम नाड़ी परीक्षा है। सो नाड़ी परीक्षा जानै। मूत्र परीक्षा, जो मूत्रकूं देखि रोग जानै। दृष्टि परीक्षा सो दृष्टि देख कैं रोग जानैं। पसीना कूं देख-संघि रोग जानै, सो स्वेद परीक्षा है। इत्यादिक चिन्हन तैं रोग जानि ताके नाश करवेकी कला सो वैद्यक विद्या है ॥ १४ ॥ ये चौदह कर्म-विद्या हैं। और ऊपर कहीं चौदह, वे धर्म विद्या हैं। तिन सबका स्वरूप विवेकी राज-पुत्रन आदि सर्व कुलीनकूं सीखना योग्य है। और जिस राजपुत्रकूं इन विद्यानका ज्ञान होय सो प्रजाकूं सुखी करै, आप यश पावे। ऐसे जानि इन विद्या रूपी गुणनका संग्रह करना योग्य है। इति लौकिक विद्या। आगे राजानका इन्द्र जो षट्खण्डी चक्रवर्ती ताके पुण्यका महात्म्य पाय चौदह रत्नव चौदह निधि हो हैं। तिनके नाम व गुण कहिये हैं। तहां प्रथम रत्न नाम सुदर्शन चक्र चंड वेग दण्ड चमर चूड़ामणि काकिणी छत्र असि सेनापति बुद्धिसागर पुरोहित शिल्पी गृहपति विजयगरि हस्ती घोटक और स्त्री ये चौदह रत्न हैं। एक-एक रत्नकी हजार-हजार देव सेवा करैं हैं। अब इन रत्नन तैं कहा-कहा कार्य होय सो कहिये हैं। तहाँ चक्री, जिस पै आज्ञा करे चाहै। तापै चक्रके रक्षक देव जाय चक्रीकी आज्ञा कहैं। यह चक्र रत्नका कार्य है ॥ १ ॥ विजयार्द्ध पर्वत की गुफाके कपाट सेनापति तोड़ै है, सो गदा रत्न है तासैं तोड़ै है। सो ये गदाका कार्य है ॥ २ ॥ जहां राहमें नदी—सरोवरका बड़ा गहन जल आवै है। तब चरम रत्न जलमें बिछाय दीजिये। सो ताके प्रसाद करि सर्व जल धरती समानि होय। तापै तैं चक्रीका सर्व कटक पार होय है। ये चमर रत्नका गुण है ॥ ३ ॥ और

विजयार्द्धकी गुफा पचास योजन लम्बी है। तामें महा अंधकार में सो चक्री कैसे धसै है। तहां चूड़ामणि रत्नके उद्योत करि, सूर्य-प्रकाशकी नाईं उद्योतमें, गुफा पार हो है। ये चूड़ामणि रत्नका गुण है ॥ ४ ॥ और काकिणीं रत्न तैं चक्री अपना नाम लिखै है। वृषभाचल पर्वत पै, जब ठाम नहीं मिले है। तब इस काकिणीं रत्न तैं, और चक्रीका नाम मेटि, अपना नाम लिखै है। और याके प्रकाश तैं भी बारह योजन गुफामें प्रकाश होय है। ये काकिणी रत्नका गुण है ॥ ५ ॥ और चक्रीके कटक पर मेघ वरसे, तौ छत्र रत्नके विस्तार करि जलकी बाधा मेटै, सब सैन्या छाया लेय है। ये छत्र रत्नका गुण है ॥ ६ ॥ और जाके तेज तैं वैरी डरैं, सर्व शत्रु जातैं जीतिए, ऐसा असि रत्नका गुण है ॥ ७ ॥ ये सात रत्न तो अचेतन कहे। और सब आर्य म्लेच्छ खण्डके राजान कूं जीति, सर्वां कूं लाय चक्रीके चरणमें नमाय सेवा करावै, ए सेनापतिका गुण है ॥ ८ ॥ और पुरोहित ऐसी सलाह देय जातैं प्रजा सुखी होय, वैरी वश होय, ये पुरोहित रत्नका गुण है ॥ ९ ॥ और चक्रीकी आज्ञा तैं तत्क्षण, मनवांच्छित, अनेक शोभा सहित, बहुत खण्डके सुन्दर महल बनावै, सो ये शिल्पी रत्न है ॥ १० ॥ और चक्रीके घरका सर्व कारबार, आरम्भ कार्यकी सावधानी राखै, सो ये गुण ग्रहपति रत्नका है ॥ ११ ॥ चक्रीके मन कूं सुखकारी असवारीका देनेहारा, ऐरावत ईन्द्रके हस्ती समान विजयगिरि नाम सुन्दर हस्ती रत्न है ॥ १२ ॥ वांच्छित असवारी देनेहारा, पवन समान वेग तैं चलनहारा, चंचल, सुन्दर अश्व है ॥ १३ ॥ महा सती, शची समान रूपकी धरनहारी, महा सुन्दर, चक्रीके मन कौं धरनहारी, आज्ञाकारिणी, महा बलवान् रत्न चूर्ण करै ऐसी, स्त्री रत्न है ॥ १४ ॥ ये सात चेतन रत्न है। सब मिलि चौदह होय हैं। ये जहां-जहां उपजैं, सो स्थान बताईये हैं। चक्र, छत्र, असि, दंड ये चार तौ आयुधशालामें उपजैं हैं। चरम काकिणी चूड़ामणि, ये तीन श्रीगृहमें उपजैं हैं। हस्ती, घोटक, स्त्री, ये तीन विजयार्द्ध पर्वत पै उपजैं हैं। सिलावट, पुरोहित, सेनापति, ग्रहपति, ये च्यारि निज-निज नगरीमें उपजैं हैं। ऐसे चौदह रत्नोका सामान्य स्वरूप कह्या। विशेष अन्य पुराणन तैं जानना। इति चौदह रत्न ॥ आगे नव निधिके नाम व लक्षण कहिये हैं। काल, महाकाल, नैसप्प, पाण्डक, पदम, माणव, पिंगल, शंख और सर्व

रत्न ये नवनिधि हैं। ये कहा-कहा कार्य करैं हैं, सो ही कहिये हैं। काल निधि तो वांच्छित पुस्तक देय है ॥ १ ॥ महा काल वांच्छित असि देय है ॥ २ ॥ वांच्छित भोजन देय, सो नै सर्प्प निधि है ॥ ३ ॥ वांच्छित षट्रस देय, सो पाण्डक निधि है ॥ ४ ॥ वांच्छित वस्तु देय, सो पद्म निधि है ॥ ५ ॥ वांच्छित नीति शास्त्र व शस्त्र देय, सो माणव निधि है ॥ ६ ॥ वांच्छित आभूषण देय, सो पिंगल निधि है ॥ ७ ॥ अनेक बाजे देय, सो शंख निधि है ॥ ८ ॥ वांच्छित सर्व रत्न देय, सो सर्व रत्न निधि है ॥ ६ ॥ ये सर्व मिलि नव निधि जानना। सो इन निधिनके आकार व प्रमाण कहिए है। ए सर्व निधि गाड़ीके आकार हैं। लम्बो चौकोर जानना। आठ पहियान सहित हैं। सो एक-एक निधि, बारह-बारह योजन लम्बी है। नव-नव योजन चौड़ो है। आठ-आठ योजन ऊंची है। एक-एक निधिके हजार हजार देव रक्षक हैं। इन निधिन पै चक्री की आज्ञा है। ये निधि, चक्रीके पुण्यप्रमाण हैं। ऐसे चौदह रत्न, नव निधि ए पुण्यका फल है, विना पुण्य नाहीं। इति निधि। आगे चक्रीकी सेना षट् प्रकार है, सो कहैं हैं। तहां प्रथम नाम हस्ती चौरासी लाख, रथसैन्या चौरासी लाख घोड़ा, अठारह कोड़ि सर्व दोऊ श्रेणीके विद्याधरनकी सैन्या भरतक्षेत्र संबंधी देवन की सैन्या पयादेनकी सैन्या। ये षट् प्रकारकी सैन्या है। सामान्य राजा कैं तो च्यारि जातिकी सैन्या होय देव विद्याधरकी सैन्या नहीं होय। अरु चक्रधारीके षट् प्रकारकी सैन्या जानना। ऐसी विभूति सहित श्री आदिनाथके पुत्र भरत चक्रवर्ती सोलहवों कुलकर पहले चक्री सो महा विवेकके सागर होते भए। सो इनके काल विषैं भोग मूमिके बिछूरे प्रजाके लोग भोरे जीव कर्म भूमिकी रचनामें नहीं समझैं। अरु कल्पवृक्षनका अभाव भया जीवनके क्षुधा बधो। तब भोरे जीव उदर पूरणकी विधि बिना दुखी होने लगे। विशेष ज्ञान चतुराई कर्म भूमि संबंधो आरंभ नहीं जानैं। तिनके दुख निवारवे कूं भरत चक्री हैं सो प्रजा कों कर्म भूमिकी रचनाका ज्ञान होवे कूं प्रजा कूं सुखी होनेके निमित्त षट् कर्मका उपदेश देते भए। तिनके नाम व स्वरूप कहिए है। इज्या वार्ता दान स्वाध्याय तप और संयम। ए षट् कर्म हैं। अब इनकी प्रवर्ति कहिए है। तहां भगवान् सर्वज्ञ जगतनाथ कौं तरन तारन जानि पापहरन मोक्षकरन जानि कैं विवेकी भक्तिके

वशीभूत होय आपकौं पाप सहित जानि कर्म सहित जन्म मरण करि दुखिया जानि आप दीन होय विनय सहित, अपने पाप हरवे कूं, भगवान्का पूजन करना। तिनके सन्मुख खड़ा होय, उत्कृष्ट अष्ट द्रव्य सिलाय अपनी काय पवित्र करि, मंत्र सहित प्रभुके चरण आगे धरे। जैसे लौकिकमें निज उत्कृष्ट वस्तु लेय, राजानके सन्मुख जाय, चरण पास धरैं। पीछे राजाकी स्तुति करैं। तैसे ही भगवान्की पूजा-स्तुति किये, पाप क्षय होय। सो तिस पूजाके च्यारि भेद हैं। तिनका नाम-एक तौ प्रतिदिन अष्ट द्रव्य तं भगवान्की पूजा करना, सो नित्यमह है ॥ १ ॥ चतुरमुख पूजा-ये महा पूजा-विधान सो मण्डलेश्वर, महामण्डलेश्वरादि बड़े राजान तैं बनैं है ॥ २ ॥ कल्पवृक्ष पूजा-सो तामें उत्तम नेवज, नेत्र कूं सुखकारी. जाकौं देख देव भी अनुमोदना करैं, ऐसे उत्तम द्रव्य तैं पूजा करनी और ता समय जेते दिन लौं पूजा-विधान आरंभ रहे। तेते दिन सर्व कौं किमिच्छक कहिए मन वांच्छित दान, याचकन की इच्छा-प्रमाण कल्पवृक्षकी नांई दान देना, सो कल्पवृक्ष पूजा है। सो ये पूजा चक्रवर्ती तैं बने है ॥ ३ ॥ अष्टान्हिक पूजा—याका नाम ही इन्द्र-पूजा है। सो या पूजा इन्द्र तैं बने है ॥ ४ ॥ ऐसे च्यारि प्रकार प्रभुकी पूजाका, भरतेश्वर अपने निकटवर्ती राजान कौं तथा प्रजा कूं उपदेश देते भये। याका नाम इज्या क्रिया है। इति इज्या। आगे वार्ता क्रिया कहिए है। वार्ता कहिए, दगावाजी सहित आजीविकाका विचार त्याग करि, न्याय सहित आजीविका पूरी करनी, सो वार्ता है। ताके अनेक भेद हैं। मुख्य-असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प और पशु पालन ए षट् भेद हैं। तहां असि कहिए खड्ग, सो शस्त्र बांध, न्याय पूर्वक, दया सहित, दीन जीवनकी रक्षा करता, दुष्ट जीवन कौं दंड देता, प्रजापालन करै। सो शस्त्र सहित आजीविका करनी, सो असि वार्ता कहिए ॥ १ ॥ मसि कहिए स्याही, तातें धर्म-कर्मके अक्षर लिखनेका व्यवहार करना, पाप रहित न्याय सहित लिखने करि, आजीविका पूर्ण करना। सो मसि वार्ता है ॥ २ ॥ कृषि कहिए, खेती करना। अपनी बुद्धिके वल करि, धरती विषैं अनेक प्रकार बीज बोय, बहुत प्रकार अन्न, मेवा, अनेक रस निपजाय, धनका उपजावना, सो कृषि वार्ता है ॥ ३ ॥ अनेक न्याय सहित वाणिज्य-व्योपार, हिंसा-पाप रहित व्यापार करना। तामें बहुत आरंभ, बहु

हिंसा, असत्य, चोरी, इत्यादिक दोष रहित, भला यश सहित, धनको उपजावनेके निमित्त व्यापार करना। सो वाणिज्य वार्ता है ॥ ४ ॥ जहां अनेक महल-मन्दिर बनावनेकी कला प्रगट करि आजीविका करनी सो शिल्प वार्ता है ॥ ५ ॥ पशु पालन कहिए, अनेक पशुनकी रक्षा करि, तिनके पालवेकी विद्या। पशूनकी पीड़ा पहिचानना, पशु परीक्षा करनी, तिनके शुभाशुभ चिन्ह, वयका समझना. तिनके खान-पानमें समझना,तिनके अनेक रोग समझ, ताकी औषधिका जानना। सो पशु पालन वार्ता है ॥ ६ ॥ ऐसे षट् कर्म-भेद, वार्ता आजीविकाकी विधि, आदि चक्री नैं प्रजाके सुखी होवे कूं, भोग भूमिके बिछुरे भोरे जीव तिनकौं बताई। ता प्रमाण सर्व प्रजाके लोग, अपने तनकी तथा कुटुम्बकी रक्षा करते भये। ये षट् भेद वार्ता कर्मके हैं ॥२॥ ये दोय कर्म तो इस भवके यश सुखकौं उपदेशे। च्यारि कर्म पर-भवके कल्याणकौं, स्वर्ग मोक्षकी राह बतावे कौं उपदेशे। सो कहिये हैं। दोय तो ऊपर कहे। तीसरा कर्म जो दान सो च्यारि प्रकार है। भेषज, अन्न शास्त्र और अभय। सो औषधि दान तैं तो पर-भवमें निरोग शरीर पावे है। अन्न दान करि पर-भवमें सदा अन्न भोजन करि, सुखी रहै। औरन कूं पालनहारा होय। आयु पर्यंत सुखी रहै। शास्त्र दान तैं भवान्तरमें ज्ञानवान् महा पण्डित होय। अभय दान करि, दीरघ आयुका धारी इन्द्र-अहमिन्द्र होय तथा निर्भय जो मोक्ष स्थान ताहि पावै। तातैं च्यार दान दीजिये। सो दुखित भुखित दीननकौं तौ करुणा करि, संतोष सहित, पुचकार करि देना। पात्रनकूं भक्ति करि देना। इस दान करि जीव पर-भवमें बहुत सुखी होय सो ऐसा दान-कर्मका उपदेश किया ॥ ३ ॥ चौथा स्वाध्याय सो जिनवाणीका पाठ, अनेक धर्म-शास्त्रनका अध्ययन करना, सो ऐसा स्वध्याय नाम कर्म उपदेश्या ॥ ४॥ वारह प्रकार तप सो अन्तरंग-बाह्य करि दया भावन सहित, समता भावकी विधि लिये करना, सो तप कर्म है ॥ ५ ॥ तहां पंचेन्द्रिय तथा मनकौं वशीभूत करना षट् कायकी दया करनी। सो द्विविधि संयम बारह प्रकार है। सो उपदेश्या ॥ ६ ॥ ऐसे षट् कर्म भरत चक्री प्रजाका पिता, सो सबके युग-भवके सुखका अभिलाषी, कर्म-धर्मके मारगकौं दीपक समान जो भला उपदेश सो षट्-कर्म रूप उपदेश देय, लोकनकौं सुखी करे। इति भरत चक्रीके उपदेशित षट् कर्म। पीछे भरतनाथ

भरत चक्रवर्तीकों सोलह स्वप्ने आये। तिनका फल चक्रीने श्रीआदिनाथ जिनसे पूछा। तब भगवान्‌ने कही हे राजन्, इनका फल चौथे कालमें नाहीं। आगे पंचम कालमें, इन स्वप्ननका फल प्रगट होयगा। सो कहिये है। प्रथम नाम-प्रथम तौ तेबीस सिंह देखे। दूसरे स्वप्नमें एकला सिंह, ताके पीछे मृगनका समूह गमन करते देखा। तीसरे स्वप्नमें हस्तीका भार धरैं, तुरंग देखा। चौथे स्वप्नमें कागन करि, हंस पीड़ित देखा। पांचवें स्वप्नमें बकरेकूं सूखे पत्र चरते देखा। छट्ठे स्वप्नमें बन्दरकौं हस्तीके कन्धे पर चढ्या देखा। सातवें स्वप्नमें भूत नाचते देखे। आठवें स्वप्नमें एक सरोवर ताका मध्य तो सूखा और तीरमें अगाध जल देखा। नववें स्वप्नमें रत्न राशि रज करि मंडित, कांति रहित देखी। दशवें स्वप्नमें श्वानकूं पूजाका द्रव्य खाते देखा। ग्यारहवें स्वप्नमें तरुण वृषभ दहंकता देखा। बारहवें स्वप्नमें चन्द्रमाकों शाखा सहित देखा। तेरहवें स्वप्नमें दोय वृषभ इकट्ठे होय गमन करते देखे। चोदहवें स्वप्नमें सूर्य विमानकों मेघ पलटसे आच्छादित देख्या। पन्द्रहवें स्वप्नमें छाया रहित सूखा एक वृक्ष देखा। सोलहवें स्वप्नमें जीर्ण पत्रनका समूह देखा। ये सोलह स्वप्न भये। अब इनका अर्थ कहिये है। तहां तेबीस सिंह देखे, तिनका फल ये, जो तेईस तीर्थंकरनके समयमें-तौ खोटी चेष्टाके धारी परिग्रह सहित, जिन धर्म विषैं मुनि नहीं होंयगे ॥ १ ॥ एक सिंह तरन-तारन, ताके पीछे मृगनके समूह गमन करते देखे। तिनका फल ये है। जो अन्तिम चौबीसवें जिन महावीर तिनके निर्वाण भये पीछे यती मृगकी नाईं दीन नग्न परीषह सहवेकौं असमर्थ, सो परिग्रहका धारन कर, यति बाजैंगे। जिन लिंग तज, कुलिङ्ग धरैंगे ॥ २ ॥ हाथीके भार सहित तुरंग देखा ताका फल ये है जो पंचमकालमें साधु, तपके भार करि दुखी होंयगे। तप धारवेकों असमर्थ होंयगे ॥३॥ बकरेकूं सूखे पत्र खाते देखा। तिसका ये फल है। जो ऊंचे कुलके मनुष्य शुभाचार तैं भ्रष्ट होय, खोटा आचार आदरेंगे ॥ ४ ॥ बन्दरकौं हाथीके कन्धै पै चढ़्या देखा। ताका फल ऐसा, जो आदि तैं चला आया जो क्षत्रीनका वंश तिसकी व्युच्छित्ति (नाश) होयगी। हीन कुलके धारी अकुलीन, पृथ्वी पर राज्य करेंगे ॥ ५ ॥ वायसनके समूह करि, हंस पीड़ित देखा। ताका फल ऐसा। जो पंचम-कालमें अज्ञानी भोरे जीव धर्मके अर्थ मुनि धर्म तजिकैं,

अनाचारी-हिंसक जीवनकी सेवा करेंगे। असंयमी कषाई जीवन करि, धर्मात्मा जीव पीड़े जांयगे। पापी जीवन करि, धर्मी जीवनका अपमान होयगा ॥ ६ ॥ भूत नाचते देखे तिनका फल ऐसा। जो पंचम कालमें अज्ञानी जीव भगवान् जानि धर्मके अर्थ भूतादि व्यन्तर देवनकी पूजा करेंगे ॥ ७ ॥ सरोवर मध्यमें सूखा, तीरमें अगाध जल देखा। ताका फल। ऐसा जो उत्तम तीर्थ—स्थानकनमें धर्मका अभाव रहेगा। हीन स्थान-नमें धर्म रहेगा ॥ ८ ॥ रत्न राशि धूलि करि लिप्त देखी। ताका फल ऐसा। जो पंचमकालमें शुक्लध्यानी नहीं होंयगे। धर्मध्यानी केईक रहेंगे ॥ ९ ॥ जिन पूजाका द्रव्य, श्वान खाते देखा ताका फल ऐसा जो पंचमकालमें पात्र की नांईं, अव्रती तथा कुपात्र व अपात्र ये आदर पावेंगे। १०। तरुण वृषभ शब्द करते देखा। ताका फल ऐसा जानना। जो पंचम काल के जीव, तरुण समय में तो धर्म-ध्यानके आदरने विषैं उद्यम करेंगे। परन्तु वृद्ध भये, धर्ममें शिथिल होय, अरुचि करेंगे। ११। चन्द्रमा के शाखा देखीं ताका फल ऐसा। जो पंचम काल में अवधि, मनःपर्यय ज्ञानके धारी मुनि होंयगे। १२। दो वृषभ साथही गमन करते देखे ताका फल ऐसा। जो पंचम काल के मुनि, संघ में रहेंगे। एका-विहारी नहीं होंयगे। १३। सूर्य मेघ पटल करि आच्छादित देखा। ताका फल ऐसा, जो पंचम कालके मुनीनकों केवल-ज्ञान नहीं होयगा। १४। सूखा वृक्ष छाया रहित देखा ताका फल ऐसा। जो पंचम कालके स्त्री-पुरुष शील व्रत धारि, पीछे कुशील सेवेंगे।१५। सूखे पत्रन का समूह देखा, ताका फल ऐसा। जो अन्न आदि औषधि हैं तिनका रस जायगा, सर्व औषधि नीरस होंयगी। १६। ऐसे भगवान वृषभदेवने कही, कि भो चक्रेश्वर! इनके फल अब नाहीं। आगे पंचमकाल के उतारमें दिखेंगे। इति भरत चक्रवर्ती के स्वप्न-फल समाप्त। आगे पंचम काल में भोरे जीव अपनी बुद्धि तैं कल्पना करि, अनेक प्रकार भगवान कूं स्थाप्य कैं पूजेंगे, बहुविधि तैं भगवान् के भेद कहेंगे। तातैं शुद्ध भगवानके जानवे कौं, भगवान के गुण कहिए हैं। जिनमें ये गुण होंय, सो शुद्ध भगवान हैं। जिनमें ये गुण नाहीं होय, सो शुद्ध देव नाहीं। ये अतिशय जामें होंय, सो शुद्ध तरन-तारन जानना। सो प्रथम अतिशय तीन हैं। वचन अतिशय, आत्म अतिशय और भाग अतिशय। इनका अर्थ—जाकी

वाणी मेघ समान अनक्षरी, अनुक्रम रहित खिरै सो अपनी-अपनी भाषामें सब बारह सभाके जीव समझैं। सर्वका संदेह जाय, संशय रहै नाहीं। जाकौं सुनि, भव्यका कल्याण होय। पाप नाश होय पुण्य-फल उपजै सो बचन अतिशय है ॥ १ ॥ कर्मके क्षय तैं प्रगट्या जो अनन्त चतुष्टय-अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन अनन्तसुख और अनन्तवीर्य सो ये आत्म अतिशय है ॥ २ ॥ गर्भके पहिले, रत्नोंकी वर्षाका होना, नगर सब रत्नमई होना, इन्द्रादिक देव सेवा करैं। केवलज्ञान-स्वभाव प्रगट भये, समोशरण विभूतिका प्रगट होना। इत्यादिक महिमा सो भाग्य अतिशय है ॥ ३ ॥ ऐसे तीन अतिशय जिनमें होंय, सो भगवान् हैं। इति तीन अतिशय। आगें भगवान्की माताकौं गर्भके पहिले, सोलह स्वप्न आये हैं। तिनके नाम व लक्षण कहिये हैं। प्रथमनाम-ऐरावत हस्ती, श्वेत वृषभ, सिंह पुष्पमाला लक्ष्मी कलश स्नान करती देखी, पूर्ण चन्द्रमा सूर्य कनक कलश, मच्छ युगल सरोवर सागर सिंहासन स्वर्ग बिमान धरणेन्द्र विमान रत्न राशि और निर्धूम अग्नि। ये सोलह स्वप्न भगवानकी माताने देखे है। अब इनका सामान्य फल कहिये है। प्रथम ऐरावत हस्ती देखा। ताका फल ऐसा, जो पुत्र महान् पुण्यका धारी, सब तैं ऊँचा होयगा ॥१॥ और श्वेत बृषभ देखा ताका फल ऐसा जो पुत्र धर्मका धारी, जगत्-पूज्य होयगा ॥ २ ॥ और सिंह देखा। ताका फल ऐसा जो पुत्र अनंत बलका धारी होयगा ॥ ३ ॥ पुष्पमाला देखी। ताका फल ऐसा जो पृथ्वीमें धर्मको प्रगट करनहारा होयगा ॥ ४ ॥ लक्ष्मीको कलश स्नान करती देखी। ताका फल ऐसा जो पुत्रका सुमेरु पर्वत पै स्नान होयगा ॥ ५ ॥ पूर्ण चन्द्रमा देखा। ताका फल ऐसा जो तीन लोकके जीवनकों आनन्दकारी होयगा ॥ ६ ॥ सूर्य देखा ताका फल ऐसा जो महा प्रतापी होयगा ॥ ७ ॥ कनक कलश देखा। ताका फल ऐसा। जो अनेक निधिका भोगता होयगा ॥ ८ ॥ ता पीछे मच्छ-युगल देखा। ताका फल ऐसा जो अनेक सुखका भोक्ता होयगा ॥ ९ ॥ सरोवर देखा। ताका फल ऐसा १००८ लक्षणका धारी होयगा ॥ १० ॥ पीछे कल्लोल करते समुद्र देखा। ताका फल ऐसा जो केवलज्ञानका धारी होयगा ॥ ११ ॥ पीछे सिंहासन देखा। ताका फल ऐसा जो बड़े राज्यका भोगता होयगा ॥ १२ ॥ पीछे स्वर्ग विमान देखा। ताका फल ऐसा जो स्वर्ग तैं चय कैं अवतार लेयगा

॥ १३ ॥ पीछे पाताल तैं निकसता धरणेन्द्रका विमान देखा। ताका फल ऐसा जो जन्म तैं ही ताकैं अवधिज्ञान होयगा ॥ १४ ॥ पीछे रत्न राशि देखी ताका फल ऐसा, जो गुणका निधान होयगा ॥ १५ ॥ निधूम अग्नि देखी। ताका फल ऐसा, जो अष्ट कर्मनका जारनहारा होयगा ॥ ॥ १६ ॥ ऐसे भगवान्के अवतार होनेके पहिलेके सोलह स्वप्नोंका फल जानना।

इति श्री सुदृष्टितरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये राजानके गुण तथा चौदह विद्या, तीर्थंकरकी माताके सोलह स्वप्न, इत्यादिक कथन वर्णनों नाम, इकतीसवां पर्व सम्पूर्णम ॥ ३१ ॥

आगे भगवान् वृषभदेवने जन्म पीछे तेरासी लाख पूर्व राज्य किया। तामैं भगवान् दीर्घ पुण्यका फल दशधा भोग भोगि कैं सुखी भये। तिनके नाम प्रथम मन वांच्छित रत्न ज्योतिषी देवनकी प्रभाकौं जीतनेहारे अनेक वरनके तिनके सुख भोग ॥ १ ॥ नव निधिकौं आदि लेय, परम सम्पदाके भोग ॥ २ ॥ महासती, शचीके रूपकौं जीतनहारी आज्ञानुसारी, विनय सहित अनेक मन मोहन चेष्टाको धारनहारी सुन्दर रानीका भोग ॥ ३ ॥ अनेक सम्पदा करि भरे नगर देश तिनके राज्यका भोग ॥ ४ ॥ देव विद्याधर भूमि गोचरो राजान सहित अनेक महान् पुरुषन करि वंदनीक हस्ती घोटक पयादे इन षट् प्रकार सेन्याके ईश्वर ताके भोग ॥ ५ ॥ महान् सुगंधता सहित, अनेक रत्न मई कोमल शैय्याके भोग ॥ ६ ॥ रत्नमई सिंहासन तख्त, बैठनेके स्थान महा उदार, उत्तम मन्दिरनके भोग ॥ ७ ॥ अनेक रत्नमई, स्वर्ण चांदी आदि अनेक मनोहर धातुके अनेक आकारके वासनके भोग ॥ ८ ॥ नाना प्रकार षट्रस मई अनेक भोजन-व्यंजन, जिह्वा रंजित वस्तुके खावनेके भोग ॥ ९ ॥ देव देवी, मनुष्य स्त्रीनके गाये बजाये अनेक सुन्दर स्वर सहित संगीत, गान, नृत्यादिक, अनेक राग रंगके भोग ॥ १० ॥ ऐसे दश प्रकारके भोग, देवाधिदेव वृषभनाथ जिनने राज्यावस्थामें भोगे सो अतिशय पुण्यका फल जानना। इति दश जाति भोग ॥ आगे सहज षट्-गुण पुण्यवान्के परखवेकौं बताइये है। एक तौ आप, सर्व जगतके देव-मनुष्यन करि पूजनीक पदके धारी, सब तैं बड़े होंय। अरु अपने बड़प्पनका मान नहीं करैं ये महा पुण्यका फल है। हीन पुण्यी, अल्पसा भी लोकमें आदर-सत्कार

पावै तौ मान करै। पुण्यवान् बड़ा भी सत्कार पावै, तौ भी मान नहीं करै ॥ १ ॥ हीन पुण्यी अल्पसा सत्य बोलै तो मान करै। कहै, हम जैसा सत्यवादी और नाहीं पुण्यवान्का सहज ही सत्य बोलवेका स्वभाव होय है। तातैं पुण्यवान् सत्य बोल मान नाहीं करै। ये पुण्यवान्का दूसरा भेद है ॥ २ ॥ हीन कुली, तुच्छ पुण्यी, अल्पसा पुरुषार्थ पाय मान करै। दीन जीवनकौं पीड़ै भय बतावै। कहै हमसे बलवान् पुरुषार्थी और नाहीं। ऐसा कहि अभिमान करै। जे महान् पुण्यी हैं ते बड़ा भी बल पराक्रम धार, मान नाहीं करैं। दीन जीवनकी रक्षा करैं। ये तीसरा पुण्यवान्का चिन्ह है ॥ ३ ॥ हीन पुण्यी, महा रौद्र—परणामी अन्तरंगमें तो महा निर्दय भाव अरु बाह्य लोक दिखावैकौं दान देय दया करि मान करै। कहै हम दयावान् हैं। जे दीरघ-भागी हैं वे सहज ही कोमल चित्तके धारी महा दया भाव करि भी मान नहीं करैं। ये चौथा पुण्यका फल है ॥ ४ ॥ अल्प पुण्यका धारी, अल्प दान देय कैं कहै हमसे दाता और नाहीं। ऐसा मान करै। दीरघ पुण्यी सहजही चित्तका उदार, दयावान बड़ा दान करै भो, मान नहीं करै। ये पुण्यका पांचवां चिन्ह है ॥५॥ हीन पुण्यी अल्पसा हो विरक्त होय मान करै। कहै हम त्यागी हैं, हमें कछु भी वांच्छा नाहीं। और जे बड़भागी-महान् पुण्यी हैं। ते अनेक भोग—सम्पदा पाय, तासें उदास रहैं। मान नहीं करैं। ये पुण्यका छट्ठा चिन्ह है ॥ ६ ॥ जो इन षट् बातनमें मान नहीं करै, सो ये पुण्यका फल है। इति षट् गुण सो ये भगवान् विषैं पाईये है। भगवान्, राज्य अवस्थामें इन्द्रके ल्याये अनेक आभूषण-रत्न मई आभूषणान कौं अलंकृत करि, भूषणान कौं शोभा देते भये। सो आचार्य कहैं कि जो अपने आश्रय आवे ताकों यशवंत करै, भला दिखावै। भगवान्के तनका आश्रय आभूषणानने लिया, सो आभूषण भले शोभते भये। तिन सर्व आभूषण में मुख्य हार है। सो हारके अनेक भेद हैं। सो ही कहिये हैं। हारके तीन भेद हैं, एकावली जिष्टी हार, रत्नावली जिष्टी हार, और अल्पवृत्तक। ये तीन भेद, हारके हैं। तहां जिष्टीके पांच भेद हैं। सीरख, उपसीरख, अवघाट, प्रकांडक और तरल-प्रबंध। ये पांच जिष्टी हारके भेद हैं। सो जिष्टी नाम लड़ीका है। हारमें जेती लड़ी होंय, तिनकौं जिष्टी कहिये। सो लड़के पांच भेद है। तहां जिस हारमें केवल मोती ही मोतीन

की लड़ी होय, सो एकावली जिष्टी हार कहिये ॥ १ ॥ और जाके मध्यमें तो मणि होय और दोय तरफ मोती हौंय, सो रत्नावली नामा जिष्टी हार है ॥ २ ॥ और जामें दोय मोती एक मणि, ऐसे जो लड़ी पोई होय। केईमें तीन मोती, एक मणि। तीन-तीन मोतीन के अन्तरमें एक-एक मणि होय। तथा च्यारि-च्यारि मोती और एक मणि पोई गयी होय। तथा पांच-पांच मोती और एक मणि ऐसे पोई गई होय, सो इनका नाम अपवृत्तक है। यहां मणिके दोय भेद हैं। एक मणि, और दूसरा माणिक्य। तहां जामें छिद्र होय, सूत में पोई जाय, सो तो मणि कहिये। और जो छिद्र रहित होय, स्वर्णमें जड़्या जाय, सो माणिक है। सो जा लड़ीमें एक मोती, एक मणि और एक माणिक्य होय, सो भी अपवृत्तक नाम हार है॥ ३ ॥ जहां जा लड़ी के सर्व मोती तौ बराबरके हौंय, अरु मध्यमें एक बड़ा मोती होय। ताकों सीरख नाम लड़ीका हार कहिये ॥ १ ॥ जामैं मध्यमें तीन बड़े और अन्य बराबरके मोती हौंय, सो उपसीरख कहियो है ॥ २ ॥ जाके मध्य में पांच बड़े मोती हौंय, सो प्रकाण्डक नामा जिष्टी हार कहियो है ॥ ३ ॥ जाके मध्यका मोती तौ बड़ा होय। दो तरफके मोती क्रम तैं छोटे-छोटे हौंय, सो अवघाटक नाम जिष्टी कहिये ॥ ४ ॥ जामें सर्व मोती समान हौंय, सो तरल-प्रबंध नाम जिष्टी है ॥ ५ ॥ ये पांच जाति की लड़ी हारनमें होय हैं। सो तिन हारनके ग्यारह भेद हैं सो ही बताईये हैं। तिनके नाम-अर्ध मानव, मानव, अर्ध गुच्छ, निषत्रमालिका, गुच्छ, रम्यकलाप, अर्ध, देवछंद, हार, विजयछंद, और इन्द्रछंद। ये ग्यारह प्रकारके हार हैं। सो इनके पहिरने हारेनके पदस्थ कहिये हैं। तहां दश लड़ीका हार, सो तो अर्ध मानव हार है। १। और बीस लड़ीका, हार, सो मानव नाम हार है। २। चौबीस लड़ीका हार, सो अर्ध गुच्छ हार है। ३। सत्ताईस लड़ीका हार सो निषत्रमालिका हार है। ४। बत्तीस लड़ीका, गुच्छ नाम हार है। ५। चौवन लड़ीका, रम्यकलाप नाम हार है। ६। चौंसठ लड़ीका अर्धहार है। ७। इक्यासी लड़ीका, देव छंद नाम हार है। ८। एकसौ लड़ीका हार, सो हारनामा हार है। ९। जो पांच सौ च्यारि लड़ीका होय, सो विजय छंद नामा हार है। १०। एक हजार आठ लड़ीका होय, सो इन्द्र छंद नामा हार है। ११। ये ग्यारह भेद कहे। सो इनमें पहिले कहे

जो नव भेद, सो इन हारन कौं महा मण्डलेश्वर राजा तांई पदवारे पहिरैं हैं। दशवां बिजय छंद हारकौं नारायण-प्रतिनारायण पदके धारी पहिरैं हैं। जो इन्द्र छंद नामा हार है सो देव, इन्द्र, चक्री पहरैं ये भगवानके निकटवर्ती सेवक हैं, सो ये पहिरैं। तथा इन देव-इन्द्रनके नाथ तीर्थंकर पहिरैं। एक हजार आठ लड़ीका हार, देवो पुनीत है। ताहि पहिरैं जिन देव ऐसे सोहते भये, मानों सर्व ज्योतिषी देव मिलि कैं, भगवान्की भक्ति करवे कौं, निकटही आये हों। ऐसे भगवन् वहुत काल पर्यंत राज्य करि, ता पीछे तप लेय, केवल-ज्ञान पाय, समो-शरण सहित विहार कर्म करि, धर्मोपदेश देते भये। तिनकूं सुनि बारह सभाके धर्मार्थी जीव, धर्म मारग लागते भये। सो तिन बारह सभाके नाम कहिये हैं। प्रथम सभामें कल्प-वासी देव, दूसरीमें ज्योतिषी देव तीसरीमें व्यन्तर चौथीमें भवनवासी देव पांचवींमें कल्प-वासी देवियां छठीमें ज्योतिषी देवांगना सातवींमें व्यंतर देवोंकी देवियां आठवींमें भवनवासी देवियां नववीं सभामें मुनि दसवीं में आर्यिका व सर्व स्त्री, ग्यारहवींमें मनुष्य, बारहवींमें सर्व जातिके सैनी पंचेन्द्रिय तिर्यंच। इन बारह सभासहित, भगवान् मोक्ष-मारग प्रगट करते, जगत्-जीवनके पुन्यके प्रेरे उनके कल्याणके अर्थि, विहार करते भये। सो अनुक्रम तैं कैलाश पर्वत पर आये। जब भगवानके निर्वाण होनेमें चौदह दिन बाकी रहे, तब भरत चक्री आदि आठ मुख्य महान् राजा, तिनकूं शुभ स्वप्न भये। तिनके नाम व चिन्ह बताइये हैं। जिस दिन भगवानने योग निरोधे, उस दिनकी रात्रि विषैं भरतेश्वर चक्री कूं ऐसा स्वप्न हुआ कि मानो सुमेरुपर्वत ऊंचा होय, सिद्ध क्षेत्रतैं जाय लग्या है ॥ १ ॥ भरत जीके पुत्र अर्ककीर्ति, ताकूं ऐसा स्वप्न भया। कि स्वर्ग लोकके शिखर तैं एक महान् औषधी का वृक्ष आया था, वह जगत्-जीवनके जन्म-मरणका दुख खोय कैं, अब लोकके शिखर जायवे कौं उद्यमी भया है ॥ २ ॥ भरत चक्रीका ग्रहपति-रत्न, तिस कूं ऐसा स्वप्न भया, कि ऊर्द्ध लोक तैं एक कल्पवृक्ष आया था, वह जीवन कौं मन-वांछित फल देय कैं, पीछा स्वर्ग लोकके शिखर जायगा ॥ ३ ॥ चक्रीका मुख्य मंत्री, ताकौं ऐसा स्वप्न आया कि लोकनके भाग्य तैं एक रतन दीप आया था सो जिनकूं रतन लेवे को इच्छा थी तिनकूं अनेक रतन देय कैं, पीछे ऊर्द्ध लोक कौं, गमन करेगा

॥ ४ ॥ भरत जीके सेनापति कौं ऐसा स्वप्न आया कि एक अनंतवीर्यका धारी मृगराज, अद्भुत पराक्रमी, सो कैलाश पर्वत रूपो वज्रका पींजरा ताकौं छेद करि, उर्द्ध विषैं उछवले कौं उद्यमी भया है ॥ ५ ॥ जय-कुमार जीका पुत्र अनंतवीर्य, ताकौं ऐसा स्वप्न आया कि एक अद्भुत चद्रमा, अनंतकलाका धारी, जगत् विषैं उद्योत करि, तारानि सहित, ऊर्द्ध लोक कौं जायवे कौं उद्यमी भया है ॥ ६ ॥ भरत चक्रीकी पटरानी सुभद्रा ताकूं ऐसा स्वप्न आया कि वृषभदेवकी रानी यशस्वती अरु सुनंदा ये दोऊ, तथा इन्द्रकी पटरानी शची ए तीनों मिलकर बैठो, सोच करती हैं ॥ ७ ॥ काशी देशका राजा चित्रांगदत्त कौं ऐसा स्वप्न आया जो अद्भुत तेजका धारी सूर्य, पृथ्वी विषैं उद्योत करि, ऊर्द्ध लोककौं गया चाहै है ॥ ८ ॥ ऐसे आदिनाथ स्वामीके निर्वाण सूचक आठ स्वप्ने, आठ पुरुषन कौं आये। जिन स्वप्नोंका स्मरण-पाठ किये, भव्यनका कल्याण हो है। ये श्रीआदिदेव, पृथ्वीके आदि नायक भये। इनतैं ही धर्मकी मर्यादा चली है। तातैं ये भगवान् सर्व जगत्के नायक हैं। सो नायकके तीन भेद हैं। सोही बताईये हैं। तिनके नाम-देश नायक, घर नायक और मन नायक। अब इनका अर्थ-जो देश नायक तौ राजा है। सो देशका राजा धर्मी होय, तौ देशके जीवन कूं धर्म-राह लगाय, धर्मी करै। देशमें-जो धर्मी दान पूजा, शील संयम, तपके धरनहारे, तिनकी रक्षा करै। जे अपने देशमें पापी, अन्यायी, चोर, दुराचारी जीव होंय, तिनकूं दंड देय। सो तौ देश नायक धर्मात्मा कहिये जो देश नायक पापी होय तौ पापकौं अपने देशमें विस्तारै। चोर चुगुल अन्यायपथके चलनेहारे जीव तिनकी रक्षाकरै। अरुता देशमें साधुपुरुष भले मारगके चलनहारे तिनकूंपीड़ा होय। तातैं जैसा देश नायक होय तैसा ही देशमें चलन प्रगटै। येतौ देश नायक जानना॥१॥ जो देशनायक पापी होय पाप बन्ध करै। ताकी तो सो ही जानैं। परन्तु देशमें घर बहुत होय हैं। सो जा घर विषैं सर्व कुटुम्ब का रक्षक, जो सर्वकौं अन्न-वस्त्र देय सबकी रक्षा करै, सो घर नायक कहावै। सो घर नायक धर्मात्मा होय, तौ सर्व घरकौं धर्म रूप चलावै, सबका भला करै। घर नायक पापी होय तौ ताके घर जन भी पाप रूप प्रवृत्तैं। ए घर नायक कह्या ॥ २ ॥ घर नायक कदाचित् पापी होय तौ होऊ ताका फल वही भोगवेगा। परन्तु

मन नायक आत्मा है सों जाका आत्मा भली गतिका जाननेहारा होय सो अपने मनकौं सदैव धर्म रूप राखै। और जाका आत्मा पापी होय, सो अपने मनकौं आर्त-रौद्र रूप राखै। पाप बन्ध करि पर भव बिगाड़ै है॥३॥ ऐसे ये नायकके तीन भेद कहे। सो देश नायक, घर नायक तौ अपने पुण्यके प्रमाण रहना योग्य हैं। और मन नायक सदीव है, सो अपने मनकौं सदा-काल धर्म रूप राखना उचित है। इति नायकके तीन भेद। आगे अणुव्रती श्रावकके तीन भेद हैं। पाक्षिक, साधक और नैष्ठिक। अब इनका विशेष दिखाईये है। जे धर्मात्मा पुरुष राजादिक बड़े बलके धारी धर्मकी रक्षा तथा धर्मी जीवनकी रक्षाके करनहारे, जिनके राज्यमें धर्मात्मा जीवनकूं कोई पीड़ित नहीं करि सकै। महा धर्मात्मा, धर्मके पक्षी इन्हें पाक्षिक श्रावक कहिये। जैसे तीर्थंकर, चक्री, अर्द्ध चक्री,कामदेव प्रति चक्री, बलभद्र महा मण्डलेश्वर, मण्डलेश्वर इत्यादिक महान् राजा, पृथ्वी नाथ, दया मूर्ती, न्याय मार्गी, जिनके भय तैं कोई क्रूर जीव धर्मकूं धर्मी जीवनकूं सता नहीं सकैं। मुनि-श्रावकनकों कोई दुष्ट पीड़ा नहीं करि सकै। चैत्यालयनका बनमें कोई अविनय नहीं करि सकै। ऐसा जिनका भयका कोई कुवादी झूठा नय-दृष्टान्त देय सत्य धर्म तैं झूठे धर्मकी प्रवृत्ति चाहै तौ अपने ज्ञानके प्रकाश तैं, बुद्धिके बल तैं न्याय मार्ग करि सर्व जगत जीवनके कल्याणकूं कुधर्म उखाड़ि सुधर्म प्रवृत्ति राखै, सो पाक्षिक श्रावक है ॥ इनके राज्यमें पाप नहीं बधै ॥ १ ॥ दूसरा साधक-जे धर्मात्मा श्रावक जिनकौं धर्म साधन करते बहुत काल भया सो इन्द्रिय-भोगन तैं विरक्त होय, तनके जीतव्य तैं निष्प्रह भया, अपना आयु-कर्म नजदीक जान कैं ये मोक्षाभिलाषी पर-भव सुधारवे कौं सर्व जीवन तैं क्षमा-भाव करि, अरु घर, धन, धान्य, कुटुम्बादि स्व-पर जन तैं मोह-ममता भाव तजि अपनी काय तैं ममत्व छोड़ि, च्यारि प्रकारका आहार त्याग, पञ्च परमेष्ठीका स्मरण करता, तत्वनका विचार करता धर्म—ध्यान सहित सन्यास लेय, तिष्ठ्या यति ऋषि होय। सो साधक जातिका श्रावक है ॥ २ ॥ तीसरा भेद नैष्ठिक, ताके ग्यारह भेद हैं, सो बताईये है ॥ प्रथम नाम—

गाथा—दंसण वय सामायो पोसय सचित्त रयण भत्त त्यागो। वंभारंभ हेय परिग्रह अणमत्त उदिट्ठ त्याज सागारो ॥ १३६ ॥

बुरे जानै, परन्तु चौपड़ कूं जुआ में कही, सो इस में कहा पाप है ? ताका समाधान-जो हे भव्य ! एक तौ चौपड़, झूंठ वचनन की खानि है। कुफर-लज्जा रहित वचन यामैं बहुत होंय हैं। मुख तैं मारही मार शब्द निकसै। चित्त दगारूप रहै। चोर समान प्रवृत्तै। तातैं इन आदिक बड़े पाप, या चौपड़ में हैं। तातैं तजने योग्य कही है। तब द्यूतकार फेरि प्रश्न करता भया जो चौपड़ हमने बुरी जानी। परन्तु सतरंजमें पाप कहा है, सो कहो तामें मौन सहित, वचन रहित, नेत्रन तैं देखना हो है। सो पाप कैसे है ? ताका समाधान-जो हे भ्रात ! सतरंज विषैं चौपड़ तैं विशेष पाप है। सो तैं सुनि। या विषैं परणति अरु वचन तो रौद्र—भाव रूप रहैं हैं। ऐसे भाव रहैं हैं, जो बादशाह तैं वजीर जीतौं। हस्ती तैं, घोटक मारौं। इत्यादिक पंचेन्द्रिय घातक भाव रहैं हैं। तिनहीके मारवेका विकल्प रहै है सो ऐसे भावन मैं तो नरक जाय। तातैं विवेकीन कौं सतरंज तजना ही योग्य है। तब फेरि भी द्यूतकार ने प्रश्न किया। जो सतरंज पापकारी है, सो हमें भासी। परन्तु गंजफामें कहा पाप ? सो कहो। ताका समाधान-जो हे भाई ! तू विचार। जो कोई दोय कौड़ी हारै, तो लोक कहैं, यह बड़ा ज्वारी है। वाकौं भी चिन्ता होय, जो मैं हारया हों। ताके भीयोग तैं जगतमें अपयश पावै तो हे भाई ! जो गंजफाके खेलमें राज्यके राज्य हारै, ताको चिंता अरु पापको कहा कहनी ! जहां अशर्फी हारया, रुपया हारया, तरवार हारया, बगीचे हारया, स्त्री हारया, गुलाम हारया, सिरका ताज हारया, इत्यादिक सब घरका सरजाम स्त्री-वाहनादि धन हारे। ताके दुखको-पापको कथा, कहांताईं कहिये ! तातैं कुगति दुख तैं डरि, गंजफा भी तजना योग्य है। तब द्यूतकारने कही। गंजफा भी पाप रूप है, सो हमने जान्या। परन्तु अल्प से धन से मूठि-दाव विषैं खेलना, यामैं कहा पाप ? सो कहो ? ताका समाधान-जो हे भव्य ! मूठीका खेल है सो लौकिकमें लुच्चेनका है सो प्रथम तौ जो देखै, सो लुच्चा कहै। चोर-ज्वारी कहै। हारै, तौ चोरी करनेका उपाई होय। तातैं हे भव्य ! ऐसे भावनमें बड़ा पाप होय। यामें ऐता. पाप लेके, अपयश लेके खेलिये, सो बड़ाई कहा ? सो विचार देखो। इस भव निंदा, अरु पर-भव दुर्गतिके दुख होंय। तातैं तजना ही योग्य है। तब द्यूतकार बोल्या। जो जुवा तो पाप-मई जान, मैंने तजा। परन्तु ब्याजके

निमित्त द्यूतवारेन कूं कर्ज देना, यामैं पाप कहा ? ताका समाधान-जो हे भव्यात्मा ! जुआका धन ही महा पापकारी है। जैसा पाप, द्यूत रमनेमें होय। तैसा ही पाप, ताके धन लेनेमें होय है। तातैं मन, वचन, काय करि तजना योग्य है। तब द्यूतकारका चित्त द्यूतमें पाप जानि, शंका कौं प्राप्त भया-डर्‌या। तब फेरि प्रश्न किया जो जुआमें तौ पाप है, सो हमने तजा। परन्तु जीते पै लेंय, तामैं तौ पाप नाहीं है ? ताका समाधान-जो हे भाई ! आपको देनेहारा होय, ताकी तौ जीत चाहै। आप कौं नहीं देय, ताकी हार चाहै। ऐसे परकी हार-जीत रूप परणाम राखै। सो अल्प भोगके योगके निमित्त तैं, पराया बूरा चाहै। सो पापी ही जानना। तातैं जीते पै द्रव्य लेना, योग्य नाहीं। तब द्यूतकार कही, द्यूतकी जीतका माल भी नहीं लेंय। परन्तु हमारे घर विषैं ठाम बहुत है, सो रात्रि कौं बेठने कों जगह देय, भाड़ा प्रमाण, जीते पै द्रव्य लेंय, तौ कहा दोष ? सो कहो। ताका समाधान-हे भाई, द्यूतकार कौं घर ल्याय जुवा खिलावै। सो तो प्रत्यक्ष पाप है। तिनका सहाई होय जुवा रमावै, सो द्यूत कैसा पाप पावै है। हे भव्य, जाका संग किये ही पाप लागै। तौ घर ल्याये, मंगल कहां तैं होय ? तातैं घर ल्याय, सहाय करि द्यूत रमावना, योग्य नाहीं। तब द्यूत-कार ने कहीं, घर ल्याये भी पाप है, सो जान्या। सो नहीं ल्यावैं। परन्तु हमारो देखनेकी अभिलाषा रह्या करै है, सो देखनेमें पाप कहा ? ताका समाधान-हे भाई ! देखनेमें पाप बहुत है। खेलनहारेका तौ घर-धन लागै है। सो तो व्यसनी होय, लज्जा छोड़ि, जग-निन्दा अंगीकार करि, द्यूत खेलना शुरू किया। सो तो लोभके योग तैं, ताकौं तौ अर्थ-पाप लागै है। देखनेहारेका आवना-जावना तो कछु भी नाहीं। अरु वृथा ही विना प्रयोजन, पाप विषै काल लगावै। सो याकों अनर्थदण्ड-पाप होय है। सो अर्थ-पाप तैं अनर्थ-पापका फल, विशेष दुखदाई जानना। ऐसा जानि, द्यूत देखना भी तजना योग्य है। तातैं द्यूत देखना, द्यूतखेलना, द्यूतका ब्याज लेना इत्यादिक द्यूतकैं सर्व कार्य, पापके दाता हैं। हे भव्य ! ये द्यूत, सर्व पापका राजा है। निन्दा-अपयशका समूह है। याके रमैं, निरादर होय है। द्यूत, कोई प्रकार भला नाहीं। आगे पाण्डव-युधिष्ठिर ने द्यूतक्रीड़ा करी। ताके फल राज्य गया। वनवास रहे। दुख पाया। अपयश बधा। औरों ने भी जगत

अर्थ—दंसण वय सामायो कहिये, दर्शन व्रत सामायिक। पोसय सचित्त रयण भख त्यागो कहिये, प्रोषध सचित्त व रात्रि भोजन त्याग। बंभारंभ हेय परिग्गह कहिये ब्रह्मचर्य्य, आरंभ त्याग, परिग्रह त्याग। अणमत्त उदिट्ठ त्याज सागारो कहिये अनुमति त्याग, उद्दिष्ट त्याग ये ग्यारह भेद नैष्ठिक श्रावकके हैं। भावार्थ—ये ग्यारह प्रकार प्रतिज्ञा पञ्चम गुणस्थान धारी नैष्ठिक श्रावकको हैं। तहां जाके सम्यक्त्वको पचीस दोष नाहीं लागैं और सप्त व्यसनका त्याग। पंच उदम्बर तीन मकार इन आठका त्याग सो अष्ट मूल-गुण हैं। सो इनके अतिचार रहित शुद्ध व्रत, सो प्रथम दर्शन-प्रतिज्ञा है। अब इनके अतिचार कौं बताईये हैं। सो प्रथम सम्यक्त्वके अतिचार कहिये हैं। सम्यकत्वके आठ दोष मद दोष आठ अनायतन षट् और मूढ़ता तीन इन पचीसके होते सम्यक्त्व मलिन हो है। सो इनका स्वरूप ऊपर कह आये हैं। और द्यूत, मांस, भक्षण, सुरा पान वेश्या गमन शिकार चोरी और पर स्त्री सेवन ये सात व्यसन हैं। सो जामें आत्माके भाव बहुत एकाग्र होय मगन होना, सो व्यसन है। ताके सात भेद कहे। इनमें द्यूत मांस सुरापान चोरी और शिकार इन पांच व्यसनका पाप तौ लोभ कषाय तैं होय है। और वेश्या, परदारा इन दो व्यसनका पाप काम-कषाय तैं होय है। ये व्यसन कषायन तै होंय हैं। सो कषाय बताईये हैं। हे भव्य! लोभ और काम ये दोऊ कषाय सर्व पापनका बीज जानना। जगतमें जेते पाप हैं ते इन दोई कषायन तैं होंय हैं, ऐसा समझ लेना। इन लोभ अरु कामके वशि जीव, पिता पुत्रकौं मारै। पुत्र पिताकौं मारै। भाई, भाईकौं मारै। तातैं सर्व दुख, संकट और अपयशका मूल ये कषाय हैं। देखो, कामके माहात्म्य तैं रावण मरा, और लोभ तैं भरत चक्रवर्तीका मान भंग भया। इत्यादि अनेक स्थानन पै लगाय लेना। सो जेते पाप हैं तेते सर्व काम और लोभ तैं होय हैं। तातैं इन काम अरु लोभ तैं उपजे सात व्यसन सो ए भी महा पापका मूल हैं; ऐसा जानना। बड़ फल, पीपल फल, उदम्बर फल, कठूम्बर फल और पाकर फल, ये तो पंच उदम्बर हैं। मद्य, मांस, मदिरा ये तीन मकार हैं। ये आठ हैं, सो इनके अतिचार सप्त-व्यसनमें गर्भित हैं, सो जान लेना। तिनका आगे कथन करेंगे। अब प्रथमही द्यूत व्यसनके अतिचार कहिये हैं। तहां चौपड़का खेल

है, सो असत्य का मन्दिर कुफरका बोलनेहारा, द्यूत खेल है सतरंज है सो ता विषैं ऐसे पाप वचन, मनका विकल्प रहै है जो राजा मारौं, हाथीमारौं घोड़ा मारौं, ऊंट मारौं, वजीर मारौं, पयादा मारौं। इत्यादिक मन-वचन-काय करि पंचेन्द्रियके घात रूप भाव-चेष्टा करनाहारा, सतरंज जुआ है नरदका खेल है, सो दीरघ द्यूतका कारण है। गंजफाका खेल है सो ता विषैं राज्य के राज्य हारिये है। महा दगावाजी के या खेल तैं कुभावना रहै है, ये भी द्यूत है मूठी जो आप दाव लगाय खेले, सो प्रत्यक्ष निन्दा का कारण द्यूत है। परस्पर होड़ लगायके रमना, सो द्यूत है। मूठी भरके ऊंना-पूरा मांगना, सो द्यूत है। कौड़ी नभ (आकाश) में फैंक उल्टी-सूधी नाखि, हारि-जीत करना, सो भी द्यूत है। नव कंकरीन तैं चिरभरि (वग्घा) खेलना भी द्यूत है। पोड़स कांकरीन तैं राजा-रानी खेलना, सो द्यूत है। होड़ लगाय मुट्ठी तैं नारियल फोड़ना, और हाथ तैं लाठी-लकड़ी तोड़ना, सो भी द्यूत खेल है। और होड़ वदिकैं पाषाणादि भार उठाना, सो भी द्यूत है। भीती उछलना, सो भी द्यूत है। कुंआ, वावड़ी, दीवालादि पेंढ लगाय वैं कूदना, सो जुआ है। होड़ लगाय माग चलना-भागना, सो भी द्यूत है। दूसरों को खेलते देखना, सो भी द्यूत सम पाप है। द्यूत कार्यन तैं व्यापार करना, सो द्यूत सा पाप है। ज्वारी पै तैं जीत लेना, सो द्यूत सम पाप है। द्यूतकारकी वस्तु सस्ती देख, लेना। इन आदि क्रियानमें द्यूत समान पाप उपजे है। ज्वारी की वस्तु गहना राखि, वहुत व्याज लेना। और भी जो द्यूत समान पापकी करनहारी क्रिया, सो विवेकीन कौं तजना योग्य है। द्यूतकारन का संगही सर्व प्रकार पापकारी है। विष व शस्त्र तैं घात भली, सर्पके मुख में हस्त देना भला, परन्तु द्यूत–संगति भली नाहीं। कैसी है द्यूत संगति. जातैं प्रतीति जाय, धन जाय, लोक विषैं अनादर होय, बड़प्पन नाश होय, अगला किया पुण्य नाश होय। तातें हे भव्य ! ये द्यूत—संग भला नाहीं, तजना ही योग्य है। इस द्यूतके रमने तैं लोक, चोर—ज्वारी कहैं। तातैं ये द्यूत, सर्वथा अपयशकी मूर्ति-खानि ही जान, इसका निवारना भला है। ये द्यूत, सर्व पापनका गुरु है। याके फल आत्म नरक दुख कौं पावै, घने कहने करि कहा। तब यहां कोई विवेकी—द्यूतकार प्रश्न करता भया। जो द्यूत कार्य और तौ हमने भी

विषैं प्रगट देखा, जो द्यूतकारकी महिमा नहीं, निन्दा ही हो है। तातें हे भव्य हो, तुम अपने विवेक त विचार देखो। जो द्यूत खेल तैं यश होय, पुण्य होय, तौ करो। नहीं तो तत्क्षण ही तजौ, बहुत कहने करि कहा। ऐसा जानि, धर्मात्मा सम्यग्दृष्टी श्रावकन कौं ये जुवाका-व्यसन, अतिचार सहित तजना योग्य है। इति द्यूत व्यसन। आगे आमिष व्यसन कहिये है—हे भव्य, ये आमिष है सो जीव-हिंसा तैं तो उपजै है। फिर मृतक-जीवनका कलेवर है। महा ग्लानिका पिंड है। जिसके देखते ही चित्त मुरझाय जाय। और सात धातूनका निषिद्ध मैल है। ताकौं खानेहारे किस तरह खांय हैं? हे भव्यो, देखो जो कानका मैल, नाक व मुखका मैल लग जाय तो जल लेय, मिट्टी तैं धोय, शुद्ध करैं। तौभी घिन नहीं जाय है। सो ये तो मृतक पशुका मल-आमिष खांय हैं। ऐसी मलिन वस्तु, ऊंच-बुद्धि नहीं लेय हैं। जो आमिष खानेहारे हिंसक जीव हैं। सो बताइये हैं-सिंह, स्याल, मार्जार, सुअर, श्वान, चीता, काक, चील्ह, बाज, बिसमरा, सर्प, सीगोस इत्यादिक दुष्ट जीव हैं, ते मांस खांय हैं। मनुष्य होय, ऐसी मलीन वस्तु छीवने योग्य भी नाहीं। सो कैसे खांय हैं? और कदाचित् मनुष्य होय, मांस खांय हैं। तो भील, चांडाल, कसाई, कोली, चमार इत्यादिक नीच कुलके उपजे, अस्पर्श-शूद्र ही मांस खांय हैं। तिनमैं भी केतेक उज्वल-बुद्धि, पाप तैं डरनेहारे, कोमल परणामी शूद्र भी, प्रभु कौं भजैं हैं। तिलक-छापे करैं हैं। ते आमिष नहीं खांय हैं। अशुचि-बुद्धि निर्दयी खांय हैं। सो भी कहा जानैं, ऐसी दुर्गंधित-वस्तु कैसे खांय हैं? कैसा है आमिष पिंड, ग्लानिकारी है। जिसकी बिना गंध लिये, देखै ही चित्त दुखी होय, सो खांय कैसे? सो ताकी तेही जानैं। परन्तु ऐसा अशुचि मांस-पिंड खावना, नीच-कुलीका प्रगट चिन्ह है। और जे ऊंचकुलके उपजे क्षत्री, ब्राह्मण, वैश्य, ये उत्तम वंशके हैं। सो इन वंशोंके उपजे भव्यात्मा, उज्वल आचारी हैं। सो आमिष कौं छीवैं भी नाहीं हैं। जो दयावान पुरुष हैं सो तौ ऐसी वस्तु देखते ही, भागैं हैं। तथा जे भव्यात्मा आमिष त्यागी हैं, सो अपने व्रतकी रक्षा कौं ऐती वस्तु नहीं खांय हैं, जिनके खाये मांसका दोष लागैं। त्रस जीवनके कलेवरका नाम मांस है। तातैं जा वस्तु मैं त्रस जीव उपजैं, तथा जो त्रसका कलेवर होय, सो वस्तु आमिष त्यागी नहीं

[illegible] है। सो [illegible] तथा [illegible] है। [illegible]
[illegible]
है। [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] नहीं [illegible] और [illegible]
[illegible]
[illegible] और [illegible]
[illegible]
और [illegible]
[illegible] । [illegible]
[illegible] महा [illegible] नहीं [illegible]
है। [illegible]
[illegible] है [illegible] नहीं [illegible]
[illegible] । [illegible]
जो [illegible] मैं [illegible]
[illegible] है [illegible]
[illegible] है। [illegible]
[illegible] है। [illegible]
दिन में [illegible] है। [illegible]

चढ़ाय ताका अर्क काढ़ैं। ऐसी जो मदिरा, ताकौं विवेकी, उत्तम आचारी, शुभ कुली नहीं खांय हैं। जाके पिये बुद्धि जाय, वचन प्रतीति जाय, लोक जो देखें सो धिक्कारें। जो ऐसा जानि कैं भी मदिरा नहीं तजैं तिनकी समझिकौं विवेकी निंदैं हैं। मद्यपायी, पापके योग तैं नरक जाय है। तहां ताका मुख चीरि, ताती-ताती धातु गालि, ताकौं पियावैं हैं। यहां प्रश्न-नरकमें धातु कहां है? ताका समाधान-वहां धातु तो नाहीं, परन्तु जीवनके पाप करि, तहांके पुद्गल परमाणु गलि, धातु तैं ही असंख्यात गुणो अधिक उष्णता रूप, धातुके आकार होय हैं। सो धातु पिवायकैं ते नारकी मद्यपायीकौं पाप यादि करावैं हैं। कि जो पर-भव मैं तैंने सुरापान किया सो ताका फल इस लोक में ऐसा होय है। और इस मदिरा पायीकैं बुद्धिका अभाव होय है। मद्यपायीके वचनकी प्रतीत नाहीं। मद्यपायीकैं पुरुषार्थका अभाव होय है। यह पग-पगपै मूर्च्छा खाय पड़ै है। मद्यपायीका किया धर्म, विफल होय है। शीश तैं पगड़ी पड़ै। वस्त्र फटैं। मर्याद रहित मुख आवै सो बकै। माता, स्त्री, भगिनी पुत्रीका ज्ञान नाहीं सर्वकौं एकसा देखै। खाद्य-अखाद्यका ज्ञान रहित होय। इत्यादिक पाप व निन्दा-का स्थान मदिरा, ताका त्याग करना योग्य है। और जिनतैं अपने व्रतकौं अतीचार लागै सो भी तजना योग्य है। सो दारूके अतीचार कहिये है। भांग तमाखू, गांजा, कक्कड़, चरस पाकादिक विषय-पोषणके निमित्त वस्तु का खावना। सो दारूका सा दोष है। और खम्मीर राखी वस्तु जो को जलेबो, अनगाले जलका मही और जे बहुत दिनकी रस-वस्तु होय, सो खाये तैं मदिरा समान दोषकूं उपजावै है। और अर्क, गुलाब जल, ये मदिरा सम हिंसा उपजावैं है। और सिंगिया विष सौंठिया विष, हल्दिया विष, सौमला खार इत्यादिक विष जाति मदिरा सम दोष उपजावे है। और कोईकूं मदिरा पोयवेकी इच्छा होय, तो इहां मद्य कूं देख लेवे। पीछे कछू बड़ाई होय तो पीवना। हे भव्य कोई नेत्र रहित अन्ध होय है। परन्तु मद्यपायी है सो नेत्र सहित अंध है मद्यपायीकूं सर्व ऐसा कहैं हैं कि यह खस्त है। मद्यपायीकी करी धर्मक्रिया विफल होय है। कै तौ मद पोव-नेहारा खस्त कहावै कै वायु-सन्निपात रोग सहित बोलनेहारा खस्त कहावै। तथा हौल-दिल होय गया होय, सो खस्त कहावै। तीनों एकसे हैं। इनकौं दिवाने कहिये, बेसुध कहिये। इत्यादिक मद्य लेनेमें जगत निन्दा

होय, घर धन जाय, सो प्रसिद्ध है। और देखो, जो दारू पीयकैं कोईने यश पाया होय, तौ बताओ। देखो, यादव-सुतौंने धोखे तैं मद पीया सौ सर्व कुल सहित द्वारकाका नाश भया। तातैं हे भाई! तेरे घरमें धन दाम बहुत होय तो जलमें डारिदे। परन्तु व्यसन विषैं मत लगावौ। हे भव्य, दारू तैं दावानल भली है। अग्नि प्रवेश भला है। तन विषैं पीड़ा भई भली है। इत्यादिक दुखन तें एक एक भव विषें दुख होय है और दारूतैं अनेक भवोंमें दुख होय है। ताते दारू तैं, हलाहल विष भला है, परन्तु दारू व्यसन भला नाहीं। तातैं अनेक प्रकार पापकारी जानि, धर्मार्थी श्रावककौं अपने व्रतकी रक्षा कौं, अतिचार सहित दारू व्यसनका त्याग करना योग्य है। इति दारू व्यसन ॥ ३ ॥ आगे वेश्या व्यसन कहिये है। कैसी है यह वेश्या, जाके चित्त करि मोह्या गया है कामी पुरुषनका मन सो ताकैं सदीव धर्मका अभाव है। जो परके पासका दाम लेय, व्यभिचार क्रिया रूप प्रवृत्तै, सो ताकूं वेश्या कहिये। याकी संगति तैं, चित्त विकल होय है। या वेश्याके काहूतैं स्नेह नाहीं, एक द्रव्य तैं स्नेह है। जो कोई महा नीच-कुली होय, अरु ताके पास धन होय, तौ वेश्या तातैं संगम करे। ग्लानि नाहीं करे। जाका तन विरूप होय, बुद्धि-हीन होय, रूप हीन होय, अरु तापे द्रव्य होय, तो वेश्या ताका आदर करे, तातें स्नेह करे। महा बुद्धिमान् होय, कामदेव समान रूपका धारी होय, पराये मनका मोहनेहारा होय, ऊंच कुली-बड़े वंशका होय इत्यादिक गुण सहित, शुभ-लक्षणी होय, अरु कदाचित् धन रहित होय, तो वेश्याके घर जाय आदर नहीं पावे। धन रहित पुरुष तें वेश्या स्नेह नाहीं करे। याकैं धन मित्र है, और नाहीं। तातैं वेश्याका नाम धन-मित्रा भी कहिये है। कैसी है यह वेश्या, जो याका तन भूमिके मार्ग समान है। जैसे मार्ग पै नीच-ऊंच सर्वही चलैं हैं, तैसेही वेश्याका तन है। याके तन पर भी नीच-ऊंच सभी जांय। यह वेश्या, महा लोभकी खानि है। धनके निमित्त अपना तन वेचे है। महा निर्लज्ज है। निर्लज्ज पुरुषोंके भोगका स्थान है। जूंठी पातल समान है। जैसे काहूने जूठी पातल फैंकी। ताके ऊपर अनेक श्वान चाटवेकूं आवैं हैं। तैसे ही काहूंकी भोग-नाखी वेश्या रूपी जूंठी पातल, ताके ऊपर अनेक व्यसनी श्वान आवैं हैं। जगत निन्द्य है। तातें वेश्याके सर्व चिन्ह पापकारी जानि, बुद्धिमान कूं तजना योग्य

है। और ये वेश्या, शील वृक्षके छेदवेकूं कुठार समान है। याका संग किये, धर्म साधन किया था ताका फल नाश होय हैं। तातें विवेकी-धर्मात्मा पुरुषनकौं वेश्या-संगति तजना योग्य है। और जिन-जिन कार्यनमें वेश्या संग कियेका सा दोष होय, सो भी कार्य, व्रतके रक्षक धर्मी-पुरुष तजैं हैं। सो ही बताईये हैं। जाके वेश्या व्यसनका त्याग होय, सो एती जायगा नाहीं जाय। अरु कदाचित् जाय, तौ अपने व्रतकौं अतिचार लागे। जहां वेश्याका स्थान होय, तहां नहीं जावै। और जहां वेश्या-कंचनीका नृत्य, गान, वादित्र होय, तहां नहीं जाय। और वेश्या तैं वाणिज्य नाहीं करै। और वेश्याके मुहल्ले जाय बसना नाहीं। और वेश्या तैं हांसि, कौतुक, बचनालाप नहीं करै। इत्यादिक कहे जो कार्य, सो व्यसन समान पाप उपजावैं हैं। और वेश्याके तनकौं नहीं निरखै। और वेश्याके हाव-भाव नहीं देखै। ताके गान, रूप, वादित्र नृत्यादिक नाहीं सुनै-देखै आगे तिनकी प्रसंशा-अनुमोदना नाहीं करै। बार-बार वेश्याके गुणनकी कथा नाहीं करै। ताकी कथा औरनतैं सुनि, हर्ष नाहीं करै। वेश्याका सत्कार नाहीं करै ताके संगी-कुटुम्बीन तैं हित भाव नाहीं करै। इत्यादिक वेश्या सेवनके दोष हैं। सो सर्वका त्याग करतैं ही, अपने व्रतकी रक्षा हो है। हे भव्य वेश्याके संग विषै गुण नाहीं। याके संग तैं लोकनमें अपयश निन्दा होय है। वेश्याका संग, चोरटे पराये धनके हरनहारे करै हैं। तथा जे लुच्चे जुवारी आदि निर्लज्ज पुरुष हैं ते वेश्याके घर जांय हैं। तथा कुलहीन पुरुष ही वेश्याका संग करैं हैं। तथा जाके आगे-पीछे कोई कुटुम्ब नाहीं, सो वेश्या गमन करै है। देखो, आगे चारुदत्त सेठ पुत्रने वेश्याका संग किया था। सो वेश्याने ताका सर्व घर धन लेय, पीछे उसे दुर्गंध भरी छारछोवीं (पाखाना) में डाल दिया। सो नरक समान दुःख, इहां ही भोगता भया। जगत-बिछौना समान, वेश्या जानना। याका तन सर्व जन नीच-ऊंच स्पर्शैं हैं। वेश्याके संग तैं, शीलका अभाव होय है। ताका फल, दुर्गति होय है। ये वेश्या महा दगाबाजोकी मूर्ति है। अरु ऐसे हो महा निर्लज्ज दगाबाजीकी खानि, दुर्बुद्धि पुरुष ताका संग करैं हैं। अहो भव्य, सिंहकी गुफा में जाना तो भला है, परन्तु वेश्याका संग भला नाहीं। तातैं हे भव्य घनी कहने करि कहा, वेश्याका संग तजना ही भला है। इस वेश्या व्यसनी कौं चोर, लुच्चें, वेश्याके गमनी

६५

भला कहैं हैं। तब यह मूर्ख अपनी प्रसंशा सुनि, प्रफुल्लित होय हैं। और जब विवेकी, ऊंच कुली, पण्डितन-
सु० में जाय है तब उसे अधोमुख होना पड़ै है। अपने भले कुलमें कलंक चढ़ावै है। या वेश्याके संग तैं सर्व प्रकार त०
३४ कुकीर्तिकी बेलि जगत मंडपमें पसरै है। जिनने वेश्याका संग किया ते प्राणी अपना पाया भव हारते भये।
वेश्याके संग तैं खाद्य अखाद्यका विवेक नाहीं रहै है। अभक्ष्य भोजन करै। लज्जा रहित वचन कहै। वेश्याका संग करनहारा जीव देव-गुरु धर्मकी आज्ञा ऐसे लोपै है जैसे मदोन्मत्त हस्ती अंकुशकों लोपै। वेश्या व्यसनी, माता पितादि गुरुजनकी आज्ञातैं प्रतिकूल होय है। कोई तौ नेत्र रहित अंध होय है। परंतु वेश्या व्यसनी कर अंध है। इत्यादिक अनेक दोष सहित वेश्या व्यसन है। सो विवेकी धर्मात्मानकूं अपने व्रतकी रक्षाकूं अतीचार सहित वेश्या—व्यसन तजना योग्य है। इति वेश्या व्यसन ॥ ४ ॥ आगे पारधी व्यसन लिखिये है यह व्यसन, निर्दय चित्तके धारी जीवोंका है। जे नीच-कुलके उपजे, तिनतैं ऐसा अन्याय बनें है। ऊंच कुली, दयावान, शुभाचारी, सत्-पुरुषन तैं, पर-जीव-घात नाहीं बनै है। यह बड़ा आश्चर्य है कि लोकमें तौ पराये परणाम खुशी करवे कों, भला खान-पान दीजिये है। भूखे पशून कौं घास डालि, सुखी कीजिये है। आये का सत्कार कीजिये है। कोई अपने घर मंगता-रंक आवै, तो ताको दया करि,-दीननकौं भोजन-दान दीजिये है। परतैं मिष्ट बचन बोलि, ताका यथा-योग्य विनय करि, ताकौं साता कीजिये है। इत्यादिक क्रिया करि, जैसे बनै तैसे, यशके निमित्त, तथा पुण्यके निमित्त, भला-भला कार्य करि और-जीवनकौं सुखी करैं हैं। सो जगतमें जिनकी ऐसी उज्वल प्रवित्ति, दया सहित देखिये है। वे ही सुबुद्धि जीव, जानि-पूछिकैं पर-जीव दीन-पशु तिनके तन विषैं शस्त्र मारि, तिनकौं हतैं। सो ये बड़ा आश्चर्य है। ऐसे सुज्ञानी जीवनके भाव ऐसे कठोर कैसे हो जाय हैं? सो उन पशूनके ही पापका उदय है कि जो सज्जन सदाव्रत देय, शीत में वस्त्र देय दीनन की रक्षा करैं। वे ही पुरुष जब पशूनके शस्त्र-तीर-गोली मारैं हैं तब तिनकौं दया नहीं आवै। ऐसे बड़े आदमी, बुद्धिवान, दयावान, धर्म निमित्त धनके लगावनहारे, ते पर-प्राणका घात कैसे करैं हैं? तातैं ऐसा जानना, जाकैं पर-प्राण-पीड़ितैं, दया नाहीं होय, सो दया रहित भावनका धारी, शिकारी

कहिये। अपने पुत्र पालवे कौं, पराये पुत्र हतैं, उसे पारधी कहिये। ते जीव पापके अधिकारी होय, नरकके पात्र होय हैं। अपनी जिभ्या-इंद्रिय पोषवे कौं तथा अपनी भूख मिटावने कौं, पराये पुत्र दीन-पशूनकौं हतैं हैं, ते दया रहित पारधी जानना। कैसे हैं वन-जीव, महादीन हैं। महा भयवान हैं। कोई तैं तिनका द्वेष नाहीं। वनका घास-तृण चुगके, अपने तनकी रक्षा करैं हैं। ऐसे दीन-निर्दोष पशूनकौं जो शस्त्र मारै, सो महा कठोर चित्तका धारी निर्दई है। बनके पशु भोरे, अज्ञान, असहाय, तिनकूं केई पापाचारी छल-बल करि मारैं हैं। सो बड़ा पाप-भार बांधैं हैं सो ये पाप कब कटैगा? केई ज्ञान रहित, दया रहित नीच-कुली ऐसा कहैं हैं, कि यह हमारा धर्म है। केई कहैं हैं, कि यह हमारा किसब (व्यापार) है। सो ऐसे जीव कसाई हैं जे जीव हतैं ते चांडाल हैं। उनके घरमें, धर्मका अभाव है जीव-घात करनेहारे प्राणी, खटीक समानि हैं। तिन जीव-घाती जीवनका मुख देखे, पाप लागै है। जे भले कुलके उपजे हैं, ते परजीवन कौं नहीं घातैं हैं। जो परजीव घातैं, सो हीन-कुली समझना। पर-जीवनके प्राण राखैं, सो ऊंच कुली हैं। भीलादिक बनचर हैं, सो बनचर जीवन कौं मारैं हैं। उत्तम प्राणी, पर-घात नाहीं करैं। जे दयावान हैं, वे ऐसा विचारैं। कि हाय, बिना दोष पर-जीव कैसे घातैं हैं? ये विचारे दीन, बनके प्राणी, काहूके घर जाय सतावते नाहीं। काहूपै कछू मांगते नाहीं। काहूका खेत नाही खून्दते। किसीका फल नहीं खावते। बनके तृण बन-फल, घास, पत्र तो ये खांय हैं। नदी-तला-वनका जल पीवते हैं नहीं मिलै, तो क्षुधा सहित भूखेही पड़ि रहैं हैं। नहीं काहू तैं लड़ै, नहीं काहू पै कोप करैं। ऐसे दीन पशूनकौं जे मारैं, ते शठ अपना पर-भव बिगाड़ैं हैं। सर्व जीवन में पापी तौ सिंह है। ऐसे पापी सिंहकौं मारिकैं अपनी शूरता मानैं, सो याहू तैं पापी हैं। और केई बनके सुअरन कौं मारैं हैं, और कहैं हैं कि हम शूर हैं ते शूर नाहीं पारधी हैं। हिरन, खरगोश स्याल इनकौं मारैं ते श्वान हैं। और भवांतर में श्वान ही उपजैं हैं। और चिड़िया कबूतर मोर तीतर बाज मछली मगर इन आदि पक्षी तथा जलचर जीवनकौं मारैं सो खेटकी हैं। ये पर जीवनके हतनहारे निर्दय परणामी निश्चय तैं नरकादि गतिके पात्र जानहु। तातैं जे विवेकी-दयावान जीव-घात नाहीं करैं उत्तम परणामके धारी हैं। ते भव्य येते

काम और भी नाहीं करैं। सो कहिये हैं। जे दयावान होंय सो तीर, गोली गिलोल कृपाण बूंदक कटार छुरी तलवार इत्यादिक शस्त्र नहीं राखैं। शस्त्र तैं मारूँगा, ऐसा वचन नाहीं कहैं। और फंदाफाँसी पींजरा ये नाहीं बनावैं नाहीं राखैं। वड़ थूहरि आकके दूध तैं चेंप बनाय पंखी नाहीं पकड़ै। लाठी व लात तैं नाहीं मारैं। जाल नाहीं बनावैं नाहीं राखैं, नाहीं बेचैं। इत्यादिक हिंसाकारी वस्तूनका व्यापार नाहीं करैं। और जे तोर बूंदक तोप बरछी छुरी, आदि पर-जीव घातक शस्त्र बनावे, तिनतैं दयावान लेन-देन नाहीं करैं। कुसी, कूदाली, खुरपी हँसिया इनके बनाने वालों तैं भी लेन-देन नाहीं करैं। और भूमिके खोदनेहारे, ताल-नदी-बावड़ी-कूप इनमें जल काढ़ने व फोड़ने हारेन तैं भी लेन-देन नाहीं करैं। और जामैं बहुत जल बिलोलना पड़ै, बहुत नीर ढोलना पड़ै बहुत अग्नि जलाना पड़ै तथा जो नील-आलका काम करैं, उनके साथ भी लेन-देन नाहीं करैं। इत्यादिक सब खेटक-हिन्साको दोष करैं हैं इनका पैसा घरमें आये, खेटकका सा दोष उपजावै। और अन्न, तिल, जीरा, धना, सौंठि, हल्दी, इन आदि काष्ठानिक किरानों तथा रेशम सन, चास, हाड़, केश, सींग, शहद इनकी भड़शाला (दूकान) नाहीं करैं। तथा शीशा, शोरा इत्यादिक हिन्सक व्यापार नाहीं करैं। इनमें खेटक समान दोष जानि, दयामूर्ति ऐता व्यापार नाहीं करैं। और काष्ठ-पाषाण चित्रामकी पुतलीं तथा देव-मनुष्य-पशुकी स्थापनाका आकार बिगाड़ै, तो खेटक समान दोश होय। और सतरंज में नाम-निक्षेपके धारी जीव-हस्ती, घोटक मनुष्य राजादिक ताके हारे—जीते, खेटक समान दोष होय। तातैं धर्मात्मा सतरंज तैं नाहीं खेलैं। और वन मैं, घर मैं अग्नि लगाये खेटक समान दोष है। तथा परजीवकौं भयकारी मार-मार शब्द नाहीं कहैं। और वृक्ष, बेल, घास, झाड़ी नहीं छेदें। वस्त्र धूप विषैं नाहीं नाखैं। चौपट राहमें खटमलनको खाट नाहीं झाड़ैं। पर—जीवन कूं शोक नहीं करावैं और मर्याद तैं अधिक भार, जीवन पै नाहीं लादैं। भाड़ा किया होय तौ वाहन पै:छिपायकैं अधिक भार नहीं धरैं। इत्यादिक कहे कार्य धर्मात्मा—दयावान् अपने व्रतका लोभी अपने व्रतकी रक्षाकौं ये पाप नहीं करै। और जुआ लीख दयावान् नहीं मारैं। सर्व जीव आप समान जानि सर्वकी रक्षा करैं। और जे

दया रहित दुर्गति—गामी अज्ञानी जीव परकौं शस्त्र मारते दया नहीं करैं। अरु अपने तनमें तनिकसा काटा लगै तौ कायर होय दुख मानैं। सो ये कठोर बुद्धि परकैं शस्त्र कैसे मारैं हैं ? आप तनकसा भय सुनै तौ छिपता फिरै भय करि कंपायमान होय। अरु पापी जन दीन-पशूनपै नग्न शस्त्र चलावतैं नहीं कंपैं हैं। सो ताकैं खेटक-व्यसन कहिये। देखो जब आप रणमें जाय तौ अपने तनकी रक्षाकौं बखतर पहिनै। शिरपै टोप धरै। आगे उरस्थलमें आड़ो ढाल धरै। तौ भी पापी-कायर चित्तका धारी डरता-डरता जाय है। ताकूं दीन पशूनके तनमें निशंक बनमें फिरते दीन जीवन कूं दगा करि जालमें पकड़ि शस्त्र मारते दया नहीं आवैं। सो जीव दुर्गति—गामी पारधी जानना। ऐसे प्राणीनकौं तीन लोकमें सुख नाहीं। ये खेटकका व्यसन पाप है। ये पाप भव भवमें खेटक करै। महा दुख उपजावै। तातैं विवेकी धर्मात्मा, आप समान सर्व जीवनकूं जान, सर्व जीवनकी रक्षा करैं सो खेटक व्यसनका त्यागी कहिये। इति खेटक व्यसन ॥ ५ ॥ आगे चोरी व्यसन कहिये है। जे जीव बिना दिया, परका पदार्थ नहीं लेंय सो चोरी व्यसनका त्यागी है। कैसी है चोरी सो कहिये है। एक तौ महा दगाबाजीका समूह है। अदत्ता दानकौं लेय सो चोर है। सो जे चोर हैं सो पर-धन हरवैं कौं अनेक चतुराई करि पराया घर फोड़ना, पराये खींसेमेंसे धन काढ़ि लेना पराये धरे धनकौं छिपाय कें उठाय लावना तथा पराया धन उठाय कहीं धर देना आदि काय करैं हैं। ये सर्व चोरी व्यसन है। इस चोरी करनहारेका परणाम महा कठोर निर्दय होय है। पराया धन चोरै है, सो महा पापी है। संसारमें जीवनकौं ये धन अपने प्राणन तैं भी प्यारा है। ये जीव अपने दस प्राणकूं धारि सुखी रहैं हैं। तैसे ही यह जीव धन तैं सुखी रहै है। तातैं ये धन जीवका ग्यारहवां प्राण है। जो इस धनकौं हरैं ते महा पापी जानना। जे पराये धन हरवेकौं अनेक छल बल करैं हैं। कोई तौ पर धन हरवेकौं राह चलतें जीवनकूं डरवाय धन हरैं। कोई जबरी तैं नगर घरन पै धाड़ा मारि करि घर धन लूटि ले जांय। सो तो जोरावरीके चोर हैं। कोई दगाबाजी सहित, अनेक भेष बदल, फांसी तैं मारि, धन हरैं, ते चोर हैं। कोई पराया धन, लेखा करने में भूलि करि राखैं। ते चोर हैं। कोई पराया धन धरया हुआ नहीं देंय, जानि पूंछ, मुकरि जांय सो भी चोर

हैं। कोई पराया धन कर्ज खाय रहै, नहीं देय। सो चोर है। ऐसे कहे जो ये सो सर्व चोरन के चिन्ह हैं। और कोई ऐसे हैं जो आप तौ चोरी नहीं करैं, परन्तु चोरन कौं चोरी करवे में सहायक। चोरी करावै कौं, तिनकौं चोरी के उपकरण देंय। मार्ग बतावैं। सो भी चोर समान हैं। और जे चोरन की पक्ष करि, चोरन की लॉच खाय, चोरन कौं चाकर राख, चोरी कराय धन बांट लेंय। सो भी चोरी समानि फल का धारी है। और चोरन कौं चोरी पै कर्ज देय, चोरन तैं वाणिज्य—व्यापार राखना ये भी चोरी सा ही फल प्रगट करै है। तातैं जे विवेकी हैं ते अपने व्रत कौं निर्दोष राखैं। सो एती बात नहीं करैं जिनका कथन ऊपरि कहि आये। और इस अदत्ता दानके अतिचार हैं सो भी न लगावैं सो ही कहिये हैं। कोई भली चोर कलाका धारी होय तो ताकी अनुमोदना नहीं करै। और तराजू तैं तौलिये ताके सेर पंसेरी आदि बांट तथा कुड़ापाई छोटी बड़ी रक्खै। सो लेनेके तो बड़े अरु देनेके सेर पंसेरी कुड़ा पाई छोटी ऐसे राखै सो चोर है। ऐसे ही भली वस्तु विषैं बड़े मोलकी वस्तु विषैं अल्प मोलकी वस्तु मिलावना। सो चोरी समान है। सो विवेकी ऊंच कुली ऐसी चोरी नहीं करें। जे हीनकुली हैं ते चोरी करैं हैं। जैसे भील मीणा गौंड़ ये मनुष्य चोरी करैं हैं। तथा धन हार्‍या ज्वारी चोरी करै। तथा जीभ लोलुपी चोरी करै। तथा जो खान पान वस्त्र आभूषण तौ भलै चाहै अरु कुमाय नहीं जानै। ऐसा कुपूत पुरुष चोरी करै। वेश्या व्यसनी होंय ते चोरी करैं। मांसाहारी चोरी करै। तथा परस्त्री लंपटी चोरी करै। इत्यादिक कुबुद्धिके धारी जीव चोरी करि अपना पाया भव बृथा कर अपना किया धर्म कौं बिनाशैं हैं। तथा अपने स्वामीका बुरा चाहनेहारा स्वामी द्रोही चोरी करै। तथा मित्र तैं कपटाई करनेहारा मित्र द्रोही चोरी करै। तथा परके किये उपकार कौं भूलनेहारा कृतघ्नी होय सो चोरी करै। तथा धर्म भावना रहित पुरुष चोरी करै। इत्यादिक जीव चोरी करैं। सो चोरीके अनेक भेद हैं। एक तौ धर्म चोर एक कर्म चोर। सो जो पापी जीव धर्म स्थानमें चोरी करै सो तौ धर्म चोर कहिए। और जे माता पिता भाई स्त्री पुत्र इन तैं धन चुराय राखैं सो घरचोर हैं तथा पराए घरनका हरनहारा होय सो घर चोर है। ताकरि राज्य पंचका किया दंड पावै। और

बालक पुत्र तथा स्त्री तैं छिपाय खाय भली वस्तु छिपाय कैं खाय सो पुत्र स्त्री चोर है। ए सर्व चोरी समान दोष करैं हैं। ता चोरीके दोय भेद हैं। एक चोरो दूसरा चरपट। जो छल कर छिप करि परधन हरै। सो चोर है। और गिरासियादि जोरी तैं डराय प्रगट पराया धन हरैं। सो चरपट कहिए। सो ए चोरी चरपट भेद भी पाप जानि, तजना योग्य है। ये चोरन को चतुराई, सबही दुखदाई, ताहि तजना जिन-गाई, मैं भी धर्म-हित भव्य जीवन कूं सुनाई। तातैं तजो समझ सब भाई, याके किये हानि दाई, जस हानि गुरु सुनाई। पर-भव दुर्गति होय, सकल पाप थान जोय, ऐसो लक्ष्य तजो सोय, मानो सीख भव्य होय। इत्यादिक, चोरी सर्व पाप का मुकुट जानि. तजना योग्य है। इस चोरी ही के चिंतवन किये, पाप-बन्ध होय है। तातैं अपने पर-भव सुधारबे कूं, संतोष भाव भजिकैं, बहुत तृष्णा का कारण जो चोरी, ताहि निवारो। ये सीख सुपूत कौं है। जो कहे का उपकार मानै। और जिनकौं चोरी भली लागै। सो सुनि करि, भले उपदेश सूं द्वेष-भाव करैं। चोरी व्यसन का त्याग सुनि चोर हैं ते धर्म सभा तजैं। परन्तु चोरी नहीं तजैं। सो ऐसा प्राणी धर्म-सीख काहे कौं मानै है? ये सीख सपूत कौं है। तातैं श्रावकन कूं अतिचार सहित, चोरी व्यसन तजना योग्य है। इति चोरी व्यसन ॥ ६ ॥ आगे परदारा व्यसन कहिये है जहां पर-स्त्रीन के रूप हाव-भाव कौं देख, भोगवे की इच्छा सो परदारा व्यसन है। या व्यसनी की दृष्टि तौ भगनी, पुत्री माता कौं भी रूपवान देख विकार रूपही प्रवर्त्ते है। और जे धर्मात्मा हैं सो पर-स्त्रीन कूं भगनी माता पुत्री समान देखैं हैं। ऐसा भिन्न भेद इनकी दृष्टि में जानना। ये जीव उसही दृष्टि (आंख) तैं भगनी पुत्री कौं देखैं हैं। अरु उसही दृष्टि तैं अपनी स्त्री कूं देखैं हैं। सो धर्मात्मा तौ यथावत् जानैं हैं। अरु व्यसनी, विकार दृष्टि करि जानै है। सो यह जीवन की दृष्टि का ही भेद जानना। कैसी है या व्यसनी की दृष्टि। दोऊ भव-दुख अपयशकी करनहारी है। इस व्यसनी कौं पर-स्त्री गमन तैं पकड़िये, तौ जाति तैं निषेधैं हैं। और राजा है सो ताका तन छेदन करि, घर लूटै है। और खर-रोहण करि, देश तैं निषेधै है। तातैं हे भाई, कहा जानैं नरक-फल परभव में कब लागै? हाल ही में जीव कौं नक समान दुख देखने पड़े हैं। लोक में निन्दा होय

है। नाक-कान—हस्त—पांव अंगादि छिदैं हैं। सो ये फल तौ खराबी के यहां ही प्रत्यक्ष देखना होय है। तातैं धर्मी-जन, अपने हित कौं पर-स्त्री, धर्मरूपी कल्पवृक्ष के छेदवे कूं करोत समान जानना। और ये पर-स्त्री यश रूपी पर्वत के नाशवे कूं बज्र समान है। देखो रावण सा महा बली तीन खंड का स्वामी, यशका तिलक जाके यश-सौभाग्य की देव भी महिमा करैं। ऐसा दीरघ पुण्यी, सो भी पर-स्त्री के दोष तैं, अपयश पाय, हीनगतिका बासी भया। राज्य गया, कुल क्षय भया, पर-गति बिगड़ी। तातैं हे भाई, नागके मुख हस्त देना, बिष भोजन करना, ये तो भला है। परन्तु पर-स्त्री-संग, भला नाहीं। छुरी, कटारी, बर्छीकी धारन पै कूदना भला। इन तैं एक भव दुख होय। अरु पर-स्त्री संगति तैं, भव-भवमें दुख होय। तातैं विवेकीन कौं पर-स्त्रीनका त्यागना भला है। अरु जिन बातनमैं पर-स्त्री संगका दोष लागै, ऐसे अतिचार भी तजना योग्य है। सो अतिचार कहिये हैं। पर-स्त्रीन तैं सराग भाव सहित हँसि बोलना। कौतुक सहित तिनके तन तैं लिपटना। पर-स्त्रीनके षट्—आभूषण देख कहै, जो तुम कौं यह भला लागै है, ये भला नहीं सोहै है। पर-स्त्रीनके अंग-उपांग चालकी सराहना करना। ये सर्व पर-स्त्री व्यसन समान दोष करैं हैं। और विकार चित्त करि पर स्त्रीनका काम काज करै। ताकौं भले भले षट् आभूषण लाय देय। राग सहित मुख तैं वचन बोलै। ताकूं पर-स्त्रीका व्यसनी कहिये। और जहां नारी, स्वेच्छा भईं कौतुक करतीं होंय, गाली-गीत गावती होंय। तहां आप जाय, सुनि करि हर्ष कौं प्राप्त होय। चित्त देय सुनै, तिनकी प्रशंसा करै, सो पर स्त्रीका व्यसनी है। और पर-स्त्रीनके समूहमें जाय, तहां बैठके तिन स्त्रीनकी सुहावती बात कहै। तिनकौं अनेक कौतुक कथा कहिके हँसावै-सुखी करै। सो पर-स्त्रीका ब्यसनी कहिये। और जे पनघट-घाट, जहां अनेक स्त्री-समूह जल कौं जांय। तथा और जगह जहां अनेक स्त्रीनके गमनका स्थान होय। ऐसे स्थान पै जाय तिष्ठना, सो पर-स्त्रीका ब्यसनी है। तथा पर स्त्रीनकी चाल—काय सराहना। षट्—आभूषण—रूप देख हर्ष करना। सो पर स्त्रीका ब्यसनी है। अपने घरमें दासी राखना। तथा विधवा स्त्री कौं मोहके वश करि, घरमें राखना। तातैं भोगनकी अभिलाषा पूर्ण करनी। सो पर स्त्रीका ब्यसनी है। और बालक नर कौं

नारी बनाय देखना। तथा सुन्दर स्त्रीन कूं, नर भेष बनाय, देख सुखी होय, स्पर्श करि सुखी होय सो पर स्त्रीका व्यसनी है। और विधवा तथा परस्त्री जाका भर्तार जीवता होय, तिनतैं एकान्त विषैं बतलावना। तिनतैं ऐसा कहना, जो आज कल तो हम पै कोप है, तातैं नहीं बोलो हो। सो हम पै ऐसी कहा चूक परी है, सो कहो। हम तौ आपके आज्ञाकारी हैं। इत्यादिक राग सहित वचन भाषण करै, सो व्यसनका लोभी है। अरु पर स्त्री तैं अबोला रहै, रूठना करै। फेरि तिसके बोलने कौं, औरन तैं प्रार्थना करै। कहै जो हम-कों वाकौं बुलाय देव। इत्यादिक भावनका धारी, इस व्यसनका धारी है। और जे अपने तनमें नाना प्रकार वस्त्र आभूषण पहरि, पर स्त्रीन कौं दिखाया चाहैं। अपना भला रूपयौवन, तनकी ललाई पुष्टता, पर स्त्रीनकौं दिखाया चाहैं, सो पर स्त्री व्यसन मोही है। इत्यादिक कहे जो पर स्त्रीनके व्यसनके दोष, तिन सहित सब कौं त्याग, अपना व्रत निर्दोष राखै, सो पर स्त्री व्यसनका त्यागी कहिये। इति परदारा व्यसन ॥ ७ ॥ ये कहे जो सात व्यसन, सो सर्व पापके मूल हैं। जेते जगतके पाप हैं, तेते सर्व इन व्यसननमें गर्भित हैं। सो जिनके उदर विषैं, इन व्यसननकी वासना है। सो धर्म विमुख प्राणी, अपने भवका विगाड़नहारा है। हे भव्य ! ये सात व्यसन, सात नरकके दूत हैं। ये व्यसन जीव कौं किञ्चित् सुखकी छायासी बताय लोभ देय नर्क विषैं धरैं हैं। जे प्राणी इन व्यसननमें फँसैं हैं। तिनने अपना भव वृथा किया धर्म छोड़ि दिया। और जे जीव इन कूं परख व्यसन जानि इन विषैं रंजायमान होय प्रवृर्तैं इन कौं सेवन करैं। सो जीव पापके निशान हैं। तिस व्यसनीका चलन ही अशुभ होय धर्म क्रिया हीन होय परणति खोटी होय जिन आज्ञा रहित होय अभिमानी होय सुबुद्धि जीवन करि निन्द्य होय। दरिद्री अन्न करि दुखी होय। इत्यादिक युग भव दुखका सहनहारा ये व्यसनी है। सो विवेकी जीवन करि तजिवे योग्य है। या व्यसनीका संग भला नाहीं। अहो भव्य हो ! दीन होय रहना भला है। तातैं समता सधै कोई जीवन कौं पीड़ा नहीं होय। ऐसा उपदेश सुनि जो जीव व्यसनका सेवनेहारा अञ्जन चोरकी नाईं निकट संसारी होय। तो ऐसे निकट भव्य जीव तौ व्यसन कौं बुरे जानैं। अपनी निन्दा करते अत्यन्त आलोचना करते उपदेशीका उपकार मानैं। स्तुति करि

ब्यसन भाव तजैं हैं अपना भव सफल जानि धर्म विषैं लागैं। सत्संगकी महिमा करैं। कहैं सत्संग धन्य है जो मोकों ब्यसनके पापका भेद बताय संबोधित किया। जैसे काहू कौं कूप पड़ते राखै। तैसे सत्संग ने मोकों नरक पड़ते कौं बचाया तथा जैसे कुधातु जो लोहा ताकौं पारस लाग कंचन करै। तैसै ही मोसे पापी ब्यसनी लोहे समान कूं पाप तैं छुड़ाय धर्मी किया। इत्यादिक भव्य ब्यसनी तो अपना भला जानि सत्संगकी स्तुति करै। और जे पापी ब्यसनी दीर्घ संसारी हैं। ते ब्यसनकी निन्दा सुनि, आप बुरा मानैं सत्संगकूं तजैं। परन्तु सप्त ब्यसनकूं नहीं तजैं। ऐसे पापी-व्यसनी कौं, धर्मोपदेश नाहीं लागे। ये सात व्यसन ही धर्मके घातक हैं। ऐसा जानि उत्तम श्रावक जिन आज्ञा प्रमाण व्रतके धारीकूं, अपने व्रतकी रक्षा निमित्त, ए सात ही व्यसन अतिचार सहित तजना योग्य है। इन सप्त व्यसनके अतिचारमें आठ मूल गुणके अतिचार बाईस अभक्ष्य आदि आगये सो जानना। इत्यादिक सर्व दोष रहित सम्यग्दर्शन व अष्ट मूल गुण होंय, और ए सात व्यसन व बाईस अभक्ष्यका त्याग सो प्रथम दर्शन प्रतिमा जानना॥ १ ॥

इति श्री सुदृष्टितरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, सागार धर्म-एकादश प्रतिमा विषैं प्रथम दर्शन प्रतिमाके बाईस अभक्ष्य अतिचार सहित सात व्यसन त्याग, अष्ट मूल गुण सहित कथन वर्णनो नाम बत्तीसवां सर्ग सम्पूर्णं ॥ ३२ ॥

आगे दूसरी व्रत प्रतिमाका संक्षेप लिखिये हैं। दूसरी व्रत प्रतिमा है ता व्रतके बारह भेद हैं। पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और च्यारि शिक्षा व्रत। ए सब मिल बारह भये। तहां प्रथम नाम-अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्य्याणुव्रत, ब्रह्मचर्य्याणुव्रत, परिग्रहपरिमाणाणुव्रत। ए पांच अणुव्रत है। अब इनका सामान्य अर्थ—जहां एक देश पांच पापनका त्याग सो अणुव्रत हैं। अणु नाम थोरेका है सो ये त्रस हिंसाका तो सर्व प्रकार त्यागी है। बाकी बारहमें ग्यारह तैं असंयम है। परन्तु महा दयालु है। कोई यहां ऐसा जानेगा जो त्रस रक्षक है तो स्थावर घात करता होयगा। मन इन्द्रिय वश नहीं होय सो मन इन्द्रिय करि महा विकल रहता होयगा? सो हे भव्य ए अणुव्रती श्रावक संसारीक इन्द्रिय भोगन तैं महा उदास है। पांच-पापन तैं महा भय-भीत है। सो इन्द्रिय-मनकों सदीव रोकता धर्म ध्यान मई प्रवर्तै है। ये भोग-भाव, ताहि

काले नाग समानि भासैं है। ताका इनमें मन रंजै नाहीं। और स्थावरकी हिंसाका त्यागी तौ नाहीं परस्तु पंच स्थावरके आरम्भमें दया-भाव सहित आरंभ करै। जहां अल्प हिंसा होय तामें भये पापकी आलोचना रूप रहै है। तातैं ए अणुव्रती मन इन्द्रिय वश करिवेका तौ उपाई है। और स्थावरकी रक्षा रूप भावनाका भोगी है। तातैं ये व्रती श्रावक महा दया धर्मका धारी है। गृह-आरम्भ परिग्रहके योग तैं सर्व प्रकार स्थावर की हिंसा बचती नाहीं। तातैं तिस श्रावककूं अणुव्रती कह्या है। अपने हाथ तैं त्रस हिंसाका आरम्भ नहीं करै। सो याका नाम अहिंसाणुव्रत है याके पांच अतिचार हैं। सो ही कहिये हैं-अपने हाथ तैं कोई त्रस जीव कूं नहीं बांधै। जैसे हस्ती, घोटक, गाय, बैल, भैंस, बकरी, मनुष्य इत्यादि त्रस जीवके हाथ-पांव, बन्धन तैं नहीं बांधै। गलेमें फन्दा डाल कोईकूं नहीं बांधै। तथा बालककूं भी क्रीड़ा-मात्र नहीं बांधै। याका नाम बन्ध अतिचार तजन है ॥ १ ॥ वेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय इन आदि त्रस जीवनकौं कोड़ा, लाठी आदि शस्त्रन तैं नहीं मारै। सो ये बध दोष त्याग है ॥ २ ॥ और मर्यादाके उपरांत; पशु पै, मनुष्यन पै भार नहीं लादै। सो याका नाम अतिभारारोपण दोष त्याग है ॥ ३ ॥ और त्रस जीवनके अङ्गो-पाङ्ग अपने हाथतैं नहीं छेदै। सो ये छेदन दोष निवारण है ॥ ४ ॥ और कोई त्रसका, अन्न-जल-घासादि खान-पान नहीं रोकै। जैसे कोईके सिर अपना कर्ज आवै था। सो ताकौं ऐसा नहीं कहै, जो हमारा कर्ज देव, नहीं तो अन्न-जल खायगा तौं तोकौं ऐसी आण (कौल) है। ऐसा वचन, व्रती श्रावक नहीं कहै। तथा गाय, बैल, हस्ती, घोटकके खान-पान कूं बंद नहीं करै। याका नाम अन्न-पान निरोध दोष तजन है ॥ ५ ॥ ऐसे पांच अतिचार नहीं लगावै। सो शुद्ध व्रत अहिंसाणुव्रत है। इति अहिंसाणुव्रत ॥ १ ॥ आगे सत्याणुव्रतका अतिचार सहित स्वरूप कहिये है। तहां ऐसो स्थूल झूठ नहीं बोलै, जातैं लोक निन्दा होय, दूसरोंकौं बुरा लागै। कोई दगाबाजी सहित बचन, कठोर वचन, मर्म छेदन वचन, परदोष प्रगट करन वचन, कलहकारी वचन, द्रोह वचन, गाली वचन पापबंधकारी वचन, परघर धन मन तन हरन वचन, परनिन्दा वचन, क्रोध वचन, लोभ वचन, रागद्वेष वचन, अविचार वचन, इत्यादिक असत्य वचनके भेद हैं। इन सर्वका त्यागना,

सो सत्याणुव्रत है। सो याके भी पांच अतिचार हैं। सो दिखाईये हैं। प्रथम नाम मिथ्या उपदेश, रहोव्याख्यान, कूटलेख क्रिया, न्यासापहार, और साकार मंत्र भेद। इनका अर्थ-तहां झूठा उपदेश देना झूठा मार्ग बतावना तथा बालकनतैं असत्य भाषण करि, क्रीड़ा करनी। इत्यादिक असत्य वचन बोलना सो मिथ्योपदेश है॥ १ ॥ और जहां पराई एकांतकी बात कोई बतलावते होंय, ताकौं कोई अनुमान तैं जानि, अन्य लोकनमें प्रकाश करै। सो रहो व्याख्यान अतिचार है॥ २ ॥ और जहां झूठा खत, हुण्डी, चिट्ठी लिखना। झूठा लेखा माड़ना। इत्यादिक ये कूट-लेख क्रिया दोष है॥ ३॥ और पराये गहने आदि धरे माल कौं राखि, जानि—पूंछि मुकरि (मेंट) जाना, सत्यघोष पुरोहितकी नांईं। सो न्यासापहार नाम अतिचार है॥ ४ ॥ और कोईके शरीरके चिन्हतैं, नेत्रके चिन्हतैं, मुखके चिन्हतैं, ताकी अक्रिया देख, ताके मरमकी बातकौं जानि, पीछे द्वेषभाव करि, पराइ छिपी बात कूं सबमें प्रगट करना। सो साकार-मंत्र भेद दोष है॥ ५॥ ऐसे पांच अतिचार रहित होय, सो सत्याणुव्रत कहिये ॥ २ ॥ आगे अचौर्य्याणुव्रतका स्वरूप कहिये है। तहां पराया धन विना दिया लेय, सो अदत्तादान है। ये चोरी जानना। जो पराये पुत्र, स्त्री, दासी, दास, हस्ती, घोटक, गाय, बैल, बकरी, इत्यादिक चेतन वस्तु। अरु रत्न, स्वर्ण, चांदी, वस्त्र, अन्न, धन ये अजीव वस्तु। ऐसे इन चेतन—अचेतन द्रव्य कौं चोरना, सो चोरी है। सो या चोरीके पांच अतिचार हैं। सो कहिये हैं। प्रथम नाम-स्तेय प्रयोग, स्तेय वस्तु आदान, राज्य-विरुद्ध क्रिया, मानोनमान, पर-रूपक व्यवहार। ये पांच अतिचार हैं। इनका अर्थ-तहां चोरोका उपदेश देना, चोरकूं राह बतावना, पराया घर—मन्दिर फोड़वे कूं कुसिया, कुदारी देय, चोरोका मनसूबा बतावना। इत्यादिक चोरीके प्रयोग बतावना, सो स्तेय प्रयोग नाम दोष है॥१॥ औरो चोरोकी वस्तुकूं सस्ती जानि, बड़ा नफा देख, मोल लेना। सो याका नाम तदाहरतदान दोष है। याहीका नाम स्तेय वस्तु आदान दोष है॥२॥ और राजाकी मर्यादा लोपना, राजाकी आज्ञा, टालना, सो राज्य—विरुद्ध नाम दोष है॥ ३॥ और जहां लेनेके तोलादि तो बड़े होंय, और परकौं देनेके पाई, कुड़ा तोला सेर पंसेरी सो छोटी-हीन राखै। सो याका नाम हीनाधिक मानोन्मान नाम अतिचार है

॥ ४॥ और बड़े मोलकी वस्तुमें, थोड़े मोलकी वस्तुकों मिलायके बेचना। सो प्रतिरूपक व्यवहार नाम दोष है ॥ ५ ॥ ऐसे इन पांच अतिचार रहित होय सो अचौर्य्य नाम अणुव्रत है। इति अचौर्य्याणुव्रत ॥ ३ ॥ आगे ब्रह्मचर्य्याणूव्रत कहैं हैं। जाकैं छोटो पर-स्त्री, पुत्री बराबरकी स्त्री बहिन व बड़ी स्त्री माता समान है। ऐसी दृष्टि तौ पर स्त्रींन पै रहै। और अपनी परणी स्त्रीमें संतोषी, तीव्र राग रहित समता भाव सहित संतान उत्पत्ति निमित्ति स्व-स्त्री तैं रति समय संगम करै। बाकी च्यारि प्रकार चेतन अचेतन स्त्री विषैं रागद्वेषका अभाव विकार दृष्टि करि नहीं देखै। तथा पर-स्त्रीनमें काम चेष्टा रूपविकार वचन हाँसि वचन परस्पर प्रेम बधावने हारे निर्लज्ज वचन कुशील-राग करि भरी दृष्टि देखना परस्त्रीन तैं गोस्टीचर्चा वार्ताकरनी इत्यादिक परस्त्री संबंधी दोष हैं। कैसी है पर-स्त्रीकी दृष्टि? विषनाग समान राग-जहर करि भरी योवन करि मदोन्मत्त, विकराल स्वरूपकी धानहारी। शीलवान् पुरुषोंकों भयकारी। महा विष नागनी। बालक,बृद्ध देव पशु सर्वातीन गतिके जीवनकूं डसनहारी। बड़ोकी आज्ञा रूपी मंत्र मर्यादकी लोपनहारी। ऐसी परस्त्रीका त्याग सो ब्रह्मचर्य्याणुव्रत है सो याके पांच अतिचार हैं सोही कहियो हैं। प्रथम नाम परविवाह करण, इत्वरिका गमन, परग्रहीताग्रहीत गमन अनंग क्रीड़ा, काम तीव्राभिनिवेश। ये पांच हैं। इनका अर्थ तहां पराया विवाह करावना। बीचिमें पड़ि, सगाई करावना। बीचमें फिरि, लड़का-लड़कीनके नाता मिलाय, साख मिलाय, ब्याहके नेग चार करावना। इत्यादिक ब्याहके कार्य करावना सो पर-विवाह करण नाम दोष है ॥१॥ और दासीकूं घरमें राखना तातैं स्त्री-व्यवहारकी चेष्टा करनी। सो इत्वरिका-गमन नाम अतिचार है ॥ २ ॥ और पर-कर-ग्रहीत जे स्त्री, जिनका भर्तार जीवता होय तथा पर कर नहीं ग्रहीत जो विधवा स्त्री-भर्तार रहित। तथा कुवांरी विवाह रहित। इनतैं विकार चेष्टा करि तिनके घर गमनागमन करना। सो पर ग्रहीताग्रहीत गमन नाम दोष है ॥ ३ ॥ और जहां स्त्रीका भोग योग्य योनि स्थान तजि वाह्य अङ्गन तैं क्रीड़ा करनी। जैसे श्वानादि पशु भोग-योग-स्थान तजि ऊपर ऊपर क्रीड़ा करैं। तथा हाथ-पांव अङ्गन तैं क्रिया करि वीर्यका गिराना। इत्यादिक ये अनंग क्रीड़ा दोष है ॥ ४ ॥ और जहां, जा भोजन तैं, तथा जिन बचनन तैं तथा जिस क्रिया तैं, तीव्र कामकी बधवारी

होय। सो कामतीव्राभिनिवेश दोष है ॥ ५ ॥ ऐसे ये पांच अतिचार रहित होय, सो ब्रह्मचर्य्याणुव्रत है। इति ब्रह्मचर्य्याणुव्रत ॥४॥ आगे परिग्रह परिमाणाणुव्रत कहिये है-तहां दस प्रकार परिग्रह तिनका प्रमाण करै। सो तिन दसके नाम क्षेत्र वास्तु, धन, धान्य, चौपद, दोपद, आसन, शयन, कुप्य, और भाण्ड ये दस भेद परिग्रह के हैं। सो तहां चौतरफ क्षेत्रका प्रमाण करना। जो येते क्षेत्रनमें कर्म सम्वन्धी क्रिया करनो। यातैं अधिक क्षेत्रनमें कर्म सम्वन्धी कार्य करनेके ममत्वका त्याग सो क्षेत्र परिमाण है। तथा एते क्षेत्र विषैं हल जोति खेती करना अधिक क्षेत्र नहीं जोतना। ऐसा परिमाण करना सो क्षेत्र परिग्रह परिमाण है ॥ १ ॥ और जहां दुकान, मन्दिर, नगरका परिमाण जो एते मन्दिर राखे। सो वास्तु परिग्रह परिमाण है ॥ २ ॥ स्वर्ण, चांदी, रत्न इत्यादिकका प्रमाण करना, जो एता धन राखना सो धन परिग्रहका परिमाण है ॥ ३ ॥ और तहां तन्दुल, गेहूं, जव, ज्वार, मोंठ, मूंग, उड़द, चना, कोदों, वटरा, मसूर तूअर इत्यादिक अन्नकी संख्याका परिमाण जो ऐते अन्न राखे, सो एते तौल प्रमाण सो धान्य परिग्रहका परिमाण है ॥४॥ और दासी-दास सेवक, दो पदके धारी जीव एते राखना, सो दुपद परिग्रहका परिमाण है ॥ ५ ॥ और हस्ती, घोटक, ऊंट, गाय, भैंस वकरी, ए चौपद हैं। सो इनका परिमाण करना, जो एते चौपद अपने आधीन राखूंगा। सो चौपद परिग्रह परिमाण है ॥ ६ ॥ और रथ, गाड़ी, गाड़ा, सिंहासन, पालकी, म्याना, इत्यादिक आसन हैं। सो इनका परिमाण राखना। सो आसन परिग्रह परिमाण है ॥७॥ और पलंग, खाट, विछौना, तकिया इनका परिमाण कर लेना। सो शयन परिग्रह परिमाण है ॥ ८ ॥ और सूत रेशम घास, रोम इत्यादिकके कोमल कठोर वस्त्र तिनका प्रमाण। सो कुप्य नाम परिग्रह परिमाण है। तथा केशर, कपूर, अगर चन्दन, इतर इनकी खुसवूका परिमाण एती खुसवू राखी सो याका नाम कुप्य परिग्रह परिमाण है ॥ ९ ॥ धातु पात्रके वासन चांदी, स्वर्ण, कांसा, पीतल, तांवा, लोहा, जस्ता, सीसा रांगा इत्यादिक पृथ्वी काय धातु-पात्रनका परिमाण राखना। जो एते थाल, रकेवी, चरुवा, वेला, भरत्याई सर्वकी गिन्ती तौलका परिमाण रखना। सो भाण्ड नाम परिग्रह परिमाण है ॥ १० ॥ इन दस जाति परिग्रहके परिमाणका नाम तो, प्रश्नोत्तर श्रावकाचारजीके अनुसार कहा

और तत्त्वार्थ सूत्रजी विषैं क्षेत्र वास्तु स्वर्ण हिरण्य धन धान्य दासी दास भाण्ड कुप्य। ए दस हैं। सो नाम भेद हैं। अर्थ भेद केवली-गम्य है। तथा विशेष ज्ञानीनके गम्य है। इन दश जाति परिग्रहका परिमाण करना सो परिग्रह परिमाण अणुव्रत है। सो याके पांच अतिचार हैं। सो ही कहिये हैं। अति बाहन, अति संग्रह, विस्मय अति लोभ और अति भारारोपण। ए पांच हैं। इनका सामान्य अर्थ गाड़ा गाड़ी रथ हस्ती घोड़ा इत्यादिक असवारी जातिके जैसे दस हजार घोड़ा दस रथ इत्यादिक परिमाण राखे थे सो वर्तमान कालमें आपके पास परिमाण तैं थोड़ा है। सो ताके पूर्ण करवेकौं अनेक उपाय करते, ऐसा विचारै। जो मेरे तो दसका प्रमाण है। सो पांच तौ हैं, अरु पांच और ल्यौं। तौ मेरे व्रतकूं दोष नाहीं। ऐसा विचार कर पूरण कस्या चाहै है। सो बहुत बाहन नाम दोष है। तथा अपने परिमाण तैं बहुत इकट्ठे करवेकी इच्छा होय। तथा अपने प्रमाण तैं बहुत वाहन होंय। तौ कहै, ए मेरे नाहीं, मेरे पुत्रके हैं तथा स्त्रीके हैं, तथा भाईके हैं। इत्यादिक अपने मन तैं कल्पना करि, तिनकौं इकट्ठे करै। सो अतिबाहन नाम दोष है ॥ १ ॥ अपनी मर्याद उल्लंघि तथा सन्तोष छोड़, अत्यन्त लोभके योग तैं, अपने जेते अन्नकी मर्यादा राखी थी, ताही प्रमाण अनेक जातिका अन्न संग्रह करि भड़शालामें बहुत दिन राखै। तिनमें अनेक जीव पड़ चलैं सो तिनकौं देख कैं, निर्दय-भावना करि ऐसा विचारै। जो मेरे एते अन्नकी मर्यादा है। कोई मर्यादा कूं उल्लंघि करि थोड़े ही राख्या है अरु जीव पड़े सो ही पड़ैं। अन्न है। ऐसी कहां सधै? व्यापार है। नहीं करिये, तौ बने नाहीं। ऐसा विचार करि कठोर भाव राख दया नाहीं करै। सो बहुत संग्रह नाम दोष है ॥ २ ॥ कठार-खानेकी दुकान सम्बन्धी किराना, धना, जीरा, हल्दी आदि अनेक वस्तु लेनी-बेचनी। तिनमें सामान्य विशेष लाभादि नहीं जान, परणामनमें खेद करना, संक्लेशता रखनी। तथा पहिले तौ लाभ जानि वस्तु ल्यावना। पीछे लाभ नहीं भासै तब बहु तृष्णा करि बेचना। तथा अपनी मर्यादा तें अधिक आई जान ताके फेरवेकौं विसंवाद करना। सो विस्मय नाम दोष है ॥ ३ ॥ और जहां वाणिज्यके निमित्त अनेक वस्तु संग्रह करना, लेना पीछे बैंचना तब अल्प मोलकी वस्तुमें मिलाय बैंचना। सो अति लोभ नाम दोष है ॥ ४ ॥ और तहाँ

वृषभ भैंस, खर, हिम्माल, इनके ऊपर मर्यादाके उपरान्त भारका धरना। जैसे भाड़ा तो तिनके भारकी मर्याद प्रमाण मनुष्य तैं किया। अरु पीछे राजाके करके भय तैं चुराय, ताके ऊपर बड़ा भार धरना। तथा नफाके लोभ तैं पर जीवन पै मर्यादकौं उल्लंघि, भारका धरना सो अति भारारोपण दोष है ॥ ५ ॥ ऐसे कहे जो पांच अतिचार बचावै, तौ परिग्रह प्रमाणका व्रत, शुद्ध होय है। इति पांच अणुव्रतके, पच्चीस अतिचार कथन ॥ आगे तीन गुणव्रतके नाम व अतिचार कहिये है। प्रथम नाम—दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थ दण्ड त्याग व्रत। इनका अर्थ—तहां पूर्व दिशा, पश्चिम दिशा, उत्तर दिशा, दक्षिण दिशा, और पूर्व-दक्षिणके बीचि आग्नेय कोंण विदिशा है। और दक्षिण—पश्चिमके बीचमें नैऋत्य विदिशा है। पश्चिम-उत्तरके बीचिमें वायव्य कोंण है। उत्तर—पूर्वके बीचिमें ईशान कोंण है। ये च्यारि विदिशा हैं। तथा ऊर्ध्व दिशा, और अधो दिशा। ऐसी इन दशों दिशाओंका परिमाण करना। तथा दिशा—विदिशा विषैं ऐसी प्रतिज्ञा करनी। जो फलानी दिशा-विदिशाकूं, फलानी नदी तांई तथा फलाने पर्वत तांईं, फलाने देश तांईं, फलाने नगर तांईं, एती मर्यादमें कर्म-कार्य करूंगा। एती ही दूर तांईं, पत्र लिखूंगा। एती ही दूरका पत्र आय तौ बांचूंगा। ऐती ही मर्यादमें वस्तु भेजूंगा। ऐती ही मर्याद तैं मँगाऊंगा। इस मर्यादको उल्लंघकैं पत्र नहीं लिखूंगा। और उर्ध्व दिशामें एते उंचे पर्वत तांईं चढ़ूंगा। और अधो दिशामें एती नीची धरा तांईं पातालमें नदी-कुए में जाऊंगा। ऐसे दसों दिशाका प्रमाण करे। सो दिग्व्रत है। याके पांच अतिचार सो ही कहिये हैं। अधोतिक्रम, उर्ध्व अतिक्रम, तिर्यग्गमन अतिक्रम, क्षेत्र परिमाण उल्लंघन और अन्तर स्मरण। अब इनका अर्थ-अपनी मर्यादाकूं उल्लंघि कैं धरती, कूप, बावड़ी, नदी इत्यादिक पृथ्वीमें उतरना। सो अधो दिशातिक्रम नाम अतिचार है ॥ १ ॥ और जहां पर्वत-शिखरन पै, अपनी मर्याद उल्लंघके चढ़ना, सो उर्ध्व दिशातिक्रम अतिचार है ॥ २ ॥ मर्याद उल्लंघि कैं, विदिशामें गमन करना। सो तिर्यग्गमन अतिक्रम अतिचार है ॥ ३ ॥ जिन क्षेत्रनमें मर्यादा की थी सो तिसकौं उल्लंघि, अधिक क्षेत्रमें कर्म-कार्य करना। सो क्षेत्र उल्लंघन अतिचार है ॥ ४ ॥ और जहां दिशामें सीमा की थी। ताकूं अंतरंगमें भूलकर विचारना, जो

मेरे कौनसी दिशा की मर्यादा थी ? ऐसे करि मर्यादा का भूलना सो अंतर-स्मरण नाम दोष है ॥ ५ ॥ ऐसे अतिचार रहित, दिग्व्रतका पालना सो दिग्व्रत है ॥ १ ॥ आगे दूसरा देशव्रत कहिये है। तहां आगे कह्या दिग्व्रत-परिमाण, ताहीमें घटाय के मर्यादा करना। जो पहिले दिग्व्रत किया, सो आयु पर्यन्त है। और तिस व्रत में घटाय, रोज-रोज की मर्यादा करनी। तथा वर्ष, षट् मास, चतुर्मास, एक मास, पन्द्रह दिन, पहर, घड़ी का नियम करना। जो एते काल, एते दिन, एते मास ताईं, एते भोग-उपभोग राखे। भोग वस्तु में एते अन्न, एते मेवा, खावने; अधिक नाहीं। ऊपर-भोग में एते वस्त्र, गाड़ी, रथ, घोड़ा हस्ती महल, बिछौना, स्त्री एते-एते राखे। सो भोगना अधिक नाहीं। एते क्षेत्रमें कोस, दस-पांच धनुष, जाऊंगा। ये क्षेत्र में एते काल ताईं रहूंगा। इत्यादिक नियम रूप मर्याद सो देशव्रत है। याही के पांच अतिचार हैं सो कहिये हैं। प्रथम नाम-आसन-शयन, पर-पेक्षण, शब्द रूप और पुद्गल-क्षेपण। ये पांच हैं। इनका अर्थ—जहां जेते स्थान का परिमाण करि, जेते काल पर्यन्त दृढ़ होय तिष्ठना, शयन करना, बैठना। इतनी मर्याद में ऐसे रहना। ऐसे मर्याद करि, फेरि ताके काल-क्षेत्र कौं उलंघि कैं क्रिया करनी, सो आसन-शयन अतिचार है ॥ १ ॥ जेते क्षेत्रमें कालकी मर्यादा करी। तामें तिष्ट्या ही औरके पास संज्ञा, उपदेश देय कार्य करावना। सो पर-पेक्षण अतिचार है ॥२॥ आप अपनी सीमा-मर्यादामें बैठा ही, और कों बुलाय कार्य करावै। तथा अन्य कूं दूर बैठे तैं बतावै। तथा अन्य कोई कार्यवारे ने आय कही कि फलाने जी कहां हैं ? तब अपने स्थान में तिष्ट्या ही, खखार करि, तथा खाँसि कर, अपना अस्तित्व बतावै, जो हम यहां हैं ताका नाम शब्द दोष है ॥ ३ ॥ आप तो अपने स्थान में तिष्ठै है। और कोई प्रयोजनहारा आवै। अरु कहै, फलाना कहां है ? तब वाका शब्द सुनि प्रयोजनी जान, गोखतैं, खिड़की तैं अपना मुख काढ़ि ताकौं बतावै। ताकों संज्ञा करि, कार्य सिद्ध करै। सो रूप नाम अतिचार है ॥ ४ ॥ अपने परिणाम क्षेत्र में तिष्ठता कोई कार्य काहू तैं जानि वातैं बोल्या तो नाहीं। परन्तु कंकर वस्त्रादि पुद्गल-स्कन्ध डार अपना कार्य सिद्ध करना सो पुद्गल-क्षेत्र नाम दोष है ॥ ५ ॥ ऐसे पांच अतिचार नाहीं लागैं। सो ५२६

शुद्ध देशब्रत है। इति देशब्रत ॥ २ ॥ आगे अनथ दण्ड त्यागव्रतका कथन करिये हैं तहां बिना प्रयोजन पाप कार्य करना सो अनर्थ दण्ड है। ताके पांच भेद हैं। प्रथम-पापोपदेश, हिंसा का उपकरण राखना [हिंसादान] अपध्यान दुःश्रुति और प्रमाद-चर्य्या। इनका अर्थ-जहां पापका उपदेश, पर कौं देना। जो आओ, बैठो। कहा करो हो। चौपड़, सतरंज, गंजफा, मूठ आदि द्यूत खेलो। ज्यों दिन कटै। ऐसा उपदेश देना, सो अनथं दण्ड है। तथा चोरी करवेका मनसूबा करना। चोरनकी चतुराईकी प्रशंसा करनी। चोरी का उपदेश देना। कुशील सेवनकी कथा करनी। कुशील सेवनके कारण धातु आदि कामोद्दीपन औषधि की कथा करनी। ये सब अनर्थ दण्ड है। वेश्या-कंचनी के रूपकी कथा। तिनके नाच, गान, नृत्य इनकी कथा सो अनर्थ दण्ड है। तथा जातैं परिग्रह बधै, ताका उपदेश देना। मोह बधै, क्रोध बधै, मान-माया-लोभ बधै, मत्सर बधै। इत्यादिक दोष बधैं, ऐसा उपदेश देना। तथा भूमि खोदने का उपदेश देना। बहुत अग्नि जलावने का उपदेश, तथा पराये घर-नगर-बन में अग्नि लगायवे का उपदेश देना। ये अनर्थ दण्ड है भूमि-खुदाय खेती करनेका उपदेश देना तथा नदी, तालाव, बावड़ी, कूप का जल बहावने, फोड़ने का उपदेश देना। वस्त्र धुलआने का उपदेश। कूप, तालाव बावड़ी महल, मन्दिर, बनावने का उपदेश देना। परस्पर औरन के युद्ध करायवे का उपदेश। ये सर्व अनर्थ दण्ड हैं। तथा नदी तालाव, बावड़ी में कूदने-सपरने का उपदेश। तथा बहुत वृक्ष, बनस्पति छेदनेका उपदेश। बन कटायवे का उपदेश बाग कटायवे का उपदेश, घास कटायवे का उपदेश। अन्न, तिल, शहद, सन हाड़ का संग्रह-भण्डशाल करने का उपदेश। ये सर्व अनर्थ दण्ड है। तथा धर्म-घात का उपदेश देना। जो हे भाई, धर्म तौ तब याद आवै, जब पेट-भर रोटी मिलै। तातैं बड़ा धर्म येही है। जासे दोय पेसा पैदा होंय, सो करौ। धर्म-सेवन में कहा खावोगे? ऐसा धर्म-घातक उपदेश, सो अनर्थ दण्ड है। तथा कोई तीर्थ-यात्रा कों जाता होय। ताकौं ऐसा उपदेश देना जो हे भाई, अभी तो कुमाई के दिन हैं। तोकों दोय-च्यारि महिना परदेश में लगैं। पांच-पचास रुपया खर्च पड़ैं। ऐसे तीर्थ में कहा पाय है? तातैं घरही तीर्थ है। तेरे भाव अच्छे राख।

इत्यादिक उपदेश देना। सो अनर्थ दण्ड है। तथा तू सब दिन धर्म-सेवन, पढ़ना-सीखना, जप, तप, इत्यादिक धर्म-विषैं लगावै है, घर का सोच नाहीं। सो खायगा कहा? आगे घरका काम कैसे चलेगा? तातैं कुमाई में लागो। इत्यादिक धर्म-घातक उपदेश देना सो अनर्थ दण्ड है सो याका नाम पापोपदेश है ॥ १ ॥ और हिंसा का उपदेश देय, हिंसाके उपकरण करावना। चक्की, ऊखली, मूसली, छुरी, कटारी, बर्छी तलवार, तुबक,, कुल्हाड़ी, कुदारी, कुसिया, हंसिया, इन आदि को बनवायकर, मांगे देना। इत्यादिक पाप कार्य करना, करावना अनुमोदना। सो हिंसा दान नाम, अनर्थ दण्ड है ॥२॥ और जहां खोटे पापकारी व्यापार का उपदेश देना। आप दीर्घ हिंसा सहित व्यापार का करना, तथा परकौं ताका उपदेश देना। तथा परकौं पाप-व्यापार—वाणिज्य का उपाय बतावै कहै कि शीशा, शोरा, शहद, नील, अदरख, इनका वणिज करने मैं, बड़ा नफा है। सन, साजी, लूण [नमक], चर्म इनके व्यापार में विशेष नफा है। इत्यादिक पाप-व्यापार का उपदेश देना सो अपध्यान नाम अनर्थ दण्ड है ॥ ३ ॥ जहां स्वेच्छा-अर्थ कल्पना करि, कामी जीवन कों विकार-भाव करिवे कूं, कवीश्वरों नें बनाये जो शृङ्गार शास्त्र, जो राग-मालादि रसिक प्रिय सुन्दर शृङ्गार इत्यादिक शास्त्र, जिनकौं सुनि भोरे मोही जीव, अपने भाव काम-चेष्टा रूप करि, पर-स्त्री आदि भोगनेकी अभिलाषा करि, पाप बन्ध करैं। जिन शास्त्रनमें पर-स्त्री सेवनेमें पाप नहीं कह्या। विधवा स्त्री कों घरमें रख, उससे काम सेवनमें पाप नहीं कह्या होय। इत्यादिक कामी जीवन कूं मोह उपजायवे कूं, अपने २ विकार भाव पोषिवे कूं, जे शास्त्रका कथन करना सो अनर्थ दण्ड है। लोभी कवीश्वरोंने अभक्ष्य भोजनमें पाप न कह्या। मद्य-मांसके खावनेके अभिलाषी जीव, तिनके राजी करवे कूं बनाये जो कल्पित-अपनी मति अनुसार शास्त्र तिनमें हिंसाका पाप नहीं कह्या। मद्य, मांस, मधु, खावनेका पाप नहीं कह्या होय सो शास्त्र अनर्थ दण्ड है। जिनमें नाहर, सुअर, हिरण मारनेका पाप नहीं कह्या, वनस्पती छेदवेमें पाप नहीं कह्या। अनगाले जल पीवने, सपरनेमें पाप नहीं कह्या। ऐसे जो कषाई जीवनके बनाये कल्पित शास्त्र, परम्पराय योगीश्वरोंकी आम्नाय रहित कल्पित शास्त्र करे, सो अनर्थ दण्ड है। जिनमें

जादू करना, वशी करना, पर-मोहन, ऐसे कल्पित मंत्र, यंत्र, तंत्र, स्तम्भन इत्यादिक चमत्कार बतावनेका कथन करि, भोरे जीवन कूं आश्चर्य उपजावना। ऐसे कल्पित स्वेच्छा शास्त्रनका जोड़ना, सो दुःश्रुति नाम अनर्थ दण्ड है ॥ ४ ॥ प्रमाद सहित, ईर्य्या भाव रहित, शीघ्र-शीघ्र चलना। त्रस जीवनकी विराधना सहित, अदया भाव करि चलना। विना प्रयोजन पृथ्वी, अप, तेज, वायु, वनस्पती आदिका छेदना। इसीका नाम प्रमाद-चर्य्या अनर्थ दण्ड है ॥ ५ ॥ ऐसे इन पांच भेद मई अनर्थ दण्ड है सो याके पांच अतिचार हैं। सो ही कहिये हैं। प्रथम नाम-कन्दर्प, कौत्कुच्य, मौखर्य, अति प्रसाधन और असमीक्ष्याधिकरण। इनका अर्थ—तहां काम चेष्टा सहित, कायका स्फुरावना। नेत्रकी चेष्टा, विकार रूप करनी। मुख, विकार रूप करना। काम पोषक, शील भंजन, भयानीक, राग भरे वचन कहना। भय बतावना। पर कौं लोभ बतावना। काय मोड़ना, आदि अनेक कुचेष्टायें लिये, काम-विकार सहित बोलना सो कन्दर्प नाम अतिचार है ॥ १ ॥ जहां कौतुक लिये मदोन्मत्त भया, हाँसि सहित भण्ड-वचन बोलना। गालि काढ़िने मई हाँसि वचन, शील खण्ड पाप रूप वचन, काम-चेष्टा—विकार मई आलसका लेना, दीर्घ उश्वासका करना। अपने शरीरके गूढ़ चिन्ह प्रगट करि, अन्य कौं दिखावना सो कौत्कुच्य नाम अनर्थ दण्ड दोष है ॥ २ ॥ जहां प्रयोजन रहित वृथा वचन भाण्डवत् बोलना सो धर्म-कर्म रहित विना प्रयोजन ही खसकी नाईं वचन बोलना सो मौखर्य नाम दोष है ॥ ३ ॥ जहां हिताहित-ज्ञान रहित, अविचार सहित, मूर्ख वचन भाखना ताकौं सुनि, वे प्रयोजन बहुत जीव द्वेष-भाव करैं। मूरख कहैं, निन्दा पावै। इत्यादिक द्वेष उपजावनहारा, विना प्रयोजन वचन बोलना सो असमीक्ष्याधिकरण दोष है ॥ ४ ॥ जहां संसार विषैं अनेक भोग वस्तु, अनेक उपभोग योग्य वस्तु, नाना प्रकार इन्द्रिय सुख। देव, इन्द्र, चक्री, कामदेव, भोगभूमियां, इत्यादिक पुण्याधिकारी जीवनके भोग योग्य वस्तु, तिनके भोगनेकी अभिलापा करनी सो पुण्य तौ हीन, जो उदर पूरणा ही होती नाहीं। इन्द्रिय सुख भोगवेकी इच्छा-देव-इन्द्र कीसी राखना तथा पराया राज्य-भोग देख, पुण्य-रहित ऐसा विचारै। जो ये राज्य नहीं करि जानै। अरु राज्य-लक्ष्मी नहीं भोग जानै। अरु ये हस्ती, घोड़ा, पालकी पै नहीं

चढ़ जानै। प्रजा नहीं पाल जानै। जो ऐसी राज्य-लक्ष्मी मोकों मिलै, तौ मैं ऐसे राज्य करौं। ऐसे हस्ती, घोटक, रथ, पालकी पर चढ़ौं। ऐसे राज्य-लक्ष्मी भोगूं। इत्यादिक पुण्य रहित होय, अर्थ रहित विचार, सो भोगोपभोग (अति प्रसाधन) नाम दोष है ॥ ५ ॥ इति तीसरा अनर्थ दण्ड त्याग गुणव्रत ॥ २ ॥

इति श्री सुदृष्टि तरङ्गणी नाम ग्रन्थ मध्ये, श्रावक धर्म प्ररूपण रुप, एकादश प्रतिमा विषैं, दूसरी व्रत प्रतिमाके बारह व्रतनमें, तीन गुणव्रत अतिचार सहित कथन वर्णनो नाम, तेतीसवां पर्व सम्पूर्णम् ॥ ३३ ॥

आगे च्यारि शिक्षाव्रत कहिये है। प्रथम नाम-सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण, और अतिथि संविभाग। इनका अर्थ—सामायिकके दोय भेद हैं। एक द्रव्य-सामायिक, और दूसरा भाव—सामायिक। तहां सामायिक करते विनय सहित, समता लिये, शांत मुद्रा धार, कायोत्सर्ग तथा पद्मासन तिष्ठ, शुद्ध सामायिक-पाठ करै है। अरु परणति सामायिक तैं छूटि, अन्त गई होय प्रमादवशात् अन्य ही विकल्प में लागै सो द्रव्य-सामायिक है। जो सामायिक करनेहारा भव्य, शुद्धासन करि पाठ करै। सो अर्थ विषैं चित्त राखि, सामायिक करै सो भाव-सामायिक है। यहां प्रश्न-जो सामायिक प्रतिमा तो तीसरी है। अरु यहां दूसरी-प्रतिमा विषैं व्याख्यान किया। सो क्यों ? ताका समाधान-जो सामायिक प्रतिज्ञाका अतिचार रहित धारी तौ तीसरी प्रतिमा में है। परन्तु यहां शिक्षाव्रतमें कथन किया, सो साधन रूप कथन है। जैसे रण विषैं लड़ने-युद्ध करनहारे पुरुष, सुभट हैं सो तीर, गोली, तलवार राखैं हैं। जो युद्ध में काम पड़ै, तौ सुभट अपना पौरुष प्रगट करि, तीर-गोली चलावैं। बैरोन कौं जीतैं हैं। सो तौ सुभट शूर ही हैं। और उन सुभटों के बालक हैं, सो तिनका भी अभिप्राय अपने बड़ों की नाईं युद्ध करि, रणमें शस्त्र चलाय, बैरी जीति, यश प्रगट करवे रूप है। सो वह भी अपने बड़ोंसे शस्त्र-विद्या सीखैं हैं। सो ते बालक भी तीर-गोली राख, चलावैं हैं। सो इन बालकन कौं, सीखनेहारा कहिये। इन तैं हाल, युद्ध नहीं जीत्या जाय। ये सुभट नाहीं। जब शस्त्र-विद्या सीख चुकेंगे तबही सुभट कहावेंगे। हाल शस्त्र राख, तीर-गोली कौं मिट्टी के तोसदान में चलावना सीखैं हैं। तैसे ही शिक्षाव्रत वाला, सामायिक करना सीखै है। सामायिक नामा

प्रतिमाधारी नाहीं। यहां कोई अतिचार भी लागै। तथा कोई समयान्तर, काल भी उल्लंघन होय, तौ होय। कोई अतिचार भी यहां होय। तातैं यहां शिक्षाव्रत ऐसा कह्या है। ये शिक्षाव्रत वाला, अतिचार रूप बैरी कौं नहीं जीति सकै है। तीसरी प्रतिमा विषैं, निर्दोष व्रती होय है। ऐसा जानना। इति सामायिक शिक्षाव्रत ॥ १ ॥ आगे प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत कहिये है। जहां सोलह-सोलह पहरका अनशन होय। सर्व काल धर्मध्यान में अपनी मर्याद सहित एक स्थानमें व्यतीत करै। सो प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत है। इनके अतिचारन का कथन आगे इनकी प्रतिमा विषैं करेंगे। तहां तैं जानना। इति प्रोषधोपवास ॥ २ ॥ आगे भोगोपभोग शिक्षाव्रत कहिये है। जहां एक बार भोगवे में आये ही, जो वस्तु अयोग्य हो जाय सो वस्तु, भोग कहावै। और जो बार-बार भोगवेमें आवे सो वस्तु उपभोग कहावै है। तहां भोग वस्तुके दोय भेद हैं। एक तो भोग-योग्य वस्तु है। दूसरी भोग-अयोग्य वस्तु है। जहां अन्न, मेवा, पकवान्, इत्यादिक निर्दोष वस्तु सो तो भोग वस्तु हैं। तथा मिष्ट, तिक्त, कटुक, खारा, दुग्ध, घृतादिक षट्रस। ये भोग-योग्य वस्तु हैं। तथा चन्दन, केशर, कपूर, गंधादिक अन्तर्जाति सर्व वस्तु। खाद्य, स्वाद्य, लेय, पेय, इत्यादिक ये सब भोग-योग्य वस्तु जानना। और कन्द-मूल आदि बाईस अभक्ष्य, अभोग-योग्य वस्तु हैं, सो ये सब तजवे योग्य जानना। ऐसे भोग वस्तु दोय रूप कहीं। और स्त्री, वस्त्र, आभूषण, चांदी, स्वर्ण, रत्न, माणिक, मोती हीरादि रत्न जाति और देश, नगर, मन्दिर, हस्ती—घोटकादि चौपद, तथा दोपद-दासी, दास, सेवक। ऐसे ये चेतन-अचेतन करि दोय भेद रूप उपभोग वस्तु हैं। सो इन भोगोपभोगका प्रमाण राख लेना सो भोगोपभोग शिक्षाव्रत है। सो याके पांच अतिचार कहिये हैं प्रथम नाम-सचित्त, सचित्तसंबन्ध, सम्मिश्र, भिषव और दुःपक्वाहार। इनका अर्थ—तहां सचित्त वस्तुका भोगना, सो सचित्त नाम अतिचार है ॥ १ ॥ तहां सचित्त तैं ढांकी जो वस्तु तथा सचित्त वस्तु ऊपर धरी होय। इत्यादिक वस्तु कों सचित्त का संयोग भया होय। सो सचित्त-संयोग है ॥ २ ॥ और सचित्ताचित्त वस्तुका मिलाप सहित भोजन लेना। सो सम्मिश्र अतिचार है ॥ ३ ॥ और तहां अनेक प्रकार बलकारी-पुष्टकारी रसका खावना सो

भिषव नाम अतिचार है ॥ ४ ॥ और जो भोजन, लिये पीछे दुःख कर पचै, ग्लानि करै, डकार करै सो ऐसे गरिष्ट भोजनका करना सो दुःपक्वाहार अतिचार है ॥ ५ ॥ ऐसे पांच अतिचार रहित होय, सो शुद्ध भोगोपभोग नाम शिक्षाव्रत है सो ये व्रतके धारी जो उत्तम फलके लोभी हैं। सो इन दोषोंकों टालि, व्रत निर्दोष राखैं हैं। इति तीसरा भोगोपभोग शिक्षाव्रत ॥ २ ॥ आगे अतिथिसंविभाग नाम शिक्षाव्रत कहिये है। तहां तिथि नाम परिग्रह का है। सो जो परिग्रह रहित होय, सो अतिथि है। तथा तिथि नाम वांच्छा का है। सो जाके वांच्छा नहीं होय, सो अतिथि है। "मूर्च्छा परिग्रहः ।„ ऐसा तत्त्वार्थ सूत्रका वचन है सो अतिथिके दोय भेद हैं। एक अतिथि तो ऐसा है कि पाप के उदय करि नहीं है अन्न-धन-वस्त्र जाके पास। उदर-पूरण कौं पर-घर फिरै है। याचै है। तौ भी ताके उदर—मात्र की वांच्छा पूर्ण नहीं हो है। ऐसा महा दीन, दरिद्री, अनेक रोगन करि दुखिया, बृद्ध, बालक, अन्धा, लूला इत्यादिक ये असहाय, जिनके पास एक वक्त का अन्न नहीं। कोई दया करि देय तब, पेट भरैं, सुखी होंय। याका नाम वांच्छा सहित अतिथि है। यह अशरण है, दया करवे योग्य है। याका नाम वांच्छा सहित अतिथि है। अरु वांच्छा है, सो याचना करावै है। ऐसी याचना का धारी, वांच्छा सहित रंक, ताकौं असहाय जानि, दया भाव करि दानका देना। सो करुणा सहित अतिथि का दान है। और बीतरागी, तपसी, ज्ञानी, ध्यानी, यमी, दमी, शांति रसका भोगी नग्न दिगम्बर, याचना रहित, जगत् पिता, सर्वका गुरु, त्रिलोक पूज्य, सर्व जीवका पीड़ा-हर, दया सागर, षट् कायक जीवन कूं अभय-दान का दाता, योगीश्वर, मोक्षाभिलाषी, परीषह सहवे कूं साहसी, तन-ममत्व रहित, इत्यादिक कहे गुण सहित ज मुनीश्वर, सो उत्तम पात्र हैं। सो इन पात्रन कूं महा भक्ति-भाव सहित, नवधा भक्ति करि दान देनेहारा दाता, ताके सात गुण हैं। सो ही कहिये है—

गाथा— सध्धा भत्ती सत्तह, विणाण मलुब्ध होय क्षम भायो। जम्मं गुण सुह तज्यो, इव सत्तय गुण ज्ञेय आदाए ॥ १३७ ॥

अर्थ—सध्धा कहिये, श्रद्धा। भत्ती कहिये, भक्ति सत्तय कहिये शक्ति। विणाणं कहिये विज्ञान।

अलुब्ध कहिये, अलुब्धता। होय क्षम भावो कहिये, क्षमा भाव होय। जम्मं गुण सुह यज्यो कहिये, अंतका शुभ-गुण, त्याग है। इय सत्तय गुण कहिये, ये सात गुण। ज्ञेय आदाए कहिये, दाताके हैं। भावार्थ-श्रद्धा, भक्ति, शक्ति, विज्ञान, अलुब्धता, क्षमा, और त्याग। ये सात हैं। जहां दाताके ऐसा श्रद्धान होय। जो परलोक है। च्यारि गति है। पाप-फल तैं नरक-पशु होय है। पुण्य-फल तै सुर-नरके सुख होय हैं। अरु मुनि का दान, स्वर्ग-मोक्षका दाता है। जिनका निकट संसाररह्या होय, तिनके घर यतीश्वरका दान होय है। ऐसी श्रद्धाका अस्तित्व सहित दान देना। सो श्रद्धा गुण है ॥ १ ॥ और जो मुनिराज, भोजनकों अपने घरमें आये। तिनके गुण सूं प्रीति-भाव करना। सो भक्ति गुण है ॥ २ ॥ और जगतके गुरुकौं, प्रमाद रहित विनय सहित, भोजन देवै की शक्ति होना। सो शक्ति गुण है ॥ ३ ॥ और मुनिराजके भोजन विषैं प्रवीणता। सो यथा-योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव जानि, भोजन देय। विवेकी-दाता ऐसा विचारे। जो ये मुनि वृद्ध हैं, तो इनके योग्य पुष्टता रहित भोजन देय। अरु गरिष्ट देय तौ वृद्ध-मुनि कौं खेद करे। तातैं वृद्धकी वय (उमर) प्रमाण देय। तथा मुनिराज तरुण हैं तो ता माफिक देय। तथा ये मुनि, रोग सहित हैं। सो फलना रोग है। तैसी ही दवा सहित, भोजन देय। तथा इन यतीका तन, वायु सहित है। तथा पित्त सहित है। तथा कफ सहित है। इत्यादिक तो द्रव्यकौं विचारे। और ऐसा जाने, जो यह ऋतु उष्ण है। तथा शीत है। तथा मध्यम है। इन मुनिकी ऐसी प्रकृति है। इन्हें ऐसा भोजन रुचै, ऐसा नहीं रुचे। ऐसा द्रव्य, क्षेत्र, काल भावका विचार करि, मुनीश्वरकों भोजन देनेमें प्रवीणता। सारी दान की विधि जानैं। सो विज्ञान गुण है ॥ ४ ॥ और मुनिके दान देने योग्य वस्तूनमें लोलुपी नहीं होना। जैसे घर विषैं एक-दोय भोजन, अपने रुचिकर वनवाये होंय। ऐसी वस्तु अल्प होय। तो ऐसा नहीं विचारै, जो भोजनकी फलानी वस्तु अल्प भई है, हमने अपने वास्ते कराई है। सो मुनीश्वर कौं देहौं, तो मोकौं नाहीं बचि है। तातैं वह वस्तु नहीं द्यों। और भोजन वहुत है सो दै हों। ऐसा विचार नहीं करै। सो अलुब्ध गुण है ॥ ५ ॥ मुनिकौं भोजन देते, मान मत्सर क्रोध लोभ क्रूरता सर्व तजि, समता भाव सहित, सर्व जीवन तै स्नेह भाव सहित, क्षमा-

भाव धारि, भोजन देना। सो क्षमा गुण है ॥ ६ ॥ उदारता सहित, लोभ भाव रहित, भक्ति करि भरचा, मुनि कौं भोजन देय। सो त्याग गुण है ॥ ७ ॥ ऐसे कहे जो दातारके सात गुण, सो इन गुण सहित जो यती कूं दान देय, सो उत्तम फल पावै। सो जो इन सात गुण का धारी दाता, यतीश्वर कौं दान देय, सो नवधा भक्ति करि दान देय है—

गाथा—पितगहणं,उचथाणं, पदधोणमर्चणएव होहु पणणामो। मन वय तण त्रण सुद्धा, एषण सुध्यय भक्त णव सुहदा ॥ १३८ ॥

अर्थ—पितगहणं कहिये, प्रतिग्रहण। उचथाणं कहि, ऊंच स्थान। पदधोणं कहिये, पद धोवना। अर्च एव कहिये, अर्चन करना। होहु पणणामो कहिये, प्रणाम करना। मण वय तण त्रण सुद्धा कहिये, मन, वचन, काय इन तीनोंकी शुद्धता। एषण सुध्यय कहिये, एषणा शुद्धि। भक्त णव सुहदा कहिये, ये नवधा भक्ति सुखदाता हैं। भावार्थ—प्रतिग्रहण, ऊंच स्थान अंघ्रि–प्रक्षालन, अर्चन प्रणाम, मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि, और एषणा शुद्धि। ये नव भक्ति हैं। तहां श्रावक, मुनि-भोजन समय, उज्वज्ल वस्त्र धारण करि प्राशुक जलकी झारी सहित अपने मन्दिर (घर) के द्वारे, विधि सहित खड़ा होय मुनि आए, उनको पड़गाहना। सो प्रतिग्रहण नाम भक्ति है ॥ १ ॥ जब योगीश्वर ईर्य्या समिति करता दातारकी घर-भूमि पवित्र करता दाताके घर विषैं प्रवेश करि भोजनशाला में जाय। तहां ऊंचे आसन पै विनय सहित स्थापना। सो ऊंचस्थान नाम भक्ति है ॥ २ ॥ तहां मुनिराजके दोऊ चरण-कमल कौं, श्रावक अपने दोऊ हाथन तैं स्पर्श करि अपने हस्त सफ करता, प्राशुक अल्पजल तैं पद धोवना सो पद धोवन नाम (अन्घ्रि प्रक्षालन) भक्ति है ॥ ३ ॥ और पीछे अष्ट द्रव्य तैं, जगत्गुरुकी पूजा करनी सो अर्चन भक्ति है ॥ ४ ॥ और पीछे विनय सहित नमस्कार करना सो प्रणाम भक्ति है ॥ ५ ॥ और मन को, भक्ति सहित, विनय रूप करि, मुनीश्वर में मन लगावना। उत्साह सहित, प्रमाद रहित विकल्प तजि, एकाग्र होय मुनिके दानमें मन राखना सो मन शुद्धि भक्ति है ॥ ६ ॥ और जहां मुनीश्वरके भोजन समय, घर-जन तैं वचन बोलना-कोई कारण पायके सलाह करनी होय तौ परस्पराय विचार कैं बोलै सो वचन शुद्धि है ॥ ७ ॥ और

मुनि कौं भोजन देते समय दाता अपनी काय कौं शुद्ध राखै। और क्रियान तैं छुड़ाय, भोजन देनेमें एकाग्र करि शुद्ध राखना सो काय शुद्धि भक्ति है ॥ ८ ॥ और शुद्ध भोजन, अधा-कर्म रहित सो शुद्ध भोजन है। सो अधा-कर्म कहा? सो कहिये है। अधा-कर्म चार प्रकार है आरम्भ, उपद्रव्य, विद्रावण और परतापन। इनका अर्थ-जो प्राणीके प्राण घाततैं निपजै। सो आरम्भ दोष है ॥१॥ और अन्यजीवनकौं मनवचन काय विषैं दुखी करि भोजन बनावना। सो उपद्रव्य दोष हैं ॥२॥ और अन्यजीवनके अङ्गोपाङ्ग छेदन करि भोजन निपज्या होय। सो विद्रावण दोष है ॥३॥ पर-जीवन कों सन्ताप-क्लेश उपजाय, भोजन निपज्या होय सो परतापन दोष है ॥४॥ इनच्यारिदोषों सहित भोजन देयसो अधा-कर्म दोष है ऐसे च्यारिभेद अधाकर्म रहित भोजन देनासो एषणा शुद्धि भक्ति है ॥ ६ ॥ ये नवधा भक्ति कहीं सो दाताके सात गुण, नवधा भक्ति इन गुण सहित मुनीश्वर कौं भोजन देना सो पात्र दान है सो श्रावकके घरमें, जो श्रावकने अपने निमित्त किया होय। तामें तैं भोजन देना सो अतिथि संविभाग व्रत है सो यति अतिथि हैं, वे भक्ति सहित, दान देने योग्य हैं। भक्ति सहित पात्रन कौं दान दिये, महत्-फलका लाभ होय है सो इन पात्रन कूं अन्नदान, औषधिदान, शास्त्रदान, और अभयदान दीजिये। यहां प्रश्न-जो तुमने मुनि कौं च्यारि ही दान देने योग्य कहे। सो अभयदान कैसे सम्भवै? अभय-दान तौ दया मई भावन तैं दिया जाय है सो दया एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, इन आदि दीन-दुखी जीवनकी कीजिये। तिनकों अभयदान सम्भवै है। अरु जगत गुरु, त्रिलोक पूज्यकी दया कैसे सम्भवै? तातैं इनकौं अभय-दान कैसे कह्या? ताका समाधान-जैसे कोई राजाके प्रबल बैरी थे सो कोईक छल करि, राजाकौं अकेला पाय, ताकौं पकड़िकैं मारनेका उद्यम किया। तब ऐसे समय विषैं, इस राजाका सेवक-महा योद्धा, आय गया सो वानै अपने नाथ कौं दुःख जान, बैरीन तैं युद्ध किया। अपने पुरुषार्थ तैं औरन कौं जीति, अपना नाथ-राजा, ताकौं बचाय लाया। पीछे राजाकों सुखी कर, नमस्कार किया। विनती करी कि भो नाथ! मैं आंपका सेवक हों। ऐसे ही अपने नाथवीतरागी जो गुरु, तन तैं निष्प्रिय, शत्रु-मित्रमें समभावी, ऐसे गुरुनाथकौं पापीजन, कोई प्रबल द्वेष-भावतैं उपसर्ग करैं। ता समय महा घोर उपसर्ग

में कोई महा धर्मात्मा, यतीनाथका सेवक आय, अपने बल त पापीजनकौं दण्ड देय, मुनिश्वरका उपसर्ग टालि, पीछे जाय यतीश्वरकौं नमष्कार करि, स्तुति करि, विनती करै सो यह मुनि कौं अभयदान भया। ऐसे कहनेमें कछू दोष नाहीं। तातैं मुनि कौं च्यारों ही दान सम्भवै। यामें कछु दोष नाहीं। एता विशेष है कि जो दीनकौं अभयदान देनेमें तो करुणा-भाव होय है। मुनि कौं अभयदान देनेमें भक्ति-भाव होय है। इन च्यारि दाननमें अभयदान उत्कृष्ट है। अरु याका फल भी औरन तैं उत्कृष्ट है। जैसे राजाको और अनेक सेवा करने तैं, राजाकौं मरते राखै सो उत्कृष्ट सेवा है। मरण समय सहाय करि, बैरी तैं बचाय करि राखै सो उत्कृष्ट सेवक है। यों ही उत्कृष्ट सेवाका, उत्कृष्ट फल है तैसे ही मुनि कौं तीन दान तैं, उपसर्ग तैं बचायवेका महान् पुण्य है। तातैं च्यारौं दान यती कौं कहे हैं। इस नय प्रमाण करि समझ लेना कोई नय, शास्त्र बड़ा दान है सो शास्त्रदानके दान तैं, जिनवाणीका अभ्यास करि, केवलज्ञान पावै हैं। इस नय तैं शास्त्रदान, बड़ा है। कोई नयतैं अन्नदान बड़ा है। जहां रोगकी बधवारी भये, यती-श्रावकनकौं ध्यानमें स्थिरता नहीं होय। रोग गये ध्यान-ध्येयकी प्राप्ति होय है। इस नय तैं औषधिदान बड़ा है। और जो क्षुधा दिन—प्रति खेद करै, तब शिथिल होय। भोजन बिना तन क्षीण होय। धर्मध्यान नहीं सधै। तातैं तनकी स्थिरता तैं, भावकी स्थिरता होय है। भावकी स्थिरता तैं, कर्म नाशि, केवली होय, सिद्ध पद पाय है। इस नय तैं आहारदान बड़ा है। ऐसे अपनी-अपनी जगह, नय—प्रमाण सर्वही उत्कृष्ट हैं। यह आत्मा अन्नदान तैं, सदीव सुखी होय है। अनेक जीवनका पोषणहारा होय है। औषधिदान तैं, शरीर रोग रहित होय। औरनके रोग नाशवेकी कलाका धारी होय। शास्त्रदान तैं अंग—पूर्व आदि श्रुतिज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान की प्राप्ति होय। आप भवान्तरमें औरन कूं ज्ञानदाता होय। अभयदान तैं भवान्तर में कोटी—भटादि महा योद्धा होय है। दयावान होय। तथा अनुक्रम तैं, अनंतकाल सुखका स्थान, स्थिरीभूत, लोक शिखर पै, सिद्ध होय। ऐसा जानि, च्यारि ही दान देना योग्य है। अरु यहां मुख्यता कथन, अतिथि संविभाग व्रतका है। तातैं अपने भोजनमें अतिथिका संविभाग करना, सो अतिथि संविभाग व्रत है। याके

पांच अतिचार हैं। सो ही कहिये हैं। प्रथम नाम—सचित्त निक्षेप, सचित्तापिधान, परव्यपदेश, मात्सर्य और कालातिक्रम। इनका अर्थ—जहां भोजनकी वस्तु, सचित्त वस्तु पै धरी होय। सो सचित्त निक्षेत्र नाम अतिचार है ॥ १ ॥ जहां भोजनकी वस्तु, सचित्त वस्तुसे ढांकी होय। सो सचित्तापिधान नाम दोष ॥ २ ॥ जहां भोजन समय मुनीश्वरकौं आए जानि, औरकौं कहै, जो मोकूं काम है। तुम मुनिकौं आहार देय लेना। ऐसा कहिकैं, अन्य से अपना भोजन—दान करावना। सो पर-व्यपदेश नाम अतिचार है ॥ ३ ॥ जहां और अन्य दातारका दान नहीं देख सकै। तथा अपने भाव, मत्सर सहित राख दान देवे, सो मात्सर्य दोष है ॥ ४ ॥ जहां भोजनका काल उलंघि जाय। आप अपने घर-धंधेमें लग गया सो प्रयोजनके वशीभूत होय, मुनीश्वरके भोजनका काल उलंघि दिया। पीछे सुचिताईमें याद आई। तब द्वार—पेक्षण क्रिया करी, सो कालातिक्रम नाम अतिचार है ॥ ५ ॥ ऐसे पांच अतिचार रहित होय, सो शुद्ध अतिथि संविभाग नाम व्रत है ॥ ४ ॥ ऐसे पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और च्यारि शिक्षाव्रत। ये बारह अणुव्रत (देश व्रत) भये। एक-एक व्रतके, पांच—पॉच अतिचार। सर्व मिलकर साठ भये। सो ये व्रत प्रतिमाधारी सम्यग्दृष्टी, सो ताके सम्यक्त्व कौं पांच अतिचार नहीं होंय। सोही कहिये हैं। शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टि प्रशंसा और अन्यदृष्टि संस्तव। इनका अर्थ—जिनवाणीमें कहे जे धर्म—अंग, तिनके सेवनमें शंका राखना। सो शंका नाम अतिचार है ॥ १ ॥ जहां धर्म सेवनमें इस—भव संबन्धी वांच्छा तथा परभव सम्बधीवांछा करनी, सो कांक्षा दोष है ॥ २ ॥ जहां धर्मात्मा मुनि—श्रावकादिक निर्मल दृष्टिके धारी पुरुषनके तनमें रोग देख, तन मैल तैं लिप्त देख, मुख वासना देख, इत्यादिक रोग देख ग्लानि करनी। सो विचिकित्सा दोष है ॥३॥ जहां मिथ्यादृष्टी जीवनके गुण देख, बारम्बार यादकर, प्रशंसा करनी। ते गुण भले जानना। सो अन्यदृष्टी प्रशंसा नाम दोष है ॥४॥ मिथ्यादृष्टीकी अपने वचन तैं स्तुति करनी, सो संस्तव नाम दोष है ॥ ५ ॥ ऐसे पांच अतिचार रहित सम्यग्दर्शन सहित जो व्रतका धारी, कोमल चित्त सहित, दया भण्डार, संसार तैं उदासीन, पाप तैं भय-भीत होय, च्यारि गति बास दुखदाई जान, तन धरने व मरने तैं दुखी भया है मन जाका, जो मोक्षाभि-

लाषी, अजर-अमर पदका लोभी, धर्मात्मा ! जो अपने मन-वचन-तन तैं क्रिया करै। सो सर्व जीव आप समानि जानि, ये त्रस-हिंसाका त्यागी श्रावक, यत्न तैं करै। कैसा है धर्मी श्रावक ? निरंतर समता सहित काल कौं व्यतीत करवे की है इच्छा जाकैं। निराकुल परणति सहित, शांति रसका अभिलाषी। षट् काय जीवन कूं अभयदान देने की है अभिलाषा जाकैं। ऐसा धर्मात्मा श्रावक भव्य, तन-धन तैं उदास होय, सल्लेखना व्रत धारै सो कैसे धारै ? सो कहिये हैं। तहां प्रथम तो सर्व जीवन तैं समता-भाव करै। पीछे अपने तन, धन, राज्य-लक्ष्मी, इन्द्रिय-सुख कुटुम्बी, सज्जन तिन सर्व तैं मोह—ममता भाव तज, सन्यास धारै सो कब धारै ? सो समय कहिये हैं। कै तो यह धर्मात्मा अपना आयु-कर्म नजदीक आया जानै, तब सन्यास धारै। तथा शरीरमें कोई तीव्र रोग जानै तब। तथा शरीर पै कोई दुष्ट पशु सिंह-सर्पादिक का उपद्रव जानै तब सल्लेखना करै। कोई कारण पाय, राजादिकका तीव्र कोप जानै, इत्यादिक दीर्घ उपद्रव जानै, तौ सल्लेखना करै सो ता समय यह श्रावक ऐसा विचारै, जो इस उपद्रव तैं बच्या तो अन्न-जल ग्रहण करूंगा नहीं तौ अन्न-जलादिकका त्याग है। ऐसी प्रतिज्ञाका धरना, सो तो सागार सन्यास है। अपने बचनेका उपाय कछू नहीं भासै, तौ अनागार सन्यास करै। उपसर्ग तौ नहीं, परन्तु अनन्त संसार भोग तैं उदासीन काय धरने तैं आकुलित होय कैं, मुनिपद धरवेकूं असमर्थ, नहीं पाया है यतीपद धरवेका द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव जानै सो भव्यात्मा, अपने तन तैं निष्प्रिय होय, काय तजवेका उपाय शनैः शनैः करै है। सो ही कहिये है। प्रथम तौ जातैं अपने परणामनकी विशुद्धता बधै, संक्लेश भाव नहीं होंय, ऐसा तप करै। एकांतरे करै, पीछे एक-एक उपवास साधै। पीछे दोय-दोय उपवास साधै। ३, ४, ५, उपवासका साधन करै। पीछे पारनाके दिन अल्प आहार लेय-ऊनोदरी साधै। ऐसे केतक दिन करि, पीछे रसत्याग साधै। पीछे केतक दिन गये नर्म भोजन, पीछे पतला दलिया, पीछे भातका पान, पीछे अन्न तजि, दूध पीछे दूध तजि, दही। पीछे दही तजि, मही। फिर मही तज, जल राखै। ऐसे करते-करते अनुक्रम तैं, जब काय तजवेका समय नजदीक जानैं। तब अपने सज्जन-कुटुम्बी जन बुलाय, उनतैं मोह घटावेके निमित्त हितोपदेश देय, महा हित

सित वचन कहि, उन्हें संतोषित करै। पीछे यह सम्यग्दृष्टिका धारी, जगत तैं उदासो आत्मा, शरीरकौं भिन्न अवलोकनहारा, सर्व जीवनकों सुख चाहता ऐसा विचारै। जो सर्व जीव साता पावैं। कोई भी प्राणी, दुखो मत होऊ। कोऊ रोग पोड़ा, दुख-दरिद्र, अन्न तन करि दुखी मत होऊ। मेरे सर्व जीवनतैं क्षमा-भाव है। सर्व जीव मोक्ष-मार्ग पावनेका भाव करौ। अब मैंने मन-वचन-काय करि एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, आदि त्रस-स्थावर, जीव सो सर्वकूं अभयदान दिया। सर्व जीव मेरे पै दया भाव करि अभयदान देओ। ऐसे सर्व जीव-नतैं क्षमाय, पीछे अपनी आलोचना करे कि जो मैंने अपनी अज्ञानता करि, मोह फांसीमेंफांसि, राग-द्वेष करि पर वस्तुमें ममत्व अपनाय-अपनाय, पाप-फंद विषैं आत्मा उलझाया। मनुष्य पर्याय पाय, वृथा दुख वधाया। हाय! हाय! अज्ञान चेष्टाका करनहारा, भ्रम बुद्धि मोसा और कोइ नाहीं। देखो, जो आगे महान् बुद्धिमान् भये तिनने मनुष्य पर्याय पाय, धर्म साधन किया। पीछे संसार-भोगन तैं उदास होय, राज्य-संपदा व इन्द्रिय-जनित सुख काले नागके समान जानि, तजे। तन तैं ममत्व निवार, दिगम्बर होय, नग्न मुद्रा धारि, मोह फांस छेद, वन विहारी भये। बाईस परीषह सहके, कर्म रूपी ईंधनकौं ध्यान रूपी अग्निमें भस्म करि, सिद्धलोक विषैं जाय तिष्ठे। अविनाशी भये। काय धरने तैं निरंजन भये तेही धन्य हैं। मैंने तो कल्पवृक्ष समान मन-वांच्छित सुखको देनेहारी मनुष्य पर्याय पाय, हलाहल विष समान विषय चाहे। सुकृत कछू नहीं वन्या, अरु मरनेके दिन आय पहुँचे। इत्यादिक आलोचना करि, कषायनका मद तोड़, मन्द कषायी होयकैं पीछे ये पवित्र बुद्धिका धारी, महा विनय सहित, नम्र भावन तैं, पंच परमेष्ठी कौं नमस्कार करि वारंवार तिन पंच गुरुनकी स्तुति पढ़ता, परणति विसुद्धि राखकैं, यह सर्व नयका वेत्ता, श्रावकनकी लौकिक परंपराय-मर्यादाका जाननहारा, अपूर्व गुणका धारी मोह तैं रहित होय व्यवहार पोषणेकौं अपने तनके प्रयोजन धारी कुटुम्बी-मोही जन तैं, यथा-योग्य विनय तैं, मिष्ट क्षमा-वचन कहै। शुभ अक्षर उच्चारता, न्याय वचन धर्म रसके भींजे, संसार तैं उदास, मर्यादा प्रमाण वचन कहै। भो कुटुम्बी जनो! अब तांई तुम्हारे-हमारे पर्यायके सम्बन्ध करि एक क्षेत्र विषैं येते दिन रहना भया। तातें परस्पर मोहके बंधान करि, एकत्व भया सो अब

हम इस पर्याय तैं भिन्न होंयगे सो तुम कछु मोह-भाव तैं, आर्त्त-भाव नहीं करना। जाकरि अशुभ कर्मका बन्ध होय, परभवमें दुख उपजै सो ऐसा भाव नहीं करना। तुम सर्वही जिन धर्मके वेत्ता, संसार कला विनाशीक जाननेहारे हो। भो पुत्र! तू इस पर्याय संबन्धी पुत्र है। दोऊ भले कुलका धारी, धर्मात्मा, सज्जन, अंगकाधारी है सो जैसे हमने इस भवमें पर्याय पायकैं न्याय करि, धन उपारज्या। कुटुम्बकी रक्षा करी। यथायोग्य सज्जनका विनय किया। जिन धर्म विषैं दृढ़ प्रतीति होय प्रवृत्ते। तैसे तूं भी करियो सो न्याय तैं धन, यश, पुण्य उपजवाना। मोह नहीं बधावना। हे इस भवके माता, पिता, स्त्री, भ्रातृ, मित्र हो! हमारे इस पर्यायका नाता है। ये जीव अनन्त-पर्यायमें कई बार पुत्र तैं पिता-पिता तैं पुत्र, माता तैं पुत्री पुत्री तैं माता स्त्री तैं भगनी, भगनी तैं स्त्री, भाई तैं पिता, पिता तैं भाई, मित्र तैं बैरी, बैरी तैं मित्र इत्यादिक अनेक नाते भए। जिस पर्यायमें यह जीव मिल्या, तैसाही नाता पाल्या। अरु ताही रूप प्रवृत्त्या। सो अब इस पर्यायके सम्बन्धी, तुम कुटुम्बी भए हो सो तुम सवही सज्जन अज्ञी हो। सुकृत्यके इच्छ क हो सो तुमने मेरे ऊपर उपकार करि:इस पर्यायका यत्न करि, याकौं बधाय पुष्ट करी। सो मैं अज्ञान रस भीना, अविनय चेष्टाकों धारि तुम्हारी सेवा बन्दगी इस काय तैं कछू नहीं करी। अरु और भी इस पर्याय तैं कछु शुभ कार्य नहीं बना। हे कुटुम्बी प्रीतम हो मैं मन्द बुद्धि, इस पर्यायकूं पाय कुसंग-योग तैं कुमार्ग चल्या। अरु सुपात्रनकूं भक्ति सहित दान नहीं दिया। दीन-दुखितकूं करुणा करि, दान नहीं दिया। छल-बल करि, पराये धन, प्रपंच करि हरे शरीर पाय शीलव्रत नहीं पाल्या। पशुवत् कुशील सेवन किया। सुदेव-सुधर्म-सुगुरुकी सेवा नहीं करी। अरु पाखण्डी कुदेव-कुधर्म-कुगुरुकूं शुभ अतिशय सहित जानि, पूजे। संतनकी संगति तजकर, निंदा करी। अरु पापाचारी कुमार्गीनकी प्रसंशा करी परकौं दोष लगाए, अपने दोष ढांके। शुभाचार तज्या, कुआचार सेवन किया। निशि भोजनादि कुकार्य रूप प्रवृत्त, पाप बन्ध। खाद्याखाद्य नहीं विचार्या। उत्तम मार्ग तज्या। हीन मार्ग विषैं गमन किया। अनेक दीन मनुष्य-पशूनकूं, द्वेष-भाव करि पीड़े-दुखी किये। मत्सर-भाव करि:सताये। सामान्य प्राणके धारी अनेक जीव, दया रहित भावन तैं हते। इत्यादिक तिहारे

कुल योग्य नाहीं, ऐसी हीन क्रिया करि, मो मन्द बुद्धिने पाप बंध करि अशुभका भार अपने सिर लिया। अकार्य सहित प्रवृत्त्य, अपयश रूप वासना फैलाई। ऐसे अज्ञानी जीवकी, तुमने अनेक बरदासि कर (सह-कर), अपनी सज्जनता प्रगट करी। मो तैं मोह बुद्धि करि तुमने अपने पास राखा। इत्यादिक भो सज्जन हो! तुम्हारी प्रीति, तुमने विशेष जनाई। परन्तु अहो सज्जन, अज्ञी हो! अहो कुटुम्बी लोगो! अब मेरा आयु-कर्म पूर्ण होने आया सो तुम मोपै, समता-भाव राखो। मैं महा अज्ञान, मोतैं तुम्हारी सेवा कछु बनो नाहीं, अरु हमारे-तुम्हारे वियोग होनेका समय आय लग्या सो तुम कछु चिन्ता-आर्त्त नहीं करना। ए जीव ऐसे ही अनन्ते नाते करता, अनन्तकालका जन्म-मरण करता आया। जो पर्याय पाई, सो ही कालने हरी। परन्तु मेरी अज्ञानता नहीं छूटी। जैसे कोई अन्याय वा चोरी करनेहारेकूं, राजा अनेक दण्ड देय। पीछे और सामान्य दंड तैं नहीं मानै, तौ मारि डारै। ऐसा कठिन दण्ड देख कर भी, यह जीव अमार्ग चोरी नहीं तजै। तौ राजा कहा करै। तैसे ही राग-द्वेषादि प्रवृत्ति तैं अनेक पाप कार्य किए। ताका फल बहुत प्रकार राग, द्वेष, चिन्ता, शोक, भय, इत्यादिक भोगे। तौ भी यह जीव पाप नहीं तजै। राग-द्वेग रूप अपराधकौं करता ही गया। तब काल रूपी राजाने बड़ा दोषी जान, मारि डारया। तौ भी रागादिक कुमार्ग, मेरा नहीं छूटा। ऐसे अनन्तकाल मोकों भ्रमण करते होय गए। जगतमें गया वहां भी रागादिक कुमार्ग चल्या। तहाँ काल-राजाने मारया सो अब भी इस पर्यायमें मैंने अनेक-अनेक रागद्वेष भाव करि, पाप किये सो तातैं कालरूपी राजाके वश भया सो मोकों काल राजा, अब मारनेका उपायी है सो मारेगा। तातैं तुम मोह तजो। इत्यादिक अनेक समता करि अनेक वैराग्य भावना सहित, यह सन्यासी-धर्मात्मा, अपने चित्तकौं निर्मल करिकैं, शुभ भावना भाय, व्यवहार नय तैं कुटुम्बी-जनकौं अनेक संबोधन रूप हितकारी-धर्म सूचक बचन बारंबार कहि मोह फंद छुड़ावै। हे जन हो! तुम इस पर्यायके स्नेही हो तुम सब, चित्त देय सुनो। जो तुमने इस पर्याय तैं मोह बधाय करि, अब तांई मेरी योग्य अयोग्य क्रियामें नजर नहीं करी। अरु स्नेह बुद्धि करि, अब तांई मेरे तनकी रक्षा करी। तुमने सज्जनता प्रगट करि, इस तनकी प्रतिपालना करी। जैसे स्नेह बुद्धिके

धारी बड़ी बुद्धि वारे करैं, सो जो तुम्हारे करवे की थी, सो तुमने करी। परन्तु हे प्रीतम हो ! इस तनकी स्थिति पूर्ण होने आई सो अब ना-इलाज है। काहू की राखी रहेगी नाहीं। तातैं इस शरीर तैं अब तिहारा वियोग होयगा। तातैं तुम सबही विवेकी हो। मोह भाव करि शोक-चिंता नहीं करो। अनादि तैं जगतकी ऐसी ही परिपाटी चली आई है। अनेक भवनमें अनेक नातान का संयोग भया, अरु छूटा। अब भी तुम तैं कुटुम्बका संबंध भया था ये भी छूटेगा। तातैं अब ताईं इस तन तैं, तुम्हारी वचन-काय करि, तुम योग्य विनय-क्रिया नहीं भई होय, तथा अविनय भया होय, तौ तुम अपनी सरल-बुद्धि करि, क्षमा-भाव करो। इत्यादिक शुभ शब्दन करि सबकौं समाधान लाय, साता उपजाय, लौकीक मोह छुड़ाय, पीछे यह भव्यात्मा च्यारि प्रकार आहार तजन करता भया। सो इन आहारनके नाम-तहां जाके खाये पेट भरै सो खाद्य आहार है॥ १ ॥ जे लौंग, सुपारी आदि स्वाद के निमित्त खाईये, सो स्वाद आहार है॥ २ ॥ तहां जाकौं अंगुली से चांटिये, सो लेय आहार है॥ ३ ॥ तहां जाकौं पानी की नांईं पीजिये, सो पेय आहार है॥४॥ ऐसे खाद्य, स्वाद्य, लेय, पेय, इन च्यारि प्रकार आहार कौं तजन करि, डाभके विस्तर कौं निर्जीव भूमि शोधि, तापै विछावै। तापै तिष्ठ करि, साधर्मी जन तैं चर्चा करता तत्त्व विचार करता, द्वादशानुप्रेक्षा विचारता। वीतराग देवका स्मरण, वीतराग गुरु, दया धर्म, इत्यादिक पंच-परमेष्ठीके गुणनका चिन्तवन, इत्यादिक धर्म-ध्यान भावना सहित, काय तैं भिन्न होय। इस भांति सन्यासी काय तजकैं, महा ऋद्धि धारी कल्पवासी देव होय है। ऐसे सल्लेखना व्रत जानना। याही व्रतके पंच अतिचार हैं। जीवित संशय, मरण संशय मित्रानुराग सुखानुबंध और निदान। इनका अर्थ—तहां संन्यास लिये पीछे ऐसा विचारना, जो मैं बहुत जीऊं नाहीं, तो भला है। ऐसा विचारै सो जीवित संशय अतिचार है॥ १ ॥ जहां संन्यास लिये पीछे ऐसा विचार करना, जो मैं मरूंगा अक नाहीं ? अब पर्याय रही भली नाहीं। ऐसी भावनाका नाम मरण संशय है॥२॥ संन्यास लिये पीछे ऐसा विचारना, जो फलाना हमारा बाल-मित्र है। तातैं मिलाप होय तौ भला है। ऐसे विचारका नाम मित्रानुराग अतिचार है॥३॥ तथा अगले भोगे भोगन कूं यादि करै सो याका

नाम सुखानुबंध अतिचार है ॥४॥ संन्यास लिये पीछे ऐसा विचारै, जो इस व्रतका मोकौं ऐसा भला फल उपजियो सो याका नाम निदान-बंध अतिचार है ॥ ५ ॥ ऐसे ये पांच अतिचार नहीं लागैं, सो शुद्ध सल्लेखना व्रत है। या प्रकार शरीर कौं व्रत सहित तजिये। शरीर तजेके तीन भेद हैं। च्युत, चाव्यक और त्यक्त। इनका अर्थ—तहां कदली घात विना, संन्यास बिना, अपनी संपूर्ण आयु-सर्व-भोग कैं, उदय-मरण करै, सो जो शरीर आत्मा नै तज्या, सो च्युत शरीर है ॥ १ ॥ अब कदली घातका स्वरूप कहिये है। बिष तैं मरै, शस्त्र तैं, जल तैं, अग्नि तैं पर्वतादिक तैं गिरि मरै। रोगकी तीव्र बेदना तैं, इत्यादिक कारणन तैं, मरै सो कदली घात मरण है। सो इस कदली घात सहित, संन्यास रहित, जा शरीर कौं आत्माने तज्या, सो चाव्यक शरीर है ॥ २ ॥ तीसरे त्यक्तके तीन भेद हैं। याकौं आत्मा चाह करि, अपनी इच्छा सहित तजै है। तातें याका नाम त्यक्त कह्या है। सो ये त्यक्त शरीर, महा उत्तम मुनि तथा श्रावकका होय है। ताके तीन भेद हैं। उनके नाम—भक्त प्रतिज्ञा, ईंगणी और प्रायोगमन। इनका अर्थ—तहां भोजनका त्याग करै, सो जघन्य तौ अन्तर्मुहूर्त काल भोजन कौं तजै। अरु उत्कृष्ट बारह वर्ष लूं अनशन करै। मध्यमके अन्तर्मुहूर्त तैं लगाय, एक-एक समय अधिक, उत्कृष्ट बारह वर्ष पर्यंतके अनेक भेद हैं। सो ऐसे भोजनका प्रमाण सहित—अनशन करि शरीर तजै, सो भक्त प्रतिज्ञा संन्यास सहित शरीर है ॥१॥ जा शरीर तज तैं, सन्यास करनेहारेके शरीरमें, तपके योग तैं कदाचित् खेद होय तौ अपने शरीरका वैय्यावृत आपही अपने हाथ तैं करै। शिष्यादिक तैं नहीं करावै। भक्त प्रतिज्ञा वाला संन्यासी, शरीरमें खेद भये, अपने हाथ तैं अपने पांव, पीठ, शीश, आदि अंगोपांग दाब लेय था और शिष्यादिक तैं भी अंगोपांग दबावै था। अरु जो पर-तैं वैय्यावृत नहीं करावे, अपने हाथ तैं अपना वैय्यावृत करै। ईंगणी सन्यास सहित शरीर है ॥ २ ॥ नहीं तौ आप करै नहीं, और पै संन्यासमें वैय्यावृत करावै। सन्यास लिये पीछे जो-जो उपद्रव-खेद-दुख शरीर पै आवैं, सो समता सहित एकासन सहै। शरीर कौं चलाचल नहीं करै। संन्यास धरतैं जैसा आसन सूं, जा भांति बैठा था, ताही तरह जीवन लूं रहै। हालै-चालै नाहीं। यह प्रयोगमन संन्यास सहित त्यक्त शरीर

है ॥३॥ ऐसे इन आदि संन्यासके अनेक भेद हैं। जो भव्यात्मा, जन्मन-मरण करि डरया होय तिस निकट संसारी कौं ऐसे सन्यास सहित काय तजवे कौं मिलै है। जे दीर्घ संसारी, मोही, धर्म—बासना रहित हैं तिन जीवन कूं ऐसा मरण नाहीं होय। ऐसा जानना।

इति श्री सुद्दृष्टितरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, श्रावककी एकादश प्रतिमा विषैं, सम्यक् सहित बारह व्रत कूं लिये, सल्लेखना व्रत मिलाय इन चौदहके पांच-पांच अतिचार सहित, दूसरी व्रत प्रतिमा कथन वर्णनो नाम, चौंतीसवां पर्व संपूर्णम् ॥ ३४ ॥

आगे तीसरी सामायिक प्रतिमाका स्वरूप कहिये है—

गाथा—सहु चर किप्पा भावो, तव संजय वरत भाव बधवाए। आरदि रुद्द विहीणो, सामायो तस भासयो सुत्त ॥ १३६ ॥

अर्थ—सहु चर किप्पा भावो कहिये, सर्व जीवन पै क्षमा भाव। तव कहिये, तप। संजय कहिये, संयम वरत कहिये, व्रत। भाव बधवाए कहिए, भाव वृद्धि होय। आरदि रुद्द विहीणो कहिये, आर्त्त–रौद्र ध्यान से रहित। सामायो तस भासयो सुत्त कहिए, याकौं शास्त्रमें सामायिक कह्या है। भावार्थ—तहां पंच स्थावर हैं सो पृथ्वी, खोदै नाहीं। जल, मथै नाहीं। अग्नि जलावै-बुझावै नाहीं। पंखादि तैं वायु-कंपनादि करि, वायुकाय हनै नाहीं। बनस्पति कूं छेदै-विदारै-छीलै नाहीं। ये पांच स्थावर-एकेन्द्रिय जीव, तिनमें समता भाव करि, दया धारि, इनकौं अभयदान देय, घातै नाहीं। बे-इन्द्रियादि त्रस-स्थावरन कौं समान जानि, त्रस हिंसाका त्यागी, सर्व कौं नहीं सतावै। आप समान जानि सर्व तैं समता भाव राख अपनी तरफ तैं सर्व कूं सुखका अभिलाषी त्रस-स्थावर जीवन कूं अभयदान देवे रूप परणति राखै। अन्तरंग-बहिरंग तप बारह संयम बारह व्रत इनकी बधवारी वांछै। आर्त्त-रौद्र ध्यानका त्यागी होय। ऐसे भाव वर्तें सो सामायिक जानना। ताही सामायिकके पंच अतिचार हैं। सो कहिए हैं। प्रथम नाम-मन दोष वचन दोष काय दोष विस्मरण दोष और अनादर दोष। इन पांच दोषनका अर्थ कहिये है। तहां सामायिक करते समता भाव तजि कैं प्रमाद तैं अनेक आर्त्त-रौद्र भाव- विकल्प करै। सो मन दोष है ॥ १ ॥ जहां सामायिक करते पंच परमेष्ठीकी स्तुति आलोचना तत्वका विचार वैराग्य भावका चिंतवन ध्याता-ध्यान-ध्येयका विचार इत्यादिक

शुभ क्रिया तजि प्रमादवशात् दुर्वचन बोल उठना सो वचन दोष है ॥ २ ॥ जहां सामायिक करते शुद्धासन तजि आसन चंचल किया करै। सो काय अतिचार है ॥ ३ ॥ जहां सामायिक करते पाठ भूलि-भूलि जाय कि जो मैंने यह पाठ पढ़्या अक नाहीं ? मैं कहा पढ़ों हौं ? ऐसा भ्रम-भाव रहै सो विस्मरण दोष है ॥ ४ ॥ सामायिक करतें वचन-काय प्रमाद सहित राखै। अनादर भाव तैं सामायिक करै सो अनादर दोष है ॥ ५ ॥ जो इन पांच दोषोंकौं टालै सो ही याका नाम शुद्ध सामायिक व्रत है ॥ इस सामायिक व्रतके बत्तीस अतिचार हैं। तिनकौं व्रतधारी धर्मी टालै है सो ही कहिए है। प्रथम नाम-अनादर ततध्व प्रतिष्ठा प्रतिपीड़ित दोलायत अंकुश कच्छप मछोव्रत मन दुष्ट बंधन भय विभ्य गौरव-वृद्धि गौरव न्यति प्रतिनीति प्रदुष्ट शब्द ताड़ित हीलित त्रिबलित संकुचित दृष्टि अदृष्टि करमोचन लब्धि आलब्धि हीन उद्धत् दो चूलि मूक दादुर और चूलित ये बत्तीस हैं। इनका अर्थ तहां सामायिक करते नमस्कारादि क्रिया करै, सो प्रमाद सहित, विनय रहित करै सो अनादर दोषहै ॥ १ ॥ सामायिक करते, विद्याके मद सहित, उद्धत् होय, अशुद्ध क्रिया करै सो ततध्व दोष है ॥ २ ॥ जहां प्रतिमाजीके बहुत ही नजदीक सन्मुख होय, सामायिक करै सो प्रतिष्ठा दोष है ॥ ३ ॥ जहां दोऊ हाथ तैं जंघा दाबिके नमस्कार करै। सो प्रतिपीड़ित दोष है ॥४॥ सामायिक करै, सो पाठ विसर्जन होय जाय। तथा शुद्ध ही पढ़ै, तौ चित्त संशय रूप होय, कि यह पाठ पढ़्या अक नाहीं ? पढ़्या तौ मोकौं यादि नाहीं। ऐसे मन चंचल रहै अरु कायकूं, झूलेकी नांईं झुलाया करै सो दोलायत अतिचार है ॥ ५ ॥ हाथकी अंगुलीकूं अंकुशाकार करि, मस्तकमें लगाय नमस्कार करै सो अंकुश दोष है ॥ ६ ॥ सामायिक करते करि पै हाथ लगाय कायकौं संकोच, कछुवाके आकार करै सो कच्छप दोष है ॥ ७ ॥ सामायिक करते कटिकौं हिलावै, मछलीकी नांईं चंचल राखै सो मछोव्रत दोष है ॥ ८ ॥ जहां सामायिक करते, भया जो सूर्यका घाम ताके सहवेकूं असमर्थ होय, परणति संक्लेश रूप करै सो मन दुष्ट नाम अतिचार है ॥ ९ ॥ सामायिक करते कायकौं हाथ तैं दाबि, दृढ़ बंधनसा करै सो बंधन अतिचार है ॥ १० ॥ सामायिक करते कोई देव, मनुष्य, सिंह, सर्पादि जीवनके भय सहित कायोत्सग करै

सो भय दोष है ॥ ११ ॥ सामायिक करते, अपने तौ स्थिरता नाहीं, अरु धर्म-फलकी इच्छा भी नाहीं। परंतु गुरुके भयसे, तथा संघके भयसे, सामायिक क्रिया करै, सो परमार्थ रहित करै, सो बिभ्य दोष है ॥ १२ ॥ तहां च्यारि प्रकार संघके खुशी करवेकौं तथा अपनी महिमा परके मुख तैं सुनिवेकौं, शोभाके हेतु सामायिक करै। सो गौरव-बृद्धि दोष है ॥ १३ ॥ अपना माहात्म्य करायवेकौं, इन्द्रके सुखनकी इच्छा सहित, मान-वड़ाईके हेतु सामायिक करै सो गौरव दोष है ॥ १४ ॥ जो गुरुके पास सामायिक करूंगा, तो कोई मेरा प्रमाद देख, औगुन काढ़ेंगे, ऐसा जानि, एकान्त में गुरु तैं छिपकर सामायिक करै सो न्यति दोष है ॥ १५॥ जहां सामायिक करते गुरुकी आज्ञा रहित, गुरु तैं प्रतिकूल होय, अपनी इच्छा रूप, गुरुके कहे विना ही, गुरुकी आज्ञा विना ही, सामायिक करै सो प्रतिलीति दोष है ॥ १६ ॥ सामायिक करते, अन्य जीवन तैं द्वेष भाव राखै तथा युद्ध करवेका, तथा कलह करवेका अभिप्राय राखै सो प्रदुष्ट दोष है ॥१७॥ जहां गुरु करि ताड़ित जो गुरुने अविनयी जानि तथा प्रमादी जानि, धर्म-भावना रहित जानि, संघ तैं काढ़ि दिया होय। सो गुरुके भय तैं, तथा संघके भय तैं, सामायिक करै सो ताड़ित दोष है ॥ १८ ॥ सामायिक करते, मौन तजि बोल उठै सो शब्द दोष है ॥ १९ ॥ तहां सामायिक करते, गुरुकी अविनय रूप भाव हो जांय गुरुके मान-खण्डन रूप परणति होय जाय, माया रूप भाव होंय सो होलित दोष है ॥ २० ॥ सामायिक करते ऊंचा होय, त्रिबली भंग करै, तथा ललाटपर त्रिबली करै सो त्रिबलित दोष है ॥ २१ ॥ जहां सामायिक करते, सिरकूं हस्त तैं छीय करि, कायकौं संकोच करि, गठिया समान होय, करै सो संकुचित दोष है ॥ २२ ॥ गुरुके देखते तथा अन्य कोईके देखते सामायिक करै, तब तौ महा विनय सहित खड़ा होयकरै। कायकीशुद्ध भली क्रिया सहित सामायिक करै अरु कोई नहीं देखता होय, तौ प्रमाद सहित स्वेच्छाचारी होय करै। चहुं दिशा अवलोकन रूप काय-मन चंचल राखै इस भांति सामायिक करै सो दृष्टि दोष है ॥२३॥ सामायिक करते अपने गुरुतैं अपच्छिन्न होय, तथा संघमें और वृद्ध मुनि, बड़े-बड़े गुरुजन तैं दृष्टि चुराय, अपने तनकी शोभा निरखै सो काय-रूप देख राजी होय मन-तन चलित-चंचल राखै सो अदृष्टि दोष है ॥२४॥ जहां च्यारि संघ तथा अन्य जन

राजी करवेकौं सामायिक करै। सो करमोचन दोष है ॥ २५ ॥ तहां सामायिक करते, आपकूं पीछी आदि पदार्थकी प्राप्ति वांच्छै जो मेरे पास पीछी शास्त्रादि उपकरण नाहीं, सो मिलैं तौ भला है। ऐसी जानि सामायिक करै सो लब्धि दोष है॥ २६ ॥ श्रावकके षट् कर्म रूप उपकरणनकी प्राप्ति जानै, तो सामायिक करै सो आलब्धि दोष है ॥ २७ ॥ जहाँ कालकी मर्यादा टालि, सामायिक करै। अरु ग्रन्थके अर्थ विचार रहित भाव राखै सो हीन दोष है ॥ २८ ॥ तहां शीघ्र-शीघ्र क्रिया करि, अल्पकालमें सामायिक पूर्ण करै। तथा धीरे-धीरे प्रमाद सहित क्रिया करि, बहुत कालमें पूर्ण करै। अरु पाठ पढ़ै, सो भूलि-भूलि जाय, फेरि पढ़ै। फेरि पढ़ै, सो फेरि भूलै। ऐसी सामायिक करै सो उद्धत् दो चूलि दोष है ॥ २६ ॥ जहां सामायिक करते, मूकेकी नांईं हूं-हूं शब्द बोलै, और अंगुली-नेत्रादि तैं संज्ञा बतावै। सो मूक दोष है ॥ ३० ॥ तहां सामायिक करते शोर करि पाठ पढ़ै। जैसे मैंड़क शोर करै, तैसे पाठ करते शब्द बोलै, सो बहुत शोर करै सो दादुर दोष है ॥ ३१ ॥ सामायिक करते एकासन तैं ही, एक चेत्र तिष्ठता, सर्व देव गुरुकी स्तुति करते नमस्कार करै। अरु पाठ पढ़ै, सो महा मिष्ट स्वर तैं, राग सहित, परका मन रंजायवेहारा स्वर तैं पढ़ै सो चूलित दोष है ॥३२॥ ऐसे कहे बत्तीस दोष, तिनकौं टालि सामायिक करै सो शुद्ध सामायिक धारी श्रावक है ॥ इति बत्तीस दोष, आगे वाईस दोष, सामायिक करते कायोत्सर्ग करै तब टालै सो कहिये हैं। तहां प्रथम नाम घोटक, लता, स्थंभ, कूट्या, माला, बधू, लंबोतर, तन-दृष्टि, वायस, खलिन, जुग, कपिथ, सिर-कंपित, मूक, अँगुली, भ्रू-विकार, सुरापान, दिशावलोकन, ग्रीवा, परणमन, निष्ठीवन और अङ्गमरच। इनका अर्थ-तहां घोड़ेकी नांईं खड़ा होय सामायिक करै सो घोटक दोष है ॥ १ ॥ सामायिक करते शरीरकों बेलिकी नांईं आंका-वांका करै सो लता दोष है ॥ २ ॥ सामायिक करते शरीरकों स्थंभ तथा भीतिका सहारा देय खड़ा होय सामायिक करै तथा शास्त्रनके अर्थ चिन्तवन करि रहित, शून्य चित्त करि, स्थम्भकी नांईं खड़ा होय, सामायिक करै सो स्थम्भ दोष है ॥ ३ ॥ सामायिक करते महल, गुफा, गृह, कुटी, मंडपादिक वांच्छै सो कूट्या दोष है ॥ ४ ॥ सामायिक करते ऊंचा सिंहासन, पाटा या चौकी पर खड़ा होय, सामायिक करै सो माला दोष है ॥ ५ ॥

जैसे कोई भली स्त्री, लज्जा सहित, अङ्ग छिपाय खड़ी होय तैसे वस्त्र तैं व कर तैं अंग ढांकि खड़ा होय सो बधू दोष है ॥ ६ ॥ सामायिक करते व्युत्सर्ग समय लम्बे हाथ करि अर्द्ध नमस्कार करै सो लम्बोतर दोष है ॥ ७ ॥ सामायिक करते अपने शरीरकों निरखै सो भला कोमल, सुन्दर, सुभाकार देख खुसी होय। अरु मलिन, क्षीण शोभा रहित देखे, तथा श्याम कर्कश देखे, तो मनमें वेराजी होय सो तन दृष्टि दोष है ॥ ८ ॥ जहां सामायिक करते काककी नांईं नेत्र चंचल राखै, चारों दिशा अवलोकन करै सो वायस दोष है ॥ ९ ॥ सामायिक करते घोटककी नांईं दांत चबाया करै। मुख तन कठोर राखै सो खलिन दोष है ॥१०॥ सामायिक करते बृषभकी नांईं नार (ग्रीवा) कूं ऊंची-नीची करै सो जुग दोष है ॥ ११ ॥ सामायिक करते मूंकी बांधि सामायिक कूं खड़ा होय सो कपिथ दोष है ॥ १२ ॥ सामायिक करते शीश धुनै-हिलावै सो सिरकंपित दोष है ॥ १३ ॥ सामायिक करते, मुख, नाक, नेत्र बांके (टेढ़े) करता जाय सो मूक दोष है ॥१४॥ सामायिक करते हाथ-पांवकी अंगुली हिलावै सो अंगुली दोष है ॥ १५ ॥ सामायिक करते नेत्र वक्र करै, भौंह धनुषाकार चढ़ावै, दृष्टि बांकी करै सो भ्रू विकार दोष है ॥ १६ ॥ सामायिक करते मतवालेकी नांईं झूमैं सो सुरापान दोष है ॥ १७ ॥ सामायिक करते नीचा-ऊंचादि दशों दिशा, इत उत देखा करै सो दिशा अवलोकन दोष है ॥ १८ ॥ तहां सामायिक करते ग्रीवा (गर्दन) कों इत-उत हिलाय बांकी-नीची ऊंची करै सो ग्रीवा दोष हैं ॥ १९ ॥ सामायिक करते ध्यान तजि और ही क्रिया करन लागै सो परणमन दोष है ॥२०॥ सामायिक करते, मुख तैं फूकै नाक तैं नाक मैल काढ़ै तथा तनके अंगोपांग मर्दन करि मैल उतारे तथा मुखमें जीभकूं हिलावै, फेथ्या करै। दाँतनकूं होंठ तांईं चलावै पद्मासन तिष्ठता, पांवकी पगथली छोया करै—मसलै सो निष्ठीवन दोष है ॥ २१॥ समायिक करते नीति करनेका स्थान, मल करनेका स्थान छीवै सो अंगमरच्च दोष है॥ २२ ॥ ऐसे सामायिकके पांच अतिचार, तथा बत्तीस और बाईस एते अन्तराय टालि कैं धर्म फलका लोभी सामायिक प्रतिमाका धारी, अपने व्रतकी रक्षा करता सामायिक करै सो सामायिक कौन स्थानमें करै सो स्थान बताईये है। जहां सूना महल होय घर मन्दिर सूने होय तथा विना धनीके ममत्व

रहित जामें कोईका ममत्व नाहीं होय ऐसे मंडप होंय। तथा सिंहादिकके ममत्व रहित गुफा होय। तहां सामायिक करै। तथा वन श्मशान भूमि वृक्षकी कोटरनमें जिन मन्दिर इत्यादि एकान्त स्थान शुद्ध देख। जहां अतिशीत नहीं होय अति गर्मी नहीं होय। जहां दंश-मसकादि नहीं होंय। जहां कोलाहल शब्द नहीं होय। जहां काहूका युद्ध नहीं होय जहां परस्पर काहूके कटुक शब्द नाहीं होंय। इन आदिक शुद्ध गफा। सो जीव रहित, वैराग्य भावना के वधावने कूं कारण, निर्जन स्थान होय। तहां तिष्ठ कँ मन-वचन-काय करि एकाग्र, शुद्ध होय। सर्व जीवन तैं दया भाव करि, कोमल भावन सहित, सामायिक करै सो शुद्ध सामायिक प्रतिमा का धारी, उत्तम श्रावक जानना सो सामायिक समय लंगोट मात्र आदि अल्प-परिग्रह का धारी होय तिष्ठै। चित्तकी वृत्ति निर्मल, मुनि समान राख, अपने तन तें ममत्त्व भाव तजि, वैराग्य भावका समूह मोक्ष—मार्गके विहार करवे की इच्छा का धारक, ऐसा साधर्मी श्रावक। नहीं चाहै है च्यारि गतिके शुभा-शुभ शरीरन का वास। तथा अपने पदस्थ तें ऊपर के स्थान चढ़वे की है इच्छा जाकैं। ऐसा जगत—सुख तैं उदासी, श्रावक—धर्मका धारी, तीसरी सामायिक प्रतिमा धारी है ॥३॥

इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थे मध्ये, एकादश प्रतिमाके कथन विषैं तीसरी प्रतिमा कथन वर्णनो नाम पैंतीसवां पर्व संपूर्णम् ॥ ३५ ॥

तहां आगे चौथी प्रोषध प्रतिमा, ताकौं कहिये है। सो सर्व पापारम्भ का त्याग करि, शरीर—भोगन की इच्छा निवार, उदासीन भाव धारण करि, धर्मध्यानका अभिलाषी होय, खान-पानका तजन करै। सो प्रोषधोपवास है। एक मास विषैं दो अष्टमी दोय चतुर्दशी ये च्यारि उपवास करैं सो तेरसके दिन प्रभात उठ, भगवानका पूजन करै। पीछैं शास्त्र श्रवण—पठन करै, दोय पहर धर्मध्यान सेय, मुनि-श्रावक कूं दान देय, आप भोजन करै। सो निष्प्रमाद होय रहने कों अल्प भोजन करि, पीछे षोडस पहर खान-पान का सेवना तजै सो दोय पहर तो तेरसके दिनके, च्यारि पहर तेरसकी रात्रिके, आठ पहर चौंदसकी दिन-रात्रिके, दोय पहर पूर्णिमा के। ऐसे सोलह पहर जागरन, पूजा, ध्यान, स्वाध्याय, चर्चा, शुभ अनुप्रेक्षाका चिंतवन, इत्यादिक धर्म-ध्यान विषैं पूर्ण करै। पीछे पूर्णिमाके दिन दोय पहर कूं घर जाय, द्वार-पेक्षण

भावना भाय, मुनि-श्रावक कूं दान देय, दुखित-भुखित कूं संतोषित करि, पीछे आप पारणा करै। सो एक बार भोजन करै। ऐसे ही मास-मास के च्यारि उपवास आयु पर्यन्त, प्रमाद रहित होय करै। अरु नीचली प्रतिमामें जो क्रिया कहीं, सो सर्व ऊपरली में गर्भित जानना। नीचे दूसरी प्रतिमामें प्रोषध कह्या। सो वहां शिक्षा-मात्र, साधन रूप कह्या था। अरु यहां चौथी प्रतिमामें प्रोषधका स्वामित्व-भाव है। सो यहां अतिचार रहित, आयु पर्यन्त व्रतका धारना है। तातैं यहां प्रोषध प्रतिमा कही। सो याके पांच अतिचार हैं। सो ही कहिये हैं। अप्रत्यवेक्षित, अप्रमार्जित, उत्सर्गदान, संस्तरोपक्रमण, अनादर-अनुस्मृत्य। अब इनका अर्थ--जहां प्रोषध कौं बैठे, सो बिना भूमि शोधै--झाड़ै ही प्रोषध कौं तिष्ठै। सो अप्रत्यवेक्षित अतिचार है ॥ १ ॥ और जहां व्रतधारी प्रोषध करते भूमि शोधै तो सही, परन्तु कोमल पीछी तैं तथा कोमल वस्त्र तैं नहीं झाड़ै, मोटे वस्त्र तैं तथा कठोर पीछी तैं झाड़ै। सो याका नाम अप्रमार्जित अतिचार है ॥ २ ॥ और भूमि विषैं, बिना शोधेही मल-मूत्रका क्षेपना। सो याका नाम उत्सर्गदान है ॥ ३ ॥ और प्रोषधधारी जिस स्थान पै बैठे-आसन करै बिछौना बिछावै, सो भूमि शोधै झाड़ै नाहीं। सो याका नाम संस्तरोपक्रमण है॥४॥ और जहां उत्साह बिना, धर्म भावना रहित, प्रमाद सहित, परमार्थशून्य, लौकिक यशका लोभी, औरके दिखायवे कौं, अनादर भाव सहित, प्रोषध क्रिया करै सो याका नाम अनादर-अनुस्मृत्य है ॥ ५ ॥ ये पांच अतिचार प्रोषधोपवास व्रतके हैं। इन रहित, शुद्ध भावना सहित, वैरागी-व्रती अपने व्रतकी प्रतिपालना करै सो प्रोषध प्रतिमाका धारी उत्तम श्रावक कहिये है ॥ इति प्रोषधोपवास नाम चौथी प्रतिमा ॥ ४ ॥ आगे सचित्त त्याग पांचवीं प्रतिमा कहिये है। यह पांचवीं प्रतिमाका धारी श्रावक, सचित्त वस्तुका त्यागी होय है सो यह सचित्त जल नहीं वर्तै है। हाथ—पॉव-शीशादि अंगो,पांग, कच्चे जल तैं नहीं धोवै है। अपने हस्त तैं नदी, सरोवर, कूप, बावड़ीका जल नहीं भरै। कच्चे जल तैं स्नान नहीं करै। बनस्पती कूं छीले नाहीं, काटै नाहीं। भोगी जीवनके भोगवे योग्य, ऐसी फूल-मालादि, तथा महा सुगंधित अनेक जातिके फूल, सो ये वृती अपने हाथ तैं छीवै नाहीं, पहिरे नाहीं, सूंघे नाहीं। अनेक जातिका सचित्त मेवा-दाख,

अनार, केला, आमफल, जामुन, नारंगी, जंभीरी, नीबू, सेव, सीताफल, बेर, बिही, कमरख, खिरनी, खजूर, आंडू, मौलशिरी, तेंदू, पीलू, अखरोट, अंगूर, इत्यादिक भोगी जीवनके भोग योग्य, सचित्त वस्तुका त्यागी नहीं खाय, नहीं छीवै, नहीं तोड़ै। और ककड़ी, खरबूजा, तरबूजा, इत्यादिक नहीं खाय। अनेक व्यंजन, अयोग्य वस्तु, तरकारी जाति, पत्ता, फल-फूल, बौंड़ी, जड़ जाति, कंद जाति, वक्कल जाति, कौंपल जाति, औषध जाति, चमत्कार गुणकों लिये प्रत्यक्ष रोग नाशनहारी-इत्यादिक हरी वनस्पति, ये सर्व, विषयी जीवनके भोग्य योग्य वस्तु, सो सचित्त त्यागी धर्मात्मा श्रावक नहीं खाय है। ऐसे अनेक भली वस्तु भोगियों कौं वल्लभ, जिनके भोगवे कूं; भोगी अनेक कष्ट पाय, तिनके निमित्त मन, वचन, काय अरु धन लगाय, तिनके मिलाप कूं अनेक उपाय करि, भोगवैं हैं। तिन भोगन तैं बड़े-बड़े सुभट सुख मानैं हैं। ऐसी वस्तु कूं सचित्तका त्यागी, धर्मात्मा श्रावक, तन-भोगन तैं उदासी, आत्मिक सुखका भोगी, ये सचित्त वस्तु कूं नहीं खाय है। इस सचित्त त्यागी कूं, जगत-भोग, इन्द्रिय जनित सुख, वल्लभ नाहीं लागें। यह श्रावक, घरमें ही यती सरीखे भाव धरै है। विरक्त भावना सहित, काल-क्षेपण करै सो पंचम प्रतिमाका धारी, सचित्त त्यागी है ॥ ५ ॥ आगे छट्ठी प्रतिमाका स्वरूप कहिये है। इस प्रतिमाका धारी, रात्रि भुक्ति त्यागी धर्मात्मा, दिन कूं कुशील-सेवन नहीं करे। रात्रिका भोजन त्याग, यहां भया है। तातैं रात्रि भुक्ति त्यागी कहिये हैं। यहां प्रश्न-जो रात्रि भोजनका त्याग यहां किया, सो नीचली प्रतिमा वारे, रात्रिमें खावते होंयगे? अरु दिनका कुशील यहां तज्या, सो नीचली प्रतिमामें, दिन कूं कुशील सेवते होंयगे? ताका समाधान-हे भाई, तेरा प्रश्न भला है। परन्तु तूं चित्त देय सुनि। अब भी जगतमें ऐसी प्रवृत्ति देखिये है जो हीन-ज्ञानी अरु हीन-पुण्यी, भोरे हैं। ते कहैं तो बहुत मुख तैं वाचाल-क्रिया तो विशेष करैं। अरु तिनतैं बनैं कछु भी नाहीं। सो तो असत्यभाषी हैं, पाखण्डी हैं। परका ठगनेहारा, अपने यशका लोभी, बाल-बुद्धि है। जे महा ज्ञानी पण्डित हैं, दीर्घ पुण्यी हैं, सज्जन स्वभावी हैं। सो कार्य तो बड़ा-महत् करैं, अरु अपने मुख तैं अल्प प्रगट करैं। ते धर्मात्मा धीर-बुद्धि हैं। तैसे ही पराये दिखायवे कूं, परके रंजायवे कौं, भोरे जीवनका

मान हरवे कूं, अपने पद-नमावे कौं, ते पाखण्डी अपने कुज्ञानको प्रबलता तैं अनेक धर्म-सेवनके स्वांग धरि। जप, तप, कथा तो वचन-आडंबर तैं बहुत करैं। अरु इन परमार्थ-शून्य प्राणीन तैं, वनै कछू भी नाहीं। सो जीव तौ धर्मात्मा नाहीं। अरु धर्मार्थी भी नाहीं। जे जगत-यश तैं उदासी, जिनने तोड़ी ममता फांसी, ते अल्प कालमें शिव जासी। स्वर्ग—सम्पदा होय जिन दासी। मिथ्यादृष्टी तिन नाशी। वह भव्य सुख-राशी। ऐसे निकट संसारी, धर्मका सेवन तो बड़ा करैं। अरु अपनी महिमा नहीं चाहैं। सो धर्मात्मा हैं। तातैं तुम विचारौ-देखो जे जीव अल्प से भी धर्म-सेवन कौं उत्कृष्ट जानि, पाप तैं भय खाय हैं। ते जीव ही विषय-कषाय कौं तजि, शुभाचार रूप परणमैं हैं। केई घर-स्त्रीका त्याग करैं। केई दिनका भी भोजन तजि, उपवास करैं। केई जन्म पर्यन्त, स्त्री-विषयका त्याग करैं। केई भव्यात्मा, रात्रि-जलका भी त्याग करैं हैं। इत्यादिक प्रवृत्ति भोरे जीव धर्मानुराग तैं करैं हैं। तो जे समता-रसके चखैया, जिनका दर्शन-मोह गया, तव सम्यक् घर भया। भेद-ज्ञान तब लया। तब ऐसा भाव भया, विषय-भोग विषमयी। गुणस्थान चौथा लया। पर सेती भिन्न भया। विषय-राग तब गया। समता-भाव परणाया। बाह्य विषयी सा रह्या। बाकी अंतरंग भेद भया। ऐसे जिन-आज्ञाप्रमाण, तत्वके वेत्ता भव्य, अव्रती होय हैं। सो विषयन तैं विरक्त रहैं हैं। येही रात्रि-भोजन नहीं करैं। दिनमें कुशील नहीं सेवैं। तो हे भव्य ! जे पंचम गुणस्थान धारी, व्रती श्रावक हैं। सो प्रथम, द्वितीय, तीसरी, चौथी प्रतिमा, पांचवीं प्रतिमाका कथन, इनका त्याग, इन प्रतिमा-ओंकी क्रिया-प्रवृत्ति, इनके धारी धर्मी-श्रावक तिनकी बैराग्य दृष्टिका रस, सो तो नीके कथन करि आये हैं। सो नीके सुन्या ही है। सो अब तूं विचार देखि। जो नीची प्रतिमा विषैं स्त्रीका भोग, अरु रात्रि, भोजन कहां रह्या ? ये छट्ठम प्रतिमा धारी श्रावक महा उदासीन वृत्तिका धारी, वैरागी, बड़भागी, इनकौं इतना विषय-रस नाहीं, जो दिनमें स्त्रीका भोग होय ए महा धर्मात्मा हैं इन्हें रात्रिकाल विषैं सो स्त्रीका ही नाम मात्र संतोष है तृष्णा रूप नाहीं। ऐसा जानना। ये धर्मी, दिवस विषैं ही एक दिनमें एक बार ही, अल्प रस भोजन करनहारा, ताके रात्रि-भोजन कहां पाईए ? परन्तु जिनदेवकी ऐसी आज्ञा है।

जो यहां पांचवीं प्रतिमा तांईं, कोई प्रकार अतिचार लागै था। इस भय तैं नीचली प्रतिमामें नाहीं कह्या। अरु इस छट्ठी प्रतिमा विषैं, रात्रि-भोजनका, अरु दिन विषैं कुशीलका अतिचार भी नाहीं लागै। तातैं व्रत प्रगट किया। ऐसा जानना। सो रात्रिका पिसा, पोया, रात्रिका बींधा, रांध्या, शोध्या, बांट्या, घिस्या, छाण्या, धोया इत्यादिक रात्रिका आरंभ्या ऐसा भोजन होय। सो छटवीं प्रतिमाका धारी नहीं खाय। और रात्रिका आरंभ्या-भोजन खाय, तो रात्रि-भोजनका दोष लागै। तातैं इनमें जो कोई अतिचार सूक्ष्म, पहले नीचली प्रतिमामें लागें थे, सो छट्ठी प्रतिमामें यहां नाहीं लागैं हैं। दिनमें अपनी स्त्री कौं देख, विकार भाव होय जाय थे। कभी-कभी सरागता सहित वचन होय जांय थे। काय तैं कोई विकार चेष्टा होय थी। सो अब यहां छट्ठी प्रतिमामें मन वचन, काय करि; दोष नाहीं लागै। तातैं यहां छट्ठी प्रतिमा विषैं रात्रि—भोजन, अरु दिन कूं कुशीलका त्याग कह्या है। तातैं याका नाम, रात्रि भुक्ति त्याग कह्या ॥ ६ ॥

इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, एकादश प्रतिमा विषैं, छट्ठी प्रतिमाका कथन वर्णनो नाम, छत्तीसवां पर्व सम्पूर्णम् ॥ ३६ ॥

आगे सातवीं ब्रह्मचर्य्य प्रतिमाका स्वरूप कहिये है। याका नाम ब्रह्मचर्य प्रतिमा है। सो छठीं तांईं ता स्व-स्त्रीका त्याग नहीं है। तौ भी महा संतोषी, परन्तु पदस्थ-योग तैं अपनी परणी स्त्री कूं, स्त्री-भाव करि जानै है। जो ये मेरी स्त्री है। अरु सातवीं प्रतिमाधारीके, स्व-पर स्त्री दोऊनका त्याग है सो पर-स्त्रीका त्यागी तो पूर्वमें था ही। स्व-स्त्रीका त्याग, सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा विषैं है।। अब यहां स्व-स्त्री, पर-स्त्री दोऊनका त्यागी भया। अपनी स्त्री कौं भी विकार-क्रिया तैं नहीं देखै। इस प्रतिमा विषैं, महा शील-व्रतका धारी, ब्राह्मण-ब्रह्मचर्य व्रती भया। अब यहां चेतन-अचेतन स्त्रीका त्याग भया। तातैं इस प्रतिमाधारी कौं, ब्रह्मचारी कह्या है। सो यहां ब्रह्म शब्दके च्यारि भेद हैं। सो ही कहिये हैं—

गाथा—वंभ सुभावो आदा, त्याज वंभोय जोय पय हारो। किय्या वंभाचारो, भत्तो कित्तेय वंभ कुल होई ॥ १४० ॥

याका अर्थ—वंभ सुभावो आदा कहिये, आत्माका स्वभाव ही ब्रह्म है। त्याज वंभोय जोय पय हारो कहिये, त्याग ब्रह्म सो याके निज-स्त्रीका त्याग। किय्या वंभाचारो कहिये; आचार व्रतका धारी सो क्रिया ब्रह्म

है। भत्तो कित्तेय वंभ कुल होई कहिये, भरत करि किये सो कुल ब्रह्म हैं। भावार्थ—स्वभाव ब्रह्म, त्याग ब्रह्म, क्रिया ब्रह्म, और कुल ब्रह्म। ये च्यारि हैं। इनका विशेष अर्थ--तहां स्वभाव ब्रह्म तो आत्मा का नाम है सो ताके दोय भेद हैं। एक ब्रह्म, दूसरा पर-ब्रह्म। तहां कर्म-मल सहित, जन्म-मरण का धारी, च्यारि गति वासी जीव, सो ब्रह्म है। राग-द्वेषका धारी, इष्ट वस्तु मिले सुखी होय, अनिष्ट वस्तु मिले दुखी होय, सो तो ब्रह्म जानना। भूख-तृषा नाम रोग जाकैं उपजता होय सो ब्रह्म है ॥ १ ॥ जन्म-जरा-मृत्यु रहित होय, अमूर्ति, सर्व दुख-दोष रहित, केवल-ज्ञानका धारी, अन्तर्यामी होय सो पर-ब्रह्म है। ऐसे स्वभाव-ब्रह्मके दोय भेद जानना ॥ २ ॥ यहां ब्रह्म नाम आत्माका जानना ॥ १ ॥ दूसरा ब्रह्म, सातवीं प्रतिमा धारी ब्रह्मचारी, स्व-पर-स्त्रीका त्यागी, ताका कथन ऊपरि करि आये सौ याका पद अनुक्रम तैं, प्रथम प्रतिमा तैं लगाय, सातवीं प्रतिमा पर्यन्त, ज्यों-ज्यों त्याग बध्या, त्यों-त्यों प्रतिमा चढ़ी। तातैं याका नाम त्याग-ब्रह्म है ॥ २ ॥ तीसरा क्रिया-ब्रह्मचारी, ताके जानवेकों उपासकाध्ययनके सातवें अंग ताके अनुसार, बड़े आदि-पुराणजी विषैं दश अधिकार कहे। ताके अनुसार कारण पाय, यहां भी लिखिये है---

गाथा—सिसि विद्याय कुलाविधि, वण्णोत्तम पात सेय विवहारो। अवधा अदंड मणनीयो, पज्जा सम्मधाण दह भेयो ॥ १४१ ॥

अर्थ---सिसि विद्याय कहिये, बाल विद्या। कुलावधि कहिये, कुलाविधि। वण्णोत्तम कहिये, वर्णोत्तम। पात कहिये, पात्रत्व। सेय कहिये, श्रेष्ठ पद। विवहारो कहिये, व्यवहार सत्ता। अवधा कहिये, अबध्यता। अदंड कहिये, अदण्डता। मणनीयो कहिए माननीयता। पज्जा सम्मधाण कहिए, प्रजा संबंधांतर। दह भेयो कहिए ये दश भेद हैं। भावार्थ---बाल विद्या, कुलाविधि, वर्णोत्तम, पात्रत्व, श्रेष्ठता, व्यवहारता, अबध्यता, अदंडता, माननीयता, और प्रजा संबन्धातर। ए दश हैं। जो जीव इन दश क्रियान करि सहित होयं सो क्रिया-ब्रह्म है, सो ही विशेष कर कहिए है। तहां बाल्यावस्था तैं ही विद्याका अध्ययन करि, पण्डित होय। तो शुभाशुभा मार्ग जानै, खाद्याखाद्य जानै, पाप-पुण्यका भेद जानै। केई अज्ञानी-कुवादी, आपकों शुद्ध धर्म तैं डिगाय, विषयी, मोही, हिंसक धर्म विषैं लगाया चाहैं तो नहीं लागै। पाखण्डीनके ठगवेमें नहीं

आवै। तातैं तीन कुलका उपज्या, भव्यका बालक होय, सो विद्याभ्यास करै। अरु विद्या नहीं पढ्या होय, तो आप कुधर्म-सुधर्मकी परीक्षा नहीं करि सकै। तव अपना भला-धर्म तजि, कुधर्म सेवन में लागे। परभव बिगाड़ै। अरु अज्ञान भया, खाद्याखाद्य न समझ कें, अभक्ष्यका भक्षण करि, अपनी वृद्धि नष्ट करै। विद्या बिना, जगतमें निन्दा पावै। दीन कहावै। दीनताके योग तैं याचना करै। तव याचकता के योग तैं, अपने उत्तम-कुल कूं कलंक लगावै। तातैं ऐसा जानना, जो सर्व सुखकी दाता, अनेक गुण मण्डित, एक विद्या है। ऐसी विद्याका अध्ययन, बाल्यावस्था विषैं ही करना। बालावस्था गये, जिह्वा कठिन होय। कषाय-अंश विशेष होंय। तिस दोष तैं विद्या-दाताका विनय नहीं सधै। बाल्यावस्था मन्द-कषाय सहित होय है। तातें बालपने में ही विद्याका अभ्यास करना। ता विद्या करि, पाप तजि पुण्य ग्रहण करै सो परोपकारी होय है। अपना-पराया भला करै। याका नाम बाल-विद्या अधिकार है ॥ १ ॥ और दूसरे ब्राह्मण कुलका उत्तम है। सर्व विषैं बड़ा है। ब्राह्मणका आचार भी सर्व तैं उज्ज्वल, दया सहित; उत्तम है। अरु एक दिनमें एक बार, एक स्थान बैठा, भोजन करै है सो भी जहां अन्धकार नहीं होय उद्योतकारी स्थान होय, तहाँ भोजन करै। अरु अन्धकार गृहमें भोजन करे, तो रात्रि-भोजन दोप पावै। तातें रात्रि रहित, अन्धकार रहित उत्तम स्थानमें, निर्दोष आहार करै। इन आदिक अनेक शुभाचार होंय। अरु कदाचित् ऐसा उत्तम आचार नहीं होय, तो क्रिया-भ्रष्ट भया। कन्द-मूलादि अभक्ष भोजन, रात्रि भोजन, अनगाल्या पानी खान-पान करि। दया सहित कुभावना सहित होय। सो उत्कृष्ट कुलाचार तैं भ्रष्ट होय। तातें उत्तम आचार सहित ब्राह्मणकूं, ये कार्य तजना चाहिये। याका नाम कुलावधि नाम अधिकार है ॥ २ ॥ सर्व कुलन तैं, ब्राह्मण कुलकी अधिकता है। तो याका उत्कृष्ट चलन ही चाहिये। महा दयावान्, परजीवनकी रक्षा रूप भाव होंय। अरु निर्दई होय तो शिकारी समान हिन्सा करि, पापाचारी होयके, निन्दा पावै। तातें सुभाचारी सर्व झूंठका त्यागी होय, जो झूठ भाषै, तो ब्रह्मकी मर्यादा जाय। तातैं ब्राह्मण सत्यवादी चाहिये। सर्व-चोरीका त्यागी होय। जो चोरी करै, तो राज्य-पञ्च-दण्ड पावै। अपयश होय। तातैं ब्राह्मण चोर कला-दोष तैं रहित चाहिये। पर स्त्री-

का त्यागी होय। जो पर-स्त्री लम्पटी होय तो राजा ताका शिर, नाक, कान, पांव, हस्त छेदन करै। पंच, जाति तैं निकासैं। तौ ऊंच कुलकूं दोष लागै। तातैं ब्राह्मण शीलवान् चाहिये। ब्राह्मण सर्व आरम्भ व बहुत परिग्रहका त्यागी होय निर्लोभी होय इत्यादिक गुणवान् होय, तो शोभा पावै। अनाचारी भया, महा आरम्भ करै। महा लोभी होय, दया रहित सा दीखै तौ उत्तम कुलकौं दोष लगावै। तातैं ब्राह्मण बहुत आरम्भ व बहुत परिग्रहका त्यागी चाहिये और ब्राह्मण, अपनेसे हो हीन आचारी, ऐसे हीन देव, हीन गुरुकौं नाहीं सेवै, जैसा आप दयावान् है, शीलवान् समता भावी है, तातें भी अधिक बीतराग देव गुरु होय, ताकौं सेवै। और जैसा आप पुत्र, स्त्री, कुटुम्ब, परिग्रहके योगतैं, क्रोधी, मानी दगावाज, लोभी है। ऐसा ही क्रोध, मान, आदि दोषोतैं भरया जो देव गुरु, ताकूं नहीं सेवै। जाकौं सेवै, सो परीक्षा करि सेवै। अपने जैसे रागी-द्वेषी, पर-स्त्री, धन, बाहनादि परिग्रह धारी, देव-गुरुकों नहीं सेवै। सर्व दोष रहित, वीतराग, सर्वज्ञ, आरम्भ परिग्रह, स्त्री, धन घर रहित देव-गुरुकी सेवा करै। हीन देव गुरुकों नहीं सेवै। यह तो वर्णोत्तम नाम तीसरा अधिकार है॥३॥ ब्राह्मणमें गुणकी अधिकता है। तातैं याकूं पात्रत्वभाव है, ये पात्र हैं आदरतैं दान देवे योग्य है। अरु बड़े पुरुषन करि, माननीय है। तातैं विवेकी ब्राह्मणकूं, गुण बधावना योग्य है। ये शील, सन्तोष, दया, क्षमा, निर्लोभादि उत्तम गुण करि तो पूज्य है। अरु इन गुण बिना, महापुरुषन करि, मानवे योग्य नहीं होय। बड़े-बड़े राजा गुणी जन तैं अनादर पावैं। पण्डितनकी सभामें जाय, लज्जा पावैं। तातैं ब्राह्मणकौं दान, पूजा, जप, तप, संयम शील, दया, सन्तोषादि अनेक-अनेक गुणनका संग्रह करना योग्य है। याका नाम पात्रत्व नाम चौथा अधिकार है॥ ४॥ और जहां श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं, तिनकौं मिथ्या श्रद्धान तजि कैं, सर्वज्ञ देव-केवली भाषित पदार्थनका श्रद्धान करना योग्य है। कोई सामान्य ज्ञानके धारनहारे मानी जीवनने, अपना मान पोषवेकों, भोरे जीवनके बहकावेकों, अपनी इच्छा करि, कल्पित शास्त्र बनाये। तिनमें तीन लोकका स्वरूप यथार्थ कह्या तो तीन लोकका प्रमाण तुच्छ कह्या। सो कोई तो भोरे भव्य ऐसा मानैं। जो लोककी रक्षा, निरन्तर भगवान् करैं। नहीं तो कोई चोर या सर्व लोककौं चुराय वस्त्रमें समेट लेय जाय। तातैं भगवान् सदीव रक्षा कर

हैं। और कोई कहे हैं। जो काहू कर्त्ताने लोक बनाया है। सो कवहूं काल पाय, क्षय भी होयगा। ऐसे कल्पित विकल्प करि लोक स्वरूप कहें हैं। सो असत्य है, ताके भेद कौं जानैं। और सर्वज्ञ केवली करि कह्या लोकाकाश रूप-अनादि, अकृत्रिम, अविनाशी, ध्रुव, पुरुषाकार सो सत्य है। ताके भेद कूं जानै। शुद्ध केवलीके भाषे लोकका श्रद्धान् करै। मिथ्या कल्पित लोकके स्वरूपका श्रद्धान् तजै। और भी जीव-अजीवका श्रद्धान् सहित शुद्ध सम्यग्ज्ञानका धारी, ब्राह्मण चाहिये। और जो आपके भी यथार्थ दर्शन-ज्ञान नहीं होय। तो औरन कूं मिथ्या उपदेश देय, औरनका बुरा करै। अपने उत्तम कुलकूं दोष लगावै। तातैं ब्राह्मणकूं यथार्थ श्रद्धान् आपकूं चाहिये, तो औरनकूं भी सत्य उपदेश देय, औरनका भला करै। तव ब्राह्मण-कुलकी श्रेष्ठता रहै। याका श्रेष्ठता नाम, पांचवां अधिकार है ॥ ५ ॥ जो ब्राह्मण आप पण्डित होय। दया धर्मका धारी होय अन्य शिष्यजनकों कल्याणके अर्थ, मोक्ष-लक्ष्मीका वांच्छनहारा होय। अनेक प्रायश्चित्त शास्त्रनका वेत्ता होय, श्रावकनके व्यवहारकी परिपाटीका जाननहारा होय। जहां कोई श्रावककों प्रमाद-वशात्, संयममें दोष लगा होय, तो दया-भाव करि, ताके मेंटवेकूं, शिष्यनके पाप नाशवेकूं, यथा-योग्य प्रायश्चित्त बताय, शुद्ध करै। ऐसा ब्राह्मण चाहिये। और कदाचित् आपही अशुद्ध होय, क्रोध-मान-माया-लोभ-पाखण्ड करि भरया होय। तथा अज्ञानी होय। तो औरनकों धर्म-मारग कैसे बतावै? जैसे कोई ठग सूं उद्यान मैं शुद्ध-राह पूछै। तो ठग, शुद्ध राह कैसे बतावै? तथा कोई अन्धेसैं उद्यानकी राह पूछे। तौ वह उद्यानकी राह कैसे बतावे? तैसे ही कषाय सहित सो तौ ठग समान, सो शुद्ध मार्ग नहीं बतावै। वह अज्ञान अन्धे समान है। सो अपहीकौं सुमार्ग नहीं सूझै। तौ औरकौं कैसे बतावै? तातैं ब्राह्मणके ये दोऊ दोष कहे। सो कषाय अरु अज्ञानता तैं रहित सज्जन स्वभावी, दयामूर्ति, महा पण्डित, अनेक प्रायश्चित्त शास्त्रनका ज्ञाता ब्राह्मण चाहिये। अरु जो ब्राहमण आप प्रायश्चित्त शास्त्र तौ नहीं जानै। आपकौं दोष लागे, तव आपकूं औरन पै, दीन होय, प्रायश्चित्त याचना पड़ै। तातैं आपापरके सुधारवेकूं, अनेक नयका वेत्ता, गृहस्थनकी क्रिया-व्यवहार जानैं वह व्यवहार नाम छट्ठा अधिकार है ॥ ६ ॥ ब्राह्मण, उत्तम गुण-सम्पदाका धारी, उत्कृष्ट-पूजनीक गुण सहित,

धीर बुद्धि, पूजा-जप-तप-संयम सहित अनेक गुण पालक, सत्पुरुष ब्राह्मण, राजान करि अवध्य है। जैसे चोर, चकार चमचोरादि सप्त व्यसनके धारी जीव, बधवे योग्य हैं। तैसे अनेक गुणका धारी ब्राह्मण, बधवे योग्य नाहीं। पूजवे योग्य है और जो गुणी, पूजन योग्य, दीर्घ ज्ञानीकूं हनै, तो महा पाप होय। ज्यों-ज्यों दीर्घ ज्ञानीका घात होय त्यों-त्यों विशेष पाप जानना। जैसे एकेन्द्रियके घात तें, दो-इन्द्रियके घातका पाप बहुत है। ते-इन्द्रियका दो-इन्द्रियतैं बड़ा है। ते-इन्द्रियके घात तैं चौ-इन्द्रियके घातका पाप विशेष है। ऐसे ज्यों-ज्यों ज्ञान बध्या, त्यों-त्यों इन्द्रिय बधी सो इन्द्रियनके बधवे तैं, ज्ञान बध्या। तातैं ज्यों-ज्यों ज्ञान बधता होय, ताके घातका बड़ा-बड़ा पाप है। पशु तैं पापाचारी चोर, ज्वारी, पर-स्त्री सेवी, इत्यादिक अशुभ कर्मी मनुष्यके घातका पाप विशेष है सो इन तैं भला मनुष्य व्यसनादि दोष रहित होय ताके घातका पाप विशेष है ऐसे सामान्य मनुष्यनतैं, जपी, तपी, संयमी, दानी, दयावान्. निर्दोष, इनकैं विशेष ज्ञान है। सो इनके मारनेका विशेष पाप है। तातैं ऐसा जानना, जो ब्राह्मण संयम, जप, तप, व्रतका धारी है। तातैं याको घातका पाप विशेष है। विवेकी राजा, ऐसा दीर्घ पाप नहीं करै। तातैं राजा तैं, ब्राह्मण बध रहित है। पूजवे योग्य है। मारवे योग्य नाहीं। और यह धर्मका माहात्म्य है कि धर्मी को, कोइ पीड़ै नाहीं। और कदाचित् ब्राह्मण, दया रहित होय। लोभ—क्रोध—मान—मायादि व्यसनका धारी होय तो दीनता पावै। गुण बिना महत्वता जाती रहै। सामान्य मनुष्यकी नांई राजा करि, दण्ड कों प्राप्त होय है हर कोई, पीड़ै। दुर्वचन कहै। और ब्राह्मणका पद होते, सुमार्गका लोप होय। ऊंच-कुली कुमारगमें लागैं, तो दीनता पावैं। अपयश पावैं। धर्म-आचार मिटै। सुमार्ग—दया धर्म तैं रहित भये, पूज्य पद मिटै। राजा तैं अनादर पावै। तातैं विवेकी उत्तम ब्राह्मण कौं उत्तम-दान धर्म, संतोष, जप, तप, इन आदि अनेक गुणोंकी रक्षा करनी, त्रस-स्थावर सर्व जीवनका भला चाहना, यह उत्तम गुण है। सर्वके भलेमें अपना भला है। तातैं ब्राह्मण कूं धर्म-रक्षा करनी। याका नाम सातवां अवध्य गुण है ॥ ७ ॥ धर्म विषैं स्थिरी-भूत है आत्मा जाका, ऐसा ब्राह्मण; सर्व करि अदंड है। काहू तैं दण्डवे योग्य नाहीं। कोई धर्म-बुद्धि कूं, धर्म-सेवनमें

दोष लाग्या होय। तौ ताकौं शुद्ध करवे कूं यह धर्मात्मा ब्राह्मण ताकूं दण्ड देय, शुद्ध करै। परन्तु, आप दण्ड-योग्य नाहीं। आप अपनी शांत-दशा दया-भाव सहित, शास्त्रनका अभ्यास करे। ताके अर्थ प्रगट करि, आप धर्मात्मा भया और धर्मी-जीवन कूं उपदेश देय, सुमार्ग लगावै। जे धर्मात्मा होंय। सो धर्मी-जीवका दिया उपदेश, तथा अतिचार लाग्या ताका प्रायश्चित्त, अंगीकार करैं। तातें धर्मात्मा-पुरुष, राजा करि दण्डवे योग्य नाहीं। कदाचित् ऐसे धर्मी-जीवमें, कोई कर्म-योग तैं दोष पड़ गया होय। तौ धर्मात्मा-राजा, यथा योग्य दण्ड देय, फेरि ताकूं धर्म-विषैं दृढ़ करै। ऐसा दण्ड नहीं देय, जातैं याकौं धर्म तैं अरुचि होय। धर्म सेवनमें आकुलता बधै। घर-धन नहीं लूटै। तन-घात नहीं करै। ऐसा दण्ड देय, जातैं याकौं धर्ममें प्रीति उपजै। जिन धर्मका अतिशय देख, दया-धर्मका सेवन करै। यह धर्मात्मा ब्राह्मण, सर्व लौकिक दोष तैं रहित, उत्तम आचारवान्, दया-धर्मका धारी, राजाओं करि अदंड है। पापीजनकी नांईं, धर्मात्मा कूं भी दण्ड योग्य जानै। तो दण्डनेहारा राजा, प्रजाका पालनहारा, अन्यायके योग तैं अपयश पाय, थोड़े ही दिनोंमें राज्य-भ्रष्ट होय। याकी अनीति देख, धर्मात्मा पुरुष तौ देश तज देंय। तब देश धर्मी-जन रहित भया। तामैं पाप-कार्यनकी बधवारी होय। पापके बधतैं, देश-ग्राम धीरे-धीरे अनुक्रम करि नाश कूं प्राप्त होंय। तातैं धर्मात्मा-ब्राह्मण, अदंड है। यह अदंड नाम आठवां अधिकार है॥ ८॥ बहुरि धर्मी-जीवन कौं सर्व पूजैं। यथा-योग्य सर्व मानैं। सो यह बात सत्य ही है। जो धर्मात्मा, गुणन करि अधिक होय। सो धर्मी-जीवन करि, मानवे योग्य होय ही होय। कदाचित् विप्र विषैं, गुणनकी अधिकता नहीं होय। तो पूज्य-पद मिटै। अनादर पाय। पद भ्रष्ट होय। रंकदशा धारे। तातें विवेकी ब्राहमण, समतादिक गुणनका जतन करि, अपने विषैं धारै। सो यह ज्ञान, चारित्र और तप, उत्कृष्ट ऋद्धि है सो जे गुणवान् हैं, सो गुण-विभूतिका यत्न करो। यह गुण-संपदा जप-तप पूज्य हैं। तिनकौं भूल कर भी विवेकी नहीं विसारैं। याका नाम माननीयता नववां अधिकार है॥ ९॥ यह धर्मात्मा ब्राह्मणका, प्रजा-संबन्धान्तर गुण है सो विवेकी अपना उत्कृष्ट गुण छाँड़ि, जगत-जीव-अज्ञानकी नांईं नहीं होय सो प्रजा-संबंधांतर गुण कौं राखै। भावार्थ—जो जैसे गुण

अन्य प्रजामें नहीं पाईये, ऐसे गुण आपमें धारण करै। प्रजाके गुण तैं अधिक गुण-संपदाका धारी होय। तब प्रजा करि, पूज्य होय। प्रजा-जैसे, अज्ञान चेष्टा रूप गुण, आपमें नहीं धारै। सो प्रजासे अन्तर जानना। प्रजा समान गुण, अज्ञान-विषयीकी चेष्टा आपमें धारै। तो अपना पूज्य-पद खोवै। महंतता नहीं रहै। प्रजा समान आप भी होय। तौ जैसे निमल स्वर्णमें, कुधातुके सम्बंध करि मलिनता होय। और जैसे निर्मल स्फटिक मणि, डांकके संयोग तैं अपना स्वच्छ गुण तजि, श्याम-हरित-रक्तादि अनेक वर्ण कौं प्राप्त होय। तैसे ही यह धर्मात्मा जीव, ब्रह्मचारी, उत्कृष्ट गुणोंका धारी, आचारवान्, सौम्यमूर्ति संसारी-अज्ञानी जीवनकी संगति तैं आप भी अज्ञानी-जीवनकी नाईं, इस प्रजामें एकमेक होय। क्रोध-मान-माया-लोभ रूप प्रवृत्ति तैं, अपनो पद लोप करै। सर्व गुणनका अभाव होय। तातैं विवेकी धर्मात्मा ब्राह्मण, अपने गुणन तैं और अज्ञानी-गुण रहित जीवन कौं, गुण-खान करै। आप अज्ञानीकी संगति तैं, अज्ञानी नहीं होय। जैसे पारस-पाषाण अपने गुण तैं लोह-कुधातु कौं कंचन करै, परन्तु आप लोह नहीं होय। तैसे उत्तम ब्रह्मचारी, अपना शील, संतोष, तप, संयम, व्रत, दया सहित गुण, जगतमें प्रगट करि, और-जीवन कौं आप समान गुणवान करै। जो भोरे, अज्ञानी, अशुभाचारी, दया रहित, पाप कलंक सहित जीव, तिनकौं धर्मोपदेश देय, तिनके दोष मेटि शुद्ध निर्दोष करै। यह गृहस्थाचार्य तीन कुलका उपज्या ब्रह्म पदके धारी विषैं यह प्रजा संबंधांतर गुण है। ताके योग तैं औरन कौं गुणरूप करै। कदाचित् यह गुण नहीं होय तो अज्ञानी के संग तैं आप अज्ञानी होय। गुण रहित होय। तब अपना पूज्य पद नहीं रहै। तातैं प्रजाके गुणों तैं मिलै नाहीं अलग रहै। याका नाम प्रजा संबन्धातर दशवां अधिकार है॥ १०॥ ऐसै ये बाल विद्या तैं लगाय प्रजा संबन्धान्तर दश अधिकार कहे। ताकी जुदी जुदी क्रियानका कथन कह्या। सो जो इन दश क्रिया रूप प्रवृत्तै। सो क्रिया ब्रह्म जानना। तीन कुलका उपज्या धर्मी जीव इन क्रियाओं सहित शीलादिक गुण पालै। सो क्रिया ब्रह्म है। इति क्रिया ब्रह्मके दश भेद। आगे ब्राह्मण शील गुणकी प्रतिपालना करै। सो ब्रह्मचारी कहावै। सो शीलाधिकार लिखिये है—

गाथा—सिव मिंद जाण द्वारय, भव सायर पार तार तंणीए। अघ तम हर रवि जेहो, मोख मग्गोय वंभ भावाए ॥ १४२ ॥

अर्थ—शिव मिंद जाण द्वारत कहिये मोक्ष महलके जाने कूं द्वार। भव सायर पार तार तंणीए कहिये संसार सागरके तरवे कूं नाव समान। अघ तम हर रविजे हो कहिये पाप रूप अंधकारके नाशवे कूं सूर्य समान। मोख मग्गोय वंभ भावाए कहिये मोक्ष मार्ग रूप एक ब्रह्म भाव ही है। भावार्थ-ब्रह्मचर्य भाव है सो मोक्ष महलमें जानेका एकही ये मार्ग है। इस शील विना मोक्षकौं जावेका कोई द्वार नाहीं, कैसा है शीलभाव संसार समुद्रके तिरवे कौं जहाजसमान है। कैसा है भव—समुद्र, महागंभीर राग-द्वेष रूप जो जल, ताकरि भरया है। तामें विकार रूप अनेक तरंगें उठें हैं। और वेद-भाव, रति अरति क्रोध मान, माया लोभादि ये कषाय हैं। सो ही भये मगरादि जलचर क्रूर जीव। तिनके केलि (क्रीड़ा) करने का स्थान, ये भव-सागर जानना ऐसे विकट भवसागर तारवे कूं ये शील व्रत नाव समान है। कैसा है शील, पाप अंधकार करि चारि-गति के जीवन कूं, मोक्ष-मार्ग नहीं सूझै। ऐसा अंधकार नाशवे कूं, यह ब्रह्मचर्य—भाव सूर्य समान है। तातें मोक्षका मार्ग, एक शील ही है। भावार्थ-इस शील गुण विना अनेक धर्म—अङ्गनका साधन, कार्यकारी नाहीं। तातें मोक्षाभिलाषी जीवन कूं, मोक्षके कारण रूप शील की ही रक्षा करनो चाहिये। आगे और भी शील गुण की महिमा कहिये है—

गाथा—सोपाणो सिव गेहो, सिव तिय लावण दूत सम जोई। धम्मा भूषण भणयं, सिव दीयो जाण वंभ गुण गेयो ॥१४३॥

अर्थ—सोपाणो सिव गेहो कहिये, ये ब्रह्मभाव मोक्ष मंदिरके चढ़वे कों सीढ़ी समान है। सिव तिय लावण दूत सम जोई कहिये, मोक्ष रूपी स्त्री के ल्यावे कों चतुरदूतो समान है। धम्मा भूषण भणयं कहिये, ये धर्मका आभूषण है। सिव दीयो जाण वम्भ गुण गेयो कहियो, शिव द्वीपके पहुंचावे-कों ब्रह्मचर्य वाहन-समान है। भावार्थ—जैसे मन्दिर पै जांय, सो सीढ़ीन परसे जांय हैं सो मोक्षमहल, अद्भुत सुखका स्थान है। सो लोकके शिखर पर है। मध्य लोक तैं, सात राजू ऊंचा है। तहां चढ़वे कूं शीलव्रत सीढ़ी समान है। इस शील रूप पैढ़ीन की राह चढ़नेहारा भव्य, सहज ही में मोक्षमहलमें पहुंचे है। जैसे दूती, परस्त्रीन कूं

शीघ्र ही मिलावै। तैसे मोक्ष रूपी स्त्रीके दिलावे कू, ब्रह्म दूतीसमान जानना। जैसे आभूषण करि तन शोभा पावै। तैसे धर्म के जेते अङ्ग हैं। दान पूजा, जप, तप, त्याग; चारित्र, इन आदि जे जे धर्म अङ्ग हैं। तिनके भले दिखावे कूं—शोभायमान करवे कूं, शील गुण है सो आभूषण समान है। जैसे कोई देशांतर जावे कूं रथ, गाड़ी, सुखपालादि असवारी, सुख तैं परदेश लेय जाय हैं। तैसे ही शिव द्वीपके पहुंचावे कूं, शील—गुण है सो यान कहिये असवारी समान है। तातैं इस शील गुणकी रक्षाकरनी योग्य है। आगे शील गुण की और महिमा कहिये है—

गाथा—मोख तरु दिठि मूलो, खग देव णरय पूज्य असुरायो। तिभवण चर जस करई, हरई भव दुक्ख वंभ वाताये ॥ १४४ ॥

अर्थ— मोख तरु दिठि मूलो कहिये, ब्रह्म-भाव मोक्ष-वृक्षकी जड़ है। खग देव णरय पूज्य आसुरायो कहिये, विद्याधर, देव, मनुष्य और असुरन करि पूज्य है। तिभवण चर जस करई कहियो, तीन लोकके जीव ताका यश गावैं हरई भव दुक्ख वम्भ वताये कहिये, संसारके दुःख कूं ब्रह्मचर्य्य मैटै है। भावार्थ—यह शील व्रत है सो मोक्ष रूपी वृक्षकी जड़ है। जैसे वृक्षकी जड़ नहीं होय, तो वृक्ष नहीं ठहरे। अल्प-कालमें क्षय होय। तैसे ही शील-भाव रूपी जड़ कहीं होय, तौ मोक्ष-रूपी कल्प-वृक्ष नहीं रहै। बिनसि जाय। बहुरि यह शील-भाव कैसा है ? विद्याधर, राजा, ज्योतिषी, व्यन्तर, भवनवासी, कल्पवासी ये च्यारि प्रकारके देव, चक्री, अर्ध-चक्री, कामदेव, बलभद्र, मण्डलेश्वरादि महान् ऋद्धिके धारी बड़े-बड़े राजा, इन सर्व देव-मनुष्यन करि पूजनीय है। शीलभाव कैसा है ? जाका यश तीन लोकके प्राणी गावैं हैं। बहुरि शीलभाव कैसा है जन्म—मरण दुःखका नाश करनहारा है इत्यादिक अनेक गुण सहित, यह शील व्रत है। ताकी रक्षा करना योग्य है। आगे शीलका माहात्म्य और बताइये है—

गाथा—सिंहण वाधा करई, चंपय पद णाग दाग णह होई। वण वारण मिग जायो, यह फल सीलोय होय णियमेण ॥ १४५ ॥

अर्थ—सिंहण वाधा करई कहिये, ब्रह्मचारी कौं सिंह बाधा नहीं करै। चंपय पद णाग दाग णह होई कहियो, पांवके नीचे नाग आवै तौ भी नहीं काटै। वण वारण मिग जायो कहिये, बनका हाथी मृग समान

हो जाय । यह फल सीलोय होय णियमेण कहियै, ऐसा फल नियमसे शील व्रतका होय है । भावार्थ—जहां भयानीक आकार, तीक्ष्ण हैं नख अरु दांत जाके, काल-पुत्र समान विकराल, भयानीक रूप ऐसा नाहर, उद्यानमें शीलवान कौं नहीं सतावै । और काल समान विकराल, फणका धारी, विषका समूह, जाके मुख तैं निकसै है अग्निवत् हलाहल विष-ज्वाला, मणिधारो, ऐसा भयानीक नाग, शीलवान् पुरुषनके पांव नीचे दबि जाय, तो इल्लो समान दोन होय जाय । शीलके माहात्म्य करि, पोड़ा नहीं करै । और महा उद्यानमें बनका मदोन्मत्त हस्ती, स्वेच्छारूप वर्तता, अपनी लीला करि बड़े-बड़े वृक्ष तोड़ता नदीसरोवरका जल बिलोलता, काल समान भयानीक वर्षा-काल के मेघ समान गर्जता दीर्घ शब्द करता, अजंनगिरि समान ऊंचा मेघघटा समान श्याम वर्णका धारी हस्ती तैं गहन वनमें भेंट हो जाय । तौ ऐसा भयानीक गयंद शीलके माहात्म्य करि ब्रह्मचारी कूं बाधा नहीं करै । मृगके समान सरल हो जाय । इत्यादिक फल प्रगट करनहारा उत्तम शील गुण है तातैं ऐसे शीलगुणकी रक्षा करना योग्य है । आगे और भी शील गुणका माहात्म्य कहिये है—

गाथा—सुर सुह कर सिव करऊ, वहणी णिज पतण होय दुंह सामो । सुर-तरु दहदा सुह दय, गहणो वण साय वंभ वय करई ॥ १४६ ॥

अर्थ—सुर सुह कर कहिये, स्वर्ग का सुख करनहारा । सिव करऊ कहिये, मोक्ष करनहारा वहणी णिज पतण होय दुह सामो कहिये, शीलवान्का अग्निमें पड़ना होय तो यह दुःख भी शांत होय । सुर-तरु दहदा सुह दय कहिये, दश प्रकार कल्पवृक्षके सुखका दाता है । गहणो वण साय वंभ वय करई कहिये, ब्रह्मचर्य व्रत सघन बनमें सहाय करै । भावार्थ-यह ब्रह्मचर्य व्रत कैसा है ? याके फल तै नाना प्रकार, पंचेन्द्रिय, देवोपुनोत अद्भुत, अमर-पर्यायके सुख होय है और शीलवान् जीव कूं कर्म-रहित जो मोक्ष, ताके अखंड अविनाशी, अचल, अतीन्द्रिय-सुख होय हैं । शीलवन् के चौतरफ अग्नि ज्वाला जल रही होय, तौ भी ताहि बाधा नहीं होय । तथा शीलवान् पुरुष कौं कोई पापी अग्नि-ज्वाला विषैं गिरावै तौ सब अग्नि, जल होय । जैसे सीताके शील-महात्म्य करि, अग्नि जल भई । तैसे ही शीलवान कूं अग्निका भय नहीं होय ।

दश प्रकारके कल्पबृक्षका दिया वांछित सुख, सो शीलके माहात्म्य तैं सहज ही होय। शीलवान् पुरुष अटवी में जाय पड़े, तो वाधा नहीं होय। कैसा है बन? महा उद्यान बड़े-बड़े सघन वृक्षका समूह, तहां महा भयानीक सिंहनके धडूके (गुफाएं) हैं तहां मेघ की नाईं, हस्तीन की गर्जना होय। तहां सिंहनकी गर्जना के शब्द सुनि, मदोन्मत्त हस्तीनके समूह स्वेच्छाचारी भये, बनके वृक्ष उखाड़ते, लीला करते फिरै। सो सिंहके शब्द सुनकर, हस्ती अपने छावान् (बच्चों) सहित, भागते फिरैं हैं। उतर गया है मद जिनका, सो भयवान् भये भागते दीखैं हैं। जा बनमें बड़े—बड़े पर्वत सो गुफान करि पोले होय रहे हैं। तिनगुफान तैं निकसे जो बढ़े दीर्घ तनके धारी अजगर सर्प, सो दीर्घ उच्छ्वास लेते गुफा तै निकसतो देखिये है इत्यादिक भय तैं भरा जो भयानीक बन, सो ऐसे बन बिषैं शीलवान आय पड़ैं। तो शीलके माहात्म्य करि, निःखेद होय निकसै। ऐसे अतिशय सहित जो ये शीलगुण ताकी रक्षा करनी विवेकीनकौं योग्य है। आगे और भी शीलगुणका माहात्म्य बतावैं हैं—

गाथा—सिसरो अवभ भंजई, वंभ वतोय बज्ज छिण एको। काम भुयंगय मंत्तो, वसि करई वंभ एय गरुडाये ॥ १४७ ॥

अर्थ—सिसरो अवंभ भंजई कहिये, अब्रह्म रूपी पर्वतके फोड़वे कौं, वंभ वतोय वज्ज छिण एको कहिये ब्रह्मचर्य एक वज्रके समान है। काम भुयंगय मंत्तो कहिये, काम रूपी सर्पके वश करवे कों ब्रूह्मचर्य एक मंत्र समान है। बसि करई वंभ एय गुरुडाये कहिये, तथा ताके वश करवे कूं ब्रूह्मचर्य एक गरुड़ समान है। भावर्थ—कुशील रूपी उत्तंग पर्वतके चूरण करवे कूं शीलभाव वज्र समान है। एक छिनमें कुशील रूपी पर्वतन कूं फोड़ै है। और कैसा है शीलभाव? कुशीलभाव रूपी जो सर्प, ताके वश करवे कूं मंत्र समान है। तथा ताके वशी करवे कूं शील भाव गरुड़ समान है। ऐसे शीलबूत की रक्षा करना योग्य है। आगे और भी शील बूतकी महिमा बताइये है—

गाथा—मदणो मद गय थंभउ, अंकस सिर दाग लाग वस करई। मण कपि वस कर फंदई, वंभो वय-एय गेय णियमेण ॥ १४८ ॥

अर्थ—मदणो मद गय थंभउ कहिये, मदन रूपी मदोन्मत्त हस्ती ताके जीतवेकूं। अंकस सिर दाग

वस करई कहिये, शिरमें अंकुशके दाग लगाय वश करवे समान। मण कपि वस कर फंदई कहिये, मन रूपी वन्दरके वश करवेकौं फंद समान वंभो वय एय गेय णियमेण कहिये, एकही ब्रह्मचर्य व्रत नियमसे जानना। भावार्थ—काम रूपी मदोन्मत्त हस्ती, महा बलवान् सो ताके जीतवेकूं इन्द्र, देव, चक्री, कामदेव, नारायण बलभद्र, कोटीभटादि महापुरुष, बड़े-बड़े बैरोनके जीतवेकूं बलवान्, इनको आदि बड़े—बड़े सामंत, ते भी इस काम रूपी हस्तीके वशी करवेकूं असमर्थ भये। ऐसे काम रूपी हस्तीके वशी करवेकूं, ये शील भाव है सो अंकुशके दाग समान है। कैसा है शीलभाव ? सो मन रूपी बन्दरके बांधवेकूं, लोहेकी सांकल समान है। इनकों आदि अनेक गुण सहित, शीलभाव जानना। आगे और भी शीलव्रतकी महिमा कहिये है—

गाथा—कुगय वार कपाटो, अवंभ तरु छेद तीच्छ कुठहारो। सिव गछछत सुह सुकणो, इन्दी मिग जाल वंभ वताये ॥१४६॥

अर्थ—कुगय वार कपाटो कहिये। ये ब्रह्मभाव कुगति द्वारकों कपाट समान है। अवंभ तरु छेद तीच्छ कुठहारो कहिये, कुशील रूपी वृक्षके छेदवेकूं तीक्ष्ण कुठार है। सिव गछछत सुह सुकणो कहिये, मोक्ष चलवेकूं, शुभ शकुन है। इन्दी मिग जाद वंभ वताए कहिये इन्द्रिय रूपी मृगके पकड़वेकूं ये ब्रह्मचर्य, जाल समान है। भावार्थ—यह ब्रह्मचर्य व्त है, सो कुगति जो नरक-तिर्यंच गति, तिनमें नहीं जाने देयवेकूं कपाट समान है और कैसा है शीलव्रत, जो कुशील रूपो विकट वृक्ष सो आर्त रौद्र भाव रूप कांटेन सहित आकुल भाव रूपी छायाका धारी, अपयश रूपी फूल करि फूल्या, नरक तिर्यंच गति हैं, फल जाके ऐसा कुशील वृक्ष, ताके छेदवे कं शीलभाव तीक्ष्ण कुठार समान है। बहुरि कैसा है शीलभाव, जैसे कोई बड़े लाभ निमित्त द्वीपांतर जाते, भले शकुन होंय। तो जातेही कार्य सिद्ध होय। तैसेही मोक्ष रूपी द्वीपके गमन करनेहारे यतीश्वर तथा और भव्य श्रावक, तिनकौं शुद्ध शील व्रतका मिलाप, भले शकुन समान है। बहुरि कैसा है शीलभाव ? जैसे काहूका तैय्यार भया धान्यका खेत है। ताकौं उद्यानमें मृग उजाड़ैं हैं, खाय जांय हैं। तिन मृगों कों, स्याना खेतका लोभी किसान, जाल तैं पकड़ कैं, अपना खेत बचावे है। तैसेही अनेक गुणनका उपजावनहारा संयम रूपी खेत, ताकों इन्द्रियरूपी मृग बिगाड़ें हैं। सो अपने संयम—खेतकी

रक्षा का करनहारा धर्मात्मा पुरुष, सो इन्द्रिय रूपी मृग तिनकूं शीलरूपी जाल तैं पकड़ि, अपने वश करि, अपने संयम खेतको बचावै। इत्यादिक अनेक गुणोंका भण्डार यह शीलव्रत है। तातैं याकी रक्षा किये, स्वर्ग-संपदा दासी होय। मोक्ष-संपदा घर विषैं आवै। सो विवेकी हो! इस शीलकी रक्षा करो। इति शील-महिमा। आगे कुशील का स्वरूप कहिये है—

गाथा—धम्म तरु भंज गयन्दो, मिच्छा रयणीय मांहि मिग्गांको। आपद घन गह भरई, ये सऊ दोसाय जणणि अवंभो ॥ १५० ॥

अर्थ—धम्म तरु भंज गयंदो कहिये, धर्म रूपी वृक्षके छेदवे कूं हस्ती। मिच्छा रयणीय मांहि मिगांको कहिये, मिथ्यात्व रूपी रात्रिके करवे कूं ताका नाथ चन्द्रमा समानि। आपद धण गह भरई कहिये, आपदा रूपी धन तैं, घरकौं भरनहारा। ए सऊ दोसाय जणणि अवम्भो कहिये, इन सब दोषोंकी जननी अब्रह्म है। भावार्थ—धर्म रूपी वृक्ष यश रूपी सुगंधित फूलों करि फूल्या, स्वर्ग-मोक्ष हैं फल जाके ऐसा धर्मवृक्ष, ताकों तोड़-विध्वंस करवे कौं कुशील भावना, मतंग हस्ती समान है। सम्यक्ज्ञान रूपी दिन, सर्व पदार्थन का जनावनहारा ताके हरवे कूं अरु मिथ्यात्व रूपी रात्रिके प्रकाश करवे कूं कुशीलभावना रजनीपति—चन्द्रमा समान है। और आपदा कहिये नाना प्रकार दुःख, दारिद्र, रोग, भय, जेई भई संपदा तिनतैं घर भरनहारा कुशील है। भावार्थ—जाके कुशील है ताके घर तैं आपदा कबहूं नहीं छूटै इत्यादिक अनेक दोषों के जन्म देवें कूं समर्थ कुशील भावना माता समान है। ऐसा जानि कुशील भावना तजना भला है। आगे और भी कुशील का स्वभाव कहै हैं—

गाथा—वंभ हणण तिय कुटिला, कुगय गमण कर हरय सिव मग्गो। एहो भाव अवंभो, हेयो कीय भव्य वंभ पादेयो ॥ १५१ ॥

अर्थ—वंभ हणण तिय कुटिला कहिये ब्रह्मचर्य नाशवे कूं कुटिला स्त्री। कुगय गमणकर कहिये, कुगतिमें गमन करै। हरय सिव मग्गो कहिये, मोक्ष मार्ग कौं हरै। एहो भाव अवंभो कहिए, ऐसा कुशील भाव है हेयो कीय भव्य कहिये ये भव्य जीवके हेय है। वंभ पादेयो कहिए ब्रह्मचर्य भाव उपादेय है। भावार्थ—जैसे कुटिला स्त्री है सो अनेक हाव-भाव करि, पर-पुरुषका मन मोहकर ताका शील हरै है। तैसे

ही कुशील भाव है, सो ब्रहमचर्य के हरवे कूं कुटिला-स्त्री समान है। फेर कुशील भाव कैसा है? कूगति जो नरक तिर्यंच गति ताके मार्ग कूं बतावें है। कैसा है कुशील! जो मोक्ष-मार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, इनकूं हरै है। तातें हे भव्य हो! यह कुशील भाव है सो याकौं तजौ। अरु शील भाव कूं अंगीकार करहु। ऐसे कहे जो शील भाव अरु कुशील भाव तिनका स्वभाव अपनी बुद्धिके बल करि पहिचान समता रसके स्वादी होय इस जगत विडम्मना रुप विकार भाव सहित जो कुशील भाव तिनका तजन करि मोक्ष रुपी स्त्री के सम्बन्ध तैं उत्पन्न, जो निराकुल, अद्भुत, अतीन्द्रिय सुख, ताही कौं तुम शीलभावके प्रसाद भोग करि, सुखी होऊ। यह कहूये जो कुशीलभेद, तिन कूं तजि ऊपर कहे शील गुणकौं धारै। सो क्रिया-ब्रहम जानना। इति कुशील निषेध, शीलकी महिमा कही। आगे च्यार भेद क्रिया-ब्रहमके हैं। तिनकी क्रिया लिखिये है—

गाथा—सिर लिङ्गन उर लिङ्गो, कटि लिङ्गो उरय लिङ्ग चव भेयो। धारय सो दुज सुद्धो, वंभ चारोय धार समभावो ॥ १५२ ॥

अर्थ—सिर लिंगन कहिये, सिरका चिन्ह। उर लिंगो कहिये, उर (छाती) का चिन्ह। कटि लिंगो कहिये, कमरका चिन्ह। उरय लिंग कहिये, जंघाका चिन्ह। चव भेयो कहिए, ए चार प्रकार क्रिया ब्रहम है। धार समभावो कहिए, समता भावोंको धारण करै। वंभचारोय कहिए, वही बृहमचारी है। धारय सो दुज सुद्धो कहिए, वही शुद्ध द्विज है। भावार्थ—भले तीन कुलके उपजे धर्मात्मा-ग्रहस्थके बालक, जेते काल ग्रहस्थाचार्यके पास विद्याका अभ्यास करैं। तेते समय गुरुकी आज्ञा-प्रमाण ब्रहमचर्य-वृत पालैं। अरु च्यारि चिन्ह सहित रहैं। सो सिर लिंग ताकौं कहिए। जो नग्न शीश रहै। सो चोटीमें गांठ राखे। सो सिर लिंग है ॥ १ ॥ उर लिंग ताकौं कहिए, जो गले विषैं रत्नत्रयका प्रसिद्ध चिन्ह, जिन-धर्मका निशान, पक्का जैनी अपना जिन-धर्म प्रगट करवेके निमित्त, गलेमें तीन सूतकी-उर विषैं जनेऊ डालै सो उरका चिन्ह है ॥ २ ॥ डाभकी तथा मूंजकी रस्सीका, कमरकी करधनीकी जायगा, ताका बंधन राखै। सो कटिका चिन्ह है ॥ ३ ॥ उर नाम जंघाका है। सो जांघपर उज्वल धोती राखै सो उरुका चिन्ह है ॥ ४ ॥ इन च्यारि गुण सहित जो क्रिया होय सो क्रिया-बृहम है। उरका चिन्ह जनेऊ है ताके नव गुण हैं। इन नव गुण सहित जो भव्य होय,

सो जनेऊ राखै। अरु इन गुण बिना जनेऊ राखै, तो परंपराय तैं, धर्मका लोप होय। ताकौं पाप-बंधका करनहारा कहिए सो वे नव गुण कैसे, सो ही कहिए है—विज्ञानता, क्षमावान्, अदत्त त्याग, अष्ट मूल गुण-धारक, लोभ रहित, शुभाचारी, समिति धर, शीलवान् और त्याग गुण। भावार्थ—विज्ञानता जो नाना प्रकार विशेष-गुणनकी सावधानी राखना। क्षमावान होय, तपस्वी होय। दया सहित, आप समान सब जीवनका जाननहारा होय। उदार चित्त होय। सर्वज्ञ भाषित शास्त्रनका धारी पण्डित होय। यथा योग्य देव-गुरु-धर्मव आप सम, आप तैं लघु, इत्यादिक सर्वकी विनयमें समझता होय। आपका हृदय विनयवान् होय। इन आदिक विशेष ज्ञानवान होय सो विज्ञान लक्षण है ॥ १ ॥ दूसरा क्षमागुण सो शांत स्वभाव होय। क्रोधी नहीं होय। सर्व जीवनके मंगलका इच्छुक होय। अदेखसका नहीं होय। क्रोध, मान, माया, लोभ, पाखंडका त्यागी होय। कषायी नहीं होय। इत्यदिक गुणी, सो क्षमा गुण है ॥ २ ॥ अदत्तका त्यागी होय। राह पड़्या द्रव्य कों नहीं छीवै। बिना दिया, किसीका गड़्या, धर्या, भूल्या धन लेय नाहीं। इत्यादिक चोरीका त्यागी होय सो तीसरा अदत्त-त्याग गुण है ॥ ३ ॥ मूल गुणका धारी होय। ऊमर, कठूमर, पाकर फल, बड़ फल, पीपल फल, ए पांच उदंबर। मद्य, मांस, मदिरा, ए तीन मकार। सब मिल आठ भए। सो इन आठनका त्याग, सो अष्ट मूल गुण हैं सो इन गुणनका धारी होय। रात्रि-भोजनका त्यागी होय। इत्यादिक अभक्ष्य कंद-मूलका त्यागी होय सो चौथा अष्ट मूल गुणधारक गुण है ॥ ४ ॥ निर्लोभता-सो परिग्रह तृष्णाका त्यागी होय। संतोषी होय। अहंकार, ममकार जो मैं ऐसा, मोसा कोई दूसरा नाहीं, सो अहंकार है। यह मेरो, वह मेरी, तन, धन, पुत्र, स्त्री, घर मेरा। ऐसा कहना सो ममकार है। जो ऐसे भावनका त्यागी होय। सो निर्लोभता पंचम गुण है ॥ ५ ॥ शुभाचारी होय। जो पूजा जप तप संयम सूं रहना। अयोग्य खान-पानका त्याग भला भोजन देखके लेना। इत्यादिक शुभक्रिया करि रहना। सो शुभाचार है। अनछना जल पीवै नाहीं। ऐसे जल तैं सपरे (स्नान करै) नाहीं। नदी, सरोवर बावरी कूपमें कूदके स्नान करै नाहीं। इत्यादिक भले गुण धारै। सो शुभाचार नाम छट्ठा गुण है ॥ ६ ॥ सांतवां समिति गुण-सो धरती पै चलै तो नीची दृष्टि

करि देखता चालै। अपनो दृष्टिसें छोटे-मोटे जीव आवैं। तिन कूं दया भाव करि बचावता चालै। ऊर्द्ध मुख करि नाहीं चालै। शीघ्र शीघ्र नाहीं चालै। राह चलते इत उत नहीं देखै भागै नांहीं। भाषा बोलै सो बिचारके बोलै। भोजनके समय बोलै नाहीं लड़ै नाहीं काहू कौं गाली नहीं काढ़ै। इत्यादिक शुद्धता सहित देखके भोजन लेय। वस्तु कहींसे लेय सो देख कर लेय। घींसके नहीं लेय। वस्तु कहीं धरै तौ देखके धरै। धरती बिना देखे नहीं धरै। मल-मूत्र अपने तनका डारै सो जीव रहित स्थानमै देख शोध डारै। इत्यादिक शुद्धता सहित रहना। सो सातवां समिति गुण है ॥ ७ ॥ आठवां शील गुणसो पर-स्त्री विषैं विकार बुद्धिका त्यागी होय। निज स्त्रीके संभोग विषैं, संतोषी होय। अल्प निद्राका करनहारा होय। अल्प निद्रा होय तो प्रमादी नहीं होय। दीर्घ निद्रा करै तो अपने गुणन कूं कलंकित करै। अल्प आहारी होय। बहुत भोजन करै तो शील कौं दूषण होय। काष्ठ पाषाणादिकी स्त्री देख विकार रूप चित्त नहीं करै। इत्यादिक शीलभाव राखै। सो आठवां शील गुण है ॥ ८ ॥ त्याग नववां गुण है। सो कुटुम्ब परिग्रह और शरीरमें मोहका त्यागी होय। अनरंजन भाव होय। मंद मोह कौं लिये सरल चित्तका धारी होय। चिन्ता शोक भय करि रहित होय। बड़ा दानी होय। इत्यादिक गुण सो त्याग गुण है ॥ ९ ॥ ऐसे कहे नव गुण सहित जो होय सो तिस भव्यात्मा कौं यज्ञोपवीत फलदाई होय। इन गुण बिना यज्ञोपवीत राखै तौ परभव कौं दूषित करै। प्रायश्चित्तका धारक सत्पुरुष ब्रह्मचर्यका धारी; तिन करि निंद्य होय। दुख पावै। जैसे मंत्रका जाननहारा सर्प राखै। तो निर्दोष है। बिना मंत्र जानै सर्प राखै। तौ दुखी होय। ऐसे कहे गुण प्रमाण यज्ञोपवीत राखै तौ शुभ उपजावै नाहीं दुख उपजावै। ऐसा जानि गुण सहित यज्ञोपवीत राखै। सो क्रिया ब्रह्म है। आगे इन ही श्रावकनके भोजन समय सात अंतराय होय हैं। सो कहिये हैं। प्रथम नाम जहां कौंड़ी आदि निर्जीव हाड़ देखै मांस पिंड देखै रौद्र धार देखै भोजन करते थालमें जीव पतन होय पंचेन्द्रियका मल देखै कच्चा पक्का सूखा चमड़ा देखै व स्पर्शै और तजी वस्तु भोजनमें आवै। ऐसे सात अंतराय हैं सो इनका निमित्त मिलै तो दयावान् कोमलचित्तका धारी श्रावक भोजन तजै। ता दिन अनशन करै।

जब से अंतराय भया तब तैं अन्न जल नहीं लेय। ऐसा जानना। आगें ये क्रिया ब्रह्मके पालने योग्य सत्तरह नियम हैं। सो कहिये हैं—

गाथा—भोयण षड रस पाणो, लेय पुखोय गीत तंबोलो। णित अवंभ सणाणो, आभूपण पट्ट पम्माणो ॥ १५३ ॥

अर्थ—भोयण कहिये, भोजन। षड रस कहिये, षट् रस। पाणो कहिये, पान करवे योग्य जलादिक। लेय कहिये, लेप करने योग्य वस्तु। पुखोय कहिये, पुष्प। गीत कहिए, राग। तंबोलो कहिए, नागर पान। णित कहिए, नृत्य। अवंभ कहिये, कुशील। सणाणो कहिए, स्नान। आभूषण कहिए, गहना। पट्ट कहिए, वस्त्र। पम्माणो कहिए, इनका प्रमाण करना। इनका भावार्थ आगे कहेंगे।

गाथा—वाहण सज्जा आसण, सचित्त संज्ञाय सत्त दस णियमो। धम्मी सावय धारय, जाम दिण पक्ष मास वस्सादि ॥ १५४ ॥

अर्थ—वाहण कहिए, असवारी। सज्जा कहिए शैय्या,, सोनेका स्थान। आसण कहिए, बैठवेका स्थान। सचित्त कहिए, जीव सहित सो सचित्त। संज्ञान कहिए, वस्तु। सत्त दस णियमो कहिए, ए सत्तरह नियम हैं। जाम दिण पक्ष मास वस्सादि कहिए, पहर-दिन-पक्ष-मास-वर्षादि तक। धम्मी सावय धारय कहिए, धर्मी श्रावक धारण करैं। भावार्थ—भोजन, रस, पान, लेपन, फूल, ताम्बूल, गीत, नृत्य, अब्रह्म, स्नान, आभूषण, वस्त्र, बाहन, शैय्या, आसण, सचित्त, और वस्तु। इन सत्ररहका नियम करैं। इनका अर्थ—तहां गेहूं, चना, चांवल, मूंग, मोंठ, यव, ज्वार, आदि अन्नका प्रमाण। जो मैं एते अन्न खाऊंगा, बाकी अन्न तजे। ऐसे अन्न भोजनकी संख्या राखना सो भोजन प्रमाण है ॥ १ ॥ आज षट्रस विषैं ऐते रस खाऊंगा, सो अगार है। बाकीके तजे। ऐसे षट् रसनमें तैं, जो एक-दो-तीन-च्यारि आदि रसका प्रमाण करना। सो रस नियम है॥ २ ॥ पान करवे योग्य जो जल, मही, दूध ईखरस, आदि वस्तुनका प्रमाण करना। जो ऐती वस्तु पान योग्य राखी सो अगार है सो खाऊंगा बाकी त्यागीं ऐसा प्रमाण करना, सो पान प्रमाण है ॥ ३ ॥ ऐती सुगंधी अगर, चंदन, अगरजा, तेल, फुलेल, इत्यादि इनका प्रमाण करना। जो ऐती खुशबोय राखी, बाकी तजी। तिनकी प्रतिज्ञा करनी सो लेप नियम है ॥ ४ ॥ अनेक जातिके फूलनमें तैं, फूलनकी संख्या राखनी;

जो आज ऐते फूल राखे, सो सूंघना। ढाकने, पहरने इत्यादिकका प्रमाण करना, सो फूल नियम है ॥ ५ ॥ जो ऐते ताम्बूल राखे। सो खावना, सो ताम्बूल नियम है ॥ ६ ॥ आज ऐती राग सुननी। षट् राग, छत्तीस रागनी, अरु तिनकी अनेक भार्ज्या हैं, तिनमें तैं प्रमाण करै। सो राग सुनै, बाकी नाहीं सुनै। सो राग नियम है ॥ ७ ॥ अनेक जातिके नृत्य हैं। पातरा नृत्य, वेश्या नृत्य, देवांगना नृत्य, घर-स्त्रीनका नृत्य, भाण्ड नृत्य, भवैया नृत्य, नरकों नारी बनाय नृत्य, नारी नर-रूप धर नृत्य करै, इत्यादिक अनेक हैं। तिनमें तैं प्रमाण करना। जो एते नृत्य आज देखने, बाकीका त्याग है सो नृत्य नियम है ॥ ८ ॥ पर-स्त्रीका सर्वथा त्याग तो पहिलेही था, अरु स्व-स्त्रीमें संतोष सहित प्रमाण करना। जो आज एतीवार कुशील-सेवनका प्रमाण है। बाकीका त्याग है। ऐसा प्रमाण, सो कुशील नियम है ॥ ९ ॥ आज एती बार स्नान करूंगा, बाकी तज्या सो स्नान नियम है ॥ १० ॥ आज ऐते आभूषण राखे सो पहरने बाकीका त्याग। ऐसा प्रमाण करना सो आभूषण नियम है ॥ ११ ॥ ऐते वस्त्र राखे। एते सूतके एते रेशमी, एते रौमी। इत्यादिक वस्त्रका प्रमाण करना सो वस्त्र नियम है ॥ १२ ॥ हाथी रथ घोड़ा ऊंट बैल, रोज महिष, अंबाड़ी, मियाना, पालकी नालकी तखतरवां गाड़ी इत्यादिक अनेक असवारीके भेद हैं। तिनमें ते ऐते राखीं बाकी तजीं। ऐसे अनेक पुण्य-प्रमाणमें भी संतोष करि असवारीकी संख्या राखना सो वाहन नियम है ॥ १३ ॥ सोवनेका स्थान महल पलंग बिछौना तकिया पिछौरा रजाई इत्यादिकका: प्रमाण करना सो शैय्या नियम है ॥ १४ ॥ बहुरि एती जायगा बैठना एती जगह जाना। ऐसा प्रमाण करना सो आसन प्रमाण है ॥ १५ ॥ आज एती सचित्त वस्तु खावना बाकीका त्याग सो सचित्त नियम है ॥ १६ ॥ आज एती वस्तु राखी सो लेना बाकीका त्याग है। ऐसी प्रतिज्ञा करनी, सो वस्तु नियम है ॥ १७ ॥ ऐसे ए सत्ररह नियम कहे। सो धर्मात्मा अव्रती श्रावक पर्यंतकूं करना योग्य है ॥ इनका प्रमाण होते इस जगत तैं उदासी धर्मात्मा श्रावकका चित्त विषय भोगन तैं विरक्त रहै है। तातें प्रमाद नहीं बधने पावै। इनके विचार तैं स्यात-स्यात (घड़ी-घड़ी) में धर्मकी याद-गारी रहै है। अनर्थ—दण्ड पाप छूटै है। सो जे धर्मात्मा ब्रह्मचर्य व्रतका धारी इनकूं विचारै यादि करै सो

क्रिया-ब्रूह्म है ॥ इति सत्रह नियम ॥ आगे क्रिया-ब्रूह्म धर्मात्मा श्रावक ताके इक्कीस गुण कहिए है। तहां प्रथम नाम-प्रथम लज्जावान् होय। अगर निर्लज्ज होय तो देव गुरु धर्मकी मर्यादा लोप देय। कुल धर्म तजि कुधर्मका सेवन करै। बड़े गुरुजनकी अविनय रूप प्रबृत्ति करै। माता-पिताकूं खेदकारी होय। एते दोष भए धर्मका अभाव होय। तातैं धर्मका स्वभाव लज्जा है। तातैं धर्मी, लज्जा गुणका धारी है ॥ १ ॥ अदया, सर्व पापका बीज हैं। तातैं दयावन्त होय, निर्दयी नहीं होय ॥ २ ॥ तीब्र कषाई होय, तौ लोकमें निन्दा पावै। धर्म-कल्पबृक्ष विनशि जाय। तातैं शांत स्वभावी होय, क्रोधादि कषाय-जाकें नहीं होय ॥ ३ ॥ केवली सर्वज्ञ-भाषित धर्मका श्रद्धान सहित, जिन धर्मका उपदेशक होय। स्वेच्छाचारी, मिथ्या-धर्मका उपदेशक नहीं होय ॥ ४ ॥ पर-दोषनका ढांकनहारा होय। अपने औगुणका प्रगट करनहारा होय ॥ ५ ॥ परोपकारी होय। पर-द्वेषी नहीं होय ॥ ६ ॥ सौम्य-मूर्ति होय। जाके देखे प्रीति उपजै। भयानीक आकार नहीं होय ॥ ७ ॥ गुण-ग्राही होय। औगुण-ग्राही नहीं होय ॥ ८ ॥ मार्दव धर्मका धारी, यथायोग्य विनयकूं लिये होय ॥ ९ ॥ सर्व जीवनकूं, आप समान मानै। सर्व तैं मैत्री-भाव लिये होय। द्वेष-भाव रूप काहू तैं नहीं होय ॥ १० ॥ न्यायपक्षका धारी होय। अन्याय पक्षका पोखता नहीं होय ॥ ११ ॥ मिष्ट मधुर स्वरका भाषणहारा होय। कठोर वचनी नहीं होय ॥ १२ ॥ गंभीर स्वभाव सहित, दीर्घ विचारी होय। बालकवत् सामान्य विचारी नहीं होय ॥ १३ ॥ विशेष ज्ञानी होय। कोई कुवादीनकी खोटी नय-युक्ति तैं नहीं डिगै। आप अनेक सद्युक्ति सद्दृष्टान्त सच्चे शास्त्र-न्याय तैं बताय, कुवादीनका खण्डनहारा, भला ज्ञानी होय ॥ १४ ॥ सर्वकौं सुखी देख सुख पावनहारा। सज्जन स्वभावी होय। दुर्जन अदेखा नहीं होय ॥ १५ ॥ दया धर्म अङ्गका धारी, दान-पूजादि गुण सहित धर्मात्मा होय। पापी नहीं होय ॥ १६ ॥ भली बुद्धिका धारी होय। कुबुद्धि धारी नहीं होय ॥ १७ ॥ योग्यायोग्यका जाननहारा होय, मूर्ख नहीं होय ॥ १८ ॥ दीनता उद्धता रहित, मध्यम—स्वभावी होय ॥ १९ ॥ सहज ही विनयवान् होय अविनयी नहीं होय ॥ २० ॥ पापारम्भ क्रिया तैं रहित, शुभाचारी होय ॥ २१ ॥ ऐसे कहे गुण सहित होय, सो क्रिया ब्रूह्म जानना। इति इक्कीस क्रिया ब्रूह्मके गुण ॥ आगे

क्रिया ब्रूह्मके भेद, पर मतमें भी कहे हैं, सो कहिए हैं। जो ये गुण होंय सो क्रिया ब्रूह्म है। ताकी क्रिया कहैं हैं। सो ही कहिये है–"उक्तंच मार्कण्डेयजी कृत सुमिति शास्त्र"–जे उत्तम ब्राह्मण होंय, सो एती क्रिया करैं। सो वताईये है। जहां अनछान्या पानी पीवै, तो मदिरा समान दोष होय। अनगाले जलमें स्नान करै, तो काया अशुचि होय। अनगाले जलमें रसोई करै, तो सात भव जलचर जीव होय। तातें उत्तम द्विजकों अनगाल्ये जलतैं क्रिया करना मना हैं। ऐसा जानना। आगे व्यास वचन महाभारतसे सातवें खण्डमें कह्या है। ब्राह्मणकूं शीलव्रतही शृङ्गार है। शील विना पूजा जप तप सर्व नष्टकारी हैं। फलदाता नाहीं। तातें उत्तम गुणका लोभी शील सहित रहै है। और ब्राह्मण, दया पाल करि गमन करै है। आप समान सर्व जीवन कौं जानि तिनकी रक्षा करवे निमित्त नीची दृष्टि किये चलै। जो कीड़ी कुंथुवादि अपनी दृष्टिमें आवैं तो बचावता धरती देखता या विधिसूं गमन करै। बिना देखै पांव नहीं धरै। भोगी जीवनके सोवनेका स्थान जो पलंग तापै नहीं सोवै। भूमि पै सोवै। और जातैं राग भाव वधै, काम वधै, ऐसा वस्त्र नहीं राखै। राग रहित वैराग्यकों कारण ऐसा वस्त्र पहिरै। शरीरकूं चन्दन अरगजा तैल फुलेल इतरादिक सुगंधित वस्तु नहीं लगावै ताम्बूल पान नहीं खाय। और संसारके मोही प्रमादी कुशीलवान् जीव तिनकी सी नाईं निशंक होय निद्रा नहीं करै। कामी पुरुषकी नाईं विषयनमें मोहित नहीं होय। भोगाभिलाषी कामी पुरुष तिनके मुखसूं स्त्रींनकी कथा राग भाव सहित नहीं सुनै। अपने मुख तैं काम कथा स्त्रीनके गुण रूप भोगकी कथा नहीं कहै। क्रोध मान माया लोभ तजिवेका उपदेश औरनकूं देय। अपने तन पै शृङ्गार नहीं करै। हस्ती घोटक पालकी रथादि बाहन पै नहीं चढ़ै। दयाके हेतु पांव प्यादा धरती शोधता चलै। दन्त नहीं धोवै। इत्यादिक अपना ब्रूह्मपद जो ब्रूह्मचर्य ताकी रक्षा करता भली क्रिया करै। प्रभात व शाम दो वखत, संध्या नहीं चूकै। इन क्रियान सहित होय सो ब्रूहम सत्पुरुष करि सुश्रूषा योग्य होय है। ए लक्षण क्रिया ब्रूह्मके कहे। और इन क्रिया रहित होय सो क्रिया ब्रूह्म नाहीं। जो कुशील भाव क्रोध मान माया लोभकूं लिये अहंकार ममकार सहित होय सो शीलवान् करि सुश्रूषा नहीं पावै। दोष सहित है। ए गुण जामें नहीं होंय सो कुल ब्राह्मण

है क्रिया ब्रूह्म नाहीं ऐसा जानना। इति व्यास वचन॥ आगे मार्कण्डेय कृत सुमति शास्त्र तामैं ऐसा कह्या है। कि जो दिनके प्रथम पहरमें भोजन करै सो देव भोजन है। दूसरे पहरमें भोजन करै सो ऋषीश्वरका भोजन है। तीसरे पहरमें भोजन करै सो पितृनका भोजन करै। चौथे पहरमें भोजन करै सो दैत्यनका भोजन करै। तातें दिनका अष्टम भाग च्यारि घड़ी बाकी रहै। जब सूर्यकी कांति मंद होय। तब तैं उत्तम आचारी ब्रह्मचर्यका धारी भोजन नहीं करै। अरु कदाचित् करै तो अपने ब्रह्मचर्य पदकूं दूषित करै। ऐसा जानना। आगे शिव पुराणमैं कह्या है। जो उत्तम ब्रूह्मव्रती एती वस्तु नहीं खाय। बैंगन गाजर मूली आदी सूरन मधु मद्य मांस इत्यादि अभक्ष्य वस्तु नहीं खावै। ब्रह्मव्रत धारी उत्तम जीव नहीं खाय और कदाचित् लोभ धारि के खाय तौ जो बारह वर्ष दान पूजा जप तप किये तिनका फल मिटि जाय। तातें ब्रूह्म भक्त एती वस्तु नहीं खांय आगे और पुराणनमें भी कह्या है। जो कृष्ण महाराज, युधिष्ठिरजी सूं कहैं हैं। भो युधिष्ठिर! मेरा भक्त होयके ब्रह्मव्रती कंद—मूल खाय। तो दया पूजा दान, इन्द्रिय—मनका जीतना, ये सर्व क्रिया बिफल होय। तातें मेरे भक्त कौं कन्द—मूल तजना योग्य है। और काश्यप मुनिके वचन हैं। जो ब्रूह्मभक्त पूजा करै तौ तब सुफल है। जब कन्द—मूल नहीं खाय। याके खाये से सर्व क्रिया नष्ट होय। और शिव-पुराण में कह्या है। जो दया समान दूसरा तीर्थ नाहीं। दया भाव है, सो ही एक भला तीर्थ है दया बिना तीर्थफल नाहीं ऐसे कहे जो अनेक धर्म अंग सो इनकूं पालै। वही उत्तम धर्मका धारी क्रियाब्रह्म है। इति क्रियाब्रूह्म। आगे कुलब्रूह्म के दशभेद अन्यमत संबन्धी कहे हैं सो ही बताईये है—

काव्य—सुरो मुनीश्वरो विप्रो, वैश्यः क्षत्रिय शूद्रको। विजातिपशुमातंग,—म्लेच्छाश्च दश जातयः॥

अर्थ—देव जाति, मुनि जाति, विप्र जाति, वैश्य जाति, क्षत्रिय जाति, शूद्र जाति, विजाति, पशु जाति, म्लेच्छ जाति, मातंग जाति ये दश भेद व्यास भाषित मत्स्यपुराण अनुसार हैं। इनका अर्थ—जहां तत्त्व-ज्ञान विषैं प्रवीण होय। अपने आत्म कल्याणका अर्थी होय। निर्हिंसक क्रिया का करनहारा होय। बहु आरंभ—परिग्रह का त्यागी संतोषी होय। त्रिकाल संध्या की क्रिया में सावधान होय। आपा—परके ज्ञान

का धारी होय। आत्म—तत्त्ववेता होय। इत्यादिक गुण सहित होय सो देव जातिका ब्राह्मण है ॥ १ ॥ और जो उत्तम तीन कुलका भोजन करनहारा होय। नगर का वास तजि बनका निवासी होय। तीनकाल आत्मध्यान में प्रवर्तनहारा होय। इत्यादिक गुणसहित होय सो ऋषीश्वर जातिका ब्राह्मण है ॥ २ ॥ और अनेक प्राशुक सुगंध द्रव्य मिलाय, अग्निमें खेवै-होमै। अग्नि कबहूं बुझने नहीं देय। होम-क्रियामें सावधान होय। दयारूप धर्म जानता होय। देवगुरु पूजामें विनयवान होय। अपने भोजनमें तैं अथिति कौं देय, ऐसे अतिथि व्रतका धारी होय। गृहस्थके षट् कर्म-क्रियामें सावधान होय। ऐसे गुणसहित जो होय, सो विप्र जातिका ब्राह्मण है ॥ ३ ॥ और जे हस्ती, घोटक, रथादिककी असवारी विषैं प्रवीण होय। युद्ध करवैं को जाकैं चाह होय। युद्ध को अनेक-कला तीर, गोली खड्ग पटा सेल्ह, धूप, बांकि, खंजर, छुरी, कटारी इत्यादिक शस्त्र-कलामें सावधान होय। लड़नेमें मरने कूं नहीं डरता होय। मनका शूरवीर होय। बड़े आरंभ, राज्य-संपदाका भोगी होय। जो इन गुणन सहित होय सो क्षत्रिय जातिका ब्राह्मण है ॥ ४ ॥ ब्राह्मणके कुलमें तो उपज्या होय अरु खेती करता होय। गाय महिष बृषभादि पशूनके पालबेकी कलामें प्रवीण होय। आचार रहित खान पानका करनहारा होय। इन लक्षण सहित होय सो शूद्र जातिका ब्राह्मण है ॥ ५ ॥ ब्राह्मणके कुलमें उपज्या होय अरु इन वाणिज्य व्यापारकी चतुराई जानता होय। वस्त्र परीक्षा सोना चांदीकी परीक्षा जानता होय। रुपया मुहुर रत्नकी परीक्षा जानता होय। अन्नादिक लेन देन में सावधान होय। अनेक लेखे करवेकी जो कला व्याज फैलाना आदि ज्ञान सहित आजीविका करता होय सो वैश्य जातिका ब्राह्मण है ॥ ६ ॥ ब्राह्मण कुलमें तो अवतार लिया होय अरु पराई निंदा करनहारा होय। पर दोषका देखनहारा होय। अनेक पर स्त्रीका भोगनहारा पशु समान कुशीलवान् होय। पंचेन्द्रिय विषयमें लोलुपी होय। अपना यश, अपने मुख तैं करता होय। अपनी संतोष-वृत्ति कं तज, द्रव्यके लोभ कूं अनेक स्वांग धरि, छल-बल करि, धन पैदा करता होय। अनेक गावना बजावना, नृत्य करनादि कलाकर आजीविका करता होय। अनेक यंत्र, मंत्र, तंत्रादिके चमत्कार लोगन कूं दिखाय, अपने कुटुम्बका पालन

करता होय। इन लक्षण सहित होय। ताकूं विजाति ब्राह्मण कहिये ॥७॥ ब्राह्मणके कुलमें तो अवतार लिया होय, अरु खावे योग्य वस्तु अरु ऊंच कुली मनुष्यके नहीं खावे योग्य वस्तु विषैं, विचार रहित होय। क्रोध वचन, गाली वचन श्राप वचन कुफर जो भण्ड वचन इत्यादिक दुर्वचन; पर पीड़ाकारी, पापमई, बोलनेका स्वभाव होय। भली-क्रिया रहित होय। महा प्रमादी, बहुत सोवनेका स्वभाव होय। इत्यादिक लक्षण जामें होंय, सो पशु जातिका ब्राह्मण है ॥ ८ ॥ ब्राह्मण कुलमें तो अवतार धस्या होय; अरु नदी, तालाब, बावड़ीन की क्रीड़ा-तैरना-कूदना, ताकूं भला लागता होय। मद्य-मांस भक्षण करता होय। बहुत हिंसा करनहारा होय। दयाधर्म शुभाचार रहित होय। इत्यादिक लक्षण जामें होंय सो म्लेच्छ जातिका ब्राह्मण है ॥ ९ ॥ और महा हिंसाका करनहारा होय। मनुष्य-पशूके मारवेकूं निर्दयी होय। भली-भली द्विज योग्य क्रिया, तिनकरि रहित होय। हिताहित विचार करि, रहित होय। पूजा, दान, जप, तप, आदि धर्म-क्रिया करि शून्य होय। पाप परणति सहित होय। इन आदि लक्षण सहित, सो मातंग जातिका ब्राह्मण है ॥ १० ॥ ऐसे ब्राह्मणके दश भेद कहे सो आचारके योग तैं कहे। परन्तु ब्राह्मणके कुलमें उपज्या है, सो जिस कुलमें उपज्या होय, सो ही नाम कहना सो क्रिया चाहे जैसी करो। ब्राह्मणमें उपज्या, ताकौं ब्राह्मण कहना सो कुल-ब्रह्म है। या प्रकार स्वभाव-ब्रह्म, क्रिया ब्रह्म, त्याग ब्रह्म, कुल ब्रह्म ये च्यारि ब्रह्मके भेद कहे। सो सातवीं प्रतिमा धारी, च्यारि कुलका उपज्या धर्मात्मा श्रावक, सर्व स्त्रीका त्यागी, सौम्य मूर्ति, ये सातवीं प्रतिमा धारै। सो ये त्याग-ब्रह्म जानना ॥

इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, श्रावक भेद रूप एकादश प्रतिमा विषैं, सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमाके भेद; शील महिमा, भोजनके सात अंतराय, सत्रह नियम, श्रावकके इक्कीस गुण, अन्य-मत संबंधी केतीक, सीख सहित क्रिया-ब्रह्म भेद, दश-भेद कुलब्रह्म, कथन वर्णनो नाम सैंतीसवां पर्व सम्पूर्णम् ॥ ३७ ॥

आगे अष्टमी प्रतिमाका कथन लिखिये है। तहां अष्टमी प्रतिमा, आरंभत्याग है। सो कोई भव्य, जब अष्टमी प्रतिमा धारै। तब पापारंभ तैं उदास होय, वह मोक्षाभिलाषी ऐसा विचारै। जो इस संसारमें, गृहा-

रंभके पाप तैं मोहके वशीभूत भया यह आत्मा, नरक-दुखमें अपनी आत्मा डुबोवे है। और जिनतैं मोहबुद्धि करि, पाप-भार शिर पै धरै है। सो पाप फल आये, इन मोहीनका नाम भी नहीं दीखेगा। द्रव्य खाय-खाय, सर्व अपने-अपने मारग लागैंगे। अरु तिन पापनका फल, मोकौं ही भोगना पड़ेगा। जैसे एक चोरके घरमें आप, माता, पिता, स्त्री, पुत्र ये पांच आदमी थे। ये पांचों कौं ही पाप-फल तैं भूखों मरते, अन्न विना तीन दिन भये। तव पुत्र ने रुदिन करि कह्या। हे पिता! अब हम सब घर-जन अन्न विना मरैं हैं। भोजन विना तीन दिवस भये, सो दुखी हैं। तातैं अन्न लाय देव। तव चोर ने कही। हे पुत्र! बहुत फिरौं हों, परन्तु पाप-उदय तैं, कछू मिलता नाहीं। अब तुम धीरज धरो, मैं और जाऊं हूं। सो ये चोर कुटुम्बके मोह तैं चोरी कौं गया। एक घरमें खीर होय थी सो इस चोर ने अपनो चतुरता तैं, खीरका वासन चुरा लिया। सो ल्याय घरमें आया। कुटुम्बके आगे धरी सो पांच थालियोंमें पांचों ने परोसी। तव सव ने कही भोजन तो भला ल्याया। परन्तु मिष्टान्न होता तौ भला था। तव चोर-कला-वारे ने कही। तुमने कहा है तौ मैं मिष्टान्न भी ल्याऊं हूं। तव यह चोर तौ मिष्टान्न कौं गया। सो वड़ो देर लागी। सो इनको थिरता नहीं रही। सो अपनी-अपनी थालीकी खीर भूखके मारे खाय गये। वाकी जो चोर गया था सो ताका थाल ढांक रख्या। सो एतेमें एक मिजवान आया सो चोरी वारेका खीरका थाल मिजवानके आगे धर्या। सो मिजवान ने खाया। तव वह चोर किसीका मिष्टान्न चुराके आया सो देखे तो खीर नहीं। घर वारों कों पूछी तव उन्होंने कही मिजवान आया ताने खाई। ये चोर तीन दिनका भूखा दुखी है। एतेमें खीर अरु मिष्टन्नकी खोज करते कोतवाल चोर कूं हेरते आए सो कोतवाल ने इस चोर कूं पकड़्या। सो घर-जन अरु मिजवान खीर खावनहारे सर्व भाग गये। या चोरकी मुसकैं वँधीं। सो नाना प्रकारकी मार चोर ने भोगी महा दुखी भया। तैसे ही कुटुम्बके निमित्त पापारंभ करौं हौं सो चोरकी नांईं मोकूं दुख भोगना पड़ेगा। ए कुटुम्ब दुखके आए सर्व जाते रहेंगे। ऐसे ए शिव-सुखका अभिलाषी संसार-भोगन तैं उदास, ऐसा विचारै। कुटुम्ब तैं अरु गृहारंभ तैं ममत्व छांड़ि, पीछे घरमें अपने पुत्रादिक कूं विवेकी देख

जो यह घर-भार चलायवे कूं समर्थ, ताहि बुलाय कैं, प्रथम तौ ताकौं हित-मित हितोपदेश देय, संतोषित करै। पीछे अपने चित्तका-रहस्य बताय, ताकौं कहै। हे भव्य! अबलौं तो घर-भार हमने चलाया। अब तो-कौं सपूत, सज्जन-अंगी, विवेकी, विनयवान् देख, बड़ा हर्ष भया। हमारी गृह-पालनकी चिन्ता गई। सो हे धर्मी! अब तुम इस कुटुम्बकी रक्षा करौ। न्याय पूर्वक धनोपार्जन करौ। धर्म सेवन कर, पर-भव सुधारो। ऐसा कहि, पीछे सर्व जाति, कुटुम्ब, पंचन कूं बुलाय, विनय सहित हित-मित वचन कहै। कि हे पंच हो! अब तांईं हमने, कुटुम्बके संग तैं आरंभ किया। अब हमारा मनोरथ, परभव सुखके निमित्त, आरंभ रहित धर्म-सेवनका है। तुम सर्व भाईयनके सहाय तैं, यह भव सुधर्‌या। तुम्हारा दिया धन-यश पाया। अब इस गृहका भार, इस पुत्र कौं सौंप्या है सो अब तुम, याकी प्रतिपालना करो। जैसे सर्व भाई, मोतैं धर्म स्नेह करि, मेरी प्रतिपालना करी। तैसे ही याकी करौ। जैसे प्रयोजन पाय, मोसे आज्ञा करौ थे। तैसे इस पर करोगे। जैसे मो-भूले कूं क्षमा भाव करि शिक्षा देय थे तैंसे याकूं शिक्षा देय, प्रवीण करोगे। तातैं अब मैं तुम सर्व भाईयन तैं ऐसी विन्ती करौं हौं। जो अब तांईं आरंभ-प्रारंभ विषैं मोपै कृपा करि, मोकौं यादि करकैं मेरा नाम लेय नेवता-बुलावा भेजो थे सो अब पंचायती व विवाहादिकके आरंभ विषै याकौं याद करि याके नाम न्योता-बुलावा भेजोगे। अब मैं गृह आरंभ तैं तुम सर्व भाईयनकी साक्षी तैं न्यारा हौं। इत्यादिक सर्व पंचन तैं शुभवचन कहै। तव सर्व पंच इनकी धीरता देख बहुत प्रसंशा कर, इनका कह्या करैं। तिस ही दिन तैं आप पापारंभका त्यागी भया। पापारंभ तैं न्यारा होय घर विषैं तिष्ठता धर्म-साधन करै। घर हीमें स्तुति करना पूजा दान ध्यानसंयम करता; काल गुमावै। भोजन समय घर-जन बुलावैं तब भोजन कौं जाय। अरु अपने पदस्थ-प्रमाण परिग्रह अल्प राखै। सो आरंभ त्यागी आठवींप्रतिमाका धारी है। इति आठवीं प्रतिमा ॥ ८ ॥ आगे नववीं प्रतिमाका स्वरूप कहिये है। अब नववीं परिग्रह-त्याग प्रतिमा विषैं सर्व परिग्रह-आरंभके ममत्वका त्यागी होय। आगे अष्टम प्रतिमामें अल्प परिग्रहका त्यागी नहीं था। सामान्य परिग्रह था। सो अब सर्व परिग्रह त्याग कर एकान्त स्थान विषैं धर्मध्यान सेवन करै। प्रथम दिन कोई नेवता

दे जाय ताके घर भोजन करै। अपना घर तथा पराया घर एकसा देखैं। पाद्य पक्षेवरी राखै न्यौता जीमें। सो महा सौम्य मूर्ति धारी दयाधर्मपालक है। ऐसे गुण नववीं प्रतिमा धारकके जानना। इति नववीं परिग्रह त्याग प्रतिमा ॥ ९ ॥ आगे दशवीं प्रतिमाका स्वरूप कहिये है। अब अनुमति जो उपदेश सो दशवीं प्रतिमा का धारी पापारंभके उपदेशका त्यागी है सो भोजल-मात्र भी कहके नहीं करै। यह न्यौता नहीं मानै। भोजन समय कोई बुलाय ले जाय तौ भोजन करै। न्यौता नहीं जाय। बिना न्यौता जीमें सो अनुमति त्यागी है। इति दशवीं प्रतिमा ॥ १० ॥ आगे ग्यारहवीं प्रतिमाके धारी श्रावक तिनके दोय भेद हैं। एक छुल्लक दूसरा ऐलक। तहां कटि-बंधन अरु लँगोटमात्र परिग्रह राखनेहारा बनो-विहारी उदंड (अनुदिष्ट) आहार करै। अरु धरती बिछायवे कूं आसमान ओढ़वे कूं महा दयालु मुनि समान चित्तका धारी; नग्न बिना इक्कीस परिषहका जीतनहारा निर्मल आचारी कमण्डल पीछीका राखनहारा यती समान व्रत का धारी मुनि पदका अभिलाषी इस धर्मात्मा कूं कोई सूक्ष्म जातिका अंश लिये शङ्का-रूप परणति है। सूक्ष्म अंश काम विकारके मन, बचन, कायमें, कोई जातिके भंगा लिये हैं। जो केवली गम्य हैं। आपकौं भासै हैं, तातें ये नगन-मुद्रा नहीं धारै। ये सूक्ष्म काम विकार गये, यती पद लेवेके योग्य होयगा। ऐसा श्रावक, सो ऐलक श्रावक है सो यह ऐलक श्रावकका पद, तीन कुलके उपजे भव्यात्माकूं होय है। शूद्रकूं नाहीं होय है ॥ १ ॥ छुल्लक पद है सो नीच कुल, तथा ऊंच कुल दोऊ जातिकूं होय है। सो छुल्लकके पास, कछू कपड़ा मात्र परिग्रह होय। एक दुपट्टा, एक शिर पै फैंटा राखै। सो नहीं तौ बहुत बारीक-मुलायम, तातैं सराग भाव होंय। अरु नहीं बहुत दृढ़, तिनमें जीव पड़ैं। मलीन भये रंक सा दीखै, ऐसे भी नाहीं। मध्यम भाव धरैं, राग रहित, ऐसे वस्त्र राखै सो जे शूद्र जातिके छुल्लक होंय। सो शूद्रके दोय भेद हैं। एक स्पर्श शूद्र, दूसरा अस्पर्श शूद्र। तहां धोबी, नाई, बढ़ई, दर्जी इत्यादिक जिनके छूये लोकमें ग्लानि नाहीं सो स्पर्स शूद्र है ॥ १ ॥ जहां भंगी, चाण्डाल, चमार, कोली इन आदिक जिनकूं छूये लौकिकमें ग्लानि होय, स्नान किये शुद्ध होंय। सो अस्पर्श शूद्र हैं ॥ २ ॥ सो इन दोऊनमें तैं, स्पर्श-शूद्रकौं तो छुल्लक

व्रत होय, और अस्पर्श शूद्रकूं व्रत नाहीं होय। सम्यग्दर्शनादिक गुण होय हैं सो तहां तीन ऊंच कुलका छुल्लक श्रावक तौ भोजनकौं जाय, सो गृहस्थके चौकेमें ही भोजन करै। और शूद्र जातिका छुल्लक है, सो गृहस्थके भोजन स्थानमें नहीं जाय। क्योंकि याका कुल, हीन है तातैं ये धर्मात्मा, संसारसे उदासीन, व्रतका धारी, धर्म-मर्यादाका जाननहारा, पुण्य-फलका लोभी, परभवके सुधारवेकी है अभिलाषा जाकैं, परम्पराय मोक्षका इच्छुक जन्म-मरण तैं भय भीत भया है चित्त जाका ऐसा सौम्य स्वभावी- धर्म मूर्ति, मार्दव-धर्मका साधनेहारा यह नीच कुली श्रावक अपना नीच कुल प्रगट करवेकूं, एक लोहेका पात्र भोजन करवेकूं, अपने पास राखै। जब कोई धर्मात्मा श्रावक इस छुल्लककौं भोजन निमित्त अपने घर ल्यावै। तब यह शूद्र कुली धर्मात्मा याके संग तहां तांई जाय जहां तांई काहूका अटक नहीं होय। पीछे चौकमें खड़ा होय रहे। तब श्रावक इनकूं उत्तम जानि आगे बुलावै। तब यह धर्मी चौकमें ही तिष्ठै, अरु लोहका पात्र दिखावै। तब लोहके पात्रकूं देख कैं दाता जानै, जो यह शूद्र जाति है। तातैं यह धर्मात्मा ऊंचे नहीं आया तब दाता श्रावक, इस छुल्लककूं भले आदर तैं, विनय सहित, अनुमोदना करता, हर्ष सहित भोजन देय। सो उस बाखर (घर) में च्यार, दो, एक घर श्रावकनके होंय, तौ थोड़ा-थोड़ा सर्व घर तैं भोजन लेय। नाहीं होंय तौ दोय घरका एक घरका भोजन करै। अपना कुल छिपावै नाहीं। यह उत्तम व्रतका धारी श्रावक है। ऐसे ऊंच कुल तथा स्पर्श नीच कुल दोय ही कुलमें यह श्रावक पद होय है॥ २॥ और ऐलक पद ऊंच कुलीकूं ही होय है। यह उत्कृष्ट श्रावक पद है। ऐसे सातवीं प्रतिमा तैं लगाय ग्यारहवीं पर्यन्त भेद कहे। सो ए त्याग ब्रह्मके भेद जानना। जैसा-जैसा त्याग, जिस-जिस स्थान पै भया, सो-सो नाम पाया। सो श्रावकके उत्कृष्ट त्यागकी हद, ऐलक लँगोट-मात्र परिग्रह धारी की है। याके आगे श्रावक भेद नाहीं। इसके पीछे मुनिका ही पद है। तातें सातवीं प्रतिमा तैं लगाय ग्यारहवीं प्रतिमा पर्यंत श्रावककौं ब्रह्मचर्य पदवी है। पीछे लँगोटी-परिग्रह परिहार भये, यतीका पद होय है। तातैं भरत-क्षेत्रका इन्द्र, भरतनाथ, आदिनाथका बड़ा पुत्र, भरत चक्री, महा धर्मात्मा, ताने परम्पराय धर्म-मर्याद चलायवेकूं स्थापे ऐसे ब्रह्म भेद, सो कुल ब्रह्म-

कहिये। या अवसर्पिणीकालके आदि, नव कोड़ा-कोड़ी सागर काल पर्यन्त तौ भोग-भूमि वर्ती। तहां वर्ण भेद नाहीं, सर्व एकसे। पीछे चौदहवें कुलकर नाभिराजा भये। तिनके कुल-मण्डन, श्री आदिनाथ पुत्र भये, सो इनने सर्व कर्म-भूमिका उपदेश दिया। क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, तीन, वर्ण स्थाप संसारी-मार्ग बताया। अरु इनके पुत्र भरतने, धर्मकी प्रवृर्त्ति चलावेकूं, ब्राह्मण-कुल थाप्या। सो च्यारि वर्ण जानना। अब काल-दोष तैं, सर्व कुलनका आचार हीन भया। तातें ब्रह्म-क्रिया दयाबिना भई। जीव अनेक क्रिया रूप भये। परन्तु कुल भेद नहीं गया। अनेक प्रकार आचार होय, तौ भी कुल-ब्रह्म कह्या सो जगमें प्रगट ही है ॥ १ ॥ कुल तौ कैसाही होय अरु क्रिया आचार जाका दया सहित उत्तम शीलादिक गुण सहित होय। सो क्रिया ब्रह्म कहिये ॥ २॥ स्त्री आदि परिग्रहका त्यागी होय सो त्याग ब्रह्म कहिये ॥ ३ ॥ चैतन्य गुण सहित, अमूर्ति, जीव पदार्थ, सो स्वभाव ब्रह्म है॥ ४ ॥ ये च्यारि भेद, ब्रह्मके कहे। सो विवेकी उत्तम पुरुषनकूं सबका रहस्य धारण करना योग्य है।

इति श्री सुदृष्टितरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये अष्टमी प्रतिमातैं लगाय ग्यारहवीं प्रतिमा पर्यन्त, कथन वर्णनो नाम, अड़तीसवां पर्व सम्पूर्णम् ॥ ३८ ॥

ऐसे यह श्रावक-धर्म कह्या। और मुनि धर्मके अष्टाविंशति (२८) मूल गुण हैं। ताका स्वरूप कह आये सो यह मुनि-श्रावकका धर्म, परम्पराय मोक्ष फल प्रगट करे है। याका तुरंत फल तौ देव-लोककी विभूति सहित नाना-प्रकार इन्द्रिय-जनित भोग हैं। जाकों जेता काल संसारमें रहना होय; सो जीव श्रावक धर्म तैं मनुष्य-देवके सुख पावै। पीछे भव-स्थिति पूर्ण भये, मुनि-धर्मका साधन कर, मोक्ष पद पावै है। तातें जो कोई भव्यकूं, इन्द्रिय सुखका लोभ होय सो इस श्रावक धर्मका साधन करौ और जे भव्य निकट संसारी अतीन्द्रिय सुख चाहें सो मुनि-धर्म आदरौ। ऐसा यह मुनि-श्रावकका धर्म भव्य जीवनकूं सदा-काल, मङ्गलकारी होऊ। यह सुदृष्टितरंगणी नाम ग्रन्थ है। सो या विषैं प्रथम तो गेय-हेय-उपादेयका कथन है सो विवेकी अपना हित जानि, हेय-गेय-उपादेय करौ केताक कथन या विषैं, विवेककी वृद्धिके निमित्त उपदेश रूप है। ताके रहस्यकौं जानि, धर्मात्मा अपना कल्याण करौ। अब यहां इस ग्रन्थका करता जैन-शास्त्रके

अर्थकूं अगाधि जानि, अपनी बुद्धि सामान्यता रूप, जानता भया। जो यह जिन-बचनका अर्थ तो, अपार है, याके सम्पूर्ण व्याख्यान करवेकौं, गणधर देव भी समर्थ नाहीं। तो हमसे किंचित् बुद्धि-धनके धारीन तैं, सर्व अर्थ कैसे कह्या जाय ? ऐसा जानि, इस ग्रन्थके पूरण करवेको है अभिलाषा जाकैं। सो अन्तमें मङ्गल होनेके निमित्त, महान् पुरुषनके नाम, जिनके कुल-सुमरण होवे करि, मंगल होय है। सो ऐसे तीर्थंकरादि त्रेसठ शलाका पुरुषके नाम, पुण्यके कारण हैं। तातैं यहां प्रथम चौबीस तीर्थंकर, तिनके नाम कहिये हैं—ऋषभनाथ, अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, पद्मनाथ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थनाथ, अरहनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाम, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, और महावीर स्वामी ये चौबीस तीर्थंकर-जिन, अवसर्पिणी कालके तीर्थ हैं॥ आगे चौबीस-जिनके पिताके नाम-नाभिराजा, जितशत्रु जयतार सुवीर, मेघ, धरण सुप्रतिष्ठित, महासेन, सुग्रीव दृढ़रथ विमल वासुदेव जयति धम सिद्धसेन, भानु विश्वसेन, सूर्य, सुन्दरसेन, कुंभ, यशोमति, विजयरथ समुद्रविजय अश्वसेन, और सिद्धारथ राजा। ये चौबीस, प्रजाके, प्रतिपालक, महान् राजेन्द्र भये। सो तीर्थंकर रूपी दिनकर (सूर्य) के उदय करवेकौं उदयाचल पर्वत समान जानना। इति जिन पिता। अब जिन माताका, नाम-मरुदेवी, विजयादेवी, श्रीषेणादेवी, सिद्धार्थादेवी, मंगलादेवी, सुसीमादेवी, पृथ्वीदेवी, सुलक्षणादेवी रामीदेवी सुनन्दादेवी विमलादेवी जयादेवी रामादेवी, सूर्यादेवी, सुव्रतदेवी एलादेवी श्रीमतीदेवी, सुमित्रादेवी, सरस्वतीदेवी, वामादेवी, विमलादेवी, शिवादेवी, वामादेवी, और त्रिशलादेवी, ये चौबीस महादेवी, परम-पवित्र जगत गुरुकी माता सो जगतकी माता, पर सती भगवान् रूपी सूर्यके जन्म देवेकूं पूरव दिशा समान, तिनके नाम भव्यनकौं मंगल करौ। ये माता, जगतपति भगवान् रूपी रत्नके उपजायवेकूं, रतन-खानि हैं। ये चौबीस जिनकी माताके नामकी माला कही॥ आगे चौबीस जिनकी कायकी ऊंचाई कहिने हैं। पांचसौ धनुष, साढ़े चार सौ, चार सौ, साढ़े तीन सौ, तीन सौ, ढ़ाई सौ, दोय सौ, डेढ़ सौ, एक सौ, नव्वै, अस्सी, सत्तरि, साठ, पचास, पैंतालीस, चालीस, पैंतीस, तीस, पच्चीस, बीस पन्द्रह दश नव

हाथ और सात हाथ ये चौबीस जिनके शरीरकी उंचाई अनुक्रम तैं कही ॥ अब चौबीस-जिनके प्रतिबिंब पहिचानवेंकौं चिन्ह कहिये हैं—आदिनाथका बैलका चिन्ह। और जिनोंका अनुक्रम तैं कहिये हैं—हस्ती घोटक कपि [बन्दर), कोक ('चकवा) लाल कमल, सांथिया, चन्द्रमा, मगर, कल्प वृक्ष, गैंडा महिष सूकर सेही, वज्रदण्ड, हिरण बकरा मछलो, स्वण कलश, कछवा कनक कमल, शङ्ख, सर्प और सिंह। ये चौबीस जिनके चिन्ह कहे। सो एक हजार आठ चिन्ह, सर्व शरीर अंगोपांगमें यथा-योग्य स्थानपर होय हैं। अरु ए चिन्ह जो प्रतिबिम्बके सिंहासनमें लिखिए हैं। सो भगवान्‌के दाहने चरण विषैं जानना। जैसे आदिदेवके चरणमें वृषभका चिन्ह है। तैसे ही सर्व जिनके पांवनमें जानना। इति जिन-चिन्ह ॥ आगे चौबीस जिनके शरीरका वर्ण कहिए है। तहां चन्द्रप्रभु अरु पुष्पदन्त ए दोय जिन, शुक्ल वर्ण भए। अरु मुनिसुव्रत स्वामी, अंजन-गिरि समान श्याम वर्ण है। नेमिनाथ जिन मोर कंठ समान हरित तन धारी हैं। और पद्मप्रभु, रक्त कमल समान तन धारी हैं। और बारहवें वासुपूज्य जिन, टेसूके फूल समान तन धारी है। और सातवें सुपार्श्वनाथ जिनकी काय, वैडूर्य मणि समान, हरित वर्ण है। और पार्श्वनाथ-जिनकी काय, सजल मेघ घटा समान, श्याम वर्ण है। और बाकी षोड़स जिनके शरीर, ताये स्वर्ण समान वर्ण के हैं। ये चौबीस-जिनके तनका वर्ण कह्या। अब आगे ये जिन, पूर्व-भवमें जो मनुष्य थे सो वह नाम कहिये हैं। वृषभदेव पूरव-भवमें वज्रनाभि चक्रवर्ती थे और शेष-जिनके पूर्व-भवके नाम क्रम करि कहिये हैं, विमल राजा, विमल वाहन, महाबल भूप, अतिबल, अपराजित, नंदसेन राजा, पद्म, महापद्म, पद्म गुल्म, नील गुल्म, पद्मोत्तर, पद्मासन, पद्म, दशरथ, मेघरथ, सिंहरथ, धनपति, वैश्रवण, श्रीधर्म, सिद्धारथ, सुप्रतिष्ठित, आनन्दराय, और अन्तिम जिन महावीर स्वामी, पूर्व-भवमें नन्द राजा थे। ये सर्व राजोंमें, आदि देवका जीव तो चक्री था। और तेवीस महा-मंडश्वलेर राजा थे। पीछे केतेक दिन राज्य करि, संसार तैं विरक्त भए सो राज्य तज-तज, दीक्षा धरी। सो जिन पै दीक्षा धरी, ऐसे चौबीस-जिनके पूर्वभव के दीक्षा गुरु, तिन आचायनके नाम क्रमतैं कहिये है-वज्रनाभि चक्रीने, बज्रसेन आचार्य तैं दीक्षा लई। विमल राजाये गुरु अरिंदमन नाम

आचार्य, स्वयंप्रभु मुनि, विमल वाहन यती, श्रीमन्दिर गुरु, पिहिताश्रव यती, अरिंदम यती, युगमंधर ऋषीश्वर, सर्व :जनानन्द ऋषि, उभयानन्द योगी, वज्रदंत योगीश्वर, बज्रनाभि, सर्व गुप्त वीतराग, त्रिगुप्त तपस्वी, चिंतारक्षक गुरु, विमल वाहन गुरुदेव, धनरथ मुनि, संवर यती, वरधर्म ऋषि, सुनन्द गुरु, आनन्द योगी, वीत शोक आचार्य, दामर नाम मुनि और प्रोष्ठल यती। ये चौबीस यतीश्वर जगत पूज्य हैं। इन के पास चौबीस जिनके जीवने, पूर्वभवमें दीक्षा धरी थी सो ये सर्व यती जगत् कर पूज्य हैं। इति चौबीस जिनके पूर्वभवके नाम, अरु पूर्वभव में जिनके पास दीक्षा धारी, तिन गुरुनके नाम कहे। आगे मुनि होय, कौन-कौन, किस-किस स्वर्ग गये। अरु तहां तैं चय, तीर्थंकर भये। तिन स्थानके नाम कहिए हैं— आदिनाथ, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुन्थनाथ, ये च्यारि-जिन तो,सर्वार्थ सिद्धि तैं आये हैं। अरु अजितनाथ, अभिनन्दन स्वामी, ये दोय विजय विमान तैं आये और चन्द्रप्रभु अरु सुमतिनाथ ये दोय जिन. वैजयंत विमान तैं आए। अरु नेमिनाथ अरहनाथ ये दोय जिन, बैजयंत विमान आए। अरु नमिनाथ अरु मल्लिनाथ ये दोय-जिन, अपराजित विमान तैं आए। ये तो पंच अनुत्तरनके कहे। अरु पुष्पदंत, आरण नाम पन्द्रहवें स्वर्ग तैं आए। अरु शीतलनाथ, अच्युत स्वग तैं आए। अरु श्रेयांसनाथ, अनन्त नाथ अरु महाबीर, ये तीन जिन, बारहवें स्वर्ग तैं आए। अरु विमलनाथ, पार्श्वनाथ, मुनिसुव्रत, संभवनाथ, सुपार्श्वनाथ, पद्मप्रभु ये छह जिन ग्रैवेक तैं आए। अरु वासुपूज्य स्वामी, महाशुक्र नामा दशवें स्वर्ग तैं आए। ऐसे चौबीस-जिन जहां तैं आए, सो स्थान कहे। आगे चौबीस-जिनकी, जन्मपुरी के नाम अनुक्रम तैं कहिए है—अयोध्यापुरी अयोध्यापुरी श्रावस्तीपुरी, अयोध्यापुरी, अयोध्यापुरी, कौशांबी पुरी, काशीपुरी, चन्द्रपुरी, किष्किंधापुरी, भद्रशालपुरी, सिंहपुरी, चम्पापुरी, कंपिलापुरी, अयोध्यापुरी, रतनपुरी,हस्तिनापुरी, हस्तिनापुरी, हस्तिनापुरी, मिथिलापुरी, कुशाग्रपुर, मथुरापुरी, शौर्यपुर, वाणारसी और कुण्डलपुर। इति जन्म नगरी॥ आगे जन्मके नक्षत्र अनुक्रम तैं बताईए हैं उत्तराषाढ़ामें वृषभका जन्म रोहणी ज्येष्ठा पुनर्वसु मघा चित्रा विशाखा अनुराधा मूल पूर्वाषाढ़ा श्रवण शतभिषा उत्तरा भाद्रपदा रेवती पुष्प भरणी कृतिका रोहणी अश्विनी श्रवण अश्विनी

चित्रा विशाखा और उत्तरा फाल्गुणी। इति जन्म नक्षत्र ॥ आगे जिन वृक्षनके नीचे दीक्षा लई तिनके नाम—वृषभदेव का दीक्षा वृक्ष वट। औरन के क्रमसे सप्तच्छद शाल सरल प्रयंगु प्रयंगु सिरीष बृक्ष नाग सालिष शाल बिन्दुक जयप्रिय जंबु पीपल दधिपर्ण नन्द तिलक आम्र अशोक मौलश्री मेषपर्ण भत्र अरु शाल। ये चौबीस—जिनके दीक्षा-वृक्ष कहे। इनके नीचे दीक्षा धारी। आगे निर्वाण होनेके नक्षत्र कहिए हैं--तहां सुपार्श्वनाथका निर्वाण नक्षत्र अनुराधा। चन्द्रप्रभुका निर्वाण नक्षत्र ज्येष्ठा। वासुपूज्यका निर्वाण नक्षत्र, अश्विनी। विमलनाथका निर्वाण नक्षत्र भरणी। महावीर स्वामी का नक्षत्र स्वाती है। ये पांच जिन के निर्वाण नक्षत्र कहे। औरन के निवाण नक्षत्र अरु जन्म नक्षत्र एकही जानना। ऐसे निर्वाण नक्षत्र कहे। इन चौबीस-जिनमें तैं शान्तिनाथ कुन्थनाथ और अरहनाथ ये तीन जिन तौ षट्खंडनाथ चक्री भए। और सर्व तीर्थंकर महा—मंडलेश्वर भए। तथा दीक्षा धारि निर्वाण गए। बासुपूज्य मल्लिनाथ नेमिनाथ पार्श्वनाथ और महावीर ये पांच जिन तौ कुमार अवस्था में बाल-ब्रह्मचारी ही दिगम्बर भए। ब्याह नाहीं किया। अरु राज्य भी नाहीं किया। पिताके जीवित कुंवारे ही मुनि भए। सर्व जिनराज भोग्य—संपदा भोग यतिपति भए। सो वृषभ का तप कल्याणक विनीता पुरी विषैं। नेमिनाथ का तप कल्याणक द्वारका पुरी बिषैं। सर्वका तप कल्याणक, अपनी-अपनी जन्म-नगरीमें भया। सो मल्लिनाथ अरु पार्श्वनाथ ये दोऊ जिन तौ तप लिये पीछे, तेले-तेलेका नियम करते भये। वासुपूज्य स्वामी, एकांतर उपवास धारते भये। सर्व-जिनने बेले-बेले पारणा किया। सो श्रेयांसनाथ, सुमतिनाथ, मल्लिनाथ ये तीन जिन तौ पूर्वान्ह सयम दीक्षा धारते भये। और सर्व जिन अपरान्ह कहिये सन्ध्या समय, दीक्षा धारते भये। इति चौबीस जिनके निर्वाण-नक्षत्रादिका कथन ॥ आगे चौबीस जिनके दीक्षाके बन कहिए हैं--ऋषभनाथ तौ सिद्धारथ बन विषैं, दिगम्बर भए। महावीर ज्ञानबन विषैं, यती भए वासुपूज्यने क्रीड़ोद्यान न बन विषैं, मुनि-पद धरा। और धर्मनाथ वप्रका नाम बन बिषैं, यती भये। पार्श्वनाथने मनोरमा नाम उद्यान विषैं, परिग्रह तजा। मुनिसुव्रत जिन, नोल गुफाके निकट, निर्ग्रन्थ भए। और सर्व

संभवनाथ, पद्मनाथ, पुष्पदंत, ये जिन दिनके पिछले पहरमें मोक्ष गए। वांसुपूज्य, विमलनाथ, अनंतनाथ, शीतलनाथ, कुंथनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, इनकी मुक्ति रात्रि-समय भयी। और धर्मनाथ, अरहनाथ, नमिनाथ, महावीर इनकी मुक्ति, सूर्यके उदयकाल समय प्रभात ही भयी। इति चौबीस-जिनके मुक्ति समय॥ आगे चौबीस-जिनके मोक्ष-गमन आसन कहिए है—तहां वृषभनाथ, वासुपूज्य, नमिनाथ, ए तीन जिन तौ पद्मासन से मोक्ष गए। और सर्व जिन कायोत्सर्ग आसन तैं सिद्ध-लोक गए। इति मोक्ष-गमनके आसन॥ आगे चौबीस-जिनका समोशरण विघटना अरु वाणी (दिव्यध्वनि) नहीं खिरना ताका प्रमाण कहिए है—तहां आदि-जिनके अरु-अंत जिनके इन दोय जिनके तौ मोक्ष जानेके जब चार दिन रहे तब समोशरण विघट्या। अरु वांणी नहीं खिरी। सर्व जिनके एक महीना पहिले समोशरण विघट्या। अरु दिव्यध्वनि नहीं खिरी॥ आगे चौबीस-जिनके संग केते-केते यती मोक्ष भए तिनका प्रमाण कहिए है—महावीरके संग ३६ मुनि मोक्ष गए। पार्श्वनाथकी लार ५३६ मुनि मुक्ति पहुँचे। नेमनाथके संग ५३६ ऋषीश्वर मोक्ष गए। मल्लिनाथके साथ ५०० यती मोक्ष भए। और शांतिनाथके संग ६०० योगीश्वर मोक्ष गए। और धर्मनाथकी लार (संग) ८०१ तपोधन मोक्ष भए। विमलनाथके लार ६६१२ आचार्य मोक्ष भए। अनन्तनाथके संग, ५५०७ निर्गंथ, निरंजन भए और पद्मप्रभुके साथ, ३८०० दिगम्बर भए अरु सिद्ध लोक गए। और वृषभदेवके लार, १०००० गुरुनाथ अमूर्ति भए। बाकी सर्व तीर्थंकरोंके साथ, एक-एक हजार मुनि मोक्ष गए। इति आगे बारह चक्रवर्तीके नाम-तहां प्रथम चक्रवर्ती भरत, सो आदिनाथके समय भए। आगे दूसरा सगर नाम षट्खण्डी, सो अजितनाथके समय भया। तीसरा मघवा नाम चक्री, अरु चौथा सनत्कुमार चक्री, ए धर्मनाथ-जिनके मोक्ष भए पीछे, अरु शान्तिके पहिले, अन्तरालमें भए। शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, अरहनाथ ए तीन जिन, अपने-अपने समयमें, आपही चक्री भए। और अरहके मोक्ष गए पीछे, अरु मल्लिनाथके पहिले, इस अन्तरालमें, आठवां सुभूमि नाम चक्री भया। और मल्लिनाथके पीछे, अरु मुनिसुव्रतके पहिले, अन्तरालमें नववां महापद्म नाम चक्री भया।

चित्रा विशाखा और उत्तरा फाल्गुणी। इति जन्म नक्षत्र ॥ आगे जिन वृक्षनके नीचे दीक्षा लई तिनके नाम—वृषभदेव का दीक्षा वृक्ष वट। औरन के क्रमसे सप्तच्छद शाल सरल प्रयंगु प्रयंगु सिरीष वृक्ष नाग सालिष शाल बिन्दुक जयप्रिय जंबु पीपल दधिपर्ण नन्द तिलक आम्र अशोक मौलश्री मेषपर्ण भव अरु शाल। ये चौबीस—जिनके दीक्षा-वृक्ष कहे। इनके नीचे दीक्षा धारी। आगे निर्वाण होनेके नक्षत्र कहिए हैं--तहां सुपार्श्वनाथका निर्वाण नक्षत्र अनुराधा। चन्द्रप्रभुका निर्वाण नक्षत्र ज्येष्ठा। वासुपूज्यका निर्वाण नक्षत्र, अश्विनी। विमलनाथका निर्वाण नक्षत्र भरणी। महावीर स्वामी का नक्षत्र स्वाती है। ये पांच जिन के निर्वाण नक्षत्र कहे। औरन के निर्वाण नक्षत्र अरु जन्म नक्षत्र एकही जानना। ऐसे निर्वाण नक्षत्र कहे। इन चौबीस-जिनमें तैं शान्तिनाथ कुन्थनाथ और अरहनाथ ये तीन जिन तौ षट्खंडनाथ चक्री भए। और सर्व तीर्थंकर महा—मंडलेश्वर भए। तथा दीक्षा धारि निर्वाण गए। वासुपूज्य मल्लिनाथ नेमिनाथ पार्श्वनाथ और महावीर ये पांच जिन तौ कुमार अवस्था में बाल-ब्रह्मचारी ही दिगम्बर भए। ब्याह नाहीं किया। अरु राज्य भी नाहीं किया। पिताके जीवित कुंवारे ही मुनि भए। सर्व जिनराज भोग्य—संपदा भोग यतिपति भए। सो वृषभ का तप कल्याणक विनीता पुरी विषैं। नेमिनाथ का तप कल्याणक द्वारका पुरी विषैं। सर्वका तप कल्याणक, अपनी-अपनी जन्म-नगरीमें भया। सो मल्लिनाथ अरु पार्श्वनाथ ये दोऊ जिन तौ तप लिये पीछे, तेले-तेलेका नियम करते भये। वासुपूज्य स्वामी, एकांतर उपवास धारते भये। सर्व-जिनने बेले-बेले पारणा किया। सो श्रेयांसनाथ, सुमतिनाथ, मल्लिनाथ ये तीन जिन तौ पूर्वान्ह सयम दीक्षा धारते भये। और सर्व जिन अपरान्ह कहिये सन्ध्या समय, दीक्षा धारते भये। इति चौबीस जिनके निर्वाण-नक्षत्रादिका कथन ॥ आगे चौबीस जिनके दीक्षाके बन कहिए हैं--ऋषभनाथ तौ सिद्धारथ बन विषैं, दिगम्बर भए। महावीर ज्ञानवन विषैं, यती भए वासुपूज्यने क्रीड़ोद्यान न बन विषैं, मुनि-पद धरा। और धर्मनाथ वप्रका नाम बन विषैं, यती भये। पार्श्वनाथने मनोरमा नाम उद्यान विषैं, परिग्रह तजा। मुनिसुव्रत जिन, नील गुफाके निकट, निर्ग्रन्थ भए। और सर्व

जिन अपने—अपने नगर के निकट, अम्र-बन विषैं योगीश्वर भए। इति तप बन ॥ आगे चौबीस—जिन के तप कल्याणक विषैं, गमन समय की पालकी, तिनके नाम कहिए है—तहां बृषभदेवकी पालकीका नाम सुदर्शना। आगे अनुक्रम तैं जानना-सिद्धार्था, कमलाभा अर्थ-सिद्धा अभयकरी, निर्बृत्तिकरी, मनोरमा, मनोहरा, सूर्य्यप्रभा, विमलप्रभा, पुष्पप्रभा, देवदत्ता, सागरदत्ता, नागदत्ता सिद्धार्थका विजया, वजयंति जयंति अपराजिता, उत्तर कुरु, देव-कुरु विमलाभा और चन्द्राभा। ये चौबीस-जिनके तप समयकी पालकी इन्द्रों कृत कहीं। आगे चौबीस-जिनकी दीक्षाकी तिथि, क्रमशः कहिए हैं। चैत्र वदी ६, माघसुदी ६ मार्गशीर्ष सुदी १५ माघ सुदी १२ वैशाख सुदी ६ कार्तिक बदी १३, जेठ सुदी १२ पौष बदी १ मार्गशीर्ष सुदी १ माघ बदी १२ फाल्गुण वदी १३ फाल्गुण बदी १४ माघ सुदी ४ जेठ वदी १२ माघ सुदी १३ ज्येष्ठ बदी १३ वैसाख सुदी १ मार्गशीर्ष सुदी १० मार्गशीर्ष सुदी ११ वैसाख बदी ६ अषाढ़ बदी १० श्रावण वदी ४ पौष वदी ११ और मार्गशीर्ष बदी १० ए चौबीस-जिनकेतप-दिन जानना। आगे चौबीस-जिनके केवलज्ञानके दिन अनुक्रम तैं कहिए है फाल्गुण बदी ११ पौष सुदी ११ कार्तिक बदी ४ पौष सुदी १४ चैत्र सुदी १४ चैत्र सुदी १५ फाल्गुण बदी ६ फाल्गुण वदी ७ कार्तिक वदी १४ पौष वदी १४ माघ वदी अमावस्या, माघ सुदी २, माघ सुदी ६, चैत्र वदी ३०, पौष सुदी १५, पौष सुदी १०, चैत्र सुदी ३, कातिक सुदी १२, पौष वदी २, वैशाख वदी ६, मार्गशीर्ष वदी ११, आसोज सुदी १, चैत्र वदी अमावास्या, और वैसाख सुदी १०। ये चौबीस-जिनके केवलज्ञानकी तिथि कहीं ॥ आगे चौबीस-जिनके निर्वाण दिन, अनुक्रम तैं कहिये है—माघ वदी १४, चैत्र सुदी ५, चैत्र सुदी ६, वैशाख सुदी ६, चैत्र सुदी ११, फाल्गुण वदी ४, फाल्गुन वदी २; फाल्गुन वदी ७, भादों वदी ८, आसोज सुदी ८, श्रावण सुदी पूर्णिमा, भाद्रपद सुदी १४, आषाढ़ वदी ८, चैत्र वदी अमावस्या, जेठ वदी ४, ज्येष्ठ वदी १४, वैशाख सुदी १, चैत्र वदी अमावस्या, फाल्गुन सुदी ५, फाल्गुण सुदी १२, वैशाख सुदी १४, आषाढ़ सुदी ८, श्रावण सुदी ७, और कातिक वदी अमावस्या। येचौबीस-जिनके निर्वाण दिन कहे ॥ आगे गर्भ-दिन कहिये है। तप, ज्ञान, निर्वाण ये तीन

कल्याणक तौ बीतराग दशाके कहे। आगे दोय कल्याणक, सराग-अवस्थाके हैं। सो ये गर्भ-कल्याणक तौ परोक्ष-सराग उत्सव है। और जिनराजका जन्मका प्रत्यक्षसराग पुण्य अतिशय है सो प्रथम जिनराजके गर्भ-कल्याणकके परोक्ष-उत्सवके दिन, क्रम तैं कहिये है—अषाढ़ वदी २, जेठ वदी अमावस्या, फाल्गुण वदी ८, वैशाख सुदी ६, श्रावण सुदी २, माघ वदी ६, भादव सुदी ६, चैत्र वदी ५, फाल्गुण वदी ६, चैत्र वदी ८, जेठ वदी ६, अषाढ़ वदी ६, ज्येष्ठ वदी १०, कार्तिक वदी १, वैशाख वदी १३, भाद्रपद सुदी ७, श्रावण वदी १०, फाल्गुन सुदी ३, चैत्र सुदी १, श्रावण वदी २ आसोज वदी २ कार्तिक सुदी ६ वैशाख वदी २ और आषाढ़ सुदी २। इति गर्भ-दिन॥ आगे जन्म-दिन क्रम तैं कहिये है—चैत्र वदी ६ माघ सुदी १० माघ सुदी १२ कार्तिक सुदी १५ चैत्र सुदी ११ कार्तिक वदी १३ जेठ वदी १२ पौष वदी ११ मार्गशीर्ष सुदी १ माघ वदी १२ फाल्गुन वदी ११ फाल्गुन वदी १४ माघ सुदी १४ जेठ वदी १२ माघ सुदी १३, जेठ वदी १४ वैशाख सुदी १ मार्गशीर्ष सुदी १४ मार्गशीर्ष सुदी ११ वैशाख सुदी १० अषाढ़ वदी १० श्रावण सुदी ६ पौष वदी ११ और चैत्र सुदी १३। ये चौबीस-जिनके जन्म-दिन कहे॥ आगे चौबीस-जिनके पारणाका अन्तर कहिये है—आदिनाथ स्वामी ने तो एक वर्ष पीछे पारणा किया सो इक्षु-रसका भोजन किया। अरु मल्लिनाथ पार्श्वनाथ इन दोय जिनका तेले पारणा भया सो गायके दूधको खीर खाय पारणा किया और वासुपूज्य स्वामी ने एकान्तर पारणा किया सो गायके दूधकी खीर खाय पारणा किया। सर्व जिन-देवनका बेले पारणा भया। सो भी सब गायके दूधकी खीर खाय पारणा किया। इति पारणा प्रमाण॥ आगे चौबीस-जिनके प्रथम पारणेकी नगरीके नाम अरु तिन नगरनके राजा-प्रथम दानेश्वर तिनके नाम अनुक्रम तैं कहिये हैं—हस्तिनापुर विषैं श्रेयांस राजा। अयोध्यापुरी विषैं ब्रह्मदत्त नाम राजा। श्रावस्तीपुरी विषैं सुरेंद्रदत्त राजा, विनीता नगरी विषैं राजा इंद्रदत्त। विजयपुर विषैं राजा पदम। मंगलापुर विषैं राजा सोमदत्त। पाटली खंड विषैं राजा महादत्त। पद्मखंडपुर विषैं राजा सोमदेव। श्वेत नगरी विषैं राजा पहुप। अरिष्टपुर विषैं राजा पुनर्वसु। इष्टपुर विषैं राजा सुनंद। सिद्धारथपुर विषैं जयराजा। महापुर विषैं

राजा विशाख। ध्यानपुर विषैं राजा धर्म-वर्धन। वर्धमानपुर विषैं राजा सुमति। सोमनपुर विषैं राजा धर्म-मित्र। मन्दिरपुर विषैं राजा अपराजित। हस्तिनापुर विषैं राजा नन्दषेण। चक्रपुर विषैं राजा वृषभदत्त। मथुरापुर विषैं राजा दत्त। राजगृहपुर विषैं राजा संजय। द्वारापुरी विषैं राजा वरदत्त काम्याकृतपुर विषैं धन्य राजा। कुंडलपुर विषैं राजा वकुल ये चौबीस-जिनके प्रथम पारणाके पुर अरु दानेश्वर राजा कहे। इन सर्वके घर पञ्चाश्चर्य भये। अरु ये चौबीस प्रथम दानेश्वर महा भाग्य राजा तिनके शरीरका वर्ण कहिये है—सो आदिके श्रेयांस राजा अरु ब्रह्मदत्त राजा ये दोय तौ श्याम शरीर धारी महासुन्दर भये। और सबबाईस जिनराजके दान देनेहारे भूपनका शरीर ताये स्वर्ण समान जानना। इनमेंसे कोई तौ मोक्षभए कोई कल्पवासी होय कैं तथा चय कैं मोक्ष जांयगे। ऐसा कथन बड़े हरिवंश पुराणके कर्त्ता श्रीजिनसेनाचार्यने कह्या है। कहीं-कहीं शास्त्र विषैं ऐसा भी कह्या है जो प्रथम दानेश्वर मोक्ष ही जांय हैं। सो विशेष पाठान्तर भेद यथावत् जो केवलज्ञानमें भाष्या होय सो प्रमाण है। इति प्रथम दानेश्वर राजानके नाम अरु तहां प्रथम पारणाकी पुरी कहीं॥ आगे चौबीस-जिनकूं केतेक-केतेक उपवास पीछे केवलज्ञान भया। सो कहिये है—तहां वृषभ देव, मल्लिनाथ, पार्श्वनाथ इन तीन जिन कूं तेला व्यतीत भए केवलज्ञान प्रकट्या। वासुपूज्यको एक उपवास पूर्ण भये, केवलज्ञान सूर्य उत्पन्न भया। और सर्व जिन कूं बेला व्यतीत भये, केवलज्ञान भया। इति केवलज्ञानके पूर्वके उपवास॥ आगे चौबीस-जिनके केवलज्ञान उपजनेके क्षेत्र कहिये है-तहां वृषभदेवका केवल-कल्याणक तौ पुरी मिताल नाम नगरीके निकट, सकटामुख, नाम बन विषैं भया। नेमिनाथका गिरनारजी विषैं, पार्श्वनाथका काशीके निकट, महावीरजीका रज्जुकूटा नदीके तट। बाकी सर्व जिनके केवल-कल्याणक, मनोहर बन विषैं भये। सो बृषभनाथ, श्रेयांस-जिन, मल्लिनाथ, नेमनाथ, पार्श्वनाथ इन पांच जिन कं तो केवलज्ञान प्रभात समय भया। और सर्व कूं दिनके पिछले पहरमें केवलज्ञान भया। इति केवलज्ञानके स्थान॥ आगे निर्वाण होनेका काल कहैं हैं—तहां बृषभनाथ अजितनाथ श्रेयांसजिन शीतलजिन अभिनंदननाथ, सुमतिनाथ, सुपार्श्वनाथ, चंद्रप्रभ इन जिन कौं तो दिनके प्रथम पहरमें मोक्ष भई। अरु

संभवनाथ, पद्मनाथ, पुष्पदंत, ये जिन दिनके पिछले पहरमें मोक्ष गए। वासुपूज्य, विमलनाथ, अनंतनाथ, शीतलनाथ, कुंथनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, इनकी मुक्ति रात्रि-समय भयी। और धर्मनाथ, अरहनाथ, नमिनाथ, महावीर इनकी मुक्ति, सूर्यके उदयकाल समय प्रभात ही भयी। इति चौबीस-जिनके मुक्ति समय ॥ आगे चौबीस-जिनके मोक्ष-गमन आसन कहिए है—तहां वृषभनाथ, वासुपूज्य, नमिनाथ, ए तीन जिन तौ पद्मासन से मोक्ष गए। और सर्व जिन कायोत्सर्ग आसन तैं सिद्ध-लोक गए। इति मोक्ष-गमनके आसन ॥ आगे चौबीस-जिनका समोशरण विघटना अरु वाणी (दिव्यध्वनि) नहीं खिरना ताका प्रमाण कहिए है—तहां आदि-जिनके अरु-अंत जिनके इन दोय जिनके तौ मोक्ष जानेके जब चार दिन रहे तब समोशरण विघट्या। अरु वांणी नहीं खिरी। सर्व जिनके एक महीना पहिले समोशरण विघट्या। अरु दिव्यध्वनि नहीं खिरी ॥ आगे चौबीस-जिनके संग केते-केते यती मोक्ष भए तिनका प्रमाण कहिए है—महावीरके संग ३६ मुनि मोक्ष गए। पार्श्वनाथकी लार ५३६ मुनि मुक्ति पहुँचे। नेमनाथके संग ५३६ ऋषीश्वर मोक्ष गए। मल्लिनाथके साथ ५०० यती मोक्ष भए। और शांतिनाथके संग ६०० योगीश्वर मोक्ष गए। और धर्मनाथकी लार (संग) ८०१ तपोधन मोक्ष भए। विमलनाथके लार ६६१२ आचार्य मोक्ष भए। अनन्तनाथके संग, ५५०७ निर्गंथ, निरंजन भए और पद्मप्रभुके साथ, ३८०० दिगम्बर भए अरु सिद्ध लोक गए। और बृषभदेवके लार, १०००० गुरुनाथ अमूर्ति भए। बाकी सर्व तीर्थंकरोंके साथ, एक-एक हजार मुनि मोक्ष गए। इति आगे बारह चक्रवर्तीके नाम-तहां प्रथम चक्रवर्ती भरत, सो आदिनाथके समय भए। आगे दूसरा सगर नाम षट्खण्डी, सो अजितनाथके समय भया। तीसरा मघवा नाम चक्री, अरु चौथा सनत्कुमार चक्री, ए धर्मनाथ-जिनके मोक्ष भए पीछे, अरु शान्तिके पहिले, अन्तरालमें भए। शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, अरहनाथ ए तीन जिन, अपने-अपने समयमें, आपही चक्री भए। और अरहके मोक्ष गए पीछे, अरु मल्लिनाथके पहिले, इस अन्तरालमें, आठवां सुभूमि नाम चक्री भया। और मल्लिनाथके पीछे, अरु मुनिसुव्रतके पहिले, अन्तरालमें नववां महापद्म नाम चक्री भया।

अरु मुनिसुव्रतके पीछे, अरु नमिनाथके पहिले, दशवें हरिषेण नाम चक्री भये। नमिनाथके पीछे, अरु नेमिनाथके पहिले, ग्यारहवें जयसेन नाम चक्री भये। नेमनाथके पीछे अरु पार्श्वनाथके पहिले बारहवें ब्रह्मदत्त नाम चक्री भए। इति चक्रवर्ती नाम ॥ आगे इन चक्रीनकी गति-गमन कहिए है—तहां आठवां सुभूमि अरु बारहवां ब्रह्मदत्त ए दोय तौ, सप्तम नरक सिधारे। अरु तीसरा मघवा नाम चक्री, अरु चौथा सनत्कुमार चक्री ए दोय, तीसरे स्वर्ग गए। अरु बाकी आठ चक्री, आठ-कर्म नाश कर, अष्टम भूमि (मोक्ष) विषैं, सिद्ध पद पाय विराजे। इति चक्री गति ॥ आगे नव नारायणके नाम तथा किनके समय भए सो कहिए है। तहां पहिला त्रिपृष्ट नाम नारायण तौ श्रेयांसनाथके समयमें भया ॥ १ ॥ दूसरा द्विपृष्ट नारायण, वासुपूज्य जिनके समयमें भया ॥ २ ॥ तीसरा स्वयंभू नाम नारायण, विमलनाथके समयमें भया ॥ ३ ॥ और चौथा पुरुषोत्तम नारायण, अनन्तनाथके समय भया ॥ ४ ॥ पांचवा पुरुषसिंह नारायण धर्मनाथके समय भया ॥ ५ ॥ छट्ठा पुण्डरीक नारायणा अरहके पीछे अरु मल्लिनाथके पहिले अन्तरालमें भया ॥ ६ ॥ मल्लिके पीछे अरु मुनि सुव्रतके पहिले इस अन्तरालमें, सातवां दत्त नाम नारायण भया ॥ ७ ॥ मुनिसुव्रतके पीछे अरु नमिके पहिले, आठवां लक्ष्मण नाम नारायण भया ॥ ८ ॥ नववें नारायण कृष्ण देव भए, सो नेमिनाथके समय भये ॥९॥ ए नव नारायणके नाम कहे सो इनमें पहिला त्रिपिष्ट, दूसरा द्विपृष्ट, तीसरा स्वयंभू, चौथा पुरुषोत्तम, पांचवां पुरुषसिंह छठा पुण्डरीक ए षट् तो षट्वीं मघवी नाम पृथ्वीके धाम पधारे। और सातवां दत्त, आठवां और नौवां ए मेघा पृथ्वीमें गए। ए नव ही नारायण, तीन खण्डके नाथ महा विभूति सहित देव-विद्याधर-भूमिगोचरी बड़े-बड़े राजान् करि बन्दनीक, प्रजाके प्रतिपालक हैं। इनके राज्यमें अन्याय नाहीं। लोकनकों दारिद्र नाहीं। सर्व सखी होय हैं। ए नारायण परम्पराय ज्योतिस्वरूप होंयगे। इति नारायण नाम ॥ आगे बलभद्रनके नाम कहिए है। तहां प्रथम बलदेव अचल, विजय भद्र, सुप्रभ, सुदर्शन आनन्द नन्दमित्र रामचन्द्र और पद्म। ए नव बलभद्र हैं सो नारायणके बड़े भाई जानना। इति बलभद्र नाम ॥ आगे नारायणके प्रतिपक्षी (प्रतिनारायण) केशवके नाम कहिए है। तहां प्रथम अश्वग्रीव, तारक, मेरुक, मधु-कैटभ, निशुंभ, बलि, प्रह्लाद

रावण, और जरासिन्धु। तिनमें आठ तौ विद्याधरनमें भए। अरु जरासिन्धु भूमिगोचरी भयो। इति प्रति-नारायण नाम॥ आगे बलभद्रकी गति-गमन कहिए है। तहां विजय, अचल, भद्र, सुभद्र सुदर्शन आनन्द नन्दमित्र और रामचन्द्र ये आठ बलदेव तौ आठ कर्म नाशकरि सिद्ध भए। और नवमां पद्म बलदेव सो दिगम्बर व्रत धारि पंचम स्वर्ग विषैं महाऋद्धिधारी देव भया। तहां तैं चय मोक्ष होंयगे। तथा कृष्ण महाराज तीर्थंकरका अवतार धारेंगे और अनेक जीवनकौं धर्मोपदेश देय सुमाग लगाय आप परमधामकौं पावेंगे, अब तांई अवतार धारचा अब अवतार नाहीं धारेंगे। इति बलभद्र गति॥ आगे चौवीस-जिनकी आयुका प्रमाण अनुक्रम करि कहिए है। चोरासी लाख पूर्व, बहत्तरि लाख पूर्व साठ लाख पूर्व, पचास लाख पूर्व, चालीस लाख पूर्व, तीस लाख पूर्व, बीस लाख पूर्व, दस लाख पूर्व, दोय लाख पूर्व, एक लाख पूर्व, चौरासी लाख वर्ष, बहत्तरि लाख वर्ष, साठ लाख वर्ष, तीस लाख वर्ष, दस लाख वर्ष, एक लाख वर्ष, पंचानवे हजार वर्ष, चौरासी हजार वर्ष, पचपन हजार वर्ष, तीस हजार वर्ष, दस हजार वर्ष, एक हजार वर्ष, सौ वर्ष, और बहत्तरि वर्ष। ए चौवीस जिन-जगत मंगल करें। इति चौवीस जिनकी आयु। आगे चक्रवर्तीनकी आयु कहिए है। प्रथमकी चौरासी लाख पूर्व, दूसरेकी बहत्तरि लाख पूर्व, तीजेकी पाँच लाख वर्ष, चौथेकी तीन लाख वर्ष, पांचवेंको एक लाख वर्ष, छट्टेकी पंचानवे हजार वर्ष, सातवेंकी चौरासी हजार वर्ष, आठवेंको साठ हजार वर्ष, नौवेंकी तीस हजार वर्ष, दशवोंकी छब्बीस हजार वर्ष, ग्यारहवोंको तीन हजार वर्ष, और बारहवोंकी सात सौ वर्ष। इति चक्री-आयु॥ आगे नारायणकी आयु कहिए है प्रथमकी चौरासी लाख वर्ष, दूसरेकी बहत्तरि लाख वर्ष, तीसरेको साठ लाख वर्ष, चौथेको तीसलाख वर्ष, पांचवोंकी दश लाख वर्ष, छठवोंकी साठ हजार वर्ष, सातवोंकी तीस हजार वर्ष, आठवेंको बारह हजार वर्ष, और नववोंकी एक हजार वर्ष। यह नारायणकी आयु कही। इतनी ही नव प्रति-नारायणकी आयु जानना। बलभद्रको कछू अधिक है, सो आगे कहैंगे। इति नारायण, प्रति नारायणकी आयु॥ आगे बलभद्रकी आयु कहिए है। तहां पहिले बलभद्रकी आयु सत्यासी लाख वर्ष। दूजेकी सत्तरि लाख वर्ष। तीसरेकी साठ लाख वर्ष। चौथेका बत्तीस लाख वर्ष। पांचवोंकी कछू

अधिक दश लाख वर्ष। छठेकी पैंसठ हजार वर्ष सातवेंकी बत्तीस हजार वर्ष। आठवेंकी सत्रह हजारवर्ष। और नववेंकी बारह सौ वर्ष। ए नव बलभद्रकी आयु कही। आगे चक्री व नारायणका उपजनेका समय कहिये है। तहां आदि जिनसे लेय पन्द्रहवें धर्मनाथ पर्यंत तिनमें बृषभ अजित इनके समयमें तो दोय चक्री भये। अरु पचास लाख कोड़ि सागर कालका बीचि अन्तर भया। तामें कोई पद्वीधारी पुरुष नहीं भया। अरु श्रेयांस तैं लगाय धर्मनाथ पर्यंत पांच तीर्थंकरोंके समयमें पांच नारायण भये। सो तीर्थंकरोंके कालमेंही सभा नायक भये। अन्तरालमें नाहीं भये। धर्मनाथके पीछे तीसरे चौथे चक्री भये। ता पीछे शान्तिनाथ कुन्थ-नाथ अरहनाथ ये तीन तीर्थंकर ही चक्री भये। ता पीछे छटवाँ नारायण भया। ताके पीछे आठवां चक्रवर्ती भया ताके पीछे मल्लि जिन भये। मल्लिजिनके पीछे नौवां महापद्म चक्री भया। ता पीछे सातवां नारायण भया। ता पीछे मुनिसुब्रत भये। ताके पीछे, दशवां चक्री हरिषेण भया। ताके पीछे आठवां नारायण भया। ताके पीछे, नमि-जिन भये। अरु नमिनाथके पीछे, ग्यारहवां चक्री भया। ताके पीछे नेमिनाथ भये तिनके समयमें नववें नारायण और बलभद्र, ए तिन छते ही सभा नायक भए। और नेमिनाथके पीछे बारहवां चक्री भया। ताके पीछे पार्श्वनाथ और महावीर भये। इस भांति त्रेसठ शलाका पुरुष भए, तिनकी रचना कही। इति चक्री और नारायणके उपजनेका समय कह्या। आगे तीर्थंकरकी आयुकी विगत कहिए है। तहां ऋष-भदेवका कुमारकाल, बीस लाख पूर्वका। त्रेसठ लाख पूर्व राज्य किया। तप एक हजार वर्ष किया। और केवलज्ञान सहित उपदेश हजार वर्ष घाटि, लाख पूर्व किया। ए सर्व चौरासी लाख पूर्वकी विगत कही ॥१॥ अजितनाथ-जिनका कुमार काल, अठारह लाख पूर्व। एक पूर्वांग अधिक, तिरेपण लाख पूर्व राज्यमें व्यतीतें संयमका काल बारह वर्ष रहा एक पूर्वांग अरु बारह वर्ष घाटि एक लाख पूर्व केवलज्ञान सहित, समोशरण सहित विहार किया। यह बहत्तरि लाख पूर्वका विस्तार कह्या ॥ २ ॥ सम्भवनाथका काल साठ लाख पूर्व। तामें तैं कुमारकाल पन्द्रह लाख पूर्व अरु च्यारि पूर्वांग अधिक चवालीस लाख पूर्व राज्य किया और चौदह वर्ष संदम किया। अरु च्यारि पूर्वांग अरु चौदह वर्ष घाटि एक लाख पूर्व केवलज्ञान सहित रहे। पीछे

मोक्ष गए॥ ३ ॥ आगे अभिनन्दनकी आयु पचास लाख पूर्व है। तामें कुमार-काल साढ़े बारह लाख पूर्व अरु राज्य त्रिषों साढ़े छत्तीस लाख पूर्व अरु आठ पूर्वांग। अठारह वर्ष संयमकाल। आठ पूर्वांग अरु अठारह वर्ष घाटि, एक लाख पूर्व, केवलज्ञान सहित उपदेश करि मोक्ष गए ॥ ४ ॥ आगे सुमतिनाथको आयु, चालीस लाख पूर्व। तामें कुमारकाल दश लाख पूर्व है। राज्यावस्थाका काल गुणतीस (२९) लाख पूर्व अरु बारह पूर्वांग संयमकाल बीस वर्ष। अरु बारह पूर्वांग, बीस वर्ष घाटि एक लाख पूर्व केवलज्ञान सहित रहे। पीछे मोक्ष गए ॥ ५ ॥ पद्मप्रभुकी आयु तीस लाख पूर्व। तामें तैं कुमार काल साढे सात लाख पूर्व साढ़े इक्कीस लाख पूर्व अरु सोलह पूर्वांग राज्य किया। संयम काल छह महिना। अरु सोलह पूर्वांग अरु छह महिना घाटि एक लाख पूर्व ताईं केवलज्ञान सहित उपदेश देय सिद्ध भए ॥ ६ ॥ अरु सुपार्श्व-जिनकी आयु बीस लाख पूर्व तामें तैं कुमारकाल पांच लाख पूर्व। अरु चौदह लाख पूर्व बीस पूर्वांग राज्य किया। संयमका काल, नव वर्ष। अरु बीस पूर्वांग नव वर्ष घाटि एक लाख पूर्व केवलज्ञान सहित विहार करि, सिद्ध भए॥ ७ ॥ चन्द्रप्रभका आयु समय, दश लाख पूर्व। तामें कुमार-काल अढ़ाई लाखपूर्व। राज्यावस्था साढ़े छह लाख पूर्व अरु चौबीस पूर्वांग। संयमकाल तीन महिना। अरु तीन महिना चौबीस पूर्वांग घाटि एक लाख पूर्व ताईं समोसरण सहित केवलज्ञान पाय विहार करि मोक्ष गए ॥ ८ ॥ पुष्पदन्त-जिनको आयु, दोय लाख पूर्वको है। तामें कुमारकाल, पचास हजार पूर्व। पचास हजार पूर्व अरु अट्ठाईस पूर्वांग, राज्य किया। और संयमकाल, च्यारि महिना। अट्ठाईस पूर्वांग च्यारि महिना घाटि, एक लाख पूर्व केवलज्ञान सहित विहार करि मोक्ष गए ॥ ९ ॥ शीतल जिनको आयुका प्रमाण, एक लाख पूर्व में। तामें कुमारकाल, पच्चीस हजार पूर्व। राज्यकाल पचास हजार पूर्व। संयमकाल तीन मास। अरु तीन महिना घाटि पच्चीस हजार पूर्व, केवलज्ञान सहित रहे ॥ १० ॥ श्रेयांस जिनको आयु, चौरासी लाख वर्षकी है। तामें कुमारकाल इक्कीस लाख वर्ष। राज्य पद, ब्यालीस लाख वर्ष। संयमका काल दोय मास। दोय महिना घाटि इक्कीस लाख वर्ष केवलज्ञान काल है ॥११॥ वासुपूज्यको आयु, बहत्तरि

लाख वर्षकी है। तामें कुमार काल, अट्ठारह लाख वर्ष है। राज्यावस्थामें नहीं रहे अरु व्याह भी नहीं किया, अट्ठारह लाख वर्षके भए, तब ही तप लिया। सो संयमकाल, एक मास रहे। केवलज्ञान सहित एक मास घाटि चौवन लाख वर्ष रहके, शिव गये॥ १२॥ विमल जिनकी आयु साठ लाख वर्षकी है। तामें कुमारकाल पन्द्रह लाख वर्ष। राज्यावस्था तीस लाख वर्ष। और संयमकाल, तीन महिना। तीन महीना घाटि पन्द्रह लाख वर्ष केवलज्ञान सहित रहे। पीछे निर्वाण गये॥ १३॥ अनन्त-जिनकी आयु तीस लाख वर्ष है। तामें कुमारकाल, साढ़े सात लाख वर्ष। राज्यावस्था, पन्द्रह लाख वर्ष। संयमकाल दोय मास। केवलज्ञान विषैं दोय मास घाटि, साढ़े सात लाख वर्ष रहे॥ १४॥ धर्म जिनकी आयु दश लाख वर्ष। तामें कुमारकाल, अढ़ाई लाख वर्ष। और राज्यावस्था, पांच लाख वर्ष। संयमकाल एक मास। एक मास घाटि अढ़ाई लाख वर्ष, विहार करि मोक्ष गए॥ १५॥ और शान्तिनाथकी आयु, एक लाख वर्ष। तामें कुमारकाल, पच्चीस हजार वर्ष। राज्यकाल, पचास हजार वर्ष। संयमकाल, सोलह वर्ष। सोलह वर्ष घाटि पच्चीस हजार वर्ष केवलज्ञान सहित विहार करि, मोक्ष गए॥ १६॥ कुन्थनाथकी आयु पनच्यानबै हजार वर्ष। तामें कुमार-काल पौने चौबिस हजार वर्ष। राज्यावस्था, सैंतालीस हजार वर्ष। संयमकाल सोलह वर्ष। सोलह वर्ष घाटि पौने चौबीस हजार वर्ष केवलज्ञान सहित उपदेश देय मोक्ष गए॥ १७॥ अरह जिनकी आयुका प्रमाण चौरासी हजार वर्ष है। तामें कुमारकाल इकईस हजार वर्ष। राज्यावस्था ब्यालीस हजार वर्ष। संयमकाल सोलह वर्ष। अरु सोलह:वर्ष घाटि इक्कीस हजार वर्ष तांईं, केवलज्ञान सहित उपदेश करि मोक्ष गए॥ १८॥ मल्लिनाथकी आयु पचपन हजार वर्ष। तामें कुमारकाल सौ वर्ष। इनने राज्य नहीं किया। सौ वर्षकी अवस्था हीमें तप धार्या। संयमकाल षट् दिन। और षट् दिन घाटि चोवन हजार नव सौ वर्ष तांईं केवलज्ञान सहित उपदेश देय मोक्ष गए॥ १९॥ मुनिसुव्रत-जिनकी आयु तीस हजार वर्ष। तामें साढे, सात हजार वर्ष कुमारकाल। राज्यकाल पन्द्रह हजार वर्ष। संयकाल ग्यारह महिना। ग्यारह महिना घाटि साढ़े सात हजार वर्ष केवलज्ञान सहित विहार करि मोक्ष गए॥ २०॥ नमिनाथकी आयु दश हजार वर्ष। तामें

कुमारकाल अढाई हजार वर्ष। राज्यकाल पांच हजार वर्ष। संयमकाल नौ वर्ष। और नव वर्ष घाटि अढाई हजार वर्ष, केवलज्ञान सहित विहार करि मोक्ष गए॥ २१ ॥ और नेमिनाथ-जिनकी आयु एक हजार वर्ष। तामें कुमारकाल तीनसौ वर्ष। राज्य इनने नहीं किया। तीनसौ वर्षके होयकें तप लिया। संममकाल छप्पन दिन। छप्पन दिन घाटि सातसौ वर्ष केवलज्ञान तैं धर्मोपदेश देय सिद्ध भए ॥२२॥ पार्श्वनाथ-जिन की आयु सौ वर्ष की। तामें कुमारकाल, तीस वर्ष। इनने व्याह और राज्य नहीं किया। तीस वर्षमें ही, दीक्षा धरी। संयम-काल, च्यार महिना। अरु च्यार महिना घाटि, सत्तर वर्ष, केवल-ज्ञान सहित रह, भव्यन कूं सम्बोध करि, मोक्ष गये ॥ २३ ॥ महावीर-जिनकी आयु, बहत्तरि वर्ष। तामें कुमारकाल, तीस वर्ष। इनने व्याह व राज्य नहीं किया। तीस वर्षमें तप धरा। संयम-काल, बारह वर्ष। बाकी वर्ष केवलज्ञान सहित रहकर, मोक्ष गये ॥ २४ ॥ यह सर्व जिनकी आयुकी विगत कही। तामें कोई की आयुके च्यारि विभाग, कोई की आयुके राज्यावस्था बिना, तीन विभाग कहे। आगे चौबीस-जिनके, च्यारि प्रकार संघका प्रमाण कहिये है। तहां पहिले चौबीस-जिनके गणधर देवनका प्रमाण अनुक्रम तैं कहिये है-८४, ९०. १०५, १०३, ११६, १११, ९५, ९३, ८८, ८१, ७७, ६६, ५५, ५०, ४३, ३६, ३५, ३०, २८, १८, १७, ११, १०, और ११ ये चौबीस-जिनके, चौदह सौ त्रेपण (१४ ' ३) गणधर जानना। तिनमें तैं एक-एक जिनके मुख्य एक-एक गणधरनके नाम कहिये हैं वृषभसेन, सिंहसेन, चारुदत्त, वज्र, चमर, वज्रचलि, चरबलि दत्तिडक, वैदर्भ, अनागार, कुंथ, सुधर्म, नंदराज, जय, अरिष्ट, चक्रायु, स्वयंभू, कुंथ, विशाख, मल्लि, सोम, वरदत्त स्वयंभू और इन्द्रभूत। ये चौबीस मुख्य गणधर कहे। ये सर्व गणधर सप्त ऋद्धि करि सहित हैं। सर्व जिन श्रुतके पारगामी हैं। आगे एक-एक जिनके सङ्ग,-केते-केते राजा बैरागी भये। तिनका प्रमाण कहिये हैं-महावीर के संग तीन सौ राजा यती भये ॥ १ ॥ पार्श्वनाथके साथ छह सौ छह ॥ २॥ मल्लिनाथ के साथ छह सौ छह ॥ ३ ॥ वासुपूज्य की लार छह सौ ॥ ४ ॥ आदिनाथके साथ चारि हजार राजा यती भये ॥५॥ सर्व जिनके संग एक-एक हजार राजाओंने तप लिया ॥ आगे चौबीस जिनके यतीश्वरन की संख्या कहियो

है तहां वृषभदेवके सर्व मुनीश्वर ८४ हजार हैं अजितके एक लाख हैं। सम्भव के दोय लाख। अभिनन्दन के तीन लाख। सुमतिनाथके तीन लाख बीस हजार। पद्मनाथके तीन लाख तीस हजार। सुपार्श्वनाथके, तीन लाख। चन्द्रप्रभके सर्व मुनि अढ़ाई लाख। पुष्पदन्त-जिनके दोय लाख। शीतलनाथके एक लाख। श्रेयांस नाथके, चौरासी हजार। वासुपूज्यके, बहत्तरि हजार। विमलनाथके अड़सठ हजार। अनन्तनाथके छ्यासठ हजार। धर्मनाथके चौंसठ हजार। शान्तिनाथके बासठ हजार। कुंथनाथके साठ हजार। अरहनाथके पचास हजार। मल्लिनाथके चालीस हजार। मुनिसुव्रतके तीस हजार। नमिनाथके बीस हजार। नेमिनाथ के अठारह हजार। पार्श्वनाथके सोलह हजार। महावीरके चौदह हजार सर्व मुनीश्वर हैं। ये चौबीस-जिनके सर्व मुनि कहे। सो मुनिका संघ सात प्रकार है-चौदह पूर्वके पाठी, सूत्र अभ्यासी अवधि-ज्ञानी केवली विक्रिया ऋद्धिके धारी विपुलमती मनः पर्ययी और वादित्र ऋद्धिके धारी। इन सात भेद रूप मुनिसंघ है। सो वृषभदेवके चौरासी हजार मुनि हैं। तिनमें चौदह पूर्वके पाठी साढ़े सैंतालीस सौ हैं। सूत्र अभ्यासी शिष्य इकतालीस सौ पचास। अवधिज्ञानी नौ हजार केवलज्ञानी बीस हजार। विक्रिया ऋद्धिके धारी तीस हजार छह सौ। विपुलमती मनः पर्ययज्ञानी बारह हजार साढ़े सात सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी बारह हजार सढ़े सातसौ हैं। ये सर्व मिलि चौरासी हजार आदि-देवके मुनि कहे॥ १ ॥ अजित के चौदह पूर्वके पाठी तीन हजार पांच सौ मुनि। आचाराङ्ग सूत्रके धारी शिष्य इक्कीस हजार छहसौ। अवधिज्ञानी नव हजार चार सौ। केवलज्ञानी बीस हजार दो सौ पचास। विक्रिया ऋद्धिके धारी बीस हजार च्यारिसौ पचास। विपुलमती मनः पर्यय धारी बारह हजार च्यारि सौ वादित्र ऋद्धिके धारी बारह हजार च्यारि सौ। ये सर्व जातिके मिलि अजित-जिनके एक लाख मुनि हैं॥ २॥ संभव-जिनके चौदह पूर्व के पाठी साढ़े एक्कीस सौ। सूत्र अभ्यासी शिष्य-मुनि एक लाख उन्नीस हजार तीन सौ। अवधि-ज्ञानी, नव हजार छह सौ। केवलज्ञानी पन्द्रह हजार। विक्रिया ऋद्धिके धारी गुणतीस हजार साढ़े आठ सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञान धारी बारह हजार हैं। वादित्र ऋद्धिके धारी बारह हजार एक सौ हैं। ये तीसरे-

जिनका संघ सात प्रकार दोय लाख कह्या ॥ ३ ॥ आगे चौथे अभिनन्दन-जिनके मुनि तीन लाख हैं। तिनमें चौदह पूर्वके पाठी, पच्चीस सौ हैं। सूत्र अभ्यसी शिष्य दोय लाख तीस हजार पचास हैं। अवधिज्ञानी नौहजार आठ सौ। केवलज्ञानी सोलह हजार। विक्रिया ऋद्धिके धारी गुन्नीस हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञान धारी ग्यारह हजार साढ़े छह सौ। वादित्र ऋद्धिके धारी ग्यारह हजार। ये अभिनन्दन-जिनके तीन लाख साधूनमें सात भेद कहे ॥ ४ ॥ आगे पांचवें सुमतिनाथके तीन लाख वीस हजार मुनि हैं। तामें चौदह पूर्वके पाठी चौबीस सौ। सूत्र अभ्यासी शिष्य-मुनि दोय लाख चौंसठ हजार तीन सौ पचास। अवधिज्ञानके धारी ग्यारह हजार। केवलज्ञानके धारी तेरह हजार विक्रिया ऋद्धिके धारो अट्ठारह हजार च्यारिसौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी दश हजार च्यारि सौ वादित्र ऋद्धिके धारी एक हजार च्यारि सौ पचास हैं। ये सर्व पांचवें-जिनके सात जातिके मुनि तीन लाख वीस हजार कहे ॥ ५ ॥ आगे छठे पद्मप्रभ-जिनके तीन लाख तीस हजार मुनि कहे। तिनमें चौदह पूर्वके ज्ञानी तेईस सो सूत्रके अभ्यासी शिष्य-मुनि, दोय लाख गुणहत्तरि हजार। अवधिज्ञानी, दश हजार। केवलज्ञान धारी बारह हजार आठ सौ। विक्रिया ऋधिके धारो, सोलह हजार तीन सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, दश हजार छह सौ। वादित्र ऋद्धिके धारी, नौ हजार। ये छठे जिनके, सात जातिके मुनि, सब मिलि तीन लाख तीस हजार कहे ॥ ६ ॥ आगे सुपार्श्वनाथके संघके, तीन लाख मुनि हैं। तामें चौदह पूर्वके धारी दोय हजार तीस यती हैं। सूत्र अभ्यासी शिष्य—मुनि, दोय लाख चवालीस हजार नौ सो वीस हैं। अवधिज्ञानी, नव हजार। केवली, ग्यारह हजार तीन सो। विक्रिया ऋद्धिके धारो पन्द्रह हजार डेढ़ सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, नव हजार छह सौ। वादित्र ऋद्धिके धारी, आठ हजार। ये सर्व, सात जातिके मुनि मिलकर तीन लाख, सातवें जिनके हैं ॥ ७ ॥ आठवें जिनके, अढ़ाई लाख मुनि हैं। तिनमें चौदह पूर्वके पाठी, दोय हजार हैं। सूत्र अभ्यासी शिष्य—मुनि, दोय लाख दश हजार च्यारि सौ। अवधिज्ञानके धारी, आठ हजार। केवली, दश हजार। विक्रिया ऋद्धिके धारी, च्यारि हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानके धारी, आठ, हजार।

वादित्र ऋद्धिके धारी सात हजर छह सौ। ये चन्द्रप्रभ—जिनके सात जाति के मुनि, अढ़ाई लाख कहे ॥ ८॥ आगे पुष्पदन्त-जिनके, दोय लाख मुनी हैं। तिनमें चौदह पूर्वके धारी, पन्द्रह सौ। सूत्रपाठी शिष्य-मुनि, एक लाख पैंसठ हजार पांच सौ। अवधिज्ञानके धारी, आठ हजार च्यारि सौ। केवलज्ञानी, साढ़े सात हजार। विक्रिया ऋद्धिके धारी, तीन हजार च्यारि सौ। विपुलमती मनः पयय ज्ञानी, पैंसठ सौ। वादित्र ऋद्धिके धारी, बहत्तरि सौ। ये नववें—जिनके, सात जातिके मुनि, सर्व मिलि, दोय लाख कहे ॥९॥ शीतल-नाथ के संघ सम्बन्धी मुनि, एक लाख। ता विषैं चौदह पूर्व के धारी, चौदह सौ। सूत्र अभ्यासी शिष्य मुनि, गुणसठि हजार दो सौ। अवधिज्ञानी, बहत्तरि सौ। केवली, सात हजार। विक्रिया ऋद्धिके धारी, बारह हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, पचहत्तर सौ। वादित्र ऋद्धिके धारी सत्तावन सौ। ये सर्व मिलि, दशवें-जिनके, एक लाख मुनि कहे ॥१०॥ आगे श्रेयांस-जिनके, चौरासी हजार मुनि। तामें चौदह पूर्व के धारी, तेरह सौ। सूत्रपाठी शिष्य मुनि, अड़तालीस हजार दोय सौ। अवधिज्ञानके धारी, छह हजार। केवलज्ञानी, साढ़े छह हजार। विक्रिया ऋद्धिके धारी, ग्यारह हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, चौवन सौ। बाकी वादित्र ऋद्धिके धारक हैं। ये चौरासी हजार यती, ग्यारहवें-जिनके कहे ॥११॥ वासुपूज्य-जिनके संघ के मुनि, बहत्तरि हजार बुद्धि-सागर यती हैं। केतेक, चौदह पूर्वके धारी हैं। केतेक, सूत्र अभ्यासी शिष्य मुनि। केतेक, अवधिज्ञानके धारी। छह हजार, केवली। विक्रिया ऋद्धिके धारी, दश हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, छह हजार। वादित्र ऋद्धिके धारी, व्यालीस सौ हैं। ये सात जातिके संघ सहित बहत्तरि हजार मुनि कहे ॥ १२ ॥ अड़सठ हजार यती, विमलनाथ-जिनके कहे। तहां चौदह पूर्वके धारी, ग्यारह सौ। सूत्रपाठी शिष्य जातिके मुनि, अड़तीस हजार पांच सौ। अवधिज्ञान के धारी, अड़ता-लीस सौ। केवली, पचपन सौ। विक्रिया ऋद्धिके धारी नौ हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, पचपन सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी मुनीश्वर छत्तीस सौ। ये सर्व जातिके मुनि अड़सठ हजार कहे ॥ १३ ॥ अ-नन्तनाथ के संघमें छयासठ हजार मुनि हैं। तामें चौदह पूर्व धारी एक हजार। सूत्र अभ्यासी शिष्य—

मुनि गुणसठ हजार पांच सौ। अवधिज्ञानी तियालीस सौ। केवलज्ञानी पांच हजार। विक्रिया ऋद्धिके धारी आठ हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी पांच हजार हैं। वादित्र ऋद्धिके धारी बत्तीस सौ। ये सात जातिके मुनि छयासठहजार कहे ॥१४॥ धर्म—जिनके यती चौंसठ हजार हैं। तामें चौदह पूर्व के धारी नौ सौ। शिष्य जातिके चालीस हजार सात सौ। अवधिज्ञानी छत्तीस सौ। केवली पैंतालीस सौ। विक्रिया ऋद्धिके धारी, सात हजार। विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानी, पैंतालीस सौ। वादित्र ऋद्धिके धारी, अट्ठाईस सौ हैं। ये सर्व मिलि, चौंसठ हजार, धर्म-जिनका मुनि—संघ कह्या ॥ १५ ॥ शांति—जिनके, बासठ हजार यती हैं। तिनमें चौदह पूर्वके धारी, आठ सौ। शिष्य जातिके मुनि, इकतालीस हजार आठ सौ। अवधि-ज्ञानी, तीन हजार। केवलज्ञानी, च्यारि हजार। विक्रिया ऋद्धिके धारी, छह हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, च्यारि हजार। वादित्र ऋद्धिके धारी, चौबीस सौ। ये बासठ हजार, सोलवें तीर्थंकरके मुनीश्वर कहे ॥ १६ ॥ कुन्थके, साठ हजार यती है। चौदह पूर्वके धारी, सात सौ। शिष्य जातिके मुनि, तेतालीस हजार डेढ़ सौ। अवधिज्ञानी, अढ़ाई हजार। केवलज्ञानी, दोय हजार आठ सौ। विक्रिया ऋद्धिके धारी, इक्या-वन सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, सैंतीस सौ पचास। वादित्र ऋद्धि धारी, दोय हजार। ये साठ हजार संघ, कुन्थ—जिनका कह्या ॥ १७ ॥ अरहनाथका संघ, पचास हजार है। तामें चौदह पूर्वके धारी, छह सौ दश। शिष्य जातिके मुनि, पैंतीस हजार आठ सौ पैंतीस। अवधिज्ञानी, अट्ठाईस सौ। केवलज्ञानी, अट्ठा-ईस सौ। विक्रिया ऋद्धिके धारी, तेतालीस सो। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, बीस सौ पचपन। वादित्र रिद्धिके धारी, सोलह सौ हैं। ये सर्व जातिके, पचास हजार मुनि हैं ॥ १८ ॥ अरु मल्लिनाथके, चालीस हजार यती हैं। तिनमें चौदह पूर्वके धारी, पांच सौ पचास। शिष्य जातिके, गुणतीस हजार। अवधिज्ञानी बाईस सौ। केवली, साढ़े छब्बीस सौ। विक्रिया रिद्धिके धारी, चौदह सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी बाईस सौ। वादित्र रिद्धिके धारी, बीस सौ। ये चालीस हजार संघ, मल्लि—जिनका कह्या ॥ १९ ॥ और मुनिसुव्रतके, तीस हजार यती हैं। तामें चौदह पूर्वके धारी, पांच सौ। शिष्य मुनि, इक्कीस हजार। अव-

धिज्ञानी, अठारह सौ। केवली, अठारह सौ। विक्रिया रिद्धिके धारी, बाईस सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, पन्द्रह सौ। वादित्र रिद्धिके धारी, बारह सौ। ये सात जाति मिलि, तीस हजार भये ॥ २० ॥ नमिनाथके, बीस हजार यती। चौदह पूर्वके धारी, साढ़े च्यारि सौ। शिष्य जातिके यती, तेरह हजार छह सौ। अवधिज्ञानी, सोलह सौ। केवली, सोलह सौ। विक्रिया रिद्धिके धारी, पंद्रह सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, साढ़े बारह सौ। वादित्र ऋद्धिके धारी, एक हजार हैं। ये बीस हजार यती, इक्कीसवें-जिनके कहे ॥२१ ॥ नेमिनाथके, अठारह हजार यती हैं। तिनमें चौदह पूव धारी, च्यारि सौ। शिष्य जातिके मुनि, ग्यारह हजार आठ सौ। अवधिज्ञानी, पंद्रह सौ। केवली, पन्द्रह सौ। विक्रिया ऋद्धिके धारी, ग्यारह सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, नौ सौ। वादित्र रिद्धिके धारी, आठ सौ। ये अठारह हजार यती, नेमि-जिनके कहे ॥ २२ ॥ पार्श्वनाथके, सोलह हजार यती हैं। तिनमें चौदह पूर्वके धारी, साढ़े तीन सौ। शिष्य जातिके मुनि, दश हजार नौ सौ। अवधिज्ञानी, चौदह सौ। केवली, एक हजार। विक्रिया रिद्धिके धारी, एक हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, साढ़े सात सौ। वादित्र रिद्धिके धारी, छह सौ। ये सोलह हजार यती, पार्श्वनाथ-जिनके कहे ॥ २३ ॥ महावीर-जिनके, चौदह हजार यती हैं। चौदह पूर्वके धारी, तीन सौ। शिष्य जातिके मुनि, नौ हजार नौ सौ। अवधिज्ञानी, तेरह सौ। केवली, सात सौ। विक्रिया रिद्धिके धारी नौ सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, पांच सौ। वादित्र रिद्धि धारी च्यारि सौ। ये चौदह हजार मुनि, वर्द्धमान-जिनके कहे ॥ २४ ॥ इति चौबीस—जिनके, मुनि–संघ, सात—सात प्रकार। आगे चौबीस–जिनके संघकी, आर्यिकाका प्रमाण कहिये है—तहां आदि-देवके संघकी आर्यिका, तीन लाख पचास हजार। अजितनाथकी, तीन लाख बीस हजार। संभव, अभिनंदन, सुमति, इन तीनोंकी तीन—तीन लाख, तीस—तीस हजार। पद्मप्रभकी, च्यारि लाख बीस हजार। सुपार्श्वनाथकी तीन लाख तीस हजार। चन्द्रप्रभ, पुष्पदंत, शीतल, ये तीन जिनकी, तीन—तीन लाख अस्सी--अस्सी हजार। श्रेयांसकी, एक लाख बीस हजार। वासुपूज्यकी, एक लाख छह हजार। विमल-जिनकी, एक लाख तीन हजार। अनंतनाथकी, एक लाख आठ हजार।

धर्मनाथकी, बासठ हजार च्यारि सौ। शांति-जिनकी, साठ हजार तीन सौ। कुंथकी, साठ हजार तीन सौ, अरहकी, साठ हजार। मल्लिनाथकी, पचपन हजार। मुनिसुव्रतकी, पचास हजार। नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, वर्द्धमान, इन च्यारि-जिनकी, यथायोग्य जानना। ये चौवीस-जिनके संघकी आर्यिकाका प्रमाण कह्या। आगे श्रावक-श्राविकाओंका प्रमाण कहिये है—तहां वृषभदेव से चन्द्रप्रभ पर्यंत, आठ तीर्थंकरनके समय, तीन लाख श्रावक भये। अरु पुष्पदंतसे लगाय, शांतिनाथ पर्यंत, दोय-दोय लाख श्रावक भये। और कुन्थ सूं लेय, महावीर पर्यंत, एक-एक लाख श्रावक। ए तौ श्रावक-संख्या कही॥ अब श्राविकाका प्रमाणतहां वृषभदेव तैं लगाय महावीर पर्यन्त, यथायोग्य श्राविका जान लेना॥ ऐसे चौवीस-जिनका संघ च्यारि प्रकार कह्या। आगे चौवीस-जिनके शिष्य, सिद्ध भये। तिनका प्रमाण अनुक्रम तैं कहिए हैं—तहां वृषभदेवके शिष्य, साठ हजार नौ सौ सिद्ध भए। अजित-जिनके, वहत्तरि हजार एक सौ। संभव—जिनके, एक लाख सत्तरि हजार एक सौ। अभिनन्दन—जिनके दोय लाख अस्सी हजार एक सौ। सुमतिनाथके, तीन लाख एक हजार छह सौ। पद्मनाथ के, तीन लाख तेरह हजार छह सो। सुपार्श्वनाथके दोय लाख पच्यासी हजार। चन्द्रप्रभके, दोय लाख चौंतीस हजार। पुष्पदन्तके, एक लाख गुन्यासी हजार छह सौ।शीतलनाथ के, अस्सी हजार छह सौ। श्रेयांस-जिनके, पैंसठ हजार छह सौ। वासुपूज्यके, चौवन हजार छह सौ। विमल—जिनके, इक्यावन हजार तीन सौ। अनन्त—जिनके, इक्यावन हजार। धर्मनाथ-जिनके, गुन्चास हजार सात सौ। शांतिनाथके, अड़तालीस हजार च्यारि सौ। कुंथ—जिनके छयालीस हजार आठ सौ। अरह-जिनके, तीस हजार दोय सौ। मल्लिनाथ—जिनके, अट्ठाईस हजार आठ। मुनिसुव्रत—जिनके, गुणतीस हजार दोय सौ नमि—जिनके, नौ हजार छह सौ। नेमि—जिनके, आठ हजार। पार्श्व—जिन के, छय हजार दोय सौ। और महावीर के शिष्य, सात हजार दोय सौ, मोक्ष गये। ये चौवीस-जिनके शिष्य, मोक्ष भये। तिनका प्रमाण कह्या। सो वृषभदेव तैं शांति पर्यन्त, सोलह तीर्थंकर सिद्ध लोक पधारे। तब तांई, तिनके शिष्य मोक्ष गये। भावार्थ-सोलह तीर्थंकरोंकौं जब तैं केवलज्ञान उपज्या। तब त लगाय,

निर्वाण भया तब तांई; तिनके शिष्य मोक्ष गये। अरु शेष आठ तीर्थंकरोंके शिष्य, निर्वाण पीछे, महिनामें, केई शिष्य दोय महिनामें केई च्यारि मासमेंकेई, वर्षमें, केई दोय वर्षादिक पीछे मोक्ष भये। ऐसे सब-जिनके शिष्यनकी मोक्ष जानना। आगे चौबीस-जिनका परस्पर अन्तर कहिये है-तहां वृषभदेव पीछे पचास लाख कोड़ि सागर काल व्यतीत भया, तब दूसरे अजितनाथ भये अजितनाथ तैं, तोस लाख कोड़ि सागर पीछे, तीसरे संभव-जिन भये। संभवनाथके पीछे दश लाख कोड़ि सागरके अन्तर तैं, चौथे अभिनन्दन-जिन भये अरु अभिनन्दन तैं, नव लाख कोड़ि सागर पीछे, सुमतिनाथ भये। अरु सुमतिके पीछे, नब्बे हजार कोड़ि सागर अन्तरालमें पद्मनाथ भये। पद्मनाथके पीछे नव हजार कोड़ि सागर अन्तर भये, सुपार्श्व भये। सुपार्श्वके पीछे नौ सौ कोड़ि सागर अन्तरकाल गये, चन्द्रप्रभ पीछे नब्बे कोड़ि सागर अन्तर गये, पुष्पदन्त हुए पुष्पदंतके पीछे नव कोड़ि सागर अन्तर भए, शीतल-जिन भए। शीतल-जिनके पीछे, अरु श्रेयांसनाथके बीचि अन्तर, छयासठि लाख बीस हजार वर्ष घाटि एक कोड़ि सागर। श्रेयांस-जिनके पीछे चौवन सागर अन्तर भए, वासुपूज्य-जिन भए। और वासुपूज्य पीछे, तेतीस सागर अन्तर तैं विमल-जिन भए। विमल पीछे, नो सागर अन्तर तैं, अनंत-जिन भए। अनन्तनाथ पीछे, आधा अल्प काल व्यतीत भए धमनाथ भए। धर्मनाथ पीछे, पौन पल्य घाट तीन सागर अन्तर भए शांतिनाथ भए। शांतिनाथ पीछे आधा पल्यका अन्तर भए कुन्थनाथ भए। कुन्थनाथ पीछे, हजार कोड़ि वर्ष घाट, पाव पल्य अंतर भए अरहनाथ भये अरहनाथ पीछे हजार कोड़ि वर्ष अंतर भए, मल्लिनाथ भये। मल्लिनाथ पीछे चौवन लाख वर्ष अंतर भये, मुनिसुव्रत-जिन हुए। मुनिसुव्रत पीछे, छह लाख वर्ष अन्तर भये, नमि-जिन हुए। नमिनाथ पीचे पचास लाख वर्ष अन्तर भए, नेमिनाथ भए। नेमिनाथ पीछे पौने चौरासी हजार वर्ष अंतर भये, पार्श्वनाथ भए। अरु पार्श्वनाथ पीछे, अढ़ाई सौ वर्षका अंतर पड़े वर्द्धमान-जिन भए। ऐसे चौबीस जिनके तेबीस अन्तराल कहे। सो महावीर मोक्ष पधारे, तब चौथे कालके तीन वर्ष साढ़े आठ महिना, बाकी थे। चौथा काल ब्यालीस हजार वर्ष घाटि एक कोड़ा-कोड़ी सागरका है। तहां ब्यालीस हजार वर्षमें इक्कीस हजार वर्षका पंचमकाल है। अरु इक्कीस

हजार वर्षका छट्ठा काल है। सो पंचमकालके अंत पर्यंत, महावीरका धर्म है छट्ठे कालमें, धर्मका अभाव है, इति चौवीस-जिन अंतर ॥ आगे धर्मका विरह-काल कहिए है-तहां बृषभदेवसूं लगाय, पुष्पदंत पर्यंत तो धर्म अखण्ड चल्या। कबहूं श्रावक कबहूं मुनि कबहूं केवलज्ञानी भया करैं। तिनके प्रसाद तैं धर्मोपदेश भया कर्‌या। अंतराल नाहीं पड़्या। पुष्पदंतके पीछे पाव पल्य तांईं धर्मका अन्तर भया। और शीतलनाथके पीछे आध पल्य तांईं, धर्मका विच्छेद भया। और श्रेयांस-जिन पीछे, पौन पल्य तांईं, धर्मका विच्छेद भया। वासुपूज्य पीछे, एक पल्य तांईं धर्मका विच्छेद हुआ। विमलनाथ-जिन भए। विमल-जिन पीछे पौन पल्य धर्मका अभाव भया पीछे अनन्तनाथ भए। अनन्तनाथ पीछे आध पल्य धर्मका विच्छेद भया। और धर्मनाथ पीछे पाव पल्य, धर्मका अभाव भया। ऐसे तीर्थंकरोंके अन्तरालमें च्यारि पल्य तांईं, मुनि अर्जिका, श्रावक, श्राविका, च्यारि संघका अभाव रह्या। जिन-धर्म मिट गया। जब तीर्थंकर प्रगटे, तब फेरि धर्म चल्या। ऐसा अन्तर भया। और प्रथम तैं आठ तीर्थंकरोंके समय, निरंतर धर्म रह्या। और पहिले तीर्थंकर तैं लगाय सात तीर्थंकर पर्यंत, तौ केवलज्ञान रूपी संपदा, निरंतर चली आई। केवलज्ञानका कबहूं अन्तर नहीं भया। चन्द्रप्रभ पीछे, नव्वे केवली भये। बाकी कालमें केवली नहीं रहे, मुनि ही रहे। पुष्पदंतके पीछे भी, नव्वे केवली भये। शीतलनाथके तीर्थमें चौरासी केवली भये। श्रेयांस पीछे इनके तीर्थमें ७२ केवली भये। वसुपूज्य पीछे, इनके तीर्थमें चवालीस केवली भये। विमलनाथ पीछे इनके तीर्थमें, चालीस केवली भये। अनन्तनाथ पीछे छत्तीस केवली भये। धर्मनाथ पीछे बत्तीस केवली भये। कुन्थनाथ पीछे, चौबीस केवली भये। अरहनाथ पीछे सोलह केवली भये। मुनिसुव्रत पीछे बारह केवली भये। नमि पीछे, आठ केवली भये। नेमि पीछे, च्यारि केवली भये। पार्श्वनाथ पीछे तीन केवली भये। महावीर पीछे तीन केवली भये। ऐसे चौवीस तीर्थंकरोंके पीछे, जेते-जेते केवली भये, तिनकी संख्या कही सो जहां लूं दूसरे तीर्थंकर नहीं उपजे, तेते काल पहिले तीर्थंकरका वारा (तीर्थ) कहिये। जैसे प्रथम तीर्थंकर पीछे अजितनाथ उपजे, तब लौं पचास लाख कोड़ि सागर, प्रथम-जिनका काल समझना।

ऐसा सर्वत्र जानना। महावीर पीछे बासठ वर्षमें तीन केवली भये। तिनके नाम-गौतम गणधर केवली, सुधर्माचार्य केवली और तीसरे जम्बूस्वामी अन्तके केवली भये। यहां तैं आगे केवली नाहीं। इन जम्बूस्वामी पीछे, सौ वर्षमें ग्यारह अङ्ग, चौदह पूर्वके पाठी आचार्य हुए। जिनके नाम सुनहु-विष्णु, नन्दमित्र, अपराजित गोवर्धन और भद्रबाहु। ए पांच आचार्य, महा बुद्धि सागर, सर्व श्रुतके पाठी भये। और इनके पीछे एक सौ तिरासी वर्षमें ग्यारह आचार्य और होंयगे सो ग्यारह अंग अरु दश पूर्वके पाठी होंगे। तिनके नाम-विशाख प्रोष्ठल, क्षत्रिय, जयसेन, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतषेण, विजय, बुद्धिमान, गंगदेव, और धर्मसेन। इनके आगे, पूर्वनके पाठी नाहीं। इन आगे दोय सौ बीस वर्षमें पांच आचार्य, ग्यारह अंगके पाठी होंयगे। तिनके नाम-निषध, जयपाल, पाण्डव, ध्रुवसेन, और कंस इन तांईं ग्यारह अंगका ज्ञान रहेगा। आगे इनके पीछे, सुभद्राचार्य, यशोभद्राचार्य, भद्रबाहु आचार्य, लोहाचार्य ए च्यारि मुनि, एक सौ अठ्ठारह वर्षमें एक आचारांगके पाठी होंयगे। इन आगे, अंगनका ज्ञान नाहीं। आगे कहे महावीरके गणधर ग्यारह तिनकी आयु कहिए है—पहिले गणधरको आयु, बानवै वर्ष है। दूसरेकी, चौरासी वर्षकी है। तीसरे की आयु, अस्सी वर्ष। चौथेकी, सौ वर्ष। पांचवेंकी, तियासी वर्ष। छटवेंकी पिचासी वर्ष। सप्तमकी अठत्तर वर्ष। अष्टमकी, ७२ वर्ष। नववेंकी ६० वर्ष। दशवेंकी, ५० वर्ष। और ग्यारहवेंकी, ४०। ये गणधरनकी आयु कही। ऐसे चौबीस-जिनका-संघ कह्या। आगे जब तीजे कालमें, पल्यका अष्टम भाग बाकी रह्या, तब चौदह कुलकर भये। तिनके नाम-प्रतिश्रुत, सन्मति, क्षेमंकर क्षेमंधर सीमंकर सीमंधर, विमलवाहन, चक्षुष्मान यशस्वी, अभिचन्द्र चन्द्राभ, मरुदेव प्रसेनजित और नाभिराय। अब इनकी आयु-कायादिक रचना कहिये है तहां पहिला कुलकर प्रतिश्रुत, ताकी अट्ठारह सौ धनुष काय। इनके समय ज्योतिषी जातिके कल्पवृक्षनकी ज्योति कछू मन्द भई। सो सूर्य—चन्द्रमा दीखते भये। तिनकूं देख, प्रजा डरी। जो ये कहा है? तब कुलकर तैं पूछी हे प्रभो! ये कहा! अबतक कभूं नहीं दीखे, सो ये हमारा कहा करैंगे, सो कहो। तब कुलकर महा विवेकी सर्व कूं सम्बोधे। कही-भय मति करो। ये ज्योतिषी देवनके इन्द्र हैं। इनके विमान, अनादि-निधन

हैं। अब ताईं, कल्पवृक्षन की प्रभा तैं नहीं दीखते थे सो अब वृक्षनकी ज्योति मंद भई तातैं दीखे। खेद-कारी नाहीं। ऐसे संबोध, प्रजा कौं सुखी किया ॥ १ ॥ दूसरे कुलकर की काय १३०० धनुष। इनके काल में, ज्योतिषी जातिके कल्पवृक्षन की प्रभा, मंद भई। तब तारा-नक्षत्रनके विमान दीखे। तिनकूं देख, भोरी दुनियां डरी। तब जाय कुलकर पै पूछी। तब कुलकरने सर्व भेद बताया सुखी किये। तातैं: सन्मति नाम भया ॥ २ ॥ तीसरे कुलकरकी काय, आठ सौ धनुष। याके समय सिंहादिक जीव क्रूर भये। तिनकूं देख, भोरे लोक डरते भये। तब कुलकर कूं पूछी। प्रभो अब ताईं इन जीवनतैं रमै थे सो नाना सुख होय था। अब ये भय करि, मारैं हैं। तब कुलकर लोकन कूं भोरे-सरल परिणामी जानि कही। तुम इनका विश्वास मति करौ। लष्ट-मुष्ट तैं निवारौ। ऐसे कह सुखी किये। सो इनका नाम, क्षेमङ्कर कह्या ॥ ३ ॥ और चौथे कुलकरके समय, शरीर की उतंगता, सात सौ पचहत्तरि धनुष है। याके समय सिंहादिक जीव क्रूर भये। तब कुलकर कही तुम लाठी राखौ। आवै तब मारौ। विश्वास मति करौ। काल दोष तैं, आगे विशेष क्रूर होंयगे। ऐसे उपाय बताय सुखी किये। तातैं क्षेमंधर नाम भया॥ ४ ॥ पंचम कुलकरके समय, काय सात सौ पचास धनुष रही। कल्पवृक्ष घटि चले। कोऊके कैसा कल्पवृक्ष नाहीं, कोऊ कैसा नाहीं। इसमें परस्पर खेद करते भये। तब कुलकर पै गये। सो कुलकर ने, अपनी-अपनी सीमा बताय दई। जो अपने-अपने क्षेत्रमें होय सो भोगौ। और दूसरेकी सीमाका, ताकी आज्ञाके विना मति लावौ। आपस में याच लेव। जो फल जाके नहीं होंय सो वापै लोनों और वांकें जो फल नहीं होंय, सो वाकौं दीये। ऐसे उपाय कर सीमा बांधी। तातैं सीमंकर नाम पाया ॥ ५ ॥ छट्ठे कुलकरकी काय, सात सौ पचीस धनुष है। इनके समय, कल्पवृक्ष विशेष घटि चले। तब परस्पर लोग खेद करि कषाय रूप होने लगे। तब कुलकर ने, अपने-अपने कल्पवृक्षके चिन्ह कर दिये सो जो जाके चिन्हका है सो ही भोगै। तातैं इनका नाम, सीमंधर भया ॥ ६ ॥ सातवें कुलकर की काय की ऊंचाई, सात सौ धनुष की थी। याने लोकन कूं, हस्ती-घोटकन की असवारी बताई। तातैं इनका नाम, विमलवाहन भया॥ ७ ॥ आठवे कुलकरका शरीर छह सौ पचत्तरि

धनुष है। इनके समय माता-पिता, बालकका मुख देख मरण करते भये। पहिले माता-पिता पुत्रका मुख नहीं देखै थे। सो अष्टम कुलकर तैं देखते भये ॥ ८ ॥ और नवबैं कुलकरका शरीर छह सौ पचास धनुष भया। याके समय माता-पिता बालक भये पीछे केतेक काल जीवते भये ॥ ९ ॥ दशवैं कुलकर का शरीर छह सौ पच्चीस धनुष भया। याके समय माता—पिता बालकन कूं लेकर चन्द्रमादि की समस्या करि रमावते भये ॥ १० ॥ और ग्यारहवें कुलकर का शरीर छह सौ धनुष भया। याके समय में परिवार सहित लोक बहुत जीवते भये ॥ ११ ॥ बारहवें कुलकर का शरीर पांच सौ पचत्तरि धनुष है। अब लोग पुत्र सहित सुखी होते भये ॥ १२ ॥ और तेरहवें कुलकर का शरीर पांच सौ पचास धनुष ऊंचा था। ता समय बालक जर सहित उपजते भये। ताहि देख लोग डरे। तब कुलकर कूं जर सहित बालक दिखाया। सो याने जरा—छेदने की विधि बताई ॥ १३ ॥ और चौदवों कुलकर नाभि राय भये। सो इनके समय बालक नाभि (नाल) सहित होने लगे। तब-नाभि छेदवे को कला इनने बताई। तातें नाभिराय भये। इनका शरीर पांच सौ पच्चीस धनुष भया ॥ १४ ॥ ऐसे चौदह कुलकर महा बुद्धिमान् इनमें स्वमेव ही अनेक कला-चतुराई होय। महा सौम्यदृष्टी, मंद-कषायी होंय। ऐसे पल्यके आठवें भाग कालमें, कुलकर चौदह भये। पीछे तीसरे कालके तीन वर्ष साढ़े आठ महिना बाकी रहे तब श्री आदिनाथ का निर्वाण-कल्याणक भया। चौथे कालके तीन वर्ष साढ़े आठ महिना बाकी रहे, तब अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामीका निर्वाण कल्याणक भया। महावीरके मोक्ष गये पीछे इक्कीस हजार वर्षके पंचमकालमें इक्कीस कलंकी होंयगे। इनके बीचि, इकईस उपकलंकी होंयगे। भावार्थ-इक्कीस हजार वर्षका पंचमकाल है। तामें हजार वर्ष भये एक कलंकी होंयगे। ता पीछे पांच सौ वर्ष पीछे एक उपलंकी होंयगे। ता पीछे पांच सौ वर्ष गये एक कलंकी होंयगे। ऐसे हजार हजार वर्ष गये कलंकी हजार हजार वर्ष गये उपकलंकी जानना। बहुत उपद्रवी, घने-क्षेत्रके धर्म-घातक होंय, सो कलंकी कहिये। अरु अल्प-क्षेत्रके धर्म-घातक होंय सो उपकलंकी कहिये। सो कलंकी-उपकलंकी सब ही पापांधकारके उदय करवे कौं रात्रि समान होंयगे। इनके राज्यमें

धर्मरूपी सूर्यका प्रकाश; मिट जायगा। पापका अधिकार रहेगा सो पाप-मूर्ति, धर्मके घातक फल तैं, अशुभ गति गमन करेंगे। ऐसे कुलकर व कलंकी कथन कह्या ॥ आगे बारह चक्रवर्तीन की आयु कहिये हैं-तहां भरत चक्रीकी आयु चौरासी लाख पूर्वकी। तामें कुमारकाल सतत्तर लाख पूर्व है। महासमण्डलेश्वर पदका राज्य चालीस हजार वर्ष। पीछे चक्ररत्न उत्पन्न भया। पीछे दिग्विजय, साठ हजार वर्ष। राज्य एक लाख वर्ष घाटि, छह लाख पूर्व। संयमकाल, अन्तर्मुहूर्त। केवलज्ञान सहित किंचित ऊन एक लाख पूर्व रह के सिद्ध भए॥ १ ॥ दूसरे सगर चक्री की आयु बहत्तरि लाख पूर्व। तामें इनका कुमारकालादि यथायोग्य जान लेना ॥ २ ॥ तीसरा चक्री मघवा नाम। ताकी आयु पांच लाख वर्ष। तामें कुमारकाल, पच्चीस हजार वर्ष। मण्डलेश्वर पद, पच्चीस हजार वर्ष। पीछे चक्र लाभ भए दिग्विजय, दश हजार वर्ष। राज्य, तीन लाख नव्वे हजार वर्ष। संयमकाल, पचास हजार वर्ष बाद, स्वर्गलोक गए॥ ३ ॥ चौथे चक्री, सन्तकुमार। ताकी आयु, तीन लाख वर्ष। तामें कुमारकाल, पचास हजार वर्ष। मण्डलेश्वर पद पचास हजार वर्ष। पीछे चक्र लाभ तैं दिग्विजय, दश हजार वर्ष। राज्यावस्था, नव्वे हजार वर्ष। संयमकाल, एक लाख वर्ष। पीछे स्वर्ग गमन किया ॥ ४ ॥ पंचम शान्तिनाथ-जिन, चक्री। तिनकी आयु एक लाख वर्ष। तामें कुमारकाल, पच्चीस हजार वर्ष। मण्डलेश्वर पद, पच्चीस हजार वर्ष। दिग्विजय आठ सो वर्ष। चक्री पद, चौवीस हजार दोय सौ वर्ष। संयमकाल, सोलह वर्ष। सोलह वर्ष घाटि पच्चीस हजार वर्ष, समोशरण सहित विहार किया। पीछे सिद्ध भए॥ ५ ॥ छट्ठे कुंथनाथ—जिन चक्री। तिनकी आयु, पंचाणवे हजार वर्ष। तामें कुमारकाल, पोने चौवीस हजार वर्ष। मण्डलीक राज्य पद, पौने चौवीस हजार वर्ष। दिग्विजय, छह सो वर्ष। चक्री पद, तेवीस हजार डेढ़ सौ वर्ष। संयमकाल, सोलह वर्ष। केवल अवस्था, सोलह वर्ष घाटि पौने चौवीस हजार वर्ष। पीछे मोक्ष गये ॥ ६ ॥ सातवें अहरनाथ—जिन, चक्री। तिनकी आयु, चौरासी हजार वर्ष। तामें कुमारकाल, इक्कीस हजार वर्ष। मण्डलीक राज्य पद, इक्कीस हजार वर्ष। दिग्विजय, च्यारि सौ वर्ष। चक्री पद, वीस हजार छह सौ वर्ष। संयमकाल, सोलह वर्ष। सोलह वर्ष घाटि, इक्कीस हजार वर्ष,

केवलज्ञान सहित उपदेश दिया। पीछे लोक शिखर विराजे॥ ७॥ आठवां चक्री, सुभूमि। ताकी आयु, अड़सठ हजार वर्ष। तामें कुमारकाल, पांच हजार वर्ष। और दिग्विजय, पांच सौ वर्ष। चक्री पद, बासठ हजार पांच सौ वर्ष। अरु यह बाल्यावस्थामें, परशुरामके भय तैं सन्यासीनके आश्रम विषैं गोप रहे। तातैं बैराग्य नहीं भया। राज्यावस्थामें मरण किया सो महातम नाम, सप्तम लोक-पातालमैं पधारे॥ ८॥ नौवें, महा पद्म चक्री। ताकी आयु, तीस हजार वर्ष। तामें कुमारकाल, पांच सौ वर्ष। मण्डलीक पद, पांच सौ वर्ष। तीन सौ वर्ष, दिग्विजय। चक्री पद, अट्ठारह हजार सात सौ वर्ष। संयमकाल, दश हजार वर्ष। याहीमें मुनिपद अरु केवलपद पाय, पीछे सिद्ध भये॥ ९॥ दशवें सुषेण चक्री। तिनकी आयु, छब्बीस हजार वर्ष। तामें कुमारकाल, सवा तीन सौ वर्ष। दिग्विजय, डेढ़ सौ वर्ष। चक्री पद, पच्चीस हजार एक सौ पचत्तरि वर्ष। संयमकाल, साढ़े तीन सौ वर्ष। तामें दीक्षा अरु केवलज्ञान दोऊ आय गये। पीछे मोक्ष गये॥ १०॥ ग्यारहवें जयसेन चक्री। तिनकी आयु, चौबीस सौ वर्ष। तामें कुमार-काल, सौ वर्ष। दिग्विजय, सौ वर्ष। चक्री पद-राज्य, अट्ठारह सौ वर्ष। संयम-काल, केवलज्ञान सहित च्यारि सौ वर्ष॥ ११॥ बारहवां ब्रह्मदत्त चक्री। ताकी आयु, सात सौ वर्ष। ये चक्री नेमिनाथके पीछे, अरु पार्श्वनाथके पहिले, इस अंतरालमें भये। सो इनका कुमारकाल, अट्ठाबीस वर्ष। मण्डलीक पद, छप्पन वर्ष। दिग्विजय, सोलह वर्ष। चक्री पदका राज्य, छह सौ वर्ष। इन्हो ने दीक्षा नहीं लीनी। राज्यपदमें मरण करि, सप्तमी माघवी-धरा पधारे॥ १२॥ यह बारह चक्रीकी, आयुकी, विगत कही। सो इनमें, आठ चक्री तो सिद्ध भये। दोय, स्वर्ग लोक गए। दोय पाताल-धरा पधारे। आगे नव, अर्द्ध चक्रीनका कथन कहिए है—प्रथम वासुदेव-त्रिपिष्टको आयु, चौरासी लाख वर्ष। तामें कुमारकाल पच्चीस हजार वर्ष। दिग्विजय काल एक हजार वर्ष। अरु राज्यपद तियासी लाख चुहत्तर हजार वर्ष॥ १॥ दूसरा वासुदेव-द्विपिष्ट। ताकी आयु बहत्तरि लाख वर्ष। तामें कुमार-काल पच्चीस हजार वर्ष। मण्डलेश्वर पदका राज्य पच्चीस हजार वर्ष। दिग्विजयका काल सौ वर्ष। अरु वासुदेव पद इकत्तरि लाख गुणचास हजार नौ सौ वर्ष॥ २॥ तीसरा वासुदेव स्वयम्भू। ताकी

आयु साठ लाख वर्ष। ताका कुमारकाल पच्चीस सौ वर्ष। अरु मण्डलीक पद पच्चीस सौ वर्ष। दिग्विजय नव्वे वर्ष। अरु तीन खंडका राज्य गुणसठि लाख चौरानवै हजार नव सौ दश वर्ष ॥३॥ अरु चौथा वासुदेव पुरुषोत्तम। ताकी आयु तीस लाख वर्ष। तामें कुमार-काल सात सौ वर्ष। मण्डलीक राज्य-पद तेरा सौ वर्ष। दिग्विजय अस्सी वर्ष। तीन खण्डका राज्य गुणतीस लाख सत्यानवे हजार नव सौ बीस वर्ष ॥ ४ ॥ पंचम वासुदेव सुदर्शन। ताकी आयु दश लाख वर्ष। तामें कुमार-काल तीन सौ वर्ष। मण्डलीक पद सौ वर्ष। दिग्विजय सत्तरि वर्ष। और चक्री पद नौ लाख निन्यावे हजार पांच सौ तीस वर्ष ॥ ५ ॥ और छठा, पुण्डरीक वासुदेव भया। ताकी आयु पैंसठ हजार वर्ष। तामें कुमार-काल, अढ़ाई सौ वर्ष। मण्डलीक पद, अढ़ाई सौ वर्ष। दिग्विजय, साठ वर्ष। तीन खण्डका राज्य, चौंसठ हजार च्यारि सौ चालीस वर्ष ॥ ६ ॥ और सातवां, दत्त नाम नारायण। ताकी आयु बत्तीस हजार वर्ष। तामें कुमार-काल, दोय सौ वर्ष। मण्डलीक पद पचास वर्ष। दिग्विजय, पचास वर्ष। तीन खण्डका राज्य, इकतीस हजार सात सौ वर्ष ॥ ७ ॥ और आठवां वासुदेव लक्ष्मण। ताकी आयु बारह हजार वर्ष। कुमार-काल, सौ वर्ष। दिग्विजय काल, चालीस वर्ष। अरु राज्य काल, ग्यारह हजार आठ सौ साठ वर्ष ॥ ८ ॥ और नववां वासुदेव, कृष्णदेव। ताकी आयु, एक हजार वर्ष। तामें कुमार-काल, सोलह वर्ष। मण्डलीक पद छप्पन वर्ष। दिग्विजय आठवर्ष। अरु वासुदेव पद,का राज्य, नौ सौ वीस वर्ष ॥९॥ ये नव वासुदेवकी आयुका विस्तार कह्या। आगे आठवें, नववें नारायण के पिता-दादादिक पुरुषन के नाम। इन के पुत्रन के नाम। इन के समय जो बड़े-बड़े महान राजा भये, तिनके नाम कहिये हैं। आठवें नारायणकी तीन पीढ़ी कहिये हैं— तहां आगे अनेक राजान करि वन्दनीक, सूर्य समानि तेज का धारी, प्रजा का माता-पिता महा न्यायवान्, रघु राजा भया। तिन तैं रघुवंश प्रगट भया। ताके वंशमें, बड़े-बड़े राजा भये। सो प्रजा-पालक, न्यायके प्रभाव तैं, तिनका यश प्रगट भया। पीछे सांसारीक सामग्री विनाशीक जानि, पुत्रनकूं पुरदेशनका राज्य सौंप दीक्षा धरि-धरि, स्वर्ग-मोक्षकूं गये। ऐसे अनेक राजा भये। तिनके पीछे राजा अनिरन्य

भये। सो न्यायके सूर्य प्रजारूपी कमलकूं सूर्य समान आनन्दकारी, तिनकैं राजा दशरथ, यशकी मूर्ति होते भये। सो ए, राजा अनिरन्यके पुत्र राजा दशरथ, महा प्रतापी भये। जिनके तेजके आगे, बैरी रूपी सरोवर सूखते भये। महा न्यायका जहाज भया। पीछे दशरथजीके च्यारि महादेवी, परमसती, देवीनके रूपकूं जीतनहारी, रानी होती भई। तिन रानीके नाम कौशल्या, सुमित्रा, कैकई, और सुप्रभा। ये च्यारि महा भागवन्ती रानी, इनके च्यारि पुत्र भये। सो कौशल्याके गर्भ तैं तौ, श्रीरामचन्द्रजीका अवतार भया सो बलभद्र भये। सुमित्राके गर्भ तैं, श्री लक्ष्मण कुमार अवतार पावते भये सो ए नारायण भए। कैकईके गर्भ तैं, भरत नाम कुमार भए। सुप्रभाके गर्भ तैं शत्रुघ्न कुमार अवतरते भए। ए च्यारौं पुत्र, न्यायके जहाज पृथ्वी, रूपी मन्दिरके स्तंभनकूं, च्यारि स्थंभ ही होते भए। और श्रीरामचन्द्रके दोय पुत्र भए। तिनके नाम लव, और अंकुश इन दोय पुत्रनने, सीताजीके गर्भ तैं अवतार पाया। ए रघुवंशी कहाए इति रघुवंश आगे इन रामलक्ष्मणके समयमें जो-जो रावणादि राजा भए। तिनकी परम्पराय (वंश) कहिए है-तहां भीम नाम राक्षसने मेघवाहनकूं, पूर्व-भवका पुत्र जानि, लंका, पाताल लंका, राक्षस-विद्या, और नव रतनका हार दिया। पीछे, अनेक राजा भए। ता पीछे राक्षस नाम राजा भया। इनने राक्षसवंश चलाया। पीछे अनेक राजा भए। सो यह विद्याधरनका वंश, आकाश समान निर्मल तामें महा प्रतापी राजा सुकेत भए। ता सुकेतके, तीन पुत्र भए। माली-सुमाली और माल्यवान्। सो माली तौ, इन्द्र नाम विद्याधरसे युद्धमें माऱ्या परया। और सुमालीके, रत्नश्रवा नाम पुत्र भया सो वंशका उजागर, तानै न्याय सहित राज्य किया। अरु रत्नश्रवाकी पट्टरानी केकसीतके उदर तैं तीन पुत्र भए। दश मुख, कुंभकर्ण, चंद्रनखा पुत्री, पीछे विभीषण पुत्र भया। ए तीन पुत्र और एक पुत्री, रत्नश्रवाके भए। सो ए तीनों भाई देव समान रूप, गुण व पराक्रमके धारी भए। रावणके दोय पुत्र इन्द्रजीत मेघनाद, मंदोदरीके गर्भ तैं भए। मंदोदरीका पिता राजा मय, महा सामंत, अनेक विद्याधरनका नाथ भया और मेघप्रभा नाम विद्याधर ताके पुत्र खरदूषणने, रावणकी बहिन चन्द्रनखाकौं, बलात्कार हरी। पीछे चन्द्रनखाकूं, खरदूषणने परणीं यह खरदूषण भी महा योद्धा है। अरु चन्द्रोदय राजाका पुत्र

विराधित, सो रावणका महा सामंत है। और विजयार्द्ध पर रथनूपुर, इन्द्र लोक समान पुर है सो ताका राजा संश्रार है। ताके इन्द्र नाम पुत्र भया सो महा वली भया। ताने अपने सेवक विद्याधरनकौं, देवनके नाम थापे। और अपना नाम इन्द्र धरया। उस महाबलीने, रावणके दादा मालीकूं, युद्ध में मारया। ता पीछे रावण महा प्रतापी, पराक्रमी भया सो अपने दादाका वैर लेवेकूं, इन्द्रसूं युद्ध किया सो युद्धमें जीत्या। ता इन्द्रकूं, जीवता ही पकड़ि ल्याया। पीछे कही, मेरे घर पानी भरौ, तौ छोडूं। तव इन्द्र नाम विद्याधरने, मान तजि कही, भरूंगा। ऐसी कही, तव इन्द्रकूं रावणने तज्या सो इन्द्रने संसार तैं उदास होय, राज्य तजि, दीक्षा धरी। नाना तप किए। जक्षपुरका वैश्रवा नाम राजा। ताके कौशकी पट्टरानी महा सती। ताके गर्भ तैं वैश्रवण नामा पुत्रका अवतार भया सो राजा इन्द्रका मुख्य सेवक सो इन्द्रके संग, यतीश्वर भया। ऐसे इन्द्र रावणका संबंध जानहु। ए राक्षसवंशी रावण है। राक्षस-देव नाहीं। रावण मनुष्य है। आगे, विद्याधरोंमें वानरवंशी हैं तिनकी कथा सुनौ-आगे श्रीकंठ नाम विद्याधर भए। तिनने समुद्रके टापूमें वंदर-द्वीप वसया। ता श्रीकण्ठके कुलमें, राजा अमरप्रभ भए। तिनने ध्वजामें वन्दरका चिन्ह कराया। इससे वन्दर-वंशी प्रसिद्ध भए। पीछे अमरप्रभके कुलमें, कहकन्द नामा राजा भए सो कहकन्दके दोय पुत्र भए। सो एकका नाम सूरजरज, अरु दूसरेका ऋष्यरज। सूरजरजकौं, वालि अरु सुग्रीव, ए दोय पुत्र भए। अरु रिष्य-रजके, नल अरु नील भए। अरु सुग्रीवके, अङ्ग अरु अंगद, ए दोय पुत्र भए। ए सुग्रीवका वंश कह्या। और इस ही वंश विषैं, राजानका राजा, महा तेजस्वी, अनेक विद्याधरनका नाथ राजा प्रहलाद भया। ताके पुत्र महा पुण्याधिकारी, पवन समान महा वलवान्, राजा पवनंजय भए। तिन पवनंजयके, अञ्जनाके गर्भ तैं महा बड़भागी, चरमशरीरी, हनुमान पुत्र भए। सो कामदेव भए। ए वन्दर-वंशीनका कुल कह्या। ए मनुष्य, महा रूपवान राजा हैं। वन्दर नाहीं हैं। इनका वंश, वन्दर है। ऐसा जानना। ऐसे वन्दर-वंश कह्या॥ इति आठवें नारायणके समयका कथन, सामान्य कह्या। इनका विशेष, श्रीपद्मपुराणजी तैं जानना। आगे नववें नारायण व वलभद्रके कुलकी पट्टावली, तथा इनके समय भये महान् राजा पाण्डवादिक तिनकी उत्पत्ति

कहिये है। तहां मुनिसुव्रत स्वामीका कुल हरिवंश तामें अनेक कुल-मंडन भये। ता पीछे महाप्रतापी राजा
यदु भये। इन तैं यदुवंश प्रगट्या। तिनके कुलमें, राजा नरपति भये। तिनके दोय पुत्र भये। एक शूर, दूसरे
सुवीर। सो शूरके, अन्धकवृष्टि नाम पुत्र भये। और सुवीरके, भोजकवृष्टि भये। सो अन्धक बृष्टिके दश
पुत्र भये। तिनमें बड़े पुत्रका नाम तो, समुद्रविजय है। अरु सब तैं छोटेका नाम, बसुदेव है। भोजकवृष्टिके
तीन पुत्र भये। उग्रसेन, महासेन, और देवसेन सो उग्रसेनके, कंस नाम पुत्र भया। अरु देवसेनके, देवकी
नाम पुत्री भयी। समुद्रविजयकैं, जगत-गुरु नेमिनाथ, अवतार लेते भये। सो तप लेय, मोक्ष गये। अरु
बसुदेवके, पद्म नाम बलभद्र, नारायण कृष्णदेव, जरत्कुमार, और गजकुमार, ये च्यारि पुत्र भये और कृष्ण
महाराजके प्रद्युम्न, शम्भुकुमार और भानुकुमार ये तीन पुत्रभये और अन्धकवृष्टिके, कुन्ती अरु माद्री ए
दोय पुत्री भई। ऐसे राजा यदुका वंश सामान्य कह्या। इति यदुबंश॥ आगे कौरव-पांडव वंश कहिए है। तहां
कुरुवंशीनमें, आगे शांतिक नाम राजा भए। तिनकी शिवकी नाम, महासती रानी भई। ता शिवकीके गर्भ तैं,
पाराशर नाम महा-प्रतापी राजा भए। तिनके, गंगा नाम स्त्री होती भई। सो ए, राजा गंगाधरकी पुत्री है।
इस गंगाके गांगेय पुत्र भया। सो ए गांगेय, महा न्यायी, बाल-ब्रह्मचारी भए पाराशरको दूसरी रानी, धीवरके
घर पलती गुणवती नाम राजकन्या, पाराशरने व्याही। ता गुणवती धीवर पुत्री, ताकैं व्यास नाम राजा अव-
तरे सो ए महा गुणवान राजा भए। तिनके सुभद्रा नाम रानी भई। ताके गर्भ तैं, व्यास राजाके तीन पुत्र
भए। धृतराष्ट्र, पाण्डवकुमार और विदुर। सो धृतराष्ट्रके दुर्योधन, दुश्शासनादि पुत्र भए। पाण्डवने, अन्ध-
कवृष्टिजीको, कुन्ती और माद्री ए दोय पुत्री परणी। सो कुन्तीके, च्यारि पुत्र भए। सो बड़े तौ कर्ण, सो
इनको बालपनेमें संदूकमें धरि जलमें बहाए थे॥ सो चन्द्रपुरीमें, राजा सूर्यके यहां पले। ए गुप्त भए थे। तातैं
पर घर पले। पीछे कुन्तीके, तीन पुत्र और भए। युधिष्ठिर, भीम, और अर्जुन। अरु माद्रीके नकुल सहदेव
ए दोय भए। अरु अर्जुनके, अभिमन्यु नाम पुत्र भया। ऐसे कौरव पाण्डवनकी उत्पत्ति कही। इति पाण्डव-
वंश, सामान्य कथन॥ आगेद्रोणाचार्यकी वंश-पट्टावली कहिए है। तहां वंश तौ भार्गव है। तामें वामदेव,

महा विद्यातिलक भए। ताकैं, कापिष्ठल-पुत्र भया। तिनकैं यशस्थामा पुत्र भया। ताकैं, श्रवर नाम पुत्र भया। ताकैं, सरासर नाम पुत्र भया। ताकैं द्रावण नाम पुत्र भया। ताकैं विद्रावण पुत्र भया। ताकैं, द्रोणाचार्य भए, ताकैं अश्वत्थामा पुत्र भया। इति द्रोणाचार्य कुल ॥ आगे जरासिन्धुकी पट्टावली कहिए है—हरिवंशके वसुके मगधदेशका राजा निहलशत्रु भया। तिनके राजा सतिपति भए। तिनके, वृहद्रथराजा भए। तिनके, राजा जरासिंधु और अपराजित राजा भए। सो जरासिंधु नववां प्रतिहर भया। ताकै, कालयमन पुत्र भया। यह जरासिंधुका वंश कह्या। इति नववें नारायणके समयके पुरुषनका कथन ॥ आगे सगर चक्रीका वंश कहिए है। तहां इक्ष्वाकु तो वंश है। आदि-जिनके पीछे, असंख्यात राजा भए। ता पीछें, राजा धरणीधर तिनके, तिरयशजय भये। तिनके पुत्र, जितशत्रु और विजयसागर ये दोय भए। सो जितशत्रुके तो अजितनाथ भए। अरु दूसरे भाई, विजयसागरकैं, सगर चक्री भए। तिनके, साठ हजार पुत्र भए। और भागीरथजी भये। ऐसा जानना। ए सगर-वंश ॥ ऐसे महान् पुरुषोंकी परिपाटी कही। सो भव्यनकूं मंगलकारी होऊ ॥ आगे ग्यारह रुद्रनका कथन कहिए है। तहां प्रथम भीम नामा रुद्र है। सो आदिनाथके समय भए। ताकी आयु, तियासी लाख पूर्वकी है। शरीरकी ऊंचाई, पांच सौ धनुष है ॥ १ ॥ दूसरा जयतिशत्रु नाम। सो अजितनाथके समय भया। इनकी आयु, इकत्तरि लाख पूर्व। शरीरकी ऊंचाई साढ़े च्यारि सौ धनुष है ॥२॥ तीसरा, नववें तीर्थंकरके समय भया, सो रुद्र नामका रुद्र है। इनकी आयु, दोय लाख पूर्वकी है। काय, सौ धनुष है ॥३॥ चौथा रुद्र, विश्वानल है। सो दशवें तीर्थंकरके समय भया। आयु, एक लाख पूर्व। कायकी ऊंचाई नब्बे धनुष ॥४॥ पांचवां रुद्र, सुप्रतिष्ठ है। सो श्रेयांस तीर्थंकरके समय भया। याकी आयु, चौरासी लाख वर्ष। काय उतंग ८० धनुष है ॥ ५ ॥ और छठवां रुद्र, वासुपूज्य-जिनके समय भया। ताका नाम, अचल रुद्र है आयु, ताकी, साठ लाखवर्ष हैं। काय सत्तर धनुषकी है ॥ ६ ॥ सातवां रुद्र, पुण्डरीक नाम सो विमलनाथके समय भया। ताकी आयु, पचास लाख वर्ष है। काय, साठ धनुष है ॥ ७ ॥ और आठवां, अजितधर नाम रुद्र। सो अनन्तनाथके समय भया। ताकी आयु, चालीस लाख वर्ष है। काय, पचास धनुष

है ॥ ८ ॥ नववां रुद्र, जितनाभि है सो धर्मनाथके समय भया। ताकी आयु, बीस लाख वर्ष। काय, अट्ठाईस धनुष है ॥ ९ ॥ दशवां रुद्र, पीठि नाम है सो शांतिनाथके समय भया। ताकी आयु, एक लाख वर्ष। काय, चोवीस धनुषकी है ॥ १० ॥ ग्यारहवां रुद्र, सात्यकी है सो अन्तमें महावीरके समय भया। आयु ताकी गुणत्तरि वर्ष है। काय, सात हाथकी है ॥ ११ ॥ ये सर्व रुद्र, ग्यारह अङ्ग व दश पूर्वके पाठी होंय हैं। और जिनका क्रोध रूप, सहज स्वभाव है। इन ग्यारहोंका ही कुमारकाल, संयम काल, संयम छूटनेका काल असंयम-काल ही है। ये पहिले संयम धारें हैं। अनेक तप, बल, तैं, इनकी ज्ञान शक्ति ऋद्धिशक्ति बधै-प्रगटै है। तब पीछे भोगाभिलाषी, मानार्थी होय, संयम तजैं हैं। ऐसा सर्व रुद्रनका सहज-स्वभाव जानना। इति रुद्र कथन ॥ आगे नव नारदका स्वरूप कहिये है। ये नव नारद हैं, सो नारायणके समय ही होंय। सो तिनकी आयु—काय, नारायण बलभद्र प्रमाण जानना। सो तिनके नाम सुनहु-भीम महाभीम, रुद्र, महारुद्र काल, महाकाल, दुमुख, नरक-मुख, और अधोमुख। इति नारद नाम ॥ आगे चौबीस कामदेवके नाम कहिये हैं। बाहुबलि, अमिततेज, श्रीधर, दश-भद्र, प्रसेनजित, चन्द्रवर्ण, अग्निमुक्त, सनत्कुमार, वत्सराज, कनकप्रभ, मेघवर्ण, शांतिनाथ, कुंथनाथ, अरहनाथ, विजयराज, श्रीचन्द्र, नलराजा, हनूमान, बलिराजा, वासुदेव, प्रद्युम्न नागकुमार, श्रीपाल, और जम्बूस्वामी। ए चौबीस कामदेव कहे। ऐसे तीर्थंकरादिका स्वरूप कह्या। सो अन्तके महावीर स्वामीके मोक्ष गये पीछे, जब ६०५ वर्ष गये। तब राजा वीरविक्रमादित्य भये। और भगवान्के मोक्ष गये पीछे, हजार वर्ष बाद कलंकी भया। सो या भाँति पंचमकालकी मर्यादामें २१ कलंकी, २१ उपकलंकी, ऐसे ४२ राजा धर्म-नाशक होंयगे। तहां, अन्तका कलंकी, पंचमकालके अन्तमें, जलमथ नाम होयगा। ता समयमें भी च्यारि प्रकारके संघके, च्यारि जीव रहेंगे। तिनके नाम तहां इन्द्रराज नाम आचार्यके शिष्य, वीरांगद नाम यतीश्वर होंयगे ॥ १ ॥ और सर्वश्री नाम अर्जिका हो हैं ॥ २ ॥ अग्निला नामा महा धर्मात्मा श्रावक हो है ॥ ३ ॥ और पंगुसेन नाम श्राविका हो है ॥ ४ ॥ ए मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका, च्यारि मनुष्य, अन्तिम धर्मात्मा हैं। इन पीछे, धर्मी जीवनका अभाव हो है। इनके समय, जलमथ

नामा कलंकी, अपने मंत्रिन तैं पूछेगा । भो मन्त्री ! कोई मेरी आज्ञा रहित भी है, अक सर्व जीव मेरी आज्ञा मानैं हैं ? तब मन्त्री कहेंगे । नाथ ! तुम्हारी आज्ञा सर्व जीव मानैं हैं। एक वीतरागी मुनि, तुम्हारी आज्ञामें नहीं हैं । तब राजा कहेगा । मुनि कहा करैं हैं ? कहां रहैं हैं ? तव मन्त्री कहेगा । वनमें रहैं हैं । तन तैं भी निष्प्रे म हैं । शत्रु—मित्र, तृण-कंचन, उन्हें समान हैं । महा वीतराग सौम्यदृष्टी हैं । भोजन समय, श्रावकनके घर अनेक दोष टाल, शुद्ध-प्राशुक आहार लेय ध्यानमें लीन रहैं हैं । सो यती कोईकी आज्ञामें नहीं हैं । तब कलंकी कहेगा । हमारी वस्तीमैं जव भोजन लेय तव प्रथम ग्रास, हासल (कर) का देंय । तव मुनिके भोजनमें तैं प्रथम ग्रास लेंयगे । तव यती अन्तराय करि वनमें जाय, सन्यास धरि, तीसरे दिन पर्याय छोड़, कार्तिक बदी अमावस्याके दिन, एक सागरकी आयु, सहित स्वर्गमें देव होंयगे । और तव ही ये बात सुनिकरि वाकी आर्यिका, श्रावक, श्राविका, ये तीन जीव संन्यास धरि, ताही स्वर्गमें महा ऋद्धि धारी देव उपजैंगे। ता दिन ही प्रथम पहर, धर्म-नाश होयगा। आर्यखण्डमें धर्मका अभाव होयगा। और ता दिनके मध्यमें, राज्यका नाश होयगा । ताही दिनके अन्त समय अग्नि नाश होयगी । आर्यखण्डमें अग्नि नाहीं मिलेगी । वस्त्र नाश होंयगे । तब सर्व नग्न रहेंगे। और अन्न नाश भये, सर्व जीव मांसाहारी होंयगे। मुनिकौं उपसर्ग जानि, असुरेन्द्र आय, कलंकीकों वज्रसे मारेगा । सो मरकर कुगति जायगा । पीछे सर्व अन्ध होंयगे । महाक्रोधी होंयगे । मरकर नरक-पशू होंयगे । तहां ही के आय उपजैंगे। दोय शुभगतिका आवागमन, आर्यखण्ड तैं मिट जायगा । धर्म नाश तें, सर्व आर्यखण्डके जीव, महा दुखी होंयगे । ऐसे अवसर्पिणीका पंचमकाल पूरा होय । ता पीछे छट्टे कालके २१ हजार वर्ष, महा दुख तैं पूर्ण होंयगे । पीछे जव छट्ठे कालके, ४६ दिन बाकी रहेंगे। तब सात दिन, खोटी-वर्षा होयगी । तिनके नाम-अति तीव्र पवनकी वर्षा होय। ता करि सर्व पर्वत पातउवा (पत्ता) की नांईं उड़ेंगे ॥ १ ॥ बहुत शीतकी वर्षा ॥ २ ॥ खारे जलकी वर्षा ॥ ३ ॥ जहरकी बर्षा ॥ ४ ॥ बज्राग्निकी वर्षा ॥ ५ ॥ वालू-रजकी वर्षा ॥ ६ ॥ धूमकी वर्षा ताकरि अन्धकार होयगा ॥ ७॥ इन सात वर्षान तैं, इस क्षेत्रमें प्रलय होयगा। ऐसे सामान्य अवसर्पिणीका व्याख्यान किया ॥ आगे उत्सपि-

णीका काल लगेगा। तहां छट्ठे काल लगते ही भली वर्षा होयगी। ताकरि पृथ्वी रस रूप होयगी। आगे प्रलयमें केई जीव, विद्याधर-देवोंने, कर (हाथमें) लेय गंगा-सिन्धु नदीके तट, विजयार्द्धकी गुफामें जाय धरे थे सो अब साता भये आवेंगे। तिन करि फेरि रचना होयगी। तहां उत्सर्पिणीका प्रथम काल लगेगा। तामें रीति, छट्ठे कैसी होयगी। परन्तु या छट्ठे कालमें आयु-कायकी वृद्धि और ज्ञानकी बधवारी होयगी। ऐसे छट्ठे काल केसे २१ हजार वर्ष पूर्ण होंयगे। तब फिर पांचवां, अरु उत्सर्पिणीका दूसरा काल लगेगा। ताके, इक्कीस हजार वर्ष तामें २० हजार वर्ष व्यतीत भये जब एक हजार वर्ष बाकी रहेगा। तब उत्सर्पिणी कालके, चौदह कुलकर होंयगे। तिनके नाम-कनक, कनकप्रभ, कनकराज कनकध्वज और कनकपुञ्ज। ये पांच तो कनक (सोना) समान तनके धारी होंयगे। नलिन, नलिनप्रभ, नलिनराज, नलिनपुञ्ज, और नलिनध्वज, ये पांच, कमलके समान तन के धारी होंयगे। शेष पद्मप्रभु, पद्ममराज, पद्मपुञ्ज, और पद्मध्वज। ये चौदह कुलकर, पांचवें कालके अंतमें होंयगे। फेरि, चौथा काल लगेगा। सो कोड़ा-कोड़ी साग-रका तामें, चौवीस तीर्थंकर होंयगे। तिनके नाम महापद्म, सुरदेव, सुपार्श्व, स्वयंप्रभु सर्वात्मभूत, देवपुत्र, कुलपुत्र, उदंक, प्रौष्ठिल, जयकीर्ति, सुव्रत, अरहनाथ, पुण्यमूर्ति, निःकषाय, विपुल, निर्मल, चित्रगुप्त, समाधि गुप्त स्वयंप्रभ, अनुवृत्तिक, जय, बिमल, देवपाल, और अनंतवीर्य। ये चौबीस-जिन, उत्सर्पिणीके चौथे काल में, धर्म-तीर्थके कर्त्ता, मोह अंधकारके दूर करवे कौं सूर्य्य समान, होंयगे। इति अगामी चौवीस जिन॥ आगे आगामी बारह चक्रवर्ती के नाम कहिये हैं—भरत, दीर्घदत्त, जयदत्त गूढ़दत्त, श्रीषेण, श्रीभूति, श्रीकांत पद्म, महापद्म चित्रवान विमलवाहन, और अरिष्टसेन। आगे अगामी नव नारायणके नाम कहिये हैं-नंद नंदमित्र नंदन, नंदभूति, महाबल, अतिबल, भद्रबल, द्विपिष्ट, और त्रिपिष्ट। ये नव नारायण होंयगे। इनही नारायणके बड़े भाई, आगामी, बलभद्र, होंयगे। तिनके नाम-चंद्र, महाचंद्र, चंद्रधर, सिंहचंद्र, हरिश्चद्र, श्रीचंद्र, पूर्णचंद्र, शुभचंद्र, और बालचन्द्र। ये नव बलभद्र, आगे होंयगे॥ आगे नव प्रतिनारायण होंयगे। तिनके नाम-श्रीकंठ, हरिकंठ, नीलकंठ, अश्वकंठ सुकंठ, शिष्यकंठ अश्वग्रीव, हयग्रीव और मयूरग्रीव। ये नव प्रति

नारायण होंयगे । इति प्रतिनारायण नाम । आगे आगामी ग्यारह रुद्र होंयगे। तिनके नाम प्रमद, सम्मद, हर्ष, प्रकास कामाद, भव, हर मनोभव, मारु काम और अंगज ये ग्यारह रुद्र कहे ॥ ऐसे उत्सर्पिणी में तीर्थंकर, चक्री, नारायण बलभद्र प्रतिनारायण, ये बड़े पुरुष होंयगे ॥ आगे भरतक्षेत्र संबन्धी, अतीत चौबीस-जिन होयगे । तिनके नाम कहिये हैं—निर्वाणनाथ, सागर, महासाधु, विमलप्रभ, श्रीधर, सुदत्तनाथ, अमलप्रभ, उद्धर, अंगिर, सन्मति, सिन्धु, कुसुमांजलि, शिवगण, उत्साह, ज्ञानेश्वर परमेश्वर बिमलेश्वर यशोधर कृष्णमति ज्ञानमति शुद्धमति श्रीभद्र अतिक्रांति और शांति । ऐसे तीन काल संबन्धी, तीन चौबीसी तिनके नाम लेय अंत-मंगल कूं उन्हें नमस्कार किया । ये भगवान् भव्यन कूं मंगल करौ । और इनके माता-पिता आयुका प्रमाण चिन्हका वर्णन कह्या । इनके वारे जो महान नर भये । कामदेव चक्री नारायण बलभद्र प्रतिनारायण कुलकर रुद्र नारद इन आदि ये महान् पुरुष भव्य राशि निकट संसारी इनका भी नाम मंगलकारी है। क्योंकि ये सर्व मोक्षगामी जिनधर्मके पारगामी हैं । इनकी कथा मंगलके अर्थ यहां प्ररूपण करी । इति तीनकाल संबन्धी तीर्थंकरादि त्रेसठ शलाका पुरुषनके नाम ॥ आगे अंत मंगल कौं भरतक्षेत्र संबन्धी सिद्ध-क्षेत्रके नाम कहिये हैं-कैसे हैं सिद्ध क्षेत्र जहां तैं महाव्रतके धारी योगीश्वर शुक्लध्यान-अग्नि करि अष्ट कर्म रूप ईंधन जलाय निरञ्जन होय सिद्ध-क्षेत्र लोकके अंत तहां जाय विराजते जहां अनंत-सिद्ध विराजे हैं। तातें जहांतैं ये प्रभु मोक्ष गए तहां जाय तिन सिद्ध-क्षेत्रन की प्रत्यक्ष बंदना करवे की तौ मो मैं शक्ति नाहीं । तातें इस ग्रन्थके पूर्ण करवे कं अंत मंगलके मिस करि सर्व क्षेत्रनके नाम लेय मंगलाचरण कीजिये है—सो प्रथम ही आदिनाथ का निर्वाणक्षेत्र कैलाश पर्वत है सो अष्टापद कौं नमस्कार होऊ ॥ १ ॥ अजितनाथ आदि बीस तीर्थंकरोंका निर्वाणक्षेत्र सम्मेदशिखर है। ताकों नमस्कार होऊ ॥ २ ॥ वासुपूज्य-जिनका निर्वाणक्षेत्र, चंपापुरी का बन है ताकूं नमस्कार होऊ ॥ ३ ॥ नेमिनाथ-जिन कूं आदि लेय बहत्तरि कोड़ि मुनिका निर्वाण क्षेत्र गिरनार शिखर ताकों नमस्कार होऊ ॥ ४ ॥ महावीर का निर्वाण क्षेत्र पावापुरका पर्वत है । ताकूं नमस्कार होऊ ॥ ५ ॥ वरदत्त आदि साढ़े तीन कोड़ि मुनि तारंगा शिखर तैं मोक्ष गये ।

तिस क्षेत्रकूं नमस्कार होऊ ॥ ६ ॥ लाड नरेन्द्र आदि पाँच कोड़ि मुनिका निर्वाणक्षेत्र पावागिर है। ताकौं नमस्कार होऊ ॥ ७ ॥ तीन पाण्डवन कूं आदि लेय अष्ट कोड़ि मुनिका निर्वाण क्षेत्र शत्रुंजय क्षेत्र है। ताकौं नमस्कार होऊ ॥ ८ ॥ बलभद्रादि आठ कोड़ि मुनिके मोक्ष होनेका क्षेत्र गजपंथ शिखर ताकौं नमस्कार होऊ ॥ ६ ॥ रामचन्द्र सुग्रीव हनुमान आदि ६६ कोड़ि यतीश्वरोंका निर्वाण क्षेत्र तुंगीगिर है। ता क्षेत्र कूं नमस्कार होऊ ॥ १० ॥ रावणके पुत्रादि साढ़े बारह कोड़ि मुनिका निर्वाण क्षेत्र रेवानदी के तट पर सिद्धवर-कूट है। तिस क्षेत्र कूं नमस्कार होऊ ॥ ११ ॥ इंद्रजीत कुंभकरण रावण के भाई-पुत्र तिनका निर्वाणक्षेत्र चूलिगिर नाम शिखर है। ता क्षेत्र कूं नमस्कार होऊ ॥ १२ ॥ अचलापुरकी ईशान दिशामें, मेढ़गिर नाम शिखर है ताकौं मुक्तागिर भी कहे हैं। सो यहां तैं साढ़े तीन कोड़ि मुनि मुक्ति गये। सो ताकूं नमस्कार होऊ ॥ १३ ॥ राजा दशरथके पुत्रनकूं आदि लेय एक कोड़ि मुनिका निर्वाणक्षेत्र, कोटिशिला है। ताकूं नमस्कार होऊ ॥ १४ ॥ इत्यादिक अढ़ाई द्वीप विषैं तिष्ठते सिद्धक्षेत्र, तिनकूं नमस्कार होऊ। ये सिद्धक्षेत्र, इस ग्रन्थके अंत-समाप्ति विषैं, कवीश्वर कूं भव—भव मंगल करवे में, सहाय होऊ। तथा इस ग्रन्थके अभ्यासी भव्य जीव तिनकूं, सिद्ध क्षेत्र-यात्रा समान फल विषैं, सहाय होऊ। ऐसे सिद्ध-क्षेत्र कूं नमस्कार करि अन्त-मंगल किया। आगे सिद्ध-लोक समान, अकृत्रिम-चैत्यालय मंगलकारी हैं। तातें यहां ग्रन्थके अंत में, आठ कोड़ि छप्पन लाख सत्यानवे हजार च्यारिसौ इक्यासी जिनमन्दिर, अनादि-निधन अकृतिम हैं। तिन प्रत्येक में एक सौ आठ जिनबिम्ब हैं। तिनकूं नमस्कार होऊ। तिनमें सात कोड़ि बहत्तर लाख, तौ पाताल-लोकमें हैं। च्यारि सौ अट्ठावन, मध्यलोक में है। चौरासी लाख सनतानवे हजार तेबीस, ऊर्ध्व-लोक में हैं ते सब, मंगल की राशि हैं जिन-मन्दिर, सो कहिये हैं—उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य, भेद करि तीन प्रकार हैं। सो उत्कृष्ट जिन-मन्दिर, लम्बे १०० योजन, चौड़े ५० योजन, और ऊंचे ७५ योजन हैं। और मध्य चैत्यालयोंका प्रमाण-५० योजन लम्बे, २५ योजन चौड़े, और साढ़े सैंतीस योजन ऊंचे हैं। जघन्य चैत्यालयोंका प्रमाण-२५ योजन लम्बे, साढ़े बारह योजन चौड़े और ॥ १८ ॥ योजन

ऊंचे हैं। सो भद्रशाल वन विषैं, नंदनवन विषैं, नन्दीश्वर द्वीप विषैं, और कल्पवासीनके विमानन विषैं तौ; उत्कृष्ट अवगाहनाके धारक जिनमन्दिर हैं। तिनकी नींव, भूमि में दोय कोस है सौमनस वन, रुचिकगिर पर्वत, कुण्डलगिर पर्वत, वक्षारगिर पर्वत, ईष्वाकार पर्वत, और मानुषोत्तर पर्वत, तथा कुलाचलन पै, मध्य अवगाहना के जिनमन्दिर हैं। विजयार्द्ध, जम्बूवृक्ष, शाल्मलीवृक्ष, इन पर चैत्यालयनकी अवगाहना-एक कोस लम्बाई, आध कोस चौड़ाई, और पौन कोस ऊंचाई है। और भवनवासी-व्यन्तर देवोंके क्षेत्रों के अकृत्रिय चैत्यालयोंकी अवगाहनाका प्रमाण, अन्य ग्रन्थ करि जानना॥ उत्कृष्ट चैत्यालयनके सन्मुख के बड़े द्वार, १६ योजन ऊंचे, और आठ योजन चौड़े हैं। और उत्कृष्ट चैत्यालयनके दोऊ तरफके, छोटे-द्वार, आठ योजन ऊंचे, और च्यारि योजन चौड़े हैं। मध्य चैत्यालयनके सन्मुखके बड़े द्वार, ८ योजन ऊंचे व च्यारि योजन चौड़े हैं। मध्य चैत्यालयनके दोऊ पार्श्वनके छोटे द्वार, ४ योजन ऊंचे व २ योजन चौड़े हैं॥ जघन्यावगाहनाके चैत्यालय, २५ योजन लम्बे, व १२॥ योजन चौड़े और १८॥। योजन ऊंचे हैं। तिनके सन्मुखके बड़े द्वार ४ योजन ऊंचे और दोय योजन चौड़े हैं। जघन्य चैत्यालयनके छोटे द्वार, दोय योजन ऊंचे व एक योजन चौड़े है। ऐसे तीन भेद रूप, चैत्यालय जानना। इन चैत्यालयनके तीन-तीन, रत्नमई कोट हैं। एक-एक कोटके, च्यारि दरवाजे हैं। तहां प्रथम दरवाजे तैं, मन्दिर पर्यंत जावे कौं, च्यारि गली हैं। तहां चारों तरफ, ४ मानस्तंभ हैं। दरवान पै, ६ रत्नस्तूप हैं तिन तीन कोटके बीचि, दोय अंतराल हैं। तिन अंतरालनमें पहिले-दूसरे कोटके बीच तौ वन है और दूसरे-तीसरे कोटके बीचिमें ध्वजा—समूह है। तीसरे कोटके अरु जिन मन्दिरके बीच, गर्भगृह हैं। जैसे लौकिकमें जुदे-जुदे कोठे होंय, तैसे जुदे-जुदे गर्भगृह जानना। और तिन गर्भ-गृहनके बीचमें, देवछंद नाम मंडप है। सो मण्डप, रत्नमई स्थंभनके ऊपर कनक वर्ण है। सो मंडप, ८ योजन लम्बा २ योजन चौड़ा और ४ योजन ऊंचा है। ताके मध्य विषैं, रत्न-कनक मय सिंहासन है। तिसपर विराजमान, श्रीजिन-बिम्ब हैं जिन-बिम्ब कैसा है, मानो साक्षात् तीर्थंकर देव ही हैं। पांच सौ धनुष, रत्नमई अवगाहना है।

तहां मस्तकके ऊपर नीलमई परणम्या जो श्याम वर्ण रत्न सो सुन्दर केशनकी आभाकूं धारै है। और महा उज्जवल, हीरा मई दांत शोभैं हैं। और मूंगा समान लाल, अधर-ओष्ठ शोभैं हैं। नवीन कोंपल समान लाल उत्तम शोभा सहित, कोमल हस्तकी हथेली, और पांवकी पगथली, शोभायमान हैं। ऐसे श्री जिनेन्द्र के प्रतिबिम्ब हैं। सौ मानौं अब ही बोलैं हैं। तथा अबही विहार करेंगे। मानौं देखौं हैं। मानौं ध्यान रूप हैं। मानौं वाणी खिरै है। मानौं चैतन्य ही हैं। १००८ चिन्ह सहित हैं। तिनपर ६४ जातिके व्यंतरदेव, रत्नमई आकार लिये खड़े हैं। पंक्तिबंध हस्त जोड़े खड़े हैं। सो मानों चमर ही ढोर रहे हैं। और तीन लोकके छत्र समान तीन छत्र, रत्नमई, शीश पै शोभायमान हैं। ऐसे जिनबिम्ब एक—एक गर्भ-गृहमें, एक-एक हैं। १०८ गर्भगृह हैं। तिनमें १०८ प्रतिबिम्ब विराजमान हैं। तिनकौं नमस्कार होऊ। ऐसे कहे जिनबिम्ब, तिनके निकट दोऊ पार्श्वन विषैं, श्री देवी, सरस्वती देवी, सर्वल्ह जक्ष देव, और सनत्कुमार देव। इन च्यारिके, रत्नमई आकार पाईये हैं। ये महा भक्त हैं। जिनबिम्बनके निकट, अष्ट मंगल-द्रव्य शोभै हैं। तिनके नाम-झारी, कलश, आरसी, ध्वजा, पंखा, चमर, छत्र, और ठौणा सो एक जातिके, एक सौ आठ—एक सौ आठ जानना। जैसे झारी १०८, कलश १०८, ऐसे जानना। ऐसे गर्भगृह का सामान्य स्वरूप कह्या॥ आगे इस गृह—बाह्य जो रचना और है। सो कहिए है—पर्वमें कह्या जो देवछंद मण्डप, सो नाना प्रकार रत्नमई,स्वर्णमई-फूलमालान करि शोभायमान है। ता मण्डप के पूर्व दिशा कूं, जिन-मंदिर है। ताके मध्य में, स्वर्ण—रूपा मई, ३२ हजार धूपघट हैं। और बड़े द्वारके दोऊ पार्श्वन विषैं, २४ हजार धूप-घट हैं। बड़े द्वारनके बाह्य, ८००० रत्नमई माला, शोभायमान हैं। तिन मालान के वीचि २४००० स्वर्णमई माला हैं। तिन बड़े द्वारन के आगे—सन्मुख, छोटे मण्डप हैं। ता विषैं सोलह—सोलह हजार कनक मई धूप—घट, अरु कनक मई माला, अरु कनक कलश पाईये है। तहां मुख्य मण्डप के मध्य, अनेक प्रकार रमणीक शब्द करनहारा, रत्नमई छोटा घंटा है। सन्मुख द्वारके दोऊ तरफ के छोटे द्वार, तिन पै सर्व रचना, मालादिक का विस्तार, बड़े द्वार तैं आधा जानना। और सर्व मन्दिर के, तीन—तीन द्वार

हैं। पीछे कूं द्वार नाहीं। मन्दिर की पीछली भीति की तरफ, ८००० रत्नमई और २४००० स्वर्णमई माला हैं। घंटा, धूपघड़े आदि अनेक रचना, पीछे कूं जानना। सो तहां घंटा कह्या, सो तौ मंडपकी छत्त तैं, लंबता जानना। और धूपघट, धरती पै जानना। और माला, चौतरफ भीति, तिनतैं लटकती जाननी। ऐसे रचना सहित जिन-मन्दिर हैं। ताके आगे १०० योजन लम्बा, ५० योजन चौड़ा और १६ योजन ऊंचा, जिन—मन्दिर समान, एक मुख्य मण्डप है। सो अनेक रचना सहित जानना। ताही मुख्य मण्डप के आगे एक चौकोर, प्रेक्षण मंडप है। ताका विस्तार १०० योजन लम्बा—चौड़ा, और कुछ अधिक सोलह योजन ऊंचा है। और इस प्रेक्षण मंडप के आगे, दोय योजन ऊंचा, ८० योजन चौड़ा—लम्बा एक पीठि कहिये चवूतरा है। सो कनकमई जानना। तिस पीठिका के मध्य, चौकोर, मणिमई, ६४ योजन लम्बा, १६ योजन ऊंचा, एक मण्डप है। इसही मण्डप के आगे, एक मणिमई, स्तूप की पीठिका है। सो पीठिका, ४० योजन ऊंचो है। तिस पीठिका के चौतरफ, १२ वेदी हैं। तिन एक—एक वेदी के च्यारि—च्यारि द्वार हैं। ता पीठिका के मध्य, तीन कटनी सहित ६४ योजन ऊंचा, अनेक—रत्नमई स्तूप है। ता स्तूप के ऊपरि, जिन-बिम्ब विराजमान हैं। सो ऐसे, ६ स्तूप हैं। तिन सबका ऐसा ही वर्णन जानना। तिन स्तूपोंके आगे, १००० योजन लम्बा—चौड़ा, एक स्वर्णमयी पीठि है। ताके चौगिरद, १२ वेदी हैं। तोन कोट व च्यारि—च्यारि द्वारन करि सहित, कोट—वेदी जानना। तिस पीठि के ऊपर, एक सिद्धारथ नामा वृक्ष है। ताका स्कन्ध ४ योजन लम्बा, और चौड़ा १ योजन है। ताकी च्यारि बड़ी साखायें, १२ योजन लम्बी हैं। छोटी शाखा अनेक हैं। और वृक्ष, ऊपर १२ योजन चौड़ा है। और अनेक पात, फूल, फलन करि सहित है। सो यह वृक्ष, रत्नमई जानना। यह एक सिद्धारथ नामा, बड़ा वृक्ष जानना। ताके परिवारमें अनेक वृक्ष हैं। ऐसी ही रचना सहित तथा ऐसाही विस्तार धरैं, चैत्य वृक्ष है। ऐसे सिद्धारथ व चैत्य ये दोय महा-वृक्ष हैं। सो सिद्धारथ-वृक्षके मूल विषैं तिष्ठती, सिद्ध-प्रतिमा है। और चैत्यवृक्षके मूलभाग विषैं तिष्ठती समभूमि पै, तीन पीठका, सिंहासन, छत्र आदि अनेक प्रकारकी रचना सहित च्यारों दिशा विषैं, अरहंत प्रतिमा विराजमान हैं। तहां

अरहंत व सिद्ध प्रतिमा विषैं, विशेष एता जानना। जो सिद्ध प्रतिमाकैं चमर-छत्रादिकी रचना नाहीं। और अरहंत प्रतिमा कैं, चमर-छत्रादिकी रचना होय है। और तिस पीठिके आगे एक पीठि है तामैं नाना प्रकार ध्वजा शोभै हैं। तिन ध्वजाके, स्वर्णमई दण्ड हैं सो दण्ड, १६ योजन लम्बे हैं। और एक योजन चौड़े हैं। और तिन ध्वजाके अनेक प्रकार वर्ण हैं। रत्नमई, वस्त्र हैं तिन ध्वजाके ऊपर, तीन-तीन छत्र शोभैं हैं। तिन ध्वजानके आगे, जिन मन्दिर हैं। तिन जिन मन्दिरोंके आगे, चौतरफ, च्यारि दिशानकौं, च्यारि द्रह (तलाव) हैं। सो द्रह १०० योजन लम्बे, ५० योजन चौड़े, और दश योजन गहरे हैं। ये द्रह, कनकमई वेदीन करि भले शोभायमान हैं। तिनमें कमल फूल रहे हैं। ताके आगे, मार्ग रूप च्यारि बीथीं हैं। तिन बीथीनके दोऊ पार्श्वन बिषैं, ५० याजन ऊंचे, २५ योजन चौड़े, रत्नमई, देवकेक्रीड़ा-मन्दिर हैं। तिन मंदिरनके आगे, तोरण हैं सो तोरण मणिमई स्थंभन परि, गोल, भीति रहित हो हैं। सो अनेक रचना सहित, रमणीक हैं। सो तोरण, मोती-माला, घंटा-समूह करि शोभायमान हैं। सो तोरण ५० योजन ऊंचे, २५ योजन चौड़े हैं। तिन तोरणोंके ऊपर भागमें, जिनविम्ब विराजमान हैं। तिन तोरणके आगे, स्फटिकमणिका प्रथम कोट है। तहां आभ्यन्तर कोटके द्वारके दोऊ पार्श्वन विषैं, रत्नमई मन्दिर हैं। सो मन्दिर १०० योजन ऊंचे, ५० योजन चौड़े हैं। ऐसे प्रथम कोट पर्वत वर्णन किया॥ आगे पूर्व द्वार विषैं, जो मंडपादिका प्रमाण कह्या। तातैं आधा प्रमाण, दक्षिण व उत्तर द्वारका जानना और कथन, तीनों तरफका समान है। ऐसे कहि, अब पहिले-दूसरे कोटके अंतरालमें, जो ध्वजा-समूह पाईये है। सो ध्वजानमें दश जातिके चिन्ह हैं सिंह हस्ती, वृषभ, गरुड़, मयूर, चन्द्रमा, सूर्य, हंस, कमल और चक्र ऐसे दश चिन्ह सहित ध्वजा समूह है सो एक-एक चिन्हकी ध्वजा, १०८ हैं। जैसे सिंह जातिकी ध्वजा, १०८ हैं। ऐसे सर्व जाति की ध्वजायें जानना। सो जिन मंदिरके एक तरफको ध्वजायें, १०८० भईं। जिन-मंदिरके चारों तरफकी ४३२० तौ बड़ी ध्वजा जाननी। इन बड़ी ध्वजानके साथ, एक सौ आठ-एक सौ आठ छोटी ध्वजायें जाननी ऐसे ध्वजाका बन कह्या॥ और तीसरे व दूसरे कोटके अन्तरालमें जो रचना है। सो कहिये है-तहां च्यारों

तरफ, च्यारि वन हैं। अशोकबन, सप्तच्छदवन, चंपकवन, और आम्रवन। ये च्यारि वन तिनके फूल तो स्वर्ण-मई, अरु पत्ते बैडूर्य रत्नमई, हरित वर्ण हैं। तिनको कोंपल मरकतमणि मई हैं। तिनके फल महा-मनोग्य रत्नमई हैं। ऐसे च्यारि ही बन दश प्रकारके कल्पवृक्षन सहित, रमणीक हैं। तिन वनन विषैं एक-एक चैत्य वृक्ष है। तिनके मूल भागमें च्यारों दिशानसें पद्मासन श्री अरहंत बिम्ब चमर-छत्रादि प्रातिहार्य करि शोभित विराजें हैं। ऐसे एक-एक वनमें एक-एक चैत्य वृक्ष है। तिनके तीन-तीन कोट हैं। तिनकी तीन-तीन कटनो सहित पीठिका हैं। इत्यादिक रचना सहित रत्नमई चैत्यवृक्ष हैं। इन आदि वागवाड़ी ध्वजापंक्ति कलश धूप घट मोतीमाला आदि अनेक रचना सहित, अकृतिम जिन मन्दिरोंका सामान्य स्वरूप कह्या। ताके निकट सामायिक करवेके मन्दिर हैं। तहां भव्य सामायिक करैं हैं। वंदना मण्डप हैं। तिसके पास स्नान करवेके स्थान हैं। जहां भव्यजन पूजन करवेकूं स्नान करैं सो अभिषेक मण्डप हैं। तहां भक्त-जन नृत्य करवेके स्थान सो नृत्य मण्डप हैं। तहां गान करवेके स्थान सो जहां भव्य भगवान्‌की गुणमालाका गान करैं सो संगीत मण्डप हैं। और तहां नानाप्रकारकी चित्राम-कलादिकी अनेक रचना महा शोभा सहित स्थान, तिनकौं देख, भव्य अनुमोदना करैं। तिनकौं देखते मन तृप्त न होय सो अवलोकन मण्डप हैं। तहां केईक धर्मात्मा-जीवनके, धर्म क्रीड़ाके स्थान हैं। और कैएक स्थान ऐसे हैं जहां धर्मात्मा पुरुष शास्त्रनका स्वाध्याय करैं। गुणग्रहण मण्डप हैं। केई स्थान अनेक पट्-चित्राम दिखावनेके स्थान हैं। पट्शाला-स्थान हैं। ऐसे अनेक स्थान अकृत्रिम चत्यालयनके निकट पाइये। तहां धर्मात्मा धर्मका साधन करैं हैं। ऐसे जिन मन्दिर अकृत्रिम तीन लोक संबंधी हैं। तिन सबकौं अन्तिम मंगल निमित्त हमारा मन वच-काय करि वारम्बार नमस्कार होऊ। सब कर्म रहित सिद्ध भगवान्; अरु च्यारि घातिया कर्म रहित अनंत चतुष्टय सहित अरहंत देव, अरु मुनि संघ विषैं अधिपति आचार्य; ग्रन्थाभ्यास विषैं आप प्रवर्तैं अरु औरनकूं प्रवृत्तावैं ऐसे उपाध्याय और २८ मूलगुण सहित साधु ऐते कहे पंच परमेष्ठो, पंच परम गुरु तिनकौं मन-वचन-काय शुद्ध करि अन्त मङ्गलके निमित्त हमारा नमस्कार होऊ। ऐसे इस ग्रन्थके पूर्ण होतें भया जो हर्ष ताकरि अन्तिम मङ्गल

निमित्त अपने इष्टदेवकौं नमस्कार करि पाप मल धोय निर्मल होनेका कारण जानि कवीश्वरने कृत-कृत्यावस्थाकूं प्राप्त होय अपना भव सफल मान्या ॥

इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये ग्रन्थ पूर्ण होते मंगल, निमित्त; नमस्कार पूर्वक, अकृत्रिम चैत्यालय वर्णन पञ्चपरमेष्ठी वर्णनो नाम, गुणतालीसवां पर्व सम्पूर्णम् ॥

आगे और मंगलकारी, जिनराजके समोशरण हैं। ताका संक्षेप वर्णन कीजिये है। मङ्गलमूर्ति, कल्याणका आकार समोशरण, भगवान्के विराजवेका स्थान अनेक महिमाकों लिये देवोपुनीत समोशरण है। ताका दर्शन किये नाम लिये, स्मरण किये, पाप नाश होय, पुण्य संचय होय। ऐसा जानि, ग्रन्थके अन्त मङ्गलकूं, अनेक शास्त्रका रहस्य लेय समोशरणका स्वरूप कहिये हैं—तहां प्रथमही समोशरणकी भूमि, समभूमि तैं ५००० धनुष आकाशमें ऊंचो है। ताके च्यारों दिशा विषैं, समभूमि तै लगाय, समोशरण भूमि पर्यंत, बीस हजार पैंड़ीं, च्यारो दिशाओंमें हैं। ते पैंड़ीं (सीढ़ी) स्वर्णमई हैं। सो पैंड़ीं, वृषभदेवके हाथसे एक हाथ चौड़ीं एक हाथ ऊंचीं, और एक कोस लम्बी हैं। और अन्य-जिनको, क्रम तैं हीन हैं। सो हीनका प्रमाण कहिये हैं। वृषभदेवका जो प्रमाण है तामें २४ का भाग दीजिये, तासें तैं एक भाग घटावना। ऐसे नेमनाथ तक, एक एक भाग घटावना। और पार्श्वनाथ व वीरके तिस तैं आधा भाग घटावना सो समभूमि तैं २ ॥ कोस आकाशमें जाइये। तहां वृषभदेवकी बारह योजन, नील रत्नमई गोल-शिला है। सो तो समोशरणकी समभूमि है। या पै सर्व रचना है। और तीर्थंकरनके समोशरणका हीनक्रम है। सो नेमनाथ पर्यंत आधा-आधा योजन, हीन है। पार्श्वनाथ, वीरका पाव-पाव योजन घटता है। ऐसे महावीरका, १ योजनका समोशरण है। तिस शिला विषें, शिवाननकी सीध में ४ गली, च्यारोंदिशामें हैं। ते गली, शिवानन (भगवान) की लम्बाई प्रमाण चौड़ी हैं। जैसे वृषभ देवकी एक कोस चौड़ीं, लम्बी २३ कोस गलीं हैं सो धूलशालके दरवाजे तैं लगाय, गंधकुटीके द्वार पर्यंत लम्बाई जाननी। और इन गलीनके दोऊ तरफ, स्फटिकमणिमई भीति हैं। इनकौं वेदी कहिये। इन दोऊ वेदीनके बीचि जो चौड़ाई, सो गलीकी चौड़ाई है और

उन वेदीनकी चौड़ाई बृषभदेवके हाथ तैं ७५० धनुष है। और जिनकी हीन है। तिन गलीनके बीचि, ४ अन्तराल रूप भूमि हैं। तिन विषैं, ४ कोट व ५ वेदी हैं। अरु इन नवके अन्तराल विषैं, ८ भूमि है सो शिलाके अन्तभाग विषैं कोट है। ताके परे, चैत्यप्रसाद नाम भूमि है। ताके परे, वेदी है। ताके परे खातिका की भूमि है। ताके परे वेदी है। ताके परे, पुष्पवाड़ीकी भूमि है। ताके परे, दूसरा कोट है। ताके परे, उपबनकी भूमि है। ताके परे, वेदी है। ताके परे, ध्वजा-समूहकी भूमि है। ताके परे, तीसरा कोट है। ताके परे, कल्पवृक्षकी भूमि है। ताके परे, वेदी है। ताके परे, मन्दिरकी भूमि है। ताके परे, चौथा कोट है। ताके परे, सभा की भूमि है। ताके परे, वेदी है। ऐसे तिन गलिनके अन्तराल रूप भूमि विषैं रचना जानना। तिन गलिन विषैं, ४ कोट व ५ वेदीनके द्वार हैं सो एक गली सम्बन्धी, नव द्वार हैं। च्यारों गली सम्बन्धी, ३६ दरवाजे हुए। प्रथम कोट व प्रथम वेदी ताके बीचि सो प्रथम भूमि है। तातै प्रथम कोट व प्रथम वेदी, इनके बीचि गली, सो प्रथम भूमि कहिये। ऐसे ही अन्य द्वारनके बीचि द्वितीयादि भूमि जानना। तहां प्रथम भूमिकी गली ताके मध्य विषैं तौ मानस्थंभ है सो च्यारि दिशा सम्बन्धी, ४ मानस्थंभ हैं। एक-एक मानस्थंभके च्यारों दिशानमें च्यारि-च्यारि वावड़ी हैं। इस गलीके दोऊ पार्श्वन विषैं दोय नाटयशाला हैं। ऐसी ही चौथी गली विषैं दोय नाटयशाला हैं। छट्ठी गलीके दोऊ पार्श्वन विषैं, यातैं दूनी नाट्यशाला हैं। और सप्तमी भूमिमें, च्यारि दिशामें, नौ-नौ रत्न-स्तूप हैं। आठवीं भूमि विषैं बारह सभा हैं। जो गलीके, पार्श्वनकी लम्बाई सहित वेदी हैं सो अनेक द्वारन सहित हैं। तिन द्वारनके रत्नमई कपाट हैं कोई भव्य, इनके चौतरफकी रचना देखे चाहै हैं। तो इन गलीनके द्वारन होय, जाय आवै है। या प्रकार गलीनकी सामान्य रचना कही जो इन सर्वके मध्यभागमें तीनि पीठि हैं। ताके ऊपर गंधकुटी है। तामें सिंहासन है। तापै कमल है। तापर श्री भगवान् अन्तरीक्ष च्यारि अंगुल, विराजैं हैं सो अष्ट प्रातिहार्य सहित च्यारि चतुष्टय लिये, विराजमान जानना। ऐसे इनकी सामान्यपने रचना कही। अब तिनके स्थान बताइए है। इनका विशेष कहिए है। तहां ४ कोट कहे तिनमें पहिला कोट, समोशरणकी अन्तभूमि विषैं है सो पंच-वर्ण, रत्न-चूर्णका है।

तातैं याका नाम, धूलिशाल है। नानाप्रकार वर्ण सहित इन्द्र धनुष समान विचित्र है। दूसरा कोट, तपाए स्वर्ण समान लाल है। तीसरा कोट, स्वर्ण समान पीत है। चौथा कोट स्फटिकमणि समान श्वेत है। पांचों ही वेदी, स्वर्ण समान पीत हैं। ए च्यारि कोट पांच वेदी नव ही के ऊपर, अनेक वर्णकी ध्वजा अरु अनेक शोभा सहित महल शोभायमान हैं। यहां वेदी अरु कोट विषैं एता विशेष है जो वेदी तौ नीचे तैं लेय ऊपर पर्यन्त, समान चौड़ी हैं। अरु कोट नीचे तैं चौड़ा, अरु ऊपर हीनक्रम है। अब इनके बीचि, आठ भूमि हैं। ताका विशेष कहिये है—तहां प्रथम भूमि विषैं, एक चैत्यालय है। अरु पाँच अन्य मन्दिर हैं। इनके बीचि बावड़ी, बन, बृक्ष, इत्यादि की अनेक रचना है। दूसरी भूमि विषैं, खातिका है। सो रत्नमई पगथेन (पैंड़ी) करि सहित है। निर्मल-जल करि भरी है। सो जलकी उडाई, (गहरी) जिन देवके शरीर तैं चौथे भाग है। अरु वह खाई, कमलन करि पूरित, नाना प्रकार जलचर व हंसादिक जीवन करि शोभनीक है। और तीसरी भूमि विषैं, फुलवाड़ी है। जो नाना प्रकार बृक्ष, फूल बेलि करि शोभायमान है। अरु चौथी भूमि विषैं, उपवन हैं। सो च्यारि दिशान विषैं, च्यारि उपवन हैं। तिनके नाम—अशोकवन, सप्तपर्णबन, चंपकबन, अरु आम्रबन। ये बन, नाना प्रकार उत्तम वृक्ष करि सहित हैं। और इन बन विषैं, नाना प्रकार के देव-क्रीड़न के मन्दिर हैं। तथा ये बन, नृत्यशाला बावड़ी, क्रीड़ा-पर्वत, तिनकरि शोभनीक हैं। इत्यादिक और भली रचना जाननी। तहां अशोकबन विषैं, अशोक नाम चैत्यवृक्ष है। ताके चौतरफ, तीन कोनके भीतर, तीन पीठि हैं। तापै, अशोक बृक्ष है ताके मूलभाग विषैं, च्यारों दिशा में, च्यारि अर्हन्त प्रतिमा हैं। तिन प्रतिमा जी के आगे एक—एक मानस्थंभ है। ऐसे और तीन बनन में—सप्तपर्ण चैत्य वृक्ष सप्तपर्ण बनमें है। चंपकबनमें चंपक चैत्य-वृक्ष। आम्रवनमें आम्र चैत्य-वृक्ष। ऐसे बनकी रचना जाननी और इस बनकी बावड़ीनके जल करि स्नान कीजिए, तो एक भवकी अगली-पिछली दीखै। और बावड़ीनके जलमें देखिए, तौ अपने सात-भवकी, अगली-पिछली दीखै है। पंचम-भूमि विषैं, ध्वजानका समूह है। तहां एक दिशा संबन्धीध्वजा कहिए हैं-सिंह, हाथी, वृषभ मोर, माला, आकाश, गरुड़, चक्र, कमल, और हंस। इन दश जातिकी ध्वजा हैं सो एक-

एक चिन्हकी, १०८ महाध्वजा हैं। इन एक-एक महाध्वजा संबन्धी, १०८ छोटी ध्वजा और जाननी। ऐसे एक दिशा सम्बन्धी ध्वजा कहीं। च्यारों ही दिशा संबन्धी मिलाईए, तौ ४७०८८० ध्वजा होंय। ते सर्व ध्वजा, रत्नमइ दंडन करि सहित हैं। ते दण्ड, वृषभदेव के ८८ अंगुल चौड़े हैं। परस्पर ध्वजा का २५ धनुष अन्तराल जानना। और छट्ठी भूमि विषैं, कल्पवृक्षन के बन तहां—बासन, गृह, आभूषण, वस्त्र, भोग, पान, ज्योतिष, माला, वादित्र, और दीपक ये दश जातिके बन हैं सो च्यारि दिशामें, ४ ही बन हैं। तहाँ एक--एक दिशा में एक-एक वनमें, च्यारि चैत्य वृक्ष हैं। तिनके नाम-मेरु, मंदार, पारजाति और संतानक। ये च्यारि कल्प-वृक्ष, चैत्य वृक्ष हैं। इनका विस्तार वर्णन, पीछे अशोक चैत्य वृक्षका कथन करि आए हैं, तहां समान जानना। एता विशेष है, जो यहां सिद्ध-प्रतिमा विराजमान हैं। सर्व वापी, मन्दिर, क्रीड़ा-पर्वतादि सर्व रचना, यहां--वहां समान जानना। और सातवीं भूमि विषैं, रत्नमई मन्दिरन की पंक्ति, बनकी अनेक शोभा सहित है। तहां देव-देवी, भगवान का गुण—गान करैं हैं। आठवीं भूमि में, १२ सभा हैं। तहां तिस पृथ्वी संबंधी च्यारि अंतराल, तिनमें दोय—दोय तो गली की बेदी हैं। और दोय—दोय तिनके बीचि स्फटिक मणिमई भीति हैं। इन च्यारों भीति के बीचि, तीन अन्तराल हैं। सो ही तीन कोठे। ऐसे च्यारों दिशान के, १२ कोठे भए। अरु १६ भीति भईं। तहां रत्न-स्तंभ हैं। तिन पै धरया श्रीमण्डप है। मोती की माला, रत्न घंटा, धूप घटादि अनेक रचना सहित है और जगह तैं, यहां रचना उत्कृष्ट है। तहां १२ सभा के, बारह कोठे हैं। तिनमें अनुक्रमतैं—मुनिराज, कल्पवासी देवी, मनुष्यणी, ज्योतिषी देवकी देवियाँ, व्यंतर देवकी देवियां, भवनबासिनी देवी, भवनवासिनी देव, व्यन्तर देव, ज्योतिषी देव, कल्पवासी देव, मनुष्य, और बारहवीं सभामें तिर्यंच बैठैं हैं। ऐसे अष्टमी भूमिमें १२ सभा कहीं। अब इन आठभूमिन की गलोका विशेष कहिए हैं-तहां प्रथमही धूलशाल कोट है। ताके ४ दरवाजे हैं। तिनके क्रम तैं नाम कहिए हैं-पूर्व दिशा का विजय, दक्षिण दिशाका वैजयन्त, पश्चिम दिशाका जयन्त, और उत्तर दिशाका अपराजित। ऐसे नाम हैं। च्यारि कोट व पांच वेदीनके, छत्तीस द्वार, च्यारों दिशा संबन्धी हैं। तामें धूलि-

शाल कोटके च्यारि दरवाजे तो स्वर्णमई हैं। बीचि के दोय कोट ४ वेदी इन छहके २४ दरवाजे, रूपामई हैं। चौथा स्फटिक मणिका कोट अरु आभ्यंतरकी वेदी के द्वार आठ, सो पन्ना समान हरे हैं। इन सर्व छत्तीस ही दरवाजेनके आभ्यंतर-बाह्य दोउ तरफ, मंगल-द्रव्य अरु नवनिधिके समूह हैं। तहां एक द्वारके, दोय पार्श्व हैं सो ही बाह्य—आभ्यन्तर करि, ४ पार्श्व भए सो एक-एक पार्श्वके विषैं, आठ—आठ मंगल द्रव्य हैं सो एक—एक मंगल द्रव्य, १०८ होय हैं। जैसे छत्र १०८, चमर १०८, ऐसे ही सर्व जानना। नौ निधि, नव जातिकी हैं सो एक-एक जातिकी निधि, एक सौ आठ-एक सौ आठ हो हैं। ऐसी जानना। सो एक-एक पार्श्व विषैं, एती रचना जाननी धूप-घट हैं। तिनमें सुगंध-द्रव्य, देवादि खेवैं हैं। तिनमें महा-सुगंध प्रगट होय रही है। और सर्व द्वारन पै, रत्नमई तोरण हैं। ते मोती-माला, कल्पवृक्षनके फूलनकी माला, रत्न घंटा, इत्यादिक रचना सहित हैं। सो तोरण द्वार, कोटन तैं ऊंचे जानना। तोरण तैं, कोटनके दरवाजे ऊंचे हैं। समोशरणके एक तरफके नौ द्वार हैं। तहां धूलिशाल तैं लगाय, तीन दरवाजेन पै तो, ज्योतिषी द्वारपाल हैं। और दोय द्वारनके ऊपर, यक्ष जातिके व्यंतर देव द्वारपाल हैं। अगले दोय द्वारन पै द्वारपाल, नागकुमार-भवनवासी देव हैं। और दोय द्वारनके ऊपर द्वारपाल, कल्पवासी देव हैं। ऐसे च्यारों दिशा विषैं च्यारि जातिके देव, द्वारपाल हैं सो सर्व महा भक्तिवान भये, हाथनमें असि लिये हैं। केई स्वर्णकी छड़ी लिये हैं। केई गुर्ज लिये हैं। केई दण्ड लिये खड़े हैं। ऐसे दरवाजेनका स्वरूप कह्या। अब प्रथम भूमिकी गली विषैं, मानस्थंभ है। ताका स्वरूप कहिये है। सो प्रथम गलीके मध्य विषैं च्यारि-च्यारि द्वार सहित तीन कोट हैं। ते कोटनके द्वार, अनेक घंटा, ध्वजा, मालान करि शोभनीक हैं। तहां प्रथम-दूसरे कोट और दूसरे-तीसरे कोटके बीचि विषै बन हैं। सो बन, अनेक शुभ वृक्षन करि शोभायमान हैं। तहां कोयल, मयूर आदि अनेक पक्षीनकी ध्वनि होय रही है। तिस बन विषैं लोकपाल देवनके नगर हैं। तहां प्रथम बनकी च्यारों दिशा विषैं, एक दिशामें इन्द्र-लोकपालका भवन है। दूसरी तरफ, यम नामा लोकपाल-का नगर है। तीसरी तरफ वरुण नामा लोकपालका नगर है। चौथी तरफ कुवेर नामा लोकपालका नगर है।

ऐसे प्रथम वनके अंतरालका कथन किया। और दूसरे-तीसरे कोटके दूसरे अंतरालमें एक तरफ अग्नि जातिके लोकपालनका नगर है। एक तरफ नैऋत्य जातिके देवनका नगर है। एक तरफ पवनकुमार देवन-का नगर है। एक तरफ ईशान जातिके देवनका नगर है। ऐसे ये तीन कोटनके दोय अंतरालनके नगर कहे। तीसरे कोटके आभ्यंतरमें तीन कटनीदार उपरि-उपरि तीन पीठि हैं। सो प्रथम पीठि तो पन्ना समान हरा है। तापै दूसरा पीठि स्वर्ण मई है। तापै तीसरा पीठि अनेक रत्नमई है। तिनकी उचाई वृषभदेवके हाथ तैं आठ धनुष तो प्रथम पीठिकी है। ऊपरकी दोय पीठि च्यारि-च्यारि धनुषकी हैं। तीर्थंकरनके हीन-क्रमकी हैं। अब इन पीठिनकी चौड़ाई कहिये है सो नीचले दोय पीठिनकी चौड़ाई तौ अन्य ग्रन्थ तैं जान-ना। ऊपरके तीसरे पीठिकी चौड़ाई वृषभके १००० धनुषकी है। तीर्थंकरनके हीनक्रमकी हैं। तहां तीसरे पीठिमें मानस्थंभ है सो मानस्थंभ नीचे सै तो चौकार और ऊपर तैं गोल है। तहां नीचे तौ वज्रमई है मध्यमें स्फटिक मई और ऊपर पन्ना समान हरा है। ताको दोय हजार धारा हैं। जैसे स्थंभके पहलू होंय तैसी धारा हैं। सो मानस्थंभ घंटा मोतीमाला कल्पवृक्षनके फूलनकी माला ध्वजा इन आदि अनेक रचना सहित शोभा कौं धरैं है। तिस मानस्थंभके उपरि भागमें च्यारि दिशाओंमें च्यारि अर्हंत विम्ब हैं। सो अष्ट प्रातिहार्यन करि सहित हैं। अशोक वृक्ष पुष्प वर्षा दिव्यध्वनि चमर सिंहासन भामण्डल देवनके किये दुन्दुभी शब्द और छत्र ये अष्ट प्रातिहार्य हैं। तहां दिव्यध्वनिकी तो आभासा है। मानूं अब ही दिव्यध्वनि खिरैगी। और सर्व प्रातिहार्य पाईये है। तिनके दर्शन किये पाप नाश होय है। इस मानस्थंभकी प्रभा आकाश विषैं योजन पर्यंत उद्योत् करै है। तिसके देखते आश्चर्य उपजे है। ताके अतिशय करि इन्द्रादिक देवनका मान नहीं रहै। सर्वका मान जाय। सर्व नमस्कार करैं हैं। ऐसी महिमा धरैं है। तातैं याका नाम मानस्थंभ है। ऐसे सामान्य मानस्थंभका स्वरूप कह्या। ऐसे ही च्यारों दिशानके मानस्थंभका स्वरूप जानना। तिन मानस्थंभके कोटमैं च्यारों दिशामें च्यारि-च्यारि बावड़ी हैं। तहां पूर्व दिशाके मानस्थंभ सम्बन्धी बावड़ीनके नाम—नंदा नंदोत्तरा नंदवती और नंदघोषा। दक्षिणके मानस्थंभ सम्बन्धी

बावड़ीनके नाम-विजया वैजयंती जयंती और अपराजिता। पश्चिम दिशा सम्बन्धी मानस्थंभकी बावड़ीनके नाम-अशोक, सुप्रतिबुद्धा, कुमुदा, और पुण्डरीकणी। आगे उत्तर दिशा सम्बन्धी मानस्थंभकी बावड़ीनके नाम-नंदा महानंदा सुप्रबुद्धा और प्रभंकरी। ऐसे च्यारि दिशा सम्बन्धी च्यारि मानस्थंभकी सोलह बावड़ी जानना। इन एक-एक बावड़ीके बाह्य मुख पर दोय-दोय कुण्ड हैं तहांके जल तैं भव्य जीव पाद प्रक्षालन करैं हैं। बावड़ीके जल तैं, प्रतिमाजीका अभिषेक होय है। ये सर्व बावड़ी हैं, सो स्वर्ण-रत्न मई हैं। रत्न-मई पगथेन (पैंड़ील) करि सहित, चौकोर हैं। निर्मल जल करि भरी, कमलन करि शोभायमान हैं। ऐसे मानस्थंभका सामान्य स्वरूप कह्या॥ आगे नाट्यशालाका संक्षेप स्वरूप कहिये है--तहां प्रथम गलीके दोऊ पार्श्वनकी, दोय नाट्यशाला हैं। सो तीन खण्डकी हैं। तहां एक-एक नाट्यशाला विषैं, ३२ अखाड़े हैं। एक-एक अखाड़ेमें ३२—३२ भवनवासिनी देवी नृत्य करैं हैं। एक-एक नृत्यशालाके दोऊ पार्श्वन विषैं, दोय-दोय धूप घड़े हैं। और ये नृत्यशाला, रत्नमई अनेक शोभा सहित हैं। ऐसी ही रचना सहित, चौथी गली विषैं, नृत्यशाला हैं। विशेष एता है। जो यहां कल्पवासिनी देवियां, नृत्य करैं हैं। ऐसे ही छट्ठी गली विषैं, नाट्यशाला हैं सो पांच खण्डकी हैं। यहां ज्योतिषी जातिकी देवांगना नृत्य करैं हैं। ऐसे नाट्यशाला कहीं। सो यहां अपने-अपने नियोग प्रमाण, भक्तिकी भरी देवीं, नृत्य करि, अपना भव सफल करैं हैं॥ आगे रत्न-स्तूपका स्वरूप कहिये है-तहां सतवीं गली विषैं एक-एक दिशा विषैं, नौ-नौ रत्न स्तूप हैं। सो ये रत्न राशि समान, उत्तुंग शिखर कों धरैं हैं। तिनके बीचमें, १०० तोरण हैं। तिन स्तूपनके अग्रभाग पर, अर्हंतप्रतिमा विराजमान हैं। सो तहां अष्ट-अष्ट मंगल द्रव्य व प्रातिहार्यन सहित हैं। छत्र, चमर, सिंहासनादि अनेक अतिशय पाईये हैं। ऐसे स्तूपका संक्षेप कह्या। या प्रकार इन पृथ्वीनकी रचना कही॥ पंचम वेदीके आभ्यंतर-मध्य विषैं, तीन पीठि हैं। सो ऊपर-ऊपर गोल हैं। सो प्रथम पीठि, आठ धनुष ऊंचा है। सो वैडूर्य रत्नमई, हरा जानना। और दूसरा पीठि स्वर्णमई, ४ धनुष ऊंचा है। तीसरा पीठि, अनेक रत्नमई, च्यारि धनुष ऊंचा हैं। तहां प्रथम पीठिकी, सोलह पगथ्यां है। दोय पीठिकी ८—८ पगथली हैं। तिन पी-

ठिकी चौड़ाई—वृषभ देवके समय, प्रथम पीठि दोय कोस चौड़ाई सहित है। और जिनराजके हीनक्रम है। प्रथम पीठि विषैं च्यारों दिशामें च्यारि यक्षदेव, मस्तक पै धर्मचक्र धरैं, दोय हस्त जोड़े, विनय तैं खड़े हैं। ता धर्मचक्रके १००० आरा हैं। पहिआ (चक्र) के आकार, गोल है। ताके तेजके आगे, अनेक सूर्य, मंद भासैं हैं। तहां प्रथम पीठि पै, अष्ट मंगलद्रव्य हैं। और गणधरदेव, इन्द्र, चक्री आदि भक्तजन हैं सो; इस प्रथम पीठि पै चढ़ि, जिनदेवकी पूजा—भक्ति करैं हैं। आगे नहीं चढ़ैं। पूजा करि, पीछे पायन, पगथेन-की राह उतरैं हैं। सो अपनी सभामें आय तिष्ठैं हैं। दूसरे पीठिमें आठ ध्वजा हैं। तिन ध्वजानमें चक्र, हस्ती, सिंह, माला, वृषभ, आकाश, गरुड़ और कमल इनके आकार हैं। अरु यहां भी मंगल-द्रव्यादि अनेक रचना है। और तीसरे पीठि पै गंधकुटी है। सो चौकोर है। सो गंधकुटी वृषभदेवके समयकी ६०० धनुष चौड़ी है। इतनी ही ऊची व लम्बी है। जिनके हीनक्रमकी है। सो गंधकुटी अनेक मोती-माला कल्पवृक्षनके फूलनकी माला रत्नमाला अनेक जातिकी ध्वजा सुगंध-द्रव्यादि सहित शोभायमान है। तातें याका नाम गंधकुटी है। ताके मध्य, सिंहासन है। सो स्फटिक मणिमई, निर्मल है। अनेक रत्न जड़ित, शोभै है। अनेक घंटान करि शोभायमान है। ताके च्यारि पायेनकी जायगा, च्यारि रत्नमई सिंहनके आकार हैं। सो बैठे सिंहाकार हैं सो मानूं प्रत्यक्ष जीवित ही हैं। तथा मानों भगवान्‌की भक्ति करवे कों श्रावक-व्रतके धारी, सौम्य भावना सहित, धर्म-श्रवण कौं आये हैं। ऐसे सिंह बैठे हैं। तातें याकौं सिंहासन नाम दिया है। ता सिंहासनके मध्य, कमल है। ता कमल पर, अंतरीक्ष भगवान् विराजमान हैं। सो कमल, हजार पाखुड़ीका लाल वर्ण सहित है। ताकी कर्णिका पै, भगवान् विराजे हैं। तिन कूं बारम्बार हमारा नमस्कार होऊ। अब इस ही समोशरणके कोट, वेदी आदि रचनाकी ऊंचाईका प्रमाण कहिये है--सो समोशरणकी पांच वेदी, च्यारि कोट, और गलीनकी वेदी। सो इनकी ऊंचाई तौ अपने तीर्थंकरके शरीरकी ऊंचाई तैं चौगुणी है। और क्रीड़ा—मंदिर तथा जिन-मन्दिर तथा कोट—वेदीके द्वारके रतन-स्तूप, मानस्थंभ, ध्वजादंड, क्रीड़ा-पर्वत, नृत्यशाला, चैत्यवृक्ष, कल्पवृक्ष, सिद्धारथवृक्ष, अशोकवृक्ष, तथा बारह सभा, श्रीमंडप, एते स्थान अपने-अपने

तीर्थंकरनके शरीरकी ऊंचाई त, बारह गुणे ऊंचे हैं। समोशरणका प्रमाण-वृषभदेवका बारह योजन प्रमाण है। औरनके यथायोग्य घटता है। और जैसे अवसर्पिणीके जिनोंका समोशरण-प्रमाण, घटता कह्या। तैसे ही उत्सर्पिणीके जिनोंका समोशरण-प्रमाण बधता जानना। और विदेह क्षेत्रनमें समोशरणका प्रमाण, वृषभ देवके समान, सदीव सर्व जिनका जानना। ऐसे समोशरणका कथन किया। सो त्रैलोक्य प्रज्ञप्ति, धर्म संग्रह, समोशरण स्तोत्र, आदिपुराण, इत्यादिक ग्रन्थोंके अनुसार वर्णन किया। कोई आचार्य करि सामान्य-विशेष रचनाका कथन होय, सो केवलज्ञान-गम्य है। ऐसे सामान्य समोशरणकी रचना कही। ऐसे समोशरण विषैं श्रीजिनेन्द्र विराजैं हैं। सो अष्ट प्रातिहार्य करि मण्डित हैं सो तिन प्रातिहार्यनका विशेष कहिये है। सो तहां गंधकुटीके मध्य जाकामूल, अरु चौगिरद बड़े विस्तार धरैं, नानाप्रकार रत्नमई शाखान व रत्नमई फल-फूल पत्र सहित, अशोक वृक्ष है। ताके देखे अनेक जातिका शोक जाता रहै है। तातैं याका नाम अशोक वृक्ष है ॥ १ ॥ देवन करि वर्षाई, सर्व समोशरणमें अनेक वर्णमयी महा सुगंध सहित कल्पवृक्षनके फूलनकी वर्षा, सो अद्भुत महिमाकारी मानौं ज्योतिषी देवनके विमान ही आकाश तैं भगवान्‌के दर्शनकूं आये हैं। ऐसी प्रभा सहित फूलनकी वर्षा होनी सो पुष्पवृष्टि प्रातिहार्य है ॥ २ ॥ आकाश विषैं देवनि करि बजाये ॥१२॥ करोड़ जातिके अनेक सुन्दर वादित्रनके शब्द, सो दुंदुभी वादित्र हैं। उसीका नाम दुंदुभी प्रातिहार्य है ॥३॥ जैसा जिनदेवके शरीरका वर्ण, ता समान शरीरकी चौगिरद, गोलाकार, शरीरकी प्रभाका मण्डल सो प्रभामंडल है। तामें भव्य जीव अपने-अपने अगले-पिछले भव देखैं हैं। उसीका नाम प्रभामंडल है ॥ ४ ॥ तथा अनेक रत्न-मई सिंहासन शोभै है। तापै जिनदेव विराजैं। सो सिंहासन प्रातिहार्य है ॥ ५ ॥ एक दिन रात्रि विषैं ४ बार छह-छह घड़ी पर्यंत, भगवानकी वाणी खिरै। सो दिव्यध्वनि है। सो जैसे मेघ गर्जै तैसे शब्द करती ओंठ नाहीं हिलैं, तालवा नाहीं हिलै, सर्व शरीर तैं उत्पन्न भई, अक्षर रहित, भगवान्‌की वाणी खिरै ताके निमित्त पाय जो जीव जिस भाषा करि समझै, जाका जैसा अभिप्राय होय, तथा जाकूं जैसा उपदेश योग्य होय तिस जीवके श्रोत्र-इन्द्रिय द्वार तिष्टे पुद्गलस्कंध, तिसही अर्थ कूं लिये तैसे ही अक्षर रूप होय,

परणमैं हैं। तिस करि सर्व जीव, जुदा-जुदा उपदेश धारण करैं हैं। ऐसे अतिशय सहित भगवान्‌की वाणीका होना। सो दिव्यध्वनि प्रतिहार्य है ॥ ६ ॥ तीन रत्नमई छत्र, भगवान्‌के मस्तकपै फिरैं। सो छत्र प्रातिहार्य है ॥ ७ ॥ देवनि करि ढोरे गये ६४ रत्नमई चमर गंगाधारा समान उज्ज्वल सो चमर प्रातिहार्य सहित भगवान् समोशरणमैं विराजैं हैं ॥ ८ ॥ भगवानके है तो एक मुख, परन्तु च्यारों दिशा विषैं तिष्ठते जोव तिनकूं च्यारों ही तरफ मुख दीखै च्यारों ही दिशाके जीव ऐसा जानैं, जो भगवान्‌का मुख हमारे सन्मुख है। तथा उन्हें भगवान्‌के च्यारि मुख दीखैं हैं। भगवानकी मुद्रा, विना यत्न ही नाशाग्र-दृष्टि धरैं, ध्यान रूप, समता-रस मई होय है। तातैं भगवान्‌का दर्शन करनहारे भव्यनकी, दर्शन करते ही, ध्यान मुद्राका स्मरण होय, शांत दशा होय है। तातैं वीतराग-भाव बधे है सो मुद्रा अतिशय सहित है। कदाचित् शान्तमुद्रा नहीं होती तो भक्तनका भला नहीं होता। तातैं पर-जीवनका भला करनहारी, विश्वास उपजावनहारी, ध्यान रूप, पद्मासन, कायोत्सर्ग मुद्रा ही है सो ध्यान मुद्राके धारी भगवान् तिनकी बाह्य संपदा तो समोशरण है। आभ्यंतर संपदा अनन्त-चतुष्टयादि अनन्त गुण हैं। ऐसे भगवान्‌कूं हमारा नमस्कार होऊ। और जो भव्य भगवान्‌के दर्शन कूं, समोशरणमें जांय हैं, सो देव-विद्याधर तो स्वेच्छा जांय हैं। भूमि-गोचरी मनुष्य तथा तियंच, पगथेनकी राह, चढ़िकरि जांय हैं सो केई जीव तो सोधे ही पगथेन चढ़ि दर्शनकौं चले जांय हैं। केई जीव पगथेन चढ़ि कैं, पीछे सप्तभूमि पै जाय कैं, समोशरणकी गलीकी राह होय, अनेक रचना देखते, दर्शनकौं जांय हैं सो जे देव, विद्याधर चक्री आदि भव्य हैं। सो प्रथम पोठि पर्यंत जांय हैं। अरु दर्शन करि, अपने कोठेमैं जाय तिष्ठैं हैं। पीछे केई जीव बाहिर आय, जिन-गुण-गानादि करैं हैं सो समोशरण विषैं गये, ऐसा अतिशय होय है कि अन्धे तो नेत्र सूं देखैं, बहरे सुनैं, रोगी निरोग होंय। अनेक दुख सहित जीव दुख तजि सुखी होय हैं। समोशरणमें गये अनेक आरति, दुख, शोक, चिंता, भय, दूर होंय हैं। तहां सर्व प्रकार सुखी होंय हैं। परस्पर जीवनकैं वैर भाव नहीं रहै है। तहां सिंह-गाय-मोर-सर्प, मूसा-मार्जार कुत्ता-बिल्ली, इत्यादिक जाति-विरोधी जीव, बैर-भाव तजि मैत्री-भाव करैं हैं। तहां स्थान तो संख्यात अंगुल प्रमाण है। परन्तु तहां

जीव असंख्यात आवैं, तौ भी भीड़ नहीं होय। तहां क्षुधा, तृषा, नहीं लागै। राग-द्वेष नहीं होय। क्रोध मान माया लोभ नहीं उपजैं। इन आदिक समोशरणमें अनेक अतिशय होंय हैं। और समोशरणके बाह्य, १०० योजन पर्यंत, दुर्भिक्ष, ईति, भीति नहीं होय। या प्रकार भगवान्‌का अतिशय होय है। इन्द्रकी आज्ञा तैं धनपति देव, समोशरण रचै है। ऐसे समोशरणमें विराजमान श्रीभगवान् तिनका दर्शन जिनकूं प्रत्यक्ष होय ते भव्य धन्य हैं। हम पुण्य-संपदा रहित, प्रत्यक्ष दर्शनकों असमर्थ हैं। तातें मन, बच, तन करि, जिनदेवकों परोक्ष नमस्कार करैं। सो वे भगवान्, हमकूं इस ग्रन्थके पूरण होतैं अन्त-मंगल विषैं, सहाय होऊ। ऐसे समोशरण वर्णन किया। आगे भगवान्‌के विहार कर्मका स्वरूप कहिये है। तहां समोशरण विषैं विराजमान भगवान्‌के विहारका जब समय होय, तब इन्द्र महाराज अवधि तैं जानिकैं, लौकिक समय साधवेकूं, ऐसी बिनती करैं हैं। हे भगवान्! यह विहार-समय है, सो विहार करि अनेक भव्य—जीवनकूं धर्मोपदेश देयकें, उनको सुमार्ग बताय तिनका भला कीजिये। तब देवेन्द्रका प्रश्न पाय, भगवान्‌का तौ विहार-कर्म होय। अरु पिछली समोशरण-रचना विघटि जाय सो भगवान् जिस मार्ग विषैं विहार करैं। तिस मार्ग विषैं, दोऊ तरफ नाना प्रकार षट् ऋतुके फल-फूल सहित, अनेक वृक्षनकी सघन पंक्ति, होय जाय हैं। दोऊ तरफ, चांवलनके खेत, महा रमणीक, हरित वर्ण होय जांय हैं नदी, बावड़ी, महल पंक्ति, पर्वतनकी शोभा, मनोहर होय जाय है। तिस मार्गकी सर्व भूमि, दर्पण समान निर्मल होय जाय है। तिसके दोऊ तरफ चांवलनके फूले बनकी पंक्ति, अरु तिन चांवलनके निकट दोऊ तरफ निर्मल जलकी धारा धरैं, नदी समान नहर, चल्या करै है। और तिस मार्ग पै, आकाश तैं मेघकुमार जातिके देव, सुगंधित-जलके कण, मोती समान बारीका बर्षावते जांय हैं। और पवनकुमार जातिके देव, मन्द-सुगंध पवन, चलावते जांय हैं। एक योजन पर्यंत, सर्व भूमि, कंटक रहित करते जांय हैं। तिस मार्ग विषैं, भगवान् तौ समोशरणकी ऊंचाई प्रमाण आकाशमें गमन करैं, तिनके पद-कमलनके नीचे, १५-१५ कमलके फूलनिकी पंक्ति, १५ पंक्ति देव रचि देंय। सो २२५ कमलनका समुदाय, एक जायगै भूमका रूप रहै। ताके मध्यके कमल पै, च्यारि अंगुलके अन्तर पै पांव धरते भगवान्

आकाश विषैं मनुष्यकी नांईं डग भरते विहार करैं। यहां प्रश्न-जो भगवान् कैं तो इच्छा नाहीं। सो इच्छा विना डग कैसे भरी जाय ? ताका समाधान-जो भगवान् कैं, च्यारि अघातिया कर्म बैठे हैं। तिनके कारण पाय, वाणी खिरना, उठना, बैठना, चलना, डग भरना आदि क्रिया संभवै है। यामें इच्छा-बिना क्रिया होय है, यातैं दोष नाहीं। ऐसा जानना। ऐसे तौ भगवान् का विहार होय। मुनि आर्यिका, श्रावक श्राविका, च्यारि-प्रकार संघका विहार, भूमि विषैं होय है। कैसी हैं भूमि, सो बीथी (मार्ग) रूप है सो बीथीके दोऊ तरफ तो कोट हैं। ताके मध्य, एक योजन लम्बी, आध योजन चौड़ी रास्ता समान, देवन करि रची हुई, महा शोभायमान, रमणीक, निर्मल स्थान रूप गली है सो देव, विद्याधर, चारण-मुनि, और सामान्य केवली तो आकाशमें गमन करैं हैं। सो नहीं तो भगवान् तैं अति नजदीक, नहीं अति दूर, यथा-योग्य स्थान पै गमन करे हैं। सो इन्द्र हैं ते तौ भगवान्के नजदीक, भक्ति सहित चले जांय हैं। और सामान्य, चार प्रकारके देव हैं। सो दूर चले जांय हैं। सो केई देव तौ, चमर ढोरते जांय हैं। केई देव जय-जय शब्द करते जांय हैं। केई देव, चोबदारकी नांईं, हाथमें रत्न-छड़ी लिये, देवनकूं चले-चलो, चले-चलो, कहते जांय हैं। देवोंके समूहकौं विनय तैं, सिलसिले तैं लगावते जांय हैं। इत उत करते जांय हैं। और केई देव, भगवानकी स्तुति करते जांय हैं। केई देव बन्दना-नमस्कार करते जांय हैं। केई हर्षके भरे कौतूहल करते जांय हैं। और ऐसे ही मनुष्य तिर्यंच, भूमि विषैं, हर्ष ते चले जांय है। केई भव्य, भगवान् की तरफ देखते जाय हैं। इत्यादिक विहार समय, अनेक शुभ कार्य होंय हैं। सो सर्व व्याख्यान, विशेषज्ञानीके गम्य है। हमारी शक्ति सर्व कथा कहनेकी नाहीं। ऐसे विहार-कर्मका कथन किया। सो आगूं भगवान् जहां जाय विराजैंगे, तहां इन्द्रादिक देव, समोशरणकी रचना, पूर्वोक्त रचैं हैं। ता विषैं, भगवान् विहार करि, जाय विराजैं हैं। तिन भगवानकूं, हमारा नमस्कार होऊ। ये जिनेन्द्र देव, इस ग्रंथके अन्त-मंगलकूं करहु ॥

इति श्रीसुद्रष्टि तरंगिणी नाम ग्रन्थ मध्ये, अन्त-मंगल निमित्त अरहंतदेवकूं नमस्कार पूर्वक समोशरण कथन, विहार-कर्म कथन वर्णनो नाम, चालीसवां पर्व सम्पूर्ण ॥

आगे और भी अंत-मंगलके निमित्त, भगवानके महा भक्त, स्तोत्रनके कर्त्ता आचार्य, तिन कूं नमस्कार करिये है। तहां प्रथम श्री वादिराजनाम आचार्य, जिन-धर्मके उद्योत करवेकूं सूर्य समान महा तेजस्वी, एकीभाव स्तोत्रके कर्त्ता, तिन कूं नमस्कार होऊ। वादिराज मुनिने, जा कारण पाय एकीभाव स्तोत्र किया, सो कहिये है-इनने गृहस्थ अवस्थामें अनेक राज्य—भोगनके भोक्ता होय, कामदेव—समान रूप धरैं, संसार-भोगन तैं उदास होय, राज्य भार तजि, यती-व्रत धार्या। सो महा वीतराग पदके धारी कौं, पूर्व कर्म उदय, शरीरमें कुष्ट रोग प्रकट्या। सो तन, जगह-जगह तैं फूट निकस्या। महा दुगंध उपजी। सो यह वीतरागी, तन तैं निष्प्रेम है। आगे ही सूं शरीर कूं पुद्गल-सप्तधातुका पिण्ड जानै आत्मा-रस रमता योगीश्वर, शरीरका उपचार, कछू नहीं वांछता भया। सो विहार करते, एक नगरके बनमें तिष्ठै। सो जब बस्ती में आहार कूं जांय, सो नगरमें महा धर्मात्मा श्रावक, निर्विचिकित्सा गुणके धारी, यती कौं नवधा-भक्ति सहित, हर्ष सौं दान देय, अपना भव सफल मानैं। ऐसे, बनमें रहते, कई दिन भये। सो राजाका मन्त्री, एक सेठ था। जो महा धर्मात्मा। प्रभात उठै बनमें जाय, रोज वादिराजमुनिका दर्शन करि, धर्म सुनि, तब पीछे राजाके दरवारमें जाय। सो कोऊ पापी, इस सेठके द्वेषी पुरुषने, जाय राजा पै कही। भो राजन्! इस सेठका गुरु, कोढ़ी है। सो यह प्रथम ही उस कोढ़ीके दर्शन कूं जाय, ताके मुख तैं धर्म सुनि, पीछे आपकी सेवामें आवै है। याका गुरु महा कोढ़ी है। ताकी दुर्गंध आगे, कोई नहीं ठहरै। सो ये बात उचित नाहीं। तब राजा कही, यह बात झूठ है। ये सेठ, हमारा ऐसा अविनय नहीं करै। तब चुगलने कही, यामें असत्य होय, तौ जो गुनहगारकी गति होय, सो मेरी करौ। तब राजा ने, दूसरे दिन सेठ सूं कही। हे सेठ! क्या तेरा गुरु कोढ़ी है? तब सेठ इसका उत्तर अविनय वचन जानि, राजा सूं कही। भो नाथ! कहनेहारे ने असत्य कही है। गुरु शुद्ध हैं। तब राजा नैं कही। जो शुद्ध हैं तो हम प्रभात दर्शन कौं चालेंगे। ऐसे राजा के वचन सुनि, सेठ चिंता कूं प्राप्त भया। जो मैं राजा पै असत्य बोल्या, सो तौ विनय तैं बोल्या। मेरे मुख तैं मैं, गुरु कौं कुष्ट है, ऐसा अयोग्य-वचन कैसे कहौं? ऐसी जानि असत्य कहा। अरु प्रभात, राजा

दर्शन कूं जाय, गुरुका शरीर प्रत्यक्ष रोग सहित देखेगा, तौ यह पापिष्ट गुरु कौं उपद्रव करैगा। अरु मेरा मरण भया ही है। परन्तु गुरु कौं उपसर्ग नहीं होय तौ भला है। इत्यादिक प्रकार सेठ महा चिंतावान् होय पीछे वनमें गुरुके पास गया। सो मुनीश्वर ज्ञान-भंडार कही। भो वत्स! तेरा मुख चिंतावान्-उदास क्यों? अरु तू प्रभात आया था सो अबार आवनेका कारण कहा? तब सेठ ने गुरुके पास राजाके आवनेकी सर्व कथा कही। अरु विनती करी कि यह राजा महा क्रूर स्वभावी है। सो मोकूं मारेगा तो मारौ। परन्तु आप यहां तैं विहार करौ तो भला है। नहीं तो उपसर्ग करेगा। मैं महा पापी ताके निमित्त पाय उपद्रव हो है। इत्यादिक, सेठ कूं महा भयावंत भया, अपनी आलोचना कूं लिए वचन बोलता देख, मुनीश्वर करुणा करि, धर्मकी प्रभावना करवे कूं बोलते भए। भो वत्स! भो आर्य! भय मत करो। राजा दर्शन कूं आवै, तौ आवने देवो। ऐसे गुरुके वचन सुनि, सेठ मनमें हर्ष पावता भया। जो जगतका नाथ, मेरे गुरुने, मोहि अभयदान दिया। सो अब भय नाहीं। तब भी सेठने विचारी, जो गुरुके तन मैं तो, यह प्रत्यक्ष रोग है। अरु गुरुने अभयदान दिय। सो यह वचन गुरुका, आश्चर्य उपजावै है। तथा सेठ विचारै है। यह वीतराग-गुरुकी, अखंड आज्ञा है। सो मेरु चलायमान होय तो होय, परन्तु गुरुका वचन अन्यथा नाहीं होय। तातैं, गुरु कही, भय मति करौ, सो अब मोहि, भय नाहीं। ऐसा दृढ़ निश्चय करि, सेठ भी अपने मन्दिर गया। तब यतीश्वरने भगवान की स्तुति करी। चौवीस काव्य में, स्तोत्र किया। सो मन-वचन—काय एकत्व शुभ रूप करि, जिनदेव के गुणानुवाद गाये। सो भक्तिके भाव तैं, अंत काव्य के पूरण होते, यतीके तनका सर्व रोग, नाश भया। सूर्यके तेज समान, तनकी दीप्ति प्रगट भई। सो यतिने बांयें हाथकी छोटी अंगुली की एक नौंक, राजाके प्रतीति के अर्थ, रोग सहित रहने दई। बाकी सर्व—तन, कंचन वर्ण भया। जब प्रभात, राजा दर्शन निमित्त, चतुरंग सेना मिलाय, महा दल सहित आया। अरु यतीके तनका रोग, सब नगर जाने था सो इस कौतुक कूं सुनि, सब नगरके लोग भी, कौतुक-हेतु आये। सो वनमें मनुष्यका समूह फैल गया। राजा तहां आया, जहां यतीश्वर विराजें। सो वाहन तैं उतरि, मुनिके दर्शन कूं आगे

गया। सो शरद ऋतुकी पूर्णमासीके चन्द्रमा समान निर्मल कान्ति धारैं, समता समुद्र, वीतरागी योगीश्वर कूं देख, मुनिके तनकी दीप्ति कौं देख, विस्मय कूं प्राप्त भया। दूर तैं नमस्कार किया। राजाने मुनिकी अनेक स्तुति करी। अरु जानैं, राजा पै चुगली करी थी, तापै राजा कोप करि, ताकौं दण्ड देवे का विचार करता भया। तब यतीन्द्रने, राजाके मनका अभिप्राय जानि, आज्ञा करी। भो नृपेन्द्र! कोप मति करौ। वानै असति नहीं कही थी। हमारा तन कुष्ट—रोग सहित था। परन्तु या सेठने, मेरे रोग का नाम, अविनय—भय तैं नहीं लिया। सो याके भय निवारण कूं, प्रभुकी स्तुतिके प्रसाद तैं, शरीर शुद्ध भया। बाकी यह शरीर, महा अशुचि, सप्त धातुका पिण्ड ग्लानि का स्थान है। याके विषैं, यती निष्प्रिय है। परन्तु सेठ के धर्मानुराग सूं, यह कार्य किया है। अपने बांये-करकी अंगुली की नौंक, रोग सहित राखी थी, सो राजा कौं बताई। कही, भो नरेन्द्र! यह अँगुली समान, यह सर्व तन था। सो धर्म के प्रसाद करि, प्रभुकी भक्ति के प्रसाद करि, यह तन शुद्ध भया। तातैं तूं कोप मति करै। वानै सत्यही कही थी। ऐसे बचन मुनिके सुनि, राजा अचरज कूं प्राप्त भया। मिथ्या—बुद्धि गई। अरु शुद्ध—धर्मका धारी भया। बारम्बार, सर्वज्ञ का धर्म प्रशंस्या। सर्व लोग यह अतिशय देख, मिथ्या—भाव तजि, शुद्ध—धर्मके धारक भए। और श्री वादिराज मुनीन्द्रकी स्तुति करते भये। अरु वादिराज—योगीश्वर का किया एकीभाव स्तोत्र कौं, घने भव्य, मंगलके अर्थ सुनते भये, पढ़ते भये। ऐसा एकीभाव स्तोत्र, अरु इसके कर्त्ता श्री वादिराज मुनीश्वर जगत गुरु, इस ग्रन्थके अंत में, इस ग्रन्थके कर्त्ता कूं, तथा इस ग्रन्थके पढ़नेहारेन कूं मंगल करौ। ऐसे वादिराज नामा आचार्य कूं नमस्कार करि, अन्त-मंगल विषैं, तिनके गुणनका स्मरण किया। आगे इस ग्रन्थके अन्त-मंगल करतैं, श्री भक्तामर-स्तोत्रके कर्ता श्री मानतुङ्गाचार्य, तिनकूं नमस्कार करिये है। कैसे हैं श्री मानतुङ्गाचार्य, प्रत्यक्ष जिनधर्म प्रकाशवेकूं दिनकरि सूर्य समानि हैं। अरु मिथ्या-सन्देह मयी शिखर, ताके भंजनकूं, इन्द्रवज्रके समानि हैं। प्रत्यक्ष भगवन्त देवके महाभक्त हैं। तथा कुवादीनकी अतत्व श्रद्धान रूपी प्रवाह रूप नदी, सो कुनय रूप तरंगनि सहित, सो ज्ञान रूपी जीर्ण वृक्ष तिनकौं उपा-

ड़ती, अपनी स्वेच्छा वेग रूप बहती ऐसी तरंगणी, ताके रोकवेकूं मानतुंग गुरु, कुलाचल-शिखर समानि हैं। ऐसे गुरुकूं नमस्कार होऊ। जिन नैं भक्तामर-स्तोत्र करि, प्रगट यश पाया। तिन तैं भक्तामर-स्तोत्र कैसे भया, सो कहिये है। तहां उज्जैन नगरी, जहां राजा सिंह महा-प्रतापी, राज्य करै। ताके रत्नावली नाम स्त्री, सो महा सती, शची समान रूपवती है सो तिनकैं पुत्र नाहीं राजाकूं चिन्ता भई। तब मन्त्रीने कही। हे नाथ! धर्म-सेवनकीजे। ताके प्रसाद, सब सुख: होय है। ऐसे करते, एक दिन राजा, परिवार सहित बन गया सो एक सरोवरके तीर मुंजके वृक्ष नीचे, एक बालक देख्या। सो बालक, रानीकूं दिया और ताका नाम मुंजकुमार रखा सो बालक अपने रूप-गुण सहित, वधता भया। पीछे केतेक दिन गये, रत्नावली रानीके गर्भ रह्या। सो नव मास पूर्ण भये, पुत्र भया। ताका नाम, सिंहलकुमार रखा। वह अनुक्रम तैं, तरुण भया। तब पिताने, सिंहलकुमारके व्याह किये सो शुभ राजोंकी पुत्रीं, तिनमें एक मृगावती नामा रानी सहित; कुमार कैं दोय पुत्र-युगल भये। तिनमें बड़का नाम शुभचन्द्र, अरु छोटेका नाम भर्तृहरि। ये दोय-पुत्र क्रम तैं, स्याने भये। अनेक विद्या-प्रवीण भये। एक दिन राजा:सिंह, संसार तैं उदास भये सो मुंजकूं राज्य, अरु सिंहलकूं युवराज पद देय; आप यती पद धारि, आत्म कल्याण किया। अब राजा मुंज, राज्य करै सो एक दिने, राजा बनक्रीड़ाकों गया था सो आवते, एक मन्दिरके द्वार, एक तेलीने कुदार नाम विद्या साधी थी सो ताने कही। हे राजन् मोकूं विद्या सधी है सो मो समान, पृथ्वीमें बली नाहीं। तब राजाने कही तू नीच कुलीकूं एती विद्याका बल कबहूं हो सक्ता नाहीं। तब तेलीने दोऊ हाथ तैं जोर करि विद्याका कुदार, धरतीमें गाड़्या। कही जो कोई योद्धा होय, तौ काढ़ौ। तब राजाने अपने सामंतनकूं कही काढ़ौ सो सर्व सामन्त, बड़े-बड़े मल्ल, पचि-पचि हारे, कुदार नाहीं निकस्या। तब राजा सिंहल उठ्या सो एक हाथ तैं कुदार निकास्या। पीछे सिंहलने एक हाथ तें, कुदार गाड्या। अरु कही, याकौं काढ़ौ, तौ जानैं। तब तेली, विद्या-बल करि हास्या। तथा राजाके मल्ल-सुभट पचिहारे, कुदार नाहीं निकस्या। एतेमें राजा-सिंहलके दोय पुत्र आये। अरु पितातैं कही। प्रभो! हमकौं आज्ञा करो तौ हम काढैं। तब राजा, हँस करि कही।

भो पुत्र हो ! यहां तिहारा काम नाहीं । तिहारी बराबरीके लड़का-बालकनमें क्रीड़ा करौ। तब कुमारोंने कही । हे नाथ ! बिना हाथ लगाये काढ़ै, तो आपके पुत्र जानहु । सो हठ करि, पिता तैं आज्ञा लेय, अपने मस्त-कके केश लेय, कुदारमें उरझाय कैं, झटक्या सो खैंच कैं कुदार निकस्या सो इनका पौरुष देख, राजा मुंजने मंत्रीसूं कही । इनकूं मारौ । इन बालकन छते, मेरा राज्य जमैं नाहीं । तब मंत्रीने, इन कुमारनकूं कही । तुम्हारा बाबा तुमकौं मार्‌या चाहै है । तातैं तुम कोई दिन यहां सूं भागो तब दोऊ कुमारन नैं, अपने पितासूं कही । भो नाथ ! हम कूं राजा मुंज, मार्‌या चाहै है सो हमकौं, कहा आज्ञा होय है ? तब राजा सिंहलने कही । तुम ताकौं मारौ । जो आपको हनें, तो हनताकौं आप भी हनिये । याका दोष नाहीं । यह राजनीति है । ऐसे वचन पिताके सुनि, शुभचन्द्र अरु भर्तृहरि इन दोऊ कुमारननैं कही । हे नाथ ! हमारैं तो वे आपकी समान हैं सो बाबा कौं कैसे मारैं ? सो संसार तैं उदास होय, विरक्त भये । अरु दोऊ भाई, तप धरते भये । सो शुभचन्द्र तो बनमें जाय, धर्म धुरंधर गुरुके पास जिन-दीक्षा धरि मुनि भये । नाना तप करि अनेक ऋद्धि पाई । छोटे भाई भर्तृहरिने बनमें जाय तपसीके व्रत धारे सो अनेक अज्ञान तप करे । सो एक दिन बनमें भूल्या सो त्रिसावन्त भया नीर देखता, एक जायगा बनमें एक तापसी, पञ्चाग्नि आदि अनेक तप करै, तहां पहुंचा । सो भर्तृहरिने तिस तापसीके पास जाय, नमस्कार किया । तब तापसीने, भर्तृ-हरि सूं कही । तुम अपना नाम-कुल कहो। तब भर्तृहरिने नाम-कुल कह्या सो भर्तृहरिने, याकी बड़ी सेवा करी तब तापसीने राजी होय, कलंकी तूम्बो भर दीनी । और कही । यातैं तांबा, कंचन होय है । अनेक मंत्र तंत्र आदि चमत्कारी-विद्या दई । ऐसे बारह वर्ष तांईं, भर्तृहरिजीने, तापसीकी सेवा करी । पीछे गुरुके पास तैं, सीख मांगी । पीछे भाई शुभचन्द्रजी की खबर कों चेला भेजे । सो चेलोंने, शुभचन्द्र कों गंधमर्दन पर्वत पै, ध्यानारूढ़, नगन तन, वीतराग देखे सो भर्तृहरिके चेला, दोय दिन उपवास करि, भूख तैं भागे सो आय भर्तृहरि कूं कही । तुम्हारे भाई पै लगोट नाहीं । भूख तैं छीण हैं । अरु तुम, राज भोगो हो । सो कछु भाई कौं देव । जातैं ताका दारिद्र जाय । तब भर्तृहरि ने, आधा कलंक का तूम्बा, भाई कों

भेजा। सो शुभचन्द्रने पत्थर पै डाल दिया। तब चेलाने, भर्तृहरि सूं कही। वह भाग्यहीन है, कलंक डाल दिया। तब भर्तृहरिने आप, शुभचन्द्र जी पै जाय, पिता समान बड़े भाई कूं जानि, विनय तैं नमस्कार करि, कलंक की तूम्बी आगे धरी। तब शुभचन्द्रजी ने कही, तूम्बीमें कहा है? तब भर्तृहरिने कही। भो प्रभो! तांबा तैं कंचन करै, यामें ऐसा गुण है। तब शुभचन्द्रजी ने तूम्बा उठाय, शिलपर धरि पटक्या। सो भर्तृहरि कही। भो भ्रात! यह अनेक राज्य—संपदा का द्रव्य, आपने डाल दिया, सो भली नहीं करी। हे भ्रात! बारह वर्ष गुरुकी सेवा करो, तब मोकूं उन्होंने दीनी थी। इस तरह भर्तृहरि कौं खेद—खिन्न देख, शुभचन्द्रजी ने कही। भो वत्स! राज्य तजि, वन बसे। अब भी कलंक नहीं तज्या। यह कलंक, मुनीश्वरों कूं कलंक समान है। तातें तजना योग्य है। अरु भो वत्स! तेरे कलंक तैं, पाहन तौ कंचन नहीं भया। अरु तेरै स्वर्ण की चाह होय, तौ देख! तब शुभचन्द्र ने, अपने पांव—नीचेकी रज लेय, एक बड़ी शिला पै डाली। सो सर्व शिला कंचनकी भई। सो भर्तृहरि यह अतिशय देख, बड़े भाईके पांयन पड़े। अनेक स्तुति करि, जिन—दीक्षा याची। तब शुभचन्द्रजी ने दीक्षा दई। अरु इनके संबोधवे कों, ज्ञानार्णव नाम ग्रन्थ बनाय, दीक्षामें दृढ़ किया। सो पीछे, दोउ भाई, जिन-दीक्षा सहित तप करते भये। अरु वहां, उज्जैन नगरी का राज्य, राजा मुंज करै। सो एक दिन राजा मुंज, मनमें दगा विचारता भया। जो, सिंहल जोरावर है। यातैं मेरा राज्य नहीं रहेगा। तब मंत्री कूं कही। सिंहल कूं मारौ। तब मंत्रीने कही। दोष कहा सो कहौ। निर्दोष कौं मारे, महा-पाप है। तब एक दासी सौं मिलि, ताकौं अंधा किया। तिस चेटीने, सिंहल कों, तेल मर्दन करतें, ताके नेत्र फोड़े। तब राजा मुंज, यह सुनि दुख करता भया। जो पुत्र तौ दीक्षा ले गये, भाई अंधा भया। अब कुल नाश भया। मैंने महा-पाप किया। इत्यादि प्रकार पछताता भया सो एते, एक भोजक—याचकने आय, राजा मुंज कूं बधाई दई। कही, भो राजन्! तुम्हारे भाई सिंहलके पुत्र भया। तब राजा मुंज राजी होय, सिंहलके घर आया सो द्वार पै एक श्लोक लिखा देख्या—

श्लोक—वर्षाणि पञ्च पञ्चाशत, सप्त मासान् दिनत्रयं। भोजराजेन भोक्तव्या, सुखेन दक्षिण दिशा॥ १॥

यह श्लोक देख, राजा मुंजने पण्डितन कूं बुलवाय, कही। श्लोक किसने लिख्या ? तब एक पण्डितने कही। भो राजन्! इस बालकके पुण्यका माहात्म्ह-होनहार, मैंने लिख्या है। ये भोजराज, दक्षिण दिशामें ५५ वर्ष ७ महीना ३ दिन राज्य करेगा। ऐसी सुनि, सर्व राजी भये। बालक अनेक विद्यानिधान, क्रम करि वड़ा भया। तब राजा मुंजने भोजपुत्रका व्याह करि, राज्य दिया सो राजा भोज, जगत्में अपने प्रताप करि, राज्य करै। इस भोजराजाके यहां, एकवररुचि नाम पण्डित रहै सो ताकी पुत्री, वर-योग्य भई। सो पिता ने पुत्री सूं कही। तू कहै, ताहि परणाऊं। तब पुत्री ने कही। ऊंच-कुलकी कन्या, अपने आप, वर नहीं याचै। जो भाग्यमें होय, सो पावै। तथा व्यवहारनय करि, माता-पिता जाकूं परणावैं, सो प्रमाण है। ऐसे पुत्रीके वचन सुनि, पिता महा-कोप करि, एक महा दरिद्र, मूर्ख पुरुष खोज, ताहि कन्या परणाई। तब कन्या ने कही, पूर्व-कर्म कौं कौन मेटै ? ऐसी जानि, वह समता धरती भई। पीछे वररुचि विचारी। जो राजा भोज पूंछेगा, तुम्हारा दामाद कैसा पंडित है ? तो मोहि लज्जा उपजेगी। ऐसा जानि वररुचि, ता दामाद कूं बहुत पढ़ावै। परन्तु ताकौं, एक अक्षर भी नहीं आवै। बहुत कालमें, आशीर्वाद वढ़ाया सो राजा भोजकी सभामें अनेक पंडित इकट्ठे भये। तहां वररुचिका दामाद जाय, राजा कों आशीष वचन देते अशुद्ध बोल्या। तब राजा ने कही, मूर्ख है। तब वररुचि ने अशुद्ध वचन कौं, अपनी पंडिताई करि, शुभ करि, राजा कों बताया। घर जाय जमाई कौं, मान-खंडनेहारे वचन कहे। तब ये अपने कों मूर्ख जानि, कालिकादेवीके मठमें, अधो-मुख जाय पर्‌या। कही मोय विद्या-वर देहु, नहीं तौ मैं मरि हौं। तब सातवें दिन, देवी प्रसन्न भई। वांछित वर दिया। कही, तेरा नाम कवि-कालिदास हो। और वचन-सिद्ध वर दिया सो देवीके प्रसाद तैं, अनेक विद्या-शब्द स्फुरे। ताकरि सर्व पंडित जीते। तब सबने कही, विद्या कहां पाई ? तब यानें कही, कालिका देवीके पास पाई। तब वररुचि याके पाँयन पर्‌या। कही, मेरी कन्या धन्य है। याके वचन, सत्य हैं। अब ये कालिदास प्रगट भया। सो एक दिन राजा भोजकी सभामें जाय, कालिका कूं आराधी सो सर्व साभ, कालिका कौं देख, नमस्कार करि, कालिदासकी प्रसंशा करती भई। ऐसे कालिदास प्रसिद्ध भया।

अब एक वसुदत्त सेठ, याही उज्जैनी नगरीमें रहै। सो महा- धर्मात्मा, ताके मनोहर नाम पुत्र था सो एक दिन सेठ, पुत्र सहित, राजा भोज पै गया। तव राजा ने, सेठ तैं पूछी। तिहारा पुत्र कहा पढ़्या है ? तव सेठ कही। भो नाथ। नाममाला ग्रन्थ, अर्थ सहित पढ़्या। तव भोजराज कही। नाममालाका कर्त्ता कौन ? तव सेठ कही। धनंजय नाम महा-पंडित है। तव राजा कही, धनंजय त मिलाओ। सो राजा-भोज महा-पंडित, गुणीजनका दास, सो धनंजय कूं वुलाया। आदर सहित राजाने भले मनुष्य भेजे। तव कालिदास वोल्या। हे राजन्। धनंजय, कछू समझता नाहीं। जव धनंजय-कवि आया, तव राजा ने धनंजय कूं, ऊंचे आसन पर वैठक दई। और कही, तुम्हारा नाम वड़ा। सो कौन ग्रन्थ किये ? तव धनंजय कही। भो राजेन्द्र ! मेरे किये ग्रन्थमें, इन पंडितों ने मेरा नाम लोप, अपना नाम धर्‌या है। तव भोजराज ने, पंडितोंको उलाहना दिया, कि तुम काहेके पंडित हो। तव सर्व पंडितौं ने कही। भो राजन् यह धनंजय कचका पंडित है। याका गुरु तौ, मानतुङ्ग मुनि है। जो महा मूख है। यापै विद्या, कहां तैं आई ? याका गुरु अव भी वनमें है। सो आय, हम तैं वाद करै। तव धनंजय कही। भो पंडित हो। गुरुका नाम तौ, उत्तम गुण-रूप है सो वे वहीं विराजै रहैं। परन्तु तुम्हारे वादको इच्छा होय, तो मोतैं वाद करो। तव इनमें परस्पर वाद होता भया। सो अनेक नय, दृष्टान्त, प्रश्नोत्तर करि कालिदास आदि सर्व पंडितों कूं राजा भोजकी सभामें धनंजय ने जीत्या। सव वचन-वंद भये। तव कालिदास कोप करि वोल्या। हे राजन्। यह महा मूर्ख है। सो यातैं कहा वाद करैं। याका गुरु मानतुङ्ग है। सो ताकौं वुलाइये, तातैं वाद करैंगे। तव राजा ने अपने भले मनुष्य मानतुंग नामा मुनीश्वरके ल्यायवे कौं भेजे। तिननें मुनीश्वर सूं कही। हे नाथ। राजा भोजने नमस्कार कह्या है। अरु आप कूं वुलाये हैं। तव यती कही। हमारा राजगृहमें प्रयोजन नाहीं। ऐसी कही और नहीं गये तव कालिदास कही। भो राजन्। वह मान तुंग मानका शिखर है। महा -मानी है सो भली तरह नहीं आवेगा तव राजा भोज, कोप करि कही। यतीकों, पकड़ि ल्यावो। ऐसी सुनि, राजाके सेवक गये, सो यती कूं उठाय ल्याये राजाके पास धर्‌या सो यती मौन सहित, पंच-परमेष्ठीका ध्यान करते, तिष्ठते भये। तव राजा, कोप करि कही, याकौं वंदी-

गृहमें धरौ। तब राजाकी आज्ञा पाय, किंकिरोंने यतीकौं भौंहरेमें दिया सो अड़तालीस कोठोंके भीतर मूदे, और सब कोठोंके जुदे-जुदे ताले दिये। राजाकी तिनपै मुहुर करी अरु यतीके पांवनमें बेड़ी, अरु हाथमें हथकड़ी, गलेमें जेल (सांकल) डाली। इत्यादिक दृढ़ बंधन किये। तापै, अनेक विश्वासी सुभट राखे। ऐसे महा संकटके स्थानमें, मुनीश्वरकूं नाख्या। सो वीतरागी यती, समता सहित रहे। तहां तीन-दिन भये, तब यतीश्वरने विचारो कि यामें जिनधर्मकी न्यूनता दिखैगी। पापीजन, धर्मी-पुरुषनकूं पीड़ेंगे। ऐसी जानि आदिनाथ स्वामीकी स्तुति, महा भक्ति-भावन सहित करी। ४८ काव्य किये। तिनमें अनेक मन्त्र, अतिशय सहित गर्भित करि भक्तामर नाम दिया सो मंत्र समान उत्तम काव्य किया। तिनमें आदिनाथ भगवानके गुण कहे। सो प्रभुकी स्तुतिके प्रसाद करि सर्व कोठोंके ताले अकस्मात् टूटि गये। यतीके तन-बंधन झड़ गये। यती निर्बंधन होय आये। सो तिनकौं देख, सेवक डरे। तब यतीकौं बहुत बंधनमें दिये सो फेरि बंधन टूटि गये। तब राजा भोज पै जाय, सेवकने कही। भो नाथ! यती बाहर निकसि आये हैं। तीन बार बंधन में दिये तीनों बार, बंधन आपै-आप टूटे हैं। ऐसा आश्चर्य न देखा, न सुन्या। तब राजा भोजने, कालिदास आदि सर्व पण्डितोंकौं कही। जो यह अतिशय यतीका भया। तब सबने कही। भो राजा! यह यती, महा जादूगर है। सो मंत्र-तंत्र करि निकस्या है। बंधन तोड़े हैं। तब राजाने दृढ़ बंधन करि पुनः कोठरीमें बंद करि चौकी राखी। तब यतीने भक्तामर-स्तुतिका पाठ किया। सो सर्व बंधन टूटे। निर्बंधन होय यती भोज-राजकी सभामें आये। तब राजा यतीकौं देख कांपता भया। और कालिदासकूं बुलाय कही। यतीका तेज मेरे बूते सह्या नहीं जाय है। ताका यत्न करो। तब कालिदास कही। राजन् डरौ मति। और उसने कालि-कादेवीकूं आराधी। जब देवी आयी। सो महाविकराल रूप बनाय ताने कही। भो कालिदास! क्यों आराधी सो कहो। एतेहीमें चक्रेश्वरी देवी आय यतीकौं नमस्कार किया। अरु कालिकाकूं देख चक्रेश्वरीने कही। रे महापापिनी। तैंने मूर्खनके संग करि अपना आतमा पाप—लिप्त करि पर भव बिगाड्या। अब तोकौं स्थान भ्रष्ट करि हौं। द्वीप तैं निकास हौं। तैंने यतीकौं उपसर्ग किये। ऐसे चक्रेश्वरीके बचन कालिका

सुन पाप-फलतैं कंपायमान होय चक्रेश्वरीके पांयन पड़ी। कही, भो माता! मो अपराध क्षमा
करि। मोह आज्ञा करौ, सो करौं। ऐसे नाना प्रकार चक्रेश्वरीकी स्तुति करि, पीछे कालिका, ५९०
मानतुंग गुरुके पांयन पड़ी गुरुकी अनेक बिनती करती भई। अरु कही, भो यती! मोकों आज्ञा करौ,
सो करूं तब यती कही। भो देवी! पूर्व भवमें पुण्य किया, ताके फल देवी भई। बड़ी शक्ति पाई।
विवेक पाया। अब तूं ही हिंसाकी कर्त्ता भई, सो भला नाहीं। अब हिंसा तजि, दयाधर्मका सेवन
करौ। ऐसी आज्ञा, गुरु नै करी तब कालिकाने मुनिकूं नमस्कार करि कही! भो प्रभो! आज तैं, मन-बचन
काय करि हिंसाका त्याग किया। आपकी आज्ञा मोकौं कल्याणके अर्थ है, सो मैंने अंगीकार करी। भो
यतीनाथ। मो अपराध क्षमा करौ। ऐसे कालिका देवीकौं सेवा करती देख राजा भोज आय मुनिके पांयन
पड़ता भया। दीन होय गद्गद वाणी करि कहता भया। भो दयानिधान! रक्ष! रक्ष! मो अपराध क्षमा
करौ। भो दयामूर्ति! मेरा प्रायश्चित्त कहो। अरु भव-भ्रमण मिटै, सो उपदेश देहु। तब गुरुने कही। भो
भोजराज! आदिनाथका धर्म सेये, कल्याण होयगा। तब राजा भोज, मानतुंग मुनी पै, श्रावकके ब्रत लेता
भया। यह अतिशय देखकर, जे पण्डित, वाद कौं आये थे। सो मान तजि, मिथ्याभाव छांड़ि, श्रावक-ब्रत
धारते भये। तब कालिदास आय मानतुंग मुनिके पांयन पड्या। कही, हे नाथ! मेरा अपराध क्षमा करो।
अरु मोहि श्रावक-ब्रत देहु। तब गुरुने दया करि कालिदासकौं श्रावक-ब्रत दिये। पीछे राजा भोजने, गुरु पै
नमस्कार करि कही। भो गुरुदेव। एक सन्देह मोहि है सो कहूं हूं। भो गुरुदेव। आपके सर्व बंधन टूटे सो
मंत्र कौन है, सो कहो। ये मंत्र हमकौं दया करि देहु। तब गुरु कही। भक्तामर महा मंत्र अनेक विघ्नका
नाशक है ताका स्मरण, पठन, ध्यान, सुखकारी है। ऐसा अतिशय देख, अनेक मिथ्या-भाव तजते भये। सो
श्री मानतुंग आचार्यने प्रथम तौ भक्तामर स्तवन राजा भोजकौं पढ़ाया। ता पीछे, सर्व जगतके भव्य-जीव ६४८
ताकौं पठन करते भये। सो भक्तामरके कर्त्ता, विघ्नके हर्ता, मंगलके कर्त्ता, श्री मानतुंग गुरु मोकौं इस

ग्रन्थके पूरण होतें, अन्त-मंगलमें सहाय करो। ऐसे महा अतिशयके धारक, पंचमकालमें साधु भये। तिनकूं मैंने ग्रन्थके अन्त-मंगल निमित्त स्मरण किया ॥

इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, अन्त-मंगल निमित्त, एकीभावके कर्त्ता श्री वादिराज मुनीश्वर, तिनके गुणोंका स्मरण तथा भक्तामरके कर्त्ता श्रीमानतुङ्ग नामा गुरु, तिनके गुणनका चिंतवन, तथा स्तोत्रनके कारण वर्णनो नाम, इकतालीसवां पर्व सम्पूर्ण ॥ ४१ ॥

ऐसे इस ग्रन्थके पूर्ण होते, अन्त-मंगलके निमित्त, कल्याणके अर्थ, इष्टदेव, पंच परम गुरु, सिद्ध क्षेत्र, समोशरण विषैं विराजते भगवान्, अकृत्रिम जिन भवन, इन आदिक सर्वका स्मरण, ध्यान करि, तिनकूं नमस्कार किया। ताकरि हमने अपना मनुष्य-जन्म पाना, सफल मान्या। काहे तैं, सो कहिये है। जो यह ग्रन्थ, सागर समान गम्भीर, नय-तरंगन करि भर्या, नहीं दृष्टि परै है सामान्य ज्ञानमें अर्थरूपी मर्याद कहिये पार जाकी। ऐसे अगाध गुण-निधिका पार पाना, हमसे ज्ञान दरिद्रीनकूं, महा दुर्लभ। सो इष्ट देव गुरुके प्रसाद, तिनकी भक्तिके अतिशय करि ग्रन्थ पूरण भया। सो यह आश्चर्य ऐसा भया जैसे कोई भुजा रहित पुरुष, अन्तके स्वयंभूरमण समुद्रकौं तिरके पार होय, लोकनकूं विस्मय उपजावै। ऐसा ये कार्य जानना। तथा कोई धन रहित दरिद्री पुरुषने व्याह रच्या। अरु बड़ी जायगा सगाईका संबंध करि, हजारों मनुष्य नेवते देय परदेश तैं बुलाये। सो इसकी क्रिया देख, जो धनवान थे; सो हाँसि करते भये। जो देखो, घर विषैं तो एक दिनकों अन्न नाहीं। अरु व्याह, ऐसा भारी रच्या है। सो कैसे बनैगा? अरु यह पुरुष भी, अपनी अज्ञान-चेष्टा देख, चिंतावान भया। मैंने अपना पुण्य-बल नाहीं विचार्या, अरु कारज दीर्घ रच्या। यह कैसे पूर्ण होयगा। ऐसे यह पुरुष चिंता करता रात्रिकौं तिष्ठै था। सो याके पुण्य तैं, कोई देवता आय, चिंतामणि देय गया। सो या पुरुषने चिंतामणिके प्रभाव तैं, प्रभात भला व्याह किया। वांछित सबनकौं भोजन-ज्यौंनार देय, जगतकौं आश्चर्य उपजाय, यश पाया। तैसे ही मैं ज्ञान-धन रहित, ग्रन्थ रूपी बड़ो शादो रचो थी। ताके पूर्ण होनेकी बड़ी चिन्ता थी। जो यह कार्य कैसे सिद्ध होयगा? सो कोई पूर्व-पुण्य तै, इष्ट देवने, ज्ञान अंश मई चिंतामणि दिया। ताके प्रसाद करि, निर्विघ्न कार्यकी सिद्धी पाई। सो इस बातका हमकों

रथजीके केतेक पुत्रनकौं आदि दे एक कोड़ि मुनि सिद्ध भए तातैं उत्तम तीर्थ है। तथा पंचमेरु तैं अनेक चारण मुनि सिद्ध भये तातें तीर्थ है। तथा इस ही अढ़ाई द्वीप में अनेक अतिशय तीर्थ हैं। तथा नन्दीश्वर द्वीप आदि अनेक तीन लोक क्षेत्र विषैं, अकृत्रिम जिन मन्दिर हैं, सो तीर्थ हैं। तथा और तप—ज्ञान निर्वाण—कल्याणादि अनेक स्थान हैं। जो सर्व योग्य पूजवे योग्य हैं, शुद्ध तीर्थ हैं ऐसे कहे जे सकल तीर्थ सो सम्यग्दृष्टीन करि पूजवे योग्य तीर्थ हैं। तथा राग द्वेष क्रोधादि कषाय रहित शुद्ध पद दयामयी भाव, निर्मल भाव सो उत्कृष्ट निकट तीर्थ हैं। इन तीर्थनको वीतरागी मुनीश्वर भी वन्दना हेतु यात्रा करैं, तौ सरागी सम्यग्दृष्टी गृहस्थी हैं। सो उन्हें ऐसे तीर्थनकी वन्दना करि अपने लाग्या जो अनादि पाप—मेल, ताकौं तीर्थ—जल करि धोय, शुद्ध—पवित्र होना, योग्य ही है। ए कहे तीर्थ जिनके किए पाप नाश होय, कषाय मंद होय, सुबुद्धि प्रकाश होय। तातें ए कहे तीर्थ सो यती—श्रावकन करि पूजवे योग्य हैं। तातें उपादेय हैं। इति सुतीर्थ ॥ आगे कुतीर्थका लक्षण कहिए हैं। तहां केतेक भोरे-प्राणी जे पुण्य-उदय रहित हैं ते औरन कूं अनेक राज-भोग भोगते देख, लोभाचारी, विषय पोखवे कूं, वांच्छित सुखकूं उद्यम करता, काहू अज्ञान गुरु कौं पूछ्या। वानैं याकूं मूर्ख जानि बहकाया। जो तू महा दीर्घ जलके समूहमैं प्रवेश करि, जल पातन (मरन) करै, तौ यह बड़ा तीर्थ है। केतेक भोरे प्राणी धन, राज, स्त्री, तन सम्बन्धी अनेक वांच्छित भोगके अभिलाषी होय। काहू कौतुकी पुरुषकूं पूछ्या, जो वांच्छित सुख ए कैसे मिलै? तब तिस निर्दयी नै कौतुक हेतु, याकौं मूर्ख जानिकैं कहीं। जो जलती अग्निमैं निःशंक होय प्रवेश करै, अपना तन भस्म करै, तौ या उत्तम तीर्थके फलतैं तोकूं वांच्छित भोग मिलैं। सो तू अग्नि-तीर्थ भला जानि। ऐसा जनि,बाल बुद्धि, लोभी, अग्निही मैं प्रवेश करि, तीर्थ मानते भये। सो हे सुबुद्धि, अग्नि प्रवेश तीर्थ सुबुद्धीनके करवे का नहीं है। सो कुतीर्थ हेय जानना। और केई भोरे जीव ज्ञान-धन रहित सुन्दर स्त्रीनके भोगकी इच्छा वारेने काहू कूं पूछी। जो सुन्दर स्त्री-भोग कैसे मिले? तब याकं ज्ञान हीन जानि काहू निर्दयी ने कौतुक निमित्त करि बहका दिया। कही हे भाई जो शस्त्रधारा तीर्थ बड़ा है। सो तू शस्त्रके मुख निशंक होय मरण

।२४४।

करै तौ तोकूं जोगणी देवी है सो अपना भरतार करै। तहां देवांगनाके भोग भोगना मनुष्यनकी कहा बात है। तातैं तूं शस्त्र धारा तीर्थ तैं मरि। सो यह भोगार्थी भोरा जीव ऐसी ही मानि धारा तीर्थ स्वीकार किया सो हे भव्य यह धारा तीर्थ हास्य वचन तैं चल्या है तातैं हेय है। यह शस्त्र तैं आप मरै सो महा संक्लेश भाव होय। और कूं आप रणमैं मारै सो महा रौद्र भाव होय। सो परघात करने हारे पापभार सूं देव लोक कैसे होय? परन्तु जैसे अज्ञान पतंग दीप कूं महा सुन्दर जानि विषय भोगके लोभ तैं दीपकमैं पड़ि भस्म होय है। क्योंकि ए पतंग ज्ञान रहित है। तातैं अपना पुण्य तौ नहीं समझै है। अरु बड़े भोग चाहै है। तातैं मरणकौं पाय हीन ही गतिमैं उपजै है। तैसे ही ए भोगाभिलाषी शस्त्रके मरण कूं तीर्थको कल्पना करि शस्त्र धारारूपी दीपकमैं पतंगकी नाई भस्म होय हैं। सो रौद्र—भावन तैं मरि अशुभ गति जाय हैं। देव सुख तौ शील पालना तप जप संयम करना दान देना प्रभु सेवा पूजा करना दया भाव राखना समता पालनी इत्यादिक पुण्य भावन तै होय। तातैं हे सुबुद्धि ए तीर्थ नाहीं। शस्त्रधारा कुतीर्थ है। तातैं विवेकमैं तजवे योग्य है। हे भाई जो शस्त्रधाराका मरण तीर्थ होता। तौ जगत जीव शस्त्र तैं डरते नाहीं सब ही शस्त्र तैं मरते। यह तौ महा सुगम है। निकट ही है। कछू धन लागता नाहीं। परन्तु तूं विचार। जो लोग खेद खाय लाखौं धन खरचि, हजारों कोस तीर्थन कूं जाय हैं, अरु शस्त्र तैं डरै हैं। तातैं ए कुतीर्थ जानना। और यहां कोई कुबुद्धि कहै जो यह धारा तीर्थ हर जगहके करनेका नाहीं। महा सूरिमाके करनेका है। तौ भो भव्य, सुनि। बड़े बड़े महांन वंशके उपजे सूरमा-राजा, आगे राज सम्पदा छोड़ि, युद्ध,-शस्त्रघात छोड़ि समता धारि तप लेय बनमैं तिष्ट समता भाव धर नाना प्रकार तप करते, शुभ मान्या। भली देवादि गति गए, सुखी भए। जो शस्त्र-धारा तैं भला होता तौ महा सामंत कुलके, तप काहेको लेते? तातैं धारा-तीर्थ तजिवे योग्य हेय है। अरु केई भोरे जीव नदीनके तैं पाप उतरता मानैं हैं। जो उन नदीके जलमैं स्नान करै पाप-मल धुवै है। सो यह कहने वारा भोरा शिथिल श्रद्धानी है। धर्म--गांठ रहित है। इस ही बात पै दृढ़ खड़ा नहीं रहै है। याहीकौं कहिए हैं। जो

इस शूद्रसे मिट्टीका कलश लेय कैं इस नदीके जलमैं दश-पांच बार अच्छी रीति तैं धोय लेय। जिससे वे शूद्रका मिट्टीका कलश, पवित्र होय। ता पीछे इस कलश तैं जल पीया करो। यातैं सपरो (स्नान) करो। तो यह कहै, ये शूद्रका वर्तन मिट्टीका है हम यातैं जल कैसे पीवैं ? कैसे सपरैं ? यह मलीन है। याही भ्रम-बुद्धिकी ग्लानी नहीं जाय। तौ याकौं कहिए। हे विवेकी तू देखि। यह मिट्टीका बासन हैं। ताकौं अग्निमैं जाल्या है। ऐसे शुद्ध कलश ताकूं नदीमैं दश-पांच बेर धोय शुद्ध किया। ताकू तूं पवित्र मानता नाहीं। तौ हे सुबुद्धि देखि। ए शरीर महा मलीन सात धातु रूप अपवित्र अरु पाप मैल तैं मलीन आत्मा सो इस नदी के जल तैं सपरै (स्नान करै) तो कैसे पवित्र होय है ? तू ही तौ इस जलतैं धोये पीछे वासनकी घिन नहीं तजै है। तौ और कोई विवेकी परभव सुखका लोभी आत्मा शुद्ध होता कैसे मानै ? तातैं तेरे ही एकान्त बुद्धिका हठ है। भो भव्य जिनका हृदय कठिन दया भाव रहित है ते अनगाले जलका समूह नदीका स्नान तीर्थ कहै हैं। नदी है सो तनका मैलि दूर करवे योग्य है। अरु आत्माकैं पाप मैल लाग्या है ताके मैटवेको समर्थ नाहीं। तातैं ऐसा जानना जो पाप मैल दूर करवे कूं दान पूजा भगवानका सुमरणादि धर्म अंग ए उत्तम तीर्थ समता भावके कारण समर्थ हैं। नदी तीर्थ हेय है। और ज्ञान चक्षु रहित प्राणी समुद्रकौं तीर्थ कहैं हैं। ऐसा उपदेश करैं हैं अरु आप अछैं हैं। जो जेती नदी तीर्थ रूप हैं सो सर्व यामैं आय मिली हैं अरु बहुत जलका समूह है। तातैं सबतैं बड़ा तीर्थ समुद्र है। या विषैं स्नान किए पाप कटते मानैं हैं। सो आचार्य कहैं हैं। हमकूं बड़ा आश्चर्य यह है। जो जाके जल तैं स्पर्श भए तन फाटै जाके योग तैं केतेक तौ जलमैं पैठते (घुसते) डरैं हैं। उसे केतेक भोरे आत्माराम तीर्थ मानैं हैं। सो जाका जल तनके लगते खेद करैं तो स्नान किए सुख कैसे होय ? तातैं हेय है। और केतेक सामान्य बुद्धिके पात्र ऐसा समझैं हैं तथा औरनकौं उपदेश करैं हैं कि धरती माता बड़ी धैर्यकी धरनहारी है। याकौं जगतके जीव अनेक प्रकार खोदैं फोड़ैं हैं। यापै कोई धूरा डारै हैं। तौ भी धरती खेद नाहीं मानैं है। और इस धरती ते उपज्या अरु इस ही धरतीमैं मिलना है। तातैं जीवत ही धरती मैं गड़ना शरीर सहित धरती मैं प्रवेश करना सो धरा तीर्थ ।२४६।

है। या समान और तीर्थ नाहीं। ऐसा समझा जीवताही धरतीमैं गड़ि प्राण नाशै है। और याकौं धरा तीर्थ मानैं हैं। और यो भोरा जीव ऐसा नहीं समझै है जो धरती तीर्थ होती तौ यामैं मलमूत्र कैसे करते? खोदन जालनादि अविनय भी नहीं करते? तातें हे भव्य ऐसा जानना जो सर्व धरती तीर्थ नाहीं। सिद्ध क्षेत्रकी धारा तौ तीर्थ है और अन्य धरतीतीर्थ हेय है।

इति श्रीसुदृष्टतरंगिणी नाम ग्रन्थ मध्ये तीर्थ परीक्षा विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय विचार पंच-दश सम्पूर्ण ॥ १५ ॥

आगे परस्पर काल गमावना रूप जो चरचा तामें ज्ञेय हेय उपादेय कहिये है—

गाथा—पुण्णदा अघखय कारिय, चरचोपादेय परमफलदायी ॥ पावमई शुभहारी, सा चरचा तु हेय जिण मग्गो ॥ ४१ ॥

अर्थ—जा चरचा तैं पुण्य होय पापका नाश होय। सो चरचा तौ उपादेय है। और जातें पापकर्म उपजैं और अगले किया पुण्य कर्म ताका अभाव होय ऐसी चरचा हेय है। ऐसा जिनदेव ने कह्या है। भावार्थ—चरचा नाम परस्पर वार्तालाप (बोलने) का है। सो बतलावना है सो बिवेकी जीवनकौं ज्ञेय-हेय उपादेय करि बतलावना योग्य है। सो ही कहिए है। शुभाशुभ चरचाका समुच्चय भेद सो तो ज्ञेय है। ताके ही दोय भेद हैं। एक शुभ चरचा है। और एक अशुभ चरचा है। सो जहां तीर्थंकर चक्रवर्ती नारायण बलभद्र कामदेव देव इन्द्र इत्यादिक महान् पुरुषनकी उत्पत्ति राज सम्पदा भोग सुख इनका वैराग्य इनके स्वर्ग मोक्ष होनेका कथन सो प्रथमानुयोग ताकी चरचा परस्पर करना। सो पापकौ नाशै अरु पुण्यफल देय ऐसी चरचा धर्मात्मा सम्यग्दृष्टीन कौं उपादेय है। तीन लोककी रचना जो अधोलोक सात राजू तहां भवनवासी व्यंतर देव पुण्यका फल भोगते सुख समुद्र में मगन भए काल गवांवैं हैं। ताके नीचे सात नरक हैं। तहां जीव बड़े पापनका फल भोगते, महा दुख समुद्रमैं डूब रहे हैं। विलाप करते, काल ब्यतीत करै हैं। और मध्य लोक विषैं असंख्याते द्वीपसमुद्र हैं। तिनमैं पैंतालीस लाख योजन तौ मनुष्यलोक हैं। बाकीके सर्व द्वीप नमैं तिर्यक् लोक है। अढ़ाई द्वीपमैं मेरु कुलाचलादिककी चरचा सो उपादेय है। और उर्ध्वलोक विषैं सोलह स्वर्ग हैं। अहमिन्द्र, सर्वार्थसिद्धि आदिके देव, पुण्य फल-सुख भोगते सुखी हैं। तिनके ऊपरि सिद्ध लोक,

तहां अनन्ते सिद्ध-भगवत विराजैं हैं। ऐसे इन तीन लोककी चरचा परस्पर करनी, सो करणानुयोग चरचा सम्यग्दृष्टीन करि उपादेय-करवे योग्य है। और जहां मुनि-श्रावकके समिति, गुप्ति आदि ग्यारह प्रतिमादि आचारकी चरचा करना, सो चरणानुयोगकी चरचा उपादेय है। जहां जीव द्रव्य, पुद्गल द्रव्य, धर्म, अधर्म, काल, आकाश ए षट् द्रव्य हैं। जीव तत्व, अजीवतत्व, आश्रवतत्व, बंधतत्व, संवरतत्व, निर्जरातत्व और मोक्षतत्व। इनमैं पुण्य और पाप मिलाये नव पदार्थ। ऐसे षट् द्रव्य, सप्ततत्व, नव पदार्थ, आदिकी चरचा परस्पर करना सो उपादेय है। याका नाम द्रव्यानुयोग चरचा है। तथा जीव कर्म तैं कैसे वंध्या है? कैसे छूटै? इत्यादिक चरचा उपादेय है। तथा अनेक तीर्थों की चरचा, दान पूजा, शील, संयम, तप, व्रत, दया भाव, जीवनकी रक्षा इत्यादिक केवली भाषित चरचा, सो उत्तम चरचा है। तातैं पापका नाश और पुण्य कर्मका संचय होय है। तातें उपादेय है। इति शुभ चरचा। आगे कुचरचा-हेयका स्वरूप कहिए है। जहां परस्पर चरचा तैं पापका बंध होय, आगेका किया पुण्य सो क्षीण होय, ऐसी चरचा होय हेय है। भावार्थ—कुदेव, कुगुरु और कुधर्म इनकी पूजा-भक्तिकी चरचा। इन कुदेवादिकके अतिशय-चमत्कारको चरचा प्रसंशा रूप बात, सो हेय है। अपने-पराये राजानके युद्धकी बात, हारे-जीतेकी, निन्दा-प्रशंसाकी चरचा, तथा खोर की चतुराई की चरचा, मंत्र, जंत्र, तंत्र, टोणा, चौमणा, ज्योतिष, वैद्यकादिके चमत्कारको चरचा, मल्ल युद्ध हस्ति-घोटकादिको लड़ाईको चरचा, ए कुचरचा हेय हैं। तथा स्त्रीनके रूपलावण्यकी वार्ता करनी। तथा स्त्रीनके अनेक शुभाशुभ चरित्र, कला, गीत, गान, गालि, नृत्य, भोग, चेष्टादि की चरचा, सो हेय है। तथा अनेक प्रकार भोजन, व्यंजन, रस-पान, भोगोपभोगमैं अच्छे-बुरेकी चरचा, सो हेय है। और कूं पीड़ा उपजायवेकी, पराधन नाश करावेकी, पराए मान खंडनकी परस्पर चरचा सो हेय है। अनेक देशनमैं, किसीको भला किसीको बुरा कहनेकी चरचा। परस्पर युद्ध होय, द्वेष बंधै, ताकी चरचा। तथा स्वचक्र-परचक्रादि सप्त ईति-भीतिको चरचा, सो हेय है। और तन रोगादिक उपजवेकी, क्षय होयवेकी इन आदि अनेक विकथा रूप चरचा, अशुभ बंधको करन हारी, सो हेय हैं।

इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थे मध्ये चरचा विषैं ज्ञेय- हेय-उपादेय बर्णनो नाम सोलहवां अधिकार संपूर्णम् ॥ १६ ॥

आगे अनुमोदना अधिकारमें ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिये है। तहां शुभाशुभ कार्यनकी अनुमोदनाके समुच्चय भावका जानना, सो तो ज्ञेय है। ताहो ज्ञेय के दोय भेद हैं। एक शुभ अनुमोदना है। एक अशुभ अनुमोदना है। भावार्थ—जहां लौकिक कार्यन मैं, पुत्र-पुत्रीके शादी-व्याहमें, मंदिर-महलके आरम्भ मैं, युद्ध विषैं, अपने मनकी अनुमोदना हेय है। तथा भले रूपमैं, भले भोजन मैं, कूपसे पानीके काढ़िवे मैं, वापी-तालावके खुदावै मैं, इत्यादिक भूमि खोदनेके आरम्भमैं अनुमोदना, पाप-बंध करै है, तातैं हेय है। तथा काहू ने काहू पै शस्त्र चलाया, लकड़ीका प्रहार किया, यह देखि, अनुमोदना करनी हेय है। तथा काहूका धन लुटता देखि-सुनि तथा तन पीड़ा देखि, तथा काहूके हाथ-कान-नाकादि अंग उपांग छेदते देखि, अनुमोदना करना हेय है। तथा कोईके कुतप व कुज्ञानकी दीर्घता देख, अनुमोदना करनी हेय है। और कोई कुदेव-गुरुनके बड़े आरंभी बड़ा द्रव्य लागतके मन्दिर मठ स्थान देखि अनुमोदना करना, अशुभ फलदायक जानि, हेय है। और तीर, गोली, नाली, तोप, बन्दूक, कमान, छुरी, कटारी, शमशेर, बरछी इत्यादि अनेक शस्त्र, जीवघातके कारण देखि इनकी अनुमोदना करनी हेय है। और कोई भला बाणावणी (धनुर्धारी) अनेक शस्त्र कलामैं प्रवीण तीर गोला गोलीका चलावने हारा पुरुषकी अनुमोदना हेय है। तथा नदी सरोवरन की पाली (बांध) फोड़िकैं तथा फूटी देखि कैं तथा नगर बन मैं अग्नि लगी देखि तथा नगर मुल्क कौं लुटता देखि सुनिकैं अनुमोदना अशभ फल देन हारा है। तातैं हेय है। और कुतीर्थनके स्थान तथा तिनके कर्ता देखि तिनकी अनुमोदना करनी हेय हैं। और कृष्यारम्भ पशु संग्रह खेटकादि जीवघात विषैं हर्ष करना हेय है। और अनेक मिथ्यात कारणन मैं तथा बहु पापारंभ परिग्रहके विकल्पन मैं हर्ष अनुमोदना ये जानि तजना सो गुणकारी है। इति पाप अनुमोदना हेय। आगे शुभ अनुमोदना उपादेय कहिए है। जहां मुनीश्वर ध्यानाग्नि तैं कर्मनाशि निरंजन भए तिनकी बन्दना मैं हर्ष करना उपादेय है। तथा कोई भव्य आत्मा गुरुका उपदेश पाय संसार दशा त

उदास होय तप करता होय तामें अनुमोदना उपादेय है। तथा कोई जिन दीक्षा धारी मुनीश्वर शुक्ल ध्यान करि च्यारि घातिया कर्म नाशके केवलज्ञान पाया, तिनकी बन्दना में हर्ष-अनुमोदना उपादेय है। और जिन तरं॰
कालन में निर्वाण केवल ज्ञान, तप कल्याणक हुए तिन कालनकी पूजा-बन्दना विषैं अनुमोदना उपादेय है। और जहां कोई भव्यात्मा धर्मी जीवकौं सम्यक प्रकार बारह प्रकार तप करता देखि तथा अनेक तीर्थ सिद्ध क्षेत्रनकी बन्दना करते देखि, तथा अकृत्रिम अरु कृत्रिम जिन चैत्यालयोंकी बन्दना करता देखि, इन कार्यन मैं भव्यात्मा कूं प्रवर्ते देखि, तिनको अनुमोदना करना उपादेय है। तथा तीर्थंकरके पंचही कल्याणकनके समय देखि—सुनि हर्ष भाव, उपादेय है। तथा अष्टान्हिकाके दिन मैं इन्द्रादि देव नन्दीश्वर द्वीप विषैं जाय पूजा—उत्सव करैं, तिस काल मैंबन्दना करना हर्ष सहित—तामैं अनुमोदना उपादेय हैं। और श्री दशलक्षण पर्व आदि मैं पूजा संयम तप जे भव्य करैं, तिनकी अनुमोदना उपादेय है। तथा जिन मन्दिर कराय तिनको प्रतिष्ठाका उत्सव करि हर्ष मानना तथा और भव्य नै किया होय तो ताकी उत्तम भावना देखि हर्ष अनुमोदना करना उपादेय है। और जहां निरन्तराय करि मुनिका दान आपकैं तथा परकैं भया जानि अनुमोदना करना उपादेय है। तथा कोई भव्यात्माकूं जिनवाणीका अभ्यास करता देखि तथा सुनि हर्ष करना उपादेय है। तथा कोई धर्मात्मा कूं दीन जीवन कूं दया भाव सहित दान देता देखि हर्ष करना, उपादेय है। तथा काहू भव्यात्मा पुरुषकी करी जिन मन्दिरको अनेक शोभा-रचना देखि, अनुमोदन करना उपादेय है। तथा जिन मन्दिरके उपकरण छत्र, चमर सिंहासन भामण्डल घंटा चन्दोवा तथा पूजाके उपकरण थाल रकेबी ।२५०।
झारी प्यालादि देखि हर्ष करना उपादेय है। तथा उत्कृष्ट अक्षर पत्र, बन्धना पूठा सहित शास्त्र देखि तथा काहू धर्मी नै शास्त्र लिख्या तथा लिखाया देखि अनुमोदना करनी उपादेय है। तथा कोई भव्यका मिथ्यात नाश सम्यग्भाव भया जानि तथा कोई जीव धर्म सन्मुख भया देखि इनको हर्ष अनुमोदना करना उपादेय है। और पंच परमेष्ठीकी भक्ति सहित जीवकौं देखि तथा तीर्थंकरका समोशरण देखि तथा रचना सुनि तथा मुनि अर्जिका श्रावक श्राविका च्यारि प्रकार संघकौं देखि हर्ष भाव करना। और अपनेसे गुणाधिक धर्मात्मा

जीवकूं देखि अनुमोदना करना, उपादेय है। तथा किसी धर्मात्मा जीवकूं तीर्थयात्राकूं उत्सव सहित जाता देखि अनुमोदना करनी तथा कोई धर्मात्मा जीवनकौं साता देखि तथा धर्मी जीवनके समूह में साता सुनि अनुमोदना करनी उपादेय है। ऐसे कहे जो अनेक पुण्य उपजवेके पूज्य स्थान तिन सवमैं सम्यग्दृष्टी जीवनकौं हर्ष अनुमोदना करना उपादेय है।

इति श्री सुदृष्टि तरङ्गिणी नाम ग्रंथ मध्ये अनुमोदना भेदकी परीक्षा विषै ज्ञेय-हेय-उपादेय कथन वर्णनो नाम सतरहवां पर्व सम्पूर्ण ॥१७॥

आगे मोक्ष विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कथन कहिए है—

गाथा—मोक्खे गे है पादे, आवागमणोय मोक्ख है भणियो। कम्म विमुक्को मोक्खो, पादेयो सुह दिट्ठीए ॥ ४२ ॥

अर्थ—मोक्ष विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय है। सो जो आवागमन सहित मोक्ष है सो तौ हेय है। और कर्म रहित मोक्ष है सो सम्यग्दृष्टी जीवन करि उपादेय है। भावार्थ—समुच्चय मोक्षका जानना सो तौ ज्ञेय है। ताही ज्ञेयके दोय भेद हैं। तहां भोरे जीवनकी कल्पी जो लौकिक मोक्ष सो ता मोक्षकौं ऐसी मानै हैं। कि जो आत्मा मोक्ष जाय सो तहां महा सुखी रहै। पीछे शुद्धात्माकी इच्छा होय तो संसार विषैं पीछे आवै। सो ऐसी मोक्ष संसार समान है। काहे तैं ? जो जनम-मरण तौ संसारका स्वभाव है। अरु मोक्ष विषैं जामन मरण नाहीं है। तातें जे अल्पज्ञानी मोक्ष जीवनकौं जन्म लेना फेरि मानैं हैं। सो मोक्ष हेय है। शुद्ध जो मोक्ष है। तहां गया जीव फेरि अवतार लेता नाहीं। जैसे पृथ्वीकी खानि विषैं तैं अग्नि आदिके निमित्त पाय करि यतन पूर्वक काढ्या जो सुवर्ण, सो मिट्टी तैं भिन्न भये पीछे मिट्टीमें मिलाइये तौ मिलता नाहीं। तैसे ही शुद्ध जीव, कर्म मल दूरि कर मोक्ष भए पीछे तन रूपी मिट्टी मैं मिलता नाहीं। तातें मोक्ष भए पीछे जिस मोक्षतैं पीछा जन्म होय सो मोक्ष विवेकीनके तजवे योग्य हेय है। अरुके तेक भोरे पण्डित हैं ते मोक्ष जीवकौं रागद्वेष सहित मानैं हैं ऐसा कहै हैं जो मोक्ष मैं भगवान्, सर्व संसारी जीवन पै लेखा लेय है। सो जाने अपनी भक्ति नहीं करी तिनकूं नरक-कुंड मैं डारै है। और जाकूं अपना भक्त जानै है ताकौं अपने पास मोक्ष मैं राजी होय राखै है। सो भो भव्य हो ऐसा राग भाव अरु द्वेष भाव मोक्ष मैं नाहीं। जहां राग-द्वेष होय सो

संसार स्थान जाना। तातें रागद्वेष सहित जो मोक्ष होय सो हेय है। और केतेक संसारी चतुर नर ऐसा मानैं हैं। जो मोक्ष विषैं पंचेन्द्रिय महासुख है। या कहैं हैं जो मोक्ष विषैं भगवान्कूं इन्द्रिय जनित बड़ा सुख है। ऐसा सुख और कहूं नाहीं उत्कृष्ट भोजन अमृतमई भोगने योग्य रस ताकूं भोगवै है। और अनेक सुख नासिका इन्द्रिय कूं सुखदाई ताहि सूंघै है। और नाना प्रकारके नृत्यगीत वादित्र भगवान्के मुख आगे मोक्ष मैं अनेक अप्सरा चरित्र सहित करैं हैं। तिनकौं भगवान् देखि महासुख भोगवैं हैं। इन आदि अनेक अप्सरानकों भोग सहित अनेक इन्द्रिय जनित सुखकूं भोगवै है। सो हे धर्मात्मा जीव तूं चित्त देय सुनि। अरु मनमैं विचारि। जहां इन्द्रिय सुख है। सो मोक्ष नाहीं संसारही जानना। और मोक्ष है तहां इन्द्रिय जनित सुख नाहीं। मोक्ष सुख तौ इन्द्रियनतैं अतीत है। अतीन्द्रिय सुखका भोगता शुद्धात्मा है। इन्द्रिय सुख आकुलता रूप है और मोक्ष आकुलता रहित है। तातैं जिस मोक्ष मैं इन्द्रिय सुख होय सो मोक्ष हेय है। और केतेक ज्ञान-चक्षु-हीन ऐसा कहै हैं। जो मोक्ष विषैं भगवान सदीव बैठे पुस्तकके पत्र देखा करैं हैं। तहां संसारी जीवनके आयुषका प्रमाण लिख्या है। सो जाका आयुष्यके दिन पूरण होंय तब भगवान्के सेवक सदीव पासही रह्या करैं हैं तिन यमन (सेवकन) कूं खिदाय (भेज) ताका जीव भगवान् अपने पास मंगाय लेंय। पीछे सुख दुख देय हैं। या जीवका लेखा लेय हैं। जो तैं संसार मैं जायकैं कहा किया, सो वाकौ पूंछे हैं। सो वानै पाप किए होंय तो तहां भगवान्के लोक मैं नरक कुंड है तहां नाखि दुखी करैं हैं। और वानै पुण्य किए होंय तौ भगवानके लोक मैं नाना प्रकार रतन मई महल हैं सो ताकौं धन-धान्य तैं भरे महल-मंदिर देय सुखी करैं हैं। जैसा जाका शुभाशुभ कर्तव्य होय तैसा ही सुख-दुख भगवान् देय हैं। ऐसे रात्रि दिन भगवान् निरन्तर लेखा देखा करैं हैं। ऐसा विकल्प सदीव मोक्ष मैं भगवान् कौं बतावैं हैं केते पंडित विवेकी भूले ऐसा कहै हैं। तिनकौं कहिए है। भो मोक्षाभिलाषी हो मोक्ष विषैं ऐसा विकल्प नाहीं जहां विकल्प है ते संसारी स्थान जानना। मोक्ष तौ निर्विकल्प है, निराकुल है। तातैं जाकी मोक्ष विषैं इतना विकल्प होय सो मोक्ष हेय है। और केतेक जीव ऐसे ही शरीर सहित मोक्ष मैं हैं। ऐसी कहैं हैं कि जापै

भगवान् कृपा करि राजी होंय। ता मनुष्य कूं अपना भक्त जान यह सप्त धातुके भरे शरीर सहित हो, अपने पास मोक्ष मैं बुलाय सुखी करै है। जो कोई नगर भरके लोक भगवानकी भक्ति करैं तौ भगवान संतुष्ट होय सर्व नगरके लोकनकों हो अपने पास मौक्ष मैं बुलाय लेय हैं। केतेक जीव ऐसा मानै हैं तिनकौं कहिए है। भो सुज्ञानी जीव तूं समझि। यह अपवित्र शरीर महा मलीन सप्तधातु व मल-मूत्रका भरया, मूर्तीक जड़ शरीर, सो तौ मोक्ष मैं जाता नाहीं। अरु जहां इस मूर्तीक शरीरका आना-जाना होय सो संसार अवस्था ही है। मोक्ष विषैं मूर्तीक शरीर है नाहीं मोक्ष मैं अमूर्तीक शरीर है। तातैं जाकी मोक्ष मैं मूर्तीक शरीर जाना हो सो मोक्ष हेय है। अरु केतेक ज्ञान-दरीद्री मोक्ष मैं शून्य भाव मानै हैं। जीव ऐसा कहैं हैं। जो जेते सुख हैं। सो तो सर्व संसार मैं हैं। स्त्री सम्बन्धी भोग सुख। नाना प्रकार षट् रस मेवादि मोदकादि जिभ्भा इन्द्रियके सुख। तथा नाना प्रकार सुगंध नासिका इन्द्रियके सुख। और नाना प्रकार रतन-कनकके आभूषण वस्त्र स्त्रीनके रूप नृत्य-शोभादि अनेक चक्षु इन्द्रियके सुख। और अनेक प्रकार मिष्ट-सुर सहित अनेक संगीतादि रागको वीणा, बांसुरी, पखावज, तन्दूरादि अनेक सचित्त—अचित्त मिश्र स्वरनके मनोज्ञ राग शब्द, सो कर्ण इन्द्रियके सुख। ए पंच ही इन्द्रिय सम्बन्धी जेते सुख हैं सो संसार मैं ही हैं। ए सुख मोक्ष मैं नाहीं, वहां तौ शून्य है। नहीं कछू सुख, नयीं कछु दुख। शून्य रूप है। नहीं बोलना, नहीं चालना, नहीं गावना, नहीं खावना, केवल एक शून्यता। ऐसी मोक्ष केई जीव मानै हैं। ताको कहिए है। भो मोक्षके वांच्छक, सुनि। अरु विचार देखि। सुख रहित शून्यता तौ मूर्ख कैं होय। तथा सौतके होय। तथा वायु-सन्निपात रोग वारे कैं होय। तथा सुख रहित शून्यता दीन-दरिद्री कैं होय। तथा जाके इष्टका वियोग होय, शोक करि भरया होय, अज्ञान-मोह तैं जड़ समान होय गया होय तथा काष्ठ पाषाणकी मूर्ती, चेतना भाव रहित कैं होय इत्यादिक स्थानकनमैं शून्यता होय। और परमात्मा, शुद्ध निराकार चेतनमूर्ती ज्ञान भण्डार कैं मोक्षमैं शून्यता नाहीं। महासुख सागरमैं मगन हैं। जेते सुख संसारमैं है तिनतैं अनंतगुणे सुख मोक्षमैं हैं। तातैं जाकी मोक्षमैं शून्यता भाव होय सो मोक्ष हेय है। इति

हेयमोक्ष। आगे उपादेय मोक्ष कहिए है। भो सुखके अर्थी, तूं चित्त लगाय सुनि। जो आत्मा जामन मरण के महा दुखन तैं भय खाय, दिगम्बर पद धारि, नाना तप करि, कर्म बंधन-छेद, मोक्ष कौं प्राप्त भया। सो अब जन्म मरण तैं रहित होय भव बंधन तैं छूटा, मोक्षके ध्रुव स्थान विषैं तिष्ठ्या। सो आवागमणका महा दुख मिटाय सुखी भया। और मोक्ष विषैं राग द्वेषका अभाव होतैं महा सुख होय है। ए राग द्वेष हैं सो सोही महा दुख हैं। सो मोक्षमैं ए राग द्वेष नाहीं। मोक्ष जीव अनंत सुखका धारी है। जे संसारीक इन्द्रिय जनित सुख हैं सो सर्व विनाशीक हैं। क्षणभंगुर व पराधीन हैं। सो इन्द्र चक्री कामदेव नारायण बलभद्र और अहमिन्द्रादिक ए सर्व देव मनुष्यन कैं अनंतकालका सुख है। तिस सुख तैं भी अनंत गुणा अतीन्द्रिय सुख मोक्षका सुख है। तातैं मोक्ष सुख इन्द्रिय रहित है। तातैं ही उपादेय है। अर मोक्ष जीव विकल्प रहित एकै काल सर्व जगतके पदार्थनका स्वरूप जानै है। और विकल्प है सो जो हीन ज्ञानी व हीन शक्ति होय तिन कैं होय है। तातैं अनंतज्ञान शक्तिकाधारी परमात्मा कैं विकल्प नाहीं। और सर्व द्रव्य कर्म अरिनका नाशि करि तज्या है औदारिकादि पुद्गलीक स्कंधमई शरीर जानै सो सिद्ध पदका धारी सिद्ध जीव सो अमूर्तीक है। निरंजन दशा धरै सुखका पिंड है। और केवल ज्ञान केवल दर्शन करि सर्व लोकालोकका वेत्ता है। ए सर्वज्ञ वीतराग घट घटके अन्तर्यामी भवसागरके तारक हैं। और चैतन्य सदीव आनंद मूर्ती जड़त्व भाव जो शून्यता दशा तातैं रहित हैं। ऐसे जामन मरण रहित राग द्वेष बर्जित अतीन्द्रिय सुखका भोगी बिकल्प रहित निराकार पुद्गलीक शरीरतैं रहित सर्वज्ञ पद धारी ज्ञान मूर्ती चेतन चमत्कार लिए ऐसे गुण का धारी मोक्ष जीव है। सो ऐसो मोक्ष उपादेय है। इस मोक्षका नाम लिये सुमरण किये पूजा किये श्रद्धान किये आशा किये महा पुण्य फल होय। तातैं परभवमैं उत्तम पद पाय परंपराय मोक्षका वासी होय। तातैं सम्यग्ज्ञान सम्पदाके धारक भव्यात्मा कौं ऐसी मोक्ष उपादेय है।

इति श्रीसुदृष्टि तरंगिणी नाम ग्रन्थ मध्ये मोक्ष तत्व विषैं ज्ञेय-हेय उपादेय वर्णनो नाम अष्टा दश पर्व सम्पूर्णम् ॥ १८ ॥

आगे ज्ञान विषैं ज्ञेय हेय उपादेय कहिए हैं—

गाथा—गेय हेयोदेओ, णाणञ्चय वत्थु मेय जिणउत्तं । जाण कुणाणय हेयं, उवादेयं पण सुद्ध णाणंतु ॥ ४३ ॥

अर्थ—ज्ञेय हेय उपादेय करि ज्ञानके आठ भेद हैं। तिनमैं तीन कुज्ञान तौ हेय हैं अरु पंच सुज्ञान उपादेय हैं ऐसा जिनदेवने कह्या है। भावार्थ—सुज्ञान कुज्ञानका समुच्चय जानना सो तो ज्ञेय है। और ताही के दोय भेद हैं। एक ज्ञान हेय है। एक ज्ञान उपादेय है। तहाँ कुमति ज्ञान कुश्रुतज्ञान कुवधि ज्ञान ए हेय ज्ञान हैं। सो ही कहिए हैं। जहाँ हिंसाज्ञानकी चतुराई होना। जहाँ जीव पकड़ने कूं जाल बनायवेका ज्ञान अरु ता ज्ञान तैं फंदा करना फाँसी पींजरा छूरी कटारी बरछी तलवार बन्दूक इन आदि अनेक हिंसाके कारण शस्त्र बनावना सो कुज्ञान है। तथा चित्राम शिल्पकला भंड कला युद्ध कला चौर कला इनकूं आदि परके ठगवे की अनेक चतुराईकी युक्तिका उपजना सो कुज्ञान है। तथा और जीवन कौं अनेक दुख देनेकी कला चोर व कुमारगी जीवन कौं दंड देवेकीकला—चतुराई जो इसकूं ऐसे मारिए तौ बहुत दुखी होय इत्यादि ए कुज्ञान है। और कौतुक हाँसी अनेक भाव करि परकौं खुसी करिए। तथा नाना प्रकारके स्वांग धारि लोकन कूं आश्चर्यका उपजावना। चोरी व परदारा सेवनमैं प्रीति भाव इत्यादि ज्ञानकी चेष्ट लौकिकमैं प्रवर्तती है सो कुमति ज्ञान है इति कुमति ज्ञान। आगे कुश्रुतज्ञान कूं कहिए हैं। तहाँ युद्ध शास्त्रनका ज्ञान नाना प्रकार रसिक प्रिय श्रृंगार शास्त्र आदि कामोत्पत्तिके कारण रसशास्त्र संगीत शास्त्रादिक कुश्रुतज्ञान हैं। और हिंसाके कारण जिनमैं परजीव घातका उपदेश सो कुश्रुत है तथा जिनमें कुदेव कुगुरुनके पोषवेकूं अनेक द्रव्य चढ़ावेका कथन तथा ए देव ऐसा भक्ष लेय है, तब तृप्त होय है। इत्यदिक कथन जिन शास्त्रन मैं होय सो कुश्रुत है। तथा कुगुरु पोषवे कूं ऐसा भोजन ऐसे वस्त्र, धन, मन्दिर, देव, गुरुकी सेवा कीजै। तथा दासी दास स्त्री गुरुनकी सेवाकौं दीजे, तौ अप्सरानका भोगी होय ऐसा फल पावै। तथा गज घोटक रथ पालकी गुरुन कूं दीजिए तौ देव-विमान का फल पावै। इत्यादिक कथन जिन शास्त्रन में होय सो कुश्रुत है। इन कुश्रुत शास्त्रनका जाकै ज्ञान होय सो कुश्रुत ज्ञान है। सो सुदृष्टिन करि हेय है। इति कुश्रुत ज्ञान। आगे विभंग ज्ञानका कथन करिये है। तहां आत्म हितकूं कारण सम्यग्दर्शन सो ऐसे सम्यक बिना मिथ्या भाव सहित इस भव-परभवकी वार्ता जानना

तथा दूरवर्ती पदार्थन कौं जाने सो विभंगज्ञान है। तथा याहीका नाम कुअवधि भी है। ऐसे कहे जो सामान्य अर्थ सहित कुमति कुश्रुत और कुअवधि ए तीन कुज्ञान सो सम्यग्दृष्टीन तैं हेय हैं। ऐसे तीन कुज्ञान कहे। आगे पांच सुज्ञान कहिए हैं प्रथम नाम—मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मनःपर्यय ज्ञान और केवल ज्ञान। तहाँ मति ज्ञान कहिए है—सो मति ज्ञानके तीन सौ छत्तीस भेद हैं सो सुनो। प्रथम भेद चार-अवग्रह ईहा अवाय और धारणा। इनका अर्थ जहाँ पदार्थका दूरतैं सामान्यावलोकन होय जैसे काहू नै दूर तैं एक स्थंभ देखा परन्तु भेदाभेद नाहीं किया सामान्यसा भाव जो कछू है देखा। ऐसे भावका जानना सो अवग्रह कहिए। और उसही देखे स्थंभ मैं भेदाभेद करना। जो यह स्थंभ है या मनुष्य है? ऐसे विकल्पका नाम ईहा भेद है। पीछे वाही स्थंभकौं जान्या। जो मनुष्य तौ नाहीं स्थंभ है। ऐसे विचारका नाम अवाय कहिए। और आगे बहुत दिन पहले स्थंभ देखे थे। तिनका सुमरण किया। जो आगे स्थंभ देख्या तैसा ही यह है। सो स्थंभ है। निश्चयतैं ऐसे दृढ़ भाव विचारना सो धारणा है। ऐसे अवग्रह ईहा अवाय और धारणा इन च्यारि भेदन करि पदार्थ जानिए। सो मति ज्ञान भेद है। अरु ए ही च्यारि भेद पंचेन्द्रिय और मन इन षट् तैं परस्पर लगाय गुणिए तौ चौबीस भेद होय हैं। जैसे स्पर्श इन्द्रिय तैं कोई वस्तु—पदार्थ स्पर्श्या। तब सामान्य भाव जान्या जो कछू है। विशेष भेद नहीं किया। सो स्पर्श इन्द्रिय तैं अवग्रह भया। फेरि विचारी जो ए पदार्थ पांव तैं स्पर्श्या सो कहा है? कठोर २ है गोल है। सो कै तौ कोई रतन है या कंकड़ है। इस विचारका नाम स्पर्श इन्द्रियका ईहा भेद है। फेरि याहीको विचारिये कि जो यह गोल है साफ हैं सो रतन है। इस विचारका नाम स्पर्शन इन्द्रिका अवाय भेद है। और तहाँ आगे कबहू पांव नीचे रतन आया था ताकी यादि करि जानी जो आगे पांव नीचे रतन आया था तैसा ही ए भी है सो रतन ही है। ऐसा निश्चय करना सो स्पर्शन इन्द्रियकी धारणा है। ऐसे कहे स्पर्शन इन्द्रिय तैं च्यारि भेद। सो ऐसे ही रसना घ्राण चक्षु श्रोत्र और मन इन छहों तैं लगाय चौबीस भेद हैं। और इन चौबीस मैं स्पर्शन रसन घ्राण और श्रोत्र ए च्यारि भेद मिलाये अठाईस होंय। इन अठाईस भेदनकौं बहु बहुविध आदि बारह भेदन तैं गुणिए तौ ।२५६।

तीन सौ छत्तीस भेद मतिज्ञानके होंय। इन मतिज्ञानके भेदनकी पल्टनका एक विधान और तरह हैं। सो बताबैं हैं। अवग्रहादि च्यारि भेदन कूं पंचेन्द्रिय और मनतैं गुणें चौवीस भेद होंय। इन चौबीसकौं बहु आदि बारह भेदन तैं गुणें दोय सौ अट्ठासी होय है। सो ए तो अर्थावग्रहके हैं। और स्पर्शन रसन घ्राण श्रोत्र इन च्यारि इन्द्रिय तैं बहु आदि बारह भेदन कौं गुणें अड़तालीस भेद भए सो ए व्यंजनावग्रहके हैं। दोऊ मिल तीनसौछत्तीस भेद रूप मतिज्ञान होय हैं। इहां सामान्य भाव कह्या। विशेष श्रीगोमट्टसारजी तैं जानना। इति मतिज्ञान भेद। आगे श्रुतज्ञानका सामान्य भेद कहिये है—श्रुतज्ञानके अनेक भेद हैं। तहां मूल भेद दोय अंग द्वादश अरु प्रकीर्णक भेद चौदह। तहां द्वादशांगके भेद दोय। ग्यारह अंग अरु बारहवें अंगके पंच भेद तहां चौदह पूर्वका कथन है। तिनही अंग-पूर्वन मैं गर्भित योग च्यारि प्रथमानुयोग, करणानुयोग चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग। इन योगन मैं कथन जहां तीर्थंकर चक्री प्रतिचक्री इन्द्र देव इत्यादि महान पुरुषनकी कथा जामैं होय सो प्रथमानुयोग है। और तीन लोककी रचनाका जामैं कथन होय सो करणानुयोग है और मुनि श्रावकनके आचारका जामैं कथन सो चरणानुयोग है। और षट् द्रव्य नव पदार्थ सप्त तत्त्व पंचास्तिकायका कथन जहां होय सो द्रव्यानुयोग है। तहां षट् द्रव्यके गुण पर्यायका कथन सो तिन द्रव्यन करि संसार रचना च्यारि गति बनी है ऐसा कथन। और द्रव्यमैं षट्गुण हानि वृद्धिरूप परिणमण सो तथा द्रव्यका अपने अपने व्यय ध्रौव्य उत्पाद सहित तीन भेद रूप प्रवर्तना कथन सो ए सर्व श्रुतज्ञानके भेद हैं। तहां उत्पाद व्यय ध्रौव्यका सामान्य कथन कहिए है—जो वस्तु विनसै सो तो व्यय कहिए। और नवीन वस्तुकी पर्यायका उपजन सो उत्पाद है। और वस्तुका सदीव शाश्वत रहना सो ध्रुव है। जैसे करका कनकका चूड़ा तुड़ाय कुण्डल करवाना। सो इसी ही मैं तीन भेद सधैं सो बताइए हैं। तहां द्रव्य भाव तौ सुवर्ण सो शाश्वत सो ध्रुव कहिये। चूड़ाकी पर्याय टूटी सो ताकूं व्यय कहिए। और कुन्डल बन्या सो ताकी पर्याय न्यूतन उत्पन्न भई ताकूं उत्पाद कहिए। ऐसे ए तीन भेद जानना। तैसे ही आतमा तौ द्रव्य और मनुष्य पर्याय छोड़ि देव भया। सो मनुष्य पर्यायका तौ व्यय भया और देव पर्यायका उत्पाद भया। जीवत्व भाव दोऊमैं

शाश्वत है। सो ध्रुव है। ऐसे नय भेद तैं व्यय ध्रुव उत्पाद अनेक पदार्थन में साधना। ऐसे अनेक नयका स्वरूप श्रुतज्ञान तैं जानिए है। तातें श्रुतज्ञान उपादेय है। और श्रुतज्ञान तैं और भी ज्ञाता ज्ञान व ज्ञेयका स्वरूप जानिये हैं। तातें उपादेय है। तहां ज्ञाता तो आत्मा है। ज्ञाताका गुण ज्ञान है और ज्ञानके जानपने मैं आवे सो ज्ञेय है। ज्ञान सर्व ज्ञेयका जाननहारा है। ऐसा ज्ञाता ज्ञान व ज्ञेयका स्वरूप श्रुतज्ञान तैं जानिए है। तातें उपादेय है। और भी श्रुतज्ञानके स्वरूपमें ध्याता ध्येय व ध्यानका स्वरूप कहिए है। तहां ध्याता तौ आत्मा है। और जा वस्तु कूं ध्यावै सो ध्येय है। और ध्यावते ध्याताके भावका विकल्प सो ध्यान है। जैसे धर्मी आत्मा तौ ध्याता है। पंचपरमेष्ठी ध्येय है ताकौं ए ध्याता ध्यावै है। और पंचपरमेष्ठीके गुणनका सुमरण सो ध्यान है। तथा और दृष्टान्त करि कहिए है। जहां कोई पापी आत्मा तौ ध्याता है। और परस्त्री भलेरूप सहित देखि ताके मिलाप की चाह ध्येय है। और उस स्त्रीके रूपादिक गुण ताका विचार सो आर्तध्यान है। ऐसे अनेक जगह ध्याता ध्येय ध्यानका स्वरूप सधे है। सो ऐसा भाव श्रुतज्ञान तैं जानिए है। तातें उपादेय है। और भी कर्ता कर्म क्रियाका स्वरूप श्रुतज्ञान तैं कहिए है। कर्ता तौ आत्मा है। और जो वस्तु याने बनाय तैयार करी, सो कर्म है। अरु उस वस्तुके करते, भई जो मन-वचन-कायको हल-चल, सो क्रिया है। जैसे कोई धर्मात्मा जीव अष्ट द्रव्य मिलाय भगवानका पूजन करै है। सो तो कर्त्ता है। और ताके फलतैं देवगति, देवायु, सुभग आदेय, सौभाग्य, सातावेदनी आदि अनेक बंध किये जो शुभकर्म, सो इसका कर्म है। और पूजा विषैं भले भावका राखना, विनयतं कायका राखना विनयतैं वचनका बोलना, विधि सहित हाथ जोरै हर्षतैं खड़ा रहना, इत्यादिक भक्ति-भाव रूप प्रवृत्ति सो क्रिया है। तथा और तरह कहिए हैं। जैसे कोई जड़िया तौ कर्ता है। और नाना प्रकार रतन जड़ि करि, तैयार किया जो मुकुट तथा हार, सो कर्म है। और इनके करते भई जो मन-तनकी प्रवृत्ति, सो क्रिया है। ऐसे अनेक पदार्थन पै लगावना। इस विधान रहित नय-प्रमाण कथन श्रुतज्ञान तैं पाईए है। तातें उपादेय है। और भी श्रुतज्ञान तैं पल्य-सागरका कथन कहिए है। तहां पल्य भेद तीन। जघन्य मध्यम अरु उत्कृष्ट। तहां जघन्यका स्वरूप कहिये है—

ए जघन्य पल्य ऐसे हैं जैसे मानी-मनेसाके प्रमाण बांधने कूं रत्ती होंय हैं। रत्ती तैं मासा मासा तैं रुपया, रुपैया तैं सेर सेर तैं मनादिक। जैसे रत्ती तैं मनेसा का प्रमाण किया तैसे जघन्य पल्यतैं सागरकी उत्पत्ति होय है। सो ही कहिए है—एक बड़ा योजनका प्रमाण सहित गोल गड्ढा कीजिये तेताही चौड़ा तेताही ऊंडा (गहरा) तामैं। भोग भूमिको बकरोका तुरंतका भया बच्चा ताके रोमका अग्र भागका बारोक खंड लीजिये। तिन रोम—खंडन तैं वह कूप भरिए। दृढ़ करि कूटि-कूटि धरती बरोबर भरिये। ता पीछे सौ वर्ष जांय तब एक रोम काढ़िए। फेरि सौ वर्ष गये एक रोम काढ़िए। ऐसे करते सर्व कूप खाली होय। ताकूं जेता काल लागै सो जघन्य व्यवहार पल्य कहिए है। और जघन्य पल्यमैं जेता रोम आवे तितने कूप कूं उस ही कूप प्रमाण करि वैसे ही रोमों तैं भरिए-दृढ़ करिए। असंख्यात वर्ष जांय तब एक-एक रोम काढ़तैं एक कूप दोय कूप रितावतैं सर्व खाली होंय। सर्व कूपनके रोम खाली होंय। ताकौं जेता काल लागै सो मध्य पल्य कहिए। और इस मध्य पल्यके जेते रोम भए तेते ही कूप उस ही विस्तार प्रमाण बनाए। वैसे ही रोमन तैं सबको दृढ़ भरिए। पीछें असंख्यात लाख कोटि वर्ष गए एक रोम काढ़िए। फेरि एता ही काल गए एक रोम काढ़िए। ऐसे करते- करते सर्व कूपनके रोम खाली होंय। ताकौं जेता काल लागै सो उत्कृष्ट पल्य है। याही उत्कृष्ट पल्य तैं देव नारकी भोग-भूमिन की उत्कृष्ट आयु-कर्म है। और मध्यम पल्य तैं द्वीप-समुद्रन को गिनती होय है। सो पचीस कोड़ाकोड़ी मध्यम पल्य प्रमाण हैं। और दश कोड़ा-कोड़ी पल्यका एक सागर होय है। मध्य पल्य दशकोड़ा-कोड़ीका मध्य सागर होय है। उत्कृष्ट दश कोड़ा कोड़ी पल्य गये उत्कृष्ट सागर होय। ऐसे सामान्य करि पल्यका कथन किया। विशेष श्रीत्रिलोकसारजी आदि ग्रन्थ तैं देखि लेना। ऐसे पल्य सागरका भाव श्रुतज्ञान तैं जानिए है। तातैं श्रुतज्ञान उपादेय है। और भी श्रुतज्ञान तैं कृतघ्नी विश्वासघातीका स्वरूप जान्या जाय है। सो कहिए है—जो पराया किया उपकारकौं भूले सो कृतघ्नी है। सो कृतघ्नीके भेद तीन हैं। घर पर और धर्म। इन तीनका उपकार अन्य जीव पै होय है। सो जैसे माता पिता ने बालक अवस्था मैं महा यतन किये। शीतकाल मैं तथा उष्णकाल मैं अनेक सहाय करि मोहके बशीभूत

होय अनेक यतन करि पाल रक्षा करी। तरुण किया सो बड़ा भया तब माता पिताका उपकार भूलि उनतैं द्वेष
भाव करि जुदा होना अविनय करना कटु बचन बोलना दुख देना माता पिता तैं ईर्षा करनी सो ए घर कृत-
घ्नी कहिए। तथा और अन्य घरमैं बड़े थे। तिननें भी बालपने मैं अनेक तरह रक्षा करी। ऐसा विचार करैं
जो ए बड़ा होय तब हमारी आज्ञा मानैगा। हमारी सेवा करैगा हमको बड़ा मानैगा। एसी आशा करि कुटु-
म्बके लोगन नैं प्रति पालना करी थी। सो बड़ा भए उल्टा कुटुम्बकौं दुखी करना सो घर कृतघ्नी है। ऐसा
जानना। और कोई जो परजन बड़े मनुष्य बस्तीके और जातिके तिननैं कोई भूखा देखि अन्न दिया, नागा
देखि वस्त्र दिया बेरुजगार देखि रुजगार लगाय दिया निर्धन देखि धन दिया स्थान रहित देखि रहवेकौं मं
दिर स्थान दिया इत्यादिक दुखन मैं सहाय किया। और रोगीकौं पीड़ावान देखि अनेक औषधि देय अच्छा
किया। ऐसे अनेक दुःख मैं सहाय करि सुखी किया। अरु पीछे कर्म योग तैं आप शक्तिवान भया तब उन
उपकारीका उपकार भूलि द्वेष करै। सो पर—कृतघ्नी कहिए। और जाकूं महा अज्ञानमें प्रवर्तता देखि पाप
करता देखि परभव नरक पड़ता देखि कोई धर्मात्मा दयाभाव करि अज्ञानता छुड़ाय ज्ञान करावता भया।
और पाप—मार्गतैं बचाय धर्मका पंथ बतावता भया नरकादि खोटी गति तैं बचाय शुभगति बतावता भया
लोकनिंद्य—अनाचार छुड़ाय, सुआचार बतावता भया। जानी यह जीव सुखी होय तो भला है, ताके निमित्त
शुभ पंथ लगाया। अरु पीछे आपकैं कछू सामान्य भाव—ज्ञान भया, शास्त्र रहस्य पाया। तब उसके उपकार
कौं भूलि, द्वेष—भाव करना, सो धर्म कृतघ्नी है। ऐसे तीन भेद कृतघ्नीके कहे हैं। सो महा पापके स्थान हैं।
तातें हेय हैं। आगे विश्वासघातीका स्वरूप कहिये है। तहां परकौं विश्वास उपजावना। कहना जो मैं तेरी
सहाय करूंगा। धन द्योंगा। तेरा दुख-दारिद्र हरूंगा। तू कछू उपाय मति करै। ऐसे अनेक मिष्ट वचन
बोलि, विश्वास उपजाय पीछे काम पड़े नट जाय। दगा दे जाय। कहै मोतैं तौ अवार नहीं होय। ऐसे कहि
ताके कार्यका घात करै। ऐसी कहै सो विश्वासघाती कहिए। जैसे यहां एक कल्पना करि लौकिक दृष्टान्त
बनाय, विश्वासघातका लक्षण कहिए है। जैसे एक किसानने अषाढ़ महीनामैं नाना प्रकार खेद खाय, हल

चलाय कै खेत शुद्ध कर राखे थे। सो जब भला मेघ वर्षै पीछे, सर्व खेती बार घरन तैं बीजकी मोटि (गठरी) बांधि बनकौं चाले। तब एक किसानकों देखि एक दुष्ट-मनुष्यकी खोपड़ी राहमें पड़ी थी सो हंसती भई। तब किसान कूं आश्चर्य भया। जो ए निर्जीव-खोपड़ी हाड़की क्यों हँसी! तब इस किसान नै कही। हे खो-पड़ी तूं क्यों हँसै है? तब खोपड़ीने कही तोकों देखि हँसौ हौं। मैं देवता हौं सो तेरे पै राजी भई। सो अब खेतमैं बीज बोवे मति जाय। मैं तेरे खेतमैं बिना बोया ही बहुत अन्न करूंगी। तब या किसाननै जानो यह देवी है। सो या मोपै राजी भई। तब किसान याके बचनका विश्वास करि घरि गया। और अन्य किसान अपने खेतनमें बीज बोय घर आये। पीछे दस बीस दिन गए। अपने अपने खेत देखवेकौं सब किसान चाले। अन्न उगा देखि, राजी भए। तब यानैं भी विचारी जो मेरे खेत मैं भी अन्न भया होय। सो ए भी देखवेकौं चल्या। सो राह मैं खोपड़ी फिर हँसी। तब किसानने कही, क्यों हँसै है? तब कही तोकौं देखि हँसै हूं। तू कहां जाय है? तब किसान नै कही। औरनके खेत हरे—भरे शोभा देय हैं। सो मैं अपने खेतको शोभा देखवैकों जाऊं हों। तब खोपड़ी कहै है रे भाई, मैं तेरे पै तुष्टी हौं। औरन तैं बहुत अन्न तेरे खेतमैं करूंगी, सन्तोष राखि। तब किसान, खोपड़ीके बचनका विश्वास करि घरि गया। जब महीना एक-डेढ़ भया, तब सर्व किसान अपने—अपने खेतनतं फल ले-ले अपने-अपने पुत्रनके निमित्त घर आये। तब किसानके बालक औरन पै अनेक फल देखि, रुदन करते भए। अरु फल मांगते भये। तब किसान नैं विचारी, जो औरनके फल आये, सो मेरे खेतमें भी फल आये हों हैं। ऐसी जानि वनकूं खेतके फल लेनेको चाला। तब राह मैं खोपड़ी हंसी। तब किसानने कही तू कहा हँसै है? औरनके खेतनमें फल भए और सर्वके बालक खाए हैं। और मेरे बालक फल बिना रुदिन करै हैं। तब किसानके बचन सुनकर खोपड़ी हंसकैं कहती भई। भो सुबुद्धि, धीरज राखि। सोचि मति करै। मेरे बचनका कछू तौ विश्वास राखि। तेरे खेतमें एते फल—अन्न होयगा। जो तेरे बूतो गाड़ानितैं ढोवा भी नहीं जायगा। परन्तु विश्वास राखि, सोच मति करै। ऐसे कही, तब फिर पीछा घर आया। जानी देवके बचन

हैं, सो अन्यथा नहीं हो हैं। ऐसा विश्वास धरि घर तिष्ठ्या। पीछे महीना दोय–एक भये। और लोक अन्न कूट उड़ाय, गाड़े भरि-भरि अपने घर लाये। तब या किसान नैं विचारो, जो मेरा खेत देखौं तौ सही। तब और ही राह होय कैं, किसान खेत पै गया। सो देखै तो घास ऊंगा है। कोरे मिट्टीके ढीमा पड़े हैं। ऐसा खेत देखि किसानकी छाती टूट गई। महा दुखी भया। रुदन करता भया। जो वर्ष दिनकी रोटी गई। अब कहा करै? तब खोपड़ी याकौं रोवता देख हँसी। तब किसान नै कही कहा हँसै है? मैं तेरे बचनका विश्वास करि खेत मैं बीज नहीं डार्‌या। अब और तौ बहुत अन्न लाये, अरु मेरे खेत मैं कछू नहीं। तैंने मुझे विश्वास देय, बुरा किया। तब यह दुष्टकी खोपड़ी महा हास्य करि कहती भई। भो भाई किसान, तू सुनि। हमनैं जीवतैं बहुतनका विश्वास देय बुरा किया था। और मुए पीछे तो एक तेरा ही बुरा किया है। सो जे दुष्ट, खोपड़ी समान विश्वासघाती महापाप मूर्ति जीव सो विश्वासघाती हैं। ए कहे जो कृतघ्नी व विश्वासघाती ते बड़े पापी हैं। इनका स्वरूप श्रुतज्ञान तैं पाईए है। सो श्रुतज्ञान उपादेय है। च्यारि गतिके जीवनकी आगति-जागति श्रुतज्ञानतैं जानिए है। सो कहिए है। तहां जिन स्थान तजि, जा स्थानमें उपजै, सो जागति कहिए। और अन्य स्थान तजि निज स्थानमें आवै सो आगति कहिए। तहां प्रथम देवगतिमें आगति कहिए है। सो एती जायगाके देव गति में आय उपजैं सो कहिये है। मिथ्यादृष्टी भोगभूमियां—मनुष्य तिर्यंच कर्म भूमियां-मनुष्य, तिर्यंच, सैनी तथा असैनी ए तो सब भुवनत्रिक मैं शुभभाव—फलतैं उपजैं हैं। और सम्यग्दृष्टी भोग भूमियां मनुष्य तिर्यंच ए सर्व पहले दूजे स्वर्ग पर्यन्त उपजै हैं। और कर्म भूमिके मनुष्य, स्त्री तिर्यंच सोलह स्वर्ग पर्यन्त उपजैं हैं। और सम्यग्दृष्टी तथा मिथ्यादृष्टी, मुनि लिंग धारि ग्रैवेयक लौं जाय हैं। और नव अनुत्तर अरु पंचपंचोत्तर इन चौदह विमानन मैं सम्यग्दृष्टी मुनि ही जाय हैं। इति देवगति मैं आगति। आगे देवकी जागति कहिए है—च्यारि प्रकारके देव मरि कहां जाय उपजै हैं सो जागति है। तहां भवनवासी, व्यंतर ज्योतिषी देव पहले दूजे स्वर्गवासी देव ए मरि करि पृथ्वी कायिक, अपकायिक, बनस्पती सैनी-पंचेन्द्रिय—तिर्यञ्च और मनुष्य इन पंच जगतमैं जाय उपजैं हैं। और तीसरे स्वर्ग तै लगाय

स्वर्ग पर्यंतके देव चयकैं, मनुष्य तिर्यञ्च सैनी पंचेन्द्रियमें उपजें हैं। और तेरह स्वर्ग तैं लगाय नव ग्रैवेयक पयन्तके देव चयकरि सम्यग्दृष्टो तथा मिथ्यादृष्टो मनुष्य ही उपजैं हैं। और नवग्रैवेयक तें ऊपरले देव चय-कैं सम्यग्दृष्टी मनुष्य हो उपजें हैं। इति देव जागति। आगे नारकी को आगति-जागति कहिए है—तहां नारको जोव मरि ऐती जगह मं उपजैं सो कहिए है—प्रथम तैं लगाय छठी नारकी पर्यन्तके जोव निकस, मनुष्य तिर्यञ्च कर्म भूमिके ही होंय। और सातमी नारकीका निकस्या पंचेन्द्रिय-सैनी-तिर्यञ्च ही होय है। और विशेष यह है जो पहलो-दूजो तोजी नरकका निकस्या कोई जीव सम्यग्दृष्टी तीर्थंकर भी होय है। चौथी नरकका निकस्या तोर्थंकर नहीं होय है, चरम शरीरी होय तौ होय। और पंचम नारकीका निकस्या, चरम शरीरी नहीं होय महाव्रत धरै तौ धरै। और छठे नारकका निकस्या, संयमी नहीं होय हैं। और विशेष एता जो नारकी, असैनी मैं नहीं उपजै हैं। इति नारकी जागति। आगे नारक मैं आगति कहिए है। नारको मैं एती जगतके जाय हैं, सो कहिए हैं-प्रथम नरक मैं तौ सम्यग्दृष्टी-मिथ्यादृष्टी मनुष्य तिर्यञ्च-पंचेन्द्रिय सैनी ए जाय हैं। और मनुष्य, पंचेद्रिय-सैनी तिर्यञ्च, अरु जलका उपज्या सर्प ए दूसरी नारक पर्यन्त जाय हैं। मनुष्य, तिर्यञ्च, अजगर तथा काला फणधारी सर्प ए चोथे नरक पर्यन्त उपजै हैं। और मनुष्य, तिर्यंच, नाहर ए पञ्चम नरक पर्यन्त उपजै हैं। और मनुष्य तिर्यञ्च स्त्री छठे नरक पर्यन्त उपजै हैं। मनुष्य अरु तिर्यञ्च सातमें नरक पर्यन्त उपजं हैं। ऐसे नरक मैं आगति जानना इति नरक मे आगति। आगे मनुष्य मैं आगति कहिए है। मनुष्य मैं एती जगहके आवैं सो कहिए है। तहां सातमी नारकीके निकसे और अग्नि-काय, वायुकाय भोग भूमिके मनुष्य तियंच, इन बिना सर्व जगहके जीव आय मनुष्य गति मैं उपजै हैं। इति मनुष्य मैं आगति। आगे मनुष्यको जागति कहिए है। तहां मनुष्य कहां-कहां जाय उपजैं सो कहिए हैं। सो मनुष्य भवनवासो, व्यंतर, ज्योतिष सोलह ही स्वर्ग मैं व सर्व अहमिन्द्र देवन मैं उपजैं। सातों ही नारको मैं उपजैं। और पृथ्वी अप तेज वायु वनस्पती बेन्द्रिय तेन्द्रिय चौइन्द्रिय पंचेन्द्रिय सैनो असैनी तिर्यञ्च इन सर्व स्थाननमें मनुष्य उपजैं हैं। और भोग भूमियां मनुष्य तिर्यञ्च कर्मभूमियां मनुष्य और

मोक्ष आदि सर्व स्थानक मैं मनुष्य उपजैं हैं। ऐसा तीन लोक मैं अरु च्यारि गति मैं कोई स्थान शुभ अशुभ रह्या नाहीं जहां मनुष्य नाहीं जाय। सो मनुष्य कूं सर्व स्थान आगार (घर) है। इति मनुष्य जागति। आगे तिर्यंचको जागति कहिए है। तहाँ एकेन्द्रिय पंचस्थावर विकलत्रय ये मरकर देव नारकी भोग भूमियां-मनुष्य तिर्यञ्च इन विषैं नाहीं उपजैं हैं। इन विना कर्म भूमिके मनुष्य तिर्यंच सम्बन्धी सर्व स्थानकनमैं उपजै हैं। विशेष एता जो पंच स्थावरन मैं के अग्निकाय-वायुकायके जीव मनुष्य मैं नहीं होंय। पंचेन्द्रिय असैनी तिर्यञ्च मर करि मन विकल्प बिना शुभ—भावन तैं भवनत्रिक मैं उपजैं हैं। विकल्प विना अशुभ भाव तैं मरि, प्रथम नारकी पर्यन्त उपजैं हैं। भोग भूमि बिना, कर्मभूमिके मनुष्य-तिर्यञ्चनमैं सव स्थानकनमैं उपजैं हैं। सैनी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, भवनत्रिक तैं लगाय सोलहवें स्वर्ग पर्यन्त तो देवमैं उपजैं हैं। सातों ही नरकों विषैं उपजैं हैं। कर्म भूमिके मनुष्य, तिर्यञ्च, एकेन्द्रियादि पंच स्थावरन मैं, विकलत्रय, सैनी, असैनी, विषैं उपजैं हैं। तथा भोग भूमिके मनुष्य-तिर्यञ्च विषैं उपजैं हैं। ऐसो तिर्यञ्च-की जागति कही। इति तिर्यञ्चकी जागति। आगे तिर्यञ्चगतिमैं आगति कहिये है। तहां पंच स्थावर विकलत्रय इनमैं सर्व देव, व सात ही नारकीके और भोग भूमियां बिना कर्मभूमि सम्बन्धी सर्व मनुष्य-तिर्यञ्च उपजैं हैं। विशेष एता जो अग्नि— वायु विना तीन स्थावरनमैं भवनत्रिकके तथा पहले-दूजे स्वर्गके देव आय उपजैं हैं। सैनी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चमैं, भवनत्रिकतैं लगाय बारहवें स्वर्ग पर्यन्तके देव और भोग भूमि बिना, सात ही नारकीके जीव आय उपजैं हैं और कर्म भूमिके एकेन्द्रिय आदि विकलत्रय पंचेन्द्रिय पर्यन्त सर्व जीव एकेन्द्रिय आदि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च विषैं आय उपजैं हैं। इति च्यरि गति सम्बन्धी आगति-जागति कथन। ऐसे च्यारि गति दण्डकनका कथन श्रुत ज्ञान तैं जानिए है। तातैं श्रुतज्ञानउपादेय है। और इस ही श्रुतज्ञानतैं निमित्त-उपादानका स्वरूप जानिए है। सोही कहिए है। प्रथम नाम—निमित्त और उपादान। अब इनका विशेष कहिये है। जो द्रव्य की शक्ति, द्रव्य ही तैं उपजै, सो तो उपादान कहिए। पदार्थके मिलाप तैं शक्ति प्रगटै, सो निमित्त कहिए। जैसे जीव विषैं, शुभाशुभ रूप होय राग-द्वेष परिणमणकी शक्ति, सो

तौ जीवका "उपादान" है। जिन पदार्थनके निमित्त पाय रागद्वेष रूप भया, सो वह पर पदार्थ "निमित्त" है। सो इस निमित्त-उपादान तैं ही शुभाशुभ कर्मबन्ध आत्मा कैं होय हैं। सोही कहिए है। जैसे जीवका उपादान भी भला होय। पूजा, दान, शील, संयम, तप, जिनशास्त्रनका स्वाध्याय तथा सुनना, तथा मुनि श्रावकादि धर्मी जीवनका संग इत्यादिक शुभ ही निमित्त होंय, तौ दीर्घ स्थिति लिए शुभ भावकर्म उपजैं। ताके फल, आत्मा भव-भव सुखी होय। जहां आत्माका उपादान खोटा होय। क्रोध, मान, माया, लोभ, चोरी, जुआ, परस्त्री, हाँसी, कौतुक, दुराचारी, सुरापायी जीवनका सम्बन्ध, आदि पापकारी निमित्त होंय, तौ आत्मा कैं दीर्घ पाप भावकर्म, बड़ी स्थिति लिए उपजै। ताकरि भव—भव मैं दुखी होय। कहीं उपादान तौ आत्माका शुभ है। अरु निमित्त अशुभ होय, तौ पापबन्ध नहीं होय। शुभ उपादान तैं पुण्यका ही बन्ध होय है। जैसे कोई मुनि तथा श्रावक महा धर्मात्मा, धर्म ध्यान सहित बनादिक स्थानकन मैं तिष्ठै। तहां आय, कोई पापी उपसर्ग करै। पाण्डवन की तथा वारिषेणजी की नाईं निनित्त खोटा होय। तथा सेठ सुदर्शन की नाई निमित्त खोटा होय। तौ फल भला ही उपजै है और, जहां उपादान तो खोटा, अशुभ, दगाबाजी रूप होय, क्रोध-मानादिक कषाय रूप होय। अरु निमित्त भला होय। पूजा, दान, शास्त्र सुनना-पढ़ना, तप, संयमादिक अनेक भले निमित्त होंय, तौ भी उपादान अशुभके योग तैं पापबन्ध ही होय है। जैसे कोई चोर पराया धन हरवें कूं धर्मात्माका स्वांग बनाय अनेक धर्म सेवन पूजा—पाठ, तपादिक करै है। परन्तु अशुभ उपादानके योग तैं पापहीका बन्ध करै है। तैसे ही इस जीवके अनेक भावनकी प्रवृत्ति होय है। जैसे कहीं तौ जैसा निमित्त, तैसा ही उपादान भाव होय है। तहां तौ उत्कृष्ट शुभ-अशुभका बन्ध और कहीं निमित्त तौ और ही और उपादान और ही, तहां फल उपादन प्रमाण होय है। तातैं विवेकी हैं। तिनकौं परभव सुखके निमित्त तौ भले निमित्त मिलावने। उपादान सदीव भला ही राखना योग्य है। भले निमित्त तैं शुभ उपादान वारे जीवन कैं बड़ा शुभ फल उपजै है। और भले निमित्त तैं परंपराय उपादान भी शुभ हो जाय है। और खोटे निमित्त तैं उपादान भी खोटा ही होय है। सो जगतमैं प्रसिद्ध देखिये है। भले

कुलके जीव खोटे निमित्तन तैं चोर जुआरी कुआचारादि कुलक्षण सहित खोटे होते देखिये है। और हीन कुलके उपजै जीव भली संगति तैं ऊंचे होय सुखी देखिये है। तातैं विवेकी जीवकूं निमित्त भले राखनेका उपाय सदीव राखना योग्य है। निमित्त तैं उपादानकी शुद्धता होय है। जैसे अग्निके निमित्त सुवर्णके उपादानकी शुद्धता होय है। ताम्बा आदि कुधातनके निमित्त तैं, सुवर्णके उपादानकी मलिनता होय है। ऐसे जानि, निमित्त भला ही मिलावना योग्य है। जहां-तहां निमित्त की मुख्यता है। सोही दिखाईये है। देखो आदिनाथ स्वामी, उत्कृष्ट भले उपादानके धारक, तिनके अशुभ निमित्त तैं, तियासी लाख पूर्व, कषायन मैं जाते भए। दीक्षा रूप भाव नहीं भये। तब इन्द्र महाराज ने अवधि तैं विचारी, जो तीर्थंकर भगवान्का सर्व आयु-कर्म पंचेन्द्रिय भोगनमें व्यतीत भया। अरु भगवान् कैं विरक्ति नहीं भई। सो कोई निमित्त विचारिए तब इन्द्र नै एक नीलांजना नाम अप्सराका आयु कर्म बहुत ही अल्प जानि, इसकों आज्ञा करी। सो ये देवी ने इन्द्रकी आज्ञा लेय, भगवान्के आगे अद्भुत नृत्य-गान आरम्भ्या। सो याके नृत्य कौं देखि, सर्व सभा के देव-मनुष्य आश्चर्य कूं पावते भए। जो ऐसा नृत्य इन्द्रकौं भी दुर्लभ है। ऐसे नृत्य करते समय उसका आयु पूरण भया। जिससे आत्मा तो परगति गया। अरु शरीर, दर्पण की छायाके प्रतिबिम्बवत् अदृश्य होय गया। सो नृत्यका उत्सव भंग नहीं होनेकूं, इन्द्र नै तत्क्षण वैसीही देवांगना रचि दई, सो नृत्यकी ताल-राग चाल भंग नहीं होने पायी। यह चरित्र सर्व सभाके जीव मनुष्यादि थे; तिन काहूनैं नहीं जान्या। सब नै जान्या वही देवी नचै है। अरु इस चरित्र कौं भगवान् ने अवधि तैं जान्या, जो वह देवी नृत्य करती, काय तजि अन्य लोक गई। यह इन्द्रनै नई रचिदई है। अहो, संसार चपल व विनाशीक है। इत्यादिक प्रकार वैराग्य उपाय; दीक्षा धरि, ध्यानाग्नितैं कर्मनाश, सिद्ध भये। सो यहां भी देखो, निमित्त ही को महंतता आई। तातैं सत्पुरुषन कूं अपने कल्याण कूं, कुसंग हेय करि, शुभ निमित्त करना सुखकारी है। जैसे बनै तैसे ही भला निमित्त गुणकारी है। ऐसे एतौ जीव कूं जीवका निमित्त कह्या। अब पुद्गलका पुद्गल तैं निमित्त उपादान कहिये है। तहां हल्दी तौ स्वभाव तैं ही पीत है। याकौं घसिकैं जल मैं घोलिए, तौ भी पीत ही जल

होय। सो ऐसे पीत जल मैं साजी डारिए, तौ साजीके निमित्त तैं सर्व जल, लाल होय है। सो लाल होयने की उपादान शक्ति तौ हल्दीकी ही है। परंतु निमित्त साजीका मिलै लाल होय है। और स्फटिक मणि निर्मल है सो ताके नीचे जैसा डांक दीजिये, तैसाही मणि भासै। लाल डाक दिये, मणि लाल भासे। पीत डांक दिये, मणि पीत होय। श्याम डांक दिये, मणि श्याम होय। सो मणि, स्वभाव तैं तौ महा निर्मल-श्वेत है। परन्तु जैसे डांकका निमित्त मिलै है, तैसाही भासै हे। सो लाल, पीत, श्याम होनेकी उपादान शक्ति तौ उस स्फटिक मणि की है। अरु निमित्त नीचले डांकका है। सो यहां भी निमित्तकी प्रधानता आई। और जैसे लोहा धातु, नीच धातु है। परन्तु जब ऊंच जो पारस पाषाणका निमित्त मिले, तब कंचन होय है। सो सुवर्ण होनेकी उपादान शक्ति तौ लोहा हीं में है, और धातन में नाहीं। परन्तु जब पारसका निमित्त मिलै तौ सुवर्ण होय है। सो हे भव्य, जीव तैं जीवकूं, पुद्गल तैं पुद्गल कूं, जहां-तहां निमित्त ही की महंतता है। तातें विवेकीन कूं भला निमित्त मिलावना ही योग्य है। विशेष एता है जो अपने परणामण की विशुद्धता तैं अधिक विशुद्धता का निमित्त होय तो अपना उपादान, निमित्त प्रमाण करना और अपने भावनकी विशुद्धता तैं निमित्त सामान्य है, तौ अपना उपादान, निमित्त प्रमाण नहीं करना। इत्यादिक विचार है सो सम्यग्दृष्टीन कूं अपनी बुद्धि करि विचारना योग्य है। ऐसा श्रुतज्ञान तैं निमित्त-उपादान का स्वरूपजानिए है। तातें श्रुतज्ञान उपादेय है। इतिनिमित्त-उपादान। आगे श्रुतिज्ञान तैं और भी सुवाणिज्य-कुवाणिज्य का स्वरूप जानिए है। सो ही कहिये है —

गाथा—हिंसावाणिज्ज हेयं, तिल धातु आदि भूमिजलखंण्डो। अप्पारंभो सुह कज्जो, विणहिंसा णित्त मादेओ॥

अर्थ—हिंसाकारी वाणिज्य तजवेयोग्य है। तिल, लोह कूं आदि धातुका व्यापार, तजवे योग्य है। और जामैं अल्प आरम्भ होय सो शुभ वाणिज्य करना। जामें हिंसा नाहीं, ऐसा वाणिज्य उपादेय है। भावार्थ— जे सम्यग्दृष्टी धर्मात्मा हैं। सो वाणिज्य करनेमैं ऐसे ज्ञेय-हेय-उपादेय विचारैं हैं। सो दिखाईए है। तहां शुभ-अशुभ वाणिज्यका समुच्चय जानना, सो तो ज्ञेय है। ताके दोय भेद हैं। एक शुभ वाणिज्य है, एक

अशुभ वाणिज्य है। तहां जो हिंसा, झूठ, चोरी दोष रहित होय, सो शुभ वाणिज्य है। हीरा, मोती इत्यादिक जवाहिरात सीधा लेना और सीधा ही देना। संचय करि बहु दिन नहीं राखना, यह निर्दोष वाणिज्य, उपादेय है। चांदी, सुवर्ण, टके, रुपये, असर्फी लेना, तैसे ही देना। तथा जरकस, तास, गोटा मुकेशाद सीधे लेना तैसे ही देना, ए निर्दोष वाणिज्य, उपादेय है। तथा पराया गहना राखि व्याजका वाणिज्य, सो शुभ वाणिज्य है। ए कहे जो व्यापार सो अग्नि-जलके आरम्भ रहित तौ शुभ वाणिज्य हैं। और जिनमें जलका तथा अग्निका आरम्भ होय, तो ये आरम्भी हिंसा सहित वाणिज्य हेय हैं। और सूजी आजीविका, वचन आजीविका, दृष्टि आजीविका, और कष्टी आजीविका। ये च्यारि आजीविकाके भेद हैं। तहां चिकन काढ़ना, कसीदा करना, वस्त्र सीवनादि, दरजीका काम जे सूजी तैं कमावैं सो सूजी आजीविका है। सो निर्दोष है, उपादेय है। और लेने-देने वारेके बीचि विषैं दूत होय व्यापार करादेना, अपने वचन ज्ञानके बळ करि आजीविका पैदा करै। जैसे लौकिकमें दलाली करनेहारे, सो हिंसादि दोष रहित, शुभवाणिज्य है। सो उपादेय है। याका नाम वचन आजीविका है। और जे अनेक रतन, अशर्फी रुपैया परख देना। परखाई लेनेकी आजीविका करनी। सो दृष्टी आजीविका है। और अपने तनतें कष्ट करि, पराया कार्य कर देना। जैसे लौकिकमें हम्माली आदि शीश गांठि भारि धरि आजीविका करैं सो कष्टी आजीविका है। ए कही जो च्यारि प्रकार आजीविका सो सामान्य पुण्य तैं लगाय विशेष पुण्य पर्यन्त अरु नीच कुली तैं लगाय ऊंच कुली पर्यन्त, सामान्य ज्ञानी तैं लगाय विशेष ज्ञानी पर्यन्त जे धर्मात्मा जीव चोरी झूठ हिंसा आरम्भ तैं भयभीति ते सन्तोषी गृहस्थ, इन च्यारि प्रकार शुभ वाणिज्य करि आजीविका करैं सो उपादेय है। इत्यादिक किसब (व्यापार) जल, अग्नि आदिक बड़े आरम्भ रहित हैं। चोरी, झूठ, हिंसा रहित हैं। तातें निर्दोष हैं। और एही झूठ, चोरी आदि सहित होंय, तो ए ही पाप करता होंय, सो हेय होंय। जैसे हीरा, मोती रतनका व्यापार करनहारा, द्रव्य लगाय, लोभ निमित्त धरती खुदाय कढावै। तौ पापबंध करता, आरम्भी व्यापार होय। २६८
चांदी सुवर्णका वाणिज्य करनहारा, बहु आरम्भ-अग्नि तपावना, जलाना, फूंकना, धोंकनादि आरम्भ सहि

त होय, तौ अयोग्य है, हेय है। तथा सूजीवारा पराया वस्त्रादि चोरै, तो सूजी आजीविका भी सदोष होय दलाली वाला बहुत झूठ बोलि लेने-दैने वारेका बहुत माल-धन ठिगावै, तौ वचन आजीविका मैं भी दोष लागै, पाप होय। दृष्टि आजीविका वारा अपने लोभ कूं भला-बुरा परखै, तौ चोरीके दोष सहित होय। और कष्टी आजीविका वारा भी लोभाचारी होय पराये गठियाका माल लेय तौ चोरके दोष सहित होय। तातैं दोष सहित तौ सर्व ही हेय हैं। परन्तु दीर्घ तृष्णा रहित, पाप तैं डरनैहारे भव्यन कूं, रतन-सुवर्णादिक, सूजी आजीविका, दृष्टी आजीविका वचन आजीविका, कष्टी आजीविका ए कहे जो किसब सो सुखकारी हैं। आप-परकौं हितकारी हैं। तातैं धर्मात्मा जीवन करि उपादेय हैं। यह लौकिक व्यापार कहे। अब निश्चय शुभाशुभ व्यापार कहिये है। तहां राग द्वेष क्रोध मान माया लोभादि कषायभाव, मिथ्यातभाव निशदिन आर्तरौद्र परणतिका रहना, शोक चिंता भाव आदि भावनका व्यापार सो हेय है। और सम्यक सहित आत्मीक भाव,पर वस्तुके त्यागका भाव,तप-संयमादि भावनकी सदीव परणति, सो ए शुभ व्यापार है, निश्चय उपादेय है। ऐसे विवेकी जीवन कूं अनेक नयन करि व्यापार भेद जानना योग्य है। इति शुभ वाणिज्य। आगे अशुभ वाणिज्य कहिए है। जहां अग्नि-जलका बहुत आरम्भ होय। बहुत अग्नि जलावनी-वुझावनी होय, बहुत जल मथन करना होय नाखना होय, गाले अनगालेका बिचार रहित होय। जहां झूठ, चोरी, दीर्घ माया करना इत्यादिक खोटी वृत्तिका वाणिज्य होय, सो हेय है और बहुत जीवनकी उत्पत्ति-मृत्युका आरम्भ जा किसब मैं होय सो अशुभ-हेय है। जहां बहुत अन्नका संग्रह भंडसाल करि बहुत दिन राखना। तथा सन, चाम, केश, हाड़ादि, इन विषैं जीवनकी उत्पत्ति बहुत होय है। तहां सर्दीका निमित्त पाय हिंसा बधै निर्दयी भाव होय। तातैं हेय है। और शहद, विष, फांसीका रस्सा, छुरी-कटारादि, शस्त्र, कुसी कुदाली, फावड़ा, इत्यादिक वाणिज्य हिंसाके कारण हैं। तातैं अशुभ हैं। जहां लोहा ताम्बा जस्ता सोना चांदी हीरादिककी खान खुदावना। तथा धरती खोदना-खुदावनाके किसब सो अशुभ हैं। खेती जोतना-जुतावना सो हिंसा सहित तजने योग्य हैं। साजी फिटकरी नील आल फूल कंद मूल इत्यादिक ए हिंसाके कारण हैं। तातैं अयोग्य हैं

और भी इनकौं आदि जे पापकारी वाणिज्य होंय सो हेय हैं। जे धर्मात्मा जीव हैं सो दयाके निमित्त ये वाणिज्य नहीं करै है। अपना धर्म निर्दोष राखनेकों सर्व दोष तजैं हैं॥ येते किसब वारन तैं वाणिज्य नहीं करैं तब दया-धर्म निर्दोष है सो ही कहिए। तहां चांडाल कसाई चमार राहके मारन हारे भीलादिक चोर इनकौं कर्ज नहीं देय। अरु देय तौ इनके स्पर्श तैं तथा इनके विश्वास तैं अल्पकाल मैं क्षय होय। तन धनादि विनाश पावैं। परभवकौं पाप बंध होय। तातैं इनका वाणिज्य हेय है। और धोबी लुहार छीपी कुम्हार तीर तुपकादि (बन्दूक) शस्त्रनके करनहारे इत्यादिक हिंसाके अनुमोदन हारे हैं सो इनका वाणिज्य हेय कह्या है। ऐसे कहे जे किसब तिन सबकूं सम्यग्दृष्टी धर्मात्मा दयाधर्म पालक जिनाज्ञा प्रतिपालक करुणानिधान उज्वल धर्मका दास इन किसवन मैं चौगुणे होते होंहि तौ भी नहीं करै। आप धर्मात्मा परभव सुखका लोभी इन लोक निंदाकौं बचाय यशका इच्छुक लोभके वशीभूत होय कैं कुवाणिज्यनका विश्वास अपने घरमैं नहीं आवने देय है। ऐसा वाणिज्य भेद श्रुत ज्ञान तैं जान्या। तातैं श्रुत ज्ञान उपादेय है। इति कुवाणिज्य। ऐसे वाणिज्यमें ज्ञेय हेय उपादेय कहो॥ आगे इसही श्रुत ज्ञानका जघन्य मध्यम उत्कृष्ट करि तीन प्रकार स्वरूप कहिये है। तहां सर्व ज्ञान तैं छोटा सो तौ जघन्य जानना और सर्व द्वादशांग प्रकीर्णादि श्रुत ज्ञान सो उत्कृष्ट जानना। और मध्यके अनेक भेद जानना। ऐसे तीन भेद रूप है सो याका स्वरूप आगे कहेंगे। मूल श्रुत ज्ञान है ताके दोय भेद हैं। एक तो अक्षरात्मक एक अनक्षरात्मक। तहां अक्षर छंद पद काव्य गाथा फांकी आदि शब्द तैं उत्पन्न भया सो अक्षरात्मक श्रुत ज्ञान है। और भाव ही तैं उपजै अक्षर रूप नाहीं सो अनक्षर श्रुत ज्ञान है। सो एकेन्द्रियादिक पंचेन्द्रिय पर्यन्त सर्व ही जीवन कै होय। परन्तु इस अनक्षरात्मक ज्ञान तैं कछु व्यवहार प्रवृत्ति नाहीं। जीवके भाव विचारकी सो ही जीव जानै। तथा केवली जानैं। तातैं इसकी मुख्यता नहीं लई। और दूसरा अक्षरात्मक ज्ञान है। तातैं कर्म धर्म कार्यनकी प्रवृत्ति होय है। जातैं लौकिकमैं लेने देने रूप खाता रोजनामचादि सर्व व्यवहार काय होय हैं। और धर्म शास्त्रका पठन पाठन प्रवृत्ति सो भी अक्षरात्मक ज्ञान तैं होय है। ताके बीस भेद हैं। सो ही कहिए है। उक्तञ्च श्रीगोमट्टसारजी सिद्धान्त—

गाथा—पज्जायक्खर पदसंघादं पडिवत्ति आणिजोगं च। दुगवार पाहुडंच य पाहुडयं वत्थु पुव्वं च॥ ४५॥

अर्थ—पर्यायज्ञान अक्षर ज्ञान, पद ज्ञान संघातज्ञान प्रतिपत्तिकज्ञान, अनुयोग ज्ञान प्राभृतक प्राभृतक-ज्ञान प्राभृतक ज्ञान वस्तुज्ञान और पूर्वज्ञान ए दश भेद भये। सो इन दशनके संग समास लगाय लेना जैसे पर्याय पर्यायसमास ऐसे सर्व जगह लगाय बीस भेद होय हैं। सो ए बीस भेद अक्षरात्मक श्रुतज्ञानके जानना। अब श्रुतज्ञान काहे कौं कहिये है। ताका स्वरूप कहैं है। सो अक्षर विषैं जो अर्थ होय ताकूं जानने रूप जो भाव सो श्रुतज्ञान कहिये। ता श्रुतज्ञानके ए बीस भेद हैं। तातें इस ज्ञानको घातनहारी वरणी सो भी बीस भेद रूप परणमि बीस ही भेदरूप श्रुतज्ञान कूं घातैं हैं। तातें श्रुतज्ञानावरणीके भी बीस भेद जानना। अब इन बीसनका सामान्य अर्थ कहिए है। प्रथम पर्यायज्ञान जघन्य भेद है। सो अक्षरके अनन्तवें भाग ज्ञान है। इस ज्ञानका आवरण इस ज्ञानकूं घात सक्ता नाहीं,ऐसा ही अनादि स्वभाव, केवलज्ञान मैं भास्या है। जो कदाचित् इस ज्ञानकौं भी आवरण घातै, तौ ज्ञानका अभाव होय। और ज्ञान-गुणके अभाव तैं,गुणी ए आत्माका अभाव होय। और आत्माका अभाव भए संसार च्यारि गतिका अभाव होय। सो संसारका अभाव तौ कबहूं होता नाहीं। तातें आत्माके सद्भावतें ज्ञानका सद्भाव है। सो सर्व श्रुतज्ञान केवल-ज्ञानादि सर्व ज्ञानकौं आवरण घातै। परन्तु इस अक्षरके अनन्तवें भाग ज्ञानकौं नहीं घातै है। तातें यह ज्ञान निरावर्ण सदीव रहै है। सो यह जघन्यज्ञान कौन समय होय है सो कहिए है। सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक के उपजनेके पहले समय पर्याय नाम जघन्यज्ञान होय है। सो सूक्ष्म निगोदिया अपने योग्य एक अन्तरमुहूर्तके बटवारे मैं छह हजार बारह क्षुद्रभव तिनमैं जन्मता-मरता अत्यन्त संक्लेशिता रूप भ्रमण करता अन्यके क्षुद्र भव विषैं वक्रता लिए जो विग्रह गति करि जन्म धर्या होय ता वक्र गतिके पहले समय मैं जघन्यज्ञान होय है। तिसही जीवकैं ता समय स्पर्शन इन्द्रियका जघन्य मतिज्ञान है। तिसही जीवकैं ता समय जघन्य अचक्षु दर्शन होय है। इहां बहुत क्षुद्र भवके धरते-धरते बधी जो संक्लेशता तिन दुखरूप परणामनतैं निमित्तपाय तीव्र अनुभाग लिए ज्ञानावरणादि कर्मनका उदय होते महादुखरूप क्षुद्र भवोंका अन्त क्षुद्र भवका प्रथम

समय विषैं पर्यायज्ञानके अनन्तवें भाग जघन्यज्ञान कह्या है। यह ज्ञान अविनाशी है। याका कबहूं नाश नाहीं। ऐसा नियम जानना। पीछे द्वितीयादि समयन मैं ज्ञान बधता होय है। सो इस जघन्य ज्ञान विषैं अनन्त भाग वृद्धि असंख्यात भागवृद्धि संख्यात भाग वृद्धि, संख्यात गुण वृद्धि असंख्यात गुणवृद्धि अनन्त गुणवृद्धि यह षट् स्थानरूप महानवृद्धि संभवें अनंत अविभाग प्रतिच्छेद लिए अन्श हैं। इहां प्रश्न—जो जघन्य ज्ञान मैं अनन्त भाग कैसे संभवैं ? ताका समाधान जो अनन्तके अनन्त ही भेद है। तहां चौदहा-धाराके कथन मैं द्विरूपवर्गधारा विषैं कथन किया है जो अनन्तानन्त वर्गस्थान गए पीछे सर्व जीव राशिका प्रमाण होय है। और जीवराशि तैं अनंतगुणी राशि पुद्गल है। और पुद्गल राशि तैं अनन्त गुणी राशि, तीन कालके समय हैं। और सर्व काल समय राशि तैं सर्व आकाश प्रदेश राशि अनन्त गुणी है। और सर्व आकाश प्रदेश राशि तैं अनंतानंत वर्ग राशि गए सूक्ष्म निगोदिया जीवके जघन्य ज्ञानके अविभाग प्रति-च्छेदनका प्रमाण होय है। ऐसा आगम मैं कह्या है। तातैं यामैं अनन्तभाग वृद्धि संभवे है। ऐसा यह पर्या-यज्ञान प्रथम भेद जानना। ॥ १ ॥ अब यातैं अनंतानंत अविभाग प्रतिच्छेद बधैं तब पर्याय समासका प्रथम भेद होय। तातैं अनंतानंत अविभाग प्रतिच्छेद बधैं तब पर्याय समासका दूसरा भेद होय। ऐसेही अनंता-नंत अविभाग प्रतिच्छेद बधैं। एक—एक स्थान बधैं सो तीन स्थान पांच आदि असंख्यात लोक प्रमाण षट् स्थान पतित वृद्धि होय तब तांई पर्याय समासके भेद होय हैं। सो वृद्धिका अनुक्रम ऐसा है जो अनन्त का प्रमाण मैं तौ जीवराशि जानना। असंख्यातके प्रमाण मैं असंख्यात लोक प्रमाण जानना। और संख्या-त वृद्धिमें उत्कृष्ट संख्यात है। ऐसी अधिकता-हीनता करि षट् गुण हानि-वृद्धि जानना। ऐसे षट् स्थान पतितनकी हानि-वृद्धि होते असंख्यात लोककी अन्तकी हानि-वृद्धि पूरी होते एक भेद घाट पर्यन्त सर्व ए पर्याय समास ज्ञानके भेद जानना। ॥ २ ॥ आगे अक्षर ज्ञान कहिए है। सो वह पर्याय समासके अन्त भेद मैं एक भेद और मिलाईए तब अक्षर ज्ञान है। सो यह अर्थाक्षर नाम ज्ञान है। सो सर्व श्रुतज्ञानके संख्या-तवें भाग यह अक्षर ज्ञान है ॥ ३ ॥ और याके आगे एक-एक अक्षर ज्ञानकी बधवारी होतैं एक अक्षर घाटि

पद अक्षर पर्यन्त ज्ञान बधै, वहां लौं अक्षर समास ज्ञान कहिए ॥ ४॥ आगे या अक्षर समास ज्ञानके अन्त भेद मैं एक अक्षर और मिलाए पद ज्ञान होय है ॥ ५॥ आगे पद ज्ञानका प्रमाण कहिए है। सो यह तीन प्रकार है। अर्थ पद प्रमाण पद और मध्यम पद ये तीन भेद हैं। तहां ऐसा कहना जो "अग्न्यानयः"। याके पद हैं, दोय अग्नि और आनय। याका अर्थ ऐसा जो अग्नि आनि देओ। इत्यादिक अर्थ जिन अक्षरनतैं निपजै, सो अर्थ पद कहिए। और कहिए जो "नमः श्री वर्द्धमानाय"। याका अर्थ यह जो श्री वर्द्धमान स्वामी को ननस्कार होहु। यह आठ अक्षरनका पद भया। सो याका नाम प्रमाण पद है। और सोलासौ चौंतीस कोड़ि तियासी लाख सात हजार आठसौ अठ्यासी अपुनरुक्त अक्षरनका एक पद होय। सो यह मध्यम पद है ॥ ५ ॥ इस पदके ऊपर एक-एक अक्षर ज्ञान बधता-बधता एक पद जितने अक्षर बधैं तब पद ज्ञान दूना होय है। यातैं एक-एक अक्षर और बढ्या सो बधते-बधते एक पद अक्षर बधैं, तब ज्ञान तीन गुणा होय। ऐसे ही अनुक्रमकौं लिए एक-एक अक्षर बढ़ते पद होंय तब चौगुणा पद ज्ञान, पचगुणा, षट् गुणा ऐसेही संख्यात हजार पद ज्ञान जितने अक्षरन मैं एक अक्षर ज्ञान घटाय तहां तांई पद समासके भेद जानना ॥६॥ या राशि विषैं एक अक्षर और मिलाए संघात ज्ञान होय है ॥ ७ ॥ सो इस ज्ञानतैं च्यार गति मैं तैं एक गति निरूपण सम्पूर्ण करैं, सो संघात नाम श्रुति ज्ञान है। बहुरि इस संघात ज्ञानके ऊपर एक-एक अक्षर का अनुक्रम लिये बढ़ते-बढ़ते पद होंय। अनेक पदनका समूह संघात, याही अनुक्रम करि एक संघात दोय संघात तीन च्यारि आदि संघात, हजार संघात होंय। तहां अन्तका संघात विषैं एक अक्षर घाटि पर्यन्त, संघात समासके भेद हैं। ऐसे संघात समास जानना ॥ ८ ॥ अब इस उत्कृष्ट संघात समास विषैं एक अक्षर ज्ञान और बढ़ाईए, तब प्रतिपत्तिक नाम श्रुतज्ञान हो है। या प्रतिपत्तिक श्रुतज्ञानका धारी च्यारि गतिका स्वरूप यथावत् व्याख्यान करैं सो प्रतिपत्तिक श्रुत ज्ञान कहिए ॥ ९ ॥ इस प्रतिपत्तिक ज्ञानतैं एक-एक अक्षर बधता पद होय है। पदतैं बधतैं-बधतैं संख्यात हजार पद बधे संघात होय संख्यात हजार संघात बधत एक प्रतिपत्तिक होय। और संख्यात हजार प्रतिपत्तिक ज्ञानके अन्त भेद मैं एक अक्षर घटि होय तहां तांई

प्रतिपत्तिक समास नाम ज्ञान हो है॥ १० ॥ आगे इस प्रतिपत्तिक समासके अन्त भेद मैं एक अक्षर और मिलाईये तब अनुयोग नाम श्रुत ज्ञान होय है। सो इस तैं चौदह मार्गणाका स्वरूप भले प्रकार कह्या जाय है। यह अनुयोग नाम ज्ञान है ॥ ११ ॥ आगे इस अनुयोगके एक-एक अक्षर ज्ञान वधतैं पूर्ववत् अनुक्रमतैं पद ज्ञान पदतैं संघात प्रतिपत्तिक अनुयोग सो च्यारि आदि अनुयोग विषैं अन्त भेद मैं एक अक्षर घाटि तांई; अनुयोग समान श्रुत ज्ञान होय है ॥ १२ ॥ ऐसे अनुयोग समासके अन्त भेद विषैं एक अक्षर और मिलाये प्राभृतक-प्राभृतक ज्ञान होय है ॥ १३ ॥ इस प्राभृतक-प्राभृतकके ऊपरि एक-एक अक्षर वधतैं-वधतैं पूर्ववत् अनुक्रमतैं पद संघात, प्रतिपत्तिक अनुयोग प्राभृतक-प्राभृतक ऐसे अनुक्रमतैं चौईस प्राभृतक-प्राभृतक होंय। तहां अन्त भेद मैं एक अक्षर घटता रहै यहां तांई प्राभृतक—प्राभृतक समास ज्ञान होय है ॥१४॥ आगे इस प्राभृतक-प्राभृतक समास विषैं एक अक्षर और मिलाईये तब प्राभृतक ज्ञान होय है ॥ १५ ॥ भावार्थ—एक प्राभृतकके चौईस प्राभृतक-प्राभृतक अधिकार होय हैं। और इस प्राभृतक ऊपरि एक-एक अक्षर की बधवारी लिए, पद संघातादि अनुक्रमतें वधवारी लिए चौबीस प्राभृतक होंय। तहां अन्तके भेद मैं एक अक्षर घटता रहै तहां तांई प्राभृतक समासके भेद जानना ॥ १६ ॥ आगे इस प्राभृतक समासमैं एक अक्षर ज्ञान और मिलाए वस्तुनाम श्रुत ज्ञान होय है ॥ १७ ॥ आगे इस वस्तु ज्ञान पै एक अक्षर वधतैं-वधतैं पद संघातादि सर्व अनुक्रम पूर्ववत् करि वृद्धि होते, दश आदि वृद्धि होते अन्त भेद मैं एक अक्षर घटै, तव तांई वस्तु समास श्रुत ज्ञान है ॥ १८ ॥ आगे इस वस्तु समास मैं एक अक्षर और वधाईए तव पूर्व नाम श्रुत ज्ञान होय है ॥ १९ ॥ इस ही पूर्व मैं चौदह भेद है। तिनका स्वरूप आगे कहि आए हैं। तातैं इहां नहीं कह्या है। और पूर्व ज्ञानके ऊपर एक-एक अक्षर ज्ञान वधतैं-वधतैं पूर्व अनुक्रमतैं पद संघातादि अनुक्रमतैं एक अक्षर घाटि श्रुत ज्ञान पर्यन्त, पूर्व समास है ॥ २० ॥ ऐसे बीस भेद श्रुत ज्ञानके कहे। विशेष इनका श्री गोमट्टसारजीके श्रुतज्ञानाधिकारतैं जानना। ऐसे यह श्रुतज्ञान कह्या। सो यह श्रुतज्ञान, केवलज्ञानकी सी महिमाकौं धरै है। केवलज्ञान तौ प्रत्यक्ष है। अरु श्रुतज्ञान परोक्ष है। परन्तु, केवलज्ञान समान, लोकालो-

क तीनकाल सम्बन्धी सकल-तत्व-प्रकाशी है। यहां प्रश्न-जो केवलज्ञान तौ अनन्त है। सो अनन्त पदार्थन मैं अनन्त अर्थ रूप होय प्रवर्तै है। और श्रुतज्ञान संख्यात अक्षर मई है। सो केवलज्ञानकी बरोवर कैसे संभवै ताका समाधान—जो हे भाई, तेरी बात प्रमाण है। परन्तु तू चित्त देय सुनि। या प्रश्नका उत्तर धारण किए सम्यक् हो है। हे भव्य, केवलज्ञान तैं कछू छिपा नाहीं। मूर्ती-अमूर्ती पदार्थ सर्व प्रकाशै। ऐसा केवलज्ञान लोकालोक तीनकालका प्रकाशनहारा है। सो जे-जे पदार्थ केवलज्ञान मैं भास्या, सो सर्व रहस्य केवलीके मुखतैं खिर्या, सो ही गणधर देव नै प्रगट करि उपदेश दिया। सो मूर्ती-अमूर्ती द्रव्यनका स्वरूप, तीनलोक तीनकाल सम्बन्धी रचना, श्रुतज्ञानके द्वारा सर्व कही। ताकौं भव्य सुनि-सुनि रहस्य पाय, मोक्ष—मार्ग पावते भए। तातैं श्रुतज्ञान कूं केवलज्ञान समान कह्या। और भी देखो, हे भव्य हो सुनौ, । जो केवलज्ञान जाकैं होय, सो केवली कहावै है। जाकैं सर्व श्रुतज्ञान हो, ते यतीनाथ श्रुत-केवली कहावैं हैं। तातैं भी केवलज्ञान समान कह्या। ऐसा जानना।

इति श्री सुदृष्टि तरङ्गिणी नाम ग्रन्थ मध्ये, सामान्य श्रुतज्ञान वर्णनो नाम, उगणीसवां पर्व सम्पूर्ण भया ॥ १९ ॥

आगे अवधिग्यानका स्वरूप कहिये है—

गाथा—देसा पम्म सव्वा तिय भेयावधिणाण जिण भणियं। जाणय मुत्ती दव्व तीताणागत वत्तमाणाय ॥ ४९ ॥

अर्थ—देशावधि, परमावधि और सर्वावधि ए तीन भेद अवधिज्ञान, जिनदेव नैं कह्या है। सो यह ज्ञान अतीत, अनागत और वर्तमान, तीनकाल सम्बन्धी मूर्ती द्रव्यकौं जानैं है। भावार्थ—अवधिज्ञान मुर्ती पदार्थों को जानै है। सो अतीतकाल मैं मूर्तीक पदार्थ जैसे जैसे परणामैं। स्पर्शके विषय रूप, रसनाके विषय रूप नासिकाके विषय रूप, नेत्रके विषय रूप, कर्णके विषय रूप स्थूल सूक्ष्म रूप, जे जे पुद्गल स्कन्ध परणामैं। सो सो अपने अपने विषय प्रमाण सर्वकूं अवधिज्ञान जानै है। और आगामी काल मैं मूर्ती पदार्थ जैसे परणामैंगे, सो तिन सबकूं अवधिज्ञान जानै है। और वर्तमान काल सम्बन्धी जो पदार्थ, तीन लोकमैं जैसे जैसे परणमते हैं। तिन सबकूं अपने विषय प्रमाण क्षेत्र कालकी, अवधिज्ञानी जानैं हैं। ऐसे अतीत अनागत वर्त-

मान काल सम्बन्धी द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपने विषय योग्य दूरवर्ती तथा नजदीकवर्ती सर्व पदार्थन कूं, अवधिग्यानी जानैं। सो अवधिज्ञान तीन प्रकार है। सो ही कहिए है। देशावधि, परमावधि और सर्वावधि। तहां देशावधिके षट् भेद हैं। तिनकूं कहिए है। अनुगामी, अननुगामी वर्धमान, हीयमान, अवस्थित अरु अनवस्थित। ए षट् भेद हैं। अब इनका सामान्य लक्षण कहिये है। जो अवधिज्ञान जिस पर्यायमें भई, तामैं आयु पर्यन्त रहै, अथवा ए जीव परगति जाय, तब भी याकी संग परगतिमैं जाय, सो अनुगामी कहिये ॥ १ ॥ जो अवधिज्ञान भले निमित्त पाय, जा पर्याय व जा स्थान मैं भया, सो ताही पर्याय व ता स्थान पर्यन्त रहै। परन्तु अन्य गति व अन्य स्थान मैं संग नहीं जाय, सो अननुगामी कहिए ॥ २ ॥ और जा अवधिज्ञान तैं जबतैं शुभ निमित्त भया, तबतैं पर्याय पर्यन्त अपनी स्थिति प्रमाण काल तांई समय समय विशुद्धता सहित, ज्ञानके अंश वृद्धि ही भया करैं, सो वर्द्धमान अवधिज्ञान जानना ॥ ३ ॥ जो अवधि, महा विशुद्धताके प्रभावतैं भला निमित्त पाय जिस जीवकैं जा समय भई, तबही तैं अवधिग्यानके अंश घटते जांय सो पर्याय पर्यन्त घट्या ही करैं। अपने काल थितिकी मर्याद मैं घट चूकैं, सो हीयमान अवधि जानना ॥ ४ ॥ और जो अवधि जबतैं भई तबतैं जैसी की तैसी रहै। अपने काल-प्रमाण जेती थिति या ज्ञान की रहै, तेते अंश घटै-वढ़ै नाहीं। जा समय उपजी थी, तेते ही अंश रहैं सो अवस्थित अवधिज्ञान कहिये ॥ ५ ॥ और जो अवधिज्ञान जबतैं भया, तबतैं कबहूं तौ घटै, कबहूं वढ़ै। ऐसे चपल रह्या करै। सो अनवस्थित अवधिज्ञान कहिए ॥ ६ ॥ ऐसे इस देशावधिके षट् भेद हैं। तहां अनुगामीके तीन भेद हैं। एक स्वस्थान अनुगामी, एक परस्थान अनुगामी, एक उभय अनुगामी। तहां जो अपने क्षेत्र में ही यावज्जीवन अपने साथ जावे, अथवा भवान्तर में जावे, उसे स्वक्षेत्र अनुगामी कहैं हैं। जो पर-क्षेत्र में यावज्जीवन अथवा भवान्तरमें अपने साथ जावे, उसे पर-क्षेत्रानुगामी कहते हैं। तथा जो स्वक्षेत्र व परक्षेत्र में यावज्जीवन व भवान्तरमें साथ जावे उसे उभयानुगामी कहते हैं। अननुगामी भी तीन प्रकार है-स्वक्षेत्राननुगामी, परक्षेत्राननुगामी और उभयाननुगामी। तहां जो स्वक्षेत्रमें भी आयुपर्यन्त अथवा भवान्तरमें साथ न जावे, उसे स्वक्षेत्राननुगामी कहते हैं। जो परक्षेत्रमें और भवान्तरमैं साथ

न जावे उसे परक्षेत्राननुगामी कहते हैं। तथा जो स्वक्षेत्रमें आयु पर्यन्त अथवा भवान्तरमें और परक्षेत्रमें साथ न जावे, उसे उभयाननुगामी कहते हैं। ए तीन भेद अननुगामी के कहे। अब आगे क्षेत्र-काल अपेक्षा अवधिज्ञानकी अधिकता तथा हीनता रूप कथन करे हैं, सो सुनो। जो जीव अवधि तैं क्षेत्र-अपेक्षा जितने क्षेत्र की जानै है सो कालअपेक्षा थोरे कालकी जानै है। ऐसे और भेद कहिए हैं-तहां जघन्य अवधिका धारो, क्षेत्र अपेक्षा अंगुलके असंख्यातवें भाग क्षेत्रकी जानैं, सोही जीव काल अपेक्षा, आंवलिके असंख्यातवें भाग कालकी जानैं, सो भी असंख्यात समय जानना। और अंगुलके संख्यातवें भाग क्षेत्र की जानैं, सोही जीव काल अपेक्षा, आंवलिके संख्यातवें भाग कालकी जानैं। ए प्रथम भेद है ॥ १ ॥ और दूसरे भेदमैं अंगुल मात्र क्षेत्रकी जानै, सो ही जीव काल अपेक्षा, किञ्चित् नून आँवलि—मात्र काल की जानैं ॥ २ ॥ और तीसरे भेदमैं क्षेत्र अपेक्षा, सात आठ अंगुलके क्षेत्रकी जानै, सो ही जीव काल अपेक्षा, सात आठ आँवली कालकी जानै ॥ ३ ॥ और चौथे भेद मैं क्षेत्र अपेक्षा, एक हाथ क्षेत्र की जानै, सो ही जीव कालअपेक्षा, अन्तर मुहूर्त काल की जानै है ॥ ४ ॥ और पंचम भेद मैं क्षेत्र अपेक्षा जो जीव एक कोस क्षेत्र की जानै, सो ही जीव काल अपेक्षा, अन्तर मुहूर्त काल की जानै ॥ ५ ॥ और छठे भेद मैं क्षेत्र अपेक्षा, एक योजन क्षेत्र की जानै, सोही जीव काल अपेक्षा, किञ्चित् नून मुहूर्त कालकी जानै ॥ ६ ॥ और सातवे भेदमें क्षेत्र अपेक्षा, पचीस योजनकी जानै। सो ही जीव काल अपेक्षा, किञ्चित् नून एक दिन—कालकी जानै ॥ ७ ॥ और आठवें भेद मैं क्षेत्रअपेक्षा जो जीव भरत क्षेत्र प्रमाण क्षेत्र की जानैं। सोही जीव काल अपेक्षा, पञ्च दिन कालकी अगली पिछली जानै है ॥ ८ ॥ और जे जीव क्षेत्र अपेक्षा, जम्बूद्वीप प्रमाण क्षेत्र की जनै, सोही काल अपेक्षा, किञ्चित् नून एक मास की जानै है ॥ ९ ॥ और दशवें भेद मैं क्षेत्र अपेक्षा, अढ़ाई द्वीप क्षेत्रकी जानैं, सोही जीव काल अपेक्षा, एक वर्ष काल की जानै है ॥ १० ॥ और ग्यारहवें भेदमें क्षेत्र अपेक्षा, कुण्डलगिर ग्यारहवैं द्वीप पर्यन्त क्षेत्र की जानैं, सो ही जीव काल—अपेक्षा, कछू घाटि आठ सात वर्ष की जानै ॥ ११ ॥ और बारहवें भेद मैं क्षेत्र अपेक्षा, संख्यात द्वीप समुद्र क्षेत्र की जानैं, सोही जीव

संख्यात वर्ष कालकी जानै है ॥ १२ ॥ और तेरहवें भेद मैं क्षेत्र अपेक्षा, असंख्यात योजनकी जानैं, सो ही जीव काल अपेक्षा, असंख्यात वर्ष—कालकी अगली पिछली जानै है ॥ १३ ॥ और चौदहवें भेद मैं तेरहवेंते असंख्यात गुणी क्षेत्रकी जानैं, सोही जीव काल अपेक्षा, तेरहवेंते असंख्यात गुणे काल की अगलीपिछली जानै है ॥ १४ ॥ ऐसे चौदहवें तैं पन्द्रहवां ॥ १५ ॥ पन्द्रहवें तैं सोलहवां ॥ १६ ॥ सोलहवें तैं सत्तरहवां ॥ १७ ॥ सत्तरहवें तैं अठारहवां ॥ १८ ॥ अठारहवें ते उगणीसवां ॥ १९ ॥ ए परस्पर क्षेत्र-काल अपेक्षा असंख्यात-असंख्यात गुणे बधते जानना। ऐसे करते अन्तके भेद मैं देशावधि का उत्कृष्ट क्षेत्र लोक प्रमाण है। और काल-अपेक्षा एक समय घाटि एक पल्य कालकी अगली पिछली जानै है। ऐसे त्रिकाल सम्बन्धी क्षेत्र कालका विषय प्रमाण जघन्यतैं लगाय उत्कृष्ट पर्यन्त देशावधिका विषय कह्या है। सो अपने विषय योग्य क्षेत्र काल मैं प्रवर्त्तते पुद्गल स्कन्धनकी सन्सारी जीवनकी पर्याय पलटणि रूप क्रिया कूं जानै है। इस तीन सौ तेतालीस राजू लोक क्षेत्र मैं जीव-अजीव पर्याय जैसे-जैसे भई आगे होयगी और हैं। सो तीन काल सम्बन्धी अपने विषय प्रमाण क्षेत्र-कालकी जानै सो देशावधि कहिए। इति देशावधि। आगे परमावधिका संक्षेप कहिए है। परमावधिवाला यती देशावधितैं असंख्यात गुणी क्षेत्र कालकी जानै है सो क्षेत्र-अपेक्षा तौ ऐसे ऐसे असंख्याते लोक क्षेत्रकी जानैं है। और कालकी अपेक्षा सागर की अगली पिछली जानै है। इति परमावधि। आगे सर्वावधिका संक्षेप कथन कहिए है। सो परमावधितैं असंख्यात गुणी क्षेत्र कालकी सर्वावधिधारक यति जानैं। इति सर्वावधि। ऐसे अवधिज्ञानके तीन भेद कहे सो यह अवधि दोय प्रकार है। एक भवप्रत्यय और एक गुणप्रत्यय। तहां गति स्वभावतैं जन्म धरते अवधि होय सो भवप्रत्यय कहिये। सो देव नारकीकैं तथा तीर्थंकर कैं होय, सो भवप्रत्यय है। और जहां तहां तप संयमतैं तथा भगवानके दर्शनतैं स्तुतितैं परणामणकी विशुद्धतातैं अवधिज्ञान होय सो गुणप्रत्यय है। ऐसे सामान्य अवधिज्ञानका स्वरूप जानना। इति अवधिज्ञान संक्षेप सम्पूर्णम्। आगे मनःपर्ययज्ञानका सामान्य भाव कहिये है—

।२७८।

गाथा—मण पज्जयणाणावरणी, खयोवसमज्जस्स होइ सो जीवो ।मण पज्जयक्खु पावई, दो भेयो होइ उज्जु विउलमई ॥ ४७ ॥

अर्थ—मनःपर्ययज्ञानावरणी ताका क्षयोपशम जा जीव कैं होय सो मनःपर्यय ज्ञान पावै । सो ज्ञान ऋजुमति विपुलमति भेद करि दोय प्रकार है । भावार्थ—जिस जीवकै मनःपर्यय ज्ञानावरणीका क्षयोपशम होय है । ताके दोय प्रकार ऋजुमति और विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान होय है। सो इनका विषय कहिए है । तहां कुटिलता रहित-सरल मन सरल वचन और सरल काय करि किये जो कार्य नाना प्रकार विकल्प तीन काल सम्बन्धी तिनकूं जानै । सो ऋजमति मनःपर्यय ज्ञान है । इति ऋजुमति मनःपर्यय । आगे विपुलमति मनः पर्ययका संक्षेप कहिए है । तहां सैनीके मन सरल, बचन सरल, काय सरल, किए जो विकल्प तिन सबकौं जानै । और मन कुटिल बचन कुटिल अरु काय कुटिलता करि किए जो विकल्प रूप कार्य, तिन सबकूं जानैं सो विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान हैं । इति विपुलमति । तहां ऋजुमति तो प्रतिपत्ति है सो होय भी अरु जाता भी रहै । भये पीछे तें जाता रहै, सो प्रतिपत्ति कहिए । भावार्थ—जिस यतीश्वरके ऋजुमति ज्ञान होय । अरु वह मुनीश्वर पर्याय छोड़ि देवलोकमें असंमयी उपजै तो यह ज्ञान पर पर्यायमें नाहीं जाय । उस मुनिकी पर्याय ही मैं रह्या । देव भये जाता रहै रहै नाहीं । तातें ऋजुमति प्रतिपत्ति है । और जा यतीश्वरकैं विपुल मति ज्ञान होय सो जाता नाहीं । इसे ज्ञान सहित केवलज्ञान होय सो ता केवलज्ञान मैं मिलिजाय है । तातें यह विपुलमति ज्ञान विशुद्ध है । चरमशरीरिन कैं होय । ए ज्ञान भए संसार भ्रमण नाहीं होय है । ऐसा जानना । तहां मनःपर्ययज्ञानीका विषय काल अपेक्षा उत्कृष्ट असंख्यात काल समयकी जानैं । और क्षेत्र अपेक्षा पैंतालीस लाख योजन अढ़ाई द्वीप क्षेत्रकी जानैं विशेष एता जो मनुष्य लोक तौ गोल है । अरु मनःपर्याय ज्ञानका विषय चौकोर है । तातें मनुष्य लोक बारे च्यारूं कोणयां मैं तिष्ठते देव तथा तिर्यंच तिनके मन विकल्पको भी जानें । ऐसे उत्कृष्ट मनःपर्याय ज्ञानका विषय कह्या । इति मनःपर्याय ज्ञानका संक्षेप वर्णन । आगे केवलज्ञान संक्षेप वर्णन—

गाथा—तिकाले तियलोये, खट दव्वं जहा य पण्णत्ती । जाणय केवलणाणय, जुगपद्देकंकालम्हि बिण भेदो ॥ ४८ ॥

अर्थ—तीनकाल और तीन लोक विषैं द्रव्य जैसे जैसे परणमैं, तिनकौं केवलज्ञानी निरखेद ऐके काल सबकूं युगपत जानैं है। भावार्थ—सर्व ज्ञानावरणी कर्मके क्षय उत्पन्न भया जो केवलज्ञान, सो क्षायिक ज्ञान है। सो याके होतें अनन्त अलोकाकाश ताके मध्यभाग तिष्ठता असंख्यात प्रदेशरूप लोकाकाश ता विषैं तीन लोक रचना षट् द्रव्य करि बनी है। ता विषैं त्रस नाड़ी है। ता विषैं देवादि च्यारि गति अनन्तकालकी ध्रुव बनी हैं। तिन मैं संसारी जीव, अथिर पर्याय धारी उपजै हैं। और यह लोक, षट् द्रव्यन करि भर्या है। सो ए षट् द्रव्य जैसे-जैसे परणमैं, तिन सर्वकूं केवलज्ञानी जानैं हैं। सौ कहिए है। जीव द्रव्य अनन्त है। सो अनन्ते जीव, समय—समय जैसे-जैसे राग-द्वेष भाव क्रोध मान-माया लोभ भाव, हास्य-भय शोकादि कषायनके अंश सहित ज्यौं-ज्यौं परणम्या ताकूं केवलज्ञानी युगपत जानें हैं। एक एक जीवने अनन्तकाल संसार—भ्रमण करतैं, एक एक पर्याय च्यारि गति सम्बन्धी अनन्त—अनन्त धरी हैं सो केवलज्ञानी जानैं है। इस जीवने देव पर्याय अनन्तवार पाई सो देवगति में नाना भोग भोगते भया जो शुभाशुभ भावनका परणमण ताकूं केवली जानें हैं। अनन्तवार इस जीवनैं पाप भावनतैं नर्क पर्यायके दुख देखे तिनमैं भये जो संक्लेश भाव तिनकूं केवलग्यान जानें है। पशु पर्याय एकेन्द्रियादि पंचेन्द्रिय पर्यन्त अनन्तवार पाई। तिनमैं भए जो राग-द्वेष भाव तिनकूं केवलग्यान जानें है। संसार भ्रमतैं अनन्तवार भया जो मनुष्य तिन पर्यायनमैं भये जो शुभाशुभ भाव, तिन सबकौं केवलग्यानी जानें हैं। और च्यारि गतिमैं भ्रमतैं परणम्या जो पुद्गलस्कंध पर्यायन रूप अनेक रूप, तिन सबकौं केवलग्यान जानैं है। और अबार वर्तमान कालमैं च्यारि प्रकार देव सर्व मनुष्य पशु और नारको च्यारि गतिके जीव सुख-दुख रूप प्रवर्तैं हैं। तिन सबकूं केवली जानैं हैं। और पुद्गल स्कंध जे-जे स्पर्श रस गंध वर्ण होय परणम्या ते-ते सर्व केवली जानें हैं। और आगामी अनन्तकाल विषैं एक एक जीव अनन्त देव पर्याय और धारेगा। ऐसे अनन्ते जीवन सम्बन्धी अनागत अनन्त पर्यायन में समय-समय क्रोध मानादि कषाय रागद्वेष भाव रूप अनन्त जीव ज्यौं ज्यौं परणमैंगें ते केवलग्यान सर्व पहले ही जाने हैं। अनागत अनंत पर्यायन मैं अनन्त कालकी देवनकी पर्यायरूप पुद्गल स्कंध सो केवलग्यान, पहले ही

जानैं है। ऐसे अतीत, अनागत और वर्तमान इन काल सम्बन्धी देवनके भाव विकल्प सो अरु इन देव पर्याय रूप परणम्या जो समय-समय अनन्त पुद्गल परमाणु सर्वकूं केवलग्यानी युगपत एक समय जानैं हैं। और ऐसे ही एक एक जीव अतीत अनागत काल विषैं अनन्तानन्तो मनुष्य पर्याय नीच ऊंच कुल तहां नीच कुल भीलादिकका, और अनन्ती पर्याय ऊंच कुल क्षत्री वैश्यादिकका तिन मैं भये जो समय समय इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग पीड़ा—चिन्तवन निदानबंधादि आर्तभाव तथा च्यारि भेद रौद्र भाव। इनके निमित्त पाय जो क्रोध-मानादिक राग द्वेष भावन रूप परणमन, तिन सर्व कूं केवल ग्यानी जानैं हैं। और इन अनन्त मनुष्य पर्यायनमैं परणम्या जो जा-जा रूप स्पर्श रस गन्धादिक पुद्गल पर्याय स्कन्ध रूप परमाणुका परणमण तिन सबकों केवली जानै हैं। और वर्तमान मैं जो सर्व संख्याते मनुष्य ऊंच नीच कुल तिनमैं जैसे-जैसे समय समय क्रोधादिक कषाय राग द्वेष भावका पलटन तिन सबकूं केवलज्ञानी जानैं हैं। और वर्तमान इनही मनुष्य पर्याय रूप परणम्या जो पुद्गल स्कन्ध तिन सबकूं केवलज्ञानी जानै है। और अनन्त अनागत काल विषैं अनन्ती—अनन्ती मनुष्य पर्याय एक-एक और धारैगा तिनमैं होयगें जो जो रागादि भाव विकल्प ते ते सर्व केवल ज्ञानी जानैं हैं। और अनागत काल मैं होयगी जो मनुष्य पर्याय तिन रूप परणमैंगे जो पुद्गल स्कंध तिन सबकूं केवलज्ञानी जानै हैं। ऐसे कहे जो अतीत अनागत वर्तमानकाल सम्बन्धी मनुष्य पर्यायन मैं अनेक भावनके परणमण तिन सबकों केवल ज्ञानी युगपत जानै है। और ऐसेही एक-एक जीव अनन्त अनन्त पर्याय नारकी धरि आया। अबार धरै है। आगामी और धारैगा। ऐसे तीन काल सम्बन्धी नारक पर्यायन मैं भये जो भाव विकल्प तिस सर्वकों केवलग्यानी जानैं हैं। और ऐसे अतीत अनागत बर्तमान काल विषैं एक एक जीव अनन्त तिर्यंच पर्याय जो एकेन्द्रिय बेन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रिय पञ्चेन्द्रिय पृथ्वी अप तेज वायुवनस्पति इतरनिगोद नित्यनिगोद इनके सूक्ष्म बादर रूप पर्याय प्रत्येक वनस्पती सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित इत्यादिक तथा अनेक भेद मई पशु पर्याय और श्वासके अठारहवें भाग आयुके धारी अलब्ध्यपर्याप्त जीव, सैनी असैनी एक अन्तमुहूर्त मैं छ्यासठि हजार तीन सौ छत्तीस जन्म मरण रूप पर्याय तिन सर्व पर्यायनकौं एक-एक जीव

अनन्त २ बार धरि आया तिनमैं भये जो भाव विकल्प तिन सर्वकौं केवलग्यानी जानैं है। और इन पर्याय रूप परणम्या जो अनन्तकाल तांई पुद्गल स्कंध तिनकौं केवलग्यानी जानैं हैं। ऐसे च्यार गतिके जीवनके परणाम और ग्यानावरणादिक कर्म रूप भये जो अनन्ते जीवनके भावनका निमित्त पाय पुद्गल कर्म तिनकौं केवल ग्यानी जानैं हैं। और पुद्गल अनेक रूप भए हीरा माणिक, मोती, पन्ना, पारस मिट्टी, खाक, पाषाण, संस, धात्वादिक अनेक रूप परणमैं जो पुद्गल स्कंध तिन सबकूं केवलग्यान जानैं हैं। और तीन काल सम्बन्धी धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य कालद्रव्य आकाशद्रव्य इन अमूर्तीक द्रव्यनका षट् गुणी हानि वृद्धिकौं लिए परणमण तिन परणमण अंशनकूं केवलग्यानी जानैं हैं। ऐसे अलोकमें तिष्ठता लोक ता लोकमें तिष्ठते षट् द्रव्यके परणमण तीन काल सम्बन्धी तिन सर्व कूं केवलग्यान जानैं हैं। इस केवलग्यानके होते ही अनन्त चतुष्टय संग ही प्रगट होय हैं। अनन्तग्यान अनन्तदर्शन अनन्तसुख अरु अनन्त वीर्य। तहां ग्यानावरणी कर्मके क्षय तैं अनन्त केवलग्यान होय। सर्व दर्शनावरणीका नाश भये केवलदर्शन होय। मोहकर्मके क्षय होतैं क्षायिक सम्यक् तथा यथाख्यात चारित्र रूप निराकुल भाव रूप अनन्त सुख होय। अन्तराय कर्मके सर्व अभावतैं अनन्त वीर्य होय। तिनमैं केवलग्यान केवलदर्शन होते तीनलोक व तीनकाल सम्बन्धी पदार्थनका जानपना होय और अनन्तवीर्य होतै अनन्त पदार्थ देखनेकी अनंतशक्ति प्रगट होय है। जो अनन्तशक्ति नहीं होती तौ अनन्त पदार्थके देखनें तैं खेद होता और मोह कर्मका क्षय होता नाहीं पर पदार्थ मैं रागद्वेष होता, यथावत् सुखी नहीं होता। तातैं केवलग्यान दर्शनतैं तो मूर्ती अमूर्ती पदार्थ जानें। और अनन्तवीर्य तैं सर्व पदार्थके देखते खेद नहीं भया। ऐसे अनन्त चतुष्टय सहित केवलग्यानका धारी सयोग केवली अतीन्द्रिय सुख भोगता तिष्ठै है। ऐसा सुख संसार दशामें जो तीन काल सम्बन्धी अनन्ते अहमिन्द्र देव इंद्र सामानिक च्यारि प्रकार देव अनंते चक्री षट्खंडो कामदेव अनंते नारायण प्रतिनारायण बलभद्र अनंते ही मण्डलेश्वर राजादिक अनेक और अतिशय सहित पुण्यके धारी पुरुष विद्याधरादिक इन सबनका इंद्रिय सुख तीन काल सम्बन्धी इकट्ठा कोजे तौहू केवलग्यानके अनंतवें भाग नहीं होय ऐसा सुख केवलग्यान भए हो

है। संसारी सुख तौ ऐसा है। जैसे कोइ पुरका राजा काहूं बैरोकी बंदी पड़्या है। सो राज धन सम्पदा बहुत है। सो रुका है तौ भी खान पान वस्त्र आभूषण तौ वांच्छित पहिरै है। और भोजन रस मय करै है। सो इंद्रिय सुख मैं कमी नाहीं। परंतु वंदी मैं पड़ा है। सो महादुखी ही रहै है। सो और जो रुके नाहीं स्वेक्षा सुख सूं राज करै हैं, ते महासुखी हैं। तैंसे ही देवादिक संसारी जीव मोह राजाकी बंदी मैं हैं। सो शुभ कर्म उदय तैं इंद्रिय जनित सुख तौ है। परंतु निबंधन सुख नाहीं और केवलग्यानीका सुख स्वेच्छाचारी राजाकी नांई निबंध सुख है। तातैं केवलीका सुख अपार है। ऐसे केवलग्यान सहित भगवान कौं हमारा नमस्कार होऊ इति केवलग्यानका कथन।

इति श्री सुदृष्टितरङ्गणी नाम ग्रन्थ मध्ये अवधि मनः पर्यय केवलज्ञान वर्णनो नाम वींसवां पर्व सम्पूर्ण ॥ २० ॥

आगे कहै हैं जो इस मनुष्य आयुके दिन सोई भई मोतिनकी माला ताकौं भोरा जीव वृथा खोवै है। ताहि दृष्टांत देय दिखावै हैं—

गाथा—मुत्तादामं तग कज्जय, भंजय मूढ़ा णाण रहिया जे। इम अखफल सुह लुहदो, भंजय णरो आयु दिण मुत्त फलं ॥ ४६ ॥

अर्थ—मोतीनकी माला धागाके निमित्त कोई मूढ़ अज्ञानो मनुष्य तोड़ि डारै। तैसेही इन्द्रिय सुखका लोभी मनुष्य आयुरूपी मोतीनकी माल तजै है। भावार्थ—जैसे कोई मूर्ख जीरण गल्या वस्त्र फाटा देखि ताके सीवनेकौं तागा ढूंढै था। सो नहीं मिल्या तब मनोहर मोतीनकी माला थी। सो ताहि देखि विचारी जो इस वस्त्र सीवने कौं तागा मेरी मोतीकी माल मैं है। तब तागा निमित्त मूरखने मोतीकी माला तोड़ि कैं तागा लेय जीरण वस्त्र सोया। सो मोती तागा बिना विखर गये। सो इसकी मूरखता तो देखो कि जीर्ण वस्त्रके निमित्त मोतीकी माला वृथा करी। सो यह महामूर्ख जानना। तैसेही भोरे संसारी जीव इन्द्रियनके विनाशीक आकुलता सहित सुख रूपी पुराणा वस्त्र तामैं भी जारि जारि फाटि रह्या गल्या जाके राखै लज्जा आवै। नाख (फैंक) देने योग्य मलीन ताकौं बहुत दिन थिरीभूत राखवे कूं अरु तिसतैं अपनी शोभा जानिकैं आप ज्ञानकी मूढ़ता तैं ऐसे ग्लानि कारी इन्द्रिय सुख रूप कपड़ा ताके सीवनेकौं अपने मनुष्य आयुरूपी

मोतिनका हार तोड़ि ताके दिन-घड़ी रूप तागा काटि विषय सुख कषायरूप वस्त्र कौं शाश्वता राखनेकौं सोवता भया। अरु मनुष्यायु रूपी मोतीनका हार शोभा मैं नहीं समझा। सो आयुषके समय तेई भए मोती ८०
तिनकौं वृथा खोवता भया। सो इस भूलकी कहा कहिए। अब मनुष्य आयु वार-वार कहां है। विषय भोग तौ गति गतिमें आवै हैं। आगे वहु भोगे हैं। तातें जो मनुष्य आयुरूपी मोतीनका हार तोड़ि तिसके दिन रूपी तागा लेय कैं विषय कषाय रूपी वस्त्र सींव राखि सुख मानैं। ताके ज्ञानकी कहां तांई हीनता कहिये। जैसे कोई ग्यान दरिद्री भोरा जीव सुखके निमित्त भ्रमण करते मनुष्य पर्याय रूपी चिन्तामणि मन वांछित सुखका देने हारा रतन पाया। तोकौं अल्पग्यानी-भोरा जीव विषय कषायरूपी कोरे चनेके लिये वेंचे। तथा कोई जीव सुखके निमित्त अनेक देशान्तर भ्रमता भ्रमता कल्पवृक्ष पावे। ताके पास वालबुद्धि हलाहल जहर जांचे। तैसे मनुष्य पर्याय शिव सुखकी दाता ताकूं पाय हीन ज्ञानी विषय भोग कालकूट हलाहल जहर जांच हर्ष मानै। ऐसेही मनुष्य आयुरूपो हार तोड़ि तोड़ि ताका डोरा लेय विषय कषाय मई वस्त्रका सींवना जानना। आगे अपनी भूल करि आप वंध्या है सो ही दृष्टान्त द्वारा वतावैं हैं—

गाथा—सुक शालणी कप मुट्ठई, मुकरम्हि भमं पत्ति जह साणो। इम चेद्दण भमभूलइ, अप्पं बंधइ रायदोसादो ॥ ५०॥

अर्थ—जैसे नलनीका सुवा (तोता), कपिकी मूठी, कांचके महलमैं दूसरा स्वान नाहीं। तैसे ही आत्मा भ्रम भूला, रागद्वेष तैं आप ही वंध्या है। भावार्थ—नलनीका सूवा (तोता), नलनी पै वैठिकें आपही उलख्या है। सो पंजन तैं नलनीकौ दिढ़ि पकड़े है। सो ऊर्ध्व पांव, अधोकूं शरीर होय झूले। काहू नैं पकस्या नाहीं वांध्या नाहीं। आपही ऐसा समझै है जो मैं इस नलनाकौं तजौंगा, तौ मेरे लगेगो। तथा उसे भ्रम भया, जो मोकौं काहू नै पकड़ि उल्टा वांधि दिया है। ऐसे भ्रमतैं आप महादुखी भया वंध्या। भ्रमजाय, तौ काहू नै पकस्या नाहीं, सहज ही नलनी तजै नभमें उड़जाय और सुखी होय। तैसे आप अपनी भूलतैं परवस्तु मैं राग-द्वेष करि, कौऊकौ भला मानै है, काहूकौं बुरा मानै है। ए मेरो है, ए मेरी नाहीं। ऐसे भ्रम करि आ- ।२८७।
पही वंध्या है। भ्रम गए, सहजही सुखी होय है। और सुनो, जैसे वन्दरकौं पकरनेवारे ने एक तुच्छ मुखका

गाथा—तसकर पय णिप वहणी, दुभखो लोयं पाव गद पंचो। दुठणरपसु यम णिंदो, एं तीयदहभय रहय सुद्धादा ॥ ५१ ॥

अर्थ—तसकर कहिये चोर, पय कहिए जल, णिप कहिए राजा, वहणी कहिए अग्नि, दुभखो कहिए दुर्भिक्ष, लोय कहिए लोक, पाव कहिए पाप, गद कहिए रोग, पंचो कहिए पञ्च, दुठणरपशु कहिए दुष्ट नर-पशु, यम कहिए काल, णिंदो कहिए निंदा, एतीयदहभयरहयसुद्धादा कहिए इन तेरह भय करि रहित शुद्धात्मा होय है।

भावार्थ—शुद्धात्मा कौं चोरका भय नाहीं। सो चोरके अनेक भेद हैं। एक धर्म-चोर एक कर्म चोर सो ही कहिए है जो धर्म स्थान जो देहरे (देवालय), तिन देहरेनकी वस्तु चोरना, भगवानके छत्र, चमर, प्रतिबिम्ब, सिंहासन, भामण्डल, थारी, रकेबी, झारी, झालरि, मजीरा, घंटा, जाजम, चाँदनी, परदादि उपकरण वस्तुनकौं चोरे सो धर्म-चोर कहिए। तथा शास्त्र-चोर, सो शास्त्रजीके बन्धन, पूठाका चोरना, सो धर्मचोर है। तथा कपटाई करि छल तैं धर्म सेवन करै, सो धर्म-चोर है। धर्म स्थान तैं कोऊ गृहस्थकी वस्तु चोरना, सो धर्म-चोर है। तथा कषायके वशीभूत प्रमादी होय धर्म वासना रहित अपना हिरदै करकै, पीछे रुचि रहित किंचित् कोई धर्म अंगका साधन लोकके देखनेकौं करै है। सो धर्म-चोर है। तथा धर्मकी सेवा करि धर्मका सेवक बाजि (कहलाकर) पुजाया लोकमान्य भया। पीछे कोइ पापकर्मके योगतैं धर्म रहित होय उल्टा धर्मका द्वेषी होय। सो धर्म-चोर है। एतो धर्म-चोरके भेद कहे। और कर्म-चोर हैं सो इनके भी अनेक भेद हैं। मुख्य ये हैं- एक तन-चोर, एक धन-चोर और वचन-चोर। तहां जे कोई पराए बेटा-बेटी, पर-स्त्रीकी चोरी कर, परस्थानमें जाय बेचना। तथा हस्ती, घोटक, गाय, महिषादिक पशूनकी चोरीका करना। सो तो तन-चोर कहिए। और पराए घर विषैं ओड़ादेय (फोड़कर) चुराना। मन्दिरन पै छल-बल करि चढ़ि चोरना। पराए धरे धन कौं आप जानि ले आवना, सो ए सर्व भेद धन-चोरके हैं। पराया दिया-धरामाल राखि लेना। जानता ही भोले राखना। इन आदिक अपने छल करि पराया धन चोरै, सो धन-चोर कहिए। और परके छिपे गुप्त वचन होय, ताकी कोई रहसि जानि, ताकौं प्रगट करना, सो वचन-चोर है। तथा मुखतैं असत्यका बोलना, सो वचन-चोर है। इत्यादिक ए कर्म-चोर हैं। ऐसे जे धर्म-चोर और कर्म-चोर, सो कर्म-चोरतैं अनन्तगुणा पाप

धर्म-चोरका है। ऐसे कहे जो अनेक भेद चोर सो ऐसे चोरनका भय, सन्सारी परिग्रहीनकूं है। और अनन्त गुणोंका धारो, अतीन्द्रिय सुख धनके धारी परमात्माकूं, चोरका भय नाहीं ॥ १ ॥ और थोरी दीर्घ मेघकी वर्षाका भय, तथा नदी सरोवर समुद्र कूप वापी आदि जलका भय, सन्सारीक तन धारी जीवनकूं होय है। और शुद्धात्मा, अमूर्तीक अनन्तसुखके धनीकौं, जलका भय भी नाहीं ॥ २ ॥ और राज भय सो राजका भय चोरनकूं, परस्त्री लम्पटन कूं होय, और अन्यायमार्गीनकूं, असत्य वचनीकूं इन आदिक पाखण्डीनकूं राजका भय होय है। और निर्जरण, कर्म रहित, परमेश्वर, शुद्धात्माकूं, राज भय नाहीं ॥ ३ ॥ और अग्निका भय है सो काष्ठ, वस्त्र, तृण, सुवर्ण, चांदी, रतनादि, मनुष्य पशुनके पुद्गलीक शरीर इन आदिक धनधान्यादिक सर्व वस्तु पुद्गल स्कंध है। तिनकूं अग्निका भय है। तथा इन पुद्गल स्कंधन में जिस जीवका ममत्व भाव होय, तिस रागी कूं अग्निका भय है। और अमूर्तीक, ज्ञानपिण्ड, शुद्धात्माकौं अग्निका भय नाहीं ॥ ४ ॥ और अन्न ही है सहकारी जाका, ऐसा जो पुद्गलशरीरका धारी, परिग्रही, बहु कुटुम्बी, मोही, संसारी जीव, दुर्भिक्ष होते कुटुम्ब रक्षा तथा अपने तनकी रक्षाका करनहारा, ताकूं कालका भय हो है। क्यों? यह मोही परिग्रही तन धारी, सो याकौं दुर्भिक्षका भय होय है। और पुद्गल शरीर रहित और कुटुम्बादि जन रहित, वीतराग, मोह रहित, शुद्धात्माकौं दुर्भिक्षका भय नाहीं ॥ ५ ॥ और लौकिकका भय है। सो जे तस्कर होय, द्यूतके रमणहारे होंय पल (मांस) भक्षी होय मदिरा पायी होय, वेश्या घर गमनी होय पर जीवनका घाती होय तथा परस्त्री भोगनहारेकौं इन सप्तव्यसन सहित, पापाचारी, अयोग्य पन्थके चलनहारे जीवनकौं लौकिकका भय होय। तथा क्रोधी, मानी, दगाबाज, महा लोभाचारी, पाखण्डी, ठग, अनाचारी, विश्वासघाती, स्वामी-द्रोही, मित्र द्रोही, इन आदि अनेक कुमार्गीनकूं, लोकका भय होय है। और जगत पूज्य, सर्व बल्लभ कौं, लोकालोक ज्ञाता सर्वज्ञकौं, वीतराग, अमूर्तिक देवकौं, लोकका भय नाहीं ॥ ६ ॥ और सरागी, बहु कुटुम्बी बहु आरंभी, संसारी, रागद्वेष सहित, पापाचारी कं पापका भय है। तिनकूं पाप दुखी करै है। और वीतरागी, जगतका पीर हर, पाप पुण्य संसार मार्ग तातैं रहित कर्म कालिमा वर्जित शुद्धात्मा कूं पापका भय

है सो भी। गणधार कय भत्ती कहिए, रतन की धारा भक्ति करि करै। तो सुरणरखग पूजय कहिए, देव मनुष्य विद्याधर पूजैं ताको विसमय कहिए, कहा विस्मय है। धम्म सेय सिव कज्जे कहिए, मोक्ष-अर्थ धर्म सेवन करि। भावार्थ—भगवान की भक्ति आदि धर्मका फल ऐसा-जो ताके प्रसाद तैं अचेतन आकाश तैं भी रतनकी धाराकी वर्षा होय कैं, धर्मात्मा जीवनकी महिमा प्रगट करै है। सो मानूं धर्मात्मा जीवनकी सेवा ही करै है। इहां प्रश्न-आकाश तो जड़ है। सो भक्ति कैसें करै? रतनधारि तो देव करैं हैं। सो यहां आकाश की भक्ति कैसे भई? ताका समाधान-सो आकाश जड़ तो है। याके भक्ति-भाव वैसे होय, या बात तो प्रमाण है। सर्व जानैं हैं, चेतना नाहीं। परन्तु धर्मका महातम ऐसा है जो आकाशमैं तिष्ठतै पुद्गल-द्रव्य-स्कन्ध, सो रतनादिक रूप परणमि कैं, ताकी वर्षा होनै लगै है। तातैं हे भव्य, जीवन कूँ अतिशय बतानेके निमित्त ऐसा कह्या है। जो आकाश भी धर्म-प्रसाद तैं, रतन-धारा वर्षाय, धर्मात्मा जीवनकी सेवा करैं, तौ चेतन द्रव्य जो देव, चक्री, खग, नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र, कामदेव, महामण्डलेश्वरादि राजा ए; और भवनपति, ज्योतिषपति, व्यन्तरदेव, कल्पवासी, कल्पातीतादि देव ए चेतन पदार्थ धर्मप्रसाद तैं, धर्मात्मा जीवन को, तथा धर्मकी सेवा करैं, तौ अचरज कहा है। करैं ही करैं। ऐसा जानि भव्य जीवन कौं, धर्मकी तथा धर्मी पुरुषन की सेवा-भक्ति करना योग्य है। इति। आगे कहैं हैं जो ऐसे २ पुण्याधिकारी, पदस्थवान, पुरुषनके भोगइन्द्रिय सुख हैं सो विनाशीक हैं। ऐसा दिखावैं हैं—

गाथा—रायधरा महरायो, अधमंडयमण्डे यमहामण्डो। अधचक्की महचक्की, खगसुर देवाण सयल सुह अथिरो ॥ ५२ ॥

अर्थ—राजा, महाराजा, अर्ध मण्डलेश्वर, मण्डलेश्वर, महामण्डलेश्वर, अर्ध चक्री, सकल चक्री, खगेश्वर, देव, इन्द्र इन सर्वके सुख अथिर हैं। भावार्थ—जाके घरमें कोटि ग्राम होय, सो राजा है। सो इस राजाके वांछित भोग ॥ १ ॥ और जाकी ऐसे-ऐसे पांच सौ राजा सेवा करैं-चाकर होंय, सो अधिराज कहिये। ताके सुख देखते ही विनशैं हैं ॥ २ ॥ और एक हजार राजा जाकी चाकरी करैं, सो महाराजा है। ताकी विभूति ॥ ३ ॥ अरु दोय हजार राजा जाकी आज्ञा मानै, सो अर्धमण्डलेश्वर कहिये। तिनकी सम्पदा ॥ ४ ॥ और

चार हजार राजा जाके चरण-कमलकी सेवा करें, सो मण्डलेश्वरनाथ कहिये। इनके भोग ॥ ५ ॥ आठ हजार राजा जाकी आज्ञा मानैं, सो महामण्डलेश्वर कहिये। ताकी सम्पदा ॥ ६ ॥ और जाकी सोलह हजार आर्य- २६०
खण्डके राजा सेवा करें सो तीन खण्डका अधिपति कहिए। ताके भोग ॥ ७ ॥ और बत्तीस हजार देश आर्यखण्डके, तिनके बत्तीस हजार राजा जिसको सेवा करें, सो चक्रवर्ती-षट्खण्डनाथ है। ताके पुण्यका महात्म कछु कहनेमें नहीं आवै। छयानवे हजार तौ देवांगना समानि, महासुन्दर, विनयवान् रानी हैं। नवनिधि व चौदह रतन, इनके दीए अनेक वांछित भोग। जाकी हजारों देव आज्ञा मानै। चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख रथ, इत्यादिका नाथ, मनुष्यनका इन्द्र। ताकी ए ऋद्धि ॥ ८ ॥ और महा मान शिखर पै चढ़्या, महा अतिशय सहित पुण्यका धारी, इत्यादिक पदस्थका धारी पुरुष, अपनी सम्पदा कूं स्थिरो भूत जानि, सदीव सुखसागरमें मगन रह्या चाहै था, सो इनकी सम्पदा देखतैं देखतैं नाश कूं प्राप्त होय गई। जैसे बिजली अल्प उद्योग करि नाशकूं प्राप्त होय है, तैसे ही महा-चपल सम्पदा विनश गई। तथा और विद्याधर महा अतिशयवान् पुण्यके धारी, देवन समानि निवासी वांछित भोगनके निवासी। और च्यारि प्रकारके देव, अद्भुत रसके भोगी महा पराक्रमी। तथा देवनका नाथ जो इन्द्र, जाकी मन अगोचर लक्ष्मी। असंख्यात देवीनिको सराग चेष्टा करि मोहित होय रह्या है चित्त जाका। अनेक मन, वचन, काय के चाहे इन्द्रिय भोग तिनका भोगी देवेन्द्र। ऐसे कहे जो देव मनुष्यनकी सर्वोत्कृष्ट सुख सम्पदा सो सर्व विनासीक स्वप्नसम भ्रम उपजावनहारी जानना। भो भव्य हो! देखो। ऐसी महान् सुख सम्पदा तौ थिर रही नाहीं, तो तेरो तुच्छ पुण्य करि उपारजी, अल्प सम्पदा पराधीन सो ए कैसे स्थिर रहेगी? तातैं ऐसी जानिके तुच्छ स्थिति धारी चपला-विनाशीक सम्पदा तैं ममत्व छोड़िकर मोक्षके सुख अविनाशीक तिनके निमित्त धर्मका सेवन करना योग्य है। ।२६०।
इति आगे ऐसा बतावैं हैं। जो माता पितादि सर्व जन अपने-अपने स्वार्थके बंधन तैं बन्धे हैं—

गाथा—जणक पितामह जणणी, तिय सुन मित्तादि बन्ध पुत्तीए। सामी भिक्खिक दासो, ए सद्दु णिज्ज काज बन्ध बन्धाणी ॥ ५४ ॥

अर्थ—जणक कहिए पिता। पितामह कहिये, पिताका पिता। जणणी कहिये माता। तिय कहिये स्त्री।

सुत कहिए पुत्र। मित्तादि कहिए, मित्र बन्ध कहिये भाई। पुत्तीए कहिये पुत्री। स्वामी कहिये सरदार। भिक्खिक कहिये मँगता। दासो कहिए चाकर। ए सहु कहिए, ये सर्व ही। णिज्ज काज बंध बंधाणो कहिये अपने-अपने कार्य रूपी बन्धन करि बंधे हैं। भावार्थ—जातैं आप उपज्या सो अपना पिता है। सो पिता पुत्रकी बालापनेमें सेवा करै है। नाना प्रकार खान-पान शीत—उष्णतैं रक्षा करै है। सो ऐसा विचारै है जो ए मेरा पुत्र है। यातैं मेरा नाम चलेगा। मेरी वृद्धपनेमें सेवा करेगा। इत्यादि स्वार्थके बन्धनमें बन्ध्या मोह वश होय, नेह उपजाय पुत्रकी रक्षा करै है। और पीछे पुत्र कुपूत होय, अविनयवान् होय तो तातैं स्वारथ नहीं सधता जानि मोह तजै। घरतैं निकास देय, मारि डालै जुदा करै। बटाऊ (साझेदार) हूतैं बुरा लागै। और पिता का पिता पोतेतैं मोह करै है। सो यह जानकर कि ए हमारे पुत्रका पुत्र है। सो मेरा नांती है। यह वड़ा होयगा तब मेरी बृद्ध अवस्थामें सेवा करेगा। ऐसा स्वारथके बन्धन में बन्ध्या, नांती जानि बाबा रक्षा करै। और माताने नव मास उदरमें रक्षा करा जनम भए पीछे मोहके वश ये पुत्रकी रक्षा करै है। सो भरी रातिमें शीतकाल समय मल—मूत्र करै तब आप तो शीत आगे (गोले) में रहे अरु पुत्रको सूखेमें राखै है। सो ऐसा विचारै है जो बड़ा होय कमाय मोकूं खुवाय सुखी करेगा। मेरी आज्ञा मानैगा। ऐसे स्वारथके बंधन तैं बंधी माता पुत्रकी रक्षा करै है। और पति नाना कष्ट पाय द्रव्य पैदा करै सो लायकै स्त्री कूं देय। नानाप्रकार पंचेन्द्री जनित भोग सामग्री मिलाय स्त्रीकूं सुखी करै है। तातैं स्त्री ऐसा जानै है। सो मेरे मनवांच्छित भोगका देनेहारा एक भरतार है। ऐसे स्वारथ तैं बंधी स्त्री भरतारकी सेवा करै है। और कदाचित् भरतार मन्द कुमाऊ होय हीन भागी होय दरिद्री होय अपने सुखका कारण नाहीं होय तो अपने स्वारथ रहित भरतारकौं तजै है। और पुत्र अपने योग्य खान पान असवारी वस्त्रके दाता माता पिताकूं जानकै, पुत्र माता पिताकी सेवा करै है। और ऐसा जाने है। ये माता पिता हमारा जतन करैं हैं। ऐसे स्वारथतैं बन्ध्या पुत्र माता-पिता की सेवा करै है, आज्ञा मानै है। कदाचित् अपना स्वारथ सधता न जानै तो माता पिताकूं तजै है। और मित्र है। सो स्नेह करै है। और ऐसा विचार करै है। जो ये धनवान् है। हुकुमवान है। राज पञ्चनमें इसका

बड़ा चळन है। तातैं यातैं द्रव्यका सहाय काम पड़ैं होय है। तथा खान पान भलो वस्तु वस्त्रादि मिलै है तथा प्रयोजन पड़े कष्टमें सहाय करै है। ऐसे स्वारथके बन्धन तैं बन्ध्या मित्र स्नेह करै है कदाचित् अपना पुण्य घटै हुक्म मिटै धन घटै तो मित्र अपना प्रयोजन सधता न जानि मित्रता तजै है। तातैं मित्र भी स्वारथके बन्धनतैं बन्ध्या स्नेह करै है। और बन्धु जो भाई हैं, सो अपना मनोरथ सधै तबलै सनेह रूप रहैं। प्रयोजन सधता नहीं जानि जुदा होंय। पुत्री है सो अपना प्रयोजन सधै तबलूं माता पितानकी सेवा करै, उपकार मानै। और स्वामीकी आज्ञा प्रमाण सेवक चलै। जबलौं अनेक कारज घरके सुधरे, तबलूं स्वामी कहै मेरा भला सेवक है। और जब आज्ञा न मानै, तौ दूर करै चाकरोसे छुड़ाय देय। तातैं स्वामी भी अपने स्वारथके बन्धनतैं बन्ध्या सेवा करावै है। और भिक्षुक जो जाचक मंगता, ताकी याचना भंग न होय जबलौं अन्न वस्त्र धन पावै तबलौं जश गावै। याचना भंग भयें यश न गावै निन्दा करै। तातैं याचक भी स्वारथके बन्धनतैं बन्ध्या है। और सेवक है सो स्वामीके घरतैं अनेक अन्न धन ग्राम हस्ती घोटकादि सुख सामग्री पावै है। तेते काल सेवक भलीभांति स्वामीकी सेवा करै है। और अपनो प्रयोजन जब नहीं सधै तब सेवा चाकरी तजै तातैं सेवक भी अपने स्वारथके बन्धन तैं बन्ध्या है। इत्यादि कहे जे नाते ते सब अपने २ स्वारथके जानना। बिना स्वारथ संसार प्रयोजनवारे, जीव तैं स्नेह करते नाहीं। ऐसा ही अनादि स्वभाव जगतका जानना। और धर्मरसके पीवनहारे त्यागी ज्ञानी जग तैं उदासीन समता भावी दयाभण्डार परमार्थ मार्गके वेत्ता धर्मस्नेही ये जीव जातैं स्नेह करैं, जाकी रक्षा करैं सो स्वारथ रहित। तातैं धरमी पुरुषनकौं कोई इन्द्रिय जनित स्वारथ न चाहिये। इनका स्वारथ परमार्थ निमित्त है। ऐसा संसारका स्वभाव हो स्वारथ मई जानि, विवेकी हैं तिनकौं अपने स्वारथ साधवे कौं परमार्थ मार्ग चलना योग्य है जातैं परम्पराय मोक्ष होय है। आगे जिन जिन पदार्थनका चपलता रूप सहज ही स्वभाव है, सो मिटता नाहीं। ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—स्वांण पुच्छ अहि गमणो दुठ चित्तो सहल वक्र णहपायो। पीपल दल करि कण्णो सठ मण अक्ख सुह णाह ध्रुव भावो ॥ ५१ ॥

याका अर्थ—स्वांण पुच्छ कहिये कुत्तेकी पूंछ। अहि गमणो कहिये सांपकी चाल। दुठ चित्तो कहिये

दुष्ट जीवका चित्त सहल वक कहिए सहजही वांकका है। गाहपायो कहिये इनके मिटावेका उपाय नाहीं। पीपल दल कहिये पीपलका पात (पत्ता)। करि कणो कहिये हाथीका कान। सठ मण कहिए मूरखका मन। अख सुह कहिए, इन्द्रियोंके सुख। णाह ध्रुव भावो कहिये, ए ध्रुव भाव नाहीं। भावार्थ—कुत्तेकी पूंछ, सहज ही बांकी होय। ताके सीधी करवेकौं, कोऊ उपाय नाहीं। याका सहज ही स्वभाव वैसा है। और सर्पकी चाल स्वभाव ही तैं बांकी है। याभी कोऊ उपाय तैं सीधी होती नाहीं। तैसे ही दुष्ट-जीव-पापाचारीनका चित्त भी, सहज ही बांका-कुटिल है। दगाबाजी कर भरया है। याका भी सहज-स्वभाव है। या दुष्टकी बहुत सेवा करौ, तथा याका विनय करौ, याते नमो, तथा याकौं बहुत धन देऊ, इत्यादिक अनेक उपाय करौ, परन्तु कोई भी उपाय तैं इस अनाचारीका चित्त, सीधा नाहीं होय। यातैं भो भव्य! तू सर्व जगह प्रमाद-रूप रहियो। परन्तु दुष्ट-जीवके संग होतैं, गाफिल-प्रमाद रूप मत होईयो। भो भव्य! काले सर्प तैं क्रीड़ा करते प्रमाद रूप रहै, तो मरण पावै। सो एकही भव दुखी होय। परन्तु तूं या दुष्टके स्नेह-संग पाय, गाफिल रहेगा, प्रमादके वशीभूत होयगा, तो तेरा भव-भव बिगड़ जायगा। महा-दुर्गतिमें पड़ेगा। यहां प्रश्न-जो तुमने कह्या, दुष्टके स्नेह तैं भव-भव दुख उपजे, सो संग कीए ही दुष्ट कैसे भव बिगाड़ेगा? ताका समाधान-जो हे भव्य, तू सुनि। याका उत्तर समझैं—श्रद्धान कीजे, तेरा बहुत भला होयगा। और ज्ञान बधवारी होयगी। भले-बुरे जीवन की परीक्षाका ज्ञान प्रगटैगा। तातै भो धर्मी! चित्त लगायके सुनना। आप काहू तैं द्वेष करै, तो दूसरा भी आपतैं द्वेष करै। सो यह सब संसारी जीवन की रीति है। परन्तु भो भ्रात! दुष्ट ताका नाम है, जो बिना-दोष परतैं द्वेष करै। याही परीक्षा करि तू दुष्ट कूं जानलेना। आपतौ कोई प्रकार तैं द्वेष—भाव नाहीं करै। और जे दुष्ट हैं ते पराया धन, हुकुम, वस्त्र, आभूषण, हस्ती, घोटक, रथ, पालकी आदि असवारी देख, बिना प्रयोजन सहज ही द्वेष भाव करैं। लोकमें काहूका बड़ा यश, गुणी जीवनके मुख तैं सुनि, यह पापी वृथा ही द्वेष करै। तथा कोई को सुमारग लगता देखि, धर्म सेवन करता देखि, द्वेष करै। कहै, ए बड़ा धर्मात्मा भया। हमारे आगे याके बड़े अनेक पाप करते देखे थे। इत्यादिक परकौं सुखी देख,

आप निरंतर दुख करे। परकौं रोग, शोक, चोट लागी देख, परकूं दूखी दरिद्री देखि, आप राजी होय। सो दुष्ट जानना। सो या दुष्ट, जगत निंद्यके संगतैं भला जीव निन्द्य होय, अपयश पावै, अनादर होय। ता अनादर तैं, आत्मा दूखी होय है। तातैं दुष्टका संग मनैं कीया है। और जो तू कही परभवमें दुष्ट दुखदायी कैसे होय? सो भी तू चित्त देय सुनि। जब दुष्ट जनतैं प्रीति होय। तब वह पापाचारी, पाप कार्यनमें रंजायमान करावै है। यह बिना कारण सहज स्वभाव, धर्म तैं द्वेषभाव करनहारा दुराचारी, धर्म भावना रहित, अनेक अभक्षादि भोजन करनहारा, याकौं कोई धरम नाम भला लगता नाहीं। सो पुन्य तैं छटाय, पाप पंथका प्रेरक होय है। जैसे बनैं तैसे, अनेक जुगति देय कैं, हाँसि कौतुकनमैं, इन्द्रिय नित भोगन मैं लगाय, धर्म तैं भृष्ट करि, पाप कार्यनमें तन, मन, धन, वचन तैं अनेक प्रकार सहायक होय है। पाप करावै स्नेही कूं दुर्बुद्धि करि पापबन्ध कराय, परभव बिगाड़ै। तातैं अनेक दुख ए जीव पावै। ऐसा जानना। तातैं भो भव्य तूं याका संग स्नेह, नरक पशूनके दुखका दाता ही जानना। तातैं या दुष्ट जीवका निमित्त सब प्रकार दुखदाई जानि, तजना सुखदाई है। और कदाचित् भो धर्मात्मा! तूं सरल बुद्धि है सो दया भाव करि कभी ऐसा विचारैगा, जो मैं कोई नय दृष्टान्त करि, याकौं धर्म विषैं लगाय, याका भला करूंगा। सो परोपकारी भव्य, तूं ऐसा भ्रम तज देय। याका सुलटना महा आसाध्य नहीं होने जैसी वार्ता जानि। जो कुत्तेकी पूंछ की कुटिलाई मिटै सूधी होय. तो इस दुष्टकी दुष्टता छूटि धर्म रूप होय। तथा सर्पकी चाल वक्रता तजि, सरल होय, तो इस कुबुद्धि कौं धर्म रुचि होय। तातैं जैसे नागकी चाल अरु स्वान की पूंछ, इनकी वक्रता अनादि की, कोई उपाय तैं नहीं मिटै। तैसे ही दुष्टस्वभाव, सहज ही अनाचार रूप होय है। याके धर्म कदाचित भी नहीं होय। तातैं ऐसा जानि, दुष्टका संग स्नेह तजना योग्य है। और तन धनादि सामग्री विनाशीक है। सो इनतैं ममत्व भाव तजना योग्य है। जैसे पीपलका पत्ता, चंचल है। तथा गज कर्ण, चपल है तथा मूरखका मन चपल है। तैसे ही हे भव्य तूं ये जगतके इन्द्रिय जनित सुख चंचल जानना। ए पीपल पात गज कर्ण मूरखका मन सहज ही चपल है। तैसे ही इन्द्रिय जनित सुखन कूं सहज ही विनाशीक जानि

इन तैं ममत्व भाव तजि धर्म विषैं लगना जोग्य है। तूं विवेकी धर्मार्थी है तातैं तोकूं धर्मका उपदेश कहैं हैं। सो तूं सुनि। जो धर्मार्थी हैं तिनका चित्त तो धर्मके उपदेश सुनिनें में लगै है। और मूरख धर्म वासना रहित प्राणी है, तिनका चित्त धर्मोपदेश तैं चंचल होय है, स्थिरी-भूत रहता नाहीं। यह अज्ञान, धर्मके स्वरूपमें समझता नाहीं। इस दूरात्माका उपयोग, विकथा लड़ाई, राज-कथा धन-कथा पर की निन्दा करना इत्यादि पाप स्थानकन में तो निःप्रमाद होय भले-प्रकार मन-वचन काय की एकता सहित या कुबुद्धिका चित्त लागै है। और धर्म-पन्थ-विसरे जीव कौं धर्मोपदेश दीजिये। तब ये धर्म-दरिद्री और विकल्प विचारै धर्मोपदेश नाहीं धारै। तथा धर्म सुनतैं निद्रा आवै सो शयन करै--ऊंघै। और कदाचित् जागै तो दूसरे मनुष्यन तैं जो पासि तिष्ठ्या होय तातैं वार्ता करने लगै। सो आप तो पापी है ही। परन्तु समीप तिष्ठ्या जो जीव ताकौं बातों लगाय वाका धर्म घाति करि वाका परभव बिगाड़ै। तो ऐसे जीव धर्म सन्मुख कैसे होंय? तातैं कुटिलचित्त धारी मायाचारी दुष्ट-जीवन कूं धर्मोपदेश लागता नाहीं। तातैं जे जीव विवेकी हैं तिनकों धर्मोपदेशमें प्रमाद करि चित्त चंचल राखना योग्य नाहीं। आगे जिन--आज्ञा रहित जे अतत्व-श्रद्धानी महा-पंडित भी होंय तो ताके मुखका उपदेश सुनना जोग्य नाहीं। ऐसा कहै हैं—

गाथा—अहिसिरणग उक्कट्ठो, गह्ये पाणांत होय णेमाये। इव मिछि मुह उपदेसो, सधा कुगय देय भवमयणं ॥ ५६ ॥

याका अर्थ—'अहिसिरणग' कहिये, सर्पके शीसपै मणि रत्न है सो। 'उक्कट्ठो' कहिये, उत्कृष्ट है। 'गह्ये पाणांतहोय' कहिए, ता रतन कों ग्रहे प्राणनका नाश होय है। 'णेमाए' कहिये, निश्चय तैं। 'इवमिछिमुह उवदेशो' कहिये, तैसेही मिथ्यादृष्टी जीवनके मुखका उपदेश जानना। 'सधा कुगय देय भवमयणं' कहिये, इनका श्रद्धान कीए कुगतिके अनेक जनम-मरण देय है। भावार्थ—नागके मस्तक पर मणि है, सो महा उत्कृष्ट है। अनेक गुण सहित है। सो ताका लोभ कीये, कोई उस रतनको लीया चाहै। तो लोभ भी नहीं सधै, अरु मरण को पावै। क्यों, जो रतन तो बहुत अच्छा है परन्तु महा बिष-हलाहल भर्या, चपल-बुद्धि, महा क्रोधकषायका धारी भुजंग, काल-रूप, ताके पासि है। सो विषका भर्या सर्प, ताके शिर तैं मणि-रतनका लेना, सो ही मरण

का कारण जान। सो हे भव्य! तैसे कुदेव, कुगुरु, कुधर्म ताका सेवनहारा, जिन-भाषित-धर्म तैं विमुख, महा क्रोध-मानादि कषायरूपी जहर तैं भरया मिथ्यादृष्टी, सो ही भया सर्प, ताके पास भली-विद्या रतन है। परन्तु कदाचित् याके मुख तैं उपदेशरूपी रतनको ग्रह्या चाहै, तथा भला जानि श्रद्धान करै तो कुगति जे नरक-पशु गति, सो तिनके जनम मरणके तीव्र दुख कूं प्राप्त होय है। यहां प्रश्न जो तुमने कह्या सो सत्य, इसकी मिथ्या दृष्टि तो हम भी जानैं हैं। परन्तु हमकूं शास्त्र वांचनेका ज्ञान नाहीं। अरु जिनवाणी सुनवेकी बड़ी अभिलाषा है। तातैं यद्यपि इस मिथ्यादृष्टी कूं शास्त्रका विशेष ज्ञान नाहीं है। परन्तु अनेक संस्कृत, प्राकृत, छंद, गाथा की वाचनकलामें प्रवीण है। वाचनकला भली है, अच्छे स्वर तैं कहै है। अर्थ भी सर्व खोल देय है। कंठ अच्छा है। सो हम याके पास जिन आम्नायके शास्त्र बचाय, ताकैं अर्थका ग्रहण करि, धर्म ध्यानमें काल गमाय पुण्यका संचय करेंगे। यामैं कहा दोष है? ताका समाधान जो हे धर्मानुरागी, तू भी सुनि। ए मिथ्यात्व मूरति, क्रोध मान माया लोभका पोषणहारा, दश वचन जिनवचन अनुसारि कहेगा तो तिनमैं भी दोय वचन मिथ्यात्व पोषक कह जायगा। सो तुमकं विशेषज्ञान तो है नाहीं। जो ताका निर्धार करोगे। सो सामान्यैं ज्ञानके जोगतैं तुम मिथ्या कूं भला जानि श्रद्धान करोगे। अरु मिथ्यावचन श्रद्धान भये तुम्हारा धर्म रतन शुद्ध श्रद्धान ताका अभाव होयगा। संसार भ्रमण होयगा। च्यारि गतिके दुख जनम मरणके भोगवोगे। तातैं मिथ्यातीके मुखका उपदेश योग्य नाहीं। और जो जिन-भाषित तत्वनका वेत्ता होय। सुदेव-वीतराग गुरु-नगन वीतराग धर्म-दयामई ऐसे देव-गुरु-धर्मका दृढ़ श्रद्धान होय। अरु जाकौं वाचनकला अल्प होय तथा ज्ञान जाकैं सामान्य भी होय तो ताकै मुखका धर्मोपदेश ता सुखदाई है। परन्तु मिथ्यादृष्टी अतत्व-श्रद्धानीका धर्मोपदेश भला नाहीं। जैसे कोई दोय पुरुष परदेश-ग्रामान्तर गए। सो तिनमें एक तो शुभाचारी है व एक कुआचारी-भोरा है। सो दोऊ ही रसोई नहीं बना जानैं। जब भोजनकी भूख लागी। तब परस्पर बतलावते भए। जो हे भाई! भूख लागी कहा कीजिये? पैसे तो बहुत हैं पर रसोई करना नाहीं आवे। तब वह भोरा-जीव जो आचारमें नहीं समझै था। सो बोल्या। हे भाई! भूख लागी है तो इस भठियारीके घर तुरन्तका

किया मनवांछित स्वादका देनेहारा भोजन ताजा है। सो या माँगे दाम देय भोजन करौ। तब दूसरे आचारीने कह्या। भो भाई भठियारीके घरका भोजन भला है अनेक रसमय स्वाद सहित है तो कहा भया। परन्तु आचार रहित है। तातैं अयोग्य है। और जातिके सुनैं तो जाति तैं निषेधैं। पांति तैं उठाय देंय। अभक्ष्यके योगतैं परभवमें नरकादि दुख होंय। तातैं हम तो अपने हाथ तैं अथवा अपना जाति भाई होयगा ताके हाथकी कच्ची-पक्की नीरस खाय चारि दिन परदेशके काटि नाखैंगे। और मरण कबूल है, परन्तु भठियारीकी रोटी नहीं खांयगे। ऐसा भठियारीका भला भोजन तजि अपने जाति भाईकी करी कच्ची-पक्की रूखी सूखी अंगीकार करि अपना धर्म राख्या। और जे अज्ञानी आचार रहित होंय भूख मेटवे कूं स्वाद लम्पटी होंय ते भठियारीकी रोटी खाय हैं। परन्तु आगे कूं जातिमें गये याका अनाचार सुन्या जायगा, तब जातिसे निकास्या जायगा। पर-भव दुर्गति में पड़ैगा। तैसे ही भठियारीके भोजन सदृश मिथ्यातीका उपदेश जानि सम्यग्दृष्टी दृढ़ श्रद्धानी कूं तजना जोग्य है। और कोई भोरे ऐसा कहैं—जो शास्त्र तो जिन आम्नायके हैं। सो कोई ही होऊ, वचवायके अर्थ समझ लेंयगे। ते भोरे श्रद्धान रहित शिथिल परणामी नामचार धर्मी, जिन-धर्मका सेवन करि परभव सुख चाहैं हैं। सो ये शिथिल परणामी, अचार भठियारीकी सी रोटी खाय, सुखी हुए हैं। परन्तु परभवमें तौ जिन आज्ञा प्रमाण दृढ़ श्रद्धानका फल होय है। सो याकूं परभव में तो कुगति दुख होंयगे। तातैं हे भव्य, तूं धर्मफलका लोभी है अरु मोक्ष मारगका अभिलाषी है तो मिथ्यादृष्टीके मुखका उपदेश तोकूं श्रोत्र द्वारे भला सुर व भला कण्ठके जोगतैं अच्छा भी लगता होय तो भी सर्पकी मणिवत् भठियारीके भोजनवत् तजना जोग्य है। ऐसा जानना। और केतेक भोरे संसारी चतुर जीव ऐसा श्रद्धान करैं हैं, जो मिथ्याती है तो वह है, अपनेकूं कहा? अपने कूं तो वचवाय लेना। और एक दोय बचन कोई मिथ्यात रूप खोटे कह गया होय, तो वह जाने। वह बलवान् है। सो जिन भाषित अनेक वचनोंमें कोई दोय वचन अतत्वरूप सरधे गये तो कहा होय है? ताका समाधान जो हे भव्य ऐसा विचार तौ महादुखदायी जानना। जैसे भला षट्रस सहित पुष्टिका करणहारा भोजन बनाया और कदाचित् ऐसे उत्कृष्ट भोजनमें थोड़ासा

हलाहल विष डाल दिया होय तो उस ही भले भोजनकों खाए मरण होय। तैसे ही जिन वचन स्वर्ग मोक्ष फलके दाता हैं। तिनके सुनैं जीवका कल्याण होय समभाववधै। ऐसे वचनकौं उपदेशमें कोई पापी आत्मा, कषायरूपी हलाहल-जहर नाखिकैं कथन करै। तो श्रोतानकों दुखदाता होय। ऐसा जानि मिथ्याती बहुत ज्ञानी होय और आप भोरा होयतो अपने मुख तैं पंच परमेष्ठीके नामका जाप करना परन्तु मिथ्यातीके मुखतैं उपदेश नहीं धारना। आगे सर्प हू तैं दुष्ट जीवनकों विशेष बतावै हैं—

गथा—खल अहि क्रूर सुहावो, तिणमहि खल अति कूरता होई ॥ अहिमन्तर उवचारो, दुठ उवचारोयलोयतिय दुलहो ॥ ५७ ॥

याका अर्थ—खल कहिये दुष्ट। अहि कहिए सर्प। कूरसुहावो कहिए इनका क्रूर स्वभाव है। तिणमहि खल अति कूरता होई कहिये तिनमें खलकी क्रूरता बड़ी है। अहिमन्तर उवचारो कहिए सर्पका उपचार तो मंत्र है। दुठ उवचारोयलोयतियदुलहो कहिये दुष्टका उपचार तीन-लोकमें दुर्लभ है। भावार्थ—जो दुष्ट हैं सो पर कौं धर्म-कर्म कार्यनमें निराकुल-सुखी देख विना प्रयोजन दुखी होय हैं। ऐसा जो दुष्ट सो पर कौं दुखी देखि आप हर्ष मानता होय। सो एक तो यह। और दूसरा सर्प। ए दोउ महा क्रूर स्वभावी हैं। परन्तु इनमें दुष्ट-जनकी क्रूरता विशेष जानना। काहे तैं सो कहिये हैं—जो महा विषका भर्या काल-रूप सर्प ताके खाये नाहीं बचै। कर्म जोग तैं बचै नाहीं तो मरै ही है। ऐसे भयानक सर्पकी पूंछ तैं पॉव लागै तो यह सर्प काटै। सो याका विष दूर करबेका अनेक मन्त्रादिक इलाज है। परन्तु विना ही कारण द्वेष रूपी विषका भर्या दुष्टात्मा याकी क्रूरता मैटै कौं कोई तीन लोक विषैं उपाय दीखता नाहीं। तातैं भो भव्य! सर्पकी क्रूरता तैं इस दुष्टकी क्रूरता अधिक जानना। तातैं अपने विवेकबल तैं ऐसे दुष्टनको परखकैं इन सके तैं बचना बहुत सुखकारी है। जो कुसंगति तैं बचि सत्संग मिलाय अपना भला करना है सो मनुष्य पर्यायके विवेकका येही उत्तम फल है। आगे सज्जन-दुर्जनका स्वभाव बताईये है—

गाथा—मक्षक जौंक पणंगा, दुठादि चतुक होय दुखदायो। ईख दंड कणक सुभगरा सयणादि चतुक होव सुहगेयो ॥ ५८ ॥

याका अर्थ—मक्षक कहिए, माखी। जौंक कहिये, जल-जोंक। पणंगा कहिये, सर्प। दुठादि चतुक होय

दुख दायो कहिये, दुष्टजनकों आदि लेय च्यारौं दुखदाई हैं। ईख दण्ड कहिये, सांटा (गन्ना)। कणक कहिये, सोना। सुअगरा कहिये, शुभ अगर-चंदन। सयणादि चतुक होय सुहगेयो कहिए, सज्जन पुरुषको आदि च्यारों सुखदाई जानना। भावार्थ—माखी, जोंक, सर्प अरु दुष्ट-नर ए च्यारि परजीवनकों दुखदाई कहे सा ही कहिये हैं—जो माखी, पराये भोजन-जलमें पतन होय मरण करि पीछे अन्न-जल लेने वाले कूं दुखी कर। सो देखो, इस माखी की दुष्टता। जो पहिले तो आप मरि, पीछे और कूं दुखी करै। और जलकी जौंकका ऐसा ही सहज स्वभाव है। जो दूधका भरा आँचल पर लगावैं तो दूध कूं तजि, लोहू कूं अंगोकार करै है। सर्पका ऐसा स्वभाव है जो ताकौं दुग्ध पिवाइये, तो जहर होय। सो प्यावनेवाला बहुत दिन पयन्त सर्पको दुग्ध प्याय पुष्ट करै। परन्तु कदाचित् प्यावनेहारा गाफिल रहेगा, तो ताही कूं खायगा। और ऐसे ही दुष्ठ-प्राणी पै अनेक उपकार करि, ताकी रत्ता करि, पालि, पुष्ट करौ। परन्तु यह दुष्ट-जन, सर्व उपकार भूलि कैं उल्टा उपकार-करता तैं द्वेष-भाव ही करै है। यह अपने स्वभाव ताकौं न तजै। जैसे माखी आप मरकर, परकौं खेद उपजावै। ऐसे ही दुष्ट-जन आप मरकर, औरकौं दुख उपजावैं। सो ही कहिये है—जैसे कोऊ दुष्ठ-अज्ञानी, काहू तैं कषाय-भाव करि विचारता भया, जो याके घरमें धन बहुत है। सो मैं याके शिर कूप-बावड़ी-नदी विषै, डूबि मरौं। तथा विष-खाय मरौं, तथा छूरी-कटारी खाय मरौं, तौ राज्य याका सर्व-धन खोंसि लेयलूटि लेय। पंच याकौं, जाति तैं निकासैं। तव याका जगतमें मानभंग होय महा-दुखी होय। सो देखो, माखी-समान दुष्टका ज्ञान, जो आप मर करके परकौं दुखी कीया चाहै। सो दुष्ट तो माखी समान जानि। और कोई दुष्ट जौंकके समानि चित्तके धारी होय हैं। जैसे जौंक, गुण जो दुग्ध ताहि तजि, औगुण जो लोहू, ताकूं ग्रहै है। तैंसे कोई दुष्टन पै चाहै जेता उपकार करौ। वह सर्व कूं भूलि, पीछे औगुण ही ग्रहण करि, उल्टा द्वेष-भाव ही स्वीकार करै है। जैसे श्वान कूं कोई चाहै जैसा उपकार करो। भोजन देय, अनेक आभूषण पहिरावो। तथा पालकीमें बैठावो। चाहै-जैसा लाड़ करौ। परन्तु यह अज्ञानी श्वान जब हाथ तैं छूटेगा तब घूरेमें ही जाय और कुत्तेनमें जाय तिष्ठैगा। और भले आभूषण, पालकीके गुण नाहीं

विचारै है । तैसे दुष्ट भी कभी किए उपकार रूपी आभूषण, तिन सबको भूलि आप सरीखे दुष्ट-नीच पुरुषनका संग करि, दुख ही उपजावैगा । तथा सर्प कूं बहुत काल तांई दूध प्याय, पुष्ट करि, अनेक प्रकार प्रतिपालना करौ । परन्तु इस सर्पकी रक्षा करनहारा कदाचित् प्रमाद सहित होय, सर्प कूं अपना पाल्या जानि; वातैं गाफिल रहेगा, तो यह पापी विषका भरया सर्प, याकौं खायगा । पालनहारेका मारनहारा होयगा । याकैं ऐसा विचार नाहीं जों याने तौ मोहि दूध प्याय पाल्या है । यह पापी अपना स्वभाव नाहीं तजै । तैसे ही दुष्ट जीव पर अनेक उपकार करौ । परन्तु जाका नाम दुष्ट है सो अपना स्वभाव नाहीं तजैगा । यह उपकारी का द्वेषी ही होयगा । ऐसे कहे जो माखी, जौंक, सर्प, दुष्ट-जन ये चारी सब कूं दुखदाई जानना । और सांठे (गन्ने) कूं जेता पेलोगे ज्यों २ चिसिटोगे, तो भी त्यों २ मिष्टता ही देयगा । और कनक कूं जेता अग्नि तपाओगे-जारोगे तेता ही नरम होय, निरमल-निर्दोष होयगा । तैसे भला शिष्य-विद्यार्थी लौकीक गुरु जो विद्या पढायवेवारा ताकी मार खाय उपकार मानै । ऐसा विचारै जो यह शिक्षा-दायक गुरु मो पै ऐसा उपकार करै है । जो अपने परणाम संक्लेश करि मोकौं उत्तम धन जो विद्या देय है । तातैं यह धन्य है । ऐसा जानि लौकीक गुरु तैं भला-शिष्य प्रसन्न ही होय है । सो ये शिष्य कनक समानि जानना । और अगर-चन्दन ताकौं जेता छेदो तेती ही सुगन्ध देय है । जेता घिसो तोड़ो जालो पर चन्दन उत्तम है सो त्यों-त्यों भली सुगन्धि देय है । तैसे ही सज्जन पुरुषनकौं भी कोई पापी दुर्वचनादिसें उपद्रव करै दुख देय तो धर्मात्मा-पुरुष द्वेष नाहीं करैं । जैसे राजा श्रेणिकका पुत्र-वारिषेण महा धर्मात्मा सज्जन-स्वभावी सो ए राजपुत्र पर्वके दिन उपवास करि रात्रि-समय मसान-भूमिमें सर्व जीवन तैं क्षमाभाव किए कायोत्सर्ग-मेरुकी नांई धीर-चित्त किए धर्मध्यान रूप तिष्ठै था । सो चोर नै भयतैं चोरीका हार इनके पासि डारि गया । सो चोर तो भाग गया । अरु पीछै कुतवाल आया । सो हार देख्या व राजपुत्र देख्या । सो याने जानी ये ही चोर है । सो बिना समझै, कुतवालने राजा तैं कही । हे नाथ ! वारिषेणने चोरी करी । तब राजा श्रेणिक भी न्याय मारगके वश, कछु न विचारता भया । राजा नै मारनेकी आज्ञा दई । तब कुतवाल मसानमें जाय वारिषेण

प्रै मारिवे कूं खड़ग चलाया। तब कुमारके पुण्य प्रभाव तैं शस्त्र था, सो फूल माला भई। देवोंने आय सहाय किया। जब ये अतिशय ऐसा हुआ। तब मुनि कैं राजा श्रेणिक, पुत्र पै गया। क्षमा कराय कही पुत्र घर चालो। तब वारिषेणने कही हमारा सबतैं क्षमा भाव है। हमारे प्रतिज्ञा थी कि उपद्रव मिटै दीक्षाका शरण है। सो अब उपसर्ग गया तब दीक्षा लई। कोई राजा तैं व कुतवाल तैं सुबुद्धि कुमारने द्वेष भाव नाहीं किया। सो सज्जन पुरुषनका सहजही ऐसा स्वभाव है जो परकी अज्ञान चेष्टा नहीं देखैं अपने सज्जन भाव ही की रक्षा करैं। तातैं ईख-दण्ड कनक अगर चंदन और सज्जन-पुरुष ये च्यार पदार्थ सब जीवनकूं सुखदाई हैं। ऐसा जानना। तातैं जे विवेकी हैं तिनकूं क्रूरता तजि, सज्जनता अंगीकार करना जोग्य है। इति श्रीसुदृष्टि-तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, हेय-उपादेय स्वरूप वर्णनो नाम इकईसवां पर्व सम्पूर्ण भया ॥ २१ ॥

आगे ऐसा कहैं हैं जो मूरखको धर्मोपदेश कार्यकारी नाहीं—

गाथा—अन्धपैदीपणकज्जो, वधरोरागस्स हीजतियसंगो। पतिगतनारिसिंगारो, जोसठ्यासेयधम्म विणकज्जो ॥ ५६ ॥

अर्थ—अन्धे पै दीपक है, सो कार्यकारी नाहीं। बहरे पर राग (गाना) कार्य-कारी नाहीं। अरु हीजरे (नपुंसक) कौं स्त्रीका संग वृथा है। पति रहित स्त्रीकूं, शृंगार कार्यकारी नाहीं। तैसे ही मूरखनकूं धर्मकी कथा कार्यकारी नहीं। भावार्थ—अन्धे पै पञ्चवरन रतनके प्रकाश कार्यकारी नाहीं। तथा अनेक रंग विरंग स्वर्ण व रतननके चित्राम शुभाकार अन्धे पै वृथा हैं। तथा अनेक दीपकनकी माला जो दीप माला सो भी प्रकाश अन्धे पै वृथा है। तैसै ही अज्ञानी मूरख पै धर्मोपदेश धर्म कथा वृथा है। और बहरै पै अनेक सुस्वर कंठ सहित मधुर स्वरको लीए अनेक रागका गावना। सुन्दर वीणा बांसुरी वाजादि अनेक वादित्रनके सुर। ये सब गाना वजावना बहरे पै वृथा है। तैसे ही मूरखके पासि धर्म कथा वृथा है। और नपुंसकके पास सुन्दर स्त्रीका मिलाप वृथा है। तैसे ही मूर्ख पै धर्म-कथा करना वृथा है। और पति बिना जो विधवा स्त्री सो शृंगार करि कौन कौं दिखावे? भरतार तौ है नाहीं। और पर-पुरुष कौं अपना सिंगार दिखावे तौ कुशीलका दोष लागै। तातैं स्त्रीका सिंगार भरतारके आश्रय ही, उसे शोभायमान करै है। भरतार बिना विधवा

स्त्रीका अनेक शृंगार बृथा है। तैसेही मूरख पासि धर्म कथा बृथा है। कैसा है मूरख,जो ज्ञान नेत्र रहित अन्ध सामानि है। ये जिन वचन परभव सुख देनेहारे, तिनके सुननेकूं बधरे समानि, कुकथा का अभिलाषी, क्रोधाग्नि करि भस्म भया है हृदय जाका, अरु तूने प्रश्न कीया, सो प्रमाण है। जो उपदेश है सो भोरेकूं ही है। परन्तु मूरख भोरे दोय प्रकार हैं। एक स्वभाव ही तैं उपज्या तब तैं कछू समझता नाहीं। ऐसा भोरा, पुण्य पापमें समझता नाहीं। काहूके धर्म भावतैं द्वेष नाहीं। आगे कबहूं धर्मका उपदेश मिल्या नाहीं। ऐसें भोरे जीवन कूं तौ क्रोध-मानादि कषाय भी दीर्घ अंश सहित नाहीं। अनादि सहज (स्वभाव) की मूर्खता लिए है। ऐसे भोरे जीव सरल भाव सहित कौं तो जिन-आज्ञामें धर्मोपदेश कह्या है। ऐसा भोरा उपदेश जोग्य है। और ये जीव धर्मोपदेश स्वीकार करि अपना भला भी करैं हैं। तातैं ये उपदेश-योग्य हैं। और एक मूरख जानता-पूछता ही क्रोध, मान माया लोभके वशीभूत होय; धर्मका भला उपदेश नाहीं अंगीकार करै है। ऐसेकूं धर्मोपदेश नाहीं। काहे तैं सो कहिये है। जो कोई धर्मी जीवतैं प्रथम तो स्नेह था। सो वाके निमित्त पाय धर्मका सेवन विषैं लगा रह्या-धर्म सेवन कीया कर्या। और जब उस धर्मात्मा तैं कोई कारण पाय स्नेह टूटि गया तब यानैं उस धर्मात्मातैं द्वेष-भावके जोग तैं, व्यसना सक्त होय धर्म सेवन तजिदिया। और मूरखका संग पाय,कुमार्गी भया। अब याकूं धर्मोपदेश कठिन होय गया। अब याके कठोर हृदय विषैं कोमल बचन परै नाहीं। तब और कोई पापी जन कोई धर्मात्माका द्वेषी था, सो यापै जाय अनेक सेवा चाकरी खुसामद करि ताकौं मित्र समानि करि पीछे वातैं कही। जो ये धर्मात्मा है सो हमारा द्वेषी है। तातैं तुम हमरे हितू हो, कृपा करौ हो सो या धर्मी तैं स्नेह-सत्कार तजौ। हम तो आपके सेवक हैं। मान-कषायके जोग तैं औरकूं नाहीं देखे है, और कदाचित् देखे तो तुच्छ देखे है। जैसे महा अन्ध तौ कोई पदार्थ देखता नाहीं। और अल्प अन्ध होय है सो परके बड़े पदार्थन कौं छोटे देखे। तैसे मूरख जानना। तथा महा मायावी, बांसकी जड़की लाठी समानि है गांठ-गठीला कुल हृदय जाका। तथा हिरण सलानि चंचल वकचित्तका धारो तथा नाग-गमन समानि हृदयका: धारो, दुराचारी, मूर्खता सहित ऐसा मायावी, दगावाज होय। तथा

महालोभी मार्जार (बिल्ली) समानि आमिष (मांस) भक्षी तथा विषभरे (छिपकली) समानि आमिष
श्रीसु० लोभ धारक तथा मधुमाखी समानि लोभका धारी ऐसे क्रोधी-मानी मायावी व लोभी, शान्ति रस भाव जो
२०३। समता भाव ताकरि रहित सप्त व्यसनी और अनेक दोषन सहित ताका निवास इत्यादि औगुणनका धारी, त०
भले गुण रहित सत पुरुषनकी निन्दा करनहारा सत्संगीनकी सभामैं अनादर जोग्य ऐसा महा मूरख, ताके पासि धर्म कथा करना वृथा है। तातैं महा पण्डित विवेकी जन जो सम्यग्दृष्टीके धारी हैं सो मूर्खन कूं धर्म का उपदेश नाहीं देय हैं। यहां प्रश्न—जो तुमने यहां कह्या कि मूरखन कूं उपदेश देना जोग्य नाहीं। सो संसारमें पण्डित तो थोड़े दीखें हैं। और भोरे मूरख जीव बहुत देखिए है। सो उपदेश बिना मूर्खका भला कैसे होय ? और समझै को कहा उपदेश है ? वह तौ सब जानै। अरु उपदेश तो असमझ-मूर्ख-भोरे ही कूं है। सो जोग्य है। यहां भोरे कूं उपदेश मनै कैसे कीया ? ताका समाधान भो भव्य, जो इत्यादिक कपट वचन कहे। तब वा मूरख नैं वा मूर्खके कहे तैं, शुद्ध-धर्मात्मा तैं द्वेष भाव करि, आप भी हठी भया। अरु कुमारग सेवन करता भया। जब उस धर्मात्मा कौं देखे, तब ही द्वेष-भाव रूप भाव होजांय। सो इनका सत्संग छूटिगया। तथा जो संग भया, ताकरि हृदय कठोर भया। अनाचार भला लागनैं लागा। तातैं यह भी जानता-पूंछता पापी-मूरखके कहे तैं, शुद्ध धर्म छोड़ कुमारग लागा। उल्टा धर्म तैं तथा धर्मी-जीवन तैं द्वेष-भाव करि, पाप-रूप प्रवृत्त्यां। ऐसी कहने लगा, जो हमारा होना है सो होय है। ऐसी जातिका भोरा-मूख होय सो अपने हिताहितमें तो नाहीं समझै और कषाय तीव्र होंय ऐसे कूं धर्मोपदेश नाहीं है। वाहीकी काल-स्थिति पकि जाय, संसार निकट रहि जाय, तब सहज ही कषाय मंद होय जाय। सत्संगमें आय, अपनी भूलि मानि, अपनी-अज्ञानताको निंद्य, प्रायश्चित्त लेय, शुद्ध होय, धर्म सेवन करै तो करै। बाकी ऐसा मूरख, उपदेश तैं नाहीं सुलटै है। तातैं ऐसे क्रोधी कौं धर्मोपदेश मनै कीया है। और आप मानी है,
सो धर्म स्थानहै जाय कैं, देव-गुरु-धर्म कौं नमस्कार करता, चित्तमैं लज्जा उपजावै। और कोऊ धर्मात्मा, समता २०४
भाव सहित, ताकौं देखि, ताकूं सामान्य जानि, विनय-भाव नाहीं करै। तो आप कौं विशेष पुण्यात्मा जानि,

धर्मात्मा जीवनके अविनय रूप प्रवृत्तैं। ऐसे दोरय मानी-मूरख कूं, धर्मोपदेश नहीं होय। तथा आप कैं तो काहू तैं मान-भाव नाहीं। आप तौ सुजीव है। परन्तु कोई महापापी मानका निमित्त पाय कैं, सुधर्म तैं तथा धर्मी जीवन तैं, द्वेष-भाव करै। परके कहैं, धर्मका तथा धर्मी-जीवनका अविनय करै। ऐसे भोरे-मूरखन कूं धर्मोपदेशनाहीं। कोई मायावी-दगावाजी, जीव, जो जानतेही भोरे जीवनकौं वहकावेकौं तथा ठगवैकौं, देव-धर्म-गुरुका स्वरूप और ही रूप कहै है। नय-जुगति देय कैं, कुदेव-कुगुरु-कुधर्मका अतिशय प्रगटावता, लोगन को ठगै। ऐसे मायावी तथा अनेक उपाय करि अपना महन्तपना दिखाय, तिन भोरे जीवन कूं अपने पांयन नमावै। कोई जुगति तैं, उनका धर्म लिया चाहे। ऐसे दगावाज प्राणीको धर्मोपदेश नाहीं। और केई महा-लोभी, मायाचारी, मनोवांच्छित इन्द्रिय-जनित सुखकी इच्छा के धारनेहारे, गज-घोटिक-पालकी-रथादिकी असवारीके वांच्छन हारे, जिनका पुण्य तौ कम-हीन पुन्यी, कमावे-पैदा करवेकी तो जिन्हैं शक्ति नाहीं और भोगोपभोगकी दीर्घ तृष्णा सो अपने ज्ञानके वल तैं भोरे जीवन कूं अपने वड़त्व-भावका चमत्कार वताय, अपना त्यागी-निष्प्रहपना वताय, पराए, घोटक-रथादि असवारीका लोभी। पराये धनका इच्छुक-लोभी, इन कौं सुधर्मका उपदेश नाहीं। क्योंकि ऐसे भोगी, पाखण्डी, मायाके जोग तैं इन्द्रिय-भोगके भोगनहारे इनकौं धर्म रुचै नाहीं। और सुधर्म रुचै, तो याके भोग-भाव, लोभादि सर्व हीअवश्यहीछूटि जांय। सो यो महा-कषायी, भोगी, मानी, इन्द्रिय सुख भोग्या चाहे। सो ऐसे जानते-पूछते धर्म-रहित मूरख कौं धर्मोपदेश मनै है। और भोरे सरल मूरखन कौं धर्मोपदेश लागै। ऐसा जानना ये तेरे प्रश्नका उत्तर है। या भांति मूरख दोय भेद कहे। जैसे रोगी जीव दोय प्रकार है। सो महारोगी, और असाध्य वेदनाके धारी। एक देशान्तरी वैद्य आया सो वानै दोऊ रोगी देखै। सो उनकी नाड़ी-परीक्षा करि, सव शुभाशुभ जानि कही, ये रोगी तो इलाज जोग्य है। अरु ये रोगी असाध्य है, याका इलाज नाहीं। तव काहूने कह्या, जो याका इलाज काहे तैं नाहीं? तव वैद्यने कही। एक रोगीका आयु-कर्म बड़ा है। और एकका आयु-कर्म अल्प है, सो मरेगा। याका जतन नाहीं। याके ऊपर जितने जतन करौ, सब वृथा जांय, जतन लागै नाहीं।

सब जीवन पर दया भाव करि सबही की रक्षा करना योग्य है। और जे कसाई हैं सो अपने प्रयोजन पोखवे कूं असवारी कूं केऊ दूध पीवे कूं, केऊ भार लादवेकूं केई लड़ाई देखवे कूं इत्यादिक अपना विषय पोषवे निमित्त स्वारथकौं पशु पाल रक्षा करैं। वंधनमें राखें। सो ऐसा पालना तो पापकारी है, जोग्य नाहीं है। और जिनकूं निरबंध राखि स्वच्छंद उनकी इच्छा प्रमाण दया भावन करि राखै। तिनकूं दीन असहाय दुखी जानि रक्षा करै। सो या बात धर्मात्माको योग्य ही है। भले प्रकार दया धर्म अंगका पालक तो एक जैनीही है। औरन कूं दया उपजती नाहीं। तातैं दया निमित्त यथा योग्य सर्व पशूनकी रक्षामें पुण्य हो है, दोष नाहीं। ऐसा जानना। तथा खेतीके करते धरती फाड़ते प्रत्यक्ष पंचेन्द्रिय आदि जीवनकी हिंसा होती अपने नेत्रन तैं देखिये है। परन्तु खेती वारी पांवतैं दाबि चल्या जाय ताकौं करुणा भाव नाहीं होय। तातैं जैनी दयावान्कूं खेती करना योग्य नाहीं। खेतीमें दया नाहीं। और खेटक करनहारा शिकारी जीव सो प्रत्यक्ष निर्दई है। जे दीन पशु महा भयवान् है सदैव हृदय जिनका बनके विषैं कोईके पांवनका तनिक भी खटका सुनैं हैं तो चौंकि उठैं हैं। महा भयवंत होय इत-उत देखने लागैं हैं। और कोई जीव आवता देखैं तो भयवान् होय बनमें भागि जांय हैं। मारे भयके बस्तीमें कपहूं नाहीं आवैं हैं। सदीव उद्यानमें ही रहैं हैं। सूखे तृण खाय, अपने तनकी तथा अपने कुटुम्ब की रक्षा करैं हैं। भयके मारे काहूके खेत में नाहीं घुसैं हैं। दूर तैं वस्त्रादिकका खेतमें विजुकादि देखि, नर वैठा जानि, भागि जांय, ऐसे अज्ञानी हैं। भोरे हैं। वन—तृणका भोग करि, नदी-तलावनका जल पीवैं है। महाभय तैं, महा कठिन तैं जीवैं है। तिनका काहू तैं द्वेष नाहीं। काहूका विगाड़ करैं नाहीं। ऐसे बिचारे असहाय--दीन पशु, तिनकूं जे प्राणी हतैं हैं। ऐसे पाप करते जिनका हृदय नाहीं कंपै है। ते प्राणी पापाचारी, महाकठोर, वज्र समान चित्तके धारी हैं। ऐसे दया रहित जीव, कैसे दुख सागरमें जाय मगन होंयगे, सो हम नहीं जानैं, सर्वज्ञ-भगवान् जानैं। ये खेटक-किसव दया रहित है, सो दयावान् जीवके तजवे योग्य है। तथा जे राजा हैं तिनका चित्त भी बहुत कठिन होय है। राज्यके निमित्त तैं अनेक युद्ध करना। नर हतन, ग्रामादि दाहके पाप करतैं, उन्हें दया नाहीं होय

तैसे ही जाका परभव भला होय, ऐसे सहजका भोरा-मूरख तो उपदेशके जोग्य है। याकौं धर्मोपदेश लागै भी है। और जिसकी परभवमें बुरी-गति होय, वह जानता भी कषाय-जोग तैं, सुधर्म तैं विमुख होय। ऐसे जीवन कूं धर्मका उपदेश, सुहावता नाहीं। तातैं धर्मोपदेश लागता नाहीं। यहां बहुरि प्रश्न-जो तुमनै कह्या कि धर्मका उपदेश कोई कौं तो है, कोई कूं नाहीं। सो भगवानका उपदेश तौ सर्व कूं चाहिये। और कोऊ कूं होय, कोऊ कूं नाहीं, तो इसमैं वीतरागता कहां रही? सरागता आवेगी। ताका समाधान-जो हे भव्य तूनै कही सो सत्य है। परन्तु अब तूं चित्त देय सुनि। जैसे जगत विषैं वैद्य दोय प्रकार होय हैं। एक तौ भोरा अरु मानी वैद्य होय है। एक परमार्थी, सरल परिणामी अरु विशेष ज्ञानी। ये दोय जातिके वैद्य हैं। सो कोई भोरा-वैद्य शास्त्र-ज्ञान तैं रहित, नाड़ी-परीक्षा, दृष्टि परीक्षा मूत्र-परीचा, पसेव-परीक्षा, शकुन-परीक्षा इन आदिक जे वैद्यके गुण, तिन रहित मूरख वैद्य होय। सो तो लोभके वशि तथा मान-बड़ाईके अर्थ अपनी महन्तता भोरे जीवनको बतायवे कौं, अजान वैद्य औषधि देय जतन करै। सो केतेक रोगी, दीर्घायुके धारी, सो तो कोई अपने पुण्य तैं बचे है। रोग कुछ दिन दुख देय, आखिर जाता रहै। सो वह भोरे-रोगीने जानो, या वैद्यने मोहि भला किया है। सो इस वैद्यका जश कीया, धन दीया। और जो अल्प आयुका धारी रोगी था सो जतन करते औषधि देय तैं ही मर गया। सो इस रोगीके पर-वारे इस वैद्यकी बहुत निन्दा करैं। जगह-जगहमें वैद्यकी निन्दा करते भये। सो जीवना-मरना तो कर्मके आधीन है। वैद्यका कछू सहारा नाहीं। परन्तु या वैद्यकी इतनी अज्ञानता है। जो बिना-विचार परीचा-रहित इलाज करै है। तातैं वृथा जगतमें निन्दा करावे। सो तो ये मूरख-वैद्य कहावैं हैं। और जे विवेकी वैद्य हैं। सो अनेक वैद्यक शास्त्रोंके ज्ञान सहित नाड़ी-परीक्षा मूत्र-परीक्ष दृष्टि-परीक्षा पसेव-परीक्षा शकुन-परीक्षाके ज्ञान सहित होंय। सो नाड़ी-परीक्षा तो हस्तकी पांवकी शीशकी छाती की नसें देख शुभाशुभ रोगका कहना सो नाड़ी-परीक्षा है। और मूत्रकी वर्ण स्पर्श गन्ध छींटादि लक्षण देख शरीरके रोगनका शुभाशुभ जानना सो मूत्र-परीचा है। और रोगीके नेत्र व शरीर की दशा देखि दृष्टि ही तैं रोगीका शुभाशुभ जानना सो दृष्टि-परीचा कहिए और रोगीके शरीरके

है । तातैं राजा पै भी दया नहीं पलै। और वैद्य हैं सो औषधिके निमित्त अनेक वनस्पति कटावैं । अनेक की छाल उपड़ावैं । अनेक वनस्पति की जड़ खूदवावैं । अनेक कंदमूल-साधारण वनस्पतिका रस कढ़ावना, पिसवाना, इत्यादिक वड़ी हिंसा करते भी ताका चित्त दया भाव रूप नहीं होय है । तथा आली (गीली) वनस्पति की लकड़ी जलाय, बहुत दिन अग्निका आरम्भ करते भी, चित्तमें दया भाव नाहीं होय है । तातैं वैद्यका किसब, दयावान् नाहीं करैं । और छीपा, ताकें अनगाले जलसे धोवना, बिलोवना, उकालना. वड़ी अग्निका आरम्भ करना, इत्यादिक आरम्भ मैं याके भाव, दया रूप नाहीं होंय । तातैं छीपा पैं भी दया नाहीं पलै । धोबीके किसबमें भी अनेक अनगाले जलका मथन, सर्व दिन अनगाले जलका बिलोवना, अनेक हिंसा का समूह, छीपाकी नाईं आरम्भका किसब है सो दया रहित है। यातैं यह भी किसब, दयावान् नाहीं करैं । और रथवाहक जो गाड़ी-रथके हांकनेहारे कूं, वैल कूं मारते, दया नहीं आवे। तातैं यह किसबमें दया नाहीं बन रक्षक जो माली, बागकी रक्षाका करनहारा, सदैव खेतीहारे की नाईं हिंसा-आरम्भ रूप है तातैं मालीके किसब वारे पै भी दया नाहीं पलै । और मांस-भक्षी जो आमिषका खानेहारा, महाग्लांनि उपजावनहारा, ऐसे मांसाहारी पै दया नाहीं पलै । ऐसे कहे जे सर्व किसबके करनेहारे, इन पै करुणा नाहीं पलै । इनसे, सहज ही ऐसा कठोर स्वभावी जीव होय है । तातैं दयावान् हैं तिनकौं कहे जो दया रहित किसब तिनमें फँसना योग्य नाहीं । तिन किसब वारेमें भी वाणिज्यके निमित्त, लोभ करि फँसना योग्य नाहीं, ऐसा जानना । आगे ऐसा कहैं हैं कि कृपणादिकका धन ये कृपण नहीं भोगवैं हैं—

गाथा—संचय पिपील धाणो, माखिक संचय मधुमुखलक्ष्यो । किप्पण संचय लच्छी, एण भुञ्जय अपणभुंजयती ॥ ६० ॥

अर्थ—संचय पिपील धाणो कहिये, चींटीका धान्य संचयना । माखिक संचय मधु मुख लक्ष्यो कहिए, माखी अपनी लार जो शहद ताकूं संचै है। किप्पण संचय लच्छी कहिये, सूमका जोड़्या धन । एण भुञ्ज-यती कहिए ताकौं ये नाहीं भोगवैं हैं, और ही भोगैं हैं । भावार्थ—बनकी रहने हारी चींटीका समूह है । सो तिननैं बड़ा खेद खाय-खाय एक-एक अन्नका मुखमें बन तैं ल्याय-ल्याय इकट्ठा कस्या। सो आप

कौं तो भोगने की शक्ति नाहीं सा भोग सकी नाहीं अरु वृथा मोहके मारे, लोभ करि, अन्नका संग्रह करया। सो बहुत दिन इकट्ठा करते पांच-च्यारि सेर इकट्ठा भया। तब कोइ पापी, अन्यायी निर्दई अन्नके भूखे, लोभी, निर्धन, भीलादिकने आय चींटीनका घर जानि, तिननैं बिलकी धारा खोदि, अन्न लिया। सो हे भव्य हो, देखो। इन चींटीनका लोभ-स्वभाव जगतमें प्रगट, सब जानै थे। जो चींटी अन्न जोड़ि इकट्ठा करैं हैं। ता संचयके निमित्त तैं कोई दुष्ट प्राणी, पराये मालके खानेहारे ने, घरकौं फोड़्या। सो घरका नाश भया और घरके क्षय तैं, चींटीनके तनका नाश भया, अन्न गया। सो ये प्रगट देखो। येते दुख, अन्न संचयतैं भये। जो आप खाय लेती, तो दुख नाहीं होता। तातैं जे विवेकी हैं तिनकौं अपने कुमाये धन कौं, अपने हाथ तैं भोग लेना योग्य है। और माखीनका समूह वनस्पतिका रस अपने मुखमें ल्याय उदरमें खाया पीछे अज्ञानता करि, मोहके मारे, लोभ धारी मुखकी राह होय उदरका खाया रस हुलक करि पीछे काढ़्या आप भूखी रह उसे संचय कीया। सो चोरनके भय तैं आकाश विषैं जाय, एकान्त जगह छत्त बान्धा। अपने ज्ञान प्रमाण, बहु यत्न तैं बड़ा विषम स्थान देखि, छत्ता करि तामैं जुदा घर बनाय, सर्व माखीन ने अपना-अपना रस, भेला किया। जब बहुत दिननमें सर्वके घर, रस तैं भरि गये। इकट्ठा बहुत भया। तब कोई पापीजन-लोभीके नजर छत्ता आया। याने जानीं, यामैं बहुत मधु है। सो लेनेका उपाय किया। सो जायगा महा विषम, उतंग देखि, दाव नहीं देख्या। तब लोभीने नीचे आग जलाई। बहुत धूम करी। सो धूमके निमित्त पाय, दुखी, होय, सब माखी उड़ गईं। तब वाने छत्ता बांससे तोड़ि लिया। माखी थान भ्रष्ट भईं। दुखी होय, दशोंदिशामें भ्रमती भईं। सो देखो, इननैं लोभ करि भूखी ही रह कैं, पेटका उगला काढ़ि इकट्ठा करि जोड़्या था, ताके योग तैं दुखी भयी। जोड़्या रस गया। जो खाय लेतीं, तो खेद नहीं होता। सो देखो, माखीने तो लोभ कीया जो उलाकको संच्या। परन्तु जगमें ऐसे-ऐसे लोभी-दरिद्री पड़े हैं। सो माखीका उलाक भी नहीं देखि सकें। सर्व लीया। तो ऐसा लोभी, मनुष्यनका उलाक कैसे छोड़े ? ऐसे लोभी-बुद्धिकों धिक्कार होऊ। तातैं जो लोभी धन पायकें, धर्ममें लगाय, नाहीं भोगवेगा, सो माखीन की नांई ।२१०।

दुख पावैगा जो सूम जन हैं सो भी चींटी की नांई माल जोड़ि २ खेद खाय तो इकट्ठा कीया। सो मूरखनै नाहीं तो आप खाया, नाहीं और कूं दीया, नाहीं धर्ममें लगाया, नाहीं कुटुम्ब कूं खुवाया। आप भूखा रह, तुच्छ खाय मोटा वस्त्र पहिर दीन वृत्ति धारि माल जोड़्या। बहुत भय भये धरतीमें धर्‌या। जब आप मुवा तो धरतीका धरतीमें रह्या। तथा जीवित रह्या तो याकौं धनवान जानि राजाने कोई दोष लगाय लूटि लिया या लोभीने पूर्व पुण्य तैं पाया था। सो यानैं धर्म-कर्मका फल कछू नाहीं पाया। तातैं भो भव्य हो पापीका धन धर्ममें नाहीं लागै बृथा ही जाय। सो ये चींटी माखी सूम इनका पैदा कीया धन ए नाहीं भोगवैं हैं और हो भोगवैं हैं। तातैं विवेकी हैं तिनकौं पाया धन तैं धर्म उपार्जना योग्य है। अब येते जीव दया-रहित हैं सो ही कहिये हैं—

गाथा—सवर खटी चिंयालो, मदवेचा मदपाणकर यू तो। तस सठ कुलहीणो, दुठचित्तो यरहय करणाये ॥ ६१ ॥

अर्थ—सवर कहिए, भील। चिंयालो कहिये, चाण्डाल। खटी कहिये, खटीक। मदवेचा कहिए, कलार। मदपाणकर कहिये, मद पीनेवाला। यू तो कहिए, जुवारी। तसयर कहिये, चोर। सठ कहिये, अज्ञान। कुलहीणो कहिए, कुलहीन। दुठचित्तोय कहिये, दुष्ट परणामी। रहय करणाये कहिए, ये सर्व दया करि रहित हैं। भावार्थ—बनचर-बनका रहनेहारा पशु, ता समानि अज्ञान, नाहर समानि हिंसक, ऐसा जो भीलका हृदय, सो सहजही दयारहित-कठोर होय है। यातैं दया नहीं बनै। तथा मृत पशूनका चरम उतारै, घर ल्यावै, धोवै, पकावै, रंगै, बेचै सो खटीक। याका भी चित्त महा अनाचार रूप, वज्रपरणामी, यातैं दया नाहीं पलै। और जाकैं सदीव जीवनकी हिंसा करि, जीवनका मांस बेचवेका किसब है, सो चाण्डाल है। सो ये भी महा निर्दई है। यातैं भो दया-भाव नहीं पलै। और मद बेचा कहिए कलाल, दारूका बेचनहारा। अनेक जीवनकी घाति करि, मद करै। अनेक क्रिमि, पानीमें किलबिला उठैं। उनकौं उछलती देखै, तब उस जल कूं यंत्रमें डालि, दारू करते, ताकौं दया नहीं होय। तातैं ये भी दया नहीं पालै। और मदका पीवनहारा, बेसुध-दया रहित है। और चोर, जे पर धनका हरनहारा, महा निर्दई, तातैं भी दया नाहीं बनै। और जो शुभाशुभ विचार रहित,

जन्मका अज्ञानी, खादि-अखादिके ज्ञान रहित, पुण्य-पाप भावना रहित, भोरे जीव, यातैं भी दया नहीं पलै। काहे तैं जो दया तो, पुण्य—पापमें समझे, ज्ञानवान् होय, तातें सधै है। सो ये ज्ञान रहित है, यातैं दया नाहीं वनै। और कुलहीन होय, तातैं भी दया नाहीं वनै। जो ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय इन तीन कुलके उपजे, ऊंच कुली हैं, इनतैं दया वनै है। और आगे कह आए भील, चाण्डालादिक नीच-कुलके जीव, तिनतैं दया-भाव नहीं वनै। और जाका चित्त नरम होय, सज्जन-स्वभावी होय, सबके भलेका वांच्छिक होय, इत्यादि उत्तम गुण जाकैं होंय। तातैं दयाभाव पलैं है। और जे दुष्ट परणामी, वहुतका वुरा वांच्छनेहारे जीवन तैं दया नहीं पलैं। तातैं ऊपरके कहे किसव तिन सवतैं दया, भाव नहीं वनै। ते मनुष्य दया रहित हैं। सो विवेकीन कौं, इनका सङ्ग करना योग्य नाहीं। तथा दया रहित हैं, तिनके साथ लेन—देन, विस्वास भी योग्य नाहीं। इनके सङ्ग तैं, वणिज तैं, विश्वास तैं, कुवुद्धि होय। अपने परणाम निर्दई होंय। हिंसा कैसा दोष लागै। वातैं नरकादिक दुख होय। यहां प्रश्न?जो तुमनैं कही कि ऊंच कुलीन तैं दया होय,नीच कुलीन तैं नहीं सधै। सो संसारमें तो देखिये है जो घने ऊंच कुलीन हिंसक, जीव घातक, अनाचार रूप भावादि सहित, निर्दई, हैं। और केई नीच कुली, अपने योग्य ज्ञान-प्रमाण सुमार्गी—दयावान् दीखैं हैं। यहां नियम तो नाहीं भया। ताका समाधान—हे भव्य, तैंने कही सो प्रमाण है। परन्तु जैसे कोई रतनकी खानि है। तामैं रतन निकसैं हैं। ताके सङ्ग अनेक अन्य पाषाण भी निकसैं हैं। परन्तु खानि रतनकी ही कहिये। और कोई हीन पुण्य तें पाषाणादि निकसै, तो निकसौ। नियम नाहीं है। तैसे ही ऊंच कुलीनमें दयावान् ही उपजैं हैं। और कोई पूर्व जाका बिगड़ना होय, ऐसे पापाचारी जीव ऊंच कुलमें हीन-पुण्यी निर्दई होय, तो नियम नाहीं। रतन खानिमें पाषाणवत् जानना। और जैसे पाषाणकी खानिमें खोदतै, कोई रतन निकसै तो निकसौ परन्तु वहुतता करि खान,पाषाणकी है। तैसे नीचकुलीनमें पूर्व-पुण्यके जोग तैं, कोई धर्मात्मा-दयावान् होय, तो नियम नाहीं। जैसे पाषाण खानितैं रतन उपजना जानना। किन्तु वहुतता, हीन कुलनमें दया रहितकी ही है, ऐसा जानना। तातैं नीच कुलनमें दयावान् भी होय हैं। और ऊंच कुलमें निरदई भी होय हैं। यामें नि-

यम नाहीं। संसारकी अनेक दशा हैं। तातैं विवेकीन कूं, दया-रहित जीवनका निमित्त छोड़ि, दया-भाव रहना योग्य है। आगे कहैं हैं जो सन्तोषी आत्मा, अपने निर्धनपने तथा दरिद्र आएमें, ऐसी भावना भावै है। सो कहिए है—

गाथा—दालय तवयपसायो, मम सिद्धो भवय अमुत्त सहु लोय। मम सहु लोय पसन्ती,लोए आदाय णाहि मम जोई॥ ६२॥

अर्थ—दालय तवय पसायो कहिए दारिद्र तेरे प्रसाद तैं। मम सिद्धो भवय अमुत्त सहु लोय कहिये, मैं सिद्ध समानि सर्व लोकमें अमूर्ति समाया। मम सहु लोय पसन्ती कहिये मैं, तो सर्व लोककूं देखूं हूं। लोए आदाय णाहि मम जोई कहिये लोकके आत्मा मोकौं कोई भी नहीं देखैं हैं। भावार्थ—जे धर्मात्मा समता-रसके पीवनहारे सो दारिद्रके उदयतैं ऐसा विचार करि खेद मिटाय सुखी होय हैं। भो दारिद्र तूने बड़ा उपकार किया। जो तेरे प्रसादतैं मैं सिद्ध समानि अमूर्ति भया संसारमें रहों हों। सो मैं तो सर्व जगत-जीवन कौं शुभाशुभ चरित्र करते निर खेद देखूं हौं। मौकौं जगतके जीव कोऊ नहीं देखैं हैं। जैसे अमूर्ति सिद्ध तो सर्व लोक जीवनकौं देखैं हैं। और लोकके जीव सिद्धन कूं कोऊ ही नहीं देखैं। सो ऐसी दशा सिद्ध समानि हमारी भी भई। सो ये तेरा उपकार है। अब मैं सन्तोषके सहाय तैं, निराकुल-सुखी भया तिष्ठूं हूं। ऐसे दारिद्रको आशीष वचन कहैं हैं, सो जानना॥ ६२॥

आगे ऐसा कहैं हैं जो धर्म सेवतैं जीवनकी अभिलाषा च्यार प्रकार है—

गाथा—धम्मो चतुपयारो चातुरता लोय रज्ज लोभाये। पम्मथ्थो सिव मग्गो सेसा संसार सायणो मगणो॥६३॥

अर्थ—धम्मा चतुपयारो कहिये धर्म सेवन च्यार प्रकारका है। चातुरता कहिये चतुरताई कूं। लोय रज्ज कहिए लोकके राजी करवे कौं लोभाए कहिए लोभकूं। पम्मथ्थो सिवमग्गो कहिये परन्तु परमार्थीक धर्म मोक्ष मारग है। सेसा संसार सायणा मगणो कहिये, बाकी जो धर्म हैं सो संसार सागरमें डुबोनेवाले हैं। भावार्थ—धर्म सेवन जगत जीव करैं हैं तिनके अभिप्राय च्यारि प्रकार जुदे २ हैं। कोई जीव तो चतुराईके अभिलाषी हैं। जो लोक हमको ऐसा कहैं कि ये काव्य छन्द गाथा पाठ पद बिन्ती जानैं हैं। भला चतुर है।

यह जैसी सभामें जाय तैसीही बात कर जानै है। धर्मकी भी भली २ बात कथा चर्चा पद विनती पाठ जानै है। हमकूं लोक धरमी कहें चतुर विवेकी कहें ऐसी अभिलाषा सहित धर्मका साधन करना। सो चतुरताके हेतु धर्मका सेवन करै है। इनकौं मोक्ष वांछा नाहीं। और केतेक जीव परके रञ्जायवे कौं धर्मात्मा कहायवे कूं धर्मका साधन करैं हैं। जैसैं और जीव राजी होय तैसें करैं। सो परके रंजायवेकौं भले स्वर तैं मधुर कण्ठ तैं काव्य गाथा कवित्त पद विनती महाराग धरि तालवन्ध गाय औरकों खुसी करवेकौं नाना गान पाठादि करैं। जो ये सर्व सभाजन राजी होंय हमकौं भले कहैं। ऐसा जीव लोक रञ्जायवेका अभिलाषी है। सो ऐसा जीव जेते तप संयम ध्यान पठन करै है सो सर्व लोकनके रञ्जायवेकूं करै है। केतेक जीवनका ऐसा अभिप्राय है। और आत्माके कल्याणका स्थान जो मोक्ष सो ये मोक्ष भावना रहित हैं। केतेक संसारमें धर्म क्रिया करनेहारे मनुष्य ऐसे भी जानना। और कोई लोभ अभिलाषी धर्मका साधन लोभकूं करैं हैं। पंचेन्द्रिय सुखकी सामग्री धर्म सेवनके जोगतैं मिलती जानि धर्म सेवन करैं हैं सो लोभी वारीक वस्त्र तथा दुशाला रेशमी रोमी आदि अनेक भारी वस्त्रके स्पर्शकी है इच्छा जिसकैं सो स्पर्शन इन्द्रिय पोषवेकूं धर्मका सेवन करि भोरे जीवनकूं अपना धर्मीपना बताय उनका धन खरचाय वड़े भारी मोलके वस्त्र अपने तन पै राखै। दश दिन पहिरकरि पीछे अपना जस करावने कूं याचकन कूं दे डारे। अपना यश अपने आगे कान तैं सुनि राजी होय। ऐसा भोरा प्राणी जो पराया धन खरचाय अपना जश गावैं। अपने चतुराईके जोगतैं लोकनका भारी धन खरचाय भारी वस्त्र पहिर लेना सो स्पर्शन इन्द्रिय पोषनेके निमित्त धर्मका साधन करै है। और केतेक रसना इन्द्रिय पोषवे कूं धर्म सेवन करैं जानै हम भला तप करेंगे तो भक्तजन भला भोजन देंयगे। सो औरनकूं अपना धर्मात्मापना बतायवे कौं धर्मका अंग जप तप आदिक प्रगट करि नानाप्रकार षट्रस भोजनके लोभ कौं धर्मका सेवन करैं हैं। सो केतेक जीव ऐसे रसना इन्द्रिय पोषने कं धर्म सेवनेहारे हैं। और केतेक नाना सुगंध की इच्छाके लोभी केशनमें तेल फुलेल इतरादि सुगंध मंगाय लगावना। तन पै व वस्त्रमें लगाय खुशी रहना। सो सुगंध (घ्राण) इन्द्रियके पोषने कौं धर्म सेवन करैं हैं। केई प्राणी ऐसे ही

हैं। और चक्षु इन्द्रियके लोभी चक्षुके विषय पोषने कौं नृत्य करैं हैं। तथा औरन पै नृत्य कराय देखवेके इच्छुक भले रूपवान् पुरुष स्त्रीनका रूप देखवै कौं धर्मका सेवन करैं हैं। तथा अन्य भोरे जीवनकूं ठगि तिनका धन लगाय अनेक चित्रामादि रचना। कांचके मन्दिर करवाय तिनमैं रहके देखि-देखि हर्ष-सहित तिष्ठवे की है अभिलाषा जिनकौं सो केई ए चक्षु इन्द्रियके भोग कूं धर्मका सेवन करैं हैं। और केईक श्रोत्र इन्द्रियके भोगी; अनेक राग आप करि जानैं है। तथा औरके मुखतैं अनेक राग वादित्र सुनवे की है इच्छा जिनकैं इत्यादिक कान इन्द्रिय पोषवेकूं धर्मका सेवन करैं हैं। ऐसे स्पर्शन रसना घ्राण चक्षु श्रोत्र इन पांच इन्द्रिय पोषवेकौं धर्म सेवन करै है। और केतेक धन इकट्ठा करवेकूं धनके लोभी धर्म-सेवन करैं हैं; वनैं जैसे धन पैदा करना। सो आप तो अनेक उपवास करैं। तपस्वीका रूप धरि औरन पै द्रव्यकी आज्ञा करि तिनका धन लेय आप सञ्चय करैं। नानाप्रकार बडे विधानादि पूजा करनी। करनेहारे पै धन लेना। ऐसा ही उपदेश देना जातैं भोरे जीवनके घरका धन अपने घरमें आवै। और लोभके पोषवे कौं धनवानका आदर करना। अरु निरधन धर्मात्मा पुरुषका निरादर। इत्यादिक लोभके अनेक भेद हैं। सो केतेक जीव ऐसे हैं जो लोभके निमित्त धर्मका सेवन करै हैं। और केतेक धर्मात्मा सम्यकदृष्टी जगत उदासी परमारथ जो मोक्ष सो ऐसे परम अर्थके निमित्त धर्म सेवन करैं हैं। सो अनेक नय विचार समता वधावना धर्मात्मा जीवनतैं स्नेह करना वांच्छा रहित तप करना इत्यादि कार्य करैं हैं। यहां प्रश्न—जो यहां कह्या कि वांच्छा-रहित तप करैं। सो वांच्छा रहित तप कैसे होय? तप करैं हैं सो सुखकी वांच्छाकूं करैं हैं। वांच्छा बिना तो फल रहित तप भया। याकी महिमा कहा भयी? ताका समाधान—जो धर्मात्मा दृढ़ सम्यक्के धारी हैं ते इन्द्रिय जनित सुखके निमित्त तप नाहीं करैं हैं। मोक्षाभिलाषीनकैं तप है सो मोक्ष निमित्त हैं सो स्वर्गादिक इन्द्रिय जनित सुख तौ सहजही होय है। जो तप मोक्ष करै तातैं स्वर्ग तो बिना—वांच्छाके होय। जैसे खेतीका करनहारा धरतीमें अन्न बोवे है सो वाका अभिप्राय ऐसा नाहीं जो मेरे खेतमें घास होउ। वाका मन तो अन्न वांच्छै है। परन्तु जानै अन्न बोया ताके घास तो बिना वाच्छाके होय तातैं जाने तपरूपी अन्नका बीज

धर्म—धरामें वोया है। सो मोक्षकी अभिलापाके निमित्त है। सो स्वर्गादि घासकी नाईं सहज ही होय। यहां फेरि प्रश्न—जो मोक्षकी वांच्छा तैं तप किया सो भी वांच्छा: भई। निरवांच्छापना तो नहीं रह्या। यामें भी वांच्छा भई। ताका समाधान जेसे कोई पुरुष धन कुमावे। सो एक पुरुष तो ऐसा विचार करे। जो धन वहुत कुमाइये तो व्याह कीजे घर वढ़े वेटा वेटी होय गृहस्थपना भला लागै। विना स्त्री घर वढ़ता नाहीं। ऐसा जानि धन कुमावे है अरु कोई पुरुष धन कुमावे है सो ऐसा विचारै है। जो वहुत सा धन होय तो वेश्याकूं देय वांच्छित भोग भोगिये। जो व्याह कर्या चाहै है सो तो गृहस्थपनेका घर वांधि सुखी भया चाहै है। सो यो विचारा तो दोष रहित है। क्यों? जो गृहस्थी ताका ही नाम है। जो घर वांधि स्त्री परणि वेटी-वेटा आदि कुटुम्ब तें सदेव सुखी होय। और दूसरा वेश्यावारेका विचार अज्ञानता सहित है। जो धनका धन खोवना, अरु वेश्याके किञ्चित् सुख भोग पाप कमावना। सो ए जीव भोरा है। तेसे जो जीव तप करि मोक्ष चाहै है। सो तो ध्रुव (नित्य) सुखका अभिलाषी मोक्ष-स्त्री परणि सिद्ध पदमें घर वांधि अनन्तकाल सुखी भया चाहै है। सो ऐसे तो योग्य ही है। याकौं वांच्छा नहीं कहिए। ये घर वांधि ध्रुव रहना है। और जे तपरूपी धनतैं वेश्या समानि चञ्चल देवादिकके सुख चाहें ते विवेकी नाहीं ऐसा जानना। तामें भी ये विशेष कि जो परभवके इन्द्रिय जनित वांच्छित सुखके निमित्त धर्म सेवें सो धरमो और इसी भव सम्बन्धी धन पुत्र स्त्री रोग नाशादिक कूं धर्म सेवें सो पापी हैं। ऐसा जानना। तातैं सम्यग्दृष्टीका तप इन्द्रिय सुख अपेक्षा निरवांछि है। और जिन-आज्ञा प्रमाण देव-धर्मका सेवना मोक्ष-मार्ग के निमित्त धर्मका सेवना दया पूर्वक यत्नतैं तप संयम पूजा दानादिक धर्मके अंगनका सेवना सो पारमार्थिक धर्म-सेवन है। ऐसे च्यारि ही प्रकार भिन्न २ धर्म सेवनेवाले जीवनका अभिप्राय जानना। तिनमें पारमार्थिक धर्म सेवन है सो तो मोक्ष मार्ग है। और वाकीके धर्म सेवनके भाव है सो अल्प सुख देयकै संसार समुद्र में नाखैं (डालैं) हैं। तातैं ऐसे भले-बुरे धर्मकी परीक्षा करि धर्म सेवन करना सो कषाय सहित इन्द्रिय-सुख की वांच्छा करनेहारे ऐसे कुगतिदाई कुधर्म भाव तजि परमार्थिक धर्म-सेवन करना योग्य है। आगे शास्त्र छंद काव्य गीतके जोड़नेहारे कवीश्वरनका जो अभिप्राय है सो ही कहिये है—

गाथा—धम्मी धम्म फल हेतव, जाचिक उदराय अधम्म लोभादी। परजणाय भंडय, णलजय हासि, जोड वकताए ॥ ६४ ॥

अर्थ—धर्मी तो धर्म–फल हेतु, जाचिक उदर भरवेके हेतु अधर्मी लोभके हेतु भांड़ परके रञ्जायवेके हेतु, निलज्ज हांसी—कौतुकके हेतु जोड़के वक्ता होय है। भावार्थ—जोड़ कलाका ज्ञान अनेक जीवन कैं होय। श्रुतज्ञानावरणीके क्षयोपशम करि अनेक भले—भले पण्डित होय हैं सो अनेक शास्त्र जोड़े हैं। कोई अनेक छन्द काव्य, गाथा जोड़ैं हैं। कोई पद—बिन्ती जोड़ैं हैं। केई गीत किस्सा कहानी जोड़े हैं। इत्यादिक अनेक जोड़कलाके ज्ञान सहित प्राणी पाइये हैं। परन्तु इन जोड़ कला करतेमें परणति-अभिलाषा जुदी २ हैं। अरु जुदी २ अभिलाषा होते तिन जोड़-कलाके ज्ञानका फल भी जुदा-जुदा पावैं हैं। जोड़-कला करते अंतरंग जैसी अभिलाषा होय है तैसा ही फल होय है। सोही कहिए है। कोई धर्मात्मा जीवनकौं तो श्रुतज्ञानकी अभिलाषा है। सो तो शास्त्रके छन्द गाथा काव्य पद बिन्ती जोड़ैं हैं। सो धर्मके फलको इच्छाकूं लिये परभव स्वर्ग—मोक्षादि सुखकी वांच्छा सहित हैं। अन्तरंगके श्रद्धानकौं लिये जोड़कला करैं हैं। सो इस ज्ञानका फल धर्म मोकूं ही उपजो ऐसी वांच्छा लिये शस्त्रादि जोड़ें हैं। कोई तो ऐसे हैं सो इन्हें धर्मातमा जानना। और केई जाचिक-जीवन कैं श्रुतज्ञान की विशेष बढ़ती है। सो ए जाचिक छन्द काव्य गीत इनकी जोड़-कला करैं। सो इनका अन्तरंग उदर भरवेका है। जो हम कोई राजादि बड़े पुरुषका यश करैं तो ग्राम गज घोटिक धन मिले। ताकरि सर्व कुटुम्बकी प्रतिपालना होय। फलाना राजा यशका लोभी यश चाहे है। अरु चित्तका उदार है। ऐसे पुरुषका यश करै तो बहुत दिनकी आजीविका मिले। सो जांचकि उस राजाके राजी करवें कौं अनेक छंद गीत कवित्त काव्य श्लोक बनावै। सो अपनी बुद्धिके जोगतैं जोड़-कला करै। तामैं दीरघ अर्थ छन्द महा सरल अक्षर महा ललित व्यञ्जनोंका सुन्दर मिलाप इत्यादिक अन्तरंग अभिप्राय सहित ज्ञान तैं जोड़-कला करै। सो जाचिक जानना अर केई जीव भला ज्ञान पाय बुद्धिका प्रकाश पाय जोड़-कवित्त करैं। छन्द व गीत बनावें। सो जोड़-कला करतैं उनके ऐसे अन्तरंगका अभिप्राय होय। जो हममें बड़ा ज्ञान है सो कोई ग्रन्थादि काव्य छन्द बनाइये

तो जगमें पण्डितपना प्रगट होय जश होय। ऐसा जानि केई तो जशके लोभकौं जोड़-कला करैं। केई अज्ञानी इन्द्रिय-सुख भोगवेकौं जोड़-कला करें हैं ते पापी जानना और केई भांड़नमें तीक्ष्ण श्रुतज्ञान होय है। सो भाड़ भी जोड़-कला करे हैं। सो ऐसी अनोखी नकलैं जोड़ैं। ऐसी बात बनाय ठाढ़ी करैं। कि ताकी जोड़-कला देखो अनेक मनुष्य राजी होंय हंसैं प्रसन्न होंय। भांड़की तारीफ करैं। ऐसी नकलैं अपनी बुद्धि तैं ज्ञानके जोग तैं जोड़िके औरनकौं प्रसन्न करैं। सो परके रञ्जायवे कौं गीत काव्य गाथा छन्द कथादिक जोड़ैं सो भांड़ कहिये। भांड़का अभिप्राय जोड़-कला करते परके रञ्जायवे रूप होय है। और केई निर्लज्जी जीवनकौं भी ज्ञानकी बढ़वारी होय है। सो ए निर्लज्ज पुरुष जोड़-कला करैं। सो याकी जोड-कला हांसी-कौतुकके निमित्त है। जैसे काहु जीवन तैं होरीके भंडउवा जोरे। तथा काहू निर्लज्ज स्त्रीने बडा ज्ञान पाय पापनी नैं गावेके निमित्त गाली-गीत, बनाये, ताका गावना। सो श्रोता ताकी जोड़ि-कला सुनि कैं, विकारी-जीव लज्जा रहित हाँसि-कौतुक रूप प्रवृत्तैं। ऐसी जोड़—कलाके ज्ञान-धारी जीव होंय, सो निर्लज्ज कहिए। ऐसे पञ्च प्रकार जोड़--कला करनेके मुखिया हैं। तिनमें जे सुबुद्ध पुरुष हैं सो बुद्धिपाय, धर्म-फलके इच्छुक होय, धर्म मई, दया सहित, पुण्य—दायक जोड़ कला करैं हैं। सो तो धर्म—मूर्ती सत-पुरुषनके प्रसंशवे योग्य हैं और बाकीके च्यारि जातिके कवीश्वर हैं सो पाप-बंध करनहारे हैं। ऐसे श्रुतज्ञान सहित खोटे कवीश्वर होंय हैं सो तजिवे योग्य हैं। आचार्य कहैं हैं कि संसार भ्रमतैं अनन्ते—भव अज्ञानताके होय हैं। तब एक भव विशेष श्रुतज्ञान सहित विवेक चतुराई सहित ज्ञानका मिलै है। सो ऐसा उत्तम ज्ञान कौं पायकें यह जीव कुकाव्य करि वृथा खोवैं हैं। ये सर्व जाति जोड़—कला है। सो तो हीन ज्ञानीन तैं नहीं होय है। जे जीव विशेष ज्ञानी होंय महा चतुर होंय अनेक नय—विवेकके ज्ञाता होंय तीक्ष्ण ज्ञानधारी होंय तिनतैं जोड़ि-कला होय। सो ऐसे तीक्ष्ण ज्ञानका धारी उत्तम बुद्धि भूले तौ यह बड़ा आश्चर्य है। अहो भव्य तुच्छसा इन्द्रिय सुख अरु अज्ञानी-जीवनके मुखकी प्रशंसाके निमित्त, ऐसा उत्कृष्ट ज्ञान, वृथा करै है। सो हम कहा उलाहिना देहिं ? तैंने वैसी करी, जैसे कोई बंदर कूं रतन—कंचनके आभूषण पहराय, मोतीकी माला ताके उरमें डारि,

मस्तक पै रतन-जड़ित मुकुट धारि, अनेक वस्त्र पहराहि, शोभायमान किया और अनेक मेवा ल्याय, ताके आगे खायवे कूं धरै। ऐसेमें कोई बनका बन्दरने, नीमकी निवोरी दिखाई। कही, ये बनका भोजन लेऊ। अरु सैन तैं, कहता भया। जो हे मित्र, आप बन्दीमें कहां बैठे हो ? ऐसे यह बन्दर, अज्ञानी बन्दरके स्नेहतैं अरु निवोरीके लोभ तैं, अपने शिरका रतन-मुकुट फैंकि, मोतीनकी माला व वस्त्र डारि, उत्तम भोजन-मेवा तजि कैं, बनमें जाय। सो इस बन्दरकी भूल कहां ताईं कहिए ? तैसे, बन्दरकी नाईं भूले जो पण्डित, ताकौं कहां कहिए। ये विनाशीक-भोगके अर्थि तथा लोक-प्रशंसा कूं अपना भला ज्ञान, मलीन करैं हैं। ये जोड़ि-कला करिवेका उत्तम ज्ञान पाय, ताके भेदको नहीं जानता, पापको उपावै। सो इस बातका बड़ा आश्चर्य है। इस भूलकी कहा कहिये ? जैसे एक कटईया, लकड़ी काटवे कौं बनमें गया। वानै एक चिन्तामणि रतन पाया। ताकूं याने उठाय लिया। ताकौं देखि विचारा, कि कोंऊ रंगदार पाषाणकी गोली है। अच्छी दीखै है। याकूं घर ले चलूं। यातैं लड़का खेला करेगा। ऐसो जानि या मूरख नैं परख्या बिना, चिन्तामणि रत्नको लेय कैं, अपनी फटी लँगोटी ताकी गांठि बांध्या। फेरि बनमें लकड़ी काटने लगा। सो काठके भारको बाँधि, अपने शीश पै धरि, बन कौं तजि, घरको आवैं है। सिर पै भार है। सो धिक्कार इस अज्ञानता कौं। जो चिन्तामणि तो पूंछली तैं बंध्या है, सो तो पासि है। और शीश पै काट-भार है। ऐसे ही सर्व भार तैं राह दुखी भया, घर आया। शामको गुदरीमें काठ-भार बैंचने गया। सो भूखा ही, दरिद्री भया खड़ा है। चिन्तामणि पास है, परन्तु भेद पाये बिना, दुखी होय रह्या है। पीछे दोई पैसा कों भार बैंच, घर आया। तब पैसा स्त्रीके हाथ दये। कही, इनका अन्न ल्याव। आठ कौड़ीका तेल ल्याव। ताके उद्योतमें रोटी करि देना। सो पहर भर रात्रि गई तक, सब घरके मनुष्य भूखे मरे, अरु चिन्तामणि पासि है। परन्तु बिना भेद पाये, सुख नाहीं। भूखा काठ बेचनहारा कही, सिताब(शीघ्र) रोटी करि। पीछे पूंछली तैं चिन्तामणि खोलि, स्त्री कूं दिया। अरु कही, ये गोली अच्छी है। आज बनमें पाई। सो लड़के कौं खेलने कौं दीज्यो। ऐसे कह कैं पूछली तैं चिन्तामणि खोलि, स्त्रीके हाथि दिया। सो खोल तैं ही अन्धेरे घरमें प्रकाश होय गया। ता प्रकाशि कौं देखि, अभागे-

अज्ञान ने कही। भो स्त्री, यह पथरा भला। याके प्रकाश तैं रोटी किया करि। आठ कौड़ीके तेलकी किफायत भई। सो एक आलेमें चिन्तामणि धरि दिया। अब याके उद्योत तैं, रोजिके रोजि रोटी किया करै। सो देखो, कर्म चरित्र। जो चिन्तामणि तो घरमें है, अरु दुख-दरिद्र नहीं गया! ताको भेद नहीं पाया। याका भेद पायेबिना, बहुत दिन लूं काठका भार बह्या, दुख पाया। अरु ऐसा सुखमानै, जो इस पथराकी गोली तैं आठ कौड़ीका रोजि तेल आवै था, सो बच्या। याके प्रकाश आगे, तेल नहीं चाहिये। तैसे ही ये कुकवि, चिन्तामणिरतन समानि उत्तम जोड़ि-कलाका श्रुतज्ञान, ताकूं कठेरेके आठ कौड़ीके तेलि समानि, विषय-सुखके निमित्त वृथा कठेरेके रतनकी नाईं खोवैं हैं। तातैं इन कुकवियोंका ज्ञान रूपी चिन्तामणि रतन है सो इसका भेद पाये विना, पथराको गोली समानि जानना। इन कुकवीन नैं इस ज्ञानका भेद नहीं पाया। कैसा है यह ज्ञान, मनवांछित सुखका देनेहारा है। ताकौं पायकैं, ज्ञानकी मंदता तैं, इन्द्रिय जनित सुख, चञ्चल, विनाशीक, तिनके निमित्त और अज्ञान जीवनका कीया तुच्छ लौकीक यश ताकै वास्ते भला-ज्ञान खोवैं। सो ये कुकविश्वरनका स्वरूप जानना। तातें तिस ज्ञान कूं पाय धर्मात्मा तो धर्म सम्बन्धी जोड़ कला करि पुण्य बन्ध करैं। अरु मूर्ख कवि हैं सो ज्ञान पाय खोटी जोड़ि-कला करि पाप बन्ध करैं हैं। ऐसा जुदा-जुदा सब जोड़-कला वारे जीवनका भाव जानना। अब उस कठेरेने रतन पाया था, तो ताके घरमें है। ताकी कथा कहिये है-सो ऐसे काठ वेचतें कठेरे कौं बहुत दिन भये भये सो एक दिन रात्रि समय उस ही राह एक जौंहरी आय निकस्या। सो इस कठ्याके घरमें सूर्य समानि प्रकाश देख्या। तब जौंहरीने विचारी जो दीपकका प्रकाश तो ऐसा होता नाहीं। तब जौंहरी इस कठेरेके घरमें देखता भया। सो देखै तो चिन्तामणि रतन है। तब उस जौंहरीने कठेरे कूं बुलाय चिन्तामणिका भेद बताय कही। रे मूर्ख तेरे घरमें मनवांच्छित सुखका देनेहारा चिन्तामणि है। अरु तूं अज्ञानता तैं काठका भार बहै है, अरु दरिद्री होय रह्या है। अब यापै जांचि। तूं जांचेगा, सो ही मिलैगा। तब कठेरा ने जांची। भो चिन्तामणि रत्न, मोकूं खीर भोजन देहु। तबही खीर मिली। तब कही मोकूं धोती देय तब धोती मिली

तब या कठेरेने घर धन आभूषण वस्त्र जो-जो जांचे सो सर्व मिले। तब कठेरा आप सेठके पांव पड़्या उपकार मान्या। तब सेठ यातैं राजी भया। सेठ उपकार करि अपने घर गया पीछे कठेरा अपनी अज्ञानता जानि पछताया। जो देखो मेरे घरमें वांच्छित सुखका दाता रतन अरु मैं दरिद्री रह्या। सो ये सेठ धन्य है जो इस चिन्तामणिका भेद बताया। अब मैं सुखी भया दरिद्र-दुख गया। पीछे रात्रि व्यतीत भई। प्रभाति, राजा कैसी विभूति प्रगट करि लोक-पूज्य होता भया। चिन्तामणिके प्रभावतैं काठ ढोना गया। परम सुखी भया। तैसेही इस आत्माका ज्ञान यापै ही है। परन्तु भेद पाये बिना अज्ञानी भया फिरै है कठेरेकी नाईं दरिद्री होय रह्या है। जब गुरु प्रसाद तैं ज्ञान चिन्तामणिका भेद पावैं, तो जगत-दुख जाय सुखी होय पूज्य पद पावै उपकारी की सेवा करै। तातैं विवेकी हैं ते भला ज्ञान पाय धर्ममें लगाय धर्म सेवन पूजा भक्ति, जीवाजीवतत्व विचारादि करि भली जोड़ि कला करहु।

इति श्रीसुद्रष्टि तरङ्गिणी नाम ग्रन्थ मध्ये काव्य-परीक्षा वर्णनो नाम बाईसवां अधिकार सम्पूर्ण भया ॥२२॥

आगे पंचम कालको महिमा कहिये है—

गाथा—जहि थति अरि हितदूरउ तीथथाणेय रजय विणखेदो। रंजय तहां न सुसंगो ए कलुबल गेयतज्ञ समभावो ॥ ६५ ॥

अर्थ—जहि थति अरि कहिये जहां रहिये है तहां बैरी पाईये है। हित दूरउ कहिये हितू हैं। सो दूर हैं। तीथथाणेय कहिये तीर्थ स्थान। रजय विणखेदो कहिये रंजय बिना खेद है। रंजय तहां न सुसंगो कहिये, रंजत हैं तहां सुसंग नाहीं है। ए कलुबल कहिये ये कलयुगका बल है। गेयतज्ञ समभावो कहिए पण्डित हैं ते यह देख समताभाव राखैं हैं। भावार्थ—जे तत्त्वज्ञानी धर्यात्मा हैं सो जगतकी बिटम्बना देखि ऐसा विचारैं हैं। जो देखो पंचमकालकी महिमा। कि जहां सदीव रहिए, जा क्षेत्रमें बहुत दिनका वास ऐसे क्षेत्रमें तो अदेखा—बैरी जन बहुत हैं। सो कोई धर्म कर्म खान-पान देख सकता नाहीं। और अपने स्नेही हैं सर्व प्रकार सुखके कारण हैं, तिन तैं बड़ा अन्तर है। वह सजन हैं सो दूर ही देशमें बसैं हैं। और जो तीरथ समान उत्तम स्थान हैं जहां रहैं सदीव पुण्यका बन्ध कीजे। सतसंगी जीव पूजा शास्त्र ध्यान चरचाका सदीव निमत्ति

सो जहां रहने कूं सदा मन चाहै। ऐसे उज्ज्वल स्थान पे रुजगारकी ठीकता नाहीं। सो खान-पानकी थिरता बिना रह्या जाता नाहीं। और जहां भला रुजगार है। खान पानकी चिन्ता नाहीं। ऐसे क्षेत्रमें सत्संग नाहीं। जहाँ अपना परभव सुधारिए सो पुण्यके निमित्त ध्यानाध्ययन पूजादिक निमित्त नाहीं। ये पंचमकाल की जोरावरी है। ऐसे खोटे कालमें भली वस्तुका मिलाप थोरा है। पापकारी कुआचारी अशुभ वस्तुनका निमित्त बहुत है सो इसका यह सहज स्वभाव है। शुभ निमित्त अल्प अशुभका निमित्त बहुत ऐसी इस कालकी सहज प्रवृत्ति है। ताके मेटवे कूं कोई उपाय नाहीं होन हार कोई मेटता नाहीं। जा-जा समय सुख-दुख होवना है सो हो है। ऐसा, जानि धर्मात्मा विवेकी तिनकौं समताभाव राखि धर्म-ध्यानका आश्रय लेना योग्य है ॥६५॥

अगे कहैं हैं कि शुभभावना बिना करनी का फल शुभ नाहीं। ताकौं दृष्टान्त देय बतावैं हैं—

गाथा—सुक पठती वक झाणो, खर भसमी पसु णगण तरु कट्ठो। उरण सिरकच मुड़ई, भावो सुधी बिणा ण सोझंती ॥ ६६ ॥

अर्थ—सुक पठती कहिए तोतेका पढ़ना। वक झाणो कहिये वकका ध्यान। खर भसमी कहिए गधेका राख लगावना। पशु णगण कहिए पशूका नगन रहना। तरु कट्ठो कहिए वृक्षनका कष्ट सहना। उरण सिर कच मुड़ई कहिए, भेड़के बालका मूड़ना। भावो सुधी विणा ण सोझन्ती कहिए, ये सब शुभभाव बिना मोक्ष न होंय। भावार्थ-जीवका भला तथा बुरा, इस हीके परणामन तैं होय है। तातैं शुद्ध-भाव बिना, जीव चाहै जैसा कष्ट करौ, भला होता नाहीं। जैसे तोता रात्रि-दिन राम-राम किया करै है। परन्तु याकें राम-नाम तैं कछु प्रीति नाहीं। ऐसा बिचार नाहीं, जो राम-नाम ल्यौं हों त्यों मेरा कल्यण होयगा तथा ये राम-नाम उत्कृष्ट है। याका नाम जो लेय सो सुखी होय है। ऐसा भेद-भाव नाहीं। जैसे पढ़ावनेहारा पढ़ावै है, उसी ही प्रकार पढ़ै है। यातैं याके भावनकी शुद्धता नाहीं। अरु शुद्धता विना, सूवेका पढ़ना-पढ़ावना वृथा ही जानना, फल-दाता नहीं। बगुला, पानी विषैं एक-चित्त करि, कायकी ध्यानाकार ऐसी मुद्रा बनावै है। जैसे भला तपस्वी ध्यान करै। ऐसी ही नासादृष्टि करि, बगुला भी ध्यान करै है। परन्तु परणाम तो भले नाहीं। मच्छीनके घात-रूप हैं। सो भाव प्रमाण खोटा ही फल मिलेगा। ध्यानके आकार, भली-मुद्रा सहित, काया करी

है सो भाव शुद्ध बिना भला-फल होता नाहीं । तातैं शुद्ध भाव बिना, वगुलेका ध्यान वृथा है । अर विभूति जो राख लगाये भला होय तो गरधव सदीव ही विभूति विषैं, लोट्या ही करै है । परन्तु गरधवके ऐसा विचार नाहीं जो राख लगाये, मेरा भला होयगा । यह सहज ही, ज्ञान रहित है । तातैं राख तनके लिपेटे पुण्य होता नहीं । अपने भोरेपन तैं, तनकी शोभा मिटाना है । बाकी शुद्ध-भाव बिना, राख लगाए मोक्ष होती नाहीं । जो भाव-शुद्ध बिना मोक्ष होय, तो गरधव कौं भी होय । नगन-तन तैं मोक्ष होय, तो सर्व पशु नगन ही रहैं हैं । तातैं शुद्ध-भाव बिना नगन रहना, पशुके कष्ट समान है । बड़ा कष्ट पाये मोक्ष होय, तो वृक्षनकौं होय । वृक्ष, शीत कालमें तो च्यारि महीना, शीत सहैं हैं । उष्ण-काल मैं, च्यारि महीना, सूर्यकी आताप सहैं हैं । अर चारि महीना वर्षा-कालमें, सर्व पानी तनपैं सहैं हैं । ऐसे तीनों ऋतुके बड़े कष्ट, शुद्ध-भाव बिना तरु सहैं हैं । परन्तु कष्टके खाये शुद्ध-भाव बिना भला होय, तो इन वृक्षनका होता, ऐसा जानना । शुद्ध-भाव बिना, मूड़ मुड़ाये भला होय, तो भेड़का होय । भेड़ कूं बरस-दिनमें कई वार मूँड़िए । सो भाव-शुद्ध बिना, मूड़—मूड़ावना कहिये केश-लोंचन, करना भेड़के मूड़ने समानि है, ऐसा जानना । सो भावनकी शुद्धता बिना, शास्त्रादिका पढ़ना सूवे समानि है । शुद्धभाव बिना ध्यान, वगुले समानि है । शुद्ध-भाव बिना विभूति लगावना, गरधव समानि है । शुद्ध भाव बिना नगन रहना, पशू समानि है । शुद्ध भाव बिता तीनों ऋतुके तन पै कष्ट सहना, वृक्ष समानि है । शुद्ध भाव बिना शीश मुड़ावना, भेड़ समानि है । तातैं हे भव्य, मोक्षका कारण एक शुद्ध भाव है । सो जे विवेकी हैं, ते रागद्वेष मिटाय अपने हितकौं, परभव सुधारवे कौं, भावनकी शुद्धता करौ । यहां प्रश्न—जो तुमने कह्या कि शुद्ध-भाव बिना, तप संयम, पठन—पाठनादि धर्मका फल अल्प होय है, तथा नहीं होय है । शुद्ध भाव बिना जो स्वाध्याय-शास्त्रोपदेश करना, शास्त्र सुनना, ध्यान करना, सामायिक करना इत्यादिक धर्मके अङ्गके सेवनेहारे हैं । सो धर्म सेवन करते, शुद्ध भाव सहित तो कोई दीखता नाहीं । आरत, रौद्र ध्यान बहुतके होय है । शुभ भाव वारे, अल्प हैं । और जेते जीव, अवार धर्म अंग सेवन करैं हैं । तिनकैं शुभभाव अल्प भासै है । सो इनको धर्म सेवनका फल शुभ होयगा, वा नहीं होयगा ? ताका समाधान भो

भव्य, तूं ने प्रश्न महामनोज्ञ किया। सत्पुरुषन कूं सुख पहुँचावनहारा, अनेक जीवनका संशय मेटनेहारा, ऐसे भाव सहित तेरा प्रश्न है। सो अब चित्त देयके उत्तर सुन। इस उत्तरका धारण किये धर्मके अङ्गन तैं विशेष प्रीति उपजैगी। धर्मके सेवनेहारे जीवनके अभिप्रायके दोय भेद हैं। एक तौ धर्म फलके हेतु सेवैं हैं। एक लोभी, कषायके पोषनैं कूं, धर्म सेवन करैं हैं। सो जे भव्यात्मा, धर्म कूं बड़ा जान, धर्म फलका लोभी भया, दान पूजा तप ध्यान शीलादिक करैं हैं। सो परभवके कल्याण कूं शुभभाव लिए करैं हैं। पीछे कर्मके जोग तैं कारण पाय, भाव-चंचल भी होंय, अरति उपजावैं, तौ याका शुभ-फल जाता नाहीं। जैसे कोऊ भव्यात्मा, सामायिक करवे कूं पद्मासन या कायोत्सर्ग कायका आसन करि, चित्त भला करि, सामायिक करै है। सो सामायिक कौं बैठा, तब अभिप्राय तो अच्छा था। अरु मन—वचन—कायकी प्रवृत्ति भी अच्छी थी। पीछे कोई कर्म-जोगतैं रागभावनकी प्रबलता करि, परणाम और ही विकल्प-कषाय रूप होने लगे। मन चंचल होय रह्या। परन्तु काय, सामायिक रूप है। परणति, कर्मकी जोरावरी तैं याकै हाथ नाहीं। अभिप्राय याका ये ही है जो मैं सामायिक करौं हौं। सो ऐसे धर्मात्माका सामायिकका फल जाता नहीं। जैसे कोई सामायिक करनेहारा भव्य जीव, सामायिक समय, घरके अनेक कार्य तजि कैं, धर्म-बुद्धिका प्रेर्‌या, घर तैं धर्म स्थानमें जाय, तनकी शुद्धताकरि, अल्प परिग्रह राखि, कायोत्सर्ग तथा पद्मासन ध्यान धरि, पंचपरमेष्ठीके गुणनका विचार करि, अपने किये पाप यादकरि, तिनकी आलोचना बार २ करि, अपनी निन्दा करि, सर्व जीवन तैं समता-भाव करि, ऐसा विचार करता भया। जो धन्य हैं वे मुनीश्वर तथा उत्तम प्रतिमाधारी श्रावक जो सर्व आरम्भ-पाप तैं निर्वृत्त होय, सुख भोगवैं हैं। ऐसी दशा मोरी कब होवेगी? ऐसे तपकी भावना भावता, सामायिक करै। एते हीमें एक चिंताकारी बात यादि होती भई। कि जो एक हजार दीनारकी थैली वा दुकानवारे कूं भूलि आया। सो याके याद होते मन तो चंचल होय, आरतिके जाल में पड्या। सामायिकमें चित्त नाहीं लागै। तब यह धर्मात्मा विचारै, जो मेरे दोय-घरीकी मर्यादा है। सामायिक कौं बैठा हौं। सो अब कैसे उठ्या जाय? मेरे भाग्यकी है तो मिलेगी ही, कहां जायगी? अरु मेरे भाग्यमें नहीं होय,

तौ अब ताईं, प्रगट-चौड़ी जगहमें से, कैसे बची होयगी ? और अब मैं कदाचित् लोभके जोग तैं उठौं हौं तौ प्रतिज्ञा मेरी भंग होय। प्रतिज्ञाके भंग होते, मेरा परभवबिगड़े है। काया-धर्म, नाश होय है। तातैं जो होनहार है, सो होयगी। मैं दोय घड़ी तो नाहीं उठौं हौं। प्रतिज्ञा पूरण भये जो होनहार है सो हो जा है। ऐसा विचार तनकौं स्थिरीभूत किए, तिष्ठ्या है। जो-जो सामायिककी क्रिया बन्दना, आलोचना सामायिक इत्यादिक पाठ पढै है। परन्तु मन-चंचल भया, सो सामायिक मैं नहीं लागै है। तो भी ये धर्मात्माका धर्म-फल जाता नाहीं। और कदाचित् दीनारोंके लोभ तैं सामायिक छोड़ि उठ खड़ा होता तौ पापवन्ध होता। धर्म क्रियाका अभाव होता। तातें ये धर्मात्मा अपनी प्रतिज्ञा तजि, उठै नाहीं। तौ परणति चंचल भले ही होऊ। या धर्मात्माका अभिप्राय भला है। अभिप्राय शुभ थिरीभूत नहीं होता तो सामायिक तजि करि जाता। तातैं अभिप्राय शुद्ध रहते तत्वश्रद्धान दृढ़ता कौं लिये हैं। सो ऐसा धर्मात्मा उत्तम धर्मी ही है। ऐसे ही श्रद्धानकी दृढ़ता अरु परणतिका आरति भाव सर्व धर्म अङ्गनमें लगाय लेना। सो ऐसे धर्मीका तौ विकल्प होतें भी धर्म जाता नाहीं ऐसा जानना। और एक लोभके निमित्त धर्म स्वांग धरि तप संयम ध्यान जिनवानीका पाठ इत्यादिक धर्म अंग करै। और अभिप्राय चोरीका है। जैसे रुद्रदत्त चोर था, सो लोभकौं देहरे (जिनमन्दिर) जीका माल चोरवेकौं धर्मात्मा ब्रह्मचारीका भेष धरि नाना तप, संजम, भले पाठ करता सेठके घर आय, धर्मात्मा होय, जिन मन्दिरमें रह्या। सो जिन-मन्दिरके चंवर, छत्र, कलशादि चोरे। खोटे अभिप्राय तैं धर्म-सेवन करै था, सो तिनका फल तो नहीं लगा। अरु खोटे अभिप्रायके जोगतैं मरि नरक गया। तातें ऐसे धर्म-सेवन मैं तोकौं दोय भेद कहे, सो जानना। जाका धर्म-सेवनमें अभिप्राय धर्म रूप है ताकैं तो पुण्य फल होय है। जिसके धर्म-सेवनमें अभिप्राय खोटा होय। ताकैं पापबन्ध होय है। तातैं शुद्ध-भावनके अभिप्राय बिना जो धर्म सेवन है। सो ऊपर कहे तोता, बगुलादिक तिन समानि जानना। शुद्ध-भावन बिना धर्म साधन लौकिकके दिखावेकूं करैं हैं। ते जीव धर्मके अभिलाषी नाहीं। इनका धर्म-सेवनका कष्ट बृथा ही जानना। जैसे कोई सेठका मन्दिर बनै है। तहां अनेक मजूर लगे हैं तिनकूं मजूरी करते देखके एक अज्ञानी

पागल पुरुष आया सो आप भी बिना कहे अपनी इच्छा तैं ही, मजूरी करता भया। सो औरन तैं यह पागल बहुत भार उठावैं। मजूर उठावैं पाँच सेरका पाषाण तो ये पागल उठावैं दश पंसेरीका पत्थर। मजूर ल्यावैं एक पत्थर तौ ये पागल ल्यावै दश-पत्थर। सो याकी मजूरी देख कैं अजान पुरुष ऐसा विचारै जो यह मजूरी बहुत करै है। सो याका रोज भी बहुत होयगा। ऐसे सब दिन मजूरी करी। सांझको मजूर छूटे। तब जिनके नाम मड़े थे, तिन सब मजूरनको दिन मिल्या। सो अपने घर जाय सुखी भये। जब इस पागलने भी मजूरी मांगी। तब दरोगाने कागदमें याका नाम देख्या, सो नाहीं निकस्या। तब याकूं, पूंछै तूं कब लागा था? तब यानैं कही मेरो मन आई तब ही लागा। तब याकौं पूंछी तोकौं कोऊने लगाया था? तब या पागलने कही, हमकौं कौन लगावै, हम ही अपने मन तैं लगे थे। तब सबने जानी, ये मजूर नाहीं, कोई पागल है। तब धक्के दिवाय कढ़ा दिया। मंजूरी नहीं मिली धक्के मिले। सबनै जानी, दीवाना है। मिहनत वृथा गई क्यों गई? सो कहिये है। ये दिवाना काहूका चाकर तो भया नाहीं। अपनी इच्छा-रूप रह्या। बंध रूप नाहीं इस दिवाने कैं एता विचार नाहीं। जो मैं फलानेका चाकर हौं यापै कहिकर काम करौं। जो धनीकी आज्ञा मानता नाहीं अपनी इच्छा रूप है तातैं मंजूरी नहीं मिली। खेद वृथा गया। तैसेही यह जीव एक शुद्ध धर्म की परीक्षा करि जाकौं कल्याणकारी जानैं, ताकी आज्ञा प्रमाण धर्मका सेवन करै। तथा धर्मके अंग दान पूजा तपादिक करै तो धर्मका फल भी लागै। और धर्म-स्वांग तो बहुत धारै परन्तु कोई आज्ञा रूप नाहीं स्वेच्छा स्वच्छंद होय धर्म अंगका सेवन करै। अनेक कष्ट करै, सो वृथा जाय। जैसे पागलकी मजूरी वृथा भई तैसे जानना। ऐसे धर्मअंग सेवनहारे जीवनके दोय भेद कहे। सो हे भव्य तूं जानि। जो धर्मकी आज्ञा सहित धर्म अंगनका सेवन करै हैं। और निमित्तके दोष तैं उनके परणाम चंचल भी होंय तो उनका धर्मफल जाता नाहीं। और कोई जीव सर्वज्ञदेवकी आज्ञा रहित भया क्रोध मान माया लोभके जोग तैं छल-बलकं लिये पाखंड सहित धर्म सेवन लोक दिखावन कौं करै तिनका फल भी वृथा होय। ऐसे जानना। यह तेरे

प्रश्नका उत्तर है। तातें भावनकी शुद्धता सहित धर्म सेवनही मोक्ष मार्ग जानि। शुद्ध भाव बिना खेद ही है, सो भी वृथा जानना। आगे और कहैं हैं जो शुद्ध-भाव बिना धर्म-अंग वृथा है—

गाथा—मखि पतङ्ग दहकाया तसयर चित्तोय णमण तण होई॥ सुरतरु देयहु दाणो, भावो सुधी विना ण सोभंती॥ ६७॥

अर्थ—मखि पतंग दहकाया कहिए, माखी व पतङ्ग काया दहै हैं। तसयर कहिये चोर। चित्तोय कहिए चीता। णमण तण होई कहिये इनके तन में बहुत नमन है। सुरतरु देवहु दाणो कहिये कल्पवृक्ष मनवांच्छित दान देय। भाओ सुधी बिना ण सोभंती कहिये परन्तु भावकी शुद्धता बिना मोक्ष मारग नाहीं। भावार्थ—भावनकी शुद्धता बिना मोक्ष नाहीं होय है। नाना तप संयमादिके खेद, सर्व वृथा जानना। सो भाव शुद्ध बिना केतेक तौ भोरे जीव मोक्षके निमित्त अपना भला तन अग्निमें भस्म करैं हैं। सो ऐसे अग्निमें जलनेके कष्ट तैं मोक्ष होती तो शुद्ध भाव बिना माखी व पतङ्ग कौं होय। माखी व पतङ्ग दीपकमें निशङ्क होय, तनको दाहैं हैं। सो अज्ञान संक्लेश भावनतैं मरि खोटी गति ही विषैं उपजैं हैं। तातैं शुद्ध भाव बिना कायका जलाना वृथा है। और काय तैं अत्यन्त नमैं विनय किये शुद्ध-भाव बिना मोक्ष होती तो चोर पराए-घरमें चोरीकूं जाय तब अपना तन शीश नवावता जाय है। सो यह मायावी, दगादार महा खोटे अन्तरङ्गका धारी ये चोर। तथा चीता पशु है सो अन्य जीवनकौं मारै है तब पहले अपनी कायकूं बहुत नमाय करि पीछे चोट करै। सो काय नमाए—विनय किये शुद्ध-भाव बिना मोक्ष होय तो चोर तथा चीते कौं होय। तातैं धर्म अभिलाषी पुरुषनकौं भाव ही शुद्ध करना स्वर्ग मोक्षकारी है। और शुद्ध भाव बिना दान दिए मोक्ष होय तो कल्पबृक्ष कौं होय जो वांच्छित फल देय है। तातें तस्कर चीता माखी पतंग कल्पबृक्ष ज्ञान रहित हैं। खोटे भाव सहित हैं। इन कूं परभव सुख नाहीं। तातें ऐसा निश्चय करना, कि परभवके हितका कारण भाव की शुद्धता है। तातैं धर्मार्थी जीवतकूं भावकी शुद्धता करना योग्य है। आगे सुसंग—कुसंगके वांच्छिक जीवनकूं बतावैं हैं—

गाथा—वायसस्सांण अणाणी, हीण सङ्गोय रज्जई मूढो। हंस चतुर णर णाणी, ऊंच सङ्गोय वंछिका गेयं॥ ६८॥

अर्थ—वायस कहिए, कौवा। स्साांण कहिए, कुत्ता। अणाणी कहिये, अज्ञानी। हीण सङ्गोय कहिये, नीच सङ्ग विषैं। रञ्जय मूढ़ो कहिये, मूरख राचैं हैं। हंस चतुर णर णाणी. ऊंच सङ्गोय वाञ्छिका गेयं कहिये, हंस, चतुर मनुष्य व ज्ञानी पुरुषन कौं ऊंच-सङ्ग ही सुहावै। भावार्थ—काक कौं चाहे जेते ही रतनमई आभूषण पहराय कैं शृंगारो। चाहे जैसा भोजन देय पोखो। चाहे जैसा खेद खाय, पढ़ावो। कनकके पिंजरे में राखो। इत्यादिक याका लाड़ चाहे जैसा करो। परन्तु जब या काक हाथ-पिंजरे तैं छूटै, तब ही ये अज्ञानी, नीच जहां स्थान होयगा तहां ही जायगा। तथा आप समानि काक बैठे होंयगे, तहां जाय तिष्ठैगा। और कुत्तेकूं, चाहे जैसा भला-भोजन करावो। अनेक भले आभूषण याके तनमें पहरावो। पालकी व रथकी असवारीमें धरो। नाना बिछौना, गादी, जाजमैं पै राखो। इत्यादिक अनेक भले निमित्त मिलाय कैं राखौ। परन्तु जब यह डोर तैं छुटेगा, तब ग्राम-श्वानन विषैं जाय रमनै लगेगा, तथा घूरा पै जाय तिष्ठैगा। ऐसा ही याका सहज-स्वभाव है। और अज्ञानी कौं चाहे जेता समझावो—पढ़ावो, परन्तु याकी अज्ञानता नाहीं जाय। याका सहज-स्वभाव ऐसा ही जानना। सो अज्ञान, ताके अनेक भेद हैं। तहां एक अज्ञान तौ ऐसा है। जो और कला धर्म--कर्मकी सब जाने है। अनेक भेद—भाव समझै है। परन्तु शास्त्र-बांचनेके ज्ञानसे रहित है। कोई पूर्व—कर्म जोगतैं श्रुतज्ञानावरणके उदय तैं संस्कृत, प्राकृत, देश-भाषादिक शास्त्रनके बांचनेका ज्ञान नाहीं। तातैं याकौं अज्ञान कहिये। और एक अज्ञान ऐसा है जो ताकौं शास्त्र-बांचनेका ज्ञान तौ है। परन्तु योग्य—अयोग्य, भली—बुरी, पुण्य—पाप, हित—अनहित, इत्यादिक शुभाशुभ विचारतैं, हृदय जाका रहित होय। जैसे तोता कौं पढ़ाय पण्डित किया। सो तोता कौं जैसे काव्य-छन्द पढ़ावो सो पढ़ै। ताका पढ़ना देखि और जन राजी होंय। ऐसा पढ़ाय तैयार किया। परन्तु याके मुख आगे अंगुली करो, तो काट खाय। तथा पिंजरे तैं खोल देव, तो मूरख उड़ जाय। कछू विचारै नाहीं। जो मैं इस रतन—पींजरेमें, भले भोजन—जल खावता सुखी हौं। मोकौं इननै पढ़ाया है। सो ये अज्ञान, सर्व भूलि, पींजरा छोड़, जाता रहे। सो कोई ऐसा ही मूरख, अनेक शास्त्र संस्कृत—प्राकृतादि तो बाँचि जानै, परन्तु कषाय-सहित, महामानी,

पापका भय नाहीं, पुण्य-फलकी चाह नाहीं, ऐसा हित--अनहित रूप भाव नहीं समझै। काम, क्रोध, लोभ, बहुत होय जाकें। सो पढ्या-अज्ञान कहिये। एक शुभाशुभ विचार रहित होय, अरु अक्षर—ज्ञान तैं भी रहित होय, ताकौं भी अज्ञान कहिये। और एक बालक अज्ञान होय। सो सुख--दुःखके स्थान-भेद नहीं समझै। ज्यों बालक कौं, वाके माता—पिता कहैं हैं। पुत्र! भोजन खायकैं, पालने झूलो-सोवो। अरु घाम में मति जाओ, यहां शीतल जल पीवो। लड़कों में मनि जाओ, वह मारेंगे। ऐसी हितकारी-सुखदायक शिक्षा, अपने बालक कौं कहैं हैं। ताके भेद नहीं समझा जो बालक-अज्ञान, सो माता-पिताके वचन उल्लङ्घकैं, छिपकैं, बड़ी घाममें ही भागकैं, बालकनमें खेलवे जाय है। तहां शीशमें रज भरे। घाम तनपै सहै। प्यास लागी, सो सहै है। भूख लागी है। औरनके मुखकी गारी सहै है। कोई शिरमें मारे, सो भी सहै है। इत्यादि खेदके स्थाननमें तो जाय। अरु सुख-स्थान अपना घर, तहां नहीं रहै। ऐसा अज्ञान ये बालक है। और एक अज्ञान ग्वाल है। जो सदीव ढोर चरावै। बन ही में रहै, या मैं भी शुभाशुभका ज्ञान नाहीं। इस गोपाल को शालका जोड़ा दीजिये। तो ये आज्ञानी नितंब-वल्लभ, शालके मोल-गुण कूं नहीं जानता-संता, बैठे है तहां शालकूं, पंद नीचे देय बैठे। इसको विशेष-विवेक नहीं होय। सदीव पशूनकी संगति मैं रहै। सो तैसी ही बुद्धि धारै हैं। इस गंवार कूं बनमें (प्यास) लागै, तब नदीमें जाय, पशूकी नाईं मुख ही तैं जल पीवै, हाथ तैं नहीं पीवै। खड़ा ही नीतादिक बाधा करै। याकें शुभाशुभकी खबरि नाहीं। तातें ग्वाल भी अज्ञान है। इत्यादिक कहे मूरखनके भेद, सो इन सब कूं नीच-संग ही भला लागै है। और ऊंच-संगमें जातैं-बैठतैं-बोलतैं, लज्जा उपजै है। जैसे कोई भले-आदमीका पुत्र, होरीके दिनमें, अपनामुख श्याम बनाय, नीच-संगके मनुष्यनमें खुसीभया, रमै था—स्वछंद खेले था। सो तहां कोई भला-आदमी आय निकसै, तो लज्जा खाय, छिपि जाय है। उस कारे-मुख सहित, भले-संगमें लज्जा उपजै। तैसे इस अज्ञान कौं सुसंगमें लज्जा उपजै है। और अपने समानि, अज्ञानके धरनहारे जीवहोंय, तिनमें ये अज्ञानी प्रसन्न रहै है। तातैं ये काक श्वान, अज्ञान इन कूं नीच-स्थान ही प्रिय है। सो इनका ये सहज-स्वभाव जानना। एतेन कूं ऊँच-संग भला

लागै है। सो ही कहिये है। एक तो हंस, महासमुद्रका रहनेहारा, मोती चुगनेहारा, उज्ज्वल बुद्धि, निमल नीरका पीवनहारा, ऐसे भले-स्थानका रहनेहारा, सुबुद्धि, महासुन्दर तनका धारी, हंस कूं ऊंच-स्थान ही अच्छा लागै है। जहां बड़ा दरयाव होय, बड़े जलका विस्तार घणा-जल होय, हंस तहां सुखी होय। जे चतुरनर हैं सो भी तहां राजी होय हैं, जहां अनेक-कलाके धारी, विवेकी, चतुर, राजकुमारादि, उज्ज्वल-बुद्धि, आप समानि धर्म-कर्म कलामें समझते होंय। अनेक शुभ-विवेक वार्ता होती होय। नाना नय-जुगतिनकी रहसि सहित प्रश्न उत्तर होते होय। अनेक धर्मकथा चरचा, शास्त्राभ्यास कौं लिये, होती होय। जहांकी चतुराई में तिनकूं भला लागे कुसंग तें अरति होय सो चतुर कहिए। और जे धर्मात्मा हैं। तिनकूं धर्मस्थान सोही ऊंच स्थान प्यारा लागै है। सो जहाँ प्रथमानुयोग करणानुयोग द्रव्यानुयोगकी कथा पाप हरनी पुण्य करनी वात होती होय सो स्थान धर्मात्माकूं भला लागै तथा जहां अनेक मतान्तर की रहसि कूं लिये तत्व भेदनका निरधार होता होय जिनतें मोक्षमार्ग जान्या जाय संसार भ्रमण छूटे परभव सुख होय लागे पाप नाश होंय इत्यादिक ऊंच स्थानकमें रंजायमान होय सो ज्ञानी कहिए। ऐसे कहे जे सुसंग हंस चतुर नर ज्ञानी पुरुष इनकौं ऊंच संग प्रिय लागे है। इनका ये ही सहज स्वभाव है। सो हे भव्य हो जे नीच हैं तिनकौं नीच संग प्रिय है। ऊंचनकौं ऊंच संग प्रिय है। ऐसी परीक्षा करि नीच ऊंचकी पहिचान करना। जिसमें तेरे भले की होय तिस संगतिमें रंजना नगन होना योग्य है ॥ ६८ ॥ आगे हितूनके परखिवेकूं नव स्थान दृष्टान्त पूर्वक वतावैं हैं—

गाथा—णिपभय खेद दरिदये, भोयण सतयार अज्जपण्णाको जराशक्ति अखझहीयो इथल हित हेम पाल कसटीये ॥ ६९ ॥

अर्थ—णिपभय कहिये राजाका भय। खेद कहिये रोग। दरिदये कहिये दारिद्र। भोयण कहिए भोजन सतयार कहिए सत्कार। अज्जपण्णामो कहिये, आरजो परणाम। जरा कहिए वृद्धपना। असक्ति कहिए हीन शक्ति। अखझहीयो कहिए इन्द्रियनके बल घटैं। इ थल हित हेम पाख कसटीए कहिए ए स्थान हित रूपी कनकके परखवे कौं कसौटी हैं। भावार्थ—संसारमें अपने हितकारी जीव तेई भए स्वर्ण तिनके परखवेकौं ए कहे स्थान सो कसौटी समानि हैं। सोई वताइए हैं। जहां एक तो भूप भय होव। तव राजाका कोप अपने

ऊपरि होय तब अपनी सहायकूं अपनी चाकरी करै। सो भला चाकर जानना। जो ऐसे समयमैं पासि रहै, विनय करे सेवा करे सो सांचा चाकर है। अरु कुटुम्बादि, मन्त्री, जे भूपके कोपमें सहाय करें सो सांचा हितू जानना ॥१॥ नाना प्रकार तन विषैं कुष्टादि रोगकी वेदना भई होय। ता समय मल-मूत्रादिकी समेटणा करै सो ही भला सेवक सोही कुटुम्ब सोही मित्रादि जानना ॥२॥ जब पाप उदय तैं दरिद्र आवे धनकी हीनता होय। ता समयमें भूख प्यास सहकैं जो सेवा करै सो भला सेवक कहिए। जो इस दरिद्र दशामें संग रहै विनय तैं पूर्ववत् रहै सो ही कुटुम्ब सोही मित्रादिक जानना ॥३॥ भोजन देते यथायोग्य आदरतैं विनय सहित अन्तरंगके स्नेह तैं भोजन देय सो सांचा हितू सोही कुटुम्ब सोही मित्र सांचा है। सोही सेवक भला है ॥ ४ ॥ आवते, जावते, बोलते यथायोग्य अन्तरंग मोह सहित सत्कार करै। आव आदरैं सोई सांचा मित्रादिक सज्जन जानना ॥५॥ सरल भाव तैं कुटिलाई तजिकैं विनय तैं सेवा करै सो भला सेवक है। सोही मित्र कुटुम्बादि जानना ॥ ६ ॥ और शरीरमें कुमावेकी शक्ति घटै। कुटुम्बादिक सर्व रक्षा करवेकी शक्ति घटै। तन अतिही पराधीन होय। बचन बोलतैं मुखतैं नीर चलै। अंग उपांग कम्पन लागैं। इत्यादिक अवस्था जरा आए होय तरुणपना जाय तब कोई विनय कहित सेवा करै सो तो सेवक। और या दशामें आदर सहित सेवा चाकरी करै आज्ञा मानै सोही भला पुत्र भाई स्त्री आदिक कुटुम्बी मित्र जानना॥ ७ ॥ उदय तैं उठतैं वैठतैं मल-मूत्र खेपनेतैं शरीरकी शक्ति घट गई होय, ता समय अशक्त भए पीछे सेवा चाकरी करै सोही मित्र, कुटुम्बादि जानना ॥ ८ ॥ जा समय पचेंद्रिय शिथिल होंय। तथा एक दोय इन्द्रियकी प्रवृत्ति जाती रहै। नेत्रनतैं नाहीं सूझे नहीं दीखै। तथा काननतैं नहीं सुनै। इस समयमें जो कोई, विनय सहित आज्ञा प्रमाण सेवा करै, सोही मित्र, सोही सेवक, सोही स्त्री-पुत्रादि, सांचे जानना ॥ ९ ॥ ऐसे कहे जो सेवक, मित्र, पुत्र, स्त्री, भाई, माता-पितादि—स्नेही सोही भये कञ्चन, तिन सबके परखिवे कों ये नव स्थान कसौटी समानि हैं। जैसे कसौटीपै घिसे, भले-वुरे कञ्चनकी परीक्षा होय, तैसेही इन नव स्थानकनमें मित्र, सज्जन, कुटुम्बादिककी परीक्षा होय है। बाकी भले विषैं तो अनेक चाकरी करैं हैं। कुटुम्ब, पुत्र, स्त्री आदि आज्ञा मानैं ही मानैं। क्योंकि यतो सर्वका

रक्षक है। परन्तु उक्त नव स्थानकनका अवसर आय पडै, तव चाकरी करै, सोही सांचा नाता जानना ॥६६॥
आगे ऊपर कहे जे कसौटी समानि सर्व स्थान, इनपै कौन २ कौं परखिये, सो कहैं हैं—

गाथा—ए णव ठाण कसौटी, पीय तीय मित्तादि पुत्त सजणाणी। संजय तव धम्म कणका, घसि णवणय पमाण सुदिट्ठी ॥ ७० ॥

अर्थ—ये उक्त नव स्थान, कसौटी समानि हैं। अरु पिया, स्त्री, मित्रादि, पुत्र और अनेक सज्जन और संजय कहिये संयम, तव कहिए तप, धम्म कहिये धर्म, ये सव कहिये ये सर्व ही, स्वर्ण समानि हैं। घसि पखणय पमाण सुदिट्ठी कहिये, नय-प्रमाण इन कूं घसि कैं शुद्धदृष्टी होय, सो परखै। भावार्थ—ऊपरि गाथा में कहे नव भय—राज भय, रोग भय, दरिद्र भय, भोजन नहीं भये, असत्कार भये, सरल भाव भये, वृद्ध भये, तन अशक्त भये, इन्द्रिय वलहीन भये, ये नव स्थान कसौटी समानि जानना। सो इन कारण पड़ैं तव धर्म—कर्म सम्बन्धी जो पदार्थ तेई भये कनक, तिनकौं परखिये। स्त्री तो भरतार कूं, इन कारणमें परखै। और भरतार, स्त्री कौं इन कारणमें परखे। मित्र, मित्र कूं इन कारण में परखे। और भाई, भाई कौं इन कारण पै परखै। पुत्र, पिता कौं इन कारण में परखै। और पिता, पुत्र कौं इन कारण में परखै। सेवक स्वामी कूं और स्वामी, सेवक कूं इन कारणनमें परखै। और चित्तकी धीरजता, धर्म कार्यनमें, तप करतैं, संयमकी रक्षा करतैं, इन कारण पै परखिये। इत्यादिक कहे जे धर्म-कर्म सम्बन्धी कार्य सर्व-अंग, इन नव अवसरनमें दृढ़ रहै। सो साँचा धर्म—कर्म अङ्ग जानना। वाकी पुण्य—उदयमें अपने-अपने स्वार्थ पूरवे में तो, सव ही सहाय करैं। व धर्म-सेवन करैं। परन्तु ऊपर कहे अङ्गनमें-सहायमें दृढ़ रहै, सो धन्य कहिये ॥ ७० ॥
आगे एक दुःख कौं अपनी-अपनी कल्पना करि, अनेक उपचार वतावैं, सो कहिये हैं —

गाथा—वैद्यो कथयत रोगो, भूतो चयटक गहण मंत्तीए। पूव्वो पाज्जय णांणय, एक गद जथा दिट्ठि भासन्ती ॥ ७१ ॥

अर्थ—इस जीव कौं कोई पाप उदय करि, एक रोग होय। ताकौं जगतके चतुर जीव, अपनी दृष्टि माफिक उस दुखका कथन करैं। सो कोई वैद्य कौं पूछिए, जो हमें खेद काहे तें है, सौ कहो। तो कोऊ ज्वर, वाय, खांसी, स्वांसादि रोग वतावे। और कोऊ मंत्रवादी—चेटकी कूं पूछिये। जो हम दुखी हैं, सो

क्यों हैं ? तब कहै, तुमकौं ऊपरला फेर है। जोरावरी भूत-प्रेतकी झरपटमें आय हौ। सो हम मंत्र, जंत्र, तंत्र गंडा कर देंयगे, सो सब रफै होय साता होय जायगी। और निमित्तज्ञानी कूं पूछिये, जो हम कूँ खेद क्यों है ? तब कहै, तुमकौं शनीचर-मंगलादि ग्रहोंकी क्रूरता है। सो इनका कीया खेद है। तातैं इनकी पूजा करौ। दान देऊ। फलाने नक्षत्रमें, साता होयगी। और कोऊ धर्मात्मा, संसार-भ्रमणका जाननहारा, पुण्य-पाप का समझनेहारा, तत्वज्ञानी, सम्यग्दृष्टी कूं पूछिये, जो हमकौ खेद है सो क्यों ? तब समता-रस-रंगीला कहै। भो भव्य, कोऊ पूरव उपार्जित पापका अशुभ-फल प्रगट भया है। इस भवमें ताने दुख कीया है। तातैं तुम विवेकी हौ, पाप का फल ऐसा दुखदायक जानि, पाप मति करौ। तातैं परभवमें फेरि दुख नहीं होयवे कूं, धर्म-सेवन करौ, परभव सुख पावोगे। धर्मात्मा ऐसी कहै। ऐसे एक दुख होय, ताके दूर करवेके अर्थि, जो कोई कूं पूछिये, सो अपनी २ जैसी-जाकी दृष्टि होय, जा वस्तुके अतिशयमें जाका चित्त रंजाय, मान होय, सो ही इस जीव कूं सहायकारी भासै है। सो जैसा जाका ज्ञान था तैसा ही इन्होने इलाज बताया। सो विवेकी इन सर्वके वचन सुनि, धर्मात्माका वचन सत्य जानि, श्रद्धान करि, पापका फल दुख जानि पाप तजि, धर्मके सेवनमें जतन करैं हैं ॥ ७२ ॥ आगे ऐसा कहैं हैं जो पहलैं घर कौं तजि, कुटुम्ब कौं तजि भेष धरि, फेरि घर मित्र चाहै ताकौं कहा कहिए। सो बतावैं हैं—

गाथा—मिंदयतजि कुटइछये, दाणो तजि देण मूठ जाचंती ॥ वंधू तजि इछमित्तो, तव गय को होय सांगधर आदा ॥ ७५ ॥

अर्थ—मिंदयतजि कुटइछय कहिये मंदिर छांड़ि टपरिया (झौंपड़ी) चाहै। दाणो तजि देण मू: जाचंती कहिये दानका देना तजि उल्टा भीख मांगै। वंधू तजि इछमित्तो कहिये कुटुम्व तजि फेरि मित्र चाहै। तब गयको होय सांगधर आदा कहिये, तेरी कौन गति होयगी ? हे स्वांग धरनहारे आत्मा। भावार्थ—केतेक भोरे शुभ विचार रहित इन्द्रिय सुखके लोभी प्रमादी तिननैं गृहकी अनेक क्लेशता देखि उदास होय, घरकूं तजि भेष धार्या पीछै भेषका निर्वाह करना विषम जानि जांचने लागे। फिर इन्हैं टपरिया छप्पर मिंदर बनाते देखि औरतें स्नेह करते देखि इत्यादिक विपरीत भेष देखि कैं गुरु हैं, सो दया करि शिक्षा सहित हि-

तोपदेश करते भये। भो भव्य तेरे पुण्य तैं तेरे पुण्य-प्रमाण मन्दिरमें रहै था। तिसको तजि जोग धार्‍या। सो तू अब मन्दिर बनावाया चाहै। तथा घासकी कुटी व छप्पर बनवानेके निमित्त आश्रय देखता फिरै है। सो हे भाई तू पहिले क्यों भूल्या ? हे भव्य! अपने घरमें तब तौ तूं औरनकूं स्थान देय सहाय करै था। अब घर तजि टपरिया बनवानेकूं, दीन भया फिरै है। तातैं घर तजना योग्य नाहीं था। और अब तज्या ही है। तौ बन-बिहार करना योग्य है। गुफा, मसान (मरघट) वृक्षकी कोटरमें तिष्ठना जोग्य है। अरु ऐसी शक्ति तेरी नहीं थी तो घर जतना योग्य नहीं था। और देखि हे भव्य! घर विषैं था तो अपनी शक्ति प्रमाण दीन-दुखीकों दान देय दयाभाव करि पोखे था। अब तूं घर विषैं दान देना तजि उल्टा घरि-घरि दीन भया भीख जांचता फिरै है। सो भी तो कूं योग्या नाहीं। तो कूं अजांचीक रहना योग्य है। और सुनि हे भाई! घरके पिता, माता, पुत्र, स्त्री, भाई, सज्जन मित्रादि स्नेही मोहके करनहारे तिन कूं तजि, अब भेषि धरि अन्य गृहस्थनकौं संबोधन देय खुशामदि करि विनय करि तिनतैं नेह बधाय मोहके बंधनमें फेरि बन्ध्या चाहै है। अर वह तो तैं मोह करते नाहीं। तातैं मोह बधावना था, तौ तौकौं घर तजना योग्य नाहीं था। अरु अब घर तज्यो है तो निरमोही रहना योग्य है। तातैं हे अजान भोरे तैं घर तजि मन्दिर बनाये। तुम दान देना तजि उल्टे याचना कूं आये। तथा तुम घरके कुटुम्बी मोही तजि औरनतैं स्नेह करते फिरौ हौ। सो हे भोरे ऐसे तेरे भांड़-बहुरूपिया कैसे नाना स्वांग देख हमकौं बड़ा आश्चर्य आवै है। सो तेरी कौनसी गति होयगी सो हम नहीं जानैं अन्तर्यामी जानैं। ऐसी शिक्षा उत्तम जीवनकों गुरु देते भए। सो विवेकी हैं तिनकौं तजे पीछे ग्रहण करना योग्य नाहीं। अरु कभूं तजे कभूं अंगीकार करै, सो ताका तप लेना बालकका सा चरित्र है। तथा नटके समानि स्वांग धरना जानना। ऐसा जानि विवेकी जो धर्म कार्य करैं सो प्रथम ही विचार कैं करना योग्य है ॥ ७२ ॥ आगे ऐसा कहैं हैं जो कौन वस्तु तजि किस वस्तु तजि किस वस्तुकौं राखिये, सो ही बतावैं हैं—

गाथा—पुरतज्जे धण कज्जय सहधणतज्जेय काजकुलरक्खो। कुल तज्जय तणकज्जय पुरधणकुलकाय तज्यधम्मकज्जाय ॥ ७३ ॥

अथ—पुरतज्जे धण कज्जय कहिए पुर तौ धनके निमित्त छांड़िए है। सहधण तज्जेय काज कुल रक्खो कहिए सो धन कुलकी रक्षाके निमित्त तजिए है। कुलतज्जय तण कज्जय कहिए कुलको तनके वास्ते तजिए है। पुरधण कुलकाय तज्यधम्मकज्जाय कहिए पुर धन कुल काय ए सब धर्मके निमित्त तजिए है। भावार्थ—जगत जीव कुटुम्ब मोह तैं तथा मानादि कषाय पोषवे कौं तथा परम्पराय आपकौं सुख होयवे कौं इत्यादिक कर्म कार्यनके निमित्त सहायकारी सुखकारो धन जानि ताके पैदा करवेकौं यह विवेकी अपनी बुद्धिके बलतैं अरु पुण्यके सहाय तैं घर तजिकैं द्वीपान्तर समुद्र बन इन आदिक विषम स्थान कानन (बन) मैं प्रवेश करि बहुत कष्ट खाय क्षुधा तृषा शीत उष्ण अनेक कष्ट सहके धन पैदा करै है। तब धरनके निमित्त घर तजिए। ए बात प्रसिद्ध है। जो देशान्तर जाय धन कुमाय लावै है- तब धन होय है और ऐसे कष्ट करि कुमाया धन सो कुटुम्बकी रक्षाकौं खरचिए खुवाइये है। कोई ऐसा कार्य बनजाय जो धन गए कुटुम्ब बचै तो कुटुम्बकौं राखिए धन दीजिए सो कुल कुटुम्बकी रक्षाके निमित्त धन तजिए। और कोई काम समय ऐसा आवै है। जो अपने तनको रक्षाके निमित्त कुल कुटुम्ब कौं तजिए है। और कदाचित् अपने धर्मकूं प्रयोजन आय पड़ै, तो कुल पुर, धन सबही धर्मकी रक्षा कौं तजिए। तनादिक तजे धर्म रहै तो तनादिक सबकौं तजिकैं अपने धर्मकी रक्षा कीजिए। यहां प्रश्न ? जो तुमने कह्या। काय तजिकैं भी धर्म राखिए सो काय गई तब धर्म कहां रह्या ? अभी लौकिकमें भी ऐसा कहैं हैं कि काया राखै धर्म रहै है तो काय गए धर्म रहो कैसे कहो हो ? ताका समाधान हे भव्यात्मा तैंने कही सो सत्य है। तेरा प्रश्न हमारे उपदेशतैं मिलता ही है। और लौकीकमें कहैं हैं, सो भी प्रमाण है ये भी सत्य है। परन्तु याका भोरे जीव भेद नाहीं जानैं हैं लौकीकमें काया राखै धर्म कहैं हैं सो सत्य है। याका स्वरूप आगे कहैंगे। अरु लौकिकमें भोरे या कहैं जो अपनी काया राखैं धर्म है सो ऐसा नाहीं। काया राखै धर्म कैसे रहै। सो ही कहिये है। सो हे भव्य तू चित्त देय सुनि। तूने प्रश्न भला किया। घने जीवका संशय मेटनेहारा तथा तेरा संशय मेटनेहारा प्रश्न है। सो तू उत्तर कूं चित्तदेय सावधानी तैं सुनि। तोकूं हम पूछैं है जो एक शूरमा है। ताकौं कोई बड़े योद्धा नैं आय ललकारया। कही वह शूरमा कहां जाका मैं नाम

सुन्या करौं हौं। वह महायोद्धा होय सूरमा होय तो मोतैं आय युद्ध करै। वाके हस्तमें वड़ा शस्त्र है। देख्या सोहो मार्‌या। सो अब इस शूरमा कौं कहा योग्य है? इसका धर्म कैसे रहै? इस वैरीके सन्मुख आय युद्धमें अपनी काय शस्त्रन तैं खंड २ करि मरै तो धर्म रहै? तथा भागकैं अपना तन राखै तौ धर्म रहै? सो कहौ। तब वाने कही भागि जाय तो निन्दा होय। शूरमा तो मरै तबही धर्म रहै। तब तोकूं कहिये है। हे भव्य यहां काया अपनी राखै धर्म रहै। ऐसा कहना झूठा भया। अपनो काया राखे धर्म रहै। तो शूरमा मरता नाहीं। तातैं जे विवेकी हैं सो धर्म राखवे कौं काय भी तजि धर्म राखैं हैं। ऐसा जानना। ऐसे धर्मकूं पुर धन कुलः काय सबहीतजैं हैं और धर्म राखे हैं। अब सुनि तैंने कही जो काया राखै धर्म है। सो श्रेष्ठ धर्म है। यो भी जिनेन्द्रदेवका उपदेश है। जो काया राखै धर्म है। परन्तु ज्ञान-अंध प्राणी इसके भेदकूं पावैं नाहीं हैं। धर्म तो काया राखे ही है सो तुम सुनौ। अब यामैं भेद भाव है। सो अन्तर भेद कहिए है। काय भेद षट् है। सो इन षटकायकी रक्षा सो ही धर्म। सो कहैं हैं। पृथ्वी काय अप काय तेज काय वायु कायाके वनस्पति काय त्रसकाय ये षट् काय हैं इनकौं राखै सो धर्म है। पृथ्वी जो भूमि ताहि विना प्रयोजन खोदै नाहीं जालै नाहीं पीटै नाहीं इत्यादिक पृथ्वीकायकी रचा करि दया भाव करि हिंसा नाहीं करै। सो पृथ्वीकायकी रचा है। अपकाय जो जल सो जलकूं विना प्रयोजन जारे नाहीं नाखै नाहीं तथा प्रयोजन होय तहां जतनतैं घी तेलकी नांईं जलकूं वर्तै। विना प्रयोजन डारै नाहीं ऐसे जलकायकी रक्षा करै। और अग्निकाय तैं बिना प्रयोजन तो आरंभ नहीं करिए। मुजाईए नाहीं जालिए नाहीं जहां अग्निका प्रयोजन भी होय तो घटाय कैं कीजिये। ऐसे अग्नि-काय कौं राखै विना प्रयोजन पंखादि वस्त्र हिलावना झटकनादि क्रिया करि पवनकायकौं नहीं सताइये। सो पवन कायकी रक्षा है। वनस्पतीके प्रत्येक साधारण दूभ घास पत्ता वेलि छोटे वृत्त बड़े वृक्ष गुल्म कन्द मूल इत्यादिक हरी नीली कूं विना प्रयोजन खेद नाहीं करे। काटै नाहीं छेदे नाहीं छीलै नाहीं पीलै नाहीं हाथ पांव तै मर्दन नाहीं करें इत्यादि विधिसे वनस्पति कायकी रक्षा करै। और बेइन्द्रिय जौंक इल्ली नारू आदिक केंचुवा ए वेइन्द्रिय हैं। इनको काया राखै। और तेइन्द्रिय खटमल चींटी तिरूला

करनी। पढ़नेमें लज्जा करै, तो ज्ञानकी वृद्धि नहीं होय। यातैं शास्त्राभ्यास-पढ़नेमें लज्जा नहीं करनी। चरचानमें, प्रश्न करिवेमें, तत्व विचारमें, उपदेश करतैं, इत्यादिक विद्याभ्यासके ध्यानमें स्वाध्यायमें लज्जा करै, तो आप ही अज्ञानी रहै। अपना विगाड़ होय। तातैं विद्याके स्वाध्याय करवैमें, लज्जा नहीं करनी ॥ १० ॥ ऐसे भोजन, व्यापार, युद्ध, नृत्य, गीत, द्यूत, वाद, भोग, वादित्र, पठन इन कहे दश भेदन विषैं, चतुरनकों लज्जा जोग्य नाहीं।

इति श्री सुद्रष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, अनेक नय सूचक, उपदेश-कथन वर्णनो नाम, तेईसवां पर्व संपूर्ण भया ॥ २३ ॥

आगे ऐसा बतावैं हैं कि जो पक्ष, सबल होय तो निर्बलका भी कार्य सिद्ध होय—

गाथा—गिरि-सिर तरु-फल पकऊ, 'काको भक्षंति पक्षबल दीणो। णभूतव्यं सिंहो, पक्षीणो जय गज-घटा सूरो ॥ ७६ ॥

अर्थ—गिर-सिर तरु फल पकऊ कहिए पर्वतके शिखरपर एक वृक्षके फल पके हैं काको भक्षंति पक्षबल दीणो कहिये ताकौं काक तो पंखनके बलतैं दीन है तौ भी खाय है। पक्षीणो कहिये परन्तु पंखा नहीं तातैं णभूतव्यं सिंहो कहिये ताकूं सिंह नहीं भोग सकै है। जय गज घटा सूरो कहिये यद्यपि ये गजनके समूहकूं जीतवेकूं शूर है। भावार्थ—पक्षनका बल होय तौ समान्य बल धारीका भी कार्य सिद्ध होय। और पक्षनका बल नहीं होय तो बड़े बलवान्‌का भी कार्य सिद्ध नाहीं होय है। सो ही बतावैं हैं। जैसे कोई एक पर्वतके उतंग शिखर पर एक वृक्ष है। ताकै भले फल मिष्ट लागैं हैं सो ताकूं खायवे कूं कोऊ समर्थ नाहीं। ऊंचा बहुत है। सो ता फलकों काक तौ अपने पंखनके बल तैं भोग सकै। और तिस फलके भोगवेकौं सिंहकी समर्थ नाहीं। क्यों ? जो सिंहके पांखनका बल नाहीं। बड़े २ हाथिनका समूहकौं तो सिंह जीतै, ऐसा बलवान् है। परन्तु उत्तंग पर्वतके शीश पर वृक्षनके फल खायवेकौं समर्थ नाहीं। काहे तैं, कि पांख नाहीं। सो देखो, पांखनके बल तो काक भी बड़ा फल खावै। अरु पंख विना सिंहके हाथ भला—फल नहीं आवै। तातैं सर्व तैं बड़ा बल पंखनका जानना। तातैं विवेकी हैं ते पक्षबल नहीं तोड़े हैं। जैसे कोई बड़ा राजा है। ताके धन खजाना बड़ा है। आप महा बलवान् होय। बड़ा गढ़ होय। ऐसा होय। परन्तु अपनी

पक्षके योद्धानका अपमान करि तिन बड़े सामँतनका सहाय पक्ष तोड़ै तो आप राज्य भ्रष्ट होय। और योद्धानका पक्ष होय हजारों राजा जाकी पक्ष होंय। तो जीत पावै सुखी होय। तातैं विवेकी होय तिनकौं तन तैं धन तैं राज तैं विनय तैं जैसे बैने तैसे पक्ष वल राखना योग्य हैं तिनमें उत्कृष्ट पक्ष धर्मका है। ताका ही सहाय राखना योग्य है। आगे हित है सो बड़ा बल है। ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—णेह वल रघु-हरि दोऊ दहमुह जय सीय लेय लंकाए। दहसिर वन्धु विरोधय तण कुल खय राय खोय अपसाओ ॥ ७७ ॥

अर्थ—णेह वल रघु हरि दोऊ कहिए परस्पर स्नेहके बलतैं राम-लक्ष्मण दोऊ। दह मुह जय कहिए दशमुख कौं जीत कैं। सीय लेय लंकाए कहिए सीता कौं लेय लंकासे आये। दहसिर वन्धु विरोधय कहिए दशशीशने बंधुके विरोध तैं। तण कुल खय राय खोय अपसायो कहिए तन कुल अरु राज्यका क्षय करि अपयश पाया। भावार्थ—परस्पर बन्धुनके स्नेह होय सोही बड़ी सैन्य है। स्नेह ही बड़ा बल है। सो ही बड़ा खजाना है। सो ही बड़ा पुण्यका उदय है। सो ही बड़ा यश है। और परस्पर बन्धुनमें विरोधका होना सो ही बड़े पापका उदय है। सो ही अपयश है। सोही हार है। जैसे राम लक्ष्मण दोऊ भाइनने परस्पर स्नेह रूपी सैन्या तैं अपने बन्धु स्नेहके बलतैं रावण तीन खंडका स्वामी महा मानी बड़ा जोधा च्यारि हजार अक्षोहणी दलका ईश तिसकौं युद्ध विषैं जीत्या। ताकौं मार अपनी स्त्री महासती ताहि लई। पीछे इन्द्रकी विभूति समानि संपदा सौं भरी देवलोकको शोभा सहित ऐसी लंका-पुरी ताका राज्य पाय इन्द्रकी नांई लङ्कामें प्रवेश करते भये। सीता सहित लंकाका राज्य पाय सुखी भये सो यह दोऊ भाईनके परस्पर स्नेह रूपी सैन्य बलका महात्म जानना। और परस्पर बन्धु विरोध तैं रावणका क्षय भया। रावणने भोरापनें तैं भाई विभीषणसे द्वेष भाव करि देश तैं काढ्या। सो भाई विरोध तैं विभीषण रामचन्द्र पै गए। सो राम महा सज्जन, आएके रक्षक विभीषणकूं स्नेह देय राखा। विभीषणके जातैं रावण निष्पत्ती भया। युद्ध मैं मार्‍या गया। सो तन नाश भया कुल नाश भया। अरु राज्य भ्रष्ट होय अपयश पाय कुगति गए। सो ए बन्धु विरोधके अन्यायका फल है। तातैं विवेकी हैं तिनकूं जशकूं व सुख कूं बन्धून विषैं स्नेह-भाव राखनेका उपाय राखना

कुंथुवादि जीव तेन्द्रिय हैं ।इनकी काया राखै । और चौइन्द्रिय माखी मच्छर टीड़ी भ्रमर डांस इत्यादिक चौइन्द्रिय जीव इनकै तनको रक्षा करै इनकौ घातै नाहीं । पंचेन्द्रिय हस्ती घोटक कुत्ता बिल्ली मनुष्य, देव, नारकी ए पंचेन्द्रिय हैं इन पै समता भाव राखि इनके रक्षा रूप भाव राखि दया करै । ऐसे त्रस जीव च्यारि प्रकार हैं । तिनकौं पीड़ै सतावें नाहीं सो त्रसकाय की रक्षा है । ऐसे पृथ्वी अप तेज वायु वनस्पती त्रस ये षट्काय हैं । इनकी कायाको रक्षा करै सतावै नाहीं मारै नाहीं । मन वचन काय करि इन षट्भेद काया हैं । तिनकी रचा सो ही धर्म है । सो श्रावक तो एक देश रक्षा करैं । मुनि सर्व प्रकार करैं । इन षट्कौ राखैं हैं । सोही मोक्षमारग-धर्म है । ऐसे इन षट् काया कौं राखै धर्म कह्या । सो काया राखै धर्म जानना । आगे ऐसा कहिए है, जो जहां ऐतो वस्तु नहीं होय तो तिस देश नगरकूं तजिए—

गाथा—जहि पुर णह सतकारो, णह-बंधव णह मित्त जिणगेहो । विद्या धम्म ण सुसंगो, सह पुर देसोय हेय बुध आदा ॥ ७४ ॥

अर्थ—जहि पुर णसह सतकारो कहिये, जिस पुरमें सत्कार नहीं होय । णह-वन्धव णहमित्त जिण गेहो कहिये, जहां बांधव नहीं होंय, मित्र नहीं होंय, जिन मन्दिर नहीं होंय । विद्या धम्मण सुसंगो कहिये, विद्यावान् नहीं होंय, धर्म नहीं होय, सत्संग नहीं होय । सह पुर देसोय हेय बुध आदा कहिये, सो पुर-देश बुद्धिमान आत्माके तजवे योग्य है । भावार्थ—जे विवेकी हैं ते ऐसे अशुभ देशादि होंय, तहां नहीं रहैं । सो ही कहिये है । जहां जिस पुर-स्थानमें अपना आदर-सत्कार नहीं होय, तहां विवेकी नहीं रहैं। रहैं, तो अनादर पावैं हैं। और अनादर तैं, परणति संक्लेश रूप होय है, पाप बंध होय है । तातैं रहना ही भला नाहीं। और जहां अपने भाई-वन्धु-कुटुम्बी-सहकारी सज्जन नहीं होंय, तहां नहीं रहना । और जहां जिनमन्दिर नहीं होंय, धर्म-प्रवृत्ति नहीं होय, तो ऐसे धर्म-रहित चेत्र विषैं, धर्मका लोभी धर्मात्मा सुजीव नहीं रहै ।और जा देश-पुरमें विद्यावान्-पण्डित नहीं होंय, तिस चेत्रमें नहीं रहिये । अगर रहै, तो अपना ज्ञान नष्ट होय । अज्ञानी जीवनके संग तैं, आप अज्ञानी होय । जैसे गोपाल, पशूनके सदीव सङ्ग तैं, आप भी पशु समानि, अज्ञानी रहै है । और जीवका भला करनहारे शुद्ध-धर्मकी प्रवृत्ती-क्रिया जहां नाहीं होय, ता क्षेत्रमें नाहीं रहै । ३३७

कुधर्मीनमें रहै, तौ सुधर्मका अभाव होय। तातैं धर्म-रहित चेत्रमें नहीं रहिये। और जहां खोटे-संगके मनुष्य सप्त व्यसनी होंय। चोर, ज्वारी, अनाचारी जीव होंय। अरु सत्संगतिके सुआचारी नहीं होंय, तहां नहीं रहिये। और ऊपर कहे कारण जहां होंय, तहां बुद्धि-बलका धारी धर्मात्मा, ऊंच-संगका वांच्छिक, ऐसे स्थानमें नहीं रहै। और जो रहै, तो अपने भले गुण-धर्मका अभाव होय। ऐसा जानना। आगे इन स्थानमें लज्जा करिये नाहीं, ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—हार विहारे जूझे, णित गीतेय द्यूत वादाए। भोगो वाजय पठनी, यह दह थलेय लज्ज नहिं सुद्धा ॥ ७५ ॥

अर्थ—भोजनमें, व्यवहार में, युद्ध में, नृत्य करनेमें, गीत गानेमें, जुआ खेलनेमें, वाद-विवाद (शास्त्रार्थ) करनेमें, पंचेन्द्रिय भोगनमें, वादित्र बजावनेमें, पढ़नेमें, इन दश स्थाननमें, विवेकीन कौं लज्जा करना योग्य नाहीं है। भावार्थ—जहां भोजन जीमतैं लज्जा करै, तो भूखा रहै, खेद पावै, लोक-हाँसि होय, भोरापना प्रगट होय। जैसे धर्म-परीक्षामें मूरखनकी कथा कही। तहां एक मूरख ससुरार जाय, भोजनमें लज्जा करि, रात्रिकौं कोरे चांवल खाय, मुख फड़ाया। लोक-हाँसि भई, अज्ञानता प्रकट भई। तातैं भोजनमें लज्जा करै, तो इस मूरख ज्यों खेद-हांसी पावै। तातैं यहां लज्जा नहीं करना ॥१॥ और व्यवहार विषैं लज्जा करै, तो व्योपार नहीं बनै। तातैं व्योपारमें लज्जा नहीं करनी ॥२॥ और वैरी तैं युद्ध करतैं लज्जा करै, तौ युद्ध हारै मारया जाय ॥३॥ और नृत्यमें लज्जा करै, तो नृत्य-कला यथावत् नाहीं बनै समय वृथा जाय। तातैं नृत्य-समयमें लज्जा नहीं बनै ॥४॥ ज्वारी कौं द्यूत-रमते लज्जा नहीं होय। तहां लज्जा करै, तो धन हारे। तातैं द्यूतमें लज्जा नहीं करनी ॥५॥ और वाद समय, परवादी (प्रतिवादी) सूं धर्म-कर्मका वाद करतैं लज्जा करै, तो वाद हारै। तातैं वाद-समय लज्जा नहीं करनी ॥ ६ ॥ और पंचेन्द्रियभोगन समयमें लज्जा करै, तो इन्द्रिय-सुख नाहीं होय। तातैं पंचेन्द्रिय-भोग समय लज्जा नहीं करनी ॥ ७ ॥ और वादित्रोंके बजावेमें लज्जा करैं, तौ वादित्र-कला सम्पूर्ण नहीं बनै। तातैं वादित्र-समय लज्जा नहीं करनी ॥ ८ ॥ गावनेमें लज्जा करै, तो गावना नहीं बनै। तातैं गावनेमें लज्जा नहीं करना ॥ ९ ॥ शुभ-ज्ञानके बढ़ावे कौं, परभव-सुख पायवे कौं, शास्त्राभ्यास करने-पढ़ने विषैं, लज्जा नहीं

जोग्य है। और जिन जीवन कैं रावणकी नाईं तीव्र कषाय उदय आवैं तब बन्धु विरोध होय ऐसा जानना। आगे न्याय मार्गकी महतता बताइए है और अन्यायका फल कहिए है—

गाथा—जुगभट रघु हरि न्यायो दहसिर जय सैण सहित जस पायो। दहमुख ठाण अणायो कुलबलतण णास अयस दुगताई ॥ ७८ ॥

अर्थ—रघु-हरि दोऊ ही भटोंने न्यायके प्रसाद तै दसशीशकूं सैन्या सहित जीत यश पाया। अरु दसमुख अन्याय करि कुल फौज निज तन इनका नाश करि अपयश पाय दुर्गति गए। भावार्थ—राम लक्ष्मण ए दोऊ महा सुभट सर्व राजनीतिके वेत्ता आप दोऊ भाई रावणके जीतवे कौं लंका चालने कौं उद्यम भए। तब सुग्रीवादि बंदर वंशीनके राजा सर्व आय कहते भए। हे स्वामी! वह महा योद्धा है। तीन खंडके सामंतनके जीतबेका उस एकलेमें बल है। एसा रावण महापराक्रमी चक्रका धारक तीन खण्ड नाथ ताके संग अनेक बिद्याके नाथ बड़े राजा अनेक देव जाके आज्ञाकारो और हजारों देव जाके तनकी रक्षा करैं हैं। ऐसा जो रावण ताके जीतवेकौं इन्द्र भी सामर्थवान नाहीं है। ऐसे त्रिखंडी नाथके जीतवे कौं उद्यमी भये हो सो तुह्मारा उद्यम कैसे पूर्ण होयगा? और कदाचित ये बातैं रावणने सुनी तो तुह्मारा तन सहजही संकटमें पड़ेगा सो तुम विवेकी हो विचार देखो। तुम तौ दो भाई हो अरु रावण पृथ्वीनाथ है। कैसे जीत पावोगे। तातैं विचार कैं उद्यम करना योग्य है। इत्यादिक रावणके पराक्रमकी बात सर्व विद्याधरोंने कही। तब इन विद्याधरोंके बचन सुनि कैं दोऊ भाई निशंक होय कहते भये। भो विद्याधीश हो तुमने रावणके बल पराक्रम पुण्यकी महिमा हमारे आगे कही तुमकों रावण ऐसा ही भासै है। जैसे अनेक बिना सींगके भेड़नका समूह तामैं एक शृंगका धारी मीढ़ा होय है। सो सर्व भेड़नकौं बली हो दीखै है। वह अज्ञान भेड़नका समूह ऐसा नाहीं जानै है, जो यह फलानी भेड़का बच्चा है। सो जेते हम हैं तैंसा ही ये है। हमसे ही याके माता पिता हैं। परन्तु याके शृंग देखि सर्व भेड़ उस मीढ़ा तैं भय खाय डरैं हैं। सो मीढ़ा सर्व भेड़नके समूह कौं बलो भासै है। सो सर्व भेड़—बकरी उस मीढ़ाके दास होय उसकी आज्ञा मानैं हैं। और वह मीढ़ा उन सब बकरी—भेड़नका नाथ होय अनेक भेड़ अपनी आज्ञा रूप देख तिन सहित वह मीढ़ा महा मानो भया स्व-

च्छंद होय वन विषैं वांका २ फिरै है। सो जब तांई नाहरका शब्द वनमें नहीं भया तब तांई वह मीढ़ा फूल्या फूल्या वनमें फिरै है। और जब सिंहकी गर्जनाका शब्द भया तब ताकूं सुनि कैं मीढ़ादि सर्व भेड़ बकरी भय कर कंपायमान होय खान-पान की सुधि भूलि जांय हैं। जीवनका संदेह करें। ऐसे ही तुम जानों। जब तांई रामबलीके धनुषकी टंकार नहीं भई तब तांई रावण रूपी मीढ़ा नभचर रूपी भेड़नमें मानी भया है। जब हमारा सिंह समानि शब्द भया तब रावण मीढ़ा कूं सेन्या रूपी भेड़न सहित जीवना कठिन जानो। अहो। खगाधीश हो चोरका पराक्रम कहा? रावण चोर है।अन्याय पथका धारी है। जो राजा होय अन्याय करे। तो ताका पराक्रम नष्ट होय। तुम मति डरो तुम्हारा चित्त भयरूप भया होय। तो तुम जाय अपने घर कुटुम्बमें तिष्ठौ। हम तो न्याय पे युद्ध करैं है। सो सांचे होंयगे तो दोऊ भाई जीतेंगे। ऐसी कहि रावण तैं युद्ध कीया। सो अपनी न्याय रूपो सैन्याके बल करि दोऊ भाई रावण कूं मारि सर्व सेन्या सहित जीत्या। ताकरि पृथ्वी मण्डलमें यश प्रगट होय पवनकी नांई भ्रमता भया। सो यो तो सत्य मार्गकी महिमा जानौ। और रावण अर्द्ध चक्रवर्ती महा बलवान् बड़ी सैन्याका धारी था। सो भी अन्यायके जोगतें युद्ध हारा। अन्यायके योग तैं, दोय पुरुषन तैं भंग पाय मार्‍या पर्‍या। सो ए अन्यायका फल है सो न्यायका फल रामचन्द्र कूं अरु अन्यायका फलरावणकूं मिल्या। ऐसा जानि अन्याय मार्ग तजि न्याय मार्ग रूप परणमन करना योग्य है ॥ ७८ ॥ आगे अनेक संकटन विषैं पूर्व पुण्य जीवकूं सहाय है। ऐसा कहैं हैं—

गाथा—रण वण अरि जल ज्वाला। सायर सखरेय सेण पम्मत्ते, मग गज हय असवारो; एको संणाय पुव्व पुण्णाए ॥ ७९ ॥

अर्थ—रण कहिये, युद्धमें वण कहिए वनमें। अरि कहिये वेरी तैं। जल कहिए नीर तैं। ज्वाला कहिए अगनि तैं। सायर कहिये समुद्र तैं सखरेय कहिये पर्वत तैं। सेण कहिये सोवनेमें। पम्मत्ते कहिये प्रमाद समय। मग कहिये मार्ग जाते। गज हय असवारो कहिये हाथी घोड़ाकी असवारी समय। एको संणाय पुव्व पुण्णाए कहिये इन कहे ऊपरले स्थानकनमें एक पूरव भवका कीया पुण्यही सहाय जानना। भावार्थ— जब प्राणी युद्धकों जाय है। तब शरीर पे रच्छाकूं बखतर टोप पाखर झिलमिल (वस्त्र विशेष) पेटी ढ़ाल अनेक

वस्तु अपने तनकी रक्षा कूं राखै है। और ऐसा विचारता जाय है। जो पराये तीर गोली आवेगी तौ बखतर टोपादिक तैं रक्षा होयगी। और मेरे पास सुभट सैन्या बहुत है सो मैं जीतंगा। ऐसा विचार करै है सो सब बृथा है। रणतैं जीवित आवना जीति आवना सो सर्व फल एक पूर्वले पुण्यका है। पूरव पुण्य नाहीं होय तो मरण ही होय है ऐसा जानना। और कोई दीरघ अटवी (बन) में भूलकर आ गया होय तो तहां अनेक सिंह सुअरादि दुष्ट जीवनतैं बचना। तथा चोरादिके भय तैं वचि सुख तैं घर आवना। सो भी पूरव-पुण्यका ही सहाय जानना और कोई दीरघ बैरीके दावमें आजाय, तहां भी पूरव-पुण्य सहाय है। कोई नदी सरोवरके दीरघ जलमें जाय पड़ै तो वहां भी पूर्व पुण्य सहाय जानना। दीर्घ अग्नि बीचमें पड़ जाय, तहां भी पूरव पुण्य सहाय है। कदाचित् समुद्रमें जाते तामें जाय पड़ै। तो वहां भी पूरव पुण्य सहाय है। और अनेक भयके स्थान ऐसे भारी पर्वतनके समूहमें जाय पड़ै। तहां पुण्य ही सहायक होय है। सो कैसे हैं पर्वत उत्तङ्ग शिखरकों धरैं बड़ी २ गुफान करि पोले अत्यन्त भयके उपजावनहारे सिंहादि क्रूर-जीवन करि भरे, ऐसे पर्वतनमें बचावनहारा एक पुण्यही है। जब जीव, निद्राके उदयतें निद्राके वशि होय, तब मृत्युकी नांई आशंका उपजै है। बेसुध होय पराक्रम रहित होय है। ऐसी अवस्थामें बैरी चोर अग्नि सर्पादिक जीवनतैं बचावनहारा पुण्य ही है। प्रमाद दशामें अनेक कार्य करै है सो अनेक स्थाननमें प्रमाद तैं चलै है। प्रमाद तैं बोलतैं प्रमाद तैं खावतैं प्रमाद तैं भागतैं, इत्यादिक प्रमाद दशानमें पुण्य सहाय करै है। अनेक संकटनमें, अनेक रोगके संकटनमें, बैरीके संकटमैं, सिंहादिक जीवनके संकटमें, अग्नि-जलादि अनेक संकटनमें पुण्य सहाय करै है। जब जीव, हस्तीकी असवारी करि भ्रमै है तव, तथा घोटक-असवारी करि भ्रमै तब, इनकी असवारीका निमित्त, काल समान भयदाई है। सो इन गज-घोटककी असवारीमें, पुण्य ही सहाय है। ऐसे ऊपर कहे जे सर्व स्थान, तिन में कालका प्रवेश है। ये सब स्थान, दुखके कारण हैं। सो इनमें निर्विघ्न राखनहारा, पुण्य ही जानना। तातैं -वेकी जीव हैं, तिनकौं भव-भव सुखके निमित्त, पुण्य-उपाजंन करना योग्य है। हे भव्यात्मा, तं महा संकट , धन भी उपाया चाहै है। सो संकट-खेद किये तौ धनका उपार्जना दुर्लभ है। तूं संकट सेवन करके,

धर्मका सेवन करै। तो धमके प्रसाद तैं, धन होना सुगम है। देखि, कष्ट तैं धन होय, तौ नीच-कुली हिम्मालादि, शीश-भारादिक ढ़ोवन कार्य बहुत करैं हैं। सो तिनका उदर भी कठिनता तैं भरे है। तातैं तूं धनका अर्थी है, तौ तुझै धर्मका ही सेवन करना योग्य है ॥ ७९ ॥ आगे ऐती वस्तु काहूके कार्यकारी नहीं, ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—सर-जल-गत तरु-छाया, सुत-गुण-गत धण-दाण पुस्स गंधाऊ। कण्णा तव गत साधउ, इव धम्म-गत-णर णेण-गय काया ॥ ८० ॥

अर्थ—सर जल गत कहिये, सरोवर तौ नीर रहित। तरु छाया गत कहिये, वृक्ष छाया रहित। सुत गुण गत कहिये, पुत्र गुण रहित। धन दाण-गत कहिये, धन दान रहित। पुस्स गंधाऊ कहिये, फूल सुवास रहित। कंणा तव गत साधऊ कहिये, दयाभाव रहित साधु। इव धम्म गत णर कहिये, ऐसा ही धर्म-रहित मनुष्य। णेण गय काया कहिये, जैसे नेत्र रहित शरीर। भावार्थ-सरोवरकी शोभा जल है। सरोवरका विस्तार तौ वड़ा होय। पक्की-सुन्दर पारि होय। ऐसे सरोवरमें जल नहीं होय। तो जल रहित सरोवर वृथा है। और वृक्षकी शोभा, छाया तैं है। वृक्ष वड़ा होय। दूर तैं दीखे, ऐसा है। अरु छाया रहित है। तो वृथा है। पुत्रकी शोभा सुपूत है। सुपूत-पुत्र सब कूं सुखकारी है। और पुत्र तौ है। परन्तु अनेक दोष सहित होय, अविनयी होय, व्यसनी होय, ऐसे अपयशकारी, अवगुण करि सहित होय, गुण-रहित पुत्र होय, तौ वह पुत्र वृथा है। धन है, सो दान तैं सफल होय है। धन तौ बहुत है किन्तु दान रहित है, तौ धन वृथा है। और फूल है सो सुगन्ध तैं भला लागै है। फूल दीखनेका तो भला है, परन्तु सुगंध रहित है। तौ वह फूल वृथा है। साधु है सो दयाभाव सहित, महा तपस्वी होय, सो पूज्य है। और साधू है अरु दयाभाव रहित है। तप भावना रहित, दीन होय। तौ ऐसा साधू वृथा है। शरीर है, सो नेत्रन तैं सफल है। जो शरीर तौ है, किन्तु नेत्र रहित है। सो काया वृथा है। तैसे ही मनुष्य पर्याय, धर्म तैं सफल है। और जैसे ऊपर कहे-सर, जल विना वृथा है। तरु, छाया रहित वृथा है। इत्यादिक कहे ए वृथा-स्थान तैसे ही धर्मविना, मनुष्य-पर्याय वृथा जानना।

तातें विवेकी हैं, तिनकौं पाई पर्याय कौं, धर्म विषैं लगाय, सफल करना योग्य है ॥ आगे ये वस्तु पर-उपकार कौं बनी हैं, सो बताईये है—

गाथा—सरता-पय पुख-गंधउ, तरु-साया-फल ईख-मधुराई। सज्जण तणधन वाचउ, इ पर-उवकार कारणं सव्वे ॥ ८१ ॥

अर्थ—सरता पय कहिये, नदीका नीर। पुख-गंधउ कहिये, फूलकी सुवास। तरु साया फल कहिये, वृक्षकी छाया व फल। ईख मधुराई कहिये, ईख जो सांठेका मिष्टपना। सज्जण तण धण वाचऊ कहिये, सज्जनका तन-शरीर धन, वचन। इ पर-उपकार कारणं सव्वे कहिये, ये कही जो वस्तु सो सब पर-उपकारके निमित्त बनी हैं। भावार्थ-नदीका जल, नदी नहीं पीवे। परोपकार निमित्त, अन्य जीवनके पोषवे कौं, सुखी करवे कौं, जलका प्रवाह सहज ही बह्या कर है। फूलकी खुशबू, फूल नहीं सूंघे है। परन्तु और जीवनके सुखी करवे कूं, फूल खुसबू कौं धारैं हैं। और वृक्षनकी सघन-शीतल छायामें, वृक्ष नहीं बैठें हैं। जीवनके खुसी करवेके अर्थ, परोपकार कूं, सघन-छाया कूं वृक्ष धारैं हैं। और वृक्षके मनोहर-मिष्ट फल, वृक्ष नहीं खांय हैं। परन्तु परके उपकारके निमित्त, अन्य जीवन कौं पोषवे कूं, सुखी करवे कूं, वृक्ष फल धारण करैं हैं। ये औरनके पत्थर भी खाय, मिष्ट-फल देंय, ऐसे उपकारी हैं। सांठे हैं सो आपनो मिष्ट रस, आप नहीं भोगैं हैं। परन्तु परके उपकार कूं, परके पोखवे कूं, सुखी करवे कूं, रसका धारण करैं हैं। ऊपर कही वस्तून के गुण, सो सब पर-उपकारके कारण हैं। तैसे ही सज्जन-धर्मात्मा-दयावान् पुरुष हैं, तिनका शरीर-पुरुषारथ, पर जीवनकी रक्षाकौं पर उपकारके निमित्त बन्या है। और जीवन कूं सज्जन नाहीं सतावैं हैं। और सज्जन पुरुषनका बचन भी पर-उपकारके निमित्त है। जैसे परजीवका भला होय पर-जीव सुखी होंय ऐसा बचन बोलैं हैं। और सज्जनका धन पाप-हिंसामें नहीं लागै। जहां अनेक जीवनकूं पुण्य उपजै धर्मात्मा जीवनकूं अनु-मोदना करि पुण्य उपजावै तथा अनेक जीवनकी जहां रक्षा होय इत्यादिक धर्म स्थानकनमें सज्जनका धन लागै। ऐसे ऊपर कहे जे-जे स्थान सो सर्व पर उपकार कौं बने हैं, ऐसा जानना ॥ ८१ ॥ आगे इन षट् स्थाननमें लज्जा नहीं करनी, ऐसा कहिये है—

गाथा—जिण पूजा मुणि दांणउ पत्ताखाणाय झांण आलोय । गुरुय णिज अघ जंपय इह षड थाणेय लज्ज नहिं वुद्धा ॥ ८२ ॥

अर्थ—जिण पूजा मुणि दांणउ कहिये जिणपूजा अरु मुनि दानमें । पत्ताखाणाय झाण आलोये कहिये त्याग मैं ध्यान मैं आलोचनामें । गुरुय णिज अघ जंपय कहिये गुरुके समीप अपने दोष कहनेमें । इह षड् थाणेय लज्ज नहिं वुद्धा कहिये इन षट् स्थानकनमें लज्जा नहीं करनो । भावार्थ—जिन पूजामें लज्जा करै तो पूजाका फल नाहीं पावै । तातैं अन्तर्यामी सर्वज्ञ वीतराग भगवानकी पूजा निशंक होय अष्टद्रव्य तैं करनी । ज्यों उत्तम फल होय ॥ १ ॥ और यतीश्वरके दान देने विषैं लज्जा करै तो दानके फलका अभाव होय तातैं जगत गुरु, दयाभण्डार नगन तन धारी वीतरागी, समता समुद्रके वासी गुरुनकूं दान दीजिये; तब निशंक होय दीजिये । तब उत्कृष्ट पुण्य फल होय । ऐसे मुनीश्वर कौं कोई मिथ्यादृष्टी भक्ति भाव तै दान देय तो ये उत्कृष्ट भोग भूमिमें तीन पल्यकी आयु सहित तीन कोसके तन सहित उत्तम मनुष्य होय । और जो सम्यग्दृष्टी ऐसे गुरुकों दान देय तौ कल्पवासी-देव होय। तातैं मुनिके दानमें लज्जा नहीं करनी ॥ २ ॥ और प्रत्याख्यान जो कोई वस्तुका त्याग करना तथा कोई नियम-आखड़ी करनी होय तौ निशंक होय करिये । सर्वमें प्रगट कर दीजे यामैं लज्जा नहीं करिये । लज्जा करै तो त्यागका अभाव होय । तथा कारण पाय नियम भंग होय । तातैं निशंक होय त्याग प्रगट करनेमें लज्जा नाहीं करिये ॥ ३ ॥ और लज्जा सहित ध्यान करै, तौ चित्त स्थिरीभूत नहीं रहै । फल हीन होय तातैं निशंक होय ध्यान करै तौ उत्कृष्ट फल होय । यातैं ध्यानमें लज्जा नहीं करिये ॥ ४ ॥ और अपने किये पापन कौं यादि करि; आलोचना करतैं लज्जा नहीं करिये । कदाचित् ऐसा विचारै, जौ मैं ऐसा बड़ा आदमी होय अपनी निन्दा कैसे करौं ? तौ पाप कटै नाहीं । तातैं निशंक होय अपनो अज्ञानता प्रमाद बुद्धिकी बारंबार आलोचना किये पापका नाश होय । ऐसा जानि आलोचना करते लज्जा नहीं करनी ॥ ५ ॥ और गुरुको पासि जाय अपने दोष प्रकाषिये—कहिये, तो दोष जाय । और गुरु पै अपने दोष प्रकाश तैं लज्जा करै तो दोष नाहीं जाय । जैसे सद्वैद्यके पास रोगी अपना रोग प्रकाशतै लज्जा करै भय करै तो रोग नहीं जाय आप दुखी रहै । वैद्य पै रोग प्रगट करै, तो वैद्य औषध देय सुखी

करै। तातें निशंक होय गुरु पै अपना दोष कहिए, लज्जा नहीं करिए, तौ दोष जाय ॥ ६ ॥ ऐसे कहे ऊपर षट् स्थान, तिनमें लज्जा नाहीं करिए। ऐसा जानना ॥ आगे साहस तैं सर्व संकट मिटै है, ऐसा कहैं हैं—

गाथा—रोगे रण संणासे संकट मरणे य झांण तव धम्मे। दालद्येजल गहणं साहसे सफलं होय सहु धारा ॥ ८३ ॥

अर्थ—रोगमें रणमें सन्यास समयमें अनेक संकटनमें मरणसमय ध्यान समय तपमें धर्मसेवनमें दारिद्रमें दीरघ जलके तिरवेमें इन सर्व जगहमें साहस तैं सब कार्य सफल हो हैं। भावार्थ—पाप कर्मके उदय करि आए नाना प्रकार वात पित्त ज्वर कफ खांसी स्वासादिक अनेक रोग तिनकरि बधी जो वेदना सो काहू तैं मिटती नाहीं। रोये-चिन्ता किए, भरम खोवना है। सुखदाता नाहीं। तातैं विवेकी हैं ते ऐसा विचारैं जो मैंने पूर्व पाप कर्मउपार्ज्या है, सो अब विलाप किए कहा होय? कैसे जाय है? तातैं राजी होय मोकौं भोगना है। ऐसासाहस विचारै तब सर्व रोग सहजही जाय। वेदना मन्द होय जाय है। तातैं रोग-दुखमें साहस चाहिये। और युद्ध विषैं अरि कौं प्रवल जानि संग्राम विषम देखि, करि कायर भाव करै। कंपायमान होय, धीरजता तजि भागै। तौ लज्जा आवै। युद्ध हारि जाय। कुलकूं दाग लागै। तातैं रणमें साहस चहिये जाकरि जय होय। और काहू धर्मात्माने अपना आयु-कर्म निकट जानि कैं इस धरमी जीव नैं परभव सुधारवे कौं अनशनका धारण किया होय। खान-पान तजि कुटुम्ब व शरीर तैं मोह तजि आप तुच्छ परिग्रह कूं राखि धर्मध्यान रूप तिष्ट्या है। किन्तु काय तैं आतमा छूटतैं ढील होय है। सो ज्यों-ज्यों दिन घड़ी निकसैं हैं, त्यों २ यह सन्यास धारनहारा ऐसा विचारै। जो अब आतमा तन तैं शीघ्र छूटै तौ भला है। अब मेरा साहस रहता नाहीं। इत्यादिक अस्थिरता भाव विचारै तौ व्रत तै डिगना परै। तातैं व्रतकी रक्षाके निमित्त ऐसा विचारै, कि मैंने इस कायका ममत्व त्यागा। धर्मध्यान मई निराकुल होय तिष्ठू हूं। अब यह तन जब जाय तब जावो मेरे कछु खेद नाहीं। ऐसा साहस सन्यासमें भले फलका दाता है। तातैं सन्यासमें साहस चाहिये। और मरण समय महा-वेदनामें मोहके वशि करि आकुलता करै। तो मरण तौ टलता नाहीं परन्तु कायरता तैं मरण बिगड़ जाय, कुगति होय तातैं मरण-समय धीरजता सहित मोह रहित परणाम करि मरण करै।

तो परभव सुधरै तातैं मरण समय साहस चाहिये। और कर्मके उदय तैं जीव पै अनेक प्रकार संकट आय पड़ैं हैं। तिनमें धीरजता होय तो बड़ा संकट सुगम भासे। धीरजता विना दुखमें बड़ा खेद होय। तातैं दुख संकटमें साहस चाहिये। और ध्यान करते चित्तकी एकाग्रता सहित धर्म ध्यानका विचार करता पुण्यका संचय करै है। ता समय कोई पापी जन आय धर्मध्यान तैं डिगाया चाहै। ताके निमित्त अनेक कुचेष्टा करै। सो वाके उपसर्ग तैं चंचल भाव होय तो धर्मका फल हीन होय। धीरजता राखे तो पूजा पावे। जैसे वह सेठ चौदशकी रात्रि स्मशान-भूमिमें प्रोपध सहित ध्यान धरि तिष्ठै था। पीछे दोय देव, धर्मकी परीक्षाकौं आये तव सम्यग्दृष्टी देवने कही ये सेठ गृहस्थ है। हमारा धर्मी है सो आज चौदशकूं उपासा ध्यान रूप है। ताहि डिगावौ तौ जानें। तव इस ज्योतिपी मिथ्यादृष्टी देवने सर्व रात्रि अनेक उपसर्ग किये सो नाहीं डिग्या तब धीरजता देखि देवने सेठकी पूजा करी। तातैं ध्यानमें साहस चाहिये। अनेक तप करते कवहूं तन तैं मोह उपज आवै। विपय कषायकी इच्छा होय आवे। तव तप तैं दीरघ खेद जानि विमुख चित्त करै। तौ तपका फल नष्ट होय। तातैं तप मैं खेद होय तैं तपका लोभी साहस राखे तौ तपका उत्कृष्ट फल होय। और अपने सुधर्मका घात करनहारे अनेक पापी जन आपकौं धर्म तैं चलाया चाहैं। तौ पापी जनके उपद्रव किये में अपना धर्म रतन राखवै कूं साहस राखना योग्य है। पुण्यके उदयमें तौ सव कोई धर्ममें धीरज राखैं हैं। परन्तु जब पापका उदय प्रकट होय है। तव दरिद्रतामें धीरज परणाम राखना, ये महा विवेकीका वल है। तातैं दरिद्रतामें धीरज साहस योग्य है। और जव कोई कर्मके जोग तैं कोई दीरघ जलमें जाय पड़ना होय अरु कोई उपाय नाहीं दीखै। तव एक साहसही सहाय जानना। ऐसे कहे जे ऊपर अनेक अशुभ कारण हैं, तिनमें साहसही जोग्य है ऐसा जानना ॥ ८३ ॥ आगे ये तीन स्थान विवेकी जीवके हाँसिके कारण हैं ऐसा दिखावैं हैं—

गाथा—अगय पठत आयाणो, विविधा सिंगार काय विधवायो। जग निन्दो खुलचित्तो, ए तीए थाणेय हाँसि मग गेयो ॥ ८४ ॥

अर्थ—अगय पठत आयणो कहिये, अजान होय कैं आगे वोलै। विविधा सिंगार काय विधवायो कहिये,

विधवा-स्त्री नाना-शृंगार शरीर पै करै । जग निन्दो खुसचित्तो कहिये, जगत निन्द होय कैं, सदा खुशी रहै । ए तीए थाणेय हाँसि मग गेयो कहिये, ये तीनों स्थान हाँसिके कारण जानना । भावार्थ—आपकौं जो पाठ आवता नाहीं, सो और कोई पढ़ता होय, ताके आगे २ आप बोलै—पढ़ै, सौ भोरा—अज्ञानी जीव, विवेकीन करि निन्दा पावै । सो जीव, हाँसिका स्थान है । यहां प्रश्न-जो अज्ञान-जीवनका भोरापना देखि, विवेकी जीव कों बतादेना योग्य है । परन्तु हाँसिका करना, जोग नाहीं । ताकासमाधान-जो अज्ञानी दोय प्रकारके हैं । एक तौ भोरा, अजान; सरल-परणामी अज्ञान । सो आप कौं ऐसा मानैं; जो मैं कछु समझता नाहीं । मोकौं कोई धरमका मारग बताय, मेरा परभव सुधारै, तौ वा पुरुषका उपकार भव-भव नहीं भूलूं । ऐसा धर्मार्थी होय, सो तो भली सीख मानैं । रुचि तैं अंगीकार करै । ऐसे भोरे-अज्ञानी जीवकी हाँसि तौ विवेकी नाहीं करैं । ऐसे कूं तौ भूलै पै बताय, ताकौं सुमारग लगाय, ताका भला करैं । और एक अज्ञानी-हठी-मानी होय है । सो आप कूं पण्डित मानता-संता; अपना महन्तपना औरन कों बतावता-संता, ऐसा अज्ञानी मान-बुद्धि तैं काहू कूं पूछता नाहीं । आपकों आवता नाहीं । पठन करै, तब औरनके आगे २ बोले । सो ऐसा मानी-अज्ञानी आप अपने कौं पण्डित मानैं । ते जीव हाँसि कूं प्राप्त होय हैं । और जिस स्त्रीका पति मर गया होय । ऐसी विधवा स्त्री; शरीरमें नाना-प्रकार शृङ्गार करै । ताम्बूल खावना; दर्पणमें मुखकी शोभा देखनी, शरीर कौं वस्त्र पहराय निरखना; अञ्जन-सुरमा नेत्रमें अंजन करना; ऐसी स्त्री निन्दा पावै । स्त्रीकी शोभा; पतिके पीछे थी । सो पति मुए पीछे, शृङ्गार करि अपने तनकी शोभा और कूं दिखाया चाहै । सो कुशील दोष-मण्डित-स्त्री. विवेकीनके हाँसिका मारग है । और जे जीव जगत-करि निन्द्य होंय । सर्व जगत-जन कौं अप्रिय होंय । जग निन्द्य क्रिया- आचारके धारी होंय । जहां जांय, तहां अनादर पावैं । ऐसा जीव, अपयशकी मूर्ति जाकौं लोकनिन्दाका भय नाहीं, महा निर्लज्ज होय सदैव हरषतैं फिरै, सुखी रहै । ऐसा पाप—निशान मूरख जगमें हाँसिका मारग है । ऊपर कहे ये तीन जातिके जीव, सो हाँसिके मारग जानना । तातैं विवेकी जन हैं तिन कूं जगत-निन्द्य कार्य तजना योग्य है । तातैं जे अल्प पढ़्या होय, ताकौं तो विशेष-ज्ञानीके पीछे पढ़ना

योग्य है और विधवा स्त्रीको शृंगार करना योग्य नाहीं। जगत-निन्द्य जीवकैं देश-नगर तजि देना तथा लज्जा सहित रहना, ये बात सुखकारी है सो ही करना भला है ॥ ८४ ॥ आगे ऐसा कहैं हैं जो अनादर तो किनका गुण है, और किनका आदर भी दुख है, सो बताईये है—

गाथा—वर सतसंग अपमाणो, हेयो कुसंग जंतु सतकारो। जिम जुर जुत पय हेयो, लंघण, पादेय कटुक भेषजये ॥ ८५ ॥

अर्थ—वर सतसंग अपमाणो कहिये, सत्संगमें अपमान होय तो गुणकारी है। हेयो कुसंग जंतु सत्कारो कहिये; कुसंगी जीवनमें गये अपना सत्कार भी होय तो भी तजवे योग्य है। जिम जुर जुत पय हेयो कहिये, जैसे ज्वर वारे कूं दुग्ध तजना योग्य है। लंघण पादेय कटुक भेषजये कहिये, तथा लंघण अरु कटुक औषधि उपादेय है। भावार्थ—सत्संगमें सप्त व्यसनके धारी जीव अपमान पावैं हैं। काहे तैं, सो कहिये हैं। जो सत्संग है सो जगत—गुण करि भर्या है। यहां जगत-निन्द्य औगुण, तिनके धारी औगुणी जीव, तिनका सत्संगमें प्रवेश पावता नाहीं। सत्संगमें औगुणी-जीव अनादर पावै। और कोई सत्संगमें आदर चाहै; तौ कुसंग के दोष तजौ। गुण कौं धारौ, ज्यों सत्संगमें आदर पावो। और जे औगुणी हैं तिनका आदर, सत्संगमें होता नाहीं। ये सत्संग धन्य है जो औगुणका प्रवेश नहीं होने देय है। हे भव्य हो, यो सत्संग जो अनादर करै, सो परके दोष मिटायवे कूं करै है। तातें सत्संगका अनादर ही भला। सत्संगीन कैं काहू तैं द्वेष नाहीं। जो कुसंगी जीव अपना औगुण छांड़ि देय, तौ वाहीका आदर करैं। तातें हे सुबुद्धि! जो तू अपना भला किया चाहै, तो सत्संगमें रह। सत्संगका अपमान तेरे दोष छुड़ावे कूं है। तातें सत्संगी तेरा अपमान करैं हैं। सो तेरे उत्कृष्ट सुखका कारण है। सत्संगके अपमान तैं कदाचित मानके योग तैं बुरा मान्या तौ तेरा परभव विगड़ जायगा। तेरा औगुण नहीं जायगा। तातैं तूं अपना विवेक प्रगट करि जस चाहै है। तौ सत्संगके पुरुष जो तेरा अपमान करैं हैं सो परमार्थके अर्थ जानना। हे भव्यात्मा जवलौं तोकूं कुसंगका आदर प्रिय लागै है। तवलौं तेरा दोष मिटता नाहीं अरु सत्संगका अपमान भला लागता नाहीं। तातैं तोकूं कुसंगका सत्कार स्नेह-भाव तजना योग्य है। जैसे जुर सहित रोगी कूं दुग्ध अच्छा भी लागै है। परन्तु जुरके जोगतैं तजना योग्य है। और कटुक-कड़वी औषधि तथा लंघन उपादेय गुणकारी है।

तैसेही सत्संगके पुरुष तो मैं औगुण जानि तोसूं स्नेह नहीं करै हैं। वर्तमान कालमें तोकूं मान बुद्धिके जोग तैं बुरा भी लागै। परन्तु तूं विवेकी है। सो कड़वी औषधिकी नाईं तथा लंघनकी नाईं सुखकारी जानना। और सुनि हे भव्य कुसंगका सत्कार जुरके मांहि दुग्ध समानि है। सो किञ्चित सुखदेय पीछे दीरघ दुख कूं करै है। तैसेही कुसंगके अज्ञानी व्यसनी अपराधी जीव तेरा सत्कार करैं हैं। ताका सुख किंचित कौतुक परणतिकी खुसी प्रमाण है। पीछे तिनका फल विषम दुखकारी है। जहां कोई सहायो नाहीं ऐसे नरकके दुख ताहि भोगनैं पड़ै हैं। ऐसा कुसंगका फल पीछे परभवमें लागै है। तातैं जैसे स्याना रोगी दूध तजै तैसे कुसंग तजना योग्य है ॥ ८५ ॥ आगे षट् भेद म्लेच्छताके बतावै हैं—

गाथा—मण तण घर पुर देसा खंडादि खंडमलेच्छ भेयाए। नहिं सुआचरण धम्मो सो अणाजथल भासियो सुत्त ॥ ८६ ॥

अर्थ—मण कहिये, मन। तण कहिये शरीर। घर कहिये मन्दिर। पुर कहिये नगर। देसा कहिये देश खंडादि खंड मलेच्छ भेयाए कहिये खंडको आदि लेय म्लेच्छताईके षट् भेद जानना। नहिं सु आचरण धम्मो कहिए, तहां पर शुभ आचरण नाहीं शुभ धर्म्म नाहीं सो अणाज्जथल भासियो सुत्त कहिए सो अनार्य क्षेत्र सूत्र विषैं कह्या है। भावार्थ—भो भव्य मलेच्छपनेके षट् भेद हैं। सो ही कहिए हैं। सो जहां शुभ आचार नाहीं सुधर्मकी प्रवृत्ति जहाँ न होय। तिस स्थान कौं म्लेच्छ कहिए। सो ता स्थानके षट् भेद हैं। मन म्लेच्छ तन म्लेच्छ घर म्लेच्छ पुर म्लेच्छ देश म्लेच्छ और खंड म्लेच्छ। ए छह भेद हैं। सो ही अर्थ सहित बताइए है, जहां जाके मनमें शुभ आचार नहीं होय। सुधर्मकी जाके मनमें प्रवृत्ति नहीं होय। सो मन म्लेच्छ समानि है याकूं मन म्लेच्छ कहिए। और जा शरीर तैं सुआचार अरु धर्म सेवन नहीं बनैं। सो तन म्लेच्छ समानि है। याका नाम तन म्लेच्छ है। और जाके घरमें सुआचार सहित धर्म नाहीं। सो घर म्लेच्छ समानि है। याका नाम, घर मलेच्छ है और जा पुर विषैं सुआचार अरु धर्म प्रवृत्ति नहीं होय। सो वह पुर, म्लेच्छके पुर समानि है। याका नाम पुर म्लेच्छ है। और जा देशमें शुभ आचार सहित धर्म-प्रवृत्ति नहीं। सो देश म्लेच्छनके देश समान है। याका नाम देश म्लेच्छ है। और जा खंडमें शुभाचार सहित धर्म नहीं। सो खंड-म्लेच्छ है। ऐसे

म्लेच्छ पनेके षट् भेद कहे। सो इनमें जहां जहां धर्म प्रवृत्ति नाहीं सो म्लेच्छ जानना। इनकों सुधर्मका उपदेश शुभ लागता नाहीं। धर्ममें रुचि होती नाहीं। ए कुआचारी, अभक्ष—भक्षणहारे हैं। सो कुगति-गामी जानना ॥

आगे मूढ़ताके सात भेद बतावैं हैं—

गाथा—जाय लोय धम्म मूढ़य मूढ़ो मण काय वयण विवहारो। जथारीय विपरीयो मिच्छाइट्ठोय होय सय जीवो ॥ ८७ ॥

अर्थ—जाय कहिए जाति मूढ़। लोय कहिए लोक मूढ़। धम्म मूढ़य कहिए धर्म मूढ़। मूढ़ो मण कहिए मन मूढ़। काय कहिए तन मूढ़। वयण कहिए वचन मूढ़। विवहारो कहिए व्यवहार मूढ़। जथारोय विपरीयो कहिए इन आदि यथायोग्य विपरीत क्रियाके धारी। मिच्छाइट्ठीय होय सय जीवो कहिये ए सब जीव मिथ्यादृष्टी जानना। भावार्थ—मूढ़ता नाम मूरखताका है। जो भली बुरीके भेदको नहीं जाने। योग्य अयोग्य खाद्य-अखाद्यके भेद रहित हठग्राही होय ताकों मूढ़ कहिए। तहां कोई पाप क्रिया परभव दुखकरणहारी कोई जीव करै था। ताकौं देख काहू धर्मात्माने दया—भाव करि मनै किया। कही हे भव्य, ए कार्य परभव दुख देने-हारा है। तूं मति कर दुखी होयगा। ऐसी कही। ताकौं सुनि वह मूढ़ अज्ञानी कहता भया। हे भाई ए क्रिया तो हमारी जातिमें करनी कही है। निंद्य नाहीं। जो बुरी होती तौ हमारे वड़े जातिमें काहे, कौं करते? तातैं जो अपने वड़े आगे सूं करते आये जातिमें सव करैं ताकौं कैसे तजैं? ऐसा हठी महा ढीठ कठोर परणामी पाप क्रियाको नहीं छोडै। सो जाति मूढ़ कहिए ॥ १ ॥ लोक मूढ़ ताकौं कहिए जो लौकिक अनेक खोटी पद्धति अज्ञानता रूप पाप रूप क्रोध-मान-माया लोभ रूप चोरी जुवा परस्त्री गमनादिक अनेक पाप रूप क्रिया कोई अज्ञानी जीव करै है। सो ऐसी अयोग्य क्रिया करता देखि कोऊ धर्मात्माने प्रार्थना करि मनै किया जो हे भाई ए कूकारज महा दुख दायक लोकनिंद्य मति करै। तोकूं दोऊ भव दुःख करेंगे। ऐसे हित-बचन कहे। तब वह अज्ञान दरिद्री मूर्ख बोलता भया। हे भाई हम ही इस कारजकौं नहीं करैं। ऐसी क्रियाके करता तौ लोकमें बहुत हैं। तुम किस-किसकूं मनै करोगे? संसारमें सर्व लोग करैं हैं। इस भांति जो अ-

ज्ञान लोकनकी देखा-देखी खोटा कार्य करै आप ज्ञान अंध कछू विचारे नाहीं, हठग्राही पाप क्रिया करै है। सो लोक मूढ़ कहिए ॥२॥ और धर्म मूढ़ ताकूं कहिए है। जो तहां आगे कोई कुल विषैं तथा लोक विषैं अज्ञानता करि तथा बिना विचारे तथा विना परखै खोटा धर्म हिंसा सहित सेवते आए। ता विषैं प्रत्यक्ष जीव हिंसा है। ऐसे मार्गके उपदेशदातकौं महा क्रोध मान माया लोभकी तीव्रता है। पंचेन्द्रिय भोगनके पोखनहारे तप संयम रहित देव होंय तिनकूं मानैं। ते जीव भोरे धर्म-मूढ़ता लेय हैं। कैसा है वह देव जाकी छवि देखै महा-भय उपजै। ऐसी विकराल मुद्राका धारी होय। निरदई मांसाहारी होय। ऐसे देव कूं प्रभु मान पूजैं देव मानैं हैं, बड़े क्रोधका धारी अनेक शस्त्रनके धारनहारे बहु परिग्रही भयानक आकार धारैं, क्रूर वचनके धारी जाका विनय नहीं करैं तो मारै महा-मानी, और भोरे जीवनसूं अपनी सेवा करावनहारा और नय-जुगति देय पराया धन खावनहारा मायावी लोभी अभक्ष्य भोजनके करता तिनकौं गुरु मानै। हिंसा किए धर्मका उत्तम फल होय भोग-भोगवे तैं पुण्य होय ऐसा कथन जहां पाइये ऐसे शास्त्र तैं धर्म मानैं। ऐसे कुदेव कुधर्म कुगुरुके सेवनहारे भोरे जीव धर्मार्थी धरम जानि कुमारग हिंसा रूप कुआचार रूप प्रवृत्तते भये। ते जीव मोक्ष मारग जानिते संते धर्मफलके लोभी लोकारूढ़ धर्म सेवते भये। तिनकौं कोई साँची दृष्टिवारा धर्मात्मा देखि दया करि कहता भया। भो धर्मार्थी हो तुम धर्मके अर्थ पापका सेवन मति करो। यह जीवघातक मांसाहारी देव नाहीं है। भगवान्का ए चिन्ह नाहीं है। परिग्रह धारी शस्त्रधारी कषाई गुरु नाहीं। हिंसामयी धर्म नाहीं। हे भव्य तूं विचारि कैं देखि कैं देव धरम गुरुका सेवन करना ज्यों तेरा भला होय। ऐसे धर्मात्मा के वचन सुनि, यह अज्ञानी ज्ञान दरीद्री शुभा-शुभ विचार रहित बिना समझै ही हठग्राही ऐसा कहता भया। हमारे बड़े बूढे आगे तैं एही धर्म सेवते आये हैं। और हमारे धर्ममें ऐसेही देव धरम-गुरु होय हैं। आगे तैं हमारे कुलमें ऐसाही धर्म सेवते आये हैं, सो हम भी सेवन करैं हैं। ऐसा कहि कैं हठग्राही कुल धर्मपाप पंथ नहीं तजै। सो धर्म मूढ़ता कहिए ॥ ३ ॥ मन मूढ़ता ताकौं कहिए, जाका मन सदा ही चंचल रहै। थिरी नाहीं होय। महा लोभ करि मोहति होय। जाका मन सदीव ऐसा विचार करै जो मोकौं घना धन कैसे मिलै ? कोई

देवताकी सेवा करौं तो मोकौं मांगै सो देवे सो अवारके समय तौ शीतला प्रत्यक्ष देखिए है। ताकौं पूजें तौ धन मिलैं। सो ऐसा विचार कर धनका लोभी अनेक देवनको पूजा करै तथा ऐसा विचारै जो हमैं पड्या गिरया माल मिल जाय तौ भला है ताके निमित्त धरतीके गड़े पाखान उपाड़ि २ धन देखता फिरै। ऐसी अवस्था सहित ए अज्ञानी धर्म पंथका भूल्या प्राणी सदीव मनकी मूरखता नहीं तजै। ऐसे भरमबुद्धि कूं कहिए जो तूं मनकी थिरता राख। कुदेवादिक मति पूजो इससे पाप होयगा। धन मिलैगा नाही। तो ताकौं सुनि अज्ञानी कहता भया। जो पाप कैसें हो है? यह देव है, राजी भये धन देना इनकैं सुगम है। अनेकन कौं वाञ्छित देय है। ऐसा जानि अपने मन विषै कुदेव कुधरम कुगुरु इनके पूजिवेकी मूरखता नाहीं छोड़े। सदीव मनकूं आर्त्त-रौद्र रूप राखै, सो मन मूढ़ता कहिए ॥ ४ ॥ जाकी काय तैं शुद्ध देव धरम गुरुकी सेवा नाहीं बनै। विनय भक्ति तिनकी नहीं बनें कुदेवादिककी नमनता याने बहुत करी होय। और वाही तैं जाका शरीर महा भयानीक होय। नेत्र क्रूरता लिए लाल होंय। तनपै भस्मी शिर पै सिन्दूरकी बिन्दी होय। और कंठ शीश भुजामें अनेक ताबीज होंय। अरु हस्तमें अनेक लोह ताके चूड़ा होंय। ऐसे धर्म ध्यान रहित शांति मुद्रा सौम्य भाव रहित होय। महा भयानीक विपरीत तनका धारी तामैं धर्म मानता होय। ताकौं कोई कहै, तोकों धर्मका फल चाहिए है तौ शान्ति मुद्रा राखो। भयानीक आकार रहना तजो। तौ ताकूं सुनि मूढ़-आत्मा एसी कही। जो हम अन्तरंगमें तो शान्तही हैं। बाह्य लोक दिखावे कूं अपना-आप छिपाय रहवेकूं बाह्य भयानीक-स्वांग राखैं। ऐसी नय-जुगति देय। परन्तु कायकी क्रूरता नहीं तजै। सो तन मूढ़ता कहिए। तथा शरीरकी चाल मदोन्मत्त ईर्या समति रहित होय। और जीव ताकौं देखि भय खाय दुखी होते होंय। बिना प्रयोजन अपने हाथ पावनतैं जीवनकौं दुख देता होय। ऐसी विकट कायका धारी दया रहित मुद्राका धारी शरीरकौं उद्धत् राखता होय। सो काय मूढ़ता कहिए ॥ ५ ॥ जहां जिन आज्ञा रहित पापकारी पर-जीवनकूं भयकारी शोककारी बचन बोलना। अपनी इच्छा प्रमाण स्वेच्छाचारी बचन पापकारी बोलना। सो बचन मूढ़ता है। याकौं कोई कहे तुम ऐसे कषाय बचन मत कहो। तथा देव कूं गाली, गुरुकूं गाली तथा गृहस्थन

कौं गाली, कठिन ऐहे अयोग्य बचन मति कहो। तो वह मूरख कहै, हम इसी तरह देवकी स्तुति करैं हैं। गृहस्थीन कौं ऐसे ही दबाय देय हैं। ऐसे कहै परन्तु क्रोधादि—कषाय पोषवेके पापकारी—बचन नहीं तजै। सो बचन—मूढ़ता है।जा बचन तैं पराया तन क्षय होय। धन क्षयकारी मान क्षयकारी ऐसे बिना विचारे बचनका बोलना जाकै सुनैं सर्व सभा-जन दुख पावैं सो बचन मूढ़ता है। तथा जा बचनकौं सुनि सव-कुटुम्ब दुख पावै सो कुटुम्ब-विरुद्ध कहिए ऐसे वचन तथा राज्य-सभा विरुद्ध बचन जाकै सुनै राजसभा दुख पावै। इत्यादि वचनका बोलना, सो वचन-मूढ़ता है॥ ६॥ व्यवहार-मूढ़ ताकौं कहिये। जहां अयोग्य-हिंसाकारी व्यापार कूं ऐसा मानना, जो ये किसब हमारे आगे तैं चल्या आया है।हमारे बड़े, पीढ़ियों तैं यही किसब करते आये हैं।सो बुरा है तो भला है। अरु भला है तो भला है। कुलका किसब कैसे छोड़ैं ? ऐसा जानि, महा हठग्राही, पाप कारी-हिंसामई किसब नहीं तजैं। सो विवहार-मूढ़ता है॥ ७॥ ऐसी कही जे सात जाति की मूढ़ता, ताकौं अपनी २ हठ बुद्धिकरि, यथायोग्य विपरीत भावना सहित धारि, अङ्गीकार करना। ऐसे श्रद्धानका धारण जिनकैं होय, सो मिथ्यादृष्टी जानना।

इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, जाति-व्यवहारादि कथन वर्णनो नाम, चौवीसवाँ पर्व सपूर्णम्॥ २४॥

आगे हितोपदेश दिखाइये है। तहां मिथ्याज्ञान अरु सम्यग्ज्ञानके प्रकाश कौं दृष्टान्त करि दिखाइये है—

गाथा—उपल वहणि मिछिणांणो, कय उदोय फुणस्याम उर जायो॥ हाटक सम सम्यणांणो, तव वहणी जुइ विमल तण होई॥ ८८॥

अर्थ—उपल वहणि मिछिणांणो कहिये, काष्ठ-छाणेकी अग्नि समान मिथ्याज्ञान है सो। कय उदोय फुणस्याम उर जायो कहिये, उद्योत करि फेरि श्याम शरीरको धरै है। हाटक सम सम्यणांणो कहिये, सम्यक्ज्ञान स्वर्ण समानि है। तव वहणी जुइ विमल तण होई कहिये, तप रूपी अग्नि तैं विशेष प्रभा धरै है। भावार्थ—आत्म स्वभाव अरु पर-जड़भाव इनके जुदे २ जानवैकौं, अनुभवन करवैकौं अतत्व श्रद्धानी मिथ्यादृष्टि का ज्ञान असमर्थ है। इस मिथ्याज्ञानका प्रथम तो किंचित् प्रकाश होय। ताके फलतैं एक भव देवादिके सुख पावै।पीछे उस देवादि-भवमें भोगाभिलाषी चित्त होय, आर्त्त-रौद्र परणति करि, संक्लेशताके फल तैं, एकेन्द्रिय

आदि होय, संसार-भ्रमण करै। तथा मिथ्यात-कर्मके योग तैं कदाचित् मनुष्यमें उपजै, तौ नीच-कुलमें धन-वान्-हुकुमवान् होय। राज्य-संपदाका धारी, तीव्र क्रोध-मान-माया-लोभ-का धारी, संक्लेशी होय। इत्यादिक सामान्य सुखका धारी होय। पीछे अनेक पाप करि, अनेक हिंसा-दोष उपाय, नरकादि-दुख कौं प्राप्त होय। ऐसा होय तब मिथ्याज्ञानका प्रकाश, मंद होय। बहुत-काल मिथ्यात्वका फल रहता नाहीं। जैसे छाणेकी अग्नि, प्रथम तौ तेज-प्रकाश करै है। पीछे प्रभा-रहित होय, श्यामता धारि, भस्मी होय। तैसेही मिथ्याज्ञान जानना। ये मिथ्याज्ञान है सो अंधेके ज्ञान समानि है। जैसे अंधा चलै, तब अनुमान तैं चलै। परन्तु यथावत्, मार्गका शुभाशुभ नहीं भासै। तैसे ही मिथ्याज्ञान तैं शुद्ध यथार्थ-मार्ग नहीं भासै। यहां प्रश्न-जो मिथ्याज्ञानी धर्मात्मा हैं। तिनकूं यथावत् पुण्य-पापका मार्ग नाहीं भासै, तौ नौ-ग्रीवादिक कैसे जांय? देवादि गतिमें भी जांय हैं, सो शुभाशुभ-मारग जानै बिना पापका तजन व पुण्यका ग्रहण, तप-संयम-चारित्रका सेवन कैसे संभवै? ताकौं पुण्य-पापका मारग तौ भासै है। भले प्रकार मिथ्याज्ञान कूं अंधेके ज्ञान समानि कैसे कह्या? ताका समाधान-जो पुण्य—पाप तौ संसार-बनके मारग हैं, यथार्थ शुद्ध मोक्षका मारग नाहीं। मिथ्याज्ञान तैं मोक्ष मारग नहीं सूझै है। तातै मोक्ष पंथके जानवे कूं अन्धसमानि जानना। और सम्यक्ज्ञान है। सो स्वर्ण समानि है। जैसे स्वर्णकूं ज्यों २ अग्नि पै तपाइए, त्यों २ ताकी प्रभा, बढवारीकौं प्राप्त होय है। और कंचन शुद्ध होता जाय है। तैसेही सम्यक्ज्ञान रूप स्वर्ण है सो ताकौं ज्यों २ तप रूपी अग्नि कर तपाया जाय, त्यों २ परम विशुद्धता कौं प्राप्त होय है। सो यह सम्यक्ज्ञान, ज्यों २ निर्मल होय, त्यों २ बढ़ै। सो बढ़ता-बढ़ता केवलज्ञान पर्यन्त, सम्यक्ज्ञानावधि पूर्ण होय है। सो केवल-ज्ञान भये, ज्ञानकी मर्यादा पूरण होय है। सदा रहै है। ये सम्यक्ज्ञान, भये पीछे मिथ्याज्ञानकी नाईं, जाता नाही। सदीव अनंतकाल ताईं रहै है। ये ज्ञान मोक्ष ही करै है। तातैं मिथ्याज्ञानी, अङ्ग-पूर्वनका पाठी भी होय, तौ संसारका ही कारण है। और सम्यक्ज्ञानका अंश भी प्रकट होय, तौ बढ़वारी कौं प्राप्त होय, केवलज्ञान ही करै है। तातैं मिथ्याज्ञान, हेय कह्या है। और सम्यक्ज्ञान, उपादेय कह्या है। तातैं विवेकी पुरुष हैं तिनकूं, मिथ्याज्ञान तजि कैं, मोक्षका करनहारा

सिद्ध पदका देनेहारा, कर्म्मनका नाश करनहारा, ऐसा सम्यक्ज्ञान जैसे बनै तैसे, प्राप्त करना योग्य है ॥ ८८ ॥

आगे इन्द्रिय सुख तैं आत्मा तृप्त नहीं भया, सो ही दिखाइये है—

गाथा—हरि हल सुर खग चक्की, पुण फल सुह भुंजेय ण धपे। तव लव सुह णर आदा, धपो किं धम्मसेय सिव कज्जे ॥ ८९ ॥

अर्थ—हरि कहिये, नारायण। हल कहिये, वलभद्र। सुर कहिये, देव। खग कहिये, विद्याधर। चक्की कहिये षट्खण्डी चक्री। पुण फल सुह भुंजेय ण धपे कहिये, पुण्यका फल सुख भोग्या, तौ भी नहीं तृप्त हुआ। तव लव सुह णर आदा कहिये तो हे आत्मा मनुष्यनके अल्प सुख तैं। धपो किं कहिये कैसे तृप्त होयगा? धम्मसेय सिव कज्जे कहिये तातैं धर्मका सेवन मोक्षके निमित्त करौ। भावार्थ—ये जीव तीन खंडका स्वामी सोलह हजार स्त्रीनके संग भोग भोगनहारा भया। तहां भोगन तैं तृप्त नहीं भया। तथा हरि कहिए जो देवनाथ इन्द्र सो तानैं अनेक देवाङ्गना सहित अनेक वांच्छित भोग भोगे, तौ भी तृप्त नहीं भया। तथा अनेक देवीन सहित सुख भोगनहारे देवपदके अनेक सुख भोगे परन्तु तृप्त नहीं भया। अनेक गीत नृत्य वादित्रादिके अद्भुत लक्ष्मी सहित कौतूहल करि अनुपम भोगमें रम्या तहां भी ये आत्मा तृप्त नहीं भया। तथा और भी देव समानि संपदाके धारी ऐसे विद्याधर तिनके सुख भोगनहारे अनेक प्रकार अढ़ाई द्वीपमें स्वेच्छा फिरि क्रीड़ा करते दीरघ सुख भोगे तौ भी आत्मा विद्याधरनके सुख तै भी तृप्त नहीं भया। और षट्खंडका पति छ्यानवै हजार देवाङ्गना समानि रूप गुण की धरनहारी स्त्री तिन सहित मन-वांच्छित देवेन्द्रकी नाईं सुख समूह दीरघ-काल ताईं नये-नये भोगे तौ भी आत्मा तृप्त नहीं भया। और भी अनेक मनोग्य वांच्छित अद्भुत सुख भोगे। संसारमें कोई ऐसा सुख नाहीं बच्या, जो आत्माने अनेक बार पुण्यके उदय तैं न भोग्या सर्व भोग्या। चिरकाल ताईं भोगनमें ही रंजायमान रह्या। सो हे भव्यात्मा! तुच्छ पुण्य तुच्छ पुरुषारथ अल्प स्थिति सहित महां चपल मनुष्यके सुख तिन मैं तूं कैसे तृप्त होयगा। तातैं हे निकट संसारी। समता भाव धरि भोगन तैं उदास होऊ या मनुष्य पर्यायकी अल्प स्थिति और रही है। ता मैं अब तोकूं मोक्ष होनेकूं धर्मकाही साधन करना योग्य है। फेरि ऐसा अवसर कठिन है। और हे सुबुद्धि! इन्द्रियनके सुख तौ तैंने अनेक बार भोगे।

तिनकूं फेरि भोगनेमें कहा प्रीति करै है। और जो नवीन सुख जो कबहूं नाहीं भोगे होंय, ऐसे सुखकूं भो-
श्री सु० गवै तो नवीन सुख होय। तातें मोक्षका सुख तैंने कबहूं नहीं भोग्या है। सो याके भोगवेकूं धर्मका साधन कर- त९०
।३५८। ना योग्य है। येही विवेकका फल है। ऐसा जानना। आगे दीरघ दुःख नरक—पशूनके तिनतैं नहीं डर्‌या, तौ तपके तुच्छ दुखतैं कहा डरै है। ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—असुहं फल णक तिरियो, भुंजे दुह अणेय मूढ आदाए। तो तव लव दुह आदा, कम्पय किं सेय धम्म सिव कज्जे ॥ ९० ॥

अर्थ—असुहं फल णक तिरियो कहिये अशुभके फल नरक—तिर्यंच गतिके। भुंजे दुह अणेय मूढ आदाए कहिए भोरे आत्माने अनेक दुख भोगे। तो तव लव दुह आदा कहिए तो तपके अल्प दुखन तैं आत्मा। कंपय किं कहिए कहा कंपै है। सेय धम्म सिव कज्जे कहिए मोक्ष होवे कूं धर्मका सेवन करि।

भावार्थ—भो आत्माराम! तूं ने अशुभके फल करि नरकमें छेदन भेदन आदि पञ्च प्रकार दुख अनेक बार सहे सो कर्मके वसि पराधीन होय महा दुःखनकूं सहजही भोग लए। और तिर्यंचनके दुख अनेक प्रकार। भूख, तृषा, शीत, उष्ण, दंश—मंसादि बहुत वेदना पराधीन पशु कायकी भोगी। सो भी सहज भोग लई। सो तहां तू डर्‌या नाहीं। तौ हे भोरे प्राणी! तप विषैं नर्क—पशू तैं अधिक दुख नाहीं। बहुतही अल्प दुख है। तातैं हे भव्यात्मा! तूं तप-दुख तैं मति डर। तप विषैं तो स्वाधीन खेद है। सो सुख समान है। और पराधीन दुखके भोगतैं विकल्प होय तिनकरि तो पाप बंध होय है। तातैं परम्पराय आगामी कालमें भी दुख फलही होय है। स्वाधीन तपका खेद सहते परणामनमें सन्तोषी धर्मात्मा कैं विकल्प नाहीं होय है, तातें पुण्य का बंध होय। ताकरि आगामी कालमें भी सुख फल होय। तातें नर्क-पशूनके दुख तैंने पराधीन होय सहे, तहां तो डर्‌या नाहीं। तौ तिनतैं बहुत थोरे तपके खेद तैं, तूं मति डरे। समता सहित तपका खेद सह। अङ्गीकार कर। ज्यों तेरे समभावना सूं किए नाना प्रकार तप तिन करि कर्मका नाश होय मोक्ष होय। तातें तोकूं धर्म—साधन ही सुखकारी है। ऐसा जानि वारम्बार जिन भाषित धर्मका समता करि सेवना योग्य है॥ आगे माया कषायका फल और कषाय तैं अधिक बतावैं हैं— ।३५९

गाथा—मायागभ असुहो, णिगोयदा अणि. कसाय णकदायो। माया जुत सयल कसायो इक वे ते चवाक्ष तण देई ॥ ६१ ॥

अर्थ—मायागभ असुहो कहिए माया गर्भित जे पाप हैं। णिगोयदा कहिए वे निगोदके दाता हैं। अणि कसाय णाक दायो कहिए और कषाय नरककी दाता हैं। मायाजुत सयल कषायो कहिए, माया सहित सकल जो सर्व कषाय। इक बे ते चवाच तण देई कहिए एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय चौइन्द्रिय इनके तन देय। भावार्थ—सर्व कषायनमें मायाका फल बहुतही पापकौं उपजावे है। जे जीव निगोदमें उपजि महा दुखी हौंय सो माया कषायका फल है। और अन्य जो क्रोध, मान, लोभ इन कषायन तैं नर्क होय है, निगोद नहीं होय। और इन तीन ही कषायनमें जो माया कषाय आन मिलै, तो मायाके जोग तैं क्रोध मान लोभ इन तीनमें एकेन्द्रिय दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय चौइन्द्रिय होय ऐसे फल कौं उपजावै। तातैं सर्व कषायनमें माया कषाय दीरघ निखध्य व पापकारी है। तातैं विवेकी पुरुषनकूं परभव सुखके निमित्त माया शीघ्रही तजना योग्य है। यहां प्रश्न—जो क्रोध मान लोभ इनका फल नरक कह्या। और मायाका फल विकलत्रय आदि निगोद कह्या। सो इनमें अन्तर कहा ? अरु माया कूं निखध्य कह्या। सो दुख तो नरकमें बड़ा दीखे, निगोदियाका दुख तो भासता नाहीं। तातैं जाका फल बहुत दुखकारी होय ताकौं निखध्य कहिये। तौ दुख तो निगोद में अल्प भासै है। अरु नरकमें बहुत भासै है। अरु यहां माया कषाय कौं निखध्य विशेष किया सो काहे कौं ? ताका समाधान-भो भव्यात्मा ! तू नै प्रश्न भला किया। अब याका उत्तर तूं चित्त देय सुनि। नरक दुख तौ बाह्य, विशेष-विकराल भासै है। परन्तु पाँचों इन्द्रिय साबूत-पूर्ण हैं। अरु इन्द्रिय-ज्ञान सबका खुलासा है। तातैं दुख थोड़ा है। आपकों कोई नारकी मारै तब तौ दुख होय है। पीछे आप कोई नारकीकौं मारै तब आप खुशी होय। आप पै दुख आए ताकौं मेटवेका उपाय करै है। बैरी कूं तथा स्नेही कूं जानै है। अवधि आदि मति—श्रुति-ज्ञानकी प्रबलता पाईये हैं। तातैं इस नरकमें सुखका निमित्त है। पांचों इन्द्रियनका क्षयोपशम है। परके मारवे कूं तनका पराक्रम होय है। बड़ा आयु कर्म है। तातैं यहां नरक विषैं जीव अल्प दुखी है। और एकेन्द्रियके चारि इन्द्रिय नाहीं। कर्मके उदय आया दुख ताकूं मेटवेकी शक्ति

नाहीं। महां दीन अल्प समय मैं मरण पावै। और अल्प शीतके दुखतैं मरण पावै। महां अशक्त ज्ञान रहित तातैं एकेन्द्रिय महा दुखका स्थान है। तथा जैसे कोई चोर कौं पांव बांधि उल्टा टांगि दिया। पीछे च्यारों तरफ तैं अनेक बांसन, कोड़ाकी मार दीजिये, सो महा दुखी है। सो एसा दुख तो नारकीन कौं है। और एक चोरका मुख विषैं वस्त्र भरि ऊपरि तैं सूजीकर मुख सीं दीजिये। मल-मूत्रके द्वार सब वंद कर दीजिये सो महा दखी भया। पीछे नाक मैं वस्त्र भरि सूजो तैं सीं दिया। कानमें वस्त्र भरि कान सीं दिया। नेत्र सीं दिये। पीछे सव तन कौं बांधि गठिया सी बनाय कैं एक खालकी मसकमें डारि मसक ऊपर तैं सीं दई सो गोला सा वनायकैं ऊपर दस-बीस मनकी एक शिला धर दई। सो अव इसके दुखकी केवली जानैं। और कौं तो वाह्य दुख दीखै। परन्तु याके गूढ़ दुखकी औरनकौं तो ठीक नाहीं। सो ऐसा दुख निगोद एकेन्द्रियके जानना। तातैं नारकीनके दुख तैं असंख्यात गुणा निगोद एकेन्द्रियके दुख जानना। ऐसे ही बेन्द्रियके भी तीन इन्द्रिय नाहीं। तातैं ताकूं भी। तथा तेइन्द्रियके दो इन्द्रिय नाहीं। सो भी महादुखी। चौइन्द्रियके एकेन्द्रिय नाहीं। सो भी महा दुखी। ऐसे विकलत्रयके महा दुख सो भी नारकीन तैं असंख्यात गुणा दुखी है तातैं इन विकलत्रय जीवन में महा पापके उदय तैं आवै है। ताकरि महा दुखी जानना। सो ये जीव माया कषायके जोग तैं इस भवसागरमें पड़े हैं। तातैं मायाही में दीरघपना जानना। हे भाई! और तीन कषायन के रस तो जानि लीजिए है। परन्तु माया नाहीं जानी जाय। जो जानिये, ताका उपचार भी कीजिये। जाननेमें नहीं आवै ताका इलाज कहा वनै? सो क्रोधादि तौ जानिए है। और कोई क्रोध करै तौ ताका उपचार यह कि जो कोई क्रोधी मारता आवै ताके पास दीनता पकरि रहै तौ मारै नाहीं। और कोई पापी-मानी आपकौं मारने आवै तो ताके पासि अपना मान तजि, वाका विनय करै। बाकी स्तुति करै तो मानी मारै नाहीं। और कोई लोभी आपकौं मारै तो वाकौं बहुत धन देय तौ लोभी मारै नाहीं ऐसे क्रोध मान लोभ इन तीन कषायनका तौ उपचार है। याका उपचार किए शान्त हो जाय। परन्तु यह दगाबाज ऊपर तैं नमन करै। मुख देखे दीन वचन बोलै। सेवक होय, पुत्र सम होय। पीछे दाव लगै दगा

करै। याका उपचार विवेकीन तैं भी नहीं बनै। तातैं महा मूढ़ है। इस कषायका फल दीरघ पापकारी है। ता पापके फल तैं जीव, नरकनके दुख तैं बड़ा दुख निगोद आदिका पावै है। ऐसा जानि माया कषाय कूं तजना। तथा इन पापाचारी—मायावी जीवन कौं अपने बल तैं पहिचान, तिनका संग तजना भला है। ऐसा जानना। आगे धर्मका फल इन्द्रिय—जनित इन्द्रिय-सुख है। यातैं नरकादिक खोटी गति नहीं होय है। नरक दाता और ही कार्य हैं। सो बतावैं हैं—

गाथा—धम्म तरु फल अख सुहयो, सो फल दुगय देय णह कवऊ। धम्म कालय अघ करऊ, कुगय फल देय सोय कीयाय ॥ ६२ ॥

अर्थ—धम्म तरु फल कहिए धर्म वृषका फल। अख सुहयो कहिए इन्द्रियनके सुख। सो फल दुगय देय णह कबऊ कहिए सो फल दुरगति कबहूं नहीं देय। धम्म कालय अघ करऊ कहिए धर्म कालमें पाप करै तो। कुगय फल देय सोय कीयाय कहिए सो क्रिया कुगतिका फल देय है। भावार्थ--यहां कोई ऐसा जानैं कि जो इन्द्रियनका सुख है सो धर्म घात करके जीवनकौं दुर्गति करै है। सो हे भाई! तूं चित्त देय सुनि। इन्द्रियके सुख हैं सो तौ पुण्यका फल है। सो पुण्य फलतैं देव इन्द्र चक्री काम देवादिकका सुख है सो हजारों स्त्रीनके संग नानाप्रकार पंचेन्द्रिय मन-वांच्छित सुख-भोग भोगवैं हैं। अनेक रथ हाथी घोटक पैदल आदि अधिक सैन्या सहित, निरखेद भये, अपनो शुभ परणतिका फल ताहि भोगवैं हैं। सो ये पुण्यका फल है। सो पुण्यका फल इन्द्रिय सुख है। सो ही पुण्यको घात कैसे करै? जे फल हैं सो अपने वृक्षका नाश नहीं करैं। तातैं इन्द्रिय सुख धर्म घात करते नाहीं। इन्द्रिय सुखन तैं दुर्गति होती नाहीं; ऐसा जानना। यहां प्रश्न? जो जगह-जगह शास्त्रनमें ऐसा सुनिये है कि जो फलाना राजादि पुरुष, इन्द्रिय—सुखमें मगन होय, नर्कादिक गये। तहां जे महान-बुद्धि चक्रधर राजा थे, सो जगतके भोगन तैं उदास होय, इन्द्रिय-जनितसुख दुर्गति-दाई जानि, सर्व राज्य-भोग सम्पदा तजि, दीक्षा धरते भये। तातें इन्द्रिय जनित सुख पापकारी नहीं होता, तौ काहे कूं तजते? और यहां ऐसा कह्या जो इन्द्रिय-सुख धर्मका घात नहीं करै है। इन्द्रिय-सुख तैं नरकादि खोटी गति भी नहीं होय है। सो ये बात कैसे बनै? ताका समाधान-जो हे भव्यात्मा! तेरा प्रश्न प्रमाण है। परन्तु अब चित्त

देय सुनि। जो वस्तु जातैं उपजै है सो ताका नाश नहीं करै। सो देखि, इन्द्रादिक पद, चक्रीपद है, सो वांछित इन्द्रिय भोगके सुखका सागर है। जो इन्द्रिय जनित सुख तैं दुर्गति होती, तौ इन्द्रन कौं होय। तथा देवन कूं तथा भोग-भूमियान कूं, परभव दुर्गति होय। तातैं ऐसा जानना। जो खोटी गति होय है सो इन्द्रिय सुखका फल नाहीं। जातैं इस जीव कूं खोटी गति होय है, सो तोकौं वताइये है। जे जीव धर्म-काल विषैं, धर्म कूं भूलि करि, विषयकषायमें रंजायमान होय कैं, धर्मका घात करैं। तिस धर्मघातके पापतें नरकादि खोटी गति होय है। तातैं नरकादि दुख, धर्मघातका फल जानना। तातैं विवेकी हैं तिनकूं धर्म सेवनके कालसें धर्म घाति करि, पाप-विकल्पमें काल गमावना, योग्य नाहीं। तातैं धर्मात्मा गृहस्थ हैं सो तिन्हें प्रथम प्रभात धर्म-काल विषैं, भले प्रकार निर्मल भावना सहित धर्मकार्य करि, पुण्यका संचय करना योग्य है। पीछे अपने पूर्व-पुण्यका फल इन्द्रिय जनित सुख; ताहि भोग्या करौ। ऐसे सदीव धर्म-कालमें धर्म का सेवन करना। और अन्य-कालमें कर्मकार्य करना। ऐसे करि पुण्यका संग्रह करै। ताके फल, फेरि भी परभवमें देवादिकके इन्द्रियजनित सूख—भोग पावे है। और जे जीव धर्म कौं भूलि करि, धर्म—काल विषैं इन्द्रिय जनित भोगनमें रक्त होय, सुख मानें, सो मानौ। परन्तु पूर्वले पुण्यका फल भोगि चुकैगा, तो पीछे धर्म—फल विना, नर्कादि गति होयगी, ताके दुख कूं भोगवैगा। जैसे कोई एक भला व्यापारी, अनेक व्यापार करि, अपनी वृद्धिके वल करि, वहुत धन:कमाया। सो दूसरे दिन सुख तैं भोगवै है। अरु जव दुकान पै कमाईका समय आया, तव अनेक सूख भोगे थे तिनकूं तजि, दुकान पै जाय अनेक व्यापर-कला करि धन कमावै। तो दूसरे दिन, सुख तें भोग्या करै। ऐसे भोगके कालमें भोग-सुख करै, परन्तु अपनी कमाईका समय आवै तव अनेक काम छोड़ि, जाय कमावै। कमाईका काल नहीं चूकै। सो तो सदैव कमावै-खावै, सुखी रहै। और जे जीव एक वार व्यापार करि धन कमाया। सो धन लेय, नाना प्रकार सुख करता भया। अरु फेरि कुमाईका काल आया, तव भी नांच-नृत्य, खान-पान, भोगहीमें रत भया धन उड़ाया कस्था, कुमाई कूं नहीं गया। कमाईका काल, वृथा गमा दिया। और आगे कमाया था, सो धन खाय लिया। सो जी-

व कमाई विना रंक होय, भीख मांगेगा, दुखी होयगा, ऐसा जानना। तथा कोऊ एक पुरुष कैं एक बाग है। तामैं नाना प्रकारके मेवा होय हैं। अरु महा-सुन्दर सघन-छाया महा-शोभायमान तामैं पांच सौ रुपया साल का मेवा होय, ताहि बेंचि, तामैं कुटुम्ब कौं पालै। ऐसे सालकी साल, पांच सौ रुपयाका मेवा बेंचि, सुखी रहै। अनेक मेवा आप भोगवै। बागकी भली रक्षा किया करै। ऐसें बहुत दिन बीत गये। बागकी रक्षा करै दुष्ट पशून तैं बचावै। वन कौं निर्विघ्न राखै। ताके फलन करि अपने कुटुम्बका पालन करै। आप आनंद सूं रह्या करै। ऐसे बाग तैं, जाकौं देख तैं सुख होय। सो एक वार काष्ठ काटनहारे आये, इस बाग बारे कौं कही। तेरा बाग मोलदे। तब याने पांच सौ रुपयामें बाग बेच्या। सो वह बाग काटकैं लकड़हारे ले जांय हैं। सो देखो याकी मूर्खता, जो सालकी साल पांचसौ रुपया देनेहारे बाग कूं काष्ठ काटनहारे कूं देय है। सो ये रुपैया एक वारके होय जांय हैं। पीछे आप दुखी होय है। बागकी शोभा जाय है। मिष्ट फल जांय हैं। बागका नास जाय है और आप कुटुम्बी सहित दुखी होय है। ये रुपया बरस-एकमें खालेवे है। तथा उस वनकी रक्षा छाँड़ि, कोई विषय-कषाय नृत्य—गीतादिमें लागि जाय है। सौ बागके बिगड़नै तैं बड़ा दुखी होय है। एकबार ही नृत्य—गीतके सुख हो हैं। परन्तु जिस बागके पीछे, सर्व कूं रोटी थी। सोच नहीं रहै था, सर्व गीत-नाच अच्छे लागैं थे। सो उजाड़्या। तो सर्व कुटुम्बी सहित दुखी भया। जैसे बाग रहै सुखी रहेगा, तैसे ही धर्म रूपी बागके फलन करि सदीव सुखी रहै है। ऐसे धर्मबागकी रक्षा कूं भूलि, बिषय—कषाय में मगन होय रहैगा, तौ धर्म रूपी बाग के विनाश तैं आप दुखी होयगा। एक बार का ही बिषय—सुख होयगा। और पहले सदीव बाग की रक्षा करि, पीछे विषय—सुख भोगेगा। तो ताके फल तैं सुखी रहैगा। तातैं हे भव्य, तू ऐसा जानि। जो आत्मा कूं नरकादि खोटी गति होय है। सो ये धर्म—घात का फल जानना। जे जीव धर्म-कालमें धर्म घाति करि, पापका सेवन करि, विषय—भोगनमें रत होवेगा। सो नर्कादि कुगतिके दुख भोगवेगा। और जो धर्म—कालमें धर्मका सेवन सहित, धर्मकी रक्षा करेगा। पीछे अपने विषय—भोग भोग्या करैगा। अपने पुण्य—प्रमाण मिले जो भोग, सो संतोष करि भोगैगा, तो

खोटी गति न होयगी। ऐसा जानना। और तैंने कही, आगे बड़े २ राजा इन्द्रिय-जनित सुखनकूं पापरूप जानि, तिनकूं तजि, उदास होय, दिगम्बर होय, दीक्षाधारी। सो हे भाई, सुनि। इन राजाननें दीक्षा धरी। अरु इन्द्रिय जनित भोग तजे। सो नरकादिकके भय, दीक्षा नहीं धारी है। नरकादिकके दुखनका अभाव तो गृहस्थ अवस्थाके धर्म सेवन करि होय। घरही विषैं अपने कुटुम्बमें तिष्ठते, धर्म का सेवन करि, सुखतैं पर्याय छांड़िते, तो देवादि शुभ गति पावते। परन्तु हे भाई, घर विषैं, कर्मका नाश करि मोक्षस्थान चाहे। सो घरमें मोक्ष नाहीं होय। तातैं भव्यात्मा, जे निकट संसारी हैं। तिनने मोक्ष होवे कूं, सर्व कर्मनाश करि शुद्ध भाव होवे कूं, राग—द्वेष तजवे कूं, केवलज्ञान प्रगट करवे कूं, जनम—मरणके दुख दूरि करवे कूं, सिद्ध पदके ध्रुव पायवे कूं, दीक्षा धारी है। ऐसा भाव जानना। जिन्हें नरकादिक खोटी गति होय है सो धर्मको छांड़ि धर्म—कालमें पापका सेवन करे हैं। ते दुखीही होय हैं। और धर्मात्मा गृहस्थन कौं इन्द्रिय—सुख भोगतैं पाप होता नाहीं और मोक्ष सुख, अविनाशी—अतीन्द्रिय—भोग सुख, मोक्ष विना होता नहीं। तातैं जे मोक्ष—सुखके वांच्छक होय, ते तो दीक्षाही धारैं हैं। और जिन भव्यन कूं मोक्ष वांच्छा तो है, पर दीक्षा धरवे कूं समर्थ नाहीं। ऐसे धर्मात्मा गृहस्थ हैं, सो घरही विषैं मुनिका दान, जिन देवकी पूजा, शास्त्रन का श्रवण-पठन, संयम, शक्ति प्रमाण तप, इत्यादिक धर्मका सेवन कर ताके फल देव-पद, भोग भूमि फल, चक्रीपद, इत्यादिक पावैं। सो इन देवादिक पदनमें निशदिन अद्भुत इन्द्रिय जनित सुख- भोग, आयु पर्यंत भोगवे हैं। तातैं हे भव्यात्मा, इन्द्रिय जनित सुख तैं पाप होता, दुर्गति, होती तो गृहस्थ-धर्मात्माका परभव कैसे सुधरता? अरु धर्मी-श्रावक धर्म-रसके स्वादी, घरके सुख कैसे भोगते? तातैं अनेक नयन करि विचारिये है तो पाप एक धर्मघातका नाम है। भोगनमें पाप नाहीं। तातैं विवेकी धर्मात्मा हैं तिनकौं एक धर्म-कालमें धर्म—सेवन ही योग्य है। आगे मुनिश्वरोंके मोक्ष कौं कारण, श्रावकका घर है। ऐसा कहें हैं—

गाथा—जीव मुहव्वय मोक्खो, मोक्खोत्तयण रयण मुण साहो। मुणणर तण आहारो, सोयण सागय गेह कर होई॥ १२॥

अथ—जीय सुह चय मोक्खो कहिये, जीव सुख कौं चाहै सो सुख मोक्ष विषै है। मोक्खोत्तयण रयण सुण साहो कहिये, सो मोक्ष रत्नत्रय से होय है अरु रत्नत्रय मुनि पद तैं होय है। मुणणरतण आहारो कहिये, मुनि पद मनुष्य शरीर तैं होय है अरु शरीर भोजन तैं रहै है। भोयण सावय गेहकर होई कहिये, सो भोजन श्रावकके घर करि होय है। भावार्थ—ये सर्व च्यारि गति संसारी जीवनकी आशा, एक सुख है। सो सुख सर्व चाहैं हैं। अरु आया सुखका वियोग भये, जीव दुखी होय है। तातैं ऐसा जानिये है। कि विनाश रहित अविनाशी सुख कौं जीव चाहैं हैं। सुखतैं एक छिनक भी अन्तर नहीं चाहैं हैं, ऐसा सर्व जीवनका अभिप्राय है। सो हे भव्य जीव हो! संसारमें देव-मनुष्यनके सुख हैं। सो तो विनाशीक हैं। कोई पुण्य जोग तैं होय हैं। पीछे अपनी स्थिति—मरजाद पूर्ण भये पर्यन्त रहैं हैं। पूरण भए पीछे सुख नाश होय है। सुख नाश भये, बड़ा दुखी होय है। जैसे विद्युत पात, अल्प उद्योतका चमत्कार करि, पीछे अन्धकार करै है। तैसे ही इन्द्रिय—सुख तौ तुच्छ सा चमत्कार, सुखकी वासना सी बताय, पीछे दुख ही उपजावै है। तातैं ऐसा विनाशीक सुख होने तैं, न होना भला है। यह जीव तौ निरंतर अविनाशी सुख कूं चाहै है। तातैं हे सुखके अर्थी जीव हो! तुम्हारी वांच्छा प्रमाण सुखका स्थान सिद्ध पद है। तहां ध्रुव-अविनाशी सुख है। सो सुख, सर्व कर्मके नाश तैं पाईये है। तातैं तुम कौं सदीव अविनाशी सुखकी अभिलाषा है तौ जैसे बनै तैसे सर्व कर्मनका नाश करौ, ज्यों मोक्ष होय। सर्व सुखका स्थान मोक्ष है। सो सुखका आश्रय जो मोक्ष है, सो रत्नत्रयके आधीन है। सो सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ये तीन रत्नत्रय, मोक्षका आश्रय हैं। रत्नत्रय बिना, मोक्ष नाहीं। और रत्नत्रय हैं सो मुनि पदके आश्रय हैं। मुनिपद, बिना रत्नत्रयके होता नाहीं। मुनिपद है सो नर तन बिना होता नाहीं। तातैं मुनिपदका आश्रय, नरका शरीर है। मनुष्य शरीरकी स्थिरता, भोजन बिना रहती नाहीं। तातैं मनुष्यके तनका आश्रय भोजन है। और मुनिश्वरका भोजन, धर्मी श्रावक सुआचारी बिना होता नाहीं। तातैं जे उत्तम श्रावकके मन्दिर हैं सो ही मुनिके तनका आश्रय जानना। तातैं ऐसा जानना। कि जो मोक्ष मारग है, सो श्रावकके घर तिनकै आधीन है। मुनिपद बिना, मोक्ष नाहीं।

और श्रावक धर्मात्माके घर विना, मुनिके शरीरका सहकारी भोजन होता नाहीं। तातैं जो शुभ श्रावकनका घर भोजन देने कौं नहीं होय। तो मुनिका धर्मनाहीं होय। अरु मुनि धर्म नहीं होय, तौ मोक्ष मारग भी नहीं सधै। तातैं ऐसा जानना, जो मोक्ष मारगका आश्रय श्रावकका घर ही है। ऐसा जान धर्मात्मा श्रवकन कूं शुभ आचार रूप प्रवर्तना योग्य है। आगे वुद्धि, धन व तन पायेका फल कहै हैं—

गाथा—वुधिफल तत्व विचारइ, तण फल तव तीथ झाण चारत्तो। धण फल पूजा दाणउ, वच फल परपीय जंतु रख सत्तो ॥ ६४ ॥

अर्थ—वुधिफल तत्व विचारइ कहिये, वुद्धिका फल-तत्वनका विचारना है। तण फल तव तीथ झाण चारत्तो कहिये, तनका फल-तप, तीरथ, ध्यान और चारित्र है। धण फल पूजा दाणउ कहिये, धनका फल-दान पूजा है। वच फल परपीय जंतु रख सत्तो कहिये, वचनका फल-परकौं प्रिय दयामई सत्य बोलना है। भवार्थ— जे सुवुद्धि कूं पाय, धम मारग भूलि कैं विषयनमें प्रवृत्ति करि, पाप करि, शीश अशुभ भार लिया। सो तो वुद्धि भई ही निष्फल भई। और जिन भव्य जीवन नैं वुद्धि पाय करि, तत्वनका विचार करि, पाप कर्मका क्षय व पुण्यका संचय करि, मोक्ष होनेका उपाय विचार किया। सो ही वुद्धि पायेका उत्कृष्ट फल है। मनुष्य शरीर पायकैं अनेक पापकारी स्थाननमें प्रवृत्ता, पर पीड़ा करी, परधन हरया, परस्त्री रम्या, पाप स्थाननमें तीरथ जानि भ्रमण किया। इत्यादि कार्य पापाचार करि अशुभ कर्मकाबंध किया, सो तो तन पाया जैसा नहीं पाया। शरीर विरथा गया। जो शरीर पाय निहिंसक, आरंभ रहित, दया भाव सहित, अंतरंग तप षट्, वाह्य तप षट्, ऐसे वारह तप कूं करै, सो तन-फल है। तथा जहां तैं कर्म नाश कर जतीश्वर मोक्ष गये, सो स्थान शुद्ध तीर्थ है। सो जा शरीर तैं तिस स्थानकी वंदना—पूजा करनी, सो शरीर सफल है। जिस शरीर तैं विकराल भेष धरि, पाप—पाखंड धरि, औरन कूं भय उपजाया। सो शरीर विरथा है। और जा शरीर तैं कायोत्सर्ग—मुद्रा तथा पद्मासन मुद्रा धरि, समता भाव धरि और जीवन कूं विश्वास उपजाय सुखी किये। धर्म ध्यान, शुक्ल ध्यान रूप भाव सहित ध्यान किया, सो काय सफल है। और पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्ति ये तेरह प्रकार चारित्र तथा वारह व्रत जा शरीर तैं वन्या

होय, सो तन पाया सफल है। जा धन करि पापारंभ क्रिया करि, परभवकूं दुख उपजाया होय, सो धन वृथा है। तथा जा धन तैं अन्य जीवन कूं मोल लेय मारे होंय, जा धन तैं पर-जीव बन्दी में किये होंय, परस्त्री सेवन किया होय तथा वेश्या—गमनमें दिया होय, नाच कराय गान कराय इत्यादिक विकार भावनमें धन दिया होय सो धन वृथा है। तथा द्यूत रमनेमें धन दिया तथा द्यूत रमनेके कारण चौपड़ि गंजफा, शतरंज इन आदि द्यूत कार्यके उपकरन तिनकौं बहुत मोल देय लेना बहुत धन देय चांदी—स्वर्णादिके बनवावना महा अनुरागी सहित धन लगाय द्यूतकी शोभा करनी, सो धन विरथा है। जा धन त मुनि वीतरागकूं दान दिया होय जिन भगवानकी पूजाकी होय सो धन पाया सफल है। और मुख पाय, वचन तैं अनेक जीवनके मान खण्डन किये होंय। पर जीवनकूं कटु वचन कहि दुख उपजाया होय। तथा विरथा—वे प्रयोजन बचन अनर्थ दण्डके उपजावणहारे ऐसे बचन इत्यादिक पापबन्ध करनहारा बचन वोलन सो बचन पाया जैसा नाहीं पाया वृथा वचन है। जिन बचनोंकूं अन्य जीव सुनि साता पावैं। जिन वचनोंकी प्रतीत करि और जीवनकौं स्थिरता होय सुख पावैं। ते बचन दया सहित हिंसा पाप रहित सत्य इत्यादिक जिन देवकी आज्ञा—प्रमाण हित मित बचनका बोलना सो बचन पाया सफल है। ऐसा जानिकैं विवेकी हैं तिनकौं बुद्धि पाय कैं तो जीवाजीवादिक तत्वनका विचार करि बुद्धि सफल करना जोग्य है। और तन पाय तप तीरथ ध्यान करि तन सफल करना भला है। धन पाय दान—पूजादि करि पुण्य उपजावना अच्छा है। बचन पाय हित मित सत्य बोलना और भी इन आदि सुकार्यनमें विषैं शुभ रूप रह कैं, भव सफल करना योग्य है। ऐसा जानना। आगे ऐते निमित्त, काल—मृत्यु समान जानि तिनमें सावधान रहना ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—दुठणारी सठ मित्तऊ, गूढ जाणंत मंत्र जे भत्तो। अहथत घर विसपाणो, एसहु णमत्ताय द्वार जम्म गेयो ॥ ६५ ॥

अर्थ—दुठणारी कहिये दुष्ट स्त्री। सठ मित्तऊ कहिये मूर्ख मित्र। गूढ़ जाणंत मंतजे भत्तो कहिये गूढ़ बातकौं जो सेवक जानता होय। अहथित घर कहिये, घरमें सपका बास। विषपाणो कहिये, विषका भोजन। ए सहु णमत्ताय कहिये ए सब निमित्त। द्वार जम्म गेयो कहिए काल समानि जानना। भावार्थ—इस जीवके

पाप कर्मका उदय आवै तब ऐसा निमित्त मिलै। जो घर विषैं महा दुष्ट स्वभाववाली कलह कारिणी, विनय लज्जारहित तीक्ष्ण–कटुक बचन भाषणी क्रोधादि कषायन सहित, कामाग्नि जिसकैं तीव्र होय। इनकूं आदि लेकर अनेक अनाचार औगुण करि भरी स्त्री मिलै। सो मरण समान दुख सदीव जानना। तथा आप तो महाविवेकी होय नाना नय-जुगतिका जाननेहारा होय। चतुर, अनेक कलाका धारी धर्म—कर्म कार्यमें प्रवीण होय और जिनसें सदीव रहना ऐसे मित्र जो आपके पास निरंतर रहैं सो मूरख होंय। तौ आप तौ विचारै कछु भला कार्य अरु मूरख मित्र ज्ञान हीन वह विचारै निंद्यकार्य। अरु समझते नाहीं, कहिये कछू अरु वह मन्दज्ञानी करै कछू। सो ऐसे मूरखके निमित्त तें विवेकी कौं मरण समान निमित्त है। और कोइ अपनी गूढ़ वारता है जो काहूकौं कहनेकी नाहीं। उस बातकूं कोई जाने, तौ आपकूं दुख होय। और राज-पंच कदाचित् सुनि पावैं तौं दण्ड देय। ऐसी वारता गूढ़ थी सो पहिले कोई चाकरकूं अपना जानि मित्र जानि कही होय। तो वह चाकर मित्र काल पाय जिनका प्रयोजन नहीं सधै, द्वेष रूप होंय। तब ए ही मित्र काल समानि हैं तातैं विवेकी होंय सो स्नेहके वश सेवककौं तथा मित्रकौं अपने घरकी छिपी गूढ़ वारता नहीं जनावैं हैं। जनावैं तो कबहू काल समानि दुखदाता जानना। जा घर विषैं सर्प होय ताही घर विषैं निषदिन रहना होय। तौ कभूं न कभूं मरण होय। तातैं विवेकी जा घरमें सर्प होय तहां नहीं रहै। और हलाहल विषका खावना। सो मरणका कारण है। इत्यादिक कहे जे खोटे निमित्त, सो कबहूं न कबहू मरण करैं तातें विवेकीनका इतनी जगह सावधानी ही जीतव्य जानना। आगे एती जगह मुनीश्वर नहीं रहैं। अरु रहें तो अपना संयम नष्ट होय ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—जहिं मुणि थति णह भूपो, णीरो तण धाण अलप तंह होई। णह धम्मी जण धम्मो, स पुर देसोय तज्जये जोई ॥६६॥

अर्थ—जहिं मुणि थति णह भूपो कहिए वहां मुनिकी स्थिति नाहीं जहां राजा नहीं होय। नीरो तण धाण अलप तंह होई कहिए जल घास अन्न जहाँ थोरा होय। णह धम्मी जण धम्मो कहिए, धरमी जन अरु धर्म जहां नहीं होय। स पुर देसोय तजए जोई कहिए, सो पुर–देश योगीश्वर तजै हैं। भावार्थ—इतनी

जगह मुनीश्वर नहीं रहैं। एकतो जा देश मैं तथा पुरमें आगे मुनिका वास नहीं होय। जा देश-पुरके बनमें मुनि रहते होंय, तहां रहैं। तथा मुनि थिति करने जोग्य जो स्थान नहीं होंय, तो ता चेत्रमें योगीश्वर नहीं रहैं। रहैं तो संयम जाय। और जा देश—नगरका कोइ राजा नहीं होय, तौ ता चेत्रमें मुनीश्वर नाहीं रहैं। क्योंकि राजा रहित चेत्रनमें प्रजा दुखी होय है। जीवनकी दशा अन्यायी होय, जीव तहां अनाचारी होंय निर्दयी होंय, इत्यादिक अनेक विपरीतता होंय। सो यतीका धर्म तहां सधै नाहीं। न्याय राज्य बिना दुष्ट प्राणी, दीर्घ शक्तिके धारी होंय, सो दीन जीवन कूं पीड़ा देंय। सो दीन जीवनकूं दुख होता देखि, दया भण्डारका हृदय कोमल, सो अशक्तिवानोंका दुख देखा जाता नाहीं। राजा होय तौ हीन शक्तिके धारी जीवनकूं, बड़ी शक्तिका धारी पीडित नहीं करि सकै। और कदाचित् दीनकौं शक्तिवान् सतावैं—दुख देंय, तौ राजा दण्ड देय। और राजा नहीं होय तो प्रजा दुखी होय। सो प्रजाका खेद दया-सागर देखि, दुखी-चित्त होंय। तातैं राज्य रहित चेत्र विषैं जतीश्वर नाहीं रहैं। और जिस देश मैं नदी सरोवर, कूप बावड़ीनका नीर कठिनता तैं मिलता होय। तहां यतीश्वरका धम पलै नाहीं। ऐसे चेत्रमें नाहीं रहैं। और जहां तिर्यंचनके तनका आधार जो तिण, सो घासकी बाहुल्यता होय तो पशू साता पावैं, सुखी रहैं। और जहां घासकी उत्पत्ति अल्प होय ताकरि घासके खानेहारे तिर्यंच पीड़ा पावैं। ऐसे क्षेत्रनमें करुणासागर नहीं रहैं। और जिस चेत्रमें अन्नकी उत्पत्ति थोरी होय, तहांके जीव सदीव अन्नकी चिन्ता सहित रहते होंय। तो ऐसे चेत्रमें मुनीश्वरका धर्म, निरावाधा नहीं सधै। तातैं ऐसे चेत्रमें दया—भंडार जगत—गुरू यतीश्वर नही रहैं। जिस देश-पुर विषैं सुआचारी धर्मात्मा जीव नहीं रहते होंय, तो यतीके भोजनका अभाव होय। पापाचारी, अभक्ष्यके खानेहारे दया रहित जीवन करि भरया ऐसा कुक्षेत्र तहां जतीका धर्म नहीं सधै। तातैं ऐसे धर्मी जीवन रहित क्षेत्रमें नहीं रहैं। और जहां जिन धर्मकी प्रवृत्ति नहीं होय। जहां जिन चैत्यालयमें जैन शास्त्राभ्यास नहीं होय। तो ऐसे कुक्षेत्रमें मुनीश्वर नहीं रहैं। इत्यादिक कहे जे आकुलताके कारण खोटे स्थान, तहां जगत पीर-हर नहीं रहैं। कदाचित् रहैं तो संयम तैं नष्ट होंय। ऐसा जानना। आगे इन जीवनका विश्वास नहीं करिये, सो बताईये है— ।३६६

गाथा—णख संगा पसु णदियो, विसदंती सत्थणग तीय मदपायो। कितघणस्वामी दोहो, गभ खल चित्तोय णाहि विसयासो ॥१७॥

अर्थ—णख संगा पसु कहिये, नख सींगके पशू। णदियो कहिये, नदी। विस कहिये, जहर। तथा दंती कहिये, दंतवारे तिर्यंच। सत्थणग कहिये जाके हाथमें नग्न शस्त्र होय। तीय कहिये, घरकी स्त्री। मद्पायो कहिये दारुका मतवाला। कितघण कहिये कृतघ्नी। स्वामी दोहो कहिये, स्वामी द्रोही। गभ खल चित्तोय णाहि विसयासो कहिये गूढ मनका धारी दुष्ट परणामी इन सबका विश्वास नाहीं करिये। भावार्थ—जे जीव नखतैं पर जीवनका घात करनहारे ऐसे रीछ सिंह श्वान मार्जार इत्यादिक दुष्ट तिर्यंच, ऐसे नखी जीवनका विश्वास करना जोग्य नाहीं। और जे जीव सींगन तैं पर जीवनकूं मारै सेऐ भैंसा बृषभ मोढ़ा, मृगादिक, ये तीक्ष्ण सींगके धारी तिर्यंचोंका विश्वास करना जोग्य नाहीं। और आप बहुत ही बलवान् जलका तैरनेहारा होय तौ भी सावन-भादवाकी वर्षान करि चढ्या जो वे-मरजाद जल ऐसी भयानीक नदी बहती होय, ताका विश्वास करना योग्य नाहीं। और महा हलाहल जाके खाये मरण होय। देखे ही प्राण जांय ऐसे विषका, कौतुक मात्र भी विश्वास करि खावना योग्य नाहीं। तथा विषके धरन हारे क्रूर सर्प-विच्छू आदिक विषवाले जीव तिन विषीनका विश्वास नहीं करिये। और जे जीव दांतन तैं परजीवनका घात करैं काटैं-मारैं ऐसे मगर चीता, ल्याली, स्यार और ये सिंह श्वान दांत-दाढ़ तैं भी मारैं। तातें सिंह श्वान, सूस, गेंड़ा हाथी इत्यादि जे दन्ती हैं। सो इन दन्ती तिर्यंचनका विश्वास करना योग्य नाहीं। और जाके हस्तमें नगन शस्त्र होय, ताका विश्वास नहीं करिये। और स्त्री का ज्ञान महा शिथिल होय है। ताका चित्त महा चंचल होय। ताके उर विषैं कोई बात ठहरे नाहीं विषयनकी अभिलाखनी कार्य—अकार्यमें नाहीं समझै। इत्यादिक अज्ञान चेष्टा की धरनहारी जो स्त्री पर्याय, महालोभकी धरनहारी, ऐसी स्त्री अपने घरकी भी होय तौ भी ताका विश्वास नाहीं कीजिये। अरु मदिरा-पीयी मदके असल सैं बेसुध भया। ताकों भले-बुरेका भेद कछु नाहीं। जाका ज्ञान सर्व भ्रममयी होय गया है। जाकें अपनी परणति अपने वश नाहीं। पराधीन अज्ञान चेष्टाका धारणहारा ऐसा मदोन्मत्त खत्त समानि बेसुध ताका विश्वास नाहीं करिये। और जे जीव पराए किए उपकारकौं भूलें सो

कृतघ्नी कहिऐ। काहूने भूखेकूं भोजन दिया नंगेकूं वस्त्र दिया। रोग विषैं मरतेकौं अनेक यतन—औषधि करि बचाया। तुच्छ पदस्थ तैं पड़े पदस्थका धारी कीया आदर रहित कूं आदर सहित कीया। निरधनकूं धनवान् कीया। इत्यादिक उपकार जापै किये होंय तौ भी तिन सबकूं भूलि जो दुर्बुद्धि उल्टा द्वेष करै। अरु ऐसा कहे, तुमने कहा किया ? हमारे भाग्य तैं भया। तथा हमारी बुद्धिके योगतैं हम सुखी भए व हमने पाया है। ऐसे कहनहारा पराए किए उपकारनका उगलनहारा कहिए तजनेहारा—भूलनेहारा ऐसे कृतघ्नी-पापाचारीका विश्वास नहीं करिये। क्योंकि जानैं अनेक उपकार किए तिसका ही नहीं भया। तो ऐसा कुबुद्धि जीव औरके अल्प उपकारकौं कहा मानेगा। ऐसा जानि यातैं डरिकर इस कृतघ्नीका विश्वास नहीं करिए और एक स्वामी द्रोही, सो जिस स्वामीके प्रसाद अनेक सुखपाए धन पाया छोटे तैं बड़े होय गए समयपाय उसही स्वामीका द्वेषी होय बुरा चाहे ताकूं दुखदाई होय। ऐसे स्वामीद्रोही अपजसकी मूर्तिअमूर्त समानि महालोभी ताका विश्वास नहीं करना भला है और जो अपने चित्तकी बारता औरनकौं नहीं जनावै महामूढ़ हृदयका धारी। मनमें और बचनमें और कायमें और ऐसी कुटिल परणतिका धारी। तीव्र माया कषायके उदयका भोगनहारा, दगाबाज ताका विश्वास नहीं करना। ए स्वामी द्रोही है। काहूका मित्र नहीं है। तातैं इस स्वामीद्रोहीका विश्वास नहीं करना। और एक दुष्ट है सो पराया सुखकूं देखि आप दुखी होय। पर जीवनकूं दुखी देख आप सुखी होनेहारा, रौद्र परणामी दुष्ट है। सो ऐसे दुष्टका विश्वास नहीं करना। यातैं नखी सींगा नदी विषी दंती नगन शस्त्र धारी मदोन्मत्त कृतघ्नी स्वामीद्रोही दुष्ट स्वभावी इन दश जातिके जीवनका विश्वास न करना सुखकारी है।

इति श्री सुद्दृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, अनेक जुगति उपदेश वर्णनो नाम, पच्चीसवीं संधि पूर्ण भयी ॥ २५ ॥

आगे मुखमें मीठा, पीठ तैं द्वेष करनहारा ऐसा मित्र, तजवे योग्य है। सो दृष्टान्त सहित बतावैं हैं—

गाथा—पूठय काजय हंता, पतखो पीय वयण सिरणावो ॥ सय सठ मायापिंडऊ, जय विसकुम्भोय वदन पय जेहो ॥ ६८ ॥

अर्थ—पूठय काजय हंता कहिये, जो पीछे तौ कार्यका घात करै। पतखो पीय वयण सिरणावो कहिये,

प्रत्यक्ष मीठा बोलै, मस्तक नवावै। सय सठ माया पिंडऊ कहिये, सो मूरख दगावाजी का पिण्ड जानना। जय विस कुंभोय वदन पय जेहो कहिये, जैसे मुख पै दूध लग्या विष तैं भर्या कलश होवै। भावार्थ—जो कोई ऐसा दुर्बुद्धि—कुटिल अपना मित्र होय, तो ताकौं पहिचान कैं तजना भला है। कैसा है वह मित्र, पीठ पीछे तो अपनी निन्दा करै, हाँसि करै। सदीव ऐसा छल देखा करै जाकरि मान खण्ड करै, तथा धन नाश करावै। मारनेकूं, दुखी करवे कं छल देखा करै। इत्यादिक दुष्टता राखै। अरु प्रत्यक्ष मिलै तब मुंह पै हाथ जोड़ि, बारम्बार बहुत शीश नवाय, विनय करै, मिष्ट बचन बोलै, मुख—प्रसन्न करि बातें करै,। स्नेह जनावै, सेवक होय रहै। धरती तैं हस्त लगाय सलाम करै। पुत्र सा होय रहै। किन्तु अन्तरङ्ग की दुष्टता नहीं तजै। ऐसे दुष्ट चित्तका धारी पाखण्डी, मायावी मित्रकूं तजना ही सुखकारी है। कैसा है यह मित्र, जैसे विषका भर्या कलश होय, ताके ऊपर थोरा दूध भर्या होय। सवं अनजान जीवन कूं, सवं कलश दूधका भर्या भासै। सो कोई याकौं दूधका भर्या जानि, ऊपरके दूध कूं खांयगा तो प्राण तजैगा। तातैं वह दूध भी जहर समानि है। तातैं या सवंही विषका भर्या जानि, तजना भला है। तैसेही अन्तरंग दोष करि भर्या, मुख मीठा, ऐसा मित्र, विषके कलश समानि जानि तजना योग्य है। आगे एती सभा विषैं सभा विरोध बचन न बोलै। ऐसा बतावैं हैं----

गाथा—धम्मसभा णिप पंचय, जाय लोयोय वंधुवगणाणी। इणविरुद्ध वच करई, सचर सठ लोयणिद दुहलेहो ॥ ६६ ॥

अर्थ----धम्म सभा कहिये, धर्म सभा। णिप कहिये, राज्य सभा। पंचय कहिये, पंच सभा। जाय कहिये, जाति सभा। लोयोय कहिये, लोक सभा। वन्धु वगणाणो कहिये, बन्धुवर्गों में। इणविरुद्ध वच करई कहिये, इन विरुद्ध बचन का बोलना। सचर सठ कहिये, सो जीव मूरख। लोयनिंद दूह लेहो कहिये, लोक निन्दा अरु दुख पावै। भावार्थ—विवेकी होंय सो एती जायगा मैं सभा बिरुद्ध बचन नहीं बोलैं। और एती सभान में सभा विरोधी बोलै, ताकं मूर्ख कहिये। सो ही बताईए है। एक तो मोक्ष मारग सूचक धर्म तथा धर्मके कारण जिन धर्म कों सेवनहारे धर्मात्मा जीव। तिन धर्मात्मा जीवनकी सभा विषैं सवे ध-

र्मात्मा जीव धर्मको बढ़ावे कौं, प्रभावना होवे कौं, पुण्य बढ़ावे कूं नाना चरचा करते होवें। तिस अवसरमें सर्व सभाके धर्मात्मा पुरुषों ने ऐसा कह्या, जो यहां कछू द्रव्य लगावना। तथा तन तैं यहां कछू खेद खावना ज्यों पुण्य होय। ऐसा प्रबन्ध विचार्‌या। सो सब कौं परस्पर बूझ चले कि जो धर्मबुद्धि कूं यह उपाय विचार्‌या है, सो इस प्रबन्धमें सर्व प्राणीन कूं रहना योग्य है सो ऐसा सुनि कैं कोई कहै, जो हम काहूके प्रबन्धमें नहीं, अपनी इच्छा होय तैसे धर्म साधन करेंगे जाकौं प्रबन्धमें रहना हो सो रहो, हम नहीं हैं। ऐसी धर्मात्मा-सभाके खंडवे कों मद सहित वचन बोलै, सो महामूरख कहिये। ये धर्म सभा विरोधी वचन महा पाप-फलका दाता, धर्म घातक वचन है। सो धर्मात्मा विवेकी ऐसा नहीं बोलै। धर्मात्मा होय, सो धर्म प्रबन्ध रूप वचन सुनि कैं, हर्ष सहित सर्व कूं ऐसा कहै, जो तुम धन्य हो। भली विचारी। हम आज्ञा प्रमाण सर्व के वचन प्रबन्ध में शामिल हैं। सर्व ने करी, सो हमकूं प्रमाण है। ऐसा वचन सभामें बोलना, उत्तम धर्म फलका दाता, धर्म सभासुहावता होय है। सो ऐसी बोलनेहारा पुरुष प्रसंशा योग्य है। और जो पापात्मा होय, सो धर्म सभा विरोधी वचन बोलै है, सो ये पाप बन्धका कारण है। तातैं पाप तैं भय खाय, धर्मात्मा धर्म-सभा विरोधी वचन नहीं बोलैं हैं॥ १ ॥ और राजानकी सभा विषैं वचन बोलिये सो सत्य व विनय सहित, अपने-पराए पदस्थ प्रमाण, राजा आदि सर्व सभा कूं सुहावता वचन बोलना, सो विवेकीका धर्म है। और कदाचित् राजाके अविनय सहित तथा सभा कूं अप्रिय, सभा विरुद्ध वचन बोलै, तो मरणादि दुख कूं प्राप्त होय। तातैं राज्य-सभा बिरुद्ध वचन नहीं बोलिये ॥ २ ॥ और पचनमें जहां सर्व पञ्च भले-मनुष्य न्यातिके तथा परन्यातिके मिल, मनसूबा तथा न्याय करैं हैं। तथा कोई प्रबन्ध करते होंय। तहां कोई परस्पर पूछैं हैं। भाई हो, सर्व पंचनका यह प्रबन्ध है। सो इस मनसूबेमें कायम हो अक नाहीं? फलाना जी, पंच तुम पै ऐसा दोष लगावैं हैं। सो ऐसा दंड विचारैं हैं। सो तुमको कबूल हैं कि नहीं? तब विवेकी पुरुष तौ ऐसा कहे। कि भाई! हम बड़े हैं, तथा धनवान हैं। तथा राजपंचनमें बड़ा हमारा पदस्थ है तो कहा भया। ये हम कूं दोष है। सो सर्व पंच मिल ठहरावें, सो हमको प्रमाण है। पंचनकी आज्ञा हमारे

शिर पर है। इत्यादिक पंचनकी बड़ाई व अपनी लघुता रूप वचन बोले, सो विवेकी है। सो वचन बोलना. पंचनमें प्रसंशा योग्य है। यश दायक है। और कोई भोरा, मन्द ज्ञान करि, अपयश कर्मके उदय, ऐसा कहै। कि जो हम को दोष लगावैं हैं। ऐसे-ऐसे दोष वारे तो हम पंचनमें घने बतावेंगे। हमारे ऊपर कोई दोष लगावेगा तो हमभी पंचन तथा कहनेवारे कूं राजी करोंगा। सर्व पंचनमें लाय ऐसी विपत्ति डारोंगा, सो सर्व घर-धन से जायगा। एक-दोयकी आवरू ले मरूंगा। मोकों दोष लगावनहारा तथा दण्ड देनेहारा कौन है? घनो करोगे तो पंच अपनी पंचायती लेवेंगे। मेरे कछु पंचन तें अटका नाहीं। इत्यादि पंचनमें सभाविरोध वचन बोले, सो जीव अपयशकी मूर्ति, पंचन करि निन्दा पावे है। ताकों महा मूरख कहिये। तातें पंचनमें सभा-विरोध वचन नहीं बोलिये ॥ ३ ॥ जहां अपनी जाति इकट्ठी होय, कोई जातिका प्रबंध बांध्या होय। तहां कोई जातिमें प्रवृत्ति नाहीं है। तथा कोई जातिका खान-पान मनें है। तथा कोई अभक्ष खान पान मने है। तथा कोई रीतिका वस्त्र-आभूषण राखना मनाहै। तथा कोई व्यापार-वणिज, बांकी पाग बांधना, फेंटाका बांधना, शस्त्रका बांधना, इत्यादिक मलिन-क्रिया खोटा-चलन मनें है। सो काहू तें कोई एक बात अयोग्य बन गई। ताकों जातिके सब पंचोंने बुलाय कें कही। हे भाई, तुमने अज्ञानता करि यह जाति-विरोधी कार्य किया है। सो सर्व जाति तेरे पे दण्ड मांगे है। तेंने पंचनकी मर्यादा उल्लंघन करी है। तातें ये दण्ड देहु। तब जे विवेकी, जाति मर्यादका जाननेहारा होय। सो तो जातिके वचन सुनि कें, आपहस्त जोरि नि-न्ता करै। जो अयोग्य आचार मोतें बन्या तो सही है। अब जो सर्व जातिकी आज्ञा होय, सो ही मोकों प्रमाण है। अब आगे तें ऐसा आचार-क्रिया नहीं करूंगा। ऐसा वचन सर्व जाति कों सुखदाइ बोलना, सो तो यश पावनेका कार्य है। कोई मूरख होय सो ऐसे कहै, जो हम काहूको चोरी थोड़ी ही करी है। जाति दण्ड देय सो जाति कोई राजा थोरी ही है। ऐसी सीख और काउका देय तो देय। हम तो जैसी हमारी इच्छा होयगी तैसा खान-पान, आभूषण-वस्त्र करेंगे। किसका मुंह है सो हमकौं मनें करेगा। इत्यादिक जाति विरोधी वचन बोलना सो मूर्खता है। निन्दा पावे है। तातें जाति स-

भामें सभा विरोध बचन नहीं बोलना ॥ ४ ॥ लौकिक विषैं भला कार्य प्रगट होय ताकौं निन्दिये नाहीं और लौकिक विषैं जो कार्य निंदनीक होय, ताकूं अङ्गीकार नहीं करिये सो ताकौ विवेकी कहिये। जैसे चोरी, जुआ, परस्त्री व्यभिचार वेश्यागमन पर जीवघात मद्‌मांसादि खाना इत्यादिक सप्त व्यसन कारज ये लौकीक कर निन्ध है। सो इनकौं करैं अरु ऐसा कहै कि जो हमारी इच्छा होयगी सो करेंगे। हमारा कोई कहा करेगा ऐसा बचन कहै ताकूं मूर्ख कहिये। निन्दा पावै है। तातें लोक निन्ध कारज नहीं करिये ॥ ५ ॥ अपने कुटुम्ब माता पिता पुत्र भाई स्त्री इत्यादिक सज्जन स्नेही बन्धुओंके समूहकौं सुख उपजावै ऐसा बचन बोलै सो तो विवेकी है। और बन्धु विरोध बोलना जो ये सर्व कुटुम्ब मोकों हन्या चाहै है। मैं जानूं हूं मोहि देखि नाहीं सकै हैं। मेरे सर्व द्वेषी हैं। सो मेरो दाव लगैगा तो मैं भी सर्वका घात करूगा। तथा मेरे इनपै कहा अटक्या ? मेरे पास धन होयगा तो आपही आय: मेरे पांयन परैंगे। इत्यादिक जिनकूं सुनि सर्व कुटुम्बकूं दुख होय। जिन करि सर्व कुटुम्बका मान खण्डन होय ऐसे कुटुम्ब दुखदायक बचन बोलना सो मूर्खता है। तातें कुटुम्ब विरोधी बचन नहीं कहिये। ऐसे धर्म सभा, राज सभा पञ्च सभा, जति सभा, लौकिक सभा, बन्धु सभा इतने स्थान कहे तिनकौं दुखदाई सभा विरोध बचन बोलै तौ इस सभा विषैं पञ्च निन्ध होय, लोक निन्ध होय, बन्धु वर्ग करि निन्ध होय, ये तीन निन्दा लेय पीछे जीवना बृथ है। ऐसा पुरुष जीवताही सर्वकूं मृतक समान भासै है। ताकरि तो यह भव बिगड़ जाय है। और राज सभा विरुद्ध तैं तनका घात धनका घात होय आँगोपांग छैदन होय इत्यादिक होय। और धर्म सभा विरोधतैं पाप बन्ध होय ताकरि नरकादि दुर्गतिके दुख पावै तातैं धर्मात्मा विवेकी दोऊ भवके सुख यशका अभिलाषी होय तिनकौ ऐसा वचन हित-मित सर्वकूं हितकारी बोलना। ऐसा जानि विरुद्ध बचनका त्याग करना जोग्य है। आगे शास्त्राभ्यास करिकैं येते गुण नहीं भये तो वह शास्त्रके अभ्यासका शब्द काकके शब्द समान है। ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—सुल सुणि पथण णयोगा णधम्मो णय सांतरसपाणो। तऊपथण किंहकाजउ वायसइव धुणि थाणि उयलायो ॥ १०० ॥

अथ—सुतसुणि कहिये शास्त्र सुनि। पथण कहिए पठन करि णयोगा कहिए नहीं वैराग्य। ण धम्मो

कहिए नहीं धर्म। णायसांतरसपाणो कहिए, नहीं शान्ति रसका:पान। तऊ पथणा किंह काजउ कहिए सो पठना किह काज है? वायस इव कहिऐ काककी नाईं। धुणिथांणि कहिए धुनि करि। उयलायो कहिए उकलाया। भावार्थ—यह जिनेन्द्र देव करि कह्या जो दयामयी धर्म सहित शास्त्रनका कथन तिनका रहस्य पाय अनेक धर्मधारी जीवनने अपना कल्याण किया। सो ऐसे शास्त्रनका अभ्यास करके तथा सुनि कैं भी जाका हृदय वैराग्यकूं नहीं प्राप्त भया। तो ऐसे शास्त्रके पढ़ने तैं तथा सुनिवे तैं कहा कार्य सिद्ध भया? और जिन जीवननैं दयामई रस कर भरे ऐसे शास्त्र तिनका अभ्यास करके भी पाप कार्यनतैं भय खाय धर्म रूप नहीं आचरण किया परणति विषैं धर्मकी अभिलाषा रूप नहीं भया। तो ऐसे आगमके अभ्यासका खेद वृथा ही गया। और आप समान सर्व षट्कायक जीव हैं ऐसे भेदका बतावनहारा शास्त्र तिनका अभ्यास करि सुनिकैं भी सर्व आकुलता रहित शान्त रस करि भरया समता समुद्र ताका अर्थ रूपी अमृतकूं पीय संतोषकूं नहीं पाया। तौ ऐसे शास्त्रनके सभ्यास करि भया जो खेद सो विरथा ही गया। और कर्म नाश मोक्ष विषैं धरनहारा पर वस्तु तैं खेद-छुड़ाय निरबन्ध करनहारा ऐसे शास्त्र तिनके अभ्यास करके भी आत्मीक रस पाय निराकुल दशा नहीं करी तो शास्त्रनके अभ्यासका खेद करि किछू सिद्ध नहीं भया। भो भव्य शास्त्रनका अभ्यास करि नानाप्रकार पठन-पाठन करि अनेक शास्त्र गुरुनके मुख तैं सुनि तिन करि अक्षर ज्ञान तो बहुत किया बांचना भले प्रकार सीखा अनेक छन्द काव्य गाथा संस्कृत, प्राकृत करि देश भाषा करि उपदेश देना भी सीखा इत्यादिक चतुराई तो तैंने सीखी। किन्तु वैराग्य भाव न वढ़ाया। पाप तज धर्म दयामई नहीं सुहाया। और क्रोध-मानादि कषाय बुझाय शान्ति सुधा रस नहीं पिया तौ शास्त्रका पठन-पाठन वृथा ही गया। सम्यग्दृष्टीके मूल अनुभवका फल स्वभाव-परभावका निरधार ए सर्व ऊपर कहे जो गुण सो सर्व आत्म-कल्याणके कारण हैं। सो शास्त्राभ्यास तैं होय हैं। शास्त्रनका अभ्यास करि अनेक जीव मोक्ष मारग जानि समता भाव धरि मोक्षकूं पहुंचैं हैं। ऐसे शास्त्रनका अभ्यास करि अनेक खेद खाय पठन करि ऊपर कहे गुण ताकूं प्राप्त नाहीं भया तो सर्व खेद विरथाही गया। जो शास्त्राभ्यास तैं वैराग्य नहीं भया धर्म अच्छा नहीं लाग्या नहीं शान्त भाव भये तो

तेरा शास्त्राभ्यासका शब्द ऐसा भया जैसा दीरघ शब्द करि काक उकलावै है। तैसे इन गुण विना शास्त्रके बांचनेका शोर काक शब्द वत् जानना। आगे मरण हू तैं अधिक निद्राको बतावैं हैं—

गाथा—णिंदा मीच समाणो, मीचोय गभवान्त होई इकवारऊ णिंदो छिंण छिंण घादय णाण आदाए देयगय असुहो ॥१०१॥

अर्थ—णिंदा मीच समाणो कहिये निद्रा तौ मौति समानि है। मोचोय गभवान्त होइ इकवारऊ कहिए मौत एक भवमें एक बार होय। णिन्दो छिंण छिंण घादय कहिये निद्रा छिन-छिन घात करै है। णाण आदाय कहिये इस प्रकार आत्माके ज्ञानकूं घात कर। देय गय असुहो कहिये अशुभगति देय है। भावार्थ—यह संसारी जीव तौ मोहके वशीभूत भये निद्रा कर्मके उदय भया जो आत्माके ज्ञान दर्शनका घात ताके निमित्त पाय आत्मा जड़ समानि होय ता निद्राको प्राप्त भए जीव साता आनन्द भया मानैं हैं। सो हे भव्य ए निद्रा मृतक समानि चेष्टा लिए जाननी। तथा इसे मृतक हूं तैं अधिक दुख दायक जानना। सोही बताईये है। जो मृत्यु है सो तो एक:शरीरके उदय विषैं एक वार आयुके अन्त उदय होय आत्माके दर्शन-ज्ञानकूं घातै है। और निद्रा है सो आत्माका मुख्य गुण ज्ञान-दर्शन ताकौं छिन-छिनमें घातै है। और ए निन्द्रा भले गुणका घाति करि, अशुभ कर्मका बन्ध करि खोटी गति देय है। तातैं निद्राकूं मृत्यु तैं हू दीरघ दुख-दाता जानना। ताही तैं जोगीश्वर निद्राका प्रवेश अपने स्वभावमें नहीं होने देंय हैं ऐसा जानना। आगे दुष्ट जीवनका स्वभाव दृष्टान्त देकर बतावैं हैं—

गाथा—दुज्जण जोंक समभावो इगओयण इग रुधर गह लेई। सथण लगो वा पोसइ णिजणिजपकत्य णाहिको जहई ॥ १०२ ॥

अर्थ—दुज्जण कहिए दुर्जन। जौंक कहिए जौंक। सम भावो कहिए ए एकसे हैं। इग ओयण कहिए एक तौ औगुण। इग रुधर गह लेई कहिए एक रुधिर गहलेय। सथण लगो कहिए थन तैं लागै। वा पोषऊ कहिये भावै पोषै। णिज णिज पकत्य कहिए निज २ प्रकृति। णाहिको जहई कहिए कोई तजता नाहीं। भावार्थ—संसारी जीवनके अनेक स्वभाव होंय हैं तिनमें केतेक ऐसे हैं। जो परकौं दुख दाई दुष्ट स्वाभावीं पर दुख सुखिया पर सुख दुखिया अन्य जीवनकूं दुखो दरिद्री रोगी शोकी भयवान् मान भङ्गी इत्यादिक

असाता सहित देख महा सुखी होंय कोई सुखियाको अच्छी तरह खावता पहिरता अच्छे भोग भोगता, नाचता गावता हँसता रोग रहित धनवान् इत्यादिक प्रकार सुखी देखै तौ दुखी होय। ऐसे पापाचारी दुष्ट अङ्गी रौद्र परिणामीको दुरजन स्वभावी जानना। सो ए दुर्जन स्वभावो अनेक दोषन तैं भरया है। याका सहज स्वभावही दुराचार है। याकौं शुभ करवेका कोई उपाय नाहीं। याकौं शुभ भी करो तो दोष ही अङ्गीकार करै। इस दुष्टका स्वभाव जौंक समान है। जौंक अरु दुर्जन इन दोऊनका एक स्वभाव है। दुर्जन अवगुणका ही ग्रहण करै है। यह याका सहज स्वभाव ही है। जौंक है सो लोहूका ही ग्रहण करे। इस जौंक का भी यही स्वभाव है। देखो इस जौंकको दूधके भरे आंचल तैं लगावो, तौ दूध तज कैं स्तनका लोहू पीवै। और इस दुर्जनकौं चाहे जेता पोषौ, ताके ऊपर चाहे जेता उपकार करौ परन्तु इसका जब प्रयोजन नाहीं साध्या तबही सर्व गुण भूलि करि औगुण ही अङ्गीकार करै। यह अवगुणग्राही इसका अनादि स्वभाव ही जानना ऐसे जौंक अरु दुर्जन इनकी प्रकृति स्वभाव है। सो अपने स्वभावकूं कोई तजता नाहीं। कोई जतन तैं स्वभाव काहूका पलटता नहीं। सो ऐसा जानि इस दुष्ट जनका संग हेय करना भला है। आगे अपने भावनकी उपराजनातैं ही रोगकी दीरघता होय है ताही कौं बतावैं हैं—

गाथा—कच कच गद विण संखो जे पुव्वो पाय जंतु तण होई। उदय काल अणठोभोगे ण ठयण ओर को पायो ॥ १०२ ॥

अर्थ—कच कच कहिये, रोम-रोम। गद विण संखो कहिये, अगणित रोग हैं। पुव्वो पाजेय जन्तुतण होई कहिये, अगले भवके उपारजे, जीवके शरीरमें होंय हैं। उदय काल अणठो कहिये, उदय आये अनिष्ट हैं। भोगे ण ठयण औरको पायो कहिये, भोगे ही जांय और कोई उपाय नाहीं। भावार्थ—इन संसारी जीवनके तन विषैं देखिये, तौ एक २ बालके ऊपर अनेक २ रोगनकी उत्पत्ति है। रोम-रोम, रोगन तैं भरया है। सो इस जीवने पूरव भवमें जैसे उपारजे हैं तैसे ही शरीरमें रोग हैं। सो तिष्ठै हैं, सत्तामें बैठे हैं। सो वर्तमान काल तौ कोई ही रोग दुखदाई नाहीं। परन्तु जब अबाधा काल पूरण होय उदय आवैंगे, तब महाभयानीक दुख कूं करेंगे। तब अनिष्ट लागगा। दीरघ वेदना प्रगट होयगी। तिनके आगे, आत्मा दुख भो-

गता-भोगता शिथिल होयगा। अनेक कष्ट उपजेंगे। तिनके दूर करवे कूं कोईको सामर्थ्य नाहीं। मंत्र, तंत्र, जंत्र, देव साधन, ज्योतिष, वैद्यक इत्यादिक सर्व उपाय विरथा होय हैं। तातें पूरव पाप-परणामनका बन्ध, ताकौं भोगे ही जाय है। और कोई मेटनेका उपाय नाहीं। ऐसा जानि विवेकी धर्मात्मा पुरुषन कूं उदय आई असाता मैं समता सहित दृढ़ रहना योग्य है। आगे और दुखमेटनेका तथा रोगके मेटनेका तौ उपाय है परन्तु कालका उपाय नाहीं। ऐसा बतावैं हैं---

गाथा—खुधा अण तिषणीरो, आमय कुठादि होउ उवचारो। अन्तकणह उवचारो, हरिसुर कम्पय दीण लख होई ॥ १०४ ॥

अर्थ—खुधा अण कहिये, तूधा कूं अन्न। तिषणीरो कहिये, तृषा कूं नीर। आमय कुठादि होऊ उवचारो कहिये, कोढ़ कौं आदि लेय सब रोगों का भी उपचार है। अंतक णह उवचारो कहिये, परन्तु कालका उपचार नाहीं। हरिसुर कम्पय दीण लख होई कहिये, इन्द्रदेव भी उसे देख, दीन होय कंपायमान होंय। भावार्थ—इस संसार में अनेक वेदना—दुखका इलाज है। परन्तु कालका यतन नाहीं। सो ही बताईये है। बड़ा रोग भूख है, ताका इलाज तो अन्न का भोजन है। ताकरि क्षुधा रोग उपशान्त हो जाय है। और तृषा रोग की औषधि जल है। सो तृषा, जल तैं उपशान्त हो जाय है। और कुष्ट रोग, वायु, पित्त, ज्वर, क्षय, :खांसी, स्वांस इत्यादिक रोगन के जतन कूं अनेक औषधि कही हैं। तिन करि रोग उपशान्त होय है। परन्तु एक काल रोगका उपचार नाहीं। ए काल कोई भी जतन तैं मिटता नाहीं। इन्द्र, देवादि ऐसे भी, कालका आगमन देखि, कम्पायमान होंय हैं। ताका नाम सुनतैं, बड़ै २ योधा दीनता कूं धारैं हैं। ताते हे भव्य, इस काल तैं बड़े-बड़े नहीं बचे, तीन लोक में कोई ऐसा स्थाननाहीं, जहां काल तैं बचे। सर्व स्थानकन में जहां जाय, तहां मारै। तातें हे धरमी, तू काल तैं बच्या चाहै है तो मोक्षके पहुंचने का उपाय करि। तातें तनका धरना—मरना सहजही मिटै। मोक्षमें काल नाहीं। और मोक्ष बिना सर्व लोक स्थान में, सर्व संसारी तनधारी जीव, कालका भोजन है। आगे इष्ट वियोग कहां है, कहां नाहीं है। ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—इठ व्योगा णठ जोगा, इठजोगा णठ वयोग कव होई। ये भवचर ववहारऊ, सिद्धो विवरीय रहइ इण संगो ॥ १०५ ॥

अर्थ—इठ योगा णठ जोगा कहिये, इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग। इठ जोगा णठ वयोग कव होई कहिये, कबहुं इष्टका संयोग, अनिष्टका वियोग। ये भवचर ववहारऊ कहिये, ये संसारी जीवन का व्यवहार ही है। सिद्धो विवरीय रहई इण संगो कहिये, सिद्ध इन सब तैं विपरीत--रहित हैं। भावार्थ----जे संसारी तनधारो जीव हैं। तिनकौं कबहुं इष्टका वियोग, कबहु अनिष्टका संयोग होय है। तिन करि आत्मा दुखी होय, विकल्प—आरति करि पापका ही वन्ध करै है। कबहू इष्टका संयोग होय है, अनिष्टका वियोग होय है। तब जीव पुण्यके उदयमें हर्ष मानै है। सो ऐसा दुख—सुख संसारी जीवोंका विवहार ही जानना। और ये कहे इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोगादिक दुख सुख सो सिद्धनमें नाहीं। सिद्धन कों इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोगादिक के कारण नाहीं। तातैं कारणके अभाव तैं संसारी सुख-दुख भी नाहीं। तातैं सिद्ध भगवान् सदा सुखी जानना। आगे काल आगे कोऊ शरण नाहीं, एक धर्म शरण है। ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—जम्मण मण जग लगऊ, सुर णर णारय तिरीय कहिं भाजय। सहु अंतक मुह कवलय, एको संणाय धम्म अणिणाहो ॥१०६॥

अर्थ—जम्मण मण जग लगऊ कहिये, जन्म-मरण जग कौं लागा है। सुर कहिये, देव। णर कहिये, मनुष्य। णारय कहिये, नारकी। तिरीय कहिये, तिर्यंच। किंह भाजय कहिये, कहां भागैं। सहु कहिये, सर्वही। अंतक मुह कवलय कहिये, ये सब अंत में कालके मुख का ग्रास हैं। एको संणाय धम्म कहिये, एक धर्म का शरण है। अणिणाहो कहिये, और नाहीं। भावार्थ--शरीर--इन्द्रिय नाम--कर्मके उदय तैं नवीन पर्याय का उपजना, सो तो जन्म कहिये, और उत्पत्ति भई थी जो पर्याय सो अपनी थी, मर्याद पर्यंत रही। पीछे आयुके पूरण होते पर्याय तैं छूट कैं अन्य गति जाना, सो मरण कहिये। इसकी आयु-स्थिति का प्रमाण है। सो समय तैं लगाय घड़ी, पहर, दिन, वर्ष, पल्य, सागर सो ही बताये है। तहां जघन्य युगता असंख्यात समय जाय, तब एक आंवली कहिये। और असंख्यात आवली काल व्यतीत भये, तब एक श्वासोच्छ्वास काल होय है। ऐसे श्वासोच्छ्वासन तैं संसारीजीवन की स्थित है। सो

ये संसारी जीव इस शरीर में इतने श्वासोच्छ्वास रहेगा। सो काय का आयु-कर्म जानना। सो यह पर्यायधारी संसारी जीव, जब अपनी स्थिति प्रमाण श्वासोच्छ्वास भोग चुके हैं, तब मरजाद पूर्ण होते, आत्मा पुद्गलीक शरीरके संग कूं तजै है। ताका नाम विवहार नय करि लौकिकमें मरना कहैं हैं। ऐसे ये जन्म—मरण, इन जगवासी तनधारनहारे जीवन कूं सदैव लगा है। नाना प्रकार भोगनके भोगनहारे, अनेक ऋद्धिके धारी, सागरों पर्यंत जीवनहारे, ऐसे जो देव हैं। तथा नानाप्रकार दुख--सुख करि मिश्रित जीवनहारे, जो मनुष्य पर्याय धारी। अनेक मन--अगोचर दीरघ--दुखन का सागर ऐसी नरक गति है। अल्प-सुख, दीरघ-दुखका स्थान तिर्यंच गति है। ऐसे चारि गतिके जीव समुच्चय अनंत हैं। सो ये जन्म-मरणके दुख से भागकर कहां जांय ? सर्व जायगो काल मारै है। तातें ये सर्व च्यारि गति वासी जीवनके तन आकार हैं, सो सर्व कालके ग्रास हैं। भावार्थ—कोई जीव कूं अब, कोई कूं चारि दिन पीछे, काल सर्व कूं खायगा। बचवेका कोई उपाय नाहीं। केवल एक धर्म शरण है, और नाहीं। तातें विवेकी जन जन्म-मरणके दुखन तैं डरथा होय ते भव्यात्मा, धर्मका सेवन करि, सिद्धमें चालो। ये पुद्गलीक तन छोड़ि, अमूर्तीक पद धारो। तहां सदीव सुखी रहोगे। वहां कालका आगमन नाहीं। यहांके शुद्ध अमूर्तीक आत्मा, कालके भय करि रहित हैं। तातें जे च्यारि गतिके मरण तैं भागि, काल तैं बच्या चाहो, तो धर्मका शरण लेहु, और शरण नाहीं। आगे अग्नि भेद तीन प्रकार हैं। सो ये अग्नि काहे-काहे कूं जालै। ऐसा बतावै हैं—

गाथा—सोगोणल जे दझय, दझय जे आतिझाण वहणीए। उपला अयणी दझय, इव त्रय ज्वालाय काय मण दाह्व ॥ १०९ ॥

अर्थ—सोगोणल जे दझय कहिये, सो शोक अगनि तैं जलै। दझय जे आतिझाण वहणीए कहिये, जे आर्त्तध्यान रूप अग्नि तैं जल्या। उपला अयणी दझय कहिये, जो काष्ठ-छांणैं (कंडा-उपला) क अग्नि तैं जला। इव त्रय ज्वालाय काय मण दाह्व कहिये, इन तीन अग्नि कर काय-मन जालै है। भावार्थ--शोक अगनिके वहुत भेद हैं। तहां असाता कर्मके उदय तैं इष्ट वस्तुका वियोग भया। ताके निमित्त पाय, कर्मके उदय करि भई जो मनकी भस्म करनहारी शोक रूपी अग्नि, सो ताकरि दग्धायमान जो जीव, सो सदीव

चिंतावान भया, अशुभ कर्मका बंध करता, दुखी होय। तन दुर्बल होय। तातैं इस शोकको अग्नि कहिये। जैसे अग्निका दग्ध्या पुरुष कूं दुखके आगे अन्न नहीं भावै, निद्रा नहीं आवै। सुखके निमित्त नृत्यादि मिलै तो भी दाहके दुख तैं सुखी नहीं होय। तैसेही शोक-अग्नि करि जाका हृदय जल्या होय, ताकौं शोक तैं अन्न नहीं भावै, निद्रा नहीं आवै। अनेक गीत, नृत्य, वादित्रनके सुखतैं अरुचि होय, सुख न होय। इस शोकके तीव्र उदयमें बुद्धि नष्ट होय। उक्ति-जुक्ति नहीं उपजै है। भला ज्ञानका अभाव होय। पढ़्या ज्ञानादिक यादि नहीं आवै। अनेक रोगनकी उत्पत्ति होय। इत्यादि दुख, शोक अगनि करि जल्या, ताकैं प्रगटैं हैं। जाके शोक अग्नि उरमें होय, ताके बाह्य चिन्ह एते होंय, सो कहिये हैं। चित्त तो ताका विभ्रम रूप, भ्रमता होय। गाल पै हस्त देय कैं बैठना। अश्रुपात होना। दीर्घ श्वासोच्छ्वास लेना। रुदन करना। ये सबही कारण दुखके बढ़ावनहारे हैं। ताहीतैं विवेकी समता दृष्टिके धारी धर्मात्मा, इष्ट वियोगमें शोक नहीं करैं। ये तो शोक अग्नि है ॥ १ ॥ अब आर्त ध्यान रूप अग्नि है। सो याकौं, कारण रूपी पवन जब मिलै है। तब प्रज्वलित होय, दाह उपजावै है। सोही कहिये है। जो भली वस्तु गई, ताके विचार तैं आर्त्त अग्नि बढ़ै है। तथा खोटी वस्तुके मिलापकी चिंता, ताके निमित्त तैं आर्त्त अग्नि बढ़ै। तथा रोग पीड़ा काहूकी देख ऐसा विचार उपज्या, जो मेरे रोग न होय तो भला है। तथा मेरो रोग कैसे जाय? ताकी आर्त्त अग्नि प्रज्वलै है। और कार्य किये पहिले, आगामी फलकी आरति। इत्यादिक अनेक प्रकार आरति सोही भई अगनि; सो इस अगनि करि जल्या पुरुष कूं, बड़ा दुख होय। सो इस आरति कौं कैसे जानिये। सो कहिये है। एकान्त बैठना, आरति वाले कूं मनुष्यनकी भीड़ अच्छी नाहीं लागै है। तातैं इकला, एकान्त स्थानमें बैठे। और की बात नहीं सुहावै। शोर होय-बहुत जन बतलावते होंय, सो नहीं सुहावै। चित्त उदास रहै। खान-पानकी अभिलाषा नहीं होय। भोगनमें रक्त-भाव नहीं होय। पुरुषारथकी अति मन्दता होय। आलस भाव शरीरमें प्रमाद होय। इत्यादिक ये आर्त्त भाव हैं। सो सर्व पापबन्धके कारण हैं। तातैं इसे आरति अग्निका दुख विशेष है। यह दूसरी आरति अग्नि है ॥ २ ॥ तीसरी छैंणा-लकड़ीकी अग्नि है।

सो इस अग्नि कूं सर्व संसारी जानें। और याके जालनैं तैं सर्व जीव दुख खाय हैं॥ ३ ॥ ऐसे ये तीन अग्नि हैं। तिनमें शोक अग्नि अरु आर्त्त अग्नि, इन दोय अग्निको मोही जीव, ज्ञानकी मन्दता तैं नहीं जानैं हैं। और ये दो अग्नि जो दाह-दुखा करें हैं। ताकौं भी अज्ञानताकी विशेषतासे नहीं जानें हैं। और जे जिन देवकी आज्ञा प्रमाण चहनेहारे, तत्वश्रद्धानी, शुभाशुभ भाव विकल्पके रहस्य जाननेहारे, समदृष्टी, ज्ञानी है आत्म-काया न्यारी-न्यारी। तिन मिथ्या परणतिजारी, सदीव अनुप्रेक्षाके चिन्तवनहारे, जगत दशा तैं उदासी, अल्पकालमें जे जीव शिव जासी, जे अनुभव रसके भोगी हैं, ते इन दोऊ अग्निके भेद-भाव जानैं हैं। सो काष्ठ-लकड़ी की जो उपल अग्नि है। सो तो ऊपर तैं तन कौं जारै है और ये दोऊ शोक व आर्त्त अग्नि हैं। सो अन्तरङ्गमें आत्माके प्रदेशमें दाह उपजाय, मन कौं सदीव दाह करैं। और काष्ठ आदिकी अग्निका जल्या तो एक भवमें दुख पावै। परन्तु शोक व आर्त्त अग्निका जल्या, भव-भव विषैं दुख पावै। तातैं जे विवेकी हैं तिन्हें समतारूपी शीतल-जल लेय करि, शोकादि अग्नि कौं बुझावना योग्य है। इन दोऊ अग्निके जले भवान्तरमें दुख पावें। ऐसा जानि शोक आरति तजना सुखकारी जानना। आगे विद्यादिक अनेक भले गुण है, तिनकौं इन्द्रिय-सुख रूपी ठग हैं, सो ठगैं। सो बतावैं हैं—

गाथा—बोधय तव चारत्तो, संजम झांणोय साम्म पणणो। ए सहु गुण जग पूज्यौ, अख सुह वंचय तसयरा वु धे ॥ १०८ ॥

अर्थ—बोधय कहिए ज्ञान। तव कहिये तप। चारत्तो कहिये चारित्र। संजम कहिये, संयम। झांणोय कहिए ध्यान। साम्म परणामो कहिए शान्त परणाम। एसहु गुण कहिए ये सब गुण। जग पूज्यो कहिए, जगत पूज्य हैं। अख सुह वंचय तसयरा बुधे कहिए इन्द्रिय सुख है सो इनके ठगनेको चोर समानि जानि, पण्डितजन चेतो। भावार्थ—नान प्रकार शास्त्रनका अभ्यास सो ही भया वॉछित सुखका दाता मोक्ष मारग दिखावे कूं दीपक समान चिंतामन रतन। सो सहज ही स्वर्गादिक सुखका देनेहारा ऐसा जो विद्याभ्यास, जगत पूज्य गुण ताके ठगवेकौं इन्द्रिय जनित सुखकी अभिलाषा चोर समानि है। भावार्थ—ऐसे ज्ञान गुणके धारी ज्ञानी भी कदाचित् इन्द्रिय सुखनकी आरतिमें आपड़ैं। तो वह आरति धर्मशास्त्रनका ज्ञान ठगलेय लूटि

लेय है। तातें जिनदेव भाषित विद्याका भावी शुभाशुभ पंथका वेत्ता इन्द्रिय जनित सुखनमें धर्म छाड़ि नहीं जाय है। और अनेक प्रकार दुर्धर तपके धारी तपस्वी अनेक ऋद्धि संयुक्त औरनकूं पुण्य-सम्पदाके दाता, २०८
जगत पूज्य गुण भण्डार ऐसे तपस्वी भी कदाचित् इन्द्रिय सुखनकी लालच करि भोगनकी अभिलाषा करें तो तपादिक अनेक गुण सो इन्द्रिय चोर लूटि लेंय हैं। तातैं जो सांचे तपस्वी वीतराग दशाके धारी हैं सो इन्द्रिय जनित भोग तैं राग भाव नहीं करैं। अपने तप धनकी रक्षा करैं। चारित्र जो पञ्च महाव्रत पञ्च समिति तीन गुप्ति ए तेरह जाति चारित्र मोक्ष रूपी द्वीपकूं पहुंचावनेकूं जहाज समानि, त्रिभुवनके जीवन करि बन्दनीक। ऐसे चारित्र रतनके ठिगवेकूं जो इन्द्रिय सुखनकी भावना है सो लुटेरे समानि है। जो ऐसे चारित्रका धारी यतीश्वर भी कदाचित् अपने धर्म तैं विछुड़कैं भोगन विषैं आवै तो ताका चारित्र रतन चुराया जाय है। तातैं जेते चारित्रधारी तपोधनी हैं। ते इन्द्रिय भोगन तें राग भाव तजें हैं। पंचेन्द्रिय तथा मनका जीतनहारा षट् काय जीवनका रक्षक संयमी इन्द्रिय संयमी प्राण संयमका धारी जोगी जगत वंदनीक भी भोग विषैं अभिलाषा करें, तो अपना संयम रतन ठिगावे। तातैं जे संयमके लोभी हैं ते अपने गुणकी रक्षाके हेतु भोगनकी इच्छा नहीं करैं। और स्वर्गादिकका दाता धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान करि मोक्षका अविनाशी सुख पावैं। सो ऐसे धर्म-शुक्लध्यानके धारक यतीश्वर भी कबहूं इन्द्रिय जनित सुखके प्रेममें पड़ि जांय तौं अपना ध्यान धन गुमावैं। सो ध्यानी समता रसका भोगी इन्द्रिय सुखकी चाह नहीं करे। और सहज सुधारसका स्वादी अनेक तत्त्व विचारके जोर करि कषायनका मद तोड़ करि मोहको निर्बल पाड़ि आप समता सागरमें प्रवेश करि निराकुल तिष्ठनेहारा ऐसा जतीश्वर कदाचित् इन्द्रिय सुखके द्वार सराग चित्त करि निकसै तौ इन्द्रिय चोर ताका समता धन छिनाय लेय कैं भिखारी सा करि डाले। तातैं जे समता रसके स्वादी निराकुल भोगके वांच्छक हैं। ते इन्द्रिय भोगनके मारग भी चित्त कूं नहीं चलावैं। ऐसे कहे जे ज्ञान तप चारित्र संयम शुभ ध्यान समभाव ये सर्व गुण जगत पूज्य हैं। सो इन गुण रतन ठगवेकूं इन्द्रिय सुख चोर रूप हैं।

तातैं जो अपने धर्म गुणको बचायवेकी चाहि होय,तौ इन्द्रिय भोगकूं धर्मके कालमें नहीं सेवना योग्य है। आगे इष्ट वियोगके दोय भेद हैं सो बतावैं हैं—

गाथा—जुगभे यंठ वियोगो, इकासो इग होय णय आसो। थिति खय विणासउ, आसय जे भिण गमण उ अण ठांणय ॥ १०६ ॥

अर्थ—जुगभे यंठ वियोगो कहिए इष्ट वियोगके दोय भेद हैं। इकासो कहिए एक आशा सहित। इग होय णय आसो कहिए एक बिन आश। थिति खय कहिए स्थितिके च्चय भए। विणासउ कहिए सो बिन आस। आसयजे कहिये आस सहित जो। भिणगमण उ अण ठांणय कहिए और स्थान जानेकूं भिन्न होय गमन करै। भावार्थ—संसार विषैं इष्ट वस्तु चेतन-अचेतन इनका वियोग होय है। ताके दोय भेद हैं। सो [illegible] हैं। चेतन इष्ट जे माता पिता भाई पुत्र स्त्री हाथी घोटकादिक चेतन पदार्थ। इनके वियोगके दोय [illegible] आशा सहित वियोग है और एक आशा रहित वियोग है। तहां जिस चेतन पदार्थ की [illegible] करि जो आत्म पर्याय छोड़ि परलोककों गया सो अब यातैं वियोग भया सो अब [illegible] नाहीं। ए तो आशा रहित वियोग है। और कोई अपना इष्ट एक स्थान तैं भिन्न होय [illegible] किया सो ये आशा सहित वियोग है। यातैं मिलनेकी आशा है। ऐसे वियोग [illegible] आशा सहित वियोगमें तो अल्प दुख होय है। और आशा रहित [illegible] पदार्थ रतन आभूषण वस्त्र मंदिरादिक काहूकों मांगे दिए होंय। [illegible] करि धनका वियोग होय सो आशा सहित
दान को [illegible] और जो धन अचेतन वस्तु चोरी गई होय
सर्वज्ञ-केवली त [illegible] स्थानमें गई ताके आवेकी आ-
—जिण गण मुण वच सावय, अतस [illegible] आवनकी हानि है। और जे वि-
अर्थ—जिण कहिये, केवली। गण [illegible] नाहीं है। [illegible]
कहिये, इनके बचन। अतसय जुय वयण को [illegible] विनाशीक हैं,
सम्यग्दृष्टी हैं। मिच्छो वच कहिये, परन्तु मिथ्यादृष्टि के [illegible]

कर्मके आधीन हैं। अपनी स्थितिके प्रमाण रहैं हैं। जो भली वस्तु अपने पुण्यके उदय मिलै सो भी अपनी स्थिति प्रमाण रस देय विनस जाय है। स्थितिकी पूरी भए देव इन्द्रकी राखी भी नहीं रहै। और अनिष्ट वस्तुका मिलाप पापके उदय तैं होय। सो ए काहूकी घेरी जाती नाहीं अपनी स्थिति पूरण किए जाय। सो जे भोरे मोही परवस्तुकों अपनी करि दृढ़ राखनेहारा जीव तौ इष्टके वियोगमें महा दुखी होय है। और सांची दृष्टीके धारी परकौं पर जाननहारे तिनकौं खेद भाव नाहीं होय। आगे जैसी परणति विषय कषायमें सांची होय लागै है, तैसे ही धर्म विषय लागै तौ कहा फल होय ? सो बतावैं हैं—

गाथा—जे मण विसय कसायो, जेहो लगाय धम्म कज्जाए। तउ लव काल णरंजण, इंदो अहमिन्द सयल मगलाहो ॥ ११० ॥

अर्थ—जे मण विसय कसायो कहिये, जे मन विषय-कषायमें लगै। जेहो लगाय धम्मकज्जाए कहिये, तैसे धरम कारजमें लगावौ। तउ लव काल णरंजण कहिये, तौ थोरे ही कालमें निरंजन होय। इंदो अहमिंद सयल मगलाहो कहिये, इन्द्र अरु अहमिंद्र सम्पूर्णके सुख सहज ही राहमें प्राप्त होंय। भावार्थ—जीवन कीसंसार विषैं अनेक परणति है। सो अनादि कालका भूल्या ये जीव, धर्मके स्वाद कूं नहीं जानै। अनंतकालका विषय कषाय मोहित जीव, गति-गतिमें भ्रमणनेहारा प्राणी, इन्द्रिय-सुख कूं बहुत चाहै है। परन्तु जगवासी जीवका चित्त, जैसे विषय—कषायमें रंजायमान होय, एकाग्र लागै है। तैसाही यदि धर्म विषैं एकचित्त होय लागै, तौ अल्पकालमें ही सिद्ध-निरंजन पद पावै। तहां अनंतकाल सुखी रहै। और इन्द्रपद, अहमिन्द्र पद जो नव ग्रीवक, नव अनुत्तर, पंचपञ्चोत्तर इन कल्पातीत देवनके सुखतौ सहजही राहमें आय, प्राप्त होंय हैं। तातैं विवेकी जीवन कौं विषय—कषाय तजि धर्म विषैं लागना योग्य है। आगे ऐसा कहैं हैं जो कृपण अपने तन कौं ठगै है—

गाथा—किप्पण णिज तण वचय, वंचय सुयपणण जणक तीए मित्तोय। तण दे तण णह दाणो, धम्म रहीयो मित्य काय सम जीवो ॥ १११ ॥

अर्थ—किप्पण णिज तण वञ्चय कहिये, सूम अपने शरीर कौं ठगै है। वंचय सुयपणण कहियें, अपनी जननी कौं ठगै। जणक कहिये, पिता। तीए कहिए स्त्री। मित्तो कहिये, मित्र। इनकौं ठिगै है। तणदे तण-

गाह दाणो कहिये, तन देय परन्तु तृणका दान नहीं देय। धम्म रहीयो मित्य काय-सम जीवो कहिये, धम करि रहित जीव मृतकके शरीर समानि है। भावार्थ—जे जीव महा कृपण मनके धारी सूम हैं। सो अपने तन कौं आदि लेय सर्व कुटुम्ब कौं ठगैं हैं। सो ही बताईयें है। अपने तन निमित्त अल्प-भोजन रस-रहित खाय, पेटमें भूखा रहै। लोभी उदर-भर भोजन नहीं करै, भूख सहै। शीत-कालमें तनपै मोटा वस्त्र सो भो अल्प, साता तैं सम्पूरण तन नहीं ढकै, शीलकी वेदना सहै। घास, लकड़ी जलाकर तातैं तन तपाय, शीत-काल पूरण करै, बहुत कष्ट सहकैं दिन बितावै। दाम-दाम जोड़ि साता मानै। ऐसे तन कूं कष्ट देय। जा तन तैं भार बहि-बहि, मजूरी कराय धन कुमाया, ताही तन कौं नहीं पोषै। पेट भर भोजन नहीं देय। ऐसा लोभी अपने तन कूं ठगनेहारा कहिये। और पुत्र है सो भूखका मरचा रुदन करै। औरके बालक अच्छा खाय पहरैं; तिनकौ देखि याके पुत्र यापै अच्छा खान-पान माँगैं—तरसैं, परन्तु ये लोभी दया रहित भोजन नहीं देय, तब पट-भूषण कहां से पावैं। ऐसे ये सूम, पुत्र कूं ठगनेहारा कहिये। और या सूमकी माताने, नव मास पेटमें राखा था। ऐसी माता, पुत्र पै भला भोजन-वस्त्र माँगै। कहै हे पुत्र, अपने घरमें धन अटूट है। अरु तूं हम कौं पेट भर अन्न भी नहीं देय। सो हे पुत्र, हम ऐसा किसकूं कहें ? हमकौं भूख रहै है, शीत वेदना रहै है, अग्नि तैं ताप, दिन—रात काटैं, सो तोहि दया नाहीं आवै है ? ऐसे वचन माताके सुनि कैं सूम अगल-बगल हो जाय। सुनि-अनसुनी करै। परन्तु दाम एक भी नहीं देय। सो माताका ठगनहारा कहिये। और इस सूमका पिता, सो ताने बड़े २ कष्ट सहकैं, द्वीप-सागरन उद्यान-नगर-देशनमें गमन करि-करि अनेक भूख-प्यास सहकैं, पापारम्भ ठानि अनेक द्रव्य उपार्ज्या। जब जानी कि मेरो पुत्र नाहीं, सो धन घर सोहता नाहीं। तब पुत्र बिना, धन-सम्पदा वृथा जानता भया। तब पुत्रके निमित्त अनेक कुदेव-कुभेष पूजे। अनेक मंत्र, तंत्र, यंत्र, करि-करि पापारम्भ बांध्या। ओर—और व्याह किये। अनेक स्त्री परन्या। तब कोई कर्म जोग तैं एक पुत्र भया। तब पिता बहुत सुख किया। याचकिन कूं मन-वांछित दान दिये। पुत्र जन्मका बड़ा उत्सव किया। पीछे अनेक भले-भोजन लाय पुत्र कूं दिया। अनेक पट-भूषण देय, लाड़िला

राखा। ऐसे जतन करि बढ़ाया, तरुण किया। आप केतेक दिनमें वृद्ध भया। तनकी शक्ति घटी। पुत्र बालक था सो अब तरुण भया। तब पुत्रका व्याह करि घरका धनी कर्‌या। सर्व घरका धन धान्य पुत्र ने पाया। अब पिताका तन, दीन भया। इन्द्रिय बल घट्या। तब पुत्र पै भला भोजन माँगै, सो नहीं देय। वस्त्र मांगै, नहीं देय। देय तो तुच्छ देय या बहकाय देय। सो अपयशकी मूर्ति, लोभी पुत्र, पिताका ठगनेहारा कहिये। और अपनी स्त्री, भला भोजन-वस्त्र-आभूषण मांगै। कहै हे पति, औरनके घरकी स्त्री देखो, भला खाय-पहरैं हैं। अरु तुम्हारे घरमें बड़ा धन है अरु हमारा यह हवाल है। जो अन्न, तन कौं तो देय। ऐसे दीन वचन स्त्री कहै। परन्तु यह लोभी स्त्री कूं भी नदेय। सो स्त्रीका ठगनेहारा कहियै। और अपने मित्रनकी मजलसमें जाय, सो उनका धन तो आप खाय आवै। अरु अपना धन मित्रन कूं नहीं खुवावै। सो मित्रनका ठगनेहारा कहिये। ऐसा कृपण, अशुभ परणतिका धारी, दयाभाव रहित है। ये कठिन उरका धारी सूम, सो मरै, अपना तनका घात करै, परन्तु दानके निमित्त घासका तिनका नहीं देय। ऐसा सूम, निर्लज्ज, दुर्भागी, निंदाका पात्र, धर्म भावना रहित, जीवत ही मृतक समानि जानना। भावार्थ—ऐसे इस जीवका जीवना वृथा है। ये सूम जैसा जीया तैसा न जीया। आगे भिक्षुक है सो मांगनेके मिस करि, मानूं घर घर उपदेश ही देय है। ऐसा बताईये है—

गाथा—भिक्षक घय घय बोधय, भो सत पुंसाह देह धग दाणं। विण दीए मम जोवो, लहुवण वारवार जाचंती ॥ ११२ ॥

अर्थ—भिक्षक घय घय वोधय कहिये, मंगता घर-घर उपदेश देय है। भो सतपुंसाह कहिये, भो सत्पुरुष हो। देय धन दाणं कहिये, धग कौं दानमें देओ। विण दीए मम जोवो कहिये, बिना दिये मोकों देखो। लहुवण कहिये, मैं तनक सा होय। वारवार कहिये, घड़ी घड़ी। जाचंती कहिये, मांगों हौ। भावार्थ—ए रंक जो भिक्षा मांगनहारे—मंगता, घर घर विषैं भूखके मारे याचते फिरैं हैं। सो आचारज कहैं हैं। ए रंक आप जाँचैं नाहीं हैं। मानूं कृपण, कठोर चित्तके धारी, दया रहित जीवन कूं अपनी दशा दिखाय, उपदेश ही देय हैं। तिनके निमित्त ए भिक्षा मांगनेहारे घर-घरमें ऐसा कहते फिरैं हैं। हे धर्मात्मा पुरुष हो!

तुम्हारे पास धन है सो ताकौं दानमें लगाओ, दान कूं करो। नहीं तौ पीछे हमारी सी नाईं पछतावोगे। बिना दान दिये, हम को देखो। हमने पूरव भवमें धन पाया, परन्तु दान नहीं दिया। सो अब या भवमें पेटभर भोजन नाहीं। तन पै ढाँकने कूं वस्त्र नाहीं। महा अपमानित भये, दारिद्रके जोग करि दीन होय, रंक भये घर--घर अन्न के दानो याचैं हैं, तौ भी उदर नाहीं भरे है। सो हे सत्पुरुष हो, हमने या बात सत्य मांनी। जो लौकिक में ऐसी कहैं हैं कि जो दिया सो पावै, बिना दिये हाथ नहीं आवै। सो अब हमने निश्चय जानी प्रतीत, आई कि जो हमने पूरव--भवमें नहीं दिया, तातें लाचार-असहाय होय बारम्बार कहिये घड़ी-घड़ी याचैं हैं। तथा वार-वार कहिये घर-घरके वारने नगर में माँगते फिरैं हैं। तथा बार-बार कहिये हमारा बाल-बाल अशीष देय भिक्षा मांगैं है। तथा बार-बार कहिये अपने घर तैं बाहिर याचैं हैं। तथा बार २ कहिये बायर-बायर करि पुकारैं, शोर करि याचैं हैं। तौ भी उदर नहीं भरै है। तथा वार-वार कहिये, नीर-नीर प्यावो, मारे प्यासके प्राण जांय हैं। सो पानी पियावो, पानी पियावो। ऐसे दीन भये तृषाके दुख तैं पुकारैं हैं सो पापके उदय, कोई जल भी नहीं देय। ऐसे हम बिना दिये, कहां तैं पावैं ? महा दुखी भये फिरैं हैं। तातें हे भव्य हो, बिना दान दिये, हमारी सी नाईं दुख पावोगे। अरु हमारी नाईं, पीछे पछताओगे। तातें अब कछु दान देने की शक्ति होय, तो दान करतैं मति चूकौ। ऐसे ये रंक हैं सो भिखारी का भेष करि, मानो उपदेश ही देय हैं। या भांति भिखारीका दृष्टांत देय, दान का मार्ग बताया। तातैं जो विवेकी हैं सो अवसर पाय, तिन कूं दान देना योग्य है ॥ ११२ ॥

आगे सर्वज्ञ-केवली तैं लगाय सम्यग्दृष्टी के अरु मिथ्यादृष्टी के वचन-उपदेश विषैं, अन्तर बतावैं हैं—

गाथा—जिण गण मुण वच सावय; अतसय जुय वयण होय समदिट्ठी। मिच्छो वच विण अतसय, इम णिप्प रंकेय वयण भेयाय ॥ ११३ ॥

अर्थ—जिण कहिये, केवली। गण कहिये, गणधर। मुण कहिये, मुनीश्वर। सावय कहिये, श्रावक। वच कहिये, इनके बचन। अतसय जुय वयण कहिये, अतिशय सहित वचन। होय समदिट्ठी कहिये, ये सम्यग्दृष्टी हैं। मिच्छो वच कहिये, परन्तु मिथ्यादृष्टि के बचन। विण अतसय कहिए, बिना अतिशय

हैं। इमि कहिए, जैसे। णिप्प कहिए, राजा। रंकेय कहिए, रंक के। वयण भेयाय कहिए, वचन का भेद है। भावार्थ—जे वचन अतिशय सहित होंय, सो वचन तो सत्यपणे कूं लिए हैं। ताते तिन वचन का धारण किये तो तत्वज्ञानी होय है। और जे वचन अतिशय रहित होंय, तिन वचनों तैं तत्वज्ञानी नहीं होय। सो ही कहिये है। जो केवल ज्ञानी सर्वज्ञ भगवान के वचन की धुनि सुनतैं ही श्रवण पवित्र होंय, पापका नाश होय। तत्वज्ञान के भेद कौं दिखावै है। ऐसे भगवान अन्तरजामी के वचन, अतिशय सहित हैं। और इन्हीं भगवान के वचन-प्रमाण अर्थ कौं लिए, च्यारि ज्ञान के धारी गणधर देव के वचन प्रमाण हैं। ये वचन अतिशय सहित हैं। ताते सत्य हैं। और इनहीं गणधर देवके वचन-प्रमाण अर्थ सहित प्ररूपे जो आचार्य, उपाध्याय, साधु मुनिराज इन योगीश्वरों के वचन है, सो अतिशय सहित हैं। तातैं प्रमाण हैं। और इनही आचार्यन के अर्थ कूं लिये, इनके प्रमाणे कूं लेय भाषे, पंचम गुणस्थान धारी श्रावक तिनके वचन, अतिशय सहित हैं। तातैं प्रमाण हैं। और इन्हीं केवली, गणधर, आचार्य इनके भाये अर्थ, तिनही प्रमाण अर्थ का धारण करणहारे चतुर्थ गुणस्थान के धारी सम्यग्दृष्टी जीवनके वचन, देव-गुरुके कहे अर्थ प्रमाण हैं। तातें अतिशय सहित हैं। ऐसे जिन वचन, गणधर वचन, आचार्य मुनिके वचन श्रावक सम्यक् धारी के वचन असंयमी यती के वचन, ये सर्व सम्यग्दर्शन के धारी हैं। सो इन सर्वके वचन यथायोग्य अतिशय सहित हैं। सो ही कहियो हैं। केवली तीर्थंकर के वचन, अनक्षर मेघ-ध्वनि समानि हैं। तिसके सम्बन्ध से देव मनुष्य, तिर्यंच ये तीन गतिके जीव इनके श्रवण निकट तिष्ठते पुद्गल स्कन्ध, सो अक्षर रूप सहजही परणामें हैं। ताकरि ये सर्व उन्हें अपनी भाषारूप समझ लेय हैं। ऐसा अतिशय तो भगवान के वचन विषैं है। और गणधर देवके वचन, अक्षर रूप हैं। सो तिनका विश्वास तीन लोकके जीवन को होय। तिन के श्रवण किये, पापका नाश होय। ऐसे इन गणधर देवके वचनका सहज स्वभाव ही है। ऐसे अतिशय गणधर देव के वचन का है। मुनीश्वरों के वचन राग-द्वेष रहित, सरल, मिष्ट, सर्व जीवन कूं सुखकारी हैं। तातैं इनकी भी प्रतीत कर, सर्व जीव-धर्म-सन्मुख होंय। ऐसा अतिशय, मुनिके वचन

का जाननां। और श्रावक-व्रती अरु असंयत सम्यग्दृष्टी, ये भी केवली के वचन-प्रमाण अर्थ कूं लिए उपदेश करैं हैं। तातैं इन तत्वज्ञानी के वचन भी सर्व धर्मी जीवन कूं, प्रतीति उपजावैं हैं। तातैं ये भी अतिशय सहित हैं। और मिथ्या दृष्टीके वचन जिन-भाषित-अर्थ रहित हैं। तातैं असत्य हैं। अतत्वके प्ररूपण हारे, राग द्वेष-सहित हैं। तातैं अतिशय रहित हैं। अप्रमाण हैं। ऐसा जानना। जैसे राजा का वचन जो निकसै, सो सर्व कौं प्रमाण है। सत्य है। सर्व अङ्गीकार करैं हैं। और भूपका वचन उल्लंघन किये दण्ड पावै दुखी होय। भूपकी आज्ञा मानै, सुखी होय। तैसे सर्वज्ञ भगवान्, जगतका राजा। ताके वचन प्रमाण चालै, सुखी होंय। जिन-वचन उल्लंघन किए, पाप बन्ध होय। दुख उपजै। तातैं राजाका वचन अतिशय सहित है। और रंकका वचन अतिशय रहित है। रंक काहूके ऊपर कोप करै, तो कछू होता नाहीं। तथा कोई पर राजी होय, तो कार्यकारी नाहीं। रंक कहै, तेरा घर लूट लेहों। तो यातैं घर लुटता नाहीं। और रंक कहै कि राजपद दे देहों। तो राज्य मिलता नाहीं। तातैं रंकका शुभाशुभ वचन बोलना, वृथा है। रंकके वचनमें अतिशय नाहीं। तैसेही अतिशय रहित मिथ्यादृष्टीके वचन, असत्य, अप्रमाण, रंकके वचन समानि निरर्थक, पापकारी, अतत्वश्रद्धान सहित हैं। तातैं मिथ्यादृष्टी, मिथ्या श्रद्धानीके वचन अप्रमाण पापकारी जानि, ग्रहण नहीं करिये। ये भले फल रहित, सुखकारी नाहीं। जैसे कोऊ राजाकी सेवा करि ताकौं राजी करिये। तो राजी भये कबहूं दारिद्र खोवै। धन देय, ग्राम देय, सुखी करै। तातैं राजाकी सेवा तो, शुभ फलदायक है। और कोई रंककी अनेक प्रकार सेवा करि, रंक कूं रिझाय, राजी करै। तो सेवाका फल विरथा जानना। वह रंक आपही दरिद्री-भूखा है, दुखी है। तो और कौं कहा सुखी करैगा? तैसे ही तीन लोकके राजा इन्द्र, चक्री, धरणेन्द्र हैं। सो इन राजानके राजा भगवानकी जो सेवा करैं, तौ सुखी होंय। तिनके वचन प्रमाण करि चालै, तौ देव सुख, इन्द्र सुख, चक्री सुख, खगपति सुख, मण्डलेश्वर राजा आदि अनेक पदके सुख निश्चय ही पावै है। और मिथ्या श्रद्धानीके बचन प्रमाण चालै, तौ सुख

नाहीं। ऐसा जानि मिथ्या वचन, शुभ भावना रहित, इनका विश्वास नहीं करना। ये अतिशय रहित हैं। सम्यक् सहित श्रद्धावानके वचन सुखकारी हैं। ये अतिशय सहित वचन जानना ॥

इति सुदृष्टि तरङ्गणी नाम ग्रन्थ मध्ये, हितोपदेश कथन वर्णनो नाम, छब्बीसवां पर्व सम्पूर्ण ॥ २६ ॥

आगे षट् लेश्या कथन बताईये है—

गाथा—किण्हं णील कपोतय असुह लेष्साह जीय पण्णामो। पीता पम्मा सुक्का ये सुह लेस्साय होय खण भेया ॥ ११४ ॥

अर्थ—कृष्ण, नील, कपोत ये तीन अशुभ लेश्या हैं। पीत पद्म शुक्ल ये तीन शुभ लेश्या हैं। भावार्थ—ऐसे जीवके अशुभ—शुभ परणामपर षट् भेद लेश्याके हैं। योग अरु कषायके मिलाप तैं शुभाशुभ जीवकी परणतिका होना सो लेश्या है। सो इनका स्वरूप कहिये है। जहां वड़ा क्रोधी होय। वेर नहीं तजे। परके बुरा करवेका सहज स्वभाव होय। महा दुष्ट परणामी होय। स्वामी--द्रोही होय। माता-पितादि गुरुजनकी आज्ञा तैं विमुख होय। अविनयी होय। और देव गुरु धर्मकी आज्ञा तैं प्रतिकूल होय। राज विरोध क्रियाका करनहारा होय। जुआ आमिष (मांस) मदिरा वेश्या घर गमनी जीव घाती चोर परस्त्री लम्पटी इत्यादिक सप्त व्यसन कर रंजायमान पापाचारी अनेक दोषनकी मूर्ति ऐसे अशुभ भाव जाके होंय। सो इन लक्षण सहित जे जीव भाव सो कृष्ण लेश्या है। तथा स्वेच्छाचारी स्वच्छन्द होय। तथा धर्म क्रिया विषैं प्रमादी होय। मन्द बुद्धि, आलसी शिथिल शब्दी होय परके किये गुणका लोपनहारा कृतघ्नी होय विशेष ज्ञान कला चतुराई करि रहित होय। पंचेन्द्रिय विषयका लोलुपी होय। महा मानी होय। अत्यन्तगूढ़ चित्तका धारी होय मायावी होय जाके चित्तकी और नहीं पावे। इत्यादिक चिन्ह कृष्ण लेश्याके जानना इति कृष्ण लेश्या ॥ १ ॥ आगे नील लेश्या बहुरि जाकैं बहुत निद्रा होय परके ठगवेकी कला चतुराईमें प्रवीण होय तथा और सीखवेकी वांच्छा होय। और अत्यन्त लोभके उदय सहित धन-धान्यादिक इकट्ठे करिवेकों अनेक आरम्भ करता होय। और काम चेष्टा करि बहुत ही विकल होय इत्यादिक लक्षण जाके होंय सो नील लेश्या है। इति नील लेश्या ॥ २ ॥ आगे कापोत तहां औरनकौं दोष लगावैका सहज स्वभाव होय। अनेक नय जुगति देय

परको निन्दा करनहारा होय। जो हँसि-हँसि पराया बुरा करै। पराई निन्दा करै चुगली करै। ऊपर तैं विनयवान् होय अन्तरङ्गमें पराया बुरा चाहै। बुरा करवेका उपायी होय। परकौं भला खाता-पीता पहरता देखि आप खेद पावै। परकौं सुखी देख नहीं सुहावै। परके दुख करवेकौं अनेक उपाय करता होय। सदीव जाका चित्त शोक रूप रहता होय। जाके निरन्तर भय रहता होय। और परका अपमान करिं सुख मानता होय। अपने मुखतैं अपनो बहुत प्रसंशा करता होय। आप जैसा पापी चोर असत् मारगी और कौं जानि कोईका विश्वास नहीं करै। आपकी बड़ाई करै खुशामद करै ताकौं राजी होय धन देवै। अपने पराये हेतु कौं नहीं समझै। युद्ध विषैं मरणकी जाकी इच्छा होय इत्यादिक चिन्ह जाके होंय सो कापोत लेश्या जानना। इति कापोत लेश्या ॥ ३ ॥ आगे पीत लेश्या तहां कार्य-अकार्यकौं समझै। खाद्य-अखाद्य कौं भी जानैं। भोगवे व नहीं भोगवे योग्य वस्तुकौं जानैं। षट् द्रव्य गुण पर्यायका जाननहारा होय। सर्व पदार्थनमें समता होय। पूजा जप तप, दान विषैं प्रीतवान् होय। दया धर्म चलावेका अधिकारी होय। मन-वचन-काय करि कोमल होय। इत्यादिक लक्षण सहित होय सो पीत लेश्यी जीव है। इति पीत लेश्या ॥ ४ ॥ आगे पद्म लेश्या तहां भद्र परिणामी होय। त्यागी होय। भले कार्य रूप भाव होंय। महाव्रत-अणुव्रतका वांच्छक होय। सिद्ध क्षेत्र तीर्थ वन्दनाका अभिलाषी होय। पंच-परमेष्ठीकी पूजा विषै उत्सववन्त होय। कष्ट उपद्रव भये धीर बुद्धि होय। देव-गुरु आदिका भक्त होय। इत्यादिक शुभ चेष्टा सहित जाके लक्षण होंय सो पद्म लेश्यी है। इति पद्म लेश्या ॥ ५ ॥ आगे शुक्ल लेश्या-तहां पक्षपात करि काहू कूं बुरा नहीं कहै। सर्व जीवन पै दया करि मैत्री भाव राखै और इष्ट-अनिष्टमें बहुत राग-द्वेष नाहीं करै। और कुटुम्बादिक तैं अल्प राग करै। धर्मी जीवन विषैं प्रीतिवान् होय। इत्यादिक लक्षण सहित होय सो शुक्ल लेश्या है। इति शुक्ल लेश्या ॥ ६ ॥ आगे लेश्यानके भावका स्वरूप कहैं हैं। तहां लेश्या द्रव्य और भाव करि दोय भेद रूप हैं तहां जैसा शरीरका वर्ण होय सो तो द्रव्य लेश्या है। जीवके जैसे भाव होंय सो भाव लेश्या है। सो तिन भाव लेश्याका दृष्टांत दिखाय भावनकी लेश्या प्रगट करैं हैं। तहां एक बनमें लकड़ी काटनहारे षट् पुरुष आये। सो तिन सबनके पास कुठार हैं। सो एक

आमके वृक्षके नीचे घनी छाया देख बैठ गये। तब एक पुरुष बोल्या कि भाई, भूंख लागी है। तब तिनमें एक कृष्ण लेश्यी जीव बोला कि भाई जो अपने पे कुठार हैं। सो इस आम पे जो फल लगे हैं। सो लग जावो। मारे कुठारनके आमकूं पीण तैं काटो सो सबके पेट भरें। ये तौं कृष्ण लेश्यो है ॥ १ ॥ दूसरा बोल्या जो पीड़ तैं काहेकूं काटो वृथा वृक्षका खोज मिट जायगा। तातैं। आधा एक तरफ तें बड़ी साखा काटो सो सब खांयगे। अपन-लायक बहुत हैं। ये नील लेश्यी है ॥ २॥ पीछे तीसरा बोल्या जो आधा गिराये सूं वृथा वृक्ष-की शोभा जायगी तातैं एक छोटी शाखा काट लेऊ। सो अपनकौं बहुत हैं। ऐसा कापोत लेश्यी है ॥ ३ ॥ तब एक बोल्या, जो शाखा काहे कौं काटो। झूमके-झूमके तोड़ो सो खाय लेय हैं। ये पीत लेश्यी है ॥ ४ ॥ तब पंचम पुरुष बोल्यो जो झूमकेनमें कच्चे-पक्के सब ही हैं। तातैं पके आम तोड़ लेउ और अपनी क्षुधा मेटो। ये पद्म लेश्यी जानना ॥ ५ ॥ तब पष्टम पुरुष बोल्या। हे भाई हो इस वृक्षकूं काहे कौं सतावो हो भूमि विषैं अपने खाने योग्य तो बहुत पड़े हैं। सो पके पके खाय कपनी भूख मिटावो। ये शुक्ल लेश्यी है ॥ ६ ॥ ऐसे षट् प्रकार भाव भेद जानना। इन परणामन करि अपने तथा परके परणामनकी परीक्षा करि लेश्याके अन्तरङ्ग भाव जानना। सो अशुभ भावनके वेग कूं पहिचान, तजना योग्य है। ऐसे भेद ज्ञानी जड़—भाव तजि चैतन्यके विकल्प जानि अशुभता तजि, शुभभाव रूप रहना विचारैं हैं। इति षट् लेश्या। आगे नव भेद योनि कथन—

गाथा—संवत्त सीत सचित्तो, मिस्सो सेताण जोणि णव.भेयो। सखय कुम्भो वंसय, तीए गम्भो समुच्छ उववादो ॥ ११५ ॥

अर्थ—संवत्त कहिये, संवृत। सीत कहिये शीत। सचितो कहिये, सचित्त। मिस्सो कहिये, मिश्र। सेताण कहि-ये इन तीननकी प्रतिपक्षी। जोणि णव भेवो कहिये इसप्रकार योनिके नव भेद हैं। संखय कहियो, शंखा योनि। कुम्भो कहियो, कूर्म योनि। वंशय कहिये, वंशा योनि। तीए गम्भो कहिए ए तीन भेद गरभजके हैं। समुच्छ कहिए, और सम्मूर्छन योनि। उववादो कहिए तथा उपपाद योनि। ऐसे योनि भेद कहे। सो प्रथम गर्भजके तीन भेद कहिए हैं शंखा योनि वंशा योनि कूर्म योनि ए तीन गर्भजके और नव भेद ऊपर कहे और सम्मूर्च्छन

उपपाद सो इन सबका स्वरूप सामान्य सा कहिए है। तहां तीन भेद गरभजके हैं। सो तिन योनिमें कौन
३६० कौन उपजैं सो कहिए है। तहां जा स्त्रीकी शंखावर्त नाम शंखके आकार योनि होय तामें पुरुषका वीर्य नहीं
३६५ ठहरै। सो स्त्री जगमें वन्ध्या कहावै ॥ १ ॥ वंशपत्र योनि जा स्त्रीकी होय तामें सामान्य पुरुष उपजैं। पदवी ८८०
धारक तीर्थंकरादि महान पुरुष नहीं उपजैं ॥ २ ॥ कूर्मोन्नत योनि जो कछुवाके आकार जा स्त्रीकी योनि होय तामें तीर्थंकरादि महान् पुरुष उपजैं हैं। सामान्य पुरुष इस योनिमें नाहीं उपजैं ॥ ३ ॥ ए तीन भेद गर्भजके हैं। तहाँ माताका श्रोणित व पिताका वीर्य ए दोऊ मिल गर्भसूं उपजै, सो गर्भज कहिए। माता–पिताके निमित्तबिना जाकी उत्पत्तिहोय सो सम्मूर्च्छन कहिए सो वादर सम्मूर्च्छन जीवनकी उत्पत्ति तो पृथ्वी आदिके आश्रय तैं होय और सूक्ष्म जीवनकी उत्पत्ति विना सहाय आकाशमें होय। सो ए सूक्ष्म सम्मूर्च्छन जन्म जानना देवनकी उत्पाद-शय्या रतनमई कोमल सुगन्धित शय्या तामें देवनका जन्म होय। नारकीनके उपजनेके स्थान महा दुर्गंधित, घिनावने अनिष्ट ऊंटके मुखाकार नर्कक्षितिके लूमते घटाकारवत् स्पर्शकूं धरै, सो नारकीके उपजनेका स्थान है। ऐसे देव नारकीका उपपाद जन्म है। ए तीन भेद जन्म गर्भज सम्मूर्छन उपपादके कहे। अब नव भेद योनिका भाव कहिए है। तहां अन्न जीव करि ग्रहै जे योनि स्थान जैसे पचेन्द्रिय तिर्यंच मनुष्य उपजनेकी योनि सो सचित्त योनि है ॥ १ ॥ अन्न जीवन करि नहीं ग्रहै ऐसे पुद्गल स्कन्धकी योनि जैसे देव नारकीनकी सो अचित्त योनि है ॥ २ ॥ केईक योनि स्थान सचित्त-अचित्त मिले स्कंधकी हैं, सो मिश्र योनि स्थान है ॥ ३ ॥ उपजनेके पुद्गल स्कंध शीत होंय जैसे सातें व छठें नरकके नारकीकी शीत योनि है ॥४॥ उपजनेके योनि स्थानके पुद्गल स्कंध उष्ण होंय। जैसे तीजे वा चौथे नरक पर्यंत नारकीनके उपजनेके उष्ण योनि स्थान हैं ॥ ५ ॥ अरु उपजनेके स्थान शीत उष्ण दोऊ स्कंध रूप होंय सो मिश्र योनि स्थान हैं ॥ ६ ॥ जीव उपजनेका योनि स्थान प्रगट नहीं दीखै सो संवृत योनि स्थान है ॥ ७ ॥
उपजनेके योनि स्थान प्रगट दीखें सो विवृत योनि स्थान है ॥ ८ ॥ जीव उपजनेके योनि स्थानके पुद्गल ३६५
स्कंध कछु प्रगट होंय कछु अप्रगट होंय सो मिश्र योनि स्थान है ॥ ९ ॥ ऐसे सामान्य भेद नव कहे, विशेष

चौरासी लाख हैं। इति योनि स्थान ॥ आगे इन योनिन तैं उपजे जीव तिके कौन कौनके शरीरमें निंगोद नाहीं सो कहिए हैं—

गाथा—केवलकायमहारो, सुरणारय तण भोमि जल तेऊ। वाय वसु इय ठांणय; रहि नहि णिगोय जिण भणियं ॥ ११६ ॥

अर्थ—केवलीके शरीरमें आहारक शरीरमें देवनके शरीरमें नारकोनके शरीरमें पृथ्वी काय अप काय तेज काय और वायु काय इन आठ स्थाननमें निगोद नाहीं। ऐसा जानना। आगे इन आठ जातिके जीवनतैं शौच नहीं पलै, ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—रोगी लोलु दलद्दो; वु धहीणो कुसंग होय मद पाणो। परवस आलस सहितो, एवसु आदाय सोच णह पालय ॥ ११७ ॥

अर्थ—रोगी, इन्द्रियनका लोलुपी, दरिद्री, बुद्धि हीन, कुसंगी, मद पायी, पराधीन और आलसी इन आठ जातिके जीवन तैं शौच नाहीं पलै। भावार्थ—रोगी तो अति वेदनाके आगे खाद्य-अखाद्य, योग्य-अयोग्य नाहीं विचारै। अपवित्र-पवित्र नहीं विचारै। मारे वेदनाके जो मिलै सो ही खाय। मूढ़ वैद्य जैसा भक्ष्य अभक्ष्य कहै, सो खाय। तातैं शौच नाहीं वनै ॥ १ ॥ जो इन्द्रियनका लोलुपी होय। सो खाद्य-अखाद्य, योग्य अयोग्य नहीं विचारै। जैसे वनै तैसे अपने विषयका पोषण करै। अपने कुल योग्य खान पानका विचार नाहीं। तातैं तिन लोलुपी तैं शौच नाहीं पलै ॥२॥ जे पूर्व पापके उदय करि भये जो दरिद्री, सो मारे दरिद्रके केवल उदर पूरणाही कर्या चाहैं। सो योग्य अयोग्य नाहीं विचारैं जैसे वनैं तैसे-उदर भर्‌या चाहैं। ताके तृष्णा अधिक सो तृष्णा तौ पुण्य तैं पूरी जाय अरु पुण्य, आगे उपाज्यों नाहीं। तातैं पुण्य रहित जीव जैसे तैसे पेट भरै सो इस दरिद्रीसैं शौच नाहीं पलै ॥३॥ वुद्धि रहित होय ताकैं योग्य-अयोग्यके विचारका विवेक नाहीं। ज्ञानकी मंदताके योग करि पशू समानि खान-पानादि करै रात्रि दिवसका भेद नाहीं, भक्ष्य-अभक्ष्यका ज्ञान नाहीं तातैं बुद्धि रूपी संपदा करि रहित हीन—बुद्धि जीव तैं, शौच नाहीं पलै ॥ ४ ॥ और कुसंग के धारनहारे, सप्तव्यसनी जीवनके स्नेही, तिनकी संगति तैं, स्नेह के बंधान करि तिनमें तिन जैसा ही खान-पान करैं। हीन कुली, हीन ज्ञानी, सप्तव्यसनी, जैसा अनाचार रूप खान-पान करें। तैसाही तिनकी संगति में आपकौं करना

पढ़ै। तातैं कुसंगीन तैं सोच नाहीं पलै ॥ ५ ॥ मदिरपायी कूं सुध-बुद्धि नाहीं। खान-पानके योग्य-अयोग्य खाद्य-अखाद्य का ज्ञान नाहीं। जैसे खपत-बेसुध होय, तैसेही मदिरापायी बेसुध है। तातें मदिरापायी तैं शौच नाहीं पलै ॥ ६ ॥ और पराधीन होय, सो पराई मर्जी सौं चाल्या चाहे। आप दयावान संयमी होय, अरु संयमी का सेवक होय। तौ आपके तौ संयम पालवे का काल है। यदि स्वामी संयमी न होय, तो जा समय सरदार ने कही, यह आरम्भ करो। सो नहीं करै तौ आज्ञा भंग भये, चाकरी बनै नाहीं। तातैं असंयम रूप आरम्भही कार्य, संयमके कालमें करना पड़ै। इत्यादिक पराधीनता तें शोच नाहीं पलै ॥ ७ ॥ और जे आलसी-प्रमादी होंय, सो जैसा मिलै तैसा भक्षण करैं। प्रमाद के वशीभूत खाद्याखाद्य योग्या-योग्य नहीं विचारैं। तातें जे आलसी-प्रमादी होंय, तिनसौं शौच नाहीं पलै ॥ ८ ॥ ऐसे और ग्रन्थ के अनुसार कह्या है। जो इन आठ जाति के जीवन तैं शौच नाहीं सधै। तातैं इनकौं धर्म-लाभ नहीं होय। और शुभाचार इनके हृदय में तिष्ठता नाहीं। ऐसा जानि विवेकी जीवन कौं, इन आठ जातिके निमित्तन तैं रहित होय, सुआचार रूप रहना योग्य है। आगे निमित्त ज्ञानके आठ भेद हैं सो कहिये हैं—

गाथा—अंग भोम अंतरखऊ; विजण सुर छिण्य लक्खणो सुपणऊ। इव वसु भेयव भणियं, णिमित्त णाणाय देव सव्वंण्हो ॥ ११८ ॥

अर्थ—अंग कहिये, शरीर। भोम कहिए, पृथ्वी। अन्तरखऊ कहिए, अन्तरीक्ष। विंजण कहिए, व्यंजन निमित्त। सुर कहिए, शब्द। छिण्य कहिये, छिन। लक्खणो कहिए, लक्षण। सुपणऊ कहिये, स्वप्न। इव वसु भेयव कहिए, ये आठ भेद। भणियं कहिये, कहे हैं। णिमित्त णाणाय कहिए, निमित्त ज्ञान के। देव सर्वज्ञो कहिए, सर्वज्ञ देव ने। भावार्थ—निमित्त ज्ञान के आठ भेद हैं सो ही कहिए हैं। मनुष्य-पशुके तनके आंगोपांग देख, ताके शुभ-अशुभ बताय देना। जो याके एक नेत्र नाहीं, तो ऐसा फल। दोऊ नेत्र नाहीं, ताका ऐसा फल। मूके, लूले, टूटे, कूबरे, बावने का फल कहै। जाके तनका रस खट्टा तथा मिष्ट व कड़ुवा होय, इत्यादिक जैसा तनको रस होय, सो फल कहै। तथा तनका रुद्र, श्याम व लाल वर्ण होय, ताका फल कहै इत्यादिक शरीर के लक्षण देखि शुभ-अशुभ का फल सुख-दुख कहै। सो अंग-निमित्त

ज्ञान है ॥ १ ॥ और भूमि विषैं जहां-जहां जो वस्तु होय, सो जानै। जो इस जगह रतन-खानि है। यहां कंचन-खानि है। यहां विभूति है। यहां एते खोदो, अन्न समूह है. ताकौं जानैं। तथा इहां जल है। इहां पाखान है। इहां धन है। इत्यादिक भूमिमें जहां-जहां शुभ-अशुभ चिन्ह होंय, तिनकौं जानें, सो भूमि निमित्त ज्ञानी कहिये ॥ २ ॥ और आकाश के विषैं वादर पटल; घन; गाज, बिजली चमकना; चन्द्रमा; सूरज, नक्षत्रादिक इत्यादिक तैं आकाश का शुभाशुभ चिन्ह देखि; सुख—दुख बतावै। सो अंतरीक्ष-निमित्त-ज्ञानी है॥३॥ और जहां मनुष्यका शब्द सुनि शुभ-अशुभ कहैं। तहां चाण्डाल, कृषक, वैश्य, ब्राह्मण क्षत्रिय इत्यादिक मनुष्यन के शब्द सुनि, सुख—दुख कहैं। तथा पशून के शब्द तीतुर, मोर, काक, सारस, श्वान, गृद्ध, स्यार मार्जार, व्याघ्री इत्यादिक पशून के शब्द सुनि, शुभ-अशुभ फल बतावैं। सो सुर-निमित्ति ज्ञान है ॥ ४ ॥ और व्यंजन जो शरीर में तिल मसा देखि, सुख-दुख कहैं। मुख पै तिल, करमें तथा उरमें मसा। पीठ में, नासिका, कान, गाल, अंगुरी इत्यादि हाथ-पांव अंगमें तिल—मसा देखि, शुभ-अशुभ कहैं। सो व्यंजन-निमित्त ज्ञान है ॥ ५ ॥ और लक्षण जो शुभ चिन्ह श्रीवृप, स्वस्तिक, भृंगार, कलश, वज्र, मछली इत्यादि शुभ तथा कोई अशुभ चिन्ह इत्यादिक शुभ-अशुभ चिन्ह शरीर में देखि, सुख—दुख कहैं। सो लक्षण निमित्त ज्ञान है ॥ ६ ॥ और छिन्न निमित्त ज्ञान—सो कोई वस्त्रादि वस्तु कूं मूसादि जीवन कर काटी देखि, ताकरि शुभाशुभ फल कहै। सो छिन्न निमित्त ज्ञान कहिये ॥ ७ ॥ और स्वप्न—जो शुभाशुभ स्वप्नकौं जानि, ताका सुख—दुख कहै। सो स्वप्न निमित्त ज्ञान है ॥८॥ ऐसे निमित्त ज्ञान आठ प्रकार कह्या। इहां सामान्य कह्या। विशेष अन्य ग्रन्थनतैं जानना। आगे ज्ञानके आठ अंग बताईये है—

गाथा—विंजन अर्थ समग्गह, सब्दार्थोभय कालधेणोय। उपझाण विणय; समधय, वहुमाण गुवादि वसु अंगय ॥ ११६ ॥

अर्थ—विंजन कहिये, व्यंजनोंजित ॥ १ ॥ अर्थ समग्गह कहिये, अर्थ समग्रह ॥ २ ॥ सब्दार्थोभय कहिये, शब्दार्थ उभय पूर्ण ॥ ३ ॥ काल धेणोय कहिए, यथा काल अध्ययन करना ॥ ४ ॥ उपझाण कहिए, उपध्यान समर्धित ॥ ५ ॥ विणय समधय कहिए, विनय समधित ॥ ६ ॥ वहुमाण कहिए, बहु मान समर्धित

अंग ॥ ७ ॥ गुत्रादि कहिए, गुरुवादि निन्हव अङ्ग ॥ ८ ॥ वसु अंगय कहिए, ये ज्ञानके आठ अंग हैं। भावार्थ—जो विना अर्थ विचारै ही पाठका पढ़ना। तहां गाथा, काव्य, छन्द, श्लोक, पद, बिन्ती, सामायिकादि पाठका पढ़ना। सो याका नाम व्यंजनोर्जित अंग है। १। और जो शास्त्र तो नाहीं, परन्तु अपने उर विषैं, एकान्त बैठा, शास्त्रन का अर्थ विचार करै, सो ये भी ज्ञानका अंग है। याका नाम अर्थ समग्रह अंग है। २। और जहां शास्त्र, काव्य, गाथा, छन्द अर्थ सहित पढ़ै। पाठ भी पढ़ै, अरु अर्थ का भी विचार करै। सो ये भी ज्ञानीका अंग है। याका नाम शब्दार्थो-भय पूरण अंग है। ३। और जहां जिस कालमें जैसा शास्त्र चाहिए, तैसाही काव्य वखान करै। जैसे प्रभात कालको कौन शास्त्र वांचिए। मध्यान्ह में कौन शास्त्र वांचिए। शाम कौं कौनका अभ्यास कीजिए। रात्रि कौं कौनका अभ्यास कीजिए। तथा बाल्य अवस्था में कौन शास्त्रका अभ्यास कीजिए। तरुणावस्था में कौन शास्त्रका अभ्यास करैं। वृद्धावस्थामें कौन शास्त्रका अभ्यास करैं इन आदि कालमें जैसा शास्त्र चाहिये, तैसाही विचार कैं काल-योग्य शास्त्रका अभ्यास करैं। तैसाही उपदेश देय। सो ये भी ज्ञानका अंग है। याका नाम कालाध्ययन ध्रुव प्रभाव नाम अंग है ॥ ४ ॥ औप शास्त्राभ्यास निरप्रमाद होनेके निमित्त उपवास-एकासन करना, रस तजना, अल्प भोजन करना। ऐसा विचारना जो मेरे शास्त्राभ्यासमें प्रमाद नहीं होय, ताके निमित्त तप करना। सो ये भी ज्ञानका अंग है। याका नाम उपध्यान समर्धि अंग है ॥ ५ ॥ और जहां शास्त्रका विनय करना। बांचना, सो विशेष उत्तम विनय से बांचना। सुनना सो भी एकचित्त करि विनय तैं सुनना। उपदेश देना, सो पर-जीवनके कल्याणहेतु विनय तैं देना। शास्त्र धरना—उठावना, सो भी विनय तैं। इत्यादिक शास्त्रका विनय करना, सो ये भी ज्ञानका अंग है। याका नाम विनय समर्धित अंग है। ॥ ६ ॥ और जाके पास आपने ज्ञानाभ्यास किया होय, जातैं आपको ज्ञानकी प्राप्ति भई होय, ताकी बहुत सेवा-चाकरी करना। ताकी बारम्बार प्रशंसा करना, बारम्बार ताका उपकार स्मरण करना। ताका उपकार जन्मान्तर नहीं भूलना। सदीव धर्म-पिता जानना। इत्यादिक ज्ञान-दान देनेवारेका विनय करना, सो भी

ज्ञानका अंग है। याका नाम बहुमान समर्थित अंग है ॥ ७ ॥ और आपने जा गुरुके पासि शास्त्राभ्यास किया होय, ता गुरुको नहीं छिपाईये। भावार्थ—जा गुरुके पास तैं आपने ज्ञान-धन पाया होय, ऐसा जो गुरु। सो कर्म योग तैं-पीछे आपकौं विशुद्धताके योग तैं, तथा तप-ध्यान करि अनेक ऋद्धि आप कौं प्रगट भई होंय। मति, श्रुत, अवधि, मनः पर्यय ज्ञानादिक अनेक ऋद्धि प्रगटी होंय और अपना गुरु ज्ञानदाता, तिन कैं अवधि-मनः पर्यय नाहीं। अरु गुरुका नाम प्रसिद्ध नाहीं। आपकौं ज्ञान बड़ा, आपका नाम जगतमें प्रसिद्ध होय, तौ भी अपने ज्ञानदाता गुरुको नहीं छिपाईये। ये भी ज्ञानका अंग है। याका नाम गुरुवादि निन्हव अंग है। तथा आप भला सम्यक्ज्ञान मोक्षमारगके पन्थका बतावनेहारा, पर जीवका उपकारी, शुद्ध तत्व आप कूं भले रूप आवता होय, तो ताकौं नहीं छिपाईये। जो ज्ञान दया-भण्डार, दयाका मारग प्रगट करनहारा, अनेक संशय नाशनेहारा, उत्तम ज्ञान, जाकौं आप जानता होय, तो ताकौं नहीं छिपाईये। ये भी ज्ञानका अंग है। तथा परम कल्याणकारी, तत्व प्रकाशी कथन सहित शास्त्र, अपने पास है। सो कोई धर्मात्मा पुरुष अपनेमें तत्वज्ञान होनेका अभिलाषी आय कहै। जो फलानो पुस्तक आप पै होय तौ हमको स्वाध्याय कौं हमारे मस्तक पे विराजमान करो, तौ हम पुण्य उपारजैं। तौ अपने मस्तक जे शास्त्र होंय, ताकौं नहीं छिपाईये। यह भी ज्ञानका अंग है। याका नाम भी गुरुवादि निन्हव अंग है ॥ ८ ॥ ऐसे ज्ञानके आठ अंग हैं। सो धर्मात्मा जीवन करि धारवे योग्य हैं। ये आठ अंग ज्ञानके जे भव्यात्मा विनय सहित पालैं, सो तत्वज्ञान संम्पदाके धारी होंय। ऐसा जानि निकट भव्यन कौं, ज्ञानके अंगन की रक्षा करना योग्य है। आगे मुनिजन कौं ध्यान करवेके कारण दश स्थान बतावैं हैं। इतनी जायगा परणामनकी विशुद्धता विशेष बढ़, ध्यानकी एकाग्रता विशेष होय, सो ही बताईये है। ध्यान कौं कदाचित् एकान्त क्षेत्र नहीं होय, बहुत जीवन के शब्दका कोलाहल होय, अनेक जीवनका आवनाजाना होय, तो ऐसे स्थानमें परणति चंचल होय। तातैं ध्यान कौं एकान्त स्थान चाहिये। एकान्त विना ध्यानकी सिद्धी नाहीं होय ॥ १ ॥ अशुद्ध क्षेत्र होय तो ध्यान लागै नाहीं, तातैं रमणीक-निर्मल क्षेत्र चाहिये, तब ध्यानकी शुद्धता होय ॥ २ ॥ और जहां काष्ठकी व चित्राम

की पुतरी नहीं होंय। रंगमहल, रमणीक बिछौने इत्यादिक सराग क्षेत्र नहीं होय। महा उदास, वैराग्य बढ़नेका कारण, राग रहित क्षेत्र चाहिये, तातैं ध्यानकी सिद्धि होय ॥ ३ ॥ तथा महा पर्वतनकी गुफा होय ॥४॥ तथा उतङ्ग, मनोहर, उदार पर्वतनके शिखर होंय ॥५॥ तथा निरमल जल करि सहित बड़े सरोवर तथा बहती गहन बड़ी नदी, तिनके तट ध्यान योग्य हैं ॥ ६ ॥ तथा जीर्ण उद्यान, अरु महा भयानीक, मोही जीवन कूं भय उपजावनहारी, विकट, वृक्ष रहित अटवी, ध्यान योग्य क्षेत्र है ॥ ७ ॥ तथा दीरघ सघन वृक्षन करि भर्या बन होय, सो ध्यान योग्य क्षेत्र है ॥ ८ ॥ और जहां अति शीत नहीं होय, ते क्षेत्र ध्यान योग्य हैं ॥ ९ ॥ तथा जहां बहु उष्ण नहीं होय, सो क्षेत्र ध्यान योग्य है ॥ १० ॥ ऐसे दश क्षेत्रनमें ज्ञान-वैराग्यके बढ़ाने रूप भाव होंय। धीरजता होय, क्षमा भाव होय। इत्यादिक, भाव सहित ध्यान सिद्धिके क्षेत्र जानना। आगे परणामों की विशुद्धता कूं कारण, आलोचना भाव है। सो आलोचनाके अतिचार दश हैं। तहां प्रथम नाम कहिये--आकम्पन, अनमापित, दिष्ट, वादर, सूक्ष्म, शब्दाकुल छिनि बहु अविक्त तत् सेवत ऐसे ये दस अतिचार हैं। तिनका सामान्य स्वरूप कहिये है—जहां कोई मुनीश्वर कौं अपने संयममें दोष लाग्या दीखै। तब वह यतीश्वर पापका भय खाय गुरुन पै पाप दूर करने कूं दण्ड-प्रायश्चित्त जांचता भया। सो दण्ड जांचता कबहूं ऐसा विचार करैं जो आचार्य दीर्घ दण्ड नाहीं बतावैं तो भला है। ऐसा भय करना सो आकम्पन दोष है ॥ १ ॥ और कोई यती कौं दोष लाग्या होय तौ अपने गुरु पै जाय अपने प्रमादकी निन्दा करै। आलोचना सहित अपना लाग्या दोष प्रगट करि गुरुपै दण्ड जांचता ऐसा विचार करै जो मेरा तन निर्बल व रोग पीड़ित है सो दीरघ दण्ड सहवेकी मोरी शक्ति नाहीं। तातैं आचार्य मोकौं अल्प दण्ड बतावैं तौ भला है। ऐसे विचारका नाम अनमापित दोष है ॥ २ ॥ और यती आप कौं कोई दोष लाग्या जानैं तौ विचारैं। जो मेरा दोष फलाने नैं देखा है तौ अपना दोष गुरु पै कहैं अपनी निन्दा-आलोचना करैं। और जो अपना दोष काहू ने नहीं देखा होय तौ गुरु पै नाहीं कहैं। ताका नाम दिष्ट दोष है ॥ ३ ॥ यतीश्वर कौं कोइ सूक्ष्म दोष लागा होय तौ गुरुपै नाहीं कहैं। कोई वादर-बड़ा दोष लागा होय तौ मानके निमित्त

और के दिखावने कौं आचार्य पै कहैं आलोचना करैं सो वादर दोष है ॥ ४ ॥ जहां मुनीश्वर कौं कोई वादर दोष लाग्या होय तौ आचार्यके पासि नहीं कहैं। और सूक्ष्म दोष लगा होय तौ मान—बड़ाई लोक-प्रशंसा कौं गुरुपै जाय प्रकाशैं। अपनी आलोचना करैं। सो सूक्ष्म दोष कहिये ॥ ५ ॥ और कोई मुनि कौं दोष लागा होय तौ गुरुपै कहैं तौ सही परन्तु मान-बड़ाईके अर्थ दोष छिपाय कैं कहैं। सो अपना नाम तौ नहीं लेंय। अरु गुरुपै कहैं। भो गुरो ऐसा दोष काहू मुनि पै लागा होय तौ ताका कहा दंड ? सो कहो। ऐसे आलोचना सहित पूछना। अरु निन्दाके भय तैं अपना नाम प्रगट नहीं करना याका नाम छिनि दोष है ॥ ६ ॥ और कोई मुनि कौं दोष लागा होय सो गुरु पै एकान्ततौ नहीं कहैं। अरु जब आचार्य बहुत मुनि श्रावकन सहित तिष्ठे हौंय तव मानका लोभी अपनी प्रशंसा करावनेका अभिलाषी गुरु कौं कहै। तथा अनेक स्वाध्यायका शब्द होय रह्या होय तथा आचार्य उपदेश करते हौंय तथा और शिष्यनका प्रश्न होय रह्या होय इत्यादिक समय देखि भरी सभामें प्रश्न-उत्तरके शोरमें अपना दोष गुरुपै कहै आलोचना करै। सो गुरुने कछू सुन्या कछू नाहीं। ऐसा अवसर देखि कहना सो याका नाम शब्दाकुल दोष है ॥ ७ ॥ और कोई मुनि कौं दोष लाग्या होय सो गुरुपै जाय अपना दोष कहै। आलोचना करै। तब गुरु याके पाप नाशने कूं प्रायश्चित्त देंय। सो गुरुका दिया प्रायश्चित्त मुनि विचारी जो गुरुने प्रायश्चित्त भारी बताया। तब ऐसी जानि और ही आचार्य पै जाय आलोचना सहित अपना दोष कहै। तब उनने भा दंड दिया ताकौं भी भारी दंड जानि और आचार्यके संघमें जाय आलोचना करि अपना दोष कहै। ऐसे ही जव तांईं कोई आचार्य अल्प दंड नहीं वतावैं तब लूं अनेक आचार्यन पै जाय आलोचना करि अपना दोष कहै याका नाम वहु दोष है ॥ ८ ॥ कोई मुनि कौं दोष लागे सो पापके भयतैं अपना दोष प्रकाश तौ सही। परन्तु मान--बड़ाई लज्जाके योग तैं आचार्य कूं नाहीं कहैं। मेरा अपयश-निंदा होयगी ताके भय तैं गुरुपै नहीं कहैं। अरु कोई आप तैं छोटे पदस्थधारी तथा आपके समानि हौंय तिस मुनि कौं कहैं। ताके पास अपना दोष अलोचना सहित प्रगट करैं। सो याका नाम अविक्त दोष है ॥ ९ ॥ और कोई मुनि कौं दोष लगा होय सो मान-ब-

ड़ाई अपयश-निंदाके भय त गुरु पै नाहीं कहैं। और जब कोई आपजैसा दोष और मुनि कौं लागै, सो आचार्य कों वाकौं प्रायश्चित्त देते देखि, आचार्य कौं आप कहै। भो नाथ, इन मुनीश्वर सा दोष मोकों भी लागा है। सो जैसा दंड या मुनि कौं दिया, तैसा ही मोकौं देव। ऐसी अलोचना सहित कहना, सो याका नाम तत्सेवत दोष है ॥ १० ॥ ऐसे आलोचनाके दश दोष हैं। सो जो अंतरंगके धर्मात्मा हैं तिनकौं अपने धर्म कौं सुधार राखना उत्कृष्ट है। इति आलोचनाके दश दोष। अब आचार्य कोई शिष्यके कल्याण होने कूं दीक्षा देंय, तो ये दश काल टालि दीक्षा देय हैं। इन कालनमें दीक्षा नाहीं देंय। सो बताइये है। तहां प्रथम नाम-ग्रहोपराग कहिये, जाकौं कोई अशुभ ग्रह होय, तो दीक्षा नहीं देंय॥ १ ॥ सूर्य ग्रहण होय ॥ २ ॥ चन्द्रका ग्रहण होय ॥ ३ ॥ इन्द्र धनुष चढ़्या होय ॥ ४ ॥ जाकौं उल्टा ग्रह आया होय ॥ ५ ॥ तथा आकाश बादलन करि आच्छादित होय रह्या होय ॥६॥ तथा जिस जीव कौं महिना खोटा होय ॥ ७ ॥ तथा अधिक मास होय ॥ ८ ॥ तथा संक्राति दिन होय ॥ ९ ॥ क्षय तिथि होय ॥ १० ॥ इन दश अवसरनमें भला ज्ञाता, निमित्त ज्ञानके वेत्ता आचार्य, शिष्य कौं दीक्षा नहीं देंय। और कदाचित् कोई ज्ञानकी मंद-ताके जोग तैं इन दश कालनमें दीक्षा देंय, तौ आचार्यनकी परम्पराका लोप होय, निंदा पावैं। जिन आ-ज्ञाका उल्लंघन करनहारा जानि, सर्व आचार्यनके संघ तैं बाहरे होंय, संघ तैं निकसैं, अपमान पावैं। तातैं ये दश काल टालैं हैं। और जिन दिनोंमें दीक्षा होय सो बताईये है। शुभ दिन, शुभ नक्षत्र, शुभ योग, शुभ मुहूर्त शुभ ग्रह इत्यादिक शुभ कालमें दीक्षा होय है। और दीक्षा कौन २ गुण सहित कौं होय है। सो ही बता-ईये है। बुद्धिमान् होय। विशुद्ध कुल होय। गोत्र शुद्ध होय। शरीरके आंगोपांग शुद्ध हौंय। तहां कांणा, अंधा, लूला, ठूंठा, बांवना, कूबड़ा, रोगी, बधिर इत्यादिक दोष रहित होय, सुन्दर मूरत होय। मंद कषायी होय। जाकैं पंचेन्द्रियभोगन तैं अरुचि होय। मोक्षाभिलाषी होय। शुभ चेष्टा सहित प्रकृति होय। शुभाचारी होय। हाँसि—कौतूहल रहित, नेत्रन करि चमत्कारक होय। महा वैराग्य दशा करि पूरित होय। इत्यादिक

गुण सहित जो शिष्य होय, तिनकौं दीक्षा होय। ऐसे मुख्य गुण हैं सो कहे। बाकी इनमें सामान्य-विशेष योग्य—अयोग्य सम्हाल कैं—विचार कैं आचार्य करैं हैं। ऐसा जानना।

इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, षट् लेश्या, योनि भेद, निगोद रहित स्थान, निमित्त ज्ञानादिक कथन वर्णनो नाम, सत्ताईसवां पर्व सम्पूर्णम् ॥ २७॥

आगे दशकरणका निमित्त पाय, कर्मनकी अवस्था कहिये है। प्रथम नाम-बन्ध उदय, सत्ता, उत्कर्षण, अपकर्षण संक्रमण उपशान्त निधत्ति निकांचित और उदीरणा ये दश हैं। अब इनका अर्थ—तहां प्रथम बन्ध करण कहिये है। सो जीव अपने शुभाशुभ परणामन तैं कर्मनका बन्ध करै है। सो बंध च्यारि प्रकार है। प्रकृति बन्ध प्रदेश बन्ध स्थिति बन्ध और अनुभाग वन्ध तहां प्रथम प्रकृति बन्धका स्वरूप कहिये है। सो नाना जीव नाना काल अपेत्ता एक सौ बीस प्रकृति बन्ध योग्य हैं। सो ही कहिये है। ज्ञानावरणी ५, दर्शनावरणी ९, वेदनीय २ मोहनीय २६, आयु ४, गोत्र २ अन्तराय ५, ये सात कर्मको प्रकृति ५३, भई। अब नाम कर्मकी वर्ण चतुष्क ४, संस्थान ६ संहनन ६ गति ४ गत्यानुपूर्वी ४ शरीर ५ जाति ५, आंगोपांग ३, चाल २ अगुरु लघु अष्टक ८, दश दुकको २० ऐसे नाम कर्मकी सड़सठ। सर्व मिलि अष्ट कर्मकी एकसौ बीस प्रकृति बन्ध योग्य हैं। सो मनुष्य गतिमें तौ सर्वका बन्ध है। तातें मनुष्य विषैं एकसौ बीस बन्ध योग्य हैं। तिर्यंच गतिमें पंचेद्रियके बन्ध योग्य एकसो सत्तरा है। आहारक दुककी दोय और तीर्थंकर एक इन तीन बिना जानना। बेन्द्रिय तेन्द्रिय चौइन्द्रिय इन विकलत्रयमें बन्ध योग्य प्रकृति एक सौ नौ हैं। वैक्रियक अष्टककी आठ, आहारक दुककी दोय और तीर्थंकर एक इन ग्यारह बिना विकलत्रयमें १०९ का बन्ध है। पंच स्थावरमें बन्ध योग्य विकलत्रयवत् एक सौ नव प्रकृति हैं। विशेष एता जो अग्नि व वायु कायक इन दोय थावरनकैं ऊँच गोत्र व मनुष्यायु इन दोय बिना एक सौ सात प्रकृतिका बन्ध है देवनके वैक्रियक अष्टकको आठ, विकलत्रयकी तीन आहारक दुककी दोय सूक्ष्म साधारण और अपर्याप्त—इन षोडश बिना समुच्चय १०४ का बंध है। तहां विशेष एता जो दूजे तैं ऊपरि तीसरे स्वर्ग तैं लगाय बारहवें स्वर्ग पर्यंतके

देवनकैं एकेन्द्रिय जाति थावर नाम और आतप इन तीन विना १०१ का बन्ध है। वारहवें स्वर्ग तैं ऊपरिके देवनकैं विकलत्रयकी तीन और उद्योत इन च्यारि बिना सत्यानवेका बन्ध है। ऐसे देवका बन्ध कह्या। नारकीनके एक सौ बीसमें वैक्रियक अष्टककी आठ विकलत्रय तीन स्थावर एकेन्द्रिय साधारण अपर्याप्त सूक्ष्म आहारक दुककी दोय आतप इन उन्नीस बिना समुच्चय १०१ का बन्ध है। विशेष एता जो तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध तीसरे नरक तांई है आगे नाहीं। तातैं तीजी पृथ्वी तैं नीचे एक सौ प्रकृतिका बन्ध है। सातवें नरकमें मनुष्यायु विना निन्यानवैका बंध है। ऐसे च्यारि गति विषें यथायोग्य सामान्य बन्ध कह्या। विशेष एता जो एक जीव कैं एकै काल अपेक्षा तीन गतिमें तौ गुणसठ प्रकृतिनका बन्ध है। तिर्यंच गति विषैं एकै काल तीर्थंकर प्रकृति बिना अट्ठावन प्रकृतिनका बन्ध है। इहां प्रश्न जो तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध तौ मनुष्यमें ही कह्या। परन्तु यहां देव नारकीमें भी कह्या सो कैंसे बनै? ताका समाधान। जो हे भव्य प्रश्न तुम्हारा प्रमाण है। प्रथम तौ तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध मनुष्य ही कैं होय है। या बात प्रमाण है। परन्तु मनुष्य गतिका किया बन्ध देव नारकीमें जाय है। तातें तहां बन्ध और गतितैं जानना। यहां फेरि प्रश्न-जो तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध करनहारा सम्यग्दृष्टी देव गतिमें जाय। सो देवमें तौ तीर्थंकरका बन्ध करै है, सो सम्भवै। परन्तु तीर्थंकर प्रकृतिका बंध करनहारा जीव नरकमें कैसे जाय? ताका समाधान कोऊ जीव नैं मिथ्या-दशामें प्रथम नरकायुका बन्ध किया था पीछे उस निकट भव्यात्मा संसारी जीवकैं सम्यक् भया सो तीर्थंकर व केवलीके निकट निमित्त पाय षोड़स भावना भाय तथा इनमैं तैं एक दोय आदि कोई भावना भाय परणामनकी विशुद्धता तैं तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध कर पीछे आयु बन्धके योग तैं जीव नरक जाय। तहां तीर्थंकर बन्ध लिये जाय। ताकी अपेक्षा बन्ध कह्या है। सो प्रथम नरकमें जानेहारा जीव तौ सम्यक् सहित भी जाय है। और दूजे व तीजेका जानेहारा जीव सम्यक् कूं तजकैं जाय है। सो अन्तमुहूर्त मिथ्यात रहै। कारमान तैं जाय पर्याप्ति पूरण करै। जहाँ तांई पर्याप्ति पूरन नाहीं करै तहां तांईं तौ मिथ्यात्व है। पर्याप्ति पूरण किये तीर्थंकर बन्ध वारे कैं सम्यक् होय है। तब तैं तीर्थंकर बन्ध जानना। ऐसे च्यारि गतिमें

वन्ध कह्या। सो ये तो प्रकृति वन्ध है। और इन एक-एक प्रकृतिकी साथि अनन्त परमाणु स्कंध रूप होंय। सो समय प्रवद्धकी गेलि केती परमाणु वन्धी तिनकी संख्या सो प्रदेश वन्ध है। वन्धी जो कर्म प्रकृति तिनमें मोहकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण हैं। नाम व गोत्रकी वीस कोड़ा कोड़ी सागर स्थिति है। आयु कर्मकी तेतीस सागर स्थिति है। ज्ञानावरणी दर्शनावरणी वेदनी अन्तराय इन च्यारि कर्मनकी तीस-तीस कोड़ा-कोड़ी सागरकी स्थिति है वेदनीकी जघन्य स्थिति द्वादश मुहूर्तकी है। नाम व गोत्र इन दोय कर्मनकी जघन्य स्थिति आठ-आठ मुहूर्तकी है। वाकी औरनकी जघन्य स्थिति एक अन्तमुहूर्तकी है। ऐसे यथायोग्य स्थितिका वन्ध होना सो स्थिति वन्ध है। वन्ध कर्म विषें उदय भये जेसा रस देनेकी शक्ति जो ये कर्म उदय भये एता रस प्रगट करेगा। सो अनुभाग वन्ध है। ऐसे कहे जो च्यारि प्रकार वन्ध सो वन्ध है। सो प्रकृति व प्रदेश वन्ध तो योगन तें होय है। स्थिति व अनुभाग वन्ध कषायन तें होय है। ऐसे तो ये वन्ध करण जानना। इति वन्ध करण॥ १ ॥ आगे उदय करण कहिये है। तहां उदय भी च्यारि प्रकार है। प्रकृति उदय प्रदेश उदय स्थिति उदय और अनुभाग उदय। तहां प्रथम ही प्रकृति उदय कहिये है। सो नाना जीव नाना काल अपेक्षा उदय योग्य प्रकृति एक सो वाईस हैं। तहां ज्ञानावरणकी ५, दर्शनावरणकी ९ वेदनीयकी २ मोहनीकी २८ आयु कर्मकी ४ गोत्रकी २ अन्तराय कर्मकी ५ ऐसे सातकी ५५ नाम कर्मकी वर्ण चतुष्ककी ४ संहनन ६ संस्थान ६ गति च्यारि गत्यानुपूर्वी ४ शरीर ५ जाति ५ अंगोपांग ३ चाल २ अगुरु अष्टककी ८ और दश दुककी २० ऐसे नाम कर्मकी ६७। सर्व मिलि १२२ उदय योग्य प्रकृति जानना। तामें तिर्यंच सम्बन्धी १२ तिर्यंच गति तिर्यंच गत्यानुपूर्वी तिर्यंचायु जाति च्यारि स्थावर सूक्ष्म साधारण आतप और उद्योत ये प्रकृति तिर्यंच द्वादश हैं। और वैक्रियक अष्टक इन वीस विना मनुष्य योग्य एक सौ दोय हैं। अव देय योग्य उदयकी प्रकृति कहिये हैं। ज्ञानावरणकी ५ दर्शनावरणकी ६ वेदनी की २ मोहनीकी नपुन्सक विना २७ आयु गोत्र ऊंच अन्तरायकी ५ ऐसे सात कर्मकी ४७ वर्ण चतुष्ककी ४ (संहनन नाहीं) संस्थान एक समचतुर गति गत्यानुपूर्वी, शरीरकी तीन अंगोपांग चाल जाति अगुरुलघु

उच्छ्वास उपघात परघात निर्माण दश दुककी बारह सर्व मिलि नाम कर्मको तीस ऐसे देव योग्य उदय प्रकृति सतत्तरि हैं। सो नाना जीव नाना काल अपेक्षा समुच्चय कथन जानना। नारकी कैं उदय योग्य प्रकृति छिहत्तरि हैं। सो देवके उदयकी प्रकृतिनमें तौ दोय वेद घटाय दीजे। अरु नपुन्सक वेद मिलाइये। यथा-योग्य प्रकृति पलट देनी। शुभको जायगा अशुभ प्रकृति करनी ऐसे नरकमें उदय योग्य प्रकृति छिहत्तरि हैं, तिर्यंचके उदय योग्य प्रकृति एकसौ सात हैं। एक सौ बाईसमें तैं वैक्रियक अष्टककीं आठ मनुष्य गति आदि तीन आहारक दुककी दोय तीर्थंकर ऊंच गोत्र इन पन्द्रह बिना एक सो सात प्रकृतिका तिर्यंचनके उदय है। विशेष तहां एता जो पंचेन्द्रिय तिर्यंचके उदय योग्य प्रकृति निन्यानवैं हैं। तिनके नाम ज्ञानावरणीकी पांच दर्शनावरणी नव वेदनी दो मोहनी की अट्ठाईस आयु गोत्र नीच अन्तराय पांच ये सात कर्मकी इक्यावन। वर्णकी च्यारि संहनन षट् संस्थान षट् गति गत्यानुपूर्वी शरीर तीन जाति अंगोपांग चाल दोय और तीर्थंकर व आतप इन दोय बिना अगुरु अष्टकको छह और दश दुककी भैं तैं सूक्ष्म साधारण स्थावर इन तीन बिना सत्तरा ऐसे नामकी अड़तालीस सर्व मिलि निन्यानवैं हैं। अब एकेन्द्रियके उदय योग्य प्रकृति अस्सी हैं। ताकी विधि-ज्ञानावरणकी पाञ्च दर्शनावरण नव वेदनी दोय मोहनी चौबीस आयु नीच गोत्र अन्तराय पांच ए सात कर्मकी सैंतालीस। आगे नामकी-तहां वर्णकी च्यारि संस्थान गति गत्यानुपूर्वी शरीर तीन एकेन्द्रिय जाति तीर्थंकर विना अगुरु अष्टककी सात दश दुककी पन्द्रह ऐसे नाम कर्मकी तेंतीस सर्व मिलि एकेन्द्रियके उदय योग्य प्रकृति अस्सी। अब विकलत्रयके उदय योग्य प्रकृति कहिये हैं। सो एकेन्द्रियके उदय योग्य मैं तैं सूक्ष्म साधारण स्थावर आतप ये च्यारि तौ काढ़िए। अरु संहनन अंगोपांग चाल स्वर त्रस ये पांच मिलाईये तब विकलत्रयके उदय योग्य प्रकृति इक्यासी। ऐसे कहे जो सामान्य भाव च्यारि गति सम्बन्धी उदय सो प्रकृति उदय कहिये। और समय-समय ये प्रकृति उदय आवैं तब तिन प्रकृतिनके संग जेती-जेती प्रमाण कर्म उदय आय खिरैं सो प्रदेश उदय है। सो ही संक्षेप दिखाइये है। तहां एकलो अणुका नाम तौ वर्ग है। अनन्त वर्गका समूह सो वर्गणा है। और असंख्यात लोक प्रमाण वर्गणा स्कन्ध

मिलाईये तब एक स्पर्धक होय। ऐसे असंख्यात लोक प्रमाण स्पर्धक मिलाईये तब एक गुण हानि होय। ऐसे असंख्यात लोक प्रमाण गुण हानि कौं मिलाईए तब एक नाना-गुण हानि होय। ऐसे असंख्यात लोक प्रमाण नाना-गुण हानिको मिलाईए तब एक अन्योन्याभ्यस्त राशि होय। ऐसी असंख्यात लोक प्रमाण अन्योन्यभ्यस्त राशि स्कन्ध मिलाईए तब एक प्रकृति होय। ऐसे उदय योग्य प्रकृति तिनके साथ जेते प्रदेश उदय आय खिरैं सो प्रदेश उदय है। और जिस प्रकृतिकी जेती जघन्य-उत्कृष्ट स्थिति थी तिनमें तैं जो समय घाटि उदय आवैं सो स्थिति उदय है। और जिस प्रकृतिके उदय होते जो शुभाशुभ रसका प्रगट होना सो अनुभाग उदय कहिये। ऐसे सामान्य करि च्यारि प्रकार उदय कह्या ॥ २ ॥ अब सत्व करण कहिये है। तहां ऊपरि कहि आए जो बन्ध सो कर्म बन्धे पीछे जेते काल उदय होय नहीं खिरैं। आत्माके तैं एक क्षेत्र कर्म रहैं। सो सत्व करण है। सो सत्व करण भी चारि प्रकार है। प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग। तहां प्रथम ही प्रकृति सत्व कहिये है। सो सत्व योग्य प्रकृति एक सौ अड़तालीस हैं। सो नाना जीव नाना काल अपेक्षा हैं। और एक जीवकैं एकै काल तीन आयु विना भुज्यमान आयु सहिय एकसौ पैंतालीसका सत्व है, और भुज्यमान वारेके तीर्थंकर विना एकसौ चवालीसका सत्व है, और कोईके तीन आयु, आहारक चतुष्क व तीर्थंकर विना एक सौ ४० का सत्त्व है। किसीके आहारक चतुष्क, तीर्थंकर और वध्यमान आयु सहित एक सौ छयालीसका सत्त्व है। एक सौ अड़तालीस में तैं वद्धयमान वारे के तीर्थंकर और दोय आयु इन तीन विना, एक सौ पैंतालीस कासत्व है। किसीकै आहारक चतुष्क, तीनआयु इनसात विना एक सौ इकतालीस का सत्व है। और आहारक चतुष्क व दोय आयु,इन षट् विनाकोई वद्धयमान आयु वारेकैं एक सौ व्यालीस का सत्व है। ऐसे अनेक प्रकार नाना जीव कैं सत्व पाईये। ताका सामान्य कथन कह्या। सौ याका नाम सत्व करण है ॥ ३ ॥ और जैसे कच्चै आमों कौं पाल-पत्ता देय, सिताव (जल्दी) पकाईये। तैसे ही जिस कर्म की स्थिति बहुत होय, ताकौं बलात्कार तप-संयमादि करि, ताकी स्थिति घटाय उदय कालमें लावना, सो उदीरणा में। भावार्थ—जो कर्म की बहुत स्थिति कूं घटाय, थोड़ी

करि, खेरना सो उदीरणा करण है ॥४॥ जिन कर्मन को बहुत स्थिति थी सो तिनके निषेक, नीचले थोरीरी स्थिति वारेनमें मिलाय, उदयमें ल्यावना, सो अपकर्षण है ॥ ५ ॥ जिन कर्मन की स्थिति थोरी थी, तिनके निषेक नीचले तैं लेय, ऊपरले बड़ी स्थितिके निषेकनमें मिलावना, सो उत्कर्षण है। भावार्थ—जा कर्म की स्थिति थोरी थी ताकी बडी करना, सो उत्कर्षण है ॥ ६ ॥ आगे शुभ भावन तैं पुण्य प्रकृति बांधी थीं ताके निषेक पाप परणामन तैं पाप प्रकृति रूप करना। तथा आगे अशुभ भावन तैं पाप प्रकृति बांधी ताकौं शुभ भावनाके फल तैं पल्टाय पुण्य प्रकृति रूप करना, सो संक्रमण है ॥ ७ ॥ कर्म उदयावली वांछि है। सो उदयावलीमें कर्म कोई उपाय तैं नहीं आवैं, सो उपशान्त करण कहिये ॥ ८ ॥ जिन कर्मनके परमाणु संक्रमण नहीं होंय। तथा उदयावलीमें नहीं आवैं। सो याका नाम निधत्ति करण है ॥ ९ ॥ जा कर्मके परमाणु उत्कर्षण जो कर्म स्थितिका बढ़ावना, अपकर्षण जो कर्म स्थितिका घटावना, संक्रमण जो कर्म कौ और रूप करना, सो जामें तीनों ही नहीं होय उदयावलीमें नहीं आवै। जिस अंशन करि बन्ध्या है, तिन ही अंशन करि उदय आवै। सो निकांचित नाम करण है ॥ १० ॥ ये दश करण हैं। इनकौं जानैं कर्मकी अवस्था भले प्रकार जानी जाय है। ऐसा जानना। इति दश करण। विशेष इनका श्रीगोम्मटसारजी तैं जानना। ऐसा करणका स्वरूप, मिथ्यात गये जानिये है। सो मिथ्यातका स्वरूप कहिये है। मिथ्यातके दोय भेद हैं। सादि मिथ्यात और अनादि मिथ्यात। सो जीव कैं अनादिकाल संसार भ्रमण करतैं, कबहूं भी सम्यक्त्वका लाभ नहीं भया होय, सो तो अनादि मिथ्यादृष्टी है ॥ १ ॥ और जे जीव सम्यक्त्व कूं पाय, पीछे पाप भाव-अतत्वकी वाञ्छा तैं मिथ्यातमें आया होय, सो सादि मिथ्याती कहिये ॥२॥ इनके होतैं कर्मका स्वरूप नहीं पावै। इति मिथ्यात। आगे भाव भेद तीन बताईये है। शुद्ध भाव, शुभ भाव और अशुभ भाव। इनका अर्थ—तहां राग-द्वेषका अभाव, शत्रु-मित्र, कंचन-तिण, रतन—पाषान इनमें राग--द्वेष नहीं होय, सो शुद्ध भाव कहिये ॥ १ ॥ दान पूजा शील-जप तप संयम ध्यान शास्त्राभ्यास इत्यादिक क्रिया रूप शुभ भावनको प्रवृत्ति, सो शुभ भाव हैं ॥ २ ॥ और जीव हिंसा भाव असत्य भाषण भाव परद्रव्य हरण

भाव पर-स्त्री लम्पट भाव पुण्य उपरान्त परिग्रहके इकट्ठे करवे रूप भाव सप्त व्यसन भाव पाखंड भाव हाँसि कौतुकादि भण्ड भाव रुद्र भाव आरत भाव क्रोध मान माया लोभ भाव इत्यादिक पाप वन्धके कारण सो अशुभ भाव हैं ॥ ३ ॥ ये तीन भावके भेद हैं। तिनमें शुद्ध भाव तौ भव्य ही कैं होय हैं। शुभ अशुभ ये दोय भाव, भव्य तथा अभव्य दोऊनके होय हैं। तहां भव्यके भी तीन भेद हैं। निकट भव्य दूर भव्य और दूरानदूर भव्य। तहां जे जीव थोड़े काल बिषैं मोक्ष जांय, सो निकट भव्य हैं ॥ १ ॥ जे जीव वहुत कालमें मोक्ष होंय। तथा कवहूं न कबहूं अनन्त कालमें होंयगे, ऐसी केवल ज्ञानमें भासी है। सो दूर भव्य हैं। मोक्ष होवे योग्य हैं, तातैं इनको दूर भव्य जानना ॥ २ ॥ जे जीव भव्य हैं, केवलज्ञानमें भासे हैं। सो भव्य राशि हैं। परन्तु मोक्ष होनेकी सामग्री जो सम्मग्दर्शनादि जिनके कवहूं प्रगट नाहीं होय। सदीव संसार वासी, अभव्य समानि, कबहूं मोक्ष नहीं जांय, सो दूरानदूर भव्य हैं ॥ ३ ॥ यहां प्रश्न—जो भव्य कह्या अरु मोक्ष कवहूं नहीं होय, सो कैसे बनै ? ताका समाधान—हे भव्य, तू चित्त देय सुनि। अभव्य राशि तौ बहुत ही अल्प है। सो देखि। सर्व जीव राशि तैं अनन्तवें भाग तो सिद्ध राशिका प्रमाण है। सिद्ध राशि तैं अनन्तवें भाग, अभव्य राशि है। सो भी जघन्य जुगता अनन्त है। सो ये अभव्य तौ जव कहिये तुच्छ राशि जानना। और भव्य राशि वहुत है। सो सुनि, ज्यों तेरा भ्रम जाय। एक महा छोटा खस-खस दाने प्रमाण निगोद स्कन्धमें, असंख्यात लोक प्रमाण निगोद शरीर हैं। तहां एक-एक शरीरमें अक्षय अनन्त जीव हैं। इनका अन्त नाहीं। इस शरीरमें तैं निकसि-निकसि अनन्तकाल तांई, अनन्त जीव मोक्ष होवे करैं, तौ भी केवली कूं पूछिये, तब ही उस शरीर तैं निकसे तिनतैं अनन्त गुणे जीव, भव्य राशि और कहैं। ऐसे ही इस संसार तैं अनन्त काल तांई जीव मोक्ष होवो करैं, तौ भी सिद्ध राशि तैं अनन्त भव्य जीव जब पूछौ, तब ही केवली बतावैं। तातैं सदीव मोक्ष जातैं भी, जब केवली कूं पूछिये तब ही अभव्यन तैं अनन्त गुणे भव्य, एक शरीरमें जानना। और कदाचित् मोक्ष जाते-जाते, भव्य राशि मोक्ष जा चुकै, तो मोक्षका पीछे अभाव होय। मोक्ष वन्द होय। सो मोक्ष मारग कवहूं वन्द होता नाहीं, शाश्वत् है। छह महीना आठ समयमें, छह

सौ आठ जीव, निरन्तर मोक्ष जांय। सो ये अनुक्रम कबहू बन्द होता नाहीं। सो ऐसा जानना कि जो अनन्ते जीव, भव्य-राशिमें ऐसे हैं, सो कबहू मोक्ष होते नाहीं। जब केवली कूं पूछौ, तब ही अभव्य राशि तैं अनन्त गुणे भव्य बतावैं। तामें दूरानदूर भव्य राशि भी, अभव्यन तैं अनन्त गुणी जानना। सो ये दूरानदूर भव्य, अभव्य समानि हैं। इति। आगे तीन भेद आंगुलके कहिये हैं। सो प्रथम ही नाम-उच्छेद आंगुल १ आत्म आंगुल २ प्रमाण आंगुल ३ इनका अर्थ—तहां प्रथम ही उच्छेद आंगुल कौं बतावैं हैं। ताके निमित्त, उगणीस भेद गिणती कहिये। अवसनासन, सनासन, तटरेणु, त्रसरेणु, रथरेणु, उत्तम भोग भूमिके बालका अग्रभाग, मध्य भोगभूमिके बालका अग्रभाग, जघन्य भोग भूमिके बालका अग्रभाग, कर्म भूमिके बालका अग्रभाग, लीख, सरसौं, जव नाम अन्न, आंगुल, ये तेरह स्थान हैं। सो अवसनासन स्कन्ध तें लगाय, आंगुल पर्यंत तेरह स्थान, आठ-आठ गुणा अधिक जानना। भावार्थ—जैसे अवसनासन स्कन्ध है सो अनन्त पुद्गल परमाणूनका स्कन्ध होय है। आठ अवसनासनका, एक सनासन स्कन्ध होय है। आठ सनासन मिलाये, तब एक तटरेणु होय है। आठ तटरेणु मिलाये, तब एक त्रसरेणु होय हैं। ऐसे आठ-आठ गुणा आंगुल पर्यंत जानना। इस आठ जव प्रमाण उच्छेद आंगुल तैं पांच सौ गुणा प्रमाण-आंगुल है १४ चौवीस आंगुलका एक हाथ होय है १५ च्यारि हाथका एक धनुष होय है १६ दो हजार धनुषका एक कोस होय है १७ च्यारि कोसका एक योजन होय है १८ असंख्यात योजनका एक राजू होय है १९ उगणीस भेदनमेंसे तेरहमा भेद, आठ जव प्रमाण उच्छेद आंगुल है जिस कालमें जैसा शरीर होय तैसा ही आंगुल, सो आत्म आंगुल जानना। अवसर्पिणीका प्रथम चक्रवर्ती, पांच सौ धनुषके शरीर वारा, ताका आंगुल सो ये प्रमाणांगुल है। सो ये उच्छेद आंगुल तैं पांच सौ गुणा मोटा, प्रमाण-आंगुल जानना। इति। आगे अक्षर के तीन भेद हैं, सो कहिये हैं। प्रथम नाम-निवृत्ति अक्षर लब्धि अक्षर, स्थापना अक्षर, अब इनका अर्थ-तहां ओंठ' तालवादि स्थान तैं उत्पत्ति होय जो शब्द रूप अक्षर, सो निवृत्ति अक्षर है। १। ज्ञानावरणी कर्मके क्षयोपसम तैं भई जो पदार्थ जाननेकी भावेन्द्रिय द्वारा अक्षर शक्ति, सो लब्धि अक्षर है। २। जो अपने-अ-

पने देश भाषा रूप अक्षरनका आकार बनायके, तिन तैं कर्म-धर्मका कार्य करना, शास्त्र पढ़ना—समझना। इत्यादिक सो स्थापना अक्षर है। ३। ऐसे तीन भेद अक्षर जानना। इति। आगे पर्याप्तिके तीन भेद-पर्याप्ति। १। अपर्याप्ति तिसका ही नाम निर्वृत्य पर्याप्ति। २। लब्धि अपर्याप्ति। ३। इनका अर्थ—जहां पर्याप्ति नाम कर्मके उदय सहित जीव पर्याप्ति पूरण करे, सो पर्याप्ति है। १। पर्याप्ति प्रकृतिके उदय सहित जीव जेते काल शरीर पर्याप्ति पूरण नहीं किया होय, सो निर्वृत्य पर्याप्ति जीव है। २। अपर्याप्तिके उदय सहित जीव शरीर पूर्ण करतैं पहले मरण करे है, सो लब्धि अपर्याप्ति है। ३। ऐसे तीन भेद पर्याप्तिके जानना। इति। आगे चक्षु दर्शनके दोय भेद हैं। एक शक्ति चक्षु दर्शन। १। एक व्यक्त चक्षु दर्शन। २। इनका सामान्य अर्थ—अपर्याप्ति प्रकृतिके उदय सहित ऐसे लब्धि अपर्याप्त, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रियके शक्ति चक्षु दर्शन है। इनके चक्षु दर्शनका क्षयोपशम तो है, परन्तु अपर्याप्ति कर्म उदय तैं, अपर्याप्त दशामें ही मरैं हैं। तातैं प्रगट नहीं होने पावै। तातैं शक्ति चक्षु दर्शन कहिए। १। पर्याप्त चौइन्द्रिय सो ये व्यक्त चक्षु दर्शनी हैं। २। इति। आगे उपशम सम्यक्के दोय भेद बताईये हैं—प्रथमोपशम सम्यक्। १। द्वितीयोपशम सम्यक्। २। इनका सामान्य अर्थ—तहां अनादि काल संसार भ्रमण करते कबहूं मिथ्यात छूटि सम्यक् होय। आगे कबहूं नहीं भया था, अब ही अनन्तकालमें सम्यक् भाव जिस जीवकैं होय, सो प्रथमोपशम सम्यक् है। १। श्रेणी चढ़ते अप्रमत्त गुणस्थान विषैं क्षयोपशम सम्यक् तैं उपशम सम्यक् होय सो द्वितीयोपशमसम्यक् कहिये। २। इति आगे योग स्थानके तीन भेद बतावैं हैं—प्रथम उत्पाद योग स्थान। १। एकांत वृद्धि योग स्थान। २। परणाम योग स्थान। ३। इनका सामान्य अर्थ-तहां जो उपजनेके प्रथम समयमें ही जो योग स्थान होय सो उत्पाद योग स्थान है। याका जघन्य व उत्कृष्ट काल एक ही समय है। १। उपजनेके द्वितीय समय तैं लगाय, पर्याप्ति पूरण होनेके एक समय घाटि पर्यंत एक-एक समय बढ़ाईये। तातैं एकान्त वृद्धि योग स्थान हो है। याका भी जघन्य व उत्कृष्ट काल एक समय है। २। पर्याप्ति पूर्ण हो चुकी तब तैं लगाय आयु पर्यन्त होय सो परणाम योग स्थान है। ३। यहां प्रश्न—जो परणाम योग स्थान

तौ पर्याप्त जीव कैं सम्भवै है। और अपर्याप्ति, कर्मके उदय वारे कैं कसे सम्भवै ? ताका समाधान-जो इस लब्धि अपर्याप्त जीवका आयु, श्वासके अठारहवें भाग है। ताके तीन भाग कीजिये, सो दोय भाग विना एक भाग अन्तका है।सो याका परणाम योग स्थान जानना। ये तीन योग स्थान कहे। इनका विशेष श्रीगोम्मटसारजीके जीव कांड तैं जानना। इति। आगे धर्ममें अरुचि होवेके तीन कारण बताईये हैं। एक तौ जो जीव जन्मका ही अज्ञान हैं। ताकों अज्ञानताके योग करि धर्म्म तैं अरुचि रहै है। १। कोई जीवकैं कषायके दोष तैं धर्म तैं अरुचि होय है। २। कोऊके धर्म सेवन करते ही, पापके उदय तैं अरुचि होय। ३। अब इनके दृष्टान्त दिखाइये है। तहां जैसे कोई जीव जन्म रोगी तथा जन्म दरिद्री इन दोऊ ही नैं कबहूं घृत-मिश्रीका भोजन नहीं किया। इनके स्वादकूं कबहूं नहीं पाया। तैसे ही कोई पापात्मा अनादि ज्ञान-दरिद्री मिथ्या रोग पूरित सहज ही अज्ञानता करि पाप-पुण्यके भेदकूं नहीं जानै। तातैं धर्मतैं अरुचि होय है। १। दूसरा जो कोई जीव कषाय करि तथा जाकैं कोई खोटी आयुको बन्ध होय गया होय ताकरि कोई तैं लड़-पड़ा। सो वाके ऊपरि अपघात करवेकूं कूप नदी, बावड़ीमें कूदि मरै। तथा कोई पै जहर खाय व छूरी कटारी करि, मरै। तैंसे ही पाप कर्मके उदय करि धर्म सेवन करता भी काहू तैं द्वेष भाव करि धर्म तैं अरुचि करै है।२। कोई अच्छी तरह खाता-पीता जीव कैं पाप कर्मके उदय तैं पेटमें रस बढ़ चल्या। ताके योग तैं खान-पान तैं अरुचि होय चली। ज्यों-ज्यों पेटमें रस बढ़ने लगा त्यों-त्यों रोग बढ्या। त्यों-त्यों अन्न तैं अरुचि होय चली तैसेही अच्छा भला धर्म सेवन करता ही जीव पाप उदय तैं तथा कोई खोटी गतिके बन्ध तैं तथा आयुके बन्ध योग तैं शनैः-शनैः धर्म तैं अरुचि करै है। दीरघ आरतिके योग तैं भोगासक्त भया ताके दोष करि धर्म तैं अरुचि करै है। ३। ये तीन भेद भाव तैं धर्ममें अरुचि करि पाप बंध करि आत्मा अपना परभव बिगाड़ै है। ऐसा जानना। इति। आगे तीन शल्यके भेद कहिये हैं—माया शल्य।१। मिथ्या शल्य।२। अग्र सोच (निदान) शल्य। ३। इनका अर्थ-तहां मायाको परणति आप तज्या चाहै है। धर्म सेवन करै। परन्तु अपने हृदयतैं माया नाहीं जाय। कबहूं न कबहूं मायाकी वासना प्रगट हो ही जाय सो माया शल्य कहिये।१। जहां धम सेवन

करतैं मिथ्यात आप तज्या चाहै कुदेवादिककी सेवाका भी त्याग करै, परन्तु कारण पाय कबहूं न कबहूं अतत्व भाव उपजै है। मिथ्या भाव तैं अतत्व उपजै तथा जिन भाषितमें संशय होय सो मिथ्या शल्य है। २। जहां धर्म सेवन निरवाँच्छित होय कैं सेवतैं ही चित्त मैं कबहूं न कबहूं धर्म सेवनतैं पहिले ही सेवनके फलकी वाच्छां होय कि धर्मका मोकौं क्या फल होयगा? तथा नहीं होयगा। तथा ऐसा फल उपजियो इत्यादिक भाव विकल्प, सो अग्रसोच (निदान) शल्य है। ३। इति। आगे निक्षेप च्यारिका स्वरूप कहिये है। प्र-म नाम-नाम, स्थापना द्रव्य, भाव अब इनका अर्थ—तहां कोई वस्तुका कछू नाम कहना, सो नाम निक्षेप है। १। कोई वस्तुका आकार करना, सो स्थापना निक्षेप है। २। और कोई वस्तु-पदार्थ होवे कौं कोई वस्तु होय सो द्रव्य निक्षेप है। ३। वस्तु प्रत्यक्ष होय सो भाव निक्षेप कहिये है। ४। यहां इनका दृष्टान्त करि कहिये हैं। जैसे वृषभ आदि तीर्थंकरोंके नाम लेय सुमरन करि पुण्यका बंध करना सो नाम निक्षेप है। १। चौबीस तीर्थंकरोंके शरीरके आकार वर्ण लक्षण रूप सहित कायोत्सर्ग तथा पद्मासन प्रतिमा रतनकी स्वर्णकी चांदीकी धातुकी मनोग्य उत्तम पाषाणकी स्थापना करि पूजा स्तुति करि पुण्य उपार्जन करना, सो स्थापना निक्षेप है। २। तीर्थंकरका जीव परगतिमें ही है। अरु षट मास पहिले नगरकी रतन मई रचना पंचाश्चर्य करि उपजावना। तथा जो तीर्थंकर भये हैं। तिनके गर्भकल्याणादि अतिशयका उछाह करि स्तुति करि पुण्यका बांधना सो द्रव्य निक्षेप है। तीर्थंकर भये नहीं हैं परन्तु वह गर्भमें तिष्ठतो आत्मा तीर्थंकर होने योग्य है। काल पाय तीर्थंकर पद पावेंगे। सो द्रव्य तीर्थंकर कहिए। सो इनकी सेवा पूजा किये पुण्य वन्ध होय है सो द्रव्य निक्षेप है। ३। जहाँ समोशरण सहित गन्ध कुटो विष सिंहासन युक्त कमल तिसतैं अन्तरीक्ष चार अंगुल विराजमान भगवान् घातिया कर्म नाश करि अनन्त चतुष्टय सहित विराजमान दिव्य ध्वनि करि उपदेश देते तिष्ठैं सो भाव निक्षेप है। इनको पूजा—स्तुतिकूं करि पुण्य उपावना, सो भाव निक्षेप है। ४। ऐसे च्यार निक्षेप तीर्थंकरके हैं। यहां एक दृष्टान्त और भी कहिये है। काहूका नाम सिंह कहना सो नाम सिंह है। काष्ठ पाषाण चित्रामका नाहरका आकार बनाया सो स्थापना सिंह है। नाहरकी पर्या-

यमें उपजवेकूं सन्मुख भया जो जीव सो तौ अन्तरालमें है, सो द्रव्य नाहर है। साक्षात् कूदता फांदता बोलता सिंह सो भाव सिंह है। इत्यादिक भेद सब जगह चेतन अचेतन पदार्थन पै लगावना। इन च्यारोंके मारै पाप होय व इन पै दया भाव किये पुण्य होय। मिट्टीके स्थापना-नाहरके फोड़े मारैका दोष लागै है। यहां निक्षेपनका स्वरूप सामान्य कह्या। विशेष विवेकी सम्यग्दृष्टी अपने ज्ञानके महात्म्य करि सव स्थान पै यथायोग्य लगाय लेना। इति। आगे अलौकिक मानके च्यारि भेद हैं। सो बताईये है। प्रथम नाम-द्रव्य मान क्षेत्र मान काल मान और भाव मान अब इनका अर्थ—सोइन च्यारों मान विषैं जघन्य मध्यम उत्कृष्ट ये तीन तीन भेद हैं। तहां मान नाम प्रमाणका है। सो जो एक पुद्गल परमाणु है सो जघन्य द्रव्य मान है। यातैं छोटा द्रव्य और नाहीं। महास्कंध तीन लोकके प्रमाण, सो उत्कृष्ट द्रव्य मान जानना। या महास्कंध तैं बड़ा और पुद्गल स्कंध नाहीं। तातैं महास्कंध उत्कृष्ट द्रव्यमान जानना। पुद्गल परमाणूसे ऊपर, महास्कन्धसे एक पुद्गल परमाणु कम जो बीचके भेद हैं, सो मध्यम द्रव्य मान है। १। और एक प्रदेश आकाशका चेत्र, सो जघन्य चेत्र मान है। यातैं छोटा चेत्र नहीं। और तीन लोक चेत्र प्रमाण चेत्र सो लोकाकाशकी अपेक्षा उत्कृष्ट चेत्र मान है। और अनन्त अलोकाकाश चत्र है सो उत्कृष्ट चेत्र मान है। या अलोकाकाश तैं उत्कृष्ट चेत्र नाहीं। और एक प्रदेशके ऊपर तैं एक-एक प्रदेश बढ़ता उत्कृष्ट पर्यन्त मध्यके भेद हैं। ये चेत्रमानके तीन भेद हैं। २। और एक समय तैं छोटा काल—भेद नाहीं। तातैं एक समय तो जघन्य काल मान है। और अतीत, अनागत, वर्त्तमान ए तीन कालके जेते समयनका प्रमाण सो उत्कृष्ट काल मान है। और दूसरे समय तैं एक-एक समय काल बढ़ता सो उत्कृष्ट तैं एक समय घाटि पर्यन्त मध्यके भेद हैं। ऐसे काल-मानके तीन भेद कहे। ३। और सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तक जीव एक अन्तर्मुहूर्तमें छ्यासट हजार तीन सौ छत्तीस जन्म-मरण करै। सो तिनमें छह हजार ग्यारह जन्म मरण निगोदिया सम्बन्धी करि चुक्या होय। अरु बारहवें जन्म धर तैं, प्रथम समयमें अक्षरके अनन्तवें भाग ज्ञान रहै है। सो जघन्य ज्ञान है। सो ही जघन्य भाव-मान जानना। यातैं अल्प भाव-मान नाहीं। और इस जघ-

न्य भाव तैं एक-एक ज्ञान अंश बढ़ते एक अंश घाटि केवलज्ञान पर्यंत मध्य भाव मानके भेद हैं। और सर्व तीन कालकी जाननहारा अंतरजामी सर्वज्ञके केवल ज्ञान है सो उत्कृष्ट भाव मान है। ये तीन भेद भाव मानके जानना। ४। ऐसे सामान्य च्यारि भेद मानके जानना। इति। आगे अर्जिकाजीके च्यारि गुण कहिये हैं प्रथम नाम-लज्जा। १। विनय। २। वैराग्य। ३। शुभाचार। ४। इनका अर्थ—प्रथम अर्जिकाजीका रहनेका स्थान बतावैं हैं। सो जहां अर्जिकाजीके रहनेका स्थान होय सो नगर तैं अति दूर नहीं होय। बहुत नजदीक भी नहीं होय। ऐसा यथायोग्य कोई मध्य स्थान होय तहाँ तिष्ठै। और जब आहार कौं नगरमें जाय तौ अकेली नहीं जाय, कोई बड़ी अर्जिकाजीके साथ जाय। सो भी मौन सहित, विनय तैं, अङ्ग सङ्कोचती, नीची दृष्टि किए, ईर्य्या समिति सहित, नगरमें भोजन कौं जाय। तन को छिपाए रहे, अङ्गोपांग प्रगट नहीं दिखावै। एक पट तैं सर्व तन कौं आच्छादित राखती, लज्जा सहित प्रवृत्ते, सो लज्जा गुण कहिए।१। और अर्जिका जी आचार्य के दर्शन कौं जांय, तौ पांच हाथ अन्तर तैं विनय सहित नमस्कार करैं हैं। उपाध्याय जी के दर्शन कौं जांय, तब षट हाथ तैं नमस्कार करैं हैं। साधु जी के दर्शक कौं अर्जिका जी जांय, तब सात हाथके अंतर तैं नमस्कार करैं। सो अर्जिका जी इन गुरौं को नमस्कार करैं, तब पंचॉग नमस्कार करैं। अर्जिका जी कौं गुरुन पै कोई प्रश्न करना होय, तौ अकेली जाय, नहीं करैं। एक बड़ी अर्जिका कूं अपना प्रश्न कहे, जो इस प्रश्नका उत्तर गुरुके मुख तैं सुन्या चाहौं हौं ऐसा कहि, बड़ी अर्जिका जी कौं अगवानी करि, प्रश्न करावै। और भी इनकौं आदि देव, गुरु, धर्म, विषै योग्य विनय सहित रहै, सो विनय गुण है। २। और निरन्तर वैराग्य बढ़ावनेके अर्थ, अनेक तप करना। यत्न तैं संयम—ध्यान करना। निरन्तर संसारकी अनित्यताका विचार करना। भोगनको भुजंग समानि जानना। तनकौं सप्त धातु मई जान, ताके धारण तैं चित्तकी उदासीनता, इत्यादिक भावन सहित विरक्त भाव रहना, सो वैराग्य गुण है। ३। और परम्पराय जिन आज्ञा प्रमाण कही है जो अर्जिका के आचार की प्रवृत्ति, ताही प्रमाण क्रिया करनी, सो शुभ आचार गुण है। ४। इन च्यारि गुण सहित होय,

सो सतीन में परम शिरोमणि, धर्म्म मूर्ति अर्जिका जानना। इति आर्यिका गुण। आगे दत्ति भेद च्यारि कहिये है। तहां नाम—पात्रदत्ति। १। समदत्ति। २। करुणादत्ति। ३। सर्वदत्ति। ४। अब इनका अर्थ—तहां मुनिराज कों नवधा भक्ति करि दान देना, तथा आर्यिका जी कूं भोजन—वस्त्र भक्ति सहित दान देना। तथा त्यागी, अवलि खलिक, प्रतिमाधारी, तिन कौं भोजन—वस्त्र देना तथा संघ में मुनि—श्रावकन कौं कमण्डलु—पीछी देना। इत्यादिक चारि प्रकार संघमें महा विनय सहित भक्ति-भाव करि दान देना, सो पात्रदत्ति है। १। और आप समानि धर्म श्रद्धा का धारक गृहस्थ, धर्मात्मा, ज्ञानी, वैराग्यवान, संतोषी, सम्यग्दृष्टी, शुद्ध देव—गुरु—धर्मको श्रद्धाको समझनेहारा, उत्तम शुभ कर्मी, ताकौं यथायोग्य भक्ति—अनुराग करि, विनय पूर्वक भोजन—वस्त्रादि देना। तिन की स्थिरता करनी, साता करनी, सो समदत्ति है। प्रयोजन पाय इनकौं दान दीजिये तथा उनका आप लीजिये। तातैं इनका लेना-देना सो समदत्ति है।२। जहां दीन, दरिद्री, अंधा, भूखा बालक, वृद्ध, अशक्त, रोगी; असहाय, इत्यादिक कौं देखि अनुकंपा करि, दया-भाव सहित दानका देना, सो करुणादत्ति है। ३। जहाँ सर्व परिग्रह—आरम्भका त्याग करि मुनीश्वरका पद धरना, सो सर्वदत्ति है। अब कछु देनैका नाम नहीं, जो देना था सो सर्व दिया। सर्व संसारमें तिष्ठते जो—जो त्रस—स्थावर जीव, तिन सबमें समता भाव करि, सबकौं अभय दान देना, सो ये सर्वदत्ति जानना। ४। ऐसे दत्ति चारि। इति दत्ति। आगे कुलकर तैं लगाय भरत चक्रवर्ती पर्यन्त जीवनमें, चूक भये दण्ड होय। ताके भेद च्यारि हैं। सो बताईये हैं—तहां तीजे काल के व्यतीत भए, पल्य का अष्टम भाग काल, बाकी रह्या। तब ज्ञान का सामान्य—विशेष भया। कोई जीव विशेष ज्ञानी, कोई जीव सामान्य ज्ञानी। ताके योग तैं कुलकर भए। सो और जीवनमें ज्ञान अल्प और कुलकरन में ज्ञान विशेष भया। सो प्रथम कुलकर तैं लगाय पंचम कुलकर पर्यन्त कोई चूक भए, जीव कौं ऐसा दण्ड होय जो "हा"। याका अर्थ यो, जो "हाय—हाय! (यह कार्य मति करो)"।१। ऐसेही पंचम तैं लगाय दशवें पर्यन्त ऐसा दण्ड जो "हा मा"। याका अर्थ यह, जो "हाय-हाय! यह कार्य मति करो"। २। और वृषभ देव पर्यन्त पंचम

कुलकरों के वारे ऐसा दण्ड भया, जो "हा मा धिक्" याका अर्थ—"हाय हाय। यह कार्य मति करौ तौ कों धिक्कार है"। ३। पीछे काल—दोष तैं जीवन के कषाय बढ़ी। तब राज—दण्ड भी दीरघ भया। सो चूक भए भरत चक्रवर्ती के समय वारे जीव, वक्र-कषाई भए। अपराध बड़े करने लगे। सामान्य दण्डका उल्लंघन करने लगे। तब छेदन-भेदन, बध-बन्धनादि दण्ड भये। ४। ऐसे दण्ड भेद च्यारि कहे। सो जीवन की जैसी—जैसी कषाय भई, तैसा २ दण्ड विधान चल्या। सो अब देखिये है। जो दीरघ चूक तैं, दीर्घ दण्ड पावैं। अल्प चूक तैं थोरा दंड पावै और चूक रहित व गुण सहित जीवन की, पूजा होती देखिए है। तातें ऐसो जान, विवेकी पुरुषन कूं चूक (भूल) भाव छांड़ि, गुण करना योग्य है। इति दण्ड भेद।

इति श्री सुदृष्टितरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, दश करणादि भेदवर्णनो, नाम अट्ठाईसवां पर्व सम्पूर्णं ॥ २८ ॥

आगे श्रावक की क्रिया पच्चीस हैं। इन-इन भावन तैं जीव, कर्म का आश्रव करै है, सो ही बताईये है। प्रथम सम्यक्त्व की क्रिया कहिए है—तहां अठारह दोष रहित शुद्ध देवकी पूजा, शुद्ध गुरु की पूजा, शुद्ध धर्म की पूजा, जिन बिम्ब की पूजा, सिद्धक्षेत्र पूजा। धर्मात्मा पुरुषन के गुणनमें अनुराग भाव, वात्सल्य भाव। दीन, दुखित, रोगी, दुखी—दरिद्री, इत्यादिक क्लेशवान् जीवन कौं देख, दया भाव करैं। समता भाव बढ़ावै। इत्यादिक समभावना सहित जीव, शुभ कर्मका आश्रव करै है। याका नाम सम्यक् क्रिया है। ये तौ शुभ आश्रव है। १। आगे मिथ्यात प्रवर्द्धिनी क्रिया कहिये है—तहाँ कुदेव पूजा, कुगुरु पूजा, कुतीर्थ पूजा, हिंसा सहित कुतप तिनके करवे की भावना, औरन के हिंसा तपकी प्रशंसा, कुदान करवे की अभिलाषा, कुव्रतन में काय की प्रवृत्ति, सर्वमें विनय, सुदेव—सुगुरु, कुदेव—कुगुरु, इनकौं एक से जानना, इत्यादिक भावन तैं अशुभ कर्मका आश्रव होय है। याका नाम मिथ्यात प्रवर्द्धिनी क्रिया है। ये शुभ कर्म कौं उपजावै है। २। और असंयम प्रवर्द्धिनी क्रिया कहिए है—तहां मनमें अनेक विकल्प धन—धान्य की चाह करना। भोग—उपभोग में अभिलाषा रूप रहना, इन्द्रियन के पोखवे की वांच्छा इत्यादि असंयम के विकल्प रूप मनका वेग, सो मन असंयम है। पंचेन्द्रिय अपने विषय कौं चाहती। ऐ

रसना इन्द्रिय, षट्रस के भोग में लुब्ध। स्पर्श इन्द्रिय, अपने अष्ट विषयन में लुब्ध। घ्राणेन्द्रिय, सुगन्ध इच्छुक। नेत्र इन्द्रिय, पंच वर्ण विषै लुब्ध। श्रोत्र इन्द्रिय, सुस्वर शब्द-वादित्रन में लुब्ध। इत्यादिक इन्द्रिय असंयम रूप। ऐसे मन व इन्द्रिय आत्मा के वश नहीं रहैं। और त्रस-स्थावर के षट् कायन की दया नहीं पालै। ऐसे बारह असंयम रूप भावन के विकल्प तैं, अशुभ कर्म का आश्रव जीव करै है। याका नाम असंयम प्रवर्द्धिनो क्रिया है। ३। आगे प्रमानी चोथी क्रिया कहिए है—तहां जो जीव प्रथम तौ आप संयम, व्रत आखड़ी कौं धारतैं तपके फल का बांच्छिक होय। तपस्वी नाम बाजै। पीछै काल पाय तप कष्ट तैं भय खाय जलकी इच्छा अन्नकी इच्छा स्त्रीको इच्छा। शीत—उष्ण नहीं सह्या जाय सो और असंयमी जीवकौं खावते—पीवते, स्त्री संग करते, शीत—उष्णमें अनेक तनके जतन करते सुखी देखि, विचारो। जो मैं तो संयम तैं दुखी होय रह्याहौं और ये असंयमी सुखी है, अच्छा खाय है—पीवै है। ऐसे भाव करि आप संयमी होय कर, पीछे प्रमाद योग तैं पाप उदय करि, असंयम कूं भला जान, संयम तै विचल्या चाहै। सो प्रमादिनी नामकी क्रिया है। ऐसे भाव तैं अशुभ कर्मका आश्रव होय है। ४। आगे ईर्यापथ क्रिया कहिए है। सो याकरि दोय भेद आश्रव होय है। जो जीव अंतरंग में सर्व जीव पै दया भाव करि, गमन करतैं नीची दृष्टि करि देखता चालै। धीरा चालै। छोटा—बड़ा जीव नजर में आवे, सो राह में बचाय लेय, ऐसे दया भाव सहित जतन तैं भूमि शोधता गमन करै, तौ चलता जीव कैं ही पुण्य का आश्रव होय। और गमन करते, ईर्या तजि, प्रमाद तैं उतावला चालै। राह में आप समान आत्मा अनेक, छोटी कायधारी, पशु चींटा—चींटी हैं तिनकी रक्षा रहित, प्रमाद तैं गमन करता आत्मा, अशुभकर्म का आश्रव करै। याका नाम पंचम भेद ईर्यापथ क्रिया है। ५। आगे प्रादोश की क्रिया कहिये है—जहां ये जीव धर्म भाव तजि क्रोध के वशीभूत होय, अनेक पाप करै। जाकौं क्रोध का उदय होय तब जीव घात करै; दया तजै। क्रोधी जीव देव गुरु, माता आदि गुरुजन का अविनय करै। शस्त्र घात तैं, आप तन हतैं। क्रोधी अग्नि तैं ग्राम बन, घर जालै। क्रोधी नर, पुत्र, स्त्री, भाई आदिका घात करै। इत्यादिक पाप, क्रोध भाव तैं करै। तहां

ी सू० ४२० ये है—तहां जानैं शरीर पाय, चोरी करी। जीव घात किया। पर स्त्री सेवन किया। मद्य—मांस भक्षण किया। अपने कुल निंद्य, अपने धर्म निंद्य, खान—पान निंद्य क्रिया करि। द्यूत रम्या। युद्ध किया। पर जीवन कूं भय उपजाये। इत्यादिक ता शरीर तैं बहुत अपराध किये। ताके फल तैं शरीरकी नाक छेदन कराई, पांव छेदन कराये, इत्यादिक अंग—उपांग छेदन सहित रहे। तौभी परघातका तौ उद्यम किया करे। ऐसे बहुत पापअकार्य करि, भाव विगाड़ि, अशुभ कर्मका आवक किया। और शुभ कर्म लो शरीर कौं धारि, कबहूं नहीं करया, अपराध कीये। सो सातमो कायिक क्रिया है ॥ ७ ॥ आगे अघकरणी क्रिया कहिये है—तहां जाकौं हिंसाके उपकरण, बहुत वल्लभ (प्यारे) लागें। तोर, तलवार, तुपक, तोप, सेल, बरछी, कटारी, छुरी इत्यादिक अचेतन, हिंसाके उपकरण हैं। सो ये जा कूं बहुत अनुराग उपजावैं। तिनके निमित्त शृङ्गारवे कौं अनेक द्रव्य लगाय आभूषण करावै। तथा चीता, बाज, श्वान, सिंह, सुअर, मार्जार, चोर, ऐंठा देनेहारे, घर फोड़नेहारे, ठग, फांसी करनहारे इत्यादिक ये चेतन, हिंसाके उपकरण जाकौं प्यारे लागैं इनकौं भला भोजन देय। बड़े भारी वस्त्र देय। इत्यादिक चेतन-अचेतन हिंसाके पापके सहाई उपकरण तिनकौं देखि हरष भाव करना सो अशुभ आश्रवके करनहारे भाव जानना। याका नाम आठवीं अघकरणी क्रिया है ।८। आगे परितापकी क्रिया कहिए है। तहां अपनी इच्छा करि जान पूछ करि ऐसो क्रिय करै जाकरि पर जीवन कूं पीड़ा होय। जैसे काहूने कौतुक हेतु हस्तीका युद्ध कराया। मीढेनका युद्ध कराया। क्रूर जीव नाहरका युद्ध क्रिया सर्प नेवलेकी युद्ध क्रिया घोटक युद्ध महिष युद्ध, ऊँट युद्ध, नर युद्ध इत्यदिक युद्ध क्रिया अन्य जीवनकी करावनी। तिन तौं कोईके शिर फूटैं। केईके पद भङ्ग भये। इत्यादि अन्य जीवनकूं बलात्कार दुखी करि आप हर्ष पावना। सो परितापकी क्रिया, अशुभ आश्रवको करनहारो है तथा नदी कूप बावड़ी, सरोवर विषैं, कौतुक हर्षके हेतु कूदना ताकरि दीन जीव जलचर, तिनका घात करना, दुखी करना। जान-पूंछ काहू के लात, मूकी लाठी शस्त्र मार दुखी किए। इत्यादि क्रिया करि अशुभ कर्मनका आश्रव करना

त॰ ४२०

याका नाम नववीं परितापकी क्रिया है। ६। आगे प्राणपातकी क्रिया कहिये है। तहां जो जीव अपने तनतैं परजीवनके तनका नाश करै। जैसे खेटक करनेवालेकी क्रिया। तथा चांडालादिक दया रहित, पर जीवनका घात करनहारे तिनकी क्रिया। तथा चोर व फँसियारा अपने हाथ तैं पर जीवनका घात करैं, सो क्रिया। इत्यादिक पर जीव घातवेकी क्रिया हैं। सो सर्व पापका आश्रव करैं हैं। याका नाम प्राणपातकी दशवीं क्रिया है॥ १०॥ आगे दर्शन क्रिया कहिये है —जहां पैराया भला रूप देखवेकी इच्छा, कोई स्त्री-पुरुषका अच्छा रूप सुनै, तौ ताके देखवेकी अभिलाषा होवेकी क्रिया। पुरुष कौं अनेक पट—आभूषण पहराय, स्त्रीका रूप आकार बनाय, देखवेके परणाम। कोई देव, देवी, मनुष्यनीके रूपका बखान सुनि कैं, तैसे रूप देखवे कूं चित्तका विह्वल होना। तथा अनेक प्रकार षट्रस भोगवेकी अभिलाषा। रसनाके रंजावनेहारे भोजन तैं सुखी, रसना कूं अरति उपजावनेहारे भोजन—रस मिलै दुखी, ऐसे भावन तैं जीव अशुभ कर्मका आश्रव करै। याका नाम ग्यरहवीं दर्शन क्रिया है॥ ११॥ आगे स्पर्शनकी क्रिया कहिये है। तहां जो जीव अपने कायके स्पर्शने कूं कोमल शय्याके निमित्त, सचित्त फूल—बौंड़ी तिनकी शय्या रचना करै। तामें शयन करि—लोट, आनन्द मनवै। पापका भय नाहीं, दयाका विचार नाहीं, हिंसाका तरस नाहीं. अपनी इन्द्रिय पोषी जाय सो करना। तथा योग्य-अयोग्य कुल नहीं विचारै। भावै स्पर्शवे योग्य होऊ, भावै नीच अस्पर्शवे योग्य होऊ, जाका तन सुन्दर होय कोमल होय, सौ स्पर्शन इन्द्रियका भोगनेहारा ताकौं स्पर्शै है। नीच—ऊंच नहीं विचारै। सो बारहवीं स्पर्शन क्रिया है॥ १२॥ आगे प्रत्यायिनी क्रिया कहिये है। जहां पाप करवेके कारण नाना प्रकार शस्त्र, तीर, गोली, छुरी, कटारी, तरवार, जाल, पींजरा, फाँसि, फंदा, चेप, कुप, इत्यदिक हिंसाके कारण शस्त्र तिनकी अत्यन्त चतुराई बनावनेको जानैं होय। सो ऐसे अद्भुत् शस्त्र बनावै, तैसे और कोई तैं नहीं बनैं। ऐसे अपूरव दुखके कारण शस्त्रादि करवेकी कला-चतुराई, सो महा अशुभ कर्मका आस्रव करै। याका नाम प्रत्यायिनी क्रिया है॥ १३॥ आगे समन्तानुपातनी क्रिया कहिये है। जो गृहस्थके मन्दिर प्रसूतके स्थान हैं। ये भोगी जीवनके स्पर्श करवेके हैं। जहां सराग क्रीड़ा सदीव होय। सो ऐसे स्थान त्यागीनके रहवेके

नाहीं। ये सराग स्थान त्यागीन कौं योग्य नाहीं, अयोग्य हैं, भयके कारण हैं। तातें जो यती आदि संयमी, इन गृहस्थनके घरमें आवे, तौ महा सावधान, प्रमाद रहित, वीतराग दशा सहित, भोजन निमित्त आवें। सो जेते काल सराग नहीं होंय, दोष टालि भोजन लेय। सो जातें तथा आवतें, संयमी अपने तनके श्लेषमादि मल-मूत्र, प्रमादके योग तैं कदाचित् गृहस्थीके घर विषें नाखें। तौ ऐसे प्रमाद-भावन तें अशुभ आस्रव करें। याका नाम समन्तानुपातनी क्रिया है ॥ १४ ॥ आगे अनाभोग क्रिया कहिये है। जहां विना देखे वस्तु कौं धरती पै धरना, विना देखे धरती तैं उठाना। सो यती तौ कमण्डलु, पीछे, तन इत्यादिक धरें सो विना शोधे धरती, विना पीछी तें पूछें, धरे तो अशुभ आश्रव करें हैं। और श्रावक भी अनेक वस्तु धरना--उठवना विना देखे, प्रमाद सहित करें, तौ अशुभ आश्रव करें। याका नाम अनाभोग क्रिया है ॥ १५ ॥ आगे स्वहस्त क्रिया कहिये है। तहां जे दुराचारी, दुष्ट स्वभावका धरनहारा, महा पापी, अपने हाथ ऐसे पापका कार्य करे। जो ऐसा निषिद्ध खोटा कार्य-और तैं नहीं वनें। ऐसी कायका धारी महा पाप आस्रव करें। यह ऐसा पापी है कि यदि याके कहै कोऊ पाप कार्य न करे। तथा कोई करता पाप कार्य तें डरे। तो यह निर्दयी ऐसा प्रेरक होय कहै। जो हे भाई, यो पाप हमारे शिर है। तू मत डरे। ये पापका कार्य निशङ्क होय करि। ऐसे भावका धारी वड़े पापका आस्रव करै। याका नाम स्वहस्त क्रिया है ॥ १६ ॥ आगे निसर्ग क्रिया कहिये है। तहां जा दुरात्मा कौं भला कार्य तो सिखाये ही नहीं आवे। शुभ कार्यन विषें मूढ़ता, भली वात वोलना न आवे। और अनेक कुकार्य, विना सिखाये ही अपनी वुद्धि तें उपावें। अनेक युक्ति, पाप कार्य करवेकी उपजे। आप करै, औरन कूं कुकार्य उपदेशे। ऐसे जीव अपने भाव तें पाप कर्मका आस्रव करें। याका नाम निसर्ग क्रिया है ॥ १७ ॥ आगे विदारण क्रिया कहिये है। तहां जो जीव अपना अवगुण लोकनमें आप प्रगट कहै। जो मैं वड़ा चोर हूं। मो सा और नाहीं। अनेक संकटमें, महा गूढ़ स्थानमें, धन धर्‌या होय, तहां तैं ल्याऊं। तथा कहे, जो मो सा ज्वारी और नाहीं। तथा कहै, हम परस्त्री सेवनहारे हैं। तथा कहे, मैं वड़ा पाखण्डी हूं मो सा पाखण्डी और नाहीं। वड़ा झूठा हों। तथा मैं वड़ा दगाबाज हों। इत्यादिक अपने अवगुण

की प्रसंशा, अपने मुख तैं करै। ऐसा जीव अपने भावनकी वक्रता करि, अशुभ कर्मका आश्रव करै। सो याका नाम, विंदारण क्रिया है ॥ १८ ॥ आगे जिन आज्ञाउल्लंघन क्रिया कहियो है। जो जीव विषय-कषायनमें उद्यमी, पंचेन्द्रिय पोषवे कूं अनेक उद्यम करै। कदाचित् तनकी शक्ति नहीं भई होय, तो बुद्धि बल करि मन तैं बड़ा उपाय करै। परन्तु जैसे बने तैसे, विषय पोषण करि' सुख मानै। जिनके सेवन तैं पुत्र वधन होता जानै, ऐसे कुदेव तथा जिन तैं रसायन होती जानै तथा वैद्यादिक कलाके धारी, जंन्त्र—मन्त्रादि चमत्कार बतावनहारे—गुरु, इनकी सेवामें सावधान। तिनकी आज्ञा प्रमाण तौ करै। जिन भाषित धर्म सेवनमें शिथिल, स्वर्ग—मोक्षदाता तप, व्रत, पूजा करवैमें प्रमादो। कायर ऐसा कहै, जो मेरे तनमें शक्ति नाहीं। अशक्ति जानि, आलस सहित, शुद्ध धर्म की क्रिया करै। सो भी अपनी इच्छा रूप करै जिन आज्ञा प्रमाण नाहीं करै। ऐसे भावनका धारी अशुभ आश्रव करै। याका नाम जिन आज्ञा उल्लंघन क्रिया है। १६। आगे बीसवीं अनादर क्रिया कहिये है। जो जीव शास्त्रोक्त तप संयम पूजा दान, चारित्र, ध्यान पाठादि धर्म क्रिया करै सो सर्व अनादर सहित करै। यह अभागी धर्म भावना रहित पापाचारी आर्त्त रौद्रके विकल्पन करि भख्या है हृदय जाका। ताकैं चोर-ज्वारीनका तौ आदर आप जैसे पापी पाखण्डी सप्त व्यसनी चोरनके सहाई तिनका आदर करै। और महालोभी परस्त्री इच्छुक धनके लोभ कौं व परस्त्री वश करबै कौं अनेक मन्त्र-तन्त्रनका साधन करै तप करै जप करै सो महा आदर सूं करै। अरु कल्याणकारो धर्म क्रिया आदर बिना करै। ऐसी परणतिका धारो, अशुभ कर्मका आस्रव करै। याका नाम अनादर क्रिया है। २०। आगे आरम्भ क्रिया कहिये है। तहां अपनी शक्ति तौ आरम्भ करवैकी नाहीं। तब और के किये पापारम्भ तिनकौं देख हर्ष करना। जैसे किसीके किये मन्दिर गढ़ कोट कूप बावड़ी सरोवर बनते देखि-महा आरम्भ देख आप अनुमोदना करनी। तथा परके व्याहमें बड़ा आरम्भ देखि प्रसंशा करनी। इत्यादिक भावनतैं अशुभ कर्मका आश्रव करै है। याका नाम आरंभ किया है। २१। आगे परग्राहणी क्रिया कहिये है। तहां जे जीव लोभके भरे योग्य अयोग्य नहीं गिनैं। ये लेने योग्य है ये नहीं लेने योग्य है। ऐसा भेद तीव्र

लोभके उदय नहीं विचारै। पर वस्तु अपने हाथ आवै सो सब लेय। देव धर्मका माल जो धर्म निमित्तका और भगनी पुत्रीका भानजेका इत्यादिक ये लौकिक निंद्य पर द्रव्य है। सो जो महा लोभ सहित जीव होय है सो लोभी धर्म-अर्थका भी द्रव्य विषयमें लगावै। बहिन-भानजेका धन लेय। इत्यादिक लोभीके हाथ आवै सो तजै नाहीं। ऐसे पर माल ग्रहण रूप भावनका धारी अशुभ कर्मका आश्रव करै। याका नाम पर-ग्राहणी क्रिया है।२२। आगे माया नाम क्रिया कहिये है। तहां जे जीवपर जीवनकौं ठगवेकौं महा चतुर अनेक युक्ति देय अनेक विद्याकर पराया धन हरैं। अनेक कलान करि अपने विषय-कषाय पोषण करैं। इत्यादि पाप कार्यनमें तौ प्रवीण होय हैं। और जे जिन भाषित शुद्ध धर्मकी क्रिया तिनमैं मूरख समानि भोरा जिन पूजा नहीं जानै जो कैसे करैं व कैसे पढ़ैं हैं। भगवान्की स्तुति नहीं करि जानैं। प्रभुका दर्शन नहीं करि जानैं। जिनकी दया महा पुण्यकारी होय ऐसे षट् काय जीव तिनके नाम-भेद नहीं जानै। संसार भ्रमणके जो स्थान च्यारि गति ताका स्वरूप नहीं जानैं। आप जीव है सो आपकूं जीवत्व भाव नहीं जानैं। इत्यादिक कल्याणकारी धर्म सम्बन्धी बात क्रिया तौ नहीं जानै। ऐसे भावका धारी जो पापमें चतुर धर्ममें मूढ़ सो पाप आश्रव करि परभव बिगाड़ै है। याका नाम तेईसवीं माया क्रिया है। २३। आगे मिथ्या दर्शन क्रिया कहिये है। जो जीव आप मिथ्यात्व रूप क्रिया करै। औरनकूं उपदेश देय। जैसे आप तौ धनका लोभी तथा मान-बड़ाईके अर्थ मिथ्या देव-गुरुकी सेवा करै। जो मोकूं धन देय मोकूं पुत्र हाथी घोटक देय इत्यादिक वस्तुके लोभकौं मिथ्या-मारग सेवन करै। तथा और भोरे अज्ञानी जीवनकूं उपदेश देय कुदेवादिकके अतिशयकौं कहै कि ये देव प्रत्यक्ष वांछित देय है। हमने इनकी सेवा करी सो हमें ऐसी वांछित वस्तु देय हमारी वांछा पूरी करी। इत्यादिक अतिशय जानि देवादिककूं आप सेवना औरनकूं उपदेशना। सो ऐसे भावन तैं जीव संसार दुख देनहारे पापकर्म ताका आश्रव करैं हैं। याका नाम चौबीसवीं मिथ्या दर्शन क्रिया है। २४। आगे अप्रत्याख्यान क्रिया कहिए है। सो जे जीव अज्ञानताके योग तैं तथा परणामनकी क्रूरता तैं सर्व ही पाप कार्य करैं कोई पापका त्याग नाहीं। ते मूर्ख केई तो ऐसा कहैं जो हम तौ भोरे हैं।

हमकौं पाप नहीं लागै जो समझै हैं, ताकौं पाप भी लागै है। सो हम तौ कछू समझते नाँहीं जो पाप कहा होय है अरु पुण्य कहा होय है ? और केई जीव कहैं हैं कि जो हे भाई पाप-पुण्य तो है ही नाहीं। तातैं भय काहेका ? निशंक होय भोग सुख करना। केई प्राणी कहैं हैं। अरे देख लेहैं जब मरेंगे तब हाल तौ अपनी इच्छा होय सो करौ। मरतीबार धर्म सेय लेहैं। केई कहैं हैं कि जो तुम चाहौ सो करौ पाप होय तौ याका फल हमकूं लागै। इन क्रियान तैं नर्क होय तो हमें होऊ। हे भाई यहां ही वांच्छित नहीं मिलै तौ नर्क है। और यहां ही सुख मिलै तो स्वर्ग है। तातैं सुख तैं रहौ। हालही छते सुख काहे कौं तजौ हौ ? इत्यादि स्वेच्छाचारी होय सर्व पाप करैं। योग्य-अयोग्य कछू विचार नाहीं। कोई पापका त्याग नाहीं करैं। ऐसे भावनके धारी अशुभ आस्रव करैं। याका नाम पचीसवीं अप्रत्याख्यान क्रिया है। २५। इति पच्चीस क्रिया आस्रवकी कहीं। आगे राजा श्रेणिकने श्री गौतम स्वामी तैं प्रश्न किये थे तथा तीर्थंकरकी माता तैं देवाङ्गना ने प्रश्न किये थे तथा और अनेक शास्त्रनमें धर्मी जीवनके प्रश्न प्रमाण यहां पुण्य-पापका फल प्रगट जानवेकूं शिष्यनकी प्रश्नमाला लिखिये है। तहां शिष्य गुरुके पास विनय सहित होय पुण्य-पापके फल प्रगट जानवेकूं प्रश्नमालाकी जो पंकति सो पूछै है। हे गुरु-देवजी ! यह जीव अन्धा कोन पाप तैं होय। तब गुरु कही जिन जीवनने अन्य भव विषय अंस जीवनके नेत्र दुखाये होंय परके नेत्र फोड़े होंय। परकी आंख दुखती देख सुखी भया होय। परकौं अन्धा भया जानि अनुमोदना करी होय। अन्धे जीवनकी हांसि करि बहकाया होय। अन्धेनका धन वस्त्र छल-बल करि हर्या होय इत्यादिक पापन तैं जीव अन्धे होंय तथा नेत्र रहित तेइन्द्रिय आदि अन्धे जीव उपजैं हैं। १। बहुरि शिष्य पूछै है। भो प्रभो ! जीव बधरे कौन पाप तैं होंय ? सो दया करि कहौ। तब मुनि कही जे जीव अपने कानन तैं विकथा सुनि हर्ष पाया होय। सत्य वचन सुनि ताकूं असत्य कहा होय। झूठा वचन सुनि जानि ताहि सत्य करि मान्या होय। तथा अपराधी चुगलनके मुख तैं असत्य पापकारी वचन सुनिकैं पर जीवन पर दोष लगाय घर लूट्या होय। दण्ड कर दिया होय। घर स्त्री गज घोटकादि खोंस लिये होंय। औरनके कान द्वेष-भाव करि छेदन किये होंय। तथा औरनकूं बधरे जानि कुवचन ४२५

बोले होंय। तथा परकूं बधरे जानि ताकी हांसि कौतुक करि हर्ष मान्या होय। पराये दीनताके वचन न्याय रूप सुनिकैं अनसुने किये होंय। तथा दीन आय-आय याचना रूप वचन, कहैं तिनकूं सुनि मानके जोर तैं जबाब नहीं दिया होय। तथा अन्य जीवन नें आपकूं भला मनुष्य जानि विनय-वचन कहे नमस्कारादि किया तिनकौं मानी होय पीछे प्रति उत्तर नमस्कारादि नाहीं कस्या। सुन्या-अनसुन्या किया होय। इत्यादिक पापन तैं बधिरा होय है। तथा कान रहित चौइन्द्रिय होय है।२। पीछे और प्रश्न शिष्य करता भया। हे यतीनाथ! लूला कौन पाप तैं होय? तब यती कही। हे वत्स! जाने परभवमें अपने हाथ तैं परके पाँव तोड़े होंय। तथा दीन पशूनकूं लाठी-लोठी मारि दया रहित चित्त करि तिनके पांव तोड़े होंय। तथा शस्त्र तैं दीन पशूनके पांव तोड़े होंय। पर कौं लूला—पग रहित जान ताका वस्त्र वासनादि ले भागा होय। तथा परके पाँव छेद तैं आप खुशी भया होय तथा इस कौतुक कूं देख हर्षाया होय। तथा पर कौं लंगड़े जानि वहकाये होंय, ताकी हँसी करी होय। इत्यादिक पाप तैं लंगड़ा होय। तथा पाँव रहित, हलन-चलन रहित एकेन्द्रिय होय।३। वहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ! मुख रहित तथा मुख सहित मूंका, कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही। हे वत्स सुबुद्धि! चित्त देय सुनि। जिन जीवन नैं परके मुख मूंदि, तिन्हें शस्त्र मारे होंय। तथा मुखमें शस्त्र घालि, वचन वन्द करि, दुखी किया होय। तथा पर कौं भले वचन वोलते देखि, ताकौं मने किया होय। तथा मुख पाय कैं असत्य वोलिकैं, अन्य जीवनका वुरा किया होय। तथा रसना इन्द्रियका लोलुपी वहुत रह्या, ताके निमित्त अनेक जीवनकी हिन्सा करी होय। तथा अभक्ष्य वस्तु तो रसना तैं वहुत भली लागी होय। तथा मुख करि अन्य जीवनकौं कोप करि श्वानादिककी नाईं काटे होंय। तथा और कं मूंका देखि, तिंनको हांसि करि, वहकाये होंय। तथा अन्य जीवनकं प्रच्छन्न वचनं, जामें वह नहीं समझै ऐसे वचन वोलि, दुर्वचन कहि कैं हर्ष मान्या होय। इत्यादिक पापनतैं मूंका होय है।४। तब फेरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे नाथ, यह जीव निर्धन कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही। भोवत्स! जिननैं पर भवमें अन्य जीवनका धन चोर करि, उन्हे निर्धन किया होय। तथा पर कौं झूठा

दोष लगाय, आपने जबरी तैं ताका धन लूट, अन्य कौं निर्धन किया होय। तथा पर कौं भय देय, दुख देय ताका धन छीन लिया होय। तथा धन जोड़वे कौं अनेक स्वाङ्ग धरि, पराया धन ठगा होय। ऐसे अपराधी जीव, निर्धन होय हैं। तथा परकौं धनवान् न देख सक्या होय। परके घरमें धन देखि, आप दुखी भया होय। तथा परकौं धनवान देखि ताके धन खोवने कूं अनेक चुगली, राज-पंचनमें करि, ताका धन नाश कराय, निर्धन किया होय। तथा अन्यकूं धनकी पैदायश कोई कार्यमें जानी, ताके कार्यका घात किया होय। इत्यादिक पाप-भावन तैं प्राणी, भवांतरमें निर्धन होय। तथा निर्धन होनेके अनेक भेद है। जिननैं पराया-धन अग्निमें जलता देखि, हर्ष पाया होय। तथा अपने पराये-धन कौं अग्नि लगाय, निरधन किया होय तौ तिस पाप तैं अपना धन अग्निमें जल आप निर्धन होय। तथा पर-धन जलमें डूबता देखि-सुनि हर्ष पाया होय तथा अपनी दगावाजी त नदी-सरोवरमें पराया धन डुबोय पर कौं निरधन किया होय। तिस पाप तैं भवान्तर में आपका धन नदी-सरोवरमें जहाज डूबैं, नाव डूबै। ऐसे आप निरधन होय। तथा औरनके घर-नगर लुटे सुनि-देखि, आप सुखी भया होय। तौ आप भी ताकै फल तैं फौजनिसूं लुटि, निर्धन होय। तथा परका धन, आपने जबरई लूटया होय। तथा परका धन चोरन तैं लुटता देखि तथा सुनि, आप हर्ष मान्या होय। ताकै पाप तैं भवान्तरमें आपका धन चोरन तैं लुटि, आप निर्धन होय। इत्यादिक निर्धन होनेके अनेक भेद हैं। जा—जा परणामन तैं परकौं निर्धन वांच्छ्या होय' तथा जा-जा प्रकार पर कूं निरधन भये देखि, आप खुशी भया होय। तिस ही निमित्त पाय, आप निर्धन होय ॥ ५ ॥ बहुरि शिष्य प्रश्न किया। भो गुरुनाथ ! यह जीव धनवान् कौन पुण्य तैं होय ? तब गणधर ने कही। हे भव्यात्मा, जिन जीवन नैं निरधन पुरुषको दया करि, तिनकौं दान देय, धनवान् करि, सुखी किये होंय। तथा निर्धन जीव देखि, तिनकी दया करि धनवान् होना बांच्छा होय। तथा पर जीवन कूं धन प्राप्ति भई सुनि, आप सुखी भया होय। इत्यादिक शुभ भावना तैं, आप धनवान् होय ॥ ६ ॥ पीछे फेरि शिष्य प्रश्न किया। भो गुरुदेव, यह जीव, पुत्र रहित कौन पाप तैं होय ? तब गुरु कही। जो जीव परभवमें परके पुत्र नहीं देख सक्या होय। पर जीवन कूं पुत्रकी प्राप्ति भई सुनि, आप-

नै दुख पाया होय। परके पुत्रका मरण सुनि, आप सुखी भया होय। तथा पर-पुत्र देखि, हरया चाह्या होय। इत्यादिक पापन तैं जीव, पुत्र रहित होय ॥ ७ ॥ पीछे फेरि शिष्य प्रश्न किया। नाथ! यह जीव कौन पुण्य तैं पुत्र सहित होय है? तब गुरु कही। हे वत्स, जिन जीवन नैं भवान्तरमें पर जीवन कों, पुत्र सहित देखि सुख मान्या होय। तथा पर कौं पुत्रकी प्राप्ति सुनि, हर्ष पाया होय। तथा पर कौं पुत्र रहित आर्तध्यानी-दुखी पुत्रका अभिलाषी देखि, ताकी दया भाव करि, ताकौं पुत्र होना वांच्छा होय। इत्यादिक पुण्य तैं पुत्र सहित होय ॥८॥ पीछे फेरि शिष्य प्रश्न किया। हे नाथ! यह जीव कूं कुपूत पुत्रका संयोग, कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही। हे वत्स, जिननैं पर पुत्र कूं बहकायवेमें सहाय दी होय, उसे पाप कार्यनमें लगाय, अनेक कुबुद्धि सिखाय, माता-पिताका अविनयी किया होय। ताकौं अनेक कुमारग लगाय, माता-पिता तैं युद्ध कराया होय। पुत्रके पास माता-पिताकी निंदा करी होय। तथा परका सुपूत पुत्र देखि, ताकौं नहीं सुहाये होंय। तथा परके पुत्र चोर, ज्वारी, कुशील आदि विशेष व्यसनी देख, आप हर्षवन्त भये होंय। पर कूं अनाचारी देखि, सुख पाया होय। इत्यादिक अशुभ भावन तैं, कुपूत पुत्रका संयोग होय है ॥ ९ ॥ पीछे फेरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे जगत्पति! सुपूत पुत्रका लाभ कौन पुण्य तैं होय? तब गणधर ने कही। जिन जीवन ने पराये कुपूत-कुमारगी पुत्रन कौं अनेक शिक्षा देय, सुमारग लगाये होंय। अनेक नय-युक्ति करि, तिनकूं सुबुद्धि उपजाय, माता-पितानकी आज्ञामें किये होंय। परके सुपूत पुत्र देख, आप कूं सुख उपज्या होय। परके सुपूत पुत्रनके शुभ लक्षण देखि, तिनकी प्रशंसा करी होय। पुत्र कूं माता-पिता सूं विनयवान् देखि, आप हर्ष पाया होय। इत्यादिक शुभ भावना तैं, सुपूत पुत्रका लाभ होय है ॥ १० ॥ पीछे फेरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे नाथ, खोटी स्त्री, कौन पाप तैं पावै, सो कहौ। तब गुरु कही। हे वत्स, जे जीव परके घरमें खोटी स्त्री-कलहकारणी देखी, सुखी भये होंय। तथा पर स्त्री भर्तारमें माया करि, कलह कराया होय। परस्पर द्वेष पाड़ि, आप हरषाया होय। परके घरमें सती, विनयवती भली स्त्री देखि, आप कौं नहीं सुहाई होय। परकी भली स्त्रीन कौं देखि, तिनकी निंदा करी होय। इत्यादिक पापन तैं परभवमें खोटी स्त्री पावै ॥ ११ ॥ फेरि शिष्य

प्रश्न किया। हे नाथ! भली स्त्री कौन पुण्य तैं पावै ? तब गुरु कही। हे भव्यात्मा! जानै पर-स्त्रीनके अवगुण छुड़ाय, उन्हे गुणवती करी होय। तथा पर-स्त्रीनके शीलादिक गुण, भरतारके विनय रूप देखि, जाकौं सुख भया होय। तथा पर-स्त्रीनके शील-गुणकी रक्षा करी होय। तथा शीलवान् सती स्त्रीनकी प्रसंशा करी होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं शुभस्त्री पावै ॥ १२ ॥ तब फेरि शिष्य प्रश्न पूछी। हे नाथ, ये जीव संसारमें अपमानी कौन पाप तैं होय ? तब गुरु कही। हे भव्य, जिनने परभवमें अनेक जीवनका मान खण्ड्या होय। तथा माता-पिता गुरुजनका मान नहीं राखा होय। तथा देव-गुरु-धर्मका अविनय किया होय। तथा पर जीवन कूं अल्प पुण्यी जानि तिनका अनादर करि, पर जीवन कूं दुख उपजाया होय। तथा अपनी महिमा अपने मुख तैं करि, पर कौं निंदे होंय। तथा आप कूं महन्त जानि, दीन जीवन कूं पीड़ा उपजाई होय। इत्यादिक पाप भावन तैं, पर-भवमैं अपमानी होय ॥ १३ ॥ बहुरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे गुरुदेव जी, जीव जगमें कीर्तिवान् कोन पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही। जिन जीवनने अपने मुख तैं परभवमें तीर्थंकर चक्री कामदेवादिक महा पुरुषनके गुणकी कीर्त्ति करी होय। परकीं कीर्त्ति सुनि आप सुख पाया होय। पराये दोष देख आपने दाबे होय। तथा देव-गुरु-धर्मकी महिमा अपने मुख तैं करी होय। तथा माता-पितादि गुरुजनकी विनय सहित सेवा-चाकरी करी होय। इत्यादिक पुण्य भावन तैं कीर्त्तिवन्त होय है ॥ १४ ॥ तब फेरि शिष्य मस्तक नमाय पूछता भया। भो त्रयज्ञानी! इस जीवका सर्व कुटुम्ब दुख-दायक कौन पाप तैं होय ? तब गुरु कही। हे शिष्य जिननैं परके कुटुम्बमें परस्पर साता देखि आपने दुख मान्या होय। परके कुटुम्बमें कलह देखि सुख पाया होय। तथा परके घरमें परस्पर भ्रातृ-स्नेह देखि अपनी दगावाजी तैं झूठे वचन बनाय इतके उत-उतके इत कहि परस्पर द्वेष कराय हर्ष मान्या होय। इत्यादिक पाप चेष्टा तैं सर्व कुटुम्बी-जन दुख दायक होय हैं ॥ १५ ॥ तब फेरि शिष्य पूछी। हे जगत पूज्य! सर्व कुटुम्ब सुखदायक कौन पुण्य तैं होय है। तब गुरु कही। हे वत्स, हे आर्य, जाने औरके कुटुम्बमें परस्पर द्वेष देखि, अपनी बुद्धिके बल करि, तिनका परस्पर स्नेह कराय, सुखी किये होंय। परके कुटुम्ब विषैं परस्पर स्नेह देखि, सब कूं साता देखि, आपनैं हित पाया

होय, आप सुखी भया होय । परके कुटुम्ब सुखी करवे कूं, बहुत धन दिया होय । तनका कष्ट तथा बुद्धिके प्रकाश करि, परके कुटुम्बमें साता करी होय । इत्यादिक शुभ भावना तैं, सर्व कुटुम्ब सुखदायक पावै ॥ १६ ॥ बहुरि शिष्य पूछी । हे संघनाथ, शरीर विषैं रोगका समूह कौन पाप तैं होय ? तब गुरु कही । जाने परभवमें कोऊ कौं औषधि दान देते मनै किया होय । परके शरीरमें रोग देखि, सुखी भया होय । पर शरीर रोग रहित देखि, आप दुख पाया होय । तथा पर जीवन कूं, रोग वांच्छा होय । औरनके शरीरमें रोग देखि, बहुत ग्लानि करी होय । तथा रोगी जीव देखि, तिन पै दया भाव नहीं किया होय । तथा अन्य जीवनके तन विषैं रोग बढ़वे कौं, दगाबाजी तैं, अनेक वस्तु खुवा दई होय । तथा कबहूं, औषधि दान नहीं दिया होय । तथा पराये तनमें रोग देखि, तिनकी हाँसि करि उन्हे बहकाये होंय, तिनकी निन्दा करी होय । इत्यादिक पाप भावन तैं रोगी-तन होय ॥ १७ ॥ आगे शिष्य फेरि प्रश्न किया । भो प्रभो ! ये जीव, निरोग शरीर कौन पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही । हे वत्स ! जिन जीवन ने पूरव भवमें सुपात्रनके तनमें रोगकी बाधा देखि, भोजन समय प्राशुक औषधि देय, साता उपजाई होय । तथा दीन-दुखितनके तनमें रोग देखि, करुणा भाव करि रोग नाशने कूं औषधदान दिये होंय । तथा परके शरीरमें रोग देख अनुकंपा करी होय । तथा परका निरोग शरीर देखि सुखी भया होय । तथा पराये शरीरमें रोग देख, ग्लानि नहीं की होय । तिनकी दया करि साता वांच्छी होय । इत्यादिक शुभ भावन तैं रोग रहित शरीर होय है ॥ १८ ॥ फेरि शिष्य पूछी हे गुरुनाथ ! क्रूर परणामी दुरजन-स्वभाव जीवनमें कौन कर्मके उदयतैं होय ? तब गुरु कही । हे भव्यात्मा जे जीव दुराचारी नरकनके निवास तैं बहुत काल दुख भोगि निकसै होंय । सो नरकका आया प्राणी पूरव पाप तैं महा क्रोधी दुराचारी क्रूर परणामी होय । तथा पूर्व भवमें मनुष्यायुका बन्ध करि पीछे कुसंगका निमित पाय महा क्रूर हिंसा मई वर्त्या होय । सो जीव पूर्वली वासना सहित दुराचारी होय क्रोधी होय । तथा जाका परभव बुरा होय । हे गुरो । सज्जन भाव सहित जीव कौन पुण्य तैं होय है ? तब गुरु कही । हे वत्स जो जीव देव गति आदि शुभ गति तैं आया होय । सो जो पूरव-भवकी भली चेष्टा थी सो

ताही कूं लिये दया-भावके फल तैं महान् पुरुषनकी संगति पाय तामें भले उपदेश सुनि सज्जन स्वभावी होय तथा पर जीवनकी सज्जनता देखि हर्ष पाया होय। बड़े गुरुजनकी सेवा चाकरी सुश्रूषा करी होय। इत्यादि पुण्य तैं सज्जन स्वभावी होय। २०। तब फेरि शिष्य पूछी। हे गुरो ये जीव समता भावी कौन पुण्य तैं होय है? तब गुरु कही। हे धर्मार्थी सुनि। जे भव्य जीव परभवमें मुनि श्रावकनकी शांत मुद्रा देखि हर्षे होंय। तथा जिनेन्द्र देवकी शांत मुद्रा देखि पद्मासन कायोत्सर्ग मुद्रा देखि जिनने अनुमोदना करी होय। तथा परजीवनके क्रूर बचन सुनिकैं समता धर तिंन पर क्रोध-भाव नहीं किये होंय। औरनकी क्रूरता देखि आपने तिन पै दया करी होय। तथा संसारकी विटंबना देखि संसार तैं उदास भये होंय। तथा धन-तनादि संपदा साम्रग्री चंचल देखि राग द्वेषादि भाव दुखदाता जानि क्रोध मानादि तजि मन्द कषाय रह्या होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं समता भाव प्रगट होय है। २१। तब फेरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे जगत गुरु! यह जीव धर्मात्मा कौन पुण्य तैं होय? तब दयालु भाव सहित गुरुने कही। हे भव्यात्मा हे भद्र परणामी जिन जीवन नैं परभवमें महा समता भाव राखे होंय। धर्मात्मा जीवनकौं धर्म सेवन करते देख अनुमोदना करि पुण्य उपाया हो। तथा अनेक जीवन पै दया भाव किये होंय। तथा धर्म उत्सव देखि हर्ष पाया होय। तथा धर्मके अनेक भेद हैं। सो जिस जातिके धर्म अङ्ग देखि आपकों अनुमोदना उपजी होय। तिस ही जातिके धर्म अंगका लाभ परभवमें जीवकौं होय है। सो ही कहिये है—जिस जीवने परभव विषैं और धर्मात्मा जीवनकौं तप करते देखि हर्ष किया होय। तपस्वी पुरुषनकी सेवा-चाकरी करी होय। तपकौं उत्कृष्ट सुखदाता जानि ताके करवेकी अभिलाषा करी होय। इत्यादिक तप अंगकी अनुमोदनाके फल तैं भवांतरमें तप धर्मका लाभ पावै। बहुरि जिनने औरनकौं भगवान्‌की पूजा व स्तुति करते देखि अनुमोदना करी होय। तथा भगवान्‌के भक्त जन देखि तिनमें प्रीति भाव करि तिनकी सेवा-चाकरी करि होय। आपकौं भगवान्‌की पूजा करवेका अभिलाष बहुत रह्या होय। इत्यादिक पूजाकी अनुमोदना चाहि रूप भाव पटल तैं भवांतरमें प्रभुकी पूजाके भाव होंय। पूजा धर्म अंग पावै। और जिन जीवननें परभवमें अन्य जीवन कूं नियम

आखड़ी करते देख तथा घृत-दुग्धादि रसनकों त्याग करते देख तथा ताम्बूल वस्त्रादि परिग्रहके प्रमाण करते देखि तथा दया भाव सहित प्रवृत्ति देख तिनकी प्रसंशा करी होय। तथा अन्यकूं संयमी देखि संयमकी अभिलाषाकी होय। इत्यादिक संयमकी अनुमोदनाके फल तैं भवांतरमें संयम-संपदा पावै। और जिननैं परभवमें और जीवनकौं सिद्ध क्षेत्र यात्राकूं गमन करते देख तथा सिद्ध क्षेत्र बन्दनाके निमित्त संघ जाते देखि ताकी अनुमोदना करी होय। तथा सिद्ध क्षेत्र यात्रा करवेकी अभिलाषा रही होय। तथा सिद्ध क्षेत्र यात्रा करवे वारौंकी सहायता करि साता उपजाय सुखी किये होंय। इत्यादिक पुण्य भावनतैं भवांतरमें सिद्ध क्षेत्र यात्राका बहुत लाभ होय। परभवमें आचार्यनकौं उपदेश देता देख तिन धर्मी पुरुषनका उपदेश सुनि तिनके ज्ञानकी शान्ति-भावनकी प्रशंसा की होय। धर्मके उपदेश दाताकी भक्ति करि आनन्द मान्या होय। इत्यादिक भावन तैं धर्मोपदेश देनेका उत्तम ज्ञान पाय अपना तथा पर जीवनका कल्याण करै है। ऐसे धर्म अंगनके अनेक भेद हैं। सो जा-जा धर्म अंगका सहाय किया होय अनुमोदना करी होय ताही धर्म अंग-का लाभ होय। धर्मका फल उपजावै॥ २२ ॥ बहुरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे नाथ यह जीव बलवान् कौन पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही। हे भव्य जिन जीवन नैं परभव विषैं दीन-जीवनकी दया करि रक्षा करी होय। तथा अशक्त जीवनकौं देखि तिन पै दया भाव करि तिनके दुख मैट सुखी करवेकौं अनेक उपाय करि रक्षा करी होय। निर्बल जीवनकौं भले भोजन पान देय दया भाव करि सुखी किये होंय। नंगेनकूं वस्त्र, रोगी-नकौं औषधि देय पुष्ट किये होंय। औरनकौं अनेक साता उपजाय रक्षा करी होय। इत्यादिक शुभ भावनतैं जीव भवान्तर विषैं बलवान् होय ॥२३॥ बहुरि शिष्य प्रश्न किया हे नाथ, हे यति पति, यह जीव निर्बल कौन पाप तैं होय ? तब गुरु कही। हे वत्स जिन जीवनने पर जीवनका खान-पान बन्द करि निर्बल करि डारे होंय तथा दीन जीव बल रहित देख तिनकी हांसि करि तिनकौं लज्जावान् किये होंय। तथा बल रहित जीवनकौं मारे होंय बांधे होंय लटकाए होंय। आपकौं बलवान् जानि अपने बल-मद आगे औरनकौं बल रहित जानि अनेक भय उपजाय दुखी किये होंय तथा अपने बल मदके आगे सिंह-हस्तीकी नाईं मदोन्मत्त वर्त्या होय।

अन्य जीवनका बल देख आपने द्वेष-भाव किया होय। इत्यादिक पाप भावनतैं बल रहित होय है ॥ २४॥ फेरि शिष्य पूछी। हे नाथ! यह जीव भयवान् कायर चित्तका धारी कौन पाप तैं होय। तब गुरु कहो। हे भव्यात्मा सुनि। जिन जीवननैं पर जीवनकौं अनेक भय उपजाये हौंय। प्राण नाशका भय देय कंपायमान करे हौंय। धन नाशका भय दिया होय। घर लूटवेका भय दिया होय। तथा ताकी आबरू-खंडवेका भय दिया होय। तथा घरके मनुष्य पकड़वेका भय दिया होय। तथा राजपंचका भय बताय, भयवन्त किये हौंय। तथा चोर सिंह हस्ती इन आदि पशूनका भय देय दुखो किये हौंय। तथा रण तैं भागते भयवन्त दीन जीव, तिनकी हांसि करी होय। तथा औरनकौं भयवन्त कायर देख आप हर्षवन्त भया होय। इत्यादिक दया रहित भावन तैं कायर होय है ॥ २५॥ बहुरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे गुरो यह जीव शूरवीर निर्भय कौन पुन्य तैं होय? तब गुरु कही। हे वत्स जिन जीवन नैं परभवमें दीन जीवन कौं अभयदान दिया होय। करुणा करि परजीवनकी रक्षा करो होय। तथा किसी जीवने काहू दीन-दुखी जीवकौं भय बताय दुखो किया होय। ताकौं देख आप दया भाव करि, अपने भुजबलतैं दीनकौं दुष्ट तैं बचाय, सुखी करि, भय रहित किया होय। तथा त्रस-स्थावर जीवन पै दया-भाव राखे हौंय। तथा अनेक जीवनकूं राज, पंच दुष्ट, सिंहादि जीव तिनके उपद्रव तैं बचाय निर्भय किये हौंय। तथा भयवन्त जीवनके दया भाव करि स्थिर भाव किये हौंय। तथा भय रहित सुखी जीवनकूं देख आपकूं सुख भया होय। इत्यादिक शुभ भावनके फल तैं निशंक चित्तका धारी शूरवीर होय है ॥ २६ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरूजी! यह जीव उदारचित्त सहित दातार कौन पुन्य तैं होय? तब गुरु कही। हे भव्यात्मा जिन जीवन नैं पर जीवनकौं सुपात्र दान देते देख, अनुमोदना करी होय। तथा दीन दुखित-सुखित देख तिन जीवनकी तानैं दया करो होय। तथा दान देनेकी बहुत अभिलाषा करी होय। तथा धर्म निमित्त धन देते सुख पाया होय। इत्यादिक शुभ भाव तैं उदार चित्त सहित दाता होय है ॥ २७॥ बहुरि फेरि शिष्य कही। हे यति पति, यह जीव सूंम किस कर्मके उदय करि होय सो कहो। तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभवमें कोई जीवकूं दान देते मनैं किया होय। औरनकौं

धन खर्चते देख आपने दुख मान्या होय। पर भवमें नाना कष्ट पाय धन जोड़ि कर आप नहीं खाया नहीं औरनकूं खुवाया अरु और धन जोड़वेकी अभिलाषा रही होय। अत्यन्त तीव्र तृष्णाके भावनमें मरण किया होय। तथा औरनके दानकी निन्दा करी होय। इत्यादिक पाप-भावन तें सूमता सहित लोभी होय ॥ २८ ॥ फेरि शिष्य पूछी। यह जीव पण्डित कौन कर्म तैं होय? तब गुरु कही। हे वत्स, जिन जीवन नैं पर-भवमें विद्याका दान दिया होय। औरनकूं पण्डित-विद्यावान् जीव देख तिनकी सेवा-चाकरी करी होय। अज्ञानी जीवनकी संगति तैं जिनके अरुचि रही होय। जो धर्म शास्त्रनके वेत्ता हैं तिनकी स्तुति करी होय। तथा धर्म शास्त्रन कौं आप लिखे तथा घर-धन खरचके लिखाय धर्मात्मा-जीवनके पठन-पाठनकौं दिये हौंय। तिन शास्त्रनके उपकरण जो पूठा-बंधना उत्तम कराये हौंय। तथा शास्त्राभ्यास करवेकी बहुत अभिलाषा रही होय तथा अन्य विद्या अभिलाषी भव्य जीवनकौं धर्म शास्त्रका ज्ञान कराया होय। इत्यादिक पुण्य-भावन तैं पण्डित होय ॥ २९ ॥ और फिर शिष्य पूछी। हे नाथ! हे तपोधन! यह जीव मूरख कौन पाप तैं उपजै है? तब गुरु कही। जिन जीवन नै पण्डितनकी हांसि करी होय। तथा धर्म शास्त्रके सुनवेमें अरुचि भाव किये हौंय। तथा धर्म शास्त्र चुराये हौंय। तथा तिनके बंधन-पूठे चुराये हौंय। तथा धर्मार्थी पण्डित तैं द्वेष-भाव किये हौंय। इत्यादिक पापन तैं मूरख होय ॥ ३० ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव पराधीन कौन पापा तैं होय? तब गुरु कही। हे भव्य जिन जीवन नै परभवमें पर जीवनकौं बन्दीमें राखे हौंय। तथा अन्य जीवनकूं तुच्छ धन देय अपने वशीभूत राखे हौंय। तथा कर्जादिकके आवने करि निरधन जीवनकूं रोके हौंय तिनकौं तुच्छ-अल्प अन्न-जल देय अपने वश राखे हौंय। तथा बलात्कार-जोरावरी करि पर-जीवनकौं अपने आधीन राखे हौंय। तथा पराधीन जीवनकी हांसि करी होय। तथा पशून कौं राखि, तृण—जलदेनेमें प्रमादी रह्या होय। इत्यादिक पापन तैं पराधीन होय ॥ ३१ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे प्रभो, यह जीव स्वाधीन कौन पुण्यतें होय। तब गुरु कही। जिन जीवननें परभवमें अन्य कौं खान—पान देय कुटुम्ब सहित तिनकी स्थिरता करी होय। तथा दीन जीवन कौं खान-पान देय, साताकारी

बचन कहि, तिनकौं निराकुल किये होय। तथा पराधीन जीव देखि ताकौं अनुकम्पा उपजी होय। पर जीवन कूं स्वाधीन—सुखी देख, आप सात पाई होय। इत्यादिक पुण्य तैं स्वाधीन होय है।३२। बहुरि शिष्य प्रश्नपूछो। हे गुरो, यह जीव कुरूप किस पाप तैं होय ? तब गुरु कही भो भव्यात्मा, जिन जीवन कौं परभव मेंपराय रूपकी महिमा नहीं सुनाई होय। तथा कोई पाप-उदय तैं जो रूप रहित भया होय, तिन जीवनके तनकी ग्लानि करी होय, सो जीव कुरूप होय। तथा कुरूपमनुष्य देखि, ताकी हाँसि करी होय। तथा पराया भला रूप देख ताकौं दोष लगाया होय। तथा पराये भले रूप कूं बिभूति—धूळ-कर्दमादि लगाय, विपरीत करि डारया होय। इत्यादिक भावन तैं कुरूप होय। ३३। बहुरि शिष्य पूछी। हे ज्ञानमूर्ति ! ये जीव रूपवान कौन पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही। हे वत्स जिन जीवननैं परभव में पर जीवनका रूप देख, निरविकार चित्त किये देख,सुख मान्या होय। तथा पर जीवन कूं रूपके योग तैं अनादर पाया देख तिनकी दया करि, रूपवान होना वांच्छया होय। धर्मका सेवन करि, रूपवान होना वांच्छया होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं रूपवान होय है। ३४। तब फेरि शिष्य प्रश्न किया। हे धर्ममूर्ति, यह जीव पुण्यके उदयकरि अनेक भोग्य वस्तु मिली तिन कौं भी नहीं भोग सकै, सो यह कौन पापका फल है ? तब गुरु कही। जिन जीवननैं परभवमें अन्य जीवन कौं अन्न, जल, मेवा, पान, मिठाई इत्यादिक खावने विषैं अन्तराय किया होय। तिन कूं भली वस्तु द्वेष-भाव करि, खावने नहीं दई होय। औरनकौं सूखी-रूखी, कोरी-रस रहित खावता देखि, आप खुशी भया होय। औरनकौं सुख तैं खान-पान करते देख नहीं सुहाया होय। औरन कं भूखे-प्यासे देख, तिनकी हांसि करि होय, दुर्वचन कहि दुखी किये होंय। आप रसना इन्द्रियका लोलुपी होय नाना प्रकार भोग वस्तु भोगी होय। अपने विषय-पोषने कौं नाना प्रकार छल-बल दगाबाजी करि रसनादिकके विषय भोग सुख मान्या होय। तथा परका भोजन श्वान-मार्जारादि पशु ले गये देख आप सुखी भया होय इत्यादिक पापन तैं छती (उपस्थित) वस्तु भोगमें नहीं आवै। और कदाचित् लोभका मारया दुग्धादि भली वस्तु खाय ही तो रोग बधै दुखी होय। तातैं अन्तराय कर्मके उदय भलो वस्तु नहीं पचै है। ३१। और

शिष्य प्रश्न किया। हे सुखमूर्ति ! जाके घरमें सुन्दर स्त्री वस्त्र आभूषण घोटक रतनादिक भली वस्तु उपभोग योग्य पाईये और भोग नहीं सकै। सो यह कौन पापका फल है सो कहौ। तब गुरु कही। जिन जीवन कौं परभव विषै पराये हस्ती, घोटक, स्त्री बाहनादि उपभोग योग्य पदार्थ सुन्दर देख कैं आपकौं नहीं सुहाये होंय। तिनके भले पदार्थ देख छल-बल करि लूट लिये होंय। भय देय जोरावरी खोंस लेय आप भोगे होंय। पराये भले पदार्थ उपभोग योग्य देख जाकौं नहीं सुहाये होंय। पराये घरमें भली वस्तु रतन हस्ती आदि देख भय बताया होय कि जो ये भलो वस्तु राजमें छिना देहौं। कहै कि ये वस्तु राजा देखेगा। तौ खोंसेगा। इत्यादिक पाप तैं अच्छी वस्तु नहीं भोग सकै है ॥ ३६ ॥ बहुरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे गुरो, ये जीव तीव्र क्रोधका धारी किस पाप तैं होय ? तब गुरु कही। हे वत्स जा जीवनें परभवमें क्रोधी जीवन कूं क्रोध करते देखि, भले जानें होंय। तथा पर जीवन तैं युद्ध करवेका जाका स्वभाव, परभवमें बहुत रह्या होय। तथा पर कूं युद्ध करते देखि, सुख मान्या होय। तथा परभवमें आप सिंह, सुअर, श्वान, सर्प, भीलादिकी पर्याय धारि, पर जीव अनेक पीड़े होंय। तथा समता भावके धारी धर्मात्मा तिनकौं देखि, तिनके समभावनाकी निंदा करी होय। शान्त परणाम जीवनकी हाँसि करी होय। इत्यादिक पापन तैं महा क्रोधी होय ॥ ३७ ॥ बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे गुरो, यह जीव आप तौ मान चाहै, अरु मान नहीं रहै। सो ये किस पापका फल है, सो कहौ। तब गुरु कही। हे भव्यात्मा, जिन जीवन नैं पर जीवनका मान नहीं राखा होय। तथा अपने तन, धन, यौवन, राज, हुकुम, बल इत्यादिकके गर्व करि, अन्य जीवनका अनादर किया होय। तथा आप कौं भला मनुष्य जानि और जीवन नैं शीश नमाये, सो तिनकौं शीश नमाते देखि, अपने मान-भाव तैं परकौं तुच्छ जानि, पीछा शीश नहीं नमाया होय। तथा गुरुजन की आज्ञा तैं प्रतिकूल होय स्वच्छंद वर्त्त, बड़ेनकी आज्ञा खण्डी होय। तथा दीन जीवन कों जोरावरी भय देय, अपने पाँयन नमाये होंय। तिनके मान खण्ड किये होंय। तथा कहीं किसीका मान खंड भया सुनि, आप सुख पाया होय। इत्यादिक क्रूर भावन तैं अपमानी होय, मान चाहै अरु ना रहै ॥ ३८ ॥ बहुरि शिष्य ने प्रश्न किया। भो दयासागर !

यह जीव अपना मान नहीं कराया चाहै, अरु बिना चाहै ही और जीव आय-आय मस्तक नमावैं, आज्ञा मानैं सेवा करैं। सो ऐसी महिमा कौन पुण्य तैं होय, सो कहो। तब गुरु कही। हे भव्य, सुनि। जिन जीवन नैं परभव विषैं, महा भक्ति करि शुभ भावन तैं देवधर्म-गुरुकी सेवा-पूजा, विनय सहित मस्तक नमाय करी होय। ताके फल तैं ताकी सेवा देव करैं, ऐसा इन्द्र होय। तथा मनुष्यनका इन्द्र चक्री होय, तथा अर्ध चक्री होय तथा अनेक राजान करि बन्दनीक महामण्डलेश्वर मण्डलेश्वर राजा होय। इत्यादिक पदके धारी पृथ्वीपति होंय। तिनकौं बड़े-बड़े महंत राजा स्वयमेव ही भक्ति सहित शीश नमावैं हैं। तथा जिन जीवन नैं परभवमें गुरु-जन जो माता-पिता तिनकी सेवा करवे कौं बारम्बार शीश नमाय विनय तैं चाकरी करी होय। ताके पुण्य तैं सर्व कुटुम्बके आज्ञाकारी रहैं सर्वमें आदर पावै। तथा जिसने परभवमें अन्य जन, अपनी वय तैं बड़े पुरुष तिनका विनय करि मान राख साता उपजाई होय, आदर किया होय। सो जीव बड़े-बड़े वयके धारी पुरुषनके बंदवे-सराहवे योग्य हैं। आप तैं बड़ी-बड़ी उमर करि सहित जीव आय-आय शीश नमावैं, मान राखैं, ऐसा होय। तथा जो विवेकी, संसार रचनाका जाननहारा, धर्म शास्त्रका पाया है रहस्य जानैं, यथायोग्य विधि वेत्ता, सो जिसने बल, कुल, धन, बुद्धि, वय इत्यादिक करि जे छोटे, तिन सबका यथायोग्य विनय करि सत्कार करि सा[illegible] उपजाई होय। तिन सबका मान राखा होय। सो जीव जगतमें प्रशंसा पाय, सर्व करि पूज्य होय। ताकौं जगत-जीव स्वयमेव ही आय-आय शीश नमावैं, याका मान राखैं, ऐसा पदधारी होय। तथा जानैं कोऊ ही जीवका मान खण्डन नहीं किया होय। पर जीवन कूं अनेक आदर करि सुखी किये होंय। इत्यादिक शुभ भावनके फल तैं ऐसा पद पावै, जो आप तौ अपना मान नहीं चाहै, अरु अन्य जीव अपनी इच्छा तैं यातैं स्नेह करि आय-आय शीश नमाय, आदर करैं। ऐसा जानना ॥ ३६ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुनाथ जी! यह जीव दगाबाज-मायावी कौन पाप तैं होय, सो कहो। तब गुरु कही। हे वत्स, दगाबाजके अनेक भेद हैं। सो जिस जीव नैं परभवमें पराये भले तप कौं देख, दोख लगाय, ताकी निंदा करी होय। तौ वह पापके फल तैं भवान्तरमें जब कबहूं मनुष्य होय तप धारण करै, तौ मानके अर्थ करै। अंतरंगमें धर्म-

चाह नहीं रहै। लोगनमें पुजावे कौं, दगावाजी भाव करि तपस्वी होय। ताके तपमें दगा होय। प्रच्छन्न भोजन लेय, अरु औरन कौं तप-अनशन वतावै। इत्यादिक तप पावै, तौ दगा सहित तपस्वी होय। और जिन जीवन ने पराये भले दानमें दोष लगाय, दगा करि निंदा करी होय। सो जीव इस पाप तैं भवान्तरमें जव कबहूं मनुष्य होय दान देय, तौ दगा सहित दानका देनेहारा होय। आप दान देय, सो लोगनकौं तौ वहुत द्रव्य बतावै, अरु आप थोड़ा ही धन दान देय। लोक जानैं, याका दान दगावाजी लिये हैं। सो निंदा पावै। वस्त्र देय, तौ जीर्ण तौ देय, कहै वड़े-वड़े मोलके नूतन वस्त्र दिये। इत्यादिक पाप भावन तैं, दानमें दगा करनेहारा होय। और जिन जीवन नैं परभवमें पराये भले धर्म, पूजा, सामायिक, ध्यान, अध्ययनादि अनेक धर्म अङ्ग हैं तिनकूं देख, शुद्ध धर्म अङ्गन कौं दोष लगाया होय, ताकौ पाप फल तैं भवान्तरमें कवहूं मनुष्य उपजें तौ ऐसे होंय, कि धर्मका सेवन करैं तौ भाव रहित करैं। प्रभुकी पूजा करैं, तौ भाव रहित करैं। अल्प धन लगावैं, लोगन कौं कहैं हमने वड़ा धन लगाया है। और घरमें धन होतैं भी, धर्म कार्यमें धनका काम पड़ै तौ अपनी दगावाजी-चतुराई तैं, अपना निरधनपना वताय, घरका दुख वतावैं। धर्ममें धन नहीं खरचैं। ता पाप-फल तैं, धन रहित, धर्म विषैं दगावाज होंय। और जाने परभवमें पराये ध्यान कौं दोष लगाय, हाँसि करी होय। सो ताके पाप तैं भवान्तरमें दोष सहित, ध्यानका धारी होय। वगुलाकी नांईं कुध्यानी होय। धर्म-अंग सेवन करै, सो दगा सहित करै। तथा परभवमें दगा सहित धर्मके सेवनेहारे तिनके पाखंड देख, तिनकी प्रशंसा करी होय। इत्यादिक पाप भावन तैं जीव धर्म-दगावाजी करनेहारा होय और जिन जीवन ने परभवमें अन्य जीवन कौं कुटुम्ब तैं दगावाजी करते देख, सुख पाया होय। ते जीव भवान्तरमें कुटुम्ब तैं, दगावाजी करनेहारे उपजें। और जिननैं परभवमें दगावाजी सहित आजीविका पूरी करते देख, तिनकी मायाकी प्रशंसा करी होय, सुख पाया होय। सो जीव भावान्तरमें अपनी आजीविका दगावाजी तैं पूरी करैं, ऐसे होय। और दगावाजीके अनेक भेद हैं। सो परभवमें जैसा दगा, भला लागा होय। तैसा ही दगावाज उपजै है। इत्यादिक भले धर्म कार्यन कौं जैसी दगावाजीके कार्य जानें होंय। तैसी ही जातिका धर्म-दगा-

वाज उपजै है। तथा जैसे कर्म कार्यन कौं दोष दिये होंय, तिस जातिका कर्म कार्यनमें दगावाज उपजै है ॥ ४० ॥ बहुरि फेरि शिष्य प्रश्न पूछी। हे गुरो, यह जीव चोर कौन पाप तैं होय ? तब गुरु कही। परभवमें चोरनको भले जानें होंय। तथा चोरन तैं व्यापार करि, तिनका बड़ा नफा खाय, चोरन तैं हित किया होय। तथा चोरनका सहकारी होय, पराये धन हराये होंय। अपने मनमें पराये धन चुरावेकी अभिलाषा रही होय। इत्यादिक पाप भावन तैं जीव, चोर उपजै है ॥ ४१ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह हिंसाका करनहारा जोव, कौन कर्म तैं होय ? तब गुरु कही। जिननें परभवमें हिंसा भली जानी होय। तथा हिंसक जीवन कूं हिंसा करते देख, तिनकी अनुमोदना करी होय। तथा परभवमें हिंसा करवेकी अनेक कलाचतुराई सीखी होय। तथा परभवमैं आपने अनेक हिंसाके उपकरण बनाये होंय। तथा तीर, तुपक, जाली, फन्दा, चेप, गुलेल सेल्ह, बर्छी आदि अनेक शस्त्र राखि, आप सुख पाया होय। तथा शस्त्रनके उज्वल करनेकी, तीक्ष्ण करवेकी चतुराई परभवमें करी होय। तथा परभवमैं शस्त्र बेंचे होंय, बनाये होंय। इत्यादिक पाप तैं परभवमें शस्त्र तैं मरै तथा आप हिंसक होय ॥ ४२ ॥ बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे जगत गुरो, यह जीव क्रिया रहित अनाचारी किस पापतैं होय जाकौं खान—पानकी सुधि नाहीं, बिकल भाव सहित सदीव रहै। सो कौन पापका फल है ? तब गुरु कही। जिनने परभव मैं शुभ आचारी जीवनकी निंदा करी होय। तथा भला आचार देख जाकौं नहीं सुहाया होय। तथा आचार करवे में प्रमादी रह्या होय। तथा परभवमें पराई जूंठी खाय, सुख मान्या होय। तथा आगे परभव, पशु पर्यायमें—श्वानादि की पर्यायमें अशुभ भक्षण करे होंय। तथा सिंहकी पर्यायमें तथा और पशूनकी पर्यायमें जहां खाद्य—अखाद्यका भेद नाहीं जान्या, तहां विचार रहित वरत्या होय। तथा औरन कों अभक्ष्य वस्तु खावते देख, आप सुखी भया होय। तथा अनाचारी जीवनमें विशेष रह्या होय। तथा अनाचारी जीवनकी प्रशंसा करी होय। तथा और का अनाचार देख, आपकौं अनाचार करवे की अभिलाषा रही होय। इत्यादिक पापन तैं पशु होय तो श्वान, वायस, गर्दभ आदि अशुभ भक्षककी पर्याय धरै। तथा मनुष्य होय तो भीलादि नीच कुली होय। कदाचित् ऊंच कुली होय, तौ शूद्र समान अनाचारी

होय। ४३। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव शुभ आचारी कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही। जिन कूं परभव में अनाचार—प्रक्रिया देख कैं ग्लानि उपजी होय। तथा भला आचार सहित, दयामई प्रवृत्ति देख, हर्ष मान्या होय। तथा परभव में भले सुआचारी क्रियावंत पुरुषन की संगति रही तथा भली लागी होय। तथा अभक्ष भक्षण तैं अरुचि भाव रहे होंय। और जिनकूं कुशब्द भले नहीं लागे होंय। और सप्त व्यसनादि अनाचार देख, तिनकूं कुफलदायक जानि, तजे होंय। और पराये दान, पूजा, शील, संयम, तप, व्रत, दयामई आचार देख, तिनकी अनुमोदना करी होय। तथा परभव में आपकूं शुभाचार भले लागे होंय। तथा भले आचार करवे की आप कूं इच्छा भई होय। इत्यादिक शुभ परणामन तैं शुभाचारी होय। ४४। बहुरि शिष्य पूछो। हे गुरो, संसार में भाई समान वल्लभ नाहीं। सो ऐसे भाई—भाई में परस्पर द्वेष कौन पापतैं होय! तब गुरु कही। भो भव्य! सुनि। जिनने परभव विषैं एक माताके गर्भमें निकसे दोऊ भाईन का युगल, तथा हस्ती, घोटक, भैंसा, श्वान, मीढ़े, तीतुरि, लाल, मुनैयां, मुर्गा, मोर, तथा मनुष्य इत्यादिक दुपद, चौपद, भूचर, नभचर, पशु—मनुष्यन के युगल तिनकौं कौतुकके हेतु तथा द्वेष भाव करि तिनकूं परस्पर लड़ाये होंय। तथा कोई दो भाईयों को परस्पर लड़ते देख, सुख मान्या होय तथा कोई दोय भाईनमें स्नेह देख, नहीं सुहाया होय। तथा अपनी चतुराई करि, बीचमें माया—दगाबाजी करि, दोय भाईन कौं परस्पर लड़ाय दिये होंय। तथा कोऊ कौं खोटी सलाह देय, परस्पर दोय भाईन में द्वेष पाड़ि दिया होय। तथा कोई को, भायन में दोष करावे की वांच्छा सहित पर्याय छूटी होय। इत्यादिक पाप भावन तैं भाई—भाई, शत्रु समानि होंय। ४५। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे गुरु, भाई—भाई में परस्पर स्नेह कौन पुण्य तैं होय। तब गुरु कही। जिसने परभव में और के दोय भाईन में स्नेह देख, सुख मान्या होय। तथा दोयन कौं लड़ते देख, आपने सज्जनता करि समझाय, दोयन की राड़ि (लड़ाई) मिटाय, स्नेह करा दिया होय। इत्यादिक भले भाव तैं, भाईन मैं परस्पर स्नेह पावै। ४६। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे ज्ञानवान, माता—पुत्र में द्वेष कौन पाप तैं होय। तब गुरु कही। जो परभवमें परके

माता-पुत्र तिनमें स्नेह नहीं देख सक्या होय। परके माता—पुत्रन कौं लड़ाय सुख मान्या होय। माता—पुत्र लड़ते देख, खुशी भया होय। इत्यादिक द्वेष भावन तैं माता—पुत्र मैं द्वेष होय। ४७। बहुरि शिष्य पूछी। हे करुणानिधान! माता—पितान कैं पुत्र का वियोग किस पाप तैं होय। तब गुरु कही। जिसने परभव में पशु-पखेरून के बच्चन कूं पकड़ि, माता-पिता तैं उनका वियोग किया होय। तथा जो पराया पुत्र चोरी तैं तथा जोरी तैं पकड़ ले गया होय। तथा काहूका पुत्र भला देख, ताकौं शस्त्र तैं तथा विषादि तैं मार, वियोग कस्या होय। तथा किसी कै पुत्रका वियोग देख, आप खुशी भया होय। तथा किसी का पुत्र—वियोग, वांछ्या होय। इत्यादिक पापन तैं माता—पितान कैं, पुत्र वियोग होय। ४८। बहुरि शिष्य कही। हे दायानिधान! पुत्रका वियोग न होय सो कौन पुण्य तैं? सो कहो। तब गुरु कही। जानैं परभवमें पर के पुत्र का वियोग सुनिकैं दयाभाव करि, वाकूं पुत्रका मिलाप वांछ्या होय। तथा काहू का गया पुत्र बहुत दिन विषैं मिलाप भया सुनि—देख, आप सुखी भया होय। तथा किसी का पुत्र कोई दुष्ट बन्दी में ले गया सुनि, ताकौं धन देय तथा जोरी तैं छुड़ाय, जाका पुत्र वाकौं दिवाया होय। तथा कोई पशू का पुत्र बिछुड़्या देख, ताकी दया करि, तलाश करि लाय, ताके पुत्र का संयोग कराय दिया होय। तथा कोईकौं हो, पुत्रका वियोग नहीं वांछ्या होय। इत्यादिक पुण्य-भावन तैं पुत्र न बिछुड़ेका लाभ होय ॥ ४९ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे जगत गुरो! पिता पुत्रके निमित्त अनेक कष्ट पाय पुत्रकी उत्पत्तिकौं चाहै। सो ऐसे पिता-पुत्रमें परस्पर द्वेष कौन पाप तैं होय। तब गुरु कही। जिनने परभवमें पराये पिता-पुत्रमें द्वेष कराया होय। तथा तिनकौं लड़ते देख आप सुखी भया होय। तथा औरके पिता-पुत्रमें स्नेह देख आपकूं नहीं सुहाया होय। तथा औरके पुत्र-पितामें द्वेष कराय दिया होय। तथा कोईके पुत्र-पितामें द्वेष चाह्या होय इत्यादिक अशुभ भावनतैं पिता-पुत्रमें द्वेष होय ॥ ५० ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! पिता-पुत्रमें स्नेह कौन पुण्य तैं होय तब गुरु कही। जिननैं परभवमें औरके पिता-पुत्रमें स्नेह देख सुख पाया होय। पराये पुत्र-पिता में द्वेष भाव देख अपनी बुद्धिके बल करि दोउनकौं समझाय, स्नेह कराय दिया होय। औरनके पिता-पुत्रनमें

स्नेह चाह्या होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं पिता पुत्रमें स्नेह होय ॥ ५१ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो गर्भमें पुण्याधिकारीका अवतार भया कैसे जानिये। तब गुरु कही। जाके गर्भमें आवते माता-पिता प्रसन्न चित्त रहैं। कुटुम्बमें मङ्गल होय। माताका चित्त भगवान्‌की पूजा रूप होय। ताकैं दानकी अभिलाषा होय। दिन-दिन कुटुम्ब तं जाकी प्रीति वधै। माता-पिताका चित्त उदार होय। माता-पिता कुटुम्ब जनके तथा परजनके सत्कार रूप प्रवर्तैं। माताके चित्तमें उज्ज्वल भली वस्तु आचार सहित उपजी ताके खावनेकी अभिलाषा होय। तथा माता पिताकूं दीरघ धनका लाभ होय। माता-पिता कोई दीन-दुखी दरिद्री कौं देखैं तौ तिनका चित्त दया रूप होय। इत्यादिक शुभ लक्षण सहित शुभ जीवका अवतार जानना ॥ ५२ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ पापात्माका अवतार कैसे जान्या जाय। तब गुरु कही। जाके गर्भमें आवते माता-पिताकौं दुख-संकट होंय। अभक्ष्य वस्तु खावने पर मन चलै। माता-पिताका चित्त क्रूर होय। चित्त उद्वेग रहै। कुटुम्बमें क्लेश वधै। माता-पिताके मनमें सूमता प्रगटै। क्रोध मान माया लोभादि कषायनकी तीव्रता वधै। माता-पिताका चित्त, दुराचार मई होय। घर-धन नाश होय तथा माता-पिताकी मृत्यु होय। इत्यादिक चिन्ह गर्भमें आवते होंय तब पापाचारी जीवका अवतार जानना॥ ५३ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो अनेक भोग योग्य वस्तु, अन्न, मेवादि पट्‌रसका भोगी, सुगंधादि भली वस्तुका भोगनेहारा जीव किस पुण्य तैं होय। तब गुरु कही। जिननैं पर-भवमें दीन-दुखी जीवनकूं देख दयाभाव करि दान दिये होंय। तथा परभवमें मुनि-श्रावककौं भक्ति सहित दान दिये होंय औरनकूं दान देते भले जाने होंय। और जीवनकौं भला अन्न मेवा मिठाई खावते देख, अनेक सुगंधादि सहित सुख देख, आपने हर्ष पाया होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं वांछित भोग योग्य, पट्‌ रस मेवादि भली वस्तुका भोगी होय ॥ ५४ ॥ बहुरि शिष्य प्रश्न पूछी। हे गुरो यह जीव अनेक उपभोग योग्य वस्तु विस्तर आभूषण, मन्दिर हस्ती घोटक रथादि वाहन पालकी आदि बहुत पदार्थका भोगी किस पुण्य तें होय। तब गुरु कही। जानैं परभवमें मुनिनकौं वस्तिकाका दान दिया होय। तथा श्रावकनकौं तथा आर्यिका कौं वस्त्र दान दिये होंय। तथा जिनदेवकूं छत्र चमर सिंहासन आदि उपकरण करायके पुण्य

पाया होय। तथा पर जीवनकूं वस्त्र भूषण पहरे देख आप हर्ष मान्या होय। तथा जिननैं सर्व जीवनकूं सर्व प्रकार सुख वांछ्या होय। इत्यादिक शुभ भाव सहित होय तौ अनेक उपभोगनका भोगनहारा होय ॥५५॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ, ये जीव बावने शरीरका धारी कौन कर्म तैं उपजे है? तब गुरु कही जानेपर भव मैं परकूं छोटे शरीरका धारक देख, तिनकी हांसि निंदा करी होय तथा आप बड़े तनका धारक होय, अभिमान किया होय। परका बावना शरीर देखि आप हर्ष पाय भला जान्या होय। अपने बड़े तनतैं अन्य छोटे शरीर वालोंकौं पीड़ा पहुंचाई होय। इत्यादिक अशुभ भावन तैं छोटे शरीरका धारी बावना होय है ॥ ५६ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे मुनिनाथ इस जीवकूं कूबड़ा शरीर किस पाप भावन तैं होय। तब गुरु कही। हे दयालु चित्तके धारनहारे वत्स! तूं चित्त देय सुनि। जिन जीवन नैं परभवमें पर जीवनकौं लाठी, लात मूकी मारि ताके हाड़ तोड़ तिनकूं दुखी करि आप सुख पाया होय। तथा पराये शरीरकूं गांठ-गठीला रोग-सहित देख आप सुखी भया होय। तथा औरनका शरीर आंका—बांका कुरूप देख हांसि करी होय। अपने भले तनका भारी गर्व कर औरनकों बहकाए होंय। इत्यादिक अशुभ भावन तैं कूबड़ा शरीर होय है ॥ ५७॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, ये जीव देव किस पुण्य तैं होय। तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभव में सम्यक् धारा होय। तथा पंच परमेष्ठीकी पूजा वंदना स्तुति करी होय। तथा तप, शील, संयम पाले होय। तथा दीन जीवनकी रक्षा रूप भाव करि करुणा भाव धारेहोंय। तथा मुनि श्रावकादिक च्यारि संघका वैय्या-व्रत करया होय। तथा भले भाव सहित जिनवाणी सुनी होय इत्यादिक धर्मका सेवन करया होय। तथा औरनकों धर्म सेवते देख अनुमोदना करी होय। तथा नन्दीश्वर द्वीप कुण्डलगिरि रुचिकगिरि आदिक चैत्रनके जिन मन्दिर बन्दनाकी अभिलाषा राखी होय। इत्यादिक धर्म भावन तैं देव होय है ॥ ५८॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो मनुष्य किस भाव तैं होय। तब गुरु कही। जिननैं परभवमें सरल भाव राखे होंय। कोई जीवनतैं द्वेष—भाव नहीं किये होंय। मन्द कषाय धरै, धर्म भाव सहित आर्जव परिणामी रह्या होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं मनुष्य होय ॥ ५९ ॥ बहुरि शिष्य पूछी हे करुणानिधान यह जीव नरक किस पाप तैं

पावै ? तब गुरु कही । जिननैं परभवमें अनेक पर-जीव सताये होंय । दीरघ क्रोध धारया होय । जाका हृदय महा दगाबाजी तैं भरया होय । जानैं मद्य-मांसादि अभक्ष्य भक्षण करे होंय । धर्म भाव सहित, पाप सहित वरत्या होय । तथा धर्म तैं द्वेष भाव करि पाप कार्यनकी रचा करी होय । तथा पर जीवनके मारवे—बांधवेकी विशेष इच्छा रही होय । इत्यादिक भावन तैं नरकमें उपजै है ॥ ६० ॥ बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरुदेवजी ! यह जीव पशुमें किस पाप तैं उपजै । तब गुरु कही । जिननैं परभवमें पर स्तुतिकी आरति करी होय । कर्मके वश अनेक खान-पानकी आरति धन जोड़वेकी आरति शरीर पुष्ट करनेकी आरति करी होय । इत्यादिक भाव जानैं अशुभ राखै होंय । तथा अक्रिया सहित खान-पान करे होंय । तथा खाद्य-अखाद्य वस्तुका विचार नहीं करया होय । प्रमाद सहित धर्म भावना रहित वरत्या होय । इत्यादिक अज्ञानता सहित अनेक आर्त्त-ध्यान तैं तिर्यंच होय ॥ ६१ ॥ बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरुजी, यह जीव कुभोग भूमिका मनुष्य जाका मुख तौ अनेक पशूनके आकार अरु नीचले आंगोपांग सर्व मनुष्यनकेसे महा सुन्दर सुघड़ होंय, सो ऐसा शरीर कौन कर्मके उदय तैं पावै । तब गुरु कही । जा जीव नैं पूर्व भवमें मिथ्यादृष्टी मुनिकौं दान दिया होय तथा कुमुनीनकौं भक्ति करि दान दिया होय । तथा शुभ मुनिनकौं कपटाई सहित दान दिया होय । तथा मुनीश्वरों को दान देते चित्त लोभ रूप रह्या होय, तथा मानी चित्त रह्या होय तथा मानकी इच्छा रही होय । तथा मुनीश्वरकौं दोष—सहित भोजन दिया होय । तथा नवधा भक्तिमें अभिमान रख्या होय । तथा दाताके सात गुण * हैं, तिनमें कोई हीन होय । इत्यादिक भावन तैं कुभोग-भूमियां मनुष्य होय है ॥ ६२ ॥ बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरो सुभोग भूमि विषैं तीन पल्यकी आयु सहित, देव समान दश प्रकार कल्प बृक्षनके दिये सुख तिनका भोगता, किस पुण्यतैं होय सो कहौ । तब गुरु कही । जानैं परभव विषैं नवधा भक्ति सहित (१ प्रतिग्रह, २ उच्च स्थान, ३ अंघ्रि प्रक्षालन, ४ अर्चा, ५ आनति, ६ मन शुद्धि ७ बचन शुद्धि ८ काय शुद्धि ९

* भक्तिकं तौष्टिकं श्राद्धं सविज्ञानमलोलुपं । सात्विकं क्षमकं सन्तः दातारं सप्तधाविदुः ॥ १ भक्ति २ तुष्टि, ३ श्रद्धा, ४ ज्ञान ५ अलोलुप (अलोल्य) ६ सत्त्व ७ क्षमा ये सात दाताके गुण हैं ।

अन्न शुद्धि ये नवधा भक्ति हैं।) दान दिया होय। तथा और भव्यनकूं मुनि दान देते देख अनुमोदना करी होय। तथा मुनीश्वरोंकौं दान देवेकी अभिलाषा रही होय। तथा मुनिदान समय देवनके पंचाश्चर्य होते देख तथा मुनि कैं मुनिके दानकी महिमा-बड़ाई करी होय। तथा मुनि दान देनेहारे दाताकी स्तुति करी होय इत्यादि शुभ भावन तैं उत्कृष्ट भोग भूमियां होय है॥ ६३॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! कुक्षेत्रका वास किस पापकर्म तैं होय। तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभव विषैं पर जीवनकूं झूठा दोष लगाय सुक्षेत्रन तैं निकासि उद्यानमें राखा होय। तथा म्लेच्छनके भोग भले लागे होंय। तथा कोई पै कोप करि ताहि पकड़ निर्जन—भयावने स्थान में राखा होय। तथा कुक्षेत्र में वास करनेहारे, अनाचारी जीवन की प्रसंशा करी होय। तथा पशु पालक होय, उद्यान में रहके, हर्ष पाया होय। इत्यादिक कुचेष्टा तैं, कुक्षेत्र का वास पावै।६४। बहुरि शिष्य पूछी। हे ज्ञाननेत्रे, सुक्षेत्र का वासी जीव किस पुण्य तैं होय, सो कहो। तब गुरु कही। जाने परभव में कुक्षेत्रवासी जीवन की दया करि सुक्षेत्र में बसाये होंय। तथा दीन—दुखित जीवन कूं उद्यान में से ल्याय, सुख में राखे होंय, तिनकौं साता उपजाई होय। तथा आपने राज्य भोग छोड़, तप लेय, बनमें रहवे का उद्यम किया होय। तथा बनवासी मुनीश्वरों की धीरजता देखि, प्रसंशा करी होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं, सुक्षेत्र का वास पावै। ६५। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे नाथ, यह जीव अल्प आहार में संतोषी किस पुण्य तैं होय। तब गुरु कही। जिननैं परभव में मुनीश्वरों कों अल्प दान एक—दोय ग्रास देय, अपना भव सफल मान्या होय। और दीन-भूखे जीवन कूं वांच्छित भोजन देय, तृप्त किये होंय। तथा परभव में अनेक वांच्छित भोग थे तिनकौं छांड़ि, उदास होय, अल्प भोजन राखा होय। अनेक सुभग रसका त्याग किया होय। इत्यादिक समता भावके फल तैं अल्प भोजन में तृप्त होय है।६६। बहुरि शिष्य पूछी। हे पूज्य, ये जीव बहुत भोजन करवे की इच्छा राखै, अरु मिलै नहीं। सो यह कौन कर्म का उदय है, सो कहो। तब गुरु कही। जिननैं परभव में अन्य जीवन कौं तरसाय, भोजन दिया होय। तथा परभव में मनुष्य, श्वान मार्जारादि की पर्याय में पराया भोजन, ले भाज्या होय। तथा धर्मात्मा जीवन

का अल्प भोजन देख, हाँसि करी होय। तथा पशु—हस्ती, घोटक, बैल, महिष आदि अनेक जीवन का बहुत भोजन देख, सुख मान्या होय। तथा परभव में रात्रि—दिन मुख तैं भोजन करता भी, तृप्त नहीं भया होय। इत्यादिक अशुभभावन तैं बहुत भोजन करता, तृप्त नहीं होय है। ६७। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु देवजी ! यह जीव चतुराई-कलारहित मूर्ख, हृदय शुन्य, लौककि ज्ञान रहति, किस पाप तैं उपजै ! तब गुरु कही। जाने परभव में पराई कला-चतुराई देख द्वेष—भाव तैं, दोष लगाय हांसि करी होय। अरु अपने दोष छिपावे कूं अनेक माया-चतुराई करि, अपना दोष छिपाया होय। भांड-कला देख, हरष पाया होय। पराया गावना, खावना, हाव-भाव, नृत्य, वादित्रादि कला देख, तातैं द्वेष भाव किया होय। पराई चतुराई प्यारी नहीं लागी होय। तथा परभवमें याके रिझावे कूं, काहू ने अनेक कला-चतुराई करि राजी किया, ताकी रीझ (इनाम) पचाय गया होय। इत्यादिक पापन तैं मूढ़, लौकिक ज्ञान-चतुराई रहित होय है ॥ ६८ ॥ बहुरि शिष्य पूंछी। हे ज्ञानमूर्ति, यह जीव लौकिक कला-चतुराई सहित कौन पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभवमें औरनकी गान, नृत्य, वादित्र, चित्रकला, शिल्प-कलादि अनेक चतुराई देख, हरख पाय, तिन कूं उदार चित्त सहित अनेक रीझ दई होय। पराई चतुराई, विवेक,-भला ज्ञान देख, भला लाग्या होय। तिनकी प्रशंसा करी होय, कहीकी याकी ज्ञान-कला, शास्त्र प्रमाण है। गुणी जन-का आदर किया होय। इत्यादिक अपनी सज्जनता प्रगट करि, औरनके सुखी करवेके निमित्त भला ज्ञान खर्च किया होय। सो जीव लौकिक कला-चतुराईमें प्रवीण होय ॥ ६९ ॥ बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे गुरो ! यह जीव वहुभारका बहनेहारा मनुष्य-पशु, किस पाप तैं होय है ? तब गुरु कही, जिन नैं पर-जीवन पै बहुत भार लादा होय। तथा बेगारि पकड़, तापै बराजोरि भार धर्‍या होय। तथा पशून पै बहुत भार देय चलाये होंय। तथा अल्प भारका नाम लेय, बहुत भार बांध-धरा होय। तथा अपने लोभ कौं, पर जीवन पै भार लादि कुटुम्बकी रक्षा करी होय। तथा पर पै दीरघ भार लदा देख हर्ष पाया होय। इत्यादिक भावनके अशुभ फल तैं बहुत भारका वहनेहारा होय है। तिर्यंचमें वृषभ महिष ऊंट गर्धवादि बहुत भार वहनेहारा होय।

मनुष्यनमें बहुत भार बहनेहारा हिम्माल व बेगारी होय ॥ ७० ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ यह जीव रंक दरिद्री किस पाप तैं होय ? तब गुरु कही। जिननैं परभवमें अपनी अन्याय बुद्धि तैं जोरी करि अनेक जीवन कौं दुखी करि धन खोंसि निर्धन-दरिद्री करे होंय। तथा पर जीवन कों लुटे-खुसे देख हर्ष मान्या होय। तथा कोई रंकका जोड़्या अल्प धन सो परभवमें चोरया होय। तथा कोई दीन-दुखी जोवन कूं दुर्वचन कहि पीड़े होंय। तथा दीन-दरिद्री जीवन कौं देख तिनकौं झूठा चोरीका दोष लगाया होय। तथा दीन-दरिद्री जीव देख तिनकी हाँसि करी होय। इत्यादिक परभवमें पाप भाव करे होंय जिन तैं ये जीव रंक-दरिद्री होय है ॥ ७१ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुजी ! यह जीव कुकाव्य-कलाका धारी चतुर कौन कर्म तैं होय ? तब गुरु कही। जिन जीवन कूं कुकथा भली लागी होय। तथा कहानी-किस्से भले जानि-सुनि हरष पाया होय। तथा लौकिक चतुराईके शास्त्र धर्म जानि दान दिये होंय। तथा उदर पूरणके कारण ऐसे ज्योतिष वैद्यक सुभाषित-सभा चातुरीके शास्त्र तथा शिल्प कलादिक चतुराईके शास्त्र धर्म जानि दान दिये होंय तथा धर्मके अर्थ औरन कौं लौकिक विद्या कला-चतुराई सिखाई होय। तथा अपवित्र शरीर तैं धर्म शास्त्रनका अभ्यास करया होय। तथा अनेक आरंभ अन्याय-पाप करि धन उपाय वह धन शास्त्रनकी लिखाई निमित्त दिया होय। तथा आप उत्तम धर्म सेवता कुकवीनके ज्ञानकी प्रशंसा करी होय। व आप कौं सीखवेकी वांच्छा रही होय। इत्यादिक भावन तैं जीव भवान्तरमें कुकवि होय है ॥ ७२ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ सुकवि धर्म शास्त्रनके छंद-काव्य-कलाका जोड़नेहारा सुबुद्धिका धारी किस पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही। जिननै परभवमें गणधरादि कविनाथ गाथा-छंद-काव्यके करता आचार्य तिनको काव्य-कला शास्त्रनमें देख-सुनि तिनका रहस्य जानि कविनाथ जो गणधरादि तिनको महिमा करी होय। तथा सुकाव्य धर्म शास्त्रनके करता तिनकौं देख अंतरंगमें प्रसन्न होय, तिन तैं वात्सल्य भाव जनाये, होंय। तथा धर्मकी जोड़-कला करते सुकविनको सेवा-सहाय करि, साता उपजाई होय। तथा सुकविनके किये छंद, गाथा, श्लोक तिनकौं वांचि, धर्मका रहस्य जानि, हरषायमान होय, कविनकी प्रशंसा करी होय। तथा धर्म शास्त्रनकी जोढ़-कला

करते कवीश्वरकी, कछू सहाय करी होय। इत्यादिक शुभ भावना तैं विशेष ज्ञानका धारी सुकवि होय ॥ ७३ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव दीरघ आयुका धारी, जन्मान्तर पर्यंत सुखी कौन पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही। जिननैं परभवमें पर जीवन कूं मरते बचाय, फिर तिनकौं अनेक भोजन कराय, वस्त्रादि देय, मिष्ट वचन भाषण करि साता उपजाई होय। तथा अनेक जीवनकों बंदी तैं छुड़ाय, सुखी करे होंय। पर जीवन कूं सुखी करवेकी सदीव अभिलाषा रही होय। औरन कों अल्पायु मरते देख, संसार तैं उदास होय, दया-भाव सहित जाका चित्त भया होय। दीन जीवनकी रक्षा, विशेष चाही होय। इत्यादिक शुभ भावना तैं, दीरघ आयुधारी, जीवन पर्यंत सुखी रहै ॥ ७४ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव दीरघ आयु पाय, दुखी किस पाप तैं रहै है ? तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभवमें पर जीवनका घात किया होय। अनेक जलगाहन, तरु छेदन, भूमि खोदन, अग्नि जालन इत्यादिक क्रियाके आरंभ तैं अनेक जीव त्रस-स्थावरनका घात किया होय। अनेक छोटी कायके धारी दीन-जीवनकौं सताये होंय। और कौं दुखी या रोगी रोवते देख खुसी भये होंय। पर कौं सुखी देख, ताका बुरा करना वांच्छा होय, इत्यादिक पाप-भावना तैं दीरघ आयु पाय दुखी होय ॥ ७५ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुजी, ये जीव सदीव शोक रूप कौन पाप तैं होंय ? तब गुरु कही। जे जीव परभवमें पर जीवन कूं शोक सहित देख, सुखी भया होय। तथा पर कौं द्वेष भाव तैं भय देय, शोक उपजाया होय। तथा असत्य वचन तैं हाँसि करि कही, फलानी जगह तेरा धन राहमें लूट्या गया। ऐसा कहि शोक उपजाया होय। तथा परके शोकमें ताकी हाँसि करी होय। तथा पराये मंगलाचारमें उपद्रव कर्या होय। इत्यादिक पापन तैं शोकवन्त रहै ॥ ७६ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव सदीव शोक रहित सुखी, किस पुण्य तैं होय है ? तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभवमें तीर्थंकरके पंचकल्याणक उत्सव देख, हर्ष—अनुमोदना करी होय तथा जिन पूजा, जिन प्रतिष्ठा, सिद्ध क्षेत्र यात्रा कूं संघ जावता इत्यादिक उत्सव देख, बहुत हर्ष किया होय। धर्म उत्सव करनेहारे जीवकी बड़ी प्रशंसा करी होय। अनेक जीवनके शोक जानैं धन तैं, मन तैं, तन तैं अनेक उपाय करि मिटाय, सुखी करै होंय। तथा और जीवन

कौं शोकवन्त देख. करुणा भाव करि तिनकौं सुख वांछ्या होय। पर कौं सुखी-मङ्गलाचार रूप देख, सुख पाया होय। इत्यादिक शुभ भावना तैं शोक रहित, सदैव सुख रूप होय॥ ७७॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुदेव, यह जीव अनेक जीवन करि पूज्य, बहुतन का ईश्वर, कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कहो। जाने परभवमें अनेक धर्मात्मा जीवनकी, वैय्यावृत करि, साता उपजाई होय। तथा देव-गुरु-धर्म कूं उत्कृष्ट जानि पूजे होंय। तथा औरन कौं धर्मात्मा जीवनकी सेवा करते देख, तिनकी अनुमोदना करि, तिनकौं भले जाने होंय। तथा परभवमें जाने अनेक जीव असहाई-दीनकी दया करि अन्न देय, धन देय तथा वस्त्रादि तैं सुखी किये होंय। तथा जाकैं च्यारि प्रकार संघकी सेवा करवेकी अभिलाषा रही होय। इत्यादिक पुण्य भावन तैं बहुत जीवनका नाथ होय॥ ७८॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ, यह जीव कौन पाप तैं बहुत जीवनका दास होय। तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभवमें अन्य जीवन कौं भय देय, तिन तैं बेगारि कराई होय तथा सेवक राखि, चाकरी कराय, कछू दिया नाहीं होय। तथा सेवकन कौं रुजगार हेतु भेले राखे होंय। तथा पर जीवन कौं अपराधी देख, सुख पाया होय। इत्यादिक पाप भावन तैं बहुतका दास होय॥ ७९॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह नपुन्सकलिङ्गी काहे तैं होय? तब गुरु कही। जाने परभवमें पुरुष कौं नारी का आकार बनाय, सुख पाया होय तथा कोई नर, स्त्रीका रूप बनाय लोकन कौं मोह उपजावै था सो ता रूप देख, आप हरष मान्या होय। तथा नपुन्सक जीवन कूं नाचता-गावता कौतुक-हाँसि करते देख, तिनकी चेष्टा आपकौं प्यारी लागी होय। तथा अन्य जीवन कूं नपुन्सक, जोरी तैं कर डाख्या होय। तथा नपुन्सकका संग भला लागा होय। तथा नपुन्सक मनुष्य कैसी चेष्टा करवेकी, आपके अभिलाषा भई होय। तथा परस्त्री व पर पुरुषनके बीचि आप दूत होय, तिनका शील खंडन कराया होय। तथा एकेन्द्रिय, बेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौइन्द्रिय ये नपुन्सक वेदी हैं तिनकी हिंसा करते करुणा नहीं भई निरदई रह्या होय। इत्यादिक पाप चेष्टा तैं जीव नपुन्सक होय। तथा स्थावर, विकलत्रय होय॥ ८०॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे ज्ञान सरोवर गुरो? यह जीवकी स्त्री पर्याय, कौन कर्म तैं होय? तब गुरु कही। जिसने परभवमें स्त्रीनका संग भला जानि,

तिनमैं स्त्री कैसी चेष्टा करि सुख माना होय। तथा अपनी चेष्टा औरन कौं स्त्री कीसी बताय, औरन कौं वशीभूत किये होंय। तथा स्त्रीनमें मोहित बहुत रह्या होय। तथा परभवमें आप पुरुष था, सो नारीका रूप बनाय, औरन कौं मोह उपजाया होय। इत्यादिक कुचेष्टा तैं स्त्री पर्याय होय ॥ ८१ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव एकेन्द्रिय स्थावर किस पाप तैं होय ? तब गुरु कही। जो परभवमें बीतराग देव-धर्म-गुरुकी निंदा करि, द्वेष भाव करि, सुखी भया होय। तथा देव-गुरु-धर्मकी व धर्मात्मा जीवनकी, कुसंगके दुर्बुद्धि जीवनका निमित्त पाय, निंदा करी होय। ते जीव साधारण वनस्पति व निगोदिया होंय। तथा जानैं परभवमें वृक्ष छेदे होंय। तथा अनेक वनस्पति खोदी, छेदी, छीली होंय। तथा बहुत भूमि खोदी होय। तथा जल डाल्या होय। तथा अग्नि प्रजाली-बुझाई जिससे पवनकायके जीव घाते होंय। इत्यादिक पंच स्थावरनकी दया रहित प्रवृत्या होय। तथा औरन कौं पंच स्थावर घात करते देख, अनुमोदना करी होय। इत्यादिक पाप तैं एकेन्द्रिय स्थावर काय होय ॥ ८२ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव विकलत्रयमें कौन पाप तैं होय ? तब गुरु कही। जे जीव विकलत्रय-आदि त्रस जीवनकी घात करते, निर्दय रूप रहे होंय। तथा तिली गेहूं आदि अन्नकी भण्डशाला (बंडा-खत्ती धरि) करि बहुत दिन राखि, अनेक त्रस जीवनका समूह उपजाय कैं, क्षय किया होय। तहां दया नहीं उपजी होय। तथा त्रस जीवन सहित अनेक मेवा, फल, फूल पकवानादि अनेक रसना इन्द्रियके वशीभूत होय, भक्षण किये होंय और दया नहीं उपजी होय। तथा नर पशूनका मूत्र इकट्ठा करि त्रस जीवनकी उत्पत्ति-क्षय होते, दया नहीं उपजी होय। इत्यादिक विकलत्रयकी दया रहित वर्ते होंय, सो जीव विकलत्रयमें होंय ॥ ८३ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। गुरुजी, यह जीव विकलांगी, अंगोपांग रहित कौन पाप तैं होय। तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभव विषैं पर-जीवनके हाथ, पांव, कान नाक, शीश अंगुली आदि अङ्ग-उपाङ्ग छेदन किये होंय। तथा कोईके अङ्ग-उपांग छेदते देख, हरष पाया होय। तथा दीन-पशूनके अङ्ग-उपांग शस्त्रन तैं छेदन किये होंय। तथा पाहन लाठी लात मूकी तैं पराधीन नर-पशुनके अङ्गोपांग तोड़ि डारे होंय। तथा अंगोपांग रहित जीव देख तिनकी हाँसि करि, हरष मान्या

होय। इत्यादिक पापन तैं बिकल अंगी अंगोपांग रहित होय है ॥ ८४ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो अष्ट अंग सहित सम्पूरण, कौन पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही। जिननैं परभव विषैं अन्य जीवनके अंग-उपांगकी रक्षा करी होय। तथा कोईके हाथ-पांवादिक अंग-उपांग कटते राखे होंय, दया भाव करि धन देय बचाये होंत। तथा औरनके अंग-उपांगमें दुख देख, आप दया करि औषधि देय, ताकौं साता करी होय। तथा अंगोपांग रहित काऊ कौं देख, अनुकम्पा करी होय। तथा औरनके अंगोपांग शुद्ध-पुष्ट देख, सुख मान्या होय। इत्यादिक पुण्य भावन तैं अष्ट अंग शुद्ध पावै ॥ ८५ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव नीच कुली किस पाप तैं होय। ? तब गुरु कही। जिन जीवनने परभवमें ऊंच कुली पुरुषोंकी निंदा करी होय। तथा अपने मुख तैं अपनी प्रशंसा करी होय। तथा पराये भले गुणनका आच्छादन किया होय। तथा अपने औगुण आच्छादन किये होंय। तथा पराये दोष प्रगट करे होंय। तथा नीच कुलीनके खान-पान विषैं रंजायमान होय, अनुमोदना करी होय। तथा अपने अभिमान करि औरनका अनादर किया होय। तथा नीच संगमें बहुत रह्या होय। इत्यादिक अशुभ भावन तैं नीच कुली होय ॥ ८६ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुदेव ऊंच कुली कौन पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही। जानैं सत्पुरुषनके गुणकी प्रशंसा करी होय। तथा अपने औगुण गुरुन पै प्रगट प्रकाशे होंय। तथा पराये औगुण देख आच्छादन करे होंय। तथा चारि प्रकारके संघ की सेवा करी होय। तथा दुराचार तैं डर्‍या होय। अनेक दीन-जीवन कूं अनेक भोजन-पान-वस्त्र देय, सुखी करि मिष्ट वचन तैं साता उपजाई होय। तथा अपने भावन तैं कोऊका भी अनादर नहीं कर्‍या होय। तथा आप दीन समानि आपकौं जानि, अभिमान रहित रह्या होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं ऊँच कुली होय ॥ ८७ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु, यह जीव नीच कुलमें उपजै। तिनकौं दीरघ धन, हुकुम, लोकमें मान पुरुषारथ होय सो कौन पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभवमें अनेक अज्ञान तप करे कबहूं अन्नका त्याग करि, साग-भाजी भोजन करो होय। तथा बनफल-पत्ताका भोजन कर्‍या होय। तथा सर्व त्याग, दूध लिया होय। मही पिया होय। घासि घोटके पिया होय। अग्निमें तन तपाया होय। ऊर्ध्व पांव-

अधो शीश, झूल्या होय। भूमि गड़्या। पर्वत पतन किया। जल पतन, इत्यादिक बाल तपस्वी होय, अनेक कष्ट, धर्मके निमित्त सहे होंय। तथा अज्ञान तपस्वीन कौं, भले धर्मात्मा जानि विनय सहित सरल भावन तैं तिनकी पूजा करी होय। धर्मके निमित्त याचकन कौं दान दिया होय। तथा लौकिक कार्यनमें धर्म जानि धर्म फल कौं धन खर्चा होय। तथा अपनी अज्ञानता त अन्य भोरे जीवन कूं धर्मी जान पूजे होंय। तथा आप ज्ञान रहित होय, मंद कषायी रह्या होय। इत्यादिक भावना सहित नीच कुल में उपजि, धनवान—हुकुमवान् होय। सो तिर्यंच गति का बंध किये पीछे ऐसे भाव होंय, तौ शुभ भावनाके फल तैं कोई राजा का हस्ती—घोटकादि पशू होय। ताके पीछे अनेक जीव पलैं। भले वस्त्र--अभूषण, भले भोजन का भोगनहारा आप सुखी होय। तथा पहिले मनुष्यायु का बंध किया होय, तौ नीच कुल में उपजै। सो हुकुम का धारी होय तथा पहिले देवायु का बंध किया होय तौ भवनत्रिक में अल्प ऋद्धिका धारी, हीन देव होय। इत्यादिक भावन तैं ऐसे होंय। ८८। बहुरि शिष्य पूछी। ये जीव ऊँच कुली होय दीन दशा धारै, धन रहित होय। सो किस पापका फल है? सो कहिये। तब गुरु कही। जिसनैं परभव में शुभ भावन तैं ऊँच गोत्र का बंध करि पीछे विपरीत कषाय रूप भाव भये, सो मान के वश होय, मोह के जोर तैं मदोन्मत्त होय, पर जीवनका मान खंड कर, हर्ष पाया होय। आप गुरु जनको आज्ञा रहित रह्या होय। तथा दीन जीवन पै द्वेष-भाव करि तिनकूं कुवचन करि पीड़ा उपजाई होय। परका धन छल-बल करि नाश कराय, सुख पाया होय। इत्यादिक पाप भावन तैं उँच कुली होय, परन्तु धन-धान्यादि रहित, दीन दशाका धारक होय। ८९। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुजी, यह जीव बहुत देशान्तर भ्रम आजीविका पूर्ण करै। ऐसा किस कर्म तैं होय? तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभव में दीनकौं दान दिये होंय, सो अनेक जगह भ्रमाय-भ्रमाय दिया होय। तथा दानके दाम अन्य ग्राम में बताय, दीनकौं भटकाय दान दिया होय। तथा और दीननपै अनेक सेवा-चाकरी कराय बहुत दिन तक भटकाय, पीछे दया करि दान दिया होय। तथा अनेक ग्राम-देश भ्रमाय, सेवा-चाकरी कराय, पीछे धर्म जानि दान दिया होय। तथा कासीदनकौं अनेक देश

भ्रमाय, ताकी चाकरी नहीं दई होय। तथा कसर करि दई होय तथा धर्म निमित्त परकौं ग्राम, धन, वस्त्र देय तिनतैं अनेक चाकरी कराय, बहुत देश-नगरकौं कासीद (हलकारे) की नाईं भ्रमाय, तिनपै खेद कराया होय। तथा धर्मात्मा पुरुषन कूं आधीन राख, अनेक देश-ग्राम अपने संग भरमाय, तिनकी स्थिरताकौं आजीविका बताई होय। तथा देशान्तरकी आजीविका करनेहारे जीवको हाँसि करी होय। आप मद करि एक जागि तिष्ठा, धन पैदा करता, मत्सर भाव करि अन्यकौं बहकाये होंय। इत्यादिक अशुभ भावना सहित, भवान्तरमें मनुष्य होय, तौ देशान्तर भ्रमण करि आजीविका पूरण करणहारा होय। ६०। बहुरि शिष्य पूछी। हेगुरो, यह जीव एक स्थान पै तिष्ठा, आजीविकाकौं अनेक धन पैदा करता, कौन पुण्यतैं होय? तब गुरु कही। जिसने परभवमें अनेक धर्मात्मा जीवनकी स्थिरता कौं खान-पान धन-दानादि देय निराकुल, धर्म सेवन कराया होय। तथा अनेक पशु तथा दीन मनुष्य इनकौं अशक्त देख, दुखी देख, तिनकी दया करि तिनके स्थान बैठे ही असहाय जानि, तिनके खान-पानकी खबर लेय, साता उपजाई होय। तथा निर्धन धर्मात्मा जीवनकौं निराकुल धर्म सेवन करते देख, समता सहित देख, तिनकी प्रसंशा करी होय। तथा औरनकौं सुख तैं धन पैदा करते देख, खुशी भया होय। इत्यादिक शुभ भावन तै एक स्थानमें धन पैदा करि सुखी होय। ६१। बहुरि शिष्य पूछी। हेगुरो! यह जीव दगाबाजी सहित आजिविका पैदा करनेहारा किस पापतैं होय? तब गुरु कही। जानैं परभवमें दानमें कपटाई करी होय। दीन जीवन कूं कपटाई सहित दान दिये होंय। गुरुजन जो मुनि, तिनकौं भक्ति—भाव रहित दान दिया होय। दुखित-भुखितनकौं दया रहित दान दिया होय। तथा मायातैं उदर भरनेहारे चोर, फांसी, गिरी, ठग तिनकी कला-चतुराई देख, तिनके ज्ञानकी प्रसंशा करी होय। तथा पराया धन धरया ही जानता, मुकरि गया होय। औरनके भले किसबकौं दोष लगाया होय। इत्यादिक पाप भावन तैं दगाबाजी सहित अजीविका करनेहारा होय। ६२। बहुरि शिष्य पूछी। हे दयालु गुरुनाथजी! सरल भाव सहित सत्यवादी होय आजीविका पूर्ण करै, सो किस पुण्यतैं करै? सो कहो। तब गुरुजी कही। जिननैं परभवमें सरल भाव तें धर्मराग करि धर्मात्मा जीवन कूं अन्न-पान

विनय सहित देय, साता करी होय। तथा दगाबाजी रहित, दया सहित, दीन जीवन कूं खान-पान देय रक्षा करी होय। औरनकौं निर्दोष आजीविका उपजावते देख, तिनकी प्रसंशा करी होय। तथा परभवमें सत्यवचन व सरल भाव सहित आजीविका नहीं मिलै भी, अनेक भूख सही, संकट सहे। परन्तु कपटाई सहित उदर पोषण नहीं किया होय। इत्यादिक शुभ भावनतैं, न्याय सहित सरलतातैं आजीविका पैदा होय है ॥ ६३ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। यह जीव नर व पशु होय, घर-घर बिकता फिरै। सो कौन पाप-कर्मका फल है ? तब गुरु कही। परभवमें जा जीवनैं बल करि, छल करि,पराये पुत्र-पुत्री बैंचे होंय। तथा पराये पशु छल-बल करि हरके, घर-घर बैंचे होंय। तथा पराये पुत्रादि मनुष्य तथा हस्ती, घोटक, महिष वृषभ, आदि जीव कोऊके प्रबल शत्रुने अन्याय भावतैं लूटि, पकड़ल्याय घर-घर बैंचे होंय, तिनकौं देख सुखी भया होय। तथा बीचमें दलाली खाय, पराये मनुष्य-पशु बिकाये होंय। इत्यादिक भावनतैं आप घर-घर विषैं बिकै है। ६४। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, एकबार ही बहुत जीव—समुदाय मरणकौं प्राप्त होय। सो कौन कर्मके उदयतैं होय ? सो कहिये। तब गुरु कही। परभवमें जिन बहुत जीवननैं एक ही बार पाप उपाया होय। जैसे कोई, मनुष्यकूं तथा पशुकूं मारै है। तहां कौतुकके हेतु अनेक जीव देख, सुखी होय, पाप भार उपाया होय। तथा कोइ नरनारीकूं अग्निमें जलते देख, अनेक जीव सुखी भये होंय, अनुमोदना करी होय। तथा युद्ध विषैं अनेक जीवनका मरण सुनि तथा देख, अनेक जीव राजी होय, हर्ष पाया होय। तथा अनेक जीवनिनैं मिलि वीतराग देव—गुरु-धर्मकी निंदा—हाँसि करी होय। इत्यादि पाप भावनतैं समुदाय सहित अनेक जीव मरण पावैं हैं।६५। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे गुरो ! यह जीवनके समुदायकूं सुख किस पुण्यतैं होय ? तब गुरु कही। जिन जीवननैं तीर्थंकरके गर्भ उत्सव, तथा देवनके किये जन्मोत्सव, तप उत्सव ज्ञान उत्सव, निर्वाण उत्सव इन पाँच कल्याण के बड़े उत्सव, अनेक देव सहित, इन्द्र-शची कौं करते देख तथा सुनि, जिन जीवन नैं इकट्ठे होय, अनुमोदना करी होय। तथा इन्द्र महाराज इन्द्राणी सहित अनेक देव लेय, नन्दीश्वर जी के उत्सव कौं जाते देख तथा सुनि, परम सुख कूं पाय, अनेक जीवन के समुदाय ने अनुमोदना करि

पुण्य बांध्या होय। तथा बड़ा संघ सिद्धक्षेत्रकी यात्रा कौं जाता देख, ताका जय-जयकार उत्सव देख, अनेक जीवन नैं अनुमोदना करि, पुण्य बन्ध किया होय। तथा च्यार प्रकार संघकी वीतरागता देख, अनेक जीवोंने सुख पाया होय। तथा समोशरण की महिमा देख, तथा बड़ी पूजा—विधान—प्रतिष्ठा तिनके उत्सव देख तथा शास्त्रन तैं सुनि, अनेक जीवन कौं अनुमोदना उपजी होय। इत्यादिक शुभ कार्यंन में अनुमोदना करि, बहत जीवन नै समुच्चय पुण्य बन्ध किया होय। तिनकूं समुदाय ही सुख होय है। ९६। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, बहुत जीव एक बार ही तप लेय, स्वर्ग—मोक्ष कौं सङ्ग ही जांय। सो किस पुण्यका उदय है सो कहो। तब गुरु कही। जिन जीवन नैं परभव में तीर्थंकरों को, देवोपुनीत राज्य—सम्पदा छांड़ि तप लेते देख, तथा चक्रवर्ती षट् खंड की विभूति तृणवत् तजि दीक्षा लेंय, तिस उत्सव कौं देख, तथा बलभद्र, कामदेव, मण्डलेश्वरादि महा राजान् कौं दीक्षा लेते देख, हर्ष करि अनुमोदना करी होय। तथा एक—एक राजान्की संगति करि, अनेक राजा व तिनकी रानी, राज्य—संपदा छांड़ि, दीक्षा लेंय। ऐसे हजारों जीवनकी दीक्षा देख तथा शास्त्रन तैं सुनि, बहत भव्य जीवन नैं एकबार ही तपकी अभिलाषा सहित अनुमोदना करि, समुदाय सहित पुण्यका बन्ध करि, वैराग्य भाव किये होंय। इत्यादिक समुदाय पुण्य तैं, समुदाय तप अङ्गीकार कर स्वर्ग—मोक्ष होय है। ९७। बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ, बहुत जीवन कैं एकही बार रोग होय। सो किस कर्म तैं होय। तब गुरु कही। जिननैं परभव में वीतरागी यतीश्वर का, जो अपने शरीर ही तैं निष्प्रयोजन हैं तिनका शरीर मलीन देख तथा तप तैं क्षीण देख तथा मुनीश्वरके शरीरमें दीरघ रोग देख बहुत जीवनमें एक ही बार ग्लानि करी होय। तथा निन्दा करि अनादर किया होय। तो उन बहुत जीवन के एक साथ ही रोग होय तथा कोई आर्यिका के तनमें रोग देख तथा धर्मात्मा श्रावक, श्राविका अविरत सम्यक्दृष्टी इनके शरीर रोग तैं क्षीण व अशुचि देख, बहुत जीवन नै एक ही बार ग्लानि करी होय। इत्यादिक अशुभ भावन तैं बहुत जीवन के एकही बार रोग होय है। ९८। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु जी ! इस जीव कं पर स्त्री तथा पर पुरुष कूं देख

काम विकार होय, मोह उपजै । सो किस कर्म का फल है । तब गुरु कही । जो जीव परभव की स्त्री होय । तथा परभव में जिनको परस्पर व्यभिचारका बन्ध भया होय । तथा परभव की हांसी, खिलवती, नाच, गीत की सुहवति–संग का जीव होय । इत्यादिक परभव के विकार सम्बन्ध तैं भवान्तर में ताकौं देख काम—विकार होय है । ९९ । बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरो ! पर जीव कौं देख, बिना कारण द्वेष–भाव होय । सो कौन कारण । तब गुरु कही । जाकौं देख द्वेष भाव होय, सो परभवका बैरी होय । आपने वाकौं परभवमें दुखी किया होय । तथा वानैं आपकौं काहू तैं युद्ध कराय, हर्ष मान्या होय । तथा आपने वाकौं भिड़ाय, सुख मान्या होय । इत्यादिक पूर्व द्वेष जातैं होय ताकौं देखे भवान्तरमें द्वेषभाव होय ॥ १०० ॥ बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरुजी पर जीव देव मनुष्य पशु ताकौं देख हर्ष होय । सो कौन सम्बन्ध है ? तब गुरु कही । कोई परभवका पुत्रका जीव होय । तथा भाईका जीव, तथा माताका जीव तथा बहिनका जीव तथा पिताका जीव इत्यादिक परभवका कोऊ कुटुम्बी जीव होय । तथा परभवका कोई मित्र होय । तथा अपना कोई परभवमें उपकार करनहारा होय । तथा आपने वाके ऊपर कोई उपकार परभवमें किया होय । इत्यादिक सम्बन्ध वातैं कोऊ पूरव भवका होय ताकी सूरत देख मोह उपजै है ॥ १०१ ॥ बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरुदेव अपने दुखमें बिना प्रयोजन कोई आय सहाय करै । सो कहा सम्बन्ध ? सो कहिये । तब गुरु कही । परभवमें आपने वाके ऊपर कोई उपकार किया होय । जो भूखे कूं अन्न-भोजन दिया होय सो आय आपकौं बड़े सङ्कटमें भोजनका सहाय करै । जानैं तृषावन्त कौं जल प्याय साता करी होय । सो आपकौं दीर्घ पर्वत बन उद्यानमें तथा युद्धमें जहां जल नहीं होय तृषा-सङ्कटमें प्राण जांय ऐसे दुःखनमें जल प्याय सुखी करै । तथा जानै नग्न रहते कौं वस्त्र देय साता करी होय । सो भवान्तरमें ल्याय अनेक वस्त्र नजर करै । तथा आपने काहू कौं अभय-दान देय दुख तैं मरतैं बचाया होय तो वह हस्ती सर्पादि दुष्ट जीवन करि प्राण जावतैं आय सहाय करै मरते कौं बचावै है । तथा महा संग्राम विषैं आय सहाय करै । इत्यादिक जाके ऊपर जानै जैसा उपकार किया होय तैसा ही आपकौं दूसरा भी आय सहाय करै है । तथा नये सिरे तैं उपकार करवेकी अभिलाषा होय

है ॥ १०२ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुनाथ! जाका धन रोग निमित्त बहुत लागै। परन्तु सुख नहीं होय। सो कौन पापका फल है? तब गुरु कही। जानैं परभव विषैं अनेक भोरे जीवन कौं बहकाया होय। और तिनकौं रोग नाश करि पुष्ट करवेका लोभ देय तिनका धन छल-बल करि आप लिया होय। तथा रोग नाशक लोभ देय ताका बहुत धन खराब कराया होय। तथा अल्प मोलकी वस्तु देय बहुत धन छलि करि लिया होय। तथा अन्य कौं दुखित-रोगी देख तिनका धन औषध निमित्त विरथा लागता देख आपने हर्ष मान्या होय। तथा पर कौं रोग नाश करवे निमित्त कुदेवादिकके निमित्त पूजा बताय ताका धन क्षय किया होय। तथा कोई रोगी कौं ग्रह-नक्षत्रका भय देय तिनका धन ग्रह-दानमें क्षय कराया होय। इत्यादिक कुभावन तैं भवान्तरमें मनुष्य होय ताका धन रोग निमित्त जाय है ॥ १०३ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो इस जीवका भला धन कुव्यसन विषैं लागै। सो किस पापाका फल है? सो कहो। तब गुरु कही। जानैं परभवमें पराया धन कुव्यसन विषैं शिक्षा देय लगवाया होय। तथा पराया धन कुव्यसनमें लागता-उजड़ता देख आप सुखी भया होय। द्यूत रमाय पराया धन हरा होय। अभक्ष्य भक्षण कराय परधन खोया होय। तथा आपने चोरी करि पराया धन हरा होय। मदिरा प्याय धन ठगा होय। तथा वेश्याके नाच-गान व पर स्त्री आदि भोगनमें पर धन नाश होता देख आप खुशी भया होय। इत्यदिक पाप तैं भवान्तरमें कुव्यसनसें धन नाश होय है ॥ १०४ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! यह जीव गर्भमें ही कौन पाप तैं नाश हो जाय? तब गुरु कही। जिन नैं पर जीवन कौं परभवमें गर्भमें ही मारे होंय। अनेक बनवासी पशु तिनकूं आप निर्दयी होय, गर्भमें ही हते होंय। तथा आप दाईका स्वांग धारि, अनेक स्त्रियोंके बालक गर्भमें ही मारि डारे होंय। तथा औषध देय तथा जंत्र मंत्र करि गर्भका निपातन किया होय। तथा परके बालक गर्भ विषैं मरे सुनि आप सुखी भया होय। तथा कोई तैं द्वेष भाव करि ताका बालक किसी कौं कहिके गर्भमें हीं नाश कराया होय। इत्यादिक पापन तैं जीव भवान्तरमें गर्भमें ही मौत पावै है ॥ १०५ ॥ बहुरि शिष्य कही। हे गुरो! इस जीव कौं भली सीख बुरी क्यों लागै सो कहो। तब गुरु कही। जानैं पर कौं अनेक खोटी सीख देय, परका बुरा

करि, आप सुख पाया होय। तथा पर कौं खोटी सीख देय, कुमारग चलाया होय। तथा गुरु जन जो माता पितादिक, तिनके हितकारी शिक्षा वचन सुनि, जाकौं नहीं सुहाये होंय। जिननैं उल्टे गुरु जन कौं अविनय वचन कहे होंय। औरन कौं अविनय सहित चलते देख, आप राजी भया होय। शिक्षाके देनेहारे गुरु जन, तिनकी हाँसि करी होय। स्वेच्छाचारी पशु पर्याय, तामैं तैं चय कैं मनुष्य भया होय। तथा पापाचारो, अविनयी कुसंगी जीव तिनके वचन भले लागे होंय। इत्यादिक पाप भावन तैं, भली सीख वचन नहीं सुहावैं हैं॥ १०६ ॥

बहुरि शिष्य पूछो। हे गुरो! इस जीव कौं अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञानको प्राप्ति कौन शुद्ध परणति तैं होय? तब गुरु कही। हे भव्यात्मा, सुनि। जिननैं परभवमें तपस्वी मुनि अवधि-मन पर्यय ज्ञान धारी, तिनके ज्ञानका माहात्म्य देख, हर्ष पाया होय। तथा ऐसे दीरघ ज्ञानके धारी तपस्वी, तिन की सेवा-चाकरी करि, अपना भव सफल मान्या होय। तथा ऐसे अवधि-मनःपर्ययादि ज्ञनका अतिशय देख, तिनकी बहुत महिमा करी होय, बारम्बार स्तुति करी होय, तिन तापसी ज्ञान-भंडार यतीनकी वैयाव्रत करवेकी अभिलाषा रही होय, तथा मुनि पद धारि अवधि मनःपर्यय ज्ञान उपायवेकी वांच्छा रही होय। तथा केवलीके वचन सुनि, सत्य जानि हर्ष पाया होय। तथा केवलज्ञानीके अतिशय, देव-इन्द्रन करि बन्दनीक जानि, आपकूं केवलीके गुण तैं बहुत अनुराग भया होय। तथा केवलज्ञानीके वचन प्रमाण तीन लोक, तीन काल, जीव-अजीवादि द्रव्य, तिनके प्रमाणका स्वरूप, परोक्ष तौ जान्या होय अरु ताके प्रत्यक्ष जानवेका परम अभिलाषी भया, वीतराग भावनकी इच्छा सहित प्रवृत्तका होय। इत्यादिक शुद्ध भावना तैं अवधि-मन पर्यय-केवल ज्ञानकी महिमा प्रशंसा भक्तिभाव सहित कर, तिन उत्तम ज्ञानकी प्राप्ति कौं दीक्षाका उद्यमी भया होय। इत्यादिक शुद्ध भावना सहित जीवन कूं भवान्तरमें अवधि, मन पर्यय, केवल ऐसे उत्कृष्ट ज्ञानकी प्राप्ति होय है॥ १०७ ॥

बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुजी! इस जीवका धन, धर्म कार्यन विषैं लागै। सो किस पुण्यका फल है? सो कहो। तब गुरु कही। जिन जीवन ने परभवमें औरन कौं धर्म विषैं धन खच करते देख, अनुमोदना करि हर्ष उपाया होय। तथा आपने चोरी दगावाजी रहित, न्याय मारग सहित, धन उपारज्या होय। औरन कौं

तीर्थ स्थानमें धन लगावते देख तथा जिन मन्दिरके करायवेमें द्रव्य लगावते देख तथा पूजा-प्रतिष्ठा विषैं धन लगावते देख, आपने विशेष अनुमोदना करी होय। तथा आपने परभवमें अनेक प्रभावना अंगनमें द्रव्य लगाया होय। तथा औरन कौं इन स्थानकनमें धन लगावते देख, भले जानें होंय। ऐसे पुण्य परणामन तैं इस जीवका धन शुभ कार्यमें लागै है॥ १०८॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव व्रत लेय भंग करि डारै। सो किस कर्मका फल है। तब गुरु कही। जानै परभवमें पर जीवनके व्रत भंग किये होंय। तथा पराये शुद्ध व्रत कौं दोष लगाया होय। तथा अन्य अज्ञानी जीवन कौं व्रत लेय भंग करते देख अनुमोदना करी होय। तथा कोई धर्मात्मा जीवनका व्रत, कोऊ दुष्ट भंग करै है। सो तामै सहाय होय, पराया व्रत भंग कराया होय। तथा बाल्यावस्थामें अनेक बार कौतुक मात्र आखड़ी लेय-लेय कैं भंग करी होय। इत्यादिक अशुभ कर्म तैं भवान्तरमें शिथिलांगी व्रत करनेहारा होय॥ १०९॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव पशु पर्यायमें उपजि कसाईके हस्त तैं मरे। सो कौन पापका फल है। तब गुरु कही। जिसने परभवमें कसाईका किसब (व्यवसाय) किया होय। तथा जिननैं परभवमें अन्य जीवों कौं विश्वास देय, अनेक भले खान-पान तैं पोष, तिनका घात किया होय। तथा पर-जीवन कौं छल-बल करि हते होंय। तथा पर-जीवन कौं मोल लेय, मारे होंय। तथा पर-जीवनके अण्डा मोल लेय मारे, तथा अण्डे बैंचे होंय। तथा पर-जीवन कौं पालि पीछे लोभके अर्थ, कसाईन कौं बैंचे होंय। तथा बिना अपराध बन-जीवन कौं अपने हाथ तैं हते होंय। तथा कसाईके घरका आमिष मोल लाय, भक्षण कर्‌या होय। तथा पर-जीवन कौं कसाईके हाथ तैं मरते देख, सुख मान्या होय। तथा पर-जीवनका आमिष बहुत खाया होय। इत्यादिक पापन तैं जीवकी कसाईके हाथ तैं मौति होय॥ ११०॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव पापपरणामी, पाप क्रिया सहित कौन पाप तैं होय। तब गुरु कही। जानैं परभवमें पापी, चोर, ज्वारीनका संग बहुत किया होय। तथा पर-जीवनका घात किया होय। तथा पापी जीवन कौं कुबुद्धि-पाप रूप क्रिया करते देख, अनुमोदना करी होय। तथा हिंसा सहित जीवन कौं कुबुद्धि-पाप रूप क्रिया करते देख, अनुमोदना करी होय। तथा हिंसा

सहित पाखंडी जीवनके कल्पित देव-गुरु मांस-भक्षी, तिनकी सेवा-पूजा करी होय। तथा धर्मात्मा जीवनकी निन्दा करि, अविनय करि सुख मान्या होय। तथा शुद्ध देव—गुरु—धर्मकी निन्दा करि, विपरीत भाव रह्या होय। इत्यादिक अशुभ भावन तैं पापी, पापक्रियाका करनहारा होय है ॥१११॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव भली उत्तम मनुष्य पर्याय पाय, खपत कैसे पाप तैं होय। तब गुरु कही। जानैं परभवमें अन्य जीवन कौं मंत्र यंत्र करि खपत करे होंय। तथा अनेक जड़ी बूटी खुवायके, जीवन कूं खपत करे होंय। तथा केई जीव पापके उदय तैं खपत होय गये, तिनकी हाँसि करी होय। तथा केई खपतकी अज्ञान चेष्टा देख, तिनकौं चोरी आदि झूठा दोष लगाया होय। तथा कोई हौल दिल कूं स्वच्छंद प्रवृत्तता देख, ताकौं मारया होय। तथा मदिरादि अमल पीय, अपनी अज्ञान चेष्टा करि, सुख मान्या होय। तथा कोई मदिरा पीवनेहारा, तिनकी अज्ञानचेष्टा देख, आप सुख मान्या होय। इत्यादिक पाप चेष्टा तैं जीव भवान्तरमें खपत होय है ॥ ११२ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव कुशीलवान् किस पाप तैं होय। तब गुरु कही। जानैं परभवमें वेश्या का संग बहुत किया होय। तथा वेश्या, नृत्यकारिणी तथा कुशीली स्त्री, नपुन्सक पुरुषाकार तिनके संग बहुत अज्ञान चेष्टा देख, तथा उन समान आप कुचेष्टा करि, हरष मान्या होय। तिन मैं गोष्ठी कर, रम्या होय। और जीवन कौं कुशील करते देख, अनुमोदना करी होय। तथा श्वानादिक पशु पर्यायमें कुशील रूप बरत्या होय। तथा औरनके बीचमें दूत होय, कुशीलमें सहायता दी होय। तथा दिन विषैं कुशीलके वीर्यका उपज्या होय। इत्यादिक पाप भाव तैं कुशीली ही होय ॥ ११३ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ, ये जीव शीलवान किस पुण्य कर्म तैं होय। तब गुरु कही। जानैं परभवमें शीलवान् पुरुष स्त्री जीवनकी प्रशंसा करी होय। तथा शीलवान् पुरुषके शील राखवे कौं सहाय करी होय। पूर्वै संयमी पुरुषनकी संगति करी होय। तथा कुशीलन की संगति तैं मन उदास रह्या होय। इत्यादिक शुभ भावन तैं शीलवान् होय ॥ ११४ ॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव जनमते ही मरण कौं प्राप्त किस पाप तैं होय। तब गुरु कही। जानैं औरन कौं जन्मते ही मारे होंय। तथा अल्प आयुके धारी जनमते ही मरते देख, हरष पाया होय। तथा द्वेष भाव तैं कोई कौं

जनमते देख, हस्त तैं मारया होय। तथा सम्मूर्च्छन एकेन्द्रियादि त्रस जीवनके घातके उपाय करि तिनकी हिंसा करी होय। इत्यादिक पाप भावन तैं जन्म समय ही आप मरण पावै॥ ११५॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव बन्दी होय, पर वश परके किये दुख कौं सहै। सो किस पापका फल है। सो कहो। तब गुरु कही। जिननैं बिना अपराध धनके लोभ कौं पर जीव जोरावरी पकड़ि कैं बन्दीगृहमें राखे होंय। तथा परभवमें दुपद, चौपद, नभचर, जलचर, उरपद इत्यादिक पशून कौं बलात्कार, पींजरा-फंदा आदि धनमें राखे होंय। तथा पर जीवन कौं द्वेषभाव करि, चुगली खाय, पराये मान खण्डन कौं, धन नाश कौं, झूठा दण्ड लगाय, बन्दीमें दिवाये होंय। तथा पर कौं बन्दीगृहमें देख, अनुमोदना करि खुशी भया होय। इत्यादिक पाप त, जीव नृपादिकका बन्दी होय॥ ११६॥ बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव अकस्मात् शस्त्र तैं, फांसी तैं, गोला तैं, सिंहादि दुष्ट पशून तैं, अग्नि तैं, जल तैं, विष तैं, इत्यादिक कारण तैं मृत्यु पावै। सो किस पापके फल तैं पावै? सो कहो। तब गुरु कही। जानै परभवमें पर जीवन कूं दोष लगाय, विष देय मारे होंय तथा विष? मूए देख, हर्ष पाया होय। सो जीव इस पापसे अकस्मात् मृत्यु पावै। और जानैं पर जीवन कौं फांसी तैं मारे होंय। तथा फांसी तैं मूये सुनि, अनुमोदना करि हर्ष पाया होय। ते जीव चोरनका निमित्त पाय, फांसी तैं मरै। और जिननें पर जीवन कौ तीर, गोली, बर्छी, कटारी, छुरी, तलवारादि शस्त्रतैं मारे होंय। तथा मुये सुनि, अनुमोदना करी होय। ते जीव अकस्मात् शस्त्र तैं मौति पावैं। और जिन जीवननैं परभवमें सिंहादि जीवनकौं शस्त्र तैं हते होंय। तथा औरनतैं मारे सुनि, सुख पाया होय। ते जीव सिंहादिक दुष्ट जीवनतैं आकस्मात् मृत्यु पावैं। और जिननें पर जीवन कूं अग्निमें जाले होंय। तथा अग्निमें जले सुनि, हरष पाया होय। सो जीव आकस्मात् अग्निमें जलैं। और परजीवनकौं जिनने जलमें डुबोय मारे होंय। तथा जलमें डूबे सुनि, सुख पाया होय। ते जीव अकस्मात् जलमें डूबि मरैं। इत्यातिक जे पाप क्रिया, ताही निमित्त पाय आकस्मात् मरण होय। ११७। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो, यह जीव परका खानाज़ाद गुलाम, किस पापतैं होय? तब गुरु कही। जानैं पर-

भवमें बलात्कार पर-जीवनकौं गुलाम किये होंय। तथा धन लोभ देय तथा भूखेकौं खान-पान वस्त्रादिकका लोभ लगाय, तथा पराया मनुष्य विकते देख मोल देय इत्यादिक कारणतें पर जीवनकौं गुलाम किये होंय। तथा अन्य जीव कोईका गुलाम भया होय। तथा अपने बीचि-दूत होय, किसीकौं किसीका गुलाम कराया, दलाली खाय हर्ष पाया होय। इत्यादिक पापनतें जीव भवान्तरमें आय, अन्य घर विक गुलाम होय। ११८। बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ, यह जीव लोक-निंद्य कोन पापतें होय? तब गुरु कही। जाने जगत्पूज्य जो वीतराग देव--धर्म--गुरुकी निन्दा करी होय। तथा और कोई देव--धर्म-गुरुके निन्दक जानि तिनमें प्रीति भाव किया होय। तथा तीन जगत्पूज्य, प्रसंशा योग्य ऐसे वीतरागादि उत्तम गुण, तिनकी निन्दा कारी होय। तथा धर्मात्मा पुरुषनकी निन्दा करी होय। तथा लोकनिन्द्य पुरुषनके संगकौं पाय, अनेक निन्द्य-कार्य किये होंय। अयोग्य खान-पान करे होंय। इत्यादिक पापनतें, जीव लोक--निन्द्य पद पावे। ११९। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु देव, इस जीवकौं पुत्र स्त्री, माता, पिता, भरतार आदि इष्ट वस्तुका वियोग किस पापतें होय? तब गुरु कही। जानें पर-पुत्र हरे होंय। तथा पराये पुत्र हरे जान, जाने अनुमोदना करी होय। तथा पराई स्त्रीकौं, ताके भरतारतें वियोग कराया होय। तथा परस्त्री पुरुषका वियोग सुनि हरप पाया होय ताके स्त्रीका वियोग होय तथा परका कुटुम्ब-माता-पितादिक तें वियोग कराया होय तथा परका कुटुम्बतें वियोग सुनि, महा हर्षवान् भया होय। इत्यादिक पाप भवनतें भवान्तरमें जीव के कुटुम्बादिकका वियोग होय है। १२०। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु देव, इस जीवकौं धनका वियोग किस पापतें होय! तब गुरु कही। जाने परभवमें परका धन हऱ्या होय। तथा चोर तें जल तें, अग्नितें राज्यतें, फोजतें इत्यादिक निमित्त पाय, परका धन नाश भया सुनि, अनुमोदना करी होय। इत्यादिक अशुभ भावनतें भवान्तरमें आपकौं धनका वियोग होय है। १२१। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुजी! इस जीवके घरमें अग्नि किस पाप तें लगे है। तब गुरु कही। जानें परजीवन के घरमें आग लगाई होय। तथा पराया घर जलते देख, हरप पाया होय। इत्यादिक पापन तें घरमें अग्नि लगे है। १२२। बहुरि शिष्य पूछी हे नाथ, इस

जीवकैं कण्ठ विषैं नरैल समान मेद किस पाप तैं होय। तब गुरु कही। जानै परभव में पर जीवन कौं लाठी, सोठी, मूंकी मार ताका कंठ सुजाय दिया होय। तथा जानैं परके मुख आगे भार बांध, दुखी कर्‍या होय। तथा परके कंठ में मेद देख, ताकी हांसि करि बहकाय, हर्ष मान्या होय। इत्यादिक पाप भावन तैं भवान्तर में आपके कंठसें नरैल तैं दीर्घ मेद हो है। १२३। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! यह जीव सर्व कौं वल्लभ किस पुण्य तैं होय। तब गुरु कही। जानैं परभवमें सर्व संसारी जीवन तैं स्नेह भाव कर्‍या होय। तथा देव, गुरु, धर्म जाकौं महा वल्लभ लागे हौंय। तथा जाकौं परभवमें च्यारि प्रकारके संघके धर्मात्मा जीव, महा वल्लभ लागे हौंय। तथा गुनी जन तैं स्नेह जनाया होय। तथा दीन—दरिद्री दुखित-भुखित, सोच जलधि में पड़े महा दुखी जीव तिनकौं देख, दया भाव करि तिनकौं स्नेह सहित विश्वास उपजाय, सुखी किये हौंय। इत्यादिक शुभ भावन तैं जीव भवान्तर में सब कूं सुखदाई परम वल्लभ होय। १२४। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुनाथ जी! इस जीवके घर, सदीव मंगल रहै। सो किस पुण्य तैं होय। सो कहो। तब गुरु कही। जो परभव में तीर्थंकर के पंच कल्याणक देख तथा सुनि करि, हर्षवन्त भये हौंय। तथा जिन पूजा, जिन प्रतिष्ठादि मंगलाचार उत्सव देख, अनुमोदना करी होय। तथा पुण्योदय तैं काऊ के घर मंगलाचार गाजते—बाजते देख, हर्षित भया होय। तथा कोईके घर शोक, चिन्ता, भय देख, तिनकी दया करी होय। इत्थादिक पुण्य भावन तैं सदीव घरमें मङ्गल होय है। १२५। ऐसे एक सौ पच्चीस प्रश्न शिष्य नैं गुरु तैं स्व-पर कल्याण के अर्थ किये। सो ये प्रश्न हैं, इनमेंके केतेक प्रश्न तो त्रैलोक्यनाथ की माता तैं देवांगना ने करे हैं। तिनके उत्तर तीर्थंकर की माता ने दिये हैं। और केतेक प्रश्न, राजा श्रेणिक महा धर्ममूर्ति बुधिवान तानैं गौतम स्वामी गणधर तैं करे। तिनके उत्तर श्री गौतम स्वामी ने यदि हैं। सो इनकौं इकट्ठे करि, यहां भव्य जीवन के कल्याण हित, समुच्चय वखान क्रिये। तिनके भेद जानि, पाप पंथ तजि, सुपंथ लागि, अनेक जीवन नैं पुण्य बंध क्रिया। और इनकौं सुनि अनेक भव्य, पुण्य उपारजैंगे। तातें विवेकी इस प्रश्न माला कौं बांचि, निकट संसारी इनका रहस्य

पाय, अपना कल्याण करें। इस प्रश्नमालाके धारण किये, भव्य जीव भव—भव में सुखी होंय। कैसी है ये प्रश्नमाला, गुरुके वचनरूपी महा शुभ सुगंधित फूल तिनकी बनाई है। सो इस माला कों निकट भव्य मोक्षरमणी का दूलह, हर्षाय कैं अपने हृदय विषें पहरि, सुखी होऊ। कवीश्वर कहैं हैं, इस माला कूं मैं अपने हृदय में फेरि, अपना भव सफल जानि कृत—कृत्य भया। और भी जे अमर-पदके लोभी इस प्रश्नमाला कों अपने कंठ में पहिरेंगे। ते भव्यात्मा कल्याण के वांछी, सुबुद्धि, युग भवमें तथा भव—भव में शोभा पावेंगे। ऐसी जानि इस प्रश्नमाला कूं धारण करहु।

इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रंथ मध्ये, अनेक ग्रंथानुसारेण, प्रश्नमाला कर्मविपाक वर्णनो नाम. गुणतीसवां पर्व सम्पूर्ण ॥२९॥

आगे हिंसा विषैं पुण्यका प्रभाव बतावैं हैं—

गाथा—पय वहणी थल पदमो, जल मथ घी थाण होय तुख खंडय ॥ रवि हिम ससि तप करई, तव हिंसा पुण्य देय भो आदा ॥ १२० ॥

अर्थ—पय वरणी कहिये, जल विषैं अगनि। थल पदमो कहिये, पृथ्वीमें कमल। जल मथ घी कहिये, पानीके विलोये घृत। धाण होय तुख खंडय कहिये, भूसके कूटे अन्न। रवि हिम कहिये, सूर्य्यके ऊगते शीत। ससि तप करई कहिये, चन्द्रमा तपति करे। तव हिंसा पुण्य देय कहिये, तो हिंसा पुण्य देय। भो आदा कहिये, हे आत्मा। भवार्थ—जल विषैं अगनि कवहूं नहीं होय। तैसे ही जीव हिंसा विषैं पुण्यका फल कवहूं नहीं होय। और कठोर भूमि विषैं कमल कदाचित् न होय। तैसे ही हिंसामें धर्म--फल नहीं। और जल विलोए घृत कवहूं न होय। तैसे ही प्राणी घातमें पुण्य नाहीं। और तुषके कूटे अन्न नहीं निकसे। तैसेही जीव घात तैं पुण्य नाहीं होय। और सूरजके उदय होते शीत नहीं होय। तैसे ही जीव घात किये धम नाहीं। और चन्द्रमाके उदय होते, आताप नहीं होय। तैसे ही हिंसा विषैं पुण्य कदाचित् नाहीं। ऐसे कहे जो ऊपर एते नहीं होने योग्य स्थान। तैसेही जीव घातमें हिंसा होय है, अरु धर्म कवहू नहीं होय। सो हे भव्यात्मा, तूं भी परभव सुधारवेके निमित्त, ऐसा श्रद्धान दृढ़ करि। कि जो जीव घात विषैं कोई प्रकार पुण्य नाहीं। ऐसा श्रद्धान तोकूं भव—भव विषैं सुखकारी होयगा। ऐसा जानि, अपने समान सवं

जीव कूं जानि, तिनकी दया भाव सहित रहना योग्य है। आगे फुनिहिंसा विषैं पुण्यका अभाव बतावैं हैं—

गथा—अह मुह अमि सुन वंझय, गणकासुत जनक सिध अवतारो। सठ सुचि सूम उदारऊ, तव जीव हिंसोय देय पुण आदा ॥ १२१ ॥

अर्थ—अह मुह अमि कहिये, सर्पके मुखमें अमृत। सुत वंझय कहिये, बंध्याके सुत। गणकासुत जनक कहिये, वेश्याके पुत्रका पिता। सिध अवतारो कहिये, मोक्ष भये पीछे जीवका अवतार। सठ सुचि कहिये, मूर्खके शौच। सूम उदारऊ कहिये, सूमका मन उदार। तव जीव हिंसोय देय पुण आदा कहिये, हे आत्मा तब जीव हिंसामें पुण्य होय। भावार्थ—महा भयानीक काल रूप सर्पके मुखमें अमृत होय, तो जीव हिंसामें पुण्य—फल होय। और बांझके पुत्र होता नाहीं। सो बांझके पुत्र होय, तो प्राणी वधमें पुण्य होय। और वेश्या के पुत्रके पिता होता नाहीं, तैसे ही जंतु-बधमें हिंसा होय, तहां धर्म नाहीं। और शुद्ध जीव कर्म नाश सिद्ध होय, तिस मोक्ष जीवका संसारमें अवतार नाहीं। तैसे ही जीव हिंसामें पुण्य नाहीं। और मूर्खके शौच नाहीं होय, तैसे ही हिंसामें पुण्यका फल नहीं होय। और सूम शरीर देय, परन्तु दान कूं एक दाम नहीं देय। सो या सूमका चित्त उदार होय, तौ हिंसामें पुण्य-फल होय। ऐसे ऊपर कहे कारण, सो कवहूं नहीं होय। तैसे ही धर्मात्मा तूं ऐसा जानि। जहां जीव घात होय, तहां पुण्य फल नहीं होय। तातैं ऐसा जानि, जीव घात तजि, दया सहित रहना योग्य है। आगे और भी हिंसाका निषेध बतावैं हैं—

गाथा—पच्छिम रवि सिल तरई, भू पलट वहण सीत तण धरऊ। मेर चलय अंध देखय, तव हिंसा देय पुण आदा ॥ १२२ ॥

अर्थ—पच्छिम रवि कहिये, सूर्य पच्छिम दिशासे उदय होय। सिल तरई कहिये, शिला तैरे। भू पलटय कहिये, पृथ्वी उलट-पलट होय। वहण सीत तण धरई कहिये, अग्नि शीतल तन धरै। मेर चलय कहिये, मेरु चलै। अंध देखय कहिये, नेत्र रहित देखै। तव हिंसा फल देय पुण आदा कहिये, हे आत्मा तौ हिंसाका फल पुण्य होय। भावार्थ—पश्चिम दिशामें सूर्य कबहुं नाहीं ऊगे। तैसे ही हिंसामें धर्मकाफल कबहूं नहीं होय। और पाषाणकी शिला जल विषैं तैरे, तो हिंसामें धर्म होय। और पृथ्वी पल्टै तौ हिंसामें धर्म होय। सो पृथ्वी कबहूं पलटती नाहीं अनादि ध्रुव है। तैसे ही हिंसामें पुण्य फल नाहीं। और अग्नि शीत अंग

धरै तौ हिंसामें धर्म फल होय। और सुमेरु पर्वत अनादि अचल है सो ये मेरु हालै तो हिंसामें धर्म फल होय। और जन्मके अन्धे कों कछु नहीं दीखै। तैसे ही जीव घातमें पुण्यका फल कबहु नहीं होय। ऐसे ये कहे नहीं योग्य स्थान तैसे ही हिंसा विषें धर्म कदाचित् नाहीं। ऐसा जानि हिंसा धर्म तजि दया सहित धर्मका अंगीकार करना योग्य है। आगे फुनि हिंसा निषेध—

गाथा—पंग चढ़य गिरि सिहरे, बधरो रंजाय राग सुह पाई। कातर रण जय पावय, तव हिंसा फल होय पुण आदा ॥ १२३ ॥

अर्थ—पंग चढ़य गिरि सिहरे कहिये पैर रहित पुरुष पर्वतके शीश पर चढ़ै। बधरो रंजायमान राग सुह पाई कहिये बहरा रागके सुख कों पावै। कातर रण जय पावय कहिये कायर युद्धमें विजय पावै। तब हिंसा फल होय पुण आदा कहिये हे आत्मन्! तो हिंसामें पुन्य फल होय। भावार्थ—पांव रहित पुरुष कों परके सहाय विना अल्प भी नहीं चल्या जाय। सो ऐसा पंगल पुरुष उत्तंग पहाड़के शिखर पर भागिके चढ़े तो जीव घातमें पुण्य होय। और बहरा पुरुष कान तें कछू सुनता नाहीं। सो बहरा पुरुष रागके सुन्दर शब्द सुनि राजी होय तो हिंसामें पुण्य होय। और जे कायर नर होंय सो युद्ध तें डरैं। सो कायर पुरुष बैरीकी सेना भगाय जीति पावै तो हिंसा विषें धर्मका लाभ पावै। और ऊपर कहे जे कारण सो कदाचित् नहीं होंय। सों होंय तौ हिंसामें धर्म फल होय। तातें हे धर्म फलके लोभी सर्व जीव आप समान जानि सबकी रक्षाके निमित्त उपाय करना सो भव-भवमें सुखकारी है। आगे फुनि हिंसा निषेध—

गाथा—जम उर करुणा धारय, काको मुह सौच मिरय तण जीवो। दुठ जण पर सुह इच्छय, तव हिंसा फल होय पुण आदा ॥ १२४ ॥

अर्थ—जम उर करुणा धारय कहिये, कालके हृदय करुणा होय। काको मुह शौच कहिये, कागका मुख पवित्र होय। मिरय तण जीवो कहिये, मृतक जीवै। दुठ जण पर सुह इच्छय कहिये, दुष्ट पुरुष परके सुख कौं वांच्छे। तब हिंसा फल होय पुण आदा कहिये, हे आतमा तो हिंसाके करनेमें पुण्य होय। भावार्थ—यम जो काल, सो जड़ दया रहित है। सो काल कों दया आवे, संसारी जीव नहीं मारे, तो हिंसामें पुण्य फल होय। और कागका मुख तौ सदा अपवित्र ही है। सो कदाचित् कागका मुख शौच रूप होय, तो हिंसामें

पुण्य फल होय। और आयु कर्म पूरण होय जे आत्मा पर्याय तज मरा, सो कवहू जीवता नाहीं। सो मृतक जीवै तौ हिंसामें पुण्य होय। और जे दुष्ट स्वभावी, पर दुख रंजन, पर कौं सुखी देख महा दुख होंय। सो ऐसा क्रूर स्वभावी दुर्जन प्राणी, पर जीव कौं साता देख सुखी होय, तो हिंसामें पुण्य होय। ऐसे ऊपर कहे कारण सो कबहुँ नहीं होंय, सो ये होंय तो जीव घातमें धर्म होय। तातैं धर्म लोभी कूं धर्मके निमित्त, दया भाव करना योग्य है। आगे बहुरि हिंसाका निषेध करिये है—

गाथा—विस पय जीवय जीवो, णागो गमणाय सरल तण होई। स्वाण पुच्छ सु ध होवय; तव हिंसा फल होय पुण आदा ॥ १२५ ॥

अर्थ—विस पय जीवय जीवो कहिये, जहर खाय कैं जाव जीवै। णागो गयणाय सरल तण होई कहिये, सर्प सीधा होय चालै। स्वाण पुच्छ सुध होवय कहिये, कुत्तेकी पूंछ सीधी होय। तब हिंसा फल होय पुण आदा कहिये, हे आत्मा! तो हिंसामें पुण्य होय। भावार्थ—हलाहल जहर खाय कोई जीवता नाहीं। ऐसा विकट विष खाये जीवैं, तौ हिंसामें धर्मफल होय। और काल नाग, सहज ही वक्र चाल चालै। सो कवहुं सांप सूधा होय गमन करै, तौ हिंसामें शुभ फल होय और श्वानकी पूंछका सहज स्वभाव ही वक्र है। सो कदाचित् श्वानकी पूंछ सूधी होय, तौ हिंसामें धर्म होय। ऐसे ऊपर कहे नहीं होने योग्य पदार्थ होंय, तौ हिंसामें धर्म होय। तातैं हिंसा तजि, दयाका पथ समझनेमें अपनी रचा जाननी। आगे और भी ऐसा कहैं हैं जो जीव-घातमें पुण्य नाहीं—

गाथा—रज पीलय णेह पावई, रजनी रवि विहोंति णभ णपाये। काय धरा णह खपई, तव हिंसा सु ह देय णेमाए ॥ १२६ ॥

अर्थ—रज पीलय णेह पावइ कहिये, रजके पेलैं तैं तेल होय। रजनी रवि कहिये, रात्रिमें सूर्य होय। बिहोंति णभ णपाए कहिये, बालिश्त तैं आकाश नपै। काय धरा णह खपई कहिये, कायके धारी मरैं नाहीं। तव हिंसा सुह देय णेमाए कहिये, तो निश्चय तैं हिंसामें पुण्य होय। भावार्थ—रज जो बालू-रेत ताकौं घाणीमें पेलैं तैं तेल निकसै, तौ हिंसामें धर्म-फल होय। अरु रात्रि कौं सूर्यका उद्योत होय, तौ हिंसामें पुण्य होय। और अंगुल-बालिश्त करि आकाश नापना होय, तौ हिंसामें धर्म-फल होय। और

शरीरअवतारका धारी, सदीव शाश्वत रहे, तो हिंसामें पुण्य होय। ऐसे ऊपर कहे जे नहीं होने योग्य कार्य, सो ये होंय तौ हिंसा विषैं पुण्य होय। ऐसा जानि धर्मके इच्छुक धर्मी जीव हैं तिनकौं, दया-भावका मार्ग जानना योग्य है। आगे हिंसामें धर्म नाहीं, ऐसा और भी बतावें हैं—

गाथा—खल पीलय सनेहो, सायर लंघाय पाल मज्जादो। णरु सुहत्तें सुर अघ दय, तव हिंसा फल देय सुह आदा॥ १२७॥

अर्थ—खल पीलय सनेहो कहिये, खलीके पेले तेल निकसे। सायर लंघाय पाल मजजादो कहिये, समुद्र अपनी पारकी मर्यादा लंघे। एक सुहत्तं कहिये, शुभ कार्य किये नरक होय। सुर अघ दय कहिये, स्वर्ग स्थान पाप फलतें होय। तव हिंसा फल देय सुह आदा कहिये, हे आत्मा तौ हिंसाका फल शुभ होय। भावार्थ—जैसे मूरख खलीकौं पेल तेल काढ्या चाहे, सो कबहू नाहीं निकसे। जो खली पेले तेल निकसैं, तौ हिंसामें पुण्य होय। और समुद्र अपनी मर्यादा को उलंघे, तौ हिंसामें धर्मका फल होय। और पापके करनहारे कुगति जांय सो कदाचित् पाप करनहारे देव होंय, तौ हिंसामें पुण्य होय। और पुण्यके करनहारे स्वर्ग—मोक्ष जांय हैं। सो यदि धर्म किये नरक होय, तो हिंसामें धर्म लाभ होय। ऐसे ऊपर कहे स्थान, ते नहीं होने योग्य हैं। तैसे ही हिंसामें शुभ नाहीं है। तातें तूं अपना कल्याण चाहे है। तो समता भाव करि सुखी होयगा। आगे फेरि हिंसामें धर्मका अभाव बतावें हैं—

गाथा—जड़ दव्वो जुय णाणऊ, चेदण दव्वोय होय विण णाणो। कलहो कय जस होई, तव हिंसा पुण देय णेमाए॥ १२८॥

अर्थ—जड़ दव्वो जुय णाणऊ कहिये, अचेतन द्रव्य ज्ञान सहित होय। चेदण दव्वोय होय विण णाणो कहिये, चेतन द्रव्य ज्ञान रहित होय। कलहो कय जस होई कहिये कलह करते यश होय तव हिंसा पुण देय णेमाए कहिये, तौ हिंसा पुण्यका फल देय। भावार्थ—जीव विना, पांच द्रव्य हैं। पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाश। ये पांच द्रव्य अनादि तैं जड़त्व भाव कौं लिये हैं। इनके गुण भी जड़ हैं, और पर्याय भी जड़ हैं। सो ये अजीव द्रव्यनमें ज्ञानका अभाव है सो इनमें ज्ञान होय, तौ हिंसामें धर्म—फल होय। और चेतन, गुण सहित देखने-जाननेहारा, दर्शन-ज्ञानका समूह, सो याका ज्ञान कर्म-योगतैं घटे, तौ अक्षर

के अनंतवें भाग रहै, परन्तु ज्ञानका अभाव कबहूं नहीं होय । अरु कदाचित् जीव ज्ञान रहित होय, तो हिंसामें धर्म फल होय, । तथा अपयशका कारण कलह है । सो कलह-युद्ध किये यश होय, तौ हिंसाके किये पुण्यका फल होय । ऐसे ऊपर कहे कार्य होंय, तो हिंसामें धर्मका फल होय । तातैं धर्म इच्छुक ! धर्मके निमित्त, दया धर्मका अध्ययन करहु । और भी अब करुणाका स्वरूप कहैं हैं, और दयाका फल कहिये हैं--

गथा—दीरघ थिति भू जसयो, गद रह तण भोय इच्छ सहु होई ॥ सु र,चक्की सु ह सह लय, ये करुणा फल होय णेमाए ॥ १२६ ॥

अथ—दीरघ थिति कहिये, बड़ी आयु । भू जसयो कहिये, धरतीपै यश । गद रह तण कहिये, रोग रहित शरीर । भोय इच्छ सहु होई कहिये, मनवांच्छित भोग । सुर चक्की कहिये, देव चक्रवर्ती । सुह सह लय कहिये, इनके सुख सहज ही होंय । ये करुणा फल होय णेमाए कहिये, ये दयाका फल निश्चयसे जानना । भावार्थ—इस जीव की भव—भवमें रक्षा करनहारी, दया है । सो दया भाव जिनके सदीव रहै है, तिनकी आयु तो सागरों पर्यंत बड़ी हो है । और जे दया भाव रहित होय हैं, ते जीव अल्पायु पाय मरण करैं हैं । और दयाके फलतैं जगतमें सहज ही यश होय है । और जो जीव पर-भवमें पराया यश नहीं देख सक्या । तथा जिसने महा निर्दय भाव करि पराया यश हत्या है । ते जीव, दया रहित भावनके फल तैं, दयातैं प्रगट भया जो यश, सो ऐसा यश चाहैं, तौ लाखों दाम खर्चें भी यश मिलै नाहीं । यशके निमित्त प्राण देय मरैं तौ भी दया बिन यश नहीं मिलै । दीन होय बोलै, सबतैं नम्रीभूत होय मस्तक नमावै, तौ भी यश नहीं मिलै । काहे तें, जो पर भव विषैं पराया मान राखा होय, प्रण राखे होंय, इत्यादिक मन—वचन—काय करि सर्व कौं साता करी होय, ते जीव सहज ही जगतमें यश पावैं । तातैं यश है सो दया भावका फल है । और निरोग शरीर पावना, आयु पर्यन्त सुखी रहना, सो दया भावका फल है और मन वांच्छित सुखका मिलना, सो दया भावका फल है । जो मनमें कल्पना करी सो ही वस्तु देवादिककी नांईं तुरंत मिलै, सो दया भावका फल है । और दया बिना ये जीव तृण जो घास, सो भी पेट भर नहीं भोगवै है । सदीव अन्न व तन करि बहुत दुखी होय, सो दया रहित भावका माहात्म्य है । और देवनके

नाना प्रकार भोग, असंख्यात द्वीप—समुद्रनमें गमन, नंदीश्वर, कुण्डल गिरि, रुचिकगिरि इन द्वीपनमें भगवानके मन्दिर हैं तिनकी यात्राका करना, ये शुभ फल उपावना और असंख्यात देव—देवी आज्ञा मानैं, अनेक देवांगनाके समूह तिनका आयु पर्यन्त सुख, सो दया भावका फल है। और चक्रीके चौदह रत्न, नव निधि, छियानवै हजार स्त्रियां, षट् खण्ड का राज्य इत्यादिक सुख सो भी दया भावका फल है। और ऊपर कहे जे भले फल, दीर्घ आयु जगत यश, निरोग तन, वांच्छित भोग, देव सुख, चक्री सुख ये सर्व दया भावका फल जानना। आगे और भी दया भावका फल कहिये है—

गाथा—सुर तरु चिन्ता रयणो, काम धेयोय पास पासाणऊ। चित्ता लता सुसंगो, ये सहु किप्पाय भाव फल आदा ॥ १३० ॥

अर्थ—सुर तरु कहिये, कल्पवृक्ष। चिंता रयणो कहिये, चिन्तामणि रतन। काम धेयोय कहिये, कामधेनु। पास पासाणऊ कहिये, पारस पाषाण। चित्ता लता कहिये, चित्रावेलि। सुसंगो कहिये, सत्संग। ये सहु किप्पाय भाव फल आदा कहिये, हे आत्मा ये सब दया भावका फल है। भावार्थ--दश प्रकार कल्पवृक्ष कर दिये जो उत्तम भोग, सो दया भावका फल है। और मन-चिंते भोग सुखका देनेहारा चिन्तामणि रत्नका मिलना, सो कृपा भावका फल है और वांच्छित सुखकी देनहारी कामधेनु गायका मिलना, यह भी दया भावका माहात्म्य है। और कुधातुकों सुवर्ण करनहारा जो पारस-पाषाण सम्पदा-सागर ताका मिलना, सो भी दया भावका फल है। और अल्प वस्तुको अटूट करनेहारी चित्रावेलि नामक वनस्पति ताका पावना, ये भी दया भावका फल है। और पापके उदय, निर्दयी-भावनके फल करि, अनन्तकाल कुसंग विषैं गमन होता आया। सो ताके सम्बन्ध तैं त्रस-स्थावरनकी अनेक पर्याय धरि दुख विषैं डूबा। सो अदयाका फल है। जब जीवका संसार निकट होय, तब याकों सत्संगका मिलाप होय है सो सत्संग का मिलना भी दया भावका फल है। ऐसे ऊपर कहे सुर तरु, चिन्तामणि, कामधेनु, पारस, चित्रावेलि, सत्संग ये तीन जगतमें उत्कृष्ट वस्तु हैं। सो दया भावके फलतैं मिलैं हैं। ऐसा जानि विवेकी पुरुषनकों पर-जीवनकी रक्षा रूप भाव राखना योग्य है। आगे और भी दया भावका फल बतावैं हैं—

गाथा— सहु हित पज्जाओ, आदे सहु थाण सुंद तण होई। इंद अहमिन्द णगंदउ, किप्पा भावोय होय फल येहो । १३१ ॥

अर्थ—सहु हित कय पज्जाओ कहिये, सर्व कौं हितकारी पर्याय। आदे सहु थाण कहिये, सर्व स्थान विषैं आदर। सुंद तण होई कहिये, सुन्दर शरीर होय। इन्द कहिये, इन्द्र पद। अहमिन्द कहिये, अहमिन्द्र पद। णगंदउ कहिये, नागेन्द्र पद। किप्पा भावोय होय फल येहो कहिए, दया भावका भल ऐसा होय है। भावार्थ—जिनका मुख देखतें ही सर्व जीवन कूं सुख उपजै, विश्वास उपजै, मोह उपजै, ऐसी सुन्दर काया पावनी, सो दया भाव का फल है। दयाभाव बिना महा कुरूप, भयानीक, रौद्र आकार, सर्व कौं अरति उपजावै ऐसा शरीर पावै है। और जिन जीवन का जगह-जगह आव-आदर होय, जिनकूं देख सर्व प्राणी प्रीति भाव करैं, ऐसा आदेय कर्म के उदयवारा सर्व कौं वल्लभ होय। सो दया भावका फल जानना। और जाका शरीर महा सुन्दर, कामदेव के शरीर की शोभा कूं जीते, देवन के मनकों मोह उपजावै, अद्भुत शोभाकारी शरीर, सो दया भाव का फल है। और ग्लानि उपजावनहारा, विकट, असुहावना, कुरूप इत्यादिक अशुभ कर्म के उदय का शरीर पावना, सो निर्दई भाव का फल है। और देवन का नाथ, असंख्याते देव-देवी जिसकी आज्ञा मानैं, आय-आय महाभक्ति करि अपना शीश नमावैं, सर्व देव जाकी स्तुति करैं, ऐसा इन्द्र पद का पावना, सो भी दया भाव का फल है। तथा कल्पातीत जो देव हैं, जिनकी महिमा वचन-अगोचर है। जितना सुख सर्व कल्पवासी सोलहों स्वर्गोंके इन्द्र—देवन का है, तिन तैं अधिक कल्पातीत जो अहिमिन्द्र तिनका है। यहां प्रश्न—जो तुमने कह्या कि कल्पवासी देव-इन्द्रन तैं अहमिन्द्रन कैं सुख अधिक है। सो कल्पवासी देव-इन्द्रन कैं तो अनेक देवांगना हैं। तिन सहित सुख भोगैं हैं। और अनेक देव आय-आय शीश नमावैं हैं। असंख्याते देवों के नाथ हैं। पंचेन्द्री सम्बन्धी सुख मान पोषवै सम्बन्धी सुख, सो सर्व इन्द्रन कैं प्रत्यक्ष दीखैं हैं। परन्तु अहिमिन्द्रों के देवांगना नाहीं, कोऊ आज्ञाकारी सेवक-देव नाहीं। तौ इनकैं कल्पवासी इन्द्रन तैं अधिक सुख कैसे सम्भवै? ताका समाधान--भो भव्य! तुम चित्त देय सुनो। सुखके दोय भेद हैं। एक तो संक्लेशता सहित सुख, एक निराकुलता

सहित सुख। सो संक्लेश सुख तैं, निराकुल सुख अधिक है। जैसे एक पुरुष अपनी रत्नोंकी पोट अपने शीश पै धरै, अपने घर कौं, राहमें चल्या जाय है। अरु भले मोदक खावता जाय है। ताकरि सुखी है। और एक पुरुष अपने मन्दिरमें तिष्ठता, शीतल जल पीवता, भला मोदक खायके सुखी है। इन दोऊनमें तूं विचार, जो विशेष सुखी कौन है? जाके शीश मोट है अरु मोदक खावता राह चलता जाय है, ताका सुख तो आकुलता सहित है और शीश भार रहित, एक स्थान तिष्ठता मोदक खाय, सो सुख निराकुल है। सो कल्पवासीका सुख तौ शीश गठियावारेका सा है। अरु अहमिन्द्रनका सुख, एक स्थान तिष्ठनेहारे समान है। ऐसा जानना। और सुनौं, जो व्रती पुरुष हैं, सो तौ मंद कषायन करि सुखी हैं। और इन्द्र-चक्री ये सुखी हैं सो संक्लेश-सुखी हैं। ताही तैं देव, इन्द्र, चक्री आदि बड़े २ पदधारी, व्रती पुरुपन कौं पूजै हैं, सुश्रूषा करैं हैं। अरु ऐसी याचना करैं हैं। जो हे गुरो! तुम्हारी भक्तिके फल तैं, हमारे भी आप कैसा निराकुल-स्वाधीन सुख होय। अरु हमारे शान्ति भाव प्रकटै। ऐसी प्रार्थना करैं हैं। सो यहां भी निराकुल सुखको महिमा आई। तैसे ही इन्द्र-देवनका सुख तौ साकुल है। और कल्पातीतनका सुख निराकुल है, मन्द कषाय रूप है। तातैं कल्पातीतन तैं कल्पवासीन का सुख अधिक जानना। तथा जैसे एक पांवरा—खुजली के रोग वाला पुरुष, ताने एक टटेरेका टूंक पाया। सो तिस टटेरेके टूंक तैं अपना तन खुजाय, सुखी भया। सो टटेरेमें कहा सुख है? परन्तु याके तनमें खुजली का रोग है। सो टटेरे तैं खुजाया, तब खाजिका दुख मिटने तैं कछू सुखी भया और कोई पुरुष खाज रहित सुखी है। सो ये भी सुखी है। सो इन दोऊनमें खुजली रोग वारे तैं, उस निरोगी कैं बड़ा सुख है। तातैं हे भव्य! देवांगना के सुख की वांच्छा सो ही भया खुजली का रोग सो जब देवांगना का निमित्त पावै, तब किंचित् सुखी होय है। सो ये खुजली वाले रोगी समानि है। जब काम रूपी खुजली चलै, तब देवांगना रूप टटेरा तैं खुजाय सूखी होय। सो कल्पवासी देव-इन्द्रन का सुख देवांगना का जैसा जानना। अरु अहमिन्द्रन का सुख है सो खुजली रहित, निरोगी पुरुष जैसा है। इन कल्पातीतन कैं, काम रूप खुजली रोग नाहीं। तातैं ये परम सुखी हैं। कल्पावासीन कैं काम रोग है। अरु

कल्पातीतन का रोग रहित सुख है। ऐसे तेरे प्रश्न का उत्तर जानना। सो ऐसा जो अहमिन्द्र पद है, सो उत्तम दया का फल है। और भवनवासी देवनका नाथ नागेन्द्र ताका पद, सो भी करुणाका फल है। तातैं हेभव्योत्तम ! ये ऊपर कहे उत्कृष्ट पद, सो इन सर्वके सुख, सर्व दया भावका फल है। ऐसा जानि विवेकी पुरुषन कौं सर्व हितकारिणी जो दया, ताकौं धारणा योग्य है। आगे और भी दया भावकी महिमा कहिये है—

गाथा—तण वीजय वहु दासऊ; भय रहियों सोक तीत चतुयायो। तणांत लव चिर सुहियो, ए किप्पा फल होय सुह आदा ॥ १३२ ॥

अर्थ—तण वीजय कहिये, तनका वीर्य। बहु दासऊ कहिये, बहुत दास। भय रहियो कहिये, भय रहित। सोक तीत कहिये, शोक रहित। चतुयायो कहिये, चतुर। तणांत लव कहिये, तनके अन्त लूं। चिर सुहियो कहिये, बहुत काल तक सुखी। ए किप्पा फल होय सुह आदा कहिये, हे आत्मा ! ये दयाभावका फल है। भावार्थ—शरीर विषैं, बड़ा वीर्य होय। सो जैसे चक्रीमें षट्-खण्डके मनुष्यन तैं अधिक पराक्रम होय है। ऐसा बल पावना। तथा तीन खण्डके मनुष्यनमें जेता बल होय, तेता पराक्रम एक वासूदेवमें होय, जैसा जोर पावना। तथा कोड़ि योद्धानका बल एक पुरुषमें होय, ऐसा कोटी भटका बल पावना। लाख जोधान कों एकला जीतै, सो लख भट है। ऐसा बल पावना। सहस योद्धा जीतै, सौं सहस्र भटका बल पावना। शत भटकौं जीतै, सो शत भट होना। ऐसे कहे जो पराक्रम, सो सब दयाका फल है। जिन जीवन नें हिंसा करि पर-जीव घाते हैं। ते जीव भवान्तरमें एकेन्द्रिय-विकलत्रयमें हीन-शक्ति धारी उपजैं हैं। और कदाचित् तिर्यंच-पंचेन्द्रिय उपजैं, तथा मनुष्य उपजैं तो दीन, रोगी, शक्ति रहित, दरिद्री, हीन भागी होंय। सो ये भी पर जीवन कौं दीन जानि, तिनकी घातका फल जानना। और अनेक सेवक, बड़े-बड़े सामन्त, महा बलके धारी योधा, पराकूम धारी पै आय-आय हस्त जोड़ नमस्कार करैं। ऐसे बली, मानी राजा हजारौं जाकी सेवा करैं, आज्ञा याचैं, विनय करैं, सो ऐसा पद पावना भी दया भावका फल है। पर जीवन की सेवा आय-आय करना, हस्त जोड़ आज्ञा माननी, सो हिंसा भावका फल है। आर जिननैं परभवमें तीर

गोली, गिलोल, लाठी, मूकी, शस्त्रादिक तैं पर जीवन कूं भय उपजाया होय। ताके पाप फल तैं भवान्तरमें आय मनुष्य-पशुमें उपजै, तहां भयानीक रहै। सदीव ताका हृदय, भय तैं कम्पायमान होय। सो भयके सात भेद हैं। इस भवका भय, परभवका भय, मरणका भय, रोगका भय, अनरक्षा भय, गुप्त भय और अकस्मात् भय। ये नाम हैं। अब इनका सामान्य स्वरूप बताइए हैं। तहां इस पर्यायमें मोकों कछु दुःख नहीं होय। ऐसा विचार राखना, सो इस भवका भय है॥ १॥ और परभवमें मोकौं तिर्यंच गतिके दुःख नहीं होंय, नरकके दुख नहीं होंय तो भला है। ऐसे विचारका नाम, परलोकका भय है॥ २॥ मरण समय महा वेदना होती सुनिये है। सो मरण समय मोकों वेदना नहीं होय, तो भला है। ऐसे विचारका नाम, मरण भय है॥ ३॥ और जहां औरनकी अनेक रोग-वेदना देख, भयवन्त होना। जो ये रोगके बड़े दुःख हैं मोकों कोई बड़ा रोग नहीं होय तो भला है। ऐसे भय रूप रहना सो रोगका भय है॥ ४॥ और जहां यह कहना कि जो मेरे कोई सहायक नाहीं। सहाय विना सुख कैसे होय? मैं अशक्त हों। ऐसे भय रूप होय विचार करना सो अनरक्षा भय है॥ ५॥ और यहां मोकों तथा वहां मोकों, कोई भय नहीं होय। मैं इस घरमें बैठा हों सो घर नहीं गिर पड़ै। तथा इस घरमें कोई सर्पादि दुष्ट जीव मोकों खाय नहीं। तथा कोई बैरी मोकों मारै नहीं। इत्यादिक भय रूप भाव रहना, सो गुप्त भय है॥ ६॥ मोकों कोई अचानक-अकस्मात् भय नहीं होय तो भला है। ऐसे भावनमें भय राखना सो अकस्मात् भय है॥ ७॥ ऐसे कहे जे सप्त भय सो जीवन कूं दुख उपजावैं हैं। सो ऐसे भयका होना सो निर्दय भावन तैं पर कौं भय उपजाया, ता पापका फल है। इन ही सप्त भय तैं रहित, निर्भय भाव निशंक होय रहना सो दया भावका फल है। और जिननैं परभवमें मन, वचन काय करि पर-जीवन कौं शोक कराया होय तिस पापके फल तैं भवान्तरमें सदीव शोक रूप रहैं। सदीव शोक रहित सदा सुखी मंगलाचार रूप रहना, सो दया भावका फल है। जानैं पर कौं बुद्धि सीखवेमें, ज्ञानाभ्यसमें घात करी होय। द्वेष भाव तैं पराई बुद्धि, घात करी होय। सो बुद्धि रहित मूर्ख उपजै। अनेक बुद्धिका प्रकाश पावना, अनेक कला पावनी, धर्म-कर्म सम्बन्धी अनेक चतु-

राईका पावना, इत्यादिक गुण होना, सो पर-जीवनकी दयाका फल है। कोई जीव माताके गर्भमें आया, सो नव मास तो उदरमें दुखी भया। फेरि जन्म धरया। सो जन्म तैं ही माता-पिताका मरण भया। तब असहाय होय, महा दुख तैं आयुके वशाय जीय, तरुण भया। सो भी ऐसे ही अन्न रहित, पट रहित धन रहित, मान रहित इत्यादिक महा दुःख तैं पर्याय पूरी करि, परभव गया। सो ये निर्दयी भावनका फल है। जब तैं माताके गर्भमें आए, तब ही तैं सदीव घरमें पूरण मंगलाचार होना। जन्म भया तब तैं ही, अनेक दान, पूजा, गीत होते भए। अनेक सुख पूर्वक तरुण अवस्था कौं प्राप्त होय, महा सम्पदाके धनी हुए, सो दया भावका फल है। सो ऐसा जानि अपने सुख कौं, पर जीवनकी रक्षा करना योग्य है। आगे और भी दया भावकी महिमा बतावैं हैं—

गाथा—झहियो आरय झाणउ तणांगोपांगाय सहु णीको। सउ बन्धव णेह करयो कोमल चित्तोय होय किप्पाए॥ १३३॥

अर्थ—झहियो आरय झाणउ कहिए, आर्त्तध्यान करि रहित होय। तणांगोपांगाय सहु णीको कहिए, तनके अंगोपांग सकल शुद्ध होंय। सउ बन्धव णेह करयो कहिए, सकल बांधवन विषैं प्रीति होय। कोमल चित्तोय कहिए, कोमल चित्तका होना। होय किप्पाए कहिए, ए सब दयाभाव तैं होय। भावार्थ—जीव कूं नहीं सुहावती जो वस्तु, तिनके मिलाप कर भई जो आरति, तथा भली वस्तुके जानेकी आरति, खोटी वस्तुके मिलापकी आरति, रोग होनेकी तथा भयके मेटनेकी आरति, तथा आगे मैं ऐसा करूंगा इत्यादिक भावनके विचार कर अपने उरमें खेदका करना, सो निर्दय भावका फल है। और इन च्यारि भेद आर्त्तभाव रहित निराकुल सुख रूप भाव रहना, यह दयाका फल है। और जिननैं अंगोपांग सहित सुघड़ शरीर पाया होय, सो दयाका फल है। तिन अंगोपांगके नाम हस्त दोय, पांव दोय, छाती, पीठ, मस्तक और नितम्ब ए अष्ट अङ्ग हैं। सो इनका शुभ-शास्त्रों प्रमाण आकार पावना सो करुणा भावका फल है। और केई नेत्र रहित केई जिह्वा रहित केई श्रोत्ररहित इत्यादिक उपांग रहित होना। तथा पांव रहित, हाथ रहित होना। अंगुली, नासिकादि अंगोपांग करि हीन होना। महा विकट शरीर का आकार, भयानीक पांव केरूप होना, महा कुघाट शरीर पावना, ये

सब निर्दय परणाम का फल है। और सर्व कुटुम्ब माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री इत्यादिक सर्व बांधव सुखकारी मिलना, सो दया भाव का फल है। पुत्र भला, ताकूं पिता खोटा। भला पिता कूं पुत्र खोटा। भली माता के पुत्र=पुत्री दोऊ खोटे। पुत्र—पुत्री कों माता खोटी। परस्पर भाई खोटे। भली स्त्री कूं भर्तार खोटा। भले भर्तार कूं, स्त्री खोटी। इत्यादिक परस्पर कुटुम्ब विषैं विरोध भाव केई महा क्रोधी, केई मानी, केई दगाबाज, केई लोभी, केई कुव्यसनी, केइ चोर, केई ज्वारी, केई पाखंडी और केई परस्पर बांधव द्वेष सहित विरोधी मिलैं, सो हिंसा भाव किये, तिनका फल है। और जिन जीवनके दीरघ पुन्यका फल उदय होय, सो कोमल चित्त पावैं। ताकैं कोई तैं द्वेष भाव नाहीं। कोई कूं दुख नहीं वांच्छैं। सर्वका हित वांच्छनहारा ऐसा कोमल चित्त पावना, सो दया भावका फल है। और जाकौं पर जीव वहुत दुखी देख, दया नहीं उपजै। ऐसा कठोर चित्त पावना, सो निर्दय भावका फल है। ऐसे ऊपर कहे शुभ लक्षण, आरति रहित शुभ भाव, शुद्ध अंगोपाग, कुटुम्ब मोही, कोमल चित्त ये सब शुद्ध सामग्री पावना, सो दया भावका फल है। आगे करुणा भावकी महिमा और भी कहिये है—

गाथा—कम्म हणी शिव कणणी, तणी भव णीर वीर षड कायो। जणणी इव जीव रखय, किप्पा इव जोय होय शिव आदा॥ १३४॥

अर्थ—कम्म हणी कहिये, कर्म नाश करनी। शिव कणणी कहिये, मोक्ष कारणी। तणी भव णीर कहिये, संसार-जलकौं जहाज। वीर षड कायो कहिये, षट्काय कों भाई सम। जणणी इव जीव रखय कहिये, माता समान जीवकी रक्षा करनहारी। किप्पा इव जोय होय शिव आदा कहिये, दयाभाव कों ऐसा जानै तो यह आत्मा मोक्ष होय। भावार्थ—धर्मके अनेक अंग हैं। तप, जप, संयम, व्रत, ध्यान, नग्न रहना, वड़ें—वड़े तप करना। पक्ष, मास, वर्षके अनशन करना महाव्रत, समिति, गुप्ति पालना। इन्द्रियनका जीतना। भूख—प्यास सहना पञ्चाग्नि तपना। शीशपै केशनका बधावना। चर्मादिक तैं शरीर ढांकना। वस्त्र का त्याग करना। ऊर्ध्व पांव, अधो शीश झूलना। भूमि विषैं गड़ि मरना। जीवत ही अग्निमें जरना। पर्वत पात करना। जल प्रवाह लेना। कंद, मूल, बनसपति खावना। अन्न तज, दूध-मठा पीवना। इत्यादिक

अनेक कष्ट मारग हैं सो यह जीव, धर्मके निमित्त अनेक कष्ट खाय है। सो ये कहे जो कष्ट, सो दया भाव बिना मोक्ष मारग नहीं करैं। सर्व बृथा ही जांय हैं। तातैं जेते धर्म अंग हैं, तिनमें यह जीव-दया सर्व का मूल है। कैसी है यह दया, सर्व कर्मनकी काटनहारी है। दया भाव बिना, निर्दयी जीवोंके कर्म कटै नाहीं फेरि यह दया कैसी है, या बिना सिद्ध पद नहीं होय। कैसा है सिद्ध पद, जन्म-मरण रहित है। निराकार, निरंजन-कर्म अंजन रहित है। फेरि कैसा है मोक्ष पद, देव, इन्द्र चक्री, धरणेन्द्रादि महान पुरुषों करि पूजवे योग्य है। सो ऐसे सिद्ध पदकों यह दया भावही देय है। दया रहित प्राणीनकौं ऐसा सिद्ध पद होता नाहीं। बहुरि कैसी है दया, संसार-समुद्रके दुख-जल, ताहि पारि करवे कौं, जहाज समान है। दया नाव बिना, संसार-सागर तिरचा नहीं जाय है। हिंसा-धर्म है सो पाहन जहाज समानि है सो ये आप भी डूबै है और पाहन-नावका आश्रय लेनेहारा भी डूबै है। तातैं हिंसा तजि, दया भाव राखना भला है। बहुरि ये दया भावना कैसी है। षट् कायक जीवनकी रक्षा करबे कौं भाई समान है। कैसे हैं षट् कायक, सो कहिये हैं। पृथ्वी कायिक तौ, मिट्टी-पाषाणादिकके जीव हैं। अपकायिक, जलके जीव हैं। तेज कायिक, अग्निके जीव हैं। वायु कायिक, पवनके जीव हैं। बनस्पति कयिक, हरी—पीली बेलि, घास, बृक्ष। इन आदि अनेक तनके धारी पञ्च स्थावर हैं। और त्रस जो बेइन्द्रिय-इल्ली जोंक, नारुवा, कैंचुवा आदि बेइन्द्रिय हैं। तेइन्द्रिय,-चींटी, चींटा, खटमल, कुंथुवा, इन आदि अनेक तनके धारी तेइन्द्रिय हैं। और चौइन्द्रिय में मक्खी, मच्छर, भ्रमर, टिड्डी, इन आदि चउ इन्द्रिय हैं। पंचेन्द्रियमें देव, मनुष्य तिर्यंच, नारक ये सर्व त्रस हैं। सो ऐसे कहे जो त्रस-स्थावर षट् कायिक जीव, सो इनकी रक्षा करवै कौं दया भाव, भाई समानि है। और इन षट् कायिक जीवनकी रक्षा करवे कौं दया, माता समानि है। जैसे माता पुत्रकी रक्षा करै है। ऐसेही दया, सब जीवोंकी रक्षा करै है। तातैं हे भव्यात्मा, ये दया सर्व गुण भण्डार जानि, याका साधन करि। याके उत्कृष्ट सेवन कौं जानैं, तो कूं मोक्ष होयगी। यहां प्रश्न-जो दया के उत्कृष्ट जानैं ही मोक्ष कैसे होय? दया पालैगा तो मोक्ष होयगी। ताका समाधान—जो हे भव्य, जो तैंने कही सो सत्य है। परन्तु जाकौं उत्कृष्ट

जानैं तो ताका सेवन भी करै। तातैं प्रथम पक्का श्रद्धान करावना, कि दया तैं मोक्ष होय है। जैसे लौ-
किक में भी ऐसी प्रवृत्ति देखिये है। जो जाकौं बड़ा मानैं, तो ताके वचन की भी प्रतीति करै है। जो
फलाना बड़ा आदमी है, उदार है, ताकी सेवा किये अनेक जीव धनवान् होय सुखी भये। सो मोकों भी
याकी सेवा मिलै, तौ मोकों भी धन मिलै। मैं भी सुखी होऊं। ऐसे पुरुष की सेवा विना, चाकरी विना,
दरिद्रता जाती नाहीं। ऐसा दृढ़ श्रद्धान होय है। तब पीछे यह धनका इच्छुक, सुख के निमित्त, उस ऊंच
पुरुष की सेवा करवे कौं. वाके पास जाय, मान तजि, नमस्कार करि, बारम्बार शीश नमावै, विनय करै है।
ताकी आज्ञा प्रमाण करै। निश-दिन सेवाविषैं सावधान रहै। अनेक भूख—प्यासादिक कष्ट सह करि भी
रहै। कष्ट सहै, परन्तु उसकी आज्ञा भंगा नहीं करै। जब वह बड़ा पुरुष, याकी सेवा बहुत प्रीति सहित
जानैं, तब वह उत्कृष्ट पुरुष याकौं धन देय सुखी करै है। और कदाचित् सेवा करनेहारे कौं बड़े पुरुष का
उत्कृष्टपना भासै ही नाहीं, बड़ा ही नहीं जानै, तौ सेवा वैसे करै ? अरु सेवा नहीं करै, तौ याका दुख—
दरिद्र कैसे मिटै। तातैं प्रथम ताके बड़प्पन कौं जानै, तौ पीछे श्रद्धान होय। जो ये बड़ा पुरुष है, याकी
सेवा किये सुखी होऊंगा, तब सेवा करै ऐसी प्रतीति लौकिक में प्रत्यक्ष देखिए है। सो पहिले जानपना
होय। पीछे श्रद्धान होय। ता पीछे ताकी सेवा करी जाय। तैसे ही दया—भाव की उत्कृष्टता पहिले जानैं,
तौ पीछे ताका दृढ़ श्रद्धान करे। पीछे दया कौं उत्कृष्ट जानि, ताकी रक्षा करै-सेवा करै। दया धर्म की
पूजा करै-विनय करै। जब याके ऐसा सांचा दृढ़ श्रद्धान प्रगटैगा। तब इस निकट संसारी भव्य के ऐसे
परणाम होंयगे, जो सुख का समूह तौ मोक्ष स्थान है। अरु मोक्ष है, सो दया—भाव तैं होय है। सो मैं
महा गृहारम्भ विषैं पड़्या हों। तहां पर—जीवन की रक्षा होती नाहीं। मोकौं मोक्ष के सुख कैसे होंय ?
तातैं सर्व प्रमार दया—मारग सद्गुरु जानैं हैं। वह गुरु दया का भण्डार बाजैं हैं। तातैं मैं गुरु के पास जाय,
विनती करौं। तौ दया के समूह मोपै कृपा करके, मेरा मनोरथ पूर करेंगे। एसा विचार करि, ये भव्यात्मा,
मोक्षाभिलाषी, श्री गुरु पै जाय, नमस्कार करि, तीन प्रदक्षिणा देय, महा विनय सहित हस्त जोड़ खड़ा

होय, अपना अन्तरंग अभिप्राय कहता भया। हे नाथ ! हे दीन दयालु ! मैंने सांसारिक सुख बहुत भोगे। परन्तु हे नाथ ! मेरी वांच्छा पूर्ण नहीं भई। जैसे कोई अन्तरंग ज्वर का रोगी, सदीव क्षीण तन होय। सो तन पुष्ट करवे की बड़ी इच्छा जाकैं, सो तन स्थूल करवे कौं अनेक पुष्ट--गरिष्ट भोजन करै। परन्तु पुष्ट होता नाहीं, दिन--प्रति क्षीण होता जाय है। याकी इच्छा पूरतो नाहीं। तातैं दुख ही बधै है। तैसे ही हे नाथ ! मैंने सुखी होयवे कूं अनेक भोग-सामग्री पाय-पाय भोगी। परन्तु सम्पूर्ण सुखी नहीं भया। सो मेरे सर्व सुखी होयवे कौ इच्छा बनी रहै है। मेरैं इच्छा नाम रोगका महा दुख, मिटता नाहीं। तातैं भो जगत गुरु ! जैसे मोकौं सम्पूर्ण सुखकी प्राप्ति होय, सो ही उपदेश करौ। जाकै धारण किए, मैं सुखी होऊं। अब मोकौं यह इन्द्रिय जनित सुख है सो महा भय उपजावै है, प्रिय नाहीं। तातैं अब आज्ञा करौ, सो ही करूं। तब योगीश्वर ने जानी, जो ये जीव मोक्ष सुख कौं बड़ा--सर्वोत्कृष्ट जानै है, ताही के योग करि याके दृढ़ श्रद्धान प्रगट्या है। ऐसा विचार, आचार्य दया भाव करि कहते भए। भो भव्य ! तैंने भली विचारी। यह सांसारिक भोग, अज्ञानी जीवन कौं अपने सुख की आभासा सी दिखाय, मोह उपजावैं हैं। बाकी यैं सर्व--इन्द्रिय भोग, रोग करि पूरित हैं। गुण रहित हैं। जैसे शरीर बाह्य में मोही जीवन कौं सुख की आभास सी बताय, मोहित करै हैं। बाको सुख रहित है। सप्त धातु मई, श्रोणित, पक्व रुधिर, अस्थि, रोम, तिन करि स्थान--स्थान पूरित है। ऊपर चरम तैं लिपटा है। विनाशीक है। इत्यादिक अनेक अवगुण करि भरा है। तातैं हे भव्य ! ऐसा विचार, जो ये शरीर विनश्वर है। सो याके आसरे जो इन्द्रिय जनित सुख, सो ये कैसे स्थिरीभूत रहेंगे ? और हे भव्य, देख। शरीर तौ ऐसा है, अरु तूं इस शरीर में बैठा है। बहुत काल का या तन के मोह करि इसमें बंध्या है। तातैं तूं विषयन तैं उदासीन भया है। सो हे भव्यात्मा ! ऐसा ही तूं इस शरीर तैं भी उदास होऊ। ज्यों तेरी अभिलाषा पूर्ण होय। क्योंकि ये शरीर विनाशीक है। तातैं अब जेते याकी स्थिति है तेते तूं यातैं दीक्षा अङ्गीकार कर उत्कृष्ट दय-धर्म पाल। और मोक्ष जा। क्योंकि जो त्रस-स्थावरकी सर्व प्रकार दया, इस गृहस्थावस्थामें तौ पलै नाहीं। काहे तें, जो इस परि-

ग्रहके संयोग तैं उत्कृष्ट दया पलती नाहीं। लंगोट मात्र परिग्रह होय, तौ भी सम्पूर्ण दया नहीं बनै, तो इस बहुत परिग्रहमें कैसे पलै? तातें हे भव्यात्मा, सर्व प्रकार त्रस-स्थावर जीवनकी दया, महाव्रत भये पलै। तातें अब तूं भले प्रकार महाव्रत अङ्गीकार कर। समता भाव धारि, शुभ भाव धारि। त्रस-स्थावर जीवनकी रक्षाके निमित्त सर्व जीवन तैं क्षमा भाव करि कैं, सर्व कूं अभय दान देय। तब तूं सर्व दया का धारी भया जातें अब तेरे नूतन कर्मका बन्ध हो गया नाहीं। और आगे तैंने अज्ञानावस्थामें इन्द्रिय और शरीरके पोषवे कूं हिंसा करि कर्म कों बांधे थे, सो याही शरीर तैं नाना प्रकार तप करकै, पिछले कर्मनका नाश करि। सर्व कर्मका नाश भये, तूं मोक्ष सुख पावैगा। सो वह मोक्ष-सुख अविनाशी है, अखण्ड है अनंत है। ये सुख भये पीछे जाता नाहीं। हे भव्य यहां तेरी अभिलाषा पूरी होयगी। ऐसे आचार्य ने कह्या सब शिष्य गुरुकी आज्ञा सुनि महा विनय तैं उल्लास करि ऐसा विचारता भया। जो आजका दिन धन्य है। आजि मोकों गुरु ने ऐसा इलाज बताया जा करि मेरे पूरव किये पापका नाश होयगा। और अनन्त सुखका स्थान सर्व कर्म रहित निरंजन पद केवलज्ञान सहित सिद्ध पदकी प्राप्ति होयगी। सो अब तौ श्री गुरुके प्रसाद करि मैं मोक्षको पाऊंगा। सो ये उपकार गुरुनका है। ये गुरु वांच्छित सुख देने कूं कल्पवृक्ष समान हैं। परन्तु कल्पवृक्ष तौ एक स्थान ही स्थिरीभूत रहै। यापै कोई चल करि आवै तौ फल पावै। घर बैठे देने नाहीं जाय है। और तामें भी यह भोजन-भूषणादि इन्द्रिय जनित सुख देय सो भी शाश्वत नाहीं। किञ्चित् काल सुखसा दिखाय विनश जांय। और श्री गुरु कल्पवृक्ष हैं। सो भव्य जीवन कूं घर बैठे ही वांच्छित सुख देवे कूं आप देश विहार करि सबकी आशा पूरै हैं। तातैं श्री गुरु धन्य हैं। जिनकी क्रिया करि संसारी जीव मोक्ष पावैं। ऐसे नाना प्रकार गुरुकी महिमा करि पीछे शिष्य गुरुके बताये नाना प्रकार तप तिनकों करि सर्व कर्म नाशके मोक्ष-रानीका भर्तार होय है। तातें प्रथम जानना होय पीछे जानी वस्तुका पक्का श्रद्धान होय। सो श्रद्धान होय तो कष्ट पाय कें भी अपने भलेका कार्य करै ही करे। ऐसे तेरे प्रश्नका समाधान जानना। तातें हे भव्य पहिले तो भली-बुरी वस्तुका जानपना

होय। भले प्रकार जाने पीछे ताका दृढ़ श्रद्धान होय और भली-बुरीका निरधार करै है। और कोई बाल-बुद्धि पदार्थ कौं जानैं। परन्तु तामें ताका ग्रहण-त्याग नहीं करि जाने। ऐसे मिथ्यादृष्टी मोहित भोरे जीव संसारमें बहुत हैं। इनके ज्ञानके जानपनेका इनकौं कछु नफा नाहीं। इन मिथ्याज्ञानीनका जानपना निज-पर जीवनके ठगवे कौं प्रगट होय हैं। और सम्यक्त्व सहित जानपना है सो तामें पहिले श्रद्धान करि पीछे तिनका त्याग-ग्रहण होय है। सो जो अपने भले योग्य हितकारी परभवमें सुखकारी होय सो ताका तो ग्रहण करै। और जो पदार्थ आपकौं इस भव-परभव में दुखकारी होंय, पाप बंध करता होंय, परंपराय जातैं दुख होता जानैं, तिनपदार्थनका त्याग करै। ऐसा त्याग-ग्रहण करि सम्यक्दृष्टी जीव नैं ऐसा विचास्या। जो सर्व धर्म-अङ्गनमें एक दया भाव है सो मुख्य धर्म है। काहे तैं जो तप, संयम, दान पूजादि हैं सो तो धर्मके अङ्ग हैं। जीव दया है सो ये मूल धम है। इस जीव दया के पालवे के निमित्त धर्म है। सो हिंसाके कारण राज्य, गृहारम्भ छाँड़ि अपने तन सम्बन्धी भोगन तैं ममत्व भाव छोड़ कैं, पीछे मोह तजि, नग्न काय होय, सर्व षट्कायिक जीवन के सुख देवे कौं, आप यतीका पद धरया। तहां सर्व प्रकार जीवन की रक्षा करि, जगत्पूज्य सिद्ध पद ताकौं पाय मोक्ष स्थान विषैं अखण्ड सुखो होता भया। तातैं यह बात सिद्ध भई, कि जो दया ही धर्म है। दया बिना कोई धर्म कहै, सो वृथा है। और लौकिक में भी बाल—गोपाल दया ही कौं धर्म कहै हैं। तथा और देखो, इस दया की षट् मत विषैं प्रसिद्ध है। व सर्व जीव यश गावैं हैं। देखो जो अज्ञान-रंक भूखा होय, सो भी ऐसा कहै है। कि जो हम भूखे हैं सो कोई दया धर्म का धारी होय, सो हमारी दया कर हमारा दुख मैटो। सो देखो, रंक भी ऐसा जानैं हैं। और दया कौं ही धर्म कहैं हैं। तौ जे विवेकी हैं सो तौ दया में धर्म कहैं ही। तातैं ऐसा जानना, जो ये दया सो ही धर्म है। तातैं जगह जगह जिनेश्वर देव ने भी ऐसा ही कह्या है। कि दया धर्म है। सो अब ऐसा विचार कैं, धर्म एक दया ही का निश्चय करना। अब ऐते भी कोई प्राणी, जीव घात में ही धर्म मानैं, तो याका चित्त ही महा कठोर है। याका परभव बिगड़ना है व दुखी होना है। याकौं परभव में दुखदायक पर्याय उपजैगो। दीन, दरिद्री,

अन्धा, असहाय हीन होना है। तथा नारकी व पशु होना है। इन स्थान में महादुखी होयगा। इसका किया ये ही भोगवेगा। इसके श्रद्धान की यही जानै। परन्तु हमने तौ ऐसा ठीक किया, कि जो धर्म एक दया-भाव है। तातैं जिनकौं परम सुखकी इच्छा होय। सो धर्मात्मा, सर्व जीवन तैं क्षमा भाव करि षट् काय जीवन कौं अभयदान देओ। बहुत कहवे करि कहा। ऐसा अवसर फिर मिलना कठिन है।

इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, हिंसा निषेध, दया का माहात्म्य वर्णनो नाम तीसवां पर्व सम्पूर्णम्।

आगे राज लक्षणों का स्वरूप कहिये हैं। जाकरि प्रजा सुखी होय, राजाका तेज-प्रताप बधै, लक्ष्मी बधै, यश होय, सुखी रहै, परभव सुधरै। ऐसे गुण श्री आदि पुराण जी अनुसार कहिये है—

गाथा—षट् गुण चव विद्याए, पण वल अणि होय सुभग गुण सेसा। सउ णिप जस लछि पावइ, फुण तव लेय होय सिव णाहो ॥ १३५ ॥

अथ—षट् गुण चव विद्याए कहिए, छह गुण अरु च्यारि विद्या। पण वल अणि होय सुभग गुण सेसा कहिए, पंच बल और अनेक गुण होंय। सउणिप जस लछि पावइ कहिए, सो राजा यश-सम्पदा पावै। फुण तव लेय होय सिव णाहो कहिए, फिर तप लेय मोक्ष लक्ष्मी का भरतार होय। भावार्थ—ऐसे षट् गुण, च्यारि विद्या अरु पंच—बल ये राजान के गुण हैं। सो जिनमें ये गुण होंय, सो भला प्रजापति है। सो ही प्रथम षट् गुण कहिए हैं। प्रथम नाम संधि, विग्रह, यान, आसन, संस्थान और आश्रय। ये षट् भेद हैं। अब इनका विशेष कहिए है। तहां कोई आप तैं अधिक बलवान राजा, बड़ो फौज का धारी होय। तथा आगे कहेंगे राजाओं के पांच गुण, सो आप तैं पर-राजा के पास बहुत होंय आप तैं पंच बल भी तिस राजाके पास बलवान होंय। जातैं युद्ध किए जीतिए नाहीं। ऐसा बलवान बैरी होय। तौ ताकौं ग्राम, देश, धरती देय राजी कीजिए। हस्ती-घोटकादि दीजिये। अपने घरका उत्तम रतन-धन दीजिये। ताकी विनय कीजिये। ताकी सेवा चाकरी कीजिये। जैसे बनै तैसे, प्रबल बैरी को राजी कीजिये। तासों स्नेह होय, सो ही कीजिये। ताका नाम संधि नामा गुण है। सो जो विवेकी राजा--मंत्री, भली बुद्धि कौं धरैं हैं। सो इस संधि गुण कौं अवसर पाय प्रगट करि, अपना राज्य राख, सुखी होंय हैं। और ये संधि

गुण जामें नहीं होय, तौ अपने तैं विशेष जोरावर राजा तैं युद्ध करि, रावण की नाँई मरण पावै। कुल क तनका, धनका दाय होय। राज्य जाय दुखी होय। जातैं विवेकी राजा हैं ते कोई ऐसे ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, जानके इस संधि गुण के बल करि बैरी कौं उपशान्त करैं हैं। आप तैं जोरावर राजा तैं शीश नमावते, उसकी सेवा करते, अपना मान-खंड नहीं मानैं। बलवान—सेवा, अपनी रक्षा का कारण जानि, संधि करैं हैं ये विवेकी राजाका धर्म है। इति प्रथमं संधि गुण ॥ १ ॥ आगे विग्रह गुण कहिये है। तहां और कोई राजा प्रबल—बैरी धीठ बुद्धि होय। धन देते, देश देते, चाकरी कबूल करते, हस्ती-घोटकादि देते, इत्यादिक विनय करते जो बैरी उपशान्त नहीं होय, तो पीछे युद्ध करै। युद्ध में शंका नाहीं करै। निशंक होय बैरी तैं युद्ध करै। अपना पुरुषार्थ-पराक्रम प्रगट करै। सो विग्रह नाम गुण है ॥ २ ॥ आगे यान गुण है सो कहिए है। जे महान् वंश के उपजे राजकुमार, तिनकौं यान गुण में प्रवीणपना चाहिये। सो ही बताईए हैं। हस्ती की असवारी, गज का जीतना, गज क्रीड़ादि में गज को चलावना, अपने वश हस्ती करना। इन आदि गज-असवारीमें सावधान रहना। और घोटक चढ़ना, दौड़ावना दुष्ट अश्व को वशीभूत करना इत्यादिक घोड़े की असवारी में सावधान होय। तथा रथके चलावैमें सावधान होय। रोज की असवारी जानैं, सिंह की असवारी जानैं। करहा सांड की असवारी करना जानैं। महिष की असवारी, वृषभ की असवारी, गैंडा की असवारी, इत्यादिक असवारिन में प्रवीणता, सो यान गुण है। सो ये गुण राज—पुत्रन में अवश्य चाहिए। ये गुण नहीं होंय, तो युद्ध हारैं। और अन्य राज-पुत्रन में जांय, तौ लज्जा पावैं। तातैं यान गुण चाहिए। इति यान गुण ॥ ३ ॥ आगे आसन गुण कहिए है। राजानमें आसन गुण चाहिए। तहां बैठवे की दृढ़ आसन चाहिए। जहां तिष्ठै, तहां एकासन दृढ़ होय बैठे, चलाचल आसन नहीं राखै। कबहूं कहीं, कबहूं कहीं ऐसे चंचल भाव नहीं होय। एक स्थान दृढ़ होय तिष्ठै। तथा देशान्तर गमन करते जहां मुकाम करै, तहां अपने तनकी सावधनी करै। जहां जल तृण अन्नकी प्रचुरता होय, तहां मुकाम करै। तथा सैन्याके लोकनकी रक्षा करै। जहां डेरा होय, तहां अपने तनके

मोही सेवक-सुभट तिनके डेरा अपने चौ-तरफ राखि, अपने तनकी रक्षा देख, मुकाम करै। इत्यादि सावधानी राखनी। सो आसन गुण कहिए। ये आसन गुण है ॥ ४ ॥ आगे संस्था गुण कहिए है। संस्था गुण ताकौं कहिये जो अपने मुख तैं वचन बोलना, सो फेरि अन्यथा नहीं होय। वचनकी दृढ़ता राखनी जो वचन बोल्या, सो ताकी मर्यादा निवाहनी। तन गये भी जो वचन कह्या, ताकौं नहीं उल्लंघिये। जैसे दसरथ राजाने अपनी रानी कैकईको वर दिया सो समय पाय वानै पुत्र-भरत कूं राज्य याच्या। सो अयोध्याका राज्य भरत कूं देय, वचन राख्या। तैसे ही राजान कौं अपने वचनकी दृढ़ता राखनी, सो संस्था गुण है। ये वचन-दृढ़का गुण राजामें नहीं होय, तौ ताकी प्रजा दुख पावै। अन्याय विस्तरै। राजाका वचन प्रतीति रहित भये, अपयशादि दोष प्रगटै। तातैं वचन सत्य बोलना, सो संस्था गुण है। इति संस्था गुण ॥ ५ ॥ आगे आश्रय गुण कहिये है-सो राजानमें आश्रय गुण चाहिये। कोई भयवंत होय, जोरावरका सताया, अपने आश्रय आवै तो आप ताकूं अपने शरण राखै। संतोष उपजावै। तथा आप पै भय आये, आप तैं प्रबल होय ताके आश्रय जाय, सुखी होना। सो अपने तैं बड़े के शरण जावेमें, अपना मान खंड नहीं मानना, और अन्य कूं अपने आश्रय राखनेमें काहूका भय नहीं करना। ये आश्रय नाम गुण है। ये गुण नहीं होय, तो महिमा नहीं पावै।। तातैं आश्रय गुण राजानमें चाहिये। इति आश्रय गुण ॥ ६ ॥ ऐसे राजोंके षट् गुण जानना। आगे राजोंके सीखवे योग्य च्यारि विद्या हैं, तिनका कथन कहिये है। प्रथम नाम आनीषकी विद्या, त्रई विद्या वर्ता विद्या और दण्डनी विद्या, ये च्यारि हैं। अब इनका सामान्य स्वरूप कहिये है। जैसे जौंहरी अपनी बुद्धिके योग तैं, भले-बुरे रत्न कूं जानैं। तैसे ही विवेकी राजा, प्रथम तो अपने-पराये बल-पराक्रम कौं जानै। ऐसा विचारै, फलाने राजाका पराक्रम ऐसा, उस राजाकी सैन्या इतनी, भुजबल ऐसा, वाके एता मुल्क ऐसा खजाना है। ऐसे-ऐसे सामन्त राजा ताके सेवक हैं। ऐसे बुद्धिमान् मंत्री हैं। और मेरे शरीरका जोर एता है, मेरा एता मुलक है, एता खजाना है। एते सामंत-सेवक हैं। ऐसे मंत्री हैं। इत्यादिक भेद जाने, सो विवेकी राजा है। और जो अपने-पराये पराक्रम विषैं नहीं समझै, तो आप तैं बड़े बलवान् राजा तैं

द्वेष करि, अपना राज्य खोय, दुखी होवै। अपने सेवक, मित्र, प्रजाके लोग इनके स्वभाव कूं जानैं। जो ए बुरा है, ये भला है। ये दुष्ट अंगी है, ये सज्जन अंगी है। ये गुण-लोभी है। ये सत्यवादी है। ये झूठा है। ये स्वभावका धरनहारा है। ये पराया बुरा करनहारा, चुगल है। ये परके भलेका करनहारा है। यह यशका लोभी है। ये धनका लोभी है। ये चोर स्वभावी है। यह क्रोधी है। ये मानी है। यह दगाबाज-मायावी है। यह सरल स्वभावी है। यह चित्तका उदार है। यह सूम है। यातैं मोकौं सुख है। यातैं मोकों निन्दा आवै है। यातैं मेरा यश होय हैं। यह पर कौं पीड़ै है। ये परका रक्षक है इत्यादिक विवेक-विद्या, राज पुत्रन कौं सीखना सुखकारी है। याका नाम आनीषकी विद्या है। इस विद्याका ज्ञान होय, तौ अपने ज्ञान-बल तैं, कठोर चित्ती है तिनकौं कोमल करै। यहां प्रश्न-जो कठोर स्वभावी है तिनकौं कोमल स्वभावी कैसे करै? ताका तौ स्वभाव ही कठोर है, सो वस्तुका स्वभाव कैसे मिटै है? ताका समाधान-जैसे पृथ्वी-काय स्वर्ण चांदी, तांवा, पीतल, लोहादि अनेक धातु करि, अनेक बर्तन बनैं है। सो ये सर्व ही धातु कठोर हैं। सो भला करीगर, इन धातूनकी कठोरता जानि, प्रथम तौ अग्नि में तपावै है। पीछे घन तैं, हथौड़े तैं कूटै है। बहुरि तपावै है। ऐसे करते, कछू नरम पड़ै है। तब छोटी हथौड़ी तैं अल्प पीटै है। ऐसे सख्त, महा-कठोर धातु भी विवेकीके हाथ पड़े है, तब नर्म होय है। तैसे ही दुष्ट मनुष्य है, सो महा कठोर है। तिनकौं विवेकी राजा, अपनी न्याय बुद्धिके बल करि उनकौं, उन योग्य कठोर दण्ड ही देय है। तब दुष्ट प्राणी भी, राजाके दीरघ भय करि अपनी कठोरता तजि कोमलता रूप होय हैं। पीछें तिनकौं भला निमित्त मिलै, तौ वे भी अपना भला करैं हैं। ऐसे यह आनीषकी विद्या है सो महान् वंशमें उपजे जो विवेकी राजा, तिनके सीखवे योग्य है ॥ १ ॥ आगे दूसरी त्रई विद्या। सो विवेकी राजा शास्त्रनके वेत्ता, जान्या है इस भव-परभव सुधरनेका भेद जिननैं, सो महान् बुद्धि धर्मशास्त्रके वेत्ता पाप-पुण्यके फल कौं जानि आप पाप तजि अनेक धर्म अंग दान-पूजादि तिन रूप परणमैं। और जिन क्रियान तैं पाप बधै हिंसा होय दुराचार प्रगटैं ऐसी क्रिया अपने मुल्कमें नहीं होने देंय। अनेक पाप क्रिया अज्ञानी जीवनके करवेकी जिनकौं करि भोरे

जीव अपना मन [illegible]। [illegible] कौं [illegible] होय। इत्यादिक पाप प्रवृत्ति कौं जानि विवेकी राजा आप तजै और पाके अन्याय कौं [illegible] तिनकौं मने करै। अपनी प्रजा पाप रूप प्रवर्तै ताकौं दंड देय धर्ममें लगावै। जो प्रजा धर्मात्मा दयावान् [illegible] शुद्ध प्रवृत्तिकी धारी होय ताकी रक्षा सहित शुश्रूषा करै। जैसे प्रजा धर्म रूप प्रवर्ते सो ही कार्य करै। पृथ्वीमें शुभाचार वधावै। धर्म क्रिया भला आचार आप करै। औरन कौं उपदेश देय पूजा दान शील संयम तप व्रत इत्यादिक धर्मको वधावै। पाप कौं मेटै। निरंतर धर्म सेवनका भाव राखै। संसार भोग विनश्वर जानि विषयनमें रत नहीं होय। आगे महान् राजा भरत चक्री आदि बड़े-बड़े पुरुष राज्य संपदा छांड़ जिनेश्वरी दीक्षा धरि तप करि मोक्ष गये। तिनके गुणनकी कीर्ति करता वैराग्य भावनाका अभिलाषी प्रजाकी रक्षा करता ऐसे भावन सहित राज्य करै। सो यहै नाम दूसरी विद्या है ॥ २ ॥ आगे तीसरी वार्ता विद्या है। तहां नीति शास्त्रन तैं जानी है राजानकी परंपराय जानैं। सो यशका अर्थी राजा अपनी प्रजा कूं पालवेकी सुखी राखवेकी है वांच्छा जाकैं। ऐसा सुबुद्धि राजा प्रजा के न्याय अन्याय, सुख दुख जानिवे कौं फैलाये हैं देश नगरमें हलकारे रूपी नेत्र जानैं। जैसे नेत्रन से राह देखा जाय तैसे बड़े राजाके नेत्र हलकारे हैं। सो तिन सूं दूर दूरकी बात जानी जाय है। सो विवेकी राजा दसों दिशा हलकारे भेजा पृथ्वीकी खवर राखै। स्व चक्र पर चक्रकी हीनता अधिकता जानैं। तिन हलकारेन तें योग्य अयोग्य सब जानै। सो अपनी प्रजा कौं दुखदाई चोर चुगल पाखंडी अदेखा दुराचारी दीन जीवन कौं सतावनहारा इत्यादिक दुष्ट जीवन कौं जानि अपने मुल्क देश तैं निकास देय। और जे धर्मात्मा सज्जन दयावान् संतोषी संयमी न्यायी इत्यादिक गुण सहित साधु जन होंय तिनकी सेवा चाकरी रक्षा करैं। इत्यादिक हलकारान तैं प्रजाकी कथा जानै। ऐसी विवेक बढ़ावनहारी यह विद्या जिस राजाके हृदयमें वसै ताका यश होय। प्रजा सदीव सुखी रहै। यह तीसरी वार्ता विद्या है ॥ ३ ॥ आगे चौथी दण्डनी विद्या है सो यातैं विवेकी राजा अपनी न्याय बुद्धि करि अपनी बस्तीमें चोर चुगल जो अपनी आज्ञाके प्रतिकूल होय सप्त व्यसनका उपदेशक होय तिनकौं दंड देय दुखी करि लोकन कौं बतलावै कि जो कोई न्याय

तजि अन्याय चलैगा। सो ऐसा दुखी होय दंड पावैगा। और बस्तीमें जो भले मनुष्य न्यायवान् होंय तिनकी रच्चा करै। ये दण्डनी नाम चौथी विद्या है ॥ ४ ॥ ऐसी च्यारि विद्या कही। सो महान् कुलके उपजे दोऊ पक्ष जिनके पवित्र होंय ऐसे राजकुमारन कों सीखना मंगलकारी है। ये सब विद्या, जिस भूपतिके हृदयमें तिष्ठैं, सो राजा यश पावै। परम्पराय शुभ गति भोग, मोक्ष पावै। इति च्यारि राज्य विद्या। आगे राजाके पंच बल कहिये हैं। प्रथम नाम-भाग्य बल, दैव बल, मंत्र बल, शरीर बल और सामंत बल। अब इन पंच बलनका सामान्य अर्थ कहिये है। जानैं पूर्व-भवमें विशेष पुण्य किया होय, सो पुण्यके उदय-वाला जीव राज्य पावै। तौ ताकै पुण्यके आगे, अन्य राजा सहज ही भय खाय, आय-आय शीश नमावैं सेवा करैं, आज्ञा याचैं, अपने मुकुट नमावैं, ताकौं अपना प्रभु मानैं। जैसे तीन खंडका राजा वासुदेव, तथा षट्खण्डका राजा चक्रवर्ती है। सो इनका राज्य, पुण्यके उदयका है। क्योंकि जो इनकी दृष्टि महा सौम्य है। वचन महा मिष्ट हैं। तिनकी मूर्ति महा विश्वास उपजावनहारी, सुन्दर मनकौं मोह उपजावै। महा सज्जन, तिनके वचन सुनतैं पर जीवनकूं समता होय स्थिरता बन्धै। आप तौ ऐसे और इनका बाह्य प्रताप ऐसा कि तिनके भयसूं देव विद्याधर कंपायमान होंय। कोई आज्ञा भंग नहीं करि सकै। बिना भय बताये ही बड़े-बड़े पृथ्वीपति आय-आय मुकुट नमावैं। ऐसा उनके पुण्यका तेज है। जैसे सूरज, मूलमें तौ तिसकी प्रभा शीतल है परन्तु औरनकौं तेजकारी होय है। तैसे ही सूर्यकी नांईं तेज धारै। सो राजाओंका भाग्य बल है ॥ १ ॥ और कर्म जाका भला करै, ताकौं कौन विगाड़ि सकै? जाकौं कर्म भला दिखावै ताकी बुराई काहू तैं नहीं होय। जैसे रावण तीन खण्डका गाथ सर्व विद्याधरनका नाथ महा न्यायी, महा बलवान्, अरु जिसके विभीषण-कुम्भकरणसे भाई अरु इन्द्रजीत-मेघनादसे पुत्र जाके। ऐसा रावण जानैं इन्द्र-विद्या-धरकों जीत्या। अरु जीवता पकड़ लाया। ऐसा राच्चसनका पालनहारा, तीन खण्डका अधिपति। ऐसे बलीकों राम-लच्मण दोई भाइनने युद्धमें जीत्या। ये कर्मका बल है। जाकों कर्म जितावै सो जीतै। जाका कर्म भला करै ताका भला होय। सो दैव बल है। तथा जैसे मैनासुन्दराने कही। सुख-दुख कर्म करै सो होय। तब

ताके पिताने द्वेष-भावतैं कर्म-परीक्षा करवेकूं अपनी पुत्री श्रीपालजीकूं, कोढ़ी जानि परनाई। पीछें शुभ कर्मतैं श्रीपालजीका कुष्ट गया। राज्य पाया। मैंनासुन्दरी आठ हजार रानीनमें पटरानी होय सुखी भई। तव ताके पिताने देख कर्म-कर्तव्य सांचा जाना। सो यह दैव वल है॥ २॥ और जानें नाना प्रकारकी विद्याका साधन करि अनेक विद्यान कौं अपने आधीन करी। तिन विद्यानके प्रसाद करि अनेक मानी राजा जीति अपनी आज्ञा मनवावे। सो मन्त्र वल जानना ॥ ३॥ और अपने शरीरका भुजवल बड़ा होय। कोटि भट लक्ष भट सहस्र भट इत्यादिक अनेक हस्ती-सिंहकूं जीतनेका पराक्रम होना। तथा अनेक सैन्याकूं आप एकला ही जीते ऐसा शरीर-वल पावना सो शरीर वल है ॥ ४॥ और जाकी आज्ञा विषैं अनेक बड़े-बड़े सामन्त राजा होंय। सर्व सैन्याके सुभट अपनी आज्ञा प्रमाण होंय। बहुत सामन्तनका नाथ होय। सो सामन्त वल है ॥ ५॥ ये राजाके पांच वल हैं। सो विवेकी राजाकौं इनकी इच्छा करनी योग्य है। इति राजाके पांच वल। ऐसे राजाके पट् गुण, च्यारि राज्य विद्या, पांच वल। ये सर्व राजाकी सम्पदा है। जिनकी ऐसी सम्पदा होय ते राजा सदीव सुखके भोगता होय यश पावे। तप लेय, देव इन्द्र अहमिन्द्र निर्वाण एते पद पावै हैं। ये शुभ राज लक्षण कहे आगे पुण्याधिकारी पुरुषनके सीखवेकी विद्या हैं, तिनके नाम-लक्षण कहिये है। तहां प्रथम नाम-प्रथमानुयोग करणानुयोग, चरणानुयोग द्रव्यानुयोग शिक्षा कल्प व्याकरण, छन्द अलंकार ज्योतिष निरुक्त अतिहांसि पुराण मीमांसा और न्याय ये चौदह विद्या हैं। अव इनका विशेष कहिये है। तहां सामान्य बुद्धिनकौं धर्म विषैं लगावनेकूं अनेक महान् पुरुष तीर्थंकर चक्रवर्ती नारायण कामदेवादि पुरुषनकी कथा पुन्य पापका फल नरक-स्वर्गका सुख-दुख कथन इत्यादिक हितोपदेश देनेकी कला, सो प्रथमानुयोग नाम विद्या है॥१॥ अधो लोक मध्य लोक ऊर्ध्व लोक इन तीन लोकनकी सर्व रचना लोकका जो आकार तामैं च्यारि गति रचनाका कथन इत्यादिक तीन लोकके कथन उपदेश करवेकी कला सो करणानुयोग विद्या है ॥२॥ और जहां मुनि श्रावकके आचार विषैं प्रवीणता इनके खान-पानकी विधि जानना। मुनिकौं पड़गाहवेकी विधि व नवधा भक्तिकी विधि समझना त्यागी-प्रतिमाधारी श्रावककूं भोजन निमित्त ल्या-

यवेकी विधि तिनकूं भोजन देवेकी विधि इत्यादिक यती-श्रावकके उपदेश करवेकी कला सो चरणानुयोग विद्या है ॥ ३ ॥ और जहां षट् द्रव्य इनके गुण-पर्यायका समझना। जीवके राग-द्वेष भाव जैसे होंय सो जानना। और पुद्गलके स्कंध ज्ञानावरणादि कर्म रूप कैसे होंय? और जीव कर्मन तैं कैसे बन्धै, कर्मन तैं कैसे खुलै? इत्यादिक कर्मका बन्ध होना उदय होना सत्त्व रहना इत्यादिक द्रव्यानुयोगके उपदेश देवेकी कला सो द्रव्यानुयोग विद्या है ॥ ४ ॥ और शिष्यनके कल्याण होनेके निमित्त यथायोग्य उपदेश देनेका ज्ञान जो बालककौं उपदेश ऐसे दीजिये, तरुणकौं उपदेश ऐसे वृद्धको उपदेश ऐसे विशेष ज्ञानीकौं ऐसे सामान्यज्ञानी कौं ऐसे ऊंच-कुलीकूं उपदेश नीच-कुलीकूं उपदेश चंचल बुद्धिकूं ऐसे बालकतरुण स्त्रीकूं वृद्ध स्त्रीकूं, पति सहित स्त्रीकूं विधवा स्त्री कौं ऐसे इत्यादिक यथा योग्य उपदेश देनेकी कला। जैसे शिष्यजनका भला होता जाने, तैसे तिनके परभव सुधारवेकौं उपदेश देना सो शिक्षा-कल्प विद्या है ॥ ५ ॥ अनेक प्रकारके शब्दको स्पष्टता विभक्ति सहित पद सहित लिंगके साधन, धातूनके साधन सहित, शुद्ध शब्दका बोलना। अनेक गद्य काव्य, छन्दनका विभक्ति अर्थ सहित पदच्छेदन सहित, भले प्रकार अर्थ करना। इत्यादिक संस्कृतका विशेष ज्ञान बधावना सो व्याकरण विद्या है ॥ ६ ॥ जहाँ अनेक जातिके छन्द गाथा, आर्या, श्लोक काव्यइत्यादि बहुत प्रकार छन्दकी चाल जानना, परकौं उपदेश देना शिखावना सो छन्द विद्या है ॥७॥ जहां नाना प्रकार अलंकार जैसे स्त्रीका मुख चन्द्रमाके समान तथा यह नरेन्द्र अपने प्रतापके आगे सूयकूं जीतै है। इत्यादिक अलंकार कलाका सीखना-जानना-उपदेश देना सो अलंकार विद्या है ॥ ८ ॥ जहाँ चन्द्रमा, सूर्य्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा, इत्यादि इनके गमनागमन क्रिया तैं, शुभाशुभ फलका सीखना जानना उपदेशना सो ज्योतिष विद्या है ॥ ९ ॥ जहाँ नाना प्रकारकी युक्तिका ज्ञान, अनेक युक्ति उपजावना। बहु प्रकार दृष्टांतादि कलाका सीखना उपदेश देना सो निरुक्त विद्या है ॥ १० ॥ जहाँ अनेक चतुरता सहित सभा रंजित बोलवेकी कला जैसा अवसर देखै तैसे शब्द बोलवेकी कला जैसा मनुष्य देखै तैसा बोलवेका ज्ञान इत्यादिक सभा व समय पहिचान अपना-पराया पदस्थ पहिचान बोलना, इत्यादिक चतुराई सहित, सर्व सभा रंजन,

मिष्ट विनयकारी, आनन्दकारी वचन बोलवेकी कला सो अति-हांसि कला नाम विद्या है ॥११॥ और जहां धर्म कथाके अनेक पुराण वांचना, कंठ पाठ जानना-पढ़ना उपदेशना सो पुराण विद्या है ॥ १२ ॥ और जहां अनेक मीमांसादि मतांतरके शास्त्रनका पढ़ना रहस्य जानना। अनेक मतान्तरके वाद जीतवेकी कला नास्तिकमती, एकान्तमती, विनयवादी इन आदि अनेक मतनका रहस्य जानना, सीखना, औरनकों उपदेश देना, सो मीमांसा विद्या है ॥ १३ ॥ और अनेक-प्रकार तर्क-युक्ति उपजाय, प्रश्न करना। न्याय करि पर-वादीकी असत्य युक्तिका खण्डना। अपना न्याय वचन स्थापना। पर-वादी अनेक असत्य युक्ति देय ताका रहस्य जानि ताका खण्डना। इत्यादिक न्याय पूर्वक नय-युक्तिका सीखना औरनकों उपदेश देना सो न्याय विद्या है ॥ १४ ॥ ऐसे ये चौदह विद्या शास्त्रोक्त कहीं हैं। सो ज्ञान बढ़ावेके पात्र पुरुषनकों सदीव इनका अभ्यास करना योग्य है। इति शास्त्रोक्त चौदह विद्या कहीं। आगे लौकिक चौदह विद्या कहिये हैं। तहां प्रथम नाम ब्रह्म, चातुरी, वाल, वाहन, देशना, वाहु, जल, रसायन, गान, संगीत, व्याकरण, वेद, ज्योतिष और वैद्यक। ये चौदह लौकिक विद्या हैं। अब इनका सामान्य स्वरूप कहिये है। तहां आत्मा चेतन्य है। ज्ञान रूप है, शुद्ध है, अशुद्ध है, इत्यादिक आत्माका स्वरूप जानिये सो आत्म विद्या, सो ही ब्रह्म विद्या है ॥ १ ॥ जहां नाना प्रकार बातनका करना। राज्य सभा, पंच सभा, जैसी सभा होय तैसी बात करना। परकौं रंजावना। चित्रकला, शिल्पकलादि अनेक लौकिक चातुरी सीखना, सो चतुराई विद्या है ॥ २ ॥ बाल्यावस्था हीतें अनेक प्रकार विद्याओंका सीखना, सो वाल विद्या है ॥ ३ ॥ जहां हस्ती घोटक, रथादिककी असवारी जानना सीखना, सो वाहन विद्या है ॥ ४ ॥ धर्मोपदेश देवेकी कला, सो देशना विद्या है ॥ ५ ॥ जहां दण्ड पेलनादि पर मल्ल जीतवेकी चतुराई नाना कलाका कूदना-फाँदना नेजम झाड़ना, मोगरी फेरना इत्यादि कला सीखना, सो वाहु विद्या है ॥ ६ ॥ जल विषैं नाव चलावना, जहाज चलावना, भुजबल तैं तेरनेकी कला सीखना सो जल विद्या है ॥ ७ ॥ बहुरि कुधातु कूँ सुधातु करना। जैसे तांबेकूं स्वर्ण करना, रांगकी चांदी करना। पारा-हरतालादि शुद्ध करि, रसायन पैदा करना। इत्यादिक कला सीखना सो रसायन विद्या है

॥ ८ ॥ और जहां अनेक स्वर सहित काल मर्याद रूप मिष्ट स्वर सहित ताल कूं लिये गावना, सो गान विद्या है ॥ ९ ॥ अनेक प्रकार वादित्र कला, नृत्य कला, इनके हाव-भाव गति ललितता, चाल, ताल, इत्यादिकमैं शास्त्रोक्त समझना, सो संगीत विद्या है ॥ १० ॥ और अक्षरका सुस्पष्ट स्वर, व्यंजन, विभक्ति सहित समझना, सो व्याकरण विद्या है ॥ ११ ॥ और अनेक शास्त्रनका सीखना सो वेद विद्या है ॥ १२ ॥ पंच प्रकार ज्योतिषी वेदनकी चाल करि शुभाशुभ जानना, सो ज्योतिष विद्या है ॥ १३ ॥ अनेक प्रकार शरीरके रोग जानवेकी बहुत परीक्षाका जानना। हाथकी नस, मस्तककी नस, पांवनकी नस, हृदयकी नसोंका परखना। सो याही नसोंकी परखाईका नाम नाड़ी परीक्षा है। सो नाड़ी परीक्षा जानै। मूत्र परीक्षा, जो मूत्रकूं देखि रोग जानै। दृष्टि परीक्षा सो दृष्टि देख कैं रोग जानैं। पसीना कूं देख-सूंघि रोग जानै, सो स्वेद परीक्षा है। इत्यादिक चिन्हन तैं रोग जानि ताके नाश करवेकी कला सो वैद्यक विद्या है ॥ १४ ॥ ये चौदह कर्म-विद्या हैं। और ऊपर कहीं चौदह, वे धर्म विद्या हैं। तिन सबका स्वरूप विवेकी राज-पुत्रन आदि सर्व कुलीनकूं सीखना योग्य है। और जिस राजपुत्रकूं इन विद्यानका ज्ञान होय सो प्रजाकूं सुखी करै, आप यश पावै। ऐसे जानि इन विद्या रूपी गुणनका संग्रह करना योग्य है। इति लौकिक विद्या। आगे राजानका इन्द्र जो षट्खण्डी चक्रवर्ती ताके पुण्यका महात्म्य पाय चौदह रत्नव चौदह निधि हो हैं। तिनके नाम व गुण कहिये हैं। तहां प्रथम रत्न नाम सुदर्शन चक्र चंड वेग दण्ड चमर चूड़ामणि काकिणी छत्र असि सेनापति बुद्धिसागर पुरोहित शिल्पी गृहपति विजयगरि हस्ती घोटक और स्त्री ये चौदह रत्न हैं। एक-एक रत्नकी हजार-हजार देव सेवा करैं हैं। अब इन रत्नन तैं कहा-कहा कार्य होय सो कहिये हैं। तहाँ चक्री, जिस पै आज्ञा करे चाहै। तापै चक्रके रक्षक देव जाय चक्रीकी आज्ञा कहैं। यह चक्र रत्नका कार्य है ॥ १ ॥ विजयार्द्ध पर्वत की गुफाके कपाट सेनापति तोड़ै है, सो गदा रत्न है तासैं तोड़ै है। सो ये गदाका कार्य है॥ २॥ जहां राहमें नदी—सरोवरका बड़ा गहन जल आवै है। तब चरम रत्न जलमें बिछाय दीजिये। सो ताके प्रसाद करि सर्व जल धरती समानि होय। तापै तैं चक्रीका सर्व कटक पार होय है। ये चमर रत्नका गुण है ॥ ३ ॥ और

विजयार्द्धकी गुफा पचास योजन लम्बी है। तामें महा अंधकार में सो चक्री कैसे धसै है। तहां चूड़ामणि रत्नके उद्योत करि, सूर्य-प्रकाशकी नाईं उद्योतमें, गुफा पार हो है। ये चूड़ामणि रत्नका गुण है॥ ४॥ और काकिणीं रत्न तैं चक्री अपना नाम लिखै है। वृषभाचल पर्वत पै, जव ठाम नहीं मिले है। तव इस काकिणीं रत्न तैं, और चक्रीका नाम मेटि, अपना नाम लिखै है। और याके प्रकाश तैं भी वारह योजन गुफामें प्रकाश होय है। ये काकिणी रत्नका गुण है॥ ५॥ और चक्रीके कटक पर मेघ वरसै, तौ छत्र रत्नके विस्तार करि जलकी वाधा मेटै, सव सैन्या छाया लेय है। ये छत्र रत्नका गुण है॥ ६॥ और जाके तेज तैं वैरी डरैं, सर्व शत्रु जातैं जीतिए, ऐसा असि रत्नका गुण है॥ ७॥ ये सात रत्न तो अचेतन कहे। और सव आर्य म्लेच्छ खण्डके राजान कूं जीति, सर्वां कूं लाय चक्रीके चरणमें नमाय सेवा करावै, ए सेनापतिका गुण है॥ ८॥ और पुरोहित ऐसी सलाह देय जातैं प्रजा सुखी होय, वैरी वश होय, ये पुरोहित रत्नका गुण है॥ ९॥ और चक्रीकी आज्ञा तैं तत्क्षण, मनवांच्छित, अनेक शोभा सहित, वहुत खण्डके सुन्दर महल वनावै, सो ये शिल्पी रत्न है॥ १०॥ और चक्रीके घरका सर्व कारवार, आरम्भ कार्यकी सावधानी राखै, सो ये गुण गृहपति रत्नका है॥ ११॥ चक्रीके मन कूं सुखकारी असवारीका देनेहारा, ऐरावत ईन्द्रके हस्ती समान विजयगिरि नाम सुन्दर हस्ती रत्न है॥ १२॥ वांच्छित असवारी देनेहारा, पवन समान वेग तैं चलनहारा, चंचल, सुन्दर अश्व है॥ १३॥ महा सती, शची समान रूपकी धरनहारी, महा सुन्दर, चक्रीके मन कौं धरनहारी, आज्ञाकारिणी, महा वलवान् रत्न चूर्ण करै ऐसी, स्त्री रत्न है॥ १४॥ ये सात चेतन रत्न है। सव मिलि चौदह होय हैं। ये जहां-जहां उपजैं, सो स्थान वताईये हैं। चक्र, छत्र, असि, दंड ये चार तौ आयुधशालामें उपजैं हैं। चरम काकिणी चूड़ामणि, ये तीन श्रीगृहमें उपजैं हैं। हस्ती, घोटक, स्त्री, ये तीन विजयार्द्ध पर्वत पै उपजैं हैं। सिलावट, पुरोहित, सेनापति, गृहपति, ये च्यारि निज-निज नगरीमें उपजैं हैं। ऐसे चौदह रत्नोका सामान्य स्वरूप कह्या। विशेष अन्य पुराणन तैं जानना। इति चौदह रत्न॥ आगे नव निधिके नाम व लक्षण कहिये हैं। काल, महाकाल, नैसर्प्प, पाण्डक, पदम, माणव, पिंगल, शंख और सर्व

रत्न ये नवनिधि हैं। ये कहा-कहा कार्य करैं हैं, सो ही कहिये हैं। काल निधि तो वांच्छित पुस्तक देय है॥ १॥ महा काल वांच्छित असि देय है॥ २॥ वांच्छित भोजन देय, सो नै सर्प्प निधि है॥ ३॥ वांच्छित षट्रस देय, सो पाण्डक निधि है॥ ४॥ वांच्छित वस्तु देय, सो पद्म निधि है॥ ५॥ वांच्छित नीति शास्त्र व शस्त्र देय, सो माणव निधि है॥ ६॥ वांच्छित आभूषण देय, सो पिंगल निधि है॥ ७॥ अनेक बाजे देय, सो शंख निधि है॥ ८॥ वांच्छित सर्व रत्न देय, सो सर्व रत्न निधि है॥ ९॥ ये सर्व मिलि नव निधि जानना। सो इन निधिनके आकार व प्रमाण कहिए है। ए सर्व निधि गाड़ीके आकार हैं। लम्बो चौकोर जानना। आठ पहियान सहित हैं। सो एक-एक निधि, बारह-बारह योजन लम्बी है। नव-नव योजन चौड़ो है। आठ-आठ योजन ऊंची है। एक-एक निधिके हजार हजार देव रक्षक हैं। इन निधिन पै चक्री की आज्ञा है। ये निधि, चक्रीके पुण्यप्रमाण हैं। ऐसे चौदह रत्न, नव निधि ए पुण्यका फल है, बिना पुण्य नाहीं। इति निधि। आगे चक्रीकी सेना षट् प्रकार है, सो कहैं हैं। तहां प्रथम नाम हस्ती चौरासी लाख, रथसैन्या चौरासी लाख घोड़ा, अठारह कोड़ि सर्व दोऊ श्रेणीके विद्याधरनकी सैन्या भरतक्षेत्र संबंधी देवन की सैन्या पयादेनकी सैन्या। ये षट् प्रकारकी सैन्या है। सामान्य राजा कैं तो च्यारि जातिकी सैन्या होय देव विद्याधरकी सैन्या नहीं होय। अरु चक्रधारीके षट् प्रकारकी सैन्या जानना। ऐसी विभूति सहित श्री आदिनाथके पुत्र भरत चक्रवर्ती सोलहवों कुलकर पहले चक्री सो महा विवेकके सागर होते भए। सो इनके काल विषैं भोग भूमिके बिछुरे प्रजाके लोग भोरे जीव कर्म भूमिकी रचनामें नहीं समझैं। अरु कल्पवृक्षनका अभाव भया जीवनके क्षुधा बधो। तब भोरे जीव उदर पूरणकी विधि बिना दुखी होने लगे। विशेष ज्ञान चतुराई कर्म भूमि संबंधो आरंभ नहीं जानैं। तिनके दुख निवारवे कूं भरत चक्री हैं सो प्रजा कों कर्म भूमिकी रचनाका ज्ञान होवे कूं प्रजा कूं सुखी होनेके निमित्त षट् कर्मका उपदेश देते भए। तिनके नाम व स्वरूप कहिए है। इज्या वार्ता दान स्वाध्याय तप और संयम। ए षट् कर्म हैं। अब इनकी प्रवर्ति कहिए है। तहां भगवान् सर्वज्ञ जगतनाथ कौं तरन तारन जानि पापहरन मोक्षकरन जानि कैं विवेकी भक्तिके

वशीभूत होय आपकौं पाप सहित जानि कर्म सहित जन्म मरण करि दुखिया जानि आप दीन होय विनय सहित, अपने पाप हरवे कूं, भगवान्‌का पूजन करना। तिनके सन्मुख खड़ा होय, उत्कृष्ट अष्ट द्रव्य मिलाय अपनी काय पवित्र करि, मंत्र सहित प्रभुके चरण आगे धरे। जैसे लौकिकमें निज उत्कृष्ट वस्तु लेय, राजा-नके सन्मुख जाय, चरण पास धरैं। पीछे राजाकी स्तुति करैं। तैसे ही भगवान्‌की पूजा-स्तुति किये, पाप क्षय होय। सो तिस पूजाके च्यारि भेद हैं। तिनका नाम-एक तौ प्रतिदिन अष्ट द्रव्य तैं भगवान्‌की पूजा करना, सो नित्यमह है ॥ १ ॥ चतुरमुख पूजा-ये महा पूजा-विधान सो मण्डलेश्वर, महामण्डलेश्वरादि बड़े राजान तैं बनैं है ॥ २ ॥ कल्पवृक्ष पूजा-सो तामें उत्तम नेवज, नेत्र कूं सुखकारी. जाकौं देख देव भी अनु-मोदना करैं, ऐसे उत्तम द्रव्य तैं पूजा करनी और ता समय जेते दिन लौं पूजा-विधान आरंभ रहै। तेते दिन सर्व कौं किमिच्छक कहिए मन वांछित दान, याचकन की इच्छा-प्रमाण कल्पवृक्षकी नांई दान देना, सो कल्पवृक्ष पूजा है। सो ये पूजा चक्रवर्ती तैं बनै है ॥ ३ ॥ अष्टान्हिक पूजा—याका नाम ही इन्द्र-पूजा है। सो या पूजा इन्द्र तैं बनै है ॥ ४ ॥ ऐसे च्यारि प्रकार प्रभुकी पूजाका, भरतेश्वर अपने निकटवर्ती राजान कौं तथा प्रजा कूं उपदेश देते भये। याका नाम इज्या क्रिया है। इति इज्या। आगे वार्ता क्रिया कहिए है। वार्ता कहिए, दगाबाजी सहित आजीविकाका विचार त्याग करि, न्याय सहित आजीविका पूरी करनी, सो वार्ता है। ताके अनेक भेद हैं। मुख्य-असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प और पशु पालन ए षट् भेद हैं। तहां असि कहिए खड्ग, सो शस्त्र बांध, न्याय पूर्वक, दया सहित, दीन जीवनकी रक्षा करता, दुष्ट जीवन कौं दंड देता, प्रजापालन करै। सो शस्त्र सहित आजीविका करनी, सो असि वार्ता कहिए ॥ १ ॥ मसि कहिए स्याही, तातैं धर्म-कर्मके अक्षर लिखनेका व्यवहार करना, पाप रहित न्याय सहित लिखने करि, आजी-विका पूर्ण करना। सो मसि वार्ता है ॥ २ ॥ कृषि कहिए, खेती करना। अपनी बुद्धिके बल करि, धरती विषैं अनेक प्रकार बीज बोय, बहुत प्रकार अन्न, मेवा, अनेक रस निपजाय, धनका उपजावना, सो कृषि वार्ता है ॥ ३ ॥ अनेक न्याय सहित वाणिज्य-व्योपार, हिंसा-पाप रहित व्यापार करना। तामें बहुत आरंभ, बहु

हिंसा, असत्य, चोरी, इत्यादिक दोष रहित, भला यश सहित, धनको उपजावनेके निमित्त व्यापार करना। सो वाणिज्य वार्ता है ॥ ४ ॥ जहां अनेक महल-मन्दिर बनावनेकी कला प्रगट करि आजीविका करनी सो शिल्प वार्ता है ॥ ५ ॥ पशु पालन कहिए, अनेक पशूनकी रक्षा करि, तिनके पालवेकी विद्या। पशूनकी पीड़ा पहिचानना, पशु परीक्षा करनी, तिनके शुभाशुभ चिन्ह, वयका समझना. तिनके खान-पानमें समझना, तिनके अनेक रोग समझ, ताकी औषधिका जानना। सो पशु पालन वार्ता है ॥ ६ ॥ ऐसे षट् कर्म-भेद, वार्ता आजीविकाकी विधि, आदि चक्री नैं प्रजाके सुखी होवे कूं, भोग भूमिके बिछुरे भोरे जीव तिनकौं बताई। ता प्रमाण सर्व प्रजाके लोग, अपने तनकी तथा कुटुम्बकी रक्षा करते भये। ये षट् भेद वार्ता कर्मके हैं ॥२॥ ये दोय कर्म तो इस भवके यश सुखकौं उपदेशे। च्यारि कर्म पर-भवके कल्याणकौं, स्वर्ग मोक्षकी राह बतावे कों उपदेशे। सो कहिये हैं। दोय तो ऊपर कहे। तीसरा कर्म जो दान सो च्यारि प्रकार है। भेषज, अन्न शास्त्र और अभय। सो औषधि दान तैं तो पर-भवमें निरोग शरीर पावे है। अन्न दान करि पर-भवमें सदा अन्न भोजन करि, सुखी रहै। औरन कूं पालनहारा होय। आयु पर्यंत सुखी रहै। शास्त्र दान तैं भवान्तरमें ज्ञानवान् महा पण्डित होय। अभय दान करि, दीरघ आयुका धारी इन्द्र-अहमिन्द्र होय तथा निर्भय जो मोक्ष स्थान ताहि पावै। तातैं च्यार दान दीजिये। सो दुखित भुखित दीननकौं तौ करुणा करि, संतोष सहित, पुचकार करि देना। पात्रनकूं भक्ति करि देना। इस दान करि जीव पर-भवमें बहुत सुखी होय सो ऐसा दान-कर्मका उपदेश किया ॥ ३ ॥ चौथा स्वाध्याय सो जिनवाणीका पाठ, अनेक धर्म-शास्त्रनका अध्ययन करना, सो ऐसा स्वध्याय नाम कर्म उपदेश्या ॥ ४॥ वारह प्रकार तप सो अन्तरंग-बाह्य करि दया भावन सहित, समता भावकी विधि लिये करना, सो तप कर्म है ॥ ५ ॥ तहां पंचेन्द्रिय तथा मनकौं वशीभूत करना षट् कायकी दया करनी। सो द्विविधि संयम बारह प्रकार है। सो उपदेश्या ॥ ६ ॥ ऐसे षट् कर्म भरत चक्री प्रजाका पिता, सो सबके युग-भवके सुखका अभिलाषी, कर्म-धर्मके मारगकों दीपक समान जो भला उपदेश सो षट्-कर्म रूप उपदेश देय, लोकनकों सुखी करे। इति भरत चक्रीके उपदेशित षट् कर्म। पीछे भरतनाथ

भरत चक्रवर्तीकों सोलह स्वप्ने आये। तिनका फल चक्रीने श्रीआदिनाथ जिनसे पूछा। तब भगवान्‌ने कही हे राजन्, इनका फल चौथे कालमें नाहीं। आगे पंचम कालमें, इन स्वप्ननका फल प्रगट होयगा। सो कहिये है। प्रथम नाम-प्रथम तौ तेबीस सिंह देखे। दूसरे स्वप्नमें एकला सिंह, ताके पीछे मृगनका समूह गमन करते देखा। तीसरे स्वप्नमें हस्तीका भार धरैं, तुरंग देखा। चौथे स्वप्नमें कागन करि, हंस पीड़ित देखा। पांचवें स्वप्नमें बकरेकूं सूखे पत्र चरते देखा। छट्ठे स्वप्नमें बन्दरकौं हस्तीके कन्धे पर चढ्या देखा। सातवें स्वप्नमें भूत नाचते देखे। आठवें स्वप्नमें एक सरोवर ताका मध्य तो सूखा और तीरमें अगाध जल देखा। नववें स्वप्नमें रत्न राशि रज करि मंडित, कांति रहित देखी। दशवें स्वप्नमें श्वानकूं पूजाका द्रव्य खाते देखा। ग्यारहवें स्वप्नमें तरुण बृषभ दहंकता देखा। बारहवें स्वप्नमें चन्द्रमाकों शाखा सहित देखा। तेरहवें स्वप्नमें दोय बृषभ इकट्ठे होय गमन करते देखे। चोदहवें स्वप्नमें सूर्य विमानकों मेघ पलटसे आच्छादित देख्या। पन्द्रहवें स्वप्नमें छाया रहित सूखा एक वृक्ष देखा। सोलहवें स्वप्नमें जीर्ण पत्रनका समूह देखा। ये सोलह स्वप्न भये। अब इनका अर्थ कहिये है। तहां तेबीस सिंह देखे, तिनका फल ये, जो तेईस तीर्थंकरनके समयमें-तौ खोटी चेष्टाके धारी परिग्रह सहित, जिन धर्म विषैं मुनि नहीं होंयगे ॥ १ ॥ एक सिंह तरन-तारन, ताके पीछे मृगनके समूह गमन करते देखे। तिनका फल ये है। जो अन्तिम चौबीसवें जिन महावीर तिनके निर्वाण भये पीछे यती मृगकी नाईं दीन नग्न परीषह सहवेकौं असमर्थ, सो परिग्रहका धारन कर, यति बाजैंगे। जिन लिंग तज, कुलिङ्ग धरैंगे ॥ २ ॥ हाथीके भार सहित तुरंग देखा ताका फल ये है जो पंचमकालमें साधु, तपके भार करि दुखी होंयगे। तप धारवेकों असमर्थ होंयगे ॥३॥ बकरेकूं सूखे पत्र खाते देखा। तिसका ये फल है। जो ऊंचे कुलके मनुष्य शुभाचार तैं भ्रष्ट होय, खोटा आचार आदरेंगे ॥ ४ ॥ बन्दरकौं हाथीके कन्धे पै चढ़्या देखा। ताका फल ऐसा, जो आदि तैं चला आया जो क्षत्रीनका वंश तिसकी व्युच्छित्ति (नाश) होयगी। हीन कुलके धारी अकुलीन, पृथ्वी पर राज्य करेंगे ॥ ५ ॥ वायसनके समूह करि, हंस पीड़ित देखा। ताका फल ऐसा। जो पंचम-कालमें अज्ञानी भोरे जीव धर्मके अर्थ मुनि धर्म तजिकैं,

अनाचारी-हिंसक जीवनकी सेवा करेंगे। असंयमी कषाई जीवन करि, धर्मात्मा जीव पीड़े जांयगे। पापी जीवन करि, धर्मी जीवनका अपमान होयगा ॥ ६ ॥ भूत नाचते देखे तिनका फल ऐसा। जो पंचम कालमें अज्ञानी जीव भगवान् जानि धर्मके अर्थ भूतादि व्यन्तर देवनकी पूजा करेंगे ॥ ७ ॥ सरोवर मध्यमें सूखा, तीरमें अगाध जल देखा। ताका फल। ऐसा जो उत्तम तीर्थ—स्थानकनमें धर्मका अभाव रहेगा। हीन स्थान-नमें धर्म रहेगा ॥ ८ ॥ रत्न राशि धूलि करि लिप्त देखी। ताका फल ऐसा। जो पंचमकालमें शुक्लध्यानी नहीं होंयगे। धर्मध्यानी केईक रहेंगे ॥ ९ ॥ जिन पूजाका द्रव्य, श्वान खाते देखा ताका फल ऐसा जो पंचमकालमें पात्र की नांईं, अव्रती तथा कुपात्र व अपात्र ये आदर पावेंगे। १०। तरुण वृषभ शब्द करते देखा। ताका फल ऐसा जानना। जो पंचम काल के जीव, तरुण समय में तो धर्म-ध्यानके आदरने विषैं उद्यम करेंगे। परन्तु वृद्ध भये, धर्ममें शिथिल होय, अरुचि करेंगे। ११। चन्द्रमा के शाखा देखीं ताका फल ऐसा। जो पंचम काल में अवधि, मनःपर्यय ज्ञानके धारी मुनि होंयगे। १२। दो वृषभ साथही गमन करते देखे ताका फल ऐसा। जो पंचम काल के मुनि, संघ में रहेंगे। एका-विहारी नहीं होंयगे। १३। सूर्य मेघ पटल करि आच्छादित देखा। ताका फल ऐसा, जो पंचम कालके मुनीनकों केवल-ज्ञान नहीं होयगा। १४। सूखा वृक्ष छाया रहित देखा ताका फल ऐसा। जो पंचम कालके स्त्री-पुरुष शील व्रत धारि, पीछे कुशील सेवेंगे।१५। सूखे पत्रन का समूह देखा, ताका फल ऐसा। जो अन्न आदि औषधि हैं तिनका रस जायगा, सर्व औषधि नीरस होंयगी। १६। ऐसे भगवान वृषभदेवने कही, कि भो चक्रेश्वर! इनके फल अब नाहीं। आगे पंचमकाल के उतारमें दिखेंगे। इति भरत चक्रवर्ती के स्वप्न-फल समाप्त। आगे पंचम काल में भोरे जीव अपनी बुद्धि तैं कल्पना करि, अनेक प्रकार भगवान कूं स्थाप्य कैं पूजेंगे, बहुविधि तैं भगवान् के भेद कहेंगे। तातैं शुद्ध भगवानके जानवे कौं, भगवान के गुण कहिए हैं। जिनमें ये गुण होंय, सो शुद्ध भगवान हैं। जिनमें ये गुण नाहीं होय, सो शुद्ध देव नाहीं। ये अतिशय जामें होंय, सो शुद्ध तरन-तारन जानना। सो प्रथम अतिशय तीन हैं। वचन अतिशय, आप्त अतिशय और भाग अतिशय। इनका अर्थ—जाकी

वाणी मेघ समान अनक्षरी, अनुक्रम रहित खिरै सो अपनी-अपनी भाषामें सब बारह सभाके जीव समझैं। सर्वका संदेह जाय, संशय रहै नाहीं। जाकौं सुनि, भव्यका कल्याण होय। पाप नाश होय पुण्य-फल उपजै सो बचन अतिशय है ॥ १ ॥ कर्मके क्षय तैं प्रगट्या जो अनन्त चतुष्टय-अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन अनन्तसुख और अनन्तवीर्य सो ये आत्म अतिशय है ॥ २ ॥ गर्भके पहिले, रत्नोंकी वर्षाका होना, नगर सब रत्नमई होना, इन्द्रादिक देव सेवा करैं। केवलज्ञान-स्वभाव प्रगट भये, समोशरण विभूतिका प्रगट होना। इत्यादिक महिमा सो भाग्य अतिशय है ॥ ३ ॥ ऐसे तीन अतिशय जिनमें होंय, सो भगवान् हैं। इति तीन अतिशय। आगें भगवान्‌की माताकौं गर्भके पहिले, सोलह स्वप्न आये हैं। तिनके नाम व लक्षण कहिये हैं। प्रथमनाम-ऐरावत हस्ती, श्वेत वृषभ, सिंह पुष्पमाला लक्ष्मी कलश स्नान करती देखी, पूर्ण चन्द्रमा सूर्य कनक कलश, मच्छ युगल सरोवर सागर सिंहासन स्वर्ग बिमान धरणेन्द्र विमान रत्न राशि और निर्धूम अग्नि। ये सोलह स्वप्न भगवानकी माताने देखे है। अब इनका सामान्य फल कहिये है। प्रथम ऐरावत हस्ती देखा। ताका फल ऐसा, जो पुत्र महान् पुण्यका धारी, सब तैं ऊँचा होयगा ॥१॥ और श्वेत बृषभ देखा ताका फल ऐसा जो पुत्र धर्मका धारी, जगत्-पूज्य होयगा ॥ २ ॥ और सिंह देखा। ताका फल ऐसा जो पुत्र अनंत बलका धारी होयगा ॥ ३ ॥ पुष्पमाला देखी। ताका फल ऐसा जो पृथ्वीमें धर्मको प्रगट करनहारा होयगा ॥ ४ ॥ लक्ष्मीको कलश स्नान करती देखी। ताका फल ऐसा जो पुत्रका सुमेरु पर्वत पै स्नान होयगा ॥ ५ ॥ पूर्ण चन्द्रमा देखा। ताका फल ऐसा जो तीन लोकके जीवनकौं आनन्दकारी होयगा ॥ ६ ॥ सूर्य देखा ताका फल ऐसा जो महा प्रतापी होयगा ॥ ७ ॥ कनक कलश देखा। ताका फल ऐसा। जो अनेक निधिका भोगता होयगा ॥ ८ ॥ ता पीछे मच्छ-युगल देखा। ताका फल ऐसा जो अनेक सुखका भोक्ता होयगा ॥ ९ ॥ सरोवर देखा। ताका फल ऐसा १००८ लक्षणका धारी होयगा ॥ १० ॥ पीछे कल्लोल करते समुद्र देखा। ताका फल ऐसा जो केवलज्ञानका धारी होयगा ॥ ११ ॥ पीछे सिंहासन देखा। ताका फल ऐसा जो बड़े राज्यका भोगता होयगा ॥ १२ ॥ पीछे स्वर्ग विमान देखा। ताका फल ऐसा जो स्वर्ग तैं चय कैं अवतार लेयगा

॥ १३ ॥ पीछे पाताल तैं निकसता धरणेन्द्रका विमान देखा। ताका फल ऐसा जो जन्म तैं ही ताकैं अवधि-ज्ञान होयगा ॥ १४ ॥ पीछे रत्न राशि देखी ताका फल ऐसा, जो गुणका निधान होयगा ॥ १५ ॥ निधूम अग्नि देखी। ताका फल ऐसा, जो अष्ट कर्मनका जारनहारा होयगा ॥ ॥ १६ ॥ ऐसे भगवान्के अवतार होनेके पहिलेके सोलह स्वप्नोंका फल जानना।

इति श्री सुद्दष्टितरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये राजानके गुण तथा चौदह विद्या, तीर्थंकरकी माताके सोलह स्वप्न, इत्यादिक कथन वर्णनों नाम, इकतीसवां पर्व सम्पूर्णम ॥ ३१ ॥

आगे भगवान् वृषभदेवने जन्म पीछे तेरासी लाख पूर्व राज्य किया। तामैं भगवान् दीर्घ पुण्यका फल दश-धा भोग भोगि कैं सुखी भये। तिनके नाम प्रथम मन वांच्छित रत्न ज्योतिषी देवनकी प्रभाकौं जीतनेहारे अनेक वरनके तिनके सुख भोग ॥ १ ॥ नव निधिकौं आदि लेय, परम सम्पदाके भोग ॥ २ ॥ महासती, शचीके रूपकौं जीतनहारी आज्ञानुसारी, विनय सहित अनेक मन मोहन चेष्टाकी धारनहारी सुन्दर रानीका भोग ॥ ३ ॥ अनेक सम्पदा करि भरे नगर देश तिनके राज्यका भोग ॥ ४ ॥ देव विद्याधर भूमि गोचरी राजान सहित अनेक महान् पुरुषन करि वंदनीक हस्ती घोटक पयादे इन षट् प्रकार सेन्याके ईश्वर ताके भोग ॥ ५ ॥ महान् सुगंधता सहित, अनेक रत्न मई कोमल शैय्याके भोग ॥ ६ ॥ रत्नमई सिंहासन तख्त, बैठनेके स्थान महा उदार, उत्तम मन्दिरनके भोग ॥ ७ ॥ अनेक रत्नमई, स्वर्ण चांदी आदि अनेक मनोहर धातुके अनेक आकारके वासनके भोग ॥ ८ ॥ नाना प्रकार षट्रस मई अनेक भोजन-व्यंजन, जिह्वा रंजित वस्तुके खावनेके भोग ॥ ९ ॥ देव देवी, मनुष्य स्त्रीनके गाये बजाये अनेक सुन्दर स्वर सहित संगीत, गान, नृत्यादिक, अनेक राग रंगके भोग ॥ १० ॥ ऐसे दश प्रकारके भोग, देवाधिदेव वृषभनाथ जिनने राज्या-वस्थामें भोगे सो अतिशय पुण्यका फल जानना। इति दश जाति भोग ॥ आगे सहज षट्-गुण पुण्यवान्के परखवेकौं बताइये है। एक तौ आप, सर्व जगतके देव-मनुष्यन करि पूजनीक पदके धारी, सब तैं बड़े होंय। अरु अपने बड़प्पनका मान नहीं करैं ये महा पुण्यका फल है। हीन पुण्यी, अल्पसा भी लोकमें आदर-सत्कार

पावे तौ मान करै। पुण्यवान् बड़ा भी सत्कार पावे, तौ भी मान नहीं करै ॥ १ ॥ हीन पुण्यी अल्पसा सत्य बोलै तो मान करै। कहै, हम जैसा सत्यवादी और नाहीं पुण्यवान्का सहज ही सत्य बोलवेका स्वभाव होय है। तातैं पुण्यवान् सत्य बोल मान नाहीं करै। ये पुण्यवान्का दूसरा भेद है ॥ २ ॥ हीन कुली, तुच्छ पुण्यी, अल्पसा पुरुषार्थ पाय मान करै। दीन जीवनकौं पीड़ै भय बतावै। कहै हमसे बलवान् पुरुषार्थी और नाहीं। ऐसा कहि अभिमान करै। जे महान् पुण्यी हैं ते बड़ा भी बल पराक्रम धार, मान नाहीं करैं। दीन जीवनकी रक्षा करैं। ये तीसरा पुण्यवान्का चिन्ह है ॥ ३ ॥ हीन पुण्यी, महा रौद्र—परणामी अन्तरंगमें तो महा निर्दय भाव अरु बाह्य लोक दिखावेकौं दान देय दया करि मान करै। कहै हम दयावान् हैं। जे दीरघ-भागी हैं वे सहज ही कोमल चित्तके धारी महा दया भाव करि भी मान नहीं करैं। ये चौथा पुण्यका फल है ॥ ४ ॥ अल्प पुण्यका धारी, अल्प दान देय कैं कहै हमसे दाता और नाहीं। ऐसा मान करै। दीरघ पुण्यी सहजही चित्तका उदार, दयावान बड़ा दान करै भो, मान नहीं करै। ये पुण्यका पांचवां चिन्ह है ॥५॥ हीन पुण्यी अल्पसा हो विरक्त होय मान करै। कहै हम त्यागी हैं, हमें कछु भी वांच्छा नाहीं। और जे वड़भागी-महान् पुण्यी हैं। ते अनेक भोग—सम्पदा पाय, तासें उदास रहैं। मान नहीं करैं। ये पुण्यका छट्ठा चिन्ह है ॥ ६ ॥ जो इन षट् बातनमें मान नहीं करै, सो ये पुण्यका फल है। इति षट् गुण सो ये भगवान् विषैं पाईये है। भगवान्, राज्य अवस्थामें इन्द्रके ल्याये अनेक आभूषण-रत्न मई आभूषणन कौं अलंकृत करि, भूषणन कौं शोभा देते भये। सो आचार्य कहैं कि जो अपने आश्रय आवे ताकों यशवंत करै, भला दिखावै। भगवान्के तनका आश्रय आभूषणनने लिया, सो आभूषण भले शोभते भये। तिन सर्व आभूषण में मुख्य हार है। सो हारके अनेक भेद हैं। सो ही कहिये हैं। हारके तीन भेद हैं, एकावली जिष्टी हार, रत्नावली जिष्टी हार, और अल्पवृत्तक। ये तीन भेद, हारके हैं। तहां जिष्टीके पांच भेद हैं। सीरख, उपसीरख, अवघाट, प्रकांडक और तरल-प्रबंध। ये पांच जिष्टी हारके भेद हैं। सो जिष्टी नाम लड़ीका है। हारमें जेती लड़ी होंय, तिनकौं जिष्टी कहिये। सो लड़के पांच भेद है। तहां जिस हारमें केवल मोती ही मोतीन

की लड़ी होय, सो एकावली जिष्टी हार कहिये ॥ १ ॥ और जाके मध्यमें तो मणि होय और दोय तरफ मोती होंय, सो रत्नावली नामा जिष्टी हार है ॥ २ ॥ और जामें दोय मोती एक मणि, ऐसे जो लड़ी पोई होय। केईमें तीन मोती, एक मणि। तीन-तीन मोतीन के अन्तरमें एक-एक मणि होय। तथा च्यारि-च्यारि मोती और एक मणि पोई गयी होय। तथा पांच-पांच मोती और एक मणि ऐसे पोई गई होय, सो इनका नाम अपवृत्तक है। यहां मणिके दोय भेद हैं। एक मणि, और दूसरा माणिक्य। तहां जामें छिद्र होय, सूत में पोई जाय, सो तो मणि कहिये। और जो छिद्र रहित होय, स्वर्णमें जड़्या जाय, सो माणिक है। सो जा लड़ीमें एक मोती, एक मणि और एक माणिक्य होय, सो भी अपवृत्तक नाम हार है॥ ३ ॥ जहां जा लड़ी के सर्व मोती तौ बराबरके होंय, अरु मध्यमें एक बड़ा मोती होय। ताकों सीरख नाम लड़ीका हार कहिये ॥ १ ॥ जामैं मध्यमें तीन बड़े और अन्य बराबरके मोती होंय, सो उपसीरख कहियो है ॥ २ ॥ जाके मध्य में पांच बड़े मोती होंय, सो प्रकाण्डक नामा जिष्टी हार कहियो है ॥ ३ ॥ जाके मध्यका मोती तौ बड़ा होय। दो तरफके मोती क्रम तैं छोटे-छोटे होंय, सो अवघाटक नाम जिष्टी कहियो ॥ ४ ॥ जामें सर्व मोती समान होंय, सो तरल-प्रबंध नाम जिष्टी है ॥ ५ ॥ ये पांच जाति की लड़ी हारनमें होय हैं। सो तिन हारनके ग्यारह भेद हैं सो ही बताईयो हैं। तिनके नाम-अर्ध मानव, मानव, अर्ध गुच्छ, निषत्रमालिका, गुच्छ, रम्यकलाप, अर्ध, देवछंद, हार, विजयछंद, और इन्द्रछंद। ये ग्यारह प्रकारके हार हैं। सो इनके पहिरने हारेनके पदस्थ कहिये हैं। तहां दश लड़ीका हार, सो तो अर्ध मानव हार है। १। और बीस लड़ीका, हार, सो मानव नाम हार है। २। चौबीस लड़ीका हार, सो अर्ध गुच्छ हार है। ३। सत्ताईस लड़ीका हार सो निषत्रमालिका हार है। ४। बत्तीस लड़ीका, गुच्छ नाम हार है। ५। चौवन लड़ीका, रम्यकलाप नाम हार है। ६। चौंसठ लड़ीका अर्धहार है। ७। इक्यासी लड़ीका, देव छंद नाम हार है। ८। एकसौ लड़ीका हार, सो हारनामा हार है। ९। जो पांच सौ च्यारि लड़ीका होय, सो विजय छंद नामा हार है। १०। एक हजार आठ लड़ीका होय, सो इन्द्र छंद नामा हार है। ११। ये ग्यारह भेद कहे। सो इनमें पहिले कहे

जो नव भेद, सो इन हारन कौं महा मण्डलेश्वर राजा तांईं पदवारे पहिरैं हैं। दशवां बिजय छंद हारकौं नारायण-प्रतिनारायण पदके धारी पहिरैं हैं। जो इन्द्र छंद नामा हार है सो देव, इन्द्र, चक्री पहरैं ये भगवानके निकटवर्ती सेवक हैं, सो ये पहिरैं। तथा इन देव-इन्द्रनके नाथ तीर्थंकर पहिरैं। एक हजार आठ लड़ीका हार, देवो पुनीत है। ताहि पहिरैं जिन देव ऐसे सोहते भये, मानों सर्व ज्योतिषी देव मिलि कैं, भगवान्‌की भक्ति करवे कौं, निकटही आये हों। ऐसे भगवन् वहुत काल पर्यंत राज्य करि, ता पीछे तप लेय, केवल-ज्ञान पाय, समो-शरण सहित बिहार कर्म करि, धर्मोपदेश देते भये। तिनकूं सुनि बारह सभाके धर्मार्थी जीव, धर्म मारग लागते भये। सो तिन बारह सभाके नाम कहिये हैं। प्रथम सभामें कल्प-वासी देव, दूसरीमें ज्योतिषी देव तीसरीमें व्यन्तर चौथीमें भवनवासी देव पांचवींमें कल्प-वासी देवियां छठीमें ज्योतिषी देवांगना सातवींमें व्यंतर देवोंकी देवियां आठवींमें भवनवासी देवियां नववीं सभामें मुनि दसवीं में आर्यिका व सर्व स्त्री, ग्यारहवींमें मनुष्य, बारहवींमें सर्व जातिके सैनी पंचेन्द्रिय तिर्यंच। इन बारह सभासहित, भगवान् मोक्ष-मारग प्रगट करते, जगत्-जीवनके पुन्यके प्रेरे उनके कल्याणके अर्थि, विहार करते भये। सो अनुक्रम तैं कैलाश पर्वत पर आये। जब भगवानके निर्वाण होनेमें चौदह दिन बाकी रहे, तब भरत चक्री आदि आठ मुख्य महान् राजा, तिनकूं शुभ स्वप्न भये। तिनके नाम व चिन्ह बताइये हैं। जिस दिन भगवानने योग निरोधे, उस दिनकी रात्रि विषैं भरतेश्वर चक्री कूं ऐसा स्वप्न हुआ कि मानो सुमेरुपर्वत ऊंचा होय, सिद्ध क्षेत्रतैं जाय लग्या है ॥ १ ॥ भरत जीके पुत्र अर्ककीर्ति, ताकूं ऐसा स्वप्न भया। कि स्वर्ग लोकके शिखर तैं एक महान् औषधो का बृक्ष आया था, वह जगत्-जीवनके जन्म-मरणका दुख खोय कैं, अब लोकके शिखर जायवे कौं उद्यमी भया है ॥ २ ॥ भरत चक्रीका ग्रहपति-रत्न, तिस कूं ऐसा स्वप्न भया, कि ऊर्द्ध लोक तैं एक कल्पवृक्ष आया था, वह जीवन कौं मन-वांच्छित फल देय कैं, पीछा स्वर्ग लोकके शिखर जायगा ॥ ३ ॥ चक्रीका मुख्य मंत्री, ताकौं ऐसा स्वप्न आया कि लोकनके भाग्य तैं एक रतन दीप आया था सो जिनकूं रतन लेवे को इच्छा थी तिनकूं अनेक रतन देय कैं, पीछे ऊर्द्ध लोक कौं, गमन करेगा

॥ ४ ॥ भरत जीके सेनापति कौं ऐसा स्वप्न आया कि एक अनंतवीर्यका धारी मृगराज, अद्भुत पराक्रमी, सो कैलाश पर्वत रूपी वज्रका पींजरा ताकौं छेद करि, ऊर्द्ध विषैं उछलवे कौं उद्यमी भया है ॥ ५ ॥ जयकुमार जीका पुत्र अनंतवीर्य, ताकौं ऐसा स्वप्न आया कि एक अद्भुत चद्रमा, अनंतकलाका धारी, जगत् विषैं उद्योत करि, तारानि सहित, ऊर्द्ध लोक कौं जायवे कौं उद्यमी भया है ॥ ६ ॥ भरत चक्रीकी पटरानी सुभद्रा ताकूं ऐसा स्वप्न आया कि वृषभदेवकी रानी यशस्वती अरु सुनंदा ये दोऊ, तथा इन्द्रकी पटरानी शची ए तीनों मिलकर बैठी, सोच करती हैं ॥ ७ ॥ काशी देशका राजा चित्रांगदत्त कौं ऐसा स्वप्न आया जो अद्भुत तेजका धारी सूर्य, पृथ्वी विषैं उद्योत करि, ऊर्द्ध लोककौं गया चाहै है ॥ ८ ॥ ऐसे आदिनाथ स्वामीके निर्वाण सूचक आठ स्वप्ने, आठ पुरुषन कौं आये। जिन स्वप्नोंका स्मरण-पाठ किये, भव्यनका कल्याण हो है। ये श्रीआदिदेव, पृथ्वीके आदि नायक भये। इनतैं ही धर्मकी मर्यादा चली है। तातैं ये भगवान् सर्व जगत्के नायक हैं। सो नायकके तीन भेद हैं। सोही बताईये हैं। तिनके नाम-देश नायक, घर नायक और मन नायक। अब इनका अर्थ-जो देश नायक तौ राजा है। सो देशका राजा धर्मी होय, तौ देशके जीवन कूं धर्म-राह लगाय, धर्मी करै। देशमें-जो धर्मी दान पूजा, शील संयम, तपके धरनहारे, तिनकी रक्षा करै। जे अपने देशमें पापी, अन्यायी, चोर, दुराचारी जीव होंय, तिनकूं दंड देय। सो तौ देश नायक धर्मात्मा कहिये जो देश नायक पापी होय तौ पापकौं अपने देशमें विस्तारै। चोर चुगुल अन्यायपथके चलनेहारे जीव तिनकी रक्षाकरै। अरु ता देशमें साधुपुरुष भले मारगके चलनहारे तिनकूं पीड़ा होय। तातैं जैसा देश नायक होय तैसा ही देशमें चलन प्रगटै। ये तौ देश नायक जानना ॥ १ ॥ जो देशनायक पापी होय पाप बन्ध करै। ताकी तो सो ही जानैं। परन्तु देशमें घर बहुत होय हैं। सो जा घर विषैं सर्व कुटुम्ब का रक्षक, जो सर्वकौं अन्न-वस्त्र देय सबकी रक्षा करै, सो घर नायक कहावै। सो घर नायक धर्मात्मा होय, तौ सर्व घरकौं धर्म रूप चलावै, सबका भला करै। घर नायक पापी होय तौ ताके घर जन भी पाप रूप प्रवृत्तैं। ए घर नायक कह्या ॥ २ ॥ घर नायक कदाचित् पापी होय तौ होऊ ताका फल वही भोगवेगा। परन्तु

मन नायक आत्मा है सों जाका आत्मा भली गतिका जाननेहारा होय सो अपने मनकौं सदैव धर्म रूप राखै। और जाका आत्मा पापी होय, सो अपने मनकौं आर्त-रौद्र रूप राखै। पाप बन्ध करि पर भव बिगाड़ै है॥३॥ ऐसे ये नायकके तीन भेद कहे। सो देश नायक, घर नायक तौ अपने पुण्यके प्रमाण रहना योग्य हैं। और मन नायक सदीव है, सो अपने मनकौं सदा-काल धर्म रूप राखना उचित है। इति नायकके तीन भेद। आगे अणुव्रती श्रावकके तीन भेद हैं। पाक्षिक, साधक और नैष्ठिक। अब इनका विशेष दिखाईये है। जे धर्मात्मा पुरुष राजादिक बड़े बलके धारी धर्मकी रक्षा तथा धर्मी जीवनकी रक्षाके करनहारे, जिनके राज्यमें धर्मात्मा जीवनकूं कोई पीड़ित नहीं करि सकै। महा धर्मात्मा, धर्मके पक्षी इन्हें पाक्षिक श्रावक कहिये। जैसे तीर्थंकर, चक्री, अर्द्ध चक्री, कामदेव प्रति चक्री, बलभद्र महा मण्डलेश्वर, मण्डलेश्वर इत्यादिक महान् राजा, पृथ्वी नाथ, दया मूर्ती, न्याय मार्गी, जिनके भय तैं कोई क्रूर जीव धर्मकूं धर्मी जीवनकूं सता नहीं सकैं। मुनि-श्रावकनकौं कोई दुष्ट पीड़ा नहीं करि सकै। चैत्यालयनका बनमें कोई अविनय नहीं करि सकै। ऐसा जिनका भयका कोई कुवादी झूठा नय-दृष्टान्त देय सत्य धर्म तैं झूठे धर्मकी प्रवृत्ति चाहै तौ अपने ज्ञानके प्रकाश तैं, बुद्धिके बल तैं न्याय मार्ग करि सर्व जगत जीवनके कल्याणकूं कुधर्म उखाड़ि सुधर्म प्रवृत्ति राखै, सो पाक्षिक श्रावक है॥ इनके राज्यमें पाप नहीं बधै॥ १॥ दूसरा साधक-जे धर्मात्मा श्रावक जिनकौं धर्म साधन करते बहुत काल भया सो इन्द्रिय-भोगन तैं विरक्त होय, तनके जीतव्य तैं निष्प्रह भया, अपना आयु-कर्म नजदीक जान कैं ये मोक्षाभिलाषी पर-भव सुधारवे कौं सर्व जीवन तैं क्षमा-भाव करि, अरु घर, धन, धान्य, कुटुम्बादि स्व-पर जन तैं मोह-ममता भाव तजि अपनी काय तैं ममत्व छोड़ि, च्यारि प्रकारका आहार त्याग, पञ्च परमेष्ठीका स्मरण करता, तत्वनका विचार करता धर्म—ध्यान सहित सन्यास लेय, तिष्ठ्या यति ऋषि होय। सो साधक जातिका श्रावक है॥ २॥ तीसरा भेद नैष्ठिक, ताके ग्यारह भेद हैं, सो बताईये है॥ प्रथम नाम—

गाथा—दंसण वय सामायो पोसय सचित्त रयण भत्त त्यागो। वंभारंभ हेय परिग्रह अणमत्त उदिट्ठ त्याज सागारो॥ १३६॥

बुरे जानै, परन्तु चौपड़ कूं जुआ में कही, सो इस में कहा पाप है ? ताका समाधान-जो हे भव्य ! एक तौ चौपड़, झूंठ वचनन की खानि है । कुफर-लज्जा रहित वचन यामैं बहुत होंय हैं । मुख तैं मारही मार शब्द निकसै । चित्त दगारूप रहै । चोर समान प्रवृत्तै । तातैं इन आदिक बड़े पाप, या चौपड़ में हैं । तातैं तजने योग्य कही है । तब द्यूतकार फेरि प्रश्न करता भया जो चौपड़ हमने बुरी जानी । परन्तु सतरंजमें पाप कहा है, सो कहो तामें मौन सहित, वचन रहित, नेत्रन तैं देखना हो है । सो पाप कैसे है ? ताका समाधान-जो हे भ्रात ! सतरंज विषैं चौपड़ तैं विशेष पाप है । सो तैं सुनि । या विषैं परणति अरु वचन तो रौद्र—भाव रूप रहैं हैं । ऐसे भाव रहैं हैं, जो बादशाह तैं वजीर जीतौं । हस्ती तैं, घोटक मारौं । इत्यादिक पंचेन्द्रिय घातक भाव रहैं हैं । तिनहीके मारवेका विकल्प रहै है सो ऐसे भावन में तो नरक जाय । तातैं विवेकीन कौं सतरंज तजना ही योग्य है । तब फेरि भी द्यूतकार ने प्रश्न किया । जो सतरंज पापकारी है, सो हमें भासी। परन्तु गंजफामें कहा पाप ? सो कहो । ताका समाधान-जो हे भाई ! तू विचार । जो कोई दोय कौड़ी हारै, तो लोक कहैं, यह बड़ा ज्वारी है ।वाकों भी चिन्ता होय, जो मैं हारया हों । ताके भीयोग तैं जगतमें अपय-श पावै तो हे भाई ! जो गंजफाके खेलमें राज्यके राज्य हारै, ताको चिंता अरु पापको कहा कहनी ! जहां अशर्फी हारया, रुपया हारया, तरवार हारया, बगीचे हारया, स्त्री हारया, गुलाम हारया, सिरका ताज हारया, इत्यादिक सब घरका सरजाम स्त्री-वाहनादि धन हारे । ताके दुखको-पापको कथा, कहांतांई कहिये ! तातैं कुगति दुख तैं डरि, गंजफा भी तजना योग्य है । तब द्यूतकारने कही । गंजफा भी पाप रूप है, सो हमने जान्या । परन्तु अल्प से धन से मूठि-दाव विषैं खेलना, यामैं कहा पाप ? सो कहो ? ताका समाधान-जो हे भव्य ! मूठीका खेल है सो लौकिकमें लुच्चेनका है सो प्रथम तौ जो देखै, सो लुच्चा कहै । चोर-ज्वारी कहै । हारै, तौ चोरी करनेका उपाई होय । तातैं हे भव्य ! ऐसे भावनमें बड़ा पाप होय । यामें ऐता. पाप लेके, अपयश लेके खेलिये, सो बड़ाई कहा ? सो विचार देखो । इस भव निंदा, अरु पर-भव दुर्गतिके दुख होंय । तातैं तजना ही योग्य है । तब द्यूतकार बोल्या । जो जुवा तौ पाप-मई जान, मैंने तजा । परन्तु ब्याजके

निमित्त द्यूतवारेन कूं कर्ज देना, यामैं पाप कहा ? ताका समाधान-जो हे भव्यात्मा ! जुआका धन ही महा पापकारी है। जैसा पाप, द्यूत रमनेमें होय। तैसा ही पाप, ताके धन लेनेमें होय है। तातैं मन, वचन, काय करि तजना योग्य है। तब द्यूतकारका चित्त द्यूतमें पाप जानि, शंका कौं प्राप्त भया-डर्‌या। तब फेरि प्रश्न किया जो जुआमें तौ पाप है, सो हमने तजा। परन्तु जीते पै लेंय, तामैं तौ पाप नाहीं है ? ताका समाधान-जो हे भाई ! आपको देनेहारा होय, ताकी तौ जीत चाहै। आप कौं नहीं देय, ताकी हार चाहै। ऐसे परकी हार-जीत रूप परणाम राखै। सो अल्प भोगके योगके निमित्त तैं, पराया बूरा चाहै। सो पापी ही जानना। तातैं जीते पै द्रव्य लेना, योग्य नाहीं। तब द्यूतकार कही, द्यूतकी जीतका माल भी नहीं लेंय। परन्तु हमारे घर विषैं ठाम बहुत है, सो रात्रि कौं बेठने कौं जगह देय, भाड़ा प्रमाण, जीते पै द्रव्य लेंय, तौ कहा दोष ? सो कहो। ताका समाधान-हे भाई, द्यूतकार कौं घर ल्याय जुवा खिलावै। सो तो प्रत्यक्ष पाप है। तिनका सहाई होय जुवा रमावै, सो द्यूत कैसा पाप पावै है। हे भव्य, जाका संग किये ही पाप लागै। तौ घर ल्याये, मंगल कहां तैं होय ? तातैं घर ल्याय, सहाय करि द्यूत रमावना, योग्य नाहीं। तब द्यूतकार ने कहीं, घर ल्याये भी पाप है, सो जान्या। सो नहीं ल्यावै। परन्तु हमारो देखनेकी अभिलाषा रह्या करै है, सो देखनेमें पाप कहा ? ताका समाधान-हे भाई ! देखनेमें पाप बहुत है। खेलनहारेका तौ घर-धन लागै है। सो तो व्यसनी होय, लज्जा छोड़ि, जग-निन्दा अंगीकार करि, द्यूत खेलना शुरू किया। सो तो लोभके योग तैं, ताकौं तौ अर्थ-पाप लागै है। देखनेहारेका आवना-जावना तो कछु भी नाहीं। अरु वृथा ही विना प्रयोजन, पाप विषै काल लगावै। सो याकों अनर्थदण्ड-पाप होय है। सो अर्थ-पाप तैं अनर्थ-पापका फल, विशेष दुखदाई जानना। ऐसा जानि, द्यूत देखना भी तजना योग्य है। तातैं द्यूत देखना, द्यूतखेलना, द्यूतका ब्याज लेना इत्यादिक द्यूतकैं सर्व कार्य, पापके दाता हैं। हे भव्य ! ये द्यूत, सर्व पापका राजा है। निन्दा-अपयशका समूह है। याके रमैं, निरादर होय है। द्यूत, कोई प्रकार भला नाहीं। आगे पाण्डव-युधिष्ठिर ने द्यूतक्रीड़ा करी। ताके फल राज्य गया। वनवास रहे। दुख पाया। अपयश बधा। औरों ने भी जगत

अर्थ—दंसण वय सामायो कहिये, दर्शन व्रत सामायिक। पोसय सचित्त रयणभख त्यागो कहिये, प्रोषध सचित्त व रात्रि भोजन त्याग। बंभारंभ हेय परिग्गह कहिये ब्रह्मचर्य्य, आरंभ त्याग, परिग्रह त्याग। अणमत्त उदिट्ठ त्याज सागारो कहिये अनुमति त्याग, उद्दिष्ट त्याग ये ग्यारह भेद नैष्ठिक श्रावकके हैं। भावार्थ—ये ग्यारह प्रकार प्रतिज्ञा पन्चम गुणस्थान धारी नैष्ठिक श्रावकको हैं। तहां जाके सम्यक्त्वको पचीस दोष नाहीं लागैं और सप्त व्यसनका त्याग। पंच उदम्बर तीन मकार इन आठका त्याग सो अष्ट मूल-गुण हैं। सो इनके अतिचार रहित शुद्ध व्रत, सो प्रथम दर्शन-प्रतिज्ञा है। अब इनके अतिचार कौं बताईये हैं। सो प्रथम सम्यक्त्वके अतिचार कहिये हैं। सम्यकत्वके आठ दोष मद दोष आठ अनायतन षट् और मूढ़ता तीन इन पचीसके होते सम्यक्त्व मलिन हो है। सो इनका स्वरूप ऊपर कह आये हैं। और द्यूत, मांस, भक्षण, सुरा पान वेश्या गमन शिकार चोरी और पर स्त्री सेवन ये सात व्यसन हैं। सो जामें आत्माके भाव बहुत एकाग्र होय मगन होना, सो व्यसन है। ताके सात भेद कहे। इनमें द्यूत मांस सुरापान चोरी और शिकार इन पांच व्यसनका पाप तौ लोभ कषाय तैं होय है। और वेश्या, परदारा इन दो व्यसनका पाप काम-कषाय तैं होय है। ये व्यसन कषायन तै होंय हैं। सो कषाय बताईये हैं। हे भव्य! लोभ और काम ये दोऊ कषाय सर्व पापनका बीज जानना। जगतमें जेते पाप हैं ते इन दोई कषायन तैं होंय हैं, ऐसा समझ लेना। इन लोभ अरु कामके वशि जीव, पिता पुत्रकौं मारै। पुत्र पिताकौं मारै। भाई, भाईकौं मारै। तातैं सर्व दुख, संकट और अपयशका मूल ये कषाय हैं। देखो, कामके माहात्म्य तैं रावण मरा, और लोभ तैं भरत चक्रवर्तीका मान भंग भया। इत्यादि अनेक स्थानन पै लगाय लेना। सो जेते पाप हैं तेते सर्व काम और लोभ तैं होय हैं। तातैं इन काम अरु लोभ तैं उपजे सात व्यसन सो ए भी महा पापका मूल हैं; ऐसा जानना। बड़ फल, पीपल फल, उदम्बर फल, कठूम्बर फल और पाकर फल, ये तो पंच उदम्बर हैं। मद्य, मांस, मदिरा ये तीन मकार हैं। ये आठ हैं, सो इनके अतिचार सप्त-व्यसनमें गर्भित हैं, सो जान लेना। तिनका आगे कथन करेंगे। अब प्रथमही द्यूत व्यसनके अतिचार कहिये हैं। तहां चौपड़का खेल

है, सो असत्य का मन्दिर कुफरका बोलनेहारा, द्यूत खेल है सतरंज है सो ता विषैं ऐसे पाप वचन, मनका विकल्प रहे है जो राजा मारौं, हाथीमारौं घोड़ा मारौं, ऊंट मारौं, वजीर मारौं, पयादा मारौं। इत्यादिक मन-वचन-काय करि पंचेन्द्रियके घात रूप भाव-चेष्टा करनाहारा, सतरंज जुआ है नरदका खेल है, सो दीरघ द्यूतका कारण है। गंजफाका खेल है सो ता विषैं राज्य के राज्य हारिये है। महा दगाबाजी के या खेल तैं कुभावना रहै है, ये भी द्यूत है मूठी जो आप दाव लगाय खेले, सो प्रत्यक्ष निन्दा का कारण द्यूत है। परस्पर होड़ लगायके रमना, सो द्यूत है। मूठी भरके ऊंना-पूरा मांगना, सो द्यूत है। कौड़ी नभ (आकाश) में फैंक उल्टी-सूधी नाखि, हारि-जीत करना, सो भी द्यूत है। नव कंकरीन तैं चिरभरि (वग्घा) खेलना भी द्यूत है। पोड़स कांकरीन तैं राजा-रानी खेलना, सो द्यूत है। होड़ लगाय मुट्ठी तैं नारियल फोड़ना, और हाथ तैं लाठी-लकड़ी तोड़ना, सो भी द्यूत खेल है। और होड़ वदिकैं पाषाणादि भार उठाना, सो भी द्यूत है। भीती उछलना, सो भी द्यूत है। कुंआ, बावड़ी, दीवालादि पैंद लगाय वैं कूदना, सो जुआ है। होड़ लगाय भाग चलना-भागना, सो भी द्यूत है। दूसरों को खेलते देखना, सो भी द्यूत सम पाप है। द्यूत कार्यन तैं व्यापार करना, सो द्यूत सा पाप है। ज्वारी पै तैं जीत लेना, सो द्यूत सम पाप है। द्यूतकारकी वस्तु सस्ती देख, लेना। इन आदि क्रियानमें द्यूत समान पाप उपजे है। ज्वारी की वस्तु गहना राखि, बहुत व्याज लेना। और भी जो द्यूत समान पापकी करनहारो क्रिया, सो विवेकीन कौं तजना योग्य है। द्यूतकारन का संगही सर्व प्रकार पापकारी है। विष व शस्त्र तैं घात भली, सर्पके मुख में हस्त देना भला, परन्तु द्यूत–संगति भली नाहीं। कैसी है द्यूत संगति. जातैं प्रतीति जाय, धन जाय, लोक विषैं अनादर होय, बड़प्पन नाश होय, अगला किया पुण्य नाश होय। तातैं हे भव्य ! ये द्यूत—संग भला नाहीं, तजना ही योग्य है। इस द्यूतके रमने तैं लोक, चोर—ज्वारी कहैं। तातैं ये द्यूत, सर्वथा अपयशकी मूर्ति-खानि ही जान, इसका निवारना भला है। ये द्यूत, सर्व पापनका गुरु है। याके फल आत्म नरक दुख कौं पावै, घने कहने करि कहा। तब यहां कोई विवेकी—द्यूतकार प्रश्न करता भया। जो द्यूत कार्य और तौ हमने भी

विषैं प्रगट देखा, जो द्यूतकारकी महिमा नहीं, निन्दा ही हो है। तातें हे भव्य हो, तुम अपने विवेक ते विचार देखो। जो द्यूत खेल तैं यश होय, पुण्य होय, तौ करो। नहीं तो तत्क्षण ही तजौ, बहुत कहने करि कहा। ऐसा जानि, धर्मात्मा सम्यग्दृष्टी श्रावकन कौं ये जुवाका-व्यसन, अतिचार सहित तजना योग्य है। इति द्यूत व्यसन। आगे आमिष व्यसन कहिये है—हे भव्य, ये आमिष है सो जीव-हिंसा तैं तौ उपजै है। फिर मृतक-जीवनका कलेवर है। महा ग्लानिका पिंड है। जिसके देखते ही चित्त मुरझाय जाय। और सात धातूनका निषिद्ध मैल है। ताकौं खानेहारे किस तरह खांय हैं? हे भव्यो, देखो जो कानका मैल, नाक व मुखका मैल लग जाय तो जल लेय, मिट्टी तैं धोय, शुद्ध करैं। तौ भी घिन नहीं जाय है। सो ये तो मृतक पशुका मल-आमिष खांय हैं। ऐसी मलिन वस्तु, ऊंच-बुद्धि नहीं लेय हैं। जो आमिष खानेहारे हिंसक जीव हैं। सो बताइये हैं-सिंह, स्याल, मार्जार, सुअर, श्वान, चीता, काक, चील्ह, बाज, बिसमरा, सर्प, सीगोस इत्यादिक दुष्ट जीव हैं, ते मांस खांय हैं। मनुष्य होय, ऐसी मलीन वस्तु छीवने योग्य भी नाहीं। सो कैसे खांय हैं? और कदाचित् मनुष्य होय, मांस खांय हैं। तो भील, चांडाल, कसाई, कोली, चमार इत्यादिक नीच कुलके उपजे, अस्पर्श-शूद्र ही मांस खांय हैं। तिनमैं भी केतेक उज्वल-बुद्धि, पाप तैं डरनेहारे, कोमल परणामी शूद्र भी, प्रभु कौं भजैं हैं। तिलक-छापे करैं हैं। ते आमिष नहीं खांय हैं। अशुचि-बुद्धि निर्दयी खांय हैं। सो भी कहा जानैं, ऐसी दुर्गंधित-वस्तु कैसे खांय हैं? कैसा है आमिष पिंड, ग्लानिकारी है। जिसकी बिना गंध लिये, देखै ही चित्त दुखी होय, सो खांय कैसे? सो ताकी तेही जानैं। परन्तु ऐसा अशुचि मांस-पिंड खावना, नीच-कुलीका प्रगट चिन्ह है। और जे ऊंचकुलके उपजे क्षत्री, ब्राह्मण, वैश्य, ये उत्तम वंशके हैं। सो इन वंशोंके उपजे भव्यात्मा, उज्वल आचारी हैं। सो आमिष कौं छीवैं भी नाहीं हैं। जो दयावान पुरुष हैं सो तौ ऐसी वस्तु देखते ही, भागैं हैं। तथा जे भव्यात्मा आमिष त्यागी हैं, सो अपने व्रतकी रक्षा कौं ऐसी वस्तु नहीं खांय हैं, जिनके खाये मांसका दोष लागैं। त्रस जीवनके कलेवरका नाम मांस है। तातैं जा वस्तु मैं त्रस जीव उपजैं, तथा जो त्रसका कलेवर होय, सो वस्तु आमिष त्यागी नहीं

[illegible] है। सो [illegible] [illegible] [illegible] है। सो [illegible]

[illegible]

है। [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] और [illegible]

[illegible]

[illegible] और [illegible]

[illegible]

और [illegible]

[illegible] । [illegible] और [illegible]

[illegible] । सो [illegible]

है। [illegible] है। [illegible]

[illegible]

[illegible] । सो [illegible] । [illegible] है।

जो [illegible] में [illegible]

[illegible] हैं [illegible] है। और [illegible]

[illegible] है। [illegible] है। [illegible]

[illegible] है। [illegible]

[illegible] में [illegible] है। [illegible]

चढ़ाय ताका अर्क काढ़ैं। ऐसी जो मदिरा, ताकौं विवेकी, उत्तम आचारी, शुभ कुली नहीं खांय हैं। जाके पिये बुद्धि जाय, वचन प्रतीति जाय, लोक जो देखैं सो धिक्कारें। जो ऐसा जानि कैं भी मदिरा नहीं तजैं तिनकी समझिकौं विवेकी निंदैं हैं। मद्यपायी, पापके योग तैं नरक जाय है। तहां ताका मुख चीरि, ताती-ताती धातु गालि, ताकौं पियावैं हैं। यहां प्रश्न-नरकमें धातु कहां है? ताका समाधान-वहां धातु तो नाहीं, परन्तु जीवनके पाप करि, तहांके पुद्गल परमाणु गलि, धातु तैं ही असंख्यात गुणो अधिक उष्णता रूप, धातुके आकार होय हैं। सो धातु पिवायकैं ते नारकी मद्यपायीकौं पाप यादि करावैं हैं। कि जो पर-भव मैं तैंने सुरापान किया सो ताका फल इस लोक मैं ऐसा होय है। और इस मदिरा पायीकैं बुद्धिका अभाव होय है। मद्यपायीके वचनकी प्रतीत नाहीं। मद्यपायीकैं पुरुषार्थका अभाव होय है। यह पग-पगपै मूर्च्छा खाय पड़ै है। मद्यपायीका किया धर्म, विफल होय है। शीश तैं पगड़ी पड़ै। वस्त्र फटैं। मर्याद रहित मुख आवै सो बकै। माता, स्त्री, भगिनी पुत्रीका ज्ञान नाहीं सबकौं एकसा देखै। खाद्य-अखाद्यका ज्ञान रहित होय। इत्यादिक पाप व निन्दा-का स्थान मदिरा, ताका त्याग करना योग्य है। और जिनतैं अपने व्रतकौं अतीचार लागै सो भी तजना योग्य है। सो दारूके अतीचार कहिये है। भांग तमाखू, गांजा, कक्कड़, चरस पाकादिक विषय-पोषणके निमित्त वस्तु का खावना। सो दारूका सा दोष है। और खम्मीर राखी वस्तु जो को जलेबो, अनगाले जलका मही और जे बहुत दिनकी रस-वस्तु होय, सो खाये तैं मदिरा समान दोषकूं उपजावै है। और अर्क, गुलाब जल, ये मदिरा सम हिंसा उपजावैं है। और सिंगिया विष सौंठिया विष, हल्दिया विष, सोमला खार इत्यादिक विष जाति मदिरा सम दोष उपजावै है। और कोईकूं मदिरा पोयवेकी इच्छा होय, तो इहां मद्य कूं देख लेवे। पीछे कछू बड़ाई होय तो पीवना। हे भव्य कोई नेत्र रहित अन्ध होय है। परन्तु मद्यपायी है सो नेत्र सहित अंध है मद्यपायीकूं सर्व ऐसा कहैं हैं कि यह खस्त है। मद्यपायीकी करी धर्मक्रिया विफल होय है। कै तौ मद पोव-नेहारा खस्त कहावै कै वायु-सन्निपात रोग सहित बोलनेहारा खस्त कहावै। तथा हौल-दिल होय गया होय, सो खस्त कहावै। तीनों एकसे हैं। इनकौं दिवाने कहिये, बेसुध कहिये। इत्यादिक मद्य लेनेमें जगत निन्दा

होय, घर धन जाय, सो प्रसिद्ध है। और देखो, जो दारू पीयकैं कोईने यश पाया होय, तौ बताओ। देखो, यादव-सुतौंने धोखे तैं मद पीया सौ सर्व कुल सहित द्वारकाका नाश भया। तातैं हे भाई! तेरे घरमें धन दाम बहुत होय तो जलमें डारिदे। परन्तु व्यसन विषै मत लगावौ। हे भव्य, दारू तें दावानल भली है। अग्नि प्रवेश भला है। तन विषैं पीड़ा भई भली है। इत्यादिक दुखन तें एक एक भव विषं दुख होय है और दारूतैं अनेक भवोंमें दुख होय है। ताते दारू तैं, हलाहल विष भला है, परन्तु दारू व्यसन भला नाहीं। तातैं अनेक प्रकार पापकारी जानि, धर्मार्थी श्रावककों अपने व्रतकी रचा कौं, अतिचार सहित दारू व्यसनका त्याग करना योग्य है। इति दारू व्यसन ॥ ३ ॥ आगे वेश्या व्यसन कहिये है। कैसी है यह वेश्या, जाके चित्त करि मोह्या गया है कामी पुरुषनका मन सो ताकैं सदीव धर्मका अभाव है। जो परके पासका दाम लेय, व्यभिचार क्रिया रूप प्रवृत्तै, सो ताकूं वेश्या कहिये। याकी संगति तें, चित्त विकल होय है। या वेश्याके काहू तैं स्नेह नाहीं, एक द्रव्य तैं स्नेह है। जो कोई महा नीच-कुली होय, अरु ताके पास धन होय, तौ वेश्या तातें संगम करे। ग्लानि नाहीं करे। जाका तन विरूप होय, बुद्धि-हीन होय, रूप हीन होय, अरु तापे द्रव्य होय, तो वेश्या ताका आदर करे, तातें स्नेह करे। महा बुद्धिमान् होय, कामदेव समान रूपका धारी होय, पराये मनका मोहनेहारा होय, ऊंच कुली-वड़े वंशका होय इत्यादिक गुण सहित, शुभ-लक्षणी होय, अरु कदाचित् धन रहित होय, तो वेश्याके घर जाय आदर नहीं पावे। धन रहित पुरुष तें वेश्या स्नेह नाहीं करे। याकैं धन मित्र है, और नाहीं। तातैं वेश्याका नाम धन-मित्रा भी कहिये है। कैसी है यह वेश्या, जो याका तन भूमिके मार्ग समान है। जैसे मार्ग पै नीच-ऊंच सर्वही चलैं हैं, तैसेही वेश्याका तन है। याके तन पर भी नीच-ऊंच सभी जांय। यह वेश्या, महा लोभकी खानि है। धनके निमित्त अपना तन वेचे है। महा निर्लज्ज है। निर्लज्ज पुरुषोंके भोगका स्थान है। जूंठी पातल समान है। जैसे काहूने जूठी पातल फैंकी। ताके ऊपर अनेक श्वान चाटवेकूं आवैं हैं। तैसे ही काहूंकी भोग-नाखो वेश्या रूपी जूंठी पातल, ताके ऊपर अनेक व्यसनी श्वान आवैं हैं। जगत निन्द्य है। तातें वेश्याके सर्व चिन्ह पापकारी जानि, बुद्धिमान कूं तजना योग्य

है। और ये वेश्या, शील वृक्षके छेदवेकूं कुठार समान है। याका संग किये, धर्म साधन किया था ताका फल नाश होय हैं। तातैं विवेकी-धर्मात्मा पुरुषनकौं वेश्या-संगति तजना योग्य है। और जिन-जिन कार्यनमें वेश्या संग कियेका सा दोष होय, सो भी कार्य, ब्रतके रक्षक धर्मी-पुरुष तजैं हैं। सो ही बताईये हैं। जाके वेश्या व्यसनका त्याग होय, सो एती जायगा नाहीं जाय। अरु कदाचित् जाय, तौ अपने ब्रतकौं अतिचार लागे। जहां वेश्याका स्थान होय, तहां नहीं जावै। और जहां वेश्या-कंचनीका नृत्य, गान, वादित्र होय, तहां नहीं जाय। और वेश्या तैं वाणिज्य नाहीं करै। और वेश्याके मुहल्ले जाय बसना नाहीं। और वेश्या तैं हांसि, कौतुक, बचनालाप नहीं करै। इत्यादिक कहे जो कार्य, सो व्यसन समान पाप उपजावैं हैं। और वेश्याके तनकौं नहीं निरखै। और वेश्याके हाव-भाव नहीं देखै। ताके गान, रूप, वादित्र नृत्यादिक नाहीं सुनै-देखै आगे तिनकी प्रसंशा-अनुमोदना नाहीं करै। बार-बार वेश्याके गुणनकी कथा नाहीं करै। ताकी कथा औरनतैं सुनि, हर्ष नाहीं करै। वेश्याका सत्कार नाहीं करै ताके संगी-कुटुम्बीन तैं हित भाव नाहीं करै। इत्यादिक वेश्या सेवनके दोष हैं। सो सर्वका त्याग करतैं ही, अपने ब्रतकी रक्षा हो है। हे भव्य वेश्याके संग विषै गुण नाहीं। याके संग तैं लोकनमें अपयश निन्दा होय है। वेश्याका संग, चोरटे पराये धनके हरनहारे करै हैं। तथा जे लुच्चे जुवारी आदि निर्लज्ज पुरुष हैं ते वेश्याके घर जांय हैं। तथा कुलहीन पुरुष ही वेश्याका संग करैं हैं। तथा जाके आगे-पीछे कोई कुटुम्ब नाहीं, सो वेश्या गमन करै है। देखो, आगे चारुदत्त सेठ पुत्रने वेश्याका संग किया था। सो वेश्याने ताका सर्व घर धन लेय, पीछे उसे दुर्गंध भरी छारछोवी (पाखाना) में डाल दिया। सो नरक समान दुःख, इहां ही भोगता भया। जगत-बिछौना समान, वेश्या जानना। याका तन सर्व जन नीच-ऊंच स्पर्शैं हैं। वेश्याके संग तैं, शीलका अभाव होय है। ताका फल, दुर्गति होय है। ये वेश्या महा दगाबाजोकी मूर्ति है। अरु ऐसे हो महा निर्लज्ज दगाबाजीकी खानि, दुर्बुद्धि पुरुष ताका संग करैं हैं। अहो भव्य, सिंहकी गुफा मैं जाना तो भला है, परन्तु वेश्याका संग भला नाहीं। तातैं हे भव्य घनी कहने करि कहा, वेश्याका संग तजना ही भला है। इस वेश्या व्यसनी कौं चोर, लुच्चें, वेश्याके गमनी

भला कहैं हैं। तब यह मूर्ख अपनी प्रसंशा सुनि, प्रफुल्लित होय हैं। और जब विवेकी, ऊंच कुली, पण्डितनमें जाय है तब उसे अधोमुख होना पड़ै है। अपने भले कुलमें कलंक चढ़ावै है। या वेश्याके संग तैं सर्व प्रकार कुकीर्तिकी बेलि जगत मंडपमें पसरै है। जिनने वेश्याका संग किया ते प्राणी अपना पाया भव हारते भये। वेश्याके संग तैं खाद्य अखाद्यका विवेक नाहीं रहै है। अभक्ष्य भोजन करै। लज्जा रहित वचन कहै। वेश्याका संग करनहारा जीव देव-गुरु धर्मकी आज्ञा ऐसे लोपै है जैसे मदोन्मत्त हस्ती अंकुशकों लोपै। वेश्या व्यसनी, माता पितादि गुरुजनकी आज्ञा तैं प्रतिकूल होय है। कोई तौ नेत्र रहित अंध होय है। परंतु वेश्या व्यसनी कर अंध है। इत्यादिक अनेक दोष सहित वेश्या व्यसन है। सो विवेकी धर्मात्मानकूं अपने व्रतकी रक्षाकूं अतीचार सहित वेश्या—व्यसन तजना योग्य है। इति वेश्या व्यसन ॥ ४ ॥ आगे पारधी व्यसन लिखिये है यह व्यसन, निर्दय चित्तके धारी जीवोंका है। जे नीच-कुलके उपजे, तिनतैं ऐसा अन्याय बनें है। ऊंच कुली, दयावान, शुभाचारी, सत्-पुरुषन तैं, पर-जीव-घात नाहीं बनै है। यह बड़ा आश्चर्य है कि लोकमें तौ पराये परणाम खुशी करवे कौं, भला खान-पान दीजिये है। भूखे पशून कौं घास डालि, सुखी कीजिये है। आये का सत्कार कीजिये है। कोई अपने घर मंगता-रंक आवै, तो ताको दया करि,-दीननकौं भोजन-दान दीजिये है। परतैं मिष्ट बचन बोलि, ताका यथा-योग्य विनय करि, ताकौं साता कीजिये है। इत्यादिक क्रिया करि, जैसे बनै तैसे, यशके निमित्त, तथा पुण्यके निमित्त, भला-भला कार्य करि और-जीवनकौं सुखी करैं हैं। सो जगतमें जिनकी ऐसी उज्वल प्रवित्ति, दया सहित देखिये है। वे ही सुबुद्धि जीव, जानि-पूछिकैं पर-जीव दीन-पशु तिनके तन विषैं शस्त्र मारि, तिनकौं हतैं। सो ये बड़ा आश्चर्य है। ऐसे सुज्ञानी जीवनके भाव ऐसे कठोर कैसे हो जॉय हैं? सो उन पशूनके ही पापका उदय है कि जो सज्जन सदाव्रत देय, शीत में वस्त्र देय दीनन की रक्षा करैं। वे ही पुरुष जब पशूनकै शस्त्र-तीर-गोली मारैं हैं तब तिनकौं दया नहीं आवै। ऐसे बड़े आदमी, बुद्धिवान, दयावान, धर्म निमित्त धनके लगावनहारे, ते पर-प्राणका घात कैसे करैं हैं? तातैं ऐसा जानना, जाकैं पर-प्राण-पीड़ितैं, दया नाहीं होय, सो दया रहित भावनका धारी, शिकारी

कहिये। अपने पुत्र पालवे कौं, पराये पुत्र हतैं, उसे पारधी कहिये। ते जीव पापके अधिकारी होय, नरकके पात्र होय हैं। अपनी जिभ्या-इंद्रिय पोषवे कौं तथा अपनी भूख मिटावने कौं, पराये पुत्र दीन-पशूनकौं हतैं हैं, ते दया रहित पारधी जानना। कैसे हैं वन-जीव, महादीन हैं। महा भयवान हैं। कोई तैं तिनका द्वेष नाहीं। वनका घास-तृण चुगकै, अपने तनकी रक्षा करैं हैं। ऐसे दीन-निर्दोष पशूनकौं जो शस्त्र मारै, सो महा कठोर चित्तका धारी निर्दई है। बनके पशु भोरे, अज्ञान, असहाय, तिनकूं केई पापाचारी छल-बल करि मारैं हैं। सो बड़ा पाप-भार बांधैं हैं सो ये पाप कब कटैगा? केई ज्ञान रहित, दया रहित नीच-कुली ऐसा कहैं हैं, कि यह हमारा धर्म है। केई कहैं हैं, कि यह हमारा किसब (व्यापार) है। सो ऐसे जीव कसाई हैं जे जीव हतैं ते चांडाल हैं। उनके घरमें, धर्मका अभाव है जीव-घात करनेहारे प्राणी, खटीक समानि हैं। तिन जीव-घाती जीवनका मुख देखे, पाप लागै है। जे भले कुलके उपजे हैं, ते परजीवन कौं नहीं घातैं हैं। जो परजीव घातैं, सो हीन-कुली समझना। पर-जीवनके प्राण राखैं, सो ऊंच कुली हैं। भीलादिक बनचर हैं, सो बनचर जीवन कौं मारैं हैं। उत्तम प्राणी, पर-घात नाहीं करैं। जे दयावान हैं, वे ऐसा विचारैं। कि हाय, बिना दोष पर-जीव कैसे घातैं हैं? ये विचारे दीन, बनके प्राणी, काहूके घर जाय सतावते नाहीं। काहूपै कछू मांगते नाहीं। काहूका खेत नाही खून्दते। किसीका फल नहीं खावते। बनके तृण बन-फल, घास, पत्र तो ये खांय हैं। नदी-तला-वनका जल पीवते हैं नहीं मिले, तो क्षुधा सहित भूखेही पड़ि रहैं हैं। नहीं काहू तैं लड़ै, नहीं काहू पै कोप करैं। ऐसे दीन पशूनकौं जे मारैं, ते शठ अपना पर-भव बिगाड़ैं हैं। सर्व जीवन मैं पापी तौ सिंह है। ऐसे पापी सिंहकौं मारिकैं अपनी शूरता मानैं, सो याहू तैं पापी हैं। और केई बनके सुअरन कौं मारैं हैं, और कहैं हैं कि हम शूर हैं ते शूर नाहीं पारधी हैं। हिरन, खरगोश स्याल इनकौं मारैं ते श्वान हैं। और भवांतर मैं श्वान ही उपजैं हैं। और चिड़िया कबूतर मोर तीतर बाज मछली मगर इन आदि पक्षी तथा जलचर जीवनकौं मारैं सो खेटकी हैं। ये पर जीवनके हतनहारे निर्दय परणामी निश्चय तैं नरकादि गतिके पात्र जानहु। तातैं जे विवेकी-दयावान जीव-घात नाहीं करैं उत्तम परणामके धारी हैं। ते भव्य येते

कांम और भी नाहीं करैं। सो कहिये हैं। जे दयावान होंय सो तीर, गोली गिलोल कृपाण वूंदक कटार छुरी तलवार इत्यादिक शस्त्र नहीं राखैं। शस्त्र तैं मारूँगा, ऐसा वचन नाहीं कहैं। और फंदाफाँसी पींजरा ये नाहीं वनावैं नाहीं राखैं। वड़ थूहरि आकके दूध तैं चेंप वनाय पंखी नाहीं पकड़ै। लाठी व लात तैं नाहीं मारैं। जाल नाहीं वनावैं नाहीं राखैं, नाहीं वेचैं। इत्यादिक हिंसाकारी वस्तूनका व्यापार नाहीं करैं। और जे तीर वूंदक तोप वरछी छुरी, आदि पर-जीव घातक शस्त्र वनावे, तिनतैं दयावान लेन-देन नाहीं करैं। कुसी, कूदाली, खुरपी हँसिया इनके वनाने वालों तैं भी लेन-देन नाहीं करैं। और भूमिके खोदनेहारे, ताल-नदी-बावड़ी-कूप इनमें जल काढ़ने व फोड़ने हारेन तैं भी लेन-देन नाहीं करैं। और जामैं वहुत जल बिलोलना पड़ै, वहुत नीर ढोलना पड़ै वहुत अग्नि जलाना पड़ै तथा जो नील-आलका काम करैं, उनके साथ भी लेन-देन नाहीं करैं। इत्यादिक सब खेटक-हिन्साको दोष करैं हैं इनका पैसा घरमें आये, खेटकका सा दोष उपजावै। और अन्न, तिल, जीरा, धना, सौंठि, हल्दी, इन आदि काष्ठानिक किरानों तथा रेशम सन, चाम, हाड़, केश, सींग, शहद इनकी भड़शाला (दूकान) नाहीं करैं। तथा शीशा, शोरा इत्यादिक हिन्सक व्यापार नाहीं करैं। इनमें खेटक समान दोष जानि, दयामूर्ति ऐता व्यापार नाहीं करैं। और काष्ठ-पाषाण चित्रामकी पुतली तथा देव-मनुष्य-पशुकी स्थापनाका आकार विगाड़ै, तो खेटक समान दोश होय। और सतरंज मैं नाम-निक्षेपके धारी जीव-हस्ती, घोटक मनुष्य राजादिक ताके हारे—जीते, खेटक समान दोष होय। तातैं धर्मात्मा सतरंज तैं नाहीं खेलैं। और वन मैं, घर मैं अग्नि लगाये खेटक समान दोष है। तथा परजीवकौं भयकारी मार-मार शब्द नाहीं कहैं। और वृक्ष, वेल, घास, झाड़ी नहीं छेदैं। वस्त्र धूप विषैं नाहीं नाखैं। चौपट राहमें खटमलनको खाट नाहीं झाड़ैं। पर—जीवन कूं शोक नहीं करावैं और मर्याद तैं अधिक भार, जीवन पै नाहीं लादैं। भाड़ा किया होय तौ वाहन पै:छिपायकैं अधिक भार नहीं धरैं। इत्यादिक कहे कार्य धर्मात्मा—दयावान् अपने व्रतका लोभी अपने व्रतकी रक्षाकौं ये पाप नहीं करै। और जुआ लीख दयावान् नहीं मारैं। सर्व जीव आप समान जानि सर्वकी रक्षा करैं। और जे

दया रहित दुर्गति—गामी अज्ञानी जीव परकौं शस्त्र मारते दया नहीं करैं। अरु अपने तनमें तनिकसा काटा लगै तौ कायर होय दुख मानैं। सो ये कठोर बुद्धि परकैं शस्त्र कैसे मारैं हैं ? आप तनकसा भय सुनै तौ छिपता फिरै भय करि कंपायमान होय। अरु पापी जन दीन-पशूनपै नग्न शस्त्र चलावतैं नहीं कंपैं हैं। सो ताकैं खेटक-व्यसन कहिये। देखो जब आप रणमें जाय तौ अपने तनकी रक्षाकौं बखतर पहिनै। शिरपै टोप धरै। आगे उरस्थलमें आड़ो ढाल धरै। तौ भी पापी-कायर चित्तका धारी डरता-डरता जाय है। ताकूं दीन पशूनके तनमें निशंक बनमें फिरते दीन जीवन कूं दगा करि जालमें पकड़ि शस्त्र मारते दया नहीं आवैं। सो जीव दुर्गति—गामी पारधी जानना। एसे प्राणीनकौं तीन लोकमें सुख नाहीं। ये खेटकका व्यसन पाप है। ये पाप भव भवमें खेटक करै। महा दुख उपजावै। तातैं विवेकी धर्मात्मा, आप समान सर्व जीवनकूं जान, सर्व जीवनकी रक्षा करैं सो खेटक व्यसनका त्यागी कहिये। इति खेटक व्यसन ॥ ५ ॥ आगे चोरी व्यसन कहिये है। जे जीव बिना दिया, परका पदार्थ नहीं लेंय सो चोरी व्यसनका त्यागी है। कैसी है चोरी सो कहिये है। एक तौ महा दगाबाजीका समूह है। अदत्ता दानकौं लेय सो चोर है। सो जे चोर हैं सो पर-धन हरवैं कौं अनेक चतुराई करि पराया घर फोड़ना, पराये खींसेमेंसे धन काढ़ि लेना पराये धरे धनकौं छिपाय कें उठाय लावना तथा पराया धन उठाय कहीं धर देना आदि काय करैं हैं। ये सर्व चोरी व्यसन है। इस चोरी करनहारेका परणाम महा कठोर निर्दय होय है। पराया धन चोरै है, सो महा पापी है। संसारमें जीवनकौं ये धन अपने प्राणन तैं भी प्यारा है। ये जीव अपने दस प्राणकूं धारि सुखी रहैं हैं। तैसे ही यह जीव धन तैं सुखी रहै है। तातैं ये धन जीवका ग्यारहवां प्राण है। जो इस धनकौं हरैं ते महा पापी जानना। जे पराये धन हरवेकौं अनेक छल बल करैं हैं। कोई तौ पर धन हरवेकौं राह चलतें जीवनकूं डरवाय धन हरैं। कोई जबरी तैं नगर घरन पै धाड़ा मारि करि घर धन लटि ले जांय। सो तो जोरावरीके चोर हैं। कोई दगाबाजी सहित, अनेक भेष बदल, फांसी तैं मारि, धन हरैं, ते चोर हैं। कोई पराया धन, लेखा करने में भूलि करि राखैं। ते चोर हैं। कोई पराया धन धऱ्या हुआ नहीं देंय, जानि पूंछ, मुकरि जांय सो भी चोर

हैं। कोई पराया धन कर्ज खाय रहै, नहीं देय। सो चोर है। ऐसे कहे जो ये सो सर्व चोरन के चिन्ह हैं। और कोई ऐसे हैं जो आप तौ चोरी नहीं करैं, परन्तु चोरन कौं चोरी करवे में सहायक। चोरी करावै कौं, तिनकौं चोरी के उपकरण देंय। मार्ग बतावैं। सो भी चोर समान हैं। और जे चोरन की पक्ष करि, चोरन की लॉच खाय, चोरन कौं चाकर राखे, चोरी कराय धन बांट लेंय। सो भी चोरी समानि फल का धारी है। और चोरन कौं चोरी पै कर्ज देय, चोरन तैं वाणिज्य—व्यापार राखना ये भी चोरी सा ही फल प्रगट करै है। तातैं जे विवेकी हैं ते अपने व्रत कौं निर्दोष राखें। सो एती बात नहीं करैं जिनका कथन ऊपरि कहि आये। और इस अदत्ता दानके अतिचार हैं सो भी न लगावैं सो ही कहिये हैं। कोई भली चोर कलाका धारी होय तो ताकी अनुमोदना नहीं करै। और तराजू तैं तौलिये ताके सेर पंसेरी आदि बांट तथा कुड़ापाई छोटी बड़ी रक्खै। सो लेनेके तो बड़े अरु देनेके सेर पंसेरी कुड़ा पाई छोटी ऐसे राखै सो चोर है। ऐसे ही भली वस्तु विषैं बड़े मोलकी वस्तु विषैं अल्प मोलकी वस्तु मिलावना। सो चोरी समान है। सो विवेकी ऊंच कुली ऐसी चोरी नहीं करैं। जे हीनकुली हैं ते चोरी करैं हैं। जैसे भील मीणा गौंड़ ये मनुष्य चोरी करैं हैं। तथा धन हार्‌या ज्वारी चोरी करै। तथा जीभ लोलुपी चोरी करै। तथा जो खान पान वस्त्र आभूषण तौ भलै चाहै अरु कुमाय नहीं जानै। ऐसा कुपूत पुरुष चोरी करै। वेश्या व्यसनी होंय ते चोरी करैं। मांसाहारी चोरी करैं। तथा परस्त्री लंपटी चोरी करै। इत्यादिक कुबुद्धिके धारी जीव चोरी करि अपना पाया भव बृथा कर अपना किया धर्म कौं बिनाशैं हैं। तथा अपने स्वामीका बुरा चाहनेहारा स्वामी द्रोही चोरी करै। तथा मित्र तैं कपटाई करनेहारा मित्र द्रोही चोरी करै। तथा परके किये उपकार कौं भूलनेहारा कृतघ्नी होय सो चोरी करै। तथा धर्म भावना रहित पुरुष चोरी करै। इत्यादिक जीव चोरी करैं। सो चोरीके अनेक भेद हैं। एक तौ धर्म चोर एक कर्म चोर। सो जो पापी जीव धर्म स्थानमें चोरी करै सो तौ धर्म चोर कहिए। और जे माता पिता भाई स्त्री पुत्र इन तैं धन चुराय राखैं सो घरचोर हैं तथा पराए घरनका हरनहारा होय सो घर चोर है। ताकरि राज्य पंचका किया दंड पावै। और

बालक पुत्र तथा स्त्री तैं छिपाय खाय भली वस्तु छिपाय कैं खाय सो पुत्र स्त्री चोर है। ए सर्व चोरी समान दोष करैं हैं। ता चोरीके दोय भेद हैं। एक चोरी दूसरा चरपट। जो छल कर छिप करि परधन हरै। सो चोर है। और गिरासियादि जोरी तैं डराय प्रगट पराया धन हरैं। सो चरपट कहिए। सो ए चोरी चरपट भेद भी पाप जानि, तजना योग्य है। ये चोरन को चतुराई, सबही दुखदाई, ताहि तजना जिन-गाई, मैं भी धर्म-हित भव्य जीवन कूं सुनाई। तातैं तजो समझ सब भाई, याके किये हानि दाई, जस हानि गुरु सुनाई। पर-भव दुर्गति होय, सकल पाप थान जोय, ऐसो लख्य तजो सोय, मानो सीख भव्य होय। इत्यादिक, चोरी सर्व पाप का मुकुट जानि. तजना योग्य है। इस चोरी ही के चिंतवन किये, पाप-बन्ध होय है। तातैं अपने पर-भव सुधारबे कूं, संतोष भाव भजिकैं, बहुत तृष्णा का कारण जो चोरी, ताहि निवारो। ये सीख सुपूत कौं है। जो कहे का उपकार मानै। और जिनकौं चोरी भली लागै। सो सुनि करि, भले उपदेश सूं द्वेष-भाव करैं। चोरी व्यसन का त्याग सुनि चोर हैं ते धर्म सभा तजैं। परन्तु चोरी नहीं तजैं। सो ऐसा प्राणी धर्म-सीख काहे कौं मानै है? ये सीख सपूत कौं है। तातैं श्रावकन कूं अतिचार सहित, चोरी व्यसन तजना योग्य है। इति चोरी व्यसन ॥ ६ ॥ आगे परदारा व्यसन कहिये है जहां पर-स्त्रीन के रूप हाव-भाव कौं देख, भोगवे की इच्छा सो परदारा व्यसन है। या व्यसनी की दृष्टि तौ भगनी, पुत्री माता कौं भी रूपवान देख विकार रूपही प्रवर्त्ते है। और जे धर्मात्मा हैं सो पर-स्त्रीन कूं भगनी माता पुत्री समान देखैं हैं। ऐसा भिन्न भेद इनकी दृष्टि में जानना। ये जीव उसही दृष्टि (आंख) तैं भगनी पुत्री कौं देखैं हैं। अरु उसही दृष्टि तैं अपनी स्त्री कूं देखैं हैं। सो धर्मात्मा तौ यथावत् जानैं हैं। अरु व्यसनी, विकार दृष्टि करि जानै है। सो यह जीवन की दृष्टि का ही भेद जानना। कैसी है या व्यसनी की दृष्टि। दोऊ भव-दुख अपयशकी करनहारी है। इस व्यसनी कौं पर-स्त्री गमन तैं पकड़िये, तौ जाति तैं निषेधैं हैं। और राजा है सो ताका तन छेदन करि, घर लूटै है। और खर-रोहण करि, देश तैं निषेधै है। तातैं हे भाई, कहा जानैं नरक-फल परभव में कब लागै? हाल ही में जीव कौं नक समान दुख देखने पड़े हैं। लोक में निन्दा होय

है। नाक-कान—हस्त—पांव अंगादि छिदैं हैं। सो ये फल तौ खराबी के यहां ही प्रत्यक्ष देखना होय है। तातैं धर्मी-जन, अपने हित कौं पर-स्त्री, धर्मरूपी कल्पवृक्ष के छेदवे कूं करोत समान जानना। और ये पर-स्त्री यश रूपी पर्वत के नाशवे कूं बज्र समान है। देखो रावण सा महा बली तीन खंड का स्वामी, यशका तिलक जाके यश-सौभाग्य की देव भी महिमा करैं। ऐसा दीरघ पुण्यी, सो भी पर-स्त्री के दोष तैं, अपयश पाय, हीनगतिका बासी भया। राज्य गया, कुल क्षय भया, पर-गति बिगड़ी। तातैं हे भाई, नागके मुख हस्त देना, बिष भोजन करना, ये तो भला है। परन्तु पर-स्त्री-संग, भला नाहीं। छुरी, कटारी, बर्छीकी धारन पै कूदना भला। इन तैं एक भव दुख होय। अरु पर-स्त्री संगति तैं, भव-भवमें दुख होय। तातैं विवेकीन कौं पर-स्त्रीनका त्यागना भला है। अरु जिन बातनमैं पर-स्त्री संगका दोष लागै, ऐसे अतिचार भी तजना योग्य है। सो अतिचार कहिये हैं। पर-स्त्रीन तैं सराग भाव सहित हँसि बोलना। कौतुक सहित तिनके तन तैं लिपटना। पर-स्त्रीनके षट्—आभूषण देख कहै, जो तुम कौं यह भला लागै है, ये भला नहीं सोहै है। पर-स्त्रीनके अंग-उपांग चालकी सराहना करना। ये सर्व पर-स्त्री व्यसन समान दोष करैं हैं। और विकार चित्त करि पर स्त्रीनका काम काज करै। ताकौं भले भले षट् आभूषण लाय देय। राग सहित मुख तैं वचन बोलै। ताकूं पर-स्त्रीका व्यसनी कहिये। और जहां नारी, स्वेच्छा भईं कौतुक करतीं होंय, गाली-गीत गावती होंय। तहां आप जाय, सुनि करि हर्ष कौं प्राप्त होय। चित्त देय सुनै, तिनकी प्रशंसा करै, सो पर स्त्रीका व्यसनी है। और पर-स्त्रीनके समूहमें जाय, तहां बैठके तिन स्त्रीनकी सुहावती बात कहै। तिनकौं अनेक कौतुक कथा कहिके हँसावै-सुखी करै। सो पर-स्त्रीका ब्यसनी कहिये। और जे पनघट-घाट, जहां अनेक स्त्री-समूह जल कौं जांय। तथा और जगह जहां अनेक स्त्रीनके गमनका स्थान होय। ऐसे स्थान पै जाय तिष्ठना, सो पर-स्त्रीका ब्यसनी है। तथा पर स्त्रीनकी चाल—काय सराहना। षट्—आभूषण—रूप देख हर्ष करना। सो पर स्त्रीका ब्यसनी है। अपने घरमें दासी राखना। तथा विधवा स्त्री कौं मोहके वश करि, घरमें राखना। तातैं भोगनकी अभिलाषा पूर्ण करनी। सो पर स्त्रीका ब्यसनी है। और बालक नर कौं

नारी बनाय देखना। तथा सुन्दर स्त्रीन कूं, नर भेष बनाय, देख सुखी होय, स्पर्श करि सुखी होय सो पर स्त्रीका व्यसनी है। और विधवा तथा परस्त्री जाका भर्तार जीवता होय, तिनतैं एकान्त विषैं बतलावना। तिनतैं ऐसा कहना, जो आज कल तो हम पै कोप है, तातैं नहीं बोलो हो। सो हम पै ऐसी कहा चूक परी है, सो कहो। हम तौ आपके आज्ञाकारी हैं। इत्यादिक राग सहित वचन भाषण करै, सो व्यसनका लोभी है। अरु पर स्त्री तैं अबोला रहै, रूठना करै। फेरि तिसके बोलने कौं, औरन तैं प्रार्थना करै। कहै जो हम-कों वाकौं बुलाय देव। इत्यादिक भावनका धारी, इस व्यसनका धारी है। और जे अपने तनमें नाना प्रकार वस्त्र आभूषण पहरि, पर स्त्रीन कौं दिखाया चाहैं। अपना भला रूपयौवन, तनकी ललाई पुष्टता, पर स्त्रीनकौं दिखाया चाहैं, सो पर स्त्री व्यसन मोही है। इत्यादिक कहे जो पर स्त्रीनके व्यसनके दोष, तिन सहित सब कौं त्याग, अपना व्रत निर्दोष राखै, सो पर स्त्री व्यसनका त्यागी कहिये। इति परदारा व्यसन ॥ ७ ॥ ये कहे जो सात व्यसन, सो सर्व पापके मूल हैं। जेते जगतके पाप हैं, तेते सर्व इन व्यसननमें गर्भित हैं। सो जिनके उदर विषैं, इन व्यसननकी वासना है। सो धर्म विमुख प्राणी, अपने भवका बिगाड़नहारा है। हे भव्य ! ये सात व्यसन, सात नरकके दूत हैं। ये व्यसन जीव कौं किञ्चित् सुखकी छायासी बताय लोभ देय नर्क विषैं धरैं हैं। जे प्राणी इन व्यसननमें फँसैं हैं। तिनने अपना भव वृथा किया धर्म छोड़ि दिया। और जे जीव इन कूं परख व्यसन जानि इन विषैं रंजायमान होय प्रवृर्तें इन कौं सेवन करैं। सो जीव पापके निशान हैं। तिस व्यसनीका चलन ही अशुभ होय धर्म क्रिया हीन होय परणति खोटी होय जिन आज्ञा रहित होय अभिमानी होय सुबुद्धि जीवन करि निन्द्य होय। दरिद्री अन्न करि दुखी होय। इत्यादिक युग भव दुखका सहनहारा ये व्यसनी है। सो विवेकी जीवन करि तजिवे योग्य है। या व्यसनीका संग भला नाहीं। अहो भव्य हो ! दीन होय रहना भला है। तातैं समता सधै कोई जीवन कौं पीड़ा नहीं होय। ऐसा उपदेश सुनि जो जीव व्यसनका सेवनेहारा अञ्जन चोरकी नाईं निकट संसारी होय। तो ऐसे निकट भव्य जीव तौ व्यसन कौं बुरे जानैं। अपनी निन्दा करते अत्यन्त आलोचना करते उपदेशीका उपकार मानैं। स्तुति करि

व्यसन भाव तजैं हैं अपना भव सफल जानि धर्म विषैं लागैं। सत्संगकी महिमा करैं। कहैं सत्संग धन्य है जो मोकों व्यसनके पापका भेद बताय संबोधित किया। जैसे काहू कौं कूप पड़ते राखै। तैसे सत्संग ने मोकों नरक पड़ते कौं बचाया तथा जैसे कुधातु जो लोहा ताकौं पारस लाग कंचन करै। तैसै ही मोसे पापी व्यसनी लोहे समान कूं पाप तैं छुड़ाय धर्मी किया। इत्यादिक भव्य व्यसनी तो अपना भला जानि सत्संगकी स्तुति करै। और जे पापी व्यसनी दीर्घ संसारी हैं। ते व्यसनकी निन्दा सुनि, आप बुरा मानैं सत्संगकूं तजैं। परन्तु सप्त व्यसनकूं नहीं तजैं। ऐसे पापी-व्यसनी कौं, धर्मोपदेश नाहीं लागे। ये सात व्यसन ही धर्मके घातक हैं। ऐसा जानि उत्तम श्रावक जिन आज्ञा प्रमाण व्रतके धारीकूं, अपने व्रतकी रक्षा निमित्त, ए सात ही व्यसन अतिचार सहित तजना योग्य है। इन सप्त व्यसनके अतिचारमें आठ मूल गुणके अतिचार बाईस अभक्ष्य आदि आगये सो जानना। इत्यादिक सर्व दोष रहित सम्यग्दर्शन व अष्ट मूल गुण होंय, और ए सात व्यसन व बाईस अभक्ष्यका त्याग सो प्रथम दर्शन प्रतिमा जानना॥ १ ॥

इति श्री सुदृष्टितरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, सागार धर्म-एकादश प्रतिमा विषैं प्रथम दर्शन प्रतिमाके बाईस अभक्ष्य अतिचार सहित सात व्यसन त्याग, अष्ट मूल गुण सहित कथन वर्णनो नाम बत्तीसवां सर्ग सम्पूर्णं ॥ ३२ ॥

आगे दूसरी व्रत प्रतिमाका संक्षेप लिखिये हैं। दूसरी व्रत प्रतिमा है ता व्रतके बारह भेद हैं। पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और च्यारि शिक्षा व्रत। ए सब मिल बारह भये। तहां प्रथम नाम-अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्य्याणुव्रत, ब्रह्मचर्य्याणुव्रत, परिग्रहपरिमाणाणुव्रत। ए पांच अणुव्रत है। अब इनका सामान्य अर्थ—जहां एक देश पांच पापनका त्याग सो अणुव्रत हैं। अणु नाम थोरेका है सो ये त्रस हिंसाका तो सर्व प्रकार त्यागी है। बाकी बारहमें ग्यारह तैं असंयम है। परन्तु महा दयालु है। कोई यहां ऐसा जानेगा जो त्रस रक्षक है तो स्थावर घात करता होयगा। मन इन्द्रिय वश नहीं होय सो मन इन्द्रिय करि महा विकल रहता होयगा ? सो हे भव्य ए अणुव्रती श्रावक संसारीक इन्द्रिय भोगन तैं महा उदास है। पांच-पापन तैं महा भय-भीत है। सो इन्द्रिय-मनकों सदीव रोकता धर्म ध्यान मई प्रवर्तै है। ये भोग-भाव, ताहि

काले नाग समानि भासैं है। ताका इनमें मन रंजै नाहीं। और स्थावरकी हिंसाका त्यागी तौ नाहीं परस्तु पंच स्थावरके आरम्भमें दया-भाव सहित आरंभ करै। जहां अल्प हिंसा होय तामें भये पापकी आलोचना रूप रहै है। तातैं ए अणुव्रती मन इन्द्रिय वश करिवेका तौ उपाई है। और स्थावरकी रक्षा रूप भावनाका भोगी है। तातैं ये व्रती श्रावक महा दया धर्मका धारी है। गृह-आरम्भ परिग्रहके योग तैं सर्व प्रकार स्थावर की हिंसा बचती नाहीं। तातैं तिस श्रावककूं अणुव्रती कह्या है। अपने हाथ तैं त्रस हिंसाका आरम्भ नहीं करै। सो याका नाम अहिंसाणुव्रत है याके पांच अतिचार हैं। सो ही कहिये हैं-अपने हाथ तैं कोई त्रस जीव कूं नहीं बांधै। जैसे हस्ती, घोटक, गाय, बैल, भैंस, बकरी, मनुष्य इत्यादि त्रस जीवके हाथ-पांव, बन्धन तैं नहीं बांधै। गलेमें फन्दा डाल कोईकूं नहीं बांधै। तथा बालककूं भी क्रीड़ा-मात्र नहीं बांधै। याका नाम बन्ध अतिचार तजन है ॥ १ ॥ वेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय इन आदि त्रस जीवनकौं कोड़ा, लाठी आदि शस्त्रन तैं नहीं मारै। सो ये बध दोष त्याग है ॥ २ ॥ और मर्यादाके उपरांत; पशु पै, मनुष्यन पै भार नहीं लादै। सो याका नाम अतिभारारोपण दोष त्याग है ॥ ३ ॥ और त्रस जीवनके अङ्गो-पाङ्ग अपने हाथतैं नहीं छेदै। सो ये छेदन दोष निवारण है ॥ ४ ॥ और कोई त्रसका, अन्न-जल-घासादि खान-पान नहीं रोकै। जैसे कोईके सिर अपना कर्ज आवै था। सो ताकौं ऐसा नहीं कहै, जो हमारा कर्ज देव, नहीं तो अन्न-जल खायगा तौं तोकौं ऐसी आण (कौल) है। ऐसा वचन, व्रती श्रावक नहीं कहै। तथा गाय, बैल, हस्ती, घोटकके खान-पान कूं बंद नहीं करै। याका नाम अन्न-पान निरोध दोष तजन है ॥ ५ ॥ ऐसे पांच अतिचार नहीं लगावै। सो शुद्ध व्रत अहिंसाणुव्रत है। इति अहिंसाणुव्रत ॥ १ ॥ आगे सत्याणुव्रतका अतिचार सहित स्वरूप कहिये है। तहां ऐसो स्थूल झूठ नहीं बोलै, जातैं लोक निन्दा होय, दूसरोंकौं बुरा लागै। कोई दगाबाजी सहित बचन, कठोर वचन, मर्म छेदन वचन, परदोष प्रगट करन वचन, कलहकारी वचन, द्रोह वचन, गाली वचन पापबंधकारी वचन, परघर धन मन तन हरन वचन, परनिन्दा वचन, क्रोध वचन, लोभ वचन, रागद्वेष वचन, अविचार वचन, इत्यादिक असत्य वचनके भेद हैं। इन सर्वका त्यागना,

सो सत्याणुव्रत है। सो याके भी पांच अतिचार हैं। सो दिखाईये हैं। प्रथम नाममिथ्या उपदेश, रहोव्याख्यान, कूटलेख क्रिया, न्यासापहार, और साकार मंत्र भेद। इनका अर्थ-तहां झूठा उपदेश देना झूठा मार्ग बतावना तथा बालकनतैं असत्य भाषण करि, क्रीड़ा करनी। इत्यादिक असत्य वचन बोलना सो मिथ्योपदेश है॥ १ ॥ और जहां पराई एकांतकी बात कोई बतलावते होंय, ताकौं कोई अनुमान तैं जानि, अन्य लोकन में प्रकाश करै। सो रहो व्याख्यान अतिचार है॥ २ ॥ और जहां झूठा खत, हुण्डी, चिट्ठी लिखना। झूठा लेखा माड़ना। इत्यादिक ये कूट-लेख क्रिया दोष है॥ ३॥ और पराये गहने आदि धरे माल कौं राखि, जानि—पूंछि मुकरि (मेंट) जाना, सत्यघोष पुरोहितकी नांईं। सो न्यासापहार नाम अतिचार है॥ ४ ॥ और कोईके शरीरके चिन्हतैं, नेत्रके चिन्हतैं, मुखके चिन्हतैं, ताकी अक्रिया देख, ताके मरमकी बातकौं जानि, पीछे द्वेषभाव करि, पराइ छिपी बात कूं सबमें प्रगट करना। सो साकार-मंत्र भेद दोष है॥ ५ ॥ ऐसे पांच अतिचार रहित होय, सो सत्याणुव्रत कहिये ॥ २ ॥ आगे अचौर्य्याणुव्रतका स्वरूप कहिये है। तहां पराया धन विना दिया लेय, सो अदत्तादान है। ये चोरी जानना। जो पराये पुत्र, स्त्री, दासी, दास, हस्ती, घोटक, गाय, बैल, बकरी, इत्यादिक चेतन वस्तु। अरु रत्न, स्वर्ण, चांदी, वस्त्र, अन्न, धन ये अजीव वस्तु। ऐसे इन चेतन—अचेतन द्रव्य कौं चोरना, सो चोरी है। सो या चोरीके पांच अतिचार हैं। सो कहिये हैं। प्रथम नाम-स्तेय प्रयोग, स्तेय वस्तु आदान, राज्य-विरुद्ध क्रिया, मानोनमान, पर-रूपक व्यवहार। ये पांच अतिचार हैं। इनका अर्थ-तहां चोरोका उपदेश देना, चोरकूं राह बतावना, पराया घर—मन्दिर फोड़वे कूं कुसिया, कुदारी देय, चोरोका मनसूबा बतावना। इत्यादिक चोरीके प्रयोग बतावना, सो स्तेय प्रयोग नाम दोष है॥१॥ औरो चोरोकी वस्तुकूं सस्ती जानि, बड़ा नफा देख, मोल लेना। सो याका नाम तदाहरत-दान दोष है। याहीका नाम स्तेय वस्तु आदान दोष है॥२॥ और राजाकी मर्यादा लोपना, राजाकी आज्ञा, टालना, सो राज्य—विरुद्ध नाम दोष है॥ ३॥ और जहां लेनेके तोलादि तो बड़े होंय, और परकौं देनेके पाई, कुड़ा तोला सेर पंसेरी सो छोटी-हीन राखै। सो याका नाम हीनाधिक मानोन्मान नाम अतिचार है

॥ ४॥ और बड़े मोलकी वस्तुमें, थोड़े मोलकी वस्तुकों मिलायके बेचना। सो प्रतिरूपक व्यवहार नाम दोष है ॥ ५ ॥ ऐसे इन पांच अतिचार रहित होय सो अचौर्य्य नाम अणुव्रत है। इति अचौर्य्याणुव्रत ॥ ३ ॥ आगे ब्रह्मचर्य्याणूव्रत कहैं हैं। जाकैं छोटो पर-स्त्री, पुत्री बराबरकी स्त्री बहिन व बड़ी स्त्री माता समान है। ऐसी दृष्टि तौ पर स्त्रींन पै रहै। और अपनी परणी स्त्रीमें संतोषी, तीव्र राग रहित समता भाव सहित संतान उत्पत्ति निमित्ति स्व-स्त्री तैं रति समय संगम करै। बाकी च्यारि प्रकार चेतन अचेतन स्त्री विषैं रागद्वेषका अभाव विकार दृष्टि करि नहीं देखै। तथा पर-स्त्रीनमें काम चेष्टा रूपविकार वचन हाँसि वचन परस्पर प्रेम बधावने हारे निर्लज्ज वचन कुशील-राग करि भरी दृष्टि देखना परस्त्रीन तैं गोस्टीचर्चा वार्ताकरनी इत्यादिक परस्त्री संबंधी दोष हैं। कैसी है पर-स्त्रीकी दृष्टि ? विषनाग समान राग-जहर करि भरी योवन करि मदोन्मत्त, विकराल स्वरूपकी धानहारी। शीलवान् पुरुषोंकों भयकारी। महा विष नागनी। बालक,बृद्ध देव पशु सर्वातीन गतिके जीवनकूं डसनहारी। बड़ोकी आज्ञा रूपी मंत्र मर्यादकी लोपनहारी। ऐसी परस्त्रीका त्याग सो ब्रह्मचर्य्याणुव्रत है सो याके पांच अतिचार हैं सोही कहियो हैं। प्रथम नाम परविवाह करण, इत्वरिका गमन, परगृहीतागृहीत गमन अनंग क्रीड़ा, काम तीव्राभिनिवेश। ये पांच हैं। इनका अर्थ तहां पराया विवाह करावना। बीचिमें पड़ि, सगाई करावना। बीचमें फिरि, लड़का-लड़कीनके नाता मिलाय, साख मिलाय, व्याहके नेग चार करावना। इत्यादिक व्याहके कार्य करावना सो पर-विवाह करण नाम दोष है ॥१॥ और दासीकूं घरमें राखना तातैं स्त्री-व्यवहारकी चेष्टा करनी। सो इत्वरिका-गमन नाम अतिचार है ॥ २ ॥ और पर-कर-गृहीत जे स्त्री, जिनका भर्तार जीवता होय तथा पर कर नहीं गृहीत जो विधवा स्त्री-भर्तार रहित। तथा कुवांरी विवाह रहित। इनतैं विकार चेष्टा करि तिनके घर गमनागमन करना। सो पर गृहीतागृहीत गमन नाम दोष है ॥ ३ ॥ और जहां स्त्रीका भोग योग्य योनि स्थान तजि वाह्य अङ्गन तैं क्रीड़ा करनी। जैसे श्वानादि पशु भोग-योग-स्थान तजि ऊपर ऊपर क्रीड़ा करैं। तथा हाथ-पांव अङ्गन तैं क्रिया करि वीर्यका गिराना। इत्यादिक ये अनंग क्रीड़ा दोष है ॥ ४ ॥ और जहां, जा भोजन तैं, तथा जिन बचनन तैं तथा जिस क्रिया तैं, तीव्र कामकी बधवारी

होय। सो कामतीव्राभिनिवेश दोष है ॥ ५ ॥ ऐसे ये पांच अतिचार रहित होय, सो ब्रह्मचर्य्याणुव्रत है। इति ब्रह्मचर्य्याणुव्रत ॥४॥ आगे परिग्रह परिमाणाणुव्रत कहिये है-तहां दस प्रकार परिग्रह तिनका प्रमाण करै। सो तिन दसके नाम चेत्र वास्तु, धन, धान्य, चौपद, दोपद, आसन, शयन, कुप्य, और भाण्ड ये दस भेद परिग्रह के हैं। सो तहां चौतरफ चेत्रका प्रमाण करना। जो येते चेत्रनमें कर्म सम्वन्धी क्रिया करनो। यातैं अधिक चेत्रनमें कर्म सम्वन्धी कार्य करनेके ममत्वका त्याग सो क्षेत्र परिमाण है। तथा एते चेत्र विषैं हल जोति खेती करना अधिक चेत्र नहीं जोतना। ऐसा परिमाण करना सो चेत्र परिग्रह परिमाण है ॥ १ ॥ और जहां दुकान, मन्दिर, नगरका परिमाण जो एते मन्दिर राखे। सो वास्तु परिग्रह परिमाण है ॥ २ ॥ स्वर्ण, चांदी, रत्न इत्यादिकका प्रमाण करना, जो एता धन राखना सो धन परिग्रहका परिमाण है ॥ ३ ॥ और तहां तन्दुल, गेहूं, जव, ज्वार, मोंठ, मूंग, उड़द, चना, कोदों, वटरा, मसूर तूअर इत्यादिक अन्नकी संख्याका परिमाण जो एेते अन्न राखे, सो एते तौल प्रमाण सो धान्य परिग्रहका परिमाण है ॥४॥ और दासी-दास सेवक, दो पदके धारी जीव एते राखना, सो दुपद परिग्रहका परिमाण है ॥ ५ ॥ और हस्ती, घोटक, ऊंट, गाय, भैंस वकरी, ए चौपद हैं। सो इनका परिमाण करना, जो एते चौपद अपने आधीन राखूंगा। सो चौपद परिग्रह परिमाण है ॥ ६ ॥ और रथ, गाड़ी, गाड़ा, सिंहासन, पालकी, म्याना, इत्यादिक आसन हैं। सो इनका परिमाण राखना। सो आसन परिग्रह परिमाण है ॥७॥ और पलंग, खाट, विछौना, तकिया इनका परिमाण कर लेना। सो शयन परिग्रह परिमाण है ॥ ८ ॥ और सूत रेशम घास, रोम इत्यादिकके कोमल कठोर वस्त्र तिनका प्रमाण। सो कुप्य नाम परिग्रह परिमाण है। तथा केशर, कपूर, अगर चन्दन, इतर इनकी खुसवूका परिमाण एती खुसवू राखी सो याका नाम कुप्य परिग्रह परिमाण है ॥ ९ ॥ धातु पात्रके वासन चांदी, स्वर्ण, कांसा, पीतल, तांवा, लोहा, जस्ता, सीसा रांगा इत्यादिक पृथ्वी काय धातु-पात्रनका परिमाण राखना। जो एते थाल, रकेवी, चरुवा, वेला, भरत्याई सर्वकी गिन्ती तौलका परिमाण रखना। सो भाण्ड नाम परिग्रह परिमाण है ॥ १० ॥ इन दस जाति परिग्रहके परिमाणका नाम तो, प्रश्नोत्तर श्रावकाचारजीके अनुसार कहा

और तत्त्वार्थ सूत्रजी विषैं क्षेत्र वास्तु स्वर्ण हिरण्य धन धान्य दासी दास भाण्ड कुप्य। ए दस हैं। सो नाम भेद हैं। अर्थ भेद केवली-गम्य है। तथा विशेष ज्ञानीनके गम्य है। इन दश जाति परिग्रहका परिमाण करना सो परिग्रह परिमाण अणुव्रत है। सो याके पांच अतिचार हैं। सो ही कहिये हैं। अति वाहन, अति संग्रह, विस्मय अति लोभ और अति भारारोपण। ए पांच हैं। इनका सामान्य अर्थ गाड़ा गाड़ी रथ हस्ती घोड़ा इत्यादिक असवारी जातिके जैसे दस हजार घोड़ा दस रथ इत्यादिक परिमाण राखे थे सो वर्तमान कालमें आपके पास परिमाण तैं थोड़ा है। सो ताके पूर्ण करवेकौं अनेक उपाय करते, ऐसा विचारै। जो मेरे तो दसका प्रमाण है। सो पांच तौ हैं, अरु पांच और ल्यौं। तौ मेरे व्रतकूं दोष नाहीं। ऐसा विचार कर पूरण कस्या चाहै है। सो बहुत बाहन नाम दोष है। तथा अपने परिमाण तैं बहुत इकट्ठे करवेकी इच्छा होय। तथा अपने प्रमाण तैं बहुत वाहन होंय। तौ कहै, ए मेरे नाहीं, मेरे पुत्रके हैं तथा स्त्रीके हैं, तथा भाईके हैं। इत्यादि-क अपने मन तैं कल्पना करि, तिनकौं इकट्ठे करै। सो अतिबाहन नाम दोष है॥ १॥ अपनी मर्याद उल्लंघि तथा सन्तोप छोड़, अत्यन्त लोभके योग तैं, अपने जेते अन्नकी मर्यादा राखी थी, ताही प्रमाण अनेक जातिका अन्न संग्रह करि भड़शालामें बहुत दिन राखै। तिनमें अनेक जीव पड़ चलें सो तिनकौं देख कैं, निर्दय-भावना करि ऐसा विचारै। जो मेरे एते अन्नकी मर्यादा है। कोई मर्यादा कूं उल्लंघि करि थोड़े ही राख्या है अरु जीव पड़े सो ही पड़ैं। अन्न है। ऐसी कहां सधै? व्यापार है। नहीं करिये, तौ बने नाहीं। ऐसा विचार करि कठोर भाव राख दया नाहीं करै। सो बहुत संग्रह नाम दोष है॥ २॥ कठार-खानेकी दुकान सम्बन्धी किराना, धना, जीरा, हल्दी आदि अनेक वस्तु लेनी-बेचनी। तिनमें सामान्य विशेष लाभादि नहीं जान, परणामनमें खेद करना, संक्लेशता रखनी। तथा पहिले तौ लाभ जानि वस्तु ल्यावना। पीछे लाभ नहीं भासै तब बहु तृष्णा करि बेचना। तथा अपनी मर्यादा तें अधिक आई जान ताके फेरवेकौं विसंवाद करना। सो विस्मय नाम दोष है॥ ३॥ और जहां वाणिज्यके निमित्त अनेक वस्तु संग्रह करना, लेना पीछे बैंचना तब अल्प मोलकी वस्तुमें मिलाय बैंचना। सो अति लोभ नाम दोष है॥ ४॥ और तहाँ

वृषभ भैंस, खर, हिम्माल, इनके ऊपर मर्यादाके उपरान्त भारका धरना। जैसे भाड़ा तो तिनके भारकी मर्याद प्रमाण मनुष्य तैं किया। अरु पीछे राजाके करके भय तैं चुराय, ताके ऊपर बड़ा भार धरना। तथा नफाके लोभ तैं पर जीवन पै मर्यादकौं उल्लंघि, भारका धरना सो अति भारारोपण दोष है ॥ ५ ॥ ऐसे कहे जो पांच अतिचार बचावै, तौ परिग्रह प्रमाणका व्रत, शुद्ध होय है। इति पांच अणुव्रतके, पच्चीस अतिचार कथन ॥ आगे तीन गुणव्रतके नाम व अतिचार कहिये है। प्रथम नाम—दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थ दण्ड त्याग व्रत। इनका अर्थ—तहां पूर्व दिशा, पश्चिम दिशा, उत्तर दिशा, दक्षिण दिशा, और पूर्व-दक्षिणके बीचि आग्नेय कोंण विदिशा है। और दक्षिण—पश्चिमके बीचमें नैऋत्य विदिशा है। पश्चिम-उत्तरके बीचिमें वायव्य कोंण है। उत्तर—पूर्वके बीचिमें ईशान कोंण है। ये च्यारि विदिशा हैं। तथा ऊर्ध्व दिशा, और अधो दिशा। ऐसी इन दशों दिशाओंका परिमाण करना। तथा दिशा—विदिशा विषैं ऐसी प्रतिज्ञा करनी। जो फलानी दिशा-विदिशाकूं, फलानी नदी तांई तथा फलाने पर्वत तांईं, फलाने देश तांईं, फलाने नगर तांईं, एती मर्यादमें कर्म-कार्य करूंगा। एती ही दूर तांईं, पत्र लिखूंगा। एती ही दूरका पत्र आय तौ बांचूंगा। ऐती ही मर्यादमें वस्तु भेजूंगा। ऐती ही मर्याद तैं मँगाऊंगा। इस मर्यादको उल्लंघकैं पत्र नहीं लिखूंगा। और उर्ध्व दिशामें एते उंचे पर्वत तांईं चढ़ूंगा। और अधो दिशामें एती नीची धरा तांईं पातालमें नदी-कुएंमें जाऊंगा। ऐसे दसों दिशाका प्रमाण करै। सो दिग्व्रत है। याके पांच अतिचार सो ही कहिये हैं। अधोतिक्रम, उर्ध्व अतिक्रम, तिर्यग्गमन अतिक्रम, क्षेत्र परिमाण उल्लंघन और अन्तर स्मरण। अब इनका अर्थ-अपनी मर्यादाकूं उल्लंघि कैं धरती, कूप, बावड़ी, नदी इत्यादिक पृथ्वीमें उतरना। सो अधो दिशातिक्रम नाम अतिचार है ॥ १ ॥ और जहां पर्वत-शिखरन पै, अपनी मर्याद उल्लंघके चढ़ना, सो उर्ध्व दिशातिक्रम अतिचार है ॥ २ ॥ मर्याद उल्लंघि कैं, विदिशामें गमन करना। सो तिर्यग्गमन अतिक्रम अतिचार है ॥ ३ ॥ जिन क्षेत्रनमें मर्यादा की थी सो तिसकौं उल्लंघि, अधिक क्षेत्रमें कर्म-कार्य करना। सो क्षेत्र उल्लंघन अतिचार है ॥ ४ ॥ और जहां दिशामें सीमा की थी। ताकूं अंतरंगमें भूलकर विचारना, जो

मेरे कौनसी दिशा की मर्यादा थी? ऐसे करि मर्यादा का भूलना सो अंतर-स्मरण नाम दोष है ॥ ५ ॥ ऐसे अतिचार रहित, दिग्व्रतका पालना सो दिग्व्रत है ॥ १ ॥ आगे दूसरा देशव्रत कहिये है। तहां आगे कह्या दिग्व्रत-परिमाण, ताहीमें घटाय के मर्यादा करना। जो पहिले दिग्व्रत किया, सो आयु पर्यन्त है। और तिस व्रत में घटाय, रोज-रोज की मर्यादा करनी। तथा वर्ष, षट् मास, चतुर्मास, एक मास, पन्द्रह दिन, पहर, घड़ी का नियम करना। जो एते काल, एते दिन, एते मास ताईं, एते भोग-उपभोग राखे। भोग वस्तु में एते अन्न, एते मेवा, खावने; अधिक नाहीं। ऊपर-भोग में एते वस्त्र, गाड़ी, रथ, घोड़ा हस्ती महल, बिछौना, स्त्री एते-एते राखे। सो भोगना अधिक नाहीं। एते क्षेत्रमें कोस, दस-पांच धनुष, जाऊंगा। ये क्षेत्र में एते काल ताईं रहूंगा। इत्यादिक नियम रूप मर्याद सो देशव्रत है। याही के पांच अतिचार हैं सो कहिये हैं। प्रथम नाम-आसन-शयन, पर-पेक्षण, शब्द रूप और पुद्गल-क्षेपण। ये पांच हैं। इनका अर्थ—जहां जेते स्थान का परिमाण करि, जेते काल पर्यन्त दृढ़ होय तिष्ठना, शयन करना, बैठना। इतनी मर्याद में ऐसे रहना। ऐसे मर्याद करि, फेरि ताके काल-क्षेत्र कौं उलंघि कैं क्रिया करनी, सो आसन-शयन अतिचार है ॥ १ ॥ जेते क्षेत्रमें कालकी मर्यादा करी। तामें तिष्टया ही औरके पास संज्ञा, उपदेश देय कार्य करावना। सो पर-पेक्षण अतिचार है ॥२॥ आप अपनी सीमा-मर्यादामें बैठा ही, और कों बुलाय कार्य करावै। तथा अन्य कूं दूर बैठे तैं बतावै। तथा अन्य कोई कार्यवारे ने आय कही कि फलाने जी कहां हैं? तब अपने स्थान में तिष्टया ही, खखार करि, तथा खाँसि कर, अपना अस्तित्व बतावै, जो हम यहां हैं ताका नाम शब्द दोष है ॥ ३ ॥ आप तो अपने स्थान में तिष्ठै है। और कोई प्रयोजनहारा आवै। अरु कहै, फलाना कहां है? तब वाका शब्द सुनि प्रयोजनी जान, गोखतैं, खिड़की तैं अपना मुख काढ़ि ताकौं बतावै। ताकों संज्ञा करि, कार्य सिद्ध करै। सो रूप नाम अतिचार है ॥ ४ ॥ अपने परिणाम क्षेत्र में तिष्ठता कोई कार्य काहू तैं जानि वातैं बोल्या तो नाहीं। परन्तु कंकर वस्त्रादि पुद्गल-स्कन्ध डार अपना कार्य सिद्ध करना सो पुद्गल-क्षेत्र नाम दोष है ॥ ५ ॥ ऐसे पांच अतिचार नाहीं लागैं। सो

शुद्ध देशव्रत है। इति देशव्रत ॥ २ ॥ आगे अनथ दण्ड त्यागव्रतका कथन करिये हैं तहां विना प्रयोजन पाप कार्य करना सो अनर्थ दण्ड है। ताके पांच भेद हैं। प्रथम-पापोपदेश, हिंसा का उपकरण राखना [हिंसादान] अपध्यान दुःश्रुति और प्रमाद-चर्य्या। इनका अर्थ-जहां पापका उपदेश, पर कौं देना। जो आओ, बैठो। कहा करो हो। चौपड़, सतरंज, गंजफा, मूठ आदि द्यूत खेलो। ज्यों दिन कटै। ऐसा उपदेश देना, सो अनथं दण्ड है। तथा चोरी करवेका मनसूबा करना। चोरनकी चतुराईकी प्रशंसा करनी। चोरी का उपदेश देना। कुशील सेवनकी कथा करनी। कुशील सेवनके कारण धातु आदि कामोद्दीपन औषधि की कथा करनी। ये सब अनर्थ दण्ड है। वेश्या-कंचनी के रूपकी कथा। तिनके नाच, गान, नृत्य इनकी कथा सो अनर्थ दण्ड है। तथा जातैं परिग्रह बधै, ताका उपदेश देना। मोह बधै, क्रोध बधै, मान-माया-लोभ बधै, मत्सर बधै। इत्यादिक दोष बधैं, ऐसा उपदेश देना। तथा भूमि खोदने का उपदेश देना। बहुत अग्नि जलावने का उपदेश, तथा पराये घर-नगर-बन में अग्नि लगायवे का उपदेश देना। ये अनर्थ दण्ड है भूमि-खुदाय खेती करनेका उपदेश देना तथा नदी, तालाव, बावड़ो, कूप का जल बहावने, फोड़ने का उपदेश देना। वस्त्र धुलआने का उपदेश। कूप, तालाव बावड़ी महल, मन्दिर, बनावने का उपदेश देना। परस्पर औरन के युद्ध करायवे का उपदेश। ये सर्व अनर्थ दण्ड हैं। तथा नदी तालाव, बावड़ी में कूदने-सपरने का उपदेश। तथा बहुत वृक्ष, बनस्पति छेदनेका उपदेश। बन कटायवे का उपदेश बाग कटायबे का उपदेश, घास कटायवे का उपदेश। अन्न, तिल, शहद, सन हाड़ का संग्रह-भण्डशाल करने का उपदेश। ये सर्व अनर्थ दण्ड है। तथा धर्म-घात का उपदेश देना। जो हे भाई, धर्म तौ तब याद आवै, जब पेट-भर रोटी मिलै। तातैं बड़ा धर्म येही है। जासे दोय पेसा पैदा होंय, सो करो। धर्म-सेवन में कहा खावोगे? ऐसा धर्म-घातक उपदेश, सो अनर्थ दण्ड है। तथा कोई तीर्थ-यात्रा कों जाता होय। ताकौं ऐसा उपदेश देना जो हे भाई, अभी तो कुमाई के दिन हैं। तोकों दोय-च्यारि महिना परदेश में लगैं। पांच-पचास रुपया खर्च पड़ैं। ऐसे तीर्थ में कहा पाय है? तातैं घरही तीर्थ है। तेरे भाव अच्छे राख।

इत्यादिक उपदेश देना। सो अनर्थ दण्ड है। तथा तू सब दिन धर्म-सेवन, पढ़ना-सीखना, जप, तप, इत्यादिक धर्म-विषैं लगावै है, घर का सोच नाहीं। सो खायगा कहा? आगे घरका काम कैसे चलेगा? तातैं कुमाई में लागो। इत्यादिक धर्म-घातक उपदेश देना सो अनर्थ दण्ड है सो याका नाम पापोपदेश है॥ १॥ और हिंसा का उपदेश देय, हिंसाके उपकरण करावना। चक्की, ऊखली, मूसली, छुरी, कटारी, बर्छी तलवार, तुबक,, कुल्हाड़ी, कुदारी, कुसिया, हंसिया, इन आदि को बनवायकर, मांगे देना। इत्यादिक पाप कार्य करना, करावना अनुमोदना। सो हिंसा दान नाम, अनर्थ दण्ड है ॥२॥ और जहां खोटे पापकारी व्यापार का उपदेश देना। आप दीर्घ हिंसा सहित व्यापार का करना, तथा परकौं ताका उपदेश देना। तथा परकौं पाप-व्यापार—वाणिज्य का उपाय बतावै कहै कि शीशा, शोरा, शहद, नील, अदरख, इनका वणिज करने मैं, बड़ा नफा है। सन, साजी, लूण [नमक], चर्म इनके व्यापार में विशेष नफा है। इत्यादिक पाप-व्यापार का उपदेश देना सो अपध्यान नाम अनर्थ दण्ड है॥ ३॥ जहां स्वेच्छा-अर्थ कल्पना करि, कामी जीवन कौं विकार-भाव करिवे कूं, कवीश्वरों नें बनाये जो शृङ्गार शास्त्र, जो राग-मालादि रसिक प्रिय सुन्दर शृङ्गार इत्यादिक शास्त्र, जिनकौं सुनि भोरे मोही जीव, अपने भाव काम-चेष्टा रूप करि, पर-स्त्री आदि भोगनेकी अभिलाषा करि, पाप बन्ध करैं। जिन शास्त्रनमें पर-स्त्री सेवनेमें पाप नहीं कह्या। विधवा स्त्री कौं घरमें रख, उससे काम सेवनमें पाप नहीं कह्या होय। इत्यादिक कामी जीवन कूं मोह उपजायवे कूं, अपने २ विकार भाव पोषिवे कूं, जे शास्त्रका कथन करना सो अनर्थ दण्ड है। लोभी कवीश्वरोंने अभक्ष्य भोजनमें पाप न कह्या। मद्य-मांसके खावनेके अभिलाषी जीव, तिनके राजी करवे कूं बनाये जो कल्पित-अपनो मति अनुसार शास्त्र तिनमें हिंसाका पाप नहीं कह्या। मद्य, मांस, मधु, खावनेका पाप नहीं कह्या होय सो शास्त्र अनर्थ दण्ड है। जिनमें नाहर, सुअर, हिरण मारनेका पाप नहीं कह्या, वनस्पती छेदवेमें पाप नहीं कह्या। अनगाले जल पीवने, सपरनेमें पाप नहीं कह्या। ऐसे जो कषाई जीवनके बनाये कल्पित शास्त्र, परम्पराय योगीश्वरोंकी आम्नाय रहित कल्पित शास्त्र करे, सो अनर्थ दण्ड है। जिनमें

जादू करना, वशी करना, पर-मोहन, ऐसे कल्पित मंत्र, यंत्र, तंत्र, स्तम्भन इत्यादिक चमत्कार बतावनेका कथन करि, भोरे जीवन कूं आश्चर्य उपजावना। ऐसे कल्पित स्वेच्छा शास्त्रनका जोड़ना, सो दुःश्रुति नाम अनर्थ दण्ड है ॥ ४ ॥ प्रमाद सहित, ईर्य्या भाव रहित, शीघ्र-शीघ्र चलना। त्रस जीवनकी विराधना सहित, अदया भाव करि चलना। विना प्रयोजन पृथ्वी, अप, तेज, वायु, वनस्पती आदिका छेदना। इसीका नाम प्रमाद-चर्य्या अनर्थ दण्ड है ॥ ५ ॥ ऐसे इन पांच भेद मई अनर्थ दण्ड है सो याके पांच अतिचार हैं। सो ही कहिये हैं। प्रथम नाम-कन्दर्प, कौत्कुच्य, मौखर्य, अति प्रसाधन और असमीक्ष्याधिकरण। इनका अर्थ—तहां काम चेष्टा सहित, कायका स्फुरावना। नेत्रकी चेष्टा, विकार रूप करनी। मुख, विकार रूप करना। काम पोषक, शील भंजन, भयानीक, राग भरे वचन कहना। भय बतावना। पर कौं लोभ बतावना। काय मोड़ना, आदि अनेक कुचेष्टायें लिये, काम-विकार सहित बोलना सो कन्दर्प नाम अतिचार है ॥ १ ॥ जहां कौतुक लिये मदोन्मत्त भया, हाँसि सहित भण्ड-वचन बोलना। गालि काढ़िने मई हाँसि वचन, शील खण्ड पाप रूप वचन, काम-चेष्टा—विकार मई आलसका लेना, दीर्घ उश्वासका करना। अपने शरीरके गूढ़ चिन्ह प्रगट करि, अन्य कौं दिखावना सो कौत्कुच्य नाम अनर्थ दण्ड दोष है ॥ २ ॥ जहां प्रयोजन रहित वृथा वचन भाण्डवत् बोलना सो धर्म-कर्म रहित विना प्रयोजन ही खुसकी नाईं वचन बोलना सो मौखर्य नाम दोष है ॥ ३ ॥ जहां हिताहित-ज्ञान रहित, अविचार सहित, मूर्ख वचन भाखना ताकौं सुनि, वे प्रयोजन बहुत जीव द्वेष-भाव करैं। मूरख कहैं, निन्दा पावै। इत्यादिक द्वेष उपजावनहारा, विना प्रयोजन वचन बोलना सो असमीक्ष्याधिकरण दोष है ॥ ४ ॥ जहां संसार विषैं अनेक भोग वस्तु, अनेक उपभोग योग्य वस्तु, नाना प्रकार इन्द्रिय सुख। देव, इन्द्र, चक्री, कामदेव, भोगभूमियां, इत्यादिक पुण्याधिकारी जीवनके भोग योग्य वस्तु, तिनके भोगनेकी अभिलाषा करनी सो पुण्य तौ हीन, जो उदर पूरणा ही होती नाहीं। इन्द्रिय सुख भोगवेकी इच्छा-देव-इन्द्र कीसी राखना तथा पराया राज्य-भोग देख, पुण्य-रहित ऐसा विचारै। जो ये राज्य नहीं करि जानै। अरु राज्य-लक्ष्मी नहीं भोग जानै। अरु ये हस्ती, घोड़ा, पालकी पै नहीं

चढ़ जानै। प्रजा नहीं पाल जानै। जो ऐसी राज्य-लक्ष्मी मोकों मिलै, तौ मैं ऐसे राज्य करौं। ऐसे हस्ती, घोटक, रथ, पालकी पर चढ़ों। ऐसे राज्य-लक्ष्मी भोगूं। इत्यादिक पुण्य रहित होय, अर्थ रहित विचार, सो भोगोपभोग (अति प्रसाधन) नाम दोष है ॥ ५ ॥ इति तीसरा अनर्थ दण्ड त्याग गुणव्रत ॥ २ ॥

इति श्री सुदृष्टि तरङ्गणी नाम ग्रन्थ मध्ये, श्रावक धर्म प्ररूपण रुप, एकादश प्रतिमा विषैं, दूसरी व्रत प्रतिमाके बारह व्रतनमें, तीन गुणव्रत अतिचार सहित कथन वर्णनो नाम, तेतीसवां पर्व सम्पूर्णम् ॥ ३३ ॥

आगे च्यारि शिक्षाव्रत कहिये है। प्रथम नाम-सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण, और अतिथि संविभाग। इनका अर्थ—सामायिकके दोय भेद हैं। एक द्रव्य-सामायिक, और दूसरा भाव—सामायिक। तहां सामायिक करते विनय सहित, समता लिये, शांत मुद्रा धार, कायोत्सर्ग तथा पद्मासन तिष्ठ, शुद्ध सामायिक-पाठ करै है। अरु परणति सामायिक तैं छूटि, अन्त गई होय प्रमादवशात् अन्य ही विकल्प में लागै सो द्रव्य-सामायिक है। जो सामायिक करनेहारा भव्य, शुद्धासन करि पाठ करै। सो अर्थ विषैं चित्त राखि, सामायिक करै सो भाव-सामायिक है। यहां प्रश्न-जो सामायिक प्रतिमा तो तीसरी है। अरु यहां दूसरी-प्रतिमा विषैं व्याख्यान किया। सो क्यों ? ताका समाधान-जो सामायिक प्रतिज्ञाका अतिचार रहित धारी तौ तीसरी प्रतिमा में है। परन्तु यहां शिक्षाव्रतमें कथन किया, सो साधन रूप कथन है। जैसे रण विषैं लड़ने-युद्ध करनहारे पुरुष, सुभट हैं सो तीर, गोली, तलवार राखैं हैं। जो युद्ध में काम पड़ै, तौ सुभट अपना पौरुष प्रगट करि, तीर-गोली चलावैं। बैरोन कौं जीतैं हैं। सो तौ सुभट शूर ही हैं। और उन सुभटों के बालक हैं, सो तिनका भी अभिप्राय अपने बड़ों की नाईं युद्ध करि, रणमें शस्त्र चलाय, बैरी जीति, यश प्रगट करवे रूप है। सो वह भी अपने बड़ोंसे शस्त्र-विद्या सीखैं हैं। सो ते बालक भी तीर-गोली राख, चलावैं हैं। सो इन बालकन कौं, सीखनेहारा कहिये। इन तैं हाल, युद्ध नहीं जीत्या जाय। ये सुभट नाहीं। जब शस्त्र-विद्या सीख चुकेंगे तबही सुभट कहावैंगे। हाल शस्त्र राख, तीर-गोली कौं मिट्टी के तोसदान में चलावना सीखैं हैं। तैसे ही शिक्षाव्रत वाला, सामायिक करना सीखै है। सामायिक नामा

प्रतिमाधारी नाहीं। यहां कोई अतिचार भी लागै। तथा कोई समयान्तर, काल भी उल्लंघन होय, तौ होय। कोई अतिचार भी यहां होय। तातैं यहां शिक्षाव्रत ऐसा कह्या है। ये शिक्षाव्रत वाला, अतिचार रूप बैरी कौं नहीं जीति सकै है। तीसरी प्रतिमा विषैं, निर्दोष व्रती होय है। ऐसा जानना। इति सामायिक शिक्षाव्रत ॥ १ ॥ आगे प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत कहिये है। जहां सोलह-सोलह पहरका अनशन होय। सर्व काल धर्मध्यान में अपनी मर्याद सहित एक स्थानमें व्यतीत करै। सो प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत है। इनके अतिचारन का कथन आगे इनकी प्रतिमा विषैं करेंगे। तहां तैं जानना। इति प्रोषधोपवास ॥ २ ॥ आगे भोगोपभोग शिक्षाव्रत कहिये है। जहां एक बार भोगवे में आये ही, जो वस्तु अयोग्य हो जाय सो वस्तु, भोग कहावै। और जो बार-बार भोगवेमें आवे सो वस्तु उपभोग कहावै है। तहां भोग वस्तुके दोय भेद हैं। एक तो भोग-योग्य वस्तु है। दूसरी भोग-अयोग्य वस्तु है। जहां अन्न, मेवा, पकवान्, इत्यादिक निर्दोष वस्तु सो तो भोग वस्तु हैं। तथा मिष्ट, तिक्त, कटुक, खारा, दुग्ध, घृतादिक षट्रस। ये भोग-योग्य वस्तु हैं। तथा चन्दन, केशर, कपूर, गंधादिक अन्तर्जाति सर्व वस्तु। खाद्य, स्वाद्य, लेय, पेय, इत्यादिक ये सब भोग-योग्य वस्तु जानना। और कन्द-मूल आदि बाईस अभक्ष्य, अभोग-योग्य वस्तु हैं, सो ये सब तजवे योग्य जानना। ऐसे भोग वस्तु दोय रूप कहीं। और स्त्री, वस्त्र, आभूषण, चांदी, स्वर्ण, रत्न, माणिक, मोती हीरादि रत्न जाति और देश, नगर, मन्दिर, हस्ती—घोटकादि चौपद, तथा दोपद-दासी, दास, सेवक। ऐसै ये चेतन-अचेतन करि दोय भेद रूप उपभोग वस्तु हैं। सो इन भोगोपभोगका प्रमाण राख लेना सो भोगोपभोग शिक्षाव्रत है। सो याके पांच अतिचार कहिये हैं प्रथम नाम-सचित्त, सचित्तसंबन्ध, सम्मिश्र, भिषव और दुःपक्वाहार। इनका अर्थ—तहां सचित्त वस्तुका भोगना, सो सचित्त नाम अतिचार है ॥ १ ॥ तहां सचित्त तैं ढांकी जो वस्तु तथा सचित्त वस्तु ऊपर धरी होय। इत्यादिक वस्तु कों सचित्त का संयोग भया होय। सो सचित्त-संयोग है ॥ २ ॥ और सचित्ताचित्त वस्तुका मिलाप सहित भोजन लेना। सो सम्मिश्र अतिचार है ॥ ३ ॥ और तहां अनेक प्रकार बलकारी-पुष्टकारी रसका खावना सो

भिषव नाम अतिचार है ॥ ४ ॥ और जो भोजन, लिये पीछे दुःख कर पचै, ग्लानि करै, डकार करै सो ऐसे गरिष्ट भोजनका करना सो दुःपक्वाहार अतिचार है ॥ ५ ॥ ऐसे पांच अतिचार रहित होय, सो शुद्ध भोगोपभोग नाम शिक्षाव्रत है सो ये व्रतके धारी जो उत्तम फलके लोभी हैं। सो इन दोषोंकों टालि, व्रत निर्दोष राखैं हैं। इति तीसरा भोगोपभोग शिक्षाव्रत ॥ २ ॥ आगे अतिथिसंविभाग नाम शिक्षाव्रत कहिये है। तहां तिथि नाम परिग्रह का है। सो जो परिग्रह रहित होय, सो अतिथि है। तथा तिथि नाम वांच्छा का है। सो जाके वांच्छा नहीं होय, सो अतिथि है। "मूर्च्छा परिग्रहः।", ऐसा तत्त्वार्थ सूत्रका वचन है सो अतिथिके दोय भेद हैं। एक अतिथि तो ऐसा है कि पाप के उदय करि नहीं है अन्न-धन-वस्त्र जाके पास। उदर-पूरण कौं पर-घर फिरै है। याचै है। तौ भी ताके उदर—मात्र की वांच्छा पूर्ण नहीं हो है। ऐसा महा दीन, दरिद्री, अनेक रोगन करि दुखिया, बृद्ध, बालक, अन्धा, लूला इत्यादिक ये असहाय, जिनके पास एक वक्त का अन्न नहीं। कोई दया करि देय तब, पेट भरैं, सुखी होंय। याका नाम वांच्छा सहित अतिथि है। यह अशरण है, दया करवे योग्य है। याका नाम वांच्छा सहित अतिथि है। अरु वांच्छा है, सो याचना करावै है। ऐसी याचना का धारी, वांच्छा सहित रंक, ताकौं असहाय जानि, दया भाव करि दानका देना। सो करुणा सहित अतिथि का दान है। और वीतरागी, तपसी, ज्ञानी, ध्यानी, यमी, दमी, शांति रसका भोगी नग्न दिगम्बर, याचना रहित, जगत् पिता, सर्वका गुरु, त्रिलोक पूज्य, सर्व जीवका पीड़ा-हर, दया सागर, षट् कायक जीवन कूं अभय-दान का दाता, योगीश्वर, मोक्षाभिलाषी, परीषह सहवे कूं साहसी, तन-ममत्व रहित, इत्यादिक कहे गुण सहित ज मुनीश्वर, सो उत्तम पात्र हैं। सो इन पात्रन कूं महा भक्ति-भाव सहित, नवधा भक्ति करि दान देनेहारा दाता, ताके सात गुण हैं। सो ही कहिये है—

गाथा— सध्धा भत्ती सत्तह, विणाण मलुब्ध होय क्षम भायो। जम्मं गुण सुह तज्यो, इव सत्तय गुण ज्ञेय आदाए ॥ १३७ ॥

अर्थ—सध्धा कहिये, श्रद्धा। भत्ती कहिये, भक्ति सत्तय कहिये शक्ति। विणाणं कहिये विज्ञान।

अलुब्ध कहिये, अलुब्धता। होय क्षम भावो कहिये, क्षमा भाव होय। जम्मं गुण सुह यज्यो कहिये, अंतका शुभ-गुण, त्याग है। इन सत्तय गुण कहिये, ये सात गुण। ज्ञेय आदाए कहिये, दाताके हैं। भावार्थ-श्रद्धा, भक्ति, शक्ति, विज्ञान, अलुब्धता, क्षमा, और त्याग। ये सात हैं। जहां दाताके ऐसा श्रद्धान होय। जो परलोक है। च्यारि गति है। पाप-फल तैं नरक-पशु होय है। पुण्य-फल तै सुर-नरके सुख होय हैं। अरु मुनि का दान, स्वर्ग-मोक्षका दाता है। जिनका निकट संसाररह्या होय, तिनके घर यतीश्वरका दान होय हे। ऐसी श्रद्धाका अस्तित्व सहित दान देना। सो श्रद्धा गुण है॥ १॥ और जो मुनिराज, भोजनकों अपने घरमें आये। तिनके गुण सूं प्रीति-भाव करना। सो भक्ति गुण है॥ २॥ और जगतके गुरुकौं, प्रमाद रहित विनय सहित, भोजन देवै की शक्ति होना। सो शक्ति गुण है॥ ३॥ और मुनिराजके भोजन विषैं प्रवीणता। सो यथा-योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव जानि, भोजन देय। विवेकी-दाता ऐसा विचारे। जो ये मुनि वृद्ध हैं, तो इनके योग्य पुष्टता रहित भोजन देय। अरु गरिष्ट देय तौ वृद्ध-मुनि कौं खेद करे। तातैं वृद्धकी वय (उमर) प्रमाण देय। तथा मुनिराज तरुण हैं तो ता माफिक देय। तथा ये मुनि, रोग सहित हैं। सो फलना रोग है। वैसी ही दवा सहित, भोजन देय। तथा इन यतीका तन, वायु सहित है। तथा पित्त सहित है। तथा कफ सहित है। इत्यादिक तो द्रव्यकौं विचारे। और ऐसा जाने, जो यह ऋतु उष्ण है। तथा शीत है। तथा मध्यम है। इन मुनिकी ऐसी प्रकृति है। इन्हें ऐसा भोजन रुचै, ऐसा नहीं रुचे। ऐसा द्रव्य, क्षेत्र, काल भावका विचार करि, मुनीश्वरकों भोजन देनेमें प्रवीणता। सारी दान की विधि जानैं। सो विज्ञान गुण है॥ ४॥ और मुनिके दान देने योग्य वस्तूनमें लोलुपी नहीं होना। जैसे घर विषैं एक-दोय भोजन, अपने रुचिकर बनवाये होंय। ऐसी वस्तु अल्प होय। तो ऐसा नहीं विचारै, जो भोजनकी फलानी वस्तु अल्प भई है, हमने अपने वास्ते कराई है। सो मुनीश्वर कौं देहौं, तो मोकौं नाहीं बचि है। तातैं वह वस्तु नहीं द्यों। और भोजन बहुत है सो दै हों। ऐसा विचार नहीं करै। सो अलुब्ध गुण है॥ ५॥ मुनिकौं भोजन देते, मान मत्सर क्रोध लोभ क्रूरता सर्व तजि, समता भाव सहित, सर्व जीवन तै स्नेह भाव सहित, क्षमा-

भाव धारि, भोजन देना। सो क्षमा गुण है॥ ६॥ उदारता सहित, लोभ भाव रहित, भक्ति करि भरया, मुनि कौं भोजन देय। सो त्याग गुण है॥ ७॥ ऐसे कहे जो दातारके सात गुण, सो इन गुण सहित जो यती कूं दान देय, सो उत्तम फल पावै। सो जो इन सात गुण का धारी दाता, यतीश्वर कौं दान देय, सो नवधा भक्ति करि दान देय है—

गाथा—पितगहणं,उचथाणं, पदधोणमर्चणेव होहु पणणामो। मन वय तण त्रण सुद्धा, एषण सुध्यय भक्त णव सुहदा॥ १३८॥

अर्थ—पितगहणं कहिये, प्रतिग्रहण। उचथाणं कहि, ऊंच स्थान। पदधोणं कहिये, पद धोवना। अर्चा एव कहिये, अर्चन करना। होहु पणणामो कहिये, प्रणाम करना। मण वय तण त्रण सुद्धा कहिये, मन, वचन, काय इन तीनोंकी शुद्धता। एषण सुध्यय कहिये, एषणा शुद्धि। भक्त णव सुहदा कहिये, ये नवधा भक्ति सुखदाता हैं। भावार्थ—प्रतिग्रहण, ऊंच स्थान अंघ्रि-प्रक्षालन, अर्चन प्रणाम, मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि, और एषणा शुद्धि। ये नव भक्ति हैं। तहां श्रावक, मुनि-भोजन समय, उज्वज्ल वस्त्र धारण करि प्राशुक जलकी झारी सहित अपने मन्दिर (घर) के द्वारे, विधि सहित खड़ा होय मुनि आए, उनको पड़गाहना। सो प्रतिग्रहण नाम भक्ति है॥ १॥ जब योगीश्वर ईर्य्या समिति करता दातारकी घर-भूमि पवित्र करता दाताके घर विषैं प्रवेश करि भोजनशाला में जाय। तहां ऊंचे आसन पै विनय सहित स्थापना। सो ऊंचस्थान नाम भक्ति है॥ २॥ तहां मुनिराजके दोऊ चरण-कमल कौं, श्रावक अपने दोऊ हाथन तैं स्पर्श करि अपने हस्त सफ करता, प्राशुक अल्पजल तैं पद धोवना सो पद धोवन नाम (अन्घ्रि प्रक्षालन) भक्ति है॥ ३॥ और पीछे अष्ट द्रव्य तैं, जगत्गुरुकी पूजा करनी सो अर्चन भक्ति है॥ ४॥ और पीछे विनय सहित नमस्कार करना सो प्रणाम भक्ति है॥ ५॥ और मन को, भक्ति सहित, विनय रूप करि, मुनीश्वर में मन लगावना। उत्साह सहित, प्रमाद रहित विकल्प तजि, एकाग्र होय मुनिके दानमें मन राखना सो मन शुद्धि भक्ति है॥ ६॥ और जहां मुनीश्वरके भोजन समय, घर-जन तैं वचन बोलना-कोई कारण पायके सलाह करनी होय तौ परम्पराय विचार कैं बोलै सो वचन शुद्धि है॥ ७॥ और

मुनि कौं भोजन देते समय दाता अपनी काय कौं शुद्ध राखै। और क्रियान तैं छड़ाय, भोजन देनेमें एकाग्र करि शुद्ध राखना सो काय शुद्धि भक्ति है ॥ ८ ॥ और शुद्ध भोजन, अधा-कर्म रहित सो शुद्ध भोजन है। सो अधा-कर्म कहा ? सो कहिये है। अधा-कर्म चार प्रकार है आरम्भ, उपद्रव्य, विद्रावण और परतापन। इनका अर्थ-जो प्राणीके प्राण घाततैं निपजै। सो आरम्भ दोष है ॥१॥ और अन्यजीवनकौं मनवचन काय विषैं दुखी करि भोजन बनावना। सो उपद्रव्य दोष हैं ॥२॥ और अन्यजीवनके अङ्गोपाङ्ग छेदन करि भोजन निपज्या होय। सो विद्राणव दोष है ॥३॥ पर-जीवन कों सन्ताप-क्लेश उपजाय, भोजन निपज्या होय सो परतापन दोष है ॥४॥ इनच्यरिदोषों सहित भोजन देयसो अधा-कर्म दोष है ऐसे च्यारिभेद अधाकर्म रहित भोजन देनासो एषणा शुद्धि भक्ति है ॥ ६ ॥ ये नवधा भक्ति कहीं सो दाताके सात गुण, नवधा भक्ति इन गुण सहित मुनीश्वर कौं भोजन देना सो पात्र दान है सो श्रावकके घरमें, जो श्रावकने अपने निमित्त किया होय। तामें तैं भोजन देना सो अतिथि संविभाग व्रत है सो यति अतिथि हैं, वे भक्ति सहित, दान देने योग्य हैं। भक्ति सहित पात्रन कौं दान दिये, महत्-फलका लाभ होय है सो इन पात्रन कूं अन्नदान, औषधिदान, शास्त्रदान, और अभयदान दीजिये। यहां प्रश्न-जो तुमने मुनि कौं च्यारि ही दान देने योग्य कहे। सो अभयदान कैसे सम्भवै ? अभय-दान तौ दया मई भावन तैं दिया जाय है सो दया एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, इन आदि दीन-दुखी जीवनकी कीजिये। तिनकों अभयदान सम्भवै है। अरु जगत गुरु, त्रिलोक पूज्यकी दया कैसे सम्भवै ? तातैं इनकौं अभय-दान कैसे कह्या ? ताका समाधान-जैसे कोई राजाके प्रबल बैरी थे सो कोईक छल करि, राजाकौं अकेला पाय, ताकौं पकड़िकैं मारनेका उद्यम किया। तब ऐसे समय विषैं, इस राजाका सेवक-महा योद्धा, आय गया सो वानै अपने नाथ कौं दुःख जान, बैरीन तैं युद्ध किया। अपने पुरुषार्थ तैं औरन कौं जीति, अपना नाथ-राजा, ताकौं बचाय लाया। पीछे राजाकों सुखी कर, नमस्कार किया। विनती करी कि भो नाथ ! मैं आंपका सेवक हों। ऐसे ही अपने नाथवीतरागी जो गुरु, तन तैं निष्प्रिय, शत्रु-मित्रमें समभावी, ऐसे गुरुनाथकौं पापीजन, कोई प्रबल द्वेष-भावतैं उपसर्ग करैं। ता समय महा घोर उपसर्ग

में कोई महा धर्मात्मा, यतीनाथका सेवक आय, अपने बल त पापीजनकौं दण्ड देय, मुनिश्वरका उपसर्ग टालि, पीछे जाय यतीश्वरकौं नमस्कार करि, स्तुति करि, विनती करै सो यह मुनि कौं अभयदान भया। ऐसे कहनेमें कछू दोष नाहीं। तातैं मुनि कौं च्यारों ही दान सम्भवै। यामैं कछु दोष नाहीं। एता विशेष है कि जो दीनकौं अभयदान देनेमें तो करुणा-भाव होय है। मुनि कौं अभयदान देनेमें भक्ति-भाव होय है। इन च्यारि दाननमें अभयदान उत्कृष्ट है। अरु याका फल भी औरन तैं उत्कृष्ट है। जैसे राजाको और अनेक सेवा करने तैं, राजाकौं मरते राखै सो उत्कृष्ट सेवा है। मरण समय सहाय करि, बैरी तैं बचाय करि राखै सो उत्कृष्ट सेवक है। यों ही उत्कृष्ट सेवाका, उत्कृष्ट फल है तैसे ही मुनि कौं तीन दान तैं, उपसर्ग तैं बचायवेका महान् पुण्य है। तातैं च्यारौं दान यती कौं कहे हैं। इस नय प्रमाण करि समझ लेना कोई नय, शास्त्र बड़ा दान है सो शास्त्रदानके दान तैं, जिनवाणीका अभ्यास करि, केवलज्ञान पावै हैं। इस नय तैं शास्त्रदान, बड़ा है। कोई नयतैं अन्नदान बड़ा है। जहां रोगकी बधवारी भये, यती-श्रावकनकौं ध्यानमें स्थिरता नहीं होय। रोग गये ध्यान-ध्येयकी प्राप्ति होय है। इस नय तैं औषधिदान बड़ा है। और जो क्षुधा दिन—प्रति खेद करै, तब शिथिल होय। भोजन बिना तन क्षीण होय। धर्मध्यान नहीं सधै। तातैं तनकी स्थिरता तैं, भावकी स्थिरता होय है। भावकी स्थिरता तैं, कर्म नाशि, केवली होय, सिद्ध पद पाय है। इस नय तैं आहारदान बड़ा है। ऐसे अपनी-अपनी जगह, नय—प्रमाण सर्वही उत्कृष्ट हैं। यह आत्मा अन्नदान तैं, सदीव सुखी होय है। अनेक जीवनका पोषणहारा होय है। औषधिदान तैं, शरीर रोग रहित होय। औरनके रोग नाशवेकी कलाका धारी होय। शास्त्रदान तैं अंग—पूर्व आदि श्रुतिज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान की प्राप्ति होय। आप भवान्तरमें औरन कूं ज्ञानदाता होय। अभयदान तैं भवान्तर में कोटी—भटादि महा योद्धा होय है। दयावान होय। तथा अनुक्रम तैं, अनंतकाल सुखका स्थान, स्थिरीभूत, लोक शिखर पै, सिद्ध होय। ऐसा जानि, च्यारि ही दान देना योग्य है। अरु यहां मुख्यता कथन, अतिथि संविभाग व्रतका है। तातैं अपने भोजनमें अतिथिका संविभाग करना, सो अतिथि संविभाग व्रत है। याके

पांच अतिचार हैं। सो ही कहिये हैं। प्रथम नाम—सचित्त निक्षेप, सचित्तापिधान, परव्यपदेश, मात्सर्य और कालातिक्रम। इनका अर्थ—जहां भोजनकी वस्तु, सचित्त वस्तु पै धरी होय। सो सचित्त निक्षेत्र नाम अतिचार है ॥ १ ॥ जहां भोजनकी वस्तु, सचित्त वस्तुसे ढांकी होय। सो सचित्तापिधान नाम दोष ॥ २ ॥ जहां भोजन समय मुनीश्वरकौं आए जानि, औरकौं कहै, जो मोकूं काम है। तुम मुनिकौं आहार देय लेना। ऐसा कहिकैं, अन्य से अपना भोजन—दान करावना। सो पर-व्यपदेश नाम अतिचार है ॥ ३ ॥ जहां और अन्य दातारका दान नहीं देख सकै। तथा अपने भाव, मत्सर सहित राख दान देवे, सो मात्सर्य दोष है ॥ ४ ॥ जहां भोजनका काल उलंघि जाय। आप अपने घर-धंधेमें लग गया सो प्रयोजनके वशीभूत होय, मुनीश्वरके भोजनका काल उलंघि दिया। पीछे सुचिताईमें याद आई। तब द्वार—पेक्षण क्रिया करी, सो कालातिक्रम नाम अतिचार है ॥ ५ ॥ ऐसे पांच अतिचार रहित होय, सो शुद्ध अतिथि संविभाग नाम व्रत है ॥ ४ ॥ ऐसे पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और च्यारि शिक्षाव्रत। ये बारह अणुव्रत (देश व्रत) भये। एक-एक व्रतके, पांच—पॉच अतिचार। सर्व मिलकर साठ भये। सो ये व्रत प्रतिमाधारी सम्यग्दृष्टी, सो ताके सम्यक्त्व कौं पांच अतिचार नहीं होंय। सोही कहिये हैं। शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टि प्रशंसा और अन्यदृष्टि संस्तव। इनका अर्थ—जिनवाणीमें कहे जे धर्म—अंग, तिनके सेवनेमें शंका राखना। सो शंका नाम अतिचार है ॥ १ ॥ जहां धर्म सेवनमें इस—भव संबन्धी वांच्छा तथा परभव सम्बधीवांछा करनी, सो कांक्षा दोष है ॥ २ ॥ जहां धर्मात्मा मुनि—श्रावकादिक निर्मल दृष्टिके धारी पुरुषनके तनमें रोग देख, तन मैल तैं लिप्त देख, मुख वासना देख, इत्यादिक रोग देख ग्लानि करनी। सो विचिकित्सा दोष है ॥३॥ जहां मिथ्यादृष्टी जीवनके गुण देख, वारम्बार यादकर, प्रशंसा करनी। ते गुण भले जानना। सो अन्यदृष्टी प्रशंसा नाम दोष है ॥४॥ मिथ्यादृष्टीकी अपने वचन तैं स्तुति करनी, सो संस्तव नाम दोष है ॥५॥ ऐसे पांच अतिचार रहित सम्यग्दर्शन सहित जो व्रतका धारी, कोमल चित्त सहित, दया भण्डार, संसार तैं उदासीन, पाप तैं भय-भीत होय, च्यारि गति बास दुखदाई जान, तन धरने व मरने तैं दुखी भया है मन जाका, जो मोक्षाभि-

लाषी, अजर-अमर पद्का लोभी, धर्मात्मा ! जो अपने मन-वचन-तन तैं क्रिया करै । सो सर्व जीव आप समानि जानि, ये त्रस-हिंसाका त्यागी श्रावक, यत्न तैं करै । कैसा है धर्मी श्रावक ? निरंतर समता सहित काल कौं व्यतीत करवे की है इच्छा जाकैं । निराकुल परणति सहित, शांति रसका अभिलाषी । षट् काय जीवन कूं अभयदान देने की है अभिलाषा जाकैं । ऐसा धर्मात्मा श्रावक भव्य, तन-धन तैं उदास होय, सल्लेखना वृत धारै सो कैसे धारै ? सो कहिये हैं । तहां प्रथम तो सर्व जीवन तैं समता-भाव करै । पीछे अपने तन, धन, राज्य-लक्ष्मी, इन्द्रिय-सुख कुटुम्बी, सज्जन तिन सर्व तैं मोह—ममता भाव तज, सन्यास धारै सो कब धारै ? सो समय कहिये हैं । कै तो यह धर्मात्मा अपना आयु-कर्म नजदीक आया जानै, तब सन्यास धारै । तथा शरीरमें कोई तीव्र रोग जानै तब । तथा शरीर पै कोई दुष्ट पशु सिंह-सर्पादिक का उपद्रव जानै तब सल्लेखना करै । कोई कारण पाय, राजादिकका तीव्र कोप जानै, इत्यादिक दीर्घ उपद्रव जानै, तौ सल्लेखना करै सो ता समय यह श्रावक ऐसा विचारै, जो इस उपद्रव तैं बच्या तौ अन्न-जल ग्रहण करूंगा नहीं तौ अन्न-जलादिकका त्याग है । ऐसी प्रतिज्ञाका धरना, सो तो सागार सन्यास है । अपने बचनेका उपाय कछू नहीं भासै, तौ अनागार सन्यास करै । उपसर्ग तौ नहीं, परन्तु अनन्त संसार भोग तैं उदासीन काय धरने तैं आकुलित होय कैं, मुनिपद धरवेकूं असमर्थ, नहीं पाया है यतीपद धरवेका द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव जानै सो भव्यात्मा, अपने तन तैं निष्प्रिय होय, काय तजवेका उपाय शनैः शनैः करै है । सो ही कहिये है । प्रथम तौ जातैं अपने परणामनकी विशुद्धता बधै, संक्लेश भाव नहीं होंय, ऐसा तप करै । एकांतरे करै, पीछे एक-एक उपवास साधै । पीछे दोय-दोय उपवास साधै । ३, ४, ५, उपवासका साधन करै । पीछे पारनाके दिन अल्प आहार लेय-ऊनोदरी साधै । ऐसे केतक दिन करि, पीछे रसत्याग साधै । पीछे केतक दिन गये नर्म भोजन, पीछे पतला दलिया, पीछे भातका पान, पीछे अन्न तजि, दूध पीछे दूध तजि, दही । पीछे दही तजि, मही । फिर मही तज, जल राखै । ऐसे करते-करते अनुक्रम तैं, जब काय तजवेका समय नजदीक जानैं । तब अपने सज्जन-कुटुम्बी जन बुलाय, उनतैं मोह घटावेके निमित्त हितोपदेश देय, महा हित

सित वचन कहि, उन्हें संतोषित करे। पीछे यह सम्यग्दृष्टिका धारी, जगत तैं उदासो आत्मा, शरीरकौं भिन्न अवलोकनहारा, सर्व जीवनकों सुख चाहता ऐसा विचारे। जो सर्व जीव साता पावैं। कोई भी प्राणी, दुखो मत होऊ। कोऊ रोग पोड़ा, दुख-दरिद्र, अन्न तन करि दुखी मत होऊ। मेरे सर्व जीवनतैं क्षमा-भाव है। सर्व जीव मोक्ष-मार्ग पावनेका भाव करौ। अब मैंने मन-वचन-काय करि एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, आदि त्रस-स्थावर, जोव सो सर्वकूं अभयदान दिया। सर्व जीव मेरे पै दया भाव करि अभयदान देओ। ऐसे सर्व जीवनतैं क्षमाय, पीछे अपनी आलोचना करे कि जो मैंने अपनी अज्ञानता करि, मोह फांसीमेंफांसि, राग-द्वेष करि पर वस्तुमें ममत्व अपनाय-अपनाय, पाप-फंद विषैं आत्मा उलझाया। मनुष्य पर्याय पाय, वृथा दुख वधाया। हाय! हाय! अज्ञान चेष्टाका करनहारा, भ्रम वुद्धि मोसा और कोइ नाहीं। देखो, जो आगे महान् वुद्धिमान् भये तिनने मनुष्य पर्याय पाय, धर्म साधन किया। पीछे संसार-भोगन तैं उदास होय, राज्य-संपदा व इन्द्रिय-जनित सुख काले नागके समान जानि, तजे। तन तैं ममत्व निर्वार, दिगम्बर होय, नग्न मुद्रा धारि, मोह फांस छेद, वन विहारी भये। वाईस परोषह सहके, कर्म रूपी ईंधनकौं ध्यान रूपी अग्निमें भस्म करि, सिद्धलोक विषैं जाय तिष्ठे। अविनाशी भये। काय धरने तैं निरंजन भये तेही धन्य हैं। मैंने तो कल्पवृक्ष समान मन-वांछित सुखको देनेहारी मनुष्य पर्याय पाय, हलाहल विष समान विषय चाहे। सुकृत कछू नहीं वन्या, अरु मरनेके दिन आय पहुँचे। इत्यादिक आलोचना करि, कषायनका मद तोड़, मन्द कषायी होय कैं पीछे ये पवित्र वुद्धिका धारो, महा विनय सहित, नम्र भावन तैं, पंच परमेष्टी कौं नमस्कार करि वारंवार तिन पंच गुरुनकी स्तुति पढ़ता, परणति विसुद्धि राखकैं, यह सर्व नयका वेत्ता, श्रावकनकी लौकिक परंपराय-मर्यादाका जाननहारा, अपूर्व गुणका धारी मोह तैं रहित होय व्यवहार पोषणेकौं अपने तनके प्रयोजन धारी कुटुम्बी-मोही जन तैं, यथा-योग्य विनय तैं, मिष्ट क्षमा-वचन कहै। शुभ अक्षर उच्चारता, न्याय वचन धर्म रसके भींजे, संसार तैं उदास, मर्यादा प्रमाण वचन कहै। भो कुटुम्बी जनो! अब तांई तुम्हारे-हमारे पर्यायके सम्बन्ध करि एक क्षेत्र विषैं येते दिन रहना भया। तातैं परस्पर मोहके वंधान करि, एकत्व भया सो अब

हम इस पर्याय तैं भिन्न होंयगे सो तुम कछु मोह-भाव तैं, आर्त्त-भाव नहीं करना। जाकरि अशुभ कर्मका बन्ध होय, परभवमें दुख उपजै सो ऐसा भाव नहीं करना। तुम सर्वही जिन धर्मके वेत्ता, संसार कला विनाशीक जाननेहारे हो। भो पुत्र! तू इस पर्याय संबन्धी पुत्र है। दोऊ भले कुलका धारी, धर्मात्मा, सज्जन, अंगकाधारी है सो जैसे हमने इस भवमें पर्याय पायकैं न्याय करि, धन उपारज्या। कुटुम्बकी रक्षा करी। यथायोग्य सज्जनका विनय किया। जिन धर्म विषैं दृढ़ प्रतीति होय प्रवृत्ते। तैसे तूं भी करियो सो न्याय तैं धन, यश, पुण्य उपजवाना। मोह नहीं बधावना। हे इस भवके माता, पिता, स्त्री, भ्रातृ, मित्र हो! हमारे इस पर्यायका नाता है। ये जीव अनन्त-पर्यायमें कई बार पुत्र तैं पिता-पिता तैं पुत्र, माता तैं पुत्री पुत्री तैं माता स्त्री तैं भगनी, भगनी तैं स्त्री, भाई तैं पिता, पिता तैं भाई, मित्र तैं बैरी, बैरी तैं मित्र इत्यादिक अनेक नाते भए। जिस पर्यायमें यह जीव मिल्या, तैसाही नाता पाल्या। अरु ताही रूप प्रवृत्त्या। सो अब इस पर्यायके सम्बन्धी, तुम कुटुम्बी भए हो सो तुम सबही सज्जन अज्ञी हो। सुकृत्यके इच्छक हो सो तुमने मेरे ऊपर उपकार करि:इस पर्यायका यत्न करि, याकौं बधाय पुष्ट करी। सो मैं अज्ञान रस भीना, अविनय चेष्टाकों धारि तुम्हारी सेवा बन्दगी इस काय तैं कछू नहीं करी। अरु और भी इस पर्याय तैं कछु शुभ कार्य नहीं बना। हे कुटुम्बी प्रीतम हो मैं मन्द बुद्धि, इस पर्यायकूं पाय कुसंग-योग तैं कुमार्ग चल्या। अरु सुपात्रनकूं भक्ति सहित दान नहीं दिया। दीन-दुखितकूं करुणा करि, दान नहीं दिया। छल-बल करि, पराये धन, प्रपंच करि हरे शरीर पाय शीलब्रत नहीं पाल्या। पशुवत् कुशील सेवन किया। सुदेव-सुधर्म-सुगुरुकी सेवा नहीं करी। अरु पाखण्डी कुदेव-कुधर्म-कुगुरुकूं शुभ अतिशय सहित जानि, पूजे। संतनकी संगति तजकर, निंदा करी। अरु पापाचारी कुमार्गीनकी प्रसंशा करी परकौं दोष लगाए, अपने दोष ढांके। शुभाचार तज्या, कुआचार सेवन किया। निशि भोजनादि कुकार्य रूप प्रवृत्त, पाप बन्ध। खाद्याखाद्य नहीं विचार्या। उत्तम मार्ग तज्या। हीन मार्ग विषैं गमन किया। अनेक दीन मनुष्य-पशूनकूं, द्वेष-भाव करि पीड़े-दुखी किये। मत्सर-भाव करि:सताये। सामान्य प्राणके धारी अनेक जीव, दया रहित भावन तैं हते। इत्यादिक तिहारे

कुल योग्य नाहीं, ऐसी हीन क्रिया करि, मो मन्द बुद्धिने पाप बंध करि अशुभका भार अपने सिर लिया। अकार्य सहित प्रवृत्त्य, अपयश रूप वासना फैलाई। ऐसे अज्ञानी जीवकी, तुमने अनेक बरदासि कर (सह-कर), अपनी सज्जनता प्रगट करी। मो तैं मोह बुद्धि करि तुमने अपने पास राखा। इत्यादिक भो सज्जन हो! तुम्हारी प्रीति, तुमने विशेष जनाई। परन्तु अहो सज्जन, अज्ञी हो! अहो कुटुम्बी लोगो! अब मेरा आयु-कर्म पूर्ण होने आया सो तुम मोपै, समता-भाव राखो। मैं महा अज्ञान, मोतैं तुम्हारी सेवा कछु बनो नाहीं, अरु हमारे-तुम्हारे वियोग होनेका समय आय लग्या सो तुम कछु चिन्ता-आर्त्त नहीं करना। ए जीव ऐसे ही अनन्ते नाते करता, अनन्तकालका जन्म-मरण करता आया। जो पर्याय पाई, सो ही कालने हरी। परन्तु मेरी अज्ञानता नहीं छूटी। जैसे कोई अन्याय वा चोरी करनेहारेकूं, राजा अनेक दण्ड देय। पीछे और सा-मान्य दंड तैं नहीं मानै, तौ मारि डारै। ऐसा कठिन दण्ड देख कर भी, यह जीव अमार्ग चोरी नहीं तजै। तौ राजा कहा करै। तैसे ही राग-द्वेषादि प्रवृत्ति तैं अनेक पाप कार्य किए। ताका फल बहुत प्रकार राग, द्वेष, चिन्ता, शोक, भय, इत्यादिक भोगे। तौ भी यह जीव पाप नहीं तजै। राग-द्वेग रूप अपराधकौं करता ही गया। तब काल रूपी राजाने बड़ा दोषी जान, मारि डारया। तौ भी रागादिक कुमार्ग, मेरा नहीं छूटा। ऐसे अनन्तकाल मोकौं भ्रमण करते होय गए। जगतमें गया वहां भी रागादिक कुमार्ग चल्या। तहाँ काल-राजाने मारया सो अब भी इस पर्यायमें मैंने अनेक-अनेक रागद्वेष भाव करि, पाप किये सो तातैं कालरूपी राजाके वश भया सो मोकौं काल राजा, अब मारनेका उपायी है सो मारेगा। तातैं तुम मोह तजो। इत्या-दिक अनेक समता करि अनेक वैराग्य भावना सहित, यह सन्यासी-धर्मात्मा, अपने चित्तकौं निर्मल करिकैं, शुभ भावना भाय, व्यवहार नय तैं कुटुम्बी-जनकौं अनेक संबोधन रूप हितकारी-धर्म सूचक बचन बारंबार कहि मोह फंद छुड़ावै। हे जन हो! तुम इस पर्यायके स्नेही हो तुम सब, चित्त देय सुनो। जो तुमने इस पर्याय तैं मोह बधाय करि, अब तांई मेरी योग्य अयोग्य क्रियामें नजर नहीं करी। अरु स्नेह बुद्धि करि, अब तांई मेरे तनकी रक्षा करी। तुमने सज्जनता प्रगट करि, इस तनकी प्रतिपालना करी। जैसे स्नेह बुद्धिके

धारी बड़ी बुद्धि वारे करैं, सो जो तुम्हारे करवे की थी, सो तुमने करी। परन्तु हे प्रीतम हो ! इस तनकी स्थिति पूर्ण होने आई सो अब ना-इलाज है। काहू की राखी रहेगी नाहीं। तातैं इस शरीर तैं अब तिहारा वियोग होयगा। तातैं तुम सबही विवेकी हो। मोह भाव करि शोक-चिंता नहीं करो। अनादि तैं जगतकी ऐसी ही परिपाटी चली आई है। अनेक भवनमें अनेक नातान का संयोग भया, अरु छूटा। अब भी तुम तैं कुटुम्बका संबंध भया था ये भी छूटेगा। तातैं अब ताईं इस तन तैं, तुम्हारी वचन-काय करि, तुम योग्य विनय-क्रिया नहीं भई होय, तथा अविनय भया होय, तौ तुम अपनी सरल-बुद्धि करि, क्षमा-भाव करो। इत्यादिक शुभ शब्दन करि सबकौं समाधान लाय, साता उपजाय, लौकीक मोह छुड़ाय, पीछे यह भव्यात्मा च्यारि प्रकार आहार तजन करता भया। सो इन आहारनके नाम-तहां जाके खाये पेट भरै सो खाद्य आहार है ॥ १ ॥ जे लौंग, सुपारी आदि स्वाद के निमित्त खाईये, सो स्वाद आहार है ॥ २ ॥ तहां जाकौं अंगुली से चांटिये, सो लेय आहार है ॥ ३ ॥ तहां जाकौं पानी की नांईं पीजिये, सो पेय आहार है ॥४॥ ऐसे खाद्य, स्वाद्य, लेय, पेय, इन च्यारि प्रकार आहार कौं तजन करि, डाभके विस्तर कौं निर्जीव भूमि शोधि, तापै बिछावे। तापै तिष्ठ करि, साधर्मी जन तैं चर्चा करता तत्त्व विचार करता, द्वादशानुप्रेक्षा विचारता। वीतराग देवका स्मरण, वीतराग गुरु, दया धर्म, इत्यादिक पंच-परमेष्ठीके गुणनका चिन्तवन, इत्यादिक धर्म-ध्यान भावना सहित, काय तैं भिन्न होय। इस भांति सन्यासी काय तजकैं, महा ऋद्धि धारी कल्पवासी देव होय है। ऐसे सल्लेखना व्रत जानना। याही व्रतके पंच अतिचार हैं। जीवित संशय, मरण संशय मित्रानुराग सुखानुबंध और निदान। इनका अर्थ—तहां संन्यास लिये पीछे ऐसा विचारना, जो मैं बहुत जीऊं नाहीं, तो भला है। ऐसा विचारै सो जीवित संशय अतिचार है ॥ १ ॥ जहां संन्यास लिये पीछे ऐसा विचार करना, जो मैं मरूंगा अक नाहीं ? अब पर्याय रही भली नाहीं। ऐसी भावनाका नाम मरण संशय है ॥२॥ संन्यास लिये पीछे ऐसा विचारना, जो फलाना हमारा बाल-मित्र है। तातैं मिलाप होय तौ भला है। ऐसे विचारका नाम मित्रानुराग अतिचार है ॥३॥ तथा अगले भोगे भोगन कूं यादि करै सो याका

नाम सुखानुबंध अतिचार है ॥४॥ संन्यास लिये पीछे ऐसा विचारै, जो इस व्रतका मोकौं ऐसा भला फल उपजियो सो याका नाम निदान-बंध अतिचार है ॥ ५ ॥ ऐसे ये पांच अतिचार नहीं लागैं, सो शुद्ध सल्लेखना व्रत है। या प्रकार शरीर कौं व्रत सहित तजिये। शरीर तजेके तीन भेद हैं। च्युत, चाव्यक और त्यक्त। इनका अर्थ—तहां कदली घात विना, संन्यास बिना, अपनी संपूर्ण आयु-सर्व-भोग कैं, उदय-मरण करै, सो जो शरीर आत्मा ने तज्या, सो च्युत शरीर है ॥ १ ॥ अब कदली घातका स्वरूप कहिये है। बिष तैं मरै, शस्त्र तैं, जल तैं, अग्नि तैं पर्वतादिक तैं गिरि मरै। रोगकी तीव्र बेदना तैं, इत्यादिक कारणन तैं, मरै सो कदली घात मरण है। सो इस कदली घात सहित, संन्यास रहित, जा शरीर कौं आत्माने तज्या, सो चाव्यक शरीर है ॥ २ ॥ तीसरे त्यक्तके तीन भेद हैं। याकौं आत्मा चाह करि, अपनी इच्छा सहित तजै है। तातैं याका नाम त्यक्त कह्या है। सो ये त्यक्त शरीर, महा उत्तम मुनि तथा श्रावकका होय है। ताके तीन भेद हैं। उनके नाम—भक्त प्रतिज्ञा, ईंगणी और प्रायोगमन। इनका अर्थ—तहां भोजनका त्याग करै, सो जघन्य तौ अन्तर्मुहूर्त काल भोजन कौं तजै। अरु उत्कृष्ट बारह वर्ष लूं अनशन करै। मध्यमके अन्तर्मुहूर्त तैं लगाय, एक-एक समय अधिक, उत्कृष्ट बारह वर्ष पर्यंतके अनेक भेद हैं। सो ऐसे भोजनका प्रमाण सहित—अनशन करि शरीर तजै, सो भक्त प्रतिज्ञा संन्यास सहित शरीर है ॥१॥ जा शरीर तज तैं, सन्यास करनेहारेके शरीरमें, तपके योग तैं कदाचित् खेद होय तौ अपने शरीरका वैय्यावृत आपही अपने हाथ तैं करै। शिष्यादिक तैं नहीं करावै। भक्त प्रतिज्ञा वाला संन्यासी, शरीरमें खेद भये, अपने हाथ तैं अपने पांव, पीठ, शीश, आदि अंगोपांग दाब लेय था और शिष्यादिक तैं भी अंगोपांग दबावै था। अरु जो पर-तैं वैय्यावृत नहीं करावै, अपने हाथ तैं अपना वैय्यावृत करै। ईंगणी सन्यास सहित शरीर है ॥ २ ॥ नहीं तौ आप करै नहीं, और पै संन्यासमें वैय्यावृत करावै। सन्यास लिये पीछे जो-जो उपद्रव-खेद-दुख शरीर पै आवैं, सो समता सहित एकासन सहै। शरीर कौं चलाचल नहीं करै। संन्यास धरतैं जैसा आसन सूं, जा भांति बैठा था, ताही तरह जीवन लूं रहै। हालै-चालै नाहीं। यह प्रयोगमन संन्यास सहित त्यक्त शरीर

है ॥३॥ ऐसे इन आदि संन्यासके अनेक भेद हैं। जो भव्यात्मा, जन्मन-मरण करि डरया होय तिस निकट संसारी कौं ऐसे सन्यास सहित काय तजवे कौं मिलै है। जे दीर्घ संसारी, मोही, धर्म—बासना रहित हैं तिन जीवन कूं ऐसा मरण नाहीं होय। ऐसा जानना।

इति श्री सुद्रष्टितरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, श्रावककी एकादश प्रतिमा विषैं, सम्यक् सहित बारह व्रत कूं लिये, सल्लेखना व्रत मिलाय इन चौदहके पांच-पांच अतिचार सहित, दूसरी व्रत प्रतिमा कथन वर्णनो नाम, चौंतीसवां पर्व संपूर्णम् ॥ ३४ ॥

आगे तीसरी सामायिक प्रतिमाका स्वरूप कहिये है—

गाथा—सहु चर किप्पा भावो, तव संजय वरत भाव बधवाए। आरदि रुद्द विहीणो, सामायो तस भासयो सुत्त ॥ १३६ ॥

अर्थ—सहु चर किप्पा भावो कहिये, सर्व जीवन पै क्षमा भाव। तव कहिये, तप। संजय कहिये, संयम वरत कहिये, व्रत। भाव बधवाए कहिए, भाव वृद्धि होय। आरदि रुद्द विहीणो कहिये, आर्त्त—रौद्र ध्यान से रहित। सामायो तस भासयो सुत्त कहिए, याकौं शास्त्रमें सामायिक कह्या है। भावार्थ—तहां पंच स्थावर हैं सो पृथ्वी, खोदै नाहीं। जल, मथै नाहीं। अग्नि जलावै-बुझावै नाहीं। पंखादि तैं वायु-कंपनादि करि, वायुकाय हनै नाहीं। बनस्पति कूं छेदै-विदारै-छीलै नाहीं। ये पांच स्थावर-एकेन्द्रिय जीव, तिनमें समता भाव करि, दया धारि, इनकौं अभयदान देय, घातै नाहीं। बे-इन्द्रियादि त्रस-स्थावरन कौं समान जानि, त्रस हिंसाका त्यागी, सर्व कौं नहीं सतावै। आप समान जानि सर्व तैं समता भाव राख अपनी तरफ तैं सर्व कूं सुखका अभिलाषी त्रस-स्थावर जीवन कूं अभयदान देवे रूप परणति राखै। अन्तरंग-बहिरंग तप बारह संयम बारह व्रत इनकी बधवारी वांछै। आर्त्त-रौद्र ध्यानका त्यागी होय। ऐसे भाव वर्तै सो सामायिक जानना। ताही सामायिकके पंच अतिचार हैं। सो कहिए हैं। प्रथम नाम-मन दोष वचन दोष काय दोष विस्मरण दोष और अनादर दोष। इन पांच दोषनका अर्थ कहिये है। तहां सामायिक करते समता भाव तजि कैं प्रमाद तैं अनेक आर्त्त-रौद्र भाव- विकल्प करै। सो मन दोष है ॥ १ ॥ जहां सामायिक करते पंच परमेष्ठीकी स्तुति आलोचना तत्वका विचार वैराग्य भावका चिंतवन ध्याता-ध्यान-ध्येयका विचार इत्यादिक

शुभ क्रिया तजि प्रमादवशात् दुर्वचन बोल उठना सो वचन दोष है ॥ २ ॥ जहां सामायिक करते शुद्धासन तजि आसन चंचल किया करै। सो काय अतिचार है ॥ ३ ॥ जहां सामायिक करते पाठ भूलि-भूलि जाय कि जो मैंने यह पाठ पढ़्या अक नाहीं ? मैं कहा पढ़ों हौं ? ऐसा भ्रम-भाव रहै सो विस्मरण दोष है ॥ ४ ॥ सामायिक करतें वचन-काय प्रमाद सहित राखै। अनादर भाव तैं सामायिक करै सो अनादर दोष है ॥ ५ ॥ जो इन पांच दोषोंकौं टालै सो ही याका नाम शुद्ध सामायिक व्रत है ॥ इस सामायिक व्रतके बत्तीस अतिचार हैं। तिनकौं व्रतधारी धर्मी टालै है सो ही कहिए है। प्रथम नाम-अनादर ततध्व प्रतिष्ठा प्रतिपीड़ित दोलायत अंकुश कच्छप मछोव्रत मन दुष्ट बंधन भय विभ्य गौरव-वृद्धि गौरव न्यति प्रतिनीति प्रदुष्ट शब्द ताड़ित हीलित त्रिबलित संकुचित दृष्टि अदृष्टि करमोचन लब्धि आलब्धि हीन उद्धत् दो चूलि मूक दादुर और चूलित ये बत्तीस हैं। इनका अर्थ तहां सामायिक करते नमस्कारादि क्रिया करै, सो प्रमाद सहित, विनय रहित करै सो अनादर दोषहै ॥ १ ॥ सामायिक करते, विद्याके मद सहित, उद्धत् होय, अशुद्ध किया करै सो ततध्व दोष है ॥ २ ॥ जहां प्रतिमाजीके बहुत ही नजदीक सन्मुख होय, सायायिक करै सो प्रतिष्ठा दोष है ॥ ३ ॥ जहां दोऊ हाथ तैं जंघा दाबिके नमस्कार करै। सो प्रतिपीड़ित दोष है ॥४॥ सामायिक करै, सो पाठ विसर्जन होय जाय। तथा शुद्ध ही पढ़ै, तौ चित्त संशय रूप होय, कि यह पाठ पढ़्या अक नाहीं ? पढ़्या तौ मोकौं यादि नाहीं। ऐसे मन चंचल रहै अरु कायकूं, झूलेकी नांईं झुलाया करै सो दोलायत अतिचार है ॥ ५ ॥ हाथकी अंगुलीकूं अंकुशाकार करि, मस्तकमें लगाय नमस्कार करै सो अंकुश दोष है ॥ ६ ॥ सामायिक करते करि पै हाथ लगाय कायकौं संकोच, कछुवाके आकार करै सो कच्छप दोष है ॥ ७ ॥ सामायिक करते कटिकौं हिलावै, मछलीकी नांईं चंचल राखै सो मछोव्रत दोष है ॥ ८ ॥ जहां सामायिक करते, भया जो सूर्यका घास ताके सहवेकूं असमर्थ होय, परणति संक्लेश रूप करै सो मन दुष्ट नाम अतिचार है ॥ ९ ॥ सामायिक करते कायकौं हाथ तैं दाबि, दृढ़ बंधनसा करै सो बंधन अतिचार है ॥ १० ॥ सामायिक करते कोई देव, मनुष्य, सिंह, सर्पादि जीवनके भय सहित कायोत्सग करै

सो भय दोष है ॥ ११ ॥ सामायिक करते, अपने तौ स्थिरता नाहीं, अरु धर्म-फलकी इच्छा भी नाहीं। परंतु गुरुके भयसे, तथा संघके भयसे, सामायिक क्रिया करै, सो परमार्थ रहित करै, सो विभ्य दोष है ॥ १२ ॥ तहां च्यारि प्रकार संघके खुशी करवेकौं तथा अपनी महिमा परके मुख तैं सुनिवेकौं, शोभाके हेतु सामायिक करै। सो गौरव-बृद्धि दोष है ॥ १३ ॥ अपना माहात्म्य करायवेकौं, इन्द्रके सुखनकी इच्छा सहित, मान-वड़ाईके हेतु सामायिक करै सो गौरव दोष है ॥ १४ ॥ जो गुरुके पास सामायिक करूंगा, तो कोई मेरा प्रमाद देख, औगुन काढ़ेंगे, ऐसा जानि, एकान्त में गुरु तैं छिपकर सामायिक करै सो न्यति दोष है ॥ १५ ॥ जहां सामायिक करते गुरुकी आज्ञा रहित, गुरु तैं प्रतिकूल होय, अपनी इच्छा रूप, गुरुके कहे विना ही, गुरुकी आज्ञा विना ही, सामायिक करै सो प्रतिलीति दोष है ॥ १६ ॥ सामायिक करते, अन्य जीवन तैं द्वेष भाव राखै तथा युद्ध करवेका, तथा कलह करवेका अभिप्राय राखै सो प्रदुष्ट दोष है ॥१७॥ जहां गुरु करि ताड़ित जो गुरुने अविनयी जानि तथा प्रमादी जानि, धर्म-भावना रहित जानि, संघ तैं काढ़ि दिया होय। सो गुरुके भय तैं, तथा संघके भय तैं, सामायिक करै सो ताड़ित दोष है ॥ १८ ॥ सामायिक करते, मौन तजि बोल उठै सो शब्द दोष है ॥ १९ ॥ तहां सामायिक करते, गुरुकी अविनय रूप भाव हो जांय गुरुके मान-खण्डन रूप परणति होय जाय, माया रूप भाव होंय सो होलित दोष है ॥ २० ॥ सामायिक करते ऊंचा होय, त्रिवली भंग करै, तथा ललाटपर त्रिवली करै सो त्रिबलित दोष है ॥ २१ ॥ जहां सामायिक करते, सिरकूं हस्त तैं छीय करि, कायकौं संकोच करि, गठिया समान होय, करै सो संकुचित दोष है ॥ २२ ॥ गुरुके देखते तथा अन्य कोईके देखते सामायिक करै, तब तौ महा विनय सहित खड़ा होयकरै। कायकीशुद्ध भली क्रिया सहित सामायिक करै अरु कोई नहीं देखता होय, तौ प्रमाद सहित स्वेच्छाचारी होय करै। चहुं दिशा अवलोकन रूप काय-मन चंचल राखै इस भांति सामायिक करै सो दृष्टि दोष है ॥२३॥ सामायिक करते अपने गुरुतैं अपच्छिन्न होय, तथा संघमें और वृद्ध मुनि, बड़े-बड़े गुरुजन तैं दृष्टि चुराय, अपने तनकी शोभा निरखै सो काय-रूप देख राजी होय मन-तन चलित-चंचल राखै सो अदृष्टि दोष है ॥२४॥ जहां च्यारि संघ तथा अन्य जन

राजी करवेकौं सामायिक करै। सो करमोचन दोष है ॥ २५ ॥ तहां सामायिक करते, आपकूं पीछी आदि पदार्थकी प्राप्ति वांच्छै जो मेरे पास पीछी शास्त्रादि उपकरण नाहीं, सो मिलैं तौ भला है। ऐसी जानि सामायिक करै सो लब्धि दोष है॥ २६ ॥ श्रावकके षट् कर्म रूप उपकरणनकी प्राप्ति जानै, तो सामायिक करै सो आलब्धि दोष है ॥ २७ ॥ जहाँ कालकी मर्यादा टालि, सामायिक करै। अरु ग्रन्थके अर्थ विचार रहित भाव राखै सो हीन दोष है ॥ २८ ॥ तहां शीघ्र-शीघ्र क्रिया करि, अल्पकालमें सामायिक पूर्ण करै। तथा धीरे-धीरे प्रमाद सहित क्रिया करि, बहुत कालमें पूर्ण करै। अरु पाठ पढ़ै, सो भूलि-भूलि जाय, फेरि पढ़ै। फेरि पढ़ै, सो फेरि भूलै। ऐसी सामायिक करै सो उद्धत् दो चूलि दोष है ॥ २९ ॥ जहां सामायिक करते, मूकेकी नांईं हूं-हूं शब्द बोलै, और अंगुली-नेत्रादि तैं संज्ञा बतावै। सो मूक दोष है ॥ ३० ॥ तहां सामायिक करते शोर करि पाठ पढ़ै। जैसे मैंड़क शोर करै, तैसे पाठ करते शब्द बोलै, सो बहुत शोर करै सो दादुर दोष है ॥ ३१ ॥ सामायिक करते एकासन तैं ही, एक क्षेत्र तिष्ठता, सर्व देव गुरुकी स्तुति करते नमस्कार करै। अरु पाठ पढ़ै, सो महा मिष्ट स्वर तैं, राग सहित, परका मन रंजायवेहारा स्वर तैं पढ़ै सो चूलित दोष है ॥३२॥ ऐसे कहे बत्तीस दोष, तिनकौं टालि सामायिक करै सो शुद्ध सामायिक धारी श्रावक है ॥ इति बत्तीस दोष, आगे बाईस दोष, सामायिक करते कायोत्सर्ग करै तब टालै सो कहिये हैं। तहां प्रथम नाम घोटक, लता, स्थंभ, कूट्या, माला, बधू, लंबोतर, तन-दृष्टि, वायस, खलिन, जुग, कपिथ, सिर-कंपित, मूक, अँगुली, भ्रू-विकार, सुरापान, दिशावलोकन, ग्रीवा, परणमन, निष्ठीवन और अङ्गमरच्च। इनका अर्थ-तहां घोड़ेकी नांईं खड़ा होय सामायिक करै सो घोटक दोष है ॥ १ ॥ सामायिक करते शरीरकों बेलिकी नांईं आंका-वांका करै सो लता दोष है ॥ २ ॥ सामायिक करते शरीरकों स्थंभ तथा भीतिका सहारा देय खड़ा होय सामायिक करै तथा शास्त्रनके अर्थ चिन्तवन करि रहित, शून्य चित्त करि, स्थम्भकी नांईं खड़ा होय, सामायिक करै सो स्थम्भ दोष है ॥ ३ ॥ सामायिक करते महल, गुफा, गृह, कुटी, मंडपादिक वांच्छै सो कूट्या दोष है ॥ ४ ॥ सामायिक करते ऊंचा सिंहासन, पाटा या चौकी पर खड़ा होय, सामायिक करै सो माला दोष है ॥ ५ ॥

जैसे कोई भली स्त्री, लज्जा सहित, अङ्ग छिपाय खड़ी होय तैसे वस्त्र तैं व कर तैं अंग ढांकि खड़ा होय सो बधू दोष है ॥ ६ ॥ सामायिक करते व्युत्सर्ग समय लम्बे हाथ करि अर्द्ध नमस्कार करै सो लम्बोतर दोष है ॥ ७ ॥ सामायिक करते अपने शरीरकों निरखै सो भला कोमल, सुन्दर, सुभाकार देख खुसी होय। अरु मलिन, क्षीण शोभा रहित देखे, तथा श्याम कर्कश देखे, तो मनमें वेराजी होय सो तन दृष्टि दोष है ॥ ८ ॥ जहां सामायिक करते काककी नांईं नेत्र चंचल राखे, चारों दिशा अवलोकन करै सो वायस दोष है ॥ ९ ॥ सामायिक करते घोटककी नांईं दांत चबाया करै। मुख तन कठोर राखै सो खलिन दोष है ॥१०॥ सामायिक करते बृषभकी नांईं नार (ग्रीवा) कूं ऊंची-नीची करै सो जुग दोष है ॥ ११ ॥ सामायिक करते मूंकी बांधि सामायिक कूं खड़ा होय सो कपिथ दोष है ॥ १२ ॥ सामायिक करते शीश धुनै-हिलावै सो सिरकंपित दोष है ॥ १३ ॥ सामायिक करते, मुख, नाक, नेत्र बांके (टेढ़े) करता जाय सो मूक दोष है ॥१४॥ सामायिक करते हाथ-पांवकी अंगुली हिलावै सो अंगुली दोष है ॥ १५ ॥ सामायिक करते नेत्र वक्र करै, भौंह धनुषाकार चढ़ावै, दृष्टि बांकी करै सो भ्रू विकार दोष है ॥ १६ ॥ सामायिक करते मतवालेकी नांईं झूमैं सो सुरापान दोष है ॥ १७ ॥ सामायिक करते नीचा-ऊंचादि दशों दिशा, इत उत देखा करै सो दिशा अवलोकन दोष है ॥ १८ ॥ तहां सामायिक करते ग्रीवा (गर्दन) कों इत-उत हिलाय बांकी-नीची ऊंची करै सो ग्रीवा दोष हैं ॥ १९ ॥ सामायिक करते ध्यान तजि और ही क्रिया करन लागै सो परणमन दोष है ॥२०॥ सामायिक करते, मुख तैं फूकै नाक तैं नाक मैल काढ़ै तथा तनके अंगोपांग मर्दन करि मैल उतारे तथा मुखमें जीभकूं हिलावै, फेख्या करै। दाॅतनकूं होंठ तांईं चलावै पद्मासन तिष्ठता, पांवकी पगथली छीया करै—मसलै सो निष्ठीवन दोष है ॥ २१॥ समायिक करते नीति करनेका स्थान, मल करनेका स्थान छीवै सो अंगमरच्च दोष है॥ २२ ॥ ऐसे सामायिकके पांच अतिचार, तथा बत्तीस और बाईस एते अन्तराय टालि कैं धर्म फलका लोभी सामायिक प्रतिमाका धारी, अपने व्रतकी रक्षा करता सामायिक करै सो सामायिक कौन स्थानमें करै सो स्थान बताईये है। जहां सूना महल होय घर मन्दिर सूने होय तथा विना धनीके ममत्व

रहित जामें कोईका ममत्व नाहीं होय ऐसे मंडप होंय। तथा सिंहादिकके ममत्व रहित गुफा होय। तहां सामायिक करै। तथा वन श्मशान भूमि वृक्षकी कोटरनमें जिन मन्दिर इत्यादि एकान्त स्थान शुद्ध देख। जहां अतिशीत नहीं होय अति गर्मी नहीं होय। जहां दंश-मसकादि नहीं होंय। जहां कोलाहल शब्द नहीं होय। जहां काहूका युद्ध नहीं होय जहां परस्पर काहूके कटुक शब्द नाहीं होंय। इन आदिक शुद्ध गफा। सो जीव रहित, वैराग्य भावना के वधावने कूं कारण, निर्जन स्थान होय। तहां तिष्ठ कैं मन-वचन-काय करि एकाग्र, शुद्ध होय। सर्व जीवन तैं दया भाव करि, कोमल भावन सहित, सामायिक करे सो शुद्ध सामायिक प्रतिमा का धारी, उत्तम श्रावक जानना सो सामायिक समय लंगोट मात्र आदि अल्प-परिग्रह का धारी होय तिष्ठै। चित्तकी वृत्ति निर्मल, मुनि समान राख, अपने तन तें ममत्त्व भाव तजि, वैराग्य भावका समूह मोक्ष—मार्गके विहार करवे की इच्छा का धारक, ऐसा साधर्मी श्रावक। नहीं चाहै है च्यारि गतिके शुभा-शुभ शरीरन का वास। तथा अपने पदस्थ तें ऊपर के स्थान चढ़वे की है इच्छा जाकैं। ऐसा जगत—सुख तैं उदासी, श्रावक—धर्मका धारी, तीसरी सामायिक प्रतिमा धारी है ॥३॥

इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थे मध्ये, एकादश प्रतिमाके कथन विषैं तीसरी प्रतिमा कथन वर्णनो नाम पैंतीसवां पर्व संपूर्णम् ॥ ३५ ॥

तहां आगे चौथी प्रोषध प्रतिमा, ताकौं कहिये है। सो सर्व पापारम्भ का त्याग करि, शरीर—भोगन की इच्छा निवार, उदासीन भाव धारण करि, धर्मध्यानका अभिलाषी होय, खान-पानका तजन करै। सो प्रोषधोपवास है। एक मास विषैं दो अष्टमी दोय चतुर्दशी ये च्यारि उपवास करैं सो तेरसके दिन प्रभात उठ, भगवानका पूजन करै। पीछैं शास्त्र श्रवण—पठन करे, दोय पहर धर्मध्यान सेय, मुनि-श्रावक कूं दान देय, आप भोजन करै। सो निष्प्रमाद होय रहने कों अल्प भोजन करि, पीछे षोडस पहर खान-पान का सेवना तजै सो दोय पहर तो तेरसके दिनके, च्यारि पहर तेरसकी रात्रिके, आठ पहर चौंदसकी दिन-रात्रिके, दोय पहर पूर्णिमा के। ऐसे सोलह पहर जागरन, पूजा, ध्यान, स्वाध्याय, चर्चा, शुभ अनुप्रेक्षाका चिंतवन, इत्यादिक धर्म-ध्यान विषैं पूर्ण करै। पीछे पूर्णिमाके दिन दोय पहर कूं घर जाय, द्वार-पेक्षण

भावना भाय, मुनि-श्रावक कूं दान देय, दुखित-भुखित कूं संतोषित करि, पीछे आप पारणा करै। सो एक बार भोजन करै। ऐसे ही मास-मास के च्यारि उपवास आयु पर्यन्त, प्रमाद रहित होय करै। अरु नीचली प्रतिमामें जो क्रिया कहीं, सो सर्व ऊपरली में गर्भित जानना। नीचे दूसरी प्रतिमामें प्रोषध कह्या। सो वहां शिक्षा-मात्र, साधन रूप कह्या था। अरु यहां चौथी प्रतिमामें प्रोषधका स्वामित्व-भाव है। सो यहां अति-चार रहित, आयु पर्यन्त व्रतका धारना है। तातैं यहां प्रोषध प्रतिमा कही। सो याके पांच अतिचार हैं। सो ही कहिये हैं। अप्रत्यवेक्षित, अप्रमार्जित, उत्सर्गदान, संस्तरोपक्रमण, अनादर-अनुस्मृत्य। अब इनका अर्थ--जहां प्रोषध कौं बैठे, सो बिना भूमि शोधै--झाड़ै ही प्रोषध कौं तिष्ठै। सो अप्रत्यवेक्षित अतिचार है ॥ १ ॥ और जहां व्रतधारी प्रोषध करते भूमि शोधै तो सही, परन्तु कोमल पीछी तैं तथा कोमल वस्त्र तैं नहीं झाड़ै, मोटे वस्त्र तैं तथा कठोर पीछी तैं झाड़ै। सो याका नाम अप्रमार्जित अतिचार है ॥ २ ॥ और भूमि विषैं, बिना शोधेही मल-मूत्रका क्षेपना। सो याका नाम उत्सर्गदान है ॥ ३ ॥ और प्रोषधधारी जिस स्थान पै बैठे-आसन करै बिछौना बिछावै, सो भूमि शोधै झाड़ै नाहीं। सो याका नाम संस्तरोपक्रमण है॥४॥ और जहां उत्साह बिना, धर्म भावना रहित, प्रमाद सहित, परमार्थशून्य, लौकिक यशका लोभी, औरके दिखायवे कौं, अनादर भाव सहित, प्रोषध क्रिया करै सो याका नाम अनादर-अनुस्मृत्य है ॥ ५ ॥ ये पांच अतिचार प्रोषधोपवास व्रतके हैं। इन रहित, शुद्ध भावना सहित, वैरागी-व्रती अपने व्रतकी प्रतिपालना करै सो प्रोषध प्रतिमाका धारी उत्तम श्रावक कहिये है॥ इति प्रोषधोपवास नाम चौथी प्रतिमा ॥ ४ ॥

आगे सचित्त त्याग पांचवीं प्रतिमा कहिये है। यह पांचवीं प्रतिमाका धारी श्रावक, सचित्त वस्तुका त्यागी होय है सो यह सचित्त जल नहीं वर्तै है। हाथ—पाँव-शीशादि अंगो,पांग, कच्चे जल तैं नहीं धोवै है। अपने हस्त तैं नदी, सरोवर, कूप, बावड़ीका जल नहीं भरै। कच्चे जल तैं स्नान नहीं करै। बनस्पती कूं छीले नाहीं, काटै नाहीं। भोगी जीवनके भोगवे योग्य, ऐसी फूल-मालादि, तथा महा सुगंधित अनेक जातिके फूल, सो ये वृती अपने हाथ तैं छीवै नाहीं, पहिरे नाहीं, सूंघे नाहीं। अनेक जातिका सचित्त मेवा-दाख,

अनार, केला, आमफल, जामुन, नारंगी, जंभीरी, नीबू, सेव, सीताफल, वेर, विही, कमरख, खिरनी, खजूर, आंडू, मौलश्रिरी, तेंदू, पीलू, अखरोट, अंगूर, इत्यादिक भोगी जीवनके भोग योग्य, सचित्त वस्तुका त्यागी नहीं खाय, नहीं छीवै, नहीं तोड़ै। और ककड़ी, खरबूजा, तरबूजा, इत्यादिक नहीं खाय। अनेक व्यंजन, अयोग्य वस्तु, तरकारी जाति, पत्ता, फल-फूल, वौंड़ी, जड़ जाति, कंद जाति, वक्कल जाति, कौंपल जाति, औषध जाति, चमत्कार गुणकों लिये प्रत्यक्ष रोग नाशनहारी-इत्यादिक हरो वनस्पति, ये सर्व, विषयी जीवनके भोग्य योग्य वस्तु, सो सचित्त त्यागी धर्मात्मा श्रावक नहीं खाय है। ऐसे अनेक भली वस्तु भोगियों कौं वल्लभ, जिनके भोगवे कूं; भोगी अनेक कष्ट पाय, तिनके निमित्त मन, वचन, काय अरु धन लगाय, तिनके मिलाप कूं अनेक उपाय करि, भोगवैं हैं। तिन भोगन तैं वड़े-वड़े सुभट सुख मानैं हैं। ऐसी वस्तु कूं सचित्तका त्यागी, धर्मात्मा श्रावक, तन-भोगन तैं उदासी, आत्मिक सुखका भोगी, ये सचित्त वस्तु कूं नहीं खाय है। इस सचित्त त्यागी कूं, जगत-भोग, इन्द्रिय जनित सुख, वल्लभ नाहीं लागें। यह श्रावक, घरमें ही यती सरीखे भाव धरै है। विरक्त भावना सहित, काल-क्षेपण करै सो पंचम प्रतिमाका धारी, सचित्त त्यागी है॥ ५॥ आगे छट्ठी प्रतिमाका स्वरूप कहिये है। इस प्रतिमाका धारी, रात्रि भुक्ति त्यागी धर्मात्मा, दिन कूं कुशील-सेवन नहीं करे। रात्रिका भोजन त्याग, यहां भया है। तातें रात्रि भुक्ति त्यागी कहिये हैं। यहां प्रश्न-जो रात्रि भोजनका त्याग यहां किया, सो नीचली प्रतिमा वारे, रात्रिमें खावते होंयगे? अरु दिनका कुशील यहां तज्या, सो नीचली प्रतिमामें, दिन कूं कुशील सेवते होंयगे? ताका समाधान-हे भाई, तेरा प्रश्न भला है। परन्तु तूं चित्त देय सुनि। अब भी जगतमें ऐसी प्रवृत्ति देखिये है जो हीन-ज्ञानी अरु हीन-पुण्यी, भोरे हैं। ते कहैं तो बहुत मुख तैं वाचाल-क्रिया तो विशेष करैं। अरु तिनतैं बनैं कछु भी नाहीं। सो तो असत्यभाषी हैं, पाखण्डी हैं। परका ठगनेहारा, अपने यशका लोभी, बाल-बुद्धि है। जे महा ज्ञानी पण्डित हैं, दीर्घ पुण्यी हैं, सज्जन स्वभावी हैं। सो कार्य तो वड़ा-महत् करैं, अरु अपने मुख तैं अल्प प्रगट करैं। ते धर्मात्मा धीर-बुद्धि हैं। तैसे ही पराये दिखायवे कूं, परके रंजायवे कौं, भोरे जीवनका

मान हरवे कूं, अपने पद-नमावे कौं, ते पाखराडी अपने कुज्ञानको प्रबलता तैं अनेक धर्म-सेवनके स्वांग धरि। जप, तप, कथा तो वचन-आडंबर तैं बहुत करैं। अरु इन परमार्थ-शून्य प्राणीन तैं, वनै कछू भी नाहीं। सो जीव तौ धर्मात्मा नाहीं। अरु धर्मार्थी भी नाहीं। जे जगत-यश तैं उदासी, जिनने तोड़ी ममता फांसी, ते अल्प कालमें शिव जासी। स्वर्ग—सम्पदा होय जिन दासी। मिथ्यादृष्टी तिन नाशी। वह भव्य सुख-राशी। ऐसे निकट संसारी, धर्मका सेवन तो बड़ा करैं। अरु अपनी महिमा नहीं चाहैं। सो धर्मात्मा हैं। तातैं तुम विचारो-देखो जे जीव अल्प से भी धर्म-सेवन कौं उत्कृष्ट जानि, पाप तैं भय खाय हैं। ते जीव ही विषय-कषाय कौं तजि, शुभाचार रूप परणमैं हैं। केई घर-स्त्रीका त्याग करैं। केई दिनका भी भोजन तजि, उपवास करैं। केई जन्म पर्यन्त, स्त्री-विषयका त्याग करैं। केई भव्यात्मा, रात्रि-जलका भी त्याग करैं हैं। इत्यादिक प्रवृत्ति भोरे जीव धर्मानुराग तैं करैं हैं। तो जे समता-रसके चखैया, जिनका दर्शन-मोह गया, तव सम्यक् घर भया। भेद-ज्ञान तब लया। तब ऐसा भाव भया, विषय-भोग विषमयी। गुणस्थान चौथा लया। पर सेती भिन्न भया। विषय-राग तब गया। समता-भाव परणाया। बाह्य विषयी सा रह्या। बाकी अंतरंग भेद भया। ऐसे जिन-आज्ञाप्रमाण, तत्वके वेत्ता भव्य, अव्रती होय हैं। सो विषयन तैं विरक्त रहैं हैं। येही रात्रि-भोजन नहीं करैं। दिनमें कुशील नहीं सेवैं। तो हे भव्य! जे पंचम गुणस्थान धारी, व्रती श्रावक हैं। सो प्रथम, द्वितीय, तीसरी, चौथी प्रतिमा, पांचवीं प्रतिमाका कथन, इनका त्याग, इन प्रतिमा-ओंकी क्रिया-प्रवृत्ति, इनके धारी धर्मी-श्रावक तिनकी वैराग्य दृष्टिका रस, सो तो नीके कथन करि आये हैं। सो नीके सुन्या ही है। सो अब तूं विचार देखि। जो नीची प्रतिमा विषैं स्त्रीका भोग, अरु रात्रि, भोजन कहां रह्या? ये छट्ठम प्रतिमा धारी श्रावक महा उदासीन वृत्तिका धारी, वैरागी, बड़भागी, इनकौं इतना विषय-रस नाहीं, जो दिनमें स्त्रीका भोग होय ए महा धर्मात्मा हैं इन्हें रात्रिकाल विषैं सो स्त्रीका ही नाम मात्र संतोष है तृष्णा रूप नाहीं। ऐसा जानना। ये धर्मी, दिवस विषैं ही एक दिनमें एक बार ही, अल्प रस भोजन करनहारा, ताके रात्रि-भोजन कहां पाइए? परन्तु जिनदेवकी ऐसी आज्ञा है।

जो यहां पांचवीं प्रतिमा तांईं, कोई प्रकार अतिचार लागै था। इस भय तैं नीचली प्रतिमामें नाहीं कह्या। अरु इस छट्ठी प्रतिमा विषैं, रात्रि-भोजनका, अरु दिन विषैं कुशीलका अतिचार भी नाहीं लागै। तातैं व्रत प्रगट किया। ऐसा जानना। सो रात्रिका पिसा, पोया, रात्रिका बींधा, रांध्या, शोध्या, बांट्या, घिस्या, छाण्या, धोया इत्यादिक रात्रिका आरंभ्या ऐसा भोजन होय। सो छटवीं प्रतिमाका धारी नहीं खाय। और रात्रिका आरंभ्या-भोजन खाय, तो रात्रि-भोजनका दोष लागै। तातैं इनमें जो कोई अतिचार सूक्ष्म, पहले नीचली प्रतिमामें लागें थे, सो छट्ठी प्रतिमामें यहां नाहीं लागैं हैं। दिनमें अपनी स्त्री कौं देख, विकार भाव होय जाय थे। कभी-कभी सरागता सहित वचन होय जांय थे। काय तैं कोई विकार चेष्टा होय थी। सो अब यहां छट्ठी प्रतिमामें मन वचन, काय करि; दोष नाहीं लागै। तातैं यहां छट्ठी प्रतिमा विषैं रात्रि-भोजन, अरु दिन कूं कुशीलका त्याग कह्या है। तातैं याका नाम, रात्रि भुक्ति त्याग कह्या ॥ ६ ॥

इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, एकादश प्रतिमा विषैं, छट्ठी प्रतिमाका कथन वर्णनो नाम, छत्तीसवां पर्व सम्पूर्णम् ॥ ३६ ॥

आगे सातवीं ब्रह्मचर्य्य प्रतिमाका स्वरूप कहिये है। याका नाम ब्रह्मचर्य प्रतिमा है। सो छठीं तांईं ता स्व-स्त्रीका त्याग नहीं है। तौ भी महा संतोषी, परन्तु पदस्थ-योग तैं अपनी परणी स्त्री कूं, स्त्री-भाव करि जानै है। जो ये मेरी स्त्री है। अरु सातवीं प्रतिमाधारीके, स्व-पर स्त्री दोऊनका त्याग है सो पर-स्त्रीका त्यागी तो पूर्वमें था ही। स्व-स्त्रीका त्याग, सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा विषैं है।। अब यहां स्व-स्त्री, पर-स्त्री दोऊनका त्यागी भया। अपनी स्त्री कौं भी विकार-क्रिया तैं नहीं देखै। इस प्रतिमा विषैं, महा शील-व्रतका धारी, ब्राह्मण-ब्रह्मचर्य व्रती भया। अब यहां चेतन-अचेतन स्त्रीका त्याग भया। तातैं इस प्रतिमाधारी कौं, ब्रह्मचारी कह्या है। सो यहां ब्रह्म शब्दके च्यारि भेद हैं। सो ही कहिये हैं—

गाथा—वंभ सुभावो आदा, त्याज वंभोय जोय पय हारो। किय्या वंभाचारो, भत्तो कित्तेय वंभ कुल होई ॥ १४० ॥

याका अर्थ—वंभ सुभावो आदा कहिये, आत्माका स्वभाव ही ब्रह्म है। त्याज वंभोय जोय पय हारो कहिये, त्याग ब्रह्म सो याके निज-स्त्रीका त्याग। किय्या वंभाचारो कहिये; आचार व्रतका धारी सो क्रिया ब्रह्म

है। भत्तो कित्तेय वंभ कुल होई कहिये, भरत करि किये सो कुल ब्रह्म हैं। भावार्थ—स्वभाव ब्रह्म, त्याग ब्रह्म, क्रिया ब्रह्म, और कुल ब्रह्म। ये च्यारि हैं। इनका विशेष अर्थ--तहां स्वभाव ब्रह्म तो आत्मा का नाम है सो ताके दोय भेद हैं। एक ब्रह्म, दूसरा पर-ब्रह्म। तहां कर्म-मल सहित, जन्म-मरण का धारी, च्यारि गति वासी जीव, सो ब्रह्म है। राग-द्वेषका धारी, इष्ट वस्तु मिले सुखी होय, अनिष्ट वस्तु मिले दुखी होय, सो तो ब्रह्म जानना। भूख-तृषा नाम रोग जाकैं उपजता होय सो ब्रह्म है ॥ १ ॥ जन्म-जरा-मृत्यु रहित होय, अमूर्ति, सर्व दुख-दोष रहित, केवल-ज्ञानका धारी, अन्तर्यामी होय सो पर-ब्रह्म है। ऐसे स्वभाव-ब्रह्मके दोय भेद जानना ॥ २ ॥ यहां ब्रह्म नाम आत्माका जानना ॥ १ ॥ दूसरा ब्रह्म, सातवीं प्रतिमा धारी ब्रह्मचारी, स्व-पर-स्त्रीका त्यागी, ताका कथन ऊपरि करि आये सौ याका पद अनुक्रम तैं, प्रथम प्रतिमा तैं लगाय, सातवीं प्रतिमा पर्यन्त, ज्यों-ज्यों त्याग बध्या, त्यों-त्यों प्रतिमा चढ़ी। तातैं याका नाम त्याग-ब्रह्म है ॥ २ ॥ तीसरा क्रिया-ब्रह्मचारी, ताके जानवेकों उपासकाध्ययनके सातवें अंग ताके अनुसार, बड़े आदि-पुराणजी विषैं दश अधिकार कहे। ताके अनुसार कारण पाय, यहां भी लिखिये है---

गाथा—सिसि विघाय कुलाविधि, वण्णोत्तम पात सेय विवहारो। अवधा अदंड मणनीयो, पज्जा सम्मधाण दह भेयो ॥ १४१ ॥

अर्थ---सिसि विद्याय कहिये, बाल विद्या। कुलावधि कहिये, कुलाविधि। वरणोत्तम कहिये, वर्णोत्तम। पात कहिये, पात्रत्व। सेय कहिये, श्रेष्ठ पद। विवहारो कहिये, व्यवहार सत्ता। अवधा कहिये, अबध्यता। अदंड कहिये, अदण्डता। मणनीयो कहिए माननीयता। पज्जा सम्मधाण कहिए, प्रजा संबंधांतर। दह भेयो कहिए ये दश भेद हैं। भावार्थ---बाल विद्या, कुलाविधि, वर्णोत्तम, पात्रत्व, श्रेष्ठता, व्यवहारता, अबध्यता, अदंडता, माननीयता, और प्रजा संबन्धातर। ए दश हैं। जो जीव इन दश क्रियान करि सहित होयं सो क्रिया-ब्रह्म है, सो ही विशेष कर कहिए है। तहां बाल्यावस्था तैं ही विद्याका अध्ययन करि, पण्डित होय। तो शुभाशुभा मार्ग जानै, खाद्याखाद्य जानै, पाप-पुण्यका भेद जानै। केई अज्ञानी-कुवादी, आपकों शुद्ध धर्म तैं डिगाय, विषयी, मोही, हिंसक धर्म विषैं लगाया चाहैं तो नहीं लागै। पाखण्डीनके ठगवेमें नहीं

आवै। तातैं तीन कुलका उपज्या, भव्यका बालक होय, सो विद्याभ्यास करै। अरु विद्या नहीं पढ्या होय, तो आप कुधर्म-सुधर्मकी परीक्षा नहीं करि सकै। तब अपना भला-धर्म तजि, कुधर्म सेवन में लागे। परभव बिगाड़ै। अरु अज्ञान भया, खाद्याखाद्य न समझ कें, अभक्ष्यका भक्षण करि, अपनी वृद्धि नष्ट करै। विद्या बिना, जगतमें निन्दा पावै। दीन कहावै। दीनताके योग तैं याचना करै। तब याचकता के योग तैं, अपने उत्तम-कुल कूं कलंक लगावै। तातैं ऐसा जानना, जो सर्व सुखकी दाता, अनेक गुण मण्डित, एक विद्या है। ऐसी विद्याका अध्ययन, बाल्यावस्था विषैं ही करना। बालावस्था गये, जिह्वा कठिन होय। कषाय-अंश विशेष होंय। तिस दोष तैं विद्या-दाताका विनय नहीं सधै। बाल्यावस्था मन्द-कषाय सहित होय है। तातें बालपने में ही विद्याका अभ्यास करना। ता विद्या करि, पाप तजि पुण्य ग्रहण करै सो परोपकारी होय है। अपना-पराया भला करै। याका नाम बाल-विद्या अधिकार है ॥ १ ॥ और दूसरे ब्राह्मण कुलका उत्तम है। सर्व विषैं बड़ा है। ब्राह्मणका आचार भी सर्व तैं उज्ज्वल, दया सहित; उत्तम है। अरु एक दिनमें एक बार, एक स्थान बैठा, भोजन करै है सो भी जहां अन्धकार नहीं होय उद्योतकारी स्थान होय, तहाँ भोजन करै। अरु अन्धकार गृहमें भोजन करे, तो रात्रि-भोजन दोष पावै। तातें रात्रि रहित, अन्धकार रहित उत्तम स्थानमें, निर्दोष आहार करै। इन आदिक अनेक शुभाचार होंय। अरु कदाचित् ऐसा उत्तम आचार नहीं होय, तो क्रिया-भ्रष्ट भया। कन्द-मूलादि अभक्ष भोजन, रात्रि भोजन, अनगाल्या पानी खान-पान करि। दया सहित कुभावना सहित होय। सो उत्कृष्ट कुलाचार तैं भ्रष्ट होय। तातें उत्तम आचार सहित ब्राह्मणकूं, ये कार्य तजना चाहिये। याका नाम कुलावधि नाम अधिकार है ॥ २ ॥ सर्व कुलन तैं, ब्राह्मण कुलकी अधिकता है। तो याका उत्कृष्ट चलन ही चाहिये। महा दयावान्, परजीवनकी रक्षा रूप भाव होंय। अरु निर्दई होय तो शिकारी समान हिन्सा करि, पापाचारी होयके, निन्दा पावै। तातें सुभाचारी सर्व झूंठका त्यागी होय, जो झूठ भाषै, तो ब्रह्मकी मर्यादा जाय। तातैं ब्राह्मण सत्यवादी चाहिये। सर्व-चोरीका त्यागी होय। जो चोरी करै, तो राज्य-पञ्च-दण्ड पावै। अपयश होय। तातैं ब्राह्मण चोर कला-दोष तैं रहित चाहिये। पर स्त्री-

का त्यागी होय। जो पर-स्त्री लम्पटी होय तो राजा ताका शिर, नाक, कान, पांव, हस्त छेदन करै। पंच, जाति तैं निकासैं। तौ ऊंच कुलकूं दोष लागै। तातैं ब्राह्मण शीलवान् चाहिये। ब्राह्मण सर्व आरम्भ व बहुत परिग्रहका त्यागी होय निर्लोभी होय इत्यादिक गुणवान् होय, तो शोभा पावै। अनाचारी भया, महा आरम्भ करै। महा लोभी होय, दया रहित सा दीखै तौ उत्तम कुलकौं दोष लगावै। तातैं ब्राह्मण बहुत आरम्भ व बहुत परिग्रहका त्यागी चाहिये और ब्राह्मण, अपनेसे हो हीन आचारी, ऐसे हीन देव, हीन गुरुकौं नाहीं सेवै, जैसा आप दयावान् है, शीलवान् समता भावी है, तातैं भी अधिक बीतराग देव गुरु होय, ताकौं सेवै। और जैसा आप पुत्र, स्त्री, कुटुम्ब, परिग्रहके योगतैं, क्रोधी, मानी दगावाज, लोभी है। ऐसा ही क्रोध, मान, आदि दोषोतैं भर्या जो देव गुरु, ताकूं नहीं सेवै। जाकौं सेवै, सो परीक्षा करि सेवै। अपने जैसे रागी-द्वेषी, पर-स्त्री, धन, बाहनादि परिग्रह धारी, देव-गुरुकौं नहीं सेवै। सर्व दोष रहित, वीतराग, सर्वज्ञ, आरम्भ परिग्रह, स्त्री, धन घर रहित देव-गुरुकी सेवा करै। हीन देव गुरुकौं नहीं सेवै। यह तो वर्णोत्तम नाम तीसरा अधिकार है॥३॥ ब्राह्मणमें गुणकी अधिकता है। तातैं याकूं पात्रत्वभाव है, ये पात्र हैं आदरतैं दान देवे योग्य है। अरु बड़े पुरुषन करि, माननीय है। तातैं विवेकी ब्राह्मणकूं, गुण बधावना योग्य है। ये शील, सन्तोष, दया, क्षमा, निर्लोभादि उत्तम गुण करि तो पूज्य है। अरु इन गुण बिना, महापुरुषन करि, मानवे योग्य नहीं होय। बड़े-बड़े राजा गुणी जन तैं अनादर पावैं। पण्डितनकी सभामें जाय, लज्जा पावैं। तातैं ब्राह्मणकौं दान, पूजा, जप, तप, संयम शील, दया, सन्तोषादि अनेक-अनेक गुणनका संग्रह करना योग्य है। याका नाम पात्रत्व नाम चौथा अधिकार है॥ ४॥ और जहां श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं, तिनकौं मिथ्या श्रद्धान तजि कैं, सर्वज्ञ देव-केवली भाषित पदार्थनका श्रद्धान करना योग्य है। कोई सामान्य ज्ञानके धारनहारे मानी जीवनने, अपना मान पोषवेकौं, भोरे जीवनके बहकावेकौं, अपनी इच्छा करि, कल्पित शास्त्र बनाये। तिनमें तीन लोकका स्वरूप यथार्थ कह्या तो तीन लोकका प्रमाण तुच्छ कह्या। सो कोई तो भोरे भव्य ऐसा मानैं। जो लोककी रक्षा, निरन्तर भगवान् करैं। नहीं तो कोई चोर या सर्व लोककौं चुराय वस्त्रमें समेट लेय जाय। तातैं भगवान् सदीव रक्षा कर

हैं। और कोई कहे हैं। जो काहू कर्त्ताने लोक बनाया है। सो कबहूं काल पाय, क्षय भी होयगा। ऐसे कल्पित विकल्प करि लोक स्वरूप कहें हैं। सो असत्य है, ताके भेद कौं जानैं। और सर्वज्ञ केवली करि कह्या लोकाकाश रूप-अनादि, अकृत्रिम, अविनाशी, ध्रुव, पुरुषाकार सो सत्य है। ताके भेद कूं जानै। शुद्ध केवलीके भाषे लोकका श्रद्धान् करै। मिथ्या कल्पित लोकके स्वरूपका श्रद्धान् तजै। और भी जीव-अजीवका श्रद्धान् सहित शुद्ध सम्यग्ज्ञानका धारी, ब्राह्मण चाहिये। और जो आपके भी यथार्थ दर्शन-ज्ञान नहीं होय। तो औरन कूं मिथ्या उपदेश देय, औरनका बुरा करै। अपने उत्तम कुलकूं दोष लगावै। तातैं ब्राह्मणकूं यथार्थ श्रद्धान् आपकूं चाहिये, तो औरनकूं भी सत्य उपदेश देय, औरनका भला करै। तब ब्राह्मण-कुलकी श्रेष्ठता रहै। याका श्रेष्ठता नाम, पांचवां अधिकार है ॥ ५ ॥ जो ब्राह्मण आप पण्डित होय। दया धर्मका धारी होय अन्य शिष्यजनकौं कल्याणके अर्थ, मोक्ष-लक्ष्मीका वांच्छनहारा होय। अनेक प्रायश्चित्त शास्त्रनका वेत्ता होय, श्रावकनके व्यवहारकी परिपाटीका जाननहारा होय। जहां कोई श्रावककौं प्रमाद-वशात्, संयममें दोष लगा होय, तो दया-भाव करि, ताके मेंटवेकूं, शिष्यनके पाप नाशवेकूं, यथा-योग्य प्रायश्चित्त बताय, शुद्ध करै। ऐसा ब्राह्मण चाहिये। और कदाचित् आपही अशुद्ध होय, क्रोध-मान-माया-लोभ-पाखण्ड करि भख्या होय। तथा अज्ञानी होय। तो औरनकौं धर्म-मारग कैसे बतावै ? जैसे कोई ठग सूं उद्यान मैं शुद्ध-राह पूछै। तो ठग, शुद्ध राह कैसे बतावै ? तथा कोई अन्धेसैं उद्यानकी राह पूछे। तौ वह उद्यानकी राह कैसे बतावै ? तैसे ही कषाय सहित सो तौ ठग समान, सो शुद्ध मार्ग नहीं बतावै। वह अज्ञान अन्धे समान है। सो अपहीकौं सुमार्ग नहीं सूझै। तौ औरकौं कैसे बतावै ? तातैं ब्राह्मणके ये दोऊ दोष कहे। सो कषाय अरु अज्ञानतातैं रहित सज्जन स्वभावी, दयामूर्ति, महा पण्डित, अनेक प्रायश्चित्त शास्त्रनका ज्ञाता ब्राह्मण चाहिये। अरु जो ब्राह्मण आप प्रायश्चित्तशास्त्र तौ नहीं जानै। आपकौं दोष लागे, तब आपकूं औरन पै, दीन होय, प्रायश्चित्त याचना पड़ै। तातैं आपापरके सुधारवेकूं, अनेक नयका वेत्ता, गृहस्थनकी क्रिया-व्यवहार जानैं वह व्यवहार नाम छट्ठा अधिकार है ॥ ६ ॥ ब्राह्मण, उत्तम गुण-सम्पदाका धारी, उत्कृष्ट-पूजनीक गुण सहित,

धीर बुद्धि, पूजा-जप-तप-संयम सहित अनेक गुण पालक, सत्पुरुष ब्राह्मण, राजान करि अवध्य है। जैसे चोर, चकार चमचोरादि सप्त व्यसनके धारी जीव, बधवे योग्य हैं। तैसे अनेक गुणका धारी ब्राह्मण, बधवे योग्य नाहीं। पूजवे योग्य है और जो गुणी, पूजन योग्य, दीर्घ ज्ञानीकूं हनै, तो महा पाप होय। ज्यों-ज्यों दीर्घ ज्ञानीका घात होय त्यों-त्यों विशेष पाप जानना। जैसे एकेन्द्रियके घात तें, दो-इन्द्रियके घातका पाप बहुत है। ते-इन्द्रियका दो-इन्द्रियतैं बड़ा है। ते-इन्द्रियके घात तैं चौ-इन्द्रियके घातका पाप विशेष है। ऐसे ज्यों-ज्यों ज्ञान बध्या, त्यों-त्यों इन्द्रिय बधी सो इन्द्रियनके बधवे तैं, ज्ञान बध्या। तातैं ज्यों-ज्यों ज्ञान बधता होय, ताके घातका बड़ा-बड़ा पाप है। पशु तैं पापाचारी चोर, ज्वारी, पर-स्त्री सेवी, इत्यादिक अशुभ कर्मी मनुष्यके घातका पाप विशेष है सो इन तैं भला मनुष्य व्यसनादि दोष रहित होय ताके घातका पाप विशेष है ऐसे सामान्य मनुष्यनतैं, जपी, तपी, संयमी, दानी, दयावान्. निर्दोष, इनकैं विशेष ज्ञान है। सो इनके मारनेका विशेष पाप है। तातैं ऐसा जानना, जो ब्राह्मण संयम, जप, तप, व्रतका धारी है। तातें याकी घातका पाप विशेष है। विवेकी राजा, ऐसा दीर्घ पाप नहीं करै। तातैं राजा तैं, ब्राह्मण बध रहित है। पूजवे योग्य है। मारवे योग्य नाहीं। और यह धर्मका माहात्म्य है कि धर्मी को, कोइ पीड़ै नाहीं। और कदाचित् ब्राह्मण, दया रहित होय। लोभ—क्रोध—मान—मायादि व्यसनका धारी होय तो दीनता पावै। गुण बिना महत्वता जाती रहै। सामान्य मनुष्यकी नांईं राजा करि, दण्ड कों प्राप्त होय है हर कोई, पीड़ै। दुर्वचन कहै। और ब्राह्मणका पद होते, सुमार्गका लोप होय। ऊंच-कुली कुमारगमें लागैं, तो दीनता पावैं। अपयश पावैं। धर्म-आचार मिटै। सुमार्ग—दया धर्म तैं रहित भये, पूज्य पद मिटै। राजा तैं अनादर पावै। तातें विवेकी उत्तम ब्राह्मण कौं उत्तम-दान धर्म, संतोष, जप, तप, इन आदि अनेक गुणोंकी रत्ता करनी, त्रस-स्थावर सर्व जीवनका भला चाहना, यह उत्तम गुण है। सर्वके भलेमें अपना भला है। तातैं ब्राह्मण कूं धर्म-रत्ता करनी। याका नाम सातवां अबध्य गुण है ॥ ७ ॥ धर्म विषैं स्थिरी-भूत है आत्मा जाका, ऐसा ब्राह्मण; सर्व करि अदंड है। काहू तैं दण्डवे योग्य नाहीं। कोई धर्म-बुद्धि कूं, धर्म-सेवनमें

दोष लाग्या होय। तौ ताकौं शुद्ध करवे कूं यह धर्मात्मा ब्राह्मण ताकूं दण्ड देय, शुद्ध करै। परन्तु, आप दण्ड-योग्य नाहीं। आप अपनी शांत-दशा दया-भाव सहित, शास्त्रनका अभ्यास करै। ताके अर्थ प्रगट करि, आप धर्मात्मा भया और धर्मी-जीवन कूं उपदेश देय, सुमार्ग लगावै। जे धर्मात्मा होंय। सो धर्मी-जीवका दिया उपदेश, तथा अतिचार लाग्या ताका प्रायश्चित्त, अंगीकार करैं। तातें धर्मात्मा-पुरुष, राजा करि दण्डवे योग्य नाहीं। कदाचित् ऐसे धर्मी-जीवमें, कोई कर्म-योग तैं दोष पड़ गया होय। तौ धर्मात्मा-राजा, यथा योग्य दण्ड देय, फेरि ताकूं धर्म-विषैं दृढ़ करै। ऐसा दण्ड नहीं देय, जातैं याकौं धर्म तैं अरुचि होय। धर्म सेवनमें आकुलता बधै। घर-धन नहीं लूटै। तन-घात नहीं करै। ऐसा दण्ड देय, जातैं याकौं धर्ममें प्रीति उपजै। जिन धर्मका अतिशय देख, दया-धर्मका सेवन करै। यह धर्मात्मा ब्राह्मण, सर्व लौकिक दोष तैं रहित, उत्तम आचारवान्, दया-धर्मका धारी, राजाओं करि अदंड है। पापीजनकी नांईं, धर्मात्मा कूं भी दण्ड योग्य जानै। तो दण्डनेहारा राजा, प्रजाका पालनहारा, अन्यायके योग तैं अपयश पाय, थोड़े ही दिनोंमें राज्य-भ्रष्ट होय। याकी अनीति देख, धर्मात्मा पुरुष तौ देश तज देंय। तब देश धर्मी-जन रहित भया। तामैं पाप-कार्यनकी बधवारी होय। पापके बधतैं, देश-ग्राम धीरे-धीरे अनुक्रम करि नाश कूं प्राप्त होंय। तातैं धर्मात्मा-ब्राह्मण, अदंड है। यह अदंड नाम आठवां अधिकार है॥ ८॥ बहुरि धर्मी-जीवन कौं सर्व पूजैं। यथा-योग्य सर्व मानैं। सो यह बात सत्य ही है। जो धर्मात्मा, गुणन करि अधिक होय। सो धर्मी-जीवन करि, मानवे योग्य होय ही होय। कदाचित् विप्र विषैं, गुणनकी अधिकता नहीं होय। तो पूज्य-पद मिटै। अनादर पाय। पद भ्रष्ट होय। रंकदशा धारै। तातें विवेकी ब्राहमण, समतादिक गुणनका जतन करि, अपने विषैं धारै। सो यह ज्ञान, चारित्र और तप, उत्कृष्ट ऋद्धि है सो जे गुणवान् हैं, सो गुण-विभूतिका यत्न करो। यह गुण-संपदा जप-तप पूज्य हैं। तिनकौं भूल कर भी विवेकी नहीं विसारैं। याका नाम माननीयता नववां अधिकार है॥ ६॥ यह धर्मात्मा ब्राह्मणका, प्रजा-संबन्धान्तर गुण है सो विवेकी अपना उत्कृष्ट गुण छाँड़ि, जगत-जीव-अज्ञानकी नांईं नहीं होय सो प्रजा-संबंधांतर गुण कौं राखै। भावार्थ—जो जैसे गुण

अन्य प्रजामें नहीं पाईये, ऐसे गुण आपमें धारण करै। प्रजाके गुण तैं अधिक गुण-संपदाका धारी होय। तब प्रजा करि, पूज्य होय। प्रजा-जैसे, अज्ञान चेष्टा रूप गुण, आपमें नहीं धारै। सो प्रजासे अन्तर जानना। प्रजा समान गुण, अज्ञान-विषयीकी चेष्टा आपमें धारै। तो अपना पूज्य-पद खोवै। महंतता नहीं रहै। प्रजा समान आप भी होय। तौ जैसे निमल स्वर्णमें, कुधातुके सम्बंध करि मलिनता होय। और जैसे निर्मल स्फटिक मणि, डांकके संयोग तैं अपना स्वच्छ गुण तजि, श्याम-हरित-रक्तादि अनेक वर्ण कौं प्राप्त होय। तैसे ही यह धर्मात्मा जीव, ब्रह्मचारी, उत्कृष्ट गुणोंका धारी, आचारवान्, सौम्यमूर्ति संसारी-अज्ञानी जीवनकी संगति तैं आप भी अज्ञानी-जीवनकी नाईं, इस प्रजामें एकमेक होय। क्रोध-मान-माया-लोभ रूप प्रवृत्ति तैं, अपना पद लोप करै। सर्व गुणनका अभाव होय। तातैं विवेकी धर्मात्मा ब्राह्मण, अपने गुणन तैं और अज्ञानी-गुण रहित जीवन कौं, गुण-खान करै। आप अज्ञानीकी संगति तैं, अज्ञानी नहीं होय। जैसे पारस-पाषाण अपने गुण तैं लोह-कुधातु कौं कंचन करै, परन्तु आप लोह नहीं होय। तैसे उत्तम ब्रह्मचारी, अपना शील, संतोष, तप, संयम, व्रत, दया सहित गुण, जगतमें प्रगट करि, और-जीवन कौं आप समान गुणवान करै। जो भोरे, अज्ञानी, अशुभाचारी, दया रहित, पाप कलंक सहित जीव, तिनकौं धर्मोपदेश देय, तिनके दोष मेटि शुद्ध निर्दोष करै। यह गृहस्थाचार्य तीन कुलका उपज्या ब्रह्म पदके धारी विषैं यह प्रजा संबंधांतर गुण है। ताके योग तैं औरन कौं गुणरूप करै। कदाचित् यह गुण नहीं होय तो अज्ञानी के संग तैं आप अज्ञानी होय। गुण रहित होय। तब अपना पूज्य पद नहीं रहै। तातैं प्रजाके गुणों तैं मिलै नाहीं अलग रहै। याका नाम प्रजा संबन्धातर दशवां अधिकार है ॥ १० ॥ ऐसै ये बाल विद्या तैं लगाय प्रजा संबन्धान्तर दश अधिकार कहे। ताकी जुदी जुदी क्रियानका कथन कह्या। सो जो इन दश क्रिया रूप प्रवृत्तै। सो क्रिया ब्रह्म जानना। तीन कुलका उपज्या धर्मी जीव इन क्रियाओं सहित शीलादिक गुण पालै। सो क्रिया ब्रह्म है। इति क्रिया ब्रह्मके दश भेद। आगे ब्राह्मण शील गुणकी प्रतिपालना करै। सो ब्रह्मचारी कहावै। सो शीलाधिकार लिखिये है—

गाथा—सिव मिंद जाण द्वारय, भव सायर पार तार तंणीए। अघ तम हर रवि जेहो, मोख मग्गोय वंभ भावाए॥ १४२॥

अर्थ—शिव मिंद जाण द्वारत कहिये मोक्ष महलके जाने कूं द्वार। भव सायर पार तार तंणीए कहिये संसार सागरके तरवे कूं नाव समान। अघ तम हर रविजे हो कहिये पाप रूप अंधकारके नाशवे कूं सूर्य समान। मोख मग्गोय वंभ भावाए कहिये मोक्ष मार्ग रूप एक ब्रह्म भाव ही है। भावार्थ-ब्रह्मचर्य भाव है सो मोक्ष महलमें जानेका एकही ये मार्ग है। इस शील बिना मोक्षकौं जावेका कोई द्वार नाहीं, कैसा है शीलभाव संसार समुद्रके तिरवे कौं जहाजसमान है। कैसा है भव—समुद्र, महागंभीर राग-द्वेष रूप जो जल, ताकरि भरया है। तामें विकार रूप अनेक तरंगें उठें हैं। और वेद-भाव, रति अरति क्रोध मान, माया लोभादि ये कषाय हैं। सो ही भये मगरादि जलचर क्रूर जीव। तिनके केलि (क्रीड़ा) करने का स्थान, ये भव-सागर जानना ऐसे विकट भवसागर तारवे कूं ये शील व्रत नाव समान है। कैसा है शील, पाप अंधकार करि चारि-गति के जीवन कूं, मोक्ष-मार्ग नहीं सूझै। ऐसा अंधकार नाशवे कूं, यह ब्रह्मचर्य—भाव सूर्य समान है। तातें मोक्षका मार्ग, एक शील ही है। भावार्थ-इस शील गुण बिना अनेक धर्म—अङ्गनका साधन, कार्यकारी नाहीं। तातें मोक्षाभिलाषी जीवन कूं, मोक्षके कारण रूप शील की ही रक्षा करनो चाहिये। आगे और भी शील गुण की महिमा कहिये है—

गाथा—सोपाणो सिव गेहो, सिव तिय लावण दूत सम जोई। धम्मा भूषण भणयं, सिव दीयो जाण वंभ गुण गेयो॥१४३॥

अर्थ—सोपाणो सिव गेहो कहिये, ये ब्रह्मभाव मोक्ष मंदिरके चढ़वे कों सीढ़ी समान है। सिव तिय लावण दूत सम जोई कहिये, मोक्ष रूपी स्त्री के ल्यावे कों चतुरदूती समान है। धम्मा भूषण भणयं कहिये, ये धर्मका आभूषण है। सिव दीयो जाण वम्भ गुण गेयो कहिये, शिव द्वीपके पहुंचावे-कों ब्रह्मचर्य वाहन-समान है। भावार्थ—जैसे मन्दिर पै जांय, सो सीढ़ीन परसे जांय हैं सो मोक्षमहल, अद्भुत सुखका स्थान है। सो लोकके शिखर पर है। मध्य लोक तैं, सात राजू ऊंचा है। तहां चढ़वे कूं शीलव्रत सीढ़ी समान है। इस शील रूप पैढ़ीन की राह चढ़नेहारा भव्य, सहज ही में मोक्षमहलमें पहुंचे है। जैसे दूती, परस्त्रीन कूं

शीघ्र ही मिलावै। तैसे मोक्ष रूपी स्त्रीके दिलावे कू, ब्रह्म दूतीसमान जानना। जैसे आभूषण करि तन शोभा पावै। तैसे धर्म के जेते अङ्ग हैं। दान पूजा, जप, तप, त्याग; चारित्र, इन आदि जे जे धर्म अङ्ग हैं। तिनके भले दिखावे कूं—शोभायमान करवे कूं, शील गुण है सो आभूषण समान है। जैसे कोई देशांतर जावे कूं रथ, गाड़ी, सुखपालादि असवारी, सुख तैं परदेश लेय जाय हैं। तैसे ही शिव द्वीपके पहुंचावे कूं, शील—गुण है सो यान कहिये असवारी समान है। तातैं इस शील गुणकी रक्षाकरनी योग्य है। आगे शील गुण की और महिमा कहिये है—

गाथा—मोख तरु दिठि मूलो, खग देव णरय पूज्य असुरायो। तिभवण चर जस करई, हरई भव दुक्ख वंभ वाताये ॥ १४४ ॥

अर्थ— मोख तरु दिठि मूलो कहिये, ब्रह्म-भाव मोक्ष-वृक्षकी जड़ है। खग देव णरय पूज्य आसुरायो कहिये, विद्याधर, देव, मनुष्य और असुरन करि पूज्य है। तिभवण चर जस करई कहियो, तीन लोकके जीव ताका यश गावैं हरई भव दुक्ख वम्भ वताये कहिये, संसारके दुःख कूं ब्रह्मचर्य्य मैटै है। भावार्थ—यह शील व्रत है सो मोक्ष रूपी वृक्षकी जड़ है। जैसे वृक्षकी जड़ नहीं होय, तो वृक्ष नहीं ठहरै। अल्प-कालमें क्षय होय। तैसे ही शील-भाव रूपी जड़ कहीं होय, तौ मोक्ष-रूपी कल्प-वृक्ष नहीं रहै। बिनसि जाय। बहुरि यह शील-भाव कैसा है? विद्याधर, राजा, ज्योतिषी, व्यन्तर, भवनवासी, कल्पवासी ये च्यारि प्रकारके देव, चक्री, अर्ध-चक्री, कामदेव, बलभद्र, मण्डलेश्वरादि महान् ऋद्धिके धारी बड़े-बड़े राजा, इन सर्व देव-मनुष्यन करि पूजनीय है। शीलभाव कैसा है? जाका यश तीन लोकके प्राणी गावैं हैं। बहुरि शीलभाव कैसा है जन्म—मरण दुःखका नाश करनहारा है इत्यादिक अनेक गुण सहित, यह शील व्रत है। ताकी रक्षा करना योग्य है। आगे शीलका माहात्म्य और बताइये है—

गाथा—सिंहण वाधा करई, चंपय पद णाग दाग णह होई। वण वारण मिग जायो, यह फल सीलोय होय णियमेण ॥ १४५ ॥

अर्थ—सिंहण वाधा करई कहिये, ब्रह्मचारी कौं सिंह बाधा नहीं करै। चंपय पद णाग दाग णह होई कहियो, पांवके नीचे नाग आवै तौ भी नहीं काटै। वण वारण मिग जायो कहिये, बनका हाथी मृग समान

हो जाय। यह फल सीलोय होय णियमेण कहियै, ऐसा फल नियमसे शील व्रतका होय है। भावार्थ—जहां भयानीक आकार, तीक्ष्ण हैं नख अरु दांत जाके, काल-पुत्र समान विकराल, भयानीक रूप ऐसा नाहर, उद्यानमें शीलवान कौं नहीं सतावै। और काल समान विकराल, फणका धारी, विषका समूह, जाके मुख तैं निकसे है अग्निवत् हलाहल विष-ज्वाला, मणिधारो, ऐसा भयानीक नाग, शीलवान् पुरुषनके पांव नीचे दबि जाय, तो इल्लो समान दोन होय जाय। शीलके माहात्म्य करि, पोड़ा नहीं करै। और महा उद्यानमें बनका मदोन्मत्त हस्ती, स्वेच्छारूप वर्तता, अपनी लीला करि बड़े-बड़े वृक्ष तोड़ता नदीसरोवरका जल बिलोलता, काल समान भयानीक वर्षा-काल के मेघ समान गर्जता दीर्घ शब्द करता, अजंनगिरि समान ऊंचा मेघघटा समान श्याम वर्णका धारी हस्ती तैं गहन वनमें भेंट हो जाय। तौ ऐसा भयानीक गयंद शीलके माहात्म्य करि ब्रह्मचारी कूं बाधा नहीं करै। मृगके समान सरल हो जाय। इत्यादिक फल प्रगट करनहारा उत्तम शील गुण है तातैं ऐसे शीलगुणकी रक्षा करना योग्य है। आगे और भी शील गुणका माहात्म्य कहिये है—

गाथा—सुर सुह कर सिव करऊ, वहणी णिज पतण होय दुह सामो। सुर-तरु दहदा सुह दय, गहणो वण साय वंभ वय करई ॥ १४६ ॥

अर्थ—सुर सुह कर कहिये, स्वर्ग का सुख करनहारा। सिव करऊ कहिये, मोक्ष करनहारा वहणी णिज पतण होय दुह सामो कहिये, शीलवान्का अग्निमें पड़ना होय तो यह दुःख भी शांत होय। सुर-तरु दहदा सुह दय कहिये, दश प्रकार कल्पवृक्षके सुखका दाता है। गहणो वण साय वंभ वय करई कहिये, ब्रह्मचर्य व्रत सघन बनमें सहाय करै। भावार्थ-यह ब्रह्मचर्य व्रत कैसा है? याके फल तै नाना प्रकार, पंचेन्द्रिय, देवोपुनोत अद्भुत, अमर-पर्यायके सुख होय है और शीलवान् जोव कूं कर्म-रहित जो मोक्ष, ताके अखंड अविनाशी, अचल, अतीन्द्रिय-सुख होय हैं। शीलवन् के चौतरफ अग्नि ज्वाला जल रही होय, तौ भी ताहि बाधा नहीं होय। तथा शीलवान् पुरुष कौं कोई पापी अग्नि-ज्वाला विषैं गिरावै तौ सब अग्नि, जल होय। जैसे सीताके शील-महात्म्य करि, अग्नि जल भई। तैसे ही शीलवान कूं अग्निका भय नहीं होय।

दश प्रकारके कल्पबृक्षका दिया वांछित सुख, सो शीलके माहात्म्य तैं सहज ही होय। शीलवान् पुरुष अटवी में जाय पड़े, तो बाधा नहीं होय। कैसा है बन? महा उद्यान बड़े-बड़े सघन वृक्षका समूह, तहां महा भयानीक सिंहनके धडूके (गुफाएं) हैं तहां मेघ की नाईं, हस्तीन की गर्जना होय। तहां सिंहनकी गर्जना के शब्द सुनि, मदोन्मत्त हस्तीनके समूह स्वेच्छाचारी भये, बनके वृक्ष उखाड़ते, लीला करते फिरै। सो सिंहके शब्द सुनकर, हस्ती अपने छावान् (बच्चों) सहित, भागते फिरैं हैं। उतर गया है मद जिनका, सो भयवान् भये भागते दीखैं हैं। जा बनमें बड़े—बड़े पर्वत सो गुफान करि पोले होय रहे हैं। तिनगुफान तैं निकसे जो बढ़े दीर्घ तनके धारी अजगर सर्प, सो दीर्घ उच्छ्वास लेते गुफा तै निकसतो देखिये है इत्यादिक भय तैं भरा जो भयानीक बन, सो ऐसे बन बिषैं शीलवान आय पड़ैं। तो शीलके माहात्म्य करि, निःखेद होय निकसै। ऐसे अतिशय सहित जो ये शीलगुण ताकी रक्षा करनी विवेकीनकों योग्य है। आगे और भी शीलगुणका माहात्म्य बतावैं हैं—

गाथा—सिसरो अवभ भंजई, वंभ वतोय बज्ज छिण एको। काम भुयंगय मंत्तो, वसि करई वंभ एय गरुडाये ॥ १४७ ॥

अर्थ—सिसरो अवंभ भंजई कहिये, अब्रह्म रूपी पर्वतके फोड़वे कौं, वंभ वतोय वज्ज छिण एको कहिये ब्रह्मचर्य एक वज्रके समान है। काम भुयंगय मंत्तो कहिये, काम रूपी सर्पके वश करवे कों ब्रूह्मचर्य एक मंत्र समान है। बसि करई वंभ एय गुरुडाये कहिये, तथा ताके वश करवे कूं ब्रूह्मचर्य एक गरुड़ समान है। भावर्थ—कुशील रूपी उत्तंग पर्वतके चूरण करवे कूं शीलभाव वज्र समान है। एक छिनमें कुशील रूपी पर्वतन कूं फोड़ै है। और कैसा है शीलभाव? कुशीलभाव रूपी जो सर्प, ताके वश करवे कूं मंत्र समान है। तथा ताके वशी करवे कूं शील भाव गरुड़ समान है। ऐसे शीलबूत की रक्षा करना योग्य है। आगे और भी शील बूतकी महिमा बताइये है—

गाथा—मदणो मद गय थंभउ, अंकस सिर दाग लाग वस करई। मण कपि वस कर फंदई, वंभो वय-एय गेय णियमेण ॥ १ ४८ ॥

अर्थ—मदणो मद गय थंभउ कहिये, मदन रूपी मदोन्मत्त हस्ती ताके जीतवेकूं। अंकस सिर दाग

वस करई कहिये, शिरमें अंकुशके दाग लगाय वश करवे समान। मण कपि वस कर फंदई कहिये, मन रूपी बन्दरके वश करवेकौं फंद समान वंभो वय एय गेय णियमेण कहिये, एकही ब्रह्मचर्य व्रत नियमसे जानना। भावार्थ—काम रूपी मदोन्मत्त हस्ती, महा बलवान् सो ताके जीतवेकूं इन्द्र, देव, चक्री, कामदेव, नारायण बलभद्र, कोटीभटादि महापुरुष, बड़े-बड़े बैरोनके जीतवेकूं बलवान्, इनको आदि बड़े—बड़े सामंत, ते भी इस काम रूपी हस्तीके वशी करवेकूं असमर्थ भये। ऐसे काम रूपी हस्तीके वशी करवेकूं, ये शील भाव है सो अंकुशके दाग समान है। कैसा है शीलभाव ? सो मन रूपी बन्दरके बांधवेकूं, लोहेकी सांकल समान है। इनकों आदि अनेक गुण सहित, शीलभाव जानना। आगे और भी शीलव्रतकी महिमा कहिये है—

गाथा—कुगय वार कपाटो, अवंभ तरु छेद तीच्छ कुठहारो। सिव गछ्छत सुह सुकणो, इन्दी मिग जाल वंभ वताये ॥१४६॥

अर्थ—कुगय वार कपाटो कहिये। ये ब्रह्मभाव कुगति द्वारकों कपाट समान है। अवंभ तरु छेद तीच्छ कुठहारो कहिये, कुशील रूपी वृक्षके छेदवेकूं तीक्ष्ण कुठार है। सिव गछ्छत सुह सुकणो कहिये, मोक्ष चलवेकूं, शुभ शकुन है। इन्दी मिग जाद वंभ वताए कहिये इन्द्रिय रूपी मृगके पकड़वेकूं ये ब्रह्मचर्य, जाल समान है। भावार्थ—यह ब्रह्मचर्य व्रत है, सो कुगति जो नरक-तिर्यंच गति, तिनमें नहीं जाने देयवेकूं कपाट समान है और कैसा है शीलव्रत, जो कुशील रूपो विकट वृक्ष सो आर्त रौद्र भाव रूप कांटेन सहित आ-कुल भाव रूपी छायाका धारी, अपयश रूपी फूल करि फूल्या, नरक तिर्यंच गति हैं, फल जाके ऐसा कुशील वृक्ष, ताके छेदवे कं शीलभाव तीक्ष्ण कुठार समान है। बहुरि कैसा है शीलभाव, जैसे कोई बड़े लाभ निमित्त द्वीपांतर जाते, भले शकुन होंय। तो जातेही कार्य सिद्ध होय। तैसेही मोक्ष रूपी द्वीपके गमन करनेहारे यतीश्वर तथा और भव्य श्रावक, तिनकौं शुद्ध शील व्रतका मिलाप, भले शकुन समान है। बहुरि कैसा है शीलभाव ? जैसे काहूका तैय्यार भया धान्यका खेत है। ताकौं उद्यानमें मृग उजाड़ैं हैं, खाय जांय हैं। तिन मृगों कों, स्याना खेतका लोभी किसान, जाल तैं पकड़ कैं, अपना खेत बचावे है। तैसेही अनेक गुणनका उपजावनहारा संयम रूपी खेत, ताकों इन्द्रियरूपी मृग बिगाड़ें हैं। सो अपने संयम—खेतकी

रक्षा का करनहारा धर्मात्मा पुरुष, सो इन्द्रिय रूपी मृग तिनकूं शीलरूपी जाल तैं पकड़ि, अपने वश करि, अपने संयम खेतको बचावै। इत्यादिक अनेक गुणोंका भण्डार यह शीलव्रत है। तातैं याकी रक्षा किये, स्वर्ग-संपदा दासी होय। मोक्ष-संपदा घर विषैं आवै। सो विवेकी हो! इस शीलकी रक्षा करो। इति शील-महिमा। आगे कुशील का स्वरूप कहिये है—

गाथा—धम्म तरु भंज गयन्दो, मिच्छा रयणीय मांहि मिग्गांको। आपद धन गह भरई, ये सऊ दोसाय जणणि अवंभो॥ १५०॥

अर्थ—धम्म तरु भंज गयंदो कहिये, धर्म रूपी वृक्षके छेदवे कूं हस्ती। मिच्छा रयणीय मांहि मिगांको कहिये, मिथ्यात्व रूपी रात्रिके करवे कूं ताका नाथ चन्द्रमा समानि। आपद धण गह भरई कहिये, आपदा रूपी धन तैं, घरकौं भरनहारा। ए सऊ दोसाय जणणि अवम्भो कहिये, इन सब दोषोंकी जननी अब्रह्म है। भावार्थ—धर्म रूपी वृक्ष यश रूपी सुगंधित फूलों करि फूल्या, स्वर्ग-मोक्ष हैं फल जाके ऐसा धर्मवृक्ष, ताकों तोड़-विध्वंस करवे कौं कुशील भावना, मतंग हस्ती समान है। सम्यक्ज्ञान रूपी दिन, सर्व पदार्थन का जनावनहारा ताके हरवे कूं अरु मिथ्यात्व रूपी रात्रिके प्रकाश करवे कूं कुशीलभावना रजनीपति—चन्द्रमा समान है। और आपदा कहिये नाना प्रकार दुःख, दारिद्र, रोग, भय, जेई भईं संपदा तिनतैं घर भरनहारा कुशील है। भावार्थ—जाके कुशील है ताके घर तैं आपदा कबहूं नहीं छूटै इत्यादिक अनेक दोषों के जन्म देवें कूं समर्थ कुशील भावना माता समान है। ऐसा जानि कुशील भावना तजना भला है। आगे और भी कुशील का स्वभाव कहै हैं—

गाथा—वंभ हणण तिय कुटिला, कुगय गमण कर हरय सिव मग्गो। एहो भाव अवंभो, हेयो कीय भव्य वंभ पादेयो॥ १५१॥

अर्थ—वंभ हणण तिय कुटिला कहिये ब्रह्मचर्य नाशवे कूं कुटिला स्त्री। कुगय गमणकर कहिये, कुगतिमें गमन करै। हरय सिव मग्गो कहिये, मोक्ष मार्ग कौं हरै। एहो भाव अवंभो कहिए, ऐसा कुशील भाव है हेयो कीय भव्य कहिये ये भव्य जीवके हेय है। वंभ पादेयो कहिए ब्रह्मचर्य भाव उपादेय है। भावार्थ—जैसे कुटिला स्त्री है सो अनेक हाव-भाव करि, पर-पुरुषका मन मोहकर ताका शील हरै है। तैसे

ही कुशील भाव है, सो ब्रहमचर्य के हरवे कूं कुटिला-स्त्री समान है। फेर कुशील भाव कैसा है ? कुगति जो नरक तिर्यंच गति ताके मार्ग कूं बतावें है। कैसा है कुशील ! जो मोक्ष-मार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, इनकूं हरै है। तातें हे भव्य हो ! यह कुशील भाव है सो याकौं तजो। अरु शील भाव कूं अंगीकार करहु। ऐसे कहे जो शील भाव अरु कुशील भाव तिनका स्वभाव अपनी बुद्धिके वल करि पहिचान समता रसके स्वादी होय इस जगत विडम्मना रुप विकार भाव सहित जो कुशील भाव तिनका तजन करि मोक्ष रुपी स्त्री के सम्बन्ध तैं उत्पन्न, जो निराकुल, अद्भुत, अतीन्द्रिय सुख, ताही कौं तुम शीलभावके प्रसाद भोग करि, सुखी होऊ। यह कह्ये जो कुशीलभेद, तिन कूं तजि ऊपर कहे शील गुणकौं धारै। सो क्रिया-ब्रहम जानना। इति कुशील निषेध, शीलकी महिमा कही। आगे च्यार भेद क्रिया-ब्रहमके हैं। तिनकी क्रिया लिखिये है—

गाथा—सिर लिङ्गन उर लिङ्गो, कटि लिङ्गो उरय लिङ्ग चव भेयो। धारय सो दुज सुद्धो, वंभ चारोय धार समभावो ॥ १५२ ॥

अर्थ—सिर लिंगन कहिये, सिरका चिन्ह। उर लिंगो कहिये, उर (छाती) का चिन्ह। कटि लिंगो कहिये, कमरका चिन्ह। उरय लिंग कहिये, जंघाका चिन्ह। चव भेयो कहिए, ए चार प्रकार क्रिया ब्रहम है। धार समभावो कहिए, समता भावोंको धारण करै। वंभचारोय कहिए, वही बृह्मचारी है। धारय सो दुज सुद्धो कहिए, वही शुद्ध द्विज है। भावार्थ—भले तीन कुलके उपजे धर्मात्मा-गृहस्थके वालक, जेते काल गृहस्थाचार्यके पास विद्याका अभ्यास करैं। तेते समय गुरुकी आज्ञा-प्रमाण ब्रह्मचर्य-वृत पालैं। अरु च्यारि चिन्ह सहित रहैं। सो सिर लिंग ताकौं कहिए। जो नग्न शीश रहै। सो चोटीमें गांठ राखे। सो सिर लिंग है ॥ १ ॥ उर लिंग ताकौं कहिए, जो गले विषैं रत्नत्रयका प्रसिद्ध चिन्ह, जिन-धर्मका निशान, पक्का जैनी अपना जिन-धर्म प्रगट करवेके निमित्त, गलेमें तीन सूतकी-उर विषैं जनेऊ डालै सो उरका चिन्ह है ॥ २ ॥ डाभकी तथा मूंजकी रस्सीका, कमरकी करधनीकी जायगा, ताका वंधन राखै। सो कटिका चिन्ह है ॥ ३ ॥ उर नाम जंघाका है। सो जांघपर उज्वल धोती राखै सो उरुका चिन्ह है ॥ ४ ॥ इन च्यारि गुण सहित जो क्रिया होय सो क्रिया-बृह्म है। उरका चिन्ह जनेऊ है ताके नव गुण हैं। इन नव गुण सहित जो भव्य होय,

सो जनेऊ राखै। अरु इन गुण बिना जनेऊ राखै, तो परंपराय तैं, धर्मका लोप होय। ताकौं पाप-बंधका करनहारा कहिए सो वे नव गुण कैसे, सो ही कहिए है—विज्ञानता, क्षमावान्, अदत्त त्याग, अष्ट मूल गुण-धारक, लोभ रहित, शुभाचारी, समिति धर, शीलवान् और त्याग गुण। भावार्थ—विज्ञानता जो नाना प्रकार विशेष-गुणनकी सावधानी राखना। क्षमावान होय, तपस्वी होय। दया सहित, आप समान सब जीवनका जाननहारा होय। उदार चित्त होय। सर्वज्ञ भाषित शास्त्रनका धारी पण्डित होय। यथा योग्य देव-गुरु-धर्मव आप सम, आप तैं लघु, इत्यादिक सर्वकी विनयमें समझता होय। आपका हृदय विनयवान् होय। इन आदिक विशेष ज्ञानवान होय सो विज्ञान लक्षण है॥ १॥ दूसरा क्षमागुण सो शांत स्वभाव होय। क्रोधी नहीं होय। सर्व जीवनके मंगलका इच्छुक होय। अदेखसका नहीं होय। क्रोध, मान, माया, लोभ, पाखंडका त्यागी होय। कषायी नहीं होय। इत्यदिक गुणी, सो क्षमा गुण है॥ २॥ अदत्तका त्यागी होय। राह पड़्या द्रव्य कौं नहीं छीवै। बिना दिया, किसीका गड़्या, धर्‌या, भूल्या धन लेय नाहीं। इत्यादिक चोरीका त्यागी होय सो तीसरा अदत्त-त्याग गुण है॥ ३॥ मूल गुणका धारी होय। ऊमर, कठूमर, पाकर फल, बड़ फल, पीपल फल, ए पांच उदंबर। मद्य, मांस, मदिरा, ए तीन मकार। सब मिल आठ भए। सो इन आठनका त्याग, सो अष्ट मूल गुण हैं सो इन गुणनका धारी होय। रात्रि-भोजनका त्यागी होय। इत्यादिक अभक्ष्य कंद-मूलका त्यागी होय सो चौथा अष्ट मूल गुणधारक गुण है॥ ४॥ निर्लोभता-सो परिग्रह तृष्णाका त्यागी होय। संतोषी होय। अहंकार, ममकार जो मैं ऐसा, मोसा कोई दूसरा नाहीं, सो अहंकार है। यह मेरो, वह मेरी, तन, धन, पुत्र, स्त्री, घर मेरा। ऐसा कहना सो ममकार है। जो ऐसे भावनका त्यागी होय। सो निर्लोभता पंचम गुण है॥ ५॥ शुभाचारी होय। जो पूजा जप तप संयम सूं रहना। अयोग्य खान-पानका त्याग भला भोजन देखके लेना। इत्यादिक शुभक्रिया करि रहना। सो शुभाचार है। अनछना जल पीवै नाहीं। ऐसे जल तैं सपरे (स्नान करै) नाहीं। नदी, सरोवर बावरी कूपमें कूदके स्नान करै नाहीं। इत्यादिक भले गुण धारै। सो शुभाचार नाम छट्ठा गुण है॥ ६॥ सांतवां समिति गुण-सो धरती पै चलै तो नीची दृष्टि

करि देखता चालै। अपनो दृष्टिसें छोटे-मोटे जीव आवैं। तिन कूं दया भाव करि बचावता चालै। ऊर्द्ध मुख करि नाहीं चालै। शीघ्र शीघ्र नाहीं चालै। राह चलते इत उत नहीं देखै भागै नांहीं। भाषा बोलै सो बिचारके बोलै। भोजनके समय बोलै नाहीं लड़ै नाहीं काहू कों गाली नहीं काढ़ै। इत्यादिक शुद्धता सहित देखके भोजन लेय। वस्तु कहींसे लेय सो देख कर लेय। घींसके नहीं लेय। वस्तु कहीं धरै तौ देखके धरै। धरती बिना देखे नहीं धरै। मल-मूत्र अपने तनका डारै सो जीब रहित स्थानमै देख शोध डारै। इत्यादिक शुद्धता सहित रहना। सो सातवां समिति गुण है॥ ७॥ आठवां शील गुणसो पर-स्त्री विषैं विकार बुद्धिका त्यागी होय। निज स्त्रीके संभोग विषैं, संतोषी होय। अल्प निद्राका करनहारा होय। अल्प निद्रा होय तो प्रमादी नहीं होय। दीर्घ निद्रा करै तो अपने गुणन कूं कलंकित करै। अल्प आहारी होय। बहुत भोजन करै तो शील कौं दूषण होय। काष्ठ पाषाणादिकी स्त्री देख विकार रूप चित्त नहीं करै। इत्या-दिक शीलभाव राखै। सो आठवां शील गुण है॥ ८॥ त्याग नववां गुण है। सो कुटुम्ब परिग्रह और शरी-रमें मोहका त्यागी होय। अनरंजन भाव होय। मंद मोह कौं लिये सरल चित्तका धारी होय। चिन्ता शोक भय करि रहित होय। बड़ा दानी होय। इत्यादिक गुण सो त्याग गुण है॥ ९॥ ऐसे कहे नव गुण सहित जो होय सो तिस भव्यात्मा कौं यज्ञोपवीत फलदाई होय। इन गुण बिना यज्ञोपवीत राखै तौ परभव कौं दूषित करै। प्रायश्चित्तका धारक सत्पुरुष बृह्मचर्यका धारी; तिन करि निंद्य होय। दुख पावै। जैसे मंत्रका जाननहारा सर्प राखै। तो निर्दोष है। बिना मंत्र जानै सर्प राखै। तौ दुखी होय। ऐसे कहे गुण प्रमाण यज्ञोपवीत राखै तौ शुभ उपजावै नाहीं दुख उपजावै। ऐसा जानि गुण सहित यज्ञोपवीत राखै। सो क्रिया बृह्म है। आगे इन ही श्रावकनके भोजन समय सात अंतराय होय हैं। सो कहिये हैं। प्रथम नाम जहां कौड़ी आदि निर्जीव हाड़ देखै मांस पिंड देखै रौद्र धार देखै भोजन करते थालमें जीव पतन होय पंचेन्द्रियका मल देखै कच्चा पक्का सूखा चमड़ा देखै व स्पर्शै और तजी वस्तु भोजनमें आवै। ऐसे सात अंतराय हैं सो इनका निमित्त मिलै तो दयावान् कोमलचित्तका धारी श्रावक भोजन तजै। ता दिन अनशन करै।

जब से अंतराय भया तब तैं अन्न जल नहीं लेय। ऐसा जानना। आगे ये क्रिया ब्रह्मके पालने योग्य सत्तरह नियम हैं। सो कहिये हैं—

गाथा—भोयण पड रस पाणो, लेय पुखोय गीत तंबोलो। णित अवंभ सणाणो, आभूपण पट्ट पम्माणो ॥ १५३ ॥

अर्थ—भोयण कहिये, भोजन। षड रस कहिये, षट् रस। पाणो कहिये, पान करवे योग्य जलादिक। लेय कहिये, लेप करने योग्य वस्तु। पुखोय कहिये, पुष्प। गीत कहिए, राग। तंबोलो कहिए, नागर पान। णित कहिए, नृत्य। अवंभ कहिये, कुशील। सणाणो कहिए, स्नान। आभूषण कहिए, गहना। पट्ट कहिए, वस्त्र। पम्माणो कहिए, इनका प्रमाण करना। इनका भावार्थ आगे कहेंगे।

गाथा—वाहण सज्जा आसण, सचित्त संज्ञाय सत्त दस णियमो। धम्मी सावय धारय, जाम दिण पक्ष मास वस्सादि ॥ १५४ ॥

अर्थ—वाहण कहिए, असवारी। सज्जा कहिए शैय्या,, सोनेका स्थान। आसण कहिए, बैठवेका स्थान। सचित्त कहिए, जीव सहित सो सचित्त। संज्ञान कहिए, वस्तु। सत्त दस णियमो कहिए, ए सत्तरह नियम हैं। जाम दिण पक्ष मास वस्सादि कहिए, पहर-दिन-पक्ष-मास-वर्षादि तक। धम्मी सावय धारय कहिए, धर्मी श्रावक धारण करैं। भावार्थ—भोजन, रस, पान, लेपन, फूल, ताम्बूल, गीत, नृत्य, अब्रह्म, स्नान, आभूषण, वस्त्र, वाहन, शैय्या, आसण, सचित्त, और वस्तु। इन सत्ररहका नियम करैं। इनका अर्थ—तहां गेहूं, चना, चांवल, मूंग, मोंठ, यव, ज्वार, आदि अन्नका प्रमाण। जो मैं एते अन्न खाऊंगा, बाकी अन्न तजे। ऐसे अन्न भोजनकी संख्या राखना सो भोजन प्रमाण है ॥ १ ॥ आज षट्रस विषैं एते रस खाऊंगा, सो अगार है। बाकीके तजे। ऐसे षट् रसनमें तैं, जो एक-दो-तीन-च्यारि आदि रसका प्रमाण करना। सो रस नियम है ॥ २ ॥ पान करवे योग्य जो जल, मही, दूध ईखरस, आदि वस्तुनका प्रमाण करना। जो एती वस्तु पान योग्य राखी सो अगार है सो खाऊंगा बाकी त्यागीं ऐसा प्रमाण करना, सो पान प्रमाण है ॥ ३ ॥ एती सुगंधी अगर, चंदन, अगरजा, तेल, फुलेल, इत्यादि इनका प्रमाण करना। जो एती खुशवोय राखी, बाकी तजी। तिनकी प्रतिज्ञा करनी सो लेप नियम है ॥ ४ ॥ अनेक जातिके फूलनमें तैं, फूलनकी संख्या राखनी;

जो आज ऐते फूल राखे, सो सूंघना। ढाकने, पहरने इत्यादिकका प्रमाण करना, सो फूल नियम है ॥ ५ ॥ जो ऐते ताम्बूल राखे। सो खावना, सो ताम्बूल नियम है ॥ ६ ॥ आज ऐती राग सुननी। षट् राग, छत्तीस रागनी, अरु तिनकी अनेक भार्ज्या हैं, तिनमेंतैं प्रमाण करे। सो राग सुनै, बाकी नाहीं सुनै। सो राग नियम है ॥ ७ ॥ अनेक जातिके नृत्य हैं। पातरा नृत्य, वेश्या नृत्य, देवांगना नृत्य, घर-स्त्रीनका नृत्य, भाण्ड नृत्य, भवैया नृत्य, नरकों नारी बनाय नृत्य, नारी नर-रूप धर नृत्य करे, इत्यादिक अनेक हैं। तिनमें तैं प्रमाण करना। जो एते नृत्य आज देखने, बाकीका त्याग है सो नृत्य नियम है ॥ ८ ॥ पर-स्त्रीका सर्वथा त्याग तो पहिलेही था, अरु स्व-स्त्रीमें संतोष सहित प्रमाण करना। जो आज एतीबार कुशील-सेवनका प्रमाण है। बाकीका त्याग है। ऐसा प्रमाण, सो कुशील नियम है ॥ ९ ॥ आज एती बार स्नान करूंगा, बाकी तज्या सो स्नान नियम है ॥ १० ॥ आज ऐते आभूषण राखे सो पहरने बाकीका त्याग। ऐसा प्रमाण करना सो आभूषण नियम है ॥ ११ ॥ ऐते वस्त्र राखे। एते सूतके एते रेशमी, एते रोमी। इत्यादिक वस्त्रका प्रमाण करना सो वस्त्र नियम है ॥ १२ ॥ हाथी रथ घोड़ा ऊंट बैल, रोज महिष, अंबाड़ी, मियाना, पालकी नालकी तखतरवां गाड़ी इत्यादिक अनेक असवारीके भेद हैं। तिनमें ते ऐते राखीं बाकी तजीं। ऐसे अनेक पुण्य-प्रमाणमें भी संतोष करि असवारीकी संख्या राखना सो वाहन नियम है ॥१३॥ सोवनेका स्थान महल पलंग बिछौना तकिया पिछौरा रजाई इत्यादिकका: प्रमाण करना सो शैय्या नियम है ॥ १४ ॥ बहुरि एती जायगा बैठना एती जगह जाना। ऐसा प्रमाण करना सो आसन प्रमाण है ॥ १५ ॥ आज एती सचित्त वस्तु खावना बाकीका त्याग सो सचित्त नियम है ॥ १६ ॥ आज एती वस्तु राखी सो लेना बाकीका त्याग है। ऐसी प्रतिज्ञा करनी, सो वस्तु नियम है ॥ १७ ॥ ऐसे ए सत्ररह नियम कहे। सो धर्मात्मा अव्रती श्रावक पर्यंतकूं करना योग्य है ॥ इनका प्रमाण होते इस जगत तैं उदासी धर्मात्मा श्रावकका चित्त विषय भोगन तैं विरक्त रहै है। तातैं प्रमाद नहीं बधने पावै। इनके विचार तैं स्यात-स्यात (घड़ी-घड़ी) में धर्मकी याद-गारी रहै है। अनर्थ–दण्ड पाप छूटै है। सो जे धर्मात्मा ब्रह्मचर्य व्रतका धारी इनकूं विचारे यादि करै सो

क्रिया-ब्रूह्म है ॥ इति सत्रह नियम ॥ आगे क्रिया-ब्रूह्म धर्मात्मा श्रावक ताके इक्कीस गुण कहिए है। तहां प्रथम नाम-प्रथम लज्जावान् होय। अगर निर्लज्ज होय तो देव गुरु धर्मकी मर्यादा लोप देय। कुल धर्म तजि कुधर्मका सेवन करै। बड़े गुरुजनकी अविनय रूप प्रबृत्ति करै। माता-पिताकूं खेदकारी होय। एते दोष भए धर्मका अभाव होय। तातैं धर्मका स्वभाव लज्जा है। तातैं धर्मी, लज्जा गुणका धारी है ॥ १ ॥ अदया, सर्व पापका बीज हैं। तातैं दयावन्त होय, निर्दयी नहीं होय ॥ २ ॥ तीब्र कषाई होय, तौ लोकमें निन्दा पावै। धर्म-कल्पबृक्ष विनशि जाय। तातैं शांत स्वभावी होय, क्रोधादि कषाय-जाकें नहीं होय ॥ ३ ॥ केवली सर्वज्ञ-भाषित धर्मका श्रद्धान सहित, जिन धर्मका उपदेशक होय। स्वेच्छाचारी, मिथ्या-धर्मका उपदेशक नहीं होय ॥ ४ ॥ पर-दोषनका ढांकनहारा होय। अपने औगुणका प्रगट करनहारा होय ॥ ५ ॥ परोपकारी होय। पर-द्वेषी नहीं होय ॥ ६ ॥ सौम्य-मूर्ति होय। जाके देखे प्रीति उपजै। भयानीक आकार नहीं होय ॥ ७ ॥ गुण-ग्राही होय। औगुण-ग्राही नहीं होय ॥ ८ ॥ मार्दव धर्मका धारी, यथायोग्य विनयकूं लिये होय ॥ ९ ॥ सर्व जीवनकूं, आप समान मानै। सर्व तैं मैत्री-भाव लिये होय। द्वेष-भाव रूप काहू तैं नहीं होय ॥ १० ॥ न्यायपक्षका धारी होय। अन्याय पक्षका पोखता नहीं होय ॥ ११ ॥ मिष्ट मधुर स्वरका भाषणहारा होय। कठोर वचनी नहीं होय ॥ १२ ॥ गंभीर स्वभाव सहित, दीर्घ विचारी होय। बालकवत् सामान्य विचारी नहीं होय ॥ १३ ॥ विशेष ज्ञानी होय। कोई कुवादीनकी खोटी नय-युक्ति तैं नहीं डिगै। आप अनेक सद्युक्ति सद्दृष्टान्त सच्चे शास्त्र-न्याय तैं बताय, कुवादीनका खण्डनहारा, भला ज्ञानी होय ॥ १४ ॥ सर्वकौं सुखी देख सुख पावनहारा। सज्जन स्वभावी होय। दुर्जन अदेखा नहीं होय ॥ १५ ॥ दया धर्म अङ्गका धारी, दान-पूजादि गुण सहित धर्मात्मा होय। पापी नहीं होय ॥ १६ ॥ भली बुद्धिका धारी होय। कुबुद्धि धारी नहीं होय ॥ १७ ॥ योग्यायोग्यका जाननहारा होय, मूर्ख नहीं होय ॥१८॥ दीनता उद्धता रहित, मध्यम—स्वभावी होय ॥ १९ ॥ सहज ही विनयवान् होय अविनयी नहीं होय ॥ २० ॥ पापारम्भ क्रिया तैं रहित, शुभाचारी होय ॥ २१ ॥ ऐसे कहे गुण सहित होय, सो क्रिया ब्रूह्म जानना। इति इक्कीस क्रिया ब्रूह्मके गुण ॥ आगे

क्रिया ब्रह्मके भेद, पर मतमें भी कहे हैं, सो कहिए हैं। जो ये गुण होंय सो क्रिया ब्रह्म है। ताकी क्रिया कहैं हैं। सो ही कहिये है—"उक्त च मार्कण्डेयजी कृत सुमिति शास्त्र"—जे उत्तम ब्राह्मण होंय, सो एती क्रिया करैं। सो वताईये है। जहां अनछान्या पानी पीवै, तो मदिरा समान दोष होय। अनगाले जलमें स्नान करै, तो काया अशुचि होय। अनगाले जलमें रसोई करै, तो सात भव जलचर जीव होय। तातें उत्तम द्विजकों अनगाल्ये जलतैं क्रिया करना मना हैं। ऐसा जानना। आगे व्यास वचन महाभारतसे सातवें खण्डमें कह्या है। ब्राह्मणकूं शीलव्रतही शृङ्गार है। शील विना पूजा जप तप सर्व नष्टकारी हैं। फलदाता नाहीं। तातें उत्तम गुणका लोभी शील सहित रहै है। और ब्राह्मण, दया पाल करि गमन करै है। आप समान सर्व जीवन कौं जानि तिनकी रक्षा करवे निमित्त नीची दृष्टि किये चलै। जो कीड़ी कुंथुवादि अपनी दृष्टिमें आवैं तो बचावता धरती देखता या विधिसूं गमन करै। बिना देखै पांव नहीं धरै। भोगी जीवनके सोवनेका स्थान जो पलंग तापै नहीं सोवै। भूमि पै सोवै। और जातैं राग भाव वधै, काम वधै, ऐसा वस्त्र नहीं राखै। राग रहित वैराग्यकों कारण ऐसा वस्त्र पहिरै। शरीरकूं चन्दन अरगजा तैल फुलेल इतरादिक सुगंधित वस्तु नहीं लगावै ताम्बूल पान नहीं खाय। और संसारके मोही प्रमादी कुशीलवान् जीव तिनकी सी नाईं निशंक होय निद्रा नहीं करै। कामी पुरुषकी नाईं विषयनमें मोहित नहीं होय। भोगाभिलाषी कामी पुरुष तिनके मुखसूं स्त्रींनकी कथा राग भाव सहित नहीं सुनै। अपने मुख तैं काम कथा स्त्रीनके गुण रूप भोगकी कथा नहीं कहै। क्रोध मान माया लोभ तजिवेका उपदेश औरनकूं देय। अपने तन पै शृङ्गार नहीं करै। हस्ती घोटक पालकी रथादि बाहन पै नहीं चढ़ै। दयाके हेतु पांव प्यादा धरती शोधता चलै। दन्त नहीं धोवै। इत्यादिक अपना ब्रह्मपद जो ब्रह्मचर्य ताकी रक्षा करता भली क्रिया करै। प्रभात व शाम दो वखत, संध्या नहीं चूकै। इन क्रियान सहित होय सो ब्रह्म सत्पुरुष करि सुश्रूषा योग्य होय है। ए लक्षण क्रिया ब्रह्मके कहे। और इन क्रिया रहित होय सो क्रिया ब्रह्म नाहीं। जो कुशील भाव क्रोध मान माया लोभकूं लिये अहंकार ममकार सहित होय सो शीलवान् करि सुश्रूषा नहीं पावै। दोष सहित है। ए गुण जामें नहीं होंय सो कुल ब्राह्मण

है क्रिया ब्रह्म नाहीं ऐसा जानना। इति व्यास वचन॥ आगे मार्कण्डेय कृत सुमति शास्त्र तामैं ऐसा कह्या है। कि जो दिनके प्रथम पहरमें भोजन करै सो देव भोजन है। दूसरे पहरमें भोजन करै सो ऋषीश्वरका भोजन है। तीसरे पहरमें भोजन करै सो पितृनका भोजन करै।चौथे पहरमें भोजन करै सो दैत्यनका भोजन करै। तातें दिनका अष्टम भाग च्यारि घड़ी बाकी रहै। जब सूर्यकी कांति मंद होय। तब तैं उत्तम आचारी ब्रह्मचर्यका धारी भोजन नहीं करै। अरु कदाचित् करै तो अपने ब्रह्मचर्य पदकूं दूषित करै। ऐसा जानना। आगे शिव पुराणमैं कह्या है। जो उत्तम ब्रह्मव्रती एती वस्तु नहीं खाय। बैंगन गाजर मूली आदी सूरन मधु मद्य मांस इत्यादि अभक्ष्य वस्तु नहीं खावै। ब्रह्मव्रत धारी उत्तम जीव नहीं खाय और कदाचित् लोभ धारि के खाय तौ जो बारह वर्ष दान पूजा जप तप किये तिनका फल मिटि जाय। तातें ब्रह्म भक्त एती वस्तु नहीं खांय आगे और पुराणनमें भी कह्या है। जो कृष्ण महाराज, युधिष्ठिरजो सूं कहैं हैं। भो युधिष्ठिर! मेरा भक्त होयके ब्रह्मव्रती कंद—मूल खाय। तो दया पूजा दान, इन्द्रिय—मनका जीतना, ये सर्व क्रिया बिफल होय। तातें मेरे भक्त कौं कन्द—मूल तजना योग्य है। और काश्यप मुनिके वचन हैं। जो ब्रह्मभक्त पूजा करै तौ तब सुफल है। जब कन्द—मूल नहीं खाय। याके खाये से सर्व क्रिया नष्ट होय। और शिव-पुराण में कह्या है। जो दया समान दूसरा तीर्थ नाहीं। दया भाव है, सो ही एक भला तीर्थ है दया बिना तीर्थफल नाहीं ऐसे कहे जो अनेक धर्म अंग सो इनकूं पालै। वही उत्तम धर्मका धारी क्रियाब्रह्म है। इति क्रियाब्रह्म। आगे कुलब्रह्म के दशभेद अन्यमत संबन्धी कहे हैं सो ही बताईये है—

काव्य—सुरो मुनीश्वरो विप्रो, वैश्यः क्षत्रिय शूद्रको। विजातिपशुमातंग,—म्लेच्छाश्च दश जातयः॥

अर्थ—देव जाति, मुनि जाति, विप्र जाति, वैश्य जाति, क्षत्रिय जाति, शूद्र जाति, विजाति, पशु जाति, म्लेच्छ जाति, मातंग जाति ये दश भेद व्यास भाषित मत्स्यपुराण अनुसार हैं। इनका अर्थ—जहां तत्त्व-ज्ञान विषैं प्रवीण होय। अपने आत्म कल्याणका अर्थी होय। निर्हिंसक क्रिया का करनहारा होय। बहु आरंभ—परिग्रह का त्यागी संतोषी होय। त्रिकाल संध्या की क्रिया में सावधान होय। आपा—परके ज्ञान

का धारी होय। आरम्भ—तत्त्ववेत्ता होय। इत्यादिक गुण सहित होय सो देव जातिका ब्राह्मण है ॥ १ ॥ और जो उत्तम तीन कुलका भोजन करनहारा होय। नगर का वास तजि बनका निवासी होय। तीनकाल आत्मध्यान में प्रवर्तनहारा होय। इत्यादिक गुणसहित होय सो ऋषीश्वर जातिका ब्राह्मण है ॥ २ ॥ और अनेक प्राशुक सुगंध द्रव्य मिलाय, अग्निमें खेवै-होमै। अग्नि कबहूं बुझने नहीं देय। होम-क्रियामें सावधान होय। दयारूप धर्म जानता होय। देवगुरु पूजामें विनयवान होय। अपने भोजनमें तैं अथिति कौं देय, ऐसे अतिथि व्रतका धारी होय। गृहस्थके षट् कर्म-क्रियामें सावधान होय। ऐसे गुणसहित जो होय, सो विप्र जातिका ब्राह्मण है ॥ ३ ॥ और जे हस्ती, घोटक, रथादिककी असवारी विषैं प्रवीण होय। युद्ध करवैं को जाकैं चाह होय। युद्ध को अनेक-कला तीर, गोली खड्ग पटा सेल्ह, धूप, बांकि, खंजर, छुरी, कटारी इत्यादिक शस्त्र-कलामें सावधान होय। लड़नेमें मरने कूं नहीं डरता होय। मनका शूरवीर होय। बड़े आरंभ, राज्य-संपदाका भोगी होय। जो इन गुणन सहित होय सो क्षत्रिय जातिका ब्राह्मण है ॥ ४ ॥ ब्राह्मणके कुलमें तो उपज्या होय अरु खेती करता होय। गाय महिष बृषभादि पशूनके पालबेकी कलामें प्रवीण होय। आचार रहित खान पानका करनहारा होय। इन लक्षण सहित होय सो शूद्र जातिका ब्राह्मण है ॥ ५ ॥ ब्राह्मणके कुलमें उपज्या होय अरु इन वाणिज्य व्यापारकी चतुराई जानता होय। वस्त्र परीक्षा सोना चांदीकी परीक्षा जानता होय। रुपया मुहुर रत्नकी परीक्षा जानता होय। अन्नादिक लेन देन में सावधान होय। अनेक लेखे करवेकी जो कला व्याज फैलाना आदि ज्ञान सहित आजीविका करता होय सो वैश्य जातिका ब्राह्मण है ॥ ६ ॥ ब्राह्मण कुलमें तो अवतार लिया होय अरु पराई निंदा करनहारा होय। पर दोषका देखनहारा होय। अनेक पर स्त्रीका भोगनहारा पशु समान कुशीलवान् होय। पंचेन्द्रिय विषयमें लोलुपी होय। अपना यश, अपने मुख तैं करता होय। अपनी संतोष-वृत्ति कं तज, द्रव्यके लोभ कूं अनेक स्वांग धरि, छल-बल करि, धन पैदा करता होय। अनेक गावना बजावना, नृत्य करनादि कलाकर आजीविका करता होय। अनेक यंत्र, मंत्र, तंत्रादिके चमत्कार लोगन कूं दिखाय, अपने कुटुम्बका पालन

करता होय। इन लक्षण सहित होय। ताकूं विजाति ब्राह्मण कहिये ॥७॥ ब्राह्मणके कुलमें तो अवतार लिया होय, अरु खावे योग्य वस्तु अरु ऊंच कुली मनुष्यके नहीं खावे योग्य वस्तु विषैं, विचार रहित होय। क्रोध वचन, गाली वचन श्राप वचन कुफर जो भराड वचन इत्यादिक दुर्वचन; पर पीड़ाकारी, पापमई, बोलनेका स्वभाव होय। भली-क्रिया रहित होय। महा प्रमादी, बहुत सोवनेका स्वभाव होय। इत्यादिक लक्षण जामें होंय, सो पशु जातिका ब्राह्मण है ॥ ८ ॥ ब्राह्मण कुलमें तो अवतार धर्या होय; अरु नदी, तालाब, बावड़ीन की क्रीड़ा-तैरना-कूदना, ताकूं भला लागता होय। मद्य-मांस भक्षण करता होय। बहुत हिंसा करनहारा होय। दयाधर्म शुभाचार रहित होय। इत्यादिक लक्षण जामें होंय सो म्लेच्छ जातिका ब्राह्मण है ॥ ९ ॥ और महा हिंसाका करनहारा होय। मनुष्य-पशूके मारवेकूं निर्दयी होय। भली-भली द्विज योग्य क्रिया, तिनकरि रहित होय। हिताहित विचार करि, रहित होय। पूजा, दान, जप, तप, आदि धर्म-क्रिया करि शून्य होय। पाप परणति सहित होय। इन आदि लक्षण सहित, सो मातंग जातिका ब्राह्मण है ॥ १० ॥ ऐसे ब्राह्मणके दश भेद कहे सो आचारके योग तैं कहे। परन्तु ब्राह्मणके कुलमें उपज्या है, सो जिस कुलमें उपज्या होय, सो ही नाम कहना सो क्रिया चाहे जैसी करो। ब्राह्मणमें उपज्या, ताकौं ब्राह्मण कहना सो कुल-ब्रह्म है। या प्रकार स्वभाव-ब्रह्म, क्रिया ब्रह्म, त्याग ब्रह्म, कुल ब्रह्म ये च्यारि ब्रह्मके भेद कहे। सो सातवीं प्रतिमा धारी, च्यारि कुलका उपज्या धर्मात्मा श्रावक, सर्व स्त्रीका त्यागी, सौम्य मूर्ति, ये सातवीं प्रतिमा धारै। सो ये त्याग-ब्रह्म जानना ॥

इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, श्रावक भेद रूप एकादश प्रतिमा विषैं, सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमाके भेद; शील महिमा, भोजनके सात अंतराय, सत्रह नियम, श्रावकके इक्कीस गुण, अन्य-मत संबंधी केतीक, सीख सहित क्रिया-ब्रह्म भेद, दश-भेद कुलब्रह्म, कथन वर्णनो नाम सैंतीसवां पर्व सम्पूर्णम् ॥ ३७ ॥

आगे अष्टमी प्रतिमाका कथन लिखिये है। तहां अष्टमी प्रतिमा, आरंभत्याग है। सो कोई भव्य, जब अष्टमी प्रतिमा धारै। तब पापारंभ तैं उदास होय, वह मोक्षाभिलाषी ऐसा विचारै। जो इस संसारमें, गृहा- ५७९

रंभके पाप तैं मोहके वशीभूत भया यह आत्मा, नरक-दुखमें अपनी आत्मा डुबोवै है। और जिनतैं मोहवुद्धि करि, पाप-भार शिर पै धरै है। सो पाप फल आये, इन मोहीनका नाम भी नहीं दीखेगा। द्रव्य खाय-खाय, सर्व अपने-अपने मारग लागैंगे। अरु तिन पापनका फल, मोकौं ही भोगना पड़ेगा। जैसे एक चोरके घरमें आप, माता, पिता, स्त्री, पुत्र ये पांच आदमी थे। ये पांचों कौं ही पाप-फल तैं भूखों मरते, अन्न विना तीन दिन भये। तव पुत्र ने रुदिन करि कह्या। हे पिता! अव हम सव घर-जन अन्न विना मरैं हैं। भोजन विना तीन दिवस भये, सो दुखी हैं। तातैं अन्न लाय देव। तव चोर ने कही। हे पुत्र! वहुत फिरौं हों, परन्तु पाप-उदय तैं, कछू मिलता नाहीं। अव तुम धीरज धरो, मैं और जाऊं हूं। सो ये चोर कुटुम्वके मोह तैं चोरी कौं गया। एक घरमें खीर होय थी सो इस चोर ने अपनो चतुरता तैं, खीरका वासन चुरा लिया। सो ल्याय घरमें आया। कुटुम्वके आगे धरी सो पांच थालियोंमें पांचों ने परोसी। तव सव ने कही भोजन तो भला ल्याया। परन्तु मिष्टान्न होता तौ भला था। तव चोर-कला-वारे ने कही। तुमने कहा है तौ मैं मिष्टान्न भी ल्याऊं हूं। तव यह चोर तौ मिष्टान्न कौं गया। सो वड़ो देर लागी। सो इनको थिरता नहीं रही। सो अपनी-अपनी थालीकी खीर भूखके मारे खाय गये। वाकी जो चोर गया था सो ताका थाल ढांक रख्या। सो एतेमें एक मिजवान आया सो चोरी वारेका खीरका थाल मिजवानके आगे धख्या। सो मिजवान ने खाया। तव वह चोर किसीका मिष्टान्न चुराके आया सो देखे तो खीर नहीं। घर वारों कौं पूछी तव उन्होंने कही मिजवान आया ताने खाई। ये चोर तीन दिनका भूखा दुखी है। एतेमें खीर अरु मिष्टन्नकी खोज करते कोतवाल चोर कूं हेरते आए सो कोतवाल ने इस चोर कूं पकड़्या। सो घर-जन अरु मिजवान खीर खावनहारे सर्व भाग गये। या चोरकी मुसकैं वँधीं। सो नाना प्रकारकी मार चोर ने भोगी महा दुखी भया। तैसे ही कुटुम्वके निमित्त पापारंभ करौं हौं सो चोरकी नांईं मोकूं दुख भोगना पड़ेगा। ए कुटुम्ब दुखके आए सर्व जाते रहेंगे। ऐसे ए शिव-सुखका अभिलाषी संसार-भोगन तैं उदास, ऐसा विचारै। कुटुम्ब तैं अरु गृहारंभ तैं ममत्व छांड़ि, पीछे घरमें अपने पुत्रादिक कूं विवेकी देख

जो यह घर-भार चलायवे कूं समर्थ, ताहि बुलाय कैं, प्रथम तौ ताकौं हित-मित हितोपदेश देय, संतोषित करै। पीछे अपने चित्तका-रहस्य बताय, ताकौं कहै। हे भव्य ! अबलौं तो घर-भार हमने चलाया। अब तोकौं सपूत, सज्जन-अंगी, विवेकी, विनयवान् देख, बड़ा हर्ष भया। हमारी गृह-पालनकी चिन्ता गई। सो हे धर्मी ! अब तुम इस कुटुम्बकी रक्षा करौ। न्याय पूर्वक धनोपार्जन करौ। धर्म सेवन कर, पर-भव सुधारो। ऐसा कहि, पीछे सर्व जाति, कुटुम्ब, पंचन कूं बुलाय, विनय सहित हित-मित वचन कहै। कि हे पंच हो ! अब तांईं हमने, कुटुम्बके संग तैं आरंभ किया। अब हमारा मनोरथ, परभव सुखके निमित्त, आरंभ रहित धर्म-सेवनका है। तुम सर्व भाईयनके सहाय तैं, यह भव सुधर्या। तुम्हारा दिया धन-यश पाया। अब इस गृहका भार, इस पुत्र कौं सौंप्या है सो अब तुम, याकी प्रतिपालना करो। जैसे सर्व भाई, मोतैं धर्म स्नेह करि, मेरी प्रतिपालना करी। तैसे ही याकी करौ। जैसे प्रयोजन पाय, मोसे आज्ञा करौ थे। तैसे इस पर करोगे। जैसे मो-भूले कूं क्षमा भाव करि शिक्षा देय थे तैंसे याकूं शिक्षा देय, प्रवीण करोगे। तातैं अब मैं तुम सर्व भाईयन तैं ऐसी विन्ती करौं हौं। जो अब तांईं आरंभ-प्रारंभ विषैं मोपै कृपा करि, मोकौं यादि करकैं मेरा नाम लेय नेवता-बुलावा भेजो थे सो अब पंचायती व विवाहादिकके आरंभ विषै याकौं याद करि याके नाम न्योता-बुलावा भेजोगे। अब मैं गृह आरंभ तैं तुम सर्व भाईयनकी साक्षी तैं न्यारा हौं। इत्यादिक सर्व पंचन तैं शुभवचन कहै। तव सर्व पंच इनकी धीरता देख बहुत प्रसंशा कर, इनका कह्या करैं। तिस ही दिन तैं आप पापारंभका त्यागी भया। पापारंभ तैं न्यारा होय घर विषैं तिष्ठता धर्म-साधन करै। घर हीमें स्तुति करना पूजा दान ध्यानसंयम करता;काल गुमावै। भोजन समय घर-जन बुलावैं तब भोजन कौं जाय। अरु अपने पदस्थ-प्रमाण परिग्रह अल्प राखै। सो आरंभ त्यागी आठवीं प्रतिमाका धारी है। इति आठवीं प्रतिमा ॥ ८ ॥ आगे नववीं प्रतिमाका स्वरूप कहिये है। अब नववीं परिग्रह-त्याग प्रतिमा विषैं सर्व परिग्रह-आरंभके ममत्वका त्यागी होय। आगे अष्टम प्रतिमामें अल्प परिग्रहका त्यागी नहीं था। सामान्य परिग्रह था। सो अब सर्व परिग्रह त्याग कर एकान्त स्थान विषैं धर्मध्यान सेवन करै। प्रथम दिन कोई नेवता

दे जाय ताके घर भोजन करै। अपना घर तथा पराया घर एकसा देखैं। पाद्य पक्षेवरी राखै न्यौता जीमें। सो महा सौम्य मूर्ति धारी दयाधर्मपालक है। ऐसे गुण नववीं प्रतिमा धारकके जानना। इति नववीं परिग्रह त्याग प्रतिमा ॥ ६ ॥ आगे दशवीं प्रतिमाका स्वरूप कहिये है। अब अनुमति जो उपदेश सो दशवीं प्रतिमा का धारी पापारंभके उपदेशका त्यागी है सो भोजल-मात्र भी कहके नहीं करै। यह न्यौता नहीं मानै। भोजन समय कोई बुलाय ले जाय तौ भोजन करै। न्यौता नहीं जाय। बिना न्यौता जीमें सो अनुमति त्यागी है। इति दशवीं प्रतिमा ॥ १० ॥ आगे ग्यारहवीं प्रतिमाके धारी श्रावक तिनके दोय भेद हैं। एक छुल्लक दूसरा ऐलक। तहां कटि-बंधन अरु लँगोटमात्र परिग्रह राखनेहारा बनो-विहारी उदंड (अनुदिष्ट) आहार करै। अरु धरती बिछायवे कूं आसमान ओढ़वे कूं महा दयालु मुनि समान चित्तका धारी; नग्न बिना इक्कीस परिषहका जीतनहारा निर्मल आचारी कमण्डल पीछीका राखनहारा यती समान व्रत का धारी मुनि पदका अभिलाषी इस धर्मात्मा कूं कोई सूक्ष्म जातिका अंश लिये शङ्का-रूप परणति है। सूक्ष्म अंश काम विकारके मन, बचन, कायमें, कोई जातिके भंगा लिये हैं। जो केवली गम्य हैं। आपकौं भासै हैं, तातें ये नगन-मुद्रा नहीं धारै। ये सूक्ष्म काम विकार गये, यती पद लेवेके योग्य होयगा। ऐसा श्रावक, सो ऐलक श्रावक है सो यह ऐलक श्रावकका पद, तीन कुलके उपजे भव्यात्माकूं होय है। शूद्रकूं नाहीं होय है ॥ १ ॥ छुल्लक पद है सो नीच कुल, तथा ऊंच कुल दोऊ जातिकं होय है। सो छुल्लकके पास, कछू कपड़ा मात्र परिग्रह होय। एक दुपट्टा, एक शिर पै फैंटा राखै। सो नहीं तौ बहुत बारीक-मुलायम, तातैं सराग भाव होंय। अरु नहीं बहुत दृढ़, तिनमें जीव पड़ैं। मलीन भये रंक सा दीखै, ऐसे भी नाहीं। मध्यम भाव धरैं, राग रहित, ऐसे वस्त्र राखै सो जे शूद्र जातिके छुल्लक होंय। सो शूद्रके दोय भेद हैं। एक स्पर्श शूद्र, दूसरा अस्पर्श शूद्र। तहां धोबी, नाई, बढ़ई, दर्जी इत्यादिक जिनके छूये लोकमें ग्लानि नाहीं सो स्पर्स शूद्र है ॥ १ ॥ जहां भंगी, चाण्डाल, चमार, कोली इन आदिक जिनकूं छूये लौकिकमें ग्लानि होय, स्नान किये शुद्ध होंय। सो अस्पर्श शूद्र हैं ॥ २ ॥ सो इन दोऊनमें तैं, स्पर्श-शूद्रकौं तो छुल्लक

ब्रत होय, और अस्पर्श शूद्रकूं ब्रत नाहीं होय। सम्यग्दर्शनादिक गुण होय हैं सो तहां तीन ऊंच कुलका छुल्लक श्रावक तौ भोजनकौं जाय, सो गृहस्थके चौकेमें ही भोजन करै। और शूद्र जातिका छुल्लक है, सो गृहस्थके भोजन स्थानमें नहीं जाय। क्योंकि याका कुल, हीन है तातैं ये धर्मात्मा, संसारसे उदासीन, ब्रतका धारी, धर्म-मर्यादाका जाननहारा, पुण्य-फलका लोभी, परभवके सुधारवेकी है अभिलाषा जाकैं, परम्पराय मोक्षका इच्छुक जन्म-मरण तैं भय भीत भया है चित्त जाका ऐसा सौम्य स्वभावी- धर्म मूर्ति, मार्दव-धर्मका साधनेहारा यह नीच कुली श्रावक अपना नीच कुल प्रगट करवेकूं, एक लोहेका पात्र भोजन करवेकूं, अपने पास राखै। जब कोई धर्मात्मा श्रावक इस छुल्लककौं भोजन निमित्त अपने घर ल्यावै। तब यह शूद्र कुली धर्मात्मा याके संग तहां तांई जाय जहां तांई काहूका अटक नहीं होय। पीछे चौकमें खड़ा होय रहै। तब श्रावक इनकूं उत्तम जानि आगे बुलावै। तव यह धर्मी चौकमें ही तिष्ठै, अरु लोहका पात्र दिखावै। तब लोहके पात्रकूं देख कैं दाता जानै, जो यह शूद्र जाति है। तातैं यह धर्मात्मा ऊंचे नहीं आया तब दाता श्रावक, इस छुल्लककूं भले आदर तैं, विनय सहित, अनुमोदना करता, हर्ष सहित भोजन देय। सो उस बाखर (घर) में च्यार, दो, एक घर श्रावकनके होंय, तौ थोड़ा-थोड़ा सर्व घर तैं भोजन लेय। नाहीं होंय तौ दोय घरका एक घरका भोजन करै। अपना कुल छिपावै नाहीं। यह उत्तम ब्रतका धारी श्रावक है। ऐसे ऊंच कुल तथा स्पर्श नीच कुल दोय ही कुलमें यह श्रावक पद होय है॥ २॥ और ऐलक पद ऊंच कुलीकूं ही होय है। यह उत्कृष्ट श्रावक पद है। ऐसे सातवीं प्रतिमा तैं लगाय ग्यारहवीं पर्यन्त भेद कहे। सो ए त्याग ब्रह्मके भेद जानना। जैसा-जैसा त्याग, जिस-जिस स्थान पै भया, सो-सो नाम पाया। सो श्रावकके उत्कृष्ट त्यागकी हद, ऐलक गँगोट-मात्र परिग्रह धारी की है। याके आगे श्रावक भेद नाहीं। इसके पीछे मुनिका ही पद है। तातें सातवीं प्रतिमा तैं लगाय ग्यारहवीं प्रतिमा पर्यंत श्रावककौं ब्रह्मचर्य पदवी है। पीछे लँगोटी-परिग्रह परिहार भये, यतीका पद होय है। तातैं भरत-क्षेत्रका इन्द्र, भरतनाथ, आदिनाथका बड़ा पुत्र, भरत चक्री, महा धर्मात्मा, ताने परम्पराय धर्म-मर्याद चलायवेकूं स्थापे ऐसे ब्रह्म भेद, सो कुल ब्रह्म-

कहिये । या अवसर्पिणीकालके आदि, नव कोड़ा-कोड़ी सागर काल पर्यन्त तौ भोग-भूमि वर्ती । तहां वर्ण भेद नाहीं, सर्व एकसे । पीछे चौदहवें कुलकर नाभिराजा भये । तिनके कुल-मण्डन, श्री आदिनाथ पुत्र भये, सो इनने सर्व कर्म-भूमिका उपदेश दिया । क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, तीन, वर्ण स्थाप संसारी-मार्ग बताया । अरु इनके पुत्र भरतने, धर्मकी प्रवृर्त्ति चलावेकूं, ब्राह्मण-कुल थाप्या । सो च्यारि वर्ण जानना । अब काल-दोष तैं, सर्व कुलनका आचार हीन भया । तातें ब्रह्म-क्रिया दयाबिना भई । जीव अनेक क्रिया रूप भये । परन्तु कुल भेद नहीं गया । अनेक प्रकार आचार होय, तौ भी कुल-ब्रह्म कह्या सो जगमें प्रगट ही है ॥ १ ॥ कुल तौ कैसाही होय अरु क्रिया आचार जाका दया सहित उत्तम शीलादिक गुण सहित होय । सो क्रिया ब्रह्म कहिये ॥ २ ॥ स्त्री आदि परिग्रहका त्यागी होय सो त्याग ब्रह्म कहिये ॥ ३ ॥ चैतन्य गुण सहित, अमूर्ति, जीव पदार्थ, सो स्वभाव ब्रह्म है ॥ ४ ॥ ये च्यारि भेद, ब्रह्मके कहे । सो विवेकी उत्तम पुरुषनकूं सबका रहस्य धारण करना योग्य है ।

इति श्री सुदृष्टितरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये अष्टमी प्रतिमातैं लगाय ग्यारहवीं प्रतिमा पर्यन्त, कथन वर्णनो नाम, अड़तीसवां पर्व सम्पूर्णम् ॥ ३८ ॥

ऐसे यह श्रावक-धर्म कह्या । और मुनि धर्मके अष्टाविंशति (२८) मूल गुण हैं । ताका स्वरूप कह आये सो यह मुनि-श्रावकका धर्म, परम्पराय मोक्ष फल प्रगट करे है । याका तुरंत फल तौ देव-लोककी विभूति सहित नाना-प्रकार इन्द्रिय-जनित भोग हैं । जाकों जेता काल संसारमें रहना होय; सो जीव श्रावक धर्म तैं मनुष्य-देवके सुख पावै । पीछे भव-स्थिति पूर्ण भये, मुनि-धर्मका साधन कर, मोक्ष पद पावै है । तातें जो कोई भव्यकूं, इन्द्रिय सुखका लोभ होय सो इस श्रावक धर्मका साधन करौ और जे भव्य निकट संसारी अतीन्द्रिय सुख चाहें सो मुनि-धर्म आदरौ । ऐसा यह मुनि-श्रावकका धर्म भव्य जीवनकूं सदा-काल, मङ्गलकारी होऊ । यह सुदृष्टितरंगणी नाम ग्रन्थ है । सो या विषैं प्रथम तो गेय-हेय-उपादेयका कथन है सो विवेकी अपना हित जानि, हेय-गेय-उपादेय करौ केताक कथन या विषैं, विवेककी वृद्धिके निमित्त उपदेश रूप है । ताके रहस्यकौं जानि, धर्मात्मा अपना कल्याण करौ । अब यहां इस ग्रन्थका करता जैन-शास्त्रके

अर्थकूं अगाधि जानि, अपनी बुद्धि सामान्यता रूप, जानता भया। जो यह जिन-बचनका अर्थ तो, अपार है, याके सम्पूर्ण व्याख्यान करवेकौं, गणधर देव भी समर्थ नाहीं। तो हमसे किंचित् बुद्धि-धनके धारीन तैं, सर्व अर्थ कैसे कह्या जाय ? ऐसा जानि, इस ग्रन्थके पूरण करवेको है अभिलाषा जाकैं। सो अन्तमें मङ्गल होनेके निमित्त, महान् पुरुषनके नाम, जिनके कुल-सुमरण होवे करि, मंगल होय है। सो ऐसे तीर्थंकरादि त्रेसठ शलाका पुरुषके नाम, पुण्यके कारण हैं। तातैं यहां प्रथम चौबीस तीर्थंकर, तिनके नाम कहिये हैं—ऋषभनाथ, अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दननाथ,सुमतिनाथ, पद्मनाथ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थनाथ, अरहनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाम, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, और महावीर स्वामी ये चौबीस तीर्थंकर-जिन, अवसर्पिणी कालके तीर्थ हैं॥ आगे चौबीस-जिनके पिताके नाम-नाभिराजा, जितशत्रु जयतार सुवीर, मेघ, धरण सुप्रतिष्ठित, महासेन, सुग्रीव दृढ़रथ विमल वासुदेव जयति धम सिद्धसेन, भानु विश्वसेन, सूर्य, सुन्दरसेन, कुंभ, यशोमति, विजयरथ समुद्रविजय अश्वसेन, और सिद्धारथ राजा। ये चौबीस, प्रजाके, प्रतिपालक, महान् राजेन्द्र भये। सो तीर्थंकर रूपी दिनकर (सूर्य) के उदय करवेकौं उदयाचल पर्वत समान जानना। इति जिन पिता। अब जिन माताका, नाम-मरुदेवी, विजयादेवी, श्रीषेणादेवी, सिद्धार्थादेवी, मंगलादेवी, सुसीमादेवी, पृथ्वीदेवी, सुलक्षणादेवी रामीदेवी सुनन्दादेवी विमलादेवी जयादेवी रामादेवी, सूर्यादेवी, सुव्रतदेवी एलादेवी श्रीमतीदेवी, सुमित्रादेवी, सरस्वतीदेवी, वामादेवी, विमलादेवी, शिवादेवी, वामादेवी, और त्रिशलादेवी, ये चौबीस महादेवी, परम-पवित्र जगत गुरुकी माता सो जगतकी माता, पर सती भगवान् रूपी सूर्यके जन्म देवेकूं पूरव दिशा समान, तिनके नाम भव्यनकौं मंगल करौ। ये माता, जगतपति भगवान् रूपी रत्नके उपजायवेकूं, रतन-खानि हैं। ये चौबीस जिनकी माताके नामकी माला कही॥ आगे चौबीस जिनकी कायकी ऊंचाई कहिने हैं। पांचसौ धनुष, साढ़े चार सौ, चार सौ, साढ़े तीन सौ, तीन सौ, ढ़ाई सौ, दोय सौ, डेढ़ सौ, एक सौ, नव्वै, अस्सी, सत्तरि, साठ, पचास, पैंतालीस, चालीस, पैंतीस, तीस, पच्चीस, बीस पन्द्रह दश नव

हाथ और सात हाथ ये चौबीस जिनके शरीरकी उंचाई अनुक्रम तैं कही ॥ अब चौबीस-जिनके प्रतिबिंब पहिचानवेंकौं चिन्ह कहिये हैं—आदिनाथका बैलका चिन्ह। और जिनोंका अनुक्रम तैं कहिये हैं—हस्ती घोटक कपि [बन्दर), कोक (चकवा) लाल कमल, सांथिया, चन्द्रमा, मगर, कल्प वृक्ष, गैंडा महिष सूकर सेही, वज्रदण्ड, हिरण बकरा मछलो, स्वण कलश, कछवा कनक कमल, शङ्ख, सर्प और सिंह। ये चौबीस जिनके चिन्ह कहे। सो एक हजार आठ चिन्ह, सर्व शरीर अंगोपांगमें यथा-योग्य स्थानपर होय हैं। अरु ए चिन्ह जो प्रतिबिम्बके सिंहासनमें लिखिए हैं। सो भगवान्के दाहने चरण विषैं जानना। जैसे आदिदेवके चरणमें वृषभका चिन्ह है। तैसे ही सर्व जिनके पांवनमें जानना। इति जिन-चिन्ह ॥ आगे चौबीस जिनके शरीरका वर्ण कहिए है। तहां चन्द्रप्रभु अरु पुष्पदन्त ए दोय जिन, शुक्ल वर्ण भए। अरु मुनिसुव्रत स्वामी, अंजन-गिरि समान श्याम वर्ण है। नेमिनाथ जिन मोर कंठ समान हरित तन धारी हैं। और पद्मप्रभु, रक्त कमल समान तन धारी हैं। और बारहवें वासुपूज्य जिन, टेसूके फूल समान तन धारी हैं। और सातवें सुपार्श्वनाथ जिनकी काय, वैडूर्य मणि समान, हरित वर्ण है। और पार्श्वनाथ-जिनकी काय, सजल मेघ घटा समान, श्याम वर्ण है। और बाकी षोड़स जिनके शरीर, ताये स्वर्ण समान वर्ण के हैं। ये चौबीस-जिनके तनका वर्ण कह्या। अब आगे ये जिन, पूर्व-भवमें जो मनुष्य थे सो वह नाम कहिये हैं। वृषभदेव पूरव-भवमें वज्रनाभि चक्रवर्ती थे और शेष-जिनके पूर्व-भवके नाम क्रम करि कहिये हैं, विमल राजा, विमल वाहन, महाबल भूप, अतिबल, अपराजित, नंदसेन राजा, पद्म, महापद्म, पद्म गुल्म, नील गुल्म, पद्मोत्तर, पद्मासन, पद्म, दशरथ, मेघरथ, सिंहरथ, धनपति, वैश्रवण, श्रीधर्म, सिद्धारथ, सुप्रतिष्ठित, आनन्दराय, और अन्तिम जिन महाबीर स्वामी, पूर्व-भवमें नन्द राजा थे। ये सर्व राजोंमें, आदि देवका जीव तो चक्री था। और तेवीस महा-मंडलेश्वर राजा थे। पीछे केतेक दिन राज्य करि, संसार तैं विरक्त भए सो राज्य तज-तज, दीक्षा धरी। सो जिन पै दीक्षा धरी, ऐसे चौबीस-जिनके पूर्वभव के दीक्षा गुरु, तिन आचार्यनके नाम क्रमतैं कहिये है-वज्रनाभि चक्रीने, वज्रसेन आचार्य तैं दीक्षा लई। विमल राजाये गुरु अरिंदमन नाम

आचार्य, स्वयंप्रभु मुनि, विमल वाहन यती, श्रीमन्दिर गुरु, पिहिताश्रव यती, अरिंदय यती, युगमंधर ऋषीश्वर, सर्व :जनानन्द ऋषि, उभयानन्द योगी, वज्रदंत योगीश्वर, बज्रनाभि, सर्व गुप्त वीतराग, त्रिगुप्त तपस्वी, चिंतारक्षक गुरु, विमल वाहन गुरुदेव, धनरथ मुनि, संवर यती, वरधर्म ऋषि, सुनन्द गुरु, आनन्द योगी, वीत शोक आचार्य, दामर नाम मुनि और प्रोष्ठल यती। ये चौबीस यतीश्वर जगत पूज्य हैं। इन के पास चौबीस जिनके जीवने, पूर्वभवमें दीक्षा धरी थी सो ये सर्व यती जगत् कर पूज्य हैं। इति चौबीस जिनके पूर्वभवके नाम, अरु पूर्वभव में जिनके पास दीक्षा धारी, तिन गुरुनके नाम कहे। आगे मुनि होय, कौन-कौन, किस-किस स्वर्ग गये। अरु तहां तैं चय, तीर्थंकर भये। तिन स्थानके नाम कहिए हैं— आदिनाथ, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुन्थनाथ, ये च्यारि-जिन तो, सर्वार्थ सिद्धि तैं आये हैं। अरु अजितनाथ, अभिनन्दन स्वामी, ये दोय विजय विमान तैं आये और चन्द्रप्रभु अरु सुमतिनाथ ये दोय जिन. वैजयंत विमान तैं आए। अरु नेमिनाथ अरहनाथ ये दोय जिन, बैजयंत विमान आए। अरु नमिनाथ अरु मल्लिनाथ ये दोय-जिन, अपराजित विमान तैं आए। ये तो पंच अनुत्तरनके कहे। अरु पुष्पदंत, आरण नाम पन्द्रहवें स्वर्ग तैं आए। अरु शीतलनाथ, अच्युत स्वग तैं आए। अरु श्रेयांसनाथ, अनन्त नाथ अरु महाबीर, ये तीन जिन, बारहवें स्वर्ग तैं आए। अरु विमलनाथ, पार्श्वनाथ, मुनिसुव्रत, संभवनाथ, सुपार्श्वनाथ, पद्मप्रभु ये छह जिन ग्रैवेक तैं आए। अरु वासुपूज्य स्वामी, महाशुक्र नामा दशवें स्वर्ग तैं आए। ऐसे चौबीस-जिन जहां तैं आए, सो स्थान कहे। आगे चौबीस-जिनकी, जन्मपुरी के नाम अनुक्रम तैं कहिए है—अयोध्यापुरी अयोध्यापुरी श्रावस्तीपुरी, अयोध्यापुरी, अयोध्यापुरी, कौशांबी पुरी, काशीपुरी, चन्द्रपुरी, किष्किंधापुरी, भद्रशालपुरी, सिंहपुरी, चम्पापुरी, कंपिलापुरी, अयोध्यापुरी, रतनपुरी, हस्तिनापुरी, हस्तिनापुरी, हस्तिनापुरी, मिथिलापुरी, कुशाग्रपुर, मथुरापुरी, शौर्यपुर, वाणारसी और कुण्डलपुर। इति जन्म नगरी॥ आगे जन्मके नक्षत्र अनुक्रम तैं बताईए हैं उत्तराषाढ़ामें वृषभका जन्म रोहणी ज्येष्ठा पुनर्वसु मघा चित्रा विशाखा अनुराधा मूल पूर्वाषाढ़ा श्रवण शतभिषा उत्तरा भाद्रपदा रेवती पुष्प भरणी कृतिका रोहणी अश्विनी श्रवण अश्विनी

चित्रा विशाखा और उत्तरा फाल्गुणी। इति जन्म नक्षत्र ॥ आगे जिन वृक्षनके नीचे दीक्षा लई तिनके नाम—वृषभदेव का दीक्षा वृक्ष वट। औरन के क्रमसे सप्तच्छद शाल सरल प्रयंगु प्रयंगु सिरीष वृक्ष नाग सालिष शाल बिन्दुक जयप्रिय जंबु पीपल दधिपर्ण नन्द तिलक आम्र अशोक मौलश्री मेषपर्ण भव्र अरु शाल। ये चौबीस—जिनके दीक्षा-वृक्ष कहे। इनके नीचे दीक्षा धारी। आगे निर्वाण होनेके नक्षत्र कहिए हैं--तहां सुपार्श्वनाथका निर्वाण नक्षत्र अनुराधा। चन्द्रप्रभुका निर्वाण नक्षत्र ज्येष्ठा। वासुपूज्यका निर्वाण नक्षत्र, अश्विनी। विमलनाथका निर्वाण नक्षत्र भरणी। महावीर स्वामी का नक्षत्र स्वाती है। ये पांच जिन के निर्वाण नक्षत्र कहे। औरन के निर्वाण नक्षत्र अरु जन्म नक्षत्र एकही जानना। ऐसे निर्वाण नक्षत्र कहे। इन चौबीस-जिनमें तैं शान्तिनाथ कुन्थनाथ और अरहनाथ ये तीन जिन तौ षट्खंडनाथ चक्री भए। और सर्व तीर्थंकर महा—मंडलेश्वर भए। तथा दीक्षा धारि निर्वाण गए। वासुपूज्य मल्लिनाथ नेमिनाथ पार्श्वनाथ और महावीर ये पांच जिन तौ कुमार अवस्था में बाल-ब्रह्मचारी ही दिगम्बर भए। ब्याह नाहीं किया। अरु राज्य भी नाहीं किया। पिताके जीवित कुंवारे ही मुनि भए। सर्व जिनराज भोग्य—संपदा भोग यतिपति भए। सो वृषभ का तप कल्याणक विनीता पुरी विषैं। नेमिनाथ का तप कल्याणक द्वारका पुरी विषैं। सर्वका तप कल्याणक, अपनो-अपनी जन्म-नगरीमें भया। सो मल्लिनाथ अरु पार्श्वनाथ ये दोऊ जिन तौ तप लिये पीछे, तेले-तेलेका नियम करते भये। वासुपूज्य स्वामी, एकांतर उपवास धारते भये। सर्व-जिनने बेले-बेले पारणा किया। सो श्रेयांसनाथ, सुमतिनाथ, मल्लिनाथ ये तीन जिन तौ पूर्वान्ह संयम दीक्षा धारते भये। और सर्व जिन अपरान्ह कहिये सन्ध्या समय, दीक्षा धारते भये। इति चौबीस जिनके निर्वाण-नक्षत्रादिका कथन ॥ आगे चौबीस जिनके दीक्षाके बन कहिए हैं--ऋषभनाथ तौ सिद्धारथ बन विषैं, दिगम्बर भए। महावीर ज्ञानबन विषैं, यती भए वासुपूज्यने क्रीड़ोद्यान न बन विषैं, मुनि-पद धरा। और धर्मनाथ वप्रका नाम बन बिषैं, यती भये। पार्श्वनाथने मनोरमा नाम उद्यान विषैं, परिग्रह तजा। मुनिसुव्रत जिन, नील गुफाके निकट, निर्ग्रन्थ भए। और सर्व

संभवनाथ, पद्मनाथ, पुष्पदंत, ये जिन दिनके पिछले पहरमें मोक्ष गए। वांसुपूज्य, विमलनाथ, अनंतनाथ, शीतलनाथ, कुंथनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, इनकी मुक्ति रात्रि-समय भयी। और धर्म-नाथ, अरहनाथ, नमिनाथ, महावीर इनकी मुक्ति, सूर्यके उदयकाल समय प्रभात ही भयी। इति चौबीस-जिनके मुक्ति समय ॥ आगे चौबीस-जिनके मोक्ष-गमन आसन कहिए है—तहां बृषभनाथ, वासुपूज्य, नमि-नाथ, ए तीन जिन तौ पद्मासन से मोक्ष गए। और सर्व जिन कायोत्सर्ग आसन तैं सिद्ध-लोक गए। इति मोक्ष-गमनके आसन ॥ आगे चौबीस-जिनका समोशरण विघटना अरु वाणी (दिव्यध्वनि) नहीं खिरना ताका प्रमाण कहिए है—तहां आदि-जिनके अरु-अंत जिनके इन दोय जिनके तौ मोक्ष जानेके जब चार दिन रहे तब समोशरण विघट्या। अरु वांणी नहीं खिरी। सर्व जिनके एक महीना पहिले समोशरण विघट्या। अरु दिव्यध्वनि नहीं खिरी ॥ आगे चौबीस-जिनके संग केते-केते यती मोक्ष भए तिनका प्रमाण कहिए है—महावीरके संग ३६ मुनि मोक्ष गए। पार्श्वनाथकी लार ५३६ मुनि मुक्ति पहुँचे। नेमनाथके संग ५३६ ऋषीश्वर मोक्ष गए। मल्लिनाथके साथ ५०० यती मोक्ष भए। और शांतिनाथके संग ९०० योगीश्वर मोक्ष गए। और धर्मनाथकी लार (संग) ८०१ तपोधन मोक्ष भए। विमलनाथके लार ६६१२ आचार्य मोक्ष भए। अनन्तनाथके संग, ५५०७ निर्गंथ, निरंजन भए और पद्मप्रभुके साथ, ३८०० दिग-म्बर भए अरु सिद्ध लोक गए। और बृषभदेवके लार, १०००० गुरुनाथ अमूर्ति भए। बाकी सर्व तीर्थंकरोंके साथ, एक-एक हजार मुनि मोक्ष गए। इति आगे बारह चक्रवर्तीके नाम-तहां प्रथम चक्रवर्ती भरत, सो आदिनाथके समय भए। आगे दूसरा सगर नाम षट्खण्डी, सो अजितनाथके समय भया। तीसरा मघवा नाम चक्री, अरु चौथा सनत्कुमार चक्री, ए धर्मनाथ-जिनके मोक्ष भए पीछे, अरु शान्तिके पहिले, अन्तरालमें भए। शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, अरहनाथ ए तीन जिन, अपने-अपने समयमें, आपही चक्री भए। और अरहके मोक्ष गए पीछे, अरु मल्लिनाथके पहिले, इस अन्तरालमें, आठवां सुभूमि नाम चक्री भया। और मल्लिनाथके पीछे, अरु मुनिसुव्रतके पहिले, अन्तरालमें नववां महापद्म नाम चक्री भया।

चित्रा विशाखा और उत्तरा फाल्गुणी। इति जन्म नक्षत्र ॥ आगे जिन वृक्षनके नीचे दीक्षा लई तिनके नाम—वृषभदेव का दीक्षा वृक्ष वट। औरन के क्रमसे सप्तच्छद शाल सरल प्रयंगु प्रयंगु सिरीष वृक्ष नाग सालिष शाल बिन्दुक जयप्रिय जंबु पीपल दधिपर्ण नन्द तिलक आम्र अशोक मौलश्री मेषपर्ण भव अरु शाल। ये चौबीस—जिनके दीक्षा-वृक्ष कहे। इनके नीचे दीक्षा धारी। आगे निर्वाण होनेके नक्षत्र कहिए हैं--तहां सुपार्श्वनाथका निर्वाण नक्षत्र अनुराधा। चन्द्रप्रभुका निर्वाण नक्षत्र ज्येष्ठा। वासुपूज्यका निर्वाण नक्षत्र, अश्विनी। विमलनाथका निर्वाण नक्षत्र भरणी। महावीर स्वामी का नक्षत्र स्वाती है। ये पांच जिन के निर्वाण नक्षत्र कहे। औरन के निवाण नक्षत्र अरु जन्म नक्षत्र एकही जानना। ऐसे निर्वाण नक्षत्र कहे। इन चौबीस-जिनमें तैं शान्तिनाथ कुन्थनाथ और अरहनाथ ये तीन जिन तौ षट्खंडनाथ चक्री भए। और सर्व तीर्थकर महा—मंडलेश्वर भए। तथा दीक्षा धारि निर्वाण गए। वासुपूज्य मल्लिनाथ नेमिनाथ पार्श्वनाथ और महावीर ये पांच जिन तौ कुमार अवस्था में बाल-ब्रह्मचारी ही दिगम्बर भए। ब्याह नाहीं किया। अरु राज्य भी नाहीं किया। पिताके जीवित कुंवारे ही मुनि भए। सर्व जिनराज भोग्य—संपदा भोग यतिपति भए। सो वृषभ का तप कल्याणक विनीता पुरी विषैं। नेमिनाथ का तप कल्याणक द्वारका पुरी विषैं। सर्वका तप कल्याणक, अपनी-अपनी जन्म-नगरीमें भया। सो मल्लिनाथ अरु पार्श्वनाथ ये दोऊ जिन तौ तप लिये पीछे, तेले-तेलेका नियम करते भये। वासुपूज्य स्वामी, एकांतर उपवास धारते भये। सर्व-जिनने बेले-बेले पारणा किया। सो श्रेयांसनाथ, सुमतिनाथ, मल्लिनाथ ये तीन जिन तौ पूर्वान्ह सयम दीक्षा धारते भये। और सर्व जिन अपरान्ह कहिये सन्ध्या समय, दीक्षा धारते भये। इति चौबीस जिनके निर्वाण-नक्षत्रादिका कथन ॥ आगे चौबीस जिनके दीक्षाके बन कहिए हैं--ऋषभनाथ तौ सिद्धारथ बन विषैं, दिगम्बर भए। महावीर ज्ञानवन विषैं, यती भए वासुपूज्यने क्रीड़ोद्यान न बन विषैं, मुनि-पद धरा। और धर्मनाथ वप्रका नाम बन विषैं, यती भये। पार्श्वनाथने मनोरमा नाम उद्यान विषैं, परिग्रह तजा। मुनिसुव्रत जिन, नोल गुफाके निकट, निर्ग्रन्थ भए। और सर्व

जिन अपने—अपने नगर के निकट, अम्र-वन विषैं योगीश्वर भए। इति तप बन ॥ आगे चौवीस—जिन के तप कल्याणक विषैं, गमन समय की पालकी, तिनके नाम कहिए है—तहां बृषभदेवकी पालकीका नाम सुदर्शना। आगे अनुक्रम तैं जानना-सिद्धार्था, कमलाभा अर्थ-सिद्धा अभयकरी, निर्बृत्तिकरी, मनोरमा, मनोहरा, सूर्य्यप्रभा, विमलप्रभा, पुष्पप्रभा, देवदत्ता, सागरदत्ता, नागदत्ता सिद्धार्थका विजया, वजयंति जयंति अपराजिता, उत्तर कुरु, देव-कुरु विमलाभा और चन्द्राभा। ये चौबीस-जिनके तप समयकी पालकी इन्द्रों कृत कहीं। आगे चौबीस-जिनकी दीक्षाकी तिथि, क्रमशः कहिए हैं। चैत्र वदी ६, माघसुदी ६ मार्गशीर्ष सुदी १५ माघ सुदी १२ वैशाख सुदी ६ कार्तिक बदी १३, जेठ सुदी १२ पौष बदी १ मार्गशीर्ष सुदी १ माघ बदी १२ फाल्गुण वदी १३ फाल्गुण बदी १४ माघ सुदी ४ जेठ वदी १२ माघ सुदी १३ ज्येष्ठ बदी १३ वैसाख सुदी १ मार्गशीर्ष सुदी १० मार्गशीर्ष सुदी ११ वैसाख बदी ६ अषाढ़ बदी १० श्रावण बदी ४ पौष वदी ११ और मार्गशीर्ष बदी १० ए चौबीस-जिनकेतप-दिन जानना। आगे चौबीस-जिनके केवलज्ञानके दिन अनुक्रम तैं कहिए है फाल्गुण बदी ११ पौष सुदी ११ कार्तिक बदी ४ पौष सुदी १४ चैत्र सुदी १४ चैत्र सुदी १५ फाल्गुण बदी ६ फाल्गुण वदी ७ कार्तिक वदी १४ पौष वदी १४ माघ वदी अमावस्या, माघ सुदी २, माघ सुदी ६, चैत्र वदी ३०, पौष सुदी १५, पौष सुदी १०, चैत्र सुदी ३, कातिक सुदी १२, पौष वदी २, वैशाख वदी ६, मार्गशीर्ष वदी ११, आसोज सुदी १, चैत्र वदी अमावास्या, और वैसाख सुदी १०। ये चौबीस-जिनके केवलज्ञानकी तिथि कहीं ॥ आगे चौबीस-जिनके निर्वाण दिन, अनुक्रम तैं कहिये है—माघ वदी १४, चैत्र सुदी ५, चैत्र सुदी ६, वैशाख सुदी ६, चैत्र सुदी ११, फाल्गुण वदी ४, फाल्गुन वदी २; फाल्गुन वदी ७, भादौं वदी ८, आसोज सुदी ८, श्रावण सुदी पूर्णिमा, भाद्रपद सुदी १४, आषाढ़ वदी ८, चैत्र वदी अमावस्या, जेठ वदी ४, ज्येष्ठ वदी १४, वैशाख सुदी १, चैत्र वदी अमावस्या, फाल्गुन सुदी ५, फाल्गुण सुदी १२, वैशाख सुदी १४, आषाढ़ सुदी ८, श्रावण सुदी ७, और कातिक वदी अमावस्या। येचौबीस-जिनके निर्वाण दिन कहे ॥ आगे गर्भ-दिन कहिये है। तप, ज्ञान, निर्वाण ये तीन

कल्याणक तौ बीतराग दशाके कहे। आगे दोय कल्याणक, सराग-अवस्थाके हैं। सो ये गर्भ-कल्याणक तौ परोक्ष-सराग उत्सव है। और जिनराजका जन्मका प्रत्यक्षसराग पुण्य अतिशय है सो प्रथम जिनराजके गर्भ-कल्याणकके परोक्ष-उत्सवके दिन, क्रम तैं कहिये है—अषाढ़ वदी २, जेठ वदी अमावस्या, फाल्गुण वदी ८, वैशाख सुदी ६, श्रावण सुदी २, माघ वदी ६, भादव सुदी ६, चैत्र वदी ५, फाल्गुण वदी ६, चैत्र वदी ८, जेठ वदी ६, अषाढ़ वदी ६, ज्येष्ठ वदी १०, कार्तिक वदी १, वैशाख वदी १३, भाद्रपद सुदी ७, श्रावण वदी १०, फाल्गुन सुदी ३, चैत्र सुदी १, श्रावण वदी २ आसोज वदी २ कार्तिक सुदी ६ वैशाख वदी २ और आषाढ़ सुदी २। इति गर्भ-दिन॥ आगे जन्म-दिन क्रम तैं कहिये है—चैत्र वदी ६ माघ सुदी १० माघ सुदी १२ कार्तिक सुदी १५ चैत्र सुदी ११ कार्तिक वदी १३ जेठ वदी १२ पौष वदी ११ मार्गशीर्ष सुदी १ माघ वदी १२ फाल्गुन वदी ११ फाल्गुन वदी १४ माघ सुदी १४ जेठ वदी १२ माघ सुदी १३; जेठ वदी १४ वैशाख सुदी १ मार्गशीर्ष सुदी १४ मार्गशीर्ष सुदी ११ वैशाख सुदी १० अषाढ़ वदी १० श्रावण सुदी ६ पौष वदी ११ और चैत्र सुदी १३। ये चौबीस-जिनके जन्म-दिन कहे॥ आगे चौबीस-जिनके पारणाका अन्तर कहिये है—आदिनाथ स्वामी ने तो एक वर्ष पीछे पारणा किया सो इक्षु-रसका भोजन किया। अरु मल्लिनाथ पार्श्वनाथ इन दोय जिनका तेले पारणा भया सो गायके दूधको खीर खाय पारणा किया और वासुपूज्य स्वामी ने एकान्तर पारणा किया सो गायके दूधकी खीर खाय पारणा किया। सर्व जिन-देवनका बेले पारणा भया। सो भी सब गायके दूधकी खीर खाय पारणा किया। इति पारणा प्रमाण॥ आगे चौबीस-जिनके प्रथम पारणेकी नगरीके नाम अरु तिन नगरनके राजा-प्रथम दानेश्वर तिनके नाम अनुक्रम तैं कहिये हैं—हस्तिनापुर विषैं श्रेयांस राजा। अयोध्यापुरी विषैं ब्रह्मदत्त नाम राजा। श्रावस्तीपुरी विषैं सुरेंद्रदत्त राजा, विनीता नगरी विषैं राजा इंद्रदत्त। विजयपुर विषैं राजा पद्म। मंगलापुर विषैं राजा सोमदत्त। पाटली खंड विषैं राजा महादत्त। पद्मखंडपुर विषैं राजा सोमदेव। श्वेत नगरी विषैं राजा पहुप। अरिष्टपुर विषैं राजा पुनर्वसु। इष्टपुर विषैं राजा सुनंद। सिद्धारथपुर विषैं जयराजा। महापुर विषैं

राजा विशाख। ध्यानपुर विषैं राजा धर्म-वर्धन। वर्धमानपुर विषैं राजा सुमति। सोमनपुर विषैं राजा धर्म-मित्र। मन्दिरपुर विषैं राजा अपराजित। हस्तिनापुर विषैं राजा नन्दषेण। चक्रपुर विषैं राजा वृषभदत्त। मथुरापुर विषैं राजा दत्त। राजगृहपुर विषैं राजा संजय। द्वारापुरी विषैं राजा वरदत्त काम्याकृतपुर विषैं धन्य राजा। कुंडलपुर विषैं राजा वकुल ये चौबीस-जिनके प्रथम पारणाके पुर अरु दानेश्वर राजा कहे। इन सर्वके घर पञ्चाश्चर्य भये। अरु ये चौबीस प्रथम दानेश्वर महा भाग्य राजा तिनके शरीरका वर्ण कहिये है—सो आदिके श्रेयांस राजा अरु ब्रह्मदत्त राजा ये दोय तौ श्याम शरीर धारी महासुन्दरभये। और सबबाईस जिनराजके दान देनेहारे भूपनका शरीर तायें स्वर्ण समान जानना। इनमेंसे कोई तौ मोक्षभए कोई कल्पवासी होय कैं तथा चय कैं मोक्ष जांयगे। ऐसा कथन बड़े हरिवंश पुराणके कर्त्ता श्रीजिनसेनाचार्यने कह्या है। कहीं-कहीं शास्त्र विषैं ऐसा भी कह्या है जो प्रथम दानेश्वर मोक्ष ही जांय हैं। सो विशेष पाठान्तर भेद यथावत् जो केवलज्ञानमें भाष्या होय सो प्रमाण है। इति प्रथम दानेश्वर राजानके नाम अरु तहां प्रथम पारणाकी पुरी कहीं ॥ आगे चौबीस-जिनकूं केतेक-केतेक उपवास पीछे केवलज्ञान भया। सो कहिये है—तहां वृषभ देव, मल्लिनाथ, पार्श्वनाथ इन तीन जिन कूं तेला व्यतीत भए केवलज्ञान प्रकट्या। वासुपूज्यको एक उपवास पूर्ण भये, केवलज्ञान सूर्य उत्पन्न भया। और सर्व जिन कूं बेला व्यतीत भये, केवलज्ञान भया। इति केवलज्ञानके पूर्वके उपवास ॥ आगे चौबीस-जिनके केवलज्ञान उपजनेके क्षेत्र कहिये है-तहां वृषभदेवका केवल-कल्याणक तो पुरी मिताल नाम नगरीके निकट, सकटामुख, नाम बन विषैं भया। नेमिनाथका गिरनारजी विषैं, पार्श्वनाथका काशीके निकट, महावीरजीका रज्जुकूटा नदीके तट। बाकी सर्व जिनके केवल-कल्याणक, मनोहर बन विषैं भये। सो बृषभनाथ, श्रेयांस-जिन, मल्लिनाथ, नेमनाथ, पार्श्वनाथ इन पांच जिन कं तो केवलज्ञान प्रभात समय भया। और सर्व कूं दिनके पिछले पहरमें केवलज्ञान भया। इति केवलज्ञानके स्थान ॥ आगे निर्वाण होनेका काल कहैं हैं—तहां बृषभनाथ अजितनाथ श्रेयांसजिन शीतलजिन अभिनंदननाथ, सुमतिनाथ, सुपार्श्वनाथ, चंद्रप्रभ इन जिन कौं तो दिनके प्रथम पहरमें मोक्ष भई। अरु

संभवनाथ, पद्मनाथ, पुष्पदंत, ये जिन दिनके पिछले पहरमें मोक्ष गए। वासुपूज्य, विमलनाथ, अनंतनाथ, शीतलनाथ, कुंथनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, इनकी मुक्ति रात्रि-समय भयी। और धर्म-नाथ, अरहनाथ, नमिनाथ, महावीर इनकी मुक्ति, सूर्यके उदयकाल समय प्रभात ही भयी। इति चौबीस-जिनके मुक्ति समय॥ आगे चौबीस-जिनके मोक्ष-गमन आसन कहिए है—तहां वृषभनाथ, वासुपूज्य, नमि-नाथ, ए तीन जिन तौ पद्मासन से मोक्ष गए। और सर्व जिन कायोत्सर्ग आसन तैं सिद्ध-लोक गए। इति मोक्ष-गमनके आसन॥ आगे चौबीस-जिनका समोशरण विघटना अरु वाणी (दिव्यध्वनि) नहीं खिरना ताका प्रमाण कहिए है—तहां आदि-जिनके अरु-अंत जिनके इन दोय जिनके तौ मोक्ष जानेके जब चार दिन रहे तब समोशरण विघट्या। अरु वांणी नहीं खिरी। सर्व जिनके एक महीना पहिले समोशरण विघट्या। अरु दिव्यध्वनि नहीं खिरी॥ आगे चौबीस-जिनके संग केते-केते यती मोक्ष भए तिनका प्रमाण कहिए है—महावीरके संग ३६ मुनि मोक्ष गए। पार्श्वनाथकी लार ५३६ मुनि मुक्ति पहुँचे। नेमनाथके संग ५३६ ऋषीश्वर मोक्ष गए। मल्लिनाथके साथ ५०० यती मोक्ष भए। और शांतिनाथके संग ६०० योगीश्वर मोक्ष गए। और धर्मनाथकी लार (संग) ८०१ तपोधन मोक्ष भए। विमलनाथके लार ६६१२ आचार्य मोक्ष भए। अनन्तनाथके संग, ५५०७ निर्गंथ, निरंजन भए और पद्मप्रभुके साथ, ३८०० दिग-म्बर भए अरु सिद्ध लोक गए। और वृषभदेवके लार, १०००० गुरुनाथ अमूर्ति भए। बाकी सर्व तीर्थंकरोंके साथ, एक-एक हजार मुनि मोक्ष गए। इति आगे बारह चक्रवर्तीके नाम-तहां प्रथम चक्रवर्ती भरत, सो आदिनाथके समय भए। आगे दूसरा सगर नाम षट्खण्डी, सो अजितनाथके समय भया। तीसरा मघवा नाम चक्री, अरु चौथा सनत्कुमार चक्री, ए धर्मनाथ-जिनके मोक्ष भए पीछे, अरु शान्तिके पहिले, अन्तरालमें भए। शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, अरहनाथ ए तीन जिन, अपने-अपने समयमें, आपही चक्री भए। और अरहके मोक्ष गए पीछे, अरु मल्लिनाथके पहिले, इस अन्तरालमें, आठवां सुभूमि नाम चक्री भया। और मल्लिनाथके पीछे, अरु मुनिसुव्रतके पहिले, अन्तरालमें नववां महापद्म नाम चक्री भया।

अरु मुनिसुव्रतके पीछे, अरु नमिनाथके पहिले, दशवें हरिषेण नाम चक्री भये। नमिनाथके पीछे, अरु नेमिनाथके पहिले, ग्यारहवें जयसेन नाम चक्री भये। नेमनाथके पीछे अरु पार्श्वनाथके पहिले बारहवें ब्रह्मदत्त नाम चक्री भए। इति चक्रवर्ती नाम॥ आगे इन चक्रीनकी गति-गमन कहिए है—तहां आठवां सुभूमि अरु बारहवां ब्रह्मदत्त ए दोय तौ, सप्तम नरक सिधारे। अरु तीसरा मघवा नाम चक्री, अरु चौथा सनत्कुमार चक्री ए दोय, तीसरे स्वर्ग गए। अरु बाकी आठ चक्री, आठ-कर्म नाश कर, अष्टम भूमि (मोक्ष) विषैं, सिद्ध पद पाय विराजे। इति चक्री गति॥ आगे नव नारायणके नाम तथा किनके समय भए सो कहिए है। तहां पहिला त्रिपृष्ठ नाम नारायण तौ श्रेयांसनाथके समयमें भया॥ १॥ दूसरा द्विपृष्ठ नारायण, वासुपूज्य जिनके समयमें भया॥ २॥ तीसरा स्वयंभू नाम नारायण, विमलनाथके समयमें भया॥ ३॥ और चौथा पुरुषोत्तम नारायण, अनन्तनाथके समय भया॥ ४॥ पांचवा पुरुषसिंह नारायण धर्मनाथके समय भया॥ ५॥ छट्ठा पुण्डरीक नारायणा अरहके पीछे अरु मल्लिनाथके पहिले अन्तरालमें भया॥ ६॥ मल्लिके पीछे अरु मुनि सुव्रतके पहिले इस अन्तरालमें, सातवां दत्त नाम नारायण भया॥ ७॥ मुनिसुव्रतके पीछे अरु नमिके पहिले, आठवां लक्ष्मण नाम नारायण भया॥ ८॥ नववें नारायण कृष्ण देव भए, सो नेमिनाथके समय भये॥९॥ ए नव नारायणके नाम कहे सो इनमें पहिला त्रिपिष्ट, दूसरा द्विपृष्ट, तीसरा स्वयंभू, चौथा पुरुषोत्तम, पांचवां पुरुषसिंह छठा पुण्डरीक ए षट् तो षट्वीं मघवी नाम पृथ्वीके धाम पधारे। और सातवां दत्त, आठवां और नौवां ए मेघा पृथ्वीमें गए। ए नव ही नारायण, तीन खण्डके नाथ महा विभूति सहित देव-विद्याधर-भूमिगोचरी बड़े-बड़े राजान् करि बन्दनीक, प्रजाके प्रतिपालक हैं। इनके राज्यमें अन्याय नाहीं। लोकनकों दारिद्र नाहीं। सर्व सखी होय हैं। ए नारायण परम्पराय ज्योतिस्वरूप होंयगे। इति नारायण नाम॥ आगे बलभद्रनके नाम कहिए है। तहां प्रथम बलदेव अचल, विजय भद्र, सुप्रभ, सुदर्शन आनन्द नन्दमित्र रामचन्द्र और पद्म। ए नव बलभद्र हैं सो नारायणके बड़े भाई जानना। इति बलभद्र नाम॥ आगे नारायणके प्रतिपक्षी (प्रतिनारायण) केशवके नाम कहिए है। तहां प्रथम अश्वग्रीव, तारक, मेरुक, मधु-कैटभ, निशुंभ, बलि, प्रह्लाद

रावण, और जरासिन्धु। तिनमें आठ तौ विद्याधरनमें भए। अरु जरासिन्धु भूमिगोचरी भयो। इति प्रति-
आसु० नारायण नाम ॥ आगे वलभद्रकी गति-गमन कहिए है। तहां विजय, अचल, भद्र, सुभद्र सुदर्शन आनन्द तं०
५६४ नन्दमित्र और रामचन्द्र ये आठ वलदेव तौ आठ कर्म नाशकरि सिद्ध भए। और नवचां पद्म वलदेव सो दिगम्बर व्रत धारि पंचम स्वर्ग विषैं महाऋद्धिधारी देव भया। तहां तैं चय मोक्ष होंयगे। तथा कृष्ण महाराज तीर्थंकरका अवतार धारेंगे और अनेक जीवनकौं धर्मोपदेश देय सुमाग लगाय आप परमधामकौं पावेंगे, अब तांई अवतार धारचा अब अवतार नाहीं धारेंगे। इति वलभद्र गति ॥ आगे चोवीस-जिनकी आयुका प्रमाण अनुक्रम करि कहिए है। चोरासी लाख पूर्व, वहत्तरि लाख पूर्व साठ लाख पूर्व, पचास लाख पूर्व, चालीस लाख पूर्व, तीस लाख पूर्व, वीस लाख पूर्व, दस लाख पूर्व, दाय लाख पूर्व, एक लाख पूर्व, चौरासी लाख वष, वहत्तरि लाख वर्ष, साठ लाख वर्ष, तीस लाख वर्ष, दस लाख वर्ष, एक लाख वर्ष, पंचानवै हजार वर्ष, चौरासी हजार वर्ष, पचपन हजार वर्ष, तीस हजार वर्ष, दस हजार वर्ष, एक हजार वर्ष, सौ वर्ष, और वहत्तरि वर्ष। ए चौवीस जिन-जगत मंगल करें। इति चोवीस जिनकी आयु। आगे चक्रवर्तीनकी आयु कहिए है। प्रथमकी चौरासी लाख पूर्व, दूसरेकी वहत्तरि लाख पूर्व, तीजेकी पाँच लाख वर्ष, चौथेकी तीन लाख वर्ष, पांचवेंको एक लाख वर्ष, छट्टेकी पंचानवे हजार वर्ष, सातवें की चोरासी हजार वर्ष, आठवेंको साठ हजार बर्ष, नौवेंकी तीस हजार वर्ष, दशवेंकी छव्वीस हजार वर्ष, ग्यारहवेंको तीन हजार वर्ष, और वारहवेंकी सात सौ वर्ष। इति चक्री-आयु ॥ आगे नारायणकी आयु कहिए है प्रथमकी चौरासी लाख वर्ष, दूसरेकी वहत्तरि लाख वर्ष, तीसरेको साठ लाख वर्ष, चोथेको तीसलाख वर्ष, पांचवेंकी दश लाख वर्ष, छटवेंकी साठ हजार बर्ष, सातवेंकी तीस हजार वर्ष, आठवेंको वारह हजार वर्ष, और नववेंकी एक हजार वर्ष। यह नारायणकी आयु कही। इतनी ही नव प्रति-नारायणकी आयु जानना। वलभद्रको कछू अधिक है, सो आगे कहैंगे। इति नारायण, प्रति नारायणकी आयु ॥ आगे वलभद्रकी आयु कहिए है। तहां पहिले वलभद्रकी आयु सत्यासी लाख वर्ष। दूजेकी सत्तरि लाख वर्ष। तीसरेकी साठ लाख वर्ष। चौथेका बत्तीस लाख वर्ष। पांचवेंकी कछू ५६५

अधिक दश लाख वर्ष। छठेकी पैंसठ हजार वर्ष सातवेंकी बत्तीस हजार वर्ष। आठवेंकी सत्रह हजारवर्ष। और नववेंकी बारह सौ वर्ष। ए नव बलभद्रकी आयु कही। आगे चक्री व नारायणका उपजनेका समय कहिये है। तहां आदि जिनसे लेय पन्द्रहवें धर्मनाथ पर्यंत तिनमें वृषभ अजित इनके समयमें तो दोय चक्री भये। अरु पचास लाख कोड़ि सागर कालका बीचि अन्तर भया। तामें कोई पदवीधारी पुरुष नहीं भया। अरु श्रेयांस तैं लगाय धर्मनाथ पर्यंत पांच तीर्थंकरोंके समयमें पांच नारायण भये। सो तीर्थंकरोंके कालमेंही सभा नायक भये। अन्तरालमें नाहीं भये। धर्मनाथके पीछे तीसरे चौथे चक्री भये। ता पीछे शान्तिनाथ कुन्थनाथ अरहनाथ ये तीन तीर्थंकर ही चक्री भये। ता पीछे छटवाँ नारायण भया। ताके पीछे आठवां चक्रवर्ती भया ताके पीछे मल्लि जिन भये। मल्लिजिनके पीछे नौवां महापद्म चक्री भया। ता पीछे सातवां नारायण भया। ता पीछे मुनिसुव्रत भये। ताके पीछे, दशवां चक्री हरिषेण भया। ताके पीछे आठवां नारायण भया। ताके पीछे, नमि-जिन भये। अरु नमिनाथके पीछे, ग्यारहवां चक्री भया। ताके पीछे नेमिनाथ भये तिनके समयमें नववें नारायण और बलभद्र, ए तिन छते ही सभा नायक भए। और नेमिनाथके पीछे बारहवां चक्री भया। ताके पीछे पार्श्वनाथ और महावीर भये। इस भांति त्रेसठ शलाका पुरुष भए, तिनकी रचना कही। इति चक्री और नारायणके उपजनेका समय कह्या। आगे तीर्थंकरकी आयुकी विगत कहिए है। तहां ऋषभदेवका कुमारकाल, बीस लाख पूर्वका। त्रेसठ लाख पूर्व राज्य किया। तप एक हजार वर्ष किया। और केवलज्ञान सहित उपदेश हजार वर्ष घाटि, लाख पूर्व किया। ए सर्व चौरासी लाख पूर्वकी विगत कही ॥१॥ अजितनाथ-जिनका कुमार काल, अठारह लाख पूर्व। एक पूर्वांग अधिक, तिरेपण लाख पूर्व राज्यमें व्यतीते संयमका काल बारह वर्ष रहा एक पूर्वांग अरु बारह वर्ष घाटि एक लाख पूर्व केवलज्ञान सहित, समोशरण सहित विहार किया। यह बहत्तरि लाख पूर्वका विस्तार कह्या ॥ २ ॥ सम्भवनाथका काल साठ लाख पूर्व। तामें तैं कुमारकाल पन्द्रह लाख पूर्व अरु च्यारि पूर्वांग अधिक चवालीस लाख पूर्व राज्य किया और चौदह वर्ष संयम किया। अरु च्यारि पूर्वांग अरु चौदह वर्ष घाटि एक लाख पूर्व केवलज्ञान सहित रहे। पीछे

मोक्ष गए॥ ३ ॥ आगे अभिनन्दनकी आयु पचास लाख पूर्व है। तामें कुमार-काल साढ़े बारह लाख पूर्व अरु राज्य त्रिशों साढ़े छत्तीस लाख पूर्व अरु आठ पूर्वांग। अठारह वर्ष संयमकाल। आठ पूर्वांग अरु अठारह वर्ष घाटि, एक लाख पूर्व, केवलज्ञान सहित उपदेश करि मोक्ष गए ॥ ४ ॥ आगे सुमतिनाथको आयु, चालीस लाख पूर्व। तामें कुमारकाल दश लाख पूर्व है। राज्यावस्थाका काल गुणतीस (२९) लाख पूर्व अरु बारह पूर्वांग संयमकाल बीस वर्ष। अरु बारह पूर्वांग, बीस वर्ष घाटि एक लाख पूर्व केवलज्ञान सहित रहे। पीछे मोक्ष गए ॥ ५ ॥ पद्मप्रभुकी आयु तीस लाख पूर्व। तामें तें कुमार काल साढे सात लाख पूर्व साढ़े इक्कीस लाख पूर्व अरु सोलह पूर्वांग राज्य किया। संयम काल छह महिना। अरु सोलह पूर्वांग अरु छह महिना घाटि एक लाख पूर्व ताईं केवलज्ञान सहित उपदेश देय सिद्ध भए ॥ ६ ॥ अरु सुपार्श्व-जिनकी आयु बीस लाख पूर्व तामें तैं कुमारकाल पांच लाख पूर्व। अरु चौदह लाख पूर्व बीस पूर्वांग राज्य किया। संयमका काल, नव वर्ष। अरु बीस पूर्वांग नव वर्ष घाटि एक लाख पूर्व केवलज्ञान सहित विहार करि, सिद्ध भए ॥ ७ ॥ चन्द्रप्रभका आयु समय, दश लाख पूर्व। तामें कुमार-काल अढ़ाई लाखपूर्व। राज्यावस्था साढ़े छह लाख पूर्व अरु चौबीस पूर्वांग। संयमकाल तीन महिना। अरु तीन महिना चौबीस पूर्वांग घाटि एक लाख पूर्व ताईं समोसरण सहित केवलज्ञान पाय विहार करि मोक्ष गए ॥ ८ ॥ पुष्पदन्त-जिनको आयु, दोय लाख पूर्वको है। तामें कुमारकाल, पचास हजार पूर्व। पचास हजार पूर्व अरु अट्ठाईस पूर्वांग, राज्य किया। और संयमकाल, च्यारि महिना। अट्ठाईस पूर्वांग च्यारि महिना घाटि, एक लाख पूर्व केवलज्ञान सहित विहार करि मोक्ष गए ॥ ९ ॥ शीतल जिनकी आयुका प्रमाण, एक लाख पूर्व में। तामें कुमारकाल, पच्चीस हजार पूर्व। राज्यकाल पचास हजार पूर्व। संयमकाल तीन मास। अरु तीन महिना घाटि पच्चीस हजार पूर्व, केवलज्ञान सहित रहे ॥ १० ॥ श्रेयांस जिनको आयु, चौरासी लाख वर्षकी है। तामें कुमारकाल इक्कीस लाख वर्ष। राज्य पद, ब्यालीस लाख वर्ष। संयमका काल दोय मास। दोय महिना घाटि इक्कीस लाखवर्ष केवलज्ञान काल है ॥११॥ वासुपूज्यको आयु, बहत्तरि

लाख बर्षकी है। तामें कुमार काल, अट्ठारह लाख बर्ष है। राज्यावस्थामें नहीं रहे अरु व्याह भी नहीं किया, अट्ठारह लाख वर्षके भए, तब ही तप लिया। सो संयमकाल, एक मास रहे। केवलज्ञान सहित एक मास घाटि चौवन लाख वर्ष रहके, शिव गये ॥ १२॥ विमल जिनकी आयु साठ लाख वर्षकी है। तामें कुमारकाल पन्द्रह लाख बर्ष। राज्यावस्था तीस लाख वर्ष। और संयमकाल, तीन महिना। तीन महीना घाटि पन्द्रह लाख वर्ष केवलज्ञान सहित रहे। पीछे निर्वाण गये ॥ १३ ॥ अनन्त-जिनकी आयु तीस लाख वर्ष है। तामें कुमारकाल, साढ़े सात लाख वर्ष। राज्यावस्था, पन्द्रह लाख वर्ष। संयमकाल दोय मास। केवलज्ञान विषैं दोय मास घाटि, साढ़े सात लाख वर्ष रहे ॥ १४ ॥ धर्म जिनकी आयु दश लाख वर्ष। तामें कुमारकाल, अढ़ाई लाख वर्ष। और राज्यावस्था, पांच लाख वर्ष। संयमकाल एक मास। एक मास घाटि अढ़ाई लाख वर्ष, विहार करि मोक्ष गए ॥ १५ ॥ और शान्तिनाथकी आयु, एक लाख वर्ष। तामें कुमारकाल, पच्चीस हजार वर्ष। राज्यकाल, पचास हजार वर्ष। संयमकाल, सोलह वर्ष। सोलह वर्ष घाटि पच्चीस हजार वर्ष केवलज्ञान सहित विहार करि, मोक्ष गए ॥ १६ ॥ कुन्थनाथकी आयु पनच्यानबै हजार वर्ष। तामें कुमार-काल पौने चौविस हजार वर्ष। राज्यावस्था, सैंतालीस हजार वर्ष। संयमकाल सोलह वर्ष। सोलह वर्ष घाटि पौने चौबीस हजार वर्ष केवलज्ञान सहित उपदेश देय मोक्ष गए ॥ १७ ॥ अरह जिनकी आयुका प्रमाण चौरासी हजार वर्ष है। तामें कुमारकाल इकईस हजार वर्ष। राज्यावस्था ब्यालीस हजार वर्ष। संयमकाल सोलह वर्ष। अरु सोलह:वर्ष घाटि इक्कीस हजार वर्ष तांईं, केवलज्ञान सहित उपदेश करि मोक्ष गए ॥ १८ ॥ मल्लिनाथकी आयु पचपन हजार वर्ष। तामें कुमारकाल सौ वर्ष। इनने राज्य नहीं किया। सौ वर्षकी अवस्था हीमें तप धार्या। संयमकाल षट् दिन। और षट् दिन घाटि चोवन हजार नव सौ वर्ष तांईं केवलज्ञान सहित उपदेश देय मोक्ष गए ॥ १९ ॥ मुनिसुव्रत-जिनकी आयु तीस हजार वर्ष। तामें साढे, सात हजार वर्ष कुमारकाल। राज्यकाल पन्द्रह हजार वर्ष। संयकाल ग्यारह महिना। ग्यारह महिना घाटि साढ़े सात हजार वर्ष केवलज्ञान सहित विहार करि मोक्ष गए ॥ २०॥ नमिनाथकी आयु दश हजार वर्ष। तामें

कुमारकाल अढाई हजार वर्ष। राज्यकाल पांच हजार वर्ष। संयमकाल नौ वर्ष। और नव वर्ष घाटि अढाई हजार वर्ष, केवलज्ञान सहित विहार करि मोक्ष गए॥ २१ ॥ और नेमिनाथ-जिनकी आयु एक हजार वर्ष। तामें कुमारकाल तीनसौ वर्ष। राज्य इनने नहीं किया। तीनसौ वर्षके होयकें तप लिया। संममकाल छप्पन दिन। छप्पन दिन घाटि सातसौ वर्ष केवलज्ञान तैं धर्मोपदेश देय सिद्ध भए ॥२२॥ पार्श्वनाथ-जिन की आयु. सौ वर्ष की। तामें कुमारकाल, तीस वर्ष। इनने ब्याह और राज्य नहीं किया। तीस वर्षमें ही, दीक्षा धरी। संयम-काल, च्यार महिना। अरु च्यार महिना घाटि, सत्तर वर्ष, केवल-ज्ञान सहित रह, भव्यन कूं सम्बोध करि, मोक्ष गये॥ २३ ॥ महावीर-जिनकी आयु, वहत्तरि वर्ष। तामें कुमारकाल, तीस वर्ष। इनने ब्याह व राज्य नहीं किया। तीस वर्षमें तप धरा। संयम-काल, बारह वर्ष। बाकी वर्ष केवलज्ञान सहित रहकर, मोक्ष गये॥ २४ ॥ यह सर्व जिनकी आयुकी विगत कही। तामें कोई की आयुके च्यारि विभाग, कोई की आयुके राज्यावस्था बिना, तीन विभाग कहे। आगे चौबीस-जिनके, च्यारि प्रकार संघका प्रमाण कहिये है। तहां पहिले चौबीस-जिनके गणधर देवनका प्रमाण अनुक्रम तैं कहिये है-८४, ९०. १०५, १०३, ११६, १११, ९५, ९३, ८८, ८१, ७७, ६६, ५५, ५०, ४३, ३६, ३५, ३०, २८, १८, १७, ११, १०, और ११ ये चौबीस-जिनके, चौदह सौ त्रेपण (१४५३) गणधर जानना। तिनमें तैं एक-एक जिनके मुख्य एक-एक गणधरनके नाम कहिये हैं वृषभसेन, सिंहसेन, चारुदत्त, वज्र, चमर, वज्रबलि, चरबलि दरिडक, वैदर्भ, अनागार, कुंथ, सुधर्म, नंदराज, जय, अरिष्ट, चक्रायु, स्वयंभू, कुंथ, विशाख, मल्लि, सोम, वरदत्त स्वयंभू और इन्द्रभूत। ये चौबीस मुख्य गणधर कहे। ये सर्व गणधर सप्त ऋद्धि करि सहित हैं। सर्व जिन श्रुतके पारगामी हैं। आगे एक-एक जिनके सङ्ग,-केते-केते राजा बैरागी भये। तिनका प्रमाण कहिये हैं-महावीर के संग तीन सौ राजा यती भये॥ १ ॥ पार्श्वनाथके साथ छह सौ छह॥ २॥ मल्लिनाथ के साथ छह सौ छह॥ ३ ॥ वासुपूज्य की लार छह सौ॥ ४ ॥ आदिनाथके साथ चारि हजार राजा यती भये॥५॥ सर्व जिनके संग एक-एक हजार राजाओंने तप लिया॥ आगे चौबीस जिनके यतीश्वरन की संख्या कहियो

है तहां वृषभदेवके सर्व मुनीश्वर ८४ हजार हैं अजितके एक लाख हैं। सम्भव के दोय लाख। अभिनन्दन के तीन लाख। सुमतिनाथके तीन लाख बीस हजार। पद्मनाथके तीन लाख तीस हजार। सुपार्श्वनाथके, तीन लाख। चन्द्रप्रभके सर्व मुनि अढ़ाई लाख। पुष्पदन्त-जिनके दोय लाख। शीतलनाथके एक लाख। श्रेयांस नाथके, चौरासी हजार। वासुपूज्यके, बहत्तरि हजार। विमलनाथके अड़सठ हजार। अनन्तनाथके छयासठ हजार। धर्मनाथके चौंसठ हजार। शान्तिनाथके बासठ हजार। कुंथनाथके साठ हजार। अरहनाथके पचास हजार। मल्लिनाथके चालीस हजार। मुनिसुव्रतके तीस हजार। नमिनाथके बीस हजार। नेमिनाथ के अठारह हजार। पार्श्वनाथके सोलह हजार। महावीरके चौदह हजार सर्व मुनीश्वर हैं। ये चौवीस-जिनके सर्व मुनि कहे। सो मुनिका संघ सात प्रकार है-चौदह पूर्वके पाठी, सूत्र अभ्यासी अवधि-ज्ञानी केवली विक्रिया ऋद्धिके धारी विपुलमती मनः पर्ययी और वादित्र ऋद्धिके धारी। इन सात भेद रूप मुनिसंघ है। सो वृषभदेवके चौरासी हजार मुनि हैं। तिनमें चौदह पूर्वके पाठी साढ़े सैंतालीस सौ हैं। सूत्र अभ्यासी शिष्य इकतालीस सौ पचास। अवधिज्ञानी नौ हजार केवलज्ञानी बीस हजार। विक्रिया ऋद्धिके धारी तीस हजार छह सौ। विपुलमती मनः पर्ययज्ञानी बारह हजार साढ़े सात सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी बारह हजार सढ़े सातसौ हैं। ये सर्व मिलि चौरासी हजार आदि-देवके मुनि कहे॥ १ ॥ अजित के चौदह पूर्वके पाठी तीन हजार पांच सौ मुनि। आचाराङ्ग सूत्रके धारी शिष्य इक्कीस हजार छहसौ। अवधिज्ञानी नव हजार चार सौ। केवलज्ञानी बीस हजार दो सौ पचास। विक्रिया ऋद्धिके धारी बीस हजार च्यारिसौ पचास। विपुलमती मनः पर्यय धारी बारह हजार च्यारि सौ वादित्र ऋद्धिके धारी बारह हजार च्यारि सौ। ये सर्व जातिके मिलि अजित-जिनके एक लाख मुनि हैं॥ २ ॥ संभव-जिनके चौदह पूर्व के पाठी साढ़े एक्कीस सौ। सूत्र अभ्यासी शिष्य-मुनि एक लाख उन्नीस हजार तोन सौ। अवधि-ज्ञानीं, नव हजार छह सौ। केवलज्ञानी पन्द्रह हजार। विक्रिया ऋद्धिके धारी गुणतीस हजार साढ़े आठ सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञान धारी बारह हजार हैं। वादित्र ऋद्धिके धारी बारह हजार एक सौ हैं। ये तीसरे-

जिनका संघ सात प्रकार दोय लाख कह्या ॥ ३ ॥ आगे चौथे अभिनन्दन-जिनके मुनि तीन लाख हैं। तिनमें चौदह पूर्वके पाठी, पच्चीस सौ हैं। सूत्र अभ्यसी शिष्य दोय लाख तीस हजार पचास हैं। अवधिज्ञानी नौहजार आठ सौ। केवलज्ञानी सोलह हजार। विक्रिया ऋद्धिके धारी गुन्नीस हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञान धारी ग्यारह हजार साढ़े छह सौ। वादित्र ऋद्धिके धारी ग्यारह हजार। ये अभिनन्दन-जिनके तीन लाख साधूनमें सात भेद कहे ॥ ४ ॥ आगे पांचवें सुमतिनाथके तीन लाख वीस हजार मुनि हैं। तामें चौदह पूर्वके पाठी चौबीस सौ। सूत्र अभ्यासी शिष्य-मुनि दोय लाख चौंसठ हजार तीन सौ पचास। अवधिज्ञानके धारी ग्यारह हजार। केवलज्ञानके धारी तेरह हजार विक्रिया ऋद्धिके धारो अठ्ठारह हजार च्यारिसौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी दश हजार च्यारि सौ वादित्र ऋद्धिके धारी एक हजार च्यारि सौ पचास हैं। ये सर्व पांचवें-जिनके सात जातिके मुनि तीन लाख वीस हजार कहे ॥ ५ ॥ आगे छठे पद्मप्रभ-जिनकै तीन लाख तीस हजार मुनि कहे। तिनमें चौदह पूर्वके ज्ञानी तेईस सौ सूत्रके अभ्यासी शिष्य-मुनि, दोय लाख गुणहत्तरि हजार। अवधिज्ञानी, दश हजार। केवलज्ञान धारी बारह हजार आठ सौ। विक्रिया ऋधिके धारो, सोलह हजार तीन सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, दश हजार छह सौ। वादित्र ऋद्धिके धारी, नौ हजार। ये छठे जिनके, सात जातिके मुनि, सब मिलि तीन लाख तीस हजार कहे ॥ ६ ॥ आगे सुपार्श्वनाथके संघके, तीन लाख मुनि हैं। तामें चौदह पूर्वके धारी दोय हजार तीस यती हैं। सूत्र अभ्यासी शिष्य—मुनि, दोय लाख चवालीस हजार नौ सो वीस हैं। अवधिज्ञानी, नव हजार। केवली, ग्यारह हजार तीन सो। विक्रिया ऋद्धिके धारो पन्द्रह हजार डेढ़ सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, नव हजार छह सौ। वादित्र ऋद्धिके धारी, आठ हजार। ये सर्व, सात जातिके मुनि मिलकर तीन लाख, सातवें जिनके हैं ॥ ७ ॥ आठवें जिनके, अढ़ाई लाख मुनि हैं। तिनमें चौदह पूर्वके पाठी, दोय हजार हैं। सूत्र अभ्यासी शिष्य—मुनि, दोय लाख दश हजार च्यारि सौ। अवधिज्ञानके धारी, आठ हजार। केवली, दश हजार। विक्रिया ऋद्धिके धारी, च्यारि हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानके धारी, आठ, हजार।

वादित्र ऋद्धिके धारी सात हजर छह सौ। ये चन्द्रप्रभ—जिनके सात जाति के मुनि, अढ़ाई लाख कहे ॥ ८॥ आगे पुष्पदन्त-जिनके, दोय लाख मुनी हैं। तिनमें चौदह पूर्वके धारी, पन्द्रह सौ। सूत्रपाठी शिष्य-मुनि, एक लाख पैंसठ हजार पांच सौ। अवधिज्ञानके धारी, आठ हजार च्यारि सौ। केवलज्ञानी, साढ़े सात हजार। विक्रिया ऋद्धिके धारी, तीन हजार च्यारि सौ। विपुलमती मनः पयय ज्ञानी, पैंसठ सौ। वादित्र ऋद्धिके धारी, बहत्तरि सौ। ये नववें—जिनके, सात जातिके मुनि, सर्व मिलि, दोय लाख कहे ॥९॥ शीतल-नाथ के संघ सम्बन्धी मुनि, एक लाख। ता विषैं चौदह पूर्व के धारी, चौदह सौ। सूत्र अभ्यासी शिष्य मुनि, गुणसठि हजार दो सौ। अवधिज्ञानी, बहत्तरि सौ। केवली, सात हजार। विक्रिया ऋद्धिके धारी, बारह हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, पचहत्तर सौ। वादित्र ऋद्धिके धारी सत्तावन सौ। ये सर्व मिलि, दशवें-जिनके, एक लाख मुनि कहे ॥१०॥ आगे श्रेयांस-जिनके, चौरासी हजार मुनि। तामें चौदह पूर्व के धारी, तेरह सौ। सूत्रपाठी शिष्य मुनि, अड़तालीस हजार दोय सौ। अवधिज्ञानके धारी, छह हजार। केवलज्ञानी, साढ़े छह हजार। विक्रिया ऋद्धिके धारी, ग्यारह हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, चौवन सौ। बाकी वादित्र ऋद्धिके धारक हैं। ये चौरासी हजार यती, ग्यारहवें-जिनके कहे ॥११॥ वासुपूज्य-जिनके संघ के मुनि, बहत्तरि हजार बुद्धि-सागर यती हैं। केतेक, चौदह पूर्वके धारी हैं। केतेक, सूत्र अभ्यासी शिष्य मुनि। केतेक, अवधिज्ञानके धारी। छह हजार, केवली। विक्रिया ऋद्धिके धारी, दश हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, छह हजार। वादित्र ऋद्धिके धारी, व्यालीस सौ हैं। ये सात जातिके संघ सहित बहत्तरि हजार मुनि कहे ॥ १२ ॥ अड़सठ हजार यती, विमलनाथ-जिनके कहे। तहां चौदह पूर्वके धारी, ग्यारह सौ। सूत्रपाठी शिष्य जातिके मुनि, अड़तीस हजार पांच सौ। अवधिज्ञान के धारी, अड़ता-लीस सौ। केवली, पचपन सौ। विक्रिया ऋद्धिके धारी नौ हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, पचपन सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी मुनीश्वर छत्तीस सौ। ये सर्व जातिके मुनि अड़सठ हजार कहे ॥ १३ ॥ अ-नन्तनाथ के संघमें छयासठ हजार मुनि हैं। तामें चौदह पूर्व धारी एक हजार। सूत्र अभ्यासी शिष्य—

मुनि गुणसठ हजार पांच सौ। अवधिज्ञानी तियालीस सौ। केवलज्ञानी पांच हजार। विक्रिया ऋद्धिके धारी आठ हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी पांच हजार हैं। वादित्र ऋद्धिके धारी बत्तीस सौ। ये सात जातिके मुनि छ्यासठहजार कहे ॥१४॥ धर्म—जिनके यती चौंसठ हजार हैं। तामें चौदह पूर्व के धारी नौ सौ। शिष्य जातिके चालीस हजार सात सौ। अवधिज्ञानी छत्तीस सौ। केवली पैतालीस सौ। विक्रिया ऋद्धिके धारी, सात हजार। विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानी, पैंतालीस सौ। वादित्र ऋद्धिके धारी, अट्ठाईस सौ हैं। ये सर्व मिलि, चौंसठ हजार, धर्म-जिनका मुनि—संघ कह्या ॥ १५ ॥ शांति—जिनके, बासठ हजार यती हैं। तिनमें चौदह पूर्वके धारी, आठ सौ। शिष्य जातिके मुनि, इकतालीस हजार आठ सौ। अवधिज्ञानी, तीन हजार। केवलज्ञानी, च्यारि हजार। विक्रिया ऋद्धिके धारी, छह हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, च्यारि हजार। वादित्र ऋद्धिके धारी, चौबीस सौ। ये बासठ हजार, सोलवें तीर्थंकरके मुनीश्वर कहे ॥ १६ ॥ कुन्थके, साठ हजार यती है। चौदह पूर्वके धारी, सात सौ। शिष्य जातिके मुनि, तेतालीस हजार डेढ़ सौ। अवधिज्ञानी, अढ़ाई हजार। केवलज्ञानी, दोय हजार आठ सौ। विक्रिया ऋद्धिके धारी, इक्यावन सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, सैंतीस सौ पचास। वादित्र ऋद्धि धारी, दोय हजार। ये साठ हजार संघ, कुंन्थ—जिनका कह्या ॥ १७ ॥ अरहनाथका संघ, पचास हजार है। तामें चौदह पूर्वके धारी, छह सौ दश। शिष्य जातिके मुनि, पैंतीस हजार आठ सौ पैंतीस। अवधिज्ञानी, अट्ठाईस सौ। केवलज्ञानी, अट्ठाईस सौ। विक्रिया ऋद्धिके धारी, तेतालीस सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, बीस सौ पचपन। वादित्र रिद्धिके धारी, सोलह सौ हैं। ये सर्व जातिके, पचास हजार मुनि हैं ॥ १८ ॥ अरु मल्लिनाथके, चालीस हजार यती हैं। तिनमें चौदह पूर्वके धारी, पांच सौ पचास। शिष्य जातिके, गुणतीस हजार। अवधिज्ञानी बाईस सौ। केवली, साढ़े छब्बीस सौ। विक्रिया रिद्धिके धारी, चौदह सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी बाईस सौ। वादित्र रिद्धिके धारी, बीस सौ। ये चालीस हजार संघ, मल्लि—जिनका कह्या ॥ १९ ॥ और मुनिसुव्रतके, तीस हजार यती हैं। तामें चौदह पूर्वके धारी, पांच सौ। शिष्य मुनि, इक्कीस हजार। अव-

धिज्ञानी, अठारह सौ। केवली, अठारह सौ। विक्रिया रिद्धिके धारी, बाईस सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, पन्द्रह सौ। वादित्र रिद्धिके धारी, बारह सौ। ये सात जाति मिलि, तीस हजार भये॥ २०॥ नमिनाथके, बीस हजार यती। चौदह पूर्वके धारी, साढ़े च्यारि सौ। शिष्य जातिके यती, तेरह हजार छह सौ। अवधिज्ञानी, सोलह सौ। केवली, सोलह सौ। विकि्या रिद्धिके धारी, पंद्रह सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, साढ़े बारह सौ। वादित्र ऋद्धिके धारी, एक हजार हैं। ये बीस हजार यती, इक्कीसवें-जिनके कहे ॥२१॥ नेमिनाथके, अठारह हजार यती हैं। तिनमें चौदह पूव धारी, च्यारि सौ। शिष्य जातिके मुनि, ग्यारह हजार आठ सौ। अवधिज्ञानी, पंद्रह सौ। केवली, पन्द्रह सौ। विक्रिया ऋद्धिके धारी, ग्यारह सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, नौ सौ। वादित्र रिद्धिके धारी, आठ सौ। ये अठारह हजार यती, नेमि-जिनके कहे॥ २२॥ पार्श्वनाथके, सोलह हजार यती हैं। तिनमें चौदह पूर्वके धारी, साढ़े तीन सौ। शिष्य जातिके मुनि, दश हजार नौ सौ। अवधिज्ञानी, चौदह सौ। केवली, एक हजार। विक्रिया रिद्धिके धारी, एक हजार। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, साढ़े सात सौ। वादित्र रिद्धिके धारी, छह सौ। ये सोलह हजार यती, पार्श्वनाथ-जिनके कहे॥ २३॥ महावीर-जिनके, चौदह हजार यती हैं। चौदह पूर्वके धारी, तीन सौ। शिष्य जातिके मुनि, नौ हजार नौ सौ। अवधिज्ञानी, तेरह सौ। केवली, सात सौ। विक्रिया रिद्धिके धारी नौ सौ। विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी, पांच सौ। वादित्र रिद्धि धारी च्यारि सौ। ये चौदह हजार मुनि, वर्द्धमान-जिनके कहे॥ २४॥ इति चौबीस—जिनके, मुनि-संघ, सात—सात प्रकार। आगे चौबीस—जिनके संघकी, आर्यिकाका प्रमाण कहिये है—तहां आदि-देवके संघकी आर्यिका, तीन लाख पचास हजार। अजितनाथकी, तीन लाख बीस हजार। संभव, अभिनंदन, सुमति, इन तीनोंकी तीन—तीन लाख, तीस—तीस हजार। पद्मप्रभकी, च्यारि लाख बीस हजार। सुपार्श्वनाथकी तीन लाख तीस हजार। चन्द्रप्रभ, पुष्पदंत, शीतल, ये तीन जिनकी, तीन—तीन लाख अस्सी--अस्सी हजार। श्रेयांसकी, एक लाख बीस हजार। वासुपूज्यकी, एक लाख छह हजार। विमल-जिनकी, एक लाख तीन हजार। अनंतनाथकी, एक लाख आठ हजार।

धर्मनाथकी, बासठ हजार च्यारि सौ। शांति-जिनकी, साठ हजार तीन सौ। कुंथकी, साठ हजार तीन सौ, अरहकी, साठ हजार। मल्लिनाथकी, पचपन हजार। मुनिसुव्रतकी, पचास हजार। नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, वर्द्धमान, इन च्यारि-जिनकी, यथायोग्य जानना। ये चौबीस-जिनके संघकी आर्यिकाका प्रमाण कह्या। आगे श्रावक-श्राविकाओंका प्रमाण कहिये है—तहां बृषभदेव से चन्द्रप्रभ पर्यंत, आठ तीर्थंकरनके समय, तीन लाख श्रावक भये। अरु पुष्पदंतसे लगाय, शांतिनाथ पर्यंत, दोय-दोय लाख श्रावक भये। और कुन्थ सूं लेय, महावीर पर्यंत, एक-एक लाख श्रावक। ए तौ श्रावक-संख्या कही॥ अब श्राविकाका प्रमाणतहां बृषभदेव तैं लगाय महावीर पर्यन्त, यथायोग्य श्राविका जान लेना॥ ऐसे चौबीस-जिनका संघ च्यारि प्रकार कह्या। आगे चौबीस-जिनके शिष्य, सिद्ध भये। तिनका प्रमाण अनुक्रम तैं कहिए हैं—तहां वृषभदेवके शिष्य, साठ हजार नौ सौ सिद्ध भए। अजित-जिनके, बहत्तरि हजार एक सौ। संभव—जिन के, एक लाख सत्तरि हजार एक सौ। अभिनन्दन—जिनके दोय लाख असी हजार एक सौ। सुमतिनाथ के, तीन लाख एक हजार छह सौ। पद्मनाथ के, तीन लाख तेरह हजार छह सो। सुपार्श्वनाथके दोय लाख पच्यासी हजार। चन्द्रप्रभके, दोय लाख चौंतीस हजार। पुष्पदन्तके, एक लाख गुन्यासी हजार छह सौ।शीतलनाथ के, अस्सी हजार छह सौ। श्रेयांस-जिनके, पैंसठ हजार छह सौ। वासुपूज्यके, चौवन हजार छह सौ। विमल—जिनके, इक्यावन हजार तीन सौ। अनन्त—जिनके, इक्यावन हजार। धर्मनाथ-जिनके, गुन्चास हजार सात सौ। शांतिनाथके, अड़तालीस हजार च्यारि सौ। कुंथ—जिनके छयालीस हजार आठ सौ। अरह-जिनके, तीस हजार दोय सौ। मल्लिनाथ—जिनके, अट्ठाईस हजार आठ। मुनिसुव्रत—जिनकें, गुणतीस हजार दोय सौ नमि—जिनके, नौ हजार छह सौ। नेमि—जिनके, आठ हजार। पार्श्व—जिन के, छय हजार दोय सौ। और महावीर के शिष्य, सात हजार दोय सौ, मोक्ष गये। ये चौबीस-जिन के शिष्य, मोक्ष भये। तिंनका प्रमाण कह्या। सो बृषभदेव तैं शांति पर्यन्त, सोलह तीर्थंकर सिद्ध लोक पधारे। तब तांईं, तिनके शिष्य मोक्ष गये। भावार्थ-सोलह तीर्थंकरोंकौं जब तैं केवलज्ञान उपज्या। तब त लगाय,

निर्वाण भया तब तांई; तिनके शिष्य मोक्ष गये। अरु शेष आठ तीर्थंकरोंके शिष्य, निर्वाण पीछे, महिनामें, केई शिष्य दोय महिनामें केई च्यारि मासमेंकेई, वर्षमें, केई दोय वर्षादिक पीछे मोक्ष भये। ऐसे सब-जिनके शिष्यनकी मोक्ष जानना। आगे चौबीस-जिनका परस्पर अन्तर कहिये है-तहां वृषभदेव पीछे पचास लाख कोड़ि सागर काल व्यतीत भया, तब दूसरे अजितनाथ भये अजितनाथ तैं, तोस लाख कोड़ि सागर पीछे, तीसरे संभव-जिन भये। संभवनाथके पीछे दश लाख कोड़ि सागरके अन्तर तैं, चौथे अभिनन्दन-जिन भये अरु अभिनन्दन तैं, नव लाख कोड़ि सागर पीछे, सुमतिनाथ भये। अरु सुमतिके पीछे, नब्बे हजार कोड़ि सागर अन्तरालमें पद्मनाथ भये। पद्मनाथके पीछे नव हजार कोड़ि सागर अन्तर भये, सुपार्श्व भये। सुपार्श्वके पीछे नौ सौ कोड़ि सागर अन्तरकाल गये, चन्द्रप्रभ पीछे नब्बे कोड़ि सागर अन्तर गये, पुष्पदन्त हुए पुष्पदंतके पीछे नव कोड़ि सागर अन्तर भए, शीतल-जिन भए। शीतल-जिनके पीछे, अरु श्रेयांसनाथके बीचि अन्तर, छयासठि लाख बीस हजार वर्ष घाटि एक कोड़ि सागर। श्रेयांस-जिनके पीछे चौवन सागर अन्तर भए, वासुपूज्य-जिन भए। और वासुपूज्य पीछे, तेतीस सागर अन्तर तैं विमल-जिन भए। विमल पीछे, नो सागर अन्तर तैं, अनंत-जिन भए। अनन्तनाथ पीछे, आधा अल्प काल व्यतीत भए धमनाथ भए। धर्मनाथ पीछे, पौन पल्य घाट तीन सागर अन्तर भए शांतिनाथ भए। शांतिनाथ पोछ आधा पल्यका अन्तर भए कुन्थनाथ भए। कुन्थनाथ पीछे, हजार कोड़ि वर्ष घाट, पाव पल्य अंतर भए अरहनाथ भये अरहनाथ पीछे हजार कोड़ि वर्ष अंतर भए, मल्लिनाथ भये। मल्लिनाथ पीछे चौवन लाख वर्ष अंतर भये, मुनिसुव्रत-जिन हुए। मुनिसुव्रत पीछे, छह लाख वर्ष अन्तर भये, नमि-जिन हुए। नमिनाथ पीचे पचास लाख वर्ष अन्तर भए, नेमिनाथ भए। नेमिनाथ पीछे पौने चौरासी हजार वर्ष अंतर भये, पार्श्वनाथ भए। अरु पार्श्वनाथ पीछे, अढ़ाई सौ वर्षका अंतर पड़े वर्द्धमान-जिन भए। ऐसे चौबीस जिनके तेबीस अन्तराल कहे। सो महावीर मोक्ष पधारे, तब चौथे कालके तीन वर्ष साढ़े आठ महिना, बाकी थे। चौथा काल ब्यालीस हजार वर्ष घाटि एक क्रोड़ा-कोड़ी सागरका है। तहां ब्यालीस हजार वर्षमें इक्कीस हजार वर्षका पंचमकाल है। अरु इक्कीस

हजार वर्षका छठ्ठा काल है। सो पंचमकालके अंत पर्यंत, महावीरका धर्म है छठ्ठे कालमें, धर्मका अभाव है, इति चौवीस-जिन अंतर॥ आगे धर्मका विरह-काल कहिए है-तहां वृषभदेवसूं लगाय, पुष्पदंत पर्यंत तो धर्म अखण्ड चल्या। कबहूं श्रावक कबहूं मुनि कबहूं केवलज्ञानी भया करैं। तिनके प्रसाद तैं धर्मोपदेश भया करया। अंतराल नाहीं पड़्या। पुष्पदंतके पीछे पाव पल्य तांईं धर्मका अन्तर भया। और शीतलनाथके पीछे आध पल्य तांईं, धर्मका विच्छेद भया। और श्रेयांस-जिन पीछे, पौन पल्य तांईं, धर्मका विच्छेद भया। वासुपूज्य पीछे, एक पल्य तांईं धर्मका विच्छेद हुआ। विमलनाथ-जिन भए। विमल-जिन पीछे पौन पल्य धर्मका अभाव भया पीछे अनन्तनाथ भए। अनन्तनाथ पीछे आध पल्य धर्मका विच्छेद भया। और धर्मनाथ पीछे पाव पल्य, धर्मका अभाव भया। ऐसे तीर्थंकरोंके अन्तरालमें च्यारि पल्य तांईं, मुनि अर्जिका, श्रावक, श्राविका, च्यारि संघका अभाव रह्या। जिन-धर्म मिट गया। जब तीर्थंकर प्रगटे, तब फेरि धर्म चल्या। ऐसा अन्तर भया। और प्रथम तैं आठ तीर्थंकरोंके समय, निरंतर धर्म रह्या। और पहिले तीर्थंकर तैं लगाय सात तीर्थंकर पर्यंत, तौ केवलज्ञान रूपी संपदा, निरंतर चली आई। केवलज्ञानका कबहूं अन्तर नहीं भया। चन्द्रप्रभ पीछे, नव्वे केवली भये। बाकी कालमें केवली नहीं रहे, मुनि ही रहे। पुष्पदंतके पीछे भी, नव्वे केवली भये। शीतलनाथके तीर्थमें चौरासी केवली भये। श्रेयांस पीछे इनके तीर्थमें ७२ केवली भये। वसुपूज्य पीछे, इनके तीर्थमें चवालीस केवली भये। विमलनाथ पीछे इनके तीर्थमें, चालीस केवली भये। अनन्तनाथ पीछे छत्तीस केवली भये। धर्मनाथ पीछे बत्तीस केवली भये। कुन्थनाथ पीछे, चौबीस केवली भये। अरहनाथ पीछे सोलह केवली भये। मुनिसुव्रत पीछे बारह केवली भये। नमि पीछे, आठ केवली भये। नेमि पीछे, च्यारि केवली भये। पार्श्वनाथ पीछे तीन केवली भये। महावीर पीछे तीन केवली भये। ऐसे चौवीस तीर्थंकरोंके पीछे, जेते-जेते केवली भये, तिनकी संख्या कही सो जहां लूं दूसरे तीर्थंकर नहीं उपजे, तेते काल पहिले तीर्थंकरका वारा (तीर्थ) कहिये। जैसे प्रथम तीर्थंकर पीछे अजितनाथ उपजे, तब लौं पचास लाख कोड़ि सागर, प्रथम-जिनका काल समझना।

ऐसा सर्वत्र जानना। महावीर पीछे बासठ वर्षमें तीन केवली भये। तिनके नाम-गौतम गणधर केवली, सुधर्माचार्य केवली और तीसरे जम्बूस्वामी अन्तके केवली भये। यहां तैं आगे केवली नाहीं। इन जम्बूस्वामी पीछे, सौ वर्षमें ग्यारह अङ्ग, चौदह पूर्वके पाठी आचार्य हुए। जिनके नाम सुनहु-विष्णु, नन्दमित्र, अपराजित गोवर्धन और भद्रबाहु। ए पांच आचार्य, महा बुद्धि सागर, सर्व श्रुतके पाठी भये। और इनके पीछे एक सौ तिरासी वर्षमें ग्यारह आचार्य और होंयगे सो ग्यारह अंग अरु दश पूर्वके पाठी होंगे। तिनके नाम-विशाख प्रोष्ठल, क्षत्रिय, जयसेन, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतषेण, विजय, बुद्धिमान, गंगदेव, और धर्मसेन। इनके आगे, पूर्वनके पाठी नाहीं। इन आगे दोय सौ बीस वर्षमें पांच आचार्य, ग्यारह अंगके पाठी होंयगे। तिनके नाम-निषध, जयपाल, पाण्डव, ध्रुवसेन, और कंस इन तांईं ग्यारह अंगका ज्ञान रहेगा। आगे इनके पीछे, सुभद्राचार्य, यशोभद्राचार्य, भद्रबाहु आचार्य, लोहाचार्य ए च्यारि मुनि, एक सौ अट्ठारह वर्षमें एक आचारांगके पाठी होंयगे। इन आगे, अंगनका ज्ञान नाहीं। आगे कहे महावीरके गणधर ग्यारह तिनकी आयु कहिए है—पहिले गणधरकी आयु, बानवै वर्ष है। दूसरेकी, चौरासी वर्षकी है। तीसरेकी आयु, अस्सी वर्ष। चौथेकी, सौ वर्ष। पांचवेंकी, तियासी वर्ष। छटवेंकी पिचासी वर्ष। सप्तमकी अठत्तर वर्ष। अष्टमकी, ७२ वर्ष। नववेंकी ६० वर्ष। दशवेंकी, ५० वर्ष। और ग्यारहवेंकी, ४०। ये गणधरनकी आयु कही। ऐसे चौबीस-जिनका-संघ कह्या। आगे जब तीजे कालमें, पल्यका अष्टम भाग बाकी रह्या, तब चौदह कुलकर भये। तिनके नाम-प्रतिश्रुत, सन्मति, क्षेमंकर क्षेमंधर सीमंकर सीमंधर, विमलवाहन, चक्षुष्मान यशस्वी, अभिचन्द्र चन्द्राभ, मरुदेव प्रसेनजित और नाभिराय। अब इनकी आयु-कायादिक रचना कहिये है तहां पहिला कुलकर प्रतिश्रुत, ताकी अट्ठारह सौ धनुष काय। इनके समय ज्योतिषी जातिके कल्पवृक्षनकी ज्योति कछू मन्द भई। सो सूर्य—चन्द्रमा दीखते भये। तिनकूं देख, प्रजा डरी। जो ये कहा है? तब कुलकर तैं पूछी हे प्रभो! ये कहा! अबतक कभूं नहीं दीखे, सो ये हमारा कहा करैंगे, सो कहो। तब कुलकर महा विवेकी सर्व कूं सम्बोधे। कहो-भय मति करो। ये ज्योतिषी देवनके इन्द्र हैं। इनके विमान, अनादि-निधन

हैं। अब ताईं, कल्पवृक्षन की प्रभा तैं नहीं दीखते थे सो अब वृक्षनकी ज्योति मंद भई तातैं दीखे। खेद-कारी नाहीं। ऐसे संबोध, प्रजा कौं सुखी किया ॥ १ ॥ दूसरे कुलकर की काय १३०० धनुष। इनके काल में, ज्योतिषी जातिके कल्पवृक्षन की प्रभा, मंद भई। तब तारा-नक्षत्रनके विमान दीखे। तिनकूं देख, भोरी दुनियां डरी। तब जाय कुलकर पै पूछी। तब कुलकरने सर्व भेद बताया सुखी किये। तातैं: सन्मति नाम भया ॥ २ ॥ तीसरे कुलकरकी काय, आठ सौ धनुष। याके समय सिंहादिक जीव क्रूर भये। तिनकूं देख, भोरे लोक डरते भये। तब कुलकर कूं पूछी। प्रभो अब ताईं इन जीवनतैं रमै थे सो नाना सुख होय था। अब ये भय करि, मारैं हैं। तब कुलकर लोकन कूं भोरे-सरल परिणामी जानि कही। तुम इनका विश्वास मति करौ। लष्ट-मुष्ट तैं निवारौ। ऐसे कह सुखी किये। सो इनका नाम, क्षेमङ्कर कह्या ॥ ३ ॥ और चौथे कुलकरके समय, शरीर की उतंगता, सात सौ पचहत्तरि धनुष है। याके समय सिंहादिक जीव क्रूर भये। तब कुलकर कही तुम लाठी राखौ। आवै तब मारौ। विश्वास मति करौ। काल दोष तैं, आगे विशेष क्रूर होंयगे। ऐसे उपाय बताय सुखी किये। तातैं क्षेमंधर नाम भया ॥ ४ ॥ पंचम कुलकरके समय, काय सात सौ पचास धनुष रही। कल्पवृक्ष घटि चले। कोऊके कैसा कल्पवृक्ष नाहीं, कोऊ कैसा नाहीं। इसमें परस्पर खेद करते भये। तब कुलकर पै गये। सो कुलकर ने, अपनी-अपनी सीमा बताय दई। जो अपने-अपने क्षेत्रमें होय सो भोगौ। और दूसरेकी सीमाका, ताकी आज्ञाके विना मति लावौ। आपस में याच लेव। जो फल जाके नहीं होंय सो वापै लोनौं और वांके जो फल नहीं होंय, सो वाकौं दीये। ऐसे उपाय कर सीमा बांधी। तातैं सीमंकर नाम पाया ॥ ५ ॥ छट्ठे कुलकरकी काय, सात सौ पचीस धनुष है। इनके समय, कल्पवृक्ष विशेष घटि चले। तब परस्पर लोग खेद करि कषाय रूप होने लगे। तब कुलकर ने, अपने-अपने कल्पवृक्षके चिन्ह कर दिये सो जो जाके चिन्हका है सो ही भोगै। तातैं इनका नाम, सीमंधर भया ॥ ६ ॥ सातवें कुलकर की काय की ऊंचाई, सात सौ धनुष की थी। याने लोकन कूं, हस्ती-घोटकन की असवारी बताई। तातैं इनका नाम, विमलवाहन भया ॥ ७ ॥ आठवें कुलकरका शरीर छह सौ पचत्तरि

धनुष है। इनके समय माता-पिता, बालकका मुख देख मरण करते भये। पहिले माता-पिता पुत्रका मुख नहीं देखै थे। सो अष्टम कुलकर तैं देखते भये ॥ ८ ॥ और नवबैं कुलकरका शरीर छह सौ पचास धनुष भया। याके समय माता-पिता बालक भये पीछे केतेक काल जीवते भये ॥ ६ ॥ दशवैं कुलकर का शरीर छह सौ पच्चीस धनुष भया। याके समय माता—पिता बालकन कूं लेकर चन्द्रमादि की समस्या करि रमावते भये ॥ १० ॥ और ग्यारहवें कुलकर का शरीर छह सौ धनुष भया। याके समय में परिवार सहित लोक बहुत जीवते भये ॥ ११ ॥ बारहवें कुलकर का शरीर पांच सौ पचत्तरि धनुष है। अब लोग पुत्र सहित सुखी होते भये ॥ १२ ॥ और तेरहवें कुलकर का शरीर पांच सौ पचास धनुष ऊंचा था। ता समय बालक जर सहित उपजते भये। ताहि देख लोग डरे। तब कुलकर कूं जर सहित बालक दिखाया। सो याने जरा—छेदने की विधि बताई ॥ १३ ॥ और चौदवों कुलकर नाभि राय भये। सो इनके समय बालक नाभि (नाल) सहित होने लगे। तब-नाभि छेदवे की कला इनने बताई। तातें नाभिराय भये। इनका शरीर पांच सौ पच्चीस धनुष भया ॥ १४॥ ऐसे चौदह कुलकर महा बुद्धिमान् इनमें स्वमेव ही अनेक कला-चतुराई होय। महा सौम्यदृष्टी, मंद-कषायी होंय। ऐसे पल्यके आठवें भाग कालमें, कुलकर चौदह भये। पीछे तीसरे कालके तीन वर्ष साढ़े आठ महिना बाकी रहे तब श्री आदिनाथ का निर्वाण-कल्याणक भया। चौथे कालके तीन वर्ष साढ़े आठ महिना बाकी रहे, तब अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामीका निर्वाण कल्याणक भया। महावीरके मोक्ष गये पीछे इक्कीस हजार वर्षके पंचमकालमें इक्कीस कलंकी होंयगे। इनके बीचि, इकईस उपकलंकी होंयगे। भावार्थ-इक्कीस हजार वर्षका पंचमकाल है। तामें हजार वर्ष भये एक कलंकी होंयगे। ता पीछे पांच सौ वर्ष पीछे एक उपलंकी होंयगे। ता पीछे पांच सौ वर्ष गये एक कलंकी होंयगे। ऐसे हजार हजार वर्ष गये कलंकी हजार हजार वर्ष गये उपकलंकी जानना। बहुत उपद्रवी, घने-क्षेत्रके धर्म-घातक होंय, सो कलंकी कहिये। अरु अल्प-क्षेत्रके धर्म-घातक होंय सो उपकलंकी कहिये। सो कलंकी-उपकलंकी सब ही पापांधकारके उदय करवे कौं रात्रि समान होंयगे। इनके राज्यमें

धर्मरूपी सूर्यका प्रकाश; मिट जायगा। पापका अधिकार रहेगा सो पाप-मूर्ति, धर्मके घातक फल तैं, अशुभ गति गमन करेंगे। ऐसे कुलकर व कलंकी कथन कह्या ॥ आगे बारह चक्रवर्तीन की आयु कहिये हैं-तहां भरत चक्रीकी आयु चौरासी लाख पूर्वकी। तामें कुमारकाल सतत्तर लाख पूर्व है। महामण्डलेश्वर पदका राज्य चालीस हजार वर्ष। पीछे चक्ररत्न उत्पन्न भया। पीछे दिग्विजय, साठ हजार वर्ष। राज्य एक लाख वर्ष घाटि, छह लाख पूर्व। संयमकाल, अन्तर्मुहूर्त। केवलज्ञान सहित किंचित ऊन एक लाख पूर्व रह के सिद्ध भए ॥ १ ॥ दूसरे सगर चक्री की आयु बहत्तरि लाख पूर्व। तामें इनका कुमारकालादि यथायोग्य जान लेना ॥ २ ॥ तीसरा चक्री मघवा नाम। ताकी आयु पांच लाख वर्ष। तामें कुमारकाल, पच्चीस हजार वर्ष। मण्डलेश्वर पद, पच्चीस हजार वर्ष। पीछे चक्र लाभ भए दिग्विजय, दश हजार वर्ष। राज्य, तीन लाख नव्वे हजार वर्ष। संयमकाल, पचास हजार वर्ष बाद, स्वर्गलोक गए ॥ ३ ॥ चौथे चक्री, सन्तकुमार। ताकी आयु, तीन लाख वर्ष। तामें कुमारकाल, पचास हजार वर्ष। मण्डलेश्वर पद पचास हजार वर्ष। पीछे चक्र लाभ तैं दिग्विजय, दश हजार वर्ष। राज्यावस्था, नव्वे हजार वर्ष। संयमकाल, एक लाख वर्ष। पीछे स्वर्ग गमन किया ॥ ४ ॥ पंचम शान्तिनाथ-जिन, चक्री। तिनकी आयु एक लाख वर्ष। तामें कुमारकाल, पच्चीस हजार वर्ष। मण्डलेश्वर पद, पच्चीस हजार वर्ष। दिग्विजय आठ सो वर्ष। चक्री पद, चोवीस हजार दोय सौ वर्ष। संयमकाल, सोलह वर्ष। सोलह वर्ष घाटि पच्चीस हजार वर्ष, समोशरण सहित विहार किया। पीछे सिद्ध भए ॥ ५ ॥ छट्ठे कुंथनाथ—जिन चक्री। तिनकी आयु, पंचाणवे हजार वर्ष। तामें कुमारकाल, पोने चौबीस हजार वर्ष। मण्डलीक राज्य पद, पौने चौवीस हजार वर्ष। दिग्विजय, छह सो वर्ष। चक्री पद, तेबीस हजार डेढ़ सौ वर्ष। संयमकाल, सोलह वर्ष। केवल अवस्था, सोलह वर्ष घाटि पौने चौबीस हजार वर्ष। पीछे मोक्ष गये ॥ ६ ॥ सातवें अहरनाथ—जिन, चक्री। तिनकी आयु, चौरासी हजार वर्ष। तामें कुमारकाल, इक्कीस हजार वर्ष। मण्डलीक राज्य पद, इक्कीस हजार वर्ष। दिग्विजय, च्यारि सौ वर्ष। चक्री पद, बीस हजार छह सौ वर्ष। संयमकाल, सोलह वर्ष। सोलह वर्ष घाटि, इक्कीस हजार वर्ष,

केवलज्ञान सहित उपदेश दिया। पीछे लोक शिखर विराजे॥ ७॥ आठवां चक्री, सुभूमि। ताकी आयु, अड़सठ हजार वर्ष। तामें कुमारकाल, पांच हजार वर्ष। और दिग्विजय, पांच सौ वर्ष। चक्री पद, बासठ हजार पांच सौ वर्ष। अरु यह बाल्यावस्थामें, परशुरामके भय तैं सन्यासीनके आश्रम विषैं गोप रहे। तातैं बैराग्य नहीं भया। राज्यावस्थामें मरण किया सो महातम नाम, सप्तम लोक-पातालमैं पधारे॥ ८॥ नौवें, महा पद्म चक्री। ताकी आयु, तीस हजार वर्ष। तामें कुमारकाल, पांच सौ वर्ष। मण्डलीक पद, पांच सौ वर्ष। तीन सौ वर्ष, दिग्विजय। चक्री पद, अट्ठारह हजार सात सौ वर्ष। संयमकाल, दश हजार वर्ष। याहीमें मुनिपद अरु केवलपद पाय, पीछे सिद्ध भये॥ ९॥ दशवें सुषेण चक्री। तिनकी आयु, छब्बीस हजार वर्ष। तामें कुमारकाल, सवा तीन सौ वर्ष। दिग्विजय, डेढ़ सौ वर्ष। चक्री पद, पच्चीस हजार एक सौ पचत्तरि वर्ष। संयमकाल, साढ़े तीन सौ वर्ष। तामें दीक्षा अरु केवलज्ञान दोऊ आय गये। पीछे मोक्ष गये॥ १०॥ ग्यारहवें जयसेन चक्री। तिनकी आयु, चौबीस सौ वर्ष। तामैं कुमार-काल, सौ वष। दिग्विजय, सौ वर्ष। चक्री पद-राज्य, अट्ठारह सौ वर्ष। संयम-काल, केवलज्ञान सहित च्यारि सौ वर्ष॥ ११॥ बारहवां ब्रह्मदत्त चक्री। ताकी आयु, सात सौ वर्ष। ये चक्री नेमिनाथके पीछे, अरु पार्श्वनाथके पहिले, इस अंतरालमें भये। सो इनका कुमारकाल, अट्ठाबीस वर्ष। मण्डलीक पद, छप्पन वर्ष। दिग्विजय, सोलह वर्ष। चक्री पदका राज्य, छह सौ वर्ष। इन्हो ने दीक्षा नहीं लीनी। राज्यपदमें मरण करि, सप्तमी माघवी-धरा पधारे॥ १२॥ यह बारह चक्रीकी, आयुकी, विगत कही। सो इनमें, आठ चक्री तो सिद्ध भये। दोय, स्वर्ग लोक गए। दोय पाताल-धरा पधारे। आगे नव, अर्द्ध चक्रीनका कथन कहिए है—प्रथम वासुदेव-त्रिपिष्टको आयु, चौरासी लाख वर्ष। तामें कुमारकाल पच्चीस हजार वर्ष। दिग्विजय काल एक हजार वर्ष। अरु राज्यपद तियासी लाख चुहत्तर हजार वर्ष॥ १॥ दूसरा वासुदेव-द्विपिष्ट। ताकी आयु बहत्तरि लाख वर्ष। तामें कुमार-काल पच्चीस हजार वर्ष। मण्डलेश्वर पदका राज्य पच्चीस हजार वर्ष। दिग्विजयका काल सौ वर्ष। अरु वासुदेव पद इकत्तरि लाख गुणचास हजार नौ सौ वर्ष॥ २॥ तीसरा वासुदेव स्वयम्भू। ताकी

आयु साठ लाख वर्ष। ताका कुमारकाल पचीस सौ वर्ष। अरु मण्डलीक पद पचीस सौ वर्ष। दिग्विजय नब्बे वर्ष। अरु तीन खंडका राज्य गुणसठि लाख चौरानवै हजार नव सौ दश वर्ष ॥ ३ ॥ अरु चौथा वासुदेव पुरुषोत्तम। ताकी आयु तीस लाख वर्ष। तामें कुमार-काल सात सौ वर्ष। मण्डलीक राज्य-पद तेरा सौ वर्ष। दिग्विजय अस्सी वर्ष। तीन खण्डका राज्य गुणतीस लाख सत्यानवे हजार नव सौ बीस वर्ष ॥ ४ ॥ पंचम वासुदेव सुदर्शन। ताकी आयु दश लाख वर्ष। तामें कुमार-काल तीन सौ वर्ष। मण्डलीक पद सौ वर्ष। दिग्विजय सत्तरि वर्ष। और चक्री पद नौ लाख निन्यावे हजार पांच सौ तीस वर्ष ॥ ५ ॥ और छठा, पुण्डरीक वासुदेव भया। ताकी आयु पैंसठ हजार वर्ष। तामें कुमार-काल, अढ़ाई सौ वर्ष। मण्डलीक पद, अढ़ाई सौ वर्ष। दिग्विजय, साठ वर्ष। तीन खण्डका राज्य, चौंसठ हजार च्यारि सौ चालीस वर्ष ॥ ६ ॥ और सातवां, दत्त नाम नारायण। ताकी आयु बत्तीस हजार वर्ष। तामें कुमार-काल, दोय सौ वर्ष। मण्डलीक पद पचास वर्ष। दिग्विजय, पचास वर्ष। तीन खण्डका राज्य, इकतीस हजार सात सौ वर्ष ॥ ७ ॥ और आठवां वासुदेव लक्ष्मण। ताकी आयु बारह हजार वर्ष। कुमार-काल, सौ वर्ष। दिग्विजय काल, चालीस वर्ष। अरु राज्य काल, ग्यारह हजार आठ सौ साठ वर्ष ॥ ८ ॥ और नववां वासुदेव, कृष्णदेव। ताकी आयु, एक हजार वर्ष। तामें कुमार-काल, सोलह वर्ष। मण्डलीक पद छप्पन वर्ष। दिग्विजय आठवर्ष। अरु वासुदेव पद,का राज्य, नौ सौ बीस वर्ष ॥९॥ ये नव वासुदेवकी आयुका विस्तार कह्या। आगे आठवें, नववें नारायण के पिता-दादादिक पुरुषन के नाम। इन के पुत्रन के नाम। इन के समय जो बड़े-बड़े महान राजा भये, तिनके नाम कहिये हैं। आठवें नारायणकी तीन पीढ़ी कहिये हैं— तहां आगे अनेक राजान करि वन्दनीक, सूर्य समानि तेज का धारी, प्रजा का माता-पिता महा न्यायवान्, रघु राजा भया। तिन तैं रघुवंश प्रगट भया। ताके वंशमें, बड़े-बड़े राजा भये। सो प्रजा-पालक, न्यायके प्रभाव तैं, तिनका यश प्रगट भया। पीछे सांसारीक सामग्री विनाशीक जानि, पुत्रनकूं पुरदेशनका राज्य सौंप दीक्षा धरि-धरि, स्वर्ग-मोक्षकूं गये। ऐसे अनेक राजा भये। तिनके पीछे राजा अनिरन्य

भये। सो न्यायके सूर्य प्रजारूपी कमलकूं सूर्य समान आनन्दकारी, तिनकैं राजा दशरथ, यशकी मूर्ति होते भये। सो ए, राजा अनिरन्यके पुत्र राजा दशरथ, महा प्रतापी भये। जिनके तेजके आगे, बैरी रूपी सरोवर सूखते भये। महा न्यायका जहाज भया। पीछे दशरथजीके च्यारि महादेवी, परमसती, देवीनके रूपकूं जीत-नहारी, रानी होती भईं। तिन रानीके नाम कौशल्या, सुमित्रा, कैकई, और सुप्रभा। ये च्यारि महा भाग-वन्ती रानी, इनके च्यारि पुत्र भये। सो कौशल्याके गर्भ तैं तौ, श्रीरामचन्द्रजीका अवतार भया सो बलभद्र भये। सुमित्राके गर्भ तैं, श्री लक्ष्मण कुमार अवतार पावते भये सो ए नारायण भए। कैकईके गर्भ तैं, भरत नाम कुमार भए। सुप्रभाके गर्भ तैं शत्रुघ्न कुमार अवतरते भए। ए च्यारों पुत्र, न्यायके जहाज पृथ्वी, रूपी मन्दिरके स्तंभनकूं, च्यारि स्थंभ ही होते भए। और श्रीरामचन्द्रके दोय पुत्र भए। तिनके नाम लव, और अंकुश इन दोय पुत्रनने, सीताजीके गर्भ तैं अवतार पाया। ए रघुवंशी कहाए इति रघुवंश आगे इन रामलक्ष्मणके समयमें जो-जो रावणादि राजा भए। तिनकी परम्पराय (वंश) कहिए है-तहां भीम नाम राक्षसने मेघवा-हनकूं, पूर्व-भवका पुत्र जानि, लंका, पाताल लंका, राक्षस-विद्या, और नव रतनका हार दिया। पीछे, अनेक राजा भए। ता पीछे राक्षस नाम राजा भया। इनने राक्षसवंश चलाया। पीछे अनेक राजा भए। सो यह विद्याधरनका वंश, आकाश समान निर्मल तामें महा प्रतापी राजा सुकेत भए। ता सुकेतके, तीन पुत्र भए। माली-सुमाली और माल्यवान्। सो माली तौ, इन्द्र नाम विद्याधरसे युद्धमें मार्‍या परया। और सुमालीके, रत्नश्रवा नाम पुत्र भया सो वंशका उजागर, तानै न्याय सहित राज्य किया। अरु रत्नश्रवाकी पट्टरानी केक-सीतके उदर तैं तीन पुत्र भए। दश मुख, कुंभकर्ण, चंद्रनखा पुत्री, पीछे विभीषण पुत्र भया। ए तीन पुत्र और एक पुत्री, रत्नश्रवाके भए। सो ए तीनों भाई देव समान रूप, गुण व पराक्रमके धारी भए। रावणके दोय पुत्र इन्द्रजीत मेघनाद, मंदोदरीके गर्भ तैं भए। मंदोदरीका पिता राजा मय, महा सामंत, अनेक विद्या-धरनका नाथ भया और मेघप्रभा नाम विद्याधर ताके पुत्र खरदूषणने, रावणकी बहिन चन्द्रनखाकौं, बलात्कार हरी। पीछे चन्द्रनखाकूं, खरदूषणने परणीं यह खरदूषण भी महा योद्धा है। अरु चन्द्रोदय राजाका पुत्र

विराधित, सो रावणका महा सामंत है। और विजयार्द्ध पर रथनूपूर, इन्द्र लोक समान पुर है सो ताका राजा संश्रार है। ताके इन्द्र नाम पुत्र भया सो महा वली भया। ताने अपने सेवक विद्याधरनकौं, देवनके नाम थापे। और अपना नाम इन्द्र धरया। उस महावलीने, रावणके दादा मालीकूं, युद्ध में मारया। ता पीछे रावण महा प्रतापी, पराक्रमी भया सो अपने दादाका वैर लेवेकूं, इन्द्रसूं युद्ध किया सो युद्धमें जीत्या। ता इन्द्रकूं, जीवता ही पकड़ि ल्याया। पीछे कही, मेरे घर पानी भरौ, तौ छोडूं। तव इन्द्र नाम विद्याधरने, मान तजि कही, भरूंगा। ऐसी कही, तव इन्द्रकूं रावणने तज्या सो इन्द्रने संसार तैं उदास होय, राज्य तजि, दीक्षा धरी। नाना तप किए। जक्षपुरका वैश्रवा नाम राजा। ताके कौशकी पट्टरानी महा सती। ताके गर्भ तैं वैश्रवण नामा पुत्रका अवतार भया सो राजा इन्द्रका मुख्य सेवक सो इन्द्रके संग, यतीश्वर भया। ऐसे इन्द्र रावणका संवंध जानहु। ए राक्षसवंशी रावण है। राक्षस-देव नाहीं। रावण मनुष्य है। आगे, विद्याधरोंमें वानरवंशी हैं तिनकी कथा सुनौ-आगे श्रीकंठ नाम विद्याधर भए। तिनने समुद्रके टापूमें वंदर-द्वीप वसया। ता श्रीकण्ठके कुलमें, राजा अमरप्रभ भए। तिनने ध्वजामें वन्दरका चिन्ह कराया। इससे वन्दरवंशी प्रसिद्ध भए। पीछे अमरप्रभके कुलमें, कहकन्द नामा राजा भए सो कहकन्दके दोय पुत्र भए। सो एकका नाम सूरजरज, अरु दूसरेका ऋष्यरज। सूरजरजकौं, वालि अरु सुग्रीव, ए दोय पुत्र भए। अरु रिष्यरजके, नल अरु नील भए। अरु सुग्रीवके, अङ्ग अरु अंगद, ए दोय पुत्र भए। ए सुग्रीवका वंश कह्या। और इस ही वंश विषैं, राजानका राजा, महा तेजस्वी, अनेक विद्याधरनका नाथ राजा प्रहलाद भया। ताके पुत्र महा पुण्याधिकारी, पवन समान महा वलवान्, राजा पवनंजय भए। तिन पवनंजयके, अञ्जनाके गर्भ तैं महा बड़भागी, चरमशरीरी, हनुमान पुत्र भए। सो कामदेव भए। ए वन्दर-वंशीनका कुल कह्या। ए मनुष्य, महा रूपवान राजा हैं। वन्दर नाहीं हैं। इनका वंश, वन्दर है। ऐसा जानना। ऐसे वन्दर-वंश कह्या॥ इति आठवें नारायणके समयका कथन, सामान्य कह्या। इनका विशेष, श्रीपद्मपुराणजी तैं जानना। आगे नववें नारायण व वलभद्रके कुलकी पट्टावली, तथा इनके समय भये महान् राजा पाण्डवादिक तिनकी उत्पत्ति

कहिये है। तहां मुनिसुव्रत-स्वामीका कुल हरिवंश तामें अनेक कुल-मंडन भये। ता पीछे महाप्रतापी राजा यदु भये। इन तैं यदुवंश प्रगट्या। तिनके कुलमें, राजा नरपति भये। तिनके दोय पुत्र भये। एक शूर, दूसरे सुवीर। सो शूरके, अन्धकवृष्टि नाम पुत्र भये। और सुवीरके, भोजकवृष्टि भये। सो अन्धक वृष्टिके दश पुत्र भये। तिनमें बड़े पुत्रका नाम तो, समुद्रविजय है। अरु सब तैं छोटेका नाम, बसुदेव है। भोजकवृष्टिके तीन पुत्र भये। उग्रसेन, महासेन, और देवसेन सो उग्रसेनके, कंस नाम पुत्र भया। अरु देवसेनके, देवकी नाम पुत्री भयी। समुद्रविजयकैं, जगत-गुरु नेमिनाथ, अवतार लेते भये। सो तप लेय, मोक्ष गये। अरु बसुदेवके, पद्म नाम बलभद्र, नारायण कृष्णदेव, जरत्कुमार, और गजकुमार, ये च्यारि पुत्र भये और कृष्ण महाराजके प्रद्युम्न, शम्भुकुमार और भानुकुमार ये तीन पुत्रभये और अन्धकवृष्टिके, कुन्ती अरु माद्री ए दोय पुत्री भईं। ऐसे राजा यदुका वंश सामान्य कह्या। इति यदुवंश॥ आगे कौरव-पांडव वंश कहिए है। तहां कुरुवंशीनमें, आगे शांतिक-नाम राजा भए। तिनकी शिवकी नाम, महासती रानी भई। ता शिवकीके गर्भ तैं, पाराशर नाम महा-प्रतापी राजा भए। तिनके, गंगा नाम स्त्री होती भई। सो ए, राजा गंगाधरकी पुत्री है। इस गंगाके गांगेय पुत्र भया। सो ए गांगेय, महा न्यायी, बाल-ब्रह्मचारी भए पाराशरको दूसरी रानी, धीवरके घर पलती गुणवती नाम राजकन्या, पाराशरने व्याही। ता गुणवती धीवर पुत्री, ताकैं व्यास नाम राजा अवतरे सो ए महा गुणवान राजा भए। तिनके सुभद्रा नाम रानी भई। ताके गर्भ तैं, व्यास राजाके तीन पुत्र भए। धृतराष्ट्र, पाण्डवकुमार और विदुर। सो धृतराष्ट्रके दुर्योधन, दुश्शासनादि पुत्र भए। पाण्डवने, अन्धकवृष्टिजीको, कुन्ती और माद्री ए दोय पुत्री परणी। सो कुन्तीके, च्यारि पुत्रभए। सो बड़े तौ कर्ण, सो इनको बालपनेमें संदूकमें धरि जलमें बहाए थे॥ सो चन्द्रपुरीमें, राजा सूर्यके यहां पले। ए गुप्त भए थे। तातैं पर घर पले। पीछे कुन्तीके, तीन पुत्र और भए। युधिष्ठिर, भीम, और अर्जुन। अरु माद्रीके नकुल सहदेव ए दोय भए। अरु अर्जुनके, अभिमन्यु नाम पुत्र भया। ऐसे कौरव पाण्डवनकी उत्पत्ति कही। इति पाण्डव-वंश, सामान्य कथन॥ आगेद्रोणाचार्यकी वंश-पट्टावली कहिए है। तहां वंश तौ भार्गव है। तामें वामदेव,

महा विद्यातिलक भए। ताकैं, कापिष्टल-पुत्र भया। तिनकैं यशस्थामा पुत्र भया। ताकैं, श्रवर नाम पुत्र भया। ताकैं, सरासर नाम पुत्र भया। ताकैं द्रावण नाम पुत्र भया। ताकैं विद्रावण पुत्र भया। ताकैं, द्रोणाचार्य भए, ताकैं अश्वत्थामा पुत्र भया। इति द्रोणाचार्य कुल ॥ आगे जरासिन्धुकी पट्टावली कहिए है—हरिवंशके वसुके मगधदेशका राजा निहतशत्रु भया। तिनके राजा सतिपति भए। तिनके, वृहद्रथराजा भए। तिनके, राजा जरासिंधु और अपराजित राजा भए। सो जरासिंधु नववां प्रतिहर भया। ताकै, कालयमन पुत्र भया। यह जरासिंधुका वंश कह्या। इति नववें नारायणके समयके पुरुषनका कथन ॥ आगे सगर चक्रीका वंश कहिए है। तहां इक्ष्वाकु तो वंश है। आदि-जिनके पीछे, असंख्यात राजा भए। ता पीछें, राजा धरणीधर तिनके, तिरयशजय भये। तिनके पुत्र, जितशत्रु और विजयसागर ये दोय भए। सो जितशत्रुके तो अजितनाथ भए। अरु दूसरे भाई, विजयसागरकैं, सगर चक्री भए। तिनके, साठ हजार पुत्र भए। और भागीरथजी भये। ऐसा जानना। ए सगर-वंश ॥ ऐसे महान् पुरुषोंकी परिपाटी कही। सो भव्यनकूं मंगलकारी होऊ ॥ आगे ग्यारह रुद्रनका कथन कहिए है। तहां प्रथम भीम नामा रुद्र है। सो आदिनाथके समय भए। ताकी आयु, तियासी लाख पूर्वकी है। शरीरकी ऊंचाई, पांच सौ धनुष है ॥ १ ॥ दूसरा जयतिशत्रु नाम। सो अजितनाथके समय भया। इनकी आयु, इकत्तरि लाख पूर्व। शरीरकी ऊंचाई साढ़े च्यारि सौ धनुष है ॥२॥ तीसरा, नववें तीर्थंकरके समय भया, सो रुद्र नामका रुद्र है। इनकी आयु, दोय लाख पूर्वकी है। काय, सौ धनुष है ॥३॥ चौथा रुद्र, विश्वानल है। सो दशवें तीर्थंकरके समय भया। आयु, एक लाख पूर्व। कायकी ऊंचाई नब्बे धनुष ॥४॥ पांचवां रुद्र, सुप्रतिष्ठ है। सो श्रेयांस तीर्थंकरके समय भया। याकी आयु, चौरासी लाख वर्ष। काय उतंग ८० धनुष है ॥ ५ ॥ और छठवां रुद्र, वासुपूज्य-जिनके समय भया। ताका नाम, अचल रुद्र है आयु, ताकी, साठ लाखवर्ष हैं। काय सत्तर धनुषकी है ॥ ६ ॥ सातवां रुद्र, पुण्डरीक नाम सो विमलनाथके समय भया। ताकी आयु, पचास लाख वर्ष है। काय, साठ धनुष है ॥ ७ ॥ और आठवां, अजितधर नाम रुद्र। सो अनन्तनाथके समय भया। ताकी आयु, चालीस लाख वर्ष है। काय, पचास धनुष

है ॥ ८ ॥ नववां रुद्र, जितनाभि है सो धर्मनाथके समय भया। ताकी आयु, बीस लाख वर्ष। काय, अट्ठाईस धनुष है ॥ ९ ॥ दशवां रुद्र, पीठि नाम है सो शांतिनाथके समय भया। ताकी आयु, एक लाख वर्ष। काय, चौबीस धनुषकी है ॥ १० ॥ ग्यारहवां रुद्र, सात्यकी है सो अन्तमें महावीरके समय भया। आयु ताकी गुणत्तरि वर्ष है। काय, सात हाथकी है ॥ ११ ॥ ये सर्व रुद्र, ग्यारह अङ्ग व दश पूर्वके पाठी होंय हैं। और जिनका क्रोध रूप, सहज स्वभाव है। इन ग्यारहोंका हो कुमारकाल, संयम काल, संयम छूटनेका काल असंयम-काल हो है। ये पहिले संयम धारें हैं। अनेक तप, बल, तैं, इनकी ज्ञान शक्ति ऋद्धिशक्ति बधै-प्रगटै है। तब पीछे भोगाभिलाषी, मानार्थी होय, संयम तजैं हैं। ऐसा सर्व रुद्रनका सहज-स्वभाव जानना। इति रुद्र कथन ॥ आगे नव नारदका स्वरूप कहिये है। ये नव नारद हैं, सो नारायणके समय ही होंय। सो तिनकी आयु—काय, नारायण बलभद्र प्रमाण जानना। सो तिनके नाम सुनहु-भीम महाभीम, रुद्र, महारुद्र काल, महाकाल, दुमुख, नरक-मुख, और अधोमुख। इति नारद नाम ॥ आगे चौबीस कामदेवके नाम कहिये हैं। बाहुबलि, अमिततेज, श्रीधर, दश-भद्र, प्रसेनजित, चन्द्रवर्ण, अग्निमुक्त, सनत्कुमार, वत्सराज, कनकप्रभ, मेघवर्ण, शांतिनाथ, कुंथनाथ, अरहनाथ, विजयराज, श्रीचन्द्र, नलराजा, हनूमान, बलिराजा, वासुदेव, प्रद्युम्न नागकुमार, श्रीपाल, और जम्बूस्वामी। ए चौबीस कामदेव कहे। ऐसे तीर्थंकरादिका स्वरूप कह्या। सो अन्तके महावीर स्वामीके मोक्ष गये पीछे, जब ६०५ वर्ष गये। तब राजा वीरविक्रमादित्य भये। और भगवान्के मोक्ष गये पीछे, हजार वर्ष बाद कलंकी भया। सो या भाँति पंचमकालकी मर्यादामें २१ कलंकी, २१ उपकलंकी, ऐसे ४२ राजा धर्म-नाशक होंयगे। तहां, अन्तका कलंकी, पंचमकालके अन्तमें, जलमथ नाम होयगा। ता समयमें भी च्यारि प्रकारके संघके, च्यारि जीव रहेंगे। तिनके नाम तहां इन्द्रराज नाम आचार्यके शिष्य, वीरांगद नाम यतीश्वर होंयगे ॥ १ ॥ और सर्वश्री नाम अर्जिका हो हैं ॥ २ ॥ अग्निला नामा महा धर्मात्मा श्रावक हो है ॥ ३ ॥ और पंगुसेन नाम श्राविका हो है ॥ ४ ॥ ए मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका, च्यारि मनुष्य, अन्तिम धर्मात्मा हैं। इन पीछे, धर्मी जीवनका अभाव हो है। इनके समय, जलमथ

नामा कलंकी, अपने मंत्रिन तैं पूछेगा। भो मन्त्री! कोई मेरी आज्ञा रहित भी है, अरु सर्व जीव मेरी आज्ञा मानैं हैं? तब मन्त्री कहेंगे। नाथ! तुम्हारी आज्ञा सर्व जीव मानैं हैं। एक वीतरागी मुनि, तुम्हारी आज्ञामें नहीं हैं। तब राजा कहेगा। मुनि कहा करैं हैं? कहां रहैं हैं? तब मन्त्री कहेगा। वनमें रहैं हैं। तन तैं भी निष्प्रेम हैं। शत्रु—मित्र, तृण-कंचन, उन्हें समान हैं। महा वीतराग सौम्यदृष्टी हैं। भोजन समय, श्रावकनके घर अनेक दोष टाल, शुद्ध-प्राशुक आहार लेय ध्यानमें लीन रहैं हैं। सो यती कोईकी आज्ञामें नहीं हैं। तब कलंकी कहेगा। हमारी वस्तीमैं जब भोजन लेय तब प्रथम ग्रास, हासल (कर) का देय। तब मुनिके भोजनमें तैं प्रथम ग्रास लेयगे। तब यती अन्तराय करि वनमें जाय, सन्यास धरि, तीसरे दिन पर्याय छोड़, कार्तिक बदी अमावस्याके दिन, एक सागरकी आयु, सहित स्वर्गमें देव होंयगे। और तब ही ये बात सुनिकरि वाकी आर्यिका, श्रावक, श्राविका, ये तीन जीव संन्यास धरि, ताही स्वर्गमें महा ऋद्धि धारी देव उपजैंगे। ता दिन ही प्रथम पहर, धर्म-नाश होयगा। आर्यखण्डमें धर्मका अभाव होयगा। और ता दिनके मध्यमें, राज्यका नाश होयगा। ताही दिनके अन्त समय अग्नि नाश होयगी। आर्यखण्डमें अग्नि नाहीं मिलेगी। वस्त्र नाश होंयगे। तब सर्व नग्न रहेंगे। और अन्न नाश भये, सर्व जीव मांसाहारी होंयगे। मुनिकों उपसर्ग जानि, असुरेन्द्र आय, कलंकीकों वज्रसे मारेगा। सो मरकर कुगति जायगा। पीछे सर्व अन्ध होंयगे। महाक्रोधी होंयगे। मरकर नरक-पशू होंयगे। तहां ही के आय उपजैंगे। दोय शुभगतिका आवागमन, आर्यखण्ड तैं मिट जायगा। धर्म नाश तैं, सर्व आर्यखण्डके जीव, महा दुखी होंयगे। ऐसे अवसर्पिणीका पंचमकाल पूरा होय। ता पीछे छट्टे कालके २१ हजार वर्ष, महा दुख तैं पूर्ण होंयगे। पीछे जब छट्ठे कालके, ४९ दिन बाकी रहेंगे। तब सात दिन, खोटी-वर्षा होयगी। तिनके नाम-अति तीव्र पवनकी वर्षा होय। ता करि सर्व पर्वत पातउवा (पत्ता) की नांईं उड़ेंगे ॥ १ ॥ बहुत शीतकी वर्षा ॥ २ ॥ खारे जलकी वर्षा ॥ ३ ॥ जहरकी वर्षा ॥ ४ ॥ वज्राग्निकी वर्षा ॥ ५ ॥ वालू-रजकी वर्षा ॥ ६ ॥ धूमकी वर्षा ताकरि अन्धकार होयगा ॥ ७ ॥ इन सात वर्षान तैं, इस क्षेत्रमें प्रलय होयगा। ऐसे सामान्य अवसर्पिणीका व्याख्यान किया ॥ आगे उत्सर्पि-

णीका काल लगेगा। तहां छट्ठे काल लगते ही भली वर्षा होयगी। ताकरि पृथ्वी रस रूप होयगी। आगे प्रलयमें केई जीव, विद्याधर-देवोंने, कर (हाथमें) लेय गंगा-सिन्धु नदीके तट, विजयार्द्धकी गुफामें जाय धरे थे सो अब साता भये आवेंगे। तिन करि फेरि रचना होयगी। तहां उत्सर्पिणीका प्रथम काल लगेगा। तामें रीति, छट्ठे कैसी होयगी। परन्तु या छट्ठे कालमें आयु-कायकी वृद्धि और ज्ञानकी बधवारी होयगी। ऐसे छट्ठे काल केसे २१ हजार वर्ष पूर्ण होंयगे। तब फिर पांचवां, अरु उत्सर्पिणीका दूसरा काल लगेगा। ताके, इक्कीस हजार वर्ष तामें २० हजार वर्ष व्यतीत भये जब एक हजार वर्ष बाकी रहेगा। तब उत्सर्पिणी कालके, चौदह कुलकर होंयगे। तिनके नाम-कनक, कनकप्रभ, कनकराज कनकध्वज और कनकपुञ्ज। ये पांच तो कनक (सोना) समान तनके धारी होंयगे। नलिन, नलिनप्रभ, नलिनराज, नलिनपुञ्ज, और नलिनध्वज, ये पांच, कमलके समान तन के धारी होंयगे। शेष पद्मप्रभु, पद्ममराज, पद्मपुज्य, और पद्मध्वज। ये चौदह कुलकर, पांचवें कालके अंतमें होंयगे। फेरि, चौथा काल लगेगा। सो कोड़ा-कोड़ी सागरका तामें, चौवीस तीर्थंकर होंयगे। तिनके नाम महापद्म, सुरदेव, सुपार्श्व, स्वयंप्रभु सर्वात्मभूत, देवपुत्र, कुलपुत्र, उदंक, प्रौष्ठिल, जयकीर्ति, सुव्रत, अरहनाथ, पुण्यमूर्ति, निःकषाय, विपुल, निर्मल, चित्रगुप्त, समाधिगुप्त स्वयंप्रभ, अनुवृत्तिक, जय, बिमल, देवपाल, और अनंतवीर्य। ये चौवीस-जिन, उत्सर्पिणीके चौथे काल में, धर्म-तीर्थके कर्त्ता, मोह अंधकारके दूर करवे कौं सूर्य्य समान, होंयगे। इति अगामी चौवीस जिन॥ आगे आगामी बारह चक्रवर्ती के नाम कहिये हैं—भरत, दीर्घदत्त, जयदत्त गूढ़दत्त, श्रीषेण, श्रीभूति, श्रीकांत पद्म, महापद्म चित्रवान विमलवाहन, और अरिष्टसेन। आगे अगामी नव नारायणके नाम कहिये हैं-नंद नंदमित्र नंदन, नंदभूति, महाबल, अतिबल, भद्रबल, द्विपिष्ट, और त्रिपिष्ट। ये नव नारायण होंयगे। इनही नारायणके बड़े भाई, आगामी, बलभद्र, होंयगे। तिनके नाम-चंद्र, महाचंद्र, चंद्रधर, सिंहचंद्र, हरिश्चद्र, श्रीचंद्र, पूर्णचंद्र, शुभचंद्र, और बालचन्द्र। ये नव बलभद्र, आगे होंयगे॥ आगे नव प्रतिनारायण होंयगे। तिनके नाम-श्रीकंठ, हरिकंठ, नीलकंठ, अश्वकंठ सुकंठ, शिष्यकंठ अश्वग्रीव, हयग्रीव और मयूरग्रीव। ये नव प्रति

नारायण होंयगे। इति प्रतिनारायण नाम। आगे आगामी ग्यारह रुद्र होंयगे। तिनके नाम प्रमद, सम्मद, हर्ष, प्रकास कामाद, भव, हर मनोभव, मारु काम और अंगज ये ग्यारह रुद्र कहे ॥ ऐसे उत्सर्पिणी में तीर्थंकर, चक्री, नारायण बलभद्र प्रतिनारायण, ये बड़े पुरुष होंयगे ॥ आगे भरतक्षेत्र संबन्धी, अतीत चौबीस-जिन होयगे। तिनके नाम कहिये हैं—निर्वाणनाथ, सागर, महासाधु, विमलप्रभ, श्रीधर, सुदत्तनाथ, अमलप्रभ, उद्धर, अंगिर, सन्मति, सिन्धु, कुसुमांजलि, शिवगण, उत्साह, ज्ञानेश्वर परमेश्वर बिमलेश्वर यशोधर कृष्णमति ज्ञानमति शुद्धमति श्रीभद्र अतिक्रांति और शांति। ऐसे तीन काल संबन्धी, तीन चौबीसी तिनके नाम लेय अंत-मंगल कूं उन्हें नमस्कार किया। ये भगवान् भव्यन कूं मंगल करौ। और इनके माता-पिता आयुका प्रमाण चिन्हका वर्णन कह्या। इनके वारे जो महान नर भये। कामदेव चक्री नारायण बलभद्र प्रतिनारायण कुलकर रुद्र नारद इन आदि ये महान् पुरुष भव्य राशि निकट संसारी इनका भी नाम मंगलकारी है। क्योंकि ये सर्व मोक्षगामी जिनधर्मके पारगामी हैं। इनकी कथा मंगलके अर्थ यहां प्ररूपण करी। इति तीनकाल संबन्धी तीर्थंकरादि त्रेसठ शलाका पुरुषनके नाम ॥ आगे अंत मंगल कौं भरतक्षेत्र संबन्धी सिद्ध-क्षेत्रके नाम कहिये हैं-कैसे हैं सिद्ध क्षेत्र जहां तैं महाव्रतके धारी योगीश्वर शुक्लध्यान-अग्नि करि अष्ट कर्म रूप ईंधन जलाय निरञ्जन होय सिद्ध-क्षेत्र लोकके अंत तहां जाय विराजते जहां अनंत-सिद्ध विराजे हैं। तातें जहांतैं ये प्रभु मोक्ष गए तहां जाय तिन सिद्ध-क्षेत्रन की प्रत्यक्ष बंदना करवे की तौ मो मैं शक्ति नाहीं। तातें इस ग्रन्थके पूर्ण करवे कं अंत मंगलके मिस करि सर्व क्षेत्रनके नाम लेय मंगलाचरण कीजिये है—सो प्रथम ही आदिनाथ का निर्वाणक्षेत्र कैलाश पर्वत है सो अष्टापद कौं नमस्कार होऊ ॥ १ ॥ अजितनाथ आदि बीस तीर्थंकरोंका निर्वाणक्षेत्र सम्मेदशिखर है। ताकौं नमस्कार होऊ ॥ २ ॥ वासुपूज्य-जिनका निर्वाणक्षेत्र, चंपापुरी का बन है ताकूं नमस्कार होऊ ॥ ३ ॥ नेमिनाथ-जिन कूं आदि लेय बहत्तरि कोड़ि मुनिका निर्वाण क्षेत्र गिरनार शिखर ताकौं नमस्कार होऊ ॥ ४ ॥ महावीर का निर्वाण क्षेत्र पावापुरका पर्वत है। ताकूं नमस्कार होऊ ॥ ५ ॥ वरदत्त आदि साढ़े तीन कोड़ि मुनि तारंगा शिखर तैं मोक्ष गये।

तिस क्षेत्रकूं नमस्कार होऊ ॥ ६ ॥ लाड नरेन्द्र आदि पाँच कोड़ि मुनिका निर्वाणक्षेत्र पावागिर है। ताकौं नमस्कार होऊ ॥ ७ ॥ तीन पाण्डवन कूं आदि लेय अष्ट कोड़ि मुनिका निर्वाण क्षेत्र शत्रुंजय क्षेत्र है। ताकौं नमस्कार होऊ ॥ ८ ॥ बलभद्रादि आठ कोड़ि मुनिके मोक्ष होनेका क्षेत्र गजपंथ शिखर ताकौं नमस्कार होऊ ॥ ९ ॥ रामचन्द्र सुग्रीव हनुमान आदि ९९ कोड़ि यतीश्वरोंका निर्वाण क्षेत्र तुंगीगिर है। ता क्षेत्र कूं नमस्कार होऊ ॥ १० ॥ रावणके पुत्रादि साढ़े बारह कोड़ि मुनिका निर्वाण क्षेत्र रेवानदी के तट पर सिद्धवर-कूट है। तिस क्षेत्र कूं नमस्कार होऊ ॥ ११ ॥ इंद्रजीत कुंभकरण रावण के भाई-पुत्र तिनका निर्वाणक्षेत्र चूलिगिर नाम शिखर है। ता क्षेत्र कूं नमस्कार होऊ ॥ १२ ॥ अचलापुरकी ईशान दिशामें, मेढ़गिर नाम शिखर है ताकौं मुक्तागिर भी कहे हैं। सो यहां तैं साढ़े तीन कोड़ि मुनि मुक्ति गये। सो ताकूं नमस्कार होऊ ॥ १३ ॥ राजा दशरथके पुत्रनकूं आदि लेय एक कोड़ि मुनिका निर्वाणक्षेत्र, कोटिशिला है। ताकूं नमस्कार होऊ ॥ १४ ॥ इत्यादिक अढ़ाई द्वीप विषैं तिष्ठते सिद्धक्षेत्र, तिनकूं नमस्कार होऊ। ये सिद्धक्षेत्र, इस ग्रन्थके अंत-समाप्ति विषैं, कवीश्वर कूं भव—भव मंगल करवे में, सहाय होऊ। तथा इस ग्रन्थके अभ्यासी भव्य जीव तिनकूं, सिद्ध क्षेत्र-यात्रा समान फल विषैं, सहाय होऊ। ऐसे सिद्ध-क्षेत्र कूं नमस्कार करि अन्त-मंगल किया। आगे सिद्ध-लोक समान, अकृत्रिम-चैत्यालय मंगलकारी हैं। तातें यहां ग्रन्थके अंत में, आठ कोड़ि छप्पन लाख सत्यानवे हजार च्यारिसौ इक्यासी जिनमन्दिर, अनादि-निधन अकृतिम हैं। तिन प्रत्येक में एक सौ आठ जिनबिम्ब हैं। तिनकूं नमस्कार होऊ। तिनमें सात कोड़ि बहत्तर लाख, तौ पाताल-लोकमें हैं। च्यारि सौ अट्ठावन, मध्यलोक में है। चौरासी लाख सनतानवे हजार तेवीस, ऊर्ध्व-लोक में हैं ते सव, मंगल की राशि हैं जिन-मन्दिर, सो कहिये हैं—उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य, भेद करि तीन प्रकार हैं। सो उत्कृष्ट जिन-मन्दिर, लम्बे १०० योजन, चौड़े ५० योजन, और ऊंचे ७५ योजन हैं। और मध्य चैत्यालयोंका प्रमाण-५० योजन लम्बे, २५ योजन चौड़े, और साढ़े सैंतीस योजन ऊंचे हैं। जघन्य चैत्यालयोंका प्रमाण-२५ योजन लम्बे, साढ़े बारह योजन चौड़े और ॥ १८ ॥ योजन

ऊंचे हैं। सो भद्रशाल वन विषैं, नंदनवन विषैं, नन्दीश्वर द्वीप विषैं, और कल्पवासीनके विमानन विषैं तौ; उत्कृष्ट अवगाहनाके धारक जिनमन्दिर हैं। तिनकी नींव, भूमि में दोय कोस है सौमनस वन, रुचिकगिर पर्वत, कुण्डलगिर पर्वत, वक्षारगिर पर्वत, ईष्वाकार पर्वत, और मानुषोत्तर पर्वत, तथा कुलाचलन पै, मध्य अवगाहना के जिनमन्दिर हैं। विजयार्द्ध, जम्बूवृक्ष, शाल्मलीवृक्ष, इन पर चैत्यालयनकी अवगाहना-एक कोस लम्बाई, आध कोस चौड़ाई, और पौन कोस ऊंचाई है। और भवनवासी-व्यन्तर देवोंके क्षेत्रों के अकृत्रिय चैत्यालयोंकी अवगाहनाका प्रमाण, अन्य ग्रन्थ करि जानना॥ उत्कृष्ट चैत्यालयनके सन्मुख के बड़े द्वार, १६ योजन ऊंचे, और आठ योजन चौड़े हैं। और उत्कृष्ट चैत्यालयनके दोऊ तरफके, छोटे-द्वार, आठ योजन ऊंचे, और च्यारि योजन चौड़े हैं। मध्य चैत्यालयनके सन्मुखके बड़े द्वार, ८ योजन ऊंचे व च्यारि योजन चौड़े हैं। मध्य चैत्यालयनके दोऊ पार्श्वनके छोटे द्वार, ४ योजन ऊचे व २ योजन चौड़े हैं॥ जघन्यावगाहनाके चैत्यालय, २५ योजन लम्बे, व १२॥ योजन चौड़े और १८॥। योजन ऊंचे हैं। तिनके सन्मुखके बड़े द्वार ४ योजन ऊंचे और दोय योजन चौड़े हैं। जघन्य चैत्यालयनके छोटे द्वार, दोय योजन ऊंचे व एक योजन चौड़े है। ऐसे तीन भेद रूप, चैत्यालय जानना। इन चैत्यालयनके तीन-तीन, रत्नमई कोट हैं। एक-एक कोटके, च्यारि दरवाजे हैं। तहां प्रथम दरवाजे तैं, मन्दिर पर्यंत जावे कौं, च्यारि गली हैं। तहां चारों तरफ, ४ मानस्तंभ हैं। दरवान पै, ६ रत्नस्तूप हैं तिन तीन कोटके बीचि, दोय अंतराल हैं। तिन अंतरालनमें पहिले-दूसरे कोटके बीच तौ बन है और दूसरे-तीसरे कोटके बीचिमें ध्वजा—समूह है। तीसरे कोटके अरु जिन मन्दिरके बीच, गर्भगृह हैं। जैसे लौकिकमें जुदे-जुदे कोठे होंय, तैसे जुदे-जुदे गर्भगृह जानना। और तिन गर्भ-गृहनके बीचमें, देवछंद नाम मंडप है। सो मण्डप, रत्नमई स्थंभनके ऊपर कनक वर्ण है। सो मंडप, ८ योजन लम्बा २ योजन चौड़ा और ४ योजन ऊंचा है। ताके मध्य विषैं, रत्न-कनक मय सिंहासन है। तिसपर विराजमान, श्रीजिन-बिम्ब हैं जिन-बिम्ब कैसा है, मानो साक्षात् तीर्थंकर देव ही हैं। पांच सौ धनुष, रत्नमई अवगाहना है।

तहां मस्तकके ऊपर नीलमई परणम्या जो श्याम वर्ण रत्न सो सुन्दर केशनकी आभाकूं धारै है। और महा उज्ज्वल, हीरा मई दांत शोभैं हैं। और मूंगा समान लाल, अधर-ओष्ठ शोभैं हैं। नवीन कोंपल समान लाल उत्तम शोभा सहित, कोमल हस्तकी हथेली, और पांवकी पगथली, शोभायमान हैं। ऐसे श्री जिनेन्द्र के प्रतिबिम्ब हैं। सौ मानौं अब ही बोलैं हैं। तथा अबही विहार करेंगे। मानौं देखौं हैं। मानौं ध्यान रूप हैं। मानौं वाणी खिरै है। मानौं चैतन्य ही हैं। १००८ चिन्ह सहित हैं। तिनपर ६४ जातिके व्यंतरदेव, रत्नमई आकार लिये खड़े हैं। पंक्तिबंध हस्त जोड़े खड़े हैं। सो मानों चमर ही ढोर रहे हैं। और तीन लोकके छत्र समान तीन छत्र, रत्नमई, शीश पै शोभायमान हैं। ऐसे जिनबिम्ब एक—एक गर्भ-गृहमें, एक-एक हैं। १०८ गर्भगृह हैं। तिनमें १०८ प्रतिबिम्ब विराजमान हैं। तिनकौं नमस्कार होऊ। ऐसे कहे जिनबिम्ब, तिनके निकट दोऊ पार्श्वन विषैं, श्री देवी, सरस्वती देवी, सर्वल्ह जक्ष देव, और सनत्कु-मार देव। इन च्यारिके, रत्नमई आकार पाईये हैं। ये महा भक्त हैं। जिनबिम्बनके निकट, अष्ट मंगल-द्रव्य शोभै हैं। तिनके नाम-झारी, कलश, आरसी, ध्वजा, पंखा, चमर, छत्र, और ठौणा सो एक जातिके, एक सौ आठ—एक सौ आठ जानना। जैसे झारी १०८, कलश १०८, ऐसे जानना। ऐसे गर्भगृह का सामान्य स्वरूप कह्या॥ आगे इस गृह—बाह्य जो रचना और है। सो कहिए है—पर्वमें कह्या जो देवछंद मण्डप, सो नाना प्रकार रत्नमई,स्वर्णमई-फूलमालान करि शोभायमान है। ता मण्डप के पूर्व दिशा कूं, जिन-मंदिर है। ताके मध्य में, स्वर्ण—रूपा मई, ३२ हजार धूपघट हैं। और बड़े द्वारके दोऊ पार्श्वन विषैं, २४ हजार धूप-घट हैं। बड़े द्वारनके बाह्य, ८००० रत्नमई माला, शोभायमान हैं। तिन मालान के बीचि २४००० स्वर्णमई माला हैं। तिन बड़े द्वारन के आगे—सन्मुख, छोटे मण्डप हैं। ता विषैं सोलह—सोलह हजार कनक मई धूप—घट, अरु कनक मई माला, अरु कनक कलश पाईये है। तहां मुख्य मण्डप के मध्य, अ-नेक प्रकार रमणीक शब्द करनहारा, रत्नमई छोटा घंटा है। सन्मुख द्वारके दोऊ तरफ के छोटे द्वार, तिन पै सर्व रचना, मालादिक का विस्तार, बड़े द्वार तैं आधा जानना। और सर्व मन्दिर के, तीन—तीन द्वार

हैं। पीछे कूं द्वार नाहीं। मन्दिर की पीछली भीति की तरफ, ८००० रत्नमई और २४००० स्वर्णमई माला हैं। घंटा, धूपघड़े आदि अनेक रचना, पीछे कूं जानना। सो तहां घंटा कह्या, सो तौ मंडपकी छत्त तैं, लंवता जानना। और धूपघट, धरती पै जानना। और माला, चौतरफ भीति, तिनतैं लटकती जाननी। ऐसे रचना सहित जिन-मन्दिर हैं। ताके आगे १०० योजन लम्बा, ५० योजन चौड़ा और १६ योजन ऊंचा, जिन—मन्दिर समान, एक मुख्य मण्डप है। सो अनेक रचना सहित जानना। ताही मुख्य मण्डप के आगे एक चौकोर, प्रेत्तण मंडप है। ताका विस्तार १०० योजन लम्बा—चौड़ा, और कुछ अधिक सोलह योजन ऊंचा है। और इस प्रेक्षण मंडप के आगे, दोय योजन ऊंचा, ८० योजन चौड़ा—लम्बा एक पीठि कहिये चवूतरा है। सो कनकमई जानना। तिस पीठिका के मध्य, चौकोर, मणिमई, ६४ योजन लम्बा, १६ योजन ऊंचा, एक मण्डप है। इसही मण्डप के आगे, एक मणिमई, स्तूप की पीठिका है। सो पीठिका, ४० योजन ऊंचो है। तिस पीठिका के चौतरफ, १२ वेदी हैं। तिन एक—एक वेदी के च्यारि—च्यारि द्वार हैं। ता पीठिका के मध्य, तीन कटनी सहित ६४ योजन ऊंचा, अनेक—रत्नमई स्तूप है। ता स्तूप के ऊपरि, जिन-बिम्ब विराजमान हैं। सो ऐसे, ६ स्तूप हैं। तिन सबका ऐसा ही वर्णन जानना। तिन स्तूपोंके आगे, १००० योजन लम्बा—चौड़ा, एक स्वर्णमयी पीठि है। ताके चौगिरद, १२ वेदी हैं। तीन कोट व च्यारि—च्यारि द्वारन करि सहित, कोट—वेदी जानना। तिस पीठि के ऊपर, एक सिद्धारथ नामा वृक्ष है। ताका स्कन्ध ४ योजन लम्बा, और चौड़ा १ योजन है। ताकी च्यारि बड़ी सालायें, १२ योजन लम्बी हैं। छोटी शाखा अनेक हैं। और वृत्त, ऊपर १२ योजन चौड़ा है। और अनेक पात, फूल, फलन करि सहित है। सो यह वृक्ष, रत्नमई जानना। यह एक सिद्धारथ नामा, बड़ा वृक्ष जानना। ताके परिवारमें अनेक वृक्ष हैं। ऐसी ही रचना सहित तथा ऐसाही विस्तार धरैं, चैत्य वृक्ष है। ऐसे सिद्धारथ व चैत्य ये दोय महा-वृक्ष हैं। सो सिद्धारथ-वृत्तके मूल विषैं तिष्टती, सिद्ध-प्रतिमा है। और चैत्यवृत्तके मूलभाग विषैं तिष्टती समभूमि पै, तीन पीठका, सिंहासन, छत्र आदि अनेक प्रकारकी रचना सहित च्यारों दिशा विषैं, अरहंत प्रतिमा विराजमान हैं। तहां

अरहंत व सिद्ध प्रतिमा विषैं, विशेष एता जानना। जो सिद्ध प्रतिमाकैं चमर-छत्रादिकी रचना नाहीं। और अरहंत प्रतिमा कैं, चमर-छत्रादिकी रचना होय है। और तिस पीठिके आगे एक पीठि है तामें नाना प्रकार ध्वजा शोभै हैं। तिन ध्वजाके, स्वर्णमई दण्ड हैं सो दण्ढ, १६ योजन लम्बे हैं। और एक योजन चौड़े हैं। और तिन ध्वजाके अनेक प्रकार वर्ण हैं। रत्नमई, वस्त्र हैं तिन ध्वजाके ऊपर, तीन-तीन छत्र शोभैं हैं। तिन ध्वजानके आगे, जिन मन्दिर हैं। तिन जिन मन्दिरोंके आगे, चौतरफ, च्यारि दिशानकौं, च्यारि द्रह (तलाव) हैं। सो द्रह १०० योजन लम्बे, ५० योजन चौड़े, और दश योजन गहरे हैं। ये द्रह, कनकमई वेढ़ीन करि भले शोभायमान हैं। तिनमें कमल फूल रहे हैं। ताके आगे, मार्ग रूप च्यारि बीथीं हैं। तिन बीथीनके दोऊ पार्श्वन बिषैं, ५० याजन ऊंचे, २५ योजन चौड़े, रत्नमई, देवकेक्रीड़ा-मन्दिर हैं। तिन मंदिरनके आगे, तोरण हैं सो तोरण मणिमई स्थंभन परि, गोल, भीति रहित हो हैं। सो अनेक रचना सहित, रमणीक हैं। सो तोरण, मोती-माला, घंटा-समूह करि शोभायमान हैं। सो तोरण ५० योजन ऊंचे, २५ योजन चौड़े हैं। तिन तोरणोंके ऊपर भागमें, जिनविम्ब विराजमान हैं। तिन तोरणके आगे, स्फटिकमणिका प्रथम कोट है। तहां आभ्यन्तर कोटके द्वारके दोऊ पार्श्वन विषैं, रत्नमई मन्दिर हैं। सो मन्दिर १०० योजन ऊंचे, ५० योजन चौड़े हैं। ऐसे प्रथम कोट पर्वत वर्णन किया॥ आगे पूर्व द्वार विषैं, जो मंडपादिका प्रमाण कह्या। तातैं आधा प्रमाण, दक्षिण व उत्तर द्वारका जानना और कथन, तीनों तरफका समान है। ऐसे कहि, अब पहिले-दूसरे कोटके अंतरालमें, जो ध्वजा-समूह पाईये है। सो ध्वजानमें दश जातिके चिन्ह हैं सिंह हस्ती, वृषभ, गरुड़, मयूर, चन्द्रमा, सूर्य, हंस, कमल और चक्र ऐसे दश चिन्ह सहित ध्वजा समूह है सो एक-एक चिन्हकी ध्वजा, १०८ हैं। जैसे सिंह जातिकी ध्वजा, १०८ हैं। ऐसे सर्व जाति की ध्वजायें जानना। सो जिन मंदिरके एक तरफको ध्वजायें, १०८० भईं। जिन-मंदिरके चारों तरफकी ४३२० तौ बड़ी ध्वजा जाननी। इन बड़ी ध्वजानके साथ, एक सौ आठ-एक सौ आठ छोटी ध्वजायें जाननी ऐसे ध्वजाका बन कह्या॥ और तीसरे व दूसरे कोटके अन्तरालमें जो रचना है। सो कहिये है-तहां च्यारों

तरफ, च्यारि वन हैं। अशोकबन, सप्तच्छदवन, चंपकवन, और आम्रवन। ये च्यारि वन तिनके फूल तो स्वर्णमई, अरु पत्ते बैडूर्य रत्नमई, हरित वर्ण हैं। तिनको कोंपल मरकतमणि मई हैं। तिनके फल महा-मनोग्य रत्नमई हैं। ऐसे च्यारि ही वन दश प्रकारके कल्पवृक्षन सहित, रमणीक हैं। तिन वनन विषैं एक-एक चैत्य वृक्ष है। तिनके मूल भागमें च्यारों दिशानसें पद्मासन श्री अरहंत बिम्ब चमर-छत्रादि प्रातिहार्य करि शोभित विराजैं हैं। ऐसे एक-एक वनमें एक-एक चैत्य वृक्ष है। तिनके तीन-तीन कोट हैं। तिनकी तीन-तीन कटनी सहित पीठिका हैं। इत्यादिक रचना सहित रत्नमई चैत्यवृक्ष हैं। इन आदि बागवाड़ी ध्वजापंक्ति कलश धूप घट मोतीमाला आदि अनेक रचना सहित, अकृतिम जिन मन्दिरोंका सामान्य स्वरूप कह्या। ताके निकट सामायिक करवेके मन्दिर हैं। तहां भव्य सामायिक करैं हैं। वंदना मण्डप हैं। तिसके पास स्नान करवेके स्थान हैं। जहां भव्यजन पूजन करवेकूं स्नान करैं सो अभिषेक मण्डप हैं। तहां भक्त-जन नृत्य करवेके स्थान सो नृत्य मण्डप हैं। तहां गान करवेके स्थान सो जहां भव्य भगवान्की गुणमालाका गान करैं सो संगीत मण्डप हैं। और तहां नानाप्रकारकी चित्राम-कलादिकी अनेक रचना महा शोभा सहित स्थान, तिनकौं देख, भव्य अनुमोदना करैं। तिनकौं देखते मन तृप्त न होय सो अवलोकन मण्डप हैं। तहां केईक धर्मात्मा-जीवनके, धर्म क्रीड़ाके स्थान हैं। और कैएक स्थान ऐसे हैं जहां धर्मात्मा पुरुष शास्त्रनका स्वाध्याय करैं। गुणग्रहण मण्डप हैं। केई स्थान अनेक पट्-चित्राम दिखावनेके स्थान हैं। पट्शाला-स्थान हैं। ऐसे अनेक स्थान अकृत्रिम चत्यालयनके निकट पाइये। तहां धर्मात्मा धर्मका साधन करैं हैं। ऐसे जिन मन्दिर अकृत्रिम तीन लोक संबंधी हैं। तिन सबकौं अन्तिम मंगल निमित्त हमारा मन वच-काय करि वारम्बार नमस्कार होऊ। सब कर्म रहित सिद्ध भगवान्; अरु च्यारि घातिया कर्म रहित अनंत चतुष्टय सहित अरहंत देव, अरु मुनि संघ विषैं अधिपति आचार्य; ग्रन्थाभ्यास विषैं आप प्रवर्तैं अरु औरनकूं प्रवृत्तावैं ऐसे उपाध्याय और २८ मूलगुण सहित साधु ऐसे कहे पंच परमेष्ठी, पंच परम गुरु तिनकौं मन-वचन-काय शुद्ध करि अन्त मङ्गलके निमित्त हमारा नमस्कार होऊ। ऐसे इस ग्रन्थके पूर्ण होतें भया जो हर्ष ताकरि अन्तिम मङ्गल

निमित्त अपने इष्टदेवकौं नमस्कार करि पाप मल धोय निर्मल होनेका कारण जानि कवीश्वरने कृत-कृत्यावस्थाकूं प्राप्त होय अपना भव सफल मान्या ॥

इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये ग्रन्थ पूर्ण होते मंगल, निमित्त; नमस्कार पूर्वक, अकृत्रिम चैत्यालय वर्णन पञ्चपरमेष्ठी वर्णनो नाम, गुणतालीसवां पर्व सम्पूर्णम् ॥

आगे और मंगलकारी, जिनराजके समोशरण हैं। ताका संक्षेप वर्णन कीजिये है। मङ्गलमूर्ति, कल्याणका आकार समोशरण, भगवान्‌के विराजवेका स्थान अनेक महिमाकों लिये देवोपुनीत समोशरण है। ताका दर्शन किये नाम लिये, स्मरण किये, पाप नाश होय, पुण्य संचय होय। ऐसा जानि, ग्रन्थके अन्त मङ्गलकूं, अनेक शास्त्रका रहस्य लेय समोशरणका स्वरूप कहिये हैं—तहां प्रथमही समोशरणकी भूमि, समभूमि तैं ५००० धनुष आकाशमें ऊंचो है। ताके च्यारों दिशा विषैं, समभूमि तै लगाय, समोशरण भूमि पर्यंत, बीस हजार पैंड़ीं, च्यारो दिशाओंमें हैं। ते पैंड़ीं (सीढ़ी) स्वर्णमई हैं। सो पैंड़ीं, वृषभदेवके हाथसे एक हाथ चौड़ीं एक हाथ ऊंचीं, और एक कोस लम्बी हैं। और अन्य-जिनको, क्रम तैं हीन हैं। सो हीनका प्रमाण कहिये हैं। वृषभदेवका जो प्रमाण है तामें २४ का भाग दीजिये, तासें तैं एक भाग घटावना। ऐसे नेमनाथ तक, एक एक भाग घटावना। और पार्श्वनाथ व वीरके तिस तैं आधा भाग घटावना सो समभूमि तैं २ ॥ कोस आकाशमें जाइये। तहां वृषभदेवकी बारह योजन, नील रत्नमई गोल-शिला है। सो तो समोशरणकी समभूमि है। या पै सर्व रचना है। और तीर्थंकरनके समोशरणका हीनक्रम है। सो नेमनाथ पर्यंत आधा-आधा योजन, हीन है। पार्श्वनाथ, वीरका पाव-पाव योजन घटता है। ऐसे महावीरका, १ योजनका समोशरण है। तिस शिला विषैं, शिवाननकी सीध मैं ४ गली, च्यारोंदिशामें हैं। ते गली, शिवानन (भगवान) की लम्बाई प्रमाण चौड़ी हैं। जैसे वृषभ देवकी एक कोस चौड़ीं, लम्बी २३ कोस गलीं हैं सो धूलशालके दरवाजे तैं लगाय, गंधकुटीके द्वार पर्यंत लम्बाई जाननी। और इन गलीनके दोऊ तरफ, स्फटिकमणिमई भीति हैं। इनकौं वेदी कहिये। इन दोऊ वेदीनके बीचि जो चौड़ाई, सो गलीकी चौड़ाई है और

उन वेदीनकी चौड़ाई बृषभदेवके हाथ तैं ७५० धनुष है। और जिनकी हीन है। तिन गलीनके बीचि, ४ अन्तराल रूप भूमि हैं। तिन विषैं, ४ कोट व ५ वेदी हैं। अरु इन नवके अन्तराल विषैं, ८ भूमि है सो शिलाके अन्तभाग विषैं कोट है। ताके परे, चैत्यप्रसाद नाम भूमि है। ताके परे, वेदी है। ताके परे खातिका की भूमि है। ताके परे वेदी है। ताके परे, पुष्पवाड़ीकी भूमि है। ताके परे, दूसरा कोट है। ताके परे, उपबनकी भूमि है। ताके परे, वेदी है। ताके परे, ध्वजा-समूहकी भूमि है। ताके परे, तीसरा कोट है। ताके परे, कल्पवृक्षकी भूमि है। ताके परे, वेदी है। ताके परे, मन्दिरकी भूमि है। ताके परे, चौथा कोट है। ताके परे, सभा की भूमि है। ताके परे, वेदी है। ऐसे तिन गलिनके अन्तराल रूप भूमि विषैं रचना जानना। तिन गलिन विषैं, ४ कोट व ५ वेदीनके द्वार हैं सो एक गली सम्बन्धी, नव द्वार हैं। च्यारों गली सम्बन्धी, ३६ दरवाजे हुए। प्रथम कोट व प्रथम वेदी ताके बीचि सो प्रथम भूमि है। तातै प्रथम कोट व प्रथम वेदी, इनके बीचि गली, सो प्रथम भूमि कहिये। ऐसे ही अन्य द्वारनके बीचि द्वितीयादि भूमि जानना। तहां प्रथम भूमिकी गली ताके मध्य विषैं तौ मानस्थंभ है सो च्यारि दिशा सम्बन्धी, ४ मानस्थंभ हैं। एक-एक मानस्थंभके च्यारों दिशानमें च्यारि-च्यारि बावड़ी हैं। इस गलीके दोऊ पार्श्वन विषैं दोय नाटयशाला हैं। ऐसी ही चौथी गली विषैं दोय नाटयशाला हैं। छट्ठी गलीके दोऊ पार्श्वन विषैं, यातैं दूनी नाट्यशाला हैं। और सप्तमी भूमिमें, च्यारि दिशामें, नौ-नौ रत्न-स्तूप हैं। आठवीं भूमि विषैं बारह सभा हैं। जो गलीके, पार्श्वनकी लम्बाई सहित वेदी हैं सो अनेक द्वारन सहित हैं। तिन द्वारनके रत्नमई कपाट हैं कोई भव्य, इनके चौतरफकी रचना देखे चाहै हैं। तो इन गलीनके द्वारन होय, जाय आवै है। या प्रकार गलीनकी सामान्य रचना कही जो इन सर्वके मध्यभागमें तीनि पीठि हैं। ताके ऊपर गंधकुटी है। तामें सिंहासन है। तापै कमल है। तापर श्री भगवान् अन्तरीक्ष च्यारि अंगुल, विराजैं हैं सो अष्ट प्रातिहार्य सहित च्यारि चतुष्टय लिये, विराजमान जानना। ऐसे इनकी सामान्यपने रचना कही। अब तिनके स्थान बताइए है। इनका विशेष कहिए है। तहां ४ कोट कहे तिनमें पहिला कोट, समोशरणकी अन्तभूमि विषैं है सो पंच-वर्ण, रत्न-चूर्णका है।

तातैं याका नाम, धूलिशाल है। नानाप्रकार वर्ण सहित इन्द्र धनुष समान विचित्र है। दूसरा कोट, तपाए स्वर्ण समान लाल है। तीसरा कोट, स्वर्ण समान पीत है। चौथा कोट स्फटिकमणि समान श्वेत है। पांचों ही वेदी, स्वर्ण समान पीत हैं। ए च्यारि कोट पांच वेदी नव ही के ऊपर, अनेक वर्णकी ध्वजा अरु अनेक शोभा सहित महल शोभायमान हैं। यहां वेदी अरु कोट विषैं एता विशेष है जो वेदी तौ नीचे तैं लेय ऊपर पर्यन्त, समान चौड़ी हैं। अरु कोट नीचे तैं चौड़ा, अरु ऊपर हीनक्रम है। अब इनके बीचि, आठ भूमि हैं। ताका विशेष कहिये है—तहां प्रथम भूमि विषैं, एक चैत्यालय है। अरु पाँच अन्य मन्दिर हैं। इनके बीचि बावड़ी, बन, बृक्ष, इत्यादि की अनेक रचना है। दूसरी भूमि विषैं, खातिका है। सो रत्नमई पगथेन (पैंड़ी) करि सहित है। निर्मल-जल करि भरी है। सो जलकी उडाई, (गहरी) जिन देवके शरीर तैं चौथे भाग है। अरु वह खाई, कमलन करि पूरित, नाना प्रकार जलचर व हंसादिक जीवन करि शोभनीक है। और तीसरी भूमि विषैं, फुलवाड़ी है। जो नाना प्रकार बृक्ष, फूल बेलि करि शोभायमान है। अरु चौथी भूमि विषैं, उपवन हैं। सो च्यारि दिशान विषैं, च्यारि उपवन हैं। तिनके नाम—अशोकवन, सप्तपर्णबन, चंपकबन, अरु आम्रबन। ये बन, नाना प्रकार उत्तम वृक्ष करि सहित हैं। और इन बन विषैं, नाना प्रकार के देव-क्रीड़न के मन्दिर हैं। तथा ये बन, नृत्यशाला बावड़ी, क्रीड़ा-पर्वत, तिनकरि शोभनीक हैं। इत्यादिक और भली रचना जाननी। तहां अशोकबन विषैं, अशोक नाम चैत्यवृक्ष है। ताके चौतरफ, तीन कोनके भीतर, तीन पीठि हैं। तापै, अशोक बृक्ष है ताके मूलभाग विषैं, च्यारों दिशा में, च्यारि अर्हन्त प्रतिमा हैं। तिन प्रतिमा जी के आगे एक—एक मानस्थंभ है। ऐसे और तीन बनन में—सप्तपर्ण चैत्य वृक्ष सप्तपर्ण बनमें है। चंपकबनमें चंपक चैत्य-वृक्ष। आम्रवनमें आम्र चैत्य-वृक्ष। ऐसे बनकी रचना जाननी और इस बनकी बावड़ीनके जल करि स्नान कीजिए, तो एक भवकी अगली-पिछली दीखै। और बावड़ीनके जलमें देखिए, तौ अपने सात-भवकी, अगली-पिछली दीखै है। पंचम-भूमि विषैं, ध्वजानका समूह है। तहां एक दिशा संबन्धीध्वजा कहिए हैं-सिंह, हाथी, वृषभ मोर, माला, आकाश, गरुड़, चक्र, कमल, और हंस। इन दश जातिकी ध्वजा हैं सो एक-

एक चिन्हकी, १०८ महाध्वजा हैं। इन एक-एक महाध्वजा संबन्धी, १०८ छोटी ध्वजा और जाननी। ऐसे एक दिशा सम्बन्धी ध्वजा कहीं। च्यारों ही दिशा संबन्धी मिलाईए, तौ ४७०८८० ध्वजा होंय। ते सर्व ध्वजा, रत्नमइ दंडन करि सहित हैं। ते दण्ड, वृषभदेव के ८८ अंगुल चौड़े हैं। परस्पर ध्वजा का २५ धनुष अन्तराल जानना। और छट्ठी भूमि विषैं, कल्पवृक्षन के बन तहां—वासन, गृह, आभूषण, वस्त्र, भोग, पान, ज्योतिष, माला, वादित्र, और दीपक ये दश जातिके बन हैं सो च्यारि दिशामें, ४ ही बन हैं। तहाँ एक--एक दिशा में एक-एक वनमें, च्यारि चैत्य वृक्ष हैं। तिनके नाम-मेरु, मंदार, पारजाति और संतानक। ये च्यारि कल्प-वृक्ष, चैत्य वृक्ष हैं। इनका विस्तार वर्णन, पीछे अशोक चैत्य वृक्षका कथन करि आए हैं, तहां समान जा-नना। एता विशेष है, जो यहां सिद्ध-प्रतिमा विराजमान हैं। सर्व वापी, मन्दिर, क्रीड़ा-पर्वतादि सर्व रचना, यहां--वहां समान जानना। और सातवीं भूमि विषैं, रत्नमई मन्दिरन की पंक्ति, बनकी अनेक शोभा सहित है। तहां देव-देवी, भगवान का गुण—गान करैं हैं। आठवीं भूमि में, १२ सभा हैं। तहां तिस पृथ्वी संबंधी च्यारि अंतराल, तिनमें दोय—दोय तो गली की बेदी हैं। और दोय—दोय तिनके बीच्चि स्फटिक मणिमई भीति हैं। इन च्यारों भीति के बीच्चि, तीन अन्तराल हैं। सो ही तीन कोठे। ऐसे च्यारों दिशान के, १२ कोठे भए। अरु १६ भीति भईं। तहां रत्न-स्तंभ हैं। तिन पै धस्या श्रीमण्डप है। मोती की माला, रत्न घंटा, धूप घटादि अनेक रचना सहित है और जगह तैं, यहां रचना उत्कृष्ट है। तहां १२ सभा के, बारह कोठे हैं। तिनमें अनुक्रमतैं—मुनिराज, कल्पवासी देवी, मनुष्यणी, ज्योतिषी देवकी देवियाँ, व्यंतर देवकी देवियां, भवनबासिनी देवी, भवनवासिनी देव, व्यन्तर देव, ज्योतिषी देव, कल्पवासी देव, मनुष्य, और बारहवीं सभामें तिर्यंच बैठैं हैं। ऐसे अष्टमी भूमिमें १२ सभा कहीं। अब इन आठभूमिन की गलोका विशेष कहिए हैं-तहां प्रथमही धूलशाल कोट है। ताके ४ दरवाजे हैं। तिनके क्रम तैं नाम कहिए हैं-पूर्व दिशा का विजय, दक्षिण दिशाका वैजयन्त, पश्चिम दिशाका जयन्त, और उत्तर दिशाका ६३० अपराजित। ऐसे नाम हैं। च्यारि कोट व पांच वेदोनके, छत्तीस द्वार, च्यारों दिशा संबन्धी हैं। तामें धूलि-

शाल कोटके च्यारि दरवाजे तो स्वर्णमई हैं। बीचि के दोय कोट ४ वेदी इन छहके २४ दरवाजे, रूपामई हैं। चौथा स्फटिक मणिका कोट अरु आभ्यंतरकी वेदी के द्वार आठ, सो पन्ना समान हरे हैं। इन सर्व छत्तीस ही दरवाजेनके आभ्यंतर-बाह्य दोउ तरफ, मंगल-द्रव्य अरु नवनिधिके समूह हैं। तहां एक द्वारके, दोय पार्श्व हैं सो ही बाह्य—आभ्यन्तर करि, ४ पार्श्व भए सो एक-एक पार्श्वके विषैं, आठ—आठ मंगल द्रव्य हैं सो एक—एक मंगल द्रव्य, १०८ होय हैं। जैसे छत्र १०८, चमर १०८, ऐसे ही सर्व जानना। नौ निधि, नव जातिकी हैं सो एक-एक जातिकी निधि, एक सौ आठ-एक सौ आठ हो हैं। ऐसी जानना। सो एक-एक पार्श्व विषैं, एती रचना जाननी धूप-घट हैं। तिनमें सुगंध-द्रव्य, देवादि खेवैं हैं। तिनमें महा-सुगंध प्रगट होय रही है। और सर्व द्वारन पै, रत्नमई तोरण हैं। ते मोती-माला, कल्पवृक्षनके फूलनकी माला, रत्न घंटा, इत्यादिक रचना सहित हैं। सो तोरण द्वार, कोटन तैं ऊंचे जानना। तोरण तैं, कोटनके दरवाजे ऊंचे हैं। समोशरणके एक तरफके नौ द्वार हैं। तहां धूलिशाल तैं लगाय, तीन दरवाजेन पै तो, ज्योतिषी द्वारपाल हैं। और दोय द्वारनके ऊपर, यक्ष जातिके व्यंतर देव द्वारपाल हैं। अगले दोय द्वारन पै द्वारपाल, नागकुमार-भवनवासी देव है। और दोय द्वारनके ऊपर द्वारपाल, कल्पवासी देव हैं। ऐसे च्यारों दिशा विषैं च्यारि जातिके देव, द्वारपाल हैं सो सर्व महा भक्तिवान भये, हाथनमैं असि लिये हैं। केई स्वर्णकी छड़ी लिये हैं। केई गुर्ज लिये हैं। केई दण्ड लिये खड़े हैं। ऐसे दरवाजेनका स्वरूप कह्या। अब प्रथम भूमिकी गली विषैं, मानस्थंभ है। ताका स्वरूप कहिये है। सो प्रथम गलीके मध्य विषैं च्यारि-च्यारि द्वार सहित तीन कोट हैं। ते कोटनके द्वार, अनेक घंटा, ध्वजा, मालान करि शोभनीक हैं। तहां प्रथम-दूसरे कोट और दूसरे-तीसरे कोटके बीचि विषै बन हैं। सो बन, अनेक शुभ वृक्षन करि शोभायमान हैं। तहां कोयल, मयूर आदि अनेक पक्षीनकी ध्वनि होय रही है। तिस बन विषैं लोकपाल देवनके नगर हैं। तहां प्रथम बनकी च्यारों दिशा विषैं, एक दिशामें इन्द्र-लोकपालका भवन है। दूसरी तरफ, यम नामा लोकपाल-का नगर है। तीसरी तरफ वरुण नामा लोकपालका नगर है। चौथी तरफ कुबेर नामा लोकपालका नगर है।

ऐसे प्रथम वनके अंतरालका कथन किया। और दूसरे-तीसरे कोटके दूसरे अंतरालमें एक तरफ अग्नि जातिके लोकपालनका नगर है। एक तरफ नैऋत्य जातिके देवनका नगर है। एक तरफ पवनकुमार देवन-का नगर है। एक तरफ ईशान जातिके देवनका नगर है। ऐसे ये तीन कोटनके दोय अंतरालनके नगर कहे। तीसरे कोटके आभ्यंतरमें तीन कटनीदार उपरि-उपरि तीन पीठि हैं। सो प्रथम पीठि तो पन्ना समान हरा है। तापै दूसरा पीठि स्वर्ण मई है। तापै तीसरा पीठि अनेक रत्नमई है। तिनकी उचाई वृषभदेवके हाथ तैं आठ धनुष तो प्रथम पीठिकी है। ऊपरकी दोय पीठि च्यारि-च्यारि धनुषकी हैं। तीर्थंकरनके हीन-क्रमकी हैं। अब इन पीठिनकी चौड़ाई कहिये है सो नीचले दोय पीठिनकी चौड़ाई तौ अन्य ग्रन्थ तैं जानना। ऊपरके तीसरे पीठिकी चौड़ाई वृषभके १००० धनुषकी है। तीर्थंकरनके हीनक्रमकी हैं। तहां तीसरे पीठिमें मानस्थंभ है सो मानस्थंभ नीचे सै तो चौकार और ऊपर तैं गोल है। तहां नीचे तौ वज्रमई है मध्यमें स्फटिक मई और ऊपर पन्ना समान हरा है। ताको दोय हजार धारा हैं। जेसे स्थंभके पहलू होंय तैसी धारा हैं। सो मानस्थंभ घंटा मोतीमाला कल्पवृक्षनके फूलनकी माला ध्वजा इन आदि अनेक रचना सहित शोभा कौं धरैं है। तिस मानस्थंभके उपरि भागमें च्यारि दिशाओंमें च्यारि अर्हंत विम्ब हैं। सो अष्ट प्रातिहार्यन करि सहित हैं। अशोक वृक्ष पुष्प वर्षा दिव्यध्वनि चमर सिंहासन भामण्डल देवनके किये दुन्दुभी शब्द और छत्र ये अष्ट प्रातिहार्य हैं। तहां दिव्यध्वनिकी तो आभासा है। मानूं अब ही दिव्यध्वनि खिरैगी। और सर्व प्रातिहार्य पाईये है। तिनके दर्शन किये पाप नाश होय है। इस मानस्थंभकी प्रभा आकाश विषैं योजन पर्यंत उद्योत् करै है। तिसके देखते आश्चर्य उपजे है। ताके अतिशय करि इन्द्रादिक देवनका मान नहीं रहै। सर्वका मान जाय। सर्व नमस्कार करैं हैं। ऐसी महिमा धरै है। तातैं याका नाम मानस्थंभ है। ऐसे सामान्य मानस्थंभका स्वरूप कह्या। ऐसे ही च्यारों दिशानके मानस्थंभका स्वरूप जानना। तिन मानस्थंभके कोटमैं च्यारों दिशामें च्यारि-च्यारि वावड़ी हैं। तहां पूर्व दिशाके मानस्थंभ सम्बन्धी वावड़ीनके नाम—नंदा नंदोत्तरा नंदवती और नंदघोषा। दक्षिणके मानस्थंभ सम्बन्धी

बावड़ीनके नाम-विजया वैजयंती जयंती और अपराजिता। पश्चिम दिशा सम्बन्धी मानस्थंभकी बावड़ीनके नाम-अशोक, सुप्रतिबुद्धा, कुमुदा, और पुण्डरीकणी। आगे उत्तर दिशा सम्बन्धी मानस्थंभकी बावड़ीनके नाम-नंदा महानंदा सुप्रबुद्धा और प्रभंकरी। ऐसे च्यारि दिशा सम्बन्धी च्यारि मानस्थंभकी सोलह बावड़ी जानना। इन एक-एक बावड़ीके बाह्य मुख पर दोय-दोय कुण्ड हैं तहांके जल तैं भव्य जीव पाद प्रक्षालन करैं हैं। बावड़ीके जल तैं, प्रतिमाजीका अभिषेक होय है। ये सर्व बावड़ी हैं, सो स्वर्ण-रत्न मई हैं। रत्न-मई पगथेन (पैंड़ीन) करि सहित, चौकोर हैं। निर्मल जल करि भरी, कमलन करि शोभायमान हैं। ऐसे मानस्थंभका सामान्य स्वरूप कह्या॥ आगे नाट्यशालाका संक्षेप स्वरूप कहिये है--तहां प्रथम गलीके दोऊ पार्श्वनकी, दोय नाट्यशाला हैं। सो तीन खण्डकी हैं। तहां एक-एक नाट्यशाला विषैं, ३२ अखाड़े हैं। एक-एक अखाड़ेमें ३२—३२ भवनवासिनी देवी नृत्य करैं हैं। एक-एक नृत्यशालाके दोऊ पार्श्वन विषैं, दोय-दोय धूप घड़े हैं। और ये नृत्यशाला, रत्नमई अनेक शोभा सहित हैं। ऐसी ही रचना सहित, चौथी गली विषैं, नृत्यशाला हैं। विशेष एता है। जो यहां कल्पवासिनी देवियां, नृत्य करैं हैं। ऐसे ही छट्ठी गली विषैं, नाट्यशाला हैं सो पांच खण्डकी हैं। यहां ज्योतिषी जातिकी देवांगना नृत्य करैं हैं। ऐसे नाट्यशाला कहीं। सो यहां अपने-अपने नियोग प्रमाण, भक्तिकी भरी देवीं, नृत्य करि, अपना भव सफल करैं हैं॥ आगे रत्न-स्तूपका स्वरूप कहिये है-तहां सतवीं गली विषैं एक-एक दिशा विषैं, नौ-नौ रत्न स्तूप हैं। सो ये रत्न राशि समान, उत्तंग शिखर कों धरैं हैं। तिनके बीचमें, १०० तोरण हैं। तिन स्तूपनके अग्रभाग पर, अर्हंतप्रतिमा विराजमान हैं। सो तहां अष्ट-अष्ट मंगल द्रव्य व प्रातिहार्यन सहित हैं। छत्र, चमर, सिंहासनादि अनेक अतिशय पाईये हैं। ऐसे स्तूपका संक्षेप कह्या। या प्रकार इन पृथ्वीनकी रचना कही॥ पंचम वेदीके आभ्यंतर-मध्य विषैं, तीन पीठि हैं। सो ऊपर-ऊपर गोल हैं। सो प्रथम पीठि, आठ धनुष ऊंचा है। सो वैडूर्य रत्नमई, हरा जानना। और दूसरा पीठि स्वर्णमई, ४ धनुष ऊंचा है। तीसरा पीठि, अनेक रत्नमई, च्यारि धनुष ऊंचा हैं। तहां प्रथम पीठिकी, सोलह पगथ्यां है। दोय पीठिकी ८—८ पगथली हैं। तिन पी-

ठिकी चौड़ाई—वृषभ देवके समय, प्रथम पीठि दोय कोस चौड़ाई सहित है। और जिनराजके हीनक्रम है। प्रथम पीठि विषैं च्यारों दिशामें च्यारि यक्षदेव, मस्तक पै धर्मचक्र धरैं, दोय हस्त जोड़े, विनय तैं खड़े हैं। ता धर्मचक्रके १००० आरा हैं। पहिआ (चक्र) के आकार, गोल है। ताके तेजके आगे, अनेक सूर्य, मंद भासैं हैं। तहां प्रथम पीठि पै, अष्ट मंगलद्रव्य हैं। और गणधरदेव, इन्द्र, चक्री आदि भक्तजन हैं सो; इस प्रथम पीठि पै चढ़ि, जिनदेवकी पूजा—भक्ति करैं हैं। आगे नहीं चढ़ैं। पूजा करि, पीछे पायन, पगथेनकी राह उतरैं हैं। सो अपनी सभामें आय तिष्ठैं हैं। दूसरे पीठिमें आठ ध्वजा हैं। तिन ध्वजानमें चक्र, हस्ती, सिंह, माला, वृषभ, आकाश, गरुड़ और कमल इनके आकार हैं। अरु यहां भी मंगल-द्रव्यादि अनेक रचना है। और तीसरे पीठि पै गंधकुटी है। सो चौकोर है। सो गंधकुटी वृषभदेवके समयकी ६०० धनुष चौड़ी है। इतनी ही ऊंची व लम्बी है। जिनके हीनक्रमकी है। सो गंधकुटी अनेक मोती-माला कल्पवृक्षनके फूलनकी माला रत्नमाला अनेक जातिकी ध्वजा सुगंध-द्रव्यादि सहित शोभायमान है। तातैं याका नाम गंधकुटी है। ताके मध्य, सिंहासन है। सो स्फटिक मणिमई, निर्मल है। अनेक रत्न जड़ित, शोभै है। अनेक घंटान करि शोभायमान है। ताके च्यारि पायेनकी जायगा, च्यारि रत्नमई सिंहनके आकार हैं। सो वैठे सिंहाकार हैं सो मानूं प्रत्यक्ष जीवित ही हैं। तथा मानों भगवान्‌की भक्ति करवे कों श्रावक-व्रतके धारी, सौम्य भावना सहित, धर्म-श्रवण कौं आये हैं। ऐसे सिंह बैठे हैं। तातैं याकौं सिंहासन नाम दिया है। ता सिंहासनके मध्य, कमल है। ता कमल पर, अंतरीक्ष भगवान् विराजमान हैं। सो कमल, हजार पाखुड़ीका लाल वर्ण सहित है। ताकी कर्णिका पै, भगवान् विराजे हैं। तिन कूं बारम्बार हमारा नमस्कार होऊ। अब इस ही समोशरणके कोट, वेदी आदि रचनाकी ऊंचाईका प्रमाण कहिये है--सो समोशरणकी पांच वेदी, च्यारि कोट, और गलीनकी वेदी। सो इनकी ऊंचाई तौ अपने तीर्थंकरके शरीरकी ऊंचाई तैं चौगुणी है। और क्रीड़ा—मंदिर तथा जिन-मन्दिर तथा कोट—वेदीके द्वारके रतन-स्तूप, मानस्थंभ, ध्वजादंड, क्रीड़ा-पर्वत, नृत्यशाला, चैत्यवृक्ष, कल्पवृक्ष, सिद्धारथवृक्ष, अशोकवृक्ष, तथा बारह सभा, श्रीमंडप, एते स्थान अपने-अपने

तीर्थंकरनके शरीरकी ऊंचाई त, बारह गुणे ऊंचे हैं। समोशरणका प्रमाण-वृषभदेवका बारह योजन प्रमाण है। औरनके यथायोग्य घटता है। और जैसे अवसर्पिणीके जिनोंका समोशरण-प्रमाण, घटता कह्या। तैसे ही उत्सपिणीके जिनोंका समोशरण-प्रमाण बधता जानना। और विदेह क्षेत्रनमें समोशरणका प्रमाण, वृषभ देवके समान, सदीव सर्व जिनका जानना। ऐसे समोशरणका कथन किया। सो त्रैलोक्य प्रज्ञप्ति, धर्म संग्रह, समोशरण स्तोत्र, आदिपुराण, इत्यादिक ग्रन्थोंके अनुसार वर्णन किया। कोई आचार्य करि सामान्य-विशेष रचनाका कथन होय, सो केवलज्ञान-गम्य है। ऐसे सामान्य समोशरणकी रचना कही। ऐसे समोशरण विषैं श्रीजिनेन्द्र विराजैं हैं। सो अष्ट प्रातिहार्य करि मण्डित हैं सो तिन प्रातिहार्यनका विशेष कहिये है। सो तहां गंधकुटीके मध्य जाकामूल, अरु चौगिरद बड़े विस्तार धरैं, नानाप्रकार रत्नमई शाखान व रत्नमई फल-फूल पत्र सहित, अशोक वृक्ष है। ताके देखे अनेक जातिका शोक जाता रहै है। तातैं याका नाम अशोक वृक्ष है ॥ १ ॥ देवन करि वर्षाई, सर्व समोशरणमें अनेक वर्णमयी महा सुगंध सहित कल्पवृक्षनके फूलनकी वर्षा, सो अद्भुत महिमाकारी मानौं ज्योतिषी देवनके विमान ही आकाश तैं भगवान्‌के दर्शनकूं आये हैं। ऐसी प्रभा सहित फूलनकी वर्षा होनी सो पुष्पवृष्टि प्रातिहार्य है ॥ २ ॥ आकाश विषैं देवनि करि बजाये ॥१२॥ करोड़ जातिके अनेक सुन्दर वादित्रनके शब्द, सो दुंदुभी वादित्र हैं। उसीका नाम दुंदुभी प्रातिहार्य है ॥३॥ जैसा जिनदेवके शरीरका वर्ण, ता समान शरीरकी चौगिरद, गोलाकार, शरीरकी प्रभाका मण्डल सो प्रभा-मंडल है। तामें भव्य जीव अपने-अपने अगले-पिछले भव देखैं हैं। उसीका नाम प्रभामंडल है ॥ ४ ॥ तथा अनेक रत्न-मई सिंहासन शोभै है। तापै जिनदेव विराजैं। सो सिंहासन प्रातिहार्य है ॥ ५ ॥ एक दिन रात्रि विषैं ४ बार छह-छह घड़ी पर्यंत, भगवानकी वाणी खिरै। सो दिव्यध्वनि है। सो जैसे मेघ गर्जै तैसे शब्द करती औंठ नाहीं हिलैं, तालवा नाहीं हिलैं, सर्व शरीर तैं उत्पन्न भई, अक्षर रहित, भगवान्‌की वाणी खिरै ताके निमित्त पाय जो जीव जिस भाषा करि समझैं, जाका जैसा अभिप्राय होय, तथा जाकूं जैसा उपदेश योग्य होय तिस जीवके श्रोत्र-इन्द्रिय द्वार तिष्टे पुद्गलस्कंध, तिसही अर्थ कूं लिये तैसे ही अक्षर रूप होय,

परणमैं हैं। तिस करि सर्व जीव, जुदा-जुदा उपदेश धारण करैं हैं। ऐसे अतिशय सहित भगवान्‌की वाणीका होना। सो दिव्यध्वनि प्रातिहार्य है ॥ ६ ॥ तीन रत्नमई छत्र, भगवान्‌के मस्तकपै फिरैं। सो छत्र प्रातिहार्य है ॥ ७ ॥ देवनि करि ढोरे गये ६४ रत्नमई चमर गंगाधारा समान उज्ज्वल सो चमर प्रातिहार्य सहित भगवान् समोशरणमैं विराजैं हैं ॥ ८ ॥ भगवानके है तो एक मुख, परन्तु च्यारों दिशा विषैं तिष्ठते जीव तिनकूं च्यारों ही तरफ मुख दीखै च्यारों ही दिशाके जीव ऐसा जानैं, जो भगवान्‌का मुख हमारे सन्मुख है। तथा उन्हें भगवान्‌के च्यारि मुख दीखैं हैं। भगवानकी मुद्रा, विना यत्न ही नाशाग्र-दृष्टि धरैं, ध्यान रूप, समता-रस मई होय है। तातैं भगवान्‌का दर्शन करनहारे भव्यनकी, दर्शन करते ही, ध्यान मुद्राका स्मरण होय, शांत दशा होय है। तातैं वीतराग-भाव बधे है सो मुद्रा अतिशय सहित है। कदाचित् शान्तमुद्रा नहीं होती तो भक्तनका भला नहीं होता। तातैं पर-जीवनका भला करनहारी, विश्वास उपजावनहारी, ध्यान रूप, पद्मासन, कायोत्सर्ग मुद्रा ही है सो ध्यान मुद्राके धारी भगवान् तिनकी वाह्य संपदा तो समोशरण है। आभ्यंतर संपदा अनन्त-चतुष्टयादि अनन्त गुण हैं। ऐसे भगवान्‌कूं हमारा नमस्कार होऊ। और जो भव्य भगवान्‌के दर्शन कूं, समोशरणमैं जांय हैं, सो देव-विद्याधर तौ स्वेच्छा जांय हैं। भूमि-गोचरी मनुष्य तथा तिर्यंच, पगथेनकी राह, चढ़िकरि जांय हैं सो केई जीव तो सीधे ही पगथेन चढ़ि दर्शनकौं चले जांय हैं। केई जीव पगथेन चढ़ि कैं, पीछे सप्तभूमि पै जाय कैं, समोशरणकी गलीकी राह होय, अनेक रचना देखते, दर्शनकौं जांय हैं सो जे देव, विद्याधर चक्री आदि भव्य हैं। सो प्रथम पीठि पर्यंत जांय हैं। अरु दर्शन करि, अपने कोठेमैं जाय तिष्ठैं हैं। पीछे केई जीव बाहिर आय, जिन-गुण-गानादि करैं हैं सो समोशरण विषैं गये, ऐसा अतिशय होय है कि अन्धे तौ नेत्र सूं देखैं, बहरे सुनैं, रोगी निरोग होंय। अनेक दुख सहित जीव दुख तजि सुखी होय हैं। समोशरणमैं गये अनेक आरति, दुख, शोक, चिंता, भय, दूर होंय हैं। तहां सर्व प्रकार सुखी होंय हैं। परस्पर जीवनकैं बैर भाव नहीं रहै है। तहां सिंह-गाय-मोर-सर्प, मूसा-मार्जार कुत्ता-बिल्ली, इत्यादिक जाति-विरोधी जीव, बैर-भाव तजि मैत्री-भाव करैं हैं। तहां स्थान तो संख्यात अंगुल प्रमाण है। परन्तु तहां

जीव असंख्यात आवैं, तौ भी भीड़ नहीं होय। तहां क्षुधा, तृषा, नहीं लागै। राग-द्वेष नहीं होय। क्रोध मान माया लोभ नहीं उपजैं। इन आदिक समोशरणमें अनेक अतिशय होंय हैं। और समोशरणके बाह्य, १०० योजन पर्यंत, दुर्भिक्ष, ईति, भीति नहीं होय। या प्रकार भगवान्‌का अतिशय होय है। इन्द्रकी आज्ञा तैं धनपति देव, समोशरण रचै है। ऐसे समोशरणमें विराजमान श्रीभगवान् तिनका दर्शन जिनकूं प्रत्यक्ष होय ते भव्य धन्य हैं। हम पुण्य-संपदा रहित, प्रत्यक्ष दर्शनकों असमर्थ हैं। तातें मन, वच, तन करि, जिनदेवकों परोक्ष नमस्कार करैं। सो वे भगवान्, हमकूं इस ग्रन्थके पूरण होतैं अन्त-मंगल विषैं, सहाय होऊ। ऐसे समोशरण वर्णन किया। आगे भगवान्‌के विहार कर्मका स्वरूप कहिये है। तहां समोशरण विषैं विराजमान भगवान्‌के विहारका जब समय होय, तब इन्द्र महाराज अवधि तैं जानिकैं, लौकिक समय साधवेकूं, ऐसी बिनती करैं हैं। हे भगवान्! यह विहार-समय है, सो विहार करि अनेक भव्य—जीवनकूं धर्मोपदेश देयकें, उनको सुमार्ग बताय तिनका भला कीजिये। तब देवेन्द्रका प्रश्न पाय, भगवान्‌का तौ विहार-कर्म होय। अरु पिछली समोशरण-रचना विघटि जाय सो भगवान् जिस मार्ग विषैं विहार करैं। तिस मार्ग विषैं, दोऊ तरफ नाना प्रकार षट् ऋतुके फल-फूल सहित, अनेक वृक्षनकी सघन पंक्ति, होय जाय हैं। दोऊ तरफ, चांवलनके खेत, महा रमणीक, हरित वर्ण होय जांय हैं नदी, बावड़ी, महल पंक्ति, पर्वतनकी शोभा, मनोहर होय जाय है। तिस मार्गकी सर्व भूमि, दर्पण समान निर्मल होय जाय है। तिसके दोऊ तरफ चांवलनके फूले बनकी पंक्ति, अरु तिन चांवलनके निकट दोऊ तरफ निर्मल जलकी धारा धरैं, नदी समान नहर, चल्या करै है। और तिस मार्ग पै, आकाश तैं मेघकुमार जातिके देव, सुगंधित-जलके कण, मोती समान बारीका बर्षावते जांय हैं। और पवनकुमार जातिके देव, मन्द-सुगंध पवन, चलावते जांय हैं। एक योजन पर्यंत, सर्व भूमि, कंटक रहित करते जांय हैं। तिस मार्ग विषैं, भगवान् तौ समोशरणकी ऊंचाई प्रमाण आकाशमें गमन करैं, तिनके पद-कमलनके नीचे, १५-१५ कमलके फूलनिकी पंक्ति, १५ पंक्ति देव रचि देंय। सो २२५ कमलनका समुदाय, एक जायगै भूमका रूप रहै। ताके मध्यके कमल पै, च्यारि अंगुलके अन्तर पै पांव धरते भगवान्

आकाश विषैं मनुष्यकी नांईं डग भरते विहार करैं। यहां प्रश्न-जो भगवान् कैं तो इच्छा नाहीं। सो इच्छा विना डग कैसे भरी जाय? ताका समाधान-जो भगवान् कैं, च्यारि अघातिया कर्म बैठे हैं। तिनके कारण पाय, वाणी खिरना, उठना, बैठना, चलना, डग भरना आदि क्रिया संभवै है। यामें इच्छा-बिना क्रिया होय है, यातैं दोष नाहीं। ऐसा जानना। ऐसे तौ भगवान् का विहार होय। मुनि आर्यिका, श्रावक श्राविका, च्यारि-प्रकार संघका विहार, भूमि विषैं होय है। कैसी हैं भूमि, सौ बीथी (मार्ग) रूप है सो बीथीके दोऊ तरफ तो कोट हैं। ताके मध्य, एक योजन लम्बी, आध योजन चौड़ी रास्ता समान, देवन करि रची हुई, महा शोभायमान, रमणीक, निर्मल स्थान रूप गली है सो देव, विद्याधर, चारण-मुनि, और सामान्य केवली तो आकाशमें गमन करैं हैं। सो नहीं तो भगवान् तैं अति नजदीक, नहीं अति दूर, यथा-योग्य स्थान पै गमन करे हैं। सो इन्द्र हैं ते तौ भगवान्के नजदीक, भक्ति सहित चले जांय हैं। और सामान्य, चार प्रकारके देव हैं। सो दूर चले जांय हैं। सो केई देव तौ, चमर ढोरते जांय हैं। केई देव जय-जय शब्द करते जांय हैं। केई देव, चोबदारकी नांईं, हाथमें रत्न-छड़ी लिये, देवनकूं चले-चलो, चले-चलो, कहते जांय हैं। देवोंके समूहकौं विनय तैं, सिलसिले तैं लगावते जांय हैं। इत उत करते जांय हैं। और केई देव, भगवानकी स्तुति करते जांय हैं। केई देव बन्दना-नमस्कार करते जांय हैं। केई हर्षके भरे कौतूहल करते जांय हैं। और ऐसे ही मनुष्य तिर्यंच, भूमि विषैं, हर्ष ते चले जांय है। केई भव्य, भगवान् की तरफ देखते जाय हैं। इत्यादिक विहार समय, अनेक शुभ कार्य होंय हैं। सो सर्व व्याख्यान, विशेषज्ञानीके गम्य है। हमारी शक्ति सर्व कथा कहनेकी नाहीं। ऐसे विहार-कर्मका कथन किया। सो आगूं भगवान् जहां जाय विराजैंगे, तहां इन्द्रादिक देव, समोशरणकी रचना, पूर्वोक्त रचैं हैं। ता विषैं, भगवान् विहार करि, जाय विराजैं हैं। तिन भगवानकूं, हमारा नमस्कार होऊ। ये जिनेन्द्र देव, इस ग्रंथके अन्त-मंगलकूं करहु॥

इति श्रीसुदृष्टि तरंगिणी नाम ग्रन्थ मध्ये, अन्त-मंगल निमित्त अरहंतदेवकूं नमस्कार पूर्वक समोशरण कथन, विहार-कर्म कथन वर्णनो नाम, चालीसवां पर्व सम्पूर्ण॥

आगे और भी अंत-मंगलके निमित्त, भगवानके महा भक्त, स्तोत्रनके कर्त्ता आचार्य, तिन कूं नमस्कार करिये है। तहां प्रथम श्री वादिराजनाम आचार्य, जिन-धर्मके उद्योत करवेकूं सूर्य समान महा तेजस्वी, एकीभाव स्तोत्रके कर्त्ता, तिन कूं नमस्कार होऊ। वादिराज मुनिने, जा कारण पाय एकीभाव स्तोत्र किया, सो कहिये है-इनने गृहस्थ अवस्थामें अनेक राज्य—भोगनके भोक्ता होय, कामदेव—समान रूप धरैं, संसार-भोगन तैं उदास होय, राज्य भार तजि, यती-व्रत धारया। सो महा वीतराग पदके धारी कौं, पूर्व कर्म उदय, शरीरमें कुष्ट रोग प्रकटया। सो तन, जगह-जगह तैं फूट निकस्या। महा दुर्गंध उपजी। सो यह वीतरागी, तन तैं निष्प्रेम है। आगे ही सूं शरीर कूं पुद्गल-सप्तधातुका पिण्ड जानै आत्मा-रस रमता योगीश्वर, शरीरका उपचार, कछू नहीं वांछता भया। सो विहार करते, एक नगरके बनमें तिष्ठै। सो जब बस्ती में आहार कूं जांय, सो नगरमें महा धर्मात्मा श्रावक, निर्विचिकित्सा गुणके धारी, यती कौं नवधा-भक्ति सहित, हर्ष सौं दान देय, अपना भव सफल मानैं। ऐसे, बनमें रहते, कई दिन भये। सो राजाका मन्त्री, एक सेठ था। जो महा धर्मात्मा। प्रभात उठै बनमें जाय, रोज वादिराजमुनिका दर्शन करि, धर्म सुनि, तब पीछे राजाके दरवारमें जाय। सो कोऊ पापी, इस सेठके द्वेषी पुरुषने, जाय राजा पै कही। भो राजन्! इस सेठका गुरु, कोढ़ी है। सो यह प्रथम ही उस कोढ़ीके दर्शन कूं जाय, ताके मुख तैं धर्म सुनि, पीछे आपकी सेवामें आवै है। याका गुरु महा कोढ़ी है। ताको दुर्गंध आगे, कोई नहीं ठहरै। सो ये बात उचित नाहीं। तब राजा कही, यह बात झूठ है। ये सेठ, हमारा ऐसा अविनय नहीं करै। तब चुगलने कही, यामें असत्य होय, तौ जो गुनहगारकी गति होय, सो मेरी करो। तब राजा ने, दूसरे दिन सेठ सूं कही। हे सेठ! क्या तेरा गुरु कोढ़ी है? तब सेठ इसका उत्तर अविनय वचन जानि, राजा सूं कही। भो नाथ! कहनेहारे ने असत्य कही है। गुरु शुद्ध हैं। तब राजा नैं कही। जो शुद्ध हैं तो हम प्रभात दर्शन कौं चालेंगे। ऐसे राजा के वचन सुनि, सेठ चिंता कूं प्राप्त भया। जो मैं राजा पै असत्य बोल्या, सो तौ विनय तैं बोल्या। मेरे मुख तैं मैं, गुरु कौं कुष्ट है, ऐसा अयोग्य-वचन कैसे कहौं? ऐसी जानि असत्य कहा। अरु प्रभात, राजा

दर्शन कूं जाय, गुरुका शरीर प्रत्यक्ष रोग सहित देखेगा, तौ यह पापिष्ट गुरु कौं उपद्रव करेगा। अरु मेरा मरण भया ही है। परन्तु गुरु कौं उपसर्ग नहीं होय तौ भला है। इत्यादिक प्रकार सेठ महा चिंतावान् होय पीछे वनमें गुरुके पास गया। सो मुनीश्वर ज्ञान-भंडार कही। भो वत्स! तेरा मुख चिंतावान्-उदास क्यों? अरु तू प्रभात आया था सो अबार आवनेका कारण कहा? तब सेठ ने गुरुके पास राजाके आवनेकी सर्व कथा कही। अरु विनती करी कि यह राजा महा क्रूर स्वभावी है। सो मोकूं मारेगा तो मारौ। परन्तु आप यहां तैं विहार करौ तो भला है। नहीं तो उपसर्ग करेगा। मैं महा पापी ताके निमित्त पाय उपद्रव हो है। इत्यादिक, सेठ कूं महा भयावंत भया, अपनी आलोचना कूं लिए वचन बोलता देख, मुनीश्वर करुणा करि, धर्मकी प्रभावना करवे कूं बोलते भए। भो वत्स! भो आर्य! भय मत करो। राजा दर्शन कूं आवे, तौ आवने देवो। ऐसे गुरुके वचन सुनि, सेठ मनमें हर्ष पावता भया। जो जगतका नाथ, मेरे गुरुने, मोहि अभयदान दिया। सो अब भय नाहीं। तब भी सेठने विचारी, जो गुरुके तन में तो, यह प्रत्यक्ष रोग है। अरु गुरुने अभयदान दिय। सो यह वचन गुरुका, आश्चर्य उपजावे है। तथा सेठ विचारे है। यह वीतराग-गुरुकी, अखंड आज्ञा है। सो मेरु चलायमान होय तो होय, परन्तु गुरुका वचन अन्यथा नाहीं होय। तातें, गुरु कही, भय मति करौ, सो अब मोहि, भय नाहीं। ऐसा दृढ़ निश्चय करि, सेठ भी अपने मन्दिर गया। तब यतीश्वरने भगवान की स्तुति करी। चौवीस काव्य में, स्तोत्र किया। सो मन-वचन—काय एकत्व शुभ रूप करि, जिनदेव के गुणानुवाद गाये। सो भक्तिके भाव तें, अंत काव्य के पूरण होते, यतीके तनका सर्व रोग, नाश भया। सूर्यके तेज समान, तनकी दीप्ति प्रगट भई। सो यतिने बांयें हाथकी छोटी अंगुली की एक नौंक, राजाके प्रतीति के अर्थ, रोग सहित रहने दई। बाकी सर्व—तन, कंचन वर्ण भया। जब प्रभात, राजा दर्शन निमित्त, चतुरंग सेना मिलाय, महा दल सहित आया। अरु यतीके तनका रोग, सब नगर जाने था सो इस कौतुक कूं सुनि, सब नगरके लोग भी, कौतुक-हेतु आये। सो वनमें मनुष्यका समूह फैल गया। राजा तहां आया, जहां यतीश्वर विराजें। सो वाहन तें उतरि, मुनिके दर्शन कूं आगे

गया। सो शरद ऋतुकी पूर्णमासीके चन्द्रमा समान निर्मल कान्ति धारैं, समता समुद्र, वीतरागी योगीश्वर कूं देख, मुनिके तनकी दीप्ति कौं देख, विस्मय कूं प्राप्त भया। दूर तैं नमस्कार किया। राजाने मुनिकी अनेक स्तुति करी। अरु जानैं, राजा पै चुगली करी थी, तापै राजा कोप करि, ताकौं दण्ड देवे का विचार करता भया। तब यतीन्द्रने, राजाके मनका अभिप्राय जानि, आज्ञा करी। भो नृपेन्द्र! कोप मति करौ। वानै असति नहीं कही थी। हमारा तन कुष्ट—रोग सहित था। परन्तु या सेठने, मेरे रोग का नाम, अविनय—भय तैं नहीं लिया। सो याके भय निवारण कूं, प्रभुकी स्तुतिके प्रसाद तैं, शरीर शुद्ध भया। बाकी यह शरीर, महा अशुचि, सप्त धातुका पिण्ड ग्लानि का स्थान है। याके विषैं, यती निष्प्रिय है। परन्तु सेठ के धर्मानुराग सूं, यह कार्य किया है। अपने बांये-करकी अंगुली की नौंक, रोग सहित राखी थी, सो राजा कौं बताई। कही, भो नरेन्द्र! यह अँगुली समान, यह सर्व तन था। सो धर्म के प्रसाद करि, प्रभुकी भक्ति के प्रसाद करि, यह तन शुद्ध भया। तातैं तूं कोप मति करै। वानै सत्यही कही थी। ऐसे बचन मुनिके सुनि, राजा अचरज कूं प्राप्त भया। मिथ्या—बुद्धि गई। अरु शुद्ध—धर्मका धारी भया। बारम्बार, सर्वज्ञ का धर्म प्रशंस्या। सर्व लोग यह अतिशय देख, मिथ्या—भाव तजि, शुद्ध—धर्मके धारक भए। और श्री वादिराज मुनीन्द्रकी स्तुति करते भये। अरु वादिराज—योगीश्वर का किया एकीभाव स्तोत्र कौं, घनै भव्य, मंगलके अर्थ सुनते भये, पढ़ते भये। ऐसा एकीभाव स्तोत्र, अरु इसके कर्त्ता श्री वादिराज मुनीश्वर जगत गुरु, इस ग्रन्थके अंत में, इस ग्रन्थके कर्त्ता कूं, तथा इस ग्रन्थके पढ़नेहारेन कूं मंगल करौ। ऐसे वादिराज नामा आचार्य कूं नमस्कार करि, अन्त-मंगल विषैं, तिनके गुणनका स्मरण किया। आगे इस ग्रन्थके अन्त-मंगल करतैं, श्री भक्तामर-स्तोत्रके कर्ता श्री मानतुङ्गाचार्य, तिनकूं नमस्कार करिये है। कैसे हैं श्री मानतुङ्गाचार्य, प्रत्यक्ष जिनधर्म प्रकाशवेकूं दिनकरि सूर्य समानि हैं। अरु मिथ्या-सन्देह मयी शिखर, ताके भंजनकूं, इन्द्रवज्रके समानि हैं। प्रत्यक्ष भगवन्त देवके महाभक्त हैं। तथा कुवादीनकी अतत्व श्रद्धान रूपी प्रवाह रूप नदी, सो कुनय रूप तरंगनि सहित, सो ज्ञान रूपी जीर्ण वृक्ष तिनकौं उपा-

ड़ती, अपनी स्वेच्छा वेग रूप बहती ऐसी तरंगणी, ताके रोकवेकूं मानतुंग गुरु, कुलाचल-शिखर समानि हैं। ऐसे गुरुकूं नमस्कार होऊ। जिन नैं भक्तामर-स्तोत्र करि, प्रगट यश पाया। तिन तैं भक्तामर-स्तोत्र कैसे भया, सो कहिये है। तहां उज्जैन नगरी, जहां राजा सिंह महा-प्रतापी, राज्य करै। ताके रत्नावली नाम स्त्री, सो महा सती, शची समान रूपवती है सो तिनकैं पुत्र नाहीं राजाकूं चिन्ता भई। तब मन्त्रीने कही। हे नाथ! धर्म-सेवनकीजे। ताके प्रसाद, सब सुख: होय है। ऐसे करते, एक दिन राजा, परिवार सहित बन गया सो एक सरोवरके तीर मुंजके वृक्ष नीचे, एक बालक देख्या। सो बालक, रानीकूं दिया और ताका नाम मुंजकुमार रखा सो बालक अपने रूप-गुण सहित, बधता भया। पीछे केतेक दिन गये, रत्नावली रानीके गर्भ रह्या। सो नव मास पूर्ण भये, पुत्र भया। ताका नाम, सिंहलकुमार रखा। वह अनुक्रम तैं, तरुण भया। तब पिताने, सिंहलकुमारके व्याह किये सो शुभ राजोंकी पुत्रीं, तिनमें एक मृगावती नामा रानी सहित; कुमार कैं दोय पुत्र-युगल भये। तिनमें बड़का नाम शुभचन्द्र, अरु छोटेका नाम भर्तृहरि। ये दोय-पुत्र क्रम तैं, स्याने भये। अनेक विद्या-प्रवीण भये। एक दिन राजा:सिंह, संसार तैं उदास भये सो मुंजकूं राज्य, अरु सिंहलकूं युवराज पद देय, आप यती पद धारि, आत्म कल्याण किया। अब राजा मुंज, राज्य करै सो एक दिने, राजा बनक्रीड़ाकों गया था सो आवते, एक मन्दिरके द्वार, एक तेलीने कुदार नाम विद्या साधी थी सो ताने कही। हे राजन् मोकूं विद्या सधी है सो मो समान, पृथ्वीमें बली नाहीं। तब राजाने कही तू नीच कुलीकूं एती विद्याका बल कबहूं हो सक्ता नाहीं। तब तेलीने दोऊं हाथ तैं जोर करि विद्याका कुदार, धरतीमें गाड़्या। कही जो कोई योद्धा होय, तौ काढ़ौ। तब राजाने अपने सामंतनकूं कही काढ़ौ सो सर्व सामन्त, बड़े-बड़े मल्ल, पचि-पचि हारे, कुदार नाहीं निकस्या। तब राजा सिंहल उठ्या सो एक हाथ तैं कुदार निकास्या। पीछे सिंहलने एक हाथ तें, कुदार गाड्या। अरु कही, याकौं काढ़ौ, तौ जानैं। तब तेली, विद्या-बल करि हार्‌या। तथा राजाके मल्ल-सुभट पचिहारे, कुदार नाहीं निकस्या। एतेमें राजा-सिंहलके दोय पुत्र आये। अरु पितातैं कही। प्रभो! हमकौं आज्ञा करो तौ हम काढैं। तब राजा, हँस करि कही।

भो पुत्र हो! यहां तिहारा काम नाहीं। तिहारी वराबरीके लड़का-बालकनमें क्रीड़ा करौ। तब कुमारोंने कही। हे नाथ! बिना हाथ लगाये काढ़ैं, तो आपके पुत्र जानहु। सो हठ करि, पिता तैं आज्ञा लेय, अपने मस्तकके केश लेय, कुदारमें उरझाय कैं, झटक्या सो खैंच कैं कुदार निकस्या सो इनका पौरुष देख, राजा मुंजने मंत्रीसूं कही। इनकूं मारो। इन बालकन छते, मेरा राज्य जमैं नाहीं। तब मंत्रीने, इन कुमारनकूं कही। तुम्हारा बाबा तुमकौं मारचा चाहै है। तातैं तुम कोई दिन यहां सूं भागो तब दोऊ कुमारन नैं, अपने पितासूं कही। भो नाथ! हम कूं राजा मुंज, मास्या चाहै है सो हमकौं, कहा आज्ञा होय है? तब राजा सिंहलने कही। तुम ताकौं मारो। जो आपको हनैं, तो हनताकौं आप भी हनिये। याका दोष नाहीं। यह राजनीति है। एसे वचन पिताके सुनि, शुभचन्द्र अरु भर्तृहरि इन दोऊ कुमारननैं कही। हे नाथ! हमारैं तो वे आपकी समान हैं सो बाबा कौं कैसे मारैं? सो संसार तैं उदास होय, विरक्त भये। अरु दोऊ भाई, तप धरते भये। सो शुभचन्द्र तो बनमें जाय, धर्म धुरंधर गुरुके पास जिन-दीक्षा धरि मुनि भये। नाना तप करि अनेक ऋद्धि पाई। छोटे भाई भर्तहरिने बनमें जाय तपसीके व्रत धारे सो अनेक अज्ञान तप करे। सो एक दिन बनमें भूल्या सो त्रिसावन्त भया नीर देखता, एक जायगा बनमें एक तापसी, पञ्चाग्नि आदि अनेक तप करै, तहां पहुंचा। सो भर्तृहरिने तिस तापसीके पास जाय, नमस्कार किया। तब तापसीने, भर्तृहरि सूं कही। तुम अपना नाम-कुल कहौ। तब भर्तृहरिने नाम-कुल कह्या सो भर्तृहरिने, याकी बड़ी सेवा करी तब तापसीने राजी होय, कलंकी तूम्बो भर दीनी। और कही। यातैं तांबा, कंचन होय है। अनेक मंत्र तंत्र आदि चमत्कारी-विद्या दई। एसे बारह वर्ष तांईं, भर्तृहरिजीने, तापसीकी सेवा करी। पीछे गुरुके पास तैं, सीख मांगी। पीछे भाई शुभचन्द्रजी की खबर कों चेला भेजे। सो चेलोंने, शुभचन्द्र कों गंधमर्दन पर्वत पै, ध्यानारूढ़, नगन तन, वीतराग देखे सो भर्तृहरिके चेला, दोय दिन उपवास करि, भूख तैं भागे सो आय भर्तृहरि कूं कही। तुम्हारे भाई पै लगोट नाहीं। भूख तैं चीण हैं। अरु तुम, राज भोगो हो। सो कछु भाई कौं देव। जातैं ताका दारिद्र जाय। तब भर्तृहरि ने, आधा कलंक का तूम्बा, भाई कों

भेजा। सो शुभचन्द्रने पत्थर पै डाल दिया। तब चेलाने, भर्तृहरि सूं कही। वह भाग्यहीन है, कलंक डाल दिया। तब भर्तृहरिने आप, शुभचन्द्र जी पै जाय, पिता समान बड़े भाई कूं जानि, विनय तैं नमस्कार करि, कलंक की तूम्बी आगे धरी। तब शुभचन्द्रजी ने कही, तूम्बीमें कहा है? तब भर्तृहरिने कही। भो प्रभो! तांबा तैं कंचन करै, यामें ऐसा गुण है। तब शुभचन्द्रजी ने तूम्बा उठाय, शिलपर धरि पटक्या। सो भर्तृहरि कही। भो भ्रात! यह अनेक राज्य—संपदा का द्रव्य, आपने डाल दिया, सो भली नहीं करी। हे भ्रात! बारह बर्ष गुरुकी सेवा करो, तब मोकूं उन्होंने दीनी थी। इस तरह भर्तृहरि कौं खेद—खिन्न देख, शुभचन्द्रजी ने कही। भो वत्स! राज्य तजि, वन बसे। अब भी कलंक नहीं तज्या। यह कलंक, मुनीश्वरों कूं कलंक समान है। तातें तजना योग्य है। अरु भो वत्स! तेरे कलंक तैं, पाहन तौ कंचन नहीं भया। अरु तेरै स्वर्ण की चाह होय, तौ देख! तब शुभचन्द्र ने, अपने पांव—नीचेकी रज लेय, एक बड़ी शिला पै डाली। सो सर्व शिला कंचनकी भई। सो भर्तृहरि यह अतिशय देख, बड़े भाईके पांयन पड़े। अनेक स्तुति करि, जिन—दीक्षा याची। तब शुभचन्द्रजी ने दीक्षा दई। अरु इनके संबोधवे कौं, ज्ञानार्णव नाम ग्रन्थ बनाय, दीक्षामें दृढ़ किया। सो पीछे, दोउ भाई, जिन-दीक्षा सहित तप करते भये। अरु वहां, उज्जैन नगरी का राज्य, राजा मुंज करै। सो एक दिन राजा मुंज, मनमें दगा विचारता भया। जो, सिंहल जोरावर है। यातैं मेरा राज्य नहीं रहेगा। तब मंत्री कूं कही। सिंहल कूं मारौ। तब मंत्रीने कही। दोष कहा सो कहौ। निर्दोष कौं मारे, महा-पाप है। तब एक दासी सौं मिलि, ताकौं अंधा किया। तिस चेटीने, सिंहल कौं, तेल मर्दन करतें, ताके नेत्र फोड़े। तब राजा मुंज, यह सुनि दुख करता भया। जो पुत्र तौ दीक्षा ले गये, भाई अंधा भया। अब कुल नाश भया। मैंने महा-पाप किया। इत्यादि प्रकार पछताता भया सो एते, एक भोजक—याचकने आय, राजा मुंज कूं बधाई दई। कही, भो राजन्! तुम्हारे भाई सिंहलके पुत्र भया। तब राजा मुंज राजी होय, सिंहलके घर आया सो द्वार पै एक श्लोक लिखा देख्या—

श्लोक—वर्षाणि पञ्च पञ्चाशत, सप्त मासान् दिनत्रयं। भोजराजेन भोक्तव्या, सुखेन दक्षिण दिशा ॥ १ ॥

यह श्लोक देख, राजा मुंजने परिडतन कूं बुलवाय, कही। श्लोक किसने लिख्या ? तब एक परिडतने कही। भो राजन् ! इस बालकके पुण्यका माहात्म्ह-होनहार, मैंने लिख्या है। ये भोजराज, दक्षिण दिशामें ५५ वर्ष ७ महीना ३ दिन राज्य करेगा। ऐसी सुनि, सर्व राजी भये। बालक अनेक विद्यानिधान, क्रम करि वड़ा भया। तब राजा मुंजने भोजपुत्रका व्याह करि, राज्य दिया सो राजा भोज, जगत्में अपने प्रताप करि, राज्य करै। इस भोजराजाके यहां, एकवररुचि नाम परिडत रहै सो ताकी पुत्री, वर-योग्य भई। सो पिता ने पुत्री सूं कही। तू कहै, ताहि परणाऊं। तब पुत्री ने कही। ऊंच-कुलकी कन्या, अपने आप, वर नहीं याचै। जो भाग्यमें होय, सो पावै। तथा व्यवहारनय करि, माता-पिता जाकूं परणावैं, सो प्रमाण है। ऐसे पुत्रीके वचन सुनि, पिता महा-कोप करि, एक महा दरिद्र, मूर्ख पुरुष खोज, ताहि कन्या परणाई। तब कन्या ने कही, पूर्व-कर्म कौं कौन मेटै ? ऐसी जानि, वह समता धरती भई। पीछे वररुचि विचारी। जो राजा भोज पूंछेगा, तुम्हारा दामाद कैसा पंडित है ? तो मोहि लज्जा उपजेगी। ऐसा जानि वररुचि, ता दामाद कूं बहुत पढ़ावै। परन्तु ताकौं, एक अक्षर भी नहीं आवै। बहुत कालमें, आशीर्वाद वढ़ाया सो राजा भोजकी सभामें अनेक पंडित इकट्ठे भये। तहां वररुचिका दामाद जाय, राजा कों आशीष वचन देते अशुद्ध बोल्या। तब राजा ने कही, मूर्ख है। तब वररुचि ने अशुद्ध वचन कौं, अपनी पंडिताई करि, शुभ करि, राजा कों बताया। घर जाय जमाई कौं, मान-खंडनेहारे वचन कहे। तब ये अपने कों मूर्ख जानि, कालिकादेवीके मठमें, अधो-मुख जाय पर्‌या। कही मोय विद्या-वर देहु, नहीं तौ मैं मरि हौं। तब सातवें दिन, देवी प्रसन्न भई। वांछित वर दिया। कही, तेरा नाम कवि-कालिदास हो। और वचन-सिद्ध वर दिया सो देवीके प्रसाद तैं, अनेक विद्या-शब्द स्फुरे। ताकरि सर्व पंडित जीते। तब सबने कही, विद्या कहां पाई ? तब यानें कही, कालिका देवीके पास पाई। तब वररुचि याके पाँयन पर्‌या। कही, मेरी कन्या धन्य है। याके वचन, सत्य हैं। अब ये कालिदास प्रगट भया। सो एक दिन राजा भोजकी सभामें जाय, कालिका कूं आराधी सो सर्व साभ, कालिका कौं देख, नमस्कार करि, कालिदासकी प्रसंशा करती भई। ऐसे कालिदास प्रसिद्ध भया।

अब एक वसुदत्त सेठ, याही उज्जैनी नगरीमें रहै। सो महा- धर्मात्मा, ताके मनोहर नाम पुत्र था सो एक दिन सेठ, पुत्र सहित, राजा भोज पै गया। तब राजा ने, सेठ तैं पूछी। तिहारा पुत्र कहा पढ़्या है? तब सेठ कही। भो नाथ। नाममाला ग्रन्थ, अर्थ सहित पढ़्या। तब भोजराज कही। नाममालाका कर्त्ता कौन? तब सेठ कही। धनंजय नाम महा-पंडित है। तब राजा कही, धनंजय त मिलाओ। सो राजा-भोज महा-पंडित, गुणीजनका दास, सो धनंजय कूं वूलाया। आदर सहित राजाने भले मनुष्य भेजे। तब कालिदास वोल्या। हे राजन्। धनंजय, कछू समझता नाहीं। जब धनंजय-कवि आया, तब राजा ने धनंजय कूं, ऊंचे आसन पर वैठक दई। और कही, तुम्हारा नाम वड़ा। सो कौन ग्रन्थ किये? तब धनंजय कही। भो राजेन्द्र! मेरे किये ग्रन्थमें, इन पंडितों ने मेरा नाम लोप, अपना नाम धर्या है। तब भोजराज ने, पंडितोंको उलाहना दिया, कि तुम काहेके पंडित हो। तब सर्व पंडितौ ने कही। भो राजन् यह धनंजय कचका पंडित है। याका गुरु तौ, मानतुङ्ग मुनि है। जो महा मूर्ख है। यापै विद्या, कहां तैं आई? याका गुरु अब भी वनमें है। सो आय, हम तैं वाद करै। तब धनंजय कही। भो पंडित हो। गुरुका नाम तौ, उत्तम गुण-रूप है सो वे वहीं विराजै रहैं। परन्तु तुम्हारे वादको इच्छा होय, तो मोतैं वाद करो। तब इनमें परस्पर वाद होता भया। सो अनेक नय, दृष्टान्त, प्रश्नोत्तर करि कालिदास आदि सर्व पंडितों कूं राजा भोजकी सभामें धनंजय ने जीत्या। सब वचन-वंद भये। तब कालिदास कोप करि वोल्या। हे राजन्। यह महा मूर्ख है। सो यातैं कहा वाद करैं। याका गुरु मानतुङ्ग है। सो ताकौं वुलाइये, तातैं वाद करैंगे। तब राजा ने अपने भले मनुष्य मानतुंग नामा मुनीश्वरके ल्यायवे कौं भेजे। तिननें मुनीश्वर सूं कही। हे नाथ। राजा भोजने नमस्कार कह्या है। अरु आप कूं वुलाये हैं। तब यती कही। हमारा राजगृहमें प्रयोजन नाहीं। ऐसी कही और नहीं गये तब कालिदास कही। भो राजन्। वह मान तु ंग मानका शिखर है। महा-मानी है सो भली तरह नहीं आवेगा तब राजा भोज, कोप करि कही। यतीकौं, पकड़ि ल्यावो। ऐसी सुनि, राजाके सेवक गये, सो यती कूं उठाय ल्याये राजाके पास धर्या सो यती मौन सहित, पंच-परमेष्ठीका ध्यान करते, तिष्ठते भये। तब राजा, कोप करि कही, याकौं वंदी- ६४६

गृहमें धरौ। तब राजाकी आज्ञा पाय, किंकिरोंने यतीकौं भौंहरेमें दिया सो अड़तालीस कोठोंके भीतर मूदे, और सब कोठोंके जुदे-जुदे ताले दिये। राजाकी तिनपै मुहुर करी अरु यतीके पांवनमें बेड़ी, अरु हाथमें हथकड़ी, गलेमें जेल (सांकल) डाली। इत्यादिक दृढ़ बंधन किये। तापै, अनेक विश्वासी सुभट राखे। ऐसे महा संकटके स्थानमें, मुनीश्वरकूं नाख्या। सो वीतरागी यती, समता सहित रहे। तहां तीन-दिन भये, तब यतीश्वरने विचारो कि यामें जिनधर्मकी न्यूनता दिखैगी। पापीजन, धर्मी-पुरुषनकूं पीड़ेंगे। ऐसी जानि आदिनाथ स्वामीकी स्तुति, महा भक्ति-भावन सहित करी। ४८ काव्य किये। तिनमें अनेक मन्त्र, अतिशय सहित गर्भित करि भक्तामर नाम दिया सो मंत्र समान उत्तम काव्य किया। तिनमें आदिनाथ भगवानके गुण कहे। सो प्रभुकी स्तुतिके प्रसाद करि सर्व कोठोंके ताले अकस्मात् टूटि गये। यतीके तन-बंधन झड़ गये। यती निर्बंधन होय आये। सो तिनकौं देख, सेवक डरे। तब यतीकौं बहुत बंधनमें दिये सो फेरि बंधन टूटि गये। तब राजा भोज पै जाय, सेवकने कही। भो नाथ! यती बाहर निकसि आये हैं। तीन बार बंधन में दिये तीनों बार, बंधन आपै-आप टूटे हैं। ऐसा आश्चर्य न देखा, न सुन्या। तब राजा भोजने, कालिदास आदि सर्व पण्डितोंकौं कही। जो यह अतिशय यतीका भया। तब सबने कही। भो राजा! यह यती, महा जादूगर है। सो मंत्र-तंत्र करि निकस्या है। बंधन तोड़े हैं। तब राजाने दृढ़ बंधन करि पुनः कोठरीमें बंद करि चौकी राखी। तब यतीने भक्तामर-स्तुतिका पाठ किया। सो सर्व बंधन टूटे। निर्बंधन होय यती भोज-राजकी सभामें आये। तब राजा यतीकौं देख कांपता भया। और कालिदासकूं बुलाय कही। यतीका तेज मेरे बूते सह्या नहीं जाय है। ताका यत्न करो। तब कालिदास कही। राजन् डरौ मति। और उसने कालि-कादेवीकूं आराधी। जब देवी आयी। सो महाविकराल रूप बनाय ताने कही। भो कालिदास! क्यों आराधी सो कहो। एतेहीमें चक्रेश्वरी देवी आय यतीकौं नमस्कार किया। अरु कालिकाकूं देख चक्रेश्वरीने कही। रे महापापिनी। तैंने मूर्खनके संग करि अपना आतमा पाप—लिप्त करि पर भव बिगाड्या। अब तोकौं स्थान भ्रष्ट करि हौं। द्वीप तैं निकास हौं। तैने यतीकौं उपसर्ग किये। ऐसे चक्रेश्वरीके बचन कालिका

सुन पाप-फलतैं कंपायमान होय चक्रेश्वरीके पांयन पड़ी। कही, भो माता! मो अपराध क्षमा करि। मोह आज्ञा करौ, सो करौं। ऐसे नाना प्रकार चक्रेश्वरीकी स्तुति करि, पीछे कालिका, ९९०
मानतुंग गुरुके पांयन पड़ी गुरुकी अनेक बिनती करती भई। अरु कही, भो यती! मोकौं आज्ञा करौ, सो करूं तब यती कही। भो देवी! पूर्व भवमें पुण्य किया, ताके फल देवी भई। बड़ी शक्ति पाई। विवेक पाया। अब तूं ही हिंसाकी कर्त्ता भई, सो भला नाहीं। अब हिंसा तजि, दयाधर्मका सेवन करौ। ऐसी आज्ञा, गुरु नै करी तब कालिकाने मुनिकूं नमस्कार करि कही! भो प्रभो! आज तैं, मन-बचन काय करि हिंसाका त्याग किया। आपकी आज्ञा मोकौं कल्याणके अर्थ है, सो मैंने अंगीकार करी। भो यतीनाथ। मो अपराध क्षमा करौ। ऐसे कालिका देवीकौं सेवा करती देख राजा भोज आय मुनिके पांयन पड़ता भया। दीन होय गद्गद् वाणी करि कहता भया। भो दयानिधान! रक्ष! रक्ष! मो अपराध क्षमा करौ। भो दयामूर्ति! मेरा प्रायश्चित्त कहो। अरु भव-भ्रमण मिटै, सो उपदेश देहु। तब गुरुने कही। भो भोजराज! आदिनाथका धर्म सेये, कल्याण होयगा। तब राजा भोज, मानतुंग मुनी पै, श्रावकके व्रत लेता भया। यह अतिशय देखकर, जे पण्डित, वाद कौं आये थे। सो मान तजि, मिथ्याभाव छांड़ि, श्रावक-व्रत धारते भये। तब कालिदास आय मानतुंग मुनिके पांयन पड्या। कही, हे नाथ! मेरा अपराध क्षमा करो। अरु मोहि श्रावक-व्रत देहु। तब गुरुने दया करि कालिदासकौं श्रावक-व्रत दिये। पीछे राजा भोजने, गुरु पै नमस्कार करि कही। भो गुरुदेव। एक सन्देह मोहि है सो कहूं हूं। भो गुरुदेव। आपके सर्व बंधन टूटे सो मंत्र कौन है, सो कहो। ये मंत्र हमकौं दया करि देहु। तब गुरु कही। भक्तामर महा मंत्र अनेक विघ्नका नाशक है ताका स्मरण, पठन, ध्यान, सुखकारी है। ऐसा अतिशय देख, अनेक मिथ्या-भाव तजते भये। सो श्री मानतुंग आचार्यने प्रथम तौ भक्तामर स्तवन राजा भोजकौं पढ़ाया। ता पीछे, सर्व जगतके भव्य-जीव ६४८
ताकौं पठन करते भये। सो भक्तामरके कर्त्ता, विघ्नके हर्ता, मंगलके कर्त्ता, श्री मानतुंग गुरु मोकौं इस

ग्रन्थके पूरण होतें, अन्त-मंगलमें सहाय करो। ऐसे महा अतिशयके धारक, पंचमकालमें साधु भये। तिनकूं मैंने ग्रन्थके अन्त-मंगल निमित्त स्मरण किया ॥

इति श्री सुदृष्टि तरंगणी नाम ग्रन्थ मध्ये, अन्त-मंगल निमित्त, एकीभावके कर्त्ता श्री वादिराज मुनीश्वर, तिनके गुणोंका स्मरण तथा भक्तामरके कर्त्ता श्रीमानतुङ्ग नामा गुरु, तिनके गुणनका चिंतवन, तथा स्तोत्रनके कारण वर्णनो नाम, इकतालीसवां पर्व सम्पूर्ण ॥ ४१ ॥

ऐसे इस ग्रन्थके पूर्ण होते, अन्त-मंगलके निमित्त, कल्याणके अर्थ, इष्टदेव, पंच परम गुरु, सिद्ध क्षेत्र, समोशरण विषैं विराजते भगवान्, अकृत्रिम जिन भवन, इन आदिक सर्वका स्मरण, ध्यान करि, तिनकूं नमस्कार किया। ताकरि हमने अपना मनुष्य-जन्म पाना, सफल मान्या। काहे तैं, सो कहिये है। जो यह ग्रन्थ, सागर समान गम्भीर, नय-तरंगन करि भय्या, नहीं दृष्टि परै है सामान्य ज्ञानमें अर्थरूपी मर्याद कहिये पार जाकी। ऐसे अगाध गुण-निधिका पार पाना, हमसे ज्ञान दरिद्रीनकूं, महा दुर्लभ। सो इष्ट देव गुरुके प्रसाद, तिनकी भक्तिके अतिशय करि ग्रन्थ पूरण भया। सो यह आश्चर्य ऐसा भया जैसे कोई भुजा रहित पुरुष, अन्तके स्वयंभूरमण समुद्रकौं तिरके पार होय, लोकनकूं विस्मय उपजावै। ऐसा ये कार्य जानना। तथा कोई धन रहित दरिद्री पुरुषने व्याह रच्या। अरु बड़ी जायगा सगाईका संबंध करि, हजारों मनुष्य नेवते देय परदेश तैं बुलाये। सो इसकी क्रिया देख, जो धनवान थे; सो हाँसि करते भये। जो देखो, घर विषैं तो एक दिनकों अन्न नाहीं। अरु व्याह, ऐसा भारी रच्या है। सो कैसे बनैगा ? अरु यह पुरुष भी, अपनी अज्ञान-चेष्टा देख, चिंतावान भया। मैंने अपना पुण्य-बल नाहीं विचाय्या, अरु कारज दीर्घ रच्या। यह कैसे पूर्ण होयगा। ऐसे यह पुरुष चिंता करता रात्रिकौं तिष्ठै था। सो याके पुण्य तैं, कोई देवता आय, चिंतामणि देय गया। सो या पुरुषने चिंतामणिके प्रभाव तैं, प्रभात भला व्याह किया। वांछित सबनकौं भोजन-ज्यौंनार देय, जगतकौं आश्चर्य उपजाय, यश पाया। तैसे ही मैं ज्ञान-धन रहित, ग्रन्थ रूपी बड़ो शादो रचो थी। ताके पूर्ण होनेकी बड़ी चिन्ता थी। जो यह कार्य कैसे सिद्ध होयगा ? सो कोई पूर्व-पुण्य तै, इष्ट देवने, ज्ञान अंश मई चिंतामणि दिया। ताके प्रसाद करि, निर्विघ्न कार्यकी सिद्धी पाई। सो इस बातका हमकों

महा अद्भुत् सुख भया ॥ तथा जैसे कोई बालक-बुद्धि-पुरुष, शक्ति रहित काष्ठका खड्ग बांधि, प्रबल बैरीका गढ़ जीतिवेकौं संग्राम करि, जीति पाय; गढ़ लेय जगत कौं आश्चर्य उपजाय, यश पावता भया। तैसे ही मैं ज्ञान-बल रहित तुच्छ अक्षर ज्ञान तैं, ऐसा महान् ग्रन्थ पूर्ण किया। सो ये भी आश्चर्य है। इन आदिक आश्चर्य सहित, इस ग्रन्थके पूर्ण होते हर्ष भया। ग्रन्थकर्त्ता अपना जन्म, कृत-कृत्य मानता भया। जो या तन तैं, शुभ कार्य करना, था, सो किया। ऐसे अपना भव धन्य, मान्या। परभव सुधरवेकी साई (ब्याना) समान, आशा भई ताकरि परम-सुख भया। इस ग्रन्थ विषैं; अनेक ज्ञान तरंग उपजीं जाका कथन पाईये है। तातैं याके अध्ययन किए, सुदृष्टि होय। अरु ज्ञान-तरंगनका रहस्य जानै। तो तत्वज्ञान पाय परम सुखी होय, मोक्ष मार्गका ज्ञाता होय। पाप-पुण्यके शुभाशुभका भी वेत्ता होय। उच्च पद पाय, परंपराय जन्म मरण मेटै ऐसा जानि इस ग्रन्थके अभ्यास विषैं प्रवर्तना योग्य है। ऐसे इस ग्रन्थकी बालबोध बचनिका रूप टीका, अपनी आलोचनाकूं लिए, आदि-अन्त इष्ट देव-गुरुकों नमस्कार करि पूर्ण करी।

जे वसु गुण सहता, वसु कर्म रहता, सिद्ध कहंता सो देवा। चतु घात निवारे, चउगुण धारे, तन थिति कारे तिस सेवा॥
ताकी सो वानी धर्म कहानी, शिव दरशानी, मै ध्याऊं। ते नगर शरीरा, सब जग पी-हरा, तप घर धीरा, गुण गाऊं॥ १॥
ये देव धरम गुरु, तिष्ठौ मोउर, हे शिव सुख कर जगनाथा। मैं इनकौ दासा, और न आशा, है यह प्यासा, रक्ष तथा॥
यह टेक हमारी है गुणकारी, तुम श्रुति प्यारी, पाप हरा। सो मोकूं दीजै ढील न कीजे, लेय धरीजे, मोक्ष-धरा॥ २॥

यह सुदृष्ट तरंग है, ताको यह विस्तार। सागर सम जो यह तिरै, सम्यक टेक सुधार॥ ३॥
गुरु आज्ञा-नौका चढ़ै, शङ्का सकल निवार। ते सुदृष्टि तरंगके, उतरैं पैले पार॥ ४॥
शीतल-जिनके जन्म थलि, ग्रन्थ समापति कीन। विघ्न मिटे मंगल थये भये पाप सब हीन॥ ५॥
टेक गई अघ कारनी, रही टेक मुनि दाय। सो यह भव-भव टेक हम, मिलै टेक बृष दाय॥ ६॥
संवत् अष्टादश शतक, फिर ऊपर अड़तीस। सावन सुदि एकादशी, अर्धनिशि पूरण कीन॥ ७॥

इति श्री सुदृष्टि तरङ्गणी नाम ग्रन्थ मध्ये, कवि आलोचनादि वर्णनो नाम, ब्यालीसवाँ पर्व सम्पूर्ण॥ ४२॥

इति श्री पण्डित टेकचन्द्र जी कृत, सुदृष्टि तरङ्गणी नाम ग्रन्थ तथा ताकी बालबोधनी टीका: सम्पूर्णम्।